टेलीफोन नं० २०७० [आर्यप्रादेशिक प्रतिनिधिसभा पंजाब जालन्धर का साप्ताहिक मुखपत्र] Regd No. P. 12

एक प्रति का मूल्य १३ नये पैसे वार्षिक मूल्य ६ रुपये

वर्ष २२ अंक १) रविवार २८ पौष २०१८ — जनवरी १९६२ दयानन्दाब्द १३७ (तार-प्रादेशिक जालन्धर

वेद सूक्तयः

यजत देवमादेवं

अर्थभावों— देवम्—उसी देव को, आदेवम्—भलीभांति केवल उसी भगवान् को ही यजत—पूजा करो। लोगो! इन भौतिक सूर्य, चन्द्र, अग्नि, वायु, पर्वत, सागर आदि देवों को क्यों पूजते हो। इन का स्वामी महादेव भगवान् है। केवल उसी का यजन करो, उसी का पूजन किया करो। और किसी को मत पूजो।

अहम् इन्द्रो न पराजिग्ये

अहम्—मैं इन्द्र—इन्द्र हूं, वीर हूं, न—नहीं पराजिग्ये—हारता। ऐश्वर्य वीरता से भरा वीर इन्द्र हूं। किसी से भी पराजित नहीं होता। मुझे कोई भी हरा नहीं सकता। मैं सदा अजित बना हुआ हूं। इन्द्र बन कर हारना कैसा?

न मृत्यवेऽवतस्थे

मैं न—नहीं, मृत्यवे—मौत के लिए, मरने के लिए अवतस्थे—प्राप्त होता, ठहरता। सुनो! मैं अमर आत्मा रूप इन्द्र हूं। मैं मरने के लिए पैदा ही नहीं हुआ हूं। मौत मेरा कुछ भी नहीं बिगाड़ सकती है। मेरे लिए मौत है ही नहीं। अमर हूं।

वेदामृत

मूढ़ा अमित्रा न्यर्बुदे जह्येषां वरं वरम्। अनया जहि सेनया॥ अथर्व० ११-१०-२१

अर्थ—(मूढ़ा) मूढ़ पागल कर दो (अमित्रा) राष्ट्र के घातक शत्रु जो हैं (न्यर्बुदे) हे वीर सेनापते! (जहि) मार दो (एषां) इन राष्ट्र से द्रोह करने वाले शत्रुओं के (वरं वरम्) श्रेष्ठ लोगों को, मुखिया लोगों को (अनया) इस अपनी (जहि) मार दे (सेनया) फौज से। हे वीर! अपनी इस वीर सेना से राष्ट्र के सारे शत्रुओं को मूढ़ और पागल बना दे। उन के जो मुखिया हैं उनको समाप्त कर दे ताकि देश में राक्षसीपन का उत्पात न मच सके।

भाव—राष्ट्र रक्षा के लिए वेद का कितना वीरता भरा सन्देश है। वीर सेनापति का कर्तव्य है कि देश के हित में सदा सावधान तथा सतर्क रहे। पापी, राक्षस और देशघातक लोग तो इसी ताक में रहते हैं कि राष्ट्र के अन्दर सदा अशान्ति मची रहे। गड़बड़ जारी रहे। इस के लिए ये शत्रु अपना तानाबाना बुनते रहते हैं गड़बड़ कराने में नाना प्रकार के साधनों का प्रयोग करते रहते हैं। उनका काम देश में उपद्रव मचाना, दुर्घटे कराना तथा जनता को आपस में लड़ाना होता है। ये लोग राक्षस कहलाते हैं। ऐसे उत्पातकारियों के लिए सेनापति का कर्तव्य है कि अपनी वीर सेना को लेकर उनकी खोपड़ी ठीक करे। उनको पूरी तरह दण्ड देकर इलाज करे। राष्ट्र के शत्रुओं, सांपों तथा राक्षसों के साथ प्रेम का व्यवहार करना नीति मार्ग से विचलित होना है। घर में चूहा आजाये तो उसे निकालना पड़ता है। देश के इन सांपों, चूहों का भी प्रबन्ध करना ही पड़ता है। अन्यथा राष्ट्र की अखण्डता, स्वाधीनता, सम्पन्नता को सदा भय लगा रहेगा। इन का इलाज सेना से किया जाता है। सैनिक शक्ति से इन का सिर कुचल दो। यदि अग्नि, रोग और शत्रु की उपेक्षा की गई तो ये बढ़ कर राष्ट्र को, शरीर को हानि ही हानि है। मौत का भय है। इनको समाप्त करने का प्रबन्ध करना ही पड़ता है। हे वीर सेनापते! अपनी सैनिक शक्ति से ऐसे शत्रुओं को, उनके सरदारों मुखिया लोगों को ठीक कर दे। सं०

ऋषिवचनमाला

यद् आनन्दघनम्

यद्—जो ब्रह्म, सदा आनन्द घन—आनन्द का भण्डार है। वह भगवान स्वयं आनन्द का धाम है तथा सब के दुःखों को दूर करके उन्हें आनन्द देने वाला है क्लेश [illegible] में वह सदा सर्वदा [illegible] ही आनन्दमय है।

विद्या विज्ञानप्रदः

वह परमेश्वर ही विद्या—सब विद्याओं का, ज्ञानों का तथा विज्ञान आत्मा का विशेष ज्ञान का देने वाला है। इसी प्रभु से ही नानाविध विद्याओं व आत्मा के रहस्यमय विज्ञान को मनुष्य पा सकता है।

यस्याश्रय एव मोक्षः

यस्य—जिस प्रभु का आश्रय कृपा एव—ही मोक्ष—दुःखों से मुक्ति है। उस परमेश्वर की कृपा से ही, उसका सहारा पा लेने से ही मनुष्य अपने दुःखों से, कष्टों से छुटकारा पा लेता है। सुख को प्राप्त कर सकता है।

—ऋग्वेद भाष्य

सम्पादक: त्रिलोक चन्द्र शास्त्री अधिष्ठाता: भक्तराम ऐडवोकेट उपप्र०

आर्य जगत् का बाईसवें वर्ष में प्रवेश मंगलमय हो

इस के सारे प्रेमी सहयोगियों को हार्दिक बधाई

मान्य महानुभावों के शुभ सन्देश

महात्मा आनन्द स्वामी जी का

आर्य जगत् के लिए मगल सदेश

आज से २१ वर्ष पूर्व प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा पंजाब सिंध बिलोचिस्तान लाहौरके अधिकारियों ने निश्चय किया कि आर्य गजट के अतिरिक्त हिन्दी का भी एक साप्ताहिक पत्र प्रकाशित होना चाहिये, जो आर्य जगत को वेद सन्देश घर घर पहुंचाया करे, और इस का नाम "आर्य जगत" हो भारी घाटा उठा कर भी सभा ने इसे जारी रखा, लाहौर से उजड़ कर जब भारत मे आकर हम शरणार्थी बने तो मेरे मन में सब से पहला यही विचार आया कि आर्य गजट तथा आर्य जगत को शीघ्र से शीघ्र जारी कर दिया जाये, उजडे हुए कार्य कर्ता सब बिखरे हुए थे, तब मैं ही दोनों पत्रों का प्रिन्टर पब्लिशर बना और उर्दू का आर्य गजट और हिन्दी का आर्य जगत प्रकाशित होने लगे, सभा के यह दोनों पत्र वेद प्रचार का ठोस कार्य करने लगे, परन्तु दोनों घाटा पर चल रहे थे, तब यह विचार किया गया कि जब तक आर्य गजट को बन्द नहीं किया जाता तब तक आर्य जगत अपने पावों पर खड़ा नहीं हो सकता। यह विचार सर्वथा भ्रम मूलक था, परन्तु सभा ने आर्य गजट को "सभा-बदर" कर दिया, आर्य गजट को सभा ने बन्द कर दिया पं० दुर्गा दास जी ने अपनी हिम्मत से आर्य गजट को बचा लिया परन्तु आर्य जगत का घाटा फिर भी पूरा न हुआ, इसे भयंकर घाटे ही के भवर मे रहना पड़ा। पजाब में हिंदी रक्षा रख कर प्रबल आंदोलन गया, बलिदान भी हुए, जेल भी भर दिये गये, आर्य जगत की ग्राहक संख्या टस से मस न हुई, यह बड़ी दुःख भरी सच्ची कहानी है जिसे सुन पढ कर हृदय पर एक आघात पहुंचता है, और विचार आता है कि क्या पंजाब के लोग कहते कुछ हैं करते कुछ हैं?

हमारी कथनी और करनी एक ही होनी चाहिये अब जब कि २१ वर्ष से निरन्तर प्रादेशिक सभा आर्य जगत का घाटा पूरा करती चली आ रही है, जिस के अधीन समाजें हैं क्या वह समय नहीं आ गया कि हर एक आर्य परिवार में आर्य जगत् का स्वागत किया जाये ताकि आर्य जगत् अब अपने पाओं पर खडा हो जाये, मेरी इस प्रार्थना को हर एक आर्य समाज अपने सत्संग में पढ कर सुनाने की कृपा करे, देखता हूँ, कितने परिवार मेरे निवेदन पर पुष्प चढाते हैं।

आनन्द स्वामीसरस्वती

प्रिंसिपल सूर्यभानु जी एम० ए० सभा प्रधान का शुभ सन्देश

डी० ए० वी० सस्थाओं का उद्देश्य बालकों को केवल शिक्षित करना ही नहीं, बल्कि उन्हें चरित्रवान और सच्चे रूप मे धार्मिक भावनाओं से ओत प्रोत करना है। यदि हम शिक्षा के उस धार्मिक पक्ष को भुला दे तो महात्मा हंसराज जी के व्यक्तित्व और सेवाओं से एक प्रकार का अन्याय होगा।

ऋषि दयानन्द ने हमें अतीत से प्रेम करना सिखाया। वेद के स्वाध्याय का उपदेश दिया। नेत्रहीन राष्ट्र को नेत्र दिये। सच्ची राष्ट्रीय चेतना के विकास के लिए पुरातन संस्कृति को फिर से जीवित करने का यत्न किया। इसीलिए वे राष्ट्रीय चेतना के अग्रदूत हैं।

आर्य जगत् 'आर्य जगत्' को अपनाये

आर्य सस्थाए पूर्ण सहयोग दें

(श्री० ला० सन्तोषराज जी महामन्त्री सभा)

आर्य प्रादेशिक सभा पंजाब जालन्धर के मान्य महामन्त्री श्री लाला सन्तोषराज जी प्रिंसिपल दयानन्द नार्मल स्कूल ने सभा के मुखपत्र आर्य जगत् के २२वें वर्ष के आरम्भ में अपना शुभ सन्देश देते हुए कहा है—

आर्य जगत् आर्यप्रादेशिक सभा पंजाब जालन्धर का अपना साप्ताहिक मुखपत्र है। सभा इस के द्वारा वेद प्रचार का कर्तव्य निभाती है। प्रति सप्ताह आर्य जगत समाजों, संस्थाओं तथा सज्जनों की सेवा मे पहुच कर जीवन, धर्म तथा राष्ट्र-निर्माण का सन्देश देता है। आर्यसमाज के नेताओं तथा विद्वान् महानुभावों का इसे सहयोग प्राप्त है। यह भी सभा का सच्चे अर्थों मे बडा भारी प्रचारक है। एक ही समय मे अनेक स्थानों मे जाकर मौन किन्तु प्रभावपूर्ण रीति से अपना प्रचार करता है।

आर्य जगत् २२वे वर्ष में प्रविष्ट हो रहा है। गत २१ वर्षों से जनता की निरन्तर धर्मसेवा मे तत्पर है। अविद्या के नाश और विद्या की वृद्धि मे यह संलग्न है। अपने नये वर्ष में कदम रखते हुए आर्य जगत् के सारे सहयोगियों का जहा धन्यवाद किया जाता है, कि उन्होंने इसकी उन्नति में ध्यान देते हुए अपना कर्तव्य पालन किया है। वहां विशेष निवेदन भी करना है। आर्य प्रादेशिक सभा के साथ पंजाब तथा बाहिर भी सैंकडों आर्य समाजें सम्बन्धित हैं। विद्या प्रचार के विशाल कार्य को करने वाली दयानन्द कालेज कमेटी के आधीन भारी और शानदार स्कूल, कालेज आदि बडी २ शानदार संस्थाएं हैं। अनेक कुमार व युवक समाजें तथा स्त्री आर्य समाजों का संगठन है। कितना बडा कार्य का विस्तार है। यदि ये सारी सस्थाएं इसी प्रकार से सभा के मुखपत्र आर्य जगत् की ओर और अधिक ध्यान देने लगें तो सभा के इस पत्र का कितना विस्तार हो सकता है।

मैं सारे मान्य प्रिंसिपल महानुभावों, स्कूलों, शालाओं तथा आर्य समाजों के अधिकारियों से सानरोध निवेदन करता हूं कि सभा की कोई भी समाज ऐसी न रहे। हमारी कोई भी संस्था ऐसी न हो जहा आर्य जगत् न जाता हो। इस प्रकार से इस के प्रकाशन का कितना कार्य बढ जायगा। सारे मान्य सज्जन इस वर्ष से इस ओर विशेष ध्यान देने मे लग जायेंगे। इस के अतिरिक्त मैं सभा के सचालित अपने जिलों के मण्डलों तथा उन मे काम करने वाले अपने भाईयों तथा देहली के अपने प्रबन्धकों से तथा अन्य सभी सभा, समाज के हितैषी भाईयों से कहूंगा कि वे तन, मन, धन से आर्य जगत् के इस नये वर्ष से इस का प्यारा परिवार बढ़ाने में पूरा २ उत्साह दिखायें। आर्य जगत् को घाटा से मुक्त कर दे। आर्य जगत् इस २२ वें वर्ष में अधिक से अधिक उन्नति करता रहे। यही प्रभु से प्रार्थना है।

—०—

सम्पादकीय—

ओ३म्
आर्य जगत्

वर्ष२२] रविवार २४ पौष २०१८, ७ जनवरी १९६२ [अंक १

आर्य जगत् का जन्म दिन

जन्मदिन किसी का भी हो। बालक हो, युवा, वृद्ध हो, नेता या महापुरुष हो अथवा कोई सस्थान या संस्था हो। उसका सम्बन्ध व्यक्ति के एक जीवन से हो अथवा समूचे समाज, राष्ट्र से हो—उस में कितना प्रसाद, उल्लास हुलास एवं मस्ती भर जाती है। राष्ट्रीय स्वाधीनता दिवस पर जनता कैसी भाव विभोर हो जाती है। महापुरुषों का पर्व कितनी पुनीत प्रेरणा भर देता तथा आर्य समाज का स्थापना दिवस जीवन मे कितनी तरंगे भर देता है। क्यों? इस लिए कि उस दिन विश्व-कल्याण की भव्य भावना से भरे एक महानात्मा, संस्था ने जन्म लिया होता है। हमारा तो यह निश्चित विचार है कि वेद प्रचार जैसे पवित्र महान् कार्य को जीवन का लक्ष्य बना कर चलने वाली सभाओं को भी अपना जन्म दिन अवश्य मनाना चाहिए। हम आर्य प्रादेशिक सभा के मान्य कर्णधारों से नम्र-निवेदन करना चाहते हैं कि वे सभा का जन्म-दिवस वर्ष के बाद मनाने का अवश्य गम्भीर विचार करेंगे। जन्म दिन से अतीत युग के सम्पादित लोकोपकार के कार्यों का भली-भांति निरीक्षण हो जाता है तथा भविष्य के पथ पर चलने की सम्बलता प्राप्त होती है। इस से बहुत कुछ मिल जाता है।

आर्य जगत् आर्य प्रादेशिक सभा का अपना साप्ताहिक प्रमुख-पत्र है। आर्य समाज ने भारत में हिन्दी के क्षेत्र में बड़ा ही स्तुत्य काम किया है। इसके महान सस्थापक महर्षि दयानन्द सरस्वती दूरदर्शी होने से ऋषि थे। ऋषि की ज्ञानदृष्टि बहुत दूर से देखा करती है। उस युग मे सारे राष्ट्र को एक भाषा के सूत्र मे पिरोने के लिए आर्यभाषा हिन्दी को अपना कर प्रत्येक आर्य भाई बहिन के सामने भी इस की आवश्यकता को प्रस्तुत किया हिन्दी के राष्ट्रभाषा के आसन पर समासीन होने का सारा श्रेय देवदयानन्द तथा उन द्वारा स्थापित समाज को है। सभा प्रचार के साथ २ अपना धार्मिक पत्र आर्य-जगत् भी निकालती है आज से २१ वर्ष पूर्व सभा के इस मुखपत्र आर्य-जगत् का जन्म हुआ था। अपने जीवन के इक्कीस वर्ष साधना सेवा की सरल सरणी पर आगे बढता २ समाप्त करके बाईसवे वर्ष मे अपना कदम रख रहा है। अपने गत समय के सारे इतिहास में सभा के द्वारा इस ने जो सेवा की। आर्य समाज के मान्य महानुभावों के विचार भण्डार के प्रसाद को लेकर अपने प्रेमी पाठकों तक पहुचाने मे जैसी भी सेवा की। उस पर आर्य जगत् को अमित मान तथा गुरु गौरव है। इस के पुरातन स्तम्भों तथा नवीन कर्णधारों का इसके प्रति जो स्नेह था और है। इसके मान्य लेखकों, सहयोगियों के मन मे इस के प्रति जो श्रद्धा है। इसके अभिभावको के विचारों में इस के लिए जो प्यार है। उन सब के लिए आर्य जगत् के सारे विभाग का मस्तक झुक जाता है। सभा के मान्य अधिकारियों, वेद प्रचार विभाग के सारे साथियों, समाजों, संस्थाओं के सारे सज्जनों, विद्वान् भाईयों, विदुषी बहिनों के प्रति हमारा प्रणाम है जिन का सहयोग हमे सदा ही प्राप्त है। कभी २ तो किसी कृति के देर होने के कारण हमें प्रेमपूर्ण रोष कोप का पात्र भी बनना पडता है।

इक्कीसवा वर्ष बीता। बाईसवा जन्म दिवस है। आर्य जगत् कोई व्यापारी पत्र नहीं। आज के युग के चित्रपट आदि के तथा सिद्धांत विरुद्ध विज्ञापन इस मे नहीं छप सकते। वैदिक धर्म के प्रचार का ही इस का लक्ष्य है। सभा के पत्र को कितना घाटा रहता है। यह सारे जानते हैं। क्यों? इसका उत्तर दोनों ओर ही सम्बन्ध रखता है। कुछ हमारी कमिया हैं और कुछ सज्जनों की उदासीनता। गिला दोनों का है। दूर भी दोनो मिल कर ही कर सकते है। इस वर्ष में कदम रखता हुआ आर्य जगत् सब के दिल खोल कर सहयोग देने की नम्र प्रार्थना करता है। मंगलमय प्रभु शक्ति देवें ताकि सभा का यह पत्र अपने प्रचार साधना पथ पर सतत चलता हुआ इस वर्ष सूत्र सेवा कर सके। सब का आशीर्वाद चाहिए। —त्रिलोकचन्द्र

समाज की बड़ी क्षति

अभी २ देहली मे आर्य समाज के पुराने अनथक नेता श्री ला० बृजलाल जी तथा श्री ला० अनन्तराम जी तथा मण्डी हिमाचल के श्री ला० देवीराम जी के निधन का समाचार आर्य जगत् के पाठकों ने सुन पढ लिया हैं। इन माननीय समाज के स्तम्भों के संसार से चले जाने का सारे समाज को अतीव दुःख हो रहा है। आर्य समाज व्यक्तियों का ही तो नाम है। एक योग्य व्यक्ति स्तम्भ के समान समाज के कार्य भवन को सम्भाल कर उस का मस्तक बहुत ऊंचा कर देता है। उस स्तम्भ के ओझल हो जाने से भवन की कैसी चिन्तनीय दशा हो जाती है।

आर्यसमाज के कालिज विभाग मे स्वर्गीय लाला बृजलाल जी तथा ला० अनन्तराम जी का कितना ऊंचा सार्वजनिक स्थान था—यह कौन नहीं जानता? ला० बृजलाल जी ने लाहौर के पुन देशविभाजन पर देहली में डी० ए० वी० स्कूलों के निरीक्षक के रूप मे, आर्यसमाज के कार्य तथा अब देहली मे डी० ए० वी० कालेज प्रबन्ध कमेटी की सेवा के रूप मे जो प्रशंसनीय कार्य किया तथा कर रहे थे—वह स्वर्णाक्षरों मे लिखा जायगा। इसी प्रकार ला० अनन्तराम जी ने देहली में कालिज विभाग की विशाल संस्थाओं का जाल बिछाने तथा वहा आर्य-समाज के कार्य का विस्तार करने मे रात दिन एक करके जो सेवा की—आज वह सब के सामने है। मुझे इस बात का बहुत गौरव है कि दोनो का आशीर्वाद मुझे सदा से मिलता रहा है। इसी प्रकार मण्डी के ला० देवीराम जी भी सचमुच समाज की विभूति थे। सारा परिवार ही समाज के रंग मे रंगा था। अभी गत उत्सवों पर सब के दर्शनों से कृतार्थ हो लौटा। क्या पता था कि उनके अन्तिम दर्शन हैं। आर्य समाज को इन के चले जाने से भारी क्षति पहुची है। पुराने स्तम्भ धीरे २ ओझल होते जा रहे हैं। नयों मे वह रंग कहां? आर्य जगत् सब के परिवारों से हार्दिक सहनुभूति प्रकट करता है। आर्य समाज की कमी पूरी कैसे होगी—स०

—०—

मानवगृह्य सूत्र, एक आलोचनात्मक अध्ययन

–(ले० प्रो० भवानीलाल जी भारतीय एम ए, सिद्धात वाचस्पति प्रवक्ता–श्री महाराज कुमार कालेज, जोधपुर)–

यजुर्वेद की मैत्रायणी शाखा का गृह्यसूत्र मानवगृह्य है। सर्व-प्रथम यह ग्रन्थ रूस में छपा। हिन्दी के भारतेन्दु कालीन लेखक श्री जगमोहन वर्मा से इस की एक प्रति प्राप्त कर महर्षि दयानन्द के शिष्य पं भीमसेन शर्मा ने आज से लगभग ५६ वर्ष पूर्व इस का भाषानुवाद सहित प्रकाशन कराया। उस समय प० भीन सेन आर्य समाज का परित्याग कर सनातन धर्म को अपना चुके थे और इटावा से 'ब्राह्मण सर्वस्व' पत्र का सम्पादन करते थे। इसी गृह्यसूत्र का आधार बना कर कालान्तर मे मनुस्मृति की रचना हुई। मनुस्मृति और इस गृह्यसूत्र मे अनेक बातों की समानता इस का प्रमाण है।

इस ग्रन्थ का विभाजन दो पुरुषों मे हुआ है। प्रथम पुरुष मे २३ और दूसरे मे १८ खण्ड है। ग्रन्थ का प्रारम्भ ब्रह्मचारी के कर्त्तव्यों के वर्णन से होता है। प्रथम खण्ड के अतिम सूत्र २४ मे 'त्रायुषं जमदग्ने कश्यपस्य त्रायुष' इस यजुर्वेद के मत्र को बोल कर भस्म धारण करने का विधान किया है। महर्षि दयानन्द ने सत्यार्थ प्रकाश के ११ वे समुल्लास मे इसी का खण्डन करते हुए लिखा है कि यह मन्त्र भस्म करने का वाची नहीं है। इस से ज्ञात होता है कि यह सूत्र कालान्तर मे भस्म-धारण की साम्प्रदायिक विधि के प्रारम्भ होने पर इस गृह्य सूत्र में मिला दिया गया।

द्वितीय खण्ड मे भी ब्रह्मचारी के ही कर्त्तव्य बताये गये हैं। यहा सन्ध्योपासन के प्रसग मे ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य तीनों वर्णों की पृथक पृथक गायत्रियां बताई गई हैं जो स्पष्ट ही बाद की कल्पना है। 'भूर्भुव स्व' यह मंत्र तो गायत्री छद मे ही हैं जो ब्राह्मण के लिये माना गया है। इसी प्रकार क्षत्रिय के लिये 'आदेवो-याति' यह त्रिष्टुभ छद वाली और वैश्य के लिए युंजते यह जगती छंद वाली गायत्री बताई गई। जब त्रिष्टुभ और जगती, पृथक् ही छंद हैं तो उन्हें गायत्री कहने का क्या अर्थ? इसी खण्ड मे ब्रह्मचारी को लिये १२, २४, ३६ और ४८ वर्ष तक ब्रह्म-चर्य पालन का वैकल्पिक विधान किया है जो पूर्णतया ऋषि दयानन्द के मत के अनुकूल ही है।

द्वितीय खण्ड की समाप्ति पर अतिम २० और २१ वे सूत्रों मे जहा समावर्तन के पश्चात नवीन गृहस्थी के लिये पूर्णमास और दर्श यज्ञ करने की आज्ञा दी गई है वहा अग्नि के लिये पशु याग करने का विधान भी मिलता है। अतिम २१ वे सूत्र मे कहा गया है—"तस्य हविर्भक्षयित्वा यथासुखमत उर्ध्वं मधुमासे प्राश्नीयान् क्षार लवणेच" अर्थात् इस यज्ञ के शेष भाग को खाकर यथा-सुख मधु मास, क्षार लवण आदि का भक्षण करे 'अत ऊर्ध्वं कहने का एक अर्थ यह भी निकलता है कि इस से पूर्व अर्थात् ब्रह्मचर्य आश्रम मे जहां उसे मधु मास खाने की आज्ञा नहीं थी' ★अब गृहस्थ मे यथेच्छा मधु मास सेवन की आज्ञा मिल गई है। हमारी दृष्टि से यह सूत्र भी प्रक्षिप्त ही माना जाना चाहिये।

तृतीय खण्ड ब्रह्मचारियो के सामान्य कर्त्तव्य कर्मों से च्युत होने पर प्रायश्चित विधान करता है। चतुर्थ खण्ड में श्रावणी उपा-कर्म, उत्सर्ग तथा वेद के अध्ययन मे जो अनध्याय होने हैं उनका उल्लेख हुआ है। जिन्होंने कर्म-काण्ड के ग्रथ देखे हैं वे जानते हैं कि प्राचीन काल में अनध्यायों के कैसे कैसे विचित्र कारण माने जाते थे। पंचम खण्ड मे श्राद्ध और तर्पण के कृत्य ब्रह्मचारियों के लिये लिखे हैं। यह सम्पूर्ण पौराणिक कर्म काण्ड बाद की मिलावट प्रतीत होती है। छटे खण्ड में ब्रह्मचारी के लिये अग्नि होत्र की विधि बताई गई है। यहां तक का ग्रंथ ब्रह्मचर्य आश्रम का वर्णन करता है। सातवे खण्ड मे विवाह की विधि का वर्णन प्रारम्भ होता है। इस सूत्र के अनुसार कृतिका स्वाति और पूर्वाफाल्गुनी आदि नक्षत्र विवाह के लिये प्रशस्त है। महर्षि दयानन्द ने सस्कार विधि मे आश्व लायन और गो भिल आदि अन्यान्य गृह्यसूत्रों के इस प्रसग के सूत्रों के उद्धत करते हुये पाद टिप्पणी मे यह लिख कर स्पष्ट कर दिया है कि 'यह नक्षत्रादि का विचार कल्पनायुक्त है, इस मे प्रमाण नहीं।' (पृ० १२६, वैदिक यत्रालय का १८ वा सस्करण) सूत्र सख्या ५ मे रोहिणी, मृगशिरा, श्रवण, धनिष्ठा, उत्तराफाल्गुनी आदि नक्षत्रों को भी विवाह के लिये उपयुक्त बता कर 'यद्वा पुण्योक्तम्' यह कह कर किसी भी पुण्य दिन मे यह सस्कार करने की छूट दे दी है। यहा चालाक हिन्दी टीकाकार प० भीम सेन ने 'यद्वा पुण्योक्तम्' का अर्थ करते हुए लिखा है—"अथवा पाराशरी आदि ज्योतिष के अच्छे ग्रन्थों मे कहे नक्षत्रों मे विवाह करे।" टीकाकार को यह पता नहीं कि पाराशरी के सहस्रों वर्ष पूर्व लिखे गये सूत्रों मे इस ग्रन्थ का सकेत किस प्रकार हो सकता है?

गोभिल गृह्य की तरह इस सूत्र ग्रथ में भी कन्या के गुप्त या अदृष्ट दोषों की परीक्षा के लिये एक विचित्र अंधविश्वास पूर्ण कृत (टोटका) लिखा है जिस का सार यह है कि कन्या की परीक्षा के लिये १. जुते खेत २. होम की वेदी ३. दूब ४. गोबर ५. वृक्ष ६. श्मशान ७. मार्ग और ८. ऊसर भूमि इन स्थानों से मिट्टी के ८ पृथक् ढेले लेकर किसी देवता के मंदिर में आठों ढेले रक्खे और उन मे से एक ढेला कन्या से उठवावें। यदि वह मरघट, मार्ग और ऊसर के ढेले उठा ले तो वह कन्या विवाह के लिये प्रशस्त नहीं मानी जाती। पता नहीं कन्याओं के गुणावगुण को जानने के लिये यह कौन सा उपाय निकाला गया था। यह कोई कैसे जान सकता है कि कौन सी मिट्टी कहां की है? और इस से कन्या के अच्छे या बुरे होने का क्या सम्बन्ध हो सकता है?

आठवे खण्ड से विवाह विधि प्रारम्भ होती है। नवे मे मधुपर्क विधि लिखी है। इस ग्रथ के अनु-सार १ ऋत्विक २ आचार्य ३ जामाता ४ राजा ५. स्ना-तक और ६ श्वसुरादि पूज्य ये छ पुरुष मधुपर्क के अधिकारी माने गये है। अन्यान्य गृह्य सूत्रों की तरह इस सूत्र की मधुपर्क विधि मे भी गोवध के प्रकरण घुसेड़ दिये हैं। मधुपर्क की सुन्दर और पवित्र विधि में गोवध का वीभत्स प्रकरण जिस प्रकार प्रक्षिप्त किया है वह स्पष्ट पैबन्द के तुल्य दीख पडता है। मधुपर्क के प्राशन के (सूत्र १६) अनन्तर 'अमृतापिधान-मसि' इस मत्र से आचमन (सूत्र १७) और 'सुहृदे ऽवशिष्टं प्रय-च्छति' सूत्र १८ अर्थात् शेष बचे मधुपर्क को पात्र सहित अपने किसी मित्र को दे दे। यहा स्वभावतः मधुपर्क प्रकरण समाप्त हो जाना चाहिये। ईस के पश्चात् गाय के बध की जो निर्मम विधि जोड़ी गई, उस का स्पष्टत मधुपर्क की मूल विधि से कोई सम्बन्ध नहीं है। अत उस का प्रक्षिप्त होना स्वत सिद्ध है।

(क्रमश.)

★वर्जयेन्मधु मांसं मनु २।१७७

वेद में विश्व कल्याण के अंश (२)

लेखक—श्री करनैल सिंह विद्यार्थी, विद्या–विनोद नगर कादिया

गतांक से आगे

वेदों का अध्ययन करना प्रत्येक आर्य का धर्म है क्योंकि इस में मानवोपयोगी इतने गूढ़ रहस्यों का वर्णन आता है जिन का कि वर्णन नहीं जाता यह वेद हमें भगवान ने यह जान कर दिये कि इस की शिक्षाओं का अनुसरण करता हुआ प्रत्येक मानव अपने जीवन को सफल बना सके। क्योंकि देखिये भगवान का सम्बन्ध हमारे से उतना ही है जितना कि एक बछड़े का गाय के साथ होता है, जितना कि एक पतिव्रता स्त्री का पति के प्रति होता है। जिस प्रकार गाय अपने बछड़े के लिए हर ओर से सुख इकट्ठा करती है अर्थात् अपने वत्स को हर ओर से सुखी रखना उसका परम-धर्म (कर्त्तव्य) हो जाता है जिस प्रकार एक पतिव्रता स्त्री अपने पति को खुश रखने के लिए बहुत से साधन अपनाती है। वैसे हमारे परम-पिता परमात्मा ने भी हमारे सुख के लिए हमारे कल्याण के लिए पवित्र वेद का ज्ञान दिया है। अत जिस लाड-प्यार से हमारे पिता ने हमारे कल्याण के लिए शुभ-वेद-ज्ञान रूपी पथ हमारे कल्याण के लिये दिया है वैसे ही हमारा भी कर्त्तव्य है कि हम भी उस अपने पिता के लाड-प्यार को तिलाजलि न दे कर हम भी अपने पिता की पावन आज्ञाओं का अपना सर्वस्य ही समझ कर पालन करे।

सो कहना न होगा कि हमे अपने पिता के कथनानुसार उन वेद की शिक्षाओं का पठन कर के मनन करना चाहिए। यद्यपि हमारे कल्याण के लिए वेद मे एक नहीं, दो नहीं, बल्कि बहुत शिक्षाओं के भंडार भरे पडे है। तथापि किन्हीं वेद मन्त्रों की शिक्षानुसार अपने मन के विचार प्रकट करने लगा हूँ। जिन की आज के अशान्ति प्रिय विश्व को बहुत जरूरत है। अर्थात् यदि इन शिक्षाओं का पालन आज भी मानव के हृदय में आ जाये तो फिर तो कहना ही क्या है। वही राम-राज्य आ जाये जिस के महात्मा गाधी स्वप्न लेते थे। प्रसंगवश ये बता दू कि राम के राज मे लोग कैसे थे जिन का पौराणिक विद्वान भी अर्थात् गोस्वामी तुलसी दास जी अपनी रामचरित नामक पुस्तकमे वर्णन करते हुए कहते है कि

नहिं दरिद्र कोउ दुखी न दीना,
नहि कोउ अबुध न लच्छन हीना॥
सब नर करहि परस्पर प्रीति,
चलहि स्वधर्म निरत श्रुतिरीती।
एक नारी व्रत रत सब झारी,
ते मन वच कर्म पतिहितकारी।

आगे लिखते है कि —

शोचिय विप्र जु वेद विहीना,
ताज निज धर्म विषय लवलीना॥

सो अब मै कुछ वेदकी शिक्षाओं का वर्णन करता हूँ सो निम्नांकित हैं (१) अथर्ववेद ३/३०/२ के मन्त्र मे बहुत ही सुन्दर दिग्दर्शन कराया गया कि —"ओ३म् अनुव्रत पितु पुत्रो माता भवतु संमना। जायापत्ये मधुमतीं वाच वदतु शान्तिवाम्॥"

कैसा सुन्दर ये अथर्ववेद का मन्त्र है। कैसा सुन्दर इस का उपदेश है घर मे पुत्र-पिता, पत्नि का आपस मे इतना अटूट प्रेम हो कि जितना गाय का बछड़े के साथ होता है इस के अगले ही मन्त्र मे "ओ३म मा भ्राता भ्रातर द्विक्षन् मा स्वसारमुत स्वसा। सम्यच सव्रता भूत्वा वाच वदत भद्रया॥"

इत्यादि वेद मन्त्रों मे ये सुन्दरोपदेश दिया गया है कि भाई-बहिने आपस मे प्रेम-पूर्वक प्रीति से व्यवहार करें। मीठी ही सदा वाणी बोले, परस्पर इतना प्रेम बढायें कि जो कभी टूटने वाला भी न हो।

वास्तव मे देखा जाय तो जितनी शिक्षा हमे इस मन्त्र से मिलती है यदि वह ही हम अपने जीवन में ढाल लें तो फिर तो कुछ कहना ही क्या है। यदि एक परिवार के बहिन-भाई परस्पर अटूट प्रेम की भावना रखेंगे, एक दूसरे पर जान भी देनी पडे तो देने को तैयार हो जायेंगे और इसी प्रकार माता-पिता भी और पिता पुत्र का भी आपस मे सम्बन्ध प्रेम-पूर्वक चले तो कहना न होगा कि वह घर ही स्वर्ग बन जाये। घर ही क्या उसका अनुसरण करते हुए इस प्रकार धीरे२ सारा मुहल्ला ही कभी क्रोध की अग्नि मे जलेगा ही नहीं तथा परस्पर-प्रीति बनाये रखेगा। सो कहना न होगा कि इस प्रकार धीरे २ जहा वह मुहल्ला सुखी होगा वहा पर समाज, राष्ट्र तथा देश भी धीरे २ उन्नति के पथ पर अग्रसर होगा जिससे सारे विश्व मे धीरे २ शाति का साम्राज्य होगा।

अत बालकों को चाहिये कि वे अपने मन मे श्रवण कुमार तथा श्री राम चन्द्र का चरित्र धारण करे तथा बडों को चाहिए कि अपने पुत्रों को विद्वान बनाने के लिए अपने बच्चों का परस्पर प्रेम बढाने के लिए अपने पूर्वजों के अच्छे अनुभव सिखाव तभी ही देश मे शाति स्थापित हो सकती हैं इसमे माता-पिता को अपने अच्छे गुणों का बच्चों को अनुसरण करना चाहिए।

(२) इसके आगे वेद कहता है कि हे मनुष्यो अपनी वाणी को सुधारो सदा मीठी वाणी बोलो। अथर्ववेद यह स्पष्ट ही तो कहता है कि—

ओ मधुमन्मे निष्क्रमण
मधुमन्मे परायण।
वाचा वदामि मधुमद्
भूयासं मधुसन्दृश॥

यह अथर्ववेद क १।३४ मन्त्र है जिस मे मानव को उपदेश दिया गया है कि हे मनुष्यो तुम सदा मीठी वाणी बोलो, मीठा व्यवहार करो, व्यवहार में कोई खोट न हो मीठी ही नजर से सब को देखो।

वास्तव में देखा जावे तो इस मन्त्र मे अत्युत्तम शिक्षा का वर्णन आया है। क्योंकि कोई भी आदमी तब तक आदरणीय, माननीय नहीं माना जायेगा जबकि उसका सारा जीवन सरल और ऊंचे विचारों का न होगा। परतु इस के उलट कोई मानव बेशक प्रचारक है बेशक बढ़ा विद्वान है परतु उस के जीवन मे मिठास यदि नहीं है सच्चा प्रेम नहीं है तो वह लोकप्रिय नहीं हो सकता। इसी लिये ही उसे उस के कार्य मे पूर्णतया सफलता नहीं प्राप्त हो सकती। अत यदि वह तथा प्रत्येक आदमी अपने जीवन में सफल होना चाहता है तो उसे इस वेदमन्त्र की आज्ञानुसार मिठास भरा जीवन बिताना चाहिए है किसी को कड़वे शब्द नहीं कहने चाहिए। इस से जहा उस का अपना मन गदा होता है वहा पर उस के मन पर कुप्रभाव पडे बिना भी नहीं रहता। इस मिठास का दूसरा नाम सत्य भी है जिस का शास्त्रों में बडा महत्व बताया गया है इसी लिए तो मनु जी ने कहा कि—

'सत्य ब्रूयात प्रियं ब्रूयान्न
ब्रूयान् सत्यमप्रियम्।
प्रिय च नानृत ब्रूयान्,
एष धर्म सनातन॥' मनु०

अर्थात् मनुष्य को चाहिए कि सदा मधुर बोलें, मीठे व प्रिय वचन कहे सत्य को भी जहा तक अप्रिय रीति से न कहे और जो वचन झूठे हों उन्हें भी प्रिय भाषा मे सुनने पर भी न कहें। यही पुराने धर्म का सार है। अर्थात् सदा मीठी वाणी बोले। गोस्वामी तुलसीदास ने भी एक स्थान पर मानो कि उक्त वेद मन्त्र का ही अनुवाद कर डाला है है बडा सुन्दर कहा है कि—

'तुलसी मीठे वचन से,
सुख उपजत चहु ओर।
वशीकरण यह मंत्र है,
परिहरु वचन कठोर॥"

हमारे शास्त्रो मे इस प्रकार के वाणी की श्रेष्ठता के लिए, मीठी वाणी के लिये, सत्य बोलने के लिए अनेक उदाहरण प्रस्तुत हैं जिन के लिये कहा भी है कि प्रत्यक्ष के लिये प्रमाण की आवश्यकता नहीं होती।

(शेष पृष्ठ ६ पर)

वेद परिचय—नं १

(लि०—श्री वजीरचन्द्र जी शर्मा हैडमास्टर डी.ए वी हाईस्कूल ऊना)

प्रश्न—वेद से क्या तात्पर्य है ?

उत्तर—वेद उस ज्ञान का नाम है जो कि विश्वकर्मा तथा त्वष्टा रूप परमात्मा ने अपने अनन्त ज्ञान के भण्डार में से इस रचना के आरम्भ में ही इस के गूढ रहस्यों को भली भान्ति समझने के लिए अपनी जीवनरूपी प्रजा के कल्याण तथा पथप्रदर्शन के लिये प्रकट किया।

प्रश्न—क्या प्रभु ने वेद स्वय लिख कर दिए ?

उत्तर—नहीं, प्रभु शरीरधारी नहीं, जो स्वयं लिख कर देता। वह निराकार, सर्वज्ञ तथा सर्वान्तर्यामी है। वह सब से श्रेष्ठ, पुण्य तथा पवित्रात्मा ऋषियों के हृदयों मे प्रेरणा द्वारा इस ज्ञान का प्रकाश करता है।

प्रश्न—वह कौन से ऋषि हैं ?

उत्तर—वे चार ऋषि अग्नि, वायु, आदित्य, अंगिरा हैं।

प्रश्न—इन्होंने कौन २ से वेद प्रकट किये ?

उत्तर—अग्नि ने ऋग्वेद, वायु ने यजुर्वेद, आदित्य ने सामवेद और अंगिराने अथर्ववेद प्रकट किया और अन्य मनुष्यों को इनका ज्ञान कराया।

प्रश्न—क्या इन्हीं चार पुस्तकों का नाम वेद है ?

उत्तर—हां, इन्हीं चार संहिताओं को वेद कहते हैं ?

प्रश्न—यदि ब्राह्मण, उपनिषद् आरण्यक आदि ग्रन्थों को भी वेद का नाम दे दिया जावे, तो क्या आपत्ति हो सकती है ?

उत्तर—वेद केवल उन ऋतम्भरा बुद्धि सयुक्त चार ऋषियों द्वारा प्रकट किए ज्ञान का नाम है। जो अपौरुषेय ज्ञान कहलाता है। अन्य सब ज्ञान पौरुषेय हैं। ब्राह्मणादि ग्रन्थ स्वयं इस बात को स्वीकृत करते हैं। वेद स्वयं साक्षी देता है।

एवं वा अरे अस्य महतो भूतस्य निःश्वसित--

मेतत यदृग्वेदो यजुर्वेद सामवेदोऽथर्वाङ्गिरस ॥ श० प० ब्रा० १४। ५। ४। १०

महान परमेश्वर का निःश्वास है जो ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद है।

तस्मात् यज्ञात् सर्वहुत ऋच सामानि जज्ञिरे।

छन्दांसि जज्ञिरे तस्माद् यजुस्तस्मादजायत ॥ यजु० ३१। ७

उस यज्ञरूप प्रभु से ऋग्, साम, यजु अथर्व प्रकट हुए।

यस्मादृचो अपातक्षन यजुर्यस्मादपाकषन।

सामानि यस्य लोमानि अथर्वाङ्गिरसो मुखम ॥

जिस से ऋग्वेद प्रकट हुआ, यजुर्वेद जिस से प्रकट हुआ, सामवेद जिसके लोम हैं और आगिरस अथर्व जिस का मुख है।

प्रश्न—क्या वेदों की शाखाएं वेद नहीं हैं ?

उत्तर—वेद की शाखाए भिन्न २ ऋषियों के द्वारा व्याख्या हैं। वेद के अर्थों को खोलने मे सहायक हैं। परन्तु मूल वेद तो संहिताएं ही है।

प्रश्न—तो अनन्त प्रभु का ज्ञान इतना ही है कि वह चार पुस्तकों में सीमित हो सकता है ?

उत्तर—नहीं, अनन्त प्रभु का ज्ञान भी अनन्त है। अल्पज्ञ जीवों के लिए उस अनन्त ज्ञान का पारावार पाना कठिन ही नहीं, असम्भव है। अनन्त सागर को लघु गागर में भरना अशक्य है। अतएव सर्वज्ञ प्रभु उतना ही ज्ञान अल्पबुद्धि जीवों के लिए प्रकट करता है जो उनके पथप्रदर्शन के लिये पर्याप्त होता है। विशेष ज्ञान की आवश्यकता ही नहीं। उसी ज्ञान को पूर्णतया प्राप्त करना कोई सरल कार्य नहीं। अनन्त ज्ञान की तो बात ही क्या करें।

दास कमीशन और अकालीकेस

आर्य प्रादेशिक सभा ने भी उत्तर भेजा

आर्य जनता को यह विदित ही है कि केन्द्रीय सरकार द्वारा नियुक्त दास आयोग के सम्मुख अकालियों ने अपना केस प्रस्तुत नहीं किया।

हा राष्ट्रीय सिक्खों ने सिक्खों की ओर से आयोग के सम्मुख केस पेश किया था।

इस मैमोरेण्डम मे उन्होंने इस बात के लिए कि सिक्खों के साथ पंजाब में कोई भेद-भाव हो रहा है इस बात को निराधार माना है। और मा० तारासिंह की इस नीति को सिक्ख तथा सारे पजाब के लिये हानिकर माना है।

हां उन्होंने दो बातें कही हैं।

१ पंजाबी भाषा को केवल गुरुमुखी लिपि मे जिला स्तर तक प्रयुक्त करने का प्रस्ताव पेश किया है।

२ क्षेत्रीय सम्मतियों को कुछ ठोस अधिकार देने की माग की है।

पजाब की अनेक संस्थाओं, जैसे हिन्दी रक्षा समिति जनसघ आदि ने इस मैमोरेंडम का उत्तर भेजा है।

आर्य प्रादेशिक सभा पजाब ने इसका उचित शब्दों मे उत्तर दिया है। इस उत्तर मे राष्ट्रीय सिक्खों के के इस कथन का अनुमोदन किया गया है कि पजाब में सिक्खों के साथ कोई भेदभाव का वर्ताव नहीं हो रहा। शेष दोनों बातों का उचित और जोरदार शब्दों मे खण्डन किया है।

इस में कहा गया है कि पजाब द्विभाषी राज्य है और प्रत्येक पंजाबी को उसकी अपनी इच्छानुसार भाषा अपनाने का अधिकार है।

पजाबी गुरुमुखी लिपि में किसी पर ठोसी नहीं जा सकती। क्षेत्रिय सम्मतियों के सम्बन्ध में कहा कि पंजाब के हिंदुओं ने क्षेत्रीय योजना को पसन्द नहीं किया। इन को और अधिकार देने से राज्य की एकता को बहुत हानि पहुचेगी और जाना पजाब का दो भागों में बंट आसान हो जायगा। आर्य जनता की जानकारी के लिये यह सूचना प्रकाशित है।

—सन्तोषराज मन्त्री सभा

महर्षि दयानन्द के अमर ग्रन्थ सत्यार्थ प्रकाश की तीन परीक्षाएं

आर्य युवक परिषद् दिल्ली द्वारा संचालित महर्षि दयानन्द के अमर ग्रन्थ सत्यार्थ प्रकाश की तीन परीक्षाएं प्रति वर्ष वेद सप्ताह में रविवार के दिन देश के कोने-कोने में हुआ करेगी। स्वाध्याय प्रेमी आबाल, वृद्ध सभी इस आयोजन से लाभ उठावें। पाठ विधि आवेदन पत्र तथा अन्य सभी प्रकार की जानकारी के लिए श्री पं० देवव्रत धर्मेन्दु परीक्षा मंत्री १६५४, कूचा दखिनी राय दरिया गंज, दिल्ली—७ के पते पर बिना मूल्य मंगावें।

देवी दयाल आर्य
प्रधान
आर्य युवक परिषद, ४८०,
खारीबावली, दिल्ली।

(पृष्ठ ५ का शेष)

इसी उक्त मंत्र के अन्त में वेद ने कहा है कि 'मधु सन्दृश' अर्थात् हे भगवन हमारी आंखें भी मधुर मिठास भरी तथा पावन हों जिससे हम आंखों द्वारा भी सब कार्य मधुर करें। इस प्रकार यदि एक दूसरा आपस में मीठा व्यवहार करेगा तो शांति स्थापित हो सकती है हमें इस वेद मन्त्र द्वारा शिक्षा ले कर मधुर व्यवहार करना चाहिए। इस में ही कल्याण है।

(क्रमशः)

सभा द्वारा वेद प्रचार की धूम

आ० स० लठयानी का उत्सव २२ से २४ दिसम्बर को धूमधाम से सम्पन्न हुआ। श्री० राम करण मण्डली, पं० कबीर चन्द्र जी, श्री हज़ारी लाल जी पधारे।

आ० स० अब्रपुर का उत्सव २५ से २७ को धूमधाम से सम्पन्न हुआ। श्री० हज़ारी लाल जी, श्री० राम करण जी, महावीर जी, नत्थू राम जी, पं० राम कृष्ण जी, श्री राम देव जी पधारे।

आ० स० ढक्का, आ० स० मलहत, आ० स० मदन पुर, आ० स० बडहरा के उत्सव १० से १३ दिसम्बर तक समारोह से सम्पन्न हुये। श्री० राम करण जी, महावीर जी, नत्थू राम जी, हज़ारी लाल जी पधारे।

आ० स० भंभाडी का उत्सव २६ से ३१ दिसम्बर को समारोह से सम्पन्न हो रहा है। श्री० अमर सिंह जी, जगत राम जी शमशेर जी, बस्ती राम जी, जय नारायण शर्मा पधार रहे हैं।

आ० स० भैणी खुर्द का उत्सव ५ से ७ जनवरी १९६२ को समारोह से सम्पन्न हो रहा है। श्रीमान् मान्यवर प्रि० सूर्यभानु जी, प्रधान सभा ६ जनवरी को पधार रहे हैं। श्री० पं० ओम प्रकाश जी, श्री पं० तारा चन्द जी पधार रहे हैं।

आ० स० हरयाणा का उत्सव ५ से ७ जनवरी को सम्पन्न हो रहा है। श्री० पं० त्रिलोक चन्द्र जी, राम करण जी मडली पधार रहे हैं।

आ० स० मोखरा का उत्सव ५ से ७ जनवरी १९६२ को समारोह से सम्पन्न हो रहा है। श्री० जमादार भरत सिंह जी श्री० प्रभुदयाल जी की मडली पधार रही है।

आ० स० नान्दल का उत्सव २१ से २४ दिसम्बर को समारोह से सम्पन्न हुआ। श्री चौ० भूरा राम जी, श्री० प्रभु दयाल जी की मंडली पधारी।

खुशी राम शर्मा
अधिष्ठाता वेद प्रचार सभा

आर्य समाजों का हिन्दी संबंधी दृढ़ निश्चय

हिन्दी प्रेमियों व समस्त आर्य सदस्यों की यह निश्चित सम्मति है कि देश में भाषा स्वतन्त्र हो और कोई भाषा किसी समुदाय पर बलात न ठूँसी जाए किन्तु पंजाब प्रदेश में शासन द्वारा जो नीति बर्त्ती जारही है वह इस के प्रतिकूल है। वहाँ राष्ट्र भाषा तथा प्रदेश के ६० प्रतिशत नागरिकों की मातृ भाषा हिंदी के साथ जो व्यवहार किया जा रहा है, संविधान, न्याय और नैतिकता की दृष्टि से अनुचित है।

अत सभी सभाएं भारत सरकार से सानुरोध माँग करती हैं कि :—

(१) पंजाब प्रदेश के हिंदी क्षेत्र में सभी बालकों पर गुरु मुखी की पढ़ाई जो बलात लादी जा रही है तुरन्त समाप्त की जाए।

(२) पंजाबी क्षेत्र को द्वि भाषी घोषित किया जाए।

(३) पंजाबी क्षेत्र के प्रत्येक स्तर पर हिन्दी के व्यवहार की सुविधाएं हों।

(४) पंजाबी क्षेत्र के प्रत्येक बालक की शिक्षा का प्रबन्ध उसके माता-पिता द्वारा इच्छित भाषा में ही किया जाए।

सभी सभाओं को आशा है कि केन्द्रीय व प्रान्तीय शासन शीघ्र से शीघ्र हिंदी प्रेमियों की इन न्यायापूर्ण माँगों को पूरा करेगा। हम राष्ट्र की विषम स्थिति को देखते हुए सरकार के सम्मुख नई उलझन पैदा नहीं करना चाहते वह ठीक है फिर भी हम निश्चित रूप से कहना चाहते हैं हमारी ये उचित माँगे स्वीकार न हुईं तो परिस्थिति जटिल हो सकती है जिसका सम्पूर्ण उत्तर दायित्व शासन पर होगा।

हार्दिक धन्यावाद, एवं कृतज्ञता

१९६१ सभा के कार्य-क्रम का वर्ष बडी शांति से सम्पूर्ण हुआ। उत्सव, प्रचार कथायें यज्ञ, संस्कार, मेले, धन, समाचार पत्र हर दिशा मे प्रगति पूर्ण ढंग से व्यतीत हुआ है।

सर्व प्रथम उस परम पिता परमात्मा का धन्यवाद है जिस के परम प्रताप, आशीर्वाद से कार्य सम्पन्न हुआ है।

तदनंतर आर्य समाजों, एवं आर्य जनों का धन्यवाद करता हूं जिन्होंने सर्वथा प्रत्येक कार्य में सभा एवं कार्यकर्त्ताओं को पूर्ण योग दिया है।

सभा के मान्यवर प्रधान जी, श्रद्धेय महामन्त्री जी का भी हार्दिक धन्यवाद है जिनकी उदारता, गम्भीरता एव बुद्धिमत्ता से कार्य मे प्रोत्साहन प्राप्त हुआ है। तथा सभा के कार्यालय विभाग का भी।

अत्यधिक कृतज्ञता सम्माननीय उपदेशक वर्ग मान्यवर प्रोफेसर महानुभाव तथा भजनोपदेशक महानुभावों के प्रति प्रकाशित करता हूं, जिन्होंने सब प्रकार के कष्ट सहकर प्रचार कार्य को पूर्ण प्रगति से संचालित किया है। नव वर्ष के प्रारम्भ के साधुवाद के साथ २ पुनीत वेद प्रचार के कार्य को और भी तीव्र गति से सचालित करने की प्रार्थना करता हू। संहार और सर्वनाशा की ओर बढते हुए मानव के लिए वेद प्रचार ही प्रबल बन्ध है। अन्यथा ईर्ष्या द्वेष की भयानक लपेटों में ससार का सर्वस्व स्वाहा होने को जा रहा है। धर्म प्रेमी सज्जनों को राजनैतिक तत्वों से ऊपर उठकर वीरान मे एकाकी खडे हो कर धर्म की बात सुननी चाहिये। यही मानव का उभय लोक का साथी है। अनाचार को आचार में कदाचार को सदाचार में, भक्षक को रक्षक के रूप मे, अनीति को नीति के रूप में मे बदल देना चाहिये।

विनीत
खुशीराम शर्मा
अधिष्ठाता वेद प्रचार सभा

आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि स[भा की ओर से]

आर्यसमाजों [से]

आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा से सम्बद्ध सभी आर्य समाजों व प्रतिनिधि सज्जनों की सेवा में निवेदन है कि सभा का वार्षिक अधिवेशन रविवार दिनांक २१ जनवरी १९६२ ई० मध्यान्होपरान्त १ बजे से डी० ए० वी० हायर सैकण्डरी स्कूल चण्डीगढ़ में होना निश्चित हुआ है। सभी सज्जन नियत समय पर पधार कर अपने संगठन को बलिष्ठ बनाने में सहयोग प्रदान करें।

सभी आर्य समाजें अपनी अपनी समाज का दशांश शीघ्र सभा के कार्यालय में भेजने की कृपा करें।

मन्त्री—

आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा पंजाब, जालन्धर

स्वामी श्रद्धानन्द समाज

(प्रि० श्री भगवान दास जी दयानन्द कालेज सोलापुर)

अब्दुल रशीद ने पूज्य स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज को पिस्तौल की गोली लगाकर कहा होगा "मैंने स्वामी श्रद्धानन्द को समाप्त कर दिया।"

पूज्य स्वामी जी की आत्मा ने उत्तर दिया होगा कि 'अब्दुल रशीद औरंगजेब तुम से पहले हुआ था न। क्या उसके अत्याचार कम थे। फिर भी शिवा पैदा हुये जिन्होंने औरंगजेब को समाप्त कर दिया। तुम ने श्रद्धानन्द के शरीर को तो शायद समाप्त कर दिया (और शरीर ने तो समाप्त होना ही था आज तो यह राष्ट्र के अर्पण हुआ) होगा पर श्रद्धानन्द जी के बलिदान के साथ आर्य जाति उठ बैठी तथा उत्तरी भारत में ही नहीं अपितु दक्षिणी भारत में भी नगर नगर में श्रद्धानन्द समाजें बन गई जिन्होने हिन्दू जाती को शक्तिशाली बनाने का कार्य हाथ में लिया दक्षिण में तो स्वामी जी के नाम से अखाड़े बने तथा हिन्दु भी व्यायाम शालाओं मे जाने लगे। नवयुवकों में स्फूर्ति सी आ गई तथा स्वामी जी के कार्य से सारा देश उठ बैठा। ऐसी ही एक सभा सोलापुर में बनी। इसके पास एक सुन्दर व्यायाम शाला है एक बड़ा हौल है तथा आज भी तीन चार सौ सदस्य हैं। सोलापुर तथा हैदराबाद पर जब-जब कष्ट आये त यह सभा आगे बढ़ी तथा सुन्दर कार्य किया। कुछ नवयुवक बलिदान भी हुए। यह सभा आर्यसमाज से दूर हो गई थी। गतवर्ष आर्यसमाज तथा श्रद्धानन्द समाज ने सम्मिलित कार्यक्रम रखा था। इस वर्ष पुन २३ दिसम्बर को दोनों समाजों ने मिल कर श्रद्धानन्द बलिदान दिवस मनाया। इस समाज के नेताओं तथा नवयुवकों को सुन्दर कार्य के लिए बधाई। आशा है आर्य जनता ऐसे वीरों की मंगल कामना करती रहेगी। तथा आर्य जगत उनके कार्य की सराहना करता रहेगा।

नव वर्ष के उपलक्ष में

[ले०—श्री राम मूर्ति जी कालिया, एम० ए०, नई दिल्ली]

(१)

तुम, नवयुवक, और युवक हो,
व्यावहारिक नव वर्ष जिये।
संयुक्त रहो सब देश युवक,
गौरवशाली हों सभी हिये।

(२)

प्राण समीरण सम शीतल हों,
हों गतिमान, सुगन्ध भरी भी।
पर हित में रत रहें, रहें पर,
सब समीर अटल भले ही।

(३)

(विशेष)

शुभ इच्छायें अर्पित उन को,
जो सीमाओं पर डटे खड़े हैं।
पर्वत के शिखरों पर जो हैं,
सचमुच वे सब बने बड़े हैं।

(४)

वे सब तो सदेह भारत हैं,
एक नहीं वे कोटि-कोटि हैं।
इस धरती के अणु-अणु की वे,
प्रचण्ड शक्ति के प्रतिनिधि हैं।

आर्यसमाज दयानन्द भवन सदर नागपुर

इस समाज का कार्यक्षेत्र बढ़ रहा है, घरों में पारिवारिक सत्संग लगते हैं। आर्यसमाज मंदिर में प्रातः ७ से ८ तथा सायं ६ से ७ बजे तक दैनिक सत्संग होता है, लाऊड स्पीकर का प्रबन्ध भी कर दिया है। आर्य स्त्री पुरुष तथा बच्चे बड़े उत्साह से आते हैं। देहली के श्री जगदीश भूषण कवि संगीताचार्य तथा ग्रामोफोन सिंगर दोनों समय समाज में प्रचार करते हैं। वार्षिकोत्सव पर संगीत द्वारा रामायण की कथा बड़े सुन्दर ढंग से करते हैं। इस कार्य का श्रेय श्रीमान डा० ... जी बहुत प्रधान आर्यसमाज के सिर हैं।

आर्यसमाजों से आवश्यक निवेदन

आर्यसमाजों के माननीय अधिकारियों एवं कार्यकर्त्ताओं से विनम्र निवेदन है कि नव वर्ष के लिए अपनी २ समाज के उत्सवों की तिथियों से अभी से सूचित करने की कृपा करें। ताकि प्रबन्ध में सुभीता रहे। उत्सव अप्रैल तक आ गए हैं। आते वाले खुले मौसम में जिन समाजों के उत्सव होते हैं। उन्हें तिथियां शीघ्र भेज देनी चाहियें।

—खुशीराम शर्मा

मुद्रक व प्रकाशक श्री सत्य राज जी मंत्री आर्यप्रादेशिक प्रतिनिधि सभा पंजाब जालंधर द्वारा वीर मिलाप प्रैस, मिलाप रोड जालंधर से मुद्रित तथा आर्यजगत कार्यालय महात्मा हंसराज भवन निकट कचहरी जालंधरशहर प्रकाशित हुआ मालिक—आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधिसभा पंजाब जालंधर

टैलीफोन नं० [illegible] [आर्यप्रादेशिक प्रतिनिधिसभा पंजाब जालन्धर का साप्ताहिक मुखपत्र] Regd No J 121

एक प्रति का मूल्य १२ नये पैसे वार्षिक मूल्य ६ रुपये

वर्ष २२ अंक २) रविवार १ माघ २०१८ — १४ जनवरी १९६२ दयानन्दाब्द १३७ (तार-प्रादेशिक जालन्धर

वेद सूक्तयः

देवो देवेष्वरतिः

अर्थभावी—वह देव — दिव्य-गुण भगवान देवेषु—सारे देवों में अरति व्यापक है रमा हुआ है। प्रभु सर्वव्यापक है। जितने भी सूर्य, चन्द्र आदि देवता हैं। जितनी भी सृष्टि है। उस में भगवान सर्वव्यापक होकर रमा है। ओतप्रोत हो रहा है।

धाद् बृहन्तमृष्वमजरम्

जो धात— धारण करता है, बृहन्तम—सब से बड़े, ऋष्वम—पूर्णज्ञानी अजरम—सदा एक रस प्रभु को, जो व्यक्ति उसी अजर, पूर्ण ज्ञानी तथा सबमहान भगवान् को धारण करता है। उसी का भजन, यजन करता उसी को आत्मसमर्पण कर देता है।

सद्यश्चिद्योवावृधे असामि

वह व्यक्ति प्रभुभक्त सद्य — जल्दी ही वावृधे—वृद्धि को पा लेता है। असामि— अत्यन्त ही। प्रभु को आत्मसमर्पण करने वाला भगवान का प्यारा शीघ्र ही अपने जीवन में वृद्धि को प्राप्त कर लेता है। उस को जीवन में किसी पदार्थ की भी कमी नहीं रहती। वृद्धि से भरपूर हो जाता है।

वेदामृत

यश्च कवची यश्चाकवचोऽमित्रो यश्चाज्मनि ।
ज्यापाशैः कवचपाशैरज्मनाभिहतः शयाम् ॥

अथर्व० ११।१०।२२

अर्थ—(यः च) जो कोई (कवची) कवच पहिने हुए है (यः च) और जो (अकवचः) बिना कवच के है (अमित्रः) राष्ट्र का शत्रु है (यः च) जो भी कोई (अज्मनि) युद्ध में (ज्या) धनुष की डोरी के (पाशैः) फन्दों से और (कवच) कवच के (पाशैः) फन्दों से (अज्मना) युद्ध से (अभिहतः) मारा हुआ (शयाम्) सोवे। राष्ट्र का शत्रु हर अवस्था में तेरी शक्ति से मारा जाकर सो जावे।

भाव—शत्रु अनेक प्रकार के शस्त्रों को लेकर राष्ट्र पर आक्रमण किया करता है। कभी तो अपने शरीर पर फौलाद लोहे के बने कवच पहिन कर आता है और कभी छल कपट से सीधे-सादे कपड़ों में अपना काम करने लग जाता है। कभी युद्ध में सामने आकर अपने विषैले बाणों का प्रयोग करता है और कभी चुपचाप और उपाय बरतने में लगा रहता है। नानाविध रूप और अनेक उपायों को लेकर राष्ट्र की एकता, स्वतन्त्रता तथा ख्याति के भव्यभवन को गिराने में अपनी सारी बुद्धि शक्ति तथा शस्त्रनीति को झोंक देता है। ऐसी अवस्था में वीर सेनापति का कर्तव्य है, कि देशघाती विरोधी शत्रु जिस भी दिशा से, दशा में एवं जिस भी शस्त्रशक्ति के साथ लैस होकर आवे, उसका उसी रूप में प्रतिकार करता रहे। हे सेनापते! तेरे पाश, तेरे प्रखर शस्त्र और तेरी युद्ध नीति इतनी शानदार हो, जिस के सामने देश के शत्रु की एक भी चाल न चलने पावे। हर अवस्था में तूने उसे पछाड़ना है, गिराना तथा मारना है। यह हिंसा नहीं। राष्ट्ररक्षण का वैदिक कर्तव्य है। अहिंसा ठीक है पर राष्ट्रद्रोहियों के प्रति यह उचित नहीं है। जो तेरे धर्म, संस्कृति, देश की भूमि, राष्ट्रसम्पत्ति पर हमला करते, लूटते मारते, नर-नारी का अपमान करते उन से यथायोग्य व्यवहार करता जा। उनको चुन २ मारता जा। सं०

ऋषिवचनमाला

अकृपानाश्रयो मृत्युः

जिस की अकृप -कृपा को पाना अनाश्रय - तथा सहारा न लेना मृत्यु— मौत है। उस प्रभु से दूर चले जाना तथा उसे सर्वथा भुला देना मौत ही है। उसको भुला देने से जीवन दुःखों का घर बन जाता है।

वेदाः तेनैव प्रकाशिताः

वेदा —चारों वेद तेन एव—उसी परमेश्वर ने ही प्रकाशिता —प्रकाशित किये हैं। ऋग्वेद आदि चारों वेदों का ज्ञान उसी परमेश्वर से मिला है। प्रभु ही वेदज्ञान के प्रकाश का दान करने वाला है।

व्याप्नोति चराचरं जगत्

वह ब्रह्म व्याप्नोति-व्यापक है, चराचर — चर और अचर जड़ चेतन, जगत्—संसार में। वह सर्वव्यापक भगवान सारे जड़ और चेतन जगत् में रम रहा है। कोई भी स्थान ऐसा नहीं है, जहां उसकी सत्ता व्यापक न हो। वह सर्वत्र ओत-प्रोत हो रहा है।

भाष्यभूमिका

सम्पादक त्रिलोक चन्द शास्त्री अधिष्ठाता : भक्तराम ऐडवोकेट उपप्रध

यह अद्भुत ज्ञान वैदिक काल के मनुष्यों के ही पास था,

अध्यात्मवाद से ही मोक्ष का आनन्द मिल सकता है

महात्मा आनन्द स्वामी जी महाराज का प्रवचन

हमारे पूर्वजों को वेद के द्वारा यह ज्ञान प्राप्त था कि वह कौनसा साधन है, जिस के द्वारा इस लोक के सारे वैभवों का मनुष्य आनन्द ले सकता है और साथ ही आत्मा को मोक्ष का आनन्द भी प्राप्त करा सकता है। यही नहीं, अपितु इसी मानव जीवन में प्रकृति के सारे रूपों सारे स्वादों और सारे आविष्कारो से लाभ उठाते हुए भी मन तथा चित्त शान्ति से भरपूर, सन्तोष और प्रसन्नता के रंग में रंगा रह सकता है। यह हुनर, यह अद्भुत ज्ञान वैदिक काल के मनुष्यों ही के पास था। आज का मानव इसे अभी तक ज्ञान नहीं पाया। यही कारण है कि आज भूलोक के किसी भी देश, प्रदेश में वास्तविक शान्ति सन्तोष और प्रसन्नता दिखलाई नहीं देती। इस के विपरीत सर्वत्र हाहाकार, रुदन, अशान्ति और तड़प ही देखी सुनी जा रही है।

पहिली बार जब मैं गंगोत्री गया और वहा पर योग निकतेन की कुटिया मे रह कर योगाभ्यास करने लगा। तो उन्हीं दिनों वहा अमरीका के एक पठित पतिपत्नी पहुचे। एक दिन वार्तालाप में दुनिया के दुःखी होने की बात जो चली तो मैं ने उस अमरीकन सज्जन से पूछा कि हम ने यह सुन रखा है कि आप का देश अमरीका बड़ा धनी देश है। वहा वैज्ञानिक उन्नति भी बहुत हो गई है। मानव के सुख, आराम तथा ऐश्वर्य के हर प्रकार के साधन विद्यमान हैं। जितना सोना, अन्न, दूध, कपड़ा, मोटरें, शानदार भवन अमरीका में हैं और कहीं भी नहीं। तब इतने सब के सब सुभीते, आराम के साधन छोड़ कर आप गंगोत्री जैसे स्थान पर क्यों आये? जहां न तो ठहरने का स्थान है, न बिजली है, न मोटर, न रेडियो, न कोलतार की सड़कें, न फल मिलते हैं, न शाक, न होटल, न सिनेमा। यहा तो केवल बीहड़ जंगल है, देवदारु तथा भोज पत्र के वृक्षों का। कोई भी आराम का साधन यहां पर नहीं। तब आप को अमरीका जैसे वैभवशाली देश से कौन सी वस्तु इस तपोवन में खींच लाई?

मेरे इस प्रश्न के उत्तर में अमरीकन महिला ने मुस्करा दिया और अमरीकन सज्जन ने बड़ी गम्भीरता से एक लम्बा श्वास ले कर कहा—ठीक है, अमरीका मे सब कुछ है, परन्तु वहा एक चीज नहीं है। उसी को प्राप्त करने के लिए, उसी की खोज मे अमरीका से निकल कर हम कठिन पैदल यात्रा करते हुए गंगोत्री पहुंचे हैं और वह वस्तु जो वैभवशाली अमरीका में नहीं, परन्तु यहा आ कर मिली है—उस का नाम शान्ति और आनन्द है। निस्सन्देह यह गौरव आज भी भारत को ही प्राप्त है कि वह अशान्त दुःखी, तड़पती हुई दुनिया को शान्ति और आनन्द का मार्ग दिखला सकता है।

यह सत्य है कि पश्चिमी दुनिया के भौतिक वादों ने बहुत से भारतीयों को भी पथभ्रष्ट कर दिया है। महाभारत के भयंकर तथा सर्वनाश कर देने वाले पाच हजार वर्ष पहिले के युद्ध ने भारत का भारी पतन किया। इतना पतन कि इसे एक हजार वर्ष विदेशियों का भी दास बन कर रहना पड़ा। परन्तु चाहे स्थूल रुप में दास बना रहा हो, इस की आत्मा ने विदेशियों की दासता कभी स्वीकार नहीं की। इस का कारण था—इस की वैदिक शिक्षा। इस के पूर्वजों का तप तथा इस काल में भी हिमालय पर्वत की कन्दराओं में बैठे तपस्वियों, योगियों, गायत्रीविद त्यागियों का मनोबल है जिस ने भारत की आत्मा को कभी नीचे नहीं गिरने दिया। क्योंकि भारत वासियों के पूर्वज धर्म, अर्थ-काम-मोक्ष, मानव-जीवन के चारों स्वाद ले चुके हैं, और वे इस तथ्य को भली भान्ति जानते थे कि स्थूल शरीर आते और जाते हैं, परन्तु आत्मा न मरता है, न क्षीण होता है और न दबाया जा सकता है। इसी अटल सत्य ने प्राचीन भारत वासियों को जहा भौतिक वैभव का स्वामी बनाया, आत्मिक आनन्द लूटने का भी अधिकारी बना दिया।

हमारा अतीत का स्वर्णिम इतिहास बतलाता है कि आर्यों ने हर प्रकार का भौगोलिक ज्ञान प्राप्त कर लिया था। उन का विज्ञान बहुत बढ़ चुका था। वे लोक लोकान्तर की यात्रा करते थे। अन्य लोकवासियों से बातचीत करते थे। आयुर्वेदशास्त्र के द्वारा वे मानव-शरीर की बहत्तर करोड़ बहत्तर लाख दस हजार दो सौ एक नाड़ियों का ज्ञान रखते थे। महर्षि दयानन्द ने पूना में व्याख्यान देते हुए अपने जीवन की एक घटना सुनाई—कि

एक बार एक अंगरेज विद्वान डाक्टर मुझे मिला। उस ने मुझ से कहा कि हमारे प्राचीन आर्य लोगों में डाक्टरी औज़ारों का कुछ प्रचार न था और यह उन्हे विदित भी न था। तब मैंने सुश्रुत का नेत्र अध्याय, जिस में कि बारीक से बारीक औजारों का वर्णन है, निकाल कर उसे दिखाया। तब उस को पता चला कि आर्य लोग चिकित्सा में बड़े चतुर थे और उन्हें औज़ारों की विद्या भी भली भान्ति ज्ञात थी आर्य लोग गणित, ज्योतिष तथा ललितकला, सब कलाओं में पूरे निपुण थे। पारद से आकाश मार्ग में चलने वाला वायुयान तो बड़ा सुलभ था। सभ्यता के सारे ही पदार्थ उपस्थित थे परन्तु कल और आज की सभ्याता के पदार्थों में भेद इतना ही था कि प्राचीन काल की सारी भौतिक उन्नति, सारे वैज्ञानिक आविष्कार तथा हर प्रकार का वैभव भोग और केवल शारीरक सुख के लिए नहीं होता था, प्रत्युत आत्म कल्याण, यज्ञ, परोपकार तथा मानवता के उत्थान के लिए होता था। या यूं कहिये कि यह स्वार्थ के लिए नहीं, परमार्थ के लिए होता था।

गुरुकुल विद्यापीठ हरयाणा

भैंसवाल कला जि० रोहतक (पंजाब)

समस्त आर्य जनता को यह जानकर हर्ष होगा कि गुरुकुल विद्यापीठ हरयाणा भैंसवालकलाँ का ४९वॉ वार्षिक महोत्सव फा० शु० चतुर्थी, पन्चमी षष्ठी सं०२०१८ वि० तदनुसार ९, १०, ११ मार्च सन १९६२ ई० शुक्र, शनि, रवि, को होना निश्चित हुआ है। जिसमें उच्चकोटि के साधु, महात्माओं तथा भजनोपदेशकों को निमन्त्रित किया है।

समस्त धर्मप्रेमी जनता से प्रार्थना है कि वह उत्सव में पधार कर उपदेशों से लाभ उठावें तथा गुरुकुल की सहायता कर यश के भागी बने।

—निवेदक, धर्मभानु:

महात्मा आनन्द स्वामी जी महाराज का प्रचार कार्यक्रम १४ जनवरी से २१ तक आर्यसमाज सीसामऊ कानपुर

सम्पादकीय—

ओ३म्
आर्य जगत्

वर्ष २२] रविवार २ माघ २०१८, १४ जनवरी १९६२ [अंक २

सभा का वार्षिक अधिवेशन

प्रत्येक व्यक्ति, समाज, परिवार तथा राष्ट्र वर्ष के बाद अपने सारे कार्य की जाच पडताल किया करता है। उस ने वर्ष भर मे क्या कमाया और क्या गवाया क्या लिया और क्या दिया? उस का पग उन्नति की ओर बढ़ रहा है अथवा अवनति की तरफ जा रहा है। यह जीवन की पडताल बड़ी ही आवश्यक है। वर्ष भर के सारे कार्य का विवरण सामने आ जाता है। अतीत का चित्र देख कर भविष्य के स्वर्णिमयुग की तैयारी करनी होती है। सारा वर्ष काम करके सस्था भी अपने सारे लाभ हानि का निरीक्षण करती रहती है। आर्य प्रादेशिक सभा पंजाब जालन्धर निरन्तर धर्मप्रचार, लोक सेवा तथा समाज सुधार के विशाल जनोपकारक महान् मिशन मे लगी हुई है। अपने प्रचार तथा साहित्य प्रकाशन के दोनों साधनों से वेद प्रचार मे आगे बढती जा रही है। पजाब से ले कर दक्षिण तक इस के काम की धूम मची हुई है। वर्ष के बाद इस की भी अपने बजटकी बैठक होती है। जिस में इस सभा से सम्बन्धित आर्य समाजों के चुने हुए मान्य प्रतिनिधि सज्जन पधार के सिर जोड़ कर बैठते हैं। सभा के वार्षिक कार्य विवरण पर गम्भीरता से विचार करते तथा अगले वर्ष के लिए कार्य करने की योजना का निर्णय भी होता है। नये साल के मान्य अधिकारियों को भी चुनते हैं। इस बार आर्य समाज चण्डीगढ़ के मान्य अधिकारियों सदस्यों के सादर निमन्त्रण पर सभा का वार्षिक अधिवेशन पंजाब की राजधानी चण्डीगढ़ मे तारीख २१ जनवरी १९६२ रविवार को दोपहर दो बजे हो रहा है। सारे माननीय प्रतिनिधियोंने चण्डीगढ डी ए. वी हायर सैकडरी स्कूल सैक्टर ८ मे यथा समय अपने प्रेम, सगठन एव सभा के विशाल कार्य को बढाने मे सहयोग देना है।

सभा का वार्षिक अधिवेशन बडा महत्वपूर्ण होता है। हमारी यह सभा कितना सुदर काम कर रही है? आज आर्य समाज के सामने कितनी समस्याए हैं। कुमारों और युवकों को आर्य समाज मे अधिक से अधिक सख्या मे लाने की कैसी शानदार योजना बनाई जावे। वेद प्रचार के कार्य को किस प्रकार विस्तृत किया जाये तथा इस के लिए ठोस साधन कौन २ से अपनाये जाये। आज के विषैले, मैले, भौतिक वाद से भरे वातावरण को कैसे बदला जाये। आर्य समाज का साहित्य कैसे पनपे। वैदिक सिद्धान्तों पर आये दिन पुस्तकों, पत्र पत्रिकाओं द्वारा होने वाले विरोधियों के विचार लेखों के आक्रमण कैसे रोके जायें। समाजों के दैनिक, साप्ताहिक सत्संग और भी शानदार किस रीति से बनाये जायें। देश में बढती हुई ईसाईयत की धारा को कैसे रोका जा सकता है। आर्य समाज को और भी अधिक शक्तिशाली कैसे बनाया जाये। विशेष कर नारिजगत में धर्म प्रचार तथा आर्य विचारों का किस भान्ति प्रचार किया जाये। परिवारों मे समाज का सन्देश कैसे पहुचाया जाये? ऐसी और इन जैसी और भी आज आर्यसमाज के सामने आवश्यक समस्याए हैं। जिन पर मिल बैठ कर गम्भीर विचार कर के प्रचार गति को तीव्र करने का कार्य क्रम बनाया जाये। इस वर्ष सभा का कितना शानदार कार्य हुआ है। इस का सारा उत्तम विवरण भी हम को सुनने को मिलता है। यह वार्षिक अधिवेशन हर दिशा मे प्रगति के लिए नितान्त आवश्यक है। पूरे वर्ष के बाद सारे मान्य सज्जनो के परस्पर दर्शन करने, सिर मिला कर बैठने, सभा की आर्थिक अवस्था को और भी शानदार करने, युग की समस्याओं पर गम्भीर विचार करने तथा समाज कार्य को बढाने की योजना का यह बडा सुन्दर अवसर होता है। प्रभु कृपा से आर्य प्रदेशिक सभा निरन्तर प्रगति करती रहे। इस के द्वारा अविद्या का नाश और विद्या की वृद्धि होती रहे। —त्रिलोक चन्द्र

मकर संक्रान्ति

आर्य समाज मे अन्य पर्वों की भाति मकर सक्रान्ति का पर्व भी बडे समारोह से मनाया जाता है। यह यज्ञ का त्यौहार है। पौष मास के बीतने और माघ के आरम्भ होने पर बडे २ यज्ञ किये जाते थे। शीत प्रधान समय मे हर वस्तु प्रभावित होती है। हिम से जल तक भी जम जाता है। अन्न के लिए वर्षा भी चाहिए। अग्नि से शीत भी भागता है और यज्ञ की अग्नि वर्षा भी लाती है। दोनों बातें इस से सिद्ध होती है। प्रकृति की भान्ति कभी २ राष्ट्रीय जीवन में भी उदासीनता, जडता और शीतपन आ जाता है। उस के लिए भी उत्साह, उल्लास, की आवश्यकता होती है। इस पर्व में सारे समाज को यह भी सन्देश मिलता है कि जीवन विचारों में मन्दपन, शिथिलता न आने दो। कर्म करने की अग्नि जलाये रखो।

मकर सक्रान्ति या रूढ़िशब्द में कहना हो तो लोहड़ी के त्योहार को [illegible] का त्योहार समाजे धूमधाम से मनायें समाजों की ओर से बडे २ यज्ञों का आयोजन किया जाये। अग्निमय विचारों को भरने वाले वेदमन्त्रों के उपदेश-सन्देश दिये जायें आज जन-जीवन मे जडता आ रही है। उदासीनता की प्रवृत्ति पनपने लगी है। विचारों पर भी हिम सा पड़ने लगा है। आर्य समाजों को चाहिए कि इस हेमन्त की मौसम में यज्ञ की ज्वाला के साथ २ धर्म की ज्वाला देश, सस्कृति के रक्षण की अग्नि को भी प्रदीप्त करे। अपना खून जमने न दो। अग्निरस्मि जन्मना—मैं जन्म से आग हू—वेद के इस सन्देश को जीवन २ मे जगा दो। तभी यह त्यौहार सफल होगा—स.

यह सराहनीय पग

आर्य समाज माटु गा बम्बई के मान्य अधिकारी सारे समाज के ही बधाई के पात्र हैं। क्योंकि उसने स्वर्गीय प० गोविन्द बल्लभ पन्त जी की स्मृति मे वहा पन्त पुस्तकालय नाम से स्मारक बनाने वाली कमेटी की ओर से बम्बई नगर मे सौन्दर्य प्रतियोगिता द्वारा इस काम के लिए फण्ड जमा करने की घृणित योजना का घोर विरोध करते हुए आर्य प्रतिनिधिसभा बम्बई प्रदेश का ध्यान [illegible] मीटिंग अभी २ वहा हुई जिस में सारे समाजों के प्रतिनिधि सम्मिलित हुए घोर विरोध का जोरदार प्रस्ताव पारित सारे पत्रों मे आगया। भारत की सारी सभाओं व समाजों का ध्यान भी इस निंदित योजकना की ओर दिलाया है। इस सराहनीय पग के लिए हम सभा तथा माटु गा समाज को बधाई देते हैं। प्रवाह के साथ बहना सरल है कि प्रवाह को रोकने का काम आर्यसमाज के सिवाय कौन करेगा?

पता नहीं कि भारत में किस

(शेष पृष्ठ ४ पर)

आर्य सामज भैनी खुर्द करनाल में विशाल और महान् समारोह

प्रिंसिपल सूर्यभानुजी प्रधान सभा का भव्यसम्मान स्वागत

वेद प्रचार के लिए ५०१) रुपये की थैली भेंट

करनाल से चार मील की दूरी पर भैनी खुर्द छोटे से ग्राम मे आर्य समाज के उत्सव पर सारे इलाके की आर्य समाजों के मान्य सज्जनों ने मिल कर आर्य प्रादेशिक सभा पंजाब जालन्धर के माननीय प्रधान प्रिंसिपल सूर्यभानुजी एम ए. एम. एल सी का जो भव्य, शानदार स्वागत तथा सम्मान किया गया, जो उत्साह, उल्लास प्रकट किया। ऋषि दयानन्द जी, आर्य समाज, महात्मा हंसराज जी, आर्य प्रादेशिक सभा एव मान्य सभा प्रधान जी प्रति जो श्रद्धा, भक्ति और प्रेम प्रदर्शित किया गया। उस को देख कर कौन ऐसा नर नारी था जिस के मन मे प्रसन्नता की लहरे हिलोरे नहीं लेती थीं वह दृश्य दर्शनीय और वह स्मृति चिरकाल तक बनी रहेगी। अम्बाला करनाल वेद प्रचार मण्डल सभा की ओर से दोनों जिलों मे प्रचार कार्य करने के लिए नियुक्त है। इस मडल के अध्यक्ष श्री पण्डित अमर सिह जी हैं। इन के साथ पं० ठा० दुर्ग सिह जी, प० जगत् राम जी, प० जयनारायण शर्मा, पं० शमशेर कुमार जी, प० बस्ती राम जी हैं। यह मण्डल बड़ी ही लग्न से कार्य कर रहा है। स्थान २ पर जल्से होते हैं। समय समय पर मेला कपालमोचन, फल्गु और कुरुक्षेत्र सूर्य ग्रहण के विशाल मेलों पर सभा की ओर से बडा भारी शानदार यज्ञ, प्रचार होता है। ऋषिलंगर लगता है।

आर्य समाज भैनी के मान्य अधिकारीयों श्री बन्त सिह जी प्रधान सरपच, श्री वेद पाल जी, श्री मन्त्री लज्जा राम जी, श्री दिलेर सिह जी, श्री ओम प्रकाश जी, श्री मेवा सिह आदि के विशेष प्रेम पूर्वक आग्रह पर सभा के प्रधान श्री प्रिंसिपल जी ता ६ जनवरी दोपहर दो बजे कार द्वारा जालन्धर से वहा पधारे। आसपास के ग्रामो के आर्यसमाजों झिंझाडी दादूपुर, भैनी कला, उचाना, बारानी, नरावडी, कुंजपुरा, करनाल, प्रेम नगर, फूसगढ आदि से काफी सज्जन पधारे हुए थे जिन मे श्री शिवराम झिंझाड़ी, श्री पूरन चन्द दादूपुर, श्री बाबूराम कुंजपुर, डा गणेशदास जी, डा खान चन्द जी सपत्नीक प्रिंसिपल गिरधारी लाल जी एम ए डी ए वी हायर सकडरी स्कूल करनाल, ला हुकुम चन्द जी, पहलवान जी, ला. मास चन्द जी उपप्रधान कारनाल समाज, प्रो रामधन,जी स्वामी सोमा नन्द जी आदि उल्लेखनीय है। मान्यवर सभा प्रधान जी को कार के पहुचने पर पुष्पमालाओं, नोटो के हारो से उन का भव्य सम्मान कर के बैंड बाजे के साथ सारे ग्राममे जयघोषों को गुंजाते हुए जलूस निकाला गया। सारे ग्राम मे वैदिकधर्म, ऋषि दयानन्द, महात्मा हंसराज आर्य प्रादेशिक सभा के प्रधान के जयकार के नारे गूंजते थे। वह दृश्य बडा ही दर्शनीय था।

कुछ देर बाद उत्सव का कार्यक्रम आरम्भ हो गया। सर्व प्रथम श्री. धन सिह जी प्रधान समाज ने सभा प्रधान जी को समाज की ओर से पुष्पहार भेट करते हुए इस छोटे से ग्राम मे पधारने पर प्रिंसिपल जी के प्रति आभार प्रकट किया। झंझाड़ी के चौ शिवराम जी ने अपने स्वागत भाषण में ग्रामों में सभा के सेवा कार्य की बडी सराहना करते हुए प्रचार कार्य को और भी तीव्र करने की प्रार्थना की। डा. गणेश दास जी ने सभा प्रधान जी के जीवन पर सुन्दर प्रकाश डालते हुए कहा कि मान्य प्रिंसिपल सूर्यभानुजी आर्य समाज की विशेष विभूति हैं। समाज के प्रत्येक क्षेत्र मे आप का खास स्थान तथा प्रभाव है। प्रिंसिपल गिरधारी लाल जी ने कहा कि सभा प्रधानजी को ग्रामोंमें समाज के लिए कितना प्रेम है। इस दृश्य को स्वय देख रहे हैं। भारत ग्रामो मे बसता है। प्रचार की बडी आवश्यकता है। नानाविध समाजों की ओर से पुष्पमालाओं के साथ २ सभा के वेद प्रचार के लिए ५०१ रुपये की थली आप के हाथों मे भेट की गई। अम्बाला करनाल वेद प्रचार मडल की ओर से मान्य प्रिंसिपल जी की सेवा मे बडा सुन्दर मानपत्र भेंट करते हुए ५१) रु० की थैली भी सभा के लिए भेट की गई। आर्योपदेशक पं. त्रिलोक चन्द शास्त्री ने कहा ग्राम प्रचार के लिए सभा और भी ध्यान दे। इस के वास्ते आवश्यक है कि सारे जिले की जनता सभा की झोली भर दे। अन्त मे माननीय प्रिंसिपल जी ने अपने इस विशेष स्वागत सम्मान का हार्दिक धन्यवाद करते हुए अपना बड़ा ही ओजस्वी, मार्मिक प्रवचन दिया। प्रवचन तो किसी अन्य अक मे जनता के लाभार्थ दिया जायगा। प्रधान जी ने कहा कि आप ने जो मेरा सम्मान किया है। वह मेरा नहीं अपितु आर्य प्रादेशिक सभा का है। यह सारा तप स्वर्गीय महात्मा हंसराज जी का है। वह प्रकाश स्तम्भ थे। मै जो कुछ भी हूं—मेरे मन में जो थोड़ा बहुत गुण है—यह आर्य समाज का है। गुण सारे समाज ने दिये हैं। अवगुण मेरे अपने हैं। आप सभा को और दृढ करें। आप का समाज व सभा के प्रति प्रेम देख कर गदगद् प्रसन्नता है। धन्यवाद। इस सारे समारोहके लिए आर्य समाज भैनी, समाजों तथा पं. अमर सिंह जी मडल को बधाई।

यह सराहनीय पग

(पृष्ठ ३ का शेष)

मनोवृत्ति के लोग आगे आ रहे हैं। हमारा देश सारे संसार को आचार विचार का सदा जीवन पाठ पढ़ाता चला आया है। किन्तु पश्चिम की दुनिया की अन्धी नकल करने वालों को क्या हो गया है? वे अब भारत में भी कभी मिस बम्बई चुनते हैं, कभी मिस महाराष्ट्र और कभी मिस शिमला। यह सौन्दर्य प्रतियोगिता क्या है? तोबा! शान्त पापम् —अपने देश की बहिनों, पुत्रियों के अंगों की सुन्दरता परखने के लिए इस मे क्या २ करना होता है। हमारी तो लेखिनी को भी संकोच है। पर इन नरतनधारी समूह को तनिक भी लाज नहीं आती। भारत की सभ्यता पर इतनी कुठाराघात? इतना नगापन इतना खुली नग्नता। वातावरण व मनोवृत्ति कितनी दूषित होती जा रही है। चित्रपट को देखे, इश्तिहार देखें, चित्र, और सांस्कृतिक प्रोग्रामों की आड़ में नग्नता देखें,—नाच देखें यह क्या हो रहा है? आर्य समाज मौन क्यों? आर्य समाज को इस का प्रतिकार करने के लिए आदोलन करना चाहिए—सं.

गोवध का विधायक सूत्र १९ वां है—'असिर्पाणिर्गा प्राह' हाथ में तलवार लेकर गाय से कहे। परन्तु यह भी स्मरण रखना चाहिए कि इन सूत्रों में इस प्रकार के हिंसाकाड को मिलाने वालों ने भी पशुसतपन को वैकल्पिक ही कमाना है, अनिवार्य-नहीं। तभी तो सूत्र २३ में लिखते हैं कि यदि गाय को छोडना चाहें तो 'माता रुद्राणा दुहिता वसूना' इस मत्र को बोल कर उसे छोड दे। यह सब कुछ होने पर भी मध्यकालीन कर्मकाण्ड के ग्रन्थों मे यह धारणा नितान्त बद्धमूल हो गई थी कि विना मास के मधुपर्क नहीं होता* तभी तो इस ग्रन्थ के सूत्र सख्या २२ मे पायस (खीर) को पशु का अग स्थानीय मान कर पायस का मधुपर्क में प्रयोग करने का विधान किया है। शेष सूत्रों मे विवाह की अन्य विधिया उल्लिखित हुई है। १० वे खण्ड मे भी विवाह की अन्य विधिया वर्णित है। ११ वा खण्ड भी विवाह विधि से ही सम्बन्धित है। उसमें वर बधू के वस्त्रों को गाठ देना, वर वधू का नेत्रों मे सुरमा लगाना आदि कुछ नूतन विधिया हैं।

समस्त गृह्य सूत्रों में विवाह-विधि सम्बन्धी कृत्यों का जो क्रम रक्खा गया है, उसके तुलनात्मक अध्ययन तथा उससे महर्षि कृत विधि तथा उसके क्रम के मिलाने की आवश्यकता उस प्रत्येक व्यक्ति को अनुभव होगी जो कर्मकाण्ड मे रुचि रखता है। विवाह के अनन्तर लाल बैल के चर्म पर वर वधू को बैठाने का जो विधान अनेक सूत्रों की तरह इस ग्रन्थ के खण्ड ११ सूत्र १९ मे आया है उसका औचित्य भी मीमांसनीय है। यों दर्भ पर बैठाने का विकल्प भी इस सूत्र मे विद्यमान है।

१२ वें खण्ड में वधू को आशीर्वाद, सीमन्तोन्नयन स्वस्तिवाचन आदि का विधान है। १३ वें

* नामांसो मधुपर्क इति श्रुतिः

मानव गृह्य सूत्र : एक आलोचनात्मक अध्ययन

(ले० प्रो० भवानीलाल जी भारतीय एम०ए० सिद्धांतवाचस्पति
प्रवक्ता—श्री महाराज कुमार कालिज, जोधपुर)

(गताक से आगे)

खण्ड में वर वधू का स्वगृह प्रस्थान का विषय आया है। गृह्य सूत्रों के अध्येताओं से यह विषय भी अप्रकट नहीं है कि मार्ग मे घाट, वाट, चोराहा, श्मशान आदि के आने, रथ आदि के आने क टूट जाने, नाव पर चढने आदि के समय क्या २ करना सूत्रकारों ने लिखा है। महर्षि दयानन्द ने भी इस विषय का अत्यन्त सक्षिप्त उल्लेख संस्कार विधि* मे किया है जिस से इन सारे कृत्यों की आशिक सत्यता का सकेत तो मिलता ही है।

वधू के श्वसुरालय आगमन और उसके स्वागत सत्कार विषयक विधि १४ वे खण्ड मे वर्णित हुई है। इसमे भी वधू को रक्त बैल के चर्म पर बैठाने का उल्लेख है। दूसरे दिन अपरान्ह मे पिण्ड पितृयज्ञ करे। यह सूत्र १३ में लिखा है। सम्भवत पिण्ड पितृ यज्ञ का मृतक श्राद्ध से ही सम्बन्धि है। 'सव्याख्यात, 'मानव श्रौत सूत्र' की ओर सकेत किया है जिस मे इस पिण्ड पितृ यज्ञ का विधान लिखा गया होगा।

इसी खण्ड में चतुर्थी कर्म की विधि भी लिखी है। न्यूनाति न्यून तीन दिन तक वरवधू ब्रह्मचारी रह कर चौथे दिन गर्भाधान करें। गर्भाधान विधिका जो विस्तार पूर्वक वर्णन इस खण्ड के शेष सूत्रों मे हुआ है उसके देखते महर्षि दयानन्द द्वारा सत्यार्थ प्रकाश के चतुर्थ समुल्लास मे उल्लिखित विधि-तो अत्यन्त सभ्यता पूर्ण संकेत मात्र ही समझी जायगी, जिसके विषय मे

* पृ० १८१ वैदिक यंत्रालय का १८ वां संस्करण

माधवाचार्य जैसे पौराणिक गला फाड़-फाड कर चिल्लाते हैं और उसे अश्लील घोषित करते हैं। यदि वे अपने नेत्रों का पक्षपात पूर्ण रवैया छोड कर इन सूत्रों को देखे तो वे सूत्र उन्हें भयंकर रूप से अश्लील प्रतीत होंगे, यद्यपि अश्लीलता का आरोप लेखक की नीयत को देख कर लगाया जाना चाहिये। इस दृष्टि से न तो इन सूत्रों मे ही कुछ अश्लीलता है और महर्षि दयानन्द का वर्णन तो सर्वथा मर्यादापूर्ण ही है।

१५ वा और १६ वां खण्ड सीमन्तोनयन और पुसवन सस्कार से सम्बन्धित है। १७ वे मे जात कर्म का वर्णन है। १८ वे खण्ड का विषय नामकरण सस्कार है। इन सूत्र ग्रन्थो में बाद के जमाने मे पशुहिंसा विधायक सूत्र किस प्रकार बीच २ मे मिला दिए गए हैं इसका बडा सुन्दर उदाहरण इसी खण्ड के अन्तिम ७ वे और ८ वे सूत्र से मिलता है। जैसा कि पाठकों ने देखा अब तक क्रमानुसार विवाह सीमन्तोन्नयन, प्रसवन, जातकर्म, नामकरण आदि सस्कारों का वर्णन गृह्यकार उपस्थित कर रहा है। इन गृह्य कर्मो से पशु यागों का तो कोई दूर का भी सम्बन्ध नहीं है और न इन यागों का इन संस्करों के साथ वर्णन होना उचित भी है। परन्तु प्रक्षेपकार बेचारे यदि यत्र तत्र पशु हिंसा विधायक सूत्र घुसेड न दें तो उन की लोलुप जिह्वा की तृप्ति कैसे हो ? फलत नामकरण के इस खंड मे भी अन्त के दो सूत्रों में कहा गया—'न मधु मांसे प्राश्नीयादापशु बन्धनात्' अर्थात् पशुबध यज्ञ के पूर्व मधु मास का सेवन करे। बादमें भले ही करे। "सम्वत्सरे चाजाविभ्यामग्नि धन्वन्तरी यजेत्" वर्ष में बकरी और भेड़ के द्वारा अग्नि और घनन्वतरि को पूजा करे। स्पष्ट है कि नामकरण संस्कार से अजा और अवि याग का दूर का सम्बन्ध न होने पर भी प्रक्षेपकारों की लीला से यह मांस विधायक सूत्र मिला दिये गये।

१९, २० और २१ वे खण्डों में क्रमश निष्क्रमण, अन्नप्राशन और चूडाकर्म के साथ २ सोलहवें वर्ष के अन्त मे होने वाले के शान्त

(क्रमश)

दयानंद साल्वेशन मिशन होशियार पुर

दिसम्बर १९६१ में पंजाब और विहार प्रान्त मे ४८ ईसाईयों को पुन वैदिक धर्म मे प्रविष्ट किया किया।

—शादी लाल मत्री मिशन

शुभ संदेश

सभी आर्यसमाजों एवं आर्य संस्थाओं को यह जानकर अति हर्ष होगा कि आर्य प्रादेशिक सभा ने आर्य युवक समाजों के संगठन का निर्णय किया है।

आर्य युवक समाजों के संगठन का कार्य श्रीमान् मान्यवर प्रो० वेदी राम जी शर्मा एम० ए० डी० ए० वी० कालिज जालन्धर के सुनियंत्रित प्रबन्ध मे दिया है। मान्य वर प्रोफैसर जी अति लग्नशील दृढ़ आर्य प्रवक्ता नवयुवक हैं सभी समाजों एवं सस्थाओं से निवेदन है कि अपनी २ कुमार सभाओं की सूचना प्रोफैसर जी को देवे। और जानकारी के लिए पत्र व्यवहार करें।

—खुशीराम शर्मा
अधिष्ठाता

नारी जगत्

"नारी का कार्य क्षेत्र एवं गृहस्थ"

(ले० कु० अरुण जी आर्या प्रभाकर टोहाना)

आज का युग अधिकारों का युग है। प्रत्येक व्यक्ति अपने अधिकारों के लिए लड़ता है, मरता है तथा यथा सम्भव प्रयत्न करता है। यही प्रश्न स्त्री जाति के सम्मुख है। परन्तु अधिकार मागने से पूर्व प्रत्येक व्यक्ति की योग्यता एवं शक्ति की परख होनी चाहिए।

सामान्य दृष्टि से देखा जाए तो स्त्री तथा पुरुष मे विशेष भेद नहीं। एक कोमलता की मूर्त्ति है तो दूसरी कठोरता की। जहा नारी मे करुणा एव प्यार की कोमल वृषा की प्रधानता है तो पुरुष मे ओज की। परन्तु कभी कभी नारी भी ओज का वह विकराल रूप धारण कर लेती है जिस के भय के कारण पुरुष भयभीत हो जाता है। ऐसे अनेकों प्रमाण हमें इतिहास मे प्रत्यक्ष दृष्टिगोचर होते हैं जैसे महारानी लक्ष्मी बाई। जो कि ओज की साक्षात् प्रतिमा थी। जो भी गुण, कर्म स्वभाव पुरुष धारण करता है। यह सब नारी ही तो उसे प्रदान करती है। इस जीवन क्षेत्र में दोनों प्रकार के गुणों की आवश्यकता है। विवाह का उद्देश्य न केवल मानव जाति की रक्षा तथा सन्तानोत्पत्ति ही है बल्कि सहयोग से पारस्परिक विकास करना भी।

अब हमारे सम्मुख यह प्रश्न उठता है कि विवाह के उपरात स्त्री पुरुष के पारस्परिक सम्बन्ध किस प्रकार के हों। प्राचीन भारतीय सस्कृति की पद्धति के अनुसार नारी अपनी समस्त इच्छाओं तथा भावनाओं का परित्याग कर पुरुष की छाया बन कर उस के पीछे चलती है क्यों कि वह जानती है कि इसी मे उस की प्रतिष्ठा है। इसी से तो उसे 'देवी', एवं 'साम्राज्ञी' का स्वरूप दिया गया है।

स्त्री के इस महान त्याग का क्या प्रतिदान है? हमारे ऋषियों एवं विद्वानों ने इस की उपेक्षा नहीं की। उसे उस के त्याग के अनुरूप सम्मान भी दिया जाता है। वह स्त्री या पत्नी से उठ कर 'देवी, बन जाती है। 'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता' इस पंक्ति से नारी की महत्ता भी प्रकट हो जाती है। परन्त आधुनिक युग मे यह एक समस्या बन गई है। आज प्रत्येक परिवार मे अशांति का साम्राज्य स्थापित है। इस का कारण नारी का अपमान तथा त्यागमय जीवन को छोड कर भोगमय जीवन की ओर अग्रसर होना है। आज प्रत्येक वस्तु का मूल्य उस के बाहरी स्वरूप और आर्थिक मूल्य से ही आकने लग गए हैं।

ज्यों ज्यों हमारे जीवन मे इस भौतिक सभ्यता का संस्कार पड रहा है त्यों त्यों हमारा जीवन दुःखमय एव असन्तोष जनक बनता जा रहा है। अर्थोपार्जन के कारण पुरुष की प्रतिष्ठा बढ गई है और वह स्त्री को हीनता तथा तुच्छता की दृष्टि से देखने लगा है। स्त्री के गृहकार्यों एवं सेवा का सम्मान घट गया और पहले की सहधर्मिणी, तथा साम्राज्ञी दासी के सदृश समझी जाने लगी। ऐसी अवस्था मे प्रश्न उठता है कि स्त्री के अधिकार क्या हैं? क्या वह वर्त्तमान समाज की व्यवस्था मे शाति पूर्वक रह सकती है। इस आर्थिक दृष्टि कोण ने समाज को अनेक श्रेणियों मे विभक्त कर पूंजीवाद तथा साम्यवाद की दो विरोधी धाराओं का निर्माण कर गृहस्थ की शाति को छीन कर स्त्री और पुरुष को एक दूसरे से पृथक कर दिया है।

प्राचीन काल में पुरुष की आय में से स्त्री और पुरुष दोनों खाते थे, स्त्री और पुरुष ही नहीं बल्कि परिवार के समस्त सदस्य निर्वाह करते थे और सन्तोष पूर्वक जीवन व्यतीत करते थे। पर आधनिक युग मे चाहे परिवार का प्रत्येक सदस्य अर्थोपार्जन करने मे जुट जाए लेकिन फिर भी वह शाति से नहीं रह सकते। इस का कारण यह कि हम भोगी तथा विलासी बनते जा रहे है। जीवन के इस नवीन भौतिक प्रवाह ने हमारे व्ययों को बढा दिया है। कुछ लोग ६० रु० मासिक आय के साथ ३० रु० सिगरेट एव चाय पर फूकते है न जाने वह किस पर जीते हैं। जूतों एव कपडों पर इतना व्यय होता है कि हम भोजन मे बचत करते है। दूसरे शब्दों मे यह कहना चाहिए कि हम अपने पेट को छोड कर दूसरों की आखों के लिए जीते है। ऐसे लोग भोजन छोड सकते है पर अपनी सिगरेट और अन्य बुरी लतों को नहीं छोड़ सकते। कितनी लज्जा जनक बात है। क्या इसे ही स्वाभिमान का जीना कहते है? क्या इसी प्रकार सभ्यता का विकास होता है?

ऐसी परिस्थिति मे इस गृहस्थ आश्रम की गाड़ी सुचारु रूप से नहीं चल सकती। पुरुष जब अर्थोपार्जन की दृष्टि से स्वय को उच्च समझने लगता है तो स्त्रिया भी चाहती हैं कि हम भी पुरुष के समान रहें और स्वाभिमान से जीएं। इस का समाधान उन्हें यही दीखता है कि वे पुरुष की भाति कमाएं। परन्तु क्या स्त्रियों के अर्थोपार्जन से यह समस्या हल हो जाएगी? इस में सन्देह है। अपने समाज की स्वयं कमाने वाली स्त्रियों को लीजिए, क्या वे सन्तुष्ट हैं? उन की आय में केवल उन की ठाठ बाट और बाहरी प्रदर्शन ही कठिनता से पूरा हो पाता है। तो इस का सारांश यह निकलता है कि हमे अपने भौतिक दृष्टिकोण मे परिवर्तन लाना होगा।

यह बात हमे सत्य लगती है कि एक व्यक्ति की आय को यदि स्त्री पुरुष मिल कर खाए तो वो दोनों के कमाने की अपेक्षा अधिक सुखी रह सक्ते है। परन्तु यह गणित का प्रश्न नहीं, व्यवहार का है। स्त्री के कमाने से उस के व्यय भी बढ जाते हैं और स्थिति पहले सी रहती है इस का समाधान यही है कि 'सादा जीवन और उच्च विचार, (Simple living and high thinking) के महत्व को समझें।

आधुनिक स्त्रिया पुरुषों के समान कमाना चाहती हैं। उन्हें भी नौकरियां चाहिए। समानता के युग मे उनका अधिकार है। वे चाहें तो कमा कर अपने देश को तथा घर को आर्थिक दृष्टि से उच्च बना सकती है परन्तु इस का लाभ तभी है जब हम मे सतोष हो। मर्यादा और अनुपात को समझने की क्षमता हो। जब तक मनुष्य ससार को 'खाना और कमाना' बस यही समझेगा तब तक शाति की प्राप्ति असम्भव है। यदि रुपया कमाना ही स्त्री पुरुष की योग्यता का प्रतीक मान लिया जाए तो गृहस्थ आश्रम रूपी गाड़ी ठीक नहीं चल सकती। आर्थिक स्थिति के परिवर्तन के अनुसार प्रतिदिन गृहस्थ के नियमों को भी परिवर्तन करने की आवश्यकता होगी। स्त्री के कमाने को स्थान पर हमें अपने भौतिक जीवन को छोड़ कर सरल जीवन व्यतीत करने की आवश्यकता है। इसी भौतिक दृष्टिकोण के कारण यह समस्या उत्पन्न हुई है।

—०—

सभा द्वारा वेद प्रचार की धूम

—आ० स० हरयाना का उत्सव ५ से ७ जनवरी को धूम-धाम से सम्पन्न हुआ। श्रीमान् पं० ओमप्रकाश, श्री चौ० राम करण जी, श्री महावीर सिंह जी, नत्थूराम जी पधारें।

—आ० स० भैंणी खुर्द का उत्सव धूमधाम से सम्पन्न हुआ। श्रीमान् प्रि० सूर्यभानु जी प्रधान सभा, श्री पं० त्रिलोक चन्द जी, श्री अमरसिंह जी, ठा० दुर्गासिंह जी, जगतराम जी, पं० जय नारायण जी शमशेर जी पधारे।

—आ० स० मोखरा का उत्सव ५ से ७ जनवरी को धूमधाम से सम्पन्न हुआ। श्रीमान् जमादार भरत सिंह जी, पं० प्रभुदयाल जी, मडली, श्री० चौ० भूराराम जी पधारे।

—डी० ए० वी० कालिज अबोहर में श्रीमान् प० ओंप्रकाश जी कथा कह रहे हैं।

—आ० स० न्यू माडल टाउन लुधियाना में लोहड़ी पर्व पर मा० ताराचन्द जी पधार रहे हैं।

—आ० स० रेलवे कालोनी जालन्धर में लोहड़ी पर्व समारोह से सम्पन्न हो रहा है। खुशीराम शर्मा भाग लेगे।

—आ० स० जुलाना शादीपुर का उत्सव ८ से १२ फरवरी को समारोह से सम्पन्न हो रहा है। जमादार भरतसिंह जी, प्रभुदयाल जी चौ० भूराराम जी पधार रहे हैं।

—आ० स० नूरनखेड़ा को उत्सव १६ से १८ फरवरी को समारोह से सम्पन्न हो रहा है। श्रीमान् जमादार भरतसिंह जी, पं० प्रभुदयाल जी, चौ० भूरा राम जी पधारेंगे।

—आ० स० मिर्जापुर लेढ़ी का उत्सव २० से २२ फरवरी को धूमधाम से सम्पन्न हो रहा है।

—आ० स० माडल टाऊन लुधियाना का उत्सव २ से ४ मार्च को सम्पन्न हो रहा है।

—आ० स० माडल टाउन गुड़गावां का उत्सव ३० मार्च १ अप्रैल को धूमधाम से सम्पन्न हो रहा है।

—आ० स० अखनूर (जम्मू) का उत्सव ११ से १३ मार्च को सम्पन्न हो रहा है। ४ ता० श्रीमान् पं० ओंप्रकाश जी महोपदेशक यजुर्वेद पारायण यज्ञ तथा कथा करेंगे।

—आ० स० अगवाल का उत्सव १४ से १६ मार्च को धूम-धाम से सम्पन्न होगा।

—आ० स० फिरोजपुर शहर का उत्सव २३ से २५ मार्च को समारोह से सम्पन्न हो रहा है।

—आर्य समाज फाज़लका का उत्सव मार्च मे सम्पन्न हो रहा है।

—आ० स० खुल्दाबाद का उत्सव मार्च के अन्तिम सप्ताह मे सम्पन्न हो रहा है।

—आ० स० मदीनादांगी का उत्सव १६ से १८ मार्च को सम्पन्न हो रहा है।

—आ० स० मिर्चपुर का उत्सव १६ से १८ मार्च को सम्पन्न हो रहा है।

आ० स० धारीवाल का उत्सव मार्च में सम्पन्न हो रहा है।

—आर्यसमाज कुंजपुरा करनाल का यज्ञ व उत्सव १४ से १८ जनवरी तक सम्पन्न हो रहा है। श्री त्रिलोक चन्द्र जी शास्त्री, तारा चन्द जी, पं० अमर सिंह जी की मंडली पधार रही है।

खुशी राम शर्मा
अधिष्ठाता वेद प्रचार

आर्ययुवक समाज डी० ए० वी० कालेज जालन्धर नगर

प्रसन्नता का विषय है कि आर्य युवक समाज डी० ए० वी० कालेज जालन्धर बड़ी लग्न से कार्य कर रहा है। इस समाज के युवकों में बड़ा उत्साह है। यह रात दिन सामाजिक कार्यों में व आर्यसमाज के प्रचार मे रत है। अभी आर्यसमाज किला के नगर कीर्तन में इस मण्डली ने कमाल कर दिया था।

इस समाज के दो युवकों जिनके नाम श्री मदन लाल जी तृतीय वर्ष व श्री तिलक राज अग्नि होत्री हैं, ने क्रमश ३४० व २४६ रुपए टंकारा ट्रस्टके लिए एकत्र किए हैं। और भी युवक इस कार्य मे लगे हैं। इस कार्य में उन्हें प्रोत्साहन देने वाले श्री प्रो० वेदी राम जी शर्मा एम० ए० हैं। जो स्वय भी युवकों के साथ हर समय लगे रहते हैं। उन्हीं के उत्साह से इस वर्ष आर्ययुवक समाज के ६०० के लगभग सदस्य बन पाए हैं। इस प्रकार यह युवक सगठन सभी अन्य कालेज व आर्य स्कूलों के लिए एक उत्साह प्राप्त करने के लिए सकेत है।

—व्यवस्थापक

शोक समाचार

—श्री चरण दास सेवक सभा के भाई शान्ति लाल जी की शोक जनक मृत्यु पर आर्य जगत की ओर से सारे परिवार के साथ सहानुभूति और सवेदना है।

—व्यवस्थापक

श्री पं० जियालाल जी के निधिन पर

—अजमेर के प्रसिद्ध समाजिक कार्य कर्त्ता तथा आर्य समाज के नेता श्री पं० जियालाल जी के निधन पर यहा के प्राय सब सामाजिक, धार्मिक, एवं राजनैतिक और शिक्षण सस्थाओं और प्रमुख नागरिको की ओर से एक शोक सभा श्री डा: अम्बालाल जी शर्मा की अध्यक्षता में ता० २१ दिसम्बर को कीगई जिसमे स्वर्गगत की आत्मा को सद्गति प्रदान करने तथा उन के संबंधियों को इस दारुण कष्ट सहन करने की प्रभु से कामना की गई।

—पं० जिया लाल स्मारक निधि की स्थापना की गई। इस अवसर पर ५००० रु० नकद और अन्य कई सज्जनों ने धन देने का वचन दिया। इस निधि द्वारा प० जी की पुण्य स्मति में आर्य उपदेशक विद्यालय की स्थापना का भी निश्चय कियागया।

डा० सूर्यदेव शर्मा M A

गुरदासपुर

—डी ए वी कालिज मैनेजिंग कमेटी नई देहली के आरगनइजर श्री बृज लाल जी चड्डा के शोक जनक निधन पर डी० ए० वी० हाई स्कूल के छात्र व अध्यापक गण सवेदना प्रकट करते हुए उनकी आत्मा को सद्गति प्रदान करने व उनके परिवार को इस दारुण कष्ट को सहन करने की प्रभु से प्रार्थना करते हैं।

गुरचरण दास
मन्त्री स्टाफ

आर्यसमाज ठठियारो मुहल्ला बटाला शहीद दिवस

अमर शहीद स्वामी श्रद्धानन्द जी का शहीद दिवस विजय कुमार मन्त्री के घर मनाया गया। इस अवसर पर श्री बैसाखी राम जी के भजन व श्री हकीम सत्यपाल जी व पं० रलदूराम ने स्वामी जी के प्रति श्रद्धाजली अर्पित की।

श्री पं० जवाहर लाल जी आदि लीडरों को गवा के विजय पर बधाई दी गई।

मन्त्री विजय कुमार

आर्य ... सभा—वार्षिक अधिवेशन

...र्यसमाजों को सूचना

आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा से सम्बद्ध सभी आर्य समाजों व प्रतिनिधि सज्जनों की सेवा में निवेदन है कि सभा का वार्षिक अधिवेशन रविवार दिनांक २१ जनवरी १९६२ ई० मध्याह्नोत्तर २ बजे से डी० ए० वी० हायर सैकण्डरी स्कूल चण्डीगढ़ में होना निश्चित हुआ है। सभी सज्जन नियत समय पर पधार कर अपने संगठन को बलिष्ठ बनाने में सहयोग प्रदान करें।

सभी आर्य समाजें अपनी अपनी समाज का दशांश शीघ्र सभा के कार्यालय में भेजने की कृपा करें।

मन्त्री—
आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा पंजाब, जालन्धर

आर्यसमाजों से आवश्यक निवेदन

आर्यसमाजों के मान्यवर अधिकारियों एवं कार्यकर्त्ताओं से विनम्र निवेदन है कि नव वर्ष के लिए अपनी २ समाज के उत्सवों की तिथियों से अभी से सूचित करने की कृपा करें। ताकि प्रबन्ध में सुभीता रहे। उत्सव अप्रैल तक आ गए हैं। आने वाले खुले मौसम मे जिन समाजों के उत्सव होते हैं। उन्हें तिथियां शीघ्र भेज देनी चाहिये।

—खुशीराम शर्मा, वेद प्रचार अधिष्ठाता

आर्य समाज रुद्रपुर (नैनीताल)

महात्मा आनंद भिक्षु जी महाराज की अमृत वर्षा।

दिनांक 22—1—62 से 28—1—62 तक आर्य समाज रुद्रपुर (नैनीताल) में महात्मा आनंद भिक्षु जी महाराज ने कथा करना स्वीकार कर लिया है।

भवन निमार्ण के लिए प्रधान आर्य समाज डा० हंस राज जी मुल्तानी काशी पुर (नैनीताल) ने डा० दया नंद जी मुल्तानी व श्री सीता राम अमीर चंद जी की कृपा से दो सौ रुपये (Rs. 200/-) 31—12—62 के प्राप्त किये हैं। दानी सज्जनों से प्रार्थना है कि आर्य समाज रुद्रपुर (नैनीताल) के भवन निमार्ण के लिए अधिक से अधिक दान मन्त्री आर्य समाज रुद्रपुर (नैनीताल) के नाम भेज कर यश के भागी बनें।

जगदीश सोम, मंत्री आर्य समाज

शोक समाचार

आज 2—1—62 को आर्य समाज तथा द. ऐं. वै. हा: स. स्कूल दसूहा की सम्मिलित-शोक सभा में पं० सदा नन्द जी बी. ए. ऐल. बी. वकील, भूत पूर्व स्कूल मैनेजर, प्रधान आर्य समाज दसूहा तथा प्रैजीडैंट, बार ऐसोसीएशन दसूहा के 27—12—61 को सोलन, (शिमला) में स्वर्गारोहण पर हार्दिक-शोक प्रकट किया गया यह सभा भगवान् से पंडित जी की सद्गति के लिए प्रार्थना करती है, तथा उनके सम्बन्धियोंसे हार्दिक सहानुभूति प्रकट करती है।

—निवेदक ईश्वर दास, मन्त्री आ. स. दसूहा

अदालती नोटिस

इश्तहार जेर दफा 5—रूल 20 मजमूआ जाब्ता दीवानी, बा अदालत श्री देव भूषण जी गुप्ता P. C. S.

सब जज दर्जा अव्वल जगाधरी

दावा दीवानी नंबर 218 साल 1961

श्रीमती कलावती औरत राम नाथ कौम ... जगाधरी,

चम्पा देवी औरत केवल राम ... बनाम—हरसन,

दावा ... हरसरन ... ।

मुकदमा मुंदरजा उनवान बाला में मुसम्मी हरसरन मजकूर तामील सम्मन से दीदादानिस्ता गुरेज करता है इसलिये इश्तहार हाजा बनाम हरसरन मजकूर जारी किया जाता है कि अगर हरसरन मजकूर 24 जनवरी 1962 को मुकाम जगाधरी 10 बजे कब्ल अज दोपहर हाजिर अदालत हुआ मे नहीं होगा तो उस की निसबत कारवाई यक तरफा अमल मे आवेगी।

आज बतारीख 28 माह दिसबंर 1961 को बदस्तखत मेरे और मोहर अदालत के जारी हुआ।

मोहर अदालत — सब जज फस्ट क्लास जगाधरी

चुनाव

"गत ७-१-६१ को आर्यसमाज दयालपुरा ... का वार्षिक निर्वाचन हुआ, जिस में निम्न पदाधिकारी निर्वाचित हुए प्रधान चौ० पंजाबसिंह एडवोकेट, उपप्रधान डा० गणेशलाल व मास्टर सोमचन्द जी, मन्त्री श्री मोहनलाल गांधी, उपमन्त्री मास्टर अमरनाथ व श्री किशन-स्वरूप, कोषाध्यक्ष चौ० हुकुमचन्द जी व पुस्तकाध्यक्ष श्री रामेश्वरजी।"

—मोहनलाल गांधी मन्त्री आर्यसमाज दयालपुरा, ...

सूचना

आज कोई पन्द्रह दिन हुये "शिव राम मन्त्री आर्य समाज ... P.O. शहजाद पुर जिला अम्बाला" अपने घर से लड़ कर चले गये हैं वापिस नहीं आये। घर में, मैं इन का भाई लकवा रोग से ग्रस्त हूं। बूढ़ी माता जी हैं और इन की स्त्री है। आठ पशु हैं जो बुरी तरह भूखे मर रहे हैं। आप कृपा कर अपनी सभी भजन मंडलियों को सूचित कर दें कि जिस किसी को कहीं भी मन्त्री जी मिलें आकर घर छोड़ जायें। जो सज्जन यहां छोड़ने आवेंगे, उनका किराया और यथाशक्ति दान भी दूंगा। जहां तक मेरा विचार है सभी भजनीक लोग उनको जानते हैं। वे किसी समाज या आर्य सभाओं के घर ठहरे हुए हैं।

—फूल चन्द आर्य ग्राम ... P.O. शहजादपुर जिला अम्बाला

मुद्रक व प्रकाशक श्री संतोष राज जी मंत्री आर्यप्रादेशिक प्रतिनिधि सभा पंजाब जालंधर द्वारा वीर मिलाप प्रैस, मिलाप रोड जालंधर से मुद्रित तथा आर्यजगत कार्यालय महात्मा हंसराज भवन निकट कचहरी जालंधर शहर से प्रकाशित हुआ मासिक—आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधिसभा पंजाब जालंधर

टैलीफोन नं० ३०५७ [आर्यप्रादेशिक प्रतिनिधिसभा पंजाब जालन्धर का साप्ताहिक मुखपत्र] Regd No. 121

एक प्रति का मूल्य १३ नये पैसे | वार्षिक मूल्य ६ रुपये

वर्ष २२ अंक ४) रविवार १६ माघ २०१८— २८ जनवरी १९६२ दयानन्दाब्द १३७ (तार-प्रादेशिक जालन्धर

वेद सूक्तयः

शुद्ध आशीर्वान्ममत्तु

वह शुद्ध — शुद्ध पवित्र परमात्मा, आशीर्वान्-आश्रय देने वाला ममत्तु-सुख आनन्द देता है। प्रभु ही सच्चा सुख, सच्ची शान्ति तथा आत्मा का आनन्द देता है। उसके बिना आनन्ददाता कौन हो सकता है। प्रभु आनन्दस्वरूप तथा आनन्ददायक कहा गया है।

इन्द्र शुद्धो न आगहि

हे इन्द्र! शुद्ध — पवित्र आप नः-हमें आगहि-प्राप्त होवें। प्रभो! आप सदा पवित्र हैं। हम आपका प्रेम, मित्रता, आशीर्वाद चाहते हैं। आप हमें प्राप्त होवें जिस से आप उसको मिट जाये सारा ताप सन्ताप। हम आप को ही चाहते हैं।

शुद्धो रयिं निधारय

आप पवित्र हैं। हमें रयिम्-धन ऐश्वर्य निधारय-दीजिये। प्रभो! हम आप से जीवन पथ पर चलते हुए [illegible] की पूर्ति के लिए धन-ऐश्वर्य की याचना करते हैं। आप ही धन के भण्डार हैं। [illegible] हो [illegible] धन की [illegible] कमी होती है।

वेदामृत

सहस्र कुणपा शेतामामित्री सेना समरे वधानाम्। विविद्धा ककजा कृता ॥ अथर्व ११-१०-२५

अर्थ—(सहस्रकुणपा) हजारों मुर्दों वाला (शेताम्) सो जावे (आमित्री) राष्ट्र के शत्रुओं की (सेना) फौज (समरे) युद्ध में (वधानाम्) वीरों के। (विविद्धा) विधी और छिदी हुई (ककजाकृता) जल की प्यास से व्याकुल हुई २ हे वीर सेनापते! तेरी सेना के वीरताभरे शस्त्रों से युद्ध की भूमि में विधी छिदी शत्रु की राष्ट्रद्रोह करने वाली सेना मुर्दा होकर धरती पर सदा के लिए सो जावे तथा प्यास से दुःखी हो। पानी २ चिल्लाती रहे पर ऐसे राष्ट्र के घातियों को मरते समय कोई पानी देने वाला भी न हो। कोई उन पापियों का समर्थक न बने।

भाव—राष्ट्र सेवा का भक्त सेना का सेनापति ऐसा वीर तपस्वी, बलिदानी नेता हो। जो युद्ध भूमि में उतरने के बाद देशघातक, राक्षसों, साप के समान विष फैलाने वाले देश द्रोहियों को समरस्थल में ऐसी मार मारे जिस से उनकी सारी सेना देशभक्तों की ताब न लाकर पराजित होकर धड़ाम से कटे, जड़ उखड़े वृक्ष की भान्ति धरती पर गिर पड़े। प्यास के कारण पानी २ चिल्लाती हो। पर ऐसे देशहत्यारों के मुख में पानी डालने वाला एक भी समर्थक न मिल सके। प्यास से दुःखी होकर मर जाये। जो लोग देश से द्रोह करते हैं। उसकी अखण्डता, स्वाधीनता को बिगाड़ते हैं। देशवासियों को अपने स्वार्थों को सिद्ध करने के लिए लड़ाते रहते हैं। हर समय अपने गुप्त राष्ट्रविरोधी कार्यों से कभी कहीं और कभी कहीं गड़बड़ मचाये रखते हैं। ऐसे लोगों के लिए वेद ने मृत्युदण्ड का विधान बनाया है। सेनापति का कर्तव्य है कि देश में निरन्तर शान्ति बनाये रखने के लिए ऐसे देशघातकों को चुन २ कर ऐसा कड़ा दण्ड देवे कि उनको मरते समय पानी देने वाला भी कोई न मिल सके। देश द्रोह महापाप है। केवल अहिंसा से काम नहीं चलता। साप का तो सिर कुचलना पड़ता है—सं०

ऋषिवचनमाला

तस्य पूर्ण विद्यावत्वात्

तस्य—उस परमेश्वर के पूर्ण-पूरे विद्यावत्वात्-ज्ञान वाला होने से। वह प्रभु सारी विद्याओं, सारे ज्ञान विज्ञान का पूर्ण भण्डार है। उस में किसी प्रकार का भी अधूरापन, कमी नहीं है। सारे ज्ञानों का मूल स्रोत माना गया है।

स्वतो नित्यत्वम् एव

वेद स्वतः—स्वयं ही नित्यत्वम् नित्यता, एव-ही है। वेदों का ज्ञान नित्य है। सदा रहने वाला है। इस का कभी नाश नहीं होता। न कम और न कभी अधिक ही होता है। सदा सनातन है। अविनाशी नित्य रहने वाला है।

सर्व सामर्थ्यस्य नित्यत्वात्

क्योंकि ईश्वर के सर्व-सारे सामर्थ्यस्य-सामर्थ्य के नित्यत्वात्-नित्य होने से। परमेश्वर का सामर्थ्य भी सदा से नित्य है, इसलिए उस का ज्ञान भी सनातन व नित्य है। अविनाशी नित्यसत्ता का ज्ञान भी तो नित्य ही होता है। अतः वेद नित्य हैं—

—भाष्यभूमिका

सम्पादक: त्रिलोक चन्द्र शास्त्री | अधिष्ठाता : भक्तराम ऐडवोकेट उपप्रधान सभा

आर्य प्रादेशिक सभा का चंडीगढ़ में वार्षिक अधिवेशन समारोह

सभा के प्रचार कार्य को प्रगति देने की सुन्दर योजना

सर्वसम्मति से प्रिंसिपल सूर्यभानुजी प्रधान निर्वाचित

आर्य प्रादेशिक सभा पंजाब जालन्धर का वार्षिक बजट निर्वाचन अधिवेशन ता० २१ जनवरी रविवार दोपहर दो बजे डी० ए० वी० हायर सैकंडरी स्कूल चंडीगढ़ के सुन्दर सजे हुए कलाभवन में सभा के प्रधान माननीय प्रिंसिपल सूर्यभानु जी एम० ए० की प्रधानता में प्रारम्भ हुआ। उस दिन यद्यपि वर्षा हो रही थी तथा काफी सर्दी थी। फिर भी सभा से सम्बन्धित आर्य समाजों से मान्य प्रतिनिधि प्राय सारे पंजाब तथा देहली से वहां पधारे हुए थे। सबके आवास निवास तथा खानपान का उत्तम प्रबन्ध स्कूल में आर्य समाज सैक्टर आठ चण्डीगढ की ओर से किया गया था। सारे प्रबन्ध की आने वाले मान्य सज्जन मुक्त कंठ से प्रशंसा कर रहे थे। सब के ठहरने तथा खाने पीने की सारी व्यवस्था की देख भाल के लिए स्कूल के मान्य प्रिंसिपल तथा चण्डीगढ़ समाज के महामन्त्री श्री ला० हरिराम जी तथा उनके सहयोगी ला० मिलखी राम जी महाजन सरीखे स्टाफ व समाज के सज्जन स्वयं कर रहे थे। प्रबन्ध बहुत ही उत्तम था। इस के लिए सारे प्रतिनिधियों ने उन सब को हार्दिक बधाई दी।

अधिवेशन में देहली से श्री ला० भगवान् दास जी पुरी श्री श्री पं० दयाराम जी शास्त्री एम० ए०, श्री अग्निहोत्री जी शिमला से प्रिंसिपल सत्य प्रकाश जी एम० ए०, हिसार से पं० मुरारी लाल जी शास्त्री, पं० देवराज जी एडवोकेट भिवानी से, पं० देशबन्धु शास्त्री एम ए० टोहाना से ला० बृजलाल जी गुप्ता, रोहतक से जमादार भरतसिंह जी और उनके अन्य आर्य सज्जन, माडल टाऊन यमुना नगर से श्री जगन्नाथ जी कपूर, श्री साहनी जी, अम्बाला छावनी से डा० मिलखी राम जी, श्री जौली जी, श्री कपिला जी, करनाल से प्रिंसिपल गिरधारी लाल जी, ला० रामधन जी, ला० अमर नाथ जी, सोनीपत से पं० अक्षसेन जी, जालन्धर से ला० सन्तोष राज जी, प्रिंसिपल चमन लाल जी, कैप्टन शिवराम जी, प्रिंसिपल ज्ञान चन्द जी भाटिया, प्रो० वेदीराम जी शर्मा एम० ए०, पं० खुशहाल चन्द जी पराशर, ला० शंकर लाल जी, पं० दुर्गादास जी आर्य गजट, होश्यारपुर से माननीय ला० देवी चन्द जी एम० ए०, श्री बूटाराम जी प्रिंसिपल वजीर चन्द जी ऊना सरीखे सज्जन अमृतसर से प्रिंसिपल भीमसेन जी बहल, ज्ञानी पिण्डीदास जी, पं० शिवकुमार जी शास्त्री, प० रुद्रदत्त जी शर्मा लछमणसर, ला० गंगाराम जी, लेखराम नगर कादिया से प्रिंसिपल जयदेव जी, गुरदास पुर से स्वामी सोमानन्द जी, श्री बलदेव सिंह जी भण्डारी एडवोकेट, पं० त्रिलोक चन्द्र शास्त्री, भटिण्डा से श्री करतार चन्द जी प्रिं०, अम्बाला देहातों से आर्य सज्जन, प० अमर सिंह जी, श्री पं० जगत् राम जी, श्री प० गौतम जी, बला चौर से श्री शास्त्री जी आदि काफी संख्या में प्रतिनिधि सज्जन पधारे हुए थे। वर्षा और सर्दी में भी इन सब का सभा के प्रति इतना प्रेम देख कर हर्ष होता था। शाम चौरासी से ला० परमेश्वरीदास जी बहल भी आये थे।

पवित्र गायत्री मन्त्र से कार्य प्रारम्भ हुआ।

सभा पति प्रिंसिपल सूर्यभानु जी के वचन अनुसार सर्वप्रथम आर्यसमाज के दिवंगत महारथियों, पूज्य स्वामी अभेदानन्द जी महाराज श्री विक्रम भाई बम्बई, श्री डा० विद्याभूषण जी पालमपुर, श्री बृजलाल जी चढ्ढा, श्री ला० आनन्द राम जी देहली के प्रति हार्दिक शोक मौन खड़े होकर प्रकट किया गया।

इसके बाद प्रिंसिपल सूर्यभानु जी प्रधान सभा ने गत वर्ष १९६१ का सभा कार्य विवरण प्रस्तुत करते हुए उसका प्राक्कथन पढ़ा— सर्व सम्मति से स्वीकार हुआ। इस के पश्चात् नाना विभागों. वेद प्रचार, कार्यालय, आर्य जगत् साप्ताहिक, साहित्य विभाग आर्य; अनाथालय फिरोजपुर छावनी का बजट क्रम से प्रिंसिपल ज्ञान चन्द जी भाटिया ने प्रस्तुत किया। गत वर्ष का बजट बड़ा ही उत्तम था। मदों में सभा को आय भी अच्छी हुई। समाजों के उत्सव भी बहुत अधिक हुए। वेद प्रचार का धन भी समाजों के उत्सवों, दानियों तथा संकल्प पत्रों से अच्छा हुआ। पूज्य महात्मा आनन्द स्वामी जी महाराज ने नानास्थानों से सभा के लिए हजारों रुपया भिजवाया। उन का विशेष हार्दिक धन्यवाद किया गया। प्रिंसिपल सूर्यभानु जी सभा प्रधान ने भी हजारों रुपया एकत्रित किया। वेद प्रचाराधिष्ठाता श्री पं० खुशी राम जी शर्मा के भी अत्युत्तम कार्य की सराहना की गई।

वेद प्रचार में धन संग्रह के कार्य को बढ़ाने के लिए के लिए श्री भगवान् दास पुरी, श्री ला० देवी चन्द जी, कै० शिवराम जी, पं० मुरारी लाल जी शास्त्री, पं० रुद्रदत्त जी, श्री राजकुमार जी, श्री बलदेव सिंह भण्डारी, डा० मिलखी राम जी, श्री एम० सी० जौली, प्रिं० ज्ञान चन्द जी भाटिया पं० वजीर चन्द जी ऊना, श्री जगन्नाथ जी कपूर, प्रिं० गिरधारी लाल जी, सैनी जी, प्रिं० सत्यपाल जी, ला० मिलखी राम जी ने अपने सुन्दर, ठोस विचार सुझाव पेश किए। सभा पति के गम्भीर विवेचन के उपरान्त बजट सर्वसम्मति से पास हो गया। आर्य जगत् की वृद्धि के लिए पं० त्रिलोक चन्द शास्त्री सम्पादक के नम्र निवेदन पर अनेक मान्य महानुभावों ने समाजों से दस-दस और पांच-पांच प्रतियां मंगवाने को नाम लिखवाए। श्री पं० वजीर चन्द जी शर्मा ऊना ने भी प्रभावपूर्ण योग दिया।

तब निर्वाचन आरम्भ हुआ। मान्य ला० देवी चन्द जी एम० ए० ने प्रिंसिपल सूर्यभानु जी वर्तमान प्रधान सभा का नाम प्रधानता के लिए पेश करते हुए सर्वाधिकार भी प्रधान जी को दिए जावें—नाम पेश हुआ। सर्वसम्मिति से समर्थन। किया गया। सर्वाधिकार प्रधानजी को सोंपे गए। बड़े प्रेम से कार्यक्रम समाप्त होने पर शान्ति पाठ करने तथा चण्डीगढ़ समाज के सारे सज्जनों का इस आतिथ्य का विशेष धन्यवाद करने के बाद सब को चण्डीगढ़ समाज की ओर से मिष्ठान्न खान और चाय पान कराया गया। इस निष्ठा, प्रेम, श्रद्धा मय स्वागत तथा निर्वाचन के लिए सब का हार्दिक धन्यवाद।

—:—

महात्मा आनन्द स्वामी जी का प्रोग्राम

१, २, ३ जनवरी—सान्ता क्रूज (बम्बई)। ५ से ११ जनवरी—आर्य समाज सीसा मऊ (कानपुर) १२ जनवरी को (हरिद्वार) १३ से १९ (रतलाम) २२ से २४ (मेरठ लाल कुर्ती) २६ से ३१ आर्यसमाज जंगपुरा नई दिल्ली।

चुनाव

आर्यसमाज हरिगोविन्दपुर का वार्षिक चुनाव २८—१—१९६२ रविवार प्रातः ९॥ बजे समाज मन्दिर में होगा।

मंत्री—बूटाराम

सम्पादकीय

ओ३म्

आर्य जगत्

वर्ष२२] रविवार १६ माघ २०१८, २८ जनवरी १९६२ [अंक ४

सभा का शानदार अधिवेशन

आर्य प्रादेशिक सभा के साथ सम्बन्धित आर्यसमाजों के मान्य प्रतिनिधियों को बहुत२ बधाई हो। सभा के साथ उनके अटूट प्रेम, श्रद्धा, हितचिन्तन तथा सहयोग को देख कर प्रत्येक का मन गद्‌गद् प्रसन्न हो गया। तारीख २१ जनवरी रविवार के दो बजे दोपहर डी० ए० वी० हायर सैकण्डरी स्कूल के कलाभवन में सभा के वार्षिक बजट एवं निर्वाचन के सुन्दर और शानदार अधिवेशन को देखकर बरबस ही मुख से आर्य प्रादेशिक सभा अमर रहे। स्वर्गीय महात्मा हंसराज की जय, सभा के सारे हितचिन्तक धन्य हैं—के शब्द निकलते हैं। उस दिन वर्षा के कारण बड़ी सर्दी पड रही थी। फिर भी सारे प्रान्त तथा देहली से आर्य समाजों के माननीय प्रतिनिधि सभा को पूर्ण सहयोग देने और इस की उन्नति में अपनी समुन्नति समझने का परिचय देने के लिए काफी संख्या में बरसती वर्षा में चण्डीगढ़ पधारे हुए थे। प्रतीत होता था कि सभा के प्रेमियों को अपनी सभा के साथ कितना हित है। यह प्रेम जीवन की निशानी होती है। इस से संस्था और आगे बढ़ती है। इस प्रेम, उत्साह, लगन तथा सहयोग को देखते हुए हम सारे मान्य महानुभावों को बधाई देना चाहते हैं।

गत वर्ष का विवरण भी सुनाया गया। बजट भी पेश हुआ। वेद प्रचार की गतिविधि, प्रगति के बारे में भी दिल खोलकर गम्भीर सुझाव पेश किये गये। सभा को आर्थिक रूप में सम्पन्न बनाने तथा वेद प्रचार के पुनीत काय का विस्तार करने के निमित्त धनसग्रह के कार्य आयोजन पर भी बड़े सुन्दर विचार प्रस्तुत किये गये। सभा के मुखपत्र आर्यजगत तथा साहित्यविभाग की वृद्धि के लिए भी बड़ी उत्तम चर्चा हुई। आर्यसमाज के कार्य को फैलाने और समाजों में अधिक उत्साह भरने का भी ध्यान रखा गया। इस प्रकार इस नये वर्ष में पूरे उत्साह से सभा कार्य को और आगे ले जाने के लिए सुन्दर योजना बनाई गई। सारे सज्जनों ने सभा के लिए अपना पूरा २ सहयोग देने का वचन दिया। बड़ी उत्तम रीति से बजट को सुन कर अपनी प्रसन्नता प्रकट की।

सभा सम्बन्धी सारे आयोजनों का विवेचन करने के बाद इस वर्ष के लिए सभा के मान्य अधिकारियों के निर्वाचन का विषय प्रस्तुत हुआ। हमारी सभा की यह पुरानी पवित्र तथा प्रशंसनीय परम्परा चली आ रही है कि निर्वाचन में कभी किसी प्रकार का मनमुटाव नहीं होता। कभी वैमनस्य नहीं होता। यही परम्परा इस वर्ष भी कायम रही। माननीय प्रिंसिपल सूर्यभानु जी एम० ए० को सर्वसम्मति से सभा का प्रधान निर्वाचित करके सारे अधिकारियों तथा अन्तरंग सदस्यों को चुनने का सर्वाधिकार भी उनको सौंप दिया गया। हम सारे सज्जनों को इस प्रेम, श्रद्धाभरी निर्वाचन परम्परा के लिए पुन २ बधाई देते हैं। संसार में आज सारा झगड़ा निर्वाचनों का होता है। सत्ता के लिए सब दौड़ते रहते हैं। किन्तु आर्य प्रादेशिक सभा का वार्षिक निर्वाचन कितना पवित्र एवं आदर्शमय है। यह गौरव की बात है। प्रभु सभा के सारे प्रेमियों, शुभचिन्तकों तथा सहयोगियों को हर प्रकार का बल प्रदान करें ताकि इसी प्रकार अपने इस महान केन्द्र के साथ अपने जीवन का प्रेम बनाये रखें। निर्वाचन का कार्य तो समाप्त हो गया—अब कार्य करने का समय आरम्भ हो गया है। सभा की उन्नति मे तन मन धन से जुट जायें।

—त्रिलोक चन्द्र

आर्यजगत् के बारे में

इस बार चण्डीगढ़ मे सभा के वार्षिक निर्वाचन अधिवेशन मे सभा के अपने मुखपत्र आर्यजगत् के बारे मे सब से हार्दिक प्रार्थना की गई। प्रत्येक समाज, स्कूल, कालेज तथा शाला में तो आर्यजगत् अवश्य ही जाना चाहिए वैसे तो सारे सज्जनों का सहयोग मिलता ही है। इस बार अनेक सज्जनों ने अपनी समाजों तथा संस्थाओं के लिए प्रतिसप्ताह दस २ तथा पाच २ प्रतियां लेने की उदारता दिखाई है। उनके हम आभारी हैं। इस वर्ष सब थोड़ा-सा और जोर लगावें। प्रेम व सहयोग का परिचय देवें तो आर्यजगत् अधिक प्रगति के पथ पर चलने लगे। इस वर्ष कोई समाज, संस्था ऐसी न रहे जहा यह न जाये। कई सज्जन व्यक्तिगत रूप में भी सभा के इस पत्र के साथ प्रेम दिखाते हुए मगवाते हैं। उनके भी हम कृतज्ञ हैं। आर्यजगत सभा का है और सभा आपकी है।

शिवरात्रि अंक

प्रति वर्ष की भान्ति इस वर्ष भी शिवरात्री के पर्व पर आर्यजगत का ऋषिबोधांक पूरी साजसज्जा के साथ निकलेगा। समय थोड़ा है। इसलिए अपने मान्य विद्वान् लेखक महानुभावों तथा कवियों से नम्र निवेदन है कि वे अपने अमूल्य लेख, कविता सन्देश शीघ्र भिजवा कर कृतार्थ करें। अपनी सारी संस्थाओं, समाजों के आदरणीय अधिकारियों से भी नम्र प्रार्थना है कि पूर्व के समान उदारता, निष्ठा का परिचय देते हुए इस विशेषांक की सैकड़ों की संख्या में प्रतियां मगवा कर युवकों तथा दूसरे सज्जनों में प्रसादरूप में बाटें। विज्ञापनदाता भी अपने २ विज्ञापन से कृतार्थ करें। यह विशेषांक मीठा प्रसाद होता है।

श्री पं० निरञ्जनदेव जी

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के माने हुए महोपदेशक हैं। बड़ा मीठा व प्रभावशाली बोलते हैं। गत वर्ष अमर शहीद पण्डित लेखराम शहीदी महोत्सव लेखराम नगर कादियां में ता० ६ मार्च के शहीदी सम्मेलन में आपने भाषण दिया था। उसके आधार पर पंजाब सरकार की ओर से आप पर एक अभियोग चलाया गया है। केस अदालत में होने से किसी प्रकार की टीका टिप्पणी नहीं हो सकती। हमे प्रसन्नता है कि आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब ने श्री पण्डित जी को इस अभियोग में सभा की ओर से पूर्ण सहयोग तथा सहायता देने का निश्चय किया है। श्री पण्डित शान्तिप्रकाश जी शास्त्रार्थ महारथी पर भी एक बार वहां कादिया में दिये गये भाषण के आधार पर अभियोग चला था। सभा ने पूरी तरह से केस लड़ा था। अब पण्डित निरञ्जन देव जी के अभियोग में भी सभा पूरी तरह से केस लड़ेगी। हम कादिया तथा गुरदासपुर जिले के सारे आर्य समाजों से भी निवेदन करना चाहते हैं कि इस कार्य मे पूर्ण सहयोग देवें। हमारे एक सभा के महोपदेशक भाई पर अभियोग चला है। सारे आर्य सज्जन, उपदेशक महानुभाव तथा सभाएं पूरा २ सहयोग देवें। वहां के श्री रब्बे कादियां जी पर भी ऐसा केस चला है। पूर्ण सहयोग मिलना चाहिए।

आर्यप्रादेशिक सभा पंजाब का वार्षिक शानदार कार्य विवरण

प्रचार और साहित्य प्रकाशन द्वारा सभा प्रगति के पथ पर

सभा प्रधान प्रिंसिपल सूर्यभानुजी द्वारा प्रस्तुत

सभा का वार्षिक शानदार कार्य विवरण प्रस्तुत करते हुए माननीय सभा प्रधान प्रिंसिपल सूर्यभानु जी एम ए ने कहा—

मान्यवर बन्धुओं! प्रभु की कृपा से हम सब एक वर्ष पश्चात् पुनः एकत्र हुए हैं। गत वर्ष पंजाब के महत्वपूर्ण व अति प्राचीन नगर जालन्धर में बैठ कर हमने सभा के कार्य को प्रगति प्रदान करने के हेतु कुछ निश्चय किए थे। उन्हीं अपने पूर्व निश्चयों की गतिविधियों का ब्योरा लेने तथा उन्हीं के आधार पर देव दयानन्द के मिशन को ले चलने के हेतु वीर भूमि पंजाब की सुन्दर, सुरम्य, व नवीन राजधानी चण्डीगढ़ के स्थान पर आने का सुअवर प्राप्त हुआ है। किसी समय लाहौर पंजाब का केन्द्र होता था और उसी केन्द्र से जहां सारे पजाब का शासन सरकार चलाती थी, आर्य समाज का प्रचार भी सारे पंजाब के कण २ मे व्याप्त था। आज लाहौर का स्थान चण्डीगढ़ ले रहा है। यहां यूनिवर्सिटी की स्थापना हो चुकी है। और अनेक शिक्षण संस्थाएं बन चुकी हैं। हमें प्रसन्नता है कि डी. ए. वी. हायर सकेंडरी स्कूल, डी. ए. वी. कालेज, और छोटे बच्चों के लिए एक उत्तम स्कूल यहां खुल चुके हैं और उत्तम कार्य कर रहे हैं। इन के द्वारा आर्य समाज का बड़ा सुन्दर कार्य हो रहा है।

धार्मिक संस्थाओं ने भी अपने केन्द्र यहां खोल दिए हैं। श्री रामकृष्ण परमहंस मिशन, राधा-स्वामी सत् संग, अनुसारी संस्था, अखिल भारतीय जैन सभा-आदि ने अपने केन्द्र स्थान यहां बना लिए हैं। ईसाई प्रचारकों ने भी अपनी गति विधि यहां जाहिर कर दी है। आर्य समाज ने भी अपना काम पूरी लगन के साथ प्रारम्भ कर दिया है हिन्दू जाति की रक्षा का काम सभी संस्थाए कर सकती हैं परन्तु इस ओर सब से अधिक ध्यान और बल देने का काम आर्य समाज के जिम्मे ही है। वैदिक दार्शनिकता, वैदिक जीवन की पद्धति की रक्षा और प्रचार की जिम्मेवारी आर्य समाज की है। अत यह अत्यावश्यक है कि आर्य समाज की शक्ति को यहा और बलिष्ट बनाया जाए। हमे प्रसन्नता है कि यहा का आर्य-समाज पूरी लगन और उत्साह के साथ काम कर रहा है।

मैं चण्डीगढ आर्य-समाज के सदस्यों की उत्साह की सराहना करता हूं। यह भी उन्हीं के पुरुषार्थ व प्रेम का फल है कि सभा के अधिवेशन का आयोजन कर हम सभी को यहा आने का सुअवसर प्रदान किया है। मै इस अर्य-समाज के सभी सदस्यों और विशेष रूप से श्री पं० नानकचन्द जी प्रधान व श्री प्रि० हरिराम जी मन्त्री आर्य समज व उपप्रधान सभा का आभारी हू। प्रभु आप सब को इसी प्रकार का उत्साह व समाज कार्य के प्रति पूर्ण निष्ठावन् बने रहने की सामर्थ्य प्रदान करता रहे।

आर्य-समाज की कुछ विभूतियों का प्रभु इच्छा मे लीन हो जाना—

वर्ष मध्य हम से आर्यसामज की कुछ विभूतिया प्रभु इच्छा में लीन होकर सदा के लिए पृथक हो गई हैं। सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा के भूतपूर्व प्रधान, स्वातन्त्र्य संग्राम के वीर सेनानी, कर्मठ आर्य विद्वान, श्री पूज्य स्वामी अभेदानन्द जी महाराज का देहावसान हो गया। श्री स्वामी महाराज की सेवाएं देश विदेश में कभी भलाई न जा सकेंगी। उनका रिक्त स्थान पूर्ण होना कठिन हैं। चतुर्वेद भाष्य-कार श्री पं० जयदेव जी विद्याकार का आकस्मिक देहावसान हो गया। आर्य जगत को इस असह्य आघात को भी सहन करना पड़ा है।

श्री पूज्य महात्मा हंसराज जी के सुयोग्य जामाता डा० विद्याभूषण जी भी हम से विदा हो गए। मान्य श्री डाक्टर जी रिटायर्ड डिविल सर्जन थे। पालमपुर में एकान्त सेवन करते हुए आर्यसमाज की सेवा में दिन रात जुटे रहते थे। उनके होते हुए उस क्षेत्र मे ईसाई प्रचारकों द्वारा भ्रमित की ज रही जनता की सभा रक्षा करने में काफी सफल रही है। ऐसे सुयोग्य, कर्मठ आर्यबन्धु का हमारे मध्य से चला जाना काफी दु:खद है।

डी ए वी आन्दोलन के सक्रिय कार्यकर्ता, सभा के सदस्य, डी. ए. वी कालेज कमेटी के संगठन मन्त्री, श्री बजलाल जो चड्डा का भी हम से सदा के लिए वियोग हो गया। शिक्षा सम्बन्धी कार्यों में गत ३५ वर्षों से वह निरन्तर सेवा करते चले आ रहे थे। उनकी इस प्रकार की ध्येय निष्ठा से कारण इस संगठन को बल प्राप्त हुआ, दृढ़ बना तथा आगे प्रगति प्राप्त करता करता रहा है। उनके कार्य चिरस्मरणीय रहेंगें। उन-का रिक्तस्थान पूरा होना कठिन है।

श्री लाला अनन्तराम जी कोहली देहली में स्वर्गवास हो गए हैं। वे अथक कार्यकर्ता थे। सारी आयु सेवा कार्य में ही लगे रहे। इस वृद्ध अवस्था में भी आर्यसामज मन्दिर मार्ग के निर्माण कार्य से पता चलता है। उनकी मृत्यु से आर्यसमाज को काफी क्षति पहुंची है।

आर्यजगत के सुप्रसिद्ध धनी, मानी व दानी बम्बई निवासी श्री विक्रम भाई जी का भी देहावसान हो गया। आर्यसामज को आप जैसे तेजस्वी व यशस्वी प्रभाव शाली महानुभाव की आज की परिस्थिति में अत्यन्त आवश्यकता थी। उनके इस प्रकार छिन जाने से समस्त आर्य-जगत को एक धक्का लगा है।

आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा के हम सभी-सभासद दिवंगत आत्माओं के प्रति श्रद्धांजली अर्पित करते हुए परम देव प्रभु से प्रार्थना करते हैं कि वह इन्हें सद्गति प्रदान करें तथा आर्यजगत में उनके अमूल्य रिक्तस्थानों को पूर्ण करने की सामर्थ्य प्रदान करें।

वेद प्रचार

आज के भोग विलास की ओर दौड़ते युग में आर्यसमाज द्वारा प्रदत्त वैदिक विचारों की कितनी आवश्यकता है? आज का मानव शरीर जीवी, भोगासक्त बनता जा रहा है। प्रसाधनों की साधना जारी है। नैतिकता और आचार की क्या दुर्दशा हुई! आर्यसमाज को ऋषिवर ने इन्हीं विदूषित प्रवृत्तियों के प्रति टक्कर लेने, इस विकृत, दूषित पतन की ओर आगते विश्व का सुधार करने के लिए स्थापित किया था। अपने आरम्भ काल से यह इसी कार्य में लगा है।

आर्य प्रादेशिक प्र० नि० सभा पंजाब इसी शृंखला की एक कड़ी है। इसका विशाल परिवार काश्मीर से लेकर दक्षिणी भारत तक तथा बर्मा से लेकर बम्बई तक फैला हुआ है। महात्मा हंसराज जी जैसे स्वनामधन्य महात्माओं का इसे आशीर्वाद प्राप्त है। महात्मा आनन्द स्वामी जैसे यशस्वी, तेजस्वी संन्यासी का पूर्ण सहयोग है। पूज्य महात्मा जी वर्ष भर प्रवास में ही रहते हैं। इस सभा के लिए यह गौरव की बात है कि इसके वेदप्रचार का समस्त केन्द्र बिन्दु महात्मा आनन्द स्वामी जी ही रहते हैं। आज उनके कार्यक्रमों द्वारा समस्त देश विदेश में एक धूम मची है।

हमारे समस्त उपदेशक, प्रचारक महानुभाव वर्ष भर कार्यरत रहते हैं। सारा कार्य मण्डलों में विभक्त है। केन्द्र में प्रचाराधिष्ठाता जी के सुप्रबन्ध से कार्य चलता है। करनाल और अम्बाला मण्डल भी पं० अमरसिंह जी की देखरेख मे उन्नति कर रहा है। अभी हिसार और रोहतक मण्डल की ओर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है। इस वर्ष इस ओर भी विशेष प्रबन्ध हो, ऐसी हमारी अभिलाषा है।

हमें यह भी सौभाग्य प्राप्त है कि डी० ए० वी० शिक्षण संस्थाओं के प्रिन्सिपल व प्रोफैसर महानुभाव भी सभा की सेवाओं के लिए अपना अमूल्य समय प्रदान करते रहते हैं। महात्मा देवीचन्द जी व प्रि० रला राम जी, प्रि० ज्ञानचन्द जी आदि वयोवृद्ध अनुभवी विद्वानों का सहयोग सदा ही सभा को प्राप्त रहा है।

दिल्ली उपसभा राजधानी की शान है। राजधानी में इस उपसभा ने सभा के कार्य का जिस सुन्दरता से विस्तार किया है वह सर्व विदित है। इस उपसभा के ओजस्वी युवक श्री राजकुमार जी व अनुभवी प्रधान श्री भगवान दास जी पुरी बड़ी लगन से कार्य में लगे हैं।

सभा का कार्य मध्य प्रदेश में श्री देव प्रकाश जी और कालीकट (केरल) में श्री बुध सिंह जी देख रहे हैं। सभा की वहा काफी सम्पत्ति है एक विद्यालय भी चल रहा है। ईसाई प्रचारकों के झंझावात को रोकने में सभा अपनी शक्ति के अनुसार कार्य में लीन रही है।

सभा की आर्थिक अवस्था

वेद प्रचार का पुनीत कार्य बिना धन के चलना कठिन है। सभा की सेवाओं का क्षेत्र जितना विशाल और विस्तृत है उसके अनुसार उसके पास धन नहीं। पजाब विभाजन ने तो आर्थिक दशा और भी विषम बनादी है। किन्तु फिर भी हमें प्रसन्नता है कि जनता इस सभा को यथाशक्ति सहायता करती रही है। पूज्य महात्मा आनन्द स्वामी जी महाराज की अपार कृपा है कि वह सभा की ओर ध्यान रखते हैं। आर्थिक दशा के सुधार में उनका विशेष हाथ रहा है। इस वर्ष स्वामी जी महाराज आर्यसमाज वजीर बाग श्री नगर पधारे वहा उन्हें सभा के वेद प्रचारार्थ १०००, रुपये की थैली भेंट की गई। इसी प्रकार बम्बई से भी ५०००, रुपये सभा अर्थार्थ स्वामी जी ने भिजवाए अन्य आर्य समाजों के उत्सवों पर भी स्वामी जी पधारे और वेदप्रचारार्थ काफी धन मिला।

मैंने स्वयं भी कुछ स्थानों का भ्रमण किया। लोहगढ़ आर्यसमाज अमृतसर ने ५००, की थैली भेंट की। मैं यमुनानगर पहुंचा तो वहां के आर्य भाईयों ने भी सभा के वेद प्रचारार्थ ३५००, रुपये भेंट किए। श्री द्वारिकादास सहगल मालिक लीडर इंजीनियरिंग वर्कस जालन्धर ने भी मेरी प्रार्थना पर १०००, रुपये सभा को भेंट किए। पंजाब नेशनल बैंक के सेक्रटरी श्री बी-एन पुरी जी के पास जब मैं गया तो उन्होंने भी सभा को १०००, रुपया देकर सहायता की। आर्यसमाज किला जालन्धर ने भी सभा को १०००, वेदप्रचारार्थ प्रदान किए।

वेद प्रचार में कुछ स्थायी आय हो सके इस निमित्त सभा ने इस वर्ष एक नई योजना बनाई थी जिसके अन्तर्गत कुछ सकल्प पत्र भरवाए गए। इस योजना का भी अच्छा स्वागत हुआ है। इसके अन्तर्गत अभी तक १४७ महानुभाव सदस्य बने हैं जिन से २२७६ रुपये वार्षिक की सभा को आय हो रही है। यदि हम सब इस योजना की ओर ध्यान दे तो सभा के वेदप्रचार में एक स्थायी दृढ़ता आएगी और हम स्वावलम्बी भी बन सकेंगे। सकल्प पत्रों के प्रेषण में सभा के वेद प्रचाराधिष्ठाता श्री पं० खुशी राम जी ने विशेष सक्रिय कार्य किया है। पं० अमर सिंह जी ने भी अपने मण्डल से काफी सकल्प पत्र भरवा कर भिजवाए हैं। यह कार्य अत्यन्त पुनीत व प्रशसा के योग्य है। हम इन सभी महानुभावों व आर्यसमाजों के आभारी हैं कि जिन्होंने वेदप्रचार के पुनीत कार्य में हमारी प्रार्थना स्वीकार कर सभा की सहायता की है।

महात्मा हसराज भवन

विभाजन के पश्चात् सभा को अपना केन्द्रीय कार्यालय लाहौर से जालन्धर लाना पड़ा। लाहौर जैसा भवन तो यहां न मिल सका किन्तु जैसा भी मिला उसी में सन्तोष करना पड़ा। गत वर्ष मैंने आप की सेवा में निवेदन किया था कि "इस स्थान का आधा भाग सभा ने खरीद लिया है और शेष भाग के लिए भी सरकार से बात चल रही है।" अब आप सब को यह जान कर प्रसन्नता होगी कि प्रभु कृपा से यह शेष भाग भी सरकार से खरीद लिया गया है। अब यह सारी सम्पत्ति सभा की अपनी सम्पत्ति हो गई है। इस विषय में मैं पूज्य महात्मा आनन्द स्वामी जी का जितना भी धन्यवाद करूं थोड़ा है। यह सब उन्हीं की प्रेरणा व सहायता का फल है कि जो यह भवन हम खरीद सके। उनकी प्रेरणा पर बम्बई के कुछ दानी महानुभावों ने सभा को इतना धन दिया कि जिस से यह भवन खरीद लिया गया। अब अगला पग इसके निर्माण का है। इस ओर यदि आप सभी बन्धु थोड़ा भी ध्यान देंगे तो कुछ ही समय में हम इस अपनी प्रिय संस्था के केन्द्रीय कार्यालय को सुन्दर बना पाएंगे। मुझे पूर्ण आशा है कि आप सभी से इस दिशा में स्फूर्ति लेकर जावेंगे और अगले वर्ष कुछ न कुछ इस ओर हम बढ़ पावेंगे।

साहित्य प्रचार विभाग

आज का युग प्रचार का युग है। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में उन्नति, विकास और विस्तार प्राप्त करने के हेतु प्रचार ही एक मुख्य साधन है। सिद्धांतों का प्रसार भी बिना प्रचार नही हो सकता। आप की सभा भी इन माध्यमों द्वारा कार्य कर रही है।

सभा का साप्ताहिक मुखपत्र भी अपने सुदीर्घ जीवन के बीस वर्षों से सेवापथ पर निरन्तर आगे बढ़ रहा है। इस वर्ष इसका स्तर उच्च करने में हमारे सुयोग्य महोपदेशक श्री पं० त्रिलोकचन्द्र जी शास्त्री ने अपनी पूर्ण शक्ति लगाई है। श्री ला० भक्तराम जी इसके अधिष्ठाता रहे हैं और प्रो० वेदीराम जी एम० ए० इस कार्य को लगन से करते रहे हैं। सभा के उपदेशक महानुभाव भी इस ओर अपनी पूर्ण रुचि रखते हैं। विशेष रूप से प० खुशीराम जी ने इस ओर विशेष सक्रियकार्य किया है। श्री हरिदत्त जी के परिश्रम से तो पत्र समय पर निकलता ही रहा है।

इन सभी महानुभावों के प्रयत्न कुछ रंग भी लाए हैं। गत वर्ष

ग्राहकों की संख्या २१७ थी और चन्दे से १३३८.६३ आय हुई। इस वर्ष इन में ९२ की वृद्धि होकर संख्या ३०९ हो गई और आय २०४६.५६ हो गई।

गत वर्ष विशेषांकों की आय १२०८.६१ थी जब कि इस वर्ष १७८०.१६ हो गई।

गत वर्ष विज्ञापनों की आय २६१.५० थी इस वर्ष ३६२.७० हो गई है।

किन्तु इससे मुझे कोई सन्तोष नहीं है। यदि हम सब बन्धु निश्चय कर लें कि सभा के मुखपत्र के ग्राहक अवश्य बनना है और यदि इसकी ग्राहक संख्या कम से कम १००० तक ले आवें तो यह पत्र और अच्छा हो सकता है। यह आत्म निर्भर ही नहीं अपितु कुछ और अच्छी सामग्री भी दे सकेगा। हमारी शिक्षण संस्थाओं और आर्य समाजों को इस पत्र को अपनाना चाहिए।

इसके अतिरिक्त सभा के साहित्य विभाग ने उर्दू सत्यार्थ प्रकाश की बिक्री का विशेष यत्न किया। पूज्य प्रि० दीवान चन्द जी द्वारा लिखी पुस्तक "जीवन ज्योति" और दूसरी पुस्तक "गीता दिग्दर्शन" का प्रकाशन करा कर जनता की पुरानी मांग को पूरा किया। इन पुस्तकों के अतिरिक्त निम्न पुस्तकों की भी जिन्हें शिक्षा विभाग के D.P.I. महोदय ने स्वीकृत किया हुआ है काफी बिक्री हुई।

१. पार्वती—श्री आनन्द स्वामी जी महाराज २. सीता—श्री आनन्द स्वामी जी महाराज ३. पद्मिनी—श्री आनन्द स्वामी जी महाराज ४. नवीन और प्राचीन समाजवाद—श्री आनन्द स्वामी जी महाराज ५. महर्षि दर्शन—श्री प्रि० दीवान-चन्द जी ६. Message of Gita—प्रि० साईंदास जी ७ Modern Science and Ancient Hindu Thought—प्रि० साईंदास जी ८. Teachings of Ish Upanishad—प्रि० साईंदास जी ९. Dayanand His Life & work—प्रि० सूर्यभानु।

इस सभी-कार्य से आर्यसमाज और विशेष रूप से आप की सभा का जो मान बढ़ा है उसकी रक्षा आप ने ही करनी है। हम सभी का कर्तव्य है कि अपनी २ शिक्षण संस्थाओं में इन पुस्तकों को स्थान दें। अपनी संस्थाओं के पुस्तकालयों पारितोषिक वितरण आदि में स्कूलों के अध्ययन में, आर्य युवक समाजों, कुमार और कुमारी समाजों में इनका अधिक से अधिक उपयोग करें।

सभा के कार्यालयाध्यक्ष का सेवा निवृत्ति

आप सभी बन्धुओं को ज्ञात है कि श्री ५० मेहर चन्द जी सभा में बहुत समय कार्य करते रहे हैं। यह उन्हीं के पुरुषार्थ व सभा के प्रति उनके प्रेम का फल था कि हमारी सभा का पुराना सभी रिकार्ड व पुस्तकालय आदि विभाजन के पश्चात् सुरक्षित यहां पहुंच गया। हमें दुःख है कि अधिक आयु हो जाने के कारण डाक्टर के परामर्श पर उन्हें सभा की सेवा से निवृत्त करना पड़ा। उनके कार्य की हम सब को कद्र है। प्रभु उन्हें सुस्वास्थ्य व चिरायु प्रदान करे।

सार्वदेशिक नवम् आर्य महा सम्मेलन

आर्य प्रा० प्र० नि० सभा का अब सार्वदेशिक सभा के वार्षिक अधिवेशन में सम्बन्ध हो चुका है। इस वर्ष इस सभा के ग्यारह प्रतिनिधि सार्वदेशिक सभा के वार्षिक अधिवेशन में सम्मिलित हुए।

सार्वदेशिक सभा समस्त आर्य जगत की शिरोमणि सभा है। उसकी आज्ञा और अनुशासन सभी आर्यसमाजों को मान्य है। यह सभा समय-समय पर यथा-आवश्यकता समस्त आर्यजगत को उचित दिशा देने के लिए महा-सम्मेलनों का आयोजन करती है। आर्यसमाज की वर्तमान स्थिति और कार्य पर विचार करने के लिए नवम् आर्य महा सम्मेलन १९ से २२ मई १९६१ ई० तक रामलीला मैदान नई दिल्ली के मैदान में आयोजित किया गया। इसमें कुल मिला कर १३ प्रस्ताव पारित किए गए। आर्य सम्मेलन के जुलूस ने दिल्ली के इतिहास में निकाले गए सभी जुलूसों के रिकार्ड तोड़ दिए। चाहे मौसम ठीक न था, किन्तु प्रत्येक नगर-वासी जुलूस को देखकर आर्य संगठन की प्रशंसा किए बिना न रह सका। लगभग ३ लाख आर्य-जनों ने तीन मील लम्बे जुलूस में जिस मस्ती और जिस उत्साह से काम किया उसे देखकर प्रत्येक का हृदय प्रफुल्लित हो उठा।

सम्मेलन का प्रारम्भ ध्वजा-रोहण से हुआ। १९ मई को प्रात. महात्मा आनन्द स्वामी जी महाराज ने परम पवित्र "ओ३म्" ध्वज का तुमुल करतल ध्वनि व जय घोषों के मध्य आरोहण किया।

शिक्षा सम्मेलन में अध्यक्ष का आसन, हंसराज कालेज दिल्ली के भूतपूर्व प्रिन्सीपल श्री गोवर्धन लाल जी दत्ता, उपकुलपति विक्रम विश्व-विद्यालय, ने ग्रहण किया।

इस अवसर पर प्रादेशिक सभा की ओर से वहां एक कैम्प का भी आयोजन किया गया। दिल्ली में स्थित हमारे सभी उपदेशक महानुभाव बाहर से आने वाले महानुभावों को सम्मेलन सम्बन्धी सभी जानकारियां प्रदान करते रहे।

सम्मेलन के सभी अवसरों पर प्रादेशिक सभा के बहुत से प्रतिष्ठित महानुभाव उपस्थित रहे। मैं भी उन दिनों दिल्ली में ही रहा और समय २ पर कार्य-क्रमों में सम्मिलित होता रहा। मेरे साथ ही श्री प्रि० ईश्वरदास जी, श्री ला० भगवानदास जी पुरी प्रधान उपसभा दिल्ली, श्री वृजलाल जी भल्ला, ज्ञानी पिण्डीदास जी, मनसाराम जी ऐडवोकेट, पण्डित रूपचन्द जी, श्री दुर्गादास जी श्री प्रो० वेदीराम जी व श्री राजकुमार जी, मन्त्री उपसभा दिल्ली भी वहां उपस्थित रहे।

हमारी उपसभा दिल्ली के मंत्री जी तो कई सप्ताह तक इस कार्य में जुटे रहे। सम्मेलन के जुलूस, आवास, व भोजन का प्रबन्ध इन्हीं के आधीन था। प्रदर्शनी का प्रबन्ध आर्यसमाज मन्दिर मार्ग के मन्त्री श्री दयाराम जी शास्त्री कर रहे थे। हमारी सभा के उपदेशकों ने दिल्ली शहर व उपनगर में महीनों पहले ही गली-गली और मोहल्ले-मोहल्ले में सम्मेलन की तैयारियों का प्रचार कर जनता को इसकी महत्ता से अवगत कराया।

पंजाबी सूबा आन्दोलन

पंजाबी में भाषा का नाम लेकर अकाली दल के लोग कई वर्षों से पंजाबी सूबा लेने का प्रयत्न कर रहे हैं। आर्यसमाज ने समय-समय पर इस तथ्य को जनता और सरकार सामने स्पष्ट भी किया है। आज जबकि हमारी सीमाओं पर शत्रु बन्दूकें ताने खड़ा है, पंजाब जैसे सीमा-प्रांत में पंजाबी सूबे की मांग करना अत्यन्त हेय विचार है। मास्टर तारासिंह ने पंजाबी सूबा लेने के लिए आमरण अनशन प्रारम्भ किया था। इसी के साथ २ पंजाब का और अधिक विभाजन रोकने के लिए स्वामी रामेश्वरानन्द जी व योगीराज सूर्यदेव जी ने भी अपने प्राणों की बाजी लगा आमरण अनशन प्रारम्भ कर दिये। सभा ने स्वामी जी व योगीराज के इस त्याग पूर्ण कार्यों की सराहना की तथा उनकी सफलता की कामना करते हुए उन्हें आर्य-जगत की ओर से हर प्रकार की सहायता का विश्वास दिलाया।

(शेष पृष्ठ ८ पर)

कुंजपुरा करनाल में महान् यज्ञ समारोह

सारे नगर में वेद प्रचार की धूमधाम

सभा को १५०) रु० वेद प्रचारार्थ भेंट

महान यज्ञ भारत की प्राचीन परम्परा के प्रतीक बने चले आ रहे हैं। इन पवित्र यज्ञों पर सारी जनता को बिना किसी मतभेद के अटूट श्रद्धा है। पारायण यज्ञों की कितनी शोभा होती है, कितना उल्लास भर जाता तथा कितना भव्य दृश्य होता है—यह तो पारायण यज्ञों के समारोहों में शामिल होकर देखने से मिलता है। गत ता० १४ जनवरी से १८ जनवरी तक कुञ्जपुरा जिला करनाल में सामवेद से जो महान यज्ञ हुआ उसका दृश्य आज भी आंखों के सामने आ जाता है। अम्बाला-करनाल जिलों के वेद प्रचार मण्डल के अध्यक्ष प्रबन्धक श्री पं० अमरसिंह जी के उत्साह और दौड़धूप के परिणामस्वरूप यहां सामवेद पारायण यज्ञ प्रारम्भ हुआ। सारे कस्बे कुञ्जपुरा की जनता की ओर से इस महान वेद पारायण यज्ञ का समारोह व प्रचार कराने के लिए प्रतिष्ठित सज्जनों की यज्ञ कमेटी बनाई गई। इसके द्वारा सारा काम हुआ। इस में श्री ला० गणेशदास जी, ला० रामप्रसाद जी बजाज, पं० जगदीशचन्द्र जी वैद्य, ला० हरिचन्द्र जी, ला० वेदपाल जी, ला० साधुराम जी, राव साहिब चौ० भगवान सिंह जी, प्रो० दिलेराम जी, श्री श्री सेन्दराम जी, श्री बाबूराम जी, श्री गोविन्द राम, श्री सुन्दरदास जी सरीखे प्रेमी सज्जन रात दिन बड़े ही प्रेम श्रद्धा से यज्ञ व प्रचार कार्य के प्रबन्ध में जुटे थे। उनके उत्साह को देख कर मन बड़ा ही प्रसन्न होता है।

यज्ञ तथा प्रचार कार्य में श्री स्वामी सोमानन्द जी महाराज, श्री पं० जगदीश चन्द्र जी शास्त्री, पं० त्रिलोकचन्द्र जी शास्त्री, पं० अमरसिंह जी, पं० जगतूराम जी, पं० शमशेर कुमार जी, पं० धर्मपाल जी शास्त्री, मा० ताराचन्द जी, पं० जयनारायण शर्मा, चौ० नत्थासिंह जी, श्री ठा० दुर्गासिंह जी, श्री खुशीराम जी शामिल हुए। प्रातः और सायं दोनों समय सामवेद पारायण यज्ञ चलता था। उसके बाद प्रचार, दोपहर तथा रात को बड़े ही धूमधाम से होता था। स्वामी सोमानन्द जी यज्ञ के ब्रह्मत्व के आसन पर थे। पं० जगदीश चन्द्र जी शास्त्री उनके सहयोगी थे। यज्ञ में प्रतिसमय दो दो यजमान दम्पती तथा पूर्णाहुति के दिन चार यजमान थे। नगर की जनता नर-नारियों की श्रद्धा का क्या कहना। आर्यसमाजी, सनातनधर्मी तथा दूसरे विचारों के लोगों की यज्ञपारायण में श्रद्धा की पवित्र धाराओं का दिव्य संगम था।

पूर्णाहुति वाले दिन तो नर-नारियों की भीड़, प्रेम श्रद्धा का कमाल ही हो गया। आस-पास इलाके के रन्धौली आदि के ग्रामों से भी यज्ञ में श्री ला० मंगतराम सरीखे सज्जन प्रेमी पधारे थे। पांच दिन प्रातः से ले कर रात तक एक सुन्दर मेला सा लगा रहा। पूर्णाहुति पर यज्ञ में नारियल तथा अन्य हवनीय पदार्थों से विशाल यज्ञकुण्ड भर गया। सारे कस्बे में सचमुच पवित्र वातावरण बन गया देवियों की श्रद्धा का क्या ठिकाना। पूर्णाहुति के दिवस बड़ा भारी भण्डारा चला। सब ने यज्ञ के भण्डारे से प्रसाद लिया। सब के निवास, खानपान का प्रबन्ध बहुत ही उत्तम था। यज्ञ ने सचमुच सारे कुंजपुरा में धर्म प्रेम, वेद श्रद्धा, ईश्वर निष्ठा का भाव भर दिया है। हम सारे नगर की जनता, यज्ञ कमेटी, ला. गनेश दास जी, प. जगदीश चन्द्र वैद्य, ला. बाबूराम जी, ला. राम प्रसाद जी सब को बधाई देते हैं। श्री पं. अमर सिंह जी मण्डल अध्यक्ष के प्रबन्ध पर मुक्त कण्ठ से उन की प्रशंसा करते हैं। सभा को १५०) रु. वेदप्रचारार्थ दान मिला—सारा कस्बा इलाका धन्य है।—दी.

सभा द्वारा वेद प्रचार की धूम

—आर्यसमाज राजौरी (जम्मू) का उत्सव १६ से १८ मार्च को सम्पन्न हो रहा है। १३ से खुशीराम शर्मा की कथा होगी। राजपाल जी श्री मदन मोहन जी चिमटा मंडलीके भजन हुआ करेंगे।

—आर्यसमाज नया बाजार भिवानी का उत्सव फरवरी में सम्पन्न हो रहा है।

—आ० स० जलालाबाद का उत्सव ६ से ८ अप्रैल को धूमधाम से सम्पन्न हो रहा है। २ अप्रैल से खुशीराम शर्मा कथा करेंगे। ८ ता० को प्रो० वेदीराम जी युवक समाज की प्रधानता करेंगे।

—आ० स० जोगिन्द्र नगर का यज्ञ, उत्सव ६ अप्रैल से १३ तक धूमधाम से सम्पन्न हो रहा है।

—आ०स० भागलपुर (बिहार) का उत्सव २३ मार्च से सम्पन्न हो हो रहा है। श्री पं० चन्द्रसेन जी पधार रहे हैं।

—आ० स० लाजपत नगर सोनीपत का उत्सव २० से २२ अप्रैल को समारोह से सम्पन्न हो रहा है।

—आ० स० जुलाना शादीपुर का उत्सव १७, १८, १९ मार्च को समारोह से सम्पन्न हो रहा है। जमादार भरतसिंह जी, प्रभुदयाल जी चौ० मूराराम जी पधार रहे हैं।

—आ० स० नूरखेड़ा का उत्सव ६ से ११ फरवरी को समारोह से सम्पन्न हो रहा है।

श्रीमान् जमादार भरतसिंह जी पं० प्रभुदयाल जी, चौ० मूरा राम जी पधारेंगे।

—आ० स० मिर्जापुर खेड़ी का उत्सव २० से २२ फरवरी को धूमधाम से सम्पन्न हो रहा है।

—आ० स० माडल टाउन लुधियाना का उत्सव २ से ४ मार्च को सम्पन्न हो रहा है। मान्यवर प्रिं० सूर्यभानु जी प्रधान सभा ४ ता. को पधार रहे हैं।

—आ० स० माडल टाउन गुड़मण्डी का उत्सव ३१ मार्च १-२ अप्रैल को धूमधाम से सम्पन्न हो रहा है। २६ ता० से ३० तक कथा। राजपाल मण्डली के भजन।

—आ० स० अखनूर (जम्मू) का उत्सव ११ से १३ मार्च को सम्पन्न होरहा है। ४ता०को श्रीमान पं० ओंप्रकाश जी यजर्वेद पारायण यज्ञ तथा कथा करेंगे। मा०ताराचन्द जी के भजन होंगे।

—आ० स० अगवाल का उत्सव १४ से १५ मार्च को धूमधाम से सम्पन्न होगा।

—आ० स० फिरोजपुर शहर का उत्सव २३ से २५ मार्च को समारोह से सम्पन्न हो रहा है।

—आर्य समाज फाजलका का उत्सव मार्च में सम्पन्न हो रहा है।

—आ० स० खुल्दाबाद का उत्सव मार्च के अन्तिम सप्ताह में सम्पन्न हो रहा है।

—आ० स० मदीनादागी का उत्सव १६ से १८ मार्च को सम्पन्न हो रहा हैं।

—आ० स० मिर्चपुर का उत्सव १६ से १८ मार्च को सम्पन्न हो रहा है।

आ० स० धारीवाल का उत्सव २०-२१-२२ अप्रैल को सम्पन्न हो रहा है।

खुशी राम शर्मा
अधिष्ठाता वेद प्रचार

टलीफोन न० ३०५७ [आर्यप्रादेशिक प्रतिनिधिसभा पंजाब जालन्धर का साप्ताहिक मुखपत्र] Regd No. P 1

एक प्रति का मूल्य १३ नये पैसे वार्षिक मूल्य ६ रुपये

वर्ष २२ अक ५) रविवार २३ माघ २०१८— ४ फरवरी १९६२ दयानन्दाब्द १३७ (नार-प्र देशिक जालन्धर

वेद सूक्तयः

यदन्तरा रोदसी

इस रोदसी— द्युलोक और पृथिवी लोक के बीच मे जो कुछ भी है जितना भी विश्व इन मे है।

राजा वरुणो विचष्टे

उन सब को प्रकाशमय सर्वज्ञ भगवान वरुण भली प्रकार विचष्टे देखता है, जानता है। उस से गुप्त क्या ?

संख्याता अस्य निमिषः

लोगों के, प्राणिमात्र के पलक मारने के छोटे २ सूक्ष्म व अत्यन्त गुप्त काम भी इस वरुण देव के गिने हुए हैं।

न मेधया धीरतरः

मेधा, बुद्धि और ज्ञान मे उस वरुण भगवान से कोई भी बढ़ कर नहीं है। प्रभु ज्ञान के भण्डार व मेधाधाम हैं। जीव अल्पज्ञ पर प्रभु सर्वज्ञ हैं।

अ. थ र्वे वे द से

आर्य प्रादेशिक सभा का वार्षिक निर्वाचन

प्रिंसिपल सूर्यभानु जी सर्वसम्मत प्रधान चुने गये

लाला सन्तोषराज जी महामन्त्री बनाये गये

निर्वाचन की पूरी सूची नीचे दी जा रही है

ता० २१ जनवरी रविवार ६२ को चण्डीगढ डी० ए० वी० हायर सैकण्डरी स्कूल मे सभा के वार्षिक निर्वाचन मे प्रिंसिपल सूर्यभानु जी एम० ए० एम० एल० सी० को सर्वसम्मति से प्रधान चुनकर सारे अधिकारियो तथा अन्तरग सदस्यों को चुनने के सारे अधिकार सौंपे गये। श्री प्रधान जी ने इन सज्जनो को चुना है —

उपप्रधान—प्रि० देसराज जी महाजन जालन्धर, प्रि० ज्ञानचन्द जी भाटिया जालन्धर, प्रि० भीमसेन जी बहल अमृतसर।

महामन्त्री—लाला सन्तोषराज जी जालन्धर।

उपमन्त्री—प्रोफैसर वेदीराम जी शर्मा जालन्धर, प० दुर्गादास जी आर्यगजट। कोषाध्यक्ष—कैप्टन शिवराम जी जालन्धर। पुस्तकाध्यक्ष—ला० शकरदास जी त्रेहन जालन्धर।

अन्तरंग सदस्य

महात्मा आनन्द स्वामी जी सरस्वती, महात्मा देवीचन्द जी होश्यारपुर, प्रि० रलाराम जी होश्यारपुर. प्रि० सत्यप्रकाश जी शिमला, श्री यश जी जालन्धर, डा० हुकुमचन्द जी भल्ला जालधर प्रि० हरिराम जी चण्डीगढ, ज्ञानी पिण्डीदास जी अमृतसर, प० रुद्रदत्त जी अमृतसर, स्वा० सोमानन्द जी सरस्वती गुरदासपुर, ला० भगवानदास जी पुरी देहली, श्री राज कुमार जी देहली, ला० चमनलाल जी सेठ यमुनानगर, श्री ला० मेहरचन्द जी जौली अम्बाला छावनी, प० मुरारी लाल जी शास्त्री हिसार, ला० बृजलाल जी गुप्ता टोहाना, जमादार भरतसिह जी नरखेडा रोहतक।

सम्पादकः त्रिलोक चन्द्र शास्त्री

टलीफोन न० ३८७७ [आर्यप्रादेशिक प्रतिनिधिसभा पंजाब जालन्धर का साप्ताहिक मुखपत्र] Regd No. P

एक प्रति का मूल्य १३ नये पैसे वार्षिक मूल्य ६ रुपये

वर्ष २२ अक ५) रविवार २३ माघ २०१८— ४ फरवरी १९६२ दयानन्दाब्द १३७ (तार-प्रादेशिक जालन्धर

वेद सूक्तय:

यदन्तरा रोदसी

इस रोदसी— द्युलोक और पृथिवी लोक के बीच मे जो कुछ भी है जितना भी विश्व इन मे है।

राजा वरुणो विचष्टे

उन सब को प्रकाशमय सर्वज्ञ भगवान् वरुण भली प्रकार विचष्टे देखता है, जानता है। उस से गुप्त क्या ?

संख्याता अस्य निमिष:

लोगों के, प्राणिमात्र के पलक मारने के छोटे २ सूक्ष्म व अत्यन्त गुप्त काम भी इस वरुण देव के गिने हुए हैं।

न मेधया धीरतर:

मेधा, बुद्धि और ज्ञान में उस सर्वज्ञ भगवान से कोई भी बढ़ कर नहीं है। प्रभु ज्ञान के भण्डार व मेधाधाम हैं। जीव अल्पज्ञ पर प्रभु सर्वज्ञ हैं।

अ. व वे वे दसे

आर्य प्रादेशिक सभा का वार्षिक निर्वाचन

प्रिंसिपल सूर्यभानु जी सर्वसम्मत प्रधान चुने गये

लाला सन्तोषराज जी महामन्त्री बनाये गये

निर्वाचन की पूरी सूची नीचे दी जा रही है

ता० २१ जनवरी रविवार ६२ को चण्डीगढ डी० ए० वी० हायर सैकण्डरी स्कूल मे सभा के वार्षिक निर्वाचन मे प्रिंसिपल सूर्यभानु जी एम ए० एम० एल० सी० को सर्वसम्मति से प्रधान चुनकर सारे अधिकारियो तथा अन्तरग सदस्यो को चुनने के सारे अधिकार सौपे गये। श्री प्रधान जी ने इन सज्जनो को चुना है :—

उपप्रधान—प्रिं० देसराज जी महाजन जालन्धर, प्रिं० ज्ञानचन्द जी भाटिया जालन्धर, प्रिं० भीमसेन जी बहल अमृतसर।

महामन्त्री—लाला सन्तोषराज जी जालन्धर।

उपमन्त्री—प्रोफैसर वेदीराम जी शर्मा जालन्धर, प० दुर्गादास जी आर्यगजट। कोषाध्यक्ष—कैप्टन शिवराम जी जालन्धर। पुस्तकाध्यक्ष—ला० शकरदास जी त्रेहन जालन्धर।

अन्तरंग सदस्य

महात्मा आनन्द स्वामी जी सरस्वती, महात्मा देवीचन्द जी होश्यारपुर, प्रिं० रलाराम जी होश्यारपुर प्रिं० सत्यप्रकाश जी शिमला, श्री यश जी जालन्धर, डा० हुकुमचन्द जी भल्ला जालन्धर प्रिं० हरिराम जी चण्डीगढ, ज्ञानी पिण्डीदास जी अमृतसर, प० रुद्रदत्त जी अमृतसर, स्वा० सोमानन्द जी सरस्वती गुरदासपुर, ला० भगवानदास जी पुरी देहली, श्री राज कुमार जी देहली, ला० चमनलाल जी सेठ यमुनानगर, श्री ला० मेहरचन्द जी जौली अम्बाला छावनी, प० मुरारी लाल जी शास्त्री हिसार, ला० बृजलाल जी गुप्ता टोहाना, जमादार भरतसिंह जी नूरखेडा रोहतक।

सम्पादक: त्रिलोक चन्द्र शास्त्री

कठ उपनिषद् का सार-नं०८

(श्री ज्ञान सिंह जी करोल बाग नई देहली)

आत्मा एक यात्री है जिसा गन्तव्य स्थान ब्रह्म प्राप्ति है। शरीर इस यात्रा का रथ है, बुद्धि इस रथ की कोचवान है, और इंद्रियों (नेत्र, कान, नाक जिह्वा और त्वचा) इसके घोडे हैं और अपने अपने विषयों (रूप, शब्द, गन्ध, रस और स्पर्श) रूपी सडको पर चलते हैं। यात्रा को अच्छी प्रकार समाप्त करने के लिये यह आवश्यक है कि आत्मा, बुद्धि व मन की सहायता से इन्द्रियों को अपने वश मे रखे।

आत्मा के बाहर स्थूल प्रकृति है और अन्दर सूक्ष्म ब्रह्म। इस लिये ब्रह्म प्राप्ति के लिये मनुष्य को स्थूल को छोड़ते हुए सूक्ष्म की ओर चलना होगा। इन्द्रियों से उनके विषय सूक्ष्म हैं क्योंकि विषय इन्द्रियों के अस्तित्व का कारण है। यदि जगत मे बिल्कुल चुपचाप हो और शब्द न हो तो कान की कोई आवश्यकता न थी। शब्द कान के अस्तित्व का कारण है। यह दशा अन्य इन्द्रियों की भी है। चूकि कारण कार्य से सूक्ष्म होता है इसलिये विषय इन्द्रियों से सूक्ष्म है। इसी तरह मन विषयों से सूक्ष्म है। बुद्धि मन से और बुद्धि से उसका कारण महतत्व और महतत्व से अदृश्य या अव्यक्त प्रकृति से भी कारण शरीर सूक्ष्म है अर्थात इन्द्रिया उनके विषय, मन बुद्धि महतत्व और कारण शरीर एक दूसरे से क्रमश. सूक्ष्म हैं। इसलिये अप्रकृति या अदृश्य या कारण शरीर से आत्मा व परमात्मा सूक्ष्म हैं। परमात्मा से से अधिक सूक्ष्म और कुछ नहीं है।

ब्रह्म विषय का जिज्ञासु स्थूल से सूक्ष्म की ओर चलता है तब कारण शरीर पर पहुचता है तो उसकी बहुमुखी वृत्ति की समाप्ति हो जाती है और अन्तर्मुखी वृत्ति जागृत हो जाती है जिससे वह ब्रह्म के दर्शन का अधिकारी बन जाता है। इस अन्तर्मुखी वृत्ति के जागृत करने का मार्ग बाहर से भीतर चलना है। जिसका क्रम यह है कि जिज्ञासु इन्द्रियों को मन मे लगा देवे ताकि वह बाहर की ओर अपने विषयों की तरफ न जा सके। मन को बुद्ध पर लगा दे, बुद्धि को अपने कारण महतत्व में लगा दे और महतत्व को आत्मा में लगा दे। दूसरे शब्दों मे यह कहा जा सकता है कि वह अपनी अन्तर्मुखी वृत्ति को जागृत करे इस से आत्मा परमात्मा के दर्शन करने के योग्य हो सकती है। आत्मसाक्षात्कार का मार्ग अत्यन्त कठिन है इसलिये आत्मदर्शी लोग इस मार्ग को छुरे की धार पर चलने के समान समझते है। दूसरे शब्दों मे यह मार्ग बहुत कठिनता से तय होता है। इस रास्ते मे बहुत सी बाधाएं आती है जिन से जिज्ञासु को होशियार रहन की आवश्यकता है।

ईश्वर की उपासना दो प्रकार की प्रकार है सगुण उपासना व निर्गुण उपासना। ईश्वर के सत्तात्मक आनन्द गुण है। जैसे वह एक है-सर्वव्यापक है, दयालु है, न्यायकारी सत्-चित्-आनन्द स्वरूप है-नित्य है-जब एक जिज्ञासु ईश्वर के एसे गुणो का वर्णन करता व उनका ध्यान करता है तो वह सगुण उपासना करता है और आनन्द प्राप्त करता है। इसतरह ईश्वर के निषेधात्मक गुण भी हैं। जैसे वह रूपरहित, शब्दरहित, स्पर्श रहित, रसनारहित, अविनाशी है। जब भक्त इन गुणों का ध्यान करके उपासना करता है तो यह निर्गुण उपासना है। ईश्वर केवल निर्गुण नहीं सगुण भी है इसलिये दोनों प्रकार की उपासना आवश्यक है। शिक्षा के क्षेत्र में हम बच्चों को निषेधात्मिक व सत्तात्मिक दोनों प्रकार की शिक्षा देते हैं। उदाहरणतया यही शिक्षा देना पर्याप्त नहीं कि असत्य न बोलो बल्कि इसके साथ यह भी बताना आवश्यक है कि सच बोलो। ईश्वर को केवल निर्गुण अर्थात् निषेधात्मक गुणों का स्वामी मानने से उपासक के पास से कुछ जा सकता है परन्तु उसके पल्ले कुछ नहीं पडता जैसे यह मान लिया जाय कि ईश्वर अत्याचार नहीं करता तो भक्त भी अपने अन्दर से अत्याचार की भावना निकाल देगा परन्तु यह आवश्यक नहीं कि कि उस के अन्दर दया की भावना उत्पन्न हो सके। अगर वह यह भी साथ मान ले कि ईश्वर दयालु है तो वह अपने अन्दर दया का भाव पैदा कर सकेगा। एक उर्दू के कवि ने कहा है।

अगर हुस्न न हो इश्क भी पैदा नहीं होता।

बुलबुल गुलेतसवीर पे शैदा नहीं होता॥

यहा उपनिषद् का पहला अध्याय अर्थात् आधा भाग समाप्त हो जाता है और जो कुछ ज्ञान इस अध्याय मे दिया गया है उसका सारांश यह है।

(१) तत्व ज्ञान की प्राप्ति के लिये ऐसी तीव्र जिज्ञासा की आवश्यक्ता हे जैसी की नचिकेता में थी।

(२) जीवन को सफलता के लिए ३ बातें प्रमुख हैं।

(क) पारिवारिक शांति

(ख) श्रेष्ठ व परोपकारी जीवन

(ग) तत्वज्ञान

(३) जीवन के दो मार्ग है, प्रेय और श्रेय।

प्रेय मार्ग-भोगवाद है। इसके अनुयायी इस जीवन को ही आरम्भ व अन्त समझते हैं। आत्मा परमात्मा को वह कुछ नहीं समझते। वह उस जीवन से जितना सुख हासिल कर सकते है उसके लिये यत्न करते हैं।

श्रेय मार्ग पर चलने वाले इस जीवन को एक बडी यात्रा की कड़ी समझते हैं। वे जीवन का उद्देश्य ब्रह्म प्राप्ति समझते हैं। प्रेय मार्ग अज्ञान या अविद्या का मार्ग और श्रेय मार्ग ज्ञान या विद्या का।

(४) संसार में मनुष्य के लिये सबसे श्रेष्ठ व उत्तम सहारा 'ओम' है जो उसको प्राप्त कर लेता है, उसके लिये और कुछ प्राप्त करने योग्य नहीं रहता।

(५) आत्मा व परमात्मा का ज्ञान वाद-विवाद का विषय नहीं। यह बहुत पढ़ने से भी प्राप्त नहीं हो सकता इस के लिये जबरदस्त सकल्प और पवित्र जीवन की आवश्यकता है।

(६) परमात्मा के दर्शन उसको होते है जिस पर उसकी कृपा होती है और उसकी कृपा उस व्यक्ति पर होती हैं जो अपने आप को पवित्र जीवन से उसका अधिकारी बना लेता है।

(७) परमात्मा की प्राप्ति उन लोगों के लिये सभव नहीं जो दुराचारी हैं जिनकी इन्द्रिया उनके बस मे नहीं जिनकी बुद्धि स्थिर नही, जिनका मन अशान्त है।

(८) आत्मा एक यात्री है जिसका गन्तव्य स्थान ईश्वर प्राप्ति है। शरीर उसका रथ है, मन लगाम, व इन्द्रिया घोड़े हैं और विषय वे सड़कें है जिनपर इन्द्रिय रूपी घोडे चलते हैं, बुद्धि कोचवान है। पवित्र जीवन है। पवित्र जीवन के लिये इन्द्रियों व मन को सयम मे रखना आवश्यक है। इन्द्रियों मन के वश मे तभी रह सकती हैं जब वह स्वयं बुद्धि के आधीन हो बुद्धि के लिये भी यह आवश्यक है कि उसे जो कुछ सोचना है आत्मा के हित के लिये सोचना है।

(९) आत्मा और परमात्मा दो भिन्न भिन्न स्वतंत्र सत्तायें हैं। दोनों नित्य और चेतन हैं परन्तु

(शेष पृष्ठ ६ पर)

सम्पादकीय—

ओ३म्
आर्य जगत्

वर्ष २२] रविवार २३ माघ २०१८, ४ फरवरी १९६२ [अंक ५

अष्टग्रही योग

यह विशाल ब्रह्माण्ड अपने नियत नियमों मे चलित हो रहा है। आकाश का विचित्र विश्व कितना महान और विचित्र है—इसे देख और सोच कर मानव चकित व स्तम्भित-सा हो जाता है। उस अपार का पार कौन पा सकता है? मनुष्य ने अपने ज्ञान विज्ञान से बहुत ज्ञान प्राप्त कर लिया है। फिर भी इस विविध विश्व में सम्भवत वालु के एक कण के समान ही होगा। आकाश के सारे ग्रह, नक्षत्र अपने २ नियत पथ पर चलते रहते हैं। क्या मजाल कि इन के मार्ग व गति मे थोडी-सी भी गड़बड़ पैदा हो जाये। उस विश्वनियन्ता के नियम अटल व अविकल हैं। गणित ज्योतिष के आधार पर नक्षत्रों की गति तथा चन्द्र सूर्य ग्रहण का पता लग जाता है। गणित ज्योतिष भारत के ज्ञान भण्डार का प्राचीन कौशल माना गया है। ज्योतिष को वेद के अंगों मे भी गिना गया है। इस का नक्षत्र ज्ञान में विशेष स्थान है।

इस बार आठ ग्रह मिल रहे हैं। सारे देश मे इस अष्टग्रही योग की बड़ी चर्चा है। पता नहीं इस के लिए लोगों की ओर से क्या २ हो रहा है। फलित ज्योतिष का सिद्धांत आर्यसमाज नहीं मानता। न ही इस में कोई तथ्य ही है। फिर भी सारे देश में फलित ज्योतिष का कितना जाल फैला हुआ है। जनता में इस के बारे मे कितनी भ्रान्ति है? इस के नाम पर क्या २ खेल खेले जा रहे तथा क्या २ विचित्र तमाशे हो रहे हैं। कितने नर-नारी इस के चक्कर में चक्कर खा रहे हैं। किस प्रकार से अनेक लोग जनता की सरलता एवं श्रद्धा का अनुचित लाभ उठा कर अपनी दुकान चमका रहे हैं। अशिक्षित नर-नारि यों की बात जाने दीजिये। बडे बड़े शिक्षित परिवार और विद्वान् सम्भ्रान्त व्यक्ति भी इस में कितने फसे हुए हैं। यह सब कुछ सब के सामने है। आज फलित ज्योतिष के अन्धविश्वास ने जनता के दिलों पर अपना प्रभाव डाल रखा है। अष्टग्रही योग इस का प्रत्यक्ष प्रमाण है। समाचारपत्रों में इस योग पर कितने अजीब २ लेख तथा भविष्यवाणियां निकल रही हैं। इन आठ ग्रहों के मिलने से यह हो जायगा और वह हो जायगा—ऐसे अनेक विचार दिये जा रहे हैं। देश में अभी तक और दिन के प्रकाश में भी कितना पाखण्ड अज्ञान का अन्धकार है? भलीभान्ति ज्ञात हो जाता है।

आर्यसमाज के कार्य की अभी कितनी आवश्यकता है? प्रचार की अभी तक कितनी कमी है। देश अभी कहा खडा है। अन्ध-विश्वास अभी कितनी जड़ जमाये बैठा है? वेद प्रचार में अभी कितना जूझना होगा? आर्यसमाज के सामने अभी तक कितना महान कार्य पड़ा है—यह सब कुछ आज आंखों के सामने है। आकाश में ये नक्षत्र, ग्रह कई बार मिले। पर यह संसार इसी प्रकार अबाधगति से चलता रहा। अब भी भयभीत होने की आवश्यकता नहीं। प्रभु के नियम अटल हैं। आर्यसमाज देखे कि उसने कितना भारी काम करना है। इस पाखण्ड, अन्धविश्वास, अज्ञान से डट कर टक्कर लेनी है। छोटी मोटी बातों में अपने न उलझाता हुआ अपने महान मिशन वैदिक धर्म के प्रचार व प्रसार के पवित्र कार्य को पूरी शक्ति लगा कर करता जाये। हम सारे आर्य नर-नारियों से कहना चाहते हैं कि विश्व में फैले हुए सब प्रकार के अन्ध-विश्वास को दूर करने मे रात दिन एक कर दें। यह काम समाज के बिना कोई नहीं कर सकता।

—त्रिलोक चन्द्र

बहुत उत्तम सुझाव

श्री प० वजीरचन्द जी प्रिंसिपल डी० ए० वी० हायर सैकण्डरी स्कूल ऊना सचमुच आदर्श जीवन के तपस्वी, कर्मठ ब्राह्मण हैं। आर्य समाज को इन जैसे शुभ चिन्तकों पर गर्व है। सारा जीवन समाज सेवा, शिक्षा प्रचार में बीत रहा है। सच्चे ब्राह्मण हैं। सभा, समाज तथा आर्यजगत के साथ विशेष स्नेह है। गम्भीर लेखक तथा सुन्दर वक्ता भी हैं। 'आर्य जगत' के १५ पर्चे प्रतिसप्ताह मगवा कर स्कूल व समाज में लगवाते हैं। इस बार चण्डीगढ़ मे सभा के वार्षिक अधिवेशन में आपने बड़ा उत्तम सुझाव दिया कि अपने सारे डी० ए० वी० कालेज, स्कूल तथा पाठशालाएं सभा के मुखपत्र आर्यजगत की प्रति-सप्ताह अधिक से अधिक प्रतिया मगा कर लगवावें। हमारे कितने अध्यापक, अध्यापिकाए तथा छात्र हैं। इन विद्या की छावनियों मे कितनी प्रतिया लग कर प्रचार हो सकता है?

पूज्य पण्डित जी का कितना उत्तम सुझाव है। उन्होंने लिखा भी है कि ऐसा किया जाये। स्वय भी इसे क्रियात्मिक रूप दे रखा है। हम अपनी सारी संस्थाओं से नम्र निवेदन करते हैं कि वे अवश्य ही इस सुझाव को मान कर सभा को सहयोग देकर आर्यजगत के परिवार का विस्तार करते रहें। इस से बड़ा ही लाभ होगा। सभा का प्रचार फैलता जायगा। सारे सज्जन कृपया अवश्य ध्यान रखेंगे।

माता जसवन्त कौर जी

नाभा मे आर्यसमाज का कितना सराहनीय कार्य करी है वहां के अपने आर्य हाई स्कूल की उन्नति मे उनका कितना हाथ है—यह वहां जाकर देखा जा सकता है। माता जी का इस आयु में भी उत्साह, लगन, श्रद्धा, अनथक सेवा देखने योग्य है। नाभा में आर्य प्रादेशिक सभा से सम्बन्धित आर्य समाज बड़ा उत्तम कार्य कर रही है। माता जी को सभा के मुखपत्र आर्यजगत का भी पूरा २ ध्यान रहता है। गत दिनों आर्यजगत के लिए दस रुपये भिजवाये हैं। यदि अन्य स्थानों पर भी माता जी समान और भी माताए बहिने समाज की सेवा का कार्य करने मे विशेष रुचि लेवें तो बड़ा सुन्दर कार्य हो सकता है। प्रभु से प्रार्थना है कि माताजी को समाज सेवा के लिए अधिक से अधिक शक्ति प्रदान करें।

युवक समाजों से

हमें पंजाब के आर्य कुमारों तथा युवकों को यह बताते हुए बड़ा हर्ष होता है कि आर्य प्रदेशिक सभा की ओर से इस वर्ष कुमारों व युवकों को संगठित कर के आर्य समाज के लिए अधिक उपयोगी बनाने के हेतु विशेष कार्य किया जाये बड़ी उत्तम योजना बनाई गई है। आर्य कुमार एवम् आर्य युवक समाजें बनाने की ओर पूरा २ ध्यान दिया जायगा। इस के लिए प्रो. वेदी राम जी शर्मा एम. ए. उप-मन्त्री सभा विशेष रूप से दिलचस्पी लेंगे। उन्हों ने इस कार्य को अपने हाथ मे लिया है। प्रोफेसर जी को इस दिशा में बड़ा अनुभव है। वह स्वयं भी युवक,

(शेष पृष्ठ ५ पर)

वेदपरिचय नं०—३

(लेखक—श्री वजी चन्द जी शर्मा प्रिंसिपल डी ए वी हायर सकैण्डरी स्कूल ऊना।)

प्रश्न.—कई भाई यह विचार रखते हैं कि मनुष्य धीरे २ विकास करता हुआ उन्नति कर रहा है। पहले २ जङ्गली अवस्था में था। अब उन्नति के शिखर पर पहुंच रहा है। उन के विचार में वेद तो प्रारम्भिक अवस्था के गीत हैं।

उत्तर.—उन की धारणा भ्रममूलक है। क्योंकि मनुष्य गुरु की शिक्षा के बिना अपने ज्ञान की वृद्धि लेशमात्र भी नहीं कर सकता। इस के परीक्षण कई वार किये जा चुके हैं। मुगल सम्राट अकबर ने भी एक ऐसा ही परीक्षण किया था। दो बच्चे जंगल में सुरक्षित रखे गये। उन का पालन पोषण का प्रबन्ध ऐसे ढग से किया गया कि उन के भोजनछादन की व्यवस्था करने वाले सज्जन उन से कोई बात भी न कर सकें। बड़े होने पर जब उन को नगर में लाया गया, तो वे 'चच,' 'चच' करने के अतिरिक्त एक शब्द भी उचारण नहीं कर सकते थे। आश्चर्य इस बात का था, कि यह शब्द 'चच,' 'चच' उन्हों ने कहा से सीखे। खोज करने पर पता चला, जिस मकान में वे रखे गये थे, उस के पास से एक कुमार अपने गधों को हांकता हुआ प्रत्येक दिन यह दो शब्द कहता हुआ जाता था। अत वही शब्द वे बच्चे सीख गये। और कुछ भी न सीखा।

अभी थोड़े दिनों की बात है कि उत्तर प्रदेश में 'Walf Boy' का उदाहरण सब के सामने आया जो किभेड़ियों जैसी चाल तथा आवाज के सिवाय और कुछ न जानता था। उस को मनुष्य से भी भय लगता था।

ऐसी अवस्था में यह मान लेना कि सृष्टि के आरम्भ मे बिना किसी गुरु की शिक्षा दीक्षा के मनुष्य अपने आप ज्ञान के पथ पर चल पड़ा और उन्नति करता चला आ रहा है कितना मनोविज्ञान से परे है। अत एव पतजलि मुनि जी का कथन है।—

स पूर्वेषामपि गुरु कालेनानवच्छेदात्। योग १।१।२६ वह सर्वज्ञ परमदेव सदा पूर्वजों का भी गुरु रहा है। उन को ज्ञान देता रहा है। यदि वह ज्ञान न देता तो ज्ञान की परम्परा चल ही न सकती थी।

प्रश्न —यदि यह मान लिया जावे कि जिन २ ऋषियों के नाम जिन २ मंन्त्रों अथवा सूक्तों पर हैं, उन्हों ने ही ये मन्त्र या सूक्त रचे, तो क्या हानि है।

उत्तर —जिन २ मन्त्रों अथवा सुक्तों पर जिन २ ऋषियों के नाम हैं। वे उन के कृवयिता नहीं हैं। प्रत्युत उन के अर्थों के देखने वाले हैं। अर्थात् उन्हों ने उन के अर्थों की साक्षात् किया और दूसरे लोगों को उन के अर्थों का ज्ञान दिया। इस प्रकार वेद की शिक्षाओं का प्रचार और प्रसार आगे से आगे होता रहा। वेद तो चारों पूर्वोक्त ऋषियों द्वारा प्रकट हुए और सृष्टि के आरम्भ में ही उन का होना सार्थिक सिद्ध होता है।

प्रश्न.—मैक्समूलरादि पाश्चात्य विद्वान और कई भारतीयविद्वान भी ऐसी विचार धारा रखते हैं कि वेद ऋषिकृत हैं ईश्वरकृत नहीं हैं। क्या यह यह ठीक नहीं?

उत्तर:—यह विचार धारा सर्वथा निर्मूल है। वैदिक परम्परा के सर्वथा प्रतिकूल है। जैसा कि इस से पूर्व भी दर्शाया जा चुका है। वेद को साक्षी और वैदिक साहित्य से प्रमाण दिये गए हैं। अब और देखिये :—

तद्वचनादाम्नायस्य प्रामाण्यम्। वैशेषिक १।१।३

वेद ईश्वरकृत हैं। इस से ये प्रामाणिक हैं।

निजशक्त्यभिव्यक्ते । स्वत । प्रामाण्यम्। सांख्य० ५।५१

वेद परमात्मा की ज्ञानशक्ति से प्राप्त हुए, अत । स्वत । प्रमाण हैं।

शास्त्रयोनित्वात्। वेदान्त १।१।३

वेद का स्रोत होने से। (अर्थात् परमात्मा की सत्ता वेद का स्रोत (योनि) होने से सिद्ध है, उस के विना वेद का ज्ञान और कौन दे सकता है)

वेद और वैदिक साहित्य का विशेष ज्ञान रखने वाले ऋषि मुनि मानते हों, तो दूसरों के कहने का प्रमाण कैसे माना जावे?॥,

(क्रमशः)

याद आते हैं महर्षि दयानन्द

(पृष्ठ ६ का शेष)

नादान लोगों ने मेरे स्वामी का कहना न माना। उन्हें ने रोग का निदान और चिकित्सा दोनो ठीक बताये। आत्मवाद को भूल कर भौतिकवाद का आश्रय लेने से संसार दुःखी हो रहा है और 'मागृध कस्यस्विद्धनम्' को तिलांजलि दे कर नि शस्त्रीकरण पर जोर देता हुआ युद्ध समाप्त करना चाहता है। नि शस्त्री करण युद्ध को नहीं रोक सकता क्योंकि शस्त्रास्त्रों के अभाव में लाठियों, सोडा वाटर की बोतलों, हुरे मुक्कों यहां तक कि दान्तों से लड़ाई हो सकेगी। विश्व शान्ति की स्थापना के लिए मन से लड़ाई की भावना मिटानी होगी तब किसी देश का भी राजा अश्वपति के समान कह सकेगा।—

न मे स्तेनो जनपदे न कदर्यो न मद्यप.।
नानाहिताग्निर्नाविद्वान्न स्वैरी स्वैरिणी कुत॥

अर्थ—मेरे राज्य में कोई चोर नहीं, कृपण नहीं, मद्यपायी नहीं, अग्नि होत्र न करने वाला नहीं, व्यभिचारी नहीं तो व्यभिचारिणी कहां?

पचास हजार का दान

दयानन्द कालेज सोलापुर कमेटी को उद्योगरत्न सेठ दादा साहिब बेलनकर, मालिक गजानन मिल सांगली ने अपने पचहत्रवें जन्म दिवस पर स्थानीय दयानन्द कामर्स कालिज की उन्नति करने के लिये पचास हजार पाच रुपये का दान दिया है। कमेटी के प्रधान डाक्टर जस्टिस मेहरचन्द महाजन भू० पू० प्रधान न्यायाधीश सुप्रीमकोर्ट ने सेठ जी का तार द्वारा धन्यवाद करते हुए दीर्घ आयु की शुभ कामना की। प्रिं० भगवान दास ने सांगली में चैक प्राप्त किया तथा सेठ जी का तार द्वारा धन्यवाद किया, यह बात वर्णन करने योग्य है कि सेठ जी ने एक मजदूर से आरम्भ करके आज एक उच्चकोटि के धनी बने हैं उनका जीवन सादा तथा सात्विक है उन्होंने छ. लाख से ऊपर शिक्षण कार्य के लिये दान दिया है।

प्रिंसीपल भगवानदास
दयानन्द कालिज
शोलापुर

—०—०—

चुनाव

आर्य समाज भारत नगर गाजियाबाद का सालाना चुनाव २१—१—६२ को निम्न प्रकार से सम्पन्न हुआ।

प्रधान—श्री हरीचन्द जी रस्तो
उप प्रधान—श्री जनार्दन जी शर्मा व श्री रघुबर दयाल जी सिंहल
मन्त्री—श्री सत्य पाल जी
उप मन्त्री—श्री प्रद्युमन लाल जी व श्री गिरधारी लाल जी
कोषाध्यक्ष—श्री कुरु लाल जी
पुस्तकाध्यक्ष—श्री बलवन्त सिंह जी

आर्यसमाज का वार्षिकोत्सव ५ मार्च से ११ मार्च १९६२ तक मनाया जाना निश्चित हुआ।

भवदीय
सत्यपाल मन्त्री

—०—

नारी जगत्

'आधुनिक युग में 'विवाह, एक समस्या'

(ले०—कुमारी अरुण जी गुप्ता प्रभाकर, टोहाना)

आधुनिक युग में विवाह, ने एक विकराल रूप धारण कर लिया है। लड़का-लड़की, लड़के के मां-बाप, लड़की के माता-पिता, किसी से पूछो, सभी सब बड़ी परेशानी के साथ एक स्वर में कह उठते हैं कि, 'विवाह एक समस्या है।' इस Problem को सुलझाना अति आवश्यक है क्योंकि यह समाज को अन्दर ही अन्दर घुन बन कर खोखला बनाता जा रहा है। लेकिन जितना इस को सुलझाने का प्रयत्न किया जाता है यह उतना ही उलझती जाती है। इस के दो-प्रमुख कारण हैं।

सब से पहली 'दहेज की प्रथा' प्रत्येक नर-नारी यह चाहता है कि यह दहेज की बुरी प्रथा बन्द होनी चाहिए। हमारी कथनी और करनी में एकता नहीं है। ऐसे पुरुष, जिन के लड़के तथा लड़कियां दोनों हैं वो लड़के की शादी करते समय तो खूब लेते हैं तथा लड़की की शादी करते समय रोते हैं। और कई पुरुष कहते हैं कि जब हम अपनी लड़की को इतना देते हैं तो फिर ले क्यों न? और जो बेचारा गरीब होगा वह धर्म संकट में पड़ जाता है। उसकी यह अवस्था हो जाती है कि, 'इधर गिरे तो कुआ, उधर गिरे तो खाई।' अच्छा जी, फिर इसके पश्चात् दूसरी समस्या आन खड़ी होती है। वह है 'दिखाने की प्रथा।'

यह प्रथा लगभग २५ वर्ष से चली आ रही है। यूं तो प्राचीन समय में भी देखने की प्रथा किसी न किसी रूप में विद्यमान थी, परन्तु उस काल में लड़की देखते समय इतनी सतर्कता नहीं बरती जाती थी, जितनी कि आज बरती जाती है। क्योंकि तब वैवाहिक सम्बन्धों में व्यक्ति का स्थान गौण था और परिवार का प्रमुख, फलतः लड़की का अच्छे खानदान से सम्बन्धित होना, कुछ सुन्दर होना; कुछ सुशिक्षित और गृह कार्य में दक्ष, यही बातें कुलवधू के लिए पर्याप्त थीं।

लेकिन आधुनिक जीवन के बदलते स्वरूप ने कुलवधू की परिकल्पना को ही समाप्त कर दिया है। आज उस 'पसन्द के मेले, में लड़की की अवस्था उस प्रकार की होती है जिस प्रकार की एक घोड़े की बिक्री करते समय उस के गुण दोषों की परख की जाती है। यों तो जीवन संगिनी का सम्बोधन पत्नी को पहले भी दिया जाता था मगर आज पुरुष और नारी उन शब्द को चरितार्थ कर देना चाहते हैं। इसलिए अब लड़की पसन्द करते समय कुलवधू के गुणों को कम महत्त्व दिया जाने लगा है। और जीवन संगिनी के रूपों को अधिक पहचानने का प्रयत्न किया जाता है। लेकिन जब कुलवधू का मिलना जितना सरल था आज उतना ही जीवन संगिनी का मिलना कठिन बनता चला जा रहा है। क्योंकि आज जीवन के एक नहीं, अनेकों रूप हैं। जीवन की इन विविधताओं के कारण पुरुष पृथक्-पृथक् रुचि, गुण, कर्म, स्वभाव और सुन्दर लड़किएं प्राप्त करना चाहता है। परन्तु ये बात सभी माता-पिता की बुद्धि को उचित नहीं जचती। वो समझते हैं कि कोई योग्य नवयुवक मिल जाए तो वह अपनी कन्या का दामन उसे पकड़ा दें और कन्या के ऋण से उऋण हो जाएं। इसी कारण वह अपनी लड़की देखने का निमन्त्रण प्रत्येक नवयुवक को बाटते रहते हैं। और लड़के पीछा छुड़ाने के लिए देख दिखा कर, खूब मशक की तरह पेट ठोक कर नम्रता पूर्वक कोई त्रुटि निकाल कर अस्वीकार कर देते हैं। यह सब वो लड़के केवल मनोरंजन के लिए करते हैं। यदि उनको कहो कि हम टीका वगैरा तुम्हें अधिक दे देंगे तो वह तुरन्त ही शादी के लिए प्रस्तुत हो जाते हैं तथा उस लड़की की वो त्रुटियां जो कि उन्होंने निकाली थीं, सब दूर हो जाती हैं। आज कल लड़कों की यह भी दशा है कि वो सगाई हो जाने के उपरान्त भी लड़की को देखने चले जाते हैं कि यदि वह लड़की उस लड़की की अपेक्षा (जिस से उसकी सगाई हो चुकी है) अधिक सुन्दर होगी अथवा अधिक दहेज देंगे तो वह पहला सम्बन्ध विच्छिन्न कर उससे सम्बन्ध स्थापित करवा लेगा। इस नम्र अस्वीकृति का माता-पिता और लड़की पर अति बुरा प्रभाव पड़ता है। मां-बाप तो खैर सन्तोष कर लेते हैं अथवा दूसरे योग्य लड़के की खोज में प्रयत्नशील हो जाते हैं परन्तु लड़की को इस बार-बार की अग्नि-परीक्षा से जिस यातना का सामना करना पड़ता है। इस का अनुमान उसकी संतप्त आत्मा के अतिरिक्त कौन लगा सकता है? उसे यदि दो तीन लड़के नापसंद कर जाएं तो वह तुरन्त ही अपने पास पड़ोस और सम्बन्धियों मे अपनी त्रुटियों के लिए विख्यात हो जाती है। लड़की भी जब देखती है कि लड़के उसे नापसन्द करते आ रहे हैं तब वह भी अपने में हीनता तथा तुच्छता का अनुभव करने लग जाती है जिससे उसका व्यक्तित्व विकास पनप नहीं सकता।

यदि हम यह कहें कि दिखाने की प्रथा बुरी है, यह बात नहीं। लेकिन देखते समय चमड़ी की परख नहीं, गुणों की परख करनी चाहिए। हां, दहेज की प्रथा अवश्य बुरी है। इसको अवश्यमेव हटाना चाहिए। आज कोई भी इस ओर ध्यान नहीं दे रहा। सरकार ने कानून बनाए हैं पर सब बेकार। यदि इस प्रथा को हटाने की शक्ति है तो आर्यसमाज मे है। फिर ऐसी शोचनीय अवस्था में आर्य समाज मौन क्यों? क्या वह पुत्रियों का इस भांति घोर तिरस्कार अपनी आखों से देखना स्वीकार करेगा? कदापि नहीं। आर्य समाज को चाहिए कि वो इस के प्रति आंदोलन करे और इस प्रथा को हटा कर दिखाएं ताकि संसार यह मान जाए कि आर्य समाज ही एक ऐसी श्रेष्ठ संस्था है जो कि संसार का हित और कल्याण चाहती है।

अत. इस समस्या का समाधान हमें इसी मे प्रत्यक्ष दृष्टिगोचर होता है कि यह सब बुरे रीति रिवाज, दहेज की प्रथा बन्द हो ताकि यह विवाह की समस्या, समस्या न रह कर सुलझी हुई सुलह बन जाए।

—०—०—

(पृष्ठ ३ का शेष)

उत्साही, विद्वान् लेखक व वक्ता हैं। हमें पूरा विश्वास है कि इस बार कुमार व युवक समाजों की खूब स्थापना हो कर उन का व्यवस्थित कार्य आरम्भ होगा। उन, के एक दिवसीय शानदार सम्मेलन भी होंगे। आर्य युवकों को अब इस युवाशक्ति के संगठन में जुट जाना चाहिए। योजना और विचार आदि के लिए प्रो. वेदी राम शर्मा एम. ए. डी. ए. वी. कालेज दयानन्द से पत्र व्यवहार द्वारा पूरा परामर्श किया जा सकता है। हम श्री. शर्मा जी से भी निवेदन करते हैं कि वह युवक संगठन में इस वर्ष क्रान्ति ला देवें।

—[illegible] चन्द्र.

—०—०—

याद आते हैं महर्षि दयानन्द

[लेखक—श्री भक्तराम जी (अफ्रीका वाले) जालन्धर]

स्वराज्य प्राप्त हुए १५ वर्ष हो गये परन्तु सुराज्य की निकट भविष्य में आशा दुराशामात्र समझनी चाहिए। सुना करते थे कि स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् भारत में 'राम राज्य' की स्थापना हो जायेगी। वह तो स्वप्न सिद्ध हुआ। जो कुछ है देशवासियों के समक्ष है। लोगों की धारणा अब यह हो गई है, "When character is lost nothing is lost, when health is lost some thing is lost, when wealth is lost all is lost." अर्थात् जब कोई चरित्र हीन हो तो कुछ नहीं बिगडता, स्वास्थ्य बिगड़ा तो समझो कि कुछ खोया परन्तु जब किसी का धन चला गया तो मानो उसका सब कुछ नष्ट-भ्रष्ट हो गया।

भारतीय संस्कृति विदा होती दीख रही है। सरकार भारतियों को कल्चरल प्रोग्रामों द्वारा संस्कृत करना चाहती है। रेडियो पर अश्लील गानों द्वारा नव-युवकों तथा नवयुवतियों के चारित्र्य का निर्माण करने की इच्छुक है। भ्रष्ट चित्र दिखा कर जनता से सच्चरित्र बनने की आशा रखती है। लडकियां लड़कों का वेष धारण कर रही हैं और लड़कों की लडकियां बनने की ओर प्रवृत्ति बढ़ रही है। भाषा मिली-जुली हो गयी अर्थात् सब भाषाओं की खिचडी। अङ्गरेज चला गया पर अंग्रेजियत घर कर गयी। बच्चियों को देवी के स्थान पर बेबी कहा जाने लगा है। माता जी! पिता जी! शब्द बिस्तरा गोल कर रहे हैं।

कौन किसे कहे? यदि कोई समझाने का प्रयत्न भी करे तो समझने वाला कौन है? परमात्मा ही हमे सुमति प्रदान करेंगे। दूसरों को बुरा कहने वाले स्वयं बुरे हैं। सर्वत्र चार सौ बीस हो रहा है। भ्रष्टाचार का इतना दौर दौरा है कि किसी पर विश्वास करने को दिल नहीं मानता। वनस्पति घी को रोते थे पर अब कोई वस्तु मिलावट रहित नहीं। यहां तक कि बोलने चालने में भी 'मिलावट है। मेरी सब से छोटी पुत्री रेडियो पर घोषणा करते हुए एक देवी को सुन कर कहती थी कि "देखो पिता जी! बनावटी मुंह बना कर बोल रही है। इस में भी रला।"

डालडा खाते २ डालडा दिमाग हो गये हैं? डालडा शिक्षक—डालडा विद्यार्थी, डालडा डाक्टर—डालडा बीमार, डालडा प्रचारक—डालडा श्रोता, डालडा सम्पादक—डालडा पाठक, डालडा स्वामी—डालडा सेवक, डालडा सास—डालडा पुत्र वधू, डालडा—मिनिस्टर, डालडा बैरिस्टर, डालडा उम्मीदवार—डालडा वोटर और डालडा लेखक—डालडा वाचक इत्यादि कोई काम सिफारिश और रिश्वत के विना नहीं होता। चांदी के पहिये लगने पर ही आफिस की फाइ लगति करती है। गाजर मूली की भांति मनुष्य काटे जा रहे हैं। देवियों का मान सुरक्षित नहीं।

मेरी धर्म पत्नी अफ्रीका में किसी मुसलमान अथवा सिख स्त्री के मुख से भारत के विरुद्ध एक शब्द भी निकालने पर उसके साथ लड पड़ती थी पर यहां अपनी आखों सब हाल देख कर मौन बैठ गयी है। बच्चे भी छेड़ते हैं कि "माता जी! आप तो कहा करती थीं कि हमारा इण्डिया सोने की चिड़िया है। यही है ना?" निर्वाचनों के समय सब दल सब्ज बाग दिखाते हैं परन्तु निर्वाचनों के पश्चात् जनता सदस्यों के दर्शन करने से भी वंचित रहती है।

सच्चरित्रता जीवन है और दुश्चरित्रता मृत्यु है परन्तु 'Eat, drink and be merry" अर्थात् 'खाओ, पियो और मौज उड़ाओ' जीवन का ध्येय मानने वालों को चारित्र्य संकट (character crisis) की चिन्ता के लिए अवकाश ही कहां है? 'राम नाम' की लूट के स्थान 'धन राम' दोनों हाथों से लूटा जा रहा है। अभिनेताओं और अभिनेत्रियों को उपाधियों तथा पारितोषिकों का प्रलोभन देकर बालकों और बालिकाओं के चरित्र स्तर को गिराने के लिए उन्हें प्रेरणा दी जा रही है।

इस समय कांग्रेस सत्ताधारी दल है और उसे दोष दिया जा रहा है। कुछ वर्षों तक आशा नहीं कि कोई दूसरा विरोधी दल राज्य सत्ता अपने हाथ में ले सके। कल्पना करो कि सत्तारूढ हो भी जाये तो इस की क्या गारण्टी है कि वह देश की दशा को सुधार देगा? यही मूल विचार में ही भूल है। 'स्वराज्य' के सर्व प्रथम आदोलन महर्षि दयानन्द सरस्वती ने यह भेद जाना था और आर्य समाज के १० नियमों में छटा नियम यह बनाया—"ससार का उपकार करना आर्य समाज का मुख्योद्देश्य है अर्थात् शारीरिक आत्मिक और सामाजिक उन्नति करना।"

आज जब कि अत्याचार, अनाचार, दुर्व्यवहार, व्यभिचार और भ्रष्टाचार का हाहाकार सुनाई देता है तो याद आते हैं महर्षि दयानन्द जिन्होंने छटे नियम में सामाजिकोन्नति से पहिले आत्मिकोन्नति को स्थान दिया। सातवें नियम में बताया कि "प्रत्येक को अपनी ही उन्नति से सन्तुष्ट न रहना चाहिए किंतु सब की उन्नति में अपनी उन्नति समझनी चाहिए।" यदि देश ने इन दोनों नियमों पर ही आचरण किया होता तो न विभाजन के समय कल्याजनक दृश्य देखने और शोक जनक दुर्घटनाएं सुनने का अवसर उपस्थित होता और न ही वर्त्तमान शोचनीय अवस्था पर अश्रुपात करने पड़ते।

(शेष पृष्ठ ४ पर)

कठ उपनिषद् का सार—नं. ८

(पृष्ठ २ का शेष)

आत्मा का ज्ञान परमात्मा के ज्ञान की अपेक्षा अल्प है। परमात्मा आनन्द स्वरूप भी है इस आनन्द की प्राप्ति ही आत्मा का उद्देश्य है। आत्मा कर्म करता है और फल भोगता है। कर्म करने में वह स्वतत्र है परन्तु फल भोगने में ईश्वर के आधीन है। परमात्मा आत्मा को केवल कर्म करते देखता है और उसका फल देता है।

(१०) जीव, आत्मा, बुद्धि, मन और इन्द्रियों के लिये सुख, दुःख का उपभोग करता है। अच्छी इन्द्रियां सुख का साधन बनती हैं और बुरी इन्द्रियां दुख का।

(११) आत्मा अजर अमर और अविनाशी है।

(१२) परमात्मा सर्वथा विशुद्ध आत्मा है, इस में प्रकृति की लेश मात्र मिलावट नहीं, वह अजन्मा और अमर है, वह नित्य और अविनाशी है, सर्वव्यापक है, पूर्ण अनन्त व असीम है।

(१३) वेद, ज्ञान, तप, ब्रह्मचर्य, निष्कामता, शोक से रहित रहना व निर्मल बुद्धि परमात्मा को जानने के साधन है।

सभा द्वारा वेद प्रचार की धूम

—आर्यसमाज राजौरी (जम्मू) उत्सव १६ से १८ मार्च को सम्पन्न हो रहा है। १३ से खुशीराम शर्मा की कथा होगी। राजपाल जी श्री मदन मोहन जी मदा मण्डलीके भजन हुआ करेंगे।

—आ० स० जलालाबाद का उत्सव ६ से ८ अप्रैल को धूमधाम से सम्पन्न हो रहा है। २ अप्रैल से खुशीराम शर्मा कथा कहेंगे। ८ ता० को प्रो० वेदीराम जी युवक समाज की प्रधानता करेंगे।

—आ० स० जोगेन्द्र नगर का यज्ञ, उत्सव ६ अप्रैल से १३ तक धूमधाम से सम्पन्न हो रहा है।

—आ०स० भागलपुर (बिहार) का उत्सव २३ मार्च से सम्पन्न हो रहा है। श्री प० चन्द्रसेन जी पधार रहे हैं।

—आ० स० लाजपत नगर सोनीपत का उत्सव २० से २२ अप्रैल को समारोह से सम्पन्न हो रहा है। २५ ता० से कथा होगी

—आ० स० जुलाना शादीपुर का उत्सव १७, १८, १९ मार्च को समारोह से सम्पन्न हो रहा है। जमादार भरतसिंह जी, प्रभुदयाल जी चौ० भूराराम जी पधार रहे है।

—आ० स० नूरनखेड़ा का उत्सव ६ से ११ फरवरी को समारोह से सम्पन्न हो रहा है। श्रीमान् जमादार भरतसिंह जी, पं० प्रभुदयाल जी, चौ० भूरा राम जी पधारेंगे।

—आ० स० मिर्जापुर खेडी का उत्सव २० से २२ फरवरी को धूमधाम से सम्पन्न हो रहा है।

—आ० स० माडल टाऊन लुधियाना का उत्सव २ से ४ मार्च को सम्पन्न हो रहा है। मान्यवर प्रि० सूर्यभानु जी प्रधान सभा ४ ता. को पधार रहे हैं।

—आ० स० बडेसरा का उत्सव २२ से २४ मार्च को समारोह से सम्पन्न हो रहा है।

—आ० स० माडल टाऊन गुड़गावां का उत्सव ३१ मार्च १-२ अप्रैल को धूमधाम से सम्पन्न हो रहा है। २६ ता० से ३० तक कथा। राजपाल मण्डली के भजन।

—आ० स० अखनूर (जम्मू) का उत्सव ११ से १३ मार्च को सम्पन्न होरहा है। ४ता०को श्रीमान प० ओंप्रकाश जी यजुर्वेद पारायण यज्ञ तथा कथा कहेंगे। मा० तारा चन्द जी के भजन होंगे।

—आ० स० अग्रवाल का उत्सव १४ से १५ मार्च को धूमधाम से सम्पन्न होगा।

—आ० स० फिरोजपुर शहर का उत्सव २३ से २५ मार्च को समारोह से सम्पन्न हो रहा है।

—आर्य समाज फाजलका का उत्सव मार्च मे सम्पन्न हो रहा है।

—आ० स० खुल्दाबाद का उत्सव मार्च के अन्तिम सप्ताह में सम्पन्न हो रहा है।

—आ० स० मदीनादागी का उत्सव १६ से १८ मार्च को सम्पन्न हो रहा है।

—आ० स० मिर्चपुर का उत्सव १६ से १८ मार्च को सम्पन्न हो रहा है।

आ० स० धारीवाल का उत्सव २०-२१-२२ अप्रैल को सम्पन्न हो रहा है। १५ ता० से खुशीराम शर्मा कथा कहेंगे।

—आ० स० पोली का उत्सव १३ से १५ फरवरी को समारोह से सम्पन्न हो रहा है।

—आ० स० चिड़ो का उत्सव १७ से १९ फरवरी को समारोह से सम्पन्न हो रहा है।

—आ० स० निडाना का उत्सव २३ से २५ फरवरी को समारोह से सम्पन्न है।

—आ० स० सूहा वाली का उत्सव ६ से ११ मार्च को सम्पन्न हो रहा है।

—आ० स० टटोली का उत्सव १९ से २१ मार्च को सम्पन्न हो रहा है।

आ० स० भभेवा का उत्सव २२ से २४ मार्च को समारोह से सम्पन्न हो रहा है।

आ० स० पुरानी मंडी जम्मू मे २८ फरवरी से ४ मार्च तक शिवरात्रि पर्व समारोह से सम्पन्न हो रहा है।

आ० स० शाम चौरासी का उत्सव १५ से १७ मार्च को सम्पन्न हो रहा है। श्रीमान हजारी लाल जी पधार रहे हैं।

—आ० स० नया बाजार भिवाना का उत्सव ६ से ११ फरवरी को समारोह से सम्पन्न हो रहा है। श्रीमान् प० त्रिलोक चन्द जी पहले कथा कहेंगे। और मा० ताराचन्द जी के भजन हुआ करेंगे। उत्सव पर श्रीमान् प० ओमप्रकाश जी, श्रीमान राजपाल जी, मदनमोहन जी चिमटा भजन मण्डली, श्रीमान् हजारी लाल जी, श्रीमान् चौ० रामकरण जी, महावीर सिंह जी नत्थूराम जी पधारेंगे।

खुशी राम शर्मा
अधिष्ठाता वेद प्रचार

—o—o—o—

आर्यसमाजों से निवेदन

सभी आर्य बन्धुओं से विनम्र निवेदन है कि २६ फरवरी १९६२ से ४ मार्च १९६२ तक ऋषि बोधोत्सव धूमधाम से मनाने की कृपा करें।

इस महान पर्व को मनाते हुए सभी आर्य नर नारी अपने परिवार के प्रत्येक सदस्य के हिसाब से चार आना फंड वेद-प्रचार के लिए अवश्य इकट्ठा करने की कृपा करें।

और एकत्रित धन सभा मे भेजने की कृपा करें। प्राय. आर्य-समाजे इस दिशा में कुछ उदासीनता का व्यवहार करती हैं। कृपया इन प्रमुख त्यौहारों को प्रधानता से मनाना चाहिये। और सभा का फण्ड भी अवश्य इकट्ठा करना चाहिये। यही विनम्र प्रार्थना है।

विनीत—खुशीराम शर्मा
वेद प्रचार अधिष्ठाता

आर्यसमाज माटुंगा तथा श्री दयानंद विद्यालय का वार्षिकोत्सव

१५ से १८ फरवरी रविवार १९६२ तक आर्यसमाज माटुंगा (सेन्ट्रल रेलवे) के सामने नप्पू गार्डन में बडी धूमधाम से मनाया जायगा। इस शुभ अवसर पर, श्री ध्रुवानद जी, प्रधान सार्वदेशक सभा देहली, पं० शान्ति प्रकाश जी महोपदेशक पंजाब, प्रिंसीपल भगवानदास जी एम० ए० दयानंद कालिज शोलापुर, श्री ए० दयाशंकर जी बम्बई, कुवर सुखलाल जी आर्य मुसाफिर आदि पधार कर अपने व्याख्यानों व भजनों से जनता को अमृत पान कराएंगे। सब धर्म प्रेमी सज्जन पधार कर इस शुभ अवसर से लाभ उठाए।

ओंकार नाथ
मन्त्री

हरगोविन्द धर्मसी कावावाला
प्रधान

श्री जियालाल स्मारक निधि—अपील

समाचार पत्रों द्वारा आर्य सज्जनों को विदित हो ही गया होगा कि गत दिसम्बर मास में आर्य जगत् के कर्मठ नेता, हैदराबाद पंजाब के सत्याग्रहों में स्पेशल ट्रेनें भेजने वाले, अजमेर की संस्थाओं के प्राण कर्मवीर श्री पं० जियालालजी का निधन हो गया है। अतः उनके नाम और काम को चिरस्थायी रखने के लिए जियालाल स्मारक निधि की स्थापना की गई है जिसके अध्यक्ष दयानन्द कालेज अजमेर के आचार्य श्री दत्तात्रेय वाले हैं, उसकी पहली मीटिंग में ही ५०००) धन एकत्र भी हो गया है।। उस समिति के उद्देश्य ये हैं—

(क) आर्य उपदेशक विद्यालय की स्थापना।

(ख) पं० जियालालजी की प्रस्तर मूर्ति की स्थापना।

(ग) उनके जीवन चरित्र का प्रकाशन।

(घ) योग्य आर्य छात्रों को छात्र वृत्तियां देना।

समस्त महानुभावों से सानुरोध प्रार्थना है कि इस शुभ कार्य में अपनी शक्ति के अनुसार धन एवं सम्मति निम्न लिखित पते पर शीघ्र भेजने की कृपा करें। तदर्थ स्मारक समिति ने १) ५) १०) ५०) १००) रुपये के रसीदी टिकट छपा रखे हैं आप लिखें कि कितने टिकट आप को भेजे जावें।

कष्ट के लिये अग्रिम धन्यवाद।

—निवेदक, मंत्री—जियालाल स्मारक निधि आर्यसमाज, अजमेर

आर्य समाज, टोहाना (हिसार)

यह बड़े सौभाग्य की बात है कि यहां आर्यसमाज भवन में दैनिक सत्संग प्रातः ५-४० से ७ बजे तक तथा सायंकाल को ६ बजे से ७ बजे तक होता है। प्रात स्त्री और पुरुष दोनों बड़ी संख्या में आते हैं तथा सायं काल को 'आर्य कुमार सभा' का सत्संग लगता है और शनि तथा रविवार को तीन वार सत्संग लगता है। लाउड स्पीकर का प्रबन्ध है। भगवान् करे यह दैनिक सत्संग निरन्तर निर्विघ्न चलता रहे। यह सब पंडित देवकी नन्दन शर्मा जिलेदार साहब के परिश्रम का मीठा फल है।

अरुण आर्या, प्रभाकर, टोहाना (हिसार)

नाम परिवर्तन

श्री चन्द्रप्रकाश सुपुत्र श्री दलूराम जी ने, जो कि दयानन्द कालिज हिसार के चतुर्थ वर्ष के छात्र हैं, अपना नाम परिवर्तित करके चन्द्र प्रकाश 'आर्य' रखा है। परिचित व्यक्ति नोट कर लें।

—दलूराम पिता चन्द्र प्रकाश, हिसार

आर्य युवक परिषद्, दिल्ली

कार्य-कारिणी की बैठक १४-१-६२ को हुई जिस में निश्चय किया गया कि—(१) वसन्त के उपलक्ष्य में ११ फरवरी रविवार को आर्य-युवकों की गायन तथा कविता प्रतियोगिता के साथ २ यमुना में नौका-विहार तथा फलाहार का आयोजन किया गया है।

(२) ऋषि बोधोत्सव ४ मार्च को कोटला मैदान दिल्ली में धूम-धाम से मनाया जायगा। इस अवसर पर प्रात १० बजे से खेल-कूद प्रतियोगिता तथा १२ बजे से भाषण और वाद-विवाद प्रतियोगिता होगी। विजेताओं को पारितोषिक दिये जावेंगे। आर्य परिवारों के युवक अधिक से अधिक संख्या में भाग लेंगे।

सत्यप्रकाश
प्रधान मन्त्री

चुनाव

आर्य समाज पुलबंगश देहली का वार्षिक निर्वाचन १४—१—६२ को निम्न प्रकार से सम्पन्न हुआ—

प्रधान—श्री राजकुमार जी
उप प्रधान— ,, हंस राज जी व ज्ञान चन्द जी आहूजा
उप प्रधाना—श्रीमती दया वती जी श्रीमती सुशीला देवी जी
मन्त्री—श्री सुदेश कुमार जी
उपमन्त्री— ,, [illegible] जी
उपमन्त्रियाँ—श्रीमती सावित्री देवी जी व श्रीमती संतोषता देवी
कोषाध्यक्ष—श्री पुरुषोत्तम प्रकाश जी परवानी
कोष निरीक्षक—श्री राम सरन दास जी
पुस्तकाध्यक्ष—श्री जीवन दास जी
भण्डारी—श्री नन्द लाल जी आहूजा

—भवदीय सुदेश कुमार

—आर्यसमाज मंडी (H. P.) का निर्वाचन ३१—१—१९६१ को किया गया—

प्रधान—ला० माया धर जी
उप प्रधान—ला० परमा नन्द जी सहगल
मन्त्री—ला० इन्द्रसिंह मलहोत्रा
उप मन्त्री—श्री चेतराम बहल
कोषाध्यक्ष—श्री लेख राज जी
पुस्तकालयाध्यक्ष—श्री इच्छर दास जी

१३—१—६२ को रात्रि को आर्यसमाज मन्दिर में लोहड़ी का त्योहार मनाया गया।

१४—१—६२ को प्रातः उत्तरायण का पर्व मनाया गया।

राजकुमार अशोकपाल जी के शुभ विवाह मे आर्यसमाज को दान

महाराजा जोगिन्द्र सैन जी ने राजकुमार जी के शुभ विवाह के उपलक्ष में ३००)रु० दान दिया।

शुभचिन्तक—इन्द्रसिंह, मन्त्री

आभार प्रदर्शन

मेरे पूज्य पिता स्वर्गीय श्री ला० देवीराम जी के शोक जनक निधन पर अनेक भाई बहिनों, बाहिर के आर्य सज्जनों, समाजों तथा अधिकारियों ने हमारे सारे परिवार के साथ अपने २ सहानुभूति भरे पत्रों द्वारा जो सहानुभूति सम्वेदना तथा शोक प्रकट करके हमें धैर्य प्रदान किया है। प्रत्येक का पत्र द्वारा उत्तर न देकर आर्यजगत् द्वारा सबका इस हार्दिक सहानुभूति के लिए विशेष आभार सारे परिवार की ओर से मानकर धन्यवाद किया जाता है।

इन्द्रसिंह मन्त्री आर्यसमाज मण्डी हिमाचल

मुद्रक व प्रकाशक श्री संतोष राज जी मंत्री आर्यप्रादेशिक प्रतिनिधि सभा पंजाब जालंधर द्वारा वीर मिलाप प्रेस, मिलाप रोड जालंधर से मुद्रित तथा आर्यजगत कार्यालय महात्मा हंसराज भवन निकट कचहरी जालन्धर शहर से प्रकाशित हुआ मालिक—आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा पंजाब जालन्धर

देश और जाति के करण-धारो

"सावधान"

मानों न मानों आपको यह अख्तयार है।

हम नेकों बद जनाब समझायें जायेंगे ॥

ले० रुद्रदत्त शर्मा प्रधान, समाज हैमपर्वत अंबेसर

◆◆◆◆◆◆◆◆◆◆◆◆◆◆◆◆◆◆

हिन्दु जाति तथा इसके आधुनिक नेताओं की अवस्था देखकर मथुरा की एक घटना याद आती है। यमुना नदी में कुछ मुसाफिर रातों रात किसी दूसरे नगर को जाने के लिये नाव में सवार हुए। रात अन्धेरी थी, निरन्तर चप्पू चलाते रहे। प्रातः काल थोड़ा प्रकाश होने पर बड़ी २ इमारतें दिखाई देने लगीं। ख्याल किया कि हम अपने ध्येय स्थान पर पहुंच गये हैं। चप्पु चलाने बन्द करके इमारतों को देखने लगे तो मालूम हुआ कि मथुरा के तट पर वहीं खड़े हैं जहां रात को किश्ती में सवार हुए थे। रात भर चप्पु चलाने के बावजूद अपनी नाव को वहीं देख कर बहुत हैरान हुए। कारण ढूंढने लगे तो मालूम हुआ कि किश्ती का रस्सा घाट पर लगे कुण्डे से बन्धा रहा, इस लिये किश्ती एक कदम आगे नहीं बढ़ सकी और सारी रात की मेहनत और समय व्यर्थ गया। यही हालत कोहलु के बैल की होती है, जब दिन भर बन्धी हुई आंखों के साथ चलते, और चलते जाने के पश्चात् सायं काल उसकी आंखें खोली जाती हैं, तो वह अपने आप को वहीं उस कोहलु के साथ बन्धा हुआ पाता है।

मैं अपनी जाति के प्रवर्तकों, नेताओं और तन-मन से इसके उत्थान के लिये दिन रात एक करने वाली संस्थाओं के सामने नम्रता पूर्वक एक प्रश्न रखना चाहता हूं, कि क्या कभी उन्होंने यह देखने की तकलीफ उठाई है कि वर्षों की निष्काम सेवा और घोर परिश्रम के पश्चात् वह जाति की नैय्या को कितना आगे ले जा सके हैं या वह वहीं की वहीं खड़ी है अथवा आगे जाने की बजाये, (जैसा कि देखा जा रहा है) उलटी अपने उद्देश्य से और पीछे तो नहीं जा रही? अन्तिम दोनों अवस्थाओं में इसका कारण ढूंढना जाति के प्रत्येक शुभचिन्तक का परम कर्त्तव्य हो जाता है। सृष्टि के आरम्भ से लेकर महाभारत काल तक भूगोल पर चक्रवर्ती राज्य करने वाली यह आर्य्य जाति उठने का नाम नहीं लेती। इसका हर कदम अपनी शानदार प्राचीनता की तरफ बढ़ने की बजाये युरोप और अमरीका की विनाशकारी असभ्यता की तरफ जा रही है। मांस, शराब, दुराचार, अश्लील गाने और नाच, सिनेमा तथा रेडियो के भयानक दुरोपयोग और कलचरल प्रोग्रामों के नाम पर खालिस आचार हीनता के खुले प्रचार ने हमें कहां से कहां ला फैंका है? हमारे नवयुवक आज धर्म, ईश्वर और वेद का नाम सुनने को तैयार नहीं। उनकी दृष्टि में रामायण और महाभारत कल्पित कहानियां हैं उनके विचार में राम और कृष्ण नाम के कोई महापुरुष इस संसार में नहीं हुए।

धर्म निरपेक्ष सरकार की तरफ से हमें वे दीन और धर्म हीन बनाने का पूरा यत्न किया जा रहा है। ऐसी अवस्था से लाभ उठाने के लिए मुसलमान और ईसाई हर उचित और अनुचित ढङ्ग से अभागी हिन्दु जाति के युवकों और युवतियों को धर्म भ्रष्ट कर रहे हैं। अंग्रेजी राज्य की अपेक्षा कई गुणा अधिक संख्या में युरोपियन मिश्नरी भारत के कोने २ में रुपया, कपड़ा, अनाज, घी और दूध के डीब्बे बांट २ कर प्रायः गरीब हिन्दुओं और विशेषतः अछूत कहलाने वाले भाइयों को वे खटके धर्म भ्रष्ट कर रहे हैं। परन्तु हमारी सरकार चीन, ब्रह्मा, और लंका की तरह इन को देश से निकालने की बजाये उल्टा समय २ पर उनकी सहायता करती और उन्हें हर प्रकार की सुविधायें देती है। आज इस जाति की अवस्था नदी किनारे खड़े उस वृक्ष की सी हो रही है जिस की जड़ें हर समय पानी के थपेड़ों से खोखली हो रही हैं। अकेला आर्य्य समाज वेद प्रचार और शिक्षा आदि के कार्य्यों में लगा होने पर भी अपनी शक्ति के अनुसार ईसाइयत की बाढ़ का भी मुकाबला कर रहा है। परन्तु क्या जाति के प्रत्येक हितैषी को इसकी चिन्ता नहीं होनी चाहिये?

एक दुकानदार भी वर्ष भर के पीछे देखता है कि उसने क्या कमाया और क्या गंवाया है? आखिर कोई समय तो ऐसा भी आना चाहिये जब भारतीयता और प्राचीनता के संरक्षक अपने काम निरीक्षण करें और देखें कि इतने परिश्रम के पश्चात् भी क्या वह कोहलु के बैल की तरह अथवा खूंटे के साथ बन्धी हुई किश्ती की तरह वहीं की वहीं तो नहीं खड़े?

गत चुनाव के समय चूक जाने के कारण शासन की ओर से हिन्दुओं तथा मातृ-भाषा हिन्दी के साथ हो रहे घोर अत्याचारों के जो कटु अनुभव इन पांच वर्षों में हुए उन्हें सामने रखते हुए आने वाले चुनाव में अपनी आवाज को अधिक से अधिक बलवती और प्रभावशाली बनाना इस समय आपके हाथ में है। यदि तुम्हारे हृदय में वस्तुतः देश और जाति के लिए तड़प विद्यमान है तो प्राचीन सभ्यता और संस्कृति के अनुकूल विचार धारा वाले नेताओं सभाओं और संस्थाओं को कुछ काल के लिए अपने मतभेदों और ईर्षा को भुला कर तथा स्वार्थ की भावना को मिटाकर केवल जाति के उत्थान के महान लक्ष्य को सामने रखते हुए एक संयुक्त मार्ग निर्धारित करना होगा। देश और जाति का हित चाहने वाली जनता ऐसे निश्चय का सच्चे हृदय से स्वागत करेगी। हां, इसके लिए उदारता और त्याग की आवश्यकता है। पृथक् पृथक् गुट-बन्दियों से ऊपर उठना होगा और संगठित एवं सम्मिलित शक्ति के साथ उच्चतम योग्य महानुभावों को सफल करने के लिए कटि बद्ध होना होगा। ऐसे शुभ उद्देश्य के लिए मिल कर चलनेसे किसी को भी हानी नहीं होगी अपितु अधिक शक्ति के जुट जाने से अधिक से अधिक सुलझे हुए उम्मीदवार सफल हो सकेंगे। यदि किसी संस्था को आरम्भ में किसी अंश में कुछ हानी प्रतीत भी होगी तो वह उस निराशा पूर्ण और अपमान जनक हानि से कहीं बेहतर होगी जो फूटकी अवस्था में वोट बट जाने के कारण परिश्रम और धन व्यय करने के पश्चात् असफल हो कर देखनी पड़ेगी और उसके साथ वर्षों तक फिर सारी जाति के विरोधियों और विधर्मियों द्वारा पद्दलित होना पड़ेगा। सैकड़ों वर्षों की गुलामी न पश्चात् हमें पिछले इतिहास से कुछ तो शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये और अधोपतन के एक मात्र कारण फूट रूपी राक्षसी से बचना चाहिये।

जिन संस्थाओं में प्रभु कृपा से कुछ जागृति दिखाई देती है, वह देश और जाति का हित रखते हुए भी शक्ति के नशे में तथा संकीर्णता का शिकार हो कर अपनी संस्था को ही सब कुछ समझते हुए विशाल जातीय दृष्टि कोन से सोचने और एक दूसरे के साथ मिल कर चलने की अवस्था में नहीं रह सकते हैं। दूसरी तरफ कई महानुभाव अपनी सफलता में विश्वास न रखते हुए भी केवल इस लक्ष्य से खड़े हो जाते हैं कि व्यक्तिगत ईर्षा के कारण सम्मुख खड़े व्यक्ति से अच्छे उम्मीदवार को हानि पहुंचा सकें। यह जाति के लिए बड़े [illegible] है।

(शेष पृष्ठ ७ पर)

[illegible]

ओ३म्

आर्य जगत्

वर्ष २२] रविवार ३० माघ २०१८, ११ फरवरी १९६२ [अंक ६

समाज में वसन्त

प्रकृति के समान समाज के जीवन में समय २ पर नाना प्रकार की ऋतुएं आकर अपना प्रभाव दिखलाती रहती हैं। सारा समाज, जीवन और राष्ट्र की विचार धारा उससे अछूती नहीं रहती। मौसम का पर्व भी सारे ही समाज को अपना एक आवश्यक पाठ पढ़ा जाता है। [illegible] उससे प्रेरणा पा [illegible] चेतना को प्राप्त [illegible] है। हेमन्त का प्रकृति पर [illegible] का भारी प्रभाव होता है। [illegible] लगता है। चारों [illegible] होता है। [illegible] करने के लिए अग्नि ताप की आवश्यकता हुआ करती है। इसके [illegible] पतझड़ का मौसम अपना कैसा भीषण रूप दिखाता है। नाम से ही इसका काम मालूम हो जाता है। वृक्षों, लताओं, वनस्पतियों के प्रायः सारे पत्ते सूख कर झड़ जाते हैं। सारा वृक्ष समूह भी खोखला सा हो जाता है। जैसे कोई [illegible] राजा सारी प्रजा की सम्पत्ति को छीन कर उसे शोभा [illegible] धन रहित सूना देता है। [illegible] बना देता है, वही अवस्था वृक्षों की पतझड़ में होती है। सारे पत्ते सूख २ कर भूमि पर गिर पड़ते हैं। वृक्षों पर केवल छोटी बड़ी शाखाएं ही शेष रह [illegible] परिवार के [illegible] कौन खिन्न [illegible]? किन्तु शिशिर [illegible] उस को भी परिवर्तन का दृश्य मूक होकर देखना पड़ता है। कितना बड़ा पाठ है जो मौन शब्दों में इसे भी पढ़ना होता है। कितना बड़ा प्रसाद है जो महान् धैर्य करने वाले वृक्षों को प्रकृति की ओर से मिलता है। अत्याचारी का अत्याचार सदा किसी को समाप्त नहीं कर सकता। उसके धैर्य का बड़ा ही मीठा फल वसन्त के रूप में मिलता है। यह प्रकृति का नियम है। समाज के विशाल जीवन की भी समय २ पर ऐसी अवस्था आती है। भारतीय जीवन के इतिहास में कितना भीषण हेमन्त आया। सब कुछ ठण्डा हो गया था। सब कुछ होते हुए भी कोई बोल न सका। कोई कुछ भी न कर सका। सुखी कबड्डी के समान शत्रु और आक्रमण करने वाले मुट्ठी भर देश के एक कोने से लेकर दूसरे कोने तक बिना संकोच दौड़ते रहे। भारतीयों के पास क्या धन सम्पत्ति न थी? मठ मन्दिर न थे? गंगा यमुना न थी? काशी प्रयाग न थे? इतिहास न था? क्या कुछ नहीं था? पर इतना होते हुए भी मुट्ठी भर लुटे, पिटे, कटे और कटे। केवल इसीलिए कि सारे समाज के विशाल वृक्ष पर विचारों का हेमन्त और पतझड़ ने [illegible] कर अपना भारी प्रभाव [illegible] किया था। सारे विचार [illegible] गये थे। [illegible] पर [illegible] वसन्त [illegible] के रूप में सारे देश के [illegible] पर शानदार वसन्त आया। सारा समाज ही विकसित हो गया। आर्यसमाज इसी वसन्त का सुन्दर प्रतीक है।

प्रतिवर्ष वसन्त आया है। और [illegible] का स्वागत करा जाता है। जीवन के पुष्प खिला देता है। सब ने धूमधाम से वसन्त मनायी। वसन्ती वस्त्र रंगाये। वसन्ती पदार्थ खाये। वसन्ती पत्रों के अंक पढ़े। किन्तु समाज में, राष्ट्र के सम्पूर्ण जीवन में यदि वसन्ती छटा न आई, इसका पतझड़ न गया, इसके विचारों की कलियां न खिलीं—तो फिर वसन्त कैसा? आर्यसमाज के दीवानों, मस्तानों से कहना चाहते हैं कि अपने जीवन में वसन्त बन कर सब के विचारों पर जीवनों पर छा जायें। आज सारे देश के निर्बलता उदासीनता के हेमन्त, अन्याय के पतझड़ को दूर कर के वैदिक वसन्त का नयापन ला दो। आर्यो! सारा समाज आप की ओर निहारता है

—त्रिलोक चंद्र

आर्यसमाज अमर है

इसलिए कि इसका आधार वैदिक सिद्धांतों पर है। वेद सब सत्य विद्याओं की पुस्तक है। अष्टग्रही योग का कितना शोर मचा हुआ था। ज्योतिषियों के लेखों की बाढ़ सी आ गई थी। आठ ग्रहों के एक राशि में मिलने से यह होगा और यह होगा। अमरीका के ज्योतिषियों ने तो भविष्यवाणी करने की पराकाष्ठा कर दी थी। एक आर्यसमाज ही था—जो वैदिक सिद्धांतों के सत्य मय आधार पर खड़ा रहकर इन तथ्यों से दूर गलत भविष्यवाणियों का प्रतिकार करता था। अष्टग्रही योग आया और चला गया। सारा संसार आज भी पहिले की भांति उसी प्रकार आनन्द के साथ चल रहा है। आर्यसमाज की [illegible] विजय हो रही है। अब तो [illegible] की आंखें खुल जानी चाहिए! अन्ध विश्वास को समाप्त करने में आर्यसमाज के सहयोग देवें।

बधाई व उत्तरदायित्व

आर्यप्रादेशिक सभा पंजाब व जालन्धर के सारे मान्य प्रतिनिधियों ने चण्डीगढ़ अधिवेशन में प्रिंसिपल सूर्यभानु जी एम० ए० को सर्वसम्मति से सभा का १९६२ के लिए प्रधान चुना तथा सर्वाधिकार श्री प्रधान जी को सौंप दिये। श्री प्रिंसिपल जी ने सभा के सारे माननीय अधिकारियों तथा अन्तरंग सदस्यों की घोषणा कर दी है। हम सारे मनोनीत सज्जनों को बधाई देते हुए उन पर आ पड़े सभा के महान् सेवाकार्य के उत्तरदायित्व की ओर भी ध्यान दिलाते हुए प्रार्थना करते हैं कि इस वर्ष भी सभा हर प्रकार से उनके अनथक परिश्रम से फूलेगी और फलेगी। सारे सज्जन सभा की सेवा में अभी से तन मन धन से जुट जावेंगे, ऐसा विश्वास है।

शिवरात्री विशेषांक

आर्यजगत् का शिवरात्री के पर्व पर शानदार विशेषांक प्रकाशित हो रहा है। इस में पूज्य महात्माओं, नेताओं, विद्वानों के महत्वपूर्ण लेख [illegible] होंगे। सबसे सब संस्थाओं के मान्य अधिकारियों से भी नम्र निवेदन कर दिया गया है। पुनः प्रार्थना है कि आर्यजगत सभा का अपना ही मुख पत्र है। हम तो इसके केवल सिपाही मात्र ही हैं। अतः सारी संस्थाएं, समाजें, सज्जन इस विशेषांक की अधिक से अधिक प्रतियों का शीघ्र ही आर्डर देकर सभी को पूर्ण सहयोग देवें।

—त्रिलोक चन्द्र

कठ उपनिषद् का सार नं० ७

(ले०—श्री ज्ञान सिंह जी, करोल बाग नई देहली)

नचिकेता के तीसरे वर का विषय था कि आत्मा क्या है। आत्मा मृत्यु के पश्चात इसका अस्तित्व रहता है या यह नष्ट हो जाता है? इस बारे में यम ने नचिकेता को बताया कि आत्मा एक चेतन सत्ता है, यह न उत्पन्न होता है और न मरता है। अर्थात यह अजन्मा और अमर है। न यह किसी दूसरी वस्तुओं से बनता है और न कोई वस्तु इससे बनता है, न कभी इसका आरंभ और न कभी इसका अंत होता है। यह सदैव बना रहता है। शरीर के नाश होने पर इसका नाश नहीं होता है। एक मारने वाला जब किसी को मारता है तो वह आत्मा को शरीर से पृथक करता है। परन्तु वह समझता है कि मैंने उसे मार दिया। और मरने वाला समझता है कि मैं मर गया। यह दोनो अज्ञान की बाते हैं, क्योंकि शरीर के [illegible] पर आत्म-तत्व इस [illegible] भौतिक शरीर से पृथक तो हो जाता है परन्तु इसका नाश नहीं होता। उसे कोई मार नहीं सकता और न ही वह किसी को मारता है। गीता में भी यही कहा गया है कि आत्मा अविनाशी है, उसे कोई नष्ट नहीं कर सकता। आग उसे जला नहीं सकती। शस्त्र उसे काट नहीं सकते, वायु सुखा नहीं सकती और पानी गला नहीं सकता।

मनुष्य शरीर बड़े शुभ कर्मों से मिलता है। इसके हृदय रूपी गुहा में दो चेतन तत्व अर्थात परमात्मा और आत्मा निवास करते हैं। परमात्मा तो सर्वव्यापक है पर आत्मा हृदय में ही निवास करता है। इस लिये वह परमात्मा का दर्शन हृदय में ही कर सकता है। इस प्रकाश में आत्मा व परमात्मा छाया व प्रकाश के समान हैं। जीवात्मा विषय के अनुसार [illegible] रहा है। इसका ज्ञान [illegible] और सीमित है। इसलिये वह छाया के समान है। परमात्मा तेज स्वरूप होने के कारण प्रकाशमय है। आत्मा कर्म करता है और फल पाता है। परमात्मा केवल साक्षी रह कर फल का देने वाला है। ऋग्वेद में और उपनिषद में एक मन्त्र है :—

द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया
समानं वृक्षं परिषस्व जाते।
तयोरन्य पिप्पलं स्वा
द्वत्यनश्नन्नन्योऽभिचाकशीति॥

व जीवन के वास्तविक उद्देश्य से बेपरवाह हो जाना बड़ी भारी भूल है। आत्मा शरीर का स्वामी है। इसने उसे काम लेना है। इसे साइस ही नहीं बनना चाहिये जिस का काम केवल गाड़ी को कमरा साफ रखना और घोड़ों की देख भाल करना होता है।

इस अलंकार से एक और भी तथ्य स्पष्ट होता है। जिस तरह रथ में बैठा स्वामी सब वस्तुओं को देखता व सुनता है, इसी तरह शरीर में बैठा हुआ रथ का स्वामी जीवात्मा, बुद्धि, मन व इन्द्रियों के द्वारा सुख-दु:ख की अनुभति करता है। भोगता आत्मा ही है। बुद्धि, *मन और इन्द्रियां इसके साधन हैं।* इसी विचार को प्रश्न उपनिषद में वर्णन किया गया है कि जीवात्मा ही द्रष्टा, स्रष्टा और श्रोता आदि है। बुद्धि जड़ है और आत्मा के ज्ञान का साधन है। वह स्वयं सुख दुख की भोगने वाली नहीं। आत्मा ही सुख दुख का भोगने वाला है। "सुख" शब्द "सु" व "ख" से बना है। 'सु' का अर्थ अच्छी और 'ख' का अर्थ है इन्द्रियां इसी तरह दु:ख का अर्थ है बुरी इंद्रियां। और वह दुख कारण बनती है।

यमराज ने [illegible] ऐसा है, रथ, रथी और घोड़ों का वर्णन किया है। उसने घोड़ों को दो प्रकार की वृत्तियों के रूप में देखा है। देवों के हालत में दोनों घोड़े सधे हुए होते हैं अर्थात उनकी वृत्तियां अच्छी होती हैं। इस लिये उनकी यात्रा सुगमता से समाप्त हो जाती है। मनुष्यों की दशा में एक घोड़ा तो सधा हुआ होता है और दूसरा निरन्तर नटखट और जहां तक उसका वश चलता है वह रथ को आगे बढ़ने नहीं देता और उसे बोझल बना देता है। मनुष्य की कुछ दैवी वृत्तियां हैं और कुछ आसुरी। दोनों का संघर्ष होता है और यही संघर्ष यात्रा की पूर्ति में बाधा डलता है और दुख का कारण बनता है। मनुष्य का कल्याण इसी बात में है कि आसुरी वृत्तियों का नियंत्रण करके उन्हें दैवी वृत्तियों में परिवर्तित करता रहे।

सारांश :—

(१) आत्मा अजन्मा व अमर है। उसका नाश कभी नहीं होता। (२) आत्मा व परमात्मा दो पृथक स्वतंत्र सताएं हैं। (३) आत्मा कर्म करता है। और फल भोगता है। परमात्मा केवल आत्मा को कर्म करते देखता है और उसको फल देता है। (४) जीवन एक यात्रा है। आत्मा यात्री है मुक्ति उसका मन्तव्य स्थान है। शरीर उसका रथ है। बुद्धि उसका कोचवान है। मन लगाम है और इन्द्रियां घोड़े हैं। यात्रा को सफलता से समाप्त करने के लिये शरीर को स्वस्थ और बलवान रखने की आवश्यकता है। इन्द्रियां मन के आधीन होनी चाहियें और मन बुद्धि के। और बुद्धि को आत्मा के हित व कल्याण का ध्यान रखना चाहिए। (५) आत्मा बुद्धि, मन व इन्द्रियों के द्वारा सुख-दु:ख भोगता है। (६) शुद्ध और नियम में रहने वाली इन्द्रियां सुख का कारण और बुरी और संयम में न रहने वाली दुःख का कारण बनती हैं।

साढौरा में सामवेद पारायण

श्री पं. अमर सिंह जी अध्यक्ष अम्बाला करनाल वेद प्रचार मंडल को बधाई कि उन के बड़े परिश्रम से कुञ्जपुरा के विशाल व दर्शनीय महान् यज्ञ के बाद साढौरा में भी सामवेद परायण यज्ञ बड़े ही समारोह से ता० २४ जनवरी से ता० २८ जनवरी तक सम्पन्न हुआ। प्रात. सायं दोनों समय होता था। नगर की जनता के उत्साह, श्रद्धा का दर्शन होता था। इसमें पं० अमरसिंह जी का सारा मंडल, पं० जगतराम जी, पं० शमशेर कुमार जी के अतिरिक्त पं० जयनारायण शर्मा, श्री बस्ती राम जी, पं० त्रिलोक चन्द जी शास्त्री जालन्धर तथा चौ० नत्था सिंह जी बदरपुर वाले भी शामिल थे। पूर्णाहुति वाले दिन तो काफी भीड़ थी। यज्ञ के साथ २ प्रात., दोपहर व रात को प्रचार भी होता था। यज्ञ के लिए मंडल को विशेष बधाई।

चुनाव

आर्य समाज बाड़ का चुनाव २३-१-६२ को निम्न प्रकार से हुआ।

प्रधान—श्री महावीरदास जी।
उपप्रधान—श्री रामलखन जी।
प्रधान मंत्री—श्री शिवनन्दनजी।
संयुक्त मंत्री— देवेन्द्र कुमार जी तथा चन्द्र दीप जी।
लेखानिरिक्षक— श्री लक्ष्मीकांत जी।
पुस्तकाध्यक्ष—श्री पं०हरिदेवजी।

चन्द्रदीप संयुक्त मन्त्री
आर्यसमाज बाड़
(पटना)

मानवगृह्य सूत्र : एक आलोचनात्मक अध्ययन

(ले० प्रो० भवानीलाल जी भारतीय एम० ए०, सिद्धांत वाचस्पति
प्रवक्ता—श्री महाराज कुमार कालेज जोधपुर)

(गतांक से आगे)

यह सम्पूर्ण खण्ड ही अवैदिक मान्य देवताओं सम्बन्धी क्रियाकाण्ड का द्योतक है जो वैदिक कर्मों से स्पष्ट ही भिन्न है।

१४वें खण्ड में अशुभ स्वप्नदर्शन तथा अन्य अनिष्टों एवं उत्पातों के होने पर शांति का विधान बताया गया है। इन उत्पातों में मूर्तियों का जलना, नष्ट होना, गिरना, टूट जाना, हंसना, चलने लगना आदि क्रियाओं को अनिष्ट सूचक माना है और उनका प्रायश्चित्त विधान लिखा है। ऐसे २ सूत्रों के आधार पर ही माधवाचार्य जैसे पौराणिक पण्डित मूर्तिपूजा की प्राचीनता सिद्ध करने का यत्न करते रहे हैं। वस्तुत. ये सूत्र इस ग्रन्थ में उस समय मिलाये गये, जब मूर्ति पूजा की प्रथा देश में प्रचलित हो गई थी। इन सब अनिष्टों की शांति के लिये स्वस्तिवाचन के मंत्र पढ़कर आहुति देना लिखा है। हमारी सम्मति में यह सम्पूर्ण खण्ड अंधविश्वास का द्योतक है, अत. अप्रामाणिक है।

सोलहवें खण्ड में सर्प के भय को दूर करने के लिये सर्पयज्ञ करने का विधान है। 'सर्पोऽसि' तथा 'नमोऽस्तु सर्पेभ्यो' इन मन्त्रों को बोलकर आहुति देने की आज्ञा दी गई है और यजमान को यह आश्वासन दिया गया है कि इस कर्म से सर्पों का प्रकोप नहीं होता। यह कर्म भी अंधविश्वास के अन्तर्गत आता है। [illegible] से बड़ा कबूतर यदि घर में [illegible] होकर यदि यज्ञशाला में आ [illegible], दही, दूध आदि में पैर डाले [illegible] उसका दोष मार्जन करने के लिये [illegible] विधि है वह [illegible] खण्ड में [illegible] है। [illegible] पुत्रेष्टि [illegible] का वर्णन है। [illegible] यह [illegible]

आलोचनात्मक विश्लेषण

ऊपर की पंक्तियों में मानवगृह्य सूत्र वर्णित प्रत्येक कृत्य का आलोचनात्मक और विवरण देने की हमने चेष्टा की है। मैं इस प्रकार पारस्कर गृह्यसूत्र (आर्यजगत् में प्रकाशित) और गोभिल गृह्यसूत्र (परोपकारी में प्रकाशित) की भी आलोचनात्मक समीक्षा उपस्थित कर चुका हूं। वाराह और खादिर गृह्यसूत्र की आलोचना निकट भविष्य में प्रस्तुत करूंगा। इन गृह्यसूत्रों के आलोचनात्मक अध्ययन के अनन्तर मैं जो निष्कर्ष निकाल चुका हूं वे निम्न हैं।

(१) इन सूत्रों में कर्मकाड को अत्यन्त जटिल रूप में उपनिबद्ध किया गया है। जितनी क्रियायें बताई गई हैं उन में अनेक विचित्र, अटपटी और अस्वाभाविक हैं। ऋषि दयानन्द को धन्यवाद है कि उसने आर्य जाति को जटिल कर्मकाड से मुक्ति दिलाई और सुगम उपयोगी और सुसंगत कर्म करने की प्रेरणा दी।

(२) इन सूत्रों में यत्रतत्र पशुयाग, शूलगव, अष्टका, मधुपर्क आदि कृत्यों में सर्वत्र पशुहिंसा का विधान मिलता है। महर्षि ने इन सभी हिंसापरक कर्मों को अप्रामाणिक मानकर वैदिक कर्मकांड को अत्यन्त पवित्र, अहिंसायुक्त और प्राणिमात्र का कल्याणकारी सिद्ध किया।

(३) इन सूत्रों में अन्धविश्वास पूर्ण, अनर्गल और भ्रान्त्याचारों से परिपूर्ण कर्मकांड की भी भरमार है। विनायक शांति, प्रायश्चित्त विधान आदि कृत्य इसी श्रेणी के अन्तर्गत आते हैं। महर्षि ने इस प्रकार के कृत्यों को भी वैदिक कर्मकांड में कोई स्थान नहीं दिया है।

सम्पूर्ण गृह्यसूत्रों का मन्थन कर महर्षि दयानन्द ने आर्य पुरुषों के लिए संस्कारविधि के रूप में एक नवीन गृह्य ग्रन्थ का निर्माण किया जो उनके ऋषित्व का द्योतक है। आज हम अन्यान्य गृह्यसूत्रों का आधार न लेकर उसी का आधार कर्मकांड में लेवें, यही हमारे लिये श्रेयस्कर है।

—०—

(पृष्ठ ७ से आगे)

एक ही उपाय हो सकता है कि बच्चे के दो टुकड़े कर दिये जाएं और दोनों को एक एक टुकड़ा दे दिया जावे उसके साथ ही जल्लाद को बुला लिया गया। ज्यूंही जल्लाद ने तलवार उठाई तो असली माता झट कूद कर मध्य में आ खड़ी हुई और कहने लगी कि भगवान के लिए बच्चे के टुकड़े मत करो इसे सही सलामत दूसरी देवी को दे दो। ठीक इसी तरह अब समय है कि देश और जाति का सच्चा हित चाहने वाले नेता और संस्थाये व्यक्तिगत हानि सहन कर के भी जाति और देश के टुकड़े होने से बचाने के लिए मैदान मे निकलें परन्तु यह तभी हो सकता है यदि हम जाति के हित को अपने और अपनी सस्थाओं से अधिक महत्व दें। निस्संदेह इसी में सब का कल्याण है। अन्यथा—

बचोगे न तुम और न साथी तुम्हारे।
अगर नाव डूबी तो डूबोगे सारे॥

निवेदक रुद्रदत्त शर्मा

आर्यसमाज किला

जलन्धर नगर का वार्षिक चुनाव ३ मार्च शनिवार को सायं ५ बजे आर्यसमाज मन्दिर में होगा सभासदों से प्रार्थना है कि ठीक समय पर पधार कर सहयोग प्रदान करें।

— मन्त्री

जालन्धर में वसन्त उत्सव

१. वसन्त का त्यौहार जालन्धर की समस्त आर्य समाजों की ओर से ९-२-६२ को साईंदास स्कूल के विशाल मैदान में मनाया जा रहा है।

कार्यक्रम— (१) यज्ञ, भजन और भाषण—प्रात. ८॥ बजे से १०॥ बजे तक।

२. खेलें—१०॥ बजे से ११॥ तक डी० ए० वी० और आर्य स्कूलों के विद्यार्थी भाग लेंगे।

३. प्रीति भोजन—स्त्रियां और पुरुष १) रु० और बच्चे ८ आने देकर सम्मिलित हो सकते हैं।

—खुशहालचन्द पाराशर

श्री दयानन्द उपदेशक महाविद्यालय

वैदिक साधना आश्रम
यमुना नगर (अम्बाला)

वैदिक साधन आश्रम यमुनानगर (अम्बाला) का वार्षिक शिविर २८ मार्च से २८ अप्रैल तक होना निश्चित हुआ है, जिस में योग साधन और यज्ञ का विशेष प्रोग्राम होगा, अत साधक महानुभाव अभी से अपने आने की सूचना दे दें, ताकि उनके निवास का ठीक प्रबन्ध हो सके, आर्यजगत के बड़े २ प्रसिद्ध विद्वानों के पधारने की पूर्ण आशा है, धर्म प्रेमी सज्जन दर्शन देकर आत्मिक लाभ उठावें।

श्री स्वामी ब्रह्ममुनि जी तथा प्रो० ईश्वरदत्त जी ने तीन मास तक आश्रम में रह कर जहां विद्यार्थियों को दर्शन पढ़ायें वहां आस पास के समाजों में जाकर प्रचार भी करते रहे, उपदेशक महाविद्यालय के विद्यार्थी और अधिकारी वर्ग भी निरन्तर प्रचारार्थ जाते रहें, जिस से इस सारे क्षेत्र को अच्छा लाभ पहुंचा।

ताराचन्द आर्य
कार्यमन्त्री

संस्कृत भाषा और आर्य समाज

(ले०:—श्रुतिशील शर्मा, तर्क शिरोमणि, स्वाध्याय मण्डल, पारडी)

अभी पिछले दिनों हमारे माननीय राष्ट्रपति डा. राजेन्द्र प्रसाद जी ने कलकत्ते में एक संस्कृत सम्मेलन का उद्‌घाटन किया, जिस की धूम भारत भर के दैनिक समाचार पत्रों, मासिक पत्रिकाओं में रही। यह सम्मेलन भारत के गृह कार्य मंत्री श्री. ब. ना दातार की अध्यक्षता में सम्पन्न हुआ। इस अवसर पर भारत भर के विद्वानों और नेताओं द्वारा सौहार्द पूर्ण शुभ-कामनायें प्रकट की गई, जिनमें संस्कृत भाषा को बहुत सराहा गया था। घटना से जहा और संस्कृत प्रेमियों को प्रसन्नता हुई, वहां आर्यसामाज क्षेत्र में भी इस का बड़े जोर शोर से स्वागत हुआ, और होना भी चाहिए, क्योंकि आर्य समाज का आधार ही संस्कृत भाषा उन्नति और अवनति में आर्यसामज की उन्नति और अवनति निर्भर है। संस्कृत आर्य समाज का प्राण, जीवनाधार और साराश में सब कुछ है। क्या कोई इस तथ्य से इन्कार कर सकता है? यदि कोई करता है, तो स्पष्ट शब्दों में यह कहना पड़ेगा कि या तो उसने आर्य समाज को ही अच्छी तरह नहीं समझा, और यदि समझा भी तो गलत। समाज के संस्थापक महर्षि दयानन्द जी के रोम रोम में संस्कृत भाषा व्याप चुकी थी। कई स्थलों पर तो महर्षि ने इसका नाम ही 'देववाणी' कहा है। फिर कैसे यह कहा जा सकता है, कि संस्कृत आर्य-समाज का सर्वाधार नहीं है।

आर्यसामाज और वर्त्तमान भारत

वर्त्तमान भारत में आर्यसमाज का क्या स्थान है, यह सब को स्पष्ट है। हमारे भारत के विधायको मे कितने आर्यसमाजी या आर्य सिद्धान्तों के मानने वाले हैं, और कितने विभिन्न मतावलम्बी हैं, यह आसानी से जाना जा सकता है। यहां मेरा प्रश्न यह नहीं है, कि आर्य समाज को राजनीति में भाग लेना चाहिए या नहीं अपितु यह है, कि हमारे भारत के नेताओं में या विधायकों में कितने ऐसे आर्य समाजी है, जिन्होंने संस्कृत भाषा की उन्नति के लिए कोई सक्रिय कदम बढाया हो। इस का उत्तर शून्य में मिलेगा, क्योंकि जो कट्टर आर्य समाजी और संस्कृत के पण्डित हैं, वे राजनीति के पचड़े में कभी पड़ते नहीं, और जो राजनीति में भाग लेते हैं, न तो कट्टर आर्य समाजी ही होते हैं, और न उन्हें संस्कृत ही आती है। अथवा यदि आर्य समाजी होते भी हों और उन्हें संस्कृत से प्रेम भी हो तो वे अपने मुंह से संस्कृत के विषय में ऊंचे स्वर से कुछ बोल नहीं सकते, कि कहीं उनके इस कार्य से उनके सर्वाधार (पार्टी के नेता) नाराज न जायें अत. वे चाह कर भी शान्त बैठे रहते हैं, यह स्थिति है हमारे आर्य समाज की वर्त्तमान भारत के शासन में। यह तो हुई संस्कृत भाषा की बाह्य स्थिति, पर इस की आर्य समाज क्षेत्र में आन्तरिक स्थिति क्या है, आइये उस पर मैं एक विहंगम दृष्टि डाल लें।

आर्य समाज और संस्कृत

आर्य समाज के स्थापन में महर्षि की दृष्टि एक महान् लक्ष्य पर थी। इसी लक्ष्य को दृष्टि में रखकर महर्षि ने विरोध होने पर भी इस समाज की स्थापना की, वह लक्ष्य था वेदोद्धार और जिस से आगे आने वाले अनुयायी इस लक्ष्य को सदा सामने रखें इस लिए आर्य समाज के नियमों को बनाते हुए इस लक्ष्य को भी तीसरे नियम में समाविष्ट कर दिया था। जिसमें 'वेद का पढ़ना पढ़ाना और सुनना सुनाना सब आर्यों का परम धर्म' बताया है। महर्षि को पूर्ण आशा थी कि उन के भक्त उन के इस लक्ष्य को पूरा करने में तन, मन, धन सभी कुछ अर्पण कर देंगे। पर आज वेदों की जो दुरावस्था है, जो वर्णनातीत है। आप पंजाब में चले जाइये तो आप को 'विश्वानि देव सवित दुरितानि परासुव' के स्थान पर 'विशुवानि देव सविवर दुरितानि परा सुव' और 'यद्‌भद्रं' के स्थान पर 'यद्‌भद्र' सुनाई देगा, और तो और तीन महा व्याहृतियों का उच्चारण भी वे ठीक तरह नहीं कर सकते 'भू र्भुव स्वः' के स्थान पर 'भू र्भवः सुवः' बोलेंगे, और उत्तर प्रदेश में चले आइये तो वहां लोग 'सकार' और 'शकार' में भेद ही नहीं करते, बोलना तो चाहिए 'सविर्तु रितानि' पर बोलेंगे 'शविर्तु रितानि'। यह क्या बात हुई?। महाभाष्यकार ने तो 'दुष्टः शब्दः स्वरतो वर्णतो वा मिथ्या प्रयुक्तो न तमर्थ माह। स वाग्वज्रो यजमानं हिनस्ति यथेन्द्र शत्रु स्वरतोऽपराधात् 'कहकर दुष्प्रयुक्त स्वरतक को यजमान को मारने वाला बताया है, पर यहां तो यज्ञ पर बैठे हुए यजमान पूरा मन्त्र का मंत्र अशुद्ध बोल जाते हैं, और वह भी झूम-झूम कर। इस सब का एक कारण है, उन के अन्दर यथार्थ ज्ञान का अभाव।

(क्रमश.)

सभा द्वारा वेद प्रचार की धूम

—आर्यसमाज राजौरी (जम्मू) का उत्सव १६ से १८ मार्च को सम्पन्न हो रहा है ! १३ से खुशीराम शर्मा की कथा होगी। राजपाल जी श्री मदन मोहन जी चिमटा मंडलीके भजन हुआ करेंगे।

—आ० स० जलालाबाद का उत्सव ६ से ८ अप्रैल को धूमधाम से सम्पन्न हो रहा है। २ अप्रैल से खुशीराम शर्मा कथा करेंगे। ८ ता० को प्रो० वेदीराम जी युवक समाज की प्रधानता करेंगे।

—आ० स० जोगेन्द्र नगर का यज्ञ, उत्सव ६ अप्रैल से १२ तक धूमधाम से सम्पन्न हो रहा है।

—आ०स० भागलपुर (बिहार) का उत्सव २३ मार्च से सम्पन्न हो हो रहा है। श्री पं० चन्द्रसेन जी पधार रहे हैं।

—आ० स० लाजपत नगर कालोनी का उत्सव १९ से २२ अप्रैल को समारोह से सम्पन्न हो रहा है। २५ ता० से कथा होगी

—आ० स० जुलाना शादीपुर का उत्सव १७, १८, १९ मार्च को समारोह से सम्पन्न हो रहा है। जमादार भरतसिंह जी, प्रभुदयाल जी चौ० भूराराम जी पधार रहे हैं।

—आ० स० [illegible]खेड़ा का उत्सव [illegible] से [illegible] फरवरी को समारोह से सम्पन्न हो रहा है। श्रीमान् जमादार भरतसिंह जी, पं० प्रभुदयाल जी, चौ० भूरा राम जी पधारेंगे।

—आ० स० मिर्जापुर खेड़ी का उत्सव २० से २२ फरवरी को धूमधाम से सम्पन्न हो रहा है।

—आ० स० [illegible] लुधियाना का उत्सव [illegible] से ४ मार्च को सम्पन्न हो रहा है। माननीय मि० सूर्यभानु जी प्रधान सभा ४ ता को पधार रहे हैं।

—आ० स० बडेसरा का उत्सव १२ से १४ मार्च को समारोह से सम्पन्न हो रहा है।

—आ० स० माडल टाऊन गुड़गावा का उत्सव ३१ मार्च १-२ अप्रैल को धूमधाम से सम्पन्न हो रहा है। २६ ता० से ३० तक कथा। राजपाल मंडली के भजन।

—आ० स० अखनूर (जम्मू) का उत्सव ११ से १३ मार्च को सम्पन्न होरहा है। ४ता०को श्रीमान पं० ओंप्रकाश जी यजुर्वेद पारायण यज्ञ तथा कथा करेंगे। मा० तारा चन्द जी के भजन होंगे।

—आ० स० अगवाल का उत्सव १४ से १५ मार्च को धूमधाम से सम्पन्न होगा।

—आ० स० फिरोजपुर शहर का उत्सव २३ से २५ मार्च को समारोह से सम्पन्न हो रहा है।

—आर्य समाज फाजलका का उत्सव मार्च मे सम्पन्न हो रहा है।

—आ० स० खुल्दाबाद का उत्सव मार्च के अन्तिम सप्ताह मे सम्पन्न हो रहा है।

—आ० स० अदीनाथमी का उत्सव १६ से १८ मार्च को सम्पन्न हो रहा है।

—आ० स० मिर्चपुर का उत्सव १६ से १८ मार्च को सम्पन्न हो रहा है।

आ० स० धारीवाल का उत्सव २०-२१-२२ अप्रैल को सम्पन्न हो रहा है। १५ ता० से खुशीराम शर्मा कथा करेंगे।

—आ० स० पौली का उत्सव १३ से १५ फरवरी को समारोह से सम्पन्न हो रहा है।

—आ० स० चिड़ी का उत्सव १७ से १९ फरवरी को समारोह से सम्पन्न हो रहा है।

—आ० स० निडोना का उत्सव २३ से २५ फरवरी को समारोह से सम्पन्न है।

—आ० स० सूडा वाली का उत्सव ६ से ११ मार्च को सम्पन्न हो रहा है।

—आ० स० टटौली का उत्सव १६ से २१ मार्च को सम्पन्न हो रहा है।

आ० स० भंभेवा का उत्सव २२ से २४ मार्च को समारोह से सम्पन्न हो रहा है।

आ० स० पुरानी मंडी जम्मू में २८ फरवरी से ४ मार्च तक शिवरात्रि पर्व समारोह से सम्पन्न हो रहा है।

आ० स० शाम चौरासी का उत्सव १५ से १७ मार्च को सम्पन्न हो रहा है। श्रीमान हजारी लाल जी पधार रहे हैं।

—आ० स० नया बाजार भिवाना का उत्सव ६ से ११ फरवरी को समारोह से सम्पन्न हो रहा है। श्रीमान् पं० त्रिलोक चन्द जी पहले कथा करेंगे। और मा० ताराचन्द जी के भजन हुआ करेंगे। उत्सव पर श्रीमान् पं० ओंमप्रकाश जी, श्रीमान राजपाल जी, मदनमोहन जी चिमटा भजन मंडली, श्रीमान हजारी लाल जी, श्रीमान् चौ० रावकरण जी, महावीर सिंह जी नत्थूराम जी पधारेंगे।

खुशी राम शर्मा
अधिष्ठाता वेद प्रचार

—०—०—

आर्यसमाजों से निवेदन

सभी आर्य बन्धुओं से विनम्र निवेदन है कि २६ फरवरी १९६२ से ४ मार्च १९६२ तक ऋषि बोधोत्सव धूमधाम से मनाने की कृपा करें।

इस महान् पर्व को मनाते हुए सभी आर्य नर नारी अपने परिवार के प्रत्येक सदस्य के हिसाब से चार आना फंड वेद प्रचार के लिए अवश्य इकट्ठा करने की कृपा करें।

और एकत्रित धन सभा में भेजने की कृपा करें। प्राय आर्य-समाजे इस दिशा में कुछ उदासीनता का व्यवहार करती हैं। कृपया इन प्रमुख त्योहारों को प्रधानता से मनाना चाहिये। और सभा का फण्ड भी अवश्य इकट्ठा करना चाहिये। यही विनम्र प्रार्थना है।

विनीत—खुशीराम शर्मा
वेद प्रचार अधिष्ठाता।

(३ पृष्ठ का शेष)

इस समय 'लोक सभा' और विधान सभाओं आदि में ऐसे अनुभवी, सदाचारी और आदर्श महानुभावों को भेजने की जरूरत है जो रूस और अमरीका आदि की तरफ आखे लगाये रखने की बजाये भारत और भारतीयता के सच्चे पुजारी हों और जिनके हृदय में देश और जाति दोनों के लिए वास्तविक हित और अटूट श्रद्धा हो और किसी अवस्था में भी जाति के नाम पर देश को, और देश के नाम पर जाति के हितों को न्योछावर करने के लिए तैयार न हो सके। अन्त में वास्तविक हित का एक दृष्टांत देकर अपनी इस प्रार्थना को समाप्त करना चाहता हूं।—

एक बार अदालत में एक बच्चे के सम्बन्ध मे दो देवियों का झगड़ा पेश हुआ। दोनों बच्चे की माता होने का दावा करती थीं। मैजिस्ट्रेट जब किसी प्रकार भी वास्तविक (सच्ची) माता का निश्चय न कर सका तो उसे एक उपाय सूझा और उसने आदेश दिया चूंकि दोनों देविया बच्चे की माता होने का दावा करती हैं और उसे लेना चाहती हैं अत इसका

(शेष पृष्ठ ५ पर)

साप्ताहिक समाचार

सूचना कार्यालय भारत सरकार से उद्धृत

—२० पहाड़ी स्थानों में बिजली की सुविधा करने के लिए भारत सरकार बिजली तैयार करने के टरबाइन लगा रही है।

—दिवा- पनवेल - उरन-आप्टा रेल लाइन का उद्घाटन श्री जगजीवन राम रेल मन्त्री १ फरवरी १९६२ को करेंगे।

—दिसम्बर १९६१ में विदेशी मुद्रा कानून के अंतर्गत ५३ मामलों का निर्णय हुआ और अभियुक्तों पर ५२,७५० रु० जुर्माना किया गया।

—राष्ट्रीय कुष्ट निर्वाण योजना के अंतर्गत ३१ मार्च १९६१ तक विभिन्न राज्यों तथा केन्द्र शासित क्षेत्रों में १३७ कुष्ट चिकित्सा केन्द्र स्थापित किए गए हैं।

—लंका के स्वतंत्रता दिवस पर राष्ट्रपति ने अपनी और देशवासियों तथा सरकार की ओर से बधाई का संदेश भेजा है।

—१९५२ में निर्वाचकों की संख्या १७३० लाख थी। १९५७ में १९३० लाख और १९६२ में २१०० लाख हो गई है।

—मतपत्र १९६२ में दो होंगे विधान सभा के लाल, लोक सभा के सफेद। दोनों पर्चे एक ही पेटी में डाले जाएंगे। उम्मीदवारों की अलग-अलग पेटियां नहीं होंगी। एक ही मत पत्र पर सब उम्मीदवारों के चिन्ह छपे होंगे इसी के आगे निशान लगा कर वोट देना होगा।

—१९५७ के चुनाव में पंजाब ने कांग्रेस की ओर से लोकसभा के लिए २१ और विधान सभा के लिए १२० उम्मीदवार भेजे।

—प्रधान मन्त्री श्री नेहरू जी ने लंडन के 'दि टाइम्स' को अपने संदेश में कहा है कि अगले १० वर्षों में भारत एक महत्वपूर्ण औद्योगिक देश बन जाएगा।

—तीसरी योजना में संतति-निग्रह के बारे में अनुसंधान किया जाएगा।

—नई दिल्ली ४—२—६२ की सूचना के आधार पर १३८ सरकारी कर्मचारियों की खुली जांच की जा रही है इन में २१ गजटेड अधिकारी है।

—नई देहली ४—२—६२ को ८३ सरकारी कर्मचारियों को विभागीय दण्ड दिया गया और उनसे ५७६२ रु० वसूल करने का आदेश दिया गया।

—०—०—

भूल सुधार

आर्य प्रादेशिक सभा का वार्षिक निर्वाचन

सर्वसाधारण और विशेष कर आर्य जनता से प्रार्थना है कि ४ फरवरी १९६२ के आर्यजगत् के मुख पृष्ठ पर सभा का वार्षिक चुनाव प्रकाशित हुआ था उस में उप प्रधानों की सूची में श्री चिमनलाल जी प्रिंसीपल साईं दास ए० एस० हायर सैकण्डरी स्कूल का नाम प्रकाशित होने से रह गया था। पाठकगण नोट करलें।

—व्यवस्थापक

—०—०—

रोहतक नगर के समाचार

लोहड़ी का पर्व

गत वर्ष के समान इस वर्ष भी आर्यसमाज प्रधाना मोहल्ला रोहतक नगर में 'आर्य वीर दल' के सहयोग से लोहड़ी का पवित्र पर्व बड़ी धूमधाम से मनाया गया प्रात:काल आर्य मन्दिर से प्रभात फेरी आरम्भ की गई। सायंकाल को मन्दिर में यज्ञ हुआ और स्वामी जगदीश्वरानन्द जी का प्रभावशाली व्याख्यान हुआ। इस यज्ञ के यजमान श्री मुंशीराम जी मंगाक अपनी पत्नी सहित बने।

शोक प्रस्ताव

१६ माघ रविवार के साप्ताहिक सत्संग में आर्यसमाज प्रधाना मोहल्ला माननीय सदस्य श्री अमीर चन्द जी रिटायर्ड इन्जीनियर के अनुज भ्राता और श्री मुन्शी राम जी के पिता के उपलक्ष में दो शोक प्रस्ताव पारित हुए। जिनमें दिवंगत आत्माओं के लिए कर्मानुसार सदगति और उनके परिवार के सदस्यों के लिए धीरज और शांति निमित्त परम पिता परमात्मा से प्रार्थना की गई।

वैदिक मैगजीन

आर्य वीरदल और आर्यसमाज इस बात की प्रशंसा करता है कि 'आर्यसमाज बंगलौर' के तत्वावधान में उत्तर भारत और दक्षिण भारत के अंग्रेजी पढ़े लिखों में वैदिक धर्म के प्रचारार्थ त्रिमासिक अंग्रेजी पत्रिका 'वैदिक मैगजीन' निकाला गया है। आर्य वीर दल यह आशा करता है कि आर्य जगत वैदिक धर्म के प्रचारार्थ इस पत्रिका की ग्राहक संख्या बढ़ावेगा।

—भवदीय
महानन्द

—०—०—

मुद्रक व प्रकाशक श्री संतोष राज जी मंत्री आर्यप्रादेशिक प्रतिनिधि सभा पंजाब जालंधर द्वारा वीर मिलाप प्रैस, मिलाप रोड जालंधर से मुद्रित तथा आर्यजगत कार्यालय महात्मा हंसराज भवन निकट कचहरी जालन्धर शहर से प्रकाशित हुआ मालिक—आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा पंजाब जालन्धर

टैलीफोन न० ३०५७ [आर्यप्रादेशिक प्रतिनिधिसभा पंजाब जालन्धर का साप्ताहिक मुखपत्र] Regd No. P 1'

एक प्रति का मूल्य १३ नय पैसे — वार्षिक मूल्य ६ रुपये

वर्ष २२ अंक ७) रविवार ७ फाल्गुण २०१८— १८ फरवरी १९६२ दयानन्दाब्द १३७ (तार-प्रादेशिक जालन्धर

वेदसूक्तयः

दिवं सत्यधर्मा जजान

उस सत्यधर्मा-सत्य अटल नियमों को धारण करने वाले परमेश्वर ने दिवम्-द्युलोक को, उस मे चमकने वाले नक्षत्रों को जजान-बनाया है। उसी परमात्मा ने द्युलोक मे प्रकाश देने नाना प्रकार के नक्षत्रों को बना कर अटल नियमों मे धारण कर रखा है।

अपश्चन्द्रः बृहतीर्जजान

जिसने अप-जलों को, चन्द्र-चन्द्र को बृहती-बड़े २ प्रकृति के पदार्थों को जजान-पैदा किया। उसी परमेश्वर ने जल, चन्द्र बनाये। उसी ने बड़े २ पर्वत आदि पदार्थों की रचना की तथा उनको अपने शासन मे रखा हुआ है।

कस्मै देवाय हविषा विधेम

इसलिए कस्मै-सुखस्वरूप देवाय उस देव के लिए हविषा-हर प्रकार से विधेम-भक्तिविशेष हम किया करें। सब को चाहिए कि उसी भगवान की श्रद्धा से भक्ति विशेष किया करें और किसी को मत पूजें।

वेदामृत

उत्क्रमन्तु हृदयान्यूर्ध्वः प्राणः उदीषतु।
शौष्कास्यमनु वर्तताममित्रान् मोत मित्रिणः ॥

अथर्व० ८।१।२८

अर्थ—(उत्क्रमन्तु) हिल जावे (हृदयानि) शत्रुओ के दिल तथा (ऊर्ध्व) ऊपर (प्राण) प्राण (उदीषतु) चला जावे (शौष्कास्यम) मुख सूख जावे। (वर्तताम्) हो जावे (अमित्रान) शत्रुओं का (मा उत) किन्तु नहीं (मित्रिण) मित्र लोग—जो शत्रु हैं, घाती है, उनके दिल हिल जावे। प्राण उपर चला जावे। मुंह सूख जावे। भय के कारण रोम २ काप जावे।

भाव—जो लोग राष्ट्र के विश्वासघाती हैं। इसकी हरेक चीज के साथ द्रोह करने वाले हैं। अन्दर २ अपने गुप्त कामों से, षडयन्त्रो से [illegible] की शक्ति, सगठन को कमजोर करने वाले हैं। राष्ट्र के शत्रुओं से मिल कर उनको आक्रमण करने मे सहयोगी बनते हैं। देश मे रह कर बाहिर वाले राष्ट्रघातकों को देश की अन्दर की गुप्त प्रक्रियाओं का परिचय कराने मे, भेद देने मे लगे हुए हैं। वेद आदेश देता है कि ऐसे देश-हत्यारो को कड़ा दण्ड दिया जाये। ये शत्रु हैं। ये लोग अन्दर रह कर शत्रुता करते है। घर के विरोधी हैं। कुर्ते के साप हैं। शरीर के अन्दर लगी बीमारी अधिक भयानक होती है। ऐसे लोग भी अन्दर के रोग के समान राष्ट्र के शरीर को खोखला करने वाले हैं। ऐसे लोगो को कड़ा दण्ड देना चाहिए।

ऐसा कड़ा दण्ड जिस से उनके दिल दहल जावें, हिल जावें। ऊपर का सांस ऊपर ही चला जावे, नीचे का नीचे रुक जावे। मुख उनका सूख जाये। ऐसे शत्रु कठोर दण्ड के भागी बने। किन्तु जो देश के भक्त हैं। प्यारे हैं। उनकी हर प्रकार से सेवा की जाये। इन दोनों की पहिचान नितान्त आवश्यक है। द्रोही को प्यार तथा भक्त को तलवार दिखाना देश का संहार करना है। यथायोग्य व्यवहार चाहिए। घातक को मार तथा रक्षक का सत्कार करना धर्म कहाता है। स०

ऋषिवचनमाला

शरीरत्रय सम्बन्ध रहितम्

वह ब्रह्म त्रय-तीनों शरीरो के सम्बन्ध से रहित है। शरीर तीन प्रकार के होते है स्थूल, सूक्ष्म और कारण रूप से। किन्तु उस भगवान मे तो अकाय होने से कोई भी तो शरीर नहीं है। साकार नहीं अपितु निराकार है।

सर्वदैकरसमानत्वात्

वह परमेश्वर सर्वदा-सदा ही, एकरसमानत्वात्—एक रस होने से नित्य है। प्रकृति मे तो सदा परिवर्तन होता रहता है। कभी कुछ और कभी कुछ। पर भगवान सदा एक रस है सनातन हैं।

कारणरूपमेव तिष्ठति

ब्रह्म सदा कारणरूपम्— सब कार्यों का कारणरूप ही तिष्ठति-माना जाता है। इस सारे चर अचर जगत् का कारण है उत्पादक और नियामक है। प्रकृति तथा जीवों को अपने नियम मे रखने वाला ब्रह्म कारणरूप है। उसके नियमों के विना संसार कैसे चले।

—भाष्यभूमिका

सम्पादकः त्रिलोक चन्द्र शास्त्री

संस्कृत भाषा और आर्यसमाज

(ले०—श्री श्रुतिशील जी शर्मा स्वाध्याय मंडल-पारडी (सूरत)

(गताक से आगे)

****

वे यह नहीं जानते कि अमुक मंत्र का क्या अर्थ है, उन्हें यह नहीं पता कि 'यदभद्र तन्न आसुव' का सुन्दर अर्थ भी 'यदभद्र' मे केवल 'अ' के मिलाने से कितना बिगड जाता है, या यो कहिये कि कितना उल्टा हो जाता है। 'जो अच्छाइया हैं, उन्हे हमें दो' का अर्थ केवल 'अ' के मिलाने से 'जो बुराइया हैं उन्हें हमे दो' का अर्थ देने वाला हो जाता है, इसका इन्हें पता नहीं। आर्यसमाजो मे संस्कृत जानने, न जानने वाले सभी वेदपाठी बन जाते हैं और जिस तरह बन पाता है, मन्त्रों का शुद्ध या अशुद्ध उच्चारण करते हैं। यह तो हुई आर्यसमाज के सदस्यों की दशा, पर उपदेशकों की दशा इससे भी विकृत है। कई उपदेशकों को संस्कृत का रत्ती भर भी ज्ञान नहीं होता, पर वेद के मन्त्रों का अशुद्ध उच्चारण करते हुए और उन्हें ऊटपटाग स्वर प्रदान करते हुए और हारमोनियम पर ऐसे झूम २ के गायेंगे, मानो वे शुद्ध सामगान का पाठ कर रहे हों यदि मन्त्र का शुद्ध पाठ 'स्तुता मया वरदा' होगा तो स्वर देने के लिए उसे 'सतुता मया वर्दा' बनाना उनके लिए सहज है। इसके अतिरिक्त उनमे एक और भी आदत होती है, कि यद्यपि अंग्रेजी का अ ब स भी न आता हो, पर श्रोतागण पर प्रभाव डालने के लिए अंग्रेजी बोलना प्रारम्भ कर देंगे, जोकि अशुद्ध उच्चारणों से भरपूर होगा, जिसको सुनकर श्रोतागणों पर विपरीत प्रतिक्रिया होती है। यह है हमारे उपदेशकों की दशा।

इसके बावजूद भी आर्यसमाज के मुख पत्रों मे वेद प्रचार की धूम की खबर होती है। कहीं वेद प्रचार सप्ताह मनाया जाता है, कहीं वेद सम्मेलन होते हैं, तो कहीं वेद पारायण यज्ञों की खबर होती है, पर वेद की गाडी वहीं की वहीं एक कदम भी आगे नहीं बढ़ती। इस अवस्था मे मुख-पत्रों की यह घोषणा वास्तविक है या प्रोपगेण्डा मात्र यह समझना मुश्किल है।

इसके अतिरिक्त एक दूसरा भी कारण है, हम देखते हैं, कि शकर मतावलम्बियों मे शंकराचार्य पीठ के लिए केवल वे ही अधिकारी माने जाते हैं और जिनका अद्वैत सिद्धान्तों पर पूरा अधिकार होता है यही बात अन्य मतावलम्बियों में भी है। पर आर्य समाज के अधिकारियों के लिए ऐसा कोई प्रतिबन्ध नहीं है। आर्य समाज या प्रतिनिधि सभा का अधिकारी मतों के आधार पर कोई भी बन सकता है, उसके लिए यह आवश्यक नहीं कि संस्कृत जानता हो।

ये कुछ कारण है, कि जिन के कारण संस्कृत का सम्बन्ध आर्य समाज से धीरे धीरे शिथिल हुआ जा रहा है, और यदि यही गति रही तो एक दिन ऐसा आयेगा, जब कि संस्कृत का सम्बन्ध आर्य समाज से बिल्कुल नहीं रहेगा, और तब संस्कृत के अभाव मे आर्य समाज एक निष्प्राण ठूंठ सा रह जायेगा। अत आवश्यक है, कि इस प्रकार की स्थिति आने से पूर्व ही सचेत हो जाये जिस से कि आर्य समाज को इस प्रकार की परिस्थिति का सामाना न करना पडे। उस के लिए मैं नीचे कुछ सुझाव दे रहा हू —

१—प्रत्येक आर्य समाज का हर सदस्य संस्कृत भाषा सीखे, और यदि हो सके तो उसेके लिए हर समाज रात्री पाठशालाओं का क्रम प्रारम्भ कर दे, जिस मे रात के समय हर सदस्य आकर संस्कृत सीखे।

आज कल लोगों की यह धारणा है, कि संस्कृत भाषा सीखने में अत्यन्त कठिन है, पर वस्तुत यह एक भ्रान्त धारणा है। सीखने में यह भाषा दुनिया की अन्य भाषाओं से कहीं अधिक सरल है। 'स्वाध्याय मण्डल, पारडी' ने एक ऐसी प्रणाली प्रारम्भ की है, यदि कोई इस प्रणाली के अनुसार अध्ययन करे और प्रति दिन २ घटा अभ्यास करे तो केवल सौ घटे मे वह इतनी संस्कृत सीख सकता है, कि वह वाल्मीकि रामायण और महाभारत को आसानी से समझ सकेगा। इसके लिए 'संस्कृत स्वय शिक्षक' काम की पुस्तक भी इस संस्था द्वारा प्रकाशित की गई है। इन पुस्तकों को कोई भी स्वय पढकर आसानी से संस्कृत सीख सकता है।

१—अत सब आर्य सदस्यों को चाहिए कि वे संस्कृत भाषा के अध्ययन की तरफ सक्रिय कदम उठायें।

२—समाज का हर सदस्य प्रतिदिन वेद मन्त्रों का स्वाध्याय करे, यदि वह स्वय न पढ सके तो समाज के पुरोहित अथवा संस्कृत के विद्वान् के पास जाकर अध्ययन करे।

३—प्रत्येक सदस्य के घर में वेदों की पुस्तकें हों, और हो सके तो आर्य-ग्रन्थों का भी संग्रह हो। आज दशा यह है कि सदस्यों मे केवल ५ प्रतिशत सदस्यों के घरों मे ही वेदों की पुस्तकें होंगी। अत. यह आवश्यक होना चाहिए कि हर सदस्य के घर में वेदों की पुस्तकें हों।

४—प्रत्येक आर्यसमाज को यह नियम बना देना चाहिए, कि अधिकारी पद के लिए चुनाव मे वही खड़ा हो सकेगा जो संस्कृत जानता हो। संस्कृत को न जानने वाला चाहे कितना ही धनवान् क्यो न हो, समाज के प्रधान, उप प्रधान, मंत्री आदि मुख्य पदों के लिए चुनाव में न खड़ा हो सके।

५—प्रत्येक सदस्य को चाहिए कि वह अपने सन्तानों के मन में संस्कृत के प्रति आकर्षण उत्पन्न करे।

६—प्रत्येक प्रतिनिधि सभा और आर्य समाज को चाहिए कि वह उपदेशक, महोपदेशक और पुरोहित उन्हीं को रखे, जो संस्कृत जानते हो, और प्रत्येक सदस्य उनके साथ विद्वानों जैसा ही व्यवहार करे, किसी नौकर की तरह नहीं। ये धर्माचार्य, चाहे समाजो या प्रतिनिधि सभाओं से वेतन ही क्यो न लेते हों, नौकर या चपरासी नहीं होते अपितु मार्ग-दर्शक होते है।

यह कुछ सुझाव है, जिन पर आर्यसमाज को चलना आवश्यक है, यदि वह अपनी जीवन सर्वस्व संस्कृत भाषा की उन्नति चाहता है तो, अन्यथा संस्कृत भाषा और वेदों के प्रति समाज की इस उपेक्षा के लिए भविष्य ही साक्षी होगा।

अष्टग्रही के अंधविश्वास का विरोध आर्यसमाज अजमेर में सार्वजनिक सभा

दिनाक ४ फरवरी को आर्य-समाज अजमेर में एक सार्वजनिक सभा का आयोजन किया गया। जिसमें श्री पं० सूर्यदेव जी ने भूगोल शास्त्र के अनुसार सौरमण्डल के चित्र के आधार पर तथा कथित आठों ग्रहों के सयोग की स्वाभाविक घटना को समझा कर फलित ज्योतिषियों की भविष्यवाणियों को निराधार बताया।

डी. ए. वी कालिज के आचार्य श्री दत्तात्रेय जी वाले ने गणित ज्योतिष और फलित ज्योतिष का अन्तर समझाते हुए अष्ट ग्रह के अंधविश्वास का विरोध किया तथा भारतीयों को सचेत रहने की प्रेरणा की। इन के अतिरिक्त अन्य विद्वानों के भी भाषण हुए।

डा सूर्य देव जी शर्मा एम. ए.
मंत्री
आर्य समाज अजमेर

सम्पादकीय—

ओ३म्

आर्य जगत्

वर्ष २२] रविवार ७ फाल्गुण २०१८, १८ फरवरी १९६२ [अंक ७

आर्य समाज ! देख ले

अभी तक अपने ही देश में कितना अज्ञान फैला हुआ है। वैसे तो हमारा भारत निरन्तर हर मैदान मे प्रगति के पथ पर बढता जा रहा है अंग्रेजों के युग में साधारण-सी सुई तक भी यहा नहीं बनती थी। इसके लिए भी बाहिर के देशों की ओर देखना पडता था। अन्य वस्तुओं का तो कहना ही क्या? विद्या और शिक्षा का क्षेत्र कितना फैल चुका है। आकड़ों से प्रतीत होता है कि भारत बड़ी शीघ्रता से आगे ही आगे बढ रहा है। वैसे भी तो आज का युग ज्ञान-विज्ञान का युग कहलाता है। चारों ओर प्रकाश का प्रभाव है। शिक्षा के केन्द्रों की क्या कोई कमी है? आज तो मानव भूमि के कोने कोने का पता लगा चुका, पर्वत की ऊंची छत पर चढ कर अपनी पताका फहरा चुका। सागर के तल का जाकर चित्र ले चुका। अब तो धरती से उड़ कर चन्द्रमा में जाने में लगा है। ज्ञान-विज्ञान ने कितनी उन्नति की है। आर्यसमाज को बड़ी प्रसन्नता है कि विज्ञान जितनी भी उन्नति करता है। वेदों के सिद्धान्त उतने अधिक फैलते जाते हैं। क्योंकि वैदिक सिद्धान्त के ज्ञान विज्ञान की आधार शिला पर खड़े हैं। तर्क की कसौटी पर पूर्णतया उतरते हैं। ज्यों २ प्रकाश फैलता जाता है त्यों २ आर्यसमाज का काम भी दिगन्त में प्रसारित हो रहा है। लोग इस की सत्यता के सामने मस्तक झुकाते जाते हैं।

किन्तु अभी तक अन्धविश्वास की भी विश्व में कोई कमी नहीं। सूर्य के प्रकाश और विज्ञान के काल में अज्ञान, भ्रमजाल, अन्धविश्वास ने भी कमाल कर दिया है। आर्य समाज को भलीभांति देखते हुए सोचने और पूरा बल लगा कर बड़े वेग से कार्यपथ पर निरन्तर आगे ही आगे बढने का जीवन सन्देश मिला है। अपने भारत की जनता का चित्र सामने आ गया है। अभी तक नर-नारियों मे कितना अन्ध-विश्वास भरा है। भ्रमजाल ने कितना भारी प्रभाव डाला हुआ है, फलित ज्योतिष का पञ्जा कितना गहरा है, जनता के दिलों की क्या अवस्था है? यह सब कुछ प्रत्यक्ष हो गया। आठ ग्रहों का योग क्या आना था। सारे देश मे अन्ध-विश्वास का एक तूफान-सा आगया। आश्चर्य तो यह है कि अपढ नर-नारी तो अनपढ और और अशिक्षित हैं हीं। उनको भ्रमजाल में लाना विशेष कठिन नहीं। किन्तु शिक्षित जनता ने भी कमाल कर दिया। विद्या शिक्षा भी अविद्या के जाल में फंसी दिखाई दी। अष्टग्रही योग के समाचारों ने जन-जीवन पर कितना प्रभाव डाला? सब ने देख लिया। जिस दिन आठवां ग्रह चन्द्रमा सातों के सामने आया। लोगों में किस प्रकार का भय, संत्रास आतंक फैला। प्रभु ही कल्याण करे। कई स्कूल बन्द हो गये, माता-पिता ने बच्चों को पढ़ने नहीं भेजा। अदालतों में मुकद्दमों की पेशियां कई जगह बन्द हो गई। अगली तारीख ले ली गई। कई स्थानों पर बाजार भी बन्द हो गये। लोग एक दूसरे के गले मिल लिये। क्या पता कल होगा या नहीं? यात्रा बन्द हो गई। सारे प्राय अपने २ घरों में पहु च गये दो राते लोग घरों से भी बाहिर सोये कि भूचाल न आजाये। सारे देश में विचित्र ही तमाशा सा लगा रहा। फलित ज्योतिष ने सब के मन मे क्या हलचल पैदा कर दी हम तो सभा के कार्यक्रम पर करनाल की ओर थे। कई लोग हमे कहते थे कि आप को परिवार और बच्चे प्यारे नहीं। ऐसे भीषण काल मे तो घर ही रहना चाहिए था। हमारा एक ही उत्तर था कि कुछ भी नहीं होगा। इसी अन्ध-विश्वास का तमाशा देखने के लिए तो घूमा जा रहा है। वास्तव मे न कुछ होना था और न ही कुछ हुआ। हा एक बात स्पष्ट हो गई कि इस विज्ञान के समय मे भी देश की दशा क्या है? अन्धविश्वास कितना प्रभाव डाल देता है। हम और सस्थाओं को नहीं कहते। न उन मे ऐसा साहस और न तर्क ही है। वे तो इधर उधर के ऐसे वैसे कार्यों मे जुटी हैं। आर्यसमाज से कहना चाहते हैं। आर्यसमाज! देख ले। अभी देश की कैसे भ्रमजाल के कारण दुर्दशा है। आर्यसमाज के लिए कितना महान काम सामने है। इस अन्धविश्वास से समाज के सिवाय और कौन टक्कर लेगा? आर्यो! आर्य युवको! आपने ही कमर कस कर मैदान में आकर संघर्ष करना है। इधर-उधर की छोटी बातों में क्यों उलझते हो। अविद्या के नाश तथा विद्या की वृद्धि मे लग जाओ। पाखण्ड, माया भ्रमजाल को तोड दो।

—त्रिलोकचन्द्र

ककड़ माजरा में सामवेद पारायण यज्ञ

भक्ति, उत्साह, श्रद्धा का बड़ा सुन्दर दृश्य

सभा को १६०) रुपये वेद प्रचारार्थ भेट

आर्य प्रादेशिक सभा पंजाब जालन्धर ने केन्द्र के साथ २ ग्रामों में भी धूमधाम से वैदिक धर्म का प्रचार करने के लिए कई जिलों मे मण्डल बना रखे हैं, जो वहीं रह कर बड़े समारोह के साथ आर्य समाज का ग्राम २ मे सन्देश देते, उत्सव कथाए कराते तथा वेद पारायण यज्ञ की आयोजना करते रहते हैं। अम्बाला और करनाल दो जिलों को मिला कर सभा की ओर से श्री पं० अमरसिंह जी के प्रबन्ध एव अध्यक्षता मे वेद प्रचार मण्डल काम करता है। इस मे प० जगत-राम जी, ठाकुर दुर्गासिंह जी, पं० शमशेर कुमार जी, प० जयनारायण शर्मा, पं० बस्तीराम जी काम करते है। दोनों जिलों मे प्रचार सम्बन्धी सारा कार्य जारी है। अभी ककड़ माजरा जिला अम्बाला में सारे गाव की जनता ने मिल कर साम वेद पारायण यज्ञ का बड़ा ही भव्य आयोजन किया गया था। यह सारा मण्डल यज्ञ मे शामिल था। पं० त्रिलोक चन्द्र शास्त्री आर्यजगत भी जालन्धर सभा से सम्मिलित हुए।

तारीख ३ फरवरी से ७ तक यह सामवेद यज्ञ प्रात सायं दोनों समय चलता रहा। दोनों समय संगीत व प्रवचनों से प्रचार भी होता था। गाव के लोगों, नारियो तथा बच्चे बच्चियों मे श्रद्धा और भक्ति यज्ञ प्रेम का क्या ठिकाना सारा ग्राम ही यज्ञ में शामिल होता था। धर्म तथा यज्ञ के प्रति कितनी भावना, प्रेम, आस्था तथा रुचि थी। यह तो देखने वाली आंखे ही देखती थीं। मन अतीव प्रसन्न होता था। तीन २ चार २ यज्ञ कराने यजमान सपत्नीक बैठते थे। जिस समय स्वाहा के उच्चारण से यज्ञ कुण्ड में आहुति दी जाती तो सारा वातावरण ही गूज जाता था। मण्डली के मीठे २ संगीत होते। श्री शास्त्री जी वेद की एक २ सूक्ति अर्थ सहित

(शेष पृष्ठ ४ पर)

प्रांतीय आर्य युवक संगठन

ले०—प्रो० श्री वेदीराम जी शर्मा एम० ए० सभा उपमन्त्री

आर्य प्रा० प्र० नि० सभा ने प्रान्त के युवकों को संगठित कर, वैदिक सिद्धांतों से परिचित कराने का कार्य अपने हाथ मे लिया है। यह कार्य कितना समयानुकूल है इसपर कुछ कहने की आवश्यकता नहीं। सभा के साथ सम्बद्ध अनेक स्कूलों और कालेजों का विशाल परिवार है अत इस प्रकार के निश्चय से अवश्य ही अनेक युवक इस पवित्र काय से सुगमता पूर्वक लाभ उठा सकते है। युवक शक्ति को सगठित करने का क्षेत्र भी तैयार है। स्थान २ युवक समाजें स्थापित हैं। कार्य हो रहा है। किन्तु आवश्यकता थी कि इन सभी पृथक २ बिखरी शक्तियों को एक सूत्र मे बद्धकर विशाल सगठन माला मे पिरो दिया जाए।

यह कार्य अब सभा ने करने का निश्चय कर युवकों की चिर अपेक्षित आकांक्षा पूर्ण की है। पिछले अंकों में इसकी सूचना सभी बन्धुओं को प्राप्त भी होती रही है।

इस सूचना का स्थान २ पर प्रेम भरा स्वागत हुआ है। रोहतक से श्री प्रो० रघुवीर जी ने लिखा है और अपनी अमूल्य सेवाए युवक सगठन को प्रदान करने का निश्चय किया है।

इसी प्रकार माडल टाऊन यमुनानगर से श्री भाई ब्रह्मानन्द कौशल जी ने भी प्रेम भरा पत्र लिख कर वहां आने के लिए निमन्त्रण दिया। श्री बृजलाल जी टोहाने वालों ने जालन्धर पधार कर युवकों को सगठित करने की प्रेम पूर्ण प्रेरणा प्रदान कर अपनी सभी प्रकार की (तन, मन व धन) की सहायता का वचन दिया है।

हिसार के ब्रह्म महाविद्यालय के प्राध्यापक, सुयोग्य विद्वान बन्धु श्री रामविचार श्री एम० ए० ने भी अपना समय व शक्ति इस संगठन को दान करने का पूर्ण आश्वासन दिया है।

इन सभी बन्धुओं के उत्साह वर्धन का यह परिणाम है कि अब सभा पूर्ण रूप से इस ओर अग्रसर होने का निश्चय कर चुकी है। शीघ्र ही सगठन की नियमावलि सभी बन्धुओं की सेवा मे प्रेषित की जा रही है। कुछ स्थानों पर युवक सम्मेलनों का आयोजन भी हो रहा है। आर्यसमाज जलालाबाद गर्बी जिला फिरोजपुर के वार्षिकोत्सव पर एक सम्मेलन हो रहा है। इसी प्रकार आर्य युवक समाज माडल टाउन यमुना नगर के बन्धु ब्रह्मानन्द श्री कौशल ने भी क्षेत्रीय युवक सम्मेलन का आयोजन करने का निश्चय किया है।

मैं सभी आर्यसमाजों व आर्य युवक समाजों से प्रार्थना करता हू कि वह इस रचनात्मक कार्य के लिए अपनी पूर्ण शक्ति लगाकर युवक सम्मेलनों का आयोजन कर अपने २ क्षेत्र मे योजनाए बना कर कार्य आरम्भ करने की कृपा करे।

युवक सगठन के इस पावन कार्य मे सभा प्रत्येक बन्धु व प्रत्येक आर्यसमाज व युवक समाज से पूर्ण सहयोग की अपेक्षा रखती है। आशा है शीघ्रातिशीघ्र प्रत्येक समाज अपने यहां युवक समाज स्थापित करने की कृपा करेंगे तथा जहां पहिले ही युवक समाज हैं उसकी पूर्ण स्थिति से परिचित कराने की भी कृपा करेंगे। पिछले कार्य को सयोजित करने में सुभीता हो सके।

आशा भरे हृदय से

आपका बन्धु

—वेदीराम शर्मा उपमन्त्री सभा

आर्यजगत् के वीर सेनानी कष्ट के घेरे में

मुझे यह सूचना देते हुए अपार कष्ट का अनुभव हो रहा है कि आर्यसमाज के मासिक पत्र 'आर्यवीर' के सम्पादक श्री पं० मेहरचन्द जी शर्मा गत दो वर्ष से लगातार बीमार चले आ रहे हैं। उनका एक बाजू गत हिन्दी आंदोलन में फिरोजपुर जेल काण्ड में बेकार हो गया था और उसी के परिणाम स्वरूप अब उनका आधा भाग कार्य करने से बेकार हो गया है।

श्री प० मेहर चन्द जी आर्य समाज के मतवाले प्रचारक हैं। आपने अपने युवाकाल मे आर्यसमाज के कार्य का जो व्रत धारण किया उसे वह आज तक निभा रहे हैं। अपने पर्चे को उर्दू से हिन्दी में करना उनकी हिन्दी सेवा का ज्वलन्त उदाहरण है। ऐसे त्यागी, तपस्वी, वीर सेनानी को कष्ट मे देख किसे कष्ट न होगा? आज उनका पत्र गत दो मास से बन्द हुआ पड़ा है। ग्राहकों ने चन्दे भेजने भी बन्द कर दिए हैं। ऐसी स्थिति मे जहा वह हाथ की बीमारी से पीड़ित थे अब पेट की भूख ने भी परेशान करना प्रारम्भ कर दिया है। क्या हम अपने एक तेजस्वी, कार्यकर्ता का इतना ही सम्मान करना जानते हैं?

इसी तथ्य को सामने रखकर मै आर्य बन्धुओं से विनम्र निवेदन करता हूँ कि वह आर्यवीर की भरसक सहायता कर अपने एक बन्धु को एकाकी होने का आभास न होने दे। जो भाई आर्यवीर के ग्राहक हैं वह चन्दा भेजे तथा जो इसके अतिरिक्त किसी प्रकार की भी सहायता कर सके अवश्य करें।

आशा है सभी भाई मेरी इस विनम्र प्रार्थना पर अवश्य ध्यान देंगे।

आपका बन्धु

—त्रिलोक चन्द्र शास्त्री आर्योपदेशक

(पृष्ठ ३ से आगे)

दोनों समय सब को स्मरण कराते थे। रात को निरन्तर ११ बजे तक प्रचार व संगीत होते थे। जनता से सारा पिण्डाल भरा रहता पूर्णाहुति पर तो कमाल था। सारा ग्राम तथा आसपास का इलाका उमड़ आया। सामग्री, नारियलों से सारा ही यज्ञ कुण्ड भर गया। वह दृश्य सचमुच एक निराला ही था। जनता ने सम्मान, आदर, सत्कार मे बढ कर भाग लिया। उस दिन सारा दिन ही अन्न का भण्डारा भी रात तक चलता रहा सब को भोजन कराया गया। माताओं बहिनों मे तो अनुपम श्रद्धा थी। गाव मे ऐसा यज्ञ पहली बार ही हुआ प्रबन्ध का कार्य भी बड़ा उत्तम था कार्य करने वालों मे श्री राम स्वरूप जी प्रधान, श्री मनोहर लाल जी, श्री गोधाराम, श्री चमनलाल, श्री बैजनाथ, श्री श्रवण नाथ, श्री बनारसी दास, श्री रामेश्वर दास, श्री अमरनाथ, श्री केशोराम, श्री सुरेन्द्र प्रकाश, श्री जगन्नाथ मन्त्री श्री विद्या प्रकाश, श्री दीनानाथ, श्री जीवन राम, श्री कश्मीरी लाल, श्री प्रेम चन्द, श्री मुनीलाल, श्री राम निरंजन, श्री सेवाराम, श्री केदार नाथ, श्री शादीराम तथा अन्य सबने बड़ा ही उत्तम कार्य किया। सभा को वेदप्रचार के लिए १६०) रु० भेट किये गये। यज्ञ की इस श्रद्धा के लिए सबको विशेष बधाई व धन्यवाद। पं० अमरसिंह जी व उनके मण्डल को भी बधाई हो। भगवान् सबका मंगल करे।

—o—o—

वेदों का पढ़ना पढ़ाना सुनना सुनाना सब आर्यों का परम हितकर कर्त्तव्य है

'आर्य समाज और राजनीति'

(लेखक—पिशोरी लाल प्रेम रेणुका जिला सिरमौर)

कुछ आर्य विद्वानों का विचार है कि आर्य समाज का सामूहिक रूप में राजनीति में भाग लेना अति आवश्यक है क्योंकि यदि आर्य समाज के पीछे राज्य शक्ति हो तो आर्य समाज का प्रचार बड़ी सुगमता और शीघ्रता से हो सकता है। इस के विपरीत कुछ आर्य विद्वानों का विचार है कि आर्य समाज को सामूहिक रूप से तो क्या व्यक्तिगत रूप से भी राजनीति में भाग नहीं लेना चाहिए। आर्य समाज को तो शुद्ध पवित्र धार्मिक संस्था ही रहने देना चाहिए। दोनों पक्ष आर्य समाज का हित चाहते है। परन्तु अपना अपना दृष्टिकोण है। इस विषय पर गम्भीरता से विचार करना आवश्यक है।

आर्य समाज के राजनीति में भाग लेने के पक्ष में सत्यार्थप्रकाश के छठे सम्मुल्लास का राज आर्य सभा का प्रमाण दिया जाता है। जो कि इस प्रकार है।

त्रीणि राजाना विदथे पुरूणि परि विश्वानि भूषथ सदांसि॥ ऋ० मं० ३। सू० ३८। मं० ६॥

ईश्वर उपदेश करता है कि राजा और प्रजा के पुरुष मिल के सुख प्राप्ती और विज्ञान वृद्धि कारक राजा प्रजा के सम्बन्ध रूप व्यवहार में तीन सभा अर्थात विद्यार्थ सभा, धर्मार्थ सभा और राजार्य सभा नियत करके बहुत प्रकार के समग्र प्रजासम्बन्धी मनुष्यादि प्राणियों को सब ओर से विद्या, स्वातन्त्र्य, धर्म, सुशिक्षा और धनादि से अलंकृत करें।

त सभा च समितिश्च सेना च ॥१॥ अथर्व का० १५। अनु० २। व० ६। मं० २॥

सभ्य सभा मे पाहि च सभ्या सभासद ॥२॥ अर्थव का० १६। अनु० ७। व० ५५। मं० ६॥

उस राजधर्म को तीनों सभा संग्रामादि की व्यवस्था और सेना मिल कर पालन करें ॥१॥ सभासद और राजा को योग्य है कि राजा सब सभासदों को आज्ञा देवे कि हे सभा के योग्य मुख्य सभासद तू मेरी सभा की धर्मयुक्त व्यवस्था का पालन कर और जो सभा के योग्य सभासद् हैं वे भी सभा की व्यवस्था का पालन किया करें॥८॥

इसका अभिप्राय यह है कि एक को स्वतन्त्र राज्य का अधिकार न देना चाहिए किन्तु राजा जो सभापति तदाधीन सभा राजा और सभा प्रजा के आधीन और प्रजा राज सभा के आधीन रहे।

महर्षि के उपरक्त कथन से यह सिद्ध नहीं होता कि आर्य समाज राज आर्य सभा बनाए अपितु यह सिद्ध होता है कि राजा को या जिन के हाथों मे राज्य व्यवस्था है उनको राज आर्य सभा बनानी चाहिए यदि राज्य व्यवस्था आर्य समाज के आधीन होती तब आर्य समाज, धर्म आर्य सभा, विद्या आर्य सभा के साथ राज आर्य सभा भी बना सकता था।

आरम्भ से ही आर्य समाजियों को यह स्वतन्त्रता दी गई है कि वे व्यक्तिगत रूप से किसी भी राजनीतिक संस्था मे कार्य कर सकते हैं। और उन संस्थाओं के सभासद अथवा पदधिकारी बन सकते हैं। इस स्वतन्त्रता का परिणाम ये हुआ कि आर्य समाज बहुत बड़ी संख्या में कांग्रेस, हिन्दु महा सभा, राष्ट्रीय संघ, समाजवादी, साम्यवादी, स्वतन्त्र पार्टी आदि राजनातिक संस्थाओं में बंट गए। इस से आर्य समाजियों मे आपस मे ही फूट पड़ने लगी और ये आपस मे ही एक दूसरे के विरोधी बन गए। इस प्रकार आर्य समाज में भारी शिथिलता आ गई। यदि आरम्भ से ही आर्य समाजियों को ये स्वतन्त्रता न दी गई होती तो आज आर्य समाज की शक्ति समस्त राजनैतिक संस्थाओं से बढ़ कर होती और भारत की राज्यव्यवस्था आर्य समाज के संकेत पर चलती।

राजनीति मे भाग लेने का तात्पर्य कि लोक सभा, प्रान्तीयविधान सभा, नगरपालिकाओं, डिस्ट्रिक्ट बोर्डों आदि के निर्वाचन मे भाग लेना (जैसे कि हमारे अकाली भाग लेते है) और चुनाव जीतने के लिए छल, कपट, घूसखोरी आदि निकृष्ट अथवा घृणित कार्य करना। क्या आर्य समाज ऐसे कार्य करने लिए के उद्यत हो सकता है?

यदि आर्य समाज अपनी अलग राज आर्य सभा राजनैतिक संस्था) बनाए तो क्या वे आर्य समाज जो दूसरी राजनैतिक संस्थाओं मे काय कर रहे हैं। उन संस्थाओं को त्याग कर राज आर्य सभा मे सम्मिलत होंगे?

परीक्षा के लिए यदि ये नियम लागू किया जाए कि आर्य समाजी या तो आर्य समाज के सभासद् रह सकते हैं या किसी राजनैतिक संस्था के। तो ऐसी अवस्था में बहुत से आर्य समाजी आर्य समाज को तो छोड़ देंगे परन्तु अपनी राजनैतिक संस्था को नहीं छोडेंगे। बात कड़वी है परन्तु है सत्य।

अब गम्भीरता से विचार कीजिए। एक ओर तो है शुद्ध, पवित्र, वैदिक, धर्म का प्रचार सत्य, अहिंसा, न्याय, तप, त्याग और बलिदान की भावना दूसरी ओर लोक सभा प्रान्तीय विधान सभा आदि के सभासद् बनने का लोभ और चुनाव में जीतने के लिए छल, कपट, झूठ, हिंसा, घूंसखोरी ईर्ष्या और द्वेष की धधकती अग्नि में जलना।

आर्य समाज तो क्या कि भी भी धार्मिक संस्था का चाहे वह सिख धर्म हो सनातन धर्म सभा हो अथवा कोई भी धार्मिक संस्था हो उसका वर्तमान राजनीति मे भाग लेने का तात्पर्य है अधर्म के मार्ग पर चल पड़ना छल, कपट, झूठ, हिंसा और अन्याय के मार्ग पर चलना। क्योंकि वर्तमान राजनीति का आधार है छल, कपट और झूठ।

अन्त मे इतना ही निवेदन करता हू कि आर्य समजियो के व्यक्तिगत रूप मे राजनीति मे भाग लेने से आर्य समाज दिन प्रति दिन शिथिल होता जा रहा है और यदि सामूहिक रूप मे इसने राजनीति मे भाग लिया तो यह समाप्त हो जाएगा आर्य समाज का नाम तो चाहे रह जाए परन्तु आर्य जीवन तथा सिद्धान्त प्रेम सर्वथा समाप्त हो जाएगा इसलिए मै बड़ी नम्रता से आर्य समाज के हित चिन्तकों से निवेदन करता हू कि वे आर्य समाज को राजनीति की दल दल से बचाएं ताकि वेद प्रचार का कार्य प्रगति से हो सके॥

आर्य समाज विरोधी साहित्य के उत्तर प्रकाशन की योजना

महर्षि दयानन्द आर्य समाज के प्रवतक और उसके सिद्धान्तों के विरुद्ध लिखे गये साहित्य का उत्तर लिखवाकर प्रकाशित करने की सार्वदेशिक सभा की योजना है। जिन आर्य समाजों और आर्य सज्जनों के पास ऐसा साहित्य हो वह सभा में भेज देवें और यदि वह बाजार में प्राप्त हो तो नाम, मूल्य तथा मिलने के पते से सभा को सूचित कर देवें। इस कार्य के विषय में कुछ लिखने की आवश्यकता नहीं है। आर्य समाजों तथा आर्य महानुभावों को इस दिशामे सभा को पूरा-पूरा सहयोग देकर उस की इस योजना को सफल बनाने में अपने कर्त्तव्य का पालन करना चाहिये।

(कालीचरण आर्य मंत्री)

आर्यसमाज लक्ष्मणसर

पिछले दिनों अमृतसर मे जहां अष्टग्रही यज्ञों की भरमार थी वहां गायत्री तथा यजुर्वेद के मन्त्रों से यह महान् यज्ञ श्री स्वामी ब्रह्मानन्द जी की अध्यक्षता मे परम सात्विक और वैदिक विधि से २४ जनवरी से ६ फरवरी तक होता रहा, जिसका अष्टग्रहों से कोई सम्बन्ध नहीं था अपितु पूर्व निश्चित प्रोग्राम के अनुसार विश्व कल्याण की भावना से नगर के एक प्रतिष्ठित व्योपारी और मिल ओनर लाला रामरखामल कपूर एंड सन्ज़ की ओर से पूर्ण उदारता से विधिवत घी, सामग्री, चन्दन, केसर और कस्तूरी आदि के प्रयोग से किया गया। इस मे आर्यसमाज लक्ष्मणसर के कार्यकर्ताओं, विशेषत. श्री महाशय लालचन्द जी चोपडा और महाशय शोरी लाल जी का विशेष सहयोग प्राप्त था।

सुन्दर मण्डप और विशाल हवन कुण्ड की शोभा देखने से सम्बन्ध रखती थी। लुध्याना के श्री महाशय किशोरीलाल जी के सुपुत्र श्री मद्रसेन जी तथा पुत्री सुधा का वेद पाठ का अनोखा ढङ्ग विशेष आकर्षण उत्पन्न कर रहा था। आर्य प्रादेशिक प्र० सभा के सुयोग्य महोपदेशक श्री पंडित ओ३म् प्रकाश जी के प्रभावशाली भाषणों को जनता ने बहुत पसन्द किया।

इन दिनों हजारों नये स्त्री पुरुष आर्य समाज के प्रभाव में आये।

निवेदक
रुद्रदत्त शर्मा

आर्य जगत् के ग्राहक बनें औरों को बनायें

आर्यसमाज (अनारकली) मन्दिर मार्ग, नई दिल्ली

वार्षिक चुनाव २८-१-१९६२

प्रधान—श्री भगवानदास पुरी, जनरल मैनेजर, नैशनल बैंक आफ लाहौर, दिल्ली।

उप-प्रधान—श्री शांति नारायण, प्रिंसिपल, हंसराज कालेज, दिल्ली। रा बा. डा० गणेशदास कपूर, कर्जन रोड, नई दिल्ली। श्री गणपतराय तलवाड, पूसा रोड, नई दिल्ली। पं० पद्मदेव, सदस्य लोक सभा, नई दिल्ली। श्री हरिश्चन्द्र जी, प्रिंसिपल, डी० ए० वी० हायर सैकेन्डरी स्कूल, नयी दिल्ली।

मन्त्री—श्री दयाराम शास्त्री एम० ए० डी० ए० वी० हायर सैकेन्डरी स्कूल, नयी दिल्ली।

उप-मन्त्री—श्री दरबारीलाल एम० ए० सुप्रिएटेण्डेण्ट, डी० ए० वी० कालेज मैनेजिंग कमेटी, नयी दिल्ली। श्री ओमप्रकाश एम० ए० बी० टी० डी० ए० वी० हायर सैकेन्डरी स्कूल, बेअर्ड रोड, नयी दिल्ली। श्री मुन्शीराम सचदेवा, नयी दिल्ली। श्री राधाकृष्ण ठाकुर, एम ए बी टी, डी ए वी हायर सैकेन्डरी स्कूल यूसफसराये, नयी दिल्ली। श्री गोपाल कृष्ण दत्त, नयी दिल्ली।

कोषाध्यक्ष—श्री बृजलाल सोनी, मुख्य क्लर्क, डी ए वी कालेज, मैनेजिंग कमेटी, नयी दिल्ली।

सहायक-कोषध्यक्ष—श्री रामशरणदास कपूर।

लेखानिरीक्षक—श्री मेहरचन्द पुरी, पटेल नगर, नई दिल्ली।

पुस्तकालयाध्यक्ष—श्री साहबसिंह जी एम ए डी. ए. वी. हायर सैकेन्डरी स्कूल, बेअर्ड रोड, नई दिल्ली।

सहायक—श्री प्रेम कृष्ण भारद्वाज, डी० ए० वी० कालेज प्रबन्ध कर्तृ सभा, नई दिल्ली।

देश व जाति के निष्काम सेवक

स्वर्गीय देशभक्त बाबा लक्ष्मणदास "ऊनवी"

[ले०—चौ० अमरसिंह जनरल सैकेटरी पंजाब प्रदेश कांग्रेस]

ऊना (जिला होश्यारपुर) के स्वर्गीय देश भक्त बाबा लक्ष्मणदास (पंडित) जी की आज ४वीं वर्षी मनाई जा रही है। स्वर्गीय देश तथा जाति के एक सच्चे निष्काम सेवक थे। आप के परिवार के चार सदस्यों ने स्वतंत्रता आंदोलन में कटिबद्ध भाग लिया। बाबा जी अमर शहीद सरदार भक्तसिंह जी के चचा सरदार अजीतसिंह जी के सहपाठी एवं घनिष्ट मित्र थे जबकि दोनों ने सन १८९९ में एक साथ जालंधर से मैट्रिक पास की। उसके बाद दोनों साथी ला कालिज बांस बरेली (यू० पी०) में प्रविष्ट हो गए, किंतु थोड़े ही समय में कालिज छोड़ दिया। सरदार भक्तसिंह तथा उनके चचा सरदार अजीतसिंह के साथ स्वर्गीय बाबा जी की लम्बी चौड़ी अमर गाथा सम्बन्धित है। यहां केवल बाबा जी तथा उनके देशभक्त परिवार का ही संक्षेप में उल्लेख है।

स्वर्गीय बाबा जी पुलिस में भर्ती हुए। हैडकांस्टेबल बने। थानेदार बनने वाले ही थे किंतु उनके दिल में अंग्रेजी सरकार के जुल्म तथा असह्य अत्याचारों को सहन न कर सकने के कारण उनके दिल में घृणा उत्पन्न हो गई जिसके परिणाम स्वरूप पोलीस की नौकरी का परित्याग कर दिया।

उसके बाद स्वर्गीय बाबा जी ने अपने नए जीवन का श्रीगणेश एक अध्यापक के रूप में किया, साथ ही अरायजनवीसी की परीक्षा पास की। सन् १९११ में महर्षि दयानंद के सिद्धांत के अनुयायी बने जिसके कारण उन्होंने आर्य समाज का अनथक प्रचार किया। जब कि इस इलाका में बाबा जी आर्य समाज के सर्वप्रथम उत्साही, लग्नशील कार्यकर्ता थे। स्वर्गीय के दिल में देश सेवा सामाजिक जागृति विद्या प्रचार एवं स्त्री शिक्षा-प्रसार की क्रियात्मिक भावना कूट-कूट कर भरी हुई थी।

(क्रमशः)

प्रतिष्ठित सदस्य

महात्मा आनन्द स्वामी जी सरस्वती, डा मेहरचंद महाजन, भूतपूर्व चीफ जस्टिस आफ इंडिया। डा गोवर्धनलाल दत्त. उप-कुलपति, विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन। डा गोकुलचंद नारंग। रा. बा डा महाराज कृष्ण कपूर। श्री रामलाल हंस, ठेकेदार, दिल्ली। लाला दीवानचंद जी।

सदस्य अन्तरंग सभा

श्री पुरुषोत्तमलाल जी वानप्रस्थी। श्री डा दौलतराम महत्ता, श्री ज्ञानेंद्र जी, प्रिंसिपल आर एन चौपड़ा, पी जी. डी. ए. वी कालेज, नई दिल्ली। श्री प्राणनाथ चड्ढा। श्री वेदप्रकाश कोहली, १६, बीडनपुरा करोल बाग, नई दिल्ली। श्री सोमनाथ श्री पूर्णचंद जी, श्री टी आर. हांडा श्री तिलकराज अग्रवाल, १६-जी, ज्वाहर नगर, दिल्ली। श्री मनोहर लाल कपूर, पं० डी. डी. अग्निहोत्री। श्री धर्मवीर, श्री प्रेमनाथ जी, माता मेला देवी, श्रीमती सुशीला दूबे, प्रिंसिपल, दयानंद माडल स्कूल, नयी दिल्ली। श्री एस. डी दूआ, जनरल मैनेजर, यूनियन बैंक आफ इण्डिया, चांदनी चौक, दिल्ली। श्री लालचंद खन्ना, ७४, जनपथ, नयी दिल्ली। श्री जगन्नाथ सूद, श्री अयुध्यानाथ कपूर।

सभा द्वारा वेद प्रचार की धूम

—आर्यसमाज राजौरी (जम्मू) का उत्सव १६ से १८ मार्च को सम्पन्न हो रहा है। १३ से खुशीराम शर्मा की कथा होगी। राजपाल जी श्री मदन मोहन जी चिमटा मंडलीके भजन हुआ करेंगे।

—आ० स० जलालाबाद का उत्सव ६ से ८ अप्रैल को धूमधाम से सम्पन्न हो रहा है। २ अप्रैल से खुशीराम शर्मा कथा कहेंगे। ८ ता० को प्रो० वेदीराम जी युवक समाज की प्रधानता करेंगे।

—आ० स० जोगेन्द्र नगर का यज्ञ, उत्सव ६ अप्रैल से १३ तक धूमधाम से सम्पन्न हो रहा है।

—आ०स० भागलपुर (बिहार) का उत्सव २३ मार्च से सम्पन्न हो हो रहा है। श्री प० चन्द्रसेन जी पधार रहे हैं।

—आ० स० लाजपत नगर सोनीपत का उत्सव २० से २२ अप्रैल को समारोह से सम्पन्न हो रहा है। २५ ता० से कथा होगी

—आ० स० जुलाना शाहीपुर का उत्सव १७, १८, १९ मार्च को समारोह से सम्पन्न हो रहा है। जमादार भरतसिंह जी, प्रभुदयाल जी चौ० भूराराम जी पधार रहे हैं।

—आ० स० निडाना को उत्सव २३ से २५ फरवरी को समारोह से सम्पन्न है।

—आ० स० सूडा वाली का उत्सव ९ से ११ मार्च को सम्पन्न हो रहा है।

—आ० स० मिर्जापुर खेडी का उत्सव २० से २२ फरवरी को धूमधाम से सम्पन्न हो रहा है।

—आ० स० माडल टाऊन लुधियाना का उत्सव २ से ४ मार्च को सम्पन्न हो रहा है। मान्यवर प्रिं० सूर्यभानु जी प्रधान सभा ४ ता. को पधार रहे हैं।

—आ० स० बड़ेसरा का उत्सव १२ से १४ मार्च को समारोह से सम्पन्न हो रहा है।

—आ० स० माडल टाउन गुड़गावा का उत्सव ३१ मार्च १-२ अप्रैल को धूमधाम से सम्पन्न हो रहा है। २६ ता० से ३० तक कथा। राजपाल मंडली के भजन।

—आ० स० अखनूर (जम्मू) का उत्सव ११ से १३ मार्च को सम्पन्न होरहा है। ४ता०को श्रीमान पं० ओंप्रकाश जी यजुर्वेद पारायण यज्ञ तथा कथा कहेंगे। मा० तारा चन्द जी के भजन होंगे।

—आ० स० अग्रवाल का उत्सव १४ से १५ मार्च को धूम-धाम से सम्पन्न होगा।

—आ० स० फिरोजपुर शहर का उत्सव २३ से २५ मार्च को समारोह से सम्पन्न हो रहा है।

—आर्य समाज फाजलका का उत्सव मार्च मे सम्पन्न हो रहा है।

—आ० स० बुन्दावाद का उत्सव मार्च के अन्तिम सप्ताह मे सम्पन्न हो रहा है।

—आ० स० मडीनादागी का उत्सव १६ से १८ मार्च को सम्पन्न हो रहा है।

—आ० स० मिचपुर का उत्सव १६ से १८ मार्च को सम्पन्न हो रहा है।

आ० स० धारीवाल का उत्सव २०-२१-२२ अप्रैल को सम्पन्न हो रहा है। १५ ता० से खुशीराम शर्मा कथा कहेंगे।

आ० स० भंभेवा का उत्सव २२ से २४ मार्च को समारोह से सम्पन्न हो रहा है।

आ० स० पुरानी मडी जम्मू मे २८ फरवरी से ४ मार्च तक शिवरात्रि पर्व समारोह से सम्पन्न हो रहा है।

आ० स० शाम चौरासी का उत्सव १६ से १८ मार्च को सम्पन्न हो रहा है। श्रीमान् हजारी लाल जी पधार रहे हैं।

—आ० स० टिटौजी का उत्सव १९ से २१ मार्च को सम्पन्न हो रहा है।

खुशी राम शर्मा
अधिष्ठाता वेद प्रचार

आर्यसमाजों से निवेदन

सभी आर्य बन्धुओं से विनम्र निवेदन है कि २६ फरवरी १९६२ से ४ मार्च १९६२ तक ऋषि बोधोत्सव धूमधाम से मनाने की कृपा करें।

इस महान पर्व को मनाते हुए सभी आर्य नर नारी अपने परिवार के प्रत्येक सदस्य के हिसाब से चार आना फंड वेद प्रचार के लिए अवश्य इकट्ठा करने की कृपा करें।

और एकत्रित धन सभा में भेजने की कृपा करें। प्रायः आर्यसमाजें इस दिशा में कुछ उदासीनता का व्यवहार करती हैं। कृपया इन प्रमुख त्यौहारों को प्रधानता से मनाना चाहिये। और सभा का फण्ड भी अवश्य इकट्ठा करना चाहिये। यही विनम्र प्रार्थना है।

विनीत—खुशीराम शर्मा
वेद प्रचार अधिष्ठाता

मोहन-आश्रम हरिद्वार का ऋषि-मेला

कुम्भ मेले के अवसर पर ऋषि मेला ४ मार्च सन् ६२ शिवरात्री के ऋषि बोध दिवस से आरम्भ हो कर महात्मा हंसराज जी के जन्म दिवस १९ अप्रैल सन् ६२ तक मनाया जायेगा।

इस अवसर पर गायत्री महा यज्ञ और सामवेद पारायण यज्ञ होंगे। बड़े-बड़े आर्य संन्यासी महात्माओं के उपदेश विद्वानों के व्याख्यान तथा भजनोपदेशकों के मनोहर ईश्वर भक्ति के भजन होंगे। अतिथि सत्कारार्थ ऋषि लगर भी चलेगा।

४ मार्च ऋषि बोध दिवस से वेदों की कथा आरम्भ हो जायेगी।

१ अप्रैल से बृहद् यज्ञ आरम्भ हो जायेंगे।

१३ अप्रैल बैसाखी पर पूर्ण आहुतियां दी जायेंगी।

१९ अप्रैल को महात्मा हंसराज जन्मोत्सव मनाया जावेगा।

श्री पूज्य पाद महात्मा आनन्द-स्वामी जी महाराज, प्रधान मोहन-आश्रम ट्रस्ट, १अप्रैलसे मेला समाप्ति तक आश्रम में रह कर अपनी देख रेख में सब कार्य सम्पन्न करायेंगे। श्री पूज्य पाद पं० नरदेव जी शास्त्री वेद तीर्थ, कुलपति गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर बसन्त पचमी से मेला समाप्ति तक मोहनआश्रम मे निवास करके कृतार्थ करेंगे। श्री पूज्यपाद स्वामी ब्रह्ममुनि जी परिव्राजक विद्यामार्तण्ड, श्री पं० रुद्रदत्त जी विद्याभास्कर आर्य महोपदेशक आदि-आदि गण्य मान्य महर्षि भक्तों ने मेले मे सम्मिलित होने के बचन दिये हुए हैं।

ऋषि भक्तों से सानुरोध निवेदन है कि इस ऋषि मेले में सम्मिलित होकर महर्षि दयानन्द जी की भावनानुसार वैदिक धर्म का प्रचार कार्य सम्पन्न करने की महती कृपा करें।

मेले में आने वाले ऋषि भक्तों से निवेदन है कि अपने आने की सूचना पहले ही देने की कृपा करें, ताकि उन के लिये निवास आदि का उचित प्रबन्ध समय पर किया जा सके

मोहनआश्रम हरिद्वार रेलवे स्टेशन व बस स्टैन्ड से २॥ मील की दूरी पर गंगा के किनारे ऋषिकेश रोड पर है प्रायः १।) से १॥) तक तांगा और ८ आने से १२ आने तक रिक्शा भी मिल जाती है।

निवेदक
(स्वामी) सच्चिदानन्द तीर्थ
अधिष्ठाता, मोहनआश्रम, हरिद्वार

रजि० नं० पी० १२१

आर्यजगत के पाठकों से नम्र निवेदन

आर्य जगत का इस से अगला ऋषिबोध अंक २५, ४ और ११ मार्च का सम्मिलित अंक होगा उसके बाद १८ मार्च को प्रकाशित होगा।

—व्यवस्थापक

सेवक की आवश्यकता

आर्यसमाज लक्ष्मणसर, अमृतसर के लिये एक ईमानदार, अनुभवी सेवक की आवश्यकता है जो साधारण हिन्दी लिख पढ़ सकता हो। निवास और साइकल की सुविधा आर्य समाज की ओर से दी जावेगी।

सत्यव्रत शर्मा (प्रधान)
आर्यसमाज लक्ष्मणसर,
अमृतसर

शोक समाचार

ज्वालापुर महाविद्यालय (हरिद्वार) के प्रमुख कार्यकर्ता नैष्ठिक ब्रह्मचारी श्री स्वा० आनन्द प्रकाश जी तीर्थ का ८० वर्ष की अवस्था में बहुत लम्बी बीमारी के के पश्चात् ६ तारीख की रात्रि के १२ बजे स्वर्गवास हो गया।

स्वामी जी के निधन से जहां गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर की हानि हुई है, वहां आज सारा आर्य जगत उनके ओजस्वी और निर्भीक सिंहनाद के लिए तरस रहा है। गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर और आर्य जगत उनकी सेवाओं का चिर ऋणी है। ईश्वर उनकी आत्मा को सद्गति प्रदान करें।

भवदीय
नन्दकिशोर
मुख्याधिष्ठाता

आर्य जगत में विज्ञापन देकर लाभ उठायं

—आर्यजगत् परिवार को शुभ सूचना—

'आर्य जगत्' साप्ताहिक का

—ऋषि बोध अंक—

आर्यजगत् का ऋषिबोध अंक शिवरात्री के शुभ पर्व पर ४ मार्च १९६२ को बड़ी [illegible] प्रकाशित हो रहा है— मुखपृष्ठ पर चित्ताकर्षक [illegible] जी का अति सुन्दर चित्र होगा। इस के अतिरिक्त [illegible], सामाजिक और धार्मिक समयोपयोगी लेख, कविताएं होंगी। अत. सभी आर्यप्रेमियों व समाजों से प्रार्थना है कि अधिक से अधिक प्रतियां मंगा कर शीघ्र ही सूचित करने की कृपा करें। ताकि ठीक समय पर उचित प्रबन्ध करके आपकी प्रत्र द्वारा सेवा की जा सके। इस अंक का मूल्य ३७ न० पै० होगा।

नोट—१ व्यापारियों के लिए विज्ञापन देने का बहुत अच्छा सुअवसर है।

२. आर्य संस्थाएं व समाजें तथा अन्य सभी व्यक्ति २० फरवरी तक अपने २ आर्डर भेजने की कृपा करें। देर से आर्डर आने वालों की समय पर सेवा नहीं की जा सकेगी।

३. लेखक व कवि अपनी रचनाएं १५ फरवरी तक भेजने की कृपा करें।

व्यवस्थापक
आर्य जगत्
निकट कचहरी जालन्धर शहर

चुनाव

आर्य युवक परिषद् दिल्ली

पदाधिकारियों का निर्वाचन

रविवार ता० ७ जनवरी, १९६२ को दोपहर २ बजे से आगामी वर्ष के लिए निर्वाचन सर्व सम्मति से निम्न प्रकार हुआ :—

प्रधान—श्री देवी दयाल आर्य उप प्रधान—श्री कृष्णचन्द्र शास्त्री उप प्रधान—श्री किशोरी लाल [illegible] उप प्रधान—श्री कुलदीप राज। प्रधान मंत्री—श्री सत्यप्रकाश, परीक्षा मंत्री —श्री पं० देवव्रत धर्मेन्दु कार्यालय मंत्री—श्री राम अवतार, प्रचार मंत्री —श्री राधेश्याम गुप्त, उप मंत्री—श्री स्वदेश पाल उप मंत्री—श्री ओम प्रकाश, कार्य-कारिणीके सदस्य—श्री विपिन विहारी श्री कैलाशचन्द्र खोसला श्री अमरनाथ श्री रामचन्द्र श्री ब्रह्म कुमार वैद श्री धर्म देव श्री राधू राम शास्त्री श्री लक्ष्मी चन्द्र श्री शान्ती स्वरूप श्री डा० नवल किशोर श्री सुभाष कुमार सहाय।

परिषद ने बसन्त उत्सव, ऋषि बोध उत्सव, व आर्य युवक सम्मेलन आदि के अन्य कार्यक्रम भी निर्धारित किए हैं आर्य युवकों को इन सभी कार्य क्रमों से विशेष उत्साह पैदा होगा।

सत्य प्रकाश
प्रधान मंत्री

आर्यसमाज, बाजार सीताराम

देहली का वार्षिक चुनाव

४-२-६२ को निम्न प्रकार से हुआ।

प्रधान—श्री रूपलाल जी, उप-प्रधान—श्री नन्दकिशोर जी खन्ना, श्री बालकृष्ण दास जी, मंत्री—नरेन्द्र नाथ गुप्ता, सहायक मन्त्री—श्री सुरजन सिंह जी, श्री राजाराम शास्त्री, श्री श्याम बाबू महेश्वरी, कोषाध्यक्ष— श्री बाबूराम आर्य, पुस्तकाध्यक्ष— श्री सत्य प्रकाश, निरीक्षक—श्री बैजनाथ जी अरोड़ा।

अन्तरंग सदस्य

श्री ईश्वरदास जी, श्री बाबूराम जी, श्री देवराज अग्रवाल, श्री बनवारी लाल, श्री दौलतराम जी, श्री भगवान दास जी, श्री देवदत्त जी भारद्वाज, श्री देव प्रकाश जी वर्मा, श्री रामचन्द्र जी मित्तल, श्री [illegible] जी, श्री [illegible] जी, श्री [illegible] जी, मि० रामदास जी, श्री वाचस्पति जी, श्री न्यादरमल जी गुप्ता।

भवदीय
नरेन्द्रनाथ गुप्ता मन्त्री

भारत सूचना [illegible] की प्रतिलिपि

मतदाताओं के लिए [illegible] का पहचान-पत्र

नई दिल्ली—४ फरवरी, १९६२ चुनाव आयोग की एक विज्ञप्ति में बताया गया है कि उससे यह पूछा गया है कि उम्मीदवार मतदाताओं को गैरसरकारी रूप से अपना जो पहचान-पत्र देते हैं, उसमें कौन-सी बातें शामिल होनी चाहिए और कौन-सी नहीं। मतदान केन्द्र में मतदाता को अपने बारे में दो बातें मालूम करनी होती हैं : (१) मतदाता-सूची में उसकी क्रम-संख्या और (२) खण्ड संख्या। मतदाता के लिए यह बात सहायक होगी कि पहचान-पत्र में उसका नाम, क्रम-संख्या और मतदान-केन्द्र का भी नाम हो।

यदि पहचान-पत्र में उम्मीदवार का नाम या उसकी पार्टी का नाम या उसका चुनाव-चिन्ह हो तो कोई आपत्ति नहीं है। परन्तु पहचान-पत्र में पार्टी या उम्मीदवार के पक्ष में कोई नारा न हो, क्योंकि यह मतदान-केन्द्र में प्रचार माना जायगा और केन्द्र में प्रचार करने की अनुमति नहीं है।

मुद्रक व प्रकाशक श्री संतोष राज जी मंत्री आर्यप्रादेशिक प्रतिनिधि सभा पंजाब जालंधर द्वारा वीर मिलाप प्रेस, मिलाप रोड जालंधर से मुद्रित तथा आर्यजगत कार्यालय महात्मा हंसराज भवन निकट कचहरी जालन्धर शहर से प्रकाशित हुआ मालिक—आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा पंजाब जालन्धर

टेलीफोन नं० ३०७५ [आर्यप्रादेशिक प्रतिनिधि सभा पंजाब जालन्धर का साप्ताहिक मुखपत्र] Regd No. P-121

एक प्रति का मूल्य १२ नये पैसे वार्षिक मूल्य ६ रुपये

वर्ष २२ अंक ११) रविवार ५ चैत्र २०१८— १८ मार्च १९६२ दयानन्दाब्द १३७ (तार-प्रादेशिक जालन्धर

वेद सूक्तयः

इयं वीरुन् मधुजाता

इयं—यह वीरुत-ब्रह्मविद्या-मधुजाता-ब्रह्म से पैदा हुई है। यह ब्रह्मविद्या वेद-विद्या उस प्रभु से ही मिली है। वही रस का भण्डार है। मधुमय भगवान से मधुविद्या मिली।

मधुना त्वा खनामसि

हम मधुना-प्रेम से श्रद्धा से त्वा-तुझ को खनामसि-प्राप्त करते हैं। इस ब्रह्मविद्या को प्राप्त करने के लिए प्रेम और श्रद्धा की आवश्यकता है। आस्था और श्रम से यह मिलती है।

सा नो मधुमतस्कृधि

हे ब्रह्मविद्ये ! वह नू न-हम को मधुमत-मधुमय कृधि-कर दे हमारे जीवन को मिठास से भर दे। सारा कटुपन दूर करके मीठा कर दे।

अथर्ववेद

वेदामृत

ओ३म् विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परासुव।
यद् भद्रं तन्न आसुव ॥ यजु० ३०-३

अर्थ—हे (सवित) सकल जगत के उत्पत्तिकर्ता समग्र ऐश्वर्य युक्त (देव) शुद्ध स्वरूप सब सुखों के दाता परमेश्वर ! आप कृपा करके (न) हमारे (विश्वानि) सम्पूर्ण (दुरितानि) दुर्गुण, दुर्व्यसन और दुःखों को (परासुव) दूर कर दीजिए (यत्) जो (भद्रम्) कल्याण कारक गुण, कर्म स्वभाव और पदार्थ हैं (तत्) वह हम सब को (आसुव) प्राप्त कीजिए।

(ऋषि दयानन्द भाष्य)

भाव—हे सारे चर अचर विश्व के स्वामिन ! हे देव ! हम तेरे हैं जैसे भी हैं, तेरी सन्तान ही तो हैं। अपनी टेर पुकार सुनाने तेरे दरबार में आये हैं। हम जानते हैं कि हमारे मन का वस्त्र मैला है, मन का पात्र गदला है। हमारे जीवन में पता नहीं कितने दुर्गुण भरे हुए हैं। कितनी वासनाओं ने हमें घेर रखा है। किन्तु पुत्र को फिर भी क्या चिन्ता है? उसके पास माता पिता तो हैं, जो उसका मलिन वस्त्र निर्मल जल से धो देता है। पात्र पवित्र कर देगा।

हे देव ! अमृतमयी मां ! हम तेरे पास बैठकर यही मांगते हैं। हमें कुछ और तेरा प्रसाद मिले या न मिले इसकी कोई चिन्ता नहीं। कौन-सा पदार्थ आपने हमें नहीं दे रखा। हम तो एक ही बात चाहते हैं, प्रसाद मांगते हैं कि हमारे जीवन के सारे दुर्गुणों को, तमाम बुराईयों को दूर कर दो इन से हम दुःखी हैं, जीवन मैला हो गया है, मन काला हो चुका है। कृपा करो—सारे व्यसन हटा दो। इन के स्थान पर पवित्र विचार दो, कल्याण और सुख देने वाले भाव भर दो। शुभ गुण, नेक कर्मों की प्रवृत्ति का दान दो हम पवित्र, नेक, सद्गुणी व आपके प्यारे बन जायें।

सुनो हमारी पुकार देव ! स०

ऋषि दर्शन

ईश्वर एव गुरुः

ईश्वर-ईश्वर एव-ही गुरु-गुरु है। भगवान ही सब से बड़ा और सब का गुरु है। भूत वर्तमान तथा भविष्य में हुए और होने वाले सारे गुरुओं का भी गुरु है।

उपदिशति सत्यानर्थान्

वह परमेश्वर सत्यान - सत्य अर्थान-अर्थों को उपदिशति-उपदेश करता है वही परमगुरु ईश्वर सब को सत्य अर्थों का उपदेश करता है। वेद ज्ञान के सत्यार्थ का दाता है।

स च सर्वदा नित्यः

स च-और वह सर्वदा-सदा ही नित्य-नित्य है। वह परमात्मा महान गुरु सदा ही नित्य है। वह अजर और अमर है। एक रहता है। उस में न तो विकार तथा न ही परिवर्तन होता है।

भाष्य भूमिका

अधिष्ठाता—संतोष राज मंत्री सभा सम्पादकः त्रिलोक चन्द्र शास्त्री

ओ आर्यवीर! उठ जाग

(श्री प० मुरारी लाल जी शास्त्री प्रधान आर्यसमाज हिसार)

हे आर्यवीर! उठ जाग। पवित्र पावन शिवरात्री पर्व अमरता का सदेश लेकर आयाथा। यह सोने का समय नहीं है। यह क्राति, उत्क्रांति की वेला है, सामाजिक जगत् मे जाग, राजनैतिक जगत् में जाग, व्यक्तिगत जीवन में जाग समष्टिगत जीवन में जाग। तेरी समाज का प्रवर्तक जागा, न केवल वह स्वयं जागा, ससार को जगा गया। मगर तू इस युग में जबकि तेरे जागने की विशेष आवश्यकता थी सो गया खुर्राटे लेने लगा। जिस ध्येय पर वा उद्देश्य पर जीवन नैया राष्ट्र नौका तुझे ले जाती थी तू ने तो नाव तथा पतवार बीच ही में छोड़ दी। यह मान कर कि ध्येय प्राप्त कर लिया अब कुछ करना शेष नहीं मगर मंजिल दूर है। क्या तुझे ऋग्वेद का यह मन्त्र स्मरण नहीं वेद भगवान तुम को जागने का सन्देश दे रहे हैं आदेश दे रहे हैं। उपदेश दे रहे हैं।

यो जागार तमृच कामयन्ते,
यो जागार तमु सामानि यन्ति।
यो जागार तमय सोम आह,
तवाहमस्मि सख्ये न्योका॥

जो जागता है उसे ऋचाए चाहती हैं। जो जागता है उसे ही स्तुतिगान प्राप्त होते हैं। जो जागता है उसे ही यह सोम (सोम्य संसार) सामने आकर कहता है कि मैं तेरा हूं तेरी मित्रता में ही मेरा निवास है।

ससार में परिपूर्ण जानने वाला वो एक परम पिता परमात्मा ही है वह सर्वदा सर्वथा जागरूक है।

उसमें अज्ञान, तमोगुण का लेशमात्र भी नहीं। इसलिए संसार के सकल सुख साधन ऐश्वर्य तथा भोग उसी को चाह रहे हैं।

इसी प्रकार हम पुरुष अपनी शक्ति के अनुसार तमोगुण, अज्ञान को पास नहीं आने देंगे।

और जागरुक, सावधान तथा कटिबद्ध होकर आलस्य के कभी भी वशीभूत न होकर कर्तव्य पालन करेंगे तो हम भी उतने ही अंश में अग्नि रूप होकर तथा जगाने वाले बनकर लोगों के, राष्ट्र के स्तुत्य और प्रजाओं के यशोगान के अधिकारी भी बन जाएंगे। और संसार के सकल भोग्य पदार्थ हमको आसानी से प्राप्त हो जाएंगे।

अतएव—'उठ जाग मुसाफिर! भोर भई अब रैन कहां,' तुझे तो अनाथों की पालना करनी थी।

तुझे तो विधवाओं की रक्षा करनी थी। तुझे चरित्र निर्माण करना था।

तुझे तो आस्तिकता का प्रचार करना था।

तुझे तो वर्णाश्रम धर्म की मर्यादाओं का पालन करना और कराना था।

तुझे तो इस अन्धकार मयी रात्रि मे ज्ञान दीपक जलाकर पथ भ्रष्ट लोगों का पथ प्रदर्शन करना था। तुझे तो राष्ट्र निर्माण करना था।

ओ भोले तुझे तो उस सभ्यता तथा संस्कृति का सन्देश घर-घर पहुंचाना था जिस सस्कृति और सभ्यता में गौतम, कपिल, कणाद व्यास, जैमिनि, शंकर तथा दयानंद ने जन्म लेकर संसार को आत्म कल्याण का पाठ पढ़ाया। परोपकार के गीत गाये।

आज ब्रह्मचर्य स्कूल कालिजों में विलास कर रहा है।

गृहस्थ नगरों ग्रामों में रुदन मचा रहा है।

वान प्रस्थ वनों में चीख रहा है।

संन्यास स्वयं संन्यासी बन गया है।

ओ आर्य! संसार को आर्य बनाने वाले तू स्वयं परस्पर उलझ रहा है।

यह शिवरात्री तुझे जगाने आई है। गीता के शब्दों में सुन।

या निशा सर्व भूतानां,
तस्या जागर्ति संयमी।
यस्या जागर्ति भूतानि,
सा निशा पश्यतो मुने॥

सम्पूर्णभूत प्राणियों के लिए जो रात्रि उस नित्य शुद्ध बोध स्वरूप परमानन्द में भगवत को प्राप्त हुआ योगी पुरुष जागता है और जिस नाशवान क्षणभंगुर सांसारिक सुख में सब प्राणी जागते हैं तत्व को जानने वाले मुनि के लिए वह रात्रि है।

ज्यों-ज्यों समय बीतता जायगा दयानन्द की ईमानदारी, दयानतदारी, सचाई, उनका ऋषित्व संसार नत मस्तक होकर स्वीकार करता चला जायगा। आवश्यकता केवल आर्यसमाज को आर्य बनाने की है क्योंकि ब्रह्मचर्य पवते।

अतएव—

उठ आर्य वीर जाग,
खोल दे भारत मा के भाग
निन्द्रा तन्द्रा त्याग,
करके वेद धर्म अनुराग॥

और यदि तू परस्पर कलह में उलझा रहा, आलस्य प्रमाद में पड़ा रहा और तब जागा कि तेरे जीवन की शाम हो गई तो क्या लाभ। तब तो कोई न बच सकेगा और न बचा सकेगा।

जागे न समय पर, तो बात कहूं सांची यार। तो फिर प्यारे दयानंद की कहानी रह जायगी।

हंसराज, लाजपत और पण्डित लेखराम और प्यारे श्रद्धानन्द की निशानी मिट जाएगी।

अतएव
ओ—आर्य वीर। उठ जाग
आर्य वीर। उठ जाग

—०—०—

ऋषि दयानन्द

(ले० श्री प० हरबसलाल जी 'मुजरिम' दसूआ)

ऋषि दयानन्द दुनियां दी अख दा तारा
ऋषि मेरा भारत दा चानणा सितारा।
सचाई दा पुतला ते बातल दा दुश्मन
बेदा दा आशिक ते ईश्वर दा प्यारा
वतन दी आजादी दा पहला पैगम्बर
आजादी दे मंदिर दा पहला पुजारा
यतीमा गरीबा अछूता दा रक्षक
मगर राजयां सावी कोरा करारा
जो तूफान दा खौफ खांदी सी किश्ती
ए उस ही किश्ती दा बनया किनारा
जिन्हें बादशाहत नू ठोकर लगा के
फकीरी दे विच आप कीता गुजारा
जमाने दे संकट खुशी नाल सहले
गुरु बिरजा नंद जी दा पाकर इशारा
शर्म नाल झुक जाए सिर आर्यां दा
दयानन्द आ जाए जेकर दबारा
जदों बेलबांने सी तड़फाट पाया
ऋषि हो गया आके आर्दों सहारा
जमाने नूं आर्य बना देवां मैं भी
ऋषिवर का जेकर मिले दिल उदारा
मुबारिक ने नजरा उना दियां मुजरिम
जिना ने है दिट्ठा ऋषि दा नाजारा

सम्पादकीय—

ओ३म्
आर्य जगत्

वर्ष२२] रविवार ५ चैत्र २०१८, १८ मार्च १९६२ [अंक ११

युवक जाग उठा

युवक परिवार का प्रहरी है, समाज का स्तम्भ तथा जाति का जीवन माना गया है। इस के जागने पर राष्ट्र जागता तथा सो जाने पर सारा जीवन सो जाता है। यह चेतना का प्रतीक है, उत्साह साहस का केन्द्र है और है प्रगति का मान दण्ड। आर्य समाज युवकों का सदा से संगठन कर के प्रोत्साहन देता रहा है। इस को शक्ति को समाज में लाने का विशेष ध्यान देता आया है। आज जितने भी समाज के नेता, महारथी एवं कार्यकर्ता हैं-ये सारे उसी युवावस्था से ही इस क्षेत्र में आये और समाज के हो रहे। आर्य समाज के संमाज युवक समाज की बड़ी २ विशाल शिक्षण छावनियां हैं। इन में इस शक्ति को विश्व की अविद्या अज्ञान, अन्याय आदि बीमारियों, बुराईयों और शत्रुओं से टक्कर लेने के लिए शिक्षा दीक्षा दी जाती है। ये निर्माण के केन्द्र हैं, जिन में जीवन निर्माण का अनुपम भण्डार भरा है। आर्य समाज ने इस दिशा में बड़ा ही शानदार कार्य किया व कर रहा है। सारा समाज इस का प्रशंक है।

कुछ समय से युवक संगठन की गम्भीर चर्चा चल रही थी। आर्य समाज को इस कार्य के निमित्त विशेष ध्यान दे कर संगठित आयोजन बनाने के लिए कहा जा रहा था। वैसे युवक समाज में कई स्थानों पर काम कर के समाज का मस्तक ऊंचा कर रहे हैं। कुछ संगठन भी चल रहा है। किन्तु और अधिक कार्य की आवश्यकता अनुभव की जा रही थी सारे समाज को यह शुभ समाचार सुन कर बड़ी प्रसन्नता होगी कि शिवरात्री के पुण्य पर्व पर आर्य प्रादेशिक सभा पंजाब जालन्धर की ओर से इस दिशा में युवक समाजों का काम आरंभ हो गया है। इस बार डी. ए. वी कालेज जालन्धर में सजी हुई विशाल यज्ञ शाला में सभा के प्रधान माननीय प्रिंसिपल सूर्यभानु जी की प्रधानता में प्रो. वेदी राम जी शर्मा एम. ए. के विशेष उत्साह व स्फूर्ति से युवक समाज के जागरण का दर्शनीय दृश्य देखा। छात्रालय के एफ ए. से ले कर एम ए. के युवकों में जो भावना, प्रेम, श्रद्धा और उल्लास देखा, उसे देख कर मन और वाणी मिल कर कह उठते हैं कि युवक जाग उठा। इस अवसर पर सभा मन्त्री श्री. संतोष राज जी, प्रिं. चमन लाल जी उपप्रधान, प्रो. सत्य देव जी विद्यालंकार प्रो देव राज जी गुप्ता, श्री. सोन्धी जी आदि कई प्रतिष्ठित सज्जन उपस्थित थे। कितना भव्य दृश्य था यज्ञ शाला का, कितनी मनोरम दीपमाला थी कितना चेतना प्रद वातावरण था, कितना मीठा युवकों का यज्ञ था—मन भूल नहीं सकता। युवकों के इस जागरण पर इस सारे महानुभावों को, युवक समाज तथा प्रो. वेदी राम जी प्रधान युवक समाज को हार्दिक बधाई दे कर अपनी अन्य संस्थाओं में भी ऐसा यवक जागरण की आयोजना चाहते हैं। सभा ने इस वर्ष युवक समाजों का संगठन, निर्माण तथा एक दिवसीय वार्षिकोत्सव का विचार किया है। सारे युवक तथा समाजें हर स्थान पर उत्साह से काम करना आरम्भ कर दें। प्रो. वेदी राम जी शर्मा डी.ए.वी. कालेज जालन्धर से सीधा सम्पर्क पैदा कर के सभा का पूरा २ सहयोग लें। प्रसन्नता है कि युवक जाग उठा है-इस के जागने में सारे समाज का कल्याण है।

—त्रिलोक चन्द्र

हार्दिक बधाई

आर्य समाज ने अपने विशाल आंदोलनसे धार्मिक, सामाजिक तथा शिक्षणक्षेत्रों में शानदार कार्य किया और कर रहा है। वर्तमान राजनीति या निर्वचनों में इस के सदस्यों को अपनी २ रुचि में स्वाधीनता है। इस चुनाव में आर्य समाज के कई मान्य सज्जन विजयी हो कर विधान सभाओं, लोकसभा में पहुंच गये हैं। अपनी सभा के मान्य सदस्य श्रीयुत यश जी उपशिक्षा मन्त्री पंजाब, श्री, प्रिंसिपल रलाराम जी एम ए. को आर्य जगत् की ओर से हार्दिक बधाई। श्री प. जगदेव सिंह जी सिद्धान्ती उपप्रधान आर्यप्रतिनिधि सभा पंजाब, श्री स्वामी रामेश्वरानन्द जी महाराज, श्री पं. प्रकाशवीर जी शास्त्री भी लोक सभा में चुने गये-उन को भी हार्दिक बधाई। श्री. यश जी ने पंजाब में शिक्षा क्षेत्र में कितना शानदार कार्य किया है। पूर्णाशा है कि सारे प्रान्त व देश की सेवा में लगे रहेंगे। प्रभु इन को और कीर्ति यश देवें आर्य समाज को सदा सामने रखेंगे।

ऋषि दयानन्द टिकट

गत शिवरात्री चार मार्च को डाकतार विभाग की ओर से स्वतन्त्रता संग्राम के अग्रणी आर्य समाज के प्रवतक महर्षि दयानन्द सरस्वती के सम्मान मे ऋषि के सुन्दर चित्र वाले १५ नये पैसे के डाक टिकट जारी किये हैं। टिकट बड़े ही मनोहर है। ऋषि दयानन्द के पवित्र कार्य के प्रति भारत सरकार ने अपने कुछ कर्तव्य पालन की ओर ध्यान दे कर बड़ा अच्छा किया है। जालन्धर में उसी दिन आर्य प्रादेशिक सभा के प्रधान प्रिंसिपल सूर्यभानु जी एम. ए ने सब से पहिले टिकट खरीदा। दिल्ली में सार्वदेशिक सभा के प्रधान स्वामी ध्रुवानद जी महाराज ने खरीदा। आर्यों ने बड़ी संख्या में टिकट खरीदे। हम सब से कहना चाहते हैं कि ये ऋषि टिकट भारी संख्या में खरीदें। साथ ही भारत सरकार से भी कहते हैं कि १५ नये पैसों वाले इन टिकटों के साथ २ पाच और दस पैसे वाले ऋषि टिकट भी निकालें ताकि कार्डों पर भी लगा सके। यह भी अनुरोध है कि भारत के विद्या शिक्षा की गगा को बहाने वाले तपस्वी त्यागी इस युग के भगीरथ स्वर्गीय महात्मा हंसराज जी निर्भीक नेता स्वामी श्रद्धानन्द जी के भी डाक टिकट जारी करे। सारी सभाए, सार्वदेशिक सभा देहली तथा लोक सभा के अपने मान्य सदस्य इस ओर कृपया विशेष ध्यान देने की कृपा करें। इन ऋषि टिकटों के लिए श्री. प. प्रकाशवीर जी शास्त्री एम. पी. के पुरुषार्थ तथा ऋषिप्रेम का धन्यवाद है।

धन्यवाद

श्रीमान लाला परमेश्वरी दास जी प्रधान आर्य समाज शामचौरासी ने मेरी प्रार्थना स्वीकार कर के एक सौ एक रुपया कुम्भ प्रचार के लिए दान दिया है। उन का हार्दिक धन्यवाद। अन्य सभी समाजों और दानी सज्जनों से प्रार्थना है कि कुम्भ मेला के प्रचार के लिए शीघ्र ही दान सभा को भेजने की कृपा करें।

सुरी राम शर्मा
वेद प्रचार अधिष्ठाता सभा,

देश व जाति के निष्काम सेवक—

स्वर्गीय देशभक्त बाबा लक्ष्मणदास "ऊनवी"

(ले० चौ० अमरसिंह जमरल सैक्ट्री पंजाब प्रदेश कांग्रेस)

(गतांक से आगे)

नोट—इस से पूर्व का सम्बन्ध १८ फरवरी १९६२ के अंक में पढ़ें।

बाबा जी के जीवन में दूसरा परिवर्तन आया जबकि सन १९२१ में जल्या वाले बाग के हीरो डा० सतपाल जी से उनकी ऊना में ही भेंट हुई। स्वर्गीय बाबा जी ने डाक्टर सतपाल जी द्वारा अपनी देश सेवायें बापू गांधी के लिए प्रस्तुत कीं। बाबा जी का स्वतन्त्रता आन्दोलन सम्बन्धी कार्य देखकर डिप्टी कमिश्नर होशयारपुर ने बाबा जी के लिए आर्डर जारी किया कि आप गांधी 'आन्दोलन में कदापी भाग न ले सकेंगे क्योंकि आप सरकारी लाईसेंस-दार हैं। दूसरी वारनिंग के अनुसार उन्हें लाईसैंस वापसी या कांग्रेस के त्याग के लिए आदेश दिया गया। स्वर्गीय बाबा जी ने भूखे रहना पसन्द करते हुए लाइसेन्स अरायजनवीसी सरकार को वापस कर दिया। अपना जीवन स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिए महात्मा गांधी जी के आंदोलन कार्य मे अर्पण कर दिया। जबकि आज से ४१ वर्ष भारत पराधीन था, बेचारे देश भक्तों पर अंग्रेज सरकार नृशंस एव पाश्विक अत्याचार करती थी परन्तु स्वर्गीय बाबा जी (लक्ष्मणदास जी ने) महात्मा गांधी के अनुयायी बनकर कांग्रेस के झण्डे के नीचे भारत की स्वतन्त्रता के लिए शपथ ग्रहण की।

स्वर्गीय देशभक्त बाबा लक्ष्मणदास जी तथा उनकी धर्मपत्नी माता दुर्गाबाई की स्वतन्त्रता प्राप्ति की सद्‌भावनाओं का परिवारिक प्रभाव उनके बच्चों पर भी अमिट छाप सिद्ध हुआ। इसी परिणाम स्वरूप इनके स्वर्गीय ज्येष्ठ पुत्र बख्शी सत्यप्रकाश 'बागी' तथा बाबा जी पिता पुत्र दोनों को अंग्रेज सरकार के विरुद्ध आंदोलन तथा कांग्रेसी विचारानुयायी होने के आरोप में सन १९३० में गिरफ्तार किया गया। यह स्मरणीय विषय है कि बख्शी सत्यप्रकाश बागी की आयु केवल १९ वर्ष की थी। डी० ए० वी० हायर सैकण्डरी स्कूल ऊना के दसवीं श्रेणी के छात्र थे, जो कि विद्यार्थी जीवन के बाद ५ बार गिरफ्तार हुए। तीन बार सख्त सजा पाई, आखिर असाध्यरोग के कारण ३५ वर्ष की आयु में स्वर्गवास हो गए। यह बाबा जी की प्रेरणा का ही प्रत्यक्ष परिणाम है।

स्वर्गीय बाबा जी महर्षि दयानन्द तथा महात्मा गांधी के निष्काम सेवक थे। कई वर्षों आल इण्डिया दयानन्द दलित उद्धार मंडल का कार्य करते रहे। साथ ही १९२२ में कांग्रेस के प्रचारक रहे हैं। बाबा जी ने पंजाब, सिन्ध, बलोचिस्तान के इलाकों में घूमकर समाज कल्याण तथा कांग्रेस का कटिबद्ध प्रचार किया। बाबा जी के भाषण में सचाई, प्रेम, ईश्वरभक्ति की गम्भीर भावना होती थी। इन्हें आत्मिक बल तथा ईश्वर सत्ता पर पूर्ण विश्वास था।

स्वर्गीय बाबा लक्ष्मणदास जी का अपने १४ वर्षीय सुपुत्र स्वर्गीय बख्शी सत्य प्रकाश बागी' के साथ गिरफ्तार होना पंजाब प्रान्तीय स्वतन्त्रता आंदोलन में एक विशेष स्थान रखता है। स्वर्गीय बाबा जी की घरेलू आर्थिक स्थिति तथा उनकी निष्काम देशभक्ति पर सहायता के लिए पारितोषिक रूप में पंजाब सरकार ने जिला हिसार में साढ़े बारह एकड़ भूमि अलाट की है। स्वर्गीय बाबा जी वहीं पर एकान्त सेवन के लिए कुटिया बनाकर भगवान भजन तथा लोकसेवा कार्य में संलग्न थे। ८ फरवरी सन १९५७ की प्रात आकस्मिक रोग से ७८ वर्ष की आयु में स्वर्गवास हो गए।

यद्यपि आज स्वर्गीय बाबा इस लोक में नहीं हैं, किन्तु उनकी देशभक्ति तथा निष्काम सेवा-भाव की अमर गाथा कांग्रेस तथा आर्यसमाज के इतिहास में अंकित रहेंगी।

आर्यसमाज किला जालन्धर नगर

का चुनाव ३-३-१९६२ को हुआ। प्रिं० चमनलाल जी एम० ए०, एम० एल० सी० को सर्व सम्मिति से प्रधान चुना गया और उन्हें अन्तरंग सभासद् तथा अधिकारी मनोनीत करने का अधिकार दिया गया।

प्रधान जी ने निम्नलिखित अधिकारी तथा सभासद घोषित किये हैं।

उपप्रधान—डा० हुकमचन्द जी मल्ला, ला० शकरदास जी त्रेहन, ला० सन्तोषराज जी, प्रिं० विद्यावती जी आनन्द। मन्त्री—श्री खुशहाल चन्द पाराशर। उपमन्त्री श्री देवीदास जी गुप्ता, श्री नरदेव जी शास्त्री, श्री ज्ञानचन्द जी त्रेहन कोषाध्यक्ष— पं० सीताराम जी। पुस्तकाध्यक्ष— रोशनलाल जी। अन्तरंग सभासद—प्रिं० सूर्यभानू जीं, प्रिं० प्यारेलाल जी बेरी, प्रिं० चंचल दास जी, प्रो० सत्यदेव जी विद्यालंकार, प्रो० वेदीराम जी, श्री प्रकाश देव जी, श्री रघुनाथ सहाय जी, श्री बंसीलाल जी बाली, श्री दुनीचन्द जी, श्री ज्ञानचन्द जी, श्री केदारनाथ जी सग्गी, श्री दर्शनलाल जी जग्गी, श्री वेदमित्र जी, श्री मदनलाल जी सेठ।

—खुशहाल चंद पाराशर मन्त्री

यमुना नगर की सब समाजों का उत्तम निर्णय

यमुना नगर की सब समाजों के अधिकारियों ने सम्मिलित रूप में सब त्यौहारों को मनाने का निर्णय किया है।

इस निर्णय के अनुसार इस वार ऋषिबोध उत्सव ४ मार्च रविवार प्रात: आर्य समाज मोडलटौन यमुना नगर में श्री चिमनलाल जी की प्रधानता में बड़ी धूमधाम से सम्पन्न हुआ। जिस में संध्या, हवन आदि नित्यकर्म के अतिरिक्त स्कूलों की छात्राओं के मनोहर भजन व अनेक योग्य विद्वानों के ऋषिजीवन पर भाषण हुए। इस परम्परा की उन्नति के लिए ईश्वर से प्रार्थना की गई।

कविराज रामसिंह वैद्य
मन्त्री आर्यसमाज यमुनानगर

मोडलटौन पानीपत में ऋषिमेला की धूम

शिवरात्री पर्व पर पानीपत में ऋषिमेला धूमधाम से सम्पन्न हुआ। मोडलटौन की गलियों मुहल्लों में एक सप्ताह पूर्व प्रभात फेरी होती रही। पं० हजारीलाल जी भजनीक सभा के इस अवसर पर मनोहर भजन होते रहे। ४-३-६२ को रामलीला ग्रौंड में खेलों कुश्ती आदि का मनोरंजक प्रोग्राम रहा, मैदान स्वामी जी के जयघोष से सारा दिन गूंजता रहा। अंत में विजित व्यक्तियों व छात्रों को इनाम बांटे गए।

—नंदलाल मन्त्री

वेदों का पढ़ना पढ़ाना सुनना सुनाना सब आर्यों का परम हितकर कर्त्तव्य है

बोध रात्री और हम

(ले० श्री राम चन्द्र जी आर्य मुसाफिर अजमेर)

आज से लगभग १३५ वर्ष पूर्व गुजरात प्रान्त के टंकारा नामक ग्राम में एक ब्राह्मण कुलोत्पन्न बालक ने शिवरात्री का व्रत इस अभिप्राय से किया कि उसके पूज्य पिता जी ने उसे समझाया कि यदि तुम निराहार व्रत करोगे और रात्री जागरण भी करोगे तो तुम्हें निश्चय ही कैलाशपति शिव के साक्षात् दर्शन होंगे, भोला बालक सरल प्रकृति ज्ञान-पिपासु था पिता जी के वचनों पर पूर्ण श्रद्धा और विश्वास था, भगवान शंकर के साक्षात् दर्शन ने बड़ा उत्साह उत्पन्न कर दिया। फलतः उसने निश्चित तिथि पर समस्त दिन तो निराहार व्रत किया और रात्री को जागरण भी करता रहा।

अर्धरात्री के लगभग जब बालक ने देखा कि पिता जी के सहित अन्य भक्तों पर भी निद्रा देवी ने आक्रमण किया तो वे तो इसे सहन न कर सके और निद्रा देवी की गोदी में समा गये किन्तु यह होनहार बालक जिसका शुभ नाम मूल शंकर था कैलाश पतिसे साक्षात् होने की प्रबल लालसा में आंखों पर पानी के छींटे मार-मार कर निद्रा देवी के आक्रमण का मुकाबला करता रहा। इधर दिन भर का भूखा प्यासा उधर तामसी वृत्ति निद्रा का आक्रमण कोमल, प्रकृति बालक यह सब द्वन्द सहता हुआ निद्रा का प्रबल प्रतिपक्षी हुआ आक्रमण सहता रहा। यकायक आधी रात्री बीत जाने पर जो घटना घटी उसे आर्यसमाज का बच्चा २ जानता है। बालक मूलशंकर को उस ऐतिहासिक घटना से कैलाश पति शिव के दर्शन तो न हुए किन्तु जो बोध उसने प्राप्त किया वह न केवल अपने पास ही रक्खा किन्तु साधारण रूप से मनुष्य मात्र को और विशेष रूप से हिन्दु जाति को देकर पार्थिव पूजा के सिद्धात को निराधार, निष्फल निरुपयोगी सिद्ध करके महान उपकार किया। बालक मूलशंकर ने सच्चे शिव की खोज में क्या २ कष्ट नहीं उठाये, जब हम उनको ध्यान में लाते हैं तो हृदय कांप उठता है। उन्होंने शिव क्या है? कैलाश पति कौन है? इन रहस्य को जानने के वास्ते दयानन्द, बनकर भयंकर वनों की खाक छानी अनेक हिंसक जीवों से आत्म रक्षा करते हुए जो आत्म-बोध प्राप्त किया उससे केवल अपना ही उद्धार किया हो ऐसा नहीं किंतु जिस समाज में उन्होंने जन्म लिया था उस समाज के उद्धारार्थ अपना समस्त संचित ज्ञान कोष सत्यार्थ प्रकाश के रूप में लिखकर मानव मात्र के उद्धारार्थ जन २ के हाथ में दिया।

आज उस संचित ज्ञान कोष से स्वर्गीय गुरुदत्त, स्वामी श्रद्धानन्द जी जैसे न जाने कितनी आत्माओं ने शांति प्राप्त की, साथ ही अपने पीछे अपने उत्तराधिकारी के रूप में कृण्वन्तो विश्वमार्यम् अर्थात् ऐ परमेश्वर के अमृत पुत्रों आर्यो? उठो और समस्त संसार को आर्य (उत्तम मानव) बनाओ।

अपने जन्म काल से लेकर बराबर आर्यसमाज उस तपस्वी ऋषि के सिद्धांतों का प्रचार करता आ रहा है, खेद है कि कुछ वर्षों से स्वार्थान्ध, पदलोलुपता आदि दुर्गुणों की आंधी ऐसी भयंकर चली है कि जिसने सर्वसाधारण तो क्या हमारे उच्चकोटि के ऋषि-भक्त नेताओं तक को भी विचलित कर दिया है। एक समय था जहां आर्य-आर्य के लिये प्राण निछावर करता था आज वह आर्य भाई राजनीति के दांव पेंच में पड़ कर अपने भाई से दो-दो हाथ करने में और उसे गिराकर सबल मनोरथ होने में गौरव अनुभव कर रहा है। है न यह पतन की पराकाष्ठा? हमारी प्रत्येक गति विधि जो ऋषि ने देश जाति और धर्मोद्धार के हेतु रची थी आज उसमें दरार ऐसी प्रबल पड़ गई है कि जिसका भरना असम्भव प्राय प्रतीत हो गया है, हमारे सामाजिक संगठन में भी भयंकर दरारे पड़ गई हैं जिनके कारण एक आर्य भाई दूसरे आर्य भाई का खुलकर अपमान का कारण हो जाता है। हमारी बड़ी से बड़ी और छोटी से छोटी सभाओं में जाति बिरादरी के नाम पर गठबन्धन होने लगे हैं, गुण कर्म, स्वभाव और योग्यता का सुनहरी नियम जो ऋषि ने दिया था हमारे द्वारा ठुकरा दिया सा प्रतीत होता है।

जिन सामाजिक बुराइयों से आर्य जाति का घोर पतन हुआ एवं जिन से आर्य जाति की रक्षा करने के हेतु भगवान दयानन्द ने समाजिक सुख को लात मार अपनों के ही द्वारा अनेक बार विष पान किया तथा भांति-भाति के अपमान सहे किंतु जाति हित से पीछे कदम न रखा, आज वे ही सामाजिक बुराइयां हमारी शिक्षण तथा समाज सुधार की सस्थाओं में तेजी से प्रविष्ट होकर पनपती जा रही हैं, स्वर्गीय महामना मालवी जी ने आर्य समाज के संगठन की भूरी-भूरी प्रशंसा की थी और कलियुग में "संघेशक्तिकलियुगे" यह मंत्र बताया था आज आर्यसमाज के संगठन में भारी दरार पड़ गई है, हम आर्य कहलाने वाले वैदिकधर्मी ऋषि के भक्त आज से ४० वर्ष पूर्व कहां थे और अब कहां हैं यह अपने ज्ञान नेत्र खोल कर देखेंगे तो अपने को बहुत पिछड़ा हुआ पाएंगे। इस लिए मैं कहता हूं कि आगामी दया नन्द बोधरात्री से यदि आर्य भाई बहिन बोध प्राप्त करें तो न केवल आर्य समाज का वरन् भारत वर्ष का महान कल्याण होगा, अन्यथा आज आर्य समाज की गतिविधि भी उन्हीं निर्जीव सस्थाओं की भांति होकर रह जाएगी जैसी कि भूतकाल में होती रही है। क्या मैं आशा करूं कि यह सन् १९६२ ई० की बोध रात्रि हम आर्यों में नव बोध प्रदान करके हमें धार्मिक, सामाजिक, राजनीतिक एवं अन्य सभी क्षेत्रों में नेतृत्व प्राप्त कराने का बल प्रदान करेगी।

१. खेद का विषय है कि जहां ऋषि ने ५ वर्ष के लड़का लड़की को भी साथ पढ़ने की आज्ञा नहीं दी वहा उसी ऋषि के नाम पर कतिपय शिक्षणायों में सहशिक्षा दी जा रही है। जो महान् अनिष्ट का कारण सिद्ध हो रही है।

शहीदी मेला

अमर शहीद पं० लेखराम जी आर्य मुसाफिर की बलिदान पुण्य स्मृति में प्रति वर्ष की भाति इस बार भी ४—५—६ मार्च को लेख-राम नगर कादिया में शहीदी मेला धूमधाम से मनाया गया। वर्षा थी फि भी समारोह शानदार था। इस में श्री पंडित शान्ति प्रकाश जी शास्त्रार्थ महारथी, श्री पं० त्रिलोक-चन्द जी शास्त्री, पंडित तेजभानु जी, श्री पं० धर्मपाल जी सि० भूषण पं० हंस जी के ओजस्वी भाषण व भजन हुए। सरदार प्रतापसिंह जी की प्रधानता में शहीदी सम्मेलन के सारे नगर के सज्जनों, युवकों तथ स्त्री समाज ने पूरा सहयोग दिया श्री हकीम सत्यपाल जी बटाल आदि सज्जन बाहिर से पधारे उत्साही श्री रमेश जी, श्री रोशनल जी को बधाई।

दयानन्द कालेज जालन्धर में शिवरात्री

युवक समाज का दर्शनीय उल्लास

आर्य समाज तथा डी. ए वी. कालेज कमेटी देहली से सम्बन्धित संस्थाओं में दयानन्द कालेज जालंधर का अपना विशिष्ट स्थान है। इसका भव्य भवन, शानदार छात्रावास, हरक्षेत्र में प्रगति, सुप्रसिद्ध प्राध्यापक मंडल, बढ़िया प्रबन्ध, शुद्ध वातावरण अपना रूप आप ही है। सारे समाज व सभा को इस महान् संस्थान पर बड़ा ही मान है। इसकी सर्वतोमुखी उन्नति पर इसके मान्य सुयोग्य, गम्भीर प्रिंसिपल सूर्यभानु जी एम. ए. प्रधान सभा तथा उन के सारे मान्य सहयोगी साथी बधाई के पत्र हैं। कालेज में शानदार युवक समाज भी है। जिस के प्रधान युवकों में नवचेतना भरने वाले प्रो० वेदीराम जी शर्मा एम. ए. तथा मन्त्री श्री यादव जी हैं। प्रति सप्ताह बडा ही सुन्दर विशेष कार्यक्रम होता है तथा दैनिक सत्सङ्ग भी लगता है। इस बार शिवरात्री पर रविवार रात को मान्य प्रिंसिपल जी की प्रधानता में युवक समाज की ओर से बडा ही शानदार समारोह मनाया गया। सारा यज्ञमण्डप बिजली की बत्तियों से जगमग कर रहा था। एफ. ए. से लेकर एम. ए. तक की ऊंची कक्षाओं के सारे युवक बड़े ही उत्साह, उल्लास से भरे यज्ञ में शामिल थे। सङ्गीत व वेदमन्त्रों की ध्वनि तो सुनने वालों को आत्मविभोर कर रही थी। कौन कहता है कि आर्य समाज की संस्थाओं में कार्य नहीं होता। इस समय का वातावरण तथा उत्साह देखकर ऐसा कौन सा सज्जन था जिसका मन और रोम २ नाच न उठा हो। इस अवसर पर प्रिंसिपल ला० चमनलाल जी उपप्रधान सभा, महामंत्री श्री ला० सन्तोषराज जी, श्री प्रो० सत्यदेव जी विद्यालङ्कार एम. ए. श्री सोंधी जी. सभा कार्यालय अध्यक्ष, प्रो० देवराज जी गुप्त एम. ए., प्रो. वेदीराम जी शर्मा एम. ए. प्रधान कालेज युवक सभा, श्री हरिदत्त जी व्यवस्थापक आर्य-जगत पं० रोशनलाल जी आदि महानुभाव विद्यमान थे।

श्री प्रो० वेदीराम जी ने इस समारोह का आरम्भ करते हुए बड़े सुन्दर शब्दों में कालेज की युवक सभा का संक्षिप्त परिचय देते हुए आज के पर्व पर प्रकाश डाला। इसके बाद पं० त्रिलोक चन्द जी शास्त्री का शिवरात्री के बारे में अपने विचार प्रकट करते हुए कालेज के युवकों के उल्लास को देख कर अपनी सारी अन्य संस्थाओं में भी ऐसा कार्य कराने के लिए मान्य अधिकारियों को ध्यान देने का निवेदन किया। मान्य प्रिंसिपल जी के सारगर्भित, प्रभावपूर्ण तथा युवकों का पथप्रदर्शन करने वाला प्रवचन दिया, अन्त में प्रो० वेदीराम जी ने युवकसमाज की ओर से सब का धन्यवाद किया।

इस समारोह को देखकर मन कह उठता है कि हमारे युवक जाग उठे हैं। इतने शानदार समारोह तथा भारी उल्लास के लिए हम युवक समाज के सारे अधिकारियों को बधाई देते हुए कहते हैं कि अपनी दूसरी सारी संस्थाओं में यही जीवन ज्योति जगा दो—

आर्यसमाज शाहपुर जिला करनाल चुनाव

प्रधान—श्री आशानन्द जी
उपप्रधान—श्री रामेश्वर दास जी
मन्त्री—श्री हरिसिंह जी
उपमंत्री—धर्मपाल जी
कोषाध्यक्ष—श्री नरसिंह जी
पुस्तकाध्यक्ष—श्री हरिचन्द जी
प्रचारमंत्री—श्री रघुनाथ जी
निवेदक—धर्मपाल उपमन्त्री

आर्यसमाज माडलटाऊन लुधियाना समारोह

सभाप्रधान प्रिं० सूर्यभानु जी का ओजस्वी भाषण

वेदप्रचार के लिए २५०) रु० भेंट

भारत विभाजन से पूर्व आर्य प्रादेशिकसभा से सम्बन्धित मंडी बहाउद्दीन नगर में कितनी शानदार आर्यसमाज थी—उसका औषधालय, प्रचार कार्य तथा मन्दिर बहुत ही प्रसिद्ध था। वहां के प्रधान श्री ला० सन्तराम जी तथा सारा परिवार समाज के अत्यन्त श्रद्धालु थे इधर लुधियाना माडलटाऊन में अपनी कोठी बनाई अपना कार्य आरम्भ किया—वहां समाज के कई मान्य सज्जनों के साथ मिल कर आर्य समाज का सुन्दर मन्दिर बनवा कर सभा से सम्बन्धित कराया। बडी सुन्दर आठवीं तक शाला भी चल रही है। माडल-टाऊन में आर्य समाज के प्रेमियों की अच्छी टीम है। श्री पं० हरिराम जी, श्री बैजनाथ जी, श्री ओं प्रकाश जी, श्री चरणदास जी श्री महेन्द्र जी अनेक सज्जन समाज की सेवा में लगे हुए हैं।

इस बार माडलटाऊन समाज का शानदार महोत्सव हुआ। चित्त बड़ा ही प्रसन्न हुआ। विशाल और सजे हुए पिण्डाल में कार्य प्रारम्भ हुआ। उत्सव से पूर्व कई दिन श्री पं० त्रिलोकचंद्र शास्त्री जी की वेद कथा तथा पं० राजपाल मदनमोहन चिमटा मंडली के भजन होते रहे। प्रातः काल रोज प्रभात फेरी होती रही। बहिनों, सज्जनों, युवकों के साथ २ प्रात काल छोटे-छोटे बच्चे बच्चिया भी प्रभात फेरी में आकर गाते देख कर उल्लास बढ़ता था। कविसम्मेलन सुनने वाला ही था। उत्सव में प्रिंसिपल सूर्यभानु जी एम. ए. सभाप्रधान कुंवर सुखलाल जी आर्य मुसाफिर, महाशय देवी चंद जी एम. ए., श्री पं० त्रिलोक चंद्र जी शास्त्री, श्री राजेन्द्र जिज्ञासु जी एम. ए., स्वामी रामानन्द जी, श्री पं० राजपालमदन मोहन चिमटा मंडली आदि बड़े प्रभावशाली सज्जन पधारे। महाशय देवी चंद जी एम. ए. का भाषण श्री आर्य मुसाफिर के वीरतादायक विचार सुनने योग्य थे। सभा प्रधान प्रिंसिपल सूर्यभानु जी का समाज की ओर से भव्य स्वागत किया गया। उनका प्रवचन स्फूर्ति देने वाला था। सारा ही कार्यक्रम बड़ा ही प्रभावपूर्ण था। वर्षा में भी उत्सव का काम चलता रहा। देवियों की समाज श्रद्धा भी सचमुच प्रशंसा के योग्य थी। समाज के अपने स्कूल के बच्चे बच्चियों का कार्यक्रम भी बड़ा ही मनोरंजक था। इस अवसर पर समाज की ओर से सभा को वेदप्रचार के लिए पूज्य प्रधान जी की सेवा में २५०) रु० सादर भेंट किये गये। माडल टाऊन के इस उल्लास-पूर्ण महोत्सव को, नरनारियों की श्रद्धा, अध्यात्मवाद के प्रति प्रेम, वेदप्रचार की लगन, तथा बच्चे बच्चियों का धर्म शौक देख कर मन मुदित हो गया। इस सफलता के लिए सारे सज्जनों को बहुत बधाई हो—

—o—

दयालपुरा करनाल में

ऋषिबोध उत्सव ४-३-६२ को आर्यसमाज दयालपुरा में स्वामी रामेश्वरानंद जी की अध्यक्षता में सम्पन्न हुआ। इस शुभ अवसर पर स्वामी रामेश्वरानंद जी, पं० चन्द्रसेन के सभा उपदेशक, पं० नंदकिशोर जी शास्त्री तथा ठा० दुर्गासिंह जी तुफान आदि सज्जनों के महर्षि के जीवन पर भाषण व भजन होते रहे।

मोहनलाल गांधी
मन्त्री समाज

सभा द्वारा वेद प्रचार की धूम

—अखनूर जम्मू का उत्सव ६ से ११ मार्च को सम्पन्न हुआ। ५ से यज्ञ एव कथा श्री पं. ओमप्रकाश जी, श्री मा. तारा चन्द जी द्वारा सम्पन्न हुये। उत्सव पर श्री. ठा. दुर्गा सिंह जी, श्री शमशेर कुमार जी पधारे।

—आ. स प्रगवाल का उत्सव १२ से १४ को सम्पन्न हुआ। अखनूर के सज्जन पधारे।

—आ. स. शाम चौरासी का उत्सव १६ से १८ मार्च में सम्पन्न हो रहा है। सभा की ओर से श्री पं. त्रिलोक चन्द्र जी श्री राज पाल जी, श्री मदनमोहन जी खुशी राम शर्मा मेला राम जी भाग ले रहे हैं।

—आ स गाजिया बाद भारत नगर का उत्सव ८ से ११ मार्च को सम्पन्न हुआ। श्री प त्रिलोक चन्द्र जी, श्री. राज पाल जी, श्री. मदन मोहन जी, श्री. राज कुमार जी मत्री उपसभा दिल्ली। तथा दिल्ली का स्टाफ पधारा।

आ स माडल टाऊन लुधियाना का उत्सव २ से ४ मार्च को सम्पन्न हुआ। मान्यवर प्रिं. सूर्य भानु जी प्रधान सभा मान्यवर प्रो वदी राम जी शर्मा, महात्मा देवी चन्द्र जी, पं. त्रिलोक चन्द्र जी, श्री राज पाल जी, श्री मदन मोहन जी पधारे।

—युवक समाज कादिया का उत्सव ४ से ६ मार्च को सम्पन्न हुआ श्री. पं त्रिलोक चन्द्र जी पाधरे।

—आय समाज माडल टाऊन गुडगावा का उत्सव ३१ मार्च १-२ अप्रैल को सम्पन्न हो रहा है। २६ मार्च से खुशीराम शर्मा की कथा और राज पाल जी मदन मोहन जी के भजन होंगे। उत्सव पर श्री. मेला राम जी, श्री. हजारी लाल जी पधारेंगे।

मान्यवर प्रिं सूर्य भानु जी प्रधान सभा से भी प्रार्थना की गई है। प्रि. रला राम जी, प्रि. ज्ञान चन्द्र जी से भी प्रार्थना की गई है।

—आ. स. फाजल्का का उत्सव २३ से २५ मार्च का सम्पन्न हो रहा है। श्री. प ओमप्रकाश जी, श्री. प. चन्द्र सेन जी, मा तारा चन्द्र जी, हजारी लाल जी पधार रहे हैं। १८ से पं. ओमप्रकाश जी की कथा मा तारा चन्द्र जी के भजन होंगे।

—आर्य समाज इन्द्री का उत्सव २१ से २५ मार्च को सम्पन्न हो रहा है श्री अमर सिंह जी का मडल और श्री. प त्रिलोक चन्द्र जी पधार रहे हैं।

—गुरुकुल रायकोट का उत्सव १६ से २१ मार्च को सम्पन्न हो रहा है सभा की ओर से श्री राज पाल जी, मदन मोहन जी पधार रहे हैं।

—आ स. मिर्च पुर का उत्सव १६ से १८ मार्च को सम्पन्न हो रहा है। श्री. हजारी लाल जी, श्री प्रभु दयाल जी मडली पधार रही है।

—८ से ११ मार्च पौली। १३ से १५ भंभेवा। १६ से १८ मार्च मदीना दागी। १६ से २१ टटौली। २३ से २५ बडेसरा। २७ से २८ मार्च को खीसर आदि उत्सव सम्पन्न हो रहे हैं। श्री नत्थू राम जी श्री प्रभु दयाल जी, सुमेर जी, हरि चन्द्र जी, चौ. भूराराम जी, जमादार भरत सिंह जी, इन उत्सवो पर पधार रहे हैं।

—आ. स. पजौड का उत्सव २६ ३१ मार्च को सम्पन्न हो रहा है। श्री. पं. ओमप्रकाश जी, चन्द्र सेन जी, श्री तारा चन्द्र जी, श्री. हजारी लाल जी, पधार रहे हैं।

—आ स. धरिवाल का उत्सव २० से २२ अप्रैल को सम्पन्न हो रहा है। १५ अप्रैल से कथा।

—आ स जोगेन्द्र नगर का यज्ञ उत्सव ६ से १३ अप्रैल को सम्पन्न हो रहा है।

—आ स सोनीपत का उत्सव २० से २२ अप्रैल को सम्पन्न हो रहा है। १५ ता से कथा।

—आर्य समाज जलालाबदा का उत्सव ६ से ८ अप्रैल को सम्पन्न हो रहा है। २ ता से कथा १८ ता युवक सम्मेलन, प्रो. वेदी राम जी शर्मा एम. ए की अध्यक्षता में होगा। ७ रात्री को प्रो वेदी राम जी का भाषण।

—आ स फिरोज पुर शहर का उत्सव २७ से २६ अप्रैल को सम्पन्न हो रहा है।

—अनाथालय करनाल का उत्सव ६ से ८ अप्रैल को सम्पन्न हो रहा है।

शुभ सन्देश

सभा द्वारा हरिद्वार मोहन आश्रम में कुम्भ के अवसर पर पूज्य महात्मा आनन्द स्वामी जी महाराज की अध्यक्षता में प्रचार कैंप लगाया गया है। १२ वर्ष के बाद कुम्भ आया है। लाखों भारत भर के नर नारी पधारते हैं। उन्हें वेदामृत पान कराने और यज्ञ से सुवासित करने का सुन्दर अवसर है। यज्ञ, लगर, प्रचार का विशाल आयोजन किया गया है।

सभी धर्म प्रेमी नर नारियों से प्रार्थना है कि इस शुभ कार्य में सभा को पूर्ण योग देने की कृपा करे। कुम्भ प्रचार, यज्ञ, लंगर के निमित्त शीघ्र धन संग्रह कर सभा को भेजने की कृपा करे। सभी आर्य समाजों से भी यही विनम्र निवेदन है। धन्यवाद

खुशीराम शर्मा
अधिष्ठाता वेद प्रचार

आर्य समाजों से विनम्र निवेदन

सभी सम्बन्धित आर्य समाजों से प्रार्थना है कि शिवरात्रि का महा-पर्व सम्पन्न हो चुका है। कृपया वेद प्रचारार्थ चार आना फड शीघ्र सभा में भेजने की कृपा करें। इस महान् पर्व परजिन्होंने धनइकट्ठा किया है वे भेज देवें। और जहा संग्रह नहीं हुआ इकट्ठा कर भेजने की कृपा करें।

खुशी राम शर्मा
वेद प्रचार अधिष्ठाता

आर्य समाज टोहाना में योग की शिक्षा

प्रसिद्ध ब्रह्मचारी व्यास देव जी महाराज के प्रमुख शिष्य महात्मा जगन्नाथ जी यहा पर पधारे और ४ मार्च से ११ मार्च तक शिक्षा ध्यान योग, आसन और प्राणायाम सिखलाते रहे। साथ ही ईशोपनिषद की कथा भी करते रहे। जनता पर बहुत ही अच्छा प्रभाव पड़ा।

बृजलाल गुप्त
प्रधान आर्य समाज, टोहाना

आर्य समाज मोदोपुर (करनाल)

में शिवरात्री महोत्सव १ ३ ६२ से ४ ३. ६२ तक बडे उत्साह के साथ मन्ा गया। प्रात [illegible] व [illegible] होते रहे। ४-३-६२ को [illegible] ग्राम में घूम कर भजन मंडलियों द्वारा प्रचार हुआ। पर्याप्त संख्या में ग्राम वासियों ने भाग लिया। इस शुभ अवसर पर वेद प्रचारार्थ धन वस्त्र घी आदि प्राप्त हुआ।

मत्री सभा

आर्यजगत् के पाठकों से
—निवेदन—

आर्यजगत् का महात्मा हंसराज अंक उनके पुण्य जन्म दिवस पर १६ अप्रैल को प्रकाशित हो रहा है जिन महानुभावों के पास पत्रों द्वारा सूचना दी गई है वे नोट कर लें कि १६ अप्रैल से तीन चार दिन पूर्व उनके पास यह विशेषांक पहुंच जाएगा।

आवश्यक सूचना

सर्वसाधारण से निवेदन है कि आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा से संबंधित पत्र चाहे वह किसी भी विभाग का हो श्री संतोषराज जी मंत्री सभा के नाम भेजने की कृपा किया करें।

—व्यवस्थापक

आर्यसमाज, होशियारपुर

वार्षिक निर्वाचन (चुनाव)

आर्यसमाज होशियारपुर का वार्षिक निर्वाचन २५ मार्च १९६२ रविवार प्रातः १० बजे समाज मन्दिर में हुआ।

आर्ययुवक परिषद् दिल्ली

ऋषि बोधोत्सव

"आर्य युवक परिषद् दिल्ली की ओर से ऋषि मेला (कोटला फिरोजशाह में रविवार ४ मार्च को बड़े समारोह से मनाया गया। प्रातः १० बजे से १२ तक स्कूल छात्रों के लिए दो प्रतियोगिताएं तथा कालिज छात्रों के लिए दो प्रतियोगिताए—खेल तथा दौड़ों के रूप में हुईं। ऋषि दयानन्द के जीवन पर स्कूल छात्रों के लिए तथा "स्वतन्त्रता के आदि मूल दयानन्द थे" विषय पर कालिज छात्रों की वाद-विवाद प्रतियोगिता हुई। इन सभी कार्यक्रमों मे सैंकडो युवको ने बहुत उत्साहपूर्वक और पारितोषिक जीत कर लाभ उठाया।"

सत्य प्रकाश
प्रधान मन्त्री

महात्मा हंसराज अंक

'आर्यजगत्' प्रतिवर्ष तपस्वी, त्यागी, स्वर्गीय महात्मा हंसराज जी की पुण्य स्मृति में अपना विशेषांक प्रकाशित करता है। इस बार भी १६ अप्रैल को यह विशेषांक [illegible] प्रकाशित हो रहा है तीन चार दिन पूर्व [illegible] पहुंच जायगा। मुखपृष्ठ पर महात्मा जी का [illegible] सुन्दर चित्र होगा। इसके अतिरिक्त महात्मा जी की पावन जीवनी पर आर्य समाज के प्रसिद्ध विद्वानों के भावपूर्ण विचार प्रकाशित किए जायेंगे सभी 'आर्यजगत्' के प्रेमियों और समाजों से प्रार्थना है कि इस अंक की अधिक से अधिक प्रतियां मंगाकर वितरण करें। इसके लिए प्रथम अप्रैल १९६२ तक आर्डर देने की कृपा करें ताकि ठीक समय पर आप की सेवा में अंक भेजा जा सके।

नोट— व्यापारियों के लिये विज्ञापन देने का बहुत सुन्दर अवसर है।

२ लेखक कवि महोदय अपनी रचनाएं ३१ मार्च तक भेजने की कृपा करें।

व्यवस्थापक
'आर्य जगत' जालन्धर

जिन ग्राहकों का चन्दा नहीं आया कृपा करके चंदा शीघ्र भेजें।

आर्यसमाज आदेश रोड अमृतसर

महात्मा आनन्द स्वामी जी सरस्वती पधार रहे हैं। उनकी मनोहर कथा १३-३-६२ से ७ से ८॥ बजे प्रात. होगी। कृपया मित्र सम्बन्धियों सहित पधार कर लाभ उठावें।

नोट—(१) सायं ५। से ६। बजे कम्पनी बाग में श्रीमान् ब्रह्मचारी रामप्रकाश जी का उपदेश होता है।

(२) प्रातः [illegible] से ७ [illegible] हवन होता है।

विनीत
गुरुचरणदास मन्त्री

आर्यसमाज मण्डी (हि.प्र.)

(१) १ फरवरी को यहां श्री महात्मा आनन्द स्वामी जी पधारे थे उनका आर्यसमाज मन्दिर में प्रभु विश्वास दृढ़ करने पर प्रभावशाली प्रवचन हुआ था।

(२) ६ फरवरी को वसंतोत्सव मनाया गया जिस में डी० ए० वी० प्राईमरी पाठशाला के विद्यार्थियों की कवितायें और श्री माताजी का सुन्दर प्रवचन हुआ।

(३) १ मार्च को श्री माता जी ने ला० गोकलचन्द जी के पोते का नामकरण और अन्न प्राशन संस्कार कराया।

(४) ४ मार्च को आर्यसमाज मन्दिर में ऋषि बोधोत्सव मनाया गया। प्रभात फेरी हुई। उत्सव में पाठशाला के विद्यार्थियों की कवितायें हुईं। ला० दीनानाथ जी और माता जी के प्रवचन हुए और वेदप्रचार फण्ड एकत्रित हुआ।

शुभ चिन्तक
इन्द्रसिंह, मन्त्री

दस नियमों का पालन करना आर्यों का धर्म है

मुद्रक व प्रकाशक श्री संतोष राज जी मंत्री आर्यप्रादेशिक प्रतिनिधि सभा पंजाब जालंधर द्वारा वीर मिलाप प्रैस, मिलाप रोड जालंधर से मुद्रित तथा आर्यजगत कार्यालय महात्मा हंसराज भवन निकट कचहरी जालन्धर शहर से प्रकाशित हुआ मालिक—आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा पंजाब जालन्धर

शरीर की शक्ति के प्रमुख साधन

(पूज्य महात्मा आनन्द स्वामी जी सरस्वती महाराज)

श्री० महात्मा जी सारे भारत के कोने २ मे भ्रमण कर के वेद सन्देश के द्वारा अध्यात्मवाद का अमृत जनता को निरन्तर पिलाते रहते हैं। गगोत्तरी, मान सरोवर, तिब्त, कैलाश आदि कितने ऊंचे पर्वतीय प्रदेशो पर जा कर महीनों साधना कर चुके हैं। बर्मा और मारीशस मे भी वेदप्रचार के लिए विदेशो मे पहुचे हैं। जीवन आदर्श, वाणी मधुमयी, व्यवहार रसीला तथा स्वास्थ्य प्रभाव पूर्ण है। 'आर्य जगत' अपने पाठकों को महात्मा जी का उपदेशामृत का यदा कदा पान कराने मे अपने कर्तव्य को निभाता चला आता है—सम्पादक

शरीर में शक्ति कैसे आती है ? यह भी सुनिए। शरीर में शक्ति आती है तीन बातों से। शुद्धाहार सादा सात्विक शक्ति देने वाला भोजन। घी खाओ, दूध पीओ मक्खन खाओ। परन्तु अब तो दूध घी की बात ही समाप्त हुई जाती है। सब लोग डालडा ब्राड बने जाते हैं। मुझ से एक व्यक्ति ने शारीरिक दुर्बलता की शिकायत की तो मैं ने कहा—देखो ' मैं ७६ वर्ष का हो गया हू, अभी तक दौडता हू'। पहाड़ों पर चढ जाता हू। मानसरोवर हो आया। गगोत्तरी तो कई बार गया और तू ४५ वर्ष की आयु में ही निर्बलता का रोना रोता है' उस ने कहा आप ने तो असली घी खाया है स्वामी जी ! और हम तो डालडा ब्राड हैं। सचमुच आज कल के सब बच्चे डालडा ब्राड हुए जाते हैं। इस प्रकार शरीर में शक्ति नहीं आयेगी शरीर की शक्ति के लिए सब से पहली और आवश्यक वस्तु है शुद्ध आहार।

तब दूसरी आवश्यक वस्तु है निद्रा, ऐसी निद्रा जिस मे कोईचिंता नहीं, कोई स्वप्न नहीं। जिस मे समय से पूर्व कोई जागता नहीं। परन्तु आज कल तो चिन्ताए ही हां मनुष्य का पीछा नहीं छोडती। कितनी ही चिन्ताए हम ने लगा रखी है। लडकी वालों को लडके की चिन्ता, लड़के वालों को लडकी की, शैशव में शिक्षा की चिन्ता है। शिक्षा मिल गई तो नौकरी की चिन्ता। नौकरी मिल गई तो यह चिन्ता कि ऊपर नीचे से आय मे वृद्धि किस प्रकार हो इस प्रकार तो अच्छी नींद नहीं आती मेरे भाई। निद्रा कहती है मेरे पास आना है तो अकेले आओ, भीड़ ले कर न आओ। परन्तु हम तो चिन्ताओं का जलूस ले कर उस के पास पहुँचजाते हैं, फिर वह आयेगी कैसे ? इधर चारपाई पर लेटे अथवा भजन मे बैठे उधर चिन्ताओं की घटाये उमड २ कर आने लगीं। ऐसी निद्रा तो निद्र नहीं मेरे भाई। निद्रा वह है जो अत्यन्त गाढ हो। जिस मे कोई स्वप्न न हो। कुछ व्यक्ति प्रात उठते हैं तो कहते हैं थका हुआ हू। कोई पूछे तुम सोये सोये कैसे थक गये ? क्या रात्रि मे उठ कर चलते रहे। दौडते रहे तो सत्य बात यह है कि ये लोग वस्तुत दौडते और चलते है। ये स्वय पडे रहते हैं खाटपर इन का मन दौडता रहता है। जागृत अवस्था मे शरीर की जो बैटरी स्खलित होती है गाढ निद्रा मे गये ही नहीं तो फिर इन की बैटरी भरेगी किस प्रकार ? और बैटरी नहीं भरेगी तो फिर थकावट तो होगी ही। विश्रान्ति कभी आयेगी नहीं। ऐसी निद्र नहीं अपितु गाढ निद्रा शरीर की शक्ति को बढाती है।

और तीसरी वस्तु है ब्रह्मचर्य जो खाया है, पिया है उससे शरीर मे रस बनता है। यह रस अमृत है, इसे नष्ट न कर। इसे नष्ट करेगा तो स्मरण रख इस लोक मे या परलोक मे कहीं भी तेरा कल्याण नहीं होगा।

इन तीन बातों से शरीर मे शक्ति आती है। शक्ति से ही संसार को भोगा जा सकता है। ससार की वस्तुओ का प्रयोग किया जा सकता है। वेद भगवान जब 'भुञ्जी था' कह कर आज्ञा देता है तो इसका अर्थ भी यही है कि अपने अन्दर भोगने की शक्ति उत्पन्न कर। फिर भोग। यह संसय तेरे लिए बनाया है। परन्तु 'भुञ्जी था' से पूर्व एक और शब्द है। 'त्यक्तेन भुञ्जी था' अर्थात भोग करो अवश्य,प्रयोग करो इन वस्तुओं का, परन्तु त्याग से भोग करो। आप कहेंगे यह नया कौतुक हुआ। भोग भी कर त्याग भी कर। दोनों बातें साथ २ कैसे हो सकती हैं। परन्तु सुनो भाई त्याग पूर्वक भोग करने का अर्थ यह है कि भोग कर अवश्य, ससार की वस्तुओं को प्रयोग कर परन्तु उनमें फंस न जा। वरना मृत्यु को बुला रहा है और साथ ही पूरी शक्ति से कहता है 'सत्य ब्रवीमि' मैं सत्य कहता हू'। इसमे सन्देह के लिए स्थान नहीं।

फिर खेलें आज सभी होली।

(लेखक – राममूर्ति कालिया एम ए मानवाय नगर नईदिल्ली)

भर लो पिचकारी आली, फिर खेलें आज सभी होली,
मचल मचल औ उछल कूद कर
प्रेम सलिल इतना छलकाओ,
धुले कालिमा भेद भाव की
सरस, सरल सब को कर पाओ,
धूल उडाती मतवालों की, रे चली कहा यह टोली ?
भर लो पिचकारी आली, फिर खेले आज सभी होली।
लाल लाल कर कमलों से प्रिय
दो छिटक लालिमा सभी ओर,
छीन कसक सब के मन की,
नाचो, गाओ, होकर विभोर।
रगी जाओ या रगो सभी को अतर की वाणी बोली,
भर लो पिचकारी आली, फिर खेले आज सभी होली।

—आ स मदीना का उत्सव धूम-धाम से सम्पन्न हुआ। श्री प्रभु दयाल जी मडली, चौ भूरा राम जी, श्रीमान् जमादार भरतसिह जी अध्यक्ष नूरन खेडा, श्री राम करण जी, महावीर जी, नत्थू राम जी, इन्द्र सिंह जी पधारे।

—आ स. टिटौली, १६ से २१ मार्च आ स बडेसरा का उत्सव २३ से २५ को धूम धाम से सम्पन्न हो रहा है। श्रीमान् जमादार भरत सिह जी, प्रभु दयाल जी, मडली, राम करण जी की मडली, भूरा राम जी आदि पधार रहे हैं।

आर्य समाजों से विनम्र निवेदन

सभी सम्बन्धित आर्य समाजों से प्रार्थना है कि शिवरात्रि का महापर्व सम्पन्न हो चुका है। कृपया वेद प्रचारार्थ चार आना फंड शीघ्र सभा में भेजने की कृपा करे। इस महान् पर्व पर जिन्होंने धन इकट्ठा किया है वे भेज देवें। और जहां सग्रह नहीं हुआ इकट्ठा कर भेजने की कृपा करे।

खुशी राम शर्मा
वेद प्रचार अधिष्ठाता

सम्पादकीय—

ओ३म्

आर्य जगत्

वर्ष २२] रविवार १२ चैत्र २०१८, २५ मार्च १९६२ [अंक १२

कुम्भ मेला में प्रचार

बारह वर्षों के बाद हरिद्वार का कुम्भ फिर आ गया है। लाखों नर-नारी भारत के कोने २ से भिन्न २ भावनाओं के साथ यहां एकत्रित होते हैं। हर सम्प्रदाय विचार को रखने वाले अखाड़ों व मण्डलेश्वर साधुओं के समूह भी हरिद्वार में इस अवसर पर पहुंच जाते हैं। पौराणिक भाव को यदि एक ओर रख दिया जाये तथा राष्ट्रीय केन्द्रीकरण का विचार सामने रखा जाये तो ऐसे महान समारोह का प्रकाशमय पहलू भी इस से मिलता है। राष्ट्र की अनेकता में एकता, विषमता में समता, विशालता में पूर्ण समन्वयवाद एवं भौतिकता में आध्यात्मिकता के भी दर्शन होते हैं। कम से कम इस समारोह में यह तो परिचय मिल जाता है कि सारा देश एक भावना में पिरोया हुआ है। समस्त देश के वेश, भाषा, सम्प्रदाय, कला, भावना, भोजन और भजन के दर्शन तो हो जाते हैं। साथ ही सारे देश के जीवन में अभी कितना अज्ञान घर बना कर बैठा है। समाज किस मार्ग पर चल रहा है। अभी हमें राष्ट्र की विचारधारा में कितना परिवर्तन करना है, अभी तक आकाश के ग्रहों व नदियों के जल ने मानव के मन पर अपना कितना प्रभाव डाल रखा है। पाखण्ड और दम्भ कितना पैर पसार कर बैठा है—इन सारे दृश्यों का दर्शन हो जाता है। विशाल देश का चित्र है।

कुम्भ पर सदा से प्रचार होता आया है। आर्य समाज के महान प्रवर्तक देव दयानन्द ने कुम्भ हरिद्वार के अवसर पर अपनी पाखण्ड-खण्डिनी पताका फैहरा कर वेद प्रचार का आरम्भ किया था। आर्य समाज अपने स्थापनकाल से इस समारोह में पूरा २ लाभ उठा कर पूर्णशक्ति लगाकर वैदिक धर्म का प्रचार करता आया है। आर्यप्रादेशिक सभा पंजाब के संस्थापक अमर-त्यागी तपस्वी स्वर्गीय महात्मा हंसराज जी ने भी इस ओर पूरा २ ध्यान दिया था। हरिद्वार में भीम गोडा के पास मोहन आश्रम नाम से बड़ा भारी आश्रम गंगातट पर स्थापित करा दिया था। यह स्थान बड़ा ही सुन्दर, विशाल तथा केन्द्र सा बन गया है। सारा वर्ष इस में सत्संग प्रवाह चला करता है। आर्य समाज के विख्यात महान सन्त महात्मा आनन्द स्वामी जी महाराज की विशेष कृपा से मोहनाश्रम वैदिक धर्म प्रचार का महान केन्द्र बन गया है। कुम्भ के अवसर पर तो इस के प्रचार समारोह का क्या कहना? गत कुम्भ के अवसर पर भी महात्मा जी की विशेष रुचि के कारण आर्य प्रादेशिक सभा की ओर से खूब प्रचार किया गया। वेद सन्देश हजारों नर-नारियों तक पहुंचाया गया। अन्य साहित्य के साथ २ महात्मा आनन्द स्वामी जी लिखित 'कुम्भ का प्रसाद' नामक सुन्दर ट्रैक्ट तो भारी संख्या में बिना मूल्य बांटा गया। यह सच ही कुम्भ का सच्चा, मीठा प्रसाद था। इस बार भी पूज्य महात्मा जी की प्रेरणा से मोहन आश्रम में वेद प्रचार का बड़ा ही सुन्दर समारोह किया जा रहा है। महान यज्ञ हो रहा है, प्रचार का आयोजन है। महात्मा जी की देखरेख में सारा काम आरम्भ है। सभा के प्रधान प्रिंसिपल सूर्यभानु जी एम० ए० महामन्त्री श्री सन्तोषराज जी तथा वेद प्रचार अधिष्ठाता पं० खुशीराम जी शर्मा कुम्भ के अवसर पर प्रचार का सभा की ओर से भी बड़ा सुन्दर प्रबन्ध कर रहे हैं। महात्मा जी के आदेश का पालन किया जा रहा है। सभा की आज्ञानुसार मैं भी कुम्भ प्रचार के लिए हरिद्वार जा रहा हूं। अन्य कई उपदेशक भजनीक भाई भी वहां चले हैं। समाज के बड़े २ नेता, महात्मा सन्यासी भी मोहनाश्रम पधार रहे हैं। पूरा विवरण तो बाद में दिया जायगा। ऐसे अवसर पर आर्यसमाजों, संस्थाओं तथा सज्जनों से निवेदन भी है कि इस समारोह में वेद प्रचार के विशाल कार्य, साहित्य बांटने के लिए समाजें व दानी सज्जन आर्य प्रादेशिक सभा के पास अधिक से अधिक हर प्रकार की सहायता व सहयोग देवें ताकि कुम्भ पर खूब प्रचार हो सके। जितनी लम्बी चादर होगी सभा उतने ही पांव फैलाती जायगी। कुम्भ प्रचार में सब अपना भाग भेजें।

—त्रिलोक चन्द्र

महात्मा हंसराज विशेषांक

आर्य जगत् आर्य प्रादेशिक सभा पंजाब जालन्धर का अपना पुराना और निरन्तर चलने वाला मुखपत्र है। वेदप्रचार के लिए सभा घाटा डाल कर भी अपना कर्तव्य समझ कर चलाती है। सभा के महामन्त्री श्री सन्तोष राज जी इस के अधिष्ठाता हैं। आर्य जगत् को सदा ही आर्य समाज के मान्य नेताओं, सन्यासियों, विद्वानों, समाजों संस्थाओं का सदा से सहयोग प्राप्त होता रहता है। इस के विशेषांक सब के सामने हैं। अपनी प्रशंसा करना उचित नहीं। इतना कहते हैं कि हम अपना कर्तव्य निभा रहे और निभाते रहेंगे। अपने प्रेमियों सहयोगियों के आभारी हैं। शिवरात्री अंक पर अनेक पत्र मिले हैं। सब का प्यार मिला है। १८ अप्रैल को स्वर्गीय पूज्य महात्मा हंसराज जी का दिवस होता है। सारे धूम धाम से मनाते हैं। डी ए वी आंदोलन के सर्वप्रथम जीवन दानी थे। आर्य प्रादेशिक सभा के संस्थापक थे। तपस्वी, त्यागी लेखक और वक्ता हैं। पंजाब के शिक्षा सूत्र के तो पिता ही थे। आर्य जगत् भी अपना हंसराज विशेषांक निकाला करता है। अभी शिवरात्री अंक और एक मास बाद यह दूसरा विशेषांक। क्या चिन्ता है इस देवता का भी विशेषांक निकाला जाता है। उन के पवित्र जीवन को श्रद्धांजलि देनी ही चाहिए। अब हम फिर अपनी डी ए वी. संस्थाओं से सारे मान्य सज्जनों, आर्य समाजों युवकसमाजों व अन्य समाज के प्रेमियों से बलपूर्वक कहना चाहते हैं कि इस विशेषांक को भी खूब मंगवा कर युवकों में अपने व दूसरों में बांटें। जिन्होंने अपना सारा जीवन भेंट कर डाला-उस के लिए इतना उत्सर्ग तो करना ही चाहिए। देहली में यह दिवस धूम धाम से मनाया जाता है। वहां हमारे बड़े २ डी ए वी. कालेज, स्कूल संस्थान हैं। हमारी अनार कली व सीता राम समाज जैसी बड़ी २ समाजें हैं। मान्य डा. महाजन सरीखे नेता मौजूद हैं। वहां तो यह विशेषांक खूब बांटा जाना चाहिए। समय थोड़ा है काम बड़ा है। हम प्रार्थना करते हैं कि जल्दी ही सब अधिक से अधिक प्रतियों का आर्य जगत् के लिए आर्डर भिजवा दें ताकि प्रबन्ध में सुभीता हो। मान्य लेखकों, कवियों व विज्ञापन दाता भी शीघ्र कृपा करें।

(शेष पृष्ठ ४)

'स्त्री पुरुष से अधिक बलवति है।'

ले०—विद्यासागर वर्मा, उपमन्त्री कालिदास सस्कृत परिषद् डी० ए० वी० कालेज जालन्धर।

****

'बल' शब्द का अर्थ है शक्ति, क्षमता, दक्षता, प्रवीणता, योग्यता, कुशलता, ओज एव तेज। बल कई प्रकार का हो सकता है जैसे आध्यात्मिक बल, शारीरिक बल, बौद्धिक बल, मासिक बल एवं सामाजिक बल तथा राजनैतिक बल।

दूर से गहन धूए को देख कर यह निष्कर्ष निकालना कि अमुक स्थान पर आग लगी हुई है, यह बुद्धिमानो का काम नहीं। सम्भव है कि वहा पर तन्दूर जल रहा हो। इसी प्रकार स्त्री को शारीरिक बल मे कुछ कम देखकर यह घोषित कर देना कि स्त्री पुरुष से कमजोर है, यह बुद्धिमानों के लिए उचित नहीं। इसे अबला या frailty कह कर पुकारना पक्षपात रहित मनुष्यों को शोभा नही देता। शास्त्रकारों ने लिखा है कि—

'तेजो यस्य विराजते स
बलवान् स्थूलेषु क प्रत्यय।

अर्थात—जिस मे तेज है, वही बलवान् है शारीरिक लम्बाई चौडाई से कोई बलवान नहीं बनता।

स्त्री को अबला, कामिनी, मोहिनी तथा नारी के रूप में न देखकर जब मातृशक्ति के रूप मे देखा जाए तभी इनके साथ न्याय होगा। 'Only the foolish distinguish between man and woman The good respect both equally'—Kalidas

अर्थात—मूर्खजन ही स्त्री और पुरुष में भेदभाव करने है, आप्त पुरुष सदा दोना को समान रूप मे देखते हैं। मनु जी ने मनुस्मृति मे लिखा है कि—

'यत्र नार्यास्तु पूज्यन्ते
रमन्ते तत्र देवता।
यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते
सर्वास्तत्राफला क्रिया॥

अर्थात्—जहा पर स्त्रियों का मान किया जाता है वहा पर देवता लोग वास करते हैं और जहां पर इन्हें तिरस्कृत किया जाता है, वहा पर सभी धर्मानुष्ठान असफल होते हैं।

एक बार स्वामी दयानन्द जी किसी मन्दिर के पास से गुजर रहे थे। उन्होंने वहा हाथ जोड कर सिर झुका दिया। मन्दिर के महन्त ने शोर मचा दिया कि स्वामी दयानन्द मूर्तिपूजक हैं, अगर नहीं है तो उसने मन्दिर के सामने सिर क्यों झुकाया? स्वामी जी मुस्करा पड़े और कहने लगे कि वह देखो पाच साल की बच्ची तेरे बड के वृक्ष के नीचे खेल रही है। मैं तेरी मूर्ति के सामने नहीं झुका अपितु उस मातृ-शक्ति के सामने नत-मस्तक हुआ हू। हा! वस्तुत स्त्री इतनी बलवति है कि वह परमहस को भी अपने सामने नत-मस्तक कर सकती है। तो क्या स्त्री पुरुष से बलवति नहीं है?

स्त्री मातृ-शक्ति है। इस मे जो बल, ओज, तेज तथा शक्ति विराज रही है, वह निस्सन्देह सराहनीय है। 'All that I am or hope to be, I owe to my angel-mother'—Abraham Lincoln अर्थात् मैं जो कुछ भी हू और बनने की आशा करता हू, उसके लिए मैं अपनी मूर्तिमति देवी माता का ऋणी हू। निस्सन्देह यह कथन सर्वथा सत्य है।

जो मूर्ख व्यक्ति यह उक्ति देते हैं कि स्त्री युद्ध भूमि मे नहीं जा सकती, रात्रि में भी यह अकेली नहीं जा सकती, यह आदि काल से ही पुरुष पर आश्रित है, उसकी दासी है, अत स्त्री पुरुष से कमजोर है—सर्वथा निर्मूल है। वे अपने पक्ष की पुष्टि करते हुए कहते कि पुरुषों में से 'महाराणा प्रताप, शिवा जी, राणा सागा, पृथ्वी राज चौहान, भगत सिंह, सरदार पटेल जैसे बहुत शूरवीर तथा ओजस्वी व्यक्ति पैदा हुए जबकि स्त्रियों मे से केवल झासी की रानी आदि कोई एक आध ही वीरागनी उत्पन्न हुई है। क्या मै यह पूछ सकता हू कि ये शूरवीर पुरुष सीधे आकाश से पृथ्वी पर उतरे थे? क्या शिवा जी को शूरवीर उसकी माता जीजा बाई ने नहीं बनाया था?

इतिहास इस बात का साक्षी है कि शूरवीर व्यक्ति की शूरवीरता का कारण उसकी माता ही होती है। महाराज उदय सिंह का दृष्टात हमारे सामने है। उदय सिंह बचपन से ही दासी के पास रहा और अपनी माता के दूध तथा शिक्षाओं से वचित रहा। अत वह एक अत्यत भीरु राजा बना जबकि उसका पित और पुत्र इतिहास मे अद्वितीय योद्धा हुए हैं। तो उदय सिंह इतना भीरु क्यों हुआ? कारण स्पष्ट है माता के दूध एव शिक्षा का अभाव। 'Men are what their mothers made them'—Emerson अर्थात् जैसा माता बच्चे को बनती है, वह वैसा ही पुरुष बननता है। पुराणों मे एक गाथा है कि महारानी मदालसा से राजा ने होड लगाई कि पुरुष स्त्री से बलवान् होता है। महारानी ने कहा कि नहीं स्त्री पुरुष से बलवति है। राजा ने उसे सिद्ध करने को कहा। महारानी ने ऐसा किया कि जो भी पुत्र उत्पन्न किया उसे बचपन से ही वैराग्य की बाते सुनाने लगी। फलस्वरूप सभी ने वैराग्य धारण कर लिया। अब महाराजा को अपने राज्य की चिंता पड़ गई। वह महारानी के पास आया और अपनी मासिक वेदना कह सुनाई। महारानी ने कहा अच्छा जो पुत्र अब उत्पन्न होगा, वह एक चक्रवर्ती राजा बनेगा। महारानी ने एक और पुत्र को जन्म दिया और बचपन से ही उसे वीर गाथाए सुनाने लगी। कहते हैं कि वह एक चक्रवर्ती राजा बना। अब महाराज ने भी अनुभव किया वास्तव में स्त्री पुरुष से अधिक बलवति है।

उपरोक्त ऐतिहासिक वार्ताओं एव घटनाओं से यह स्पष्ट है कि मनुष्य मे शारीरिक बल भी स्त्री ही उत्पन्न करती है। शास्त्रकारों ने लिखा है कि—येन विना यदनुत्पन्न तत्तेना-त्मियते। अर्थात् जिस के अभाव में जिस वस्तु की उत्पत्ति नहीं हो सकती वह वस्तु उसी की ही कहलाती है। क्योंकि पुरुष में स्त्री (माता) के दूध एवं शिक्षा के अभाव से बल नहीं आ सकता, अत पुरुष के बल का कारण स्त्री ही है। 'The hand that rocks the cradle is the hand, that rules the world'—William Ross Wallace अर्थात् जो पवित्र हस्त पगुडे को व्यवस्थित करते हैं, वास्तव में वही संसार पर शासन करते है। अत स्त्री पुरुष से अधिक बलवती है।

आर्ययुवक समाज डी.ए.वी. कालेज जालन्धर

दो युवको का अपूर्व उत्साह-जनक कार्य टकारा ट्रस्ट के लिए १०००) रुपये एकत्र

आर्यजगत को यह जानकर अत्यन्त प्रसन्नता होगी कि आर्य युवक समाज डी० ए० वी० कालेज जालन्धर के दो युवकों से श्री मदन लाल जी तृतीय वर्ष व श्री रायसिंह जी 1 st years of three years Deagree Course ने युवक समाज के प्रधान प्रो० वेदीराम शर्मा एम. ए. की प्रेरणा पर १०००) रुपये एकत्र कर पूज्य प्रि० सूर्यभानु जी की सेवा मे टकारा ट्रस्ट को भेजन के लिए प्रदान किए हैं। मैं सभी युवकों की ओर से इनका व सभी दानी सज्जनों का धन्यवाद करता हू और भविष्य मे भी युवकों के उत्साह व धन की याचना करता हूं।

योगेन्द्र सिंह यादव महामन्त्री

महर्षि दयानन्द जी और कुम्भ

(ले० श्री सतोष राज जी महामंत्री सभा)

आज से लगभग ६५,६६ वर्ष १६ वी. सदी में महर्षि दयानन्द सरस्वती जी महाराज १८६७ ई० में हरिद्वार कुम्भ के अवसर पर पधारे। १० से १५ नवम्बर १८६६ ई. को लाड लारेन्स के दरबार का उपक्रम था उसमें भी महर्षि दयानन्द सरस्वती जी महाराज ने सारे मतमतान्तरों की बैठक की। लाट साहिब से मिले गोहत्या के सम्बन्ध में पत्र भेंट किया। तदनतर कुम्भ पर पधारे।

यह स्वामी जी का घर से निकल कर दूसरी बार कुम्भ पर आना था। आठ वर्ष तक अवधूत अवस्था मे ज्ञान और योग की जोह मे दक्षिण में भ्रमण करने के बाद उत्तराखण्ड की ओर गामन किया। नर्मदा, आबू हो कर हरिद्वार कुम्भ पर पहली बार पधारे। इस समय जिज्ञासु रूप मे पधारे थे। १८६७ के कुम्भ पर श्री दण्डी स्वामी वृजानन्दा जी से शास्त्रों के शिक्षा प्राप्त कर पधारे।

इस समय महर्षि दयानन्द जी की आयु ३६-३७ वर्ष के लगभग थी।

गुरु जी के शास्त्रागार मे प्रविष्ट हो अधर्म, अत्याचार की सेना पर विजय प्राप्त करने के लिये वेद शास्त्र के बाण प्राप्त कर लिये थे।

नवयुवक संन्यासी को पाखड खंडनी पताका गाडे हुये, वेद बाणों से अधर्म की सेना को तितर बितर करते हुये देख कर लोग बडे चकित होते थे। इस से पूर्व इन्हों ने ऐसा कोई साधु नहीं देखा था। न और कहीं दीखता था। अनेकों साधुओं में अकेला दयानन्द ही पाखड का खण्डन कर रहा था। लोक अचम्भा मान रहे थे।

नानाप्रकार के मतमतान्तरों के जाल में लोग जकड़े हुये थे। मिथ्या रूढियों ने जन मन में घर कर रखा था। सनातन वेद और रीति नीतियों को लोग भूल चुके थे। छल दम्भ का राज्य था। अपने महात्माओं महापुरुषो को प्राय वृद्ध मूर्ख कह कर पुकारते थे। ईसा, मूसा मुहम्मद को मान देने लग गये थे। वेदों को गडरियों के गीत कहने मे गर्व मानते थे। यहा तक कि भारतीय सस्कृति एव सभ्यता पाश्चमी सभ्यता के तूफान में बही जा रही थी।

उस समय महर्षि ने वेद का नाद बजाया। सारी जनता एक ओर निर्भीक दयानन्द एक ओर थे।

कुम्भ पर स्वामी जी ने भागवत पुराण आदि और तन्त्र ग्रन्थों, स्नान से मुक्ति, देवी देवताओं की उपासन अवतार वाद आदि अवैदिक रूढियों का जोर दार शब्दों मे खण्डन किया।

सारी जनता को अन्धकार मे देख दयानन्द अति दुखी हुये। ज्ञान के भडार भारत के लोगों की दशा पर आसू बहाये लोगों ने अबकी बार स्वामी जी की बात को कम सुना यह उन्हों ने कुम्भ पर अनुभव किया। परन्तु जनता को अन्धकार मे देख देश कल्याण आर्य समाज हित की तीव्र वेदना उत्पन्न हो गई। साधुओं की भाति रहने से काम नहीं चलेगा। संसार की मोह माया से ऊपर उठना चाहिये और गुरु ज्ञान का निर्भय हो प्रचार करना चाहिये। यह ठान कर सर्व सामग्री परित्याग कर दी। केवल एक लंगोट पास रखा।

शेष सामग्री—१ थान कपडे का ३५) रु० और महाभाष्य की पुस्तक जो दयाराम जी के हाथ दण्डी जी की सेवा में भेज दी।

कैलाश पर्वत स्वामी जी के कहने पर कि आप यह क्या कर रहे हैं। सब त्याग रहे हैं। कहा—'हम सब कुछ स्पष्ट २ कहना चाहते हैं और यह तब तक नहीं हो सकता जब तक हम अपनी आवश्यकताओं को कम न करें। कितना ऋषि का पवित्र विचार है। कैसे भविष्य की सोचने हैं।

सचमुच जब तक मनुष्य पराश्रित है तब तक निधडक नही हो सकता। अपनी आवश्यकताओं को बढाना ही दासता और आत्म-हत्या है। जैसे भीष्म, द्रोण आदि। कुम्भ से कटिबद्ध हो दयानन्द भ्रम-जाल का उन्मूलन करने के लिए प्रस्तुत हो गये। केवल परमेश्वर ही सखा था। कौपीनधारी दयानन्द भगवान की आज्ञा की पालना करने के लिये रणक्षेत्र मे उतर पडे। लगभग एक सदी बाद का यह कुम्भ हमे वही सन्देश दे रहा है। भ्रमजाल, रूढीवाद की अब भी भरमार है। आर्यसमाज को वेद के पवित्र प्रचार की गति को तीव्र करके जनता को विशुद्ध मार्ग प्रदर्शित करना होगा।

आज भी कुम्भ पर हरिद्वार धरती का कण २ पुकार रहा है, हृदय के कानों से सुनो और ऋषि दयानन्द सरस्वती जी महाराज के सन्देश को घर २ पहुंचा दो।

आर्य जगत के प्रेमी

श्री हरिश्चन्द्र श्री थापर

आर्य प्रादेशिक सभा के मुखपत्र आर्यजगत् के साथ इसके प्रेमी भाई बहिनों का बडा ही प्रेम और सहयोग रहता है। रहे भी क्यों न? सभा के नाते उन का प्रेम होना भी चाहिए। हमें समय २ पर सुझाव और सहायता देते रहते हैं।

जाम नगर मे कार्य करने वाले **श्री हरिश्चन्द्र जी** थापर ने हमें बडा सुन्दर सुझाव दिया है। बडा ही सहयोग व आर्य जगत् का ध्यान रखने हैं। प्रतिमास आर्य-जगत् को अपनी प्रेममयी सहायता देते हैं। दूर बैठे हुए भी उनके इस प्रेमभरे सहयोग के लिए विशेष धन्यवाद। प्रभु करे आर्यजगत को ऐसे प्रेमियों का सदा सहयोग मिलता रहे।

कुम्भ प्रचार के लिये

मेरी प्रार्थना स्वीकार करते निम्न स्थानों एवं सज्जनों से प्राप्त हुआ है।

अन्य महानुभाव भी भेजने की कृपा करें। प्र करने मे देरी हो गई है।

१०१) रु आ स शाम चौ द्वारा, १०) रु श्री. डा. धर्मदेव धर्मशाला (कागडा)

खुशी राम शर्मा वेद ः अधिष्ठाता

श्री यश जी को वधा

(पृष्ठ ३ का शेष)

पजाब विधान सभा के स बनने पर तो हम ने आर्य जगत ओर से श्री. यश जी को हार्दिक भेट की थी। अब पजाब सरका राज्य मत्री बन जाने का समा पढ कर बडी प्रसन्नता हुई है। इस ऊंची सेवा के आसन पर जाने की भी हार्दिक बधाई देते श्री यश जी आर्य समाज के त महात्मा के आदर्श सुपत्र हैं। इ समाज व ऋषि के अनन्य भक्त आर्य प्रदेशिक सभा की अंतरग के मनोनीत सदस्य हैं। उपदे विभाग के साथ इन का सद बडा ही प्रेम रहा है। उन के र मत्री बनने पर उन को तथा म बहिन श्रीमती स्वर्ण यश जी तथा सारे परिवार को हार्दिक ब देते है। पूर्णाशा है कि प्रात जनता की सेवा मे आदर्श स्था करेंगे। प्रभु उन को सदा श मय करें। म

सभी प्रकार के दबावों से उ उठ निधडक सत्य का प्रचार क इसी मे ससार का कल्याण मर्वतोपवृत्ति को छोडना होगा।

आर्य जगत् के ग्राह बनें औरों को बना

उड़ीसा में आर्य समाज का विशेष प्रचार

(ले० श्री स्वामी शिवानन्द जी तीर्थ वैदिक आश्रम वेद व्यास पानपोष सुंदरगढ)

...कल प्रान्तार्गत बालंगिर पटना-थाना में पटनागढ़ से ३ माइल म सोनामोदी ग्राम सुवर्णरेखा के तट पर अवस्थित है, यहां कमलिनी पुष्पों से अलंकृत एं सरोवर है, जिस के निर्मल को ग्राम वाले पीते तथा उसमें । भी करते हैं, यहां पर बालक युवा प्रत्येक नर-नारी को प्रात । करते देखा।

इस ग्राम में श्री १०८ स्वामी नन्द जी सरस्वती मुख्याधिष्ठाता क आश्रम वेदव्यास, पो० पान-, जि० सुन्दरगढ़ (उड़ीसा) ने ८० ई० से लेकर कई वर्ष तपस्या । उन्हीं के तपस्या के प्रभाव यहां पर तीन वेदों से "ब्रह्म-यण महायज्ञ" हो चुका है। वर्ष उसी यज्ञवेदी मे माघ कृ० बुधवार से लेकर माघ शु० ०१८ वि० भौमवार तक अर्थात् -१-६२ से ६-२-६२ तक अथर्ववेद रायण महायज्ञ मेरे आचार्यत्व हुआ। इस यज्ञ को उड़ीसा प्रांत दूर २ के लोग देखने को आये । सोनामोदी के चतुर्दिक् अनेक म मैसा, सरमुहान, उलवा, पटना ड़, धुबलपाडा आदि के मौतिया (ग्रामनायक) लोगों ने जनेउ ग्रहण ये, विशेषता यह थी कि एक । महिला ने भी जनेउ लिया बहुतों मद्यमांस त्यागने का व्रत लिया।

श्री स्वामी जी के प्रयत्न और भाव से गत वर्ष १४८ विधर्मी दिकधर्म में दीक्षित हुए थे, इस र्ष भी २५ जनवरी को ग्राम, पो० लवा जि० बालंगिरवासी श्रीयुत विचित्र पाणिग्राही, जो ईसाइयों का ख्य प्रचारक था जिस के परिवार । आठ व्यक्ति थे, वैदिक धर्म मे दीक्षित हुआ और वह अपने परिवार के साथ यज्ञ में सदा सहयोग देता हा।

प्रतिदिन चार बजे प्रात गान और वाद्य के साथ प्रभात फेरी होती थी, जिस म विचित्र पाणि-ग्राही की चार लड़कियें वैदिक धर्म की ओ३म् ध्वजा लेकर आगे रहती हुई कीर्तन करती थी उनके पीछे अन्य लोग वाद्य के साथ गाते चलते थे। ग्राम के लोग प्रभातफेरी के गान को दूर से ही सुनकर जाग जाते थे और नर नारी जयपूर्ण कलश के ऊपर अपने २ घर के आगे दीपक जलाकर एक विशेष ध्वनि के साथ स्वागत करते थे तथा कीर्तन मे साथ हो जाते थे।

प्रतिदिन पूर्वान्ह मे आठ बजे से ग्यारह बजे तक अथर्ववेद के मन्त्रों से यज्ञ होता था, ग्यारह बजे से बारह बजे तक वेदोपदेश, अपराह्न तीन तक भोजन विश्राम पुन अपराह्न में तीन बजे से पाच बजे तक उक्त वेद मन्त्रों से यज्ञ और पाच से आठ बजे रात्रि तक सह सन्ध्या उपदेश, भजन और व्याख्यान श्री स्वामी शिवानन्द जी तीर्थ आचार्य शांति आश्रम लोहर दगा रांची (बिहार) श्री स्वामी ब्रह्मानन्द जी सरस्वती मुख्याधिष्ठाता वैदिक आश्रम वेदव्यास पानपोष, श्री पं० रघुनाथ जी महापात्र और श्री पं० राम रीझन जी शर्मा भजनो-उपदेशक कलकत्ता (बङ्गाल) के होते रहे। सभी नर-नारी यज्ञ में अतिश्रद्धा से आहुति देते थे तथा उपदेश को प्रेम से सुनते थे।

चार दिन दयानन्द अलगर लगा हुआ था, जिस मे प्रतिदिन दोनों शाम सैंकड़ों मनुष्य निश्शुल्क भोजन पाते थे, किसी को कोई शिकायत न थी। श्री स्वामी ब्रह्मानन्द जी के शिष्य सोना मुदीर धुबलपाड़ा आदि के लोगों ने ऐसा प्रबन्ध कर रखा था जिस से किसी को किसी प्रकार भोजन निवासस्थान आदि की कोई असुविधा नहीं हुई। इस यज्ञ की ख्याति दूर तक थी। यज्ञ और उपदेश का प्रभाव बहुत ही उत्तम रहा। इस यज्ञ से अनेक ग्रामों मे आर्यसमाज के नाम का प्रचार हो गया। इस यज्ञ को देख कर ईसाई लोग भी प्रभावित हुए। अनेक लोग वैदिक धर्म में दीक्षित होने के लिये तैयार हैं। इस प्रांत के लोग सरल प्रकृति होने के कारण ईसाइयों के मायाजाल में फंस गये हैं। यदि स्वामी जी को पूर्ण सहायता दी जाए तो वे लोग बहुत शीघ्र ही सत्य सनातन अपने पैतृक वैदिक धर्म मे आ सकते हैं। धनीमानी सज्जनों को ध्यान देना चाहिये। ईसाई स्थान की बेजोड़ तैयारी है समय पर न चेतने से पीछे पश्चाताप के अतिरिक्त कुछ नहीं रह जाएगा।

—आ स. खुल्दाबाद (प्रयाग) का उत्सव १० से १३ मई को सम्पन्न हो रहा है।

—अनाथालय करनाल का उत्सव ६ से ८ अप्रैल को धूम धाम से सम्पन्न हो रहा है। चन्द्र सेन जी. हजारी लाल जी पधार रहे हैं।

सभा की समाजों के उत्सव प्रचार की धूमधाम

वेद प्रचार कार्यालय के साप्ताहिक समाचार

—आ. स- अखनूर व प्रगवाल के उत्सव धूम धाम से सम्पन्न हुए इन उत्सवों पर श्री पं. ओंप्रकाश जी, मा. तारा चन्द्र जी ठा. दुर्गा सिंह जी, शमशेर कुमार जी पधारे। उत्सवों की सम्पन्नता के लिये जीयालाल जी आर्य मन्त्री आ. स. अखनूर को धन्यवाद।

—आ. स. ग्राम चौरासी का उत्सव ६ वर्ष बाद धूम धाम से सम्पन्न हुआ। श्री पं. त्रिलोक चन्द्र जी, श्री. पं चद्रसेन जी, महात्मा देवो चन्द्र जी, देव राज आर्य निशनरी, खुशी राम शर्मा श्री राज पाल जी, श्री. मदन मोहन जी, मेला राम जी ने भाग लिया। उत्सव का श्रेय श्री ला. परमेश्वरी दास जी बेहल, ला. दुर्गा दास जी आदि मान्य सज्जनों को है।

—आ. स. फ़ाज़ल्का का उत्सव २३ से २५ मार्च को सम्पन्न हो रहा है। १६ से मा. तारा चन्द्र जी के भजन और प. चन्द्र सेन जी की कथा हो रही है। उत्सव पर पं ओंप्रकाश जी, श्री पं. रामकृष्ण जी, श्री मेला राम जी, श्री. हजारी लाल जी पधार रहे हैं।

—आर्य समाज माडल टाऊन गुड़गावा का उत्सव ३१ मार्च १-२ अप्रैल को धूम धाम से सम्पन्न हो रहा है। २६ मार्च से ३० तक रात के ८ से १० बजे तक खुशीराम शर्मा की कथा और राज पाल जी, मदन मोहन जी के भजन होंगे। उत्सव पर पुर श्रीमान् ला. चद्र जी हिसार प्रो. राम विचार जी, M. A. श्री. मेला राम जी, श्री. हरि दत्त जी, श्री. देस राज जी पधार रहे हैं। ३१ मार्च को पूज्य महात्मा आनन्द स्वामी जी महाराज पधार रहे हैं।

—आ. स. बुर्ज का उत्सव, यज्ञ धूम धाम से सम्पन्न हुआ। श्री पं. त्रिलोक चद्र जी, श्री प. अमरसिंह जी, श्री हजारी लाल जी, श्री दुर्गा सिंह जी श्री. जयनारायण जी पधारे।

—आर्य समाज जलालाबाद— का उत्सव ६ से ८ अप्रैल को धूमधाम से सम्पन्न हो रहा है। २ अप्रैल से खुशीराम शर्मा की कथा और मा० ताराचन्द्र जी के भजन होंगे। उत्सव पर ८ अप्रैल को युवक सम्मेलन प्रो. वेदी राम जी शर्मा एम ए की अध्यक्षता मे होगा। उत्सव पर श्री राजपाल जी, श्री मदनमोहन जी श्री मेलाराम जी पधारेंगे।

—आ. स पजौड़ का उत्सव २८ से ३१ मार्च तक धूमधाम से सम्पन्न हो रहा है। श्री पं. ओंप्रकाश जी, श्री तारा चन्द्र जी, श्री. हजारी लाल जी, श्री मेलाराम जी पधार रहे हैं।

—आ. स. घरिवाल का उत्सव २० से २२ अप्रैल को धूमधाम से सम्पन्न हो रहा है। १५ अप्रैल से खुशीराम शर्मा की कथा और मा. तारा चन्द्र जी भजन होंगे। उत्सव पर श्रीमान् प्रो वेदीराम जी प० त्रिलोक चन्द्र जी, श्री रामकरण जी, महावीर जी, नत्थूराम जी मंडली पधारेगी।

—आ. स लाजपत नगर सोनीपत का उत्सव २० से २२ अप्रैल को धूमधाम से सम्पन्न हो रहा है। १५ अप्रैल से पं० ओंप्रकाश जी की कथा और मडली के भजन होंगे। उत्सव पर जगतराम जी, जयनारायण जी तथा अन्य महानुभाव पधारेंगे।

—आ स खन्ना का उत्सव २० से २२ अप्रैल को धूमधाम से सम्पन्न हो रहा है। १५ अप्रैल से श्री पं० त्रिलोकचन्द्र जी की कथा और श्री हजारी लाल जी के भजन होंगे। उत्सव पर विद्वान सज्जन पधारेंगे।

—आ. स जोगेन्द्र नगर का यज्ञ उत्सव ६ से १३ अप्रैल तक सम्पन्न हो रहा है। श्री पं० ओंप्रकाश जी, राजपाल जी मदन मोहन जी पधारेंगे।

—आ स फ़िरोज़पुर शहर का उत्सव २७ से २६ अप्रैल को सम्पन्न हो रहा है।

—आ स. कालेज विभाग रोहतक का उत्सव ४ से ६ मई को धूमधाम से सम्पन्न हो रहा है।

—स्त्री समाज करनाल का यज्ञ उत्सव १ से ५ अप्रैल को सम्पन्न हो रहा है श्री प चन्द्र सेन जी, हजारी लाल जी पधार रहे हैं।

—हरि द्वार मोहनाश्रम में कुम्भ प्रचारर्थ २८ मार्च से १३ अप्रैल तक सभा की ओर से श्री पं अमर सिंह जी अध्यक्ष अम्बाला करनाल मंडल मडल सहित पधार रहे हैं। मोहनआश्रम मे सभा का सत्संग केन्द्र लगा हुआ है। पधारने वाले महानुभाव वहीं धर्म-लाभ करें।

नोट .—उत्सवों की अधिकता के कारण बहुत सी समाजों से तिथिया बदलने की प्रार्थना की है। वे तिथियां बदलने की कृपा करें। उत्सवों की तिथिया सभा कार्यालय से लेनी चाहिये। ताकि प्रबन्ध में सुभीता रहे।

(२) प्राय समाजें अपनी तिथियां निश्चित कर सभा को सूचित करिता हैं। यदि वे तिथिया पहले ही रुक चुकी हों तो प्रबन्ध में असुविधा रहती है। अत तिथियां सभा से लेने की कृपा किया करे।

न २ उत्सवों की अधिकता के कारण मई के अंत तक सारा स्टाफ रुका हुआ है। कई समाजों ने एक सप्ताह कथा के लिए लिखा है। उन से क्षमा याचना।

धन्यवाद
खुशी राम शर्मा।

शुभ सन्देश

सभा द्वारा हरिद्वार मोहन आश्रम मे कुम्भ के अवसर पर पूज्य महात्मा आनन्द स्वामी जी महाराज की अध्यक्षता मे प्रचार कैंप लगाया गया है। १२ वर्ष के बाद कुम्भ आया है। लाखों भारत भर के नर नारी पधारते हैं। उन्हें वेदामृत पान कराने और यज्ञ मे सुवासित करने का सुन्दर अवसर है। यज्ञ, लगर, प्रचार का विशाल आयोजन किया गया है।

सभी धर्म प्रेमी नर नारियों से प्रार्थना है कि इस शुभ कार्य मे सभा को पूर्ण योग देने की कृपा करें। कुम्भ प्रचार, यज्ञ, लंगर के निमित्त शीघ्र धन संग्रह कर सभा को भेजने की कृपा करें। सभी आर्य समाजों से भी यही विनम्र निवेदन है। धन्यवाद

खुशीराम शर्मा
अधिष्ठाता वेद प्रचार

भारतीय संस्कृति संरक्षणी समाज सुन्दरगढ़ (उड़ीसा) का प्रचार कार्य

(श्री ब्रह्मानन्द जी सरस्वती प्रचारक सभा द्वारा) ३५३ ईसाई एक समारोह के साथ शुद्ध होकर आर्य जाति में सम्मिलित हो गये।

ता० २५—१—६२ को एक कट्टर ईसाईप्रचारक श्री विचित्र पाणिग्राही ... होकर आर्य ग्रंथ ... गये हैं। और ... रूप में शीघ्र ही आने वाले हैं। ये बलांगीर जिला के उलका गांव निवासी हैं। श्रीमती सुचित्रा प्रधान (ईसाई ...का) गांव घासिपन, जिला बलांगीर का ता० १८—२—६२ को श्री ... कुमार भोई के साथ वैदिक रीति से विवाह संस्कार सम्पन्न हुआ।

श्री भगीरथ प्रसाद अग्रवाल मंत्री,
राजगांगपुर
जिला सुन्दर गढ़ (उड़ीसा)

'आर्य जगत्' परिवार को शुभ सूचना

'आर्यजगत' साप्ताहिक का

महात्मा हंसराज अंक

'आर्यजगत्' प्रतिवर्ष तपस्वी, त्यागी, स्वर्गीय महात्मा हंसराज जी की पुण्य स्मृति में अपना विशेषांक निकालता है। इस बार भी ११ अप्रैल को यह विशेषांक बड़ी सजधज के साथ प्रकाशित हो रहा है। तीन चार दिन पूर्व पाठकों के पास पहुंच जायगा। मुखपृष्ठ पर महात्मा जी का एक सुन्दर चित्र होगा। इसके अतिरिक्त महात्मा जी की पावन जीवनी पर आर्य समाज के प्रसिद्ध विद्वानों के भावपूर्ण विचार प्रकाशित किए जायंगे सभी 'आर्यजगत्' के प्रेमियों और समाजों से प्रार्थना है कि इस अंक की अधिक से अधिक प्रतियां मंगाकर वितरण करें। इसके लिए प्रथम अप्रैल १९६२ तक आर्डर देने की कृपा करें ताकि ठीक समय पर आप की सेवा में अंक भेजा जा सके।

नोट—१. व्यापारियों के लिये विज्ञापन देने का बहुत सुन्दर अवसर है।

२. लेखक कवि महोदय अपनी रचनायें ३१ मार्च तक भेजने की कृपा करें।

व्यवस्थापक
'आर्य जगत' जालन्धर

भारतीय-प्राच्यविद्या-प्रतिष्ठान

अजमेर

ऋषि दयानन्द के दुर्लभ ग्रन्थ का उद्धार

भागवत-खण्डन

इस ग्रन्थ की कई सहस्र प्रतियां छपवा कर ऋषि दयानन्द ने सं० १९२४ के कुम्भ में बांटी थीं। वह उसी समय से दुर्लभ हो गया था। पं० युधिष्ठिर मीमांसक ने बड़े परिश्रम से इसे ढूंढ कर और हिन्दी अनुवाद करके छपवाया है। मूल्य प्रचारार्थ ।।) मात्र। प्रचारार्थ ३०) रु० सैंकड़ा। मार्च के अन्त तक ।।) के टिकट भेजने पर बिना डाक व्यय दिया जायगा अन्य सभी प्रचार की उपयोगी पुस्तकों के लिए सूचीपत्र मंगवाइए।

भारतीय प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान २४।२१२ राजगंज, अजमेर

महात्मा हंसराज साहित्य विभाग की

अमूल्य पुस्तकें

सर्व साधारण को सूचित किया जाता है कि आर्य प्रादेशिक सभा पंजाब के महात्मा हंस राज साहित्य विभाग ने निम्न पुस्तकें D. P. I. द्वारा memo no. 6/10 55-B-14850 Dated 22 A ril 1955 और No. 7077-B-Dated 2 9-60 से स्वीकृत हो गई हैं। अतः देश के सभी स्कूलों, कालिजों, आर्य समाजों व आर्य संस्थाओं को निस्संकोच भाव से अपने पुस्तकालयों और छात्रों को इनाम में देने के लिए अधिक से अधिक संख्या में मंगाकर सभा का हाथ बटाना चाहिए।

महात्मा आनन्द स्वामी जी कृत—

१. पार्वती ·२५ न. पै.　　२. सीता ·३७ न. पै.
३. पद्मिनी ·३१ „　　४. महर्षि दर्शन २·००
५. नवीन और प्राचीन समाजवाद ले (ले० नारायण स्वामी कृत) मूल्य १.००
६. Dayanand his life and work (English) By Principal Suraj Bhan ji M. A. १.५० न० पै०
७ Teaching of Ishupnishad („) By L. Sain Dass ji १.५६ न० पै०
८. Massage of Gita (English) By L. Sain Dass ji १.५० „

अन्य प्रकाशन—

गीता दिग्दर्शन—प्रि० दीवान चन्द जी कृत		·५० न० पै०
जीवन ज्योति	„	·६२ „
महर्षि दर्शन	„	२.०० „
दयानन्द शतक	„	१.०० „

सभा का प्रकाशन—

अमृतवाणी	„	·५० न० पै०
सत्यार्थ प्रकाश उर्दू	„	३.५० „
प्रभु दर्शन	„	२.५० „
आर्य भजन संग्रह	„	.५० „
सत्यार्थ प्रकाश भाष्य I समुल्लास		.५० „
„ II „		.५० „
स्वाध्याय संग्रह	— —	.५० „

मिलने का पता—

प्रबंधक महात्मा हंसराज साहित्य विभाग आर्यप्रादेशिक प्रतिनिधि सभा जालन्धर।

मुद्रक व प्रकाशक श्री संतोष राज जी मंत्री आर्यप्रादेशिक प्रतिनिधि सभा पंजाब जालंधर द्वारा वीर मिलाप प्रैस, मिलाप रोड जालंधर से मुद्रित तथा आर्यजगत कार्यालय महात्मा हंसराज भवन निकट कचहरी जालन्धर शहर से प्रकाशित मालिक—आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा पंजाब जालन्धर

टेलीफोन न० ३०५६ [आर्यप्रादेशिक प्रतिनिधि सभा पंजाब जालन्धर का साप्ताहिक मुखपत्र] Regd No P·12

एक प्रति का मूल्य १२ नये पैसे वार्षिक मूल्य ६ रुपये

वर्ष २२ अंक १३) रविवार १९ चैत्र २०१८— १ अप्रैल १९६२ दयानन्दाब्द १३८ (तार-प्रादेशिक जालन्धर

वे द सू क्त यः

वेनस्तत् पश्यत् परमम्

वेन—ज्ञानी जन तत् उसको पश्यत्-देखता है परमम्-सब से श्रेष्ठ ब्रह्म सब से उत्तम उस महान भगवान को ज्ञानी विद्वान मनुष्य ही देखता जानता है। ज्ञानी सर्वत्र उसे देखता है।

यत्र विश्वं भवत्येक रूपम्

यत्र—जिस भगवान में यह सारा विश्व भवति एक रूपम्-समा जाता है। वह ब्रह्म सर्वव्यापक है। उसी से उत्पन्न होता, उसी में रहता और प्रलयकाल में भी उसी में समाता है। उत्पादक पालक और संहारक वही है।

इदं पृश्निरदुहत्

इदं—यह ब्रह्म रस पृश्नि-ज्ञानी योगी, प्रभुभक्त अदुहत्-दोहता है प्राप्त करता है। जो प्रभुप्रेमी है, ईश्वर भक्त है वही इस परम आनन्द के मीठे रस को दोहता, लेता और पीता है।

: अ थ र्व वेद से

वे दा मृ त

य आत्मदा बलदा यस्य विश्व उपासते प्रशिषं यस्य देवाः।
यस्यच्छायाऽमृतं यस्य मृत्युः कस्मै देवाय हविषा विधेम॥

यजु० २५-१३

अर्थ—(य) जो (आत्मदा) आत्म ज्ञान का दाता (बलदा) शरीर आत्मा और समाज के बल का देने हारा (यस्य) जिसकी (विश्व) सब (देवा) विद्वान लोग (उपासते) उपासना करते हैं और (यस्य) जिस का (प्रशिषम्) प्रत्यक्ष सत्यस्वरूप शासन, न्याय अर्थात् शिक्षा को मानते हैं (यस्य) जिस का (छाया) आश्रय ही (अमृतम्) मोक्षदायक है (यस्य) जिस का न मानना अर्थात् भक्ति न करना ही (मृत्यु) मृत्यु आदि दुःख का हेतु है हम लोग उस (कस्मै) सुखस्वरूप (देवाय) सकल ज्ञान के देने हारे परमात्मा की प्राप्ति के लिए (हविषा) आत्मा और अन्तःकरण से (विधेम) भक्ति अर्थात् उसी की आज्ञा पालन करने में तत्पर रहें।

(दयानन्द भाष्य)

भाव—आत्मज्ञान और बल का दाता परमेश्वर के सिवाय और कौन है? सारा विद्वन्मण्डल, ज्ञानीवर्ग उसी को अपना उपास्यदेव मानता तथा भक्ति करता है। भगवन! आपका आशीर्वाद हमारे जीवन के लिए अमृत है और आप से दूर चले जाना, आपका विस्मरण ही भीषण मौत है। जिस को आप के आशीर्वाद का प्यारा तथा मीठा प्रसाद मिल जाता है आपके नाम के अमृतभरे प्यारे प्याले को पीता है उसे जीवन में क्या कुछ नहीं मिलता? मौत उसका क्या बिगाड़ सकती है? आपका बन जाना अमृत और आप से कट जाना मृत्यु है, दुःखों में पड़ जाना है। हे प्यारे! हे रसीले देव! हम तेरे ही बने रहें। तेरी ही भक्ति किया करें। तेरे ही प्यार का प्याला सदा पीते रहें—स०

ऋषि दर्शन

न सर्वज्ञादन्यतः सम्भवः

न - नहीं सर्वज्ञात् - सर्वज्ञ से अन्यत और किसी से सम्भव - उत्पन्न होना सम्भव है वेदों को उस सर्वज्ञ ब्रह्म के सिवाय और कोई भी नहीं रच सकता।

ईश्वरस्य शास्त्रं नित्यम्

ईश्वरस्य-ईश्वर का शास्त्र -शास्त्र वेद का ज्ञान नित्य-नित्य है। ईश्वर स्वयं नित्य है इसलिए उसका वेद का ज्ञान भी सदा नित्य है। नित्य का ज्ञान भी नित्य है।

सर्वार्थज्ञान युक्तं च

प्रभु का बनाया गया वेद ज्ञान सर्वार्थ-सारे अर्थों विद्याओं के ज्ञान से युक्त है भरा हुआ है। वेद में सारी सत्य-विद्याएं हैं। वेद सब सत्य-विद्याओं का पुस्तक है।

भा ष्य भू मि का

सम्पादक : त्रिलोक चन्द्र शास्त्री अधिष्ठाता—संतोष राज मंत्री सभा

कुम्भ पर्व पर मीठा प्रसाद

(पूज्य महात्मा आनन्द स्वामी जी महाराज हरिद्वार)

हरिद्वार में कुम्भ मेला पर नर नारियों की भारी भीड़ होती है। जल स्नान तो लोग करेंगे किन्तु मन-स्नान तथा आत्मप्रसाद तो महात्माओं के उपदेशामृत से होगा। श्री. महात्मा आनन्द स्वामी जी महाराज ने विचारों का बड़ा ही मीठा प्रसाद दिया है—स.

—क्या प्रसाद लिया है आपने?

—प्रसाद तो अभी कुछ लिया नहीं। हां, विचार कर रहा हूं कि कोई ऐसी वस्तु ले चलूं, जो सब को प्रिय हो।

—कुम्भ के पुनीत अवसर पर इतने कष्ट सहन कर आये हो भाई! प्रसाद ऐसा ही ले जाना चाहिये जो सब को केवल प्रिय ही न हो अपितु सब का कल्याण करने वाला भी हो।

—मेरी पत्नी तो कह रही थी कि गंगा-जल ले जायंगे, इससे उत्तम वस्तु और क्या होगी?

—ठीक है, गंगा जल बहुत अच्छा है किन्तु यह भी नाशवान् ही है, प्रसाद तो ऐसा लेना चाहिये जो सदा रहे और सेवन करने वालों को भी अमर बना दे।

—आप जानते हैं ना, आपकी भावज तो बड़ी चटोरी हैं, कह रही थीं कि यहां का बांस का अचार स्वादिष्ट होता है, वह ले चलेंगे, और उसकी बहन उमा को मधुर चीजें पसन्द हैं, वह यहां की मिठाई की लिस्ट बना रही थी, और वह हमारे नन्हे कूकू जी तो खिलौने ही एकत्र कर रहे हैं। हां, माता जी कह रही हैं, कि उन्हें अब घर से छुट्टी मिल जाय तो वह यहीं भगवान् के भजन में शेष दिन व्यतीत कर दें।

—ओ मेरे भाई, अपने-अपने स्वभाव के अनुसार ही इच्छा की जाती है।

—तो फिर आपको सब से अच्छा प्रसाद क्या प्रतीत होता है?

—मुझे तो कुम्भ का एक ही प्रसाद अच्छा प्रतीत हुआ है, यदि वह हम सब अपने साथ ले जायं तो हम सब का कल्याण हो जाय।

—सुनो, मैं गंगा-स्नान करके उधर ऋषिकेश की ओर भ्रमण करने जा रहा था, तो मोहन-आश्रम में कुछ भक्त-जन बैठे वार्त्तालाप कर रहे थे। एक महानुभाव ने उठ कर कहा कि हमें कुम्भ पर आये कितने ही दिन हो गये, अब कुम्भ का पर्व समाप्त होने वाला है, हम सब यहां से चल देंगे। यहां से जाने से पूर्व कुम्भ का प्रसाद ले लेना चाहिये। तब उस महात्मा ने बतलाया कि कौन-सा प्रसाद यहां से ले जाना चाहिये। जब उस महात्मा ने ऐसा कहा तो मेरी उत्सुकता बढ़ी और मैं अधीर होकर प्रतीक्षा करने लगा कि यह महात्मा किस प्रसाद का आदेश देते हैं।

तो हां, कौन-सा प्रसाद उन्होंने बतलाया?

—सुनो तो, वही बतलाने लगा हूं, ध्यान पूर्वक श्रवण करना, बहुत काम आने वाला प्रसाद है।

—जी हां, पूरे ध्यान से सुन रहा हूं।

—उस महात्मा ने कथा सुनाई कि एक गुरु के समीप उसके शिष्य बैठे थे। उन्होंने निवेदन किया कि महाराज कौन-सा प्रसाद कुम्भ से लेजाना अच्छा होगा? तो गुरुजी कहने लगे कि इस समय देश तथा संसार में अशान्ति का राज्य है। १२ वर्ष हुए जब हरिद्वार मे कुम्भ हुआ था तो यह अवस्था न थी। पहले कुम्भ पश्चात् विश्वव्यापी युद्ध हुआ और सारा संसार दुखी हो गया। कितने ही स्वतंत्र देश—जर्मन, जापान जैसे परतन्त्र हो गये। और कितने ही भारत, बर्मा इत्यदि परतंत्र देश स्वतंत्र हो गये, परन्तु स्वतन्त्रा आने पर भी शांति प्राप्त नहीं हुई। मन सब के दुखी हैं, संसार की इस भयंकर परिस्थिति को कौन सुधारेगा? इस बढ़ते हुए हाहाकार और अत्याचार को कौन रोकेगा? संसार के जितने शक्तिशाली देश हैं वह तो अशांति को बढ़ाने ही की सामग्री इकत्र कर रहे हैं। वह अग्नि को भड़का ही रहे हैं शान्त नहीं कर रहे। मायावाद और भोगवाद के इस तूफान में कोई यह विचार करता ही नहीं कि हम किस ओर जा रहे हैं? यह मार्ग जिस पर आज संसारी लोग अग्रसर हैं यह तो सर्वनाश की ओर ही लेजाता है। यह जो एटम बम्ब से २० हजार गुणा शक्तिशाली हैड्रोजन बम्ब अमरीका तथा रूस तैयार कर रहे हैं, क्या यह प्रलय न ले आयेंगे? ऐसी अवस्था म यदि कोई प्रसाद अपने साथियों सम्बन्धियों तथा संसारी जीवों के कल्याण के लिए यहां से ले जाना चाहते हो तो वह, केवल एक ही प्रसाद है, कि अपने मन को अपने वश में करो। जब तक मन ठीक नहीं होता तब तक स्वतंत्रता भी हमें कोई लाभ नहीं पहुंचा सकती।

जब गुरुजी इतना कह चुके तो एक भक्त ने कहा, महाराज! आपने तो ऐसे प्रसाद का आदेश दे दिया जिसका मिलना बड़ा दुष्कर है, गीता में अर्जुन भी पुकार उठा था कि यह मन बड़ा प्रमथ प्रमादी है, यह वश में नहीं आता, तब हमें यह प्रसाद कैसे प्राप्त होगा?

गुरुजी कहने लगे—भोले भक्त, निराश होने की कोई बात नहीं, पुरुषार्थ से सब कुछ प्राप्त हो जाता है।

भक्त ने पूछा, तो फिर वह रहस्य प्रगट क्यों नहीं कर देते ताकि दुखी जनता सुखी हो सके।

गुरु ने उत्तर में कहा स…स… स…स

बार बार स…स…स…स सुन कर भक्त-जन गुरुजी के मुख की ओर देखने लगे और गुरुजी बार बार स…स…स…स ही कहते रहे।

भक्त ने अधीर होकर पूछा—भगवान! यह स…स…स…स का क्या प्रयोजन है?

परम ज्योति पिता आओ जगाओ

(ले०—श्री राजेन्द्र जी 'जिज्ञासु, एम० ए० धुरी)

प्रभो हम को कुमार्ग से हटाओ
हमें आपस में मिल रहना सिखाओ
हैं झगड़े हो रहे दिन रैन जग में
यह ज्वाला देश की आओ बुझाओ
हैं दूषित भाव जो मन में हमारे
उन्हें प्रीतम सखा आओ भगाओ
बसो मन में हमारे हे दयामय
परम ज्योति पिता आओ जगाओ
पिलायें वेद का अमृत सभी को
हमें ऐसा सबल भगवन बनाओ
उजाला वेद का घर-घर करें हम
मुसाफिर सी लगन हम को लगाओ
ऋषि का काज पूरा हम करेंगे
हमें निर्भीक वैसा ही बनाओ

सम्पादकीय—

आर्य जगत्

वर्ष २२] रविवार १९ चैत्र २०१८, १ अप्रैल १९६२ [अंक १३

हरिद्वार कुम्भ के अवसर

पर आर्य प्रादेशिक सभा पंजाब जालन्धर की ओर से वेद प्रचार करने का विशेष समारोह का आयोजन किया जाता है। वैसे भी इस प्रकार के भारी मेलों में आर्यसमाज अपना वैदिक सन्देश देश के कोने कोने से एकत्रित हुए लाखों नर-नारियों तक पहुंचाया करता है। आर्यसमाज सदा ही ऐसे महामेलों से पूरा २ लाभ उठाता रहता है। हरिद्वार राष्ट्र के लिए एक महान तीर्थ का केन्द्र बना हुआ है। परम्परा से कुम्भ के अवसर पर नर-नारी वहां जाते रहते हैं। आर्य प्रादेशिक के महान् संस्थापक स्वर्गीय महात्मा हंसराज ने हरिद्वार में विशाल मोहन आश्रम को स्थापित ही इसीलिए किया था—कि वहां सभा की ओर से समय २ वेद प्रचार की धूम मचती रहे। सभा ने अपनी इस प्रचार की परम्परा को आज तक पूरी शान से कायम रखा है। स्वर्गीय महात्मा हंसराज जी के बाद पूज्य महात्मा आनन्द स्वामी जी महाराज अन्य सारे आवश्यक कार्यों को छोड़ कर भी ऐसे महान् अवसर पर हरिद्वार में पहुंच कर मोहन आश्रम में वेद प्रचार का सारा काम अपनी देखरेख में चलाते हैं। इस बार भी वहां वेद पारायण यज्ञ जारी है तथा प्रचार की धूम मची हुई है। सभा के मान्य सहयोगी अनेक सज्जन इस पवित्र कार्य में पूरा २ हाथ बटाने के लिए मोहनाश्रम में पहुंच कर कार्य में जुट गये हैं। बहुत ही आनन्द आ रहा है। वेद प्रचार की गंगा बहती है।

प्रचार का यह सुनहला साधन है। आर्य समाज ऐसे अवसर पर वैदिक साहित्य के द्वारा अपनी आवाज को देश के कोने २ में पहुंचा सकता है। सभा इस आयोजन में पूरी २ शक्ति लगाती है। समाजों, संस्थाओं एवं अपने प्रेमी सज्जनों का ध्यान इस आवश्यक कुम्भ प्रचार की ओर आकर्षित करती है। इस ने अपने कर्तव्य का पालन किया है। समाजें, संस्थाएं तथा सज्जन ही तो सभा के हाथ व कन्धे हुआ करते हैं। ये जितने शक्तिशाली व संयुक्त होंगे सभा के प्रचार की गति उतनी ही तीव्र और प्रभावशाली होगी। बारह वर्ष के बाद ऐसा महान संयोग मिला करता है। सभा के मान्य अधिकारियों ने अपने मुखपत्र 'आर्य जगत' के द्वारा सारे धर्म प्रेमी आर्य नर-नारियों तथा अन्य वेद प्यारों को सावधान कर दिया है। सभा की ओर से वेद प्रचार प्रारम्भ है। अब समाजों का दायित्व आरम्भ होता है। देश के कोने २ मे सभा के द्वारा आर्य समाज का डंका बजे, वेद प्रचार का निनाद गूंज उठे। इस के लिए इस अवसर पर कुम्भ प्रचार के लिए अधिक से अधिक आर्थिक सहयोग सभा को देवें। इस से बढ़ कर सात्विक दान क्या और कब हो सकता है। व्यक्तियों तथा समाजों की ओर से शीघ्र ही सभा के कार्य में शामिल होते हुए ऐसे ज्ञान प्रचार यज्ञ में अधिक से अधिक अपनी द्रव्य की आहुति सभा के पास जालन्धर भेज देनी चाहिए। सहयोग अधिक तो प्रचार भी अधिक होगा। विलम्ब से क्या लाभ ?

—त्रिलोक चन्द्र

हार्दिक और आन्तरिक बधाई

प्रिंसिपल सूर्यभानु जी एम० ए० प्रधान आर्य प्रादेशिक सभा पंजाब जालन्धर को पंजाब के राज्यपाल श्री गाडगिल ने कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय का उपकुलपति नियत किया है— इस अत्यन्त हर्षजनक शुभ समाचार को पढ़ सुन कर सब को अतीव हार्दिक प्रसन्नता हुई है। इस उच्चासन पर बैठाने के लिए उच्च ही व्यक्ति के चुनाव और चयन पर सारी जनता श्री राज्यपाल को पुन: २ बधाई दे रही है। राष्ट्रिय सेवा के इतने महान् शिक्षा केन्द्र के गौरवमय पद पर आसीन होने पर हम मान्य प्रधान जी को हार्दिक तथा आन्तरिक उल्लासभरी बधाई देते हैं। श्री प्रिंसिपल जी शिक्षा के क्षेत्र में बहुत प्रसिद्ध शिक्षा-कुशल नेता हैं। प्रबन्ध के कार्यों में आप की कुशलता की तो यत्र तत्र सर्वत्र चर्चा है। आपकी गम्भीरता सौम्यता और दूरदर्शिनी दृष्टि बड़ी प्रख्यात है। आर्यसमाज तथा कालेज विभाग को आपके महान व्यक्तित्व पर बड़ा गर्व है। लेखक तथा गम्भीर वक्ता हैं। डी. ए. वी. कालेज जालन्धर का दायित्व लेकर कितनी ऊंची शान पर पहुंचा दिया है। सभा के प्रधान हैं। अपने पराये सारे मुक्त कण्ठ से प्रशंसा करते हैं। आपके प्रबन्ध तथा महान नेतृत्व में कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय सारे भारत मे बड़ी ही उन्नति, ख्याति को प्राप्त करेगा। योग्य स्थान पर योग्य नेता का निर्वाचन किया गया है। महर्षि दयानन्द, वैदिक धर्म, महात्मा हंसराज, आर्य समाज के आप आरम्भ से ही भक्त हैं। ईश्वरनिष्ठ हैं। सभा से दूर चले जाने पर मन में रह२ कर कुछ हमें विषाद तथा उदासीनता भी हो रही है पर विश्वास भी है कि शिक्षा के इस विशाल, महान शिक्षाक्षेत्र में पहुंचने पर सभा, सारे उपदेशकों, समाजों व संस्थाओं को आपका सदा शुभ परामर्श और समय २ पर सहयोग आशीर्वाद मिलता रहेगा। प्रभु करे कि आपके कुशल प्रबन्ध एवं आदर्श नेतृत्व में कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय सचमुच प्राचीन आदर्शों का ज्योति स्तम्भ बन कर देश विदेश को विद्या का प्रकाश दे सके—सं०

आरोग्य मन्दिर

यमुना नगर के संस्थापक कविराज रामसिंह जी सच्चे जीवन के सज्जन हैं। आर्यसमाज के तो अनथक प्रेमी ही हैं। नूरपुर समाज का औषधालय आपके द्वारा चलाया हुआ आज भी कितना कार्य कर रहा है। कविराज जी की सभापत्र आर्यजगत पर सदा कृपा बनी रहती है। आपके समय २ पर लिखे स्वास्थ्य के बारे में लेख कितने जीवन निर्माण करने वाले होते हैं। आपने आरोग्य प्रकाश लिख कर स्वास्थ्य के पथ के पथिकों के लिए तथा योगासनों का चित्रक प्रकाशित करके जनता को कितना लाभ पहुंचाया है। आर्य जगत के प्रेमी पाठकों के लिए कविराज जी के स्वास्थ्य लेख समय २ पर प्रकाशित होते रहेंगे।

युवक सम्मेलन

सभा के मान्य उपमन्त्री प्रो० वेदीराम जी शर्मा एम० ए०, डी० ए० वी० कालेज जालन्धर नवयुवकों को संगठित करके समाज में आकर्षित करने के विशेष कार्य में जुट गये हैं। अपने कालेज में तो आर्य युवक समाज का कमाल का कार्य चला रहे हैं। हम सारे आर्यसमाजों को कहना चाहते हैं कि अपने वार्षिकोत्सवों पर एक आर्ययुवक सम्मेलन जरूर ही रखें। युवकों की शक्ति का संगठन गढ़ कर सभा को बड़ा लाभ होगा। मान्य प्रोफेसर जी युवक समाजों के सम्मेलनों में अवश्य शामिल होंगे, हम इसे आवश्यक समझते हैं—सं०

"पारिवारिक कलह के कारण"

(कु. अरुण जी गुप्ता, प्रभाकर, टोहाना)

विवाह जीवन का एक प्रमुख अंग है। जीवन रूपी यात्रा करते हुए मार्ग में अनेक प्रकार की कठिनाइयें, बाधाएं उपस्थित होती हैं जिन का सामना करते हुए अकेला मनुष्य घबरा जाता है, उस का मस्तिष्क चकरा जाता है कि अब करे तो वह क्या करे ? इस से यह सिद्ध होता है कि उस के लिए एक दूसरा जीवन साथी होना परम आवश्यक है। शायद इसीलिए, जब से यह सृष्टि बनी है, विवाह की प्रथा प्रचलित है।

अब इस के अनन्तर यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि विवाह भी हो गया, लेकिन फिर भी उन का गृहस्थ जीवन सुख एवं शान्तिपूर्वक व्यतीत नहीं हो रहा तो इस के मूल कारण क्या हैं ?

प्राय आधुनिक युग में तो यह अवस्था विशेष है। आधुनिक परिस्थितियों का अध्ययन करते हुए और उन सभी बातों के दृष्टिगत चार प्रमुख कारण हैं।

प्रथम कारण :—प्रायः कई बार ऐसा होता है कि, लड़की लड़के की अपेक्षा अधिक पढ़ी लिखी **(educated)** होती है जिस के फलस्वरूप वह अपने पति तथा ससुराल वालों पर अपना प्रभाव अर्थात् रोब स्थापित करना चाहती है लेकिन वे उसके रोब को सहने के लिए बिल्कुल भी तत्पर नहीं होते जिस के परिणामस्वरूप गृह में कलह, लड़ाई और नाना प्रकार के संघर्ष उत्पन्न हो जाते हैं। और उन का पारिवारिक जीवन जो कि विवाह से पूर्व शान्तिमय था वह दुख.मय और संकटमय जीवन में परिवर्तित हो जाता है।

द्वितीय कारण :—यह कि लड़के और लड़की के परस्पर गुण, कर्म, स्वभाव (Nature) का संसर्ग न होना। ऐसी अवस्था में भी उन का गृहस्थ जीवन सुखमय नहीं हो सकता। क्यों कि प्रत्येक बात में लड़का अपनी बात ऊपर रखेगा और लड़की अपनी। दोनों के मस्तिष्क में यह विचार समाया होता है यदि उस की बात न मानी गई तो उस का व्यक्तिगत महत्त्व कम हो जायगा। अतः विवाह से पूर्व यह देख लेना अति अनिवार्य है कि दोनो के गुण, कर्म एवं स्वभाव का सम्पर्क है अथवा नहीं।

तृतीय कारण :—लड़के और लड़की के परस्पर विचार भी मेल खाते हैं और दोनों पारस्परिक वर्ताव से सन्तुष्ट भी हैं पर लड़के के माता पिता उन की इस सन्तुष्टता को अपनी आंखों से देखने में असमर्थ हैं। सास प्रति क्षण लड़ाई करने के उपाय ढूंढती रहती है। वह बहू का उठना बैठना, हसना खेलना, खाना पीना, और ओढ़ना पहरना कुछ भी देख नहीं सकती। यदि लड़ने का कोई मार्ग न मिलेगा तो अपने लड़के को बहू के प्रति झूठी २ बातें बढ़ा चढ़ा कर सिखाना प्रारम्भ कर देगी ताकि उस से वह लड़े। प्राय. ऐसा अपढ परिवारों में देखने में और सुनने में आता है। कई सासें तो ऐसी होती हैं कि जब तक वो बहू की बुराई का गान सारे मुहल्ले में न कर लेगी तब तक रोटी नहीं पचती।

यह तो स्वाभाविक है कि, प्रत्येक मानव में गुण तथा दोष दोनों ही होते हैं। यदि दोष न हों तो गुणों का सत्कार कौन करे। और फिर मानुव त्रुटियों का पुतला है। **(To err is human)** यदि कोई त्रुटि बहू में हो तो उसको लड़ने की अपेक्षा प्रमपूर्वक समझाए। यदि उसे प्रेम से समझाया जाएगा तो उस के हृदय में अपने ससुराल वालों के प्रति अपार स्नेह की धारा उमड़ आएगी।

चतुर्थ कारण :—आजकल लोगों की लालसा इतनी बढ़ गई है कि जिस की कोई सीमा नहीं है। वह दौलत को पाने के लिए चारों और लालसा भरी दृष्टि से देखता रहता है। वह सब पाप कर्म करने के लिए तैयार है यदि कहीं से पैसा मिल जाए। यहां तक कि केवल अर्थ प्राप्ति के लिए अपने लड़कों का खुल कर व्यापार करते हैं। शादी के पश्चात् उस 'देवी, को तंग करने में कोई कसर नहीं छोड़ते हैं। उसे कहते हैं कि तुम अपने मायके घर से ५००० रु ले कर आओ वरना तुम्हे मार देंगे। लड़की अपने माता पिता की आर्थिक अवस्था से भली भांति परिचित होती है। जब इस तरह करने से इन्कार करती है तो वो कुकर्मी, अत्याचारी उस की जीवन लीला समाप्त करने में भी नहीं हिचकिचाते। ऐसी अनेकों दुखद हृदय विदारक मर्मस्पर्शी घटनाएं समाचार पत्रों में पढने और सुनने में आती हैं। इस प्रकार न जाने कितनी ही देवियों की जीवन लीला प्रतिदिन समाप्त हो चुकी है यह समस्या दिन प्रबल होती जा रही है। जिस को हटाना परम अनिवार्य है। इस से हमारे राष्ट्र, देश एवं जातीय उन्नति की क्षति होती है।

इन सभी बातों के दृष्टिगत यह सारांश निकलता है कि लड़की बेचारी को चारों ओर से विपत्ति है।

अत. इन कलहों एवं संघर्षों को शान्त करना तथा इन का अन्त करना हमारे ही हाथ में है और इन को उत्पन्न करना भी हमारे हाथ में।

आर्य जगत रोहतक के समाचार

आर्य समाज प्रधाना मोहल्ला का वार्षिक निर्वाचन ११ मार्च १९६२ रविवार के दिन निम्न प्रकार से हुआ। प्रधान .—श्री राम रंग जी वकील L.L.B. कार्य वाहक प्रधान .—श्री परमा नन्द जी विद्यार्थी S. T. प्रभाकर सहायक प्रधान .—श्री देव राज जी B.A. सहायक प्रधान :—श्री मती ज्ञान वती जी। उप मन्त्री :—कैलाश जी। प्रचार मन्त्री :—श्री जगदीश मित्र जी। मन्त्री —श्री. गुरुदत्त जी। कोषाध्यक्ष .—श्री सुभाष B.A.B.T. यज्ञ मन्त्री .—श्री मुन्शी राम जी निरीक्षक .—श्री सेवा राम जी। अन्तरंग सदस्य .—सर्व श्री किशोरी लाल, राम नारायण जी, अमीर चन्द्र जी बल्ला राम जी, श्रीमती शान्ति देवी, श्रीमती कौशल्या देवी, श्री राम दित्ता मल

उसी दिन आर्य वीर दल का निर्वाचन उस के कार्यालय में इस प्रकार हुआ। नगर नायक :—श्री परमा नन्द जी विद्यार्थी शाखा नायक .—श्री मेहर चन्द जी शिक्षक —श्री नन्द लाल जी उप शिक्षक :—श्री राम चन्द्र जी कोषाध्यक्ष :—श्री ईश्वर चन्द्र जी बौद्धिक शिक्षक :—श्री भरत सिंह मन्त्री :—श्री जगदीश मित्र वाद विवाद मन्त्री :—श्री कैलाश जी।

आर्य समाज कालेज विभाग का वार्षिकोत्सव ४, ५, ६, मई को होना नियत हुआ है।

सर्वदा नन्द आर्य,

आर्य समाज मोडल टौन अबाला

का वार्षिक चुनाव ११-३-६२ को निम्न प्रकार से हुआ। प्रधान :—श्री मेहर चन्द जी मेहरा एडवोकेट उपप्रधान—भगत राम जी गांधी मन्त्री .—राम लाल जी कोहली उप मन्त्री प्रो. डी. के गुप्ता खजांची श्री ईश्वर लाल खुराना पुस्तकाध्यक्ष—श्री मालिक राम लेखानिरीक्षक डी. के आर्य—

राम लाल कोहली [illegible]

शिवरात्री की याद में आर्यों का धर्म

(ले० पण्डित चन्द्रसेन जी आर्य हितैषी, आर्य प्रादेशिक सभा, सोनीपत निवासी)

(शिवरात्री अंक का शेष लेख)

पर्व और त्यौहारों से हमें अनेक रूपों में शिक्षा मिलती है, कई पर्वों का सम्बन्ध ऋतुओं और महापुरुषों के जीवन के साथ भी होता है। शिवरात्री भी अपनी निराली शान रखती है. मूलशंकर बालक को विश्व का शंकर बनानेवाली यही एक शुभ घड़ी थी, ऐसी कई घड़िया हमारे सामने आती हैं बिरली ही आत्माएं इस महत्व को समझती हैं तथा पथ प्रदर्शक बनकर विश्व को ज्ञान कराती हैं। शिवरात्री की वह शुभ घडी जिस ने दयानन्द को दयालु और उपकारी महर्षि बनाया इस देवता स्वरूप दयानन्द ने हमें भी शिवरात्री के वास्तविक स्वरूप को समझाया व प्रभु प्राप्ति का सही पथ बताया। साधु लाखों हुए पर वे अपनी गद्दिया बनाने में लगे रहे अपने नाम पर मत चलाए चेले चेलिया ही बनाते रहे, जाति व धर्म की सेवा का इन्हें जरा भी ध्यान नहीं, नील कंठ जैसे विद्वान भी ईसाइयों के फन्दों में फंस गये, पाखण्डी साधुओं ने वैदिक मर्म को न जाना विधर्मी भारत पर छा गये असली प्रभु को भूल नकली देवी देवताओं की पूजा चलाई गई, विचित्र प्रकार की दुकानदारी चली दुकानदार चीज देता है और पैसे लेता है पर ये दुकानदार ऐसे निकले, लेते रहते हैं देते कुछ भी नहीं देवता स्वरूप दयानन्द ने आज से १३६ वर्ष पूर्व सच्चे शिव की तलाश की और सफलता मिली, वही सुन्दर पथ आस्तिकता का हमें भी बताया। हजारों पौराणिकों तथा अन्य मतों की पुस्तकें पढ़ीं उत्तर में अनेकों पुस्तकें लिखीं दिल के सब भ्रमों को मिटा देने वाला एक अनोखा ग्रन्थ सत्यार्थ प्रकाश लिखा जिस को हजारों विरोधी जनों ने पढ़ा फिर वे कट्टर ऋषि भक्त बन गये। इसी विचारधारा के प्रचारार्थ आदर्श साधु ने आर्य समाज की स्थापना की, आर्यसमाजी जब तक शिवरात्री को श्रद्धापूर्वक मनाते तथा ऋषि के पथ पर चलते रहे तब तक आर्य समाज को सही पथ पर चलाने का विचार रहा, क्षमा करना आज आर्यों में अपस्वार्थ की भावना पैदा होने लगी है आपस की दलबन्दी से छुटकारा ही नहीं मिलता साप्ताहिक सत्सङ्गों की हाजरी लगवाने से कार्य पूरा नहीं होता और न ही ऋषि भक्ति प्रकट होती है। हमारी इस कमजोरी से विरोधी फिर सिर उठा रहे हैं लाखों हिन्दू विधर्मी बनाए जा रहे हैं। स्वतन्त्र भारत मे आर्य समाज की क्या दशा है ठण्डे दिल से इस पर कभी गम्भीरता से विचार किया, स्वयं आर्यों में धार्मिकता कम हो रही है आज आर्य समाज में नवयुवक नहीं के बराबर हैं कई ऐसे बड़े आर्य नेता भी हैं जिन की सन्तान नास्तिकता की ओर जा रही है फिर शिवरात्री को श्रद्धा से क्या समझें तर्क के सिवाय और कुछ नहीं, मैं यह नहीं कहता कि आर्य समाज बिलकुल ही समाप्त हो गया है, हां इस में समाप्ती के जो छिद्र पैदा हो रहे हैं उन्हें तुरन्त बन्द करें कहीं दयालु दयानन्द की वाटिका सूख न जाए, दुःख इस बात का है विश्व को आर्य बनाने वाले स्वयं आर्य नहीं बन रहे प्रचारकों का सन्मान नहीं। इस शिवरात्री की याद में आर्यों का धर्म ये हो जाता है कि आर्य समाज को सही आर्य समाज बनावें, शिवरात्री की शुभ घड़ी से देव दयानन्द को जीवन दान मिला मुक्ति पथ की राह मिली वही रोशनी ऋषि ने हमें भी दी हम भी ऐसा करें। इसलिये मैंने लिखा शिवरात्री की याद में आर्यों का धर्म।

दो बहिनों की बातें

गत शिवरात्री के पुण्य पर्व पर बटाला डी. ए. वी. प्राइमरी स्कूल में जो शानदार समारोह हुआ— उस में हकीम सत्यपाल जी की पुत्रिया शुक्ला और सुमेधा का इसी अवसर का मनोरंजक सम्वाद प्रसंग बड़ा पसन्द किया गया—

शुक्ला—आओ बहिन जी। कहां जा रही हो ?

सु०—जाना कहां है—इधर-उधर फिर रही हूं।

शु०—बहिन ! तुम बड़ी मूर्ख हो जो समय व्यर्थ गंवा रही हो।

सु०—क्या करू—मेरे लिए कौन सा काम है ?

शु०—अच्छी बात—कोई बात ही सुनाओ।

सु०—क्या सुनाऊ, न मैं पढ़ी और न लिखी ही हूं।

शु०—क्यों तेरे माता-पिता ने तुझे पढ़ाया नहीं ?

सु०—मुझे क्या पढ़ाना लिखाना था। उन्होंने तो किसी को भी नहीं पढ़ाया लिखाया।

शु०—क्या कारण है कि वह पढाते लिखाते क्यों नहीं ?

सु०—वे कट्टर पन्थी हैं—कई बार वे कहते हैं कि स्त्रियों और शूद्रों को पढ़ने का अधिकार नहीं है।

शु०—बहिन ! मेरे माता-पिता जी ने तो मुझे विद्या पढ़ाई है। जब वे घर बैठते तो कहते हैं—माता शत्रु पिता वैरी येन बालो न पाठित न शोभते सभामध्ये हंसमध्ये वको यथा—

सु०—मुझे क्या पता—तू यह क्या घरड मरड कर गई ?

शु०—और क्या कहूं—जो बात समझ में न आये वह घरड-मरड ही तो है।

सु०—तुम इतनी बड़ी हो गई परन्तु रही मूर्ख ही। स[illegible] सुन्दर श्लोकों को घरड़-म[illegible] रही हो। देखो इस का यह [illegible] कि वे माता-पिता अपनी [illegible] के शत्रु हैं जो उन्हें पढ़ा[illegible] अनपढ़ बच्चे सभा में ऐसे [illegible] जो हंसों में बगले।

शु०—तेरे माता-पिता [illegible] शिक्षा कहां से सीखी ?

सु०—स्वामी दयानन्द की अमर पुस्तक सत्यार्थ प्र[illegible]

शु०—क्या उस म[illegible] कुछ लिखा है ?

सु०—हां ! यह भी लि[illegible] मातृमान् पितृमान् आ[illegible] पुरुषो वेद। इसका अर्थ [illegible] जिस बच्चे के माता-पिता धार्मिक विद्वान् हैं वे बच्चे [illegible]

शु०—अच्छा यह ब[illegible] स्वामी जी ने यह बातें कहां से [illegible]

सु०—वेदों में से।

शु०—क्या वेद पढ़ने को अधिकार है ?

सु०—हां बहिन ! वेद है—यथेमां वाचं कल्याणी जनेभ्य —वेद पढ़ने का अधिकार है।

शु०—क्या तू मुझे प्रकाश दे सकती है ताकि माता-पिता को दिखाऊं।

सु०—हां क्यों नहीं इच्छा है तो मेरे घर आकर

शु०—वाह बहिन ! पुस्तक में इतनी अच्छी ब[illegible] हैं उसके पढ़ने की इच्छ[illegible] नहीं होती ?

सु०—बता-किस समय ताकि मैं उस समय घर पर

शु०—मैं आज ही [illegible] आऊंगी। तेरा बड़ा ही [illegible] करती हूं जिस ने मुझे दिखाई।

सु०—अच्छा बहिन ! नमस्ते बहिन—

—०—

ं भारत का बहुत बड़ा
र धन में तो भारत में सर्व-
योग्यता तथा व्यापार की
तो संसार के सुप्रसिद्ध
है। शासन की दृष्टि से
नेक काल की प्रणाली में
हुत ऊंचा स्थान है। सारे
ी नहीं अपितु देश देशां-
ोग यहां मिलते हैं तथा
हने वालों को कई बोलियां
ड़ती हैं।

ं समाजों केलिए भी यह
त्व का नगर है। बड़े-बड़े
पर आर्य समाजी विचारों
ा आर्य समाज के लिए
ा दान देते रहते हैं। यहा
षि दयानंद ने आर्य समाज
ा के लिए पहला प्रयास
।

एक दुख की बात है कि
केवल १७ या १८ आर्य
ं यहां दिल्ली के मुकाबले
र्य समाज का प्रचार बहुत
शायद उत्तरी भारत के
ाजी नेता इस ओर ध्यान
। कुछ आर्य समाजों के
हैं :—

ं समाज (१) मटुंगा (२)
त (३) फोर्ट (४) काकड-
) चैंबूर (६) परेल (७)
ड़ा (८) सैंडसर्ट रोड (९)
वे (१०) बडाला (११)
ा पार्क (१२) कल्याण कैंम्प
ी (१४) कामटी पुरा (१५)
नगर।

आर्य समाजों में कुछ के
निजी आर्य समाज मन्दिर
घरों में ही लगती हैं।
सब आर्य समाजें बम्बई
निधी सभा के आधीन हैं
प्रधान कार्यालय बड़ौदा में
जिसके प्रधान सेठ कांती-
ां हैं और मन्त्री श्री वेणी-
र्य हैं। कोई कारण मुझे
ा नहीं आया कि बम्बई जैसे

बम्बई में आर्य समाज

(ले० प्रिंसिपल श्री भगवान दास जी दयानंद कालेज सोला पुर)

✦✦✦✦✦✦✦✦✦✦✦✦✦✦✦✦✦✦✦✦✦✦✦✦

बड़े नगर को छोड़ कर यह कार्यालय बड़ौदा में क्यों है। और चाहे कोई भी लाभ हो पर यह ठीक प्रतीत होता है कि बम्बई में न होने से प्रति वर्ष बम्बई में हजारों आर्य समाजी यात्रियों का सम्पर्क सभा से नहीं होसकता तथा संगठन इतना शक्ति-शाली नहीं हो पाता जितना कि होना चाहिये। मेरा यह विचार है कि अगर उत्तरी भारत के नेता तथा सार्वदेशिक सभा इस ओर ध्यान दे तो बम्बई आर्य समाज का बड़ा केन्द्र बन सकता है तथा बहुत उपयोगी सिद्ध हो सकता है। मुझे विदित हुआ है कि प्रांतीय प्र० नि० सभा ने महाराष्ट्र के लिए उप सभा का प्रस्ताव प्रेरित किया है। जिस को कार्य में लाने की आवश्यकता है। जिससे आर्य समाज का कार्य भी बहुत शक्ति पकड़ जायेगा। मुझे यह कहते हुयेतो प्रसन्नता होती है कि इस सभा के पास बहुत सुन्दर उपदेशक हैं।

बम्बई मे आर्य समाजों के अतिरिक्त आर्य समाजी संस्थाएं भी हैं पर बहुत थोडी हैं। उनमे से कुछ यह हैं दयानंद बालक विद्यालय माटुंगा, श्री फोर्ट आर्यवीर दल, गुरुकुल हाई स्कूल, गुरुकुल टैक्नीकल स्कूल भाट कोयर, दयानद स्कूल माहूस, यह भी एक उत्साह वर्धक बात है कि सिध की आर्य प्रतिनिधी सभा का पुन जन्म भी बम्बई के अन्दर हो गया है तथा सुप्रसिद्ध नेता श्री तारा चन्द पाजरा तथा उनके साथी प्रयत्न-शील हैं। उल्हास नगर में बम्बई के पास ही लड़कों का कालेज लड़कियों का कालेज, स्कूल आदि उन्होंने खोले हैं तथा सेठ मंगल दास शर्मा जी भी बम्बई में कालेज खोल रहे हैं और स्वतन्त्र युद्ध के प्रसिद्ध खिलाड़ी तथा लाला लाजपतराय जी के चेले ला. जगन्नाथ जी भी लाला लाजपतराय कालेज खोलने वाले हैं। बम्बई में जाकर एक बात स्पष्ट हो जाती है कि आर्य समाजी नेता तथा सेठ अपने निजी कार्यों में बहुत लगे रहते हैं। क्या ही अच्छा हो कि वे अपना थोड़ा समय इधर भी लगायें जिससे आर्य समाजों की काफी प्रगति हो सके।

मुझे आर्य समाज माटुंगा के वार्षिक उत्सव पर जाने को सुअवसर मिला। यह आर्य समाज के पुराने तथा विचार-शील सौभाग्य शाली नेता सेठ काचवाला जी की प्रधानता मे चल रही है। तथा इस आर्य समाज का जीवन श्री ओंकार नाथ जी मेरे लाहौर के पुराने साथी हैं श्री ओंकार नाथ जी तथा उनका सारा परिवार बागवान पुरा लाहौर के आर्य परिवारों मे से हैं उनका सारा कारोबार पाकिस्तान बनने से नष्ट हो गया था। उन के पूज्य पिता लाला राम रत्न जी तथा सारे परिवार ने सब कुछ सह लिया पर धर्म निष्ठा तथा आर्यत्व नहीं छोड़ा उनको ईश्वर ने भी बहुत फल दिया। आज उनको ब० के उद्योगपतियों मे एक ऊंचा नाम है तथा ईश्वर की कृपा है। चित इस आर्य परिवार को मिलकर बहुत प्रसन्न होता है। इस आर्य समाज में प्रेम और प्यार देखने योग्य है। श्री सत्य-व्रत स्नातक, श्री. पं. सुदर्शन जी, श्री गुलजारी लाल आय हमारे अमृतसर के पुराने कार्यकर्ता रघुनाथ जी आदि सब खूब ऋषि के मिशन की सेवा कर रहे हैं। उत्साह का अनुमान इस बात से लग सकता है कि ऋषि लंगर में चार चार हजार भोजन पाते रहे। मराठी तथा गुजराती भाषा का साहित्य मुफत बांटा जाता रहा प्रबन्ध इतना सुन्दर देखा कि अधिकारी तो सब बैठे ही थे पर सारा कार्य स्वयं चल रहा था। इसी से कार्य कुशलता दीख पड़ती है। बच्चों के लिये दो विद्यालय चल रहे हैं यहां उत्तरी भारत में कुछ आर्य भाईयों को सरकार से डरते देखा इस आर्य समाज ने बल पूर्वक सरकार को कह दिया कि धर्म शिक्षा का कार्य चलना ही है। लाहौर से निकल कर आर्य समाज की छाप बच्चों के जीवन पर पड़ती प्रथम बार देखी विद्यालय के प्रिंसिपल श्री क. प. सिंह तथा उनके सहयोगी कार्य कर्त्ता धन्य हैं।

आर्य समाज फाजिलका

का वार्षिकोत्सव बड़े समारोह से सम्पन्न हुआ। इस नगर में आर्य समाज का अच्छा प्रभाव है। बड़ा शानदार डी. ए. वी. हाई स्कूल चल रहा है। समाज का कार्य भी अच्छे रूप में है। सात्विक दानी श्री ला. चानन राम जी सरीखे सज्जन और श्री ला. मुंशी रामजी वकील जैसे गम्भीर अधिकारी कार्य में लगे हैं। उत्सव में श्री प. चन्द्र सेन जी, श्री पं. त्रिलोक चन्द्र शास्त्री, पं. शिवचरण जी, पं. हजारी लाल जी सभा की ओर से शामिल हुए। धर्म के प्रति जनता की रुचि देखकर मन प्रसन्न होता है महिला समाज भी अच्छी है। आर्य कुमार भी खूब काम करते हैं। उत्सव हर प्रकार से सफल रहा मन्त्री श्री. सदानंद जी एम. ए. बी. टी तथा मूलचन्द जी बड़े अनथक समाज सेवक तथा कार्यकर्ता हैं। बधाई।

सभा की समाजों के उत्सव प्रचार की धूमधाम

वेद प्रचार कार्यालय के साप्ताहिक समाचार

—अनाथालय करनाल का उत्सव ६ से ८ अप्रैल को सम्पन्न हो रहा है प० चन्द्रसेन जी, हजारीलाल जी पधार रहे हैं।

—आ० स० खुल्दाबाद प्रयाग का उत्सव १० से १३ मई को सम्पन्न हो रहा है।

—आ. स. कोजल्का का उत्सव २३ से २५ मार्च को सम्पन्न हुआ २१ से मा. तारा चन्द्र जी के भजन और पं. चन्द्र सेन जी की कथा हुई। उत्सव पर प. त्रिलोकचन्द्र जी, श्री. पं. रामकृष्ण जी, श्री मेला राम जी, श्री. हजारी लाल जी पधारे।

—आर्य समाज माडल टाऊन गुड़गावा का उत्सव ३१ मार्च १-२ अप्रैल को धूम धाम से सम्पन्न हो रहा है। २६ मार्च से ३० तक रात के ८ से १० बजे तक खुशीराम शर्मा की कथा और राज पाल जी, मदन मोहन जी के भजन होंगे। उत्सव पर श्रीमान् ला. चद्र जी हिसार प्रो. राम विचार जी, M. A. श्री. मेला राम जी, श्री. हरि दत्त जी, श्री. देस राज जी पधार रहे हैं। ३१ मार्च को पूज्य महात्मा आनन्द स्वामी जी महाराज पधार रहे हैं।

—आर्य समाज जलालाबाद—का उत्सव ६ से ८ अप्रैल को धूम-धाम से सम्पन्न हो रहा है। २ अप्रैल से खुशीराम शर्मा की कथा और मा० तारा चन्द्र जी के भजन होंगे। उत्सव पर ८ अप्रैल को युवक सम्मेलन प्रो. वेदीराम जी शर्मा एम. ए. की अध्यक्षता में होगा। उत्सव पर श्री राजपाल जी, श्री मदनमोहन जी श्री मेलाराम जी पधारेंगे।

—आ. स. घुसिवाल का उत्सव २० से २२ अप्रैल को धूमधाम से सम्पन्न हो रहा है। १५ अप्रैल से खुशीराम शर्मा की कथा और मा तारा चन्द्र जी के भजन होंगे। उत्सव पर श्रीमान् प्रो. वेदीराम जी. पं० हरिश्चन्द्र जी, श्री रामशरण जी, महावीर जी, नत्थूराम जी मडली पधारेंगी।

—आ. स. लाजपत नगर सोनीपत का उत्सव २० से २२ अप्रैल को धूमधाम से सम्पन्न हो रहा है। १५ अप्रैल से पं० ओमप्रकाश जी की कथा और मंडली के भजन होंगे। उत्सव पर जगतराम जी, जयनारायण जी तथा अन्य महानुभाव पधारेंगे।

—आ स. खन्ना का उत्सव २० से २२ अप्रैल को धूमधाम से सम्पन्न हो रहा है। १५ अप्रैल से श्री पं० त्रिलोकचन्द्र जी की कथा और श्री हजारी लाल जी के भजन होंगे। उत्सव पर विद्वान सज्जन पधारेंगे।

—आ. स. पंजौर का उत्सव २९ से ३१ मार्च तक धूमधाम से सम्पन्न हो रहा है। शिवचरण जी, श्री तारा चन्द्र जी, श्री. हजारी लाल जी, श्री मेलाराम जी पधार रहे हैं।

—आ. स. जोगेन्द्र नगर का यज्ञ उत्सव ५ से १३ अप्रैल तक सम्पन्न हो रहा है। श्री पं० ओमप्रकाश जी, राजपाल जी मदन मोहन जी पधारेंगे।

—आ. स. फिरोजपुर शहर का उत्सव २७ से २९ अप्रैल को सम्पन्न हो रहा है।

—आ. स. कालेज विभाग रोहतक का उत्सव ४ से ६ मई को धूमधाम से सम्पन्न हो रहा है।

—स्त्री समाज करनाल का यज्ञ उत्सव १ से ५ अप्रैल को सम्पन्न हो रहा है श्री. पं. चन्द्र सेन जी, हजारी लाल जी पधार रहे हैं।

—हरि द्वार मोहनाश्रम में कुम्भ प्रचारार्थ २८ मार्च से १३ अप्रैल तक सभा की ओर से श्री. पं. अमर सिंह जी अध्यक्ष अम्बाला करनाल मंडल मंडल सहित पधार रहे हैं तथा श्री पं० त्रिलोकचन्द्र जी पहुंच गए हैं। मोहन आश्रम में सभा का सत्संग केन्द्र लगा हुआ है। पधारने वाले महानुभाव वहीं धर्म-लाभ करें।

नोट—उत्सवों की अधिकता के कारण बहुत सी समाजों से तिथियां बदलने की प्रार्थना की है। वे तिथियां बदलने की कृपा करें। उत्सवों की तिथियां सभा कार्यालय से लेनी चाहियें। ताकि प्रबन्ध में सुभीता रहे।

(२) प्राय समाजे अपनी तिथियां निश्चित कर सभा को सूचित करती हैं। यदि वे तिथियां पहले ही रुक चुकी हों तो प्रबन्ध में असुविधा रहती है। अत तिथियां सभा से लेने की कृपा किया करें।

नं. ३ उत्सवों की अधिकता के कारण मई के अन्त तक सारा स्टाफ रुका हुआ है। कई समाजों ने एक सप्ताह कथा के लिए लिखा है। उनसे क्षमा याचना।

धन्यवाद

खुशी राम शर्मा।

शुभ सन्देश

सभा द्वारा हरिद्वार मोहन आश्रम में कुम्भ के अवसर पर पूज्य महात्मा आनन्द स्वामी जी महाराज की अध्यक्षता में प्रचार कैंप लगाया गया है। १२ वर्ष के बाद कुम्भ आया है। लाखों भारत भर के नर नारी पधारते हैं। उन्हें वेदामृत पान कराने और यज्ञ से सुवासित करने का सुन्दर अवसर है। यज्ञ, लंगर, प्रचार का विशाल आयोजन किया गया है।

सभी धर्म प्रेमी नर नारियों से प्रार्थना है कि इस शुभ कार्य में सभा को पूर्ण योग देने की कृपा करें। कुम्भ प्रचार, यज्ञ, लंगर के निमित्त शीघ्र धन संग्रह कर सभा को भेजने की कृपा करें। सभी आर्य समाजों से भी यही विनम्र निवेदन है। धन्यवाद

खुशीराम शर्मा

अधिष्ठाता वेद प्रचार

कुम्भ प्रचार के लिये दान

मेरी प्रार्थना स्वीकार करते हुये निम्न स्थानों एवं सज्जनों से दान प्राप्त हुआ है।

अन्य महानुभाव भी शीघ्र भेजने की कृपा करें। प्रार्थना करने में देरी हो गई है।

१०१) रु. आ. स. शाम चौरासी द्वारा, १०) रु श्री. डा. धर्मदेव जी धर्म शाला (कांगड़ा) ४०) रु० आ० स० पुरानी मंडी जम्मू द्वारा प्राप्त हुये।

खुशी राम शर्मा वेद प्रचार अधिष्ठाता

टलीफोन न० ३०४५ [आर्यप्रादेशिक प्रतिनिधि सभा पंजाब जालन्धर का साप्ताहिक मुखपत्र] Regd No.P

एक प्रति का मूल्य १३ नये पैसे वार्षिक मूल्य ६ रुपये

वर्ष २२ अक १४) रविवार २६ चैत्र २०१८— ८ अप्रैल १९६२ दयानन्दाब्द १३८ (तार-प्रादेशिक जालन्धर

वे द सू क्त यः

एक एव नमस्यः

एक-अकेला केवल वह प्रभु एव-ही नमस्य-नमस्कार करने के योग्य है। पूजा केवल भगवान की करनी चाहिए। जड पदार्थों का पूजन न करें। ईश्वर ही पूजनीय है।

दिव्य देव नमस्ते

हे दिव्य-सब से श्रेष्ठ उत्तम प्रकाश स्वरूप देव-परमेश्वर! नमस्ते आपको नमस्कार हो। हम आपको ही सारे जड़ चेतन देवों का महादेव मानकर नमस्कार करते हैं। आप के बिना और किसी का भी बन्दन करते।

दिवि ते सधस्थम्

हे प्रभो! दिवि-मुझे अपने जीवन में ते-तेरा सधस्थम्-सत्सग हो। हे परमेश्वर! मुझे सदा तेरा ही प्यार, आशीर्वाद, संग मिलता रहे। तेरा ही बना रहू।

अ थ र्व वे द से

वे दा मृ त

यः प्राणतो निमिषतो महित्वैक इद्राजा जगतो बभूव।
यः ईशे अस्य द्विपदश्चतुष्पदः कस्मैदेवाय हविषा विधेम॥

यजु० २३-३

अर्थ-(य) जो (प्राणत) प्राण वाले और (निमिषत) अप्राणिरूप (जगत) जगत का (महित्वा) अपनी अनन्त महिमा से (एक इत्) एक ही (राजा) राजा (बभूव) विराजमान है (य) जो (अस्य) इस (द्विपद) मनुष्य आदि और (चतुष्पद) गौ आदि प्राणियों के शरीर की (ईशे) रचना करता है हम उस (कस्मै) सुखस्वरूप (देवाय) सकलैश्वर्य के देने हारे परमात्मा की उपासना अर्थात (हविषा) अपनी सकल उत्तम सामग्री को उसकी आज्ञा पालन मे समर्पित करके (विधेम) भक्ति विशेष किया करें।

(दयानन्द भाष्य)

भाव—विश्व में दो प्रकार के तत्व हैं, पदार्थ है। प्राण वाले जीवधारी और बिना प्राण वाले जड। जड और चेतन दो प्रकार की सृष्टि है चेतन जगत में दो पाव वाले मनुष्य और चार पाव आदि वाले पशु जगत् जीव जगत् है। इन सब का राजा शासक कौन है? हे महाराज! आपके सिवाय इतने जड चेतन जगत् का और दूसरा कौन नियामक हो सकता है? आप ही सारे संसार के ईश्वर हो। यह तमाम ऐश्वर्य आप का ही तो है। सब कुछ आपके अधिकार मे ही तो है। मनुष्यों व पशुपक्षियों एव जड तथा चेतन दोनों प्रकार की सृष्टियों के आप ही स्रष्टा माने गये हैं। यह विशाल आपका ही परिवार है। हमारा आपको बारम्बार नमस्कार है, प्रणाम करते है। आपके ही तो हम भक्त, अनन्य उपासक बने रहे। महादेव! अपना भक्तिदान हमें निरन्तर देते रहो— सं०

ऋषि दर्शन

वेदानां स्वतः प्रमाणम्

वेद स्वत प्रमाण है। प्रमाण द प्रकार के होते हैं—स्वत और परत जिसे दिखाने व बनाने को दूसरे की आवश्यकता हो वह परत और जो स्वय प्रमाण हो वह स्वत। वे स्वत प्रमाण हैं। अन्य परत प्रमाण

ईश्वरोक्तत्वात्

ईश्वर—ईश्वर के द्वारा उक्त त्वात्-कहे जाने से। वेद इसलि स्वत प्रमाण हैं क्योंकि इनका ज्ञा ईश्वर ने दिया है। ब्रह्म स्वय स्वत प्रमाण है उसका ज्ञान वेद भी।

नित्य धर्मकत्वात्

इन मे नित्य धर्म का ज्ञान क उपदेश होने से। वेदो मे नित्य ज्ञा का उपदेश है। सब काल, स मनुष्यों तथा सब स्थानो के लि ज्ञान है। इसलिए वेद स्वत प्रमा हैं।

भा ष्य भू मि का

सम्पादक : त्रिलोक चन्द्र शास्त्री अधिष्ठाता—संतोष राज मंत्री स:

कुम्भ का आत्मिक मधुर प्रसाद

(पूज्य महात्मा आनन्द स्वामी जी महाराज हरिद्वार)

महात्मा जी के आध्यात्मिक सन्देश में कितना माधुर्य, रस और स्वाद है। यह वही जानते हैं जिन्हों ने इस का स्वाद लिया है। मन और आत्मा कितनी तृप्त होती है। आर्य जगत के प्रेमी पाठकों को इस रस का आस्वादन करना चाहिए-सं०

गुरुजी ने कहा यही है, यहा से ले जाने योग्य प्रसाद।

एक हंसोड़ भक्त भी वहां बैठा था, कहने लगा ठीक है आ गई समझ स स''स''स का प्रयोजन है चार चार साधु साथ ले जाओ, इस से बढ़िया प्रसाद कुम्भ का और क्या होगा!

गुरुजी हंस पडे और कहने लगे, नहीं-नहीं इसका प्रयोजन यह नहीं।

भक्त ने निवेदन किया, तो महाराज फिर आप बतला क्यों नहीं देते ?

गुरुजी ने बहुत गंभीर होकर बड़े मधुर स्वर में कहा—सुनो, यह चार स मन को वश में करने और संसार को सुखी करने के सरल साधन हैं, जो लोग योगाभ्यास प्राणायाम इत्यादि तप नहीं कर सकते, अनुभवी लोगों ने उनकेलिए चार 'स' निर्माण किये हैं—

पहला 'स'

संध्या नित करो, प्रभु प्रेम के पवित्र मंत्रों का प्रातः सायं अर्थ सहित पाठ और गायत्री मन्त्र तथा ओ३म् का जप करो। परन्तु सन्ध्या करने से पूर्व यह ज्ञान प्राप्त कर लो कि आपको किसके साथ सन्धि करनी है, ससार मे तीन शक्तिया हैं, (१) परमात्मा (२) जीवात्मा और (३) प्रकृति। यदि प्रकृति की ओर झुकोगे तो अन्त मे पछताना होगा जैसे कि रूस अमरीका, योरुप। यदि परमात्मा की ओर झुकोगे तो परम आनन्द पाओगे।हां, प्रकृति को परमानन्द तक पहुंचने का एक साधन बना सकते हो, यह सारा दृश्यमान संसार परमात्मा का विराट रूप है।

यह चमकता हुआ सूर्य, यह शीतल रश्मियों वाला चन्द्र, यह गरजते हुए मेघ और सागर, यह झर-झर करते निर्झर, यह लहलहाते खेत, वन तथा उपवन, यह हर-हर करती नदियां, यह साय-साय करते मरुस्थल, यह आकाश से बातें करने वाले गिरिशिखर, और यह सारा मन मोहक सौंदय, यह सब उसी भगवान की ही कारीगरी है' इनकी देख और प्रभु को महान शक्ति का अनुभव करके वेद मन्त्रों द्वारा उसके गुणों का गान करो।

जो ब्रह्माण्ड मे देख रहे हो वही सब कुछ तुम्हारे शरीर के अन्दर भी है। बाहर के सारे प्राकृतिक दृश्य को देखकर अब अन्त मुख हो जाओ। बाहर के द्वार बंद कर लो, अंदर चलो और वहा ज्योति देखो। श्वेताश्वेतरोपनिषद् मे ऋषि ने स्पष्ट घोषणा की है कि—

वह देव सबका बनाने वाला, महान आत्मा, सदा मनुष्यों के हृदय में रहता है। वह हृदय से, बुद्धि से, मन से प्रकाशित होता है, जो इस को जानते हैं, वह अमृत हो जाते हैं। (४१—७)

याद रख परमात्मा है तो सर्वव्यापक परन्तु उसके दर्शन केवल मनुष्य शरीर मे होते हैं, क्योंकि यही वह ब्रह्मपुरी है यही वह मंदिर है जहा भगवान और उसका भक्त जीवात्मा इकट्ठे होते हैं। साक्षात् दर्शन के लिए और कोई स्थान नहीं, जब यह ज्ञान प्राप्त कर लिया तो अब उस भक्तवत्सल के सामने उसी की बोली में मीठे गीत गा, इसी को सन्ध्या कहते हैं।

दूसरा 'स'

दूसरा स है "स्वाध्याय' का। वेद, उपनिषद्, गीता, सत्यार्थप्रकाश, ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका तथा रामायण इत्यादि का नित्य पाठ। और इस का दूसरा भाव यह है कि प्रतिदिन अपना अध्ययन करना कि मैं किधर जा रहा हूं, क्या कर रहा हूं और क्या बन रहा हूं। मनुष्य बन रहा हूं या राक्षस, प्रभु मार्ग का यात्री हू अथवा नरक का यात्री। इन दोनों बातों को समक्ष रख कर अपने जीवन का कार्यक्रम बनाना चाहिए।

स्वाध्याय का तीसरा प्रयोजन है ओ३म का जप। हमारे पूर्वजों और ऋषियों ने स्वाध्याय की बड़ी महिमा गायन की है, और इसका इतना बडा महात्म्य बतलाया है कि शेष सारे जप, तप, दान, यज्ञ इससे नीचे रह जाते हैं।

'शतपथ ब्राह्मण' में लिखा है कि —"मनुष्य इस सारी पृथ्वी को धन से भर कर देता हुआ जिस फल को भोगता है, इससे तिगुने फल को, अथवा उस से बडे, अथवा अक्षय फल को वह भोगता है, जो ठीक ठीक जानता हुआ प्रति दिन स्वाध्याय करता है। इस लिये स्वाध्याय नियम से करना चाहिये। (श० ब्रा० ११-३-८-३)

इतना बड़ा फल स्वाध्याय का ऋषि ने लिखा है और फिर ग्रन्थ में यह भी लिखा है कि—

'स्वाध्याय (वेद का पढ़ना) और प्रवचन (वेदका प्रचार) ये दोनों ऋषियों के प्यारे कर्म हैं"।

'(स्वाध्याय शील पुरुष) एकाग्रमन हो जाता है, पराधीन नहीं होता है, दिन-प्रति-दिन अपने प्रयोजनों को साधता है, अपने आपका परम चिकित्सक बन जाता है। इन्द्रियों का संयम, सदा एक रस रहना, ज्ञान की वृद्धि, यश, और लोगों को सुधारने और निपुण करने का काम यह सब फल स्वाध्याय और प्रवचन करने वाले को मिलते हैं" (श० ब्रा० ११-५-७-१)

क्या संसार की कोई वस्तु रह गई है जो स्वाध्याय से न मिलती हो। यही नहीं अपितु स्वाध्यायके संबंध में योग दर्शन के साधन पाद के ४४वें सूत्र में लिखा है कि स्वाध्याय से इष्ट देवता का सम्बन्ध मेल साक्षात होता है, और व्यास भाष्य मे इसके सम्बन्ध में यह आदेश है कि देवता, ऋषि, और सिद्ध स्वाध्याय शील के दर्शन को जाते हैं और उस के कार्य में सहायक होते हैं। परन्तु शोक, महाशोक! आज हम स्वाध्याय की ओर ध्यान ही नहीं देते। हिन्दू जाति का और भारतवर्ष का सब से बडा रोग यही है कि हमने अपने तथा ऋषि-प्रणीत ग्रन्थों का पढ़ना त्याग दिया है। हमारे अधःपतन का सब से बडा कारण स्वाध्याय को छोड़ देना है। स्वाध्याय छोड़ देने से हम अपनी संस्कृति को भूल गये और नाना प्रकार के छोटे-छोटे विचारों ने हमारे मस्तिष्क में घेरा डाल लिया। इसी लिये आज प्रतिज्ञा करो, कि हम नित्य स्वाध्याय किया करेंगे। इस से आप बहुत ऊंचा जीवन प्राप्त कर लेंगे। स्वाध्याय में कभी भी प्रमाद नहीं करना चाहिये। शतपथ में यह भी लिखा है—जल, सूर्य, चन्द्र, पृथ्वी वायु सब चलते हैं, यदि यह रुक जायें तो प्रलय हो जाय। इसी प्रकार स्वाध्याय करने से रुक जाये तो मनुष्य का नाश हो जाता है यदि चाहते हो कि हमारी प्राचीन संस्कृति, सभ्यता फैले और वैदिक संस्कृति का बोल-बाला हो तो इसका सब से बडा साधन यह है कि (१) वेद, उपनिषद, गीता, रामायण, सत्यार्थप्रकाश का नित्य स्वाध्याय किया करो।

सम्पादकीय—

आर्य जगत्

वर्ष २२] रविवार २६ चैत्र २०१८, ८ अप्रैल १९६२ [अंक १४

कुम्भ प्रचार की धूमधाम

अपनी आर्य प्रादेशिक सभा पंजाब जालन्धर के आदेशानुसार मैं मोहन आश्रम हरिद्वार में आ गया हू। यहा पर कुम्भ की चहल-पहल प्रारम्भ हो गई है। इस बार उत्तर-प्रदेश सरकार की ओर से यात्रियों की सुख सुविधा के लिए बड़ा अच्छा प्रबन्ध है। सफाई, स्वास्थ्य, यातायात तथा वास निवास आदि का उत्तम कार्य हो रहा है। अपने राज्य तथा शासकों का कितना लाभ होता है इस का कुछ परिचय यहां आने पर मिल जाता है। स्थान २ पर समय २ पर सूचना केन्द्रों से सब स्थानों पर सूचनाएं प्रसारित की जा रही हैं। नाना प्रकार के सम्प्रदायों, मण्डलेश्वरों, संस्थाओं तथा महन्तों के प्रचार शिविर लग गये और लगते जा रहे हैं। भारत के सब भागों से भक्तों की भीड़ आनी प्रारम्भ हो गई है। हर की पौड़ी तथा गङ्गा के दोनों किनारों पर नये और काफी व्यय करके सुन्दर घाट बन गये हैं। प्रकृति का दृश्य और गङ्गा की नील-नीर धारा भली लगती है।

मोहन आश्रम स्वर्गीय महात्मा हंसराज जी द्वारा स्थापित बहुत ही विशाल और सुन्दर स्थान है। यह आश्रम भीमगोडा के क्षेत्र से थोड़ा ही आगे बड़ी सड़क के ऊपर ही है। विशाल द्वार बड़ा सुन्दर प्रतीत होता है। सारे मण्डलेश्वरों के प्रचार शिविर भी इस दायें बायें समीप ही हैं। महात्मा हंसराज जी के स्वर्गवास के पश्चात् पूज्य महात्मा आनन्द स्वामी जी महाराज की देखरेख में कुम्भ तथा दूसरे अवसरों पर वेदप्रचार का प्रबन्ध होता है। यद्यपि इस आश्रम का एक ट्रस्ट बना हुआ है तथापि आर्य प्रादेशिक सभा पंजाब का भी यह एक प्रचार केन्द्र सा बना हुआ है। श्री स्वामी सच्चिदानन्द जी महाराज जी गत २०-२५ वर्षों से आश्रम का सारा प्रबन्ध करते रहते हैं। यह आश्रम आर्य समाज तथा सारे आर्यों के लिए एक माना हुआ धार्मिक व ऐतिहासिक केन्द्र है। इसी स्थान पर आर्य समाज के संस्थापक, महर्षि दयानन्द सरस्वती ने कुम्भ के मेले पर नर-नारियों को वेदपथ दिखाने के लिए अपनी पाखण्ड खण्डिनी पताका गाड़ी थी। प्रसन्नता है कि इस बार इसी स्थान पर आश्रम में बड़ी सुन्दर वेदी बना कर उस पताका की निशानी गाड़ दी गई है।

वेदप्रचार का कार्य प्रारम्भ हो गया है। आर्य प्रादेशिक सभा ने प्रचार के लिए अपना साहित्य बाटने का कार्य भी जारी कर दिया है। पूज्य महात्मा आनन्द स्वामी जी ने गत कुम्भ पर 'कुम्भ का प्रसाद' नामक अतीव उपदेश प्रद ट्रैक्ट लिख कर सभा को दिया था तथा सभा ने छपवा कर खूब बाटा था। इस बार भी उसी प्रसाद को पचास हजार की भारी संख्या में सभा द्वारा छपवा कर यात्रियों में खूब बांटा जा रहा है। सभा ने भागवत् खण्डन कीमती पुस्तक भी सैकड़ों की संख्या में वितरण करने को भेजी है। और पुस्तकें भी बांटी जा रही है। अंबाला करनाल वेदप्रचार मंडल पं० अमरसिंह जी के साथ पहुंच कर प्रचार में लगा है। देहली के अपने अनारकली समाज के मान्य सज्जन श्री पं० दुर्गादत्त जी अग्निहोत्री ने अपने परिवार की ओर से सामवेद पारायण यज्ञ रखा। धूम-धाम से पूर्णाहुति हुई। जिस मे आचार्य नरदेव जी शास्त्री वेदतीर्थ उपकुलपति गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर महात्मा टेकचन्द प्रभु आश्रित, पं० सोमकीर्ति जी एम. ए, स्वामी अमृतानन्द जी पधारे थे। इस प्रकार आश्रम में वेदप्रचार की खूबधूम मची हुई है। मान्या सेठानी जी विदुषी विद्यालङ्कृता भी यज्ञ व प्रचार में सहयोग दे रही हैं। आर्य प्रादेशिक सभा के हरिद्वार के मोहनाश्रम प्रचार केन्द्र में वेद-प्रचार का काम वेदी और साहित्य वितरण से हो रहा है। हम सभा से सबंधित अपनी समाजों, संस्थाओं और आर्य भाई बहिनों से कहना चाहते हैं कि यह वेद-प्रचार का बड़ा सुनहला अवसर है। अपनी सभा को जितना अधिक आर्थिक सहयोग देंगे उतना सभा अपना प्रचार कार्य फैलाती जाएगी। सभा के महामन्त्री तथा वेद प्रचार अधिष्ठाता जी की इस कुम्भ मेला के प्रचार संबंधी सूचनाओं को सब ने पढ़ा है। उस पर आचरण करते हुए सभा की झोली भर दीजिये। देर न करिये—त्रिलोकचंद्र

गायत्री महायज्ञ का समारोह

आर्य प्रादेशिक सभा पंजाब जालन्धर की ओर से मोहनाश्रम भूपतवाला हरिद्वार मे जहां पूज्य महात्मा आनन्द स्वामी जी महाराज की देखरेख में धर्मप्रचार की जहां सुन्दर व्यवस्था है। वहां वेदपारायण यज्ञ समारोह भी जारी हैं। श्री पं० दुर्गादत्त जी अग्निहोत्री जी के सारे परिवार की ओर से सामवेद पारायण यज्ञ आचार्य नरदेव जी शास्त्री वेद-तीर्थ कुलपति गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर की अध्यक्षता मे धूमधाम से सम्पन्न हुआ। श्री पं० सोमकीर्ति जी विद्यालंकार भी सम्मिलित थे। प्रात सायं भजन और वेदोपदेश भी चलते हैं।

अब पहिली अप्रैल रविवार से पूर्व निश्चित कार्य क्रमानुसार मिलाप परिवार की ओर से गायत्री महायज्ञ प्रात काल से प्रारम्भ हो गया है। यज्ञ के ब्रह्मा के पवित्रासन पर सब की विशेष प्रार्थना को स्वीकार करते हुए पूज्य महात्मा आनन्द स्वामी जी महाराज विराजमान होकर यज्ञ संचालन के आदेश निर्देश देते हैं। यज्ञ मंडप के सारे नर-नारी बडे मधुर व एक स्वर से गायत्री की आहुतिया देते हैं। प्रात ७॥ बजे प्रारम्भ हो जाता है। तथा महात्मा आनन्द स्वामी जी के भक्तिरस भरे वेद के मीठे प्रवचन के साथ २ समाप्त होता है। दोपहर दो बजे से फिर कार्य आरम्भ होकर पांच बजे तक चलता है। सब से पहले श्री शमशेर कुमार जी पं० अमरसिंह वेदप्रचार मंडली अंबाला करनाल के भजन होते हैं। गायत्री महायज्ञ का दोनों समय बड़ा ही आनन्द आता है। इस में अच्छी संख्या में सज्जन शामिल होकर लाभ उठा रहे हैं। माता मायादेवी जी, बहिन सेठानी जी विदुषी विद्यालंकृता तथा सारी माताओं व बहिनों की श्रद्धा, सेवा, यज्ञनिष्ठा एवं मधुर उच्चारण प्रशंसनीय है। अनेक साधु महात्मा आते हैं। गायत्री महायज्ञ का मनोरम दृश्य है। यजमान के आसन पर पूज्या माता मेलादेवी जी बैठ कर घृत की आहुतिया देती हैं। यज्ञ का वातावरण इतना सुन्दर है तथा वेद प्रवचन इतने प्रभाव पूर्ण होते हैं जिन्हें सुन कर कुम्भ यात्रा सफल हो रही है। आर्य समाज की विभूतियों के दर्शन हो रहे हैं। आर्य जगत् के प्रसिद्ध

(शेष पृष्ठ ६ पर)

महर्षि स्वामी दयानंद ने वेदादि सत्शास्त्रों को हजारों की संख्या में निरंतर तपस्या पूर्वक अध्ययन करके प्राणि समाज के कल्याण के निमित्त जो अनेक सद्ग्रन्थों की रचना की, निस्संदेह इस ज्ञान प्रकाश से ही युगों और मानव समाज का प्रत्येक क्षेत्र में मार्ग प्रदर्शन हुआ है। वेद भाष्य के सम्बंध में भ्रान्ति निवारण ग्रन्थ में लिखे हुए वेदना पूर्ण महत्वाकांक्षी वाक्य युगों तक महर्षि की स्मृति दिलाते रहेंगे। 'परमात्मा की कृपा से मेरा शरीर बना रहा और कुशलता से वह दिन देखनेको मिला कि वेद भाष्य संपूर्ण हो जाये तो निस्संदेह इस आर्यावर्त देश में सूर्य का प्रकाश हो जावेगा कि जिस के मेटने और झांपने को किसी की सामर्थ्य न होगी।' हृदयगत कामना तो प्रबल थी और बी वेदना और पूर्ण स्नेह के साथ पर उस विधाता का महान विधान भी सामने था। अभिलाषा को व्यक्त भी किया परन्तु विश्व की व्यवस्था तो मनुष्य की अपनी इच्छाके आधीन नहीं अत 'वह दिन देखने को मिला' का वाक्य परमेश्वर के आधीनस्थ ही अपनी जीवन स्थिति को ऋषि ने परम आस्तिकता के शब्दों म प्रकट किया है परमेश्वर की ही इच्छा पूर्ण हुई। महाराज का जीवन अधिक समय न रह सका और हम उस पूर्ण वेद भानु प्रकाश से वंचित रह गये जिस के लिये ऋषि लालायित थे।

फिर भी जितना उन्होंने थोडे समय में किया, सभी दिशाओं में जगत के विद्वान उसी ओर ही चल रहे हैं।

ऋषिवर ने यजुर्वेद भाष्य के ६वें मन्त्र 'कस्त्वा युनक्ति .....के भावार्थ में लिखा है कि 'मनुष्यों को दो प्रयोजनों में प्रवृत्त होना चाहिये। एक तो अत्यन्त पुरुषार्थ और शरीर की आरोग्यता से चक्रवर्ती राज्य लक्ष्मी की प्राप्ति करना और दूसरे सब विद्याओं को अच्छी प्रकार

आओ ऋषि दयानंद को देखें
मानवता के दो प्रयोजन

(ले० श्री आशुराम जी पुरोहित आर्य समाज सैक्टर ८ चडीगढ)

✦✦✦✦✦✦✦✦✦✦✦✦✦✦✦✦✦✦✦✦✦✦✦✦✦

पढ़ के उन का प्रचार करना चाहिये किसी मनुष्य को पुरुषार्थ को छोड़ के आलस्य मे कभी नहा रहना चाहिये।' साख्य दर्शन के प्रमाण से सत्यार्थ प्रकाश में महाराज ने लिखा है कि 'त्रिविधदुःखात्यन्त निवृत्तिरत्यन्त पुरुषार्थ' मनुष्य को आध्यात्मिक, आधिभौतिक और आधिदैविक तीन प्रकार के ताप अर्थात् क्लेशों से अत्यन्त निवृत्ति के लिये अत्यन्त पुरुषार्थ इस मानव देह से करना होगा। महर्षि ने इस की संक्षिप्त व्याख्या बडे सुदर शब्दों में की है। 'त्रिविधताप अर्थात इस ससार मे तीन प्रकार के दुख हैं एक आध्यात्मिक' जो आत्मा' शरीर में अविद्या, रागद्वेष, मूर्खता और ज्वर पीड़ादि होते हैं। दूसरा आधिभौतिक' जो शत्रु, व्याघ्र और सर्पादि से प्राप्त होता है। तीसरा आधिदैविक' अर्थात जो अतिवृष्टि, अति शीत, अति उष्णता, मन और इन्द्रियों की अशान्ति से होता है। प्रबल पुरुषार्थ से इन तीनों दुखों से छूटना मानव जीवन में ऋषि कितना महत्व पूर्ण मानते हैं। लिखा कि ओ३म् शान्ति शान्ति शान्ति' इस में तीन वार शान्ति पाठ इसी प्रयोजन की सिद्धि के लिये है। इधर प्रति दिन नित्य कर्मों और शुभ यज्ञों की समाप्ति पर शान्ति पाठ द्वारा प्रभु से प्रार्थना कि इन तीन प्रकार के क्लेशों को दूर करके हम लोगों को कल्याण कारक कर्मों में सदा प्रवृत्त रखिये, और उधर अत्यन्त अर्थात परम पुरुषार्थ में संलग्नता। यह है वेद धर्म मानवी जीवन पद्धित, जिस का उल्लेख करते हुए महाराज ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका के वेदोक्त धर्म विषय में लिखते हैं कि 'मनुष्यों को उचित है कि धर्म से अप्राप्त पदार्थों की प्राप्ति कर, यथावत रक्षा करनो, रक्षा किये पदार्थों की सदा बढ़ती करनी और बड़े हुए धन आदि पदार्थों का प्रचारादि कामों में यथावत खर्च करना चाहिये। इस चार प्रकार के पुरुषार्थ से धन धान्यादि को बढ़ाने के सुख को सदा बढ़ाते जाओ।'

दूसरा प्रयोजन

सब विद्याओं को अच्छी प्रकार पढ के उस का प्रचार करना।' सो महर्षि का अपना जीवन इस विषय मे एक महान प्रकाश केन्द्र (Light House) है। वह लिखते हैं 'क्योंकि मैं अपने निश्चिय और परीक्षा के अनुसार ऋग्वेद से लेके पूर्व मीमासा पर्यन्त अनुमान से तीन हजार ग्रन्थों के लग भग मानता हू।' कितने हजार ग्रन्थों को पढ़ कर, इन का मन्थन और परीक्षा करके तीन हजार ग्रन्थों को निश्चयात्मिक माना है ? इस का हम अनुमान कैसे लगा सकते हैं जबकि परीक्षा तुलना के पश्चात होती है और तुलनात्मक वेदा की अनेक टीकायें जिन का एक एक ग्रन्थ गधे के बोझ से क्या कम रहा है ? ऐसे ही हजारों, ग्रन्थों को ऋषि ने स्वयं पढ़ा। इस विद्या प्राप्ति से उन्हें स्वयं कैसा आनद प्राप्त था इस का वर्णन आप ने पूना के एक व्याख्यान में किया है 'हिमालय पर पहुंच कर यह विचार हुआ कि यहीं पर ही मैं अपना शरीर गला दू और संसार के धंधों से मुक्त हो जाऊं, किन्तु फिर विचार हुआ कि यथार्थ ज्ञान प्राप्त करने के पश्चात शरीर छोड़ना चाहिये। इस स्थान पर मर जाना तो कोई पुरुषार्थ नहीं है। हां ज्ञान प्राप्त करके परोपकार करना पुरुषार्थ अवश्य है। इस विश्वास के होते ही मैं वहां से लौट कर आगया था। अब तो मुझे यही अनभव होता है कि जीवात्मा की मृत्यु है ही नहीं।'

यह तो विद्या के आनन्द का उनके स्वजीवन का दृश्य है और प्रचार की तीव्र भावनाओं की स्थिति यह कि जोधपुर जाने से जब उन्हें रोका गया भिन्न २ भय और विघ्न बाधा बतलाईं, तो ऋषि ने एक बात कही कि मेरी एक २ अंगुली की बत्ती बना कर यदि जला डालेंगे तब भी सत्य धर्म के प्रचार से नहीं रुकूंगा' दयानन्द को तोप के मुह पर अगर बांध देंगे तो भी उस की वाणी श्रुति अर्थात् वेद प्रचार ही करेगी अन्य सभी मानव समाज के लिये विद्या पढ़ने के सम्बन्ध में अपने सभी सद्ग्रन्थों में सूत्र लिखा। जिस से कि मनुष्य जाति अविद्या अंधकार से दूर होकर ज्ञान के प्रकाश में राज्यलक्ष्मी से युक्त हो। व्यवहार भानु में आप लिखते हैं न विद्या बिना सौख्यं

नराणां जायते ध्रुवम्।
अतो धर्मार्थकाम मोक्षेभ्यो
विद्याभ्यासं समाचरेत्॥

इसकी व्याख्या में लिखा कि विद्या से यथार्थ ज्ञान होकर यथायोग्य व्यवहार करने कराने से आप और दूसरों को आनन्द युक्त करना विद्या का फल है क्योंकि बिना विद्या के किसी मनुष्य को निश्चय सुख नहीं हो सकता। क्या हुआ किसी को क्षण भर सुख हुआ, न हुआ सा है। पाठक आगे देखें कि इस मिशन के लिये ऋषि हृदय में भावना कैसी तीव्र है और लेखनी में जोर कितना उमड़ पड़ा है। लिखते हैं कि 'किसी की सामर्थ्य नहीं है कि जो अविद्वान होकर धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के स्वरूप को यथावत जानकर सिद्ध कर सके।

हम सोने वाले जागरुक दयानन्द के अनुयायी कैसे ?

[लेखक—श्री भक्तराम जी, (अफोका वाले) जालन्धर]

लगभग सवा सौ वर्ष पूर्व शिव चतुर्दशी की रात्रि वस्तुत. कल्याण कारिणी थी जिस रात मूल जी शंकर—मन्दिर में स्वय ही नहीं जागे अपितु एक २ करके बहा सब सोतों को जगा दिया। उस जागरण ने मूल जी का काया कल्प कर उसे 'दयानन्द' बना दिया और दयानद के रूप में आजीवन न सोये और न ही देशवासियों को सोने दिया। न आप चैन लिया न दूसरों को लेने दिया। सुषुप्त आर्य (हिन्दू) जाति को न केवल प्रबुद्ध कर गए बल्कि हिन्दुओं को उनका हाथ पकड़ कर बिठला गये अन्यथा उनके पुन घोर निद्रा में सो जाने की आशंका थी। जो देश, जाति अथवा समाज जागता है वही उन्नति के शिखिर पर पहुच सकता है।

कठोपनिषद् तृतीया वल्ली का १४ वां मन्त्र निम्न प्रकार है —

उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत।
क्षुरस्य धारा निशिता दुरत्यया दुर्गं
पथस्तत्कवयो वदन्ति ॥

अर्थ—उठो, जागो, अभीष्ट पदार्थों को प्राप्त कर जानो। तीक्ष्ण व अति कठिन छुरे की धारा के समान कवि लोग उस मार्ग को दुःख से प्राप्तव्य कहते हैं।

उठकर जागते रहने से ही मन. कामना सिद्ध होती है। सोया हुआ मनोवांछित फल प्राप्त नहीं कर सकता। विश्व वन्द्य महात्मा गाधी जी के प्यारे भजन के नीचे लिखे पद कितने शिक्षाप्रद और जीवन में धारण करने योग्य हैं —

उठ जाग मुसाफिर भोर भयी
अब रैन कहा जो सोवत है।
जो जागत है सो पावत है,
जो सोवत है सो खोवत है ॥

यदि महर्षि दया नन्द शिवरात्रि पर जागरण का व्रत न लेते तो जो जागृति देश, धर्म तथा जाति में पायी जाती है उसका सर्वथा अभाव होता। उस चेतना को चिर स्थायी बनाने के लिए उन्होंने आर्यसमाज की स्थापना की थी। वैदिक धर्म प्रचारक सभा का सूत्रपात हुआ ताकि उसके द्वारा आर्य जाति में नूतन जीवन और जागृति उत्पन्न हो। लम्बी तान कर गहरी नींद में सोये हुए भारतवासी सब कुछ लुटा बैठते यदि आपने जीवनकाल मे महर्षि और उनके निर्वाण के अनन्तर आर्यसमाजी खण्डन रूपी कड़े कोडों की तडातड़ ध्वनि से न जागते मीठी २ लोरिया और कोमल २ थपकियां तो उन्हें सुलाये रखने मे सहायक सिद्ध होतीं।

देव दयानन्द और उनके साथी आर्य समाजियों मे जगाने की अलख में इतनी शक्ति थी कि महर्षि के स्वर्गारोहण क पश्चात् भी वह महानाद केवल भारत मे नहीं अन्य देशों में भी गूजता रहा। जब तक आर्य समाजी जागते रहे वे नगर २, ग्राम २ और घर २ में वेद प्रचार की धूम मचाते रहे। वक्ता की परिभाषानुसार उन्हें वक्ता कहना वक्तृत्व कला का निरादर करना था पर उनके जीवन में दयानन्दी झलक के कारण उन का एक २ शब्द मनोमोहन मन्त्र का प्रभाव रखता था। मेरे आर्य भाई धामपुर जिला बिजनौर के एक अनपढ़ आर्यसमाजी श्री बहालसिंह पोलीस चौकीदार की धम प्रचार तत्परता से अनभिज्ञ नहीं जो रात्रि के समय पहरा देते हुए कहा करता था '५ हजार वर्ष के सोने वालो! जागो!' प्रात.काल जब इन शब्दों का अभिप्राय पूछते तो वह उत्तर देता 'सत्यार्थ प्रकाश पढ़कर मेरे कथन का तात्पर्य समझोगे।' इस प्रकार जो मांगता उसे सत्यार्थ प्रकाश मूल्य पर दे देता और १५—२० व्यक्तियों के आर्यसमाजी विचार होने पर आर्य समाज की स्थापना करा देता था। उसने अनेक समाजें स्थापित कीं।

आर्यसमाज रूपी वाटिका महामाली के बिना भी हरी भरा रही क्योंकि उसे कुशल माली उसकी देखरेख के लिए मिल गये। विरोधिया न तो समझ लिया कि आर्यसमाज कुछ दिनों का मेहमान है। यह बाग बिना बागवा के कड़ी धूप में मुरझा कर नष्ट-भ्रष्ट हो जावेगा। अनाड़ी नाविक इस नौका को लाख प्रयत्न करने पर भी डूबने से बचा न सकेंगे। मेरे मन कुछ और है, विधिना के कुछ और' के अनुसार विरोधी जनों की दुराशाओं पर पानी फिर गया। ऋषि बोध से बोध प्राप्त आर्यों ने जागते रहने तथा जगाने की शिक्षा ग्रहण कर उस महान् अलख को जगाए रखने के लिए भरसक प्रयत्न किया। उन आर्यों के पुण्य प्रताप से अनाथ सनाथ हो गए। अबलाओं मे बल का संचार हो गया। विधवाओं को सरंक्षण मिल गया। दीन दुखी अहीन सुखी हो गये। निराश्रित आश्रित हो गए अङ्गहीन अपने वई साङ्गोपाङ्ग समझने लगे।

जब आर्य सामाजिक पुरुष सजग थे तो उनके मुखारविन्द से उच्चारण किया हुआ 'नमस्ते' शब्द जादू का सा प्रभाव रखता था। आर्यों क परिचय के लिए यह प्रथम व अन्तिम शिष्टाचार पद्धति थी। फिर वे आर्य घी शक्कर हो जाते थे। कोई शक्ति उन्हें विगठित न कर सकती थी। अंगड़ाई जंभाई लेते समय 'ओ३म्' शब्दोच्चारण आर्यों के परस्पर आकर्षण के लिए पर्याप्त था। भ्रमणार्थ जाते और आते हुए किसी के हाथ में दण्ड का होना एक आर्य की पहिचान थी। प्रातःकाल उठते ही 'जय जय पिता परम आनन्द दाता. के गायक और ओ३म् प्रातरग्नि.. आदि प्रात काल के ५ मन्त्रों के पाठ का आर्यसमाजी समझने में विलम्ब नहीं होता था। यात्रा में समय पर सन्ध्या करने वाले की ओर संकेत करके कहा जाता था 'यह आर्य समाजी है' सत्यवक्ता, ईमानदार परोपकारी, निर्भय आर्यसमाजी पर्यायवाची शब्द थे।

अब निद्रा भगवती ने हमें अपना अतीतकाल भुला दिया है। आर्यत्व हम ने विसरा दिया है। ऐ स्वार्थ! तेरा सत्यानाश हो। तूने आर्यों का सत्यानाश करा दिया। आर्यानार्य (देवासुर) तो सृष्टि क प्रारम्भ से लड़ते चले आ रह हैं। सन्त शिरोमणि द्वारा स्थापित जिस साधु समाज का उसके कट्टर विरोधी जन बाल बींका न कर सके थे उसके रक्षक ही उसके भक्षक बन गये हैं। ऐसे ही अदूरदर्शियों के लिए उर्दू के एक कवि कह गये हैं—

इस घर को आग लग गयी
घर के चिराग से

संसार को एकता देवी का पाठ पढ़ाने वाले सगठन देवता से विमुख होकर असंगठित हो रहे हैं। पद लोलुपों, स्वार्थियों और अवसर वादियों को इस विज्ञापन युग में अपनी स्वार्थ सिद्धि की चिन्ता है। धर्म प्रसाद बांटने के लिए उन्हें अवकाश ही कहा है? विज्ञप्ति की लग्न थी उस दयानन्द' सेवक को जिसने महारानी विक्टोरिया को प्रेरित कर उसके महल में हवन यज्ञ करके दम लिया था।

सुना करते थे कि राजनीतिज्ञों के लिए प्रत्येक पाप उचित (जायज) है पर अब धार्मिक जन उनसे नम्बर ले गए हैं। स्वार्थवश आज एक सोधे सादे व्यक्ति को आकाश पर अपना उल्लू सीधा करते हैं और कल स्वार्थसिद्ध होने पर उसी भोले भाई को पाताल में गिराने में देर नहीं लगाते। किस पर विश्वास

(शेष पृष्ठ ६ पर)

नारी स्तम्भ

'वाह री नारी तेरा बलिदान'

(कु. अरुणजी गुप्ता आर्या प्रभाकर, टोहाना)

'हमे न अबला समझे कोई,
हम भारत की नारी हैं।
कोमल कोमल फूल नहीं,
हम ज्वाला हैं, चिंगारी हैं।
तुम कहते हो नयन हमारे,
कारे हैं, मतवारे हैं।
हम कहती हैं, इन नयनों में,
भरे हुए अंगारे हैं।
कोयल हमें न समझो,
हम सिंहों को जनने वाली हैं।
हमें न अबला समझे कोई,
हम भारत की नारी हैं।
हम शकुन्तला सीता हैं,
हम हैं झांसी की रानी।
हम सावित्री हैं, लक्ष्मी हैं,
दुर्गा हैं और भवानी।
वीर प्रताप शिवा जी जैसे,
पुत्रों को जनने वाली हैं।
हमे न अबला समझे कोई,
हम भारत की नारी हैं।

इन पंक्तियों को पढ़ते ही हृदय में एक नव उत्साह का संचार होने लग जाता है। जो पुरुष नारी को अबला समझते हैं और उसे इसी नाम से सम्बोधित करते है। वे एक महान भूल मे हैं। उन्हें शायद यह विदित नहीं कि भारतीय नारी न केवल शृंगार प्रिय ही नहीं बल्कि समय आने पर रणचण्डी का रूप धारण कर लेती है। एक नहीं, अपितु अनेक भारतीय वीरांगनाओं के ज्वलन्त उदाहरण हमारे अतीत के स्वर्णिम इतिहास में प्रत्यक्ष दृष्टिगोचर होते हैं। आज भी हमारे कानों में उस वीरागना के शब्द जोरों से गर्जित हो रहे हैं जिस ने अंग्रेजो को ललकार कर कहा था कि, 'झांसी मेरी है, मैं अपनी झांसी किसी को न दूंगी, यदि किसी में शक्ति है, तो वह आए मैं उसे देख लूंगी।' अंत में सचमुच इस सबला ने अपने जीते जी अपने देश की एक इंच भूमि पर भी शत्रुओं का अधिकार न होने दिया। उसने अंग्रेजों को लोहे के चने चबा दिए। सर ह्यूरोज ने भी उसकी वीरता की प्रशंसा की। हमें उस वीरांगना को भी न भूलना चाहिये, जिसने दोनों हाथों में तलवारें पकड़ घोड़े की लगाम को मुंह में डाल कर शत्रुओं के दांत खट्टे कर दिये थे तथा जो सिंहनी के समान युद्ध क्षेत्र में गरजती हुई कूद पड़ी थी। यह थी भारतीय इतिहास की अमर वीरांगना 'रानी दुर्गावती'। एक नहीं, यदि हम भारतीय इतिहास को उठा कर देखें तो ऐसे अनेक ज्वलन्त दृष्टांत मिलेंगे, जिससे हमें प्रतीत होता है कि भारतीय नारी केवल माता, पत्नी, बहिन, और सखि ही नहीं अपितु क्रोध की वह चिंगारी है जिसे छूने से तो क्या, जिसके देश की ओर आंख उठाने मात्र से ही. शत्रु भस्म हो जाते हैं।

बीच में एक ऐसा समय आया, जबकि इस भारत भूमि पर मुगलों की राज्य सत्ता स्थापित हो गई थी। उस समय नारी का अधिकार केवल घर की चार दीवारी में रहने तक सीमित हो गया। यहां तक कि उसे शिक्षा देना भी पाप समझा जाने लगा। पुरुष ने नारी को चारों ओर से बन्धनों में जकड़ने का यत्न किया और नारी भी तितलियों की भांति बनती गई। वह भूल गई कि उस की कमर में तीक्ष्ण तलवार का होना अनिवार्य है।

नारी की इस हीन, तुच्छ दशा को देख कर महर्षि दयानन्द के मन में एक ज्वाला उत्पन्न हुई और उन्होंने इस की शोचनीय अवस्था को सुधारने का दृढ़ निश्चय कर लिया। अन्तत उन्होंने उसके लिए शिक्षा का चारों ओर से द्वार खोल दिया और उसे उसके समस्त अधिकारों से परिपूरित किया।

आज उसी की कृपा से नारी जाती में जागृति का संचार हो चुका है। उसने अपने वास्तविक रूप को पहचान लिया है। वह जान गई है कि वह अबला नहीं, प्रत्युत सबला है। आज प्रत्येक भारतीय नारी की आवाज है.--

'हमहिंदकी नारिया जलतीचिंगरियां,
समझे न हमेंकोई फूलोंकी क्यारियां।'

हम अनुयायी कैसे।

(५ पृष्ठ का शेष)

किया जाए और किस पर न। ऐसे हुथकण्डे आर्य समाजी खेलें तो और भी दु.खदायक है। मैं पढ़ता और सुनता हूं कि व्याख्यानों तथा लेखों द्वारा निराशावाद का प्रसार न किया जावे अर्थात आर्यसमाज की शिथिलता का वर्णन प्रैस तथा प्लेट फार्म से न होने पाये पर ऐसा लिखने वालों और कहने वालों की सेवा में मैं सविनय निवेदन करना चाहता हूं कि वे आर्यसमाज की शिथिलता के लिए उत्तरदाता नेताओं तथा विद्वानों से ही सम्मेलन का आयोजन कर कोई ऐसा उपाय पूछें जिस से आशावाद फैल कर आर्यसमाज के गौरव में वृद्धि हो।

आर्यसमाज उसी पहिली आनुमान और शान के साथ संसार के सम्मुख उपस्थित हो सकता है और किसी की मजाल नहीं जो उससे कोई आंख मिला सके यदि हमारे मनों मे, हम आर्यों के घरों में, आर्य गोष्ठियों में, आर्य समाजों में, आर्य सम्मेलनों में, आर्य महायज्ञों में, यत्र तत्र और सर्वत्र वेद प्रचार हो, ईश्वर विचार हो, शिक्षा विस्तार हो, सामाजिक सुधार हो, सद व्यवहार हो, सदाचार हो, परोपकार हो और जगत गुरु दयानन्द का जयजयकार हो। अज्ञानांधकार को संसार से मिटाने की कितनी आवश्यकता है यह मेरे आर्य भाइयों ने अग्रग्रहीयोंं सम्बन्धी ज्योतिषियों द्वारा फैलाई हुई भ्रांतियों के फल स्वरूप जनता के भयभीत होने से देख लिया है। सम्मेलनों में प्रस्ताव स्वीकृत कर पर उन्हें मूर्त रूप न दे कर तो ज्ञान प्रसार होने से रहा। निराश होने की आवश्यकता नहीं।

आर्यों घबराइयो मत गर तुम पे
गम की रात है।
फिर वही दिन आयेंगे दो-चार
दिन की बात है॥

दिन एक से हमेशा रहते नहीं किसी के' लोकोक्ति के अनुसार क्या आर्यसमाज ही ऐसा अभागा है जिसके दिन नहीं फिरेंगे? इसे ही जागरुक नेता न मिलेगा। जो हम सोते हुए आर्यों को जगाकर वेद प्रचार पथ पर आरूढ़ करदे परमात्मा करे कि हम आज डट कर वेद प्रचार का व्रत लेते हुए सच्चा बोधोत्सव मनायें।

—o—o—

(पृष्ठ ३ का शेष)

सन्त व्याकरण के सूर्य स्वामी अमृतानंद जी, आचार्य नरदेव जी जैसे आदर्श देवता, महात्मा टेकचंद जी प्रभु आश्रित, माता नन्दा जी, महात्मा आनंद भिक्षु जी, कविराज हरनामदास जी, मान्या बहिन भागवती जी आदि अनेक महानुभाव पधारे हैं। महात्मा आनंद स्वामी जी के मधुर प्रवचन का तो कहना ही क्या? कुम्भ का सच्चा स्नान हो रहा है। खुला अग्निलङ्गर चल रहा है। अग्निमेला पर खूब प्रचार होता है। स्वामी सच्चिदानंद जी मोहनाश्रम के सारे प्रबन्ध में खूब लग रहे हैं। मोहन आश्रम का इस समय का दृश्य सच्चे अर्थों में मोहक ही है।

—सम्पादक

सभा की समाजों के उत्सव प्रचार की धूमधाम

वेद प्रचार कार्यालय के साप्ताहिक समाचार

—अनाथालय करनाल का उत्सव ६ से ८ अप्रैल को सम्पन्न हो रहा है पं० चन्द्रसेन जी, हजारीलाल जी पधार रहे हैं।

—आ० स० खुल्दाबाद प्रयाग का उत्सव १० से १३ मई को सम्पन्न हो रहा है।

—आर्य समाज माडल टाऊन गुडगावां का उत्सव ३१ मार्च १-२ अप्रैल को धूम धाम से सम्पन्न हुआ। २६ मार्च से ३० तक रात के ८ से १० बजे तक खुशीराम शर्मा की कथा और राज पाल जी, मदनमोहन जी के भजन होते रहे। उत्सव पर श्रीमान् ला. चन्द्र जी हिसार प्रो. राम विचार जी, M. A. श्री मेला राम जी, श्री. हरि दत्त जी, श्री. देस राज जी पधार रहे हैं। ३१ मार्च को पूज्य महात्मा आनन्द स्वामी जी महाराज पधारे।

—आर्य समाज जलालाबाद—का उत्सव ६ से ८ अप्रैल को धूमधाम से सम्पन्न हो रहा है। २ अप्रैल से खुशीराम शर्मा की कथा और आ० ताराचन्द्र जी के भजन होंगे। उत्सव पर ८ अप्रैल को युवक सम्मेलन प्रो. वेदी राम जी शर्मा एम. ए. की अध्यक्षता में होगा। उत्सव पर श्री राजपाल जी, श्री मदनमोहन जी श्री मेलाराम जी पधारेंगे।

—आ. स. धरिवाल का उत्सव २० से २२ अप्रैल को धूमधाम से सम्पन्न हो रहा है। १५ अप्रैल से खुशीराम शर्मा की कथा और मा ताराचन्द्र जी के भजन होंगे। उत्सव पर श्रीमान् प्रो. वेदीराम जी प० हरिश्चन्द्र जी, श्री रामशरण जी, महावीर जी, नत्थूराम जी मडली पधारेगी।

—आ. स. लाजपत नगर सोनीपत का उत्सव २० से २२ अप्रैल को धूमधाम से सम्पन्न हो रहा है। १५ अप्रैल से प० ओम्प्रकाश जी की कथा और मडली के भजन होंगे। उत्सव पर जगतराम जी, जयनारायण जी तथा अन्य महानुभाव पधारेंगे।

—आ स खन्ना का उत्सव २७, २८, २९ अप्रैल को धूमधाम से सम्पन्न हो रहा है। श्री पं० त्रिलोकचन्द्र जी की कथा और श्री हजारी लाल जी के भजन होंगे। उत्सव पर विद्वान सज्जन पधारेंगे।

—आ. स. पंजौड़ का उत्सव २८ से ३१ मार्च तक धूमधाम से सम्पन्न हुआ। शिवचरण जी, श्री ताराचन्द्र जी, श्री हजारीलाल जी, श्री मेलाराम जी पधारे।

—आ. स जोगेद्र नगर का यज्ञ उत्सव ५ से १३ अप्रैल तक सम्पन्न हो रहा है। श्री प० ओम्प्रकाश जी, राजपाल जी मदन मोहन जी पधारेंगे।

—आ. स. फिरोजपुर शहर का उत्सव २७ से २९ अप्रैल को सम्पन्न हो रहा है।

—आ. स कालेज विभाग रोहतक का उत्सव ४ से ६ मई को धूमधाम से सम्पन्न हो रहा है।

—स्त्री समाज करनाल का यज्ञ उत्सव १ से ५ अप्रैल को सम्पन्न हो रहा है श्री पं. चन्द्र सेन जी, हजारी लाल जी पधार रहे हैं।

—हरिद्वार मोहनाश्रम मे कुम्भ प्रचारार्थ २८ मार्च से १३ अप्रैल तक सभा की ओर से श्री प अमर सिंह जी अध्यक्ष अम्बाला करनाल मडल दल सहित पधार रहे हैं तथा श्री पं० त्रिलोकचन्द्र जी पहुच गए हैं। मोहन आश्रम में सभा का सत्संग केन्द्र लगा हुआ है। पधारने वाले महानुभाव वहीं धर्म-लाभ करें।

नोट.—उत्सवों की अधिकता के कारण बहुत सी समाजों ने तिथिया बदलने की प्रार्थना की है। वे तिथिया बदलने की कृपा करें। उत्सवों की तिथिया सभा कार्यालय से लेनी चाहियें। ताकि प्रबन्ध में सुभीता रहे।

(२) प्राय समाजें अपनी तिथियां निश्चित कर सभा को सूचित करती हैं। यदि वे तिथिया पहले ही रुक चुकी हों तो प्रबन्ध में असुविधा रहती है। अत तिथियां सभा से लेने की कृपा किया करे।

नं ३ उत्सवों की अधिकता के कारण मई के अंत तक सारा स्टाफ रुका हुआ है। कई समाजो ने एक सप्ताह कथा के लिए लिखा है। उनसे क्षमा याचना।

धन्यवाद
खुशी राम शर्मा।

शुभ सन्देश

सभा द्वारा हरिद्वार मोहन आश्रम में कुम्भ के अवसर पर पूज्य महात्मा आनन्द स्वामी जी महाराज की अध्यक्षता मे प्रचार कैंप लगाया गया है। १२ वर्ष के बाद कुम्भ आया है। लाखों भारत भर के नर नारी पधारते हैं। उन्हें वेदामृत पान कराने और यज्ञ से सुवासित करने का सुन्दर अवसर है। यज्ञ, लगर, प्रचार का विशाल आयोजन किया गया है।

सभी धर्म प्रेमी नर नारियों से प्रार्थना है कि इस शुभ कार्य में सभा को पूर्ण योग देने की कृपा करें। कुम्भ प्रचार, यज्ञ, लगर के निमित्त शीघ्र धन संग्रह कर सभा को भेजने की कृपा करें। सभी आर्य समाजों से भी यही विनम्र निवेदन है। धन्यवाद

खुशीराम शर्मा
अधिष्ठाता वेद प्रचार

कुम्भ प्रचार के लिये दान

मेरी प्रार्थना स्वीकार करते हुये निम्न स्थानों एवं सज्जनों से दान प्राप्त हुआ है।

अन्य महानुभाव भी शीघ्र भेजने की कृपा करे। प्रार्थना करने मे देरी हो गई है।

१०१) रु आ. स शाम चौरासी द्वारा, १०) रु श्री डा. धर्मदेव जी धर्म शाला (कांगड़ा) ४०) रु० आ० स० पुरानी मंडी जम्मू द्वारा प्राप्त हुये।

खुशी राम शर्मा वेद प्रचार अधिष्ठाता

गुरुकुल कांगड़ी (हरिद्वार) का

वार्षिकोत्सव १४-१५-१६-१७ अप्रैल १९६२ ईस्वी (शनि, रवि, सोम, मंगलवार) को बड़ी धूमधाम से सम्पन्न हो रहा है। हम बड़े प्रेम और आग्रह से आपको इस उत्सव में सम्मिलित होने के लिए आमंत्रित करते हैं।

दर्शनाभिलाषी
प्रियव्रत वेदवाचस्पति आचार्य

आर्यसमाज सीधपुर

जिला करनाल का वार्षिकोत्सव बड़े समारोह से मनाया गया। इस में अम्बाला करनाल जिलों की वेद प्रचार की श्री पं० अमर सिंह जी की मण्डली, ठा० दुर्गासिंह जी, पं० जयनारायण जी शर्मा, पं० कलीराम जी, श्री स्वामी भीष्म जी, जालन्धर से श्री पं० त्रिलोक चन्द्र जी पधारे। जलसा हर प्रकार से उत्तम रहा। ग्राम के श्री मंगत राम जी बड़े ही समाज के प्रेमी, दीवाने तथा भक्त हैं उन्होंने सभा को मन्दिर के लिए भूमि दान का भी संकल्प किया।

आर्यसमाज खुल्दाबाद

(प्रयाग)

का निर्वाचन २६—३—६२ को निम्न प्रकार से हुआ।

प्रधान—श्री पं० देवीदास जी

उप प्रधान—श्री केशव चन्द्र जी 'अग्रवाल'।

मन्त्री—श्री देवराज जी

कोषाध्यक्ष—श्री नरेन्द्र नाथ जी

पुस्तकाध्यक्ष—श्री राम धन जी

लेखानिरीक्षक—श्री बृज नारायण जी 'मिश्र'

—देवराज मन्त्री, समाज

आर्यसमाज, होशियारपुर का शोक प्रस्ताव

आर्य जगत के प्रसिद्ध नेता, महान दानी तथा परोपकारी अमृतधारा जैसी अमूल्य औषध के आविष्कार-कर्ता श्री पं० ठाकुर दत्त जी शर्मा वैद्य की दुःखद मृत्यु पर हार्दिक शोक प्रकट करता है तथा तथा प्रभु से उनकी पवित्र आत्मा की सद्गति के लिए प्रार्थना करता है।

ईश्वर करे कि उन जैसे श्रद्धावान्, कर्मठ, धनी मानी, ऋषि भक्त और वैदिक धर्म के प्रचार व प्रसार की लग्न रखने वाले महापुरुष और भी आर्य समाज में उत्पन्न हों।

यह समाज स्वर्गीय पण्डित जी के परिवार से हार्दिक सहानुभूति तथा संवेदना प्रकट करता है।

—बूटाराम मन्त्री

आर्य समाज, सोलापुर में ऋषिबोध-उत्सव

ता० ४—३—६२ रविवार को श्री हीरालाल जी देवालिया रिटायर्ड जज की अध्यक्षता में आर्यसमाज मन्दिर में ऋषिबोधोत्सव मनाया गया। प्रिं० भगवानदास जी ने अपने प्रास्ताविक भाषण में ऋषि दयानंद के जीवन पर प्रकाश डालते हुए अखिल भारतीय दृष्टि से उनके महत्व को स्पष्ट किया।

उत्सव के निमंत्रित वक्ता श्री फैज अहमद शेख ने दयानंद जी के विचारों को बतलाते हुए कहा कि वे अपने समकालीन विद्वानों में अद्वितीय थे। वे क्रांतिकारक थे। तदुपरांत महाविद्यालय के प्राध्यापक श्री हीरा लाल जी औलक ने दयानंद की विचारधारा का अपने जीवन पर क्या प्रभाव हुआ, यह बताया। दयानन्द जी के जीवन का सार सत्यनिष्ठा, धर्मभावना और समाज सेवा इन तीन सूत्रों में बताया। स्वामी जी ने अपने ध्येय की पूर्ति के लिये घरबार छोड़ा, जंगलों की खाक छानी। अंत में श्री भगवान दास चौधरी ने महापुरुषों के चरित्र की समता की ओर ध्यान आकृष्ट करके उनके आदर्श का जीवन में उपयोग बतलाया।

बोधोत्सव के अध्यक्ष श्री हीरालाल जी देवालिया ने अध्यक्षीय भाषण में स्वामी जी के विचारों की आधार भूमि वेदों को बतलाकर उनके सार्वभौम और सार्वकालिक महत्व को विशद किया। इसके बाद कृतज्ञता प्रदर्शन होकर शांतिपाठ के साथ कार्यक्रम समाप्त हुआ। उत्सव में अनेक प्रतिष्ठित नागरिक उपस्थित थे।

—मन्त्री समाज

गुरुकुल विद्यापीठ हरयाणा

भैंसवाल कलां जि० रोहतक (पंजाब) का वार्षिकोत्सव २० से २६ मार्च को सम्पन्न हुआ।

१—यजुर्वेद पारायण यज्ञ बड़ी श्रद्धा के साथ निर्विघ्न समाप्त हुआ।

२—संस्कृत सम्मेलन श्री पण्डित विद्यानन्द जी शर्मा की अध्यक्षता में तथा चरित्र निर्माण सम्मेलन श्री स्वामी दर्शनानन्द जी सरस्वती परिव्राजक की प्रधानता में सम्पन्न हुए। उत्सव में श्री आत्मानंद जी तीर्थ, चौ० रणवीर सिंह जी मंत्री (विद्युत एवं सिंचाई) पंजाब सरकार श्री चांदराम जी राज्य मन्त्री पंजाब सरकार आदि महानुभावों ने पधार कर उत्सव की शोभा को बढ़ाया। गुरुकुल हरियाणा के छात्रों के भजन और व्याख्यान हुए। उपस्थिति लगभग २० हजार की थी। १६५०० रु० गुरुकुल को दान प्राप्त हुआ।

—सेवाराम आर्य प्रचार विभाग

आर्यसमाज गोविन्द नगर कानपुर

का चुनाव निम्न प्रकार से हुआ।

प्रधान—श्री द्वारकानाथ जी उप्पल, उपप्रधान श्री कृष्णलाल जी बेहल, मन्त्री श्री जाति भूषण जी, उपमन्त्री श्री मनोहर लाल जी भाटिया, कोषाध्यक्ष श्री शिवदयाल जी, पुस्तकाध्यक्ष श्री कोषराज जी, अन्तरंग सदस्य श्री देवीदास जी आर्य, श्री रामलाल जी आनन्द, श्री मोहनलाल जी, श्री कृष्णलाल जी धमीजा, श्री नरेन्द्र दत्त जी शर्मा, निरीक्षक श्री अमरनाथ जी मलक।

—जाति भूषण मन्त्री समाज

मुद्रक व प्रकाशक श्री सतोष राज जी मंत्री आर्यप्रादेशिक प्रतिनिधि सभा पंजाब जालंधर द्वारा वीर मिलाप प्रेस, मिलाप रोड जालंधर से मुद्रित तथा आर्य जगत कार्यालय महात्मा हंसराज भवन निकट कचहरी जालन्धर शहर से प्रकाशित मालिक—आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा पंजाब जालन्धर।

टलीफोन न० ३०४७ [आर्यप्रादेशिक प्रतिनिधि सभा पंजाब जालन्धर का साप्ताहिक मुखपत्र] Regd No.P·121

एक प्रति का मूल्य १३ नये पैसे वार्षिक मूल्य ६ रुपये

वर्ष : २ अंक १७) रविवार १७ वैशाख २०१९ — २९ अप्रैल १९६२ दयानन्दाब्द १३८ (तार-प्रादेशिक जालन्धर

वेद सूक्तयः

समुद्र आत्मा सदनम्

वह परमेश्वर आत्मा इन लोक-लोकान्तरों का समुद्र-उत्पत्ति स्थान है और वही सदनम्-आश्रय स्थान है। उसी से उत्पन्न होकर उसी में निवास करती है।। वही ब्रह्मा विष्णु है।

नम इत् वृणोमि

हे भगवन्! मैं तुझे नमस्कार करता हूं। मैं सदा तेरा हूं। तेरे सिवाय और मैं किसी की भी पूजा नहीं करता और न अन्य किसी को नमस्कार ही करता हूं।

शं नो भवन्तु आपः

शं नः-हमारे लिए सुखकारी भवन्तु-होवें आप-जल तथा आप्त-जन विद्वान लोग। इन जलों में शान्ति देने का गुण है। हम जलों से पूरा २ लाभ उठाते रहें।

अथर्ववेद से

वेदामृत

येन द्यौरुग्रा पृथिवी च दृढ़ा येन स्वः स्तभितं येननाकः।
यो अन्तरिक्षे रजसो विमानः कस्मै देवाय हविषा विधेम।

यजु० ३२-६

अर्थ—(येन) जिस परमात्मा ने (उग्रा) तीक्ष्ण स्वभाव वाले (द्यौ) सूर्य आदि (च) और (पृथिवी) भूमि को (दृढ़ा) धारण किया (येन) जिस जगदीश्वर ने (स्व) सुख को (स्तभितम्) धारण किया और (येन) जिस ईश्वर ने (नाक) दुःख रहित मोक्ष को धारण किया है (य) जो (अन्तरिक्षे) आकाश में (रजस) सब लोक लोकान्तरों को (विमान) विशेष मान युक्त अर्थात् जैसे पक्षी आकाश में उड़ते हैं वैसे सब लोकों का निर्माण करता और भ्रमण कराता है हम लोग उस (कस्मै) सुखदायक (देवाय) कामना करने योग्य परब्रह्म की प्राप्ति के लिए (हविषा) सब सामर्थ्य से (विधेम) विशेष भक्ति करें। (दयानन्द भाष्य)

भाव—यह इतनी बड़ी भूमि और इस पर ऊंचे २ पर्वत, गहरे सागर तथा घने २ वन किसे आश्चर्य में नहीं डाल देते? ऊपर आकाश तथा इस में अनेक प्रकार के ज्ञात व अज्ञात नक्षत्र, ग्रह व तारामंडल देख कर कौन बड़ा वैज्ञानिक भी मौन नहीं हो जाता? इस सुन्दरतम चित्र का चित्रकार कौन? निर्माण का निर्माता, विश्व का भरण पोषण करने वाला कौन है? प्यारे पिता जी! आप के सिवाय दूसरा कौन हो सकता है? किस में इतनी शक्ति तथा सामर्थ्य है जो ऐसी अद्भुत रचना रच सके? धरती के धारक, द्यौ के पालक तथा सुख के कारण आप ही हो। भू भुव स्व-पृथिवी अन्तरिक्ष तथा द्यौलोक में आप का ही नियम है, आपकी ही सत्ता है तथा आपका प्रकाश है। हम आपको नमस्कार करते हैं। आपकी भक्ति करते हुए प्रेम का प्रसाद मांगते हैं—झोली भर दो—स०

ऋषि दर्शन

स्वतः प्रमाणत्व तु सूर्यवत्

वेद स्वतः प्रमाण है सूर्यवत्-सूर्य की तरह। जैसे सूर्य को दिखाने की किसी और वस्तु की आवश्यकता नहीं ऐसे ही वेदों को दिखाने की किसी अन्य पुस्तक की आवश्यकता नहीं।

सर्वा विद्याः प्रकाशयति

वेद सर्वा-सारी विद्या-विद्याओं का सब सत्य ज्ञानों का प्रकाश करता है। वेद में सारी सत्य विद्याओं, सारे सत्य ज्ञानों का सनातन भंडार भरा हुआ है।

ब्रह्म सर्वजगत्कर्तृ

वह ब्रह्म-भगवान सारे जगत् का कर्त्ता है। यह सारा चर अचर विश्व उसी परमेश्वर का रचा है उसके बिना कौन इतना महान विश्व रच सकता है।

भाष्य भूमिका

सम्पादक : त्रिलोक चन्द्र शास्त्री

अधिष्ठाता—संतोष राज मंत्री सभा

आर्य प्रादेशिक सभा द्वारा कुम्भमेला हरिद्वार में प्रचारधूम

महात्मा आनन्द स्वामी जी की आध्यात्मिक प्रवचनमाला

मोहन आश्रम हरिद्वार में महायज्ञ समारोह

बारह वर्षों के बाद कुम्भ का महामेला हरिद्वार में आया। सारे देश के प्रान्तों से नर-नारी इस तीर्थ केन्द्र पर लाखों की संख्या में एकत्रित हुए। बडी चहल-पहल और भारी समारोह था। इतनी तो प्रसन्नता है ही कि राष्ट्र के भिन्न २ मत, सम्प्रदाय, पन्थ, संस्थाएं मण्डल भाषाएं, वेषभूषा होते हुए भी यहां एकता का समन्वय हो जाता है। इस कुम्भमेला के अवसर पर आर्य प्रादेशिक सभा पंजाब जालन्धर प्रचार का पूरा २ प्रबन्ध करके लाखों जनता तक वैदिक धर्म का सन्देश पहुंचाने में सदा जागरूक रहती है। इस बार भी बड़ा सुन्दर प्रबन्ध किया गया आर्यसमाज के परम तपस्वी त्यागी स्वर्गीय महात्मा हंसराज जी ने इसी प्रचार के पवित्र लक्ष्य को दृष्टि में रख कर हरिद्वार में मोहनाश्रम के विशाल आश्रम भवन की स्थापना की थी। इस की भूमि देहरादून के ऋषिभक्त स्वर्गीय श्री बलदेवसिंह जी ने प्रदान की थी। बड़े सुन्दर कमरे बने हैं। इस का सारा प्रबन्ध इस समय श्री स्वामी सच्चिदानन्द जी महाराज बीसियों वर्षों से बडी उत्तमता से कर रहे हैं। सारा दिन दौडधूप में रहते हैं। आश्रम को ऐसे अनथक कार्यकर्ता संन्यासी पर बडा मान है। सभा की ओर से इस अवसर पर पण्डित त्रिलोकचन्द शास्त्री आर्योपदेशक को भेजा गया। अम्बाला करनाल वेद प्रचार मण्डल के पं० अमरसिंह जी तथा उनके सारे साथी श्री शमशेर कुमार जी, ठा० दुर्गासिंह जी, पं० जयनारायण जी, जगत् राम जी, श्री बस्तीराम जी, श्री प० गौतम जी वहां पधारे थे। सभा ने अपने आठ आदमी प्रचार के लिए भेज दिए। वैसे पूज्य महात्मा आनन्द स्वामी जी महाराज की देखरेख में प्रचार का सारा कार्यक्रम चलता था। पूज्य महात्मा जी ने पहली एप्रिल को ही मोहनाश्रम में पधार प्रचार व यज्ञ की सारी व्यवस्था कर दी। सभा के मान्य नेता आर्यसमाज अनारकली नई देहली के प्रधान तथा देहली प्रचार केन्द्र के प्रधान श्री० ला० भगवानदास जी पुरी अपने सारे परिवार के साथ पहुंचे। उनका चौबीस घण्टे सहयोग मिलता था। श्री० ज्ञानी पिण्डी दास जी उपप्रधान सभा भी पधारे। श्री पं० अग्निहोत्री जी भी अपने परिवार सहित विराजमान होकर बडा ही कार्य करते रहे। पूज्य महात्मा आनन्द भिक्षु जी महाराज यज्ञ कार्य सम्पादन में लगे रहे। अमृतसर से लारेंस रोड समाज के मन्त्री समाज प्रेमी श्री ला० गुरचरणदास जी अपने सारे परिवार सहित पहुंचे थे। बड़ी ही भारी चहलपहल थी।

श्री. प० अग्निहोत्री जी ने अपने परिवार द्वारा सामवेद यज्ञ पारायण कराया। गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर के कुलपति आचार्य नरदेव जी शास्त्री वेदतीर्थ महाराज तो समाज की पुरातन पुनीत विभूति हैं। इन का दर्शन, भाषण श्रवण, संवादन मन में प्रभाव डालता जाता है। पं० सोमकीर्ति जी विद्यालंकार जी भी आये थे। पहिले व्यासाश्रम में मान्या तपस्विनी बहिन भाग्यवन्ती जी ने गायत्री महायज्ञ रचाया। दोनों समय भारी रौनक धूमधाम थी। पूर्णाहुति पर तो बहुत भीड़ थी। बड़ा शानदार भण्डारा किया। इस के साथ २ मोहनाश्रम में मिलाप परिवार की ओर से गायत्री महायज्ञ का दर्शनीय यज्ञारम्भ हुआ। पूज्य महात्मा आनन्द स्वामी जी महाराज के आदेश निर्देश पर सारा समारोह चलता था। ब्रह्मा के पवित्रासन पर वे विराजमान थे महात्मा आनन्दभिक्षु जी व. पं० त्रिलोकचन्द शास्त्री यज्ञके सम्पादन कराने वाले थे। यज्ञ के बाद प्रतिदिन महात्मा आनन्द स्वामीजी का इतना मधुर, मनोमोहक तथा प्रभावपूर्ण आध्यात्मिक वेद प्रवचन होता था जिसे सुनने के लिए भारी संख्या में जनता प्रात.काल ही उमड़ उमड कर आ जाती थी। सच्चे तीर्थ का स्नान अनुभव करते थे। एक दिव्य रस, अनूठी मस्ती, अनुपम आनन्द तथा भव्य अनुभूति का रस लेने तथा पीने वाले ही जानते हैं। लोगों को इन प्रवचनों का आनन्द कभी न भूलेगा।

प्रातः पांच बजे प्रभातफेरी हरकी पौड़ी, भीमगोडा, गंगा आदि की ओर आश्रम से होती थी। इसके लिए नर नारियों, बालवृद्धों का प्रेम श्रद्धा भूल नहीं सकता। मस्ती के भजन, आर्यसमाज ऋषि दयानंद अमर रहें के जयघोषों से हरद्वार ध्वनित हो उठा। बाहिर की जनता प्रभावित थी। दोपहर दो बजे से साढ़े पांच तक प्रचार व यज्ञ चलता था। प्रवचन करने वालों में आचार्य नरदेव जी वेदतीर्थ कुलपति गुरुकुल ज्वालापुर, आचार्य प्रियव्रत जी गुरुकुल कांगड़ी, स्वामी अमृतानन्द जी महाराज, स्वामी ब्रतानन्द जी नरेला. सेठ राधाकृष्ण जी, पं० त्रिलोकचन्द जी शास्त्री, आदि सज्जन शामिल थे। रात को फिर प्रचार चलता था। माता मायादेवी जी, श्री मोहनलाल जी, माता कौशल्यादेवी जी आदि कितनी माताएं बहिनें अनथक परिश्रम करती थीं। माताओं की श्रद्धा, रुचि देख कर मस्तक झुक जाता था। ज्ञानगंगा का प्रवाह चल रहा था। प्रचार व यज्ञ में बाहिर के नर-नारी बड़ा भाग लेते थे। मान्य माता मेलादेवी जी का मातृ प्रेम तथा सौम्य पवित्र जीवन किस के मस्तक को नहीं झुका देता। यजमान के आसन पर विराजमान थीं। समय-समय पर और भी यजमान बनते रहे यथा श्री मोहनलाल जी, श्री अग्निहोत्री जी, श्री भगवानदास जी पुरी, श्रीमती सत्यवती जी, श्रीमती सुशीलादेवी जी नाइन, ठा० रणजीतसिंह जी जफरपुर तथा इनके भाई जी, माता सरस्वती जी, माता यशोदादेवी जी बनीं। श्रीयुत यश जी पञ्जाब के शिक्षा राज्यमन्त्री तथा श्री रणवीर जी जब पधार के अपनी पूज्या माता के साथ आहुति देने बैठे तो यज्ञ में उपस्थित सारे नारी नरों के नेत्रों में प्रेम व श्रद्धा के अश्रु भर गए। सारे परिवार की श्रद्धा व सौभाग्य दर्शनीय था। अपनी माता के साथ इतने योग्य ऊंचे आसन पर बैठने वाले सुपुत्रों को देख कर सारे गद् गद् प्रसन्न थे। धूमधाम से पूर्णाहुति हुई। अपार भीड़ थी, ठिकाना न था। आशीर्वाद की पुण्य वर्षा से वातावरण गूंज उठा। भण्डारे में तो पता नहीं कितनी भीड़ ने भोजन खाया।

(शेष पृष्ठ ६ पर)

सम्पादकीय—

आर्य जगत्

वर्ष २२] रविवार १७ वैशाख २०१८, २९ अप्रैल १९६२ [अंक १७

प्रिं० सूर्यभानु जी वायस चांसलर

पंजाब के माननीय राज्यपाल श्री गाडगिल ने प्रिंसिपल सूर्यभानु जी एम० ए० को कुरुक्षेत्र यूनिवर्सिटी का उपकुलपति निर्वाचित करके उच्च स्थान पर उच्च व्यक्ति को समासीन करने की पुनीत पुरातन परम्परा को चरितार्थ कर दिया है। माननीय प्रिंसिपल जी की की योग्यता, व्यक्तित्व, शिक्षा, प्रबन्धकुशलता तथा आदर्श जीवन देश के महान्, प्रख्यात शिक्षा विशेषज्ञों में शुमार होता है। उनके प्रबन्ध म दयानन्द कालेज जालंधर कहां से कहां जा पहुंचा। आप आर्य प्रादेशिक सभा पंजाब के भी माननीय प्रधान हैं। आर्यसमाज को इस बात का गुरु गौरव है कि उसके पास इस प्रकार की दिव्य विभूतियां हैं।

उपकुलपति निर्वाचित होने पर सब ओर से जहां बधाई के सन्देशों का तान्ता बन्ध गया। वहां स्वागत सम्मान करने वालों के भी सुन्दर समारोह होने लगे। जालन्धर में अपने डी० ए० वी० संस्थानों की स्थानीय परामर्श दात्री कमेटी की ओर से साईंदास स्कूल में श्री प्रिंसिपल जी का स्वागत सम्मान करने के लिए बड़ा भारी समारोह किया गया। बड़ी सुन्दर पार्टी दी गई। नगर के बड़े २ गण्य मान्य सज्जन निमन्त्रित किये गये। कालेजों के मान्य आचार्य, प्राध्यापक, स्कूलों के प्रमुख, सभा के अधिकारी, प्रबन्धकर्तृ सभा के सदस्य सारे प्रतिष्ठित सज्जन थे। माननीय प्रिंसिपल ज्ञानचन्द जी भाटिया ने प्रिंसिपल सूर्यभानु जी का सारे समारोह की ओर से सम्मान व अभिनन्दन करते हुए आपके शिक्षाक्षेत्र तथा समाज के विशाल जगत् में की जा रही सेवाओं की मुक्तकण्ठ से प्रशसा की। पुष्पमालाएं भेंट की गईं। वायस चासलर निर्वाचित होने की बधाई देते हुए कहा कि वहा बैठ कर भी आप हमें नहीं भूलेंगे।

इसी प्रकार दयानन्द कालेज जालन्धर के स्टाफ की ओर से भी आपके सम्मान मे सहभोज दिया गया तथा अभिनन्दन किया गया। कालेज में नये आये हुए मान्य प्रिंसिपल बहल जी ने आपकी हर दिशा में की गई विशिष्ट सेवाओं का विशद वर्णन किया। जालंधर के इस कालेज को आपने अपनी योग्यता, गम्भीरता से भारत के विशिष्ट कालेजों की गणना में पहुंचा दिया है। जब कभी इस कालेज का इतिहास लिखा जायगा—आपका नाम स्वर्णाक्षरों में अंकित होगा। आपका जीवन ज्योति के रूप में रहा और सदा रहेगा। सारे समाज व राष्ट्र को आप से बड़ी २ आशाएं हैं।

माननीय प्रिंसिपल जी ने इन स्वागत समारोहों के लिए धन्यवाद करते हुए कहा, मैं जो कुछ भी हू। आर्यसमाज तथा महात्मा हंसराज जी के जीवन से सीखा है। आपका अत्यन्त आभारी हूं। ये समारोह अनुपम थे। हम हार्दिक अभिनन्दन करते हैं। प्रभु आपको सदा स्वस्थ रखें। अपने योग्य, अनुशासन प्रिय नये प्रिंसिपल श्री बहल जी का स्वागत करते हुए बधाई देते हैं।

—त्रिलोक चन्द्र

मोहनाश्रम हरिद्वार में

कुम्भ मेला के अवसर पर जो समारोह सम्पन्न हुआ, जो दर्शनीय दृश्य देखा, महायज्ञों की जो महिमा मची, आर्यसमाज के मान्य महात्माओं व महारथियों के जैसे महत्व भरे प्रवचन सुने, भजनमण्डली के जो भजन हुए, माताओं में जिस श्रद्धा का शानदार परिचय मिला, जनता के जीवन मे धर्म के प्रति जो प्यास व रुचि देखी, वातावरण में जितनी सात्विकता अनुभव की, आर्य प्रादेशिक सभा द्वारा जो सुन्दर प्रचार का कार्य देखा, लोगों में आर्यसमाज और ऋषिदयानन्द के प्रति जितना भव्यभाव अनुभूत किया, स्वर्गीय महात्मा हंसराज द्वारा संस्थापित मोहनाश्रम में जो जीवन जागरण देखा, महात्मा आनन्द स्वामी जी का जितना भी जीवन आकर्षण देखा—वे सारी बातें सदा स्मरण रहेंगी एक सुनहला युग था जो भूलेगा नहीं, सत्संग समारोह था जो निरन्तर जीवन देता रहेगा। कुम्भ आया और गया किन्तु इस आश्रम में प्रात पाच बजे से लेकर रात के दस बजे तक जिस उत्तमता से धर्म प्रचार, यज्ञ पारायण, प्रीतिभोजन एवं साहित्य वितरण होता रहा वह अपने पीछे अमिट छाप लगा गिया। इतनी बड़ी सफलता की हम सब को बधाई देते हैं।

पूज्य महात्मा आनन्द स्वामी जी महाराज के नेतृत्व में सारा कार्यक्रम संचालित होता था। आर्य समाज की विभूतियों में महात्मा आनन्दभिक्षु जी महाराज, आचार्य नरदेव जी वेदतीर्थ कुलपति गुरुकुल ज्वालापुर, स्वामी अमृतानन्द जी महाराज, स्वामी व्रतानन्द जी, आचार्य प्रियव्रत जी गुरुकुल कांगड़ी वैद्य अमरनाथ जी देहरादून, सेठ राधाकृष्ण जी, पंजाब के राज्य शिक्षामन्त्री श्री यश जी, श्री रणवीर जी, आर्यसमाज अनारकली के प्रधान ला० भगवानदास जी पुरी, ज्ञानी पिण्डीदास जी, पं० ज्ञानेन्द्र जी शास्त्री, प० धर्मपाल जी शास्त्री आदि कितने ही महानुभाव पधार कर अपने दर्शनों व प्रवचनों से कृतार्थ करते रहे। पूज्य महात्मा जी के भ्रातृत्व महात्मा आनन्दभिक्षु जी के नेतृत्व तथा आचार्य नरदेव जी कुलपति की देखरेख में श्री पं० अग्निहोत्री जी देहली, व्यासाश्रम में बहिन भाग्यवन्ती जी तथा मिलाप परिवार की ओर से किये गये महायज्ञ क्या किसी को भूल सकते हैं ?

आर्य प्रादेशिक सभा ने इस कुम्भ महामेला में अपना कितना महान् कार्य किया है। अम्बाला करनाल की वेद प्रचार मण्डली पं० अमरसिंह जी तथा उनके सारे साथी प० जयनारायण, पं० जगत् राम, प० शमशेर कुमार, ठा० दुर्गासिंह, पं० बस्तीराम, प० गौतम जी ने भी खूब शोभा बनाये रखी। आश्रम निवासियों का प्रेम तथा उत्साह तो कभी भूल ही नहीं सकता। आश्रम के प्रबन्धक स्वामी सच्चिदानन्द जी ने तो सभा प्रेम में रात दिन एक कर दिया। भोजन भण्डारे में तो कमाल ही था। आंखें देखती हैं पर बोल नहीं सकतीं और वाणी बोलती पर देखती नहीं। वहां दोनों मस्त हो गई चारों ओर धर्मयुग था। सभा की ओर से बड़ा भारी प्रचार हुआ। हम इस सारे दृश्य को देख कर आर्यप्रादेशिक सभा के सारे अधिकारियों को पूज्य महात्मा जी, आश्रमवासियों एवं सभा समाज प्रेमी भाई माताओं को विशेष बधाई देते हैं।

—त्रिलोकचन्द्र

धर्ममूर्ति महात्मा हंसराज जी

(ले०—श्री ज्ञान सिंह जी, करोल बाग, नई दिल्ली)

महात्मा हंसराज का जीवन तप व त्याग का जीवन था। धर्मनिष्ठा इसका प्रधान चिन्ह था। इस धर्म प्रेम का उन्होंने बाल्यावस्था मे ही परिचय दिया। वह लाहौर में एक मिशन स्कूल में ९ वीं कक्षा के विद्यार्थी थे। स्कूल के हैडमास्टर ने आर्य संस्कृति व प्राचीन हिन्दू धर्म के विषय में कुछ अनुचित शब्दों का प्रयोग किया, जिसे बालक हंसराज सहन न कर सका। उसने हैडमास्टर के विचारों का निर्भीकता से खंडन किया जिस के फल स्वरूप वह हैड-मास्टर का कोपभाजन बना जिस से उसे कुछ काल के लिए स्कूल से निकलना पड़ा।

यह वास्तव में धर्म की प्रेरणा ही थी, जिसने एक २२ वर्षीय ग्रेजुएट नवयुवक को सांसारिक सुखों व भोगविलास के जीवन पर लात मार कर जवानी की उमंगों को मसलकर अपना जीवन दयानन्द कालेज व आर्य समाज के लिए बिना किसी वेतन अर्पित करने तथा निष्काम व निःस्वार्थ सेवा के लिए उद्यत किया। एक ही बार आग में छलांग लगा कर पतंगे की तरह जल मरना निःसन्देह वीरता है। शत्रुओं से लड़ते हुए मर मिटना पराक्रम है। परन्तु जीवन पर्यन्त पग पग पर भावनाओं, उमंगों, लालसाओं आदि को रौंदते हुए अपने पथ से विचलित न होना सब से बढ़ कर वीरता, पराक्रम व साहस की बात है।

धर्म प्रेम का यह फल था कि महात्मा जी का जीवन बिल्कुल सरल व सादा था। वे एक मामूली से मकान में रहते थे, जिसका किराया ४० रु० (मासिक था। अपना और अपने परिवार का निर्वाह वह ३६) मासिक से करते थे। वे कालेज से डेढ़ मील की दूरी पर रहते थे। गर्मियों में दिन के बारह बजे पैदल घर जाया करते थे। बाहर की आर्य समाजों के जलसों में जाने के लिए वे अड्डे पर से ही तांगे पर चढ़ते थे तथा अड्डे तक स्वयं बिस्तर उठा कर जाते थे। वहां भी एक सवारी का किराया देकर अन्य यात्रियों के साथ यात्रा करते थे। आजकल तो सेवा करने वाली संस्थाओं के साधारण कर्मचारी भी पूरा तांगा या टैक्सी का प्रयोग करते हैं तथा घर पर ही ऐसी सवारी मंगवाते हैं। कभी कभी तो समाजों के जलसों में सम्मिलित होने के लिए महात्मा जी को ७ या ८ मील पैदल भी चलना पड़ता था और कई बार बिस्तर भी स्वयं ही उठाना पड़ता था। गांधी जी के नेतृत्व मे राजनीति के क्षेत्र मे बहुत लोगों ने त्याग किया परन्तु उनका त्याग भोग की पृष्ठभूमि था महात्मा हंसराज का जीवन आरम्भ से अन्त तक त्याग का ही जीवन था। वे वास्तव में त्याग मूर्ति थे। उनके त्याग का उदाहरण दूसरों के लिए आदर्श बन गया।

पहाड़ी स्थानों पर मकानों को पानी के बहाव से बचाने के लिए पत्थरों का पुश्ता बनाया जाता है। समुद्रों मे जहाजों को तूफान से बचाने के लिए लंगर का प्रयोग किया जाता है। धर्म-प्रेम, दुखों व विपत्तियों के समय मनुष्य के लिए पुश्ते या लंगर का काम देता है। धर्म-निष्ठा के कारण ही महात्मा जी कभी कठिनाइयों से घबराते नहीं थे। उन्होंने कभी धैर्य को हाथ से नहीं छोडा। उनके पुत्र स्वर्गीय लाला बलराज पर सरकार के विरुद्ध षड्यन्त्र रचनेका संगीन अभियोग चल रहा था, जिसका दंड मृत्यु हो सकता था। उनकी धर्म पत्नी रोग-शैया पर पड़ी थी और उनकी, लाला बलराज के अभियोग के मध्य में ही, जीवन लीला समाप्त हो गई। उनके भाई लाला मूलख राज की आर्थिक अवस्था भी कुछ डावांडोल हो गई। ऐसी अवस्था में भी इस धर्म-मूर्ति व ईश्वर भक्त के चेहरे पर कोई रंज की रेखाएं प्रतीत नहीं होती थीं। वह समुद्र की भांति शान्त थे। उनके चेहरे पर मुस्कान ही प्रतीत होती थी, किसी को भी उनके चेहरे से यह ज्ञात नहीं हो सकता था कि वह किन प्रतिकूल परिस्थितियों से गुजर रहे हैं। वे पहले की ही भांति आर्य समाज के कार्यों मे संलग्न रहे, इस से उनके ईश्वर प्रेम व आत्म-बल का परिचय मिलता है।

वह निन्दा स्तुति से भी उदासीन थे। उनकी डाक मे कई बार ऐसे पत्र भी आते थे, जिनमे उन्हें भला-बुरा कहा जाता था। परन्तु उनके माथे पर बल नहीं आता था। फिर कुछ दिन बाद वही सज्जन अपनी भूल को जानकर क्षमा याचना करते थे और उनकी सूझबूझ व दूरदर्शिता की दाद देते थे। वास्तव मे इस प्रशंसा का महात्मा जी पर कोई प्रभाव नहीं होता था। गीता के शब्दों मे वे 'जीवन मुक्त थे'।

महात्मा जी ने जो व्रत युवावस्था मे लिया उसे भलाभांति निभाया। कोई भी प्रलोभन उनको निश्चित मार्ग से विचलित न कर सका। ऐसे भी अवसर आये जब वह राजनीति मे भाग लेकर देश के नेता बन सकते थे, परन्तु उन्होंने अपनी गतिविधियों को पूर्ण रूप से कालेज व आर्य समाज की सेवा तक ही सीमित रखा। वह यही कहा करते थे कि मैं जाति के भवन की एक ईंट बनना चाहता हूं, नेता बनना नहीं चाहता।

आजकल तो प्रजातन्त्र का युग है, वास्तव मे इसमें बहुत से गुणों के साथ एक अवगुण यह भी है कि कार्य थोड़ा होता है और प्रचार अधिक। किसी योजना पर व्यय की जाने वाली राशि का एक विशेष भाग उसके प्रकाशन के लिए रखा जाता है। महात्मा जी ठोस व मौन काम में विश्वास करते थे।

'मुश्क आं अस्त कि खुद बगोयद न के अत्तार बगोयद।'

अर्थात् कस्तूरी वह है जो कि अपना परिचय आप दे न कि अत्तार बेचने वाला उसका ढिंढोरा पीटे। महात्मा जी दिखावे व प्रचार से दूर रहते थे।

महात्मा जी ने जहां विद्या का प्रसार किया, आर्य समाज के संदेश को भी फैलाया, वैदिक धर्म का प्रचार किया, वहां वह पीड़ित व दुखियों की सेवा के लिए भी सदा तत्पर रहते थे। जब कोई कष्ट देश पर आया, चाहे वह भूचाल के रूप मे हो या अकाल के रूप में, बाढ़ हो या अग्नि काण्ड, प्लेग की बीमारी हो या हैजे की या कोई अन्य विपत्ति आ पडे। महात्मा जी ने ऐसे समय मे लाखों पीड़ितों की बिना किसी भेद भाव के सेवा की। एक बात जो विशेष तौर पर देखने की है, वह यह कि वह सारी सेवा निष्काम भाव से, मानवता से प्रेम व कर्त्तव्यपरायणता के आधार पर की जाती थी। वह यश के लिए नहीं थी किसी निजी कार्य के लिए नहीं की जाती थी बल्कि इसका केवल प्रयोजन दुखियों व पीड़ितों का कष्ट निवारण था। संस्थाओं के चलाने व आपत्ति सेवा के कार्य मे जिस ईमानदारी, मितव्ययता से काम लिया जाता था उसकी हर छोटा बड़ा प्रशंसा करता था। पर सेवा का कार्य भी महात्मा जी की धर्म-भक्ति का ही द्योतक है।

वेद शास्त्र लिए हैं पढ़,
यही एक नुकता सूझता है।
करो दुःख दूर दुखियों के,
यही ईश्वर की पूजा है।

एक कवि ने कहा है कि आसमान वर्षों दिन रात चक्कर लगाता

(शेष पृष्ठ ५ पर)

सौंदर्य

(ले०-श्री कल्याण स्वरूप जी गुप्त बी ए. शिमला)

✤✤✤✤✤✤✤✤✤✤✤✤✤✤✤✤✤✤✤✤✤✤✤

* आज कल प्रायः सब पूर्वीय व पश्चिमीय देशों में सुन्दरता को प्राप्त करने के लिये तथा उसे स्थिर रखने के लिये नये से नये साधन नित्य प्रति ढूंढे जा रहे हैं। बालों को लम्बा करने, काला करने चमकाने तथा संवारने की सामग्री के बड़े-बड़े विज्ञापन प्रायः सब पत्र-पत्रिकाओं में देखने को मिलते हैं। इसी प्रकार चेहरे के लिये पाउडर व क्रीम होठों के लिये lipstick तथा त्वचा को मुलायम करने के लिये उबटना इत्यादि के बहुत से विज्ञापन यूरोपियन तथा अमेरिकन पत्रिकाओं में देखने को मिलते हैं। आज के युवक व युवतियां तो फैशन के पीछे भागे जाते हैं कपड़े व गहनों के नित नये फैशन बदलते दृष्टि-गोचर होते हैं। बहुत से देशों में तो मनुष्य व स्त्रियों को पतला करने के लिये Beauty clinic खुल गए हैं। देहली में भी तीन चार ऐसे clinic हैं। कई देशों में तो यहां तक नौबत पहुंच गई है कि राज्य की व्यवस्थापिका सभा के चुनावों में भी राय देते हुए आम जनता यह देखती है कि कौन-सा उम्मीद-वार सुन्दर है। सुना जाता है कि अमेरिका के वर्तमान राष्ट्रपति की सफलता का भी यही रहस्य है। ऐसा जान पड़ता है कि आज का संसार—क्या नौजवान क्या बूढ़ा, क्या मनुष्य क्या स्त्री सुन्दरता के पीछे पागल सा हो गया है।

मैं यह नहीं कहना चाहता कि सुन्दरता कोई बुरी वस्तु है। उस में आकर्षण है मन को प्रसन्न व मुग्ध करने की शक्ति है। प्रभु का स्वरूप बताते समय भी उपनिषत्कार ने "सत्यं शिवं सुन्दरम्" कहा है। प्रभु भी सुन्दर है उस में भी आकर्षण है मन को मुग्ध करने की क्षमता है। इसी लिये उसकी सृष्टि में इतनी सुन्दरता बिखरी हुई है। सूर्य में सुन्दरता है, चांद में सुन्दरता है, तारों में सुन्दरता है, उषा में सुन्दरता है, सन्ध्या में सुन्दरता है। नदियों मे व पर्वतों में सुन्दरता है, फल, फूल व पत्तों में सुन्दरता है। भिन्न-भिन्न प्रकार के जानवरों व पक्षियों में सुंदरता है। तितलियों के रंग-बिरंगे पंखों को देखो, विस्तृत नील गगन को देखो, अथाह समुद्र को देखो, इस सृष्टि में सब ओर सुंदरता ही सुंदरता बिखरी हुई है फिर सुंदरता को बुरा कौन कह सकता है।

मैं केवल यह कहना चाहता हूं कि प्रभु का स्वरूप बताते समय "सत्यं" व "शिवम्" को पहिले और "सुन्दरम्" को बाद में रखा गया है। हमें यह क्रम न भूलना चाहिए। प्रभु भी पहिले "सत्य" है उसके प्रत्येक कार्य में एक अटल नियम काम करता है, फिर वह "शिव" अर्थात् कल्याण स्वरूप है उसकी बनाई हुई प्रत्येक वस्तु जगत् के कल्याण के लिये रची गई है। बाद मे वह सुंदर स्वरूप है। यदि इस सृष्टि मे "सत्यं" व "शिव" न होते तो इस मे सुंदरता भी न होती। हम ने भी तो प्रभु के गुणों को अपने अन्दर धारण करके अपने आप को बड़ा करना है। सुंदरता के पीछे पागल होने से पहिले "सत्यं" व "शिवं" की ओर ध्यान देना आवश्यक है। जब प्रभु भी "सत्यं" व "शिवं" के बिना सुंदरम् नहीं हो सकता तो मनुष्य कैसे हो सकता है।

वर्तमान युग में हम सुंदरता की दौड़ में सत्य को दृष्टि से ओझल कर देते हैं। सच्ची अर्थात् स्वा-भाविक सुंदरता की ओर ध्यान न देकर कृत्रिम सुंदरता के लिये लालायित रहते हैं। शरीर की स्वाभाविक सुंदरता के लिये नियम पूर्वक स्नान तथा व्यायाम, नियमित आहार व व्यवहार, संयम के साथ विषयों का भोग अत्यावश्यक हैं। इन्हीं साधनों से शरीर के प्रत्येक अंग में सुंदरता रह सकती है। परन्तु इस भोग प्रधान युग मे नियम व संयम की बात करना एक दकियानूसी ख्याल समझा जाता है। ब्रह्मचर्य जिस से ओज व तेज बढ़ता है उसे अप्राकृतिक कहा जाता है। परंतु यह कहने वाले यह भूल जाते हैं कि भोगों को अधिक से अधिक व लम्बे समय तक भोगने के लिये भी संयम आवश्यक है। यदि मनुष्य चाहे कि वह अपने जीवन मे अधिक से अधिक खाद्य पदार्थों का भोग कर सके तो उसको नियमित भोजन करना पड़ेगा अन्यथा हाजमा खराब हो जावेगा बीमार हो जावेगा और अपनी इच्छा पूरी न कर सकेगा। विषय भोग मे भी सीमा को उल्लंघन करने वाले व्यक्ति शीघ्र ही भोग की शक्ति को खो बैठते हैं। यजुर्वेद ने "त्यक्तेन भुञ्जीथा" कह कर संसार की प्रत्येक वस्तु को भोगने के लिये त्याग व संयम को आवश्यक बताया है। वर्तमान युग भोग व त्याग का यह सुंदर सामञ्जस्य नहीं समझ सका। भोग व त्याग एक दूसरे के सहायक हैं एक दूसरे के विरुद्ध नहीं हैं। प्रत्येक व्यक्ति भोग चाहता है त्याग के बिना। यह सृष्टि नियम के विरुद्ध है, प्रभु के आदेश के विरुद्ध है।

अच्छा तो मैं कह रहा था कि शरीर की स्वाभाविक सुंदरता बनाए रखने के लिए कुछ नियम व संयम को अपनाना चाहिए। कृत्रिम साधनों की तभी आवश्यकता पड़ती है जब स्वाभाविक व सच्ची सुंदरता न रहे। कृत्रिम सुंदरता असत्य पर आधारित है, क्षणिक है। कुछ देर के लिये किसी को आकर्षित कर सकती है परंतु जब वह समीप आता है तो सत्य को जानकर दूर होने का यत्न करता है। यही मुख्य कारण है जिस से तलाक दिन पर दिन बढ़ता चला जा रहा है।

पुरुष व स्त्री की शारीरिक सुंदरता, स्वास्थ्य व कार्य क्षमता पर निर्भर है। सुंदरता शरीर पर ही समाप्त नहीं होती, उसके लिये वाणी, मन, बुद्धि व आत्मा भी सुन्दर होने चाहिए। इन में भी स्वास्थ्य व कार्य क्षमता होनी चाहिए। महाराजा भर्तृहरि ने "वाग्भूषणम् भूषणम्" विद्या नाम नरस्य रूपमधिकम्" "श्रीजस्येक भूषणं" इत्यादि पदों से वाणी विद्या व लज्जा को पुरुष व स्त्री की सुन्दरता का कारण बताया है। इन गुणों के होने से ही सुंदरता स्थायी हो सकती है तथा मानव समाज का कल्याण करने मे समर्थ हो सकती है। यही भाव "शिवम्" शब्द से प्रगट किया है।

सच तो यह है कि यदि हम "सत्यं" व "शिवं" का पालन करें तो "सुन्दरम्" तो स्वयमेव प्राप्त हो जावेगा। यदि खाली "सुन्दरम्" के पीछे भागे तो "दुविधा मे दोनो गए, माया मिली न राम" की उक्ति ही चरितार्थ होगी।

महात्मा हंसराज दिवस

सभा की ओर से प्रतिवर्ष की भांति इस बार भी स्वर्गीय महात्मा हंसराज जी का जन्म दिवस उनकी भूमि बजवाड़ा जिला होश्यारपुर में महामना श्री देवीचन्द जी एम ए. की प्रधानता में धूमधाम से मनाया गया। आर्यसमाज अनारकली नई देहली में भी समारोह से सम्पन्न हुआ। विस्तार से विवरण अगले अंक में पढ़िये। —सं०

(पृष्ठ ४ का शेष)

रहता है तब कहीं जाकर एक वास्त-विक मनुष्य का जन्म होता है। महात्मा हंसराज ऐसे ही एक महा-पुरुष थे। यह कहा नहीं जा सकता कि ऐसा त्याग तपस्या व धर्म-निष्ठा की साक्षात् मूर्ति कभी फिर भी पैदा होगी।

आदर्श आर्य्य समाजी महात्मा हंसराज

[लेखक—श्री भक्त राम जी (अफ्रीका वाले) जालन्धर]

आर्य्य समाज के संस्थापक महर्षि दया नन्द अपनी अमर कृति-'सत्यार्थ प्रकाश' के सप्तम समुल्लास में ईश्वर स्तुति का फल निम्नलिखित शब्दों में वर्णन करते हैं —

'इस का फल यह है कि जैसे परमेश्वर के गुण हैं वैसे गुण-कर्म्म-स्वभाव अपने भी करना। जैसे वह न्याय कारी है सो आप भी न्याय कारी होवे। और जो केवल भाण्ड के समान परमेश्वर के गुण कीर्त्तन करता जाता अपना चरित्र नहीं सुधारता उस की ईश्वर स्तुति व्यर्थ है।'

जिस प्रकार परमात्मा के केवल गुणानुवाद से कोई लाभ नहीं इसी प्रकार जिन महापुरुषों के दिवस (पर्व) प्रति वर्ष हम मनाते हैं उन दिव्यजनों के जीवनों से शिक्षा ग्रहण न करउन की स्तुति मात्र व्यर्थ है। यदि हम सत्पुरुषों के दिव्य गुणों को आचारान्वित नहीं करेंगे तो भाण्ड ही ठहरेंगे। खाली गीत गाना तो पर्य्याप्त नहीं।

स्वर्गीय महात्मा हंसराज जी का १९ अप्रैल को जन्म दिन मनाया गया। उस सरलता और और त्याग की मूर्ति की पुण्य स्मृति में उसी देवता द्वारा स्थापित आर्य्य प्रदेशिक प्रतिनिधि सभा का प्रसिद्ध पत्र 'आर्य्य' जगत प्रतिवर्ष अपना विशेषाङ्क निकाल कर सराहनीय कार्य करता है। व्यवस्थापक महोदय की ओर से मुझे भी उनके पुनीत जीवन पर एक लघु लेख-लिखने की आज्ञा हुई। उन गुणों के भण्डार उच्चात्मा के गुण गिनती में नहीं आ सकते। वह तपस्वी, त्यागी और निरभिमानी थे। धैर्य और नम्रता का सजीवचित्र थे और थे दीन दुखियों के सहायक।

आर्यसमाज होशियारपुर के वार्षिकोत्सवों पर मुझे उस तेजस्वी नेता के ओजस्वी व्याख्यानों को सुनने का शुभावसर प्राप्त होता रहा है। कैसी सुन्दर शैली थी उनके बोलने की। आभास क्या होता था मानो फूल झड़ रहे होते थे। अमृत बरसता था। एक वक्तृता में उस कर्मयोगी के मुखारविन्द से एक आख्यायिका सुनी थी जो निम्न प्रकार थी —

'वृक्ष हवा में लहलहा रहे थे जब कि किसी ने सूचना दी—'वृक्षो! प्रसन्न मत होओ। कान खोदी जा रही है एक समझदार दरख्त कहने लगा 'कोई चिन्ता नहीं। खूब हंसो और खेलो।' उसी व्यक्ति ने फिर आकर सूचित किया 'लोहा निकला है।' वही दरख्त बोला— (क्रमश)

अलावल पुर आर्य समाज की ओर से सनम्र निवेदन

मुझे आर्य समाज में प्रवेश हुए लगभग ५० वर्ष हो गए हैं लेकिन मैं कभी अधिकारी नहीं बना। तनमन धन से सेवा करता रहा। अब ३१. ३. ६२ के वार्षिक चुनाव में इच्छा न होते हुए भी मंत्री बना दिया गया हूं। अस्वस्थ रहने के कारण और परिस्थितियां प्रतिकूल होने के कारण पहले जैसी सेवा आर्य समाज की नहीं कर सकता। इधर नव युवक समाज में रुचि नहीं रखते निर्वाहार्थ अलावल पुर से बाहर जा रहे हैं। ऐसी दशा में रात दिन चिन्तित हूं कि समाज की किश्ती कैसे पार लगेगी? अत आर्य सज्जनों विद्वानों तथा आर्य युवकों से सहृदय से प्रार्थना करता हू कि वे मुझे हर समय सहयोग देकर मुझे उत्साहित करते रहें जिस से कि मैं इस महान कार्य को पूर्ण करने में समर्थ हो सकूं।

निवेदक — गुरुप्रसाद आर्य-सेवक—मंत्री आर्य समाज अलावल पुर।

आर्य समाज नैनी ताल (U. P)

का वार्षिकोत्सव २६ से २९ मई ६२ को बड़ी सजधज व उत्साह से मनाया जा रहा है। २१ से २५ मई तक श्री पूज्य महात्मा आनंद स्वामी श्री महाराज की कथा होती रहेगी। २६ से २८ मई तक आर्य प्रतिनिधि सभा उत्तर प्रदेश का साधारण अधिवेशन भी आर्य समाज नैनी ताल में होगा।

(२) नैनीताल के यात्री—

आर्य समाज नैनीताल की धर्मशाला में निवासार्थ उन्हीं महानु भावों को प्राथमिकता दी जाएगी जो पूर्ण आर्य विचारों के होंगे और किसी आर्य समाज से प्रमाणित होंगे तीन से पाच तक व्यक्तियों के निवास के लिए पृथक २ कमरे होंगे सभी व्यक्ति सपरिवार ठहर सकेंगे।

शिवसागर शर्मा वानप्रस्थी
संयुक्त मंत्री समाज

आर्यसमाज अखनूर

में ५ अप्रैल को आर्यसमाज स्थापना दिवस बड़े उत्साह से मनाया गया। प्रात.काल प्रभात फेरी निकाली गई। रात्री को समाज मंदिर के हाल में जलसा हुआ। जिस में बहिन वेद कुमारी जी M A. P. H. D. श्री भगवतीशरण जी, श्री जियालाल जी के भाषण हुए। समाज की ओर से श्री सूर्यभानु जी को वायस चासलर बनने की बधाई दी गई।

जियालाल मन्त्री समाज

(पृष्ठ २ का शेष)

सारा दृश्य दर्शनीय था। प्रचार की धूमधाम थी। पूज्य महात्मा आनन्द स्वामी जी महाराज का लिखा ट्रेक्ट कुम्भ का प्रसाद चालीस हजार की सख्या में सारे कुम्भ में बांटा गया। मोहन आश्रम वेद-लोक, सत्संग, आध्यात्मिकता का केन्द्र बना हुआ था।

आर्य प्रादेशिक सभा ने कुम्भ पर जो प्रचार का प्रबंध किय वह अति सराहनीय था।

आर्य कुमार सभा गुरुकुल भज्जर का

वार्षिक निर्वाचन ९ अप्रैल १९६२ को सम्पन्न हुआ। जिस में निम्न-लिखित पदाधिकारी चुने गये।

प्रधान : श्री पं बलदेव जी उप प्रधान श्री पं गंगाराम जी मन्त्री : श्री यज्ञवीर जी व्याकरण शास्त्री उप मन्त्री . श्री धर्म वीर जी व्याकरणा चार्य पुस्तकाध्यक्ष . श्री विश्वपाल जी व्याकरण शास्त्री सहायक यह : श्री चन्द्रपाल जी व्याकरणोपाध्याय कोषाध्यक्ष श्री देवपाल जी व्याकरण शास्त्री सहा० अध्यक्ष : श्री धर्म वीर जी व्याकरणाचार्य

—यज्ञवीर मंत्री सभा

आर्य समाज मंडी (H P) मार्च अप्रैल का प्रचार कार्य

२०. ३. ६२ श्री कर्म सिंह जी के जन्मदिवस उपलक्ष में उन के गृह पर यज्ञ और सत संग हुआ।

२५. ३. ६२. ला० बेसर राम जी की मृत्यु पर अंत्येष्टी संस्कार करवाया गया।

६ ४. ६२. ला० बालक राम जी के सुपुत्र का मुंडन संस्कार पं० रामा वत्सल जी और बा. फते सिंह जी ने वैदिक रीति से करवाया।

१९. ४. ६२. महात्मा हंसराज दिवस आर्य समाज मन्दिर में मनाया गया। डी० ए० वी प्राईमरी पाठशाला के विद्यार्थियों का सुन्दर कार्य क्रम हुआ। ला० दीना नाथ जी एडवोकेट आदि ने महात्मा जी को श्रद्धानजली दी श्री चेत राम जी ने कविता कही।

२०. ४. ६२. श्री अमर चन्द जी के सुपुत्र का मुंडन संस्कार श्री भ्राता के वल राम जी ने वैदिक रीति से करवाया।

—इन्द्र सिंह मंत्री समाज

दस नियमों का पालन करना आर्यों का धर्म है

सभा की समाजों के उत्सव प्रचार की धूमधाम
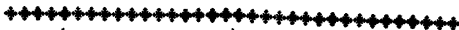
—आर्य समाज फाजिल्का का उत्सव २३ से २५ मार्च को धूमधाम से सम्पन्न हुआ। श्री पं. चन्द्र सेन जी की कथा और मा. ताराचन्द जी के भजन उत्सव से पूर्व होते रहे। उत्सव पर श्री प. त्रिलोक चन्द्र जी, श्री मेलाराम जी श्री हजारी लाल जी पधारे।

—आर्य समाज माडल टाऊन गुडगावां का उत्सव ३१ मार्च १-२ अप्रैल की धूम धाम से सम्पन्न हुआ। उत्सव से पूर्व खुशीराम शर्मा की कथा और श्रीराजपाल जी, मदनमोहन जी के भजन होते रहे। उत्सव पर पूज्य महात्मा आनन्द जी, प्रो. वेदी राम जी शर्मा एम.ए. श्री पं. चन्द्रसेन जी, श्री. मेला राम जी, श्री. हरि दत्त जी, आदि पधारे।

—आर्य समाज जलालाबाद—का उत्सव ६ से ८ अप्रैल को धूमधाम से सम्पन्न हुआ। पूर्व खुशीराम शर्मा की कथा और मा० ताराचन्द्र जी के भजन होते रहा। उत्सव पर श्रीमान् राजपाल जी, श्री मदनमोहन जी शिवचरण जी श्री प्रो. वेदी राम जी शर्मा पधारे।

प्रो. वेदी राम जी अध्यक्षता में युवक सम्मेलन हुआ। सम्मेलन का युवकों पर बड़ा प्रभाव पड़ा। वेदप्रचार के लिये थैली भेंट की गई।

—आ. स. जोगेन्द्र नगर का उत्सव ११ से १३ अप्रैल को धूमधाम से सम्पन्न हुआ। उत्सव से पूर्व श्री. ओंप्रकाश जी की कथा और गायत्री यज्ञ होता रहा। उत्सव पर श्री राजपाल जी मदन मोहन जी पधारे।

—आ. स. धरियाल का उत्सव २० से २२ अप्रैल को धूमधाम से सम्पन्न हुआ। उत्सव से पूर्व खुशी राम शर्मा की कथा और मा. ताराचन्द्र जी के मनोहर भजन होते रहे। उत्सव पर श्री पं० त्रिलोक चन्द्र जी, श्री प्रो. वेदीराम जी श्री पं० हरिश्चन्द्र जी, श्री मेला राम जी, श्री हजारी लाल जी, श्री रामकरण जी, महावीर जी, नत्थूराम जी पधारे।

—आ. स. लाजपत नगर सोनीपत का उत्सव २० से २२ अप्रैल को धूमधाम से सम्पन्न हुआ। उत्सव से पूर्व श्री प० ओमप्रकाश जी की कथा और राजपाल जी, मदनमोहन जी के भजन होते रहे। श्री पं० चन्द्रसेन जी के पुरुषार्थ से उत्सव सम्पन्न होता है। जगतराम जी, प० जयनारायण जी पधारे।

—आ स. बिजवाड़ा होश्यारपुर में १६ अप्रैल से १९ अप्रैल तक सभा की ओर से स्वर्गीय पूज्य महात्मा हंसराज जी का मेला धूमधाम से सभा की ओर से मनाया गया। स्थानीय गण्यमान्य महानु-भावों के अतिरिक्त श्री पं० त्रिलोक चन्द्र जी, श्री शिवचरण जी श्री मेलारम जी, श्री रामकरण जी की मंडली पधारी। यज्ञ और प्रचार प्रभावशाली हुआ। बा. महाराज कृष्ण जी, हैडक्लर्क सभा ने वहां सारा प्रबन्ध किया।

—अनाथालय करनाल का उत्सव ६ से ८ अप्रैल को धूमधाम से सम्पन्न हुआ। सभा की ओर से श्री प० चन्द्रसेन जी, श्री हजारीलाल जी, श्री रामकरण जी, महावीर जी, नत्थूराम जी मंडली पधारी।

—आर्य स्त्री समाज सदर बाजार करनाल का उत्सव १ से ५ अप्रैल तक धूमधाम से हुआ। भवन उद्घाटन भी किया।

समाज मंदिर में स्थापना दिवस भी समारोह से मनाया गया। इस कार्य को श्री पं. चन्द्रसेन जी, हजारीलालजी ने सम्पन्न किया।

—आ. स. दुहा का उत्सव ३०। ३१ मार्च १ अप्रैल को सम्पन्न हुआ। श्री अमरसिंह जी, श्री दुर्गा सिंह जी, श्री जयनारायण जी, श्री शमशेर कुमार जी, बस्ती राम जी, श्री पं० विश्वम्भर दत्त जी, पधारे।

—आ स. पजौड़ का उत्सव २९ से ३१ मार्च तक समारोह से सम्पन्न हुआ। शिवचरण जी, मेला राम जी, ताराचन्द्र जी, श्री हजारी लाल जी, पधारे।

—हरिद्वार मोहनाश्रम में सभा की ओर से श्री पं० त्रिलोकचन्द्र जी श्री. प अमर सिंह जी, श्री जगतराम श्री दुर्गा सिंह जी, श्री जयनारायण जी, श्री शमशेर कुमार जी, श्री बस्ती राम जी द्वारा १२अप्रैल तक धूमधाम से प्रचार किया गया। यज्ञ भी हुआ।

—आ. स. खन्ना का उत्सव २७, २८, २९ अप्रैल को सम्पन्न हो रहा है। उत्सव से पूर्व श्री ओंप्रकाश जी की कथा श्री हजारी लाल जी के भजन होते रहे। उत्सव पर श्री खुशीराम शर्मा श्री मा ताराचन्द्र जी ने भाग लिया।

—आ. स. कालेज विभाग फिरोजपुर शहर का उत्सव २७ से २९ अप्रैल को सम्पन्न हो रहा है। सभा की ओर से श्री प० चन्द्रसेन जी, श्री शिवचरण जी, श्री मेलाराम जी, श्री रामकरण जी मंडली श्री प्रो सत्य देव जी विद्यालंकार प० राम कृष्ण जी पधार रहे हैं। २४ ता से पं० त्रिलोकचन्द्र जी की कथा होगी।

—आ. स. माडल टाऊन जमुनानगर का उत्सव २७ से २९ अप्रैल को समारोह से सम्पन्न हो रहा है। गण्यमान्य महानुभाव पधार रहे हैं। श्री पं० त्रिलोकचन्द्र जी, श्री राजपाल जी श्री मदनमोहन जी, पं०अमरसिंह जी, का सारा सब मंडल पधार रहा है।

—आ. स. कालिज विभाग रोहतक का उत्सव ४ से ६ मई को समारोह से सम्पन्न हो रहा है। १ मई से श्री पं० त्रिलोकचन्द्र जी कथा और राजपाल जी, मदनमोहन जी, के भजन होंगे। उत्सव पर श्री खुशीराम शर्मा श्रीमान् प्रा वेदी राम जी, मेलाराम जी, भाग ले रहे हैं।

आ. स. गन्नौर का उत्सव ११ से १३ मई को सम्पन्न हो रहा है श्री मेलाराम जी, श्री पं० त्रिलोकचन्द्र जी पधार रहे हैं।

—आ. स. प्रेम नगर (करनाल) का उत्सव २५ से २७ मई को सम्पन्न हो रहा है। १८ ता. से कथा पं० ओंप्रकाश जी, करेंगे।

—आ. स. महयड़ का उत्सव ११ से १३ मई को सम्पन्न हो रहा है।

—आ. स. भड़ (रोहतक) का उत्सव १६ से १९ मई को सम्पन्न हो रहा है। श्री चौ. भूराराम जी, श्री प्रभु दयाल जी मंडली पधारेगी।

आ. स. रिवाड़ी का उत्सव १८ से २० मई को सम्पन्न हो रहा है। श्री राजपाल जी, प्रो. मदन-मोहन जी पधार रहे हैं।

खुल्दाबाद प्रयाग का उत्सव नवम्बर मे होगा। शेष अगले अंक में

खुशी राम शर्मा
अधिष्ठाता वेद प्रचार सभा

शोक समाचार

श्रीमान् ओंप्रकाश जी महोपदेशक सभा की सासू जी के निधन पर प्रचारक विभाग की ओर से सहवेदना और परिवार में मंगल कामना की प्रार्थना है।

खुशी राम शर्मा

पुस्तक समालोचना

दयानन्द जीवनी-साहित्य

लेखक—श्री पं० विश्वनाथ शास्त्री M. A. । प्रकाशक—भारतीय प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान २४/१९२ रामगंज अजमेर मूल्य [illegible] N.P., पृष्ठ संख्या २४ साइज १८×२२/८ पर। भूमिका लेखक श्री युधिष्ठिर जी मीमांसक (दयानन्द चरित, ऋषि दयानन्द के ग्रन्थों का इतिहास, आदि के लेखक) आप के हृदय में कितनी असाध श्रद्धा और भक्ति ऋषि के प्रति है यह इस पुस्तक के प्रकाशन से पता चलता है। हानि उठाते हुए भी आप ने इसे प्रकाशित कर ही दिया है। इस पुस्तक में, उन सभी प्रसिद्ध पुस्तकों का उल्लेख किया है जिन में ऋषि के सम्बन्ध में कुछ लिखा गया है। यह सूची शोधकर्ताओं तथा महर्षि के जीवन लेखकों के लिए अति उपयोगी सिद्ध होगी। पुस्तक के आरम्भ में महर्षि के जीवन साहित्य सम्बन्धी प्रमाणों व खोजों का भी विस्तृत वर्णन किया गया है। यह प्रकाशन सर्वतो रूपेण उपादेय होते हुए स्कूलों व कालिजों की लायब्रेरियों में स्थान पाने योग्य है।

भागवत-खंडन

अनुवादक—श्री युधिष्ठिर जी मीमांसक, प्रकाशक भारतीय प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान अजमेर मूल्य ५० N.P. पृष्ठ संख्या ८८ साइज १८×२२/८ पर।

यह पुस्तक स्वामी जी ने संवत १९२३ के लगभग संस्कृत में लिखी थी चिरकाल तक यह अप्राप्य रही। पं० युधिष्ठिर जी मीमांसक ने बड़ी खोज करके इस पुस्तक की अक्षरशः अनुवाद हिन्दी में किया है। पुस्तक में संस्कृत और उसका अनुवाद अविकला रूप से दिया है।

इस से स्वामी जी के दो विचार प्रकट होते हैं। पहला यह कि इस पुस्तक जी [illegible] गए थे। दूसरा स्वामी जी की कृतियों में सब से पहली रचना। इस में केवल कृष्ण भागवत पुराण का ही खंडन किया गया है। उसके बाद अन्य पुराणों के भी विरुद्ध आवाज उठाई गई थी। पुस्तक सर्वोपयोगी लाभकारी है।

वैदिक ज्ञान-प्रकाश

ले० मास्टर 'शांत' जी प्रकाशक आर्य युवक संघ १६५४ दरिबागंज देहली—७ मूल्य ३० N.P. साईज २०×३०/३२ पर।

पृष्ठ संख्या १२२ प्राप्ति स्थान—आर्य युवक संघ १६५४, कूचा दक्खिनी राय दरियागंज देहली—७ इसके अतिरिक्त देहली के बड़े-बड़े पुस्तक विक्रेताओं से प्राप्य है।

मास्टर शांत जी ने वैदिक ज्ञान प्रकाश, लिख कर वास्तव में गागर में सागर बंद कर दिया गया है। वैदिक ज्ञान का प्रकाश धर्म प्रेमियों की पिपासा को शांत कर देता है। पाठक थोड़ा सा समय लगाकर हृदय को शांत कर सकता है। ईश्वर, जीव, प्रकृति आदि गूढ़ विषयों को वाद विवाद के रूप में लिख कर सरल बना दिया है। इस लघु पुस्तिका की उपदेयता इसी से प्रकट है कि २००० का प्रथम संस्करण देहली में ही समाप्त हो गया है अब दूसरा प्रकाशन प्रकाशित हो रहा है। [illegible] फिर निराश न होना पड़े।

आर्यसमाज माडल टाउन यमुनानगर का

वार्षिकोत्सव २७-२८-२९-३० अप्रैल को हो रहा है जिस में आर्य समाज के बड़े-बड़े विद्वान भजनोपदेशक पधार रहे हैं। जिस के अन्तर्गत सांस्कृति सम्मेलन आर्य सम्मेलन व स्त्री सम्मेलन का आयोजन किया गया है।

एम. एल. [illegible], मंत्री

[illegible] भारतनगर गाजियाबाद

आर्य समाज भारत नगर (गाजियाबाद) की इस सार्वजनिक सभा को यह जानकर अत्यन्त दुःख हुआ कि दिनांक १३-४-६२ की रात्रि को मसूरिया रेलवे लेन गाजियाबाद में करतार से आई हुई एक बारात पर कुछ गुण्डों ने नृशंसता पूर्ण आक्रमण कर कई बारातियों को जिन में देवियां भी सम्मिलित थी बुरी तरह पीटा। उनके इस आक्रमण से आतंकित होकर अनेक महिलाओं ने आस-पास के मकान व दुकानों में शरण लेकर अपने प्राणों व सम्मान की रक्षा की।

यह सभा गुंडों के इस बर्बर कुकृत्य की निन्दा करते हुए सरकारी अधिकारियों से अनुरोध करती है कि अपराधियों को तुरन्त गिरफ्तार कर उन्हें कठोर दंड दें ताकि जनता में फैला हुआ आतंक दूर हो तथा इस प्रकार की दुर्घटनाओं की पुनरावृत्ति न हो।

इसकी प्रतिलिपि अधिकारियों को भेजी गई।

आर्यसमाज मेस्टन रोड कानपुर

का ८२वां वार्षिकोत्सव १ से ४ मार्च तक बड़ी धूमधाम से सम्पन्न हुआ। १ मार्च बृहस्पतिवार को नगर कीर्तन शहर के बड़े २ भागों से होता हुआ [illegible] में समाप्त हुआ। शुक्रवार से रविवार तक प्रात. ७॥ बजे से सायं ८॥ बजे तक प्रतिदिन व्याख्यान व भजन होते रहे।

विद्याधर सहायक मन्त्री आर्यसमाज

कन्या की आवश्यकता

३० वर्षीय सुशिक्षित स्वस्थ तथा सम्पन्न एक आर्य पंजाबी युवक के लिए, सुशील, शिक्षित, गृह कार्य में दक्ष आर्य वर्ण की आवश्यकता है आयु २५ वर्ष तक हो।

वर सुव्यवस्थित [illegible] कृषि, फलोद्यान, एवं [illegible] सम्पत्ति का मालिक है तथा [illegible] आय ६००० रु० है। पूर्व विवाह [illegible] मनोरोगी तथा गृहस्थ जीवन से अनुपयोगी होने से कानूनी रूप से मुक्त हो चुका है। कोई संतान नहीं। प्रथम पत्र में पूर्ण विवरण सहित। नीचे पते पर पत्र व्यवहार करें।

धर्मवीर शर्मा एडवोकेट 94 B B'ock श्री गंगानगर (राजस्थान)

आवश्यकता

एक माननीय अग्रवाल आर्य घराने की मैट्रिक पास और सिलाई, कढ़ाई कोर्स पास, घर के काम काज में निपुण आर्या सुशील कन्या के लिए आर्य घराने के अच्छे रोजगार सुशील लड़के का पता देने की कृपा करें। कन्या के माता-पिता अपनी कन्या का विवाह आर्य घराने में करना पसंद करते हैं। विवाह के इच्छुक सज्जन नीचे के पते पर पत्र-व्यवहार करें।

मन्त्री आर्यसमाज, [illegible] जिला जालंधर।

आर्यसमाज मोडलटोन गुड़गावां में

"मलिक बालीराम पुस्तकालय" का उद्घाटन करनल गोपालदास जी मल्होत्रा D.B.E. इन्स्पैक्टर जनरल सिविल हस्पताल यू.पी. (रिटायर्ड) के कर कमलों से ८-४-६२ को प्रातः १० बजे हुआ इस अवसर पर [illegible] साहब ने ४०० रु० दान दिया।

—त्रिलोकनाथ मंत्री समाज

मुद्रक व प्रकाशक श्री संतोष राज जी मंत्री आर्यप्रादेशिक प्रतिनिधि सभा पंजाब जालंधर द्वारा वीर मिलाप प्रैस, मिलाप रोड जालंधर से मुद्रित तथा आर्य जगत कार्यालय महात्मा हंसराज भवन निकट कचहरी जालन्धर शहर से प्रकाशित मालिक—आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा पंजाब जालन्धर

टैलीफोन न० ३०५७ [आर्यप्रादेशिक प्रतिनिधि सभा पंजाब जालन्धर का साप्ताहिक मुखपत्र] Regd No. P-1

एक प्रति का मूल्य १३ नये पैसे वार्षिक मूल्य ६ रुपये

वर्ष २० अंक १८) रविवार २४ वैशाख २०१८ — ६ मई १९६२ दयानन्दाब्द १३८ (तार-प्रादेशिक जालन्धर

वे द सू क्त य:

भाहि प्रदिशः चतस्रः

हे ज्ञानी ! भाहि-चमकें और चमका प्रदिश-दिशाएं चतस्रः-चारों हे विद्वन् ! अपने ज्ञान, आचार से चारों दिशाओं को प्रकाशित कर दे तेरी कीर्ति सारे विश्व में फैल जावे।

इन्द्र पृणस्व कुक्षी

हे इन्द्र ! राजन तथा विद्वन ! पृणस्व-भर ले पूर्ण कर ले कुक्षी-दोनों कोखों को जैसे मनुष्य भोजन से अपनी कोखें भर लेता है उसी प्रकार से राजा अपनी कोखें कोष व ज्ञान से भरे। विद्वान विद्या व बल से अपना जीवन कोष भर लेवे।

ससहे शत्रून मदे

वीर राजा इन्द्र ससहे-दबा लेता है शत्रून-सारे शत्रुओं को मदे-अपने बल साहस में। वीर शासक शक्ति से राष्ट्ररिपुओं को, ज्ञानी विद्वान् ज्ञान विरोधियों को अपने ज्ञानबल से पराजित करता है। स्वयं अजित हो उन्हें जीत लेता है।

अ थ र्व वे द से

वे दा मृ त

प्रजापते न त्वदेतान्यन्यो विश्वा जातानि परिता बभूव।
यत्कामास्ते जुहुमस्तन्नो अस्तु वयं स्याम पतयो रयीणाम्॥

ऋ० १०-१२१-१०

अर्थ—हे (प्रजापते) सब प्रजा के स्वामी परमात्मा (त्वत्) आप से (अन्य) भिन्न दूसरा कोई (ता) उन (एतानि) इन (विश्वा) सब (जातानि) उत्पन्न हुए भूगोल आदि जगत् को बनाने हारा और (परिता) व्यापक (न) नहीं (बभूव) है (ते) उस आप के भक्ति करने हारे हम चेतनादिकों को (न) नहीं (परिबभूव) तिरस्कार करता है अर्थात आप सर्वोपरि हैं। (यत्कामा) जिस २ पदार्थ की कामना वाले होके हम लग भक्ति करें (ते) आपका (जुहुम) आश्रम लेवें और वांछा करें (तत्) वह कामना (नः) हमारी सिद्ध (अस्तु) होवे जिस से (वयम्) हम लोग (रयीणाम्) धनैश्वर्यों के (पतयः) स्वामी (स्याम) होवें। (दयानन्द भाष्य)

भाव—हे प्रजानाथ ! आपके सिवाय और कौन है जो इस विश्व के पदार्थों की रचना कर सकता है ? आप ही सर्वव्यापक होकर अणु २ परमाणु २ मे रम रहे हो। इस महान् सूर्यमण्डल को और कौन बना सकता है, धारण करके इतने कमाल के नियम में चला सकता है ? क्या मजाल कि नक्षत्रों की गति मे एक पल भर का कभी अन्तर पड़ जाये। इनका आपके सिवाय दूसरा कौन नियामक, चालक और धारक हो सकता है ? हम आपके हैं और आपके ही बने रहें।

हे अंग ! हमारी जो भी मन की कामना है, जो भी शुभ मनोरथ हो—देव ! अनन्त भण्डारों से भर दो ! वह पूर्ण हो जावे। हम धनी सम्पन्न बन कर समाज सेवा के पवित्र कार्य में लगातार जुटे रहें। आपकी भक्ति का प्रसाद हमें मालामाल कर दे—सं०

ऋषि दर्शन

वीर्यवदनन्तबलवत्

वह भगवान वीर्यवन् वीर्य पराक्रम वाला और अनन्त बलों वाला है। उसकी शक्तियां अनन्त हैं। उसके समान कौन इतने बलों, शक्तियों वाला हो सकता है।

बन्धना वरणविमुक्तम्

वह परमेश्वर सब प्रकार के बन्धन और आवरण से विमुक्त रहित है। उस ब्रह्म में प्रकृति, शरीर, कर्म आदि का किसी प्रकार का भी बन्धन नहीं है। भगवान् सदा बन्धन शून्य, मुक्त है।

नैव तत्पाप युक्तम्

वह परमात्मा पाप में कभी लिप्त नहीं होता। शरीर रहित होने से पाप कैसे हो सकता है। वह सदा अजन्मा अजर और अमर है। उसे कोई पाप भी छू नहीं सकता। ब्रह्म आकार से रहित निराकार और अमूर्त है।

भा ष्य भू मि का

सम्पादक : त्रिलोक चन्द्र शास्त्री

अधिष्ठाता—संतोष राज मंत्री सभा

सत्य और असत्य की समस्या

(ले० श्री आत्माराम जी पुरोहित आर्य समाज सेक्टर ८ चंडीगढ़)

असत्य आश्रय की सृष्टि में कई बार अनेक उदाहरण दिये जाते हैं। एक तपस्वी आकर किसी के आश्रम में आश्रय लेते हैं। पीछे से आकर एक हत्यारा पूछता है 'वे कहां हैं?' आश्रमवासी उसका क्या उत्तर दे? आर्य कन्या महाविद्यालय में व्याख्यान के उपरान्त दो कन्याओं ने उठकर प्रश्न कर दिया जो प्राय सर्वत्र होता है 'एक गाय या संन्यासी कुटिया में प्रवेश करे और पीछे लगा हुआ हत्यारा हाथ में छुरा लिये हुए प्रश्न करता है' बताओ, गाय व साधु कहां हैं?'

ऐसे प्रश्नों का समाधान कई प्रकार से किया जाता है। एक तो यह कि आप मौन रहें। न हां करें न ना करें। दूसरा यह कि आप कहदें कि 'यहां नहीं है।' क्योंकि झूठ बोलकर भी इन्हें बचाना हमारा धर्म है। जब यह कहा जाता है कि ऐसा करना सत्य के विपरीत है तो उत्तर देते हैं नीतिवाक्यों का आधार लेकर।

आईये, समाधान के दोनों पहलुओं पर विचार करें। जहां तक प्रथम समाधान का सम्बंध है बात सीधी और स्पष्ट है। मौन रहने वाला सीधा असत्य बोलकर नरकगामी नहीं होना चाहता वह शरणागत के प्राण तो बचाना चाहता है परन्तु सत्य के लिये अपनी जान जोखम में नहीं डालना चाहता। असत्य का भाव उसके अन्त:करण में है पर वाणी से प्रकट करने में हिचकिचाहट है। एक ओर शंका है उस के प्राण जाने की और दूसरी ओर शंका है मिथ्या भाषण के पाप की। वहां पाप का भागी मन तो बन ही चुका। यदि हत्यारा सबल है तो दाल में काला समझकर चुप्पी बाबा की ही गर्दन पकड़े तो अपने प्राण जाते देख वह बाबा कह देगा कि 'भाई मेरी जान मत लो। जाओ तुम्हारा शिकार वहां है।' ऐसा व्यक्ति नीतिवाक्य का आश्रय लेकर कह देगा कि अब तुम्हारे प्राणों पर आ बने तब सब कुछ कर लो। अपने को बचालो।

यह है उपहास, जो सत्य जैसे पवित्र धर्म के साथ आये दिन किया जाता है। उन आर्यसमाजियों की ओर से भी आचार्य ने यह कहा है कि भूखकी चाहे भूखा मर जाये परन्तु अधर्म तथा असत्य से धनसंग्रह कभी न करे। अपनी कथनी और करनी के द्वारा आजीवन कभी सत्य का आश्रय छोड़कर मिथ्यावाद फैलानेवाली कूटनीति का सहारा दयानन्दाचार्य ने कभी नहीं लिया। आर्यत्व वह ऊंची वस्तु है, पग २ पर झूठ का सहारा लेने वाले व्यक्ति जिसे कभी प्राप्त नहीं कर सकते। ऋषि-दयानंद ने वैदिक-संस्कृति के विराट् और विशुद्ध रूप को व्यक्त करते हुए सत्य-धर्म की रक्षा का जो राजमार्ग खोला है उसके लिये युगों तक ऋषि की कीर्ति सूर्यवत् मानवता को प्रकाश देती रहेगी।

ऋषि लिखते हैं 'मनुष्य उसको कहना जो मननशील होकर स्वात्मवत् अन्यों के दु:ख-सुख और हानिलाभ को समझे, अन्यायकारी बलवान् से भी न डरे और धर्मात्मा निर्बल से भी डरता रहे। इतना ही नहीं किन्तु अपने सर्व सामर्थ्य से धर्मात्माओं की, चाहे वे महाअनाथ, निर्बल और गुणरहित क्यों न हों, उनकी रक्षा, उन्नति और प्रियाचरण, और अधर्मी चाहे चक्रवर्ती सनाथ, महाबलवान् और गुणवान भी हो, तथापि उसका नाश, अवनति और अप्रिय आचरण सदा किया करे, अर्थात् जहां तक हो सके वहां तक अन्यायकारियों के बल की हानि और न्यायकारियों के बल की उन्नति सदा किया करे। इस काम में चाहे उसको कितना ही दारुण दु:ख प्राप्त हो और प्राण भी भले ही जावें, परन्तु इस मनुष्यरूप धर्म, से पृथक् कभी न होवें।' पर यहां तो छाई हुई झूठी नीतिमत्ता ने आर्य समाज को इस पवित्र ऋषि-मार्ग से कोसों दूर कर दिया है।

प्रश्न ऋषि के स्तवन का नहीं उनकी शिक्षाओं और आदर्शों को जीवन-सूत्र में पिरोने का है। सत्य और धर्म की दुहाई देने का क्या अर्थ जब हमारे सत्याग्रहों में भी 80/- प्रतिशत से अधिक गुजारा असत्य से चलता है। अन्य आन्दोलनों व प्रतिदिन के कार्यों की तो बात ही क्या है? ऐसी घिकौनी स्थिति नीचे से ऊपर तक क्यों हो गई? क्या इस पर विचार करने की आवश्यकता नहीं है? यदि नहीं तो नि:संदेह यह आत्महत्या होगी।

हम यदि यह कहते हुए नहीं रुकते कि कांग्रेसी गान्धी जी का नाम लेकर आचरण से गान्धी जी को दूर रख रहे हैं तो दूसरों को भी तो यह कहने का अधिकार है कि आप भी तो ऋषि का नाम लेकर आचरण से उनकी शिक्षाओं के विपरीत जा रहे हैं। गान्धी ने तो सत्याग्रहियों के फलों के टोकरों पर टूटते हुए हाथ जोड़ दिये थे 'कि बाबा जाओ, तुम जैसे सत्याग्रहियों से तो मैं अकेला ही अच्छा।' हमारे करतूतों को देखकर तो इतना करनेवाला भी कोई नहीं है।

अस्तु! जब यह स्पष्ट है कि चुप रहनेवाला किसी भी हालत में न बचेगा तब उसे सत्य पर अटूट विश्वास रखते हुए साहस के साथ हत्यारे से साफ कहना चाहिये 'हां इधर है। हिम्मत है तो आओ।' दूसरा मार्ग है विनय का। 'यह शरणागत प्राणी अब मेरा हो गया है। इसे क्षमा करो और मुझे दान दो।' ऋषि दयानंद ने एक निश्चित विचार दिया है' सब काम धर्मानुसार अर्थात् सत्य और असत्य को विचार करके करने चाहियें।' स्व या पर के त्राण या रक्षण के लिये जब हम सत्य का त्याग करके असत्य का आश्रय लेते हैं तो हम यह भूल जाते हैं कि देह और धन नाशवान् हैं और वे किसी भी क्षण दुर्घटना अथवा रोग से भी नष्ट हो सकते हैं। असत्य का आश्रय लेते हुए हम यह भी भूल जाते हैं कि हम सत्यस्वरूप और सर्वशक्तिमान् भगवान् के उपासक हैं और हैं उन पूर्वज आर्यों अनुयायी जिन की दृष्टि में सत्य की सिद्धि के लिये असत्य का प्रयोग सर्वदा हेय रहा है। किन्तु जिन के साथ परमेश्वर का आशीर्वाद सदा रहा है और युगों तक रहेगा।

अत सत्य और असत्य की समस्या का तत्सम्मत समाधान यही है कि किसी भी अवस्था में असत्य का आश्रय न लिया जाये। सत्य से प्राप्त हानि, मृत्यु या पराजय असत्य से प्राप्त लाभ, जीवनरक्षा वा विजय से कहीं अधिक श्रेयस्कर और गौरवशाली है। यही शिक्षा है ब्रह्मा से जैमिनी तथा दयानंद पर्यन्त सभी ऋषियों की। सत्यमेव जयते नानृतम्।

आर्य समाज लक्ष्मणसर (अमृतसर) का प्रस्ताव

रविवार २९-४-६२ को सर्वसम्मति से स्वीकार किया गया, जिस में पंजाब सरकार की ओर से हायर सैकण्डरी स्तर तक सह शिक्षा की प्रस्तावना और इसके लिये बनाई गयी ९ सदस्यों की उपसभा का विरोध किया गया, क्योंकि सह शिक्षा की प्रणाली वैदिक सभ्यता के सर्वथा विरुद्ध तथा लड़के और लड़कियों के आचार के लिये अत्यन्त घातक है। इसे निचली श्रेणियों में भी बन्द करने की मांग की गयी।

रुद्रदत्त शर्मा
(प्रधान) समाज

सम्पादकीय—

आर्य जगत्

वर्ष २२] रविवार २४ वैशाख २०१८, ६ मई १९६२ [अंक १८

महात्मा हंसराज दिवस

सर्वमेधी स्वर्गीय महात्मा हंस राज जी जैसे जीवन देवता आर्य समाज तथा सारे राष्ट्र की भावन विभूतियां हैं जिन से भारत सदा गौरवमय रहा है और रहेगा। महात्मा जी का जीवन एक प्रकाश स्तम्भ का सा प्रदीप्त जीवन है। नानाविध ज्योति की रश्मियां निकल कर अनेक जीवनों को प्रकाशित कर देती हैं। सारा समाज ऐसे जीवन दानियों का बड़ी श्रद्धा से इस लिए महान् स्मृति दिवस मनाता है ताकि आज का जन मण्डल अपने सामने उन का आदर्श, पथ, नियत सिद्धांत तथा विचार बिन्दु सामने रखे। पूज्य महात्मा जी ने अपने आप ही निर्धनता, त्याग, सेवा का मार्ग चुना। भारत में सब से पहिली दयानंद एंग्लो वैदिक कालेज जैसे विशालसंस्थान के लिए अपना जीवन दे दिया। सर्वस्वदानी बन गये। दयानंद कालेज की पुनीतधारा का प्रवाह सारे देश में प्रवाहित् किया। हजारों नहीं लाखों छात्र छात्राओं ने उस में स्नान किया और कर रहे हैं उस सर्वमेधी को नमस्कार करते हैं!

प्रति वर्ष सारे समाजों मे महात्मा हंसराज स्मृति दिवस धूमधाम से मनाया जाता है। आर्य प्रादेशिक सभा पंजाब जालंधर की ओर से तो उन के जन्मस्थान बजवाड़ा जिला होश्यारपुर में बड़े ही समारोह से सम्पन्न होता है कई दिन पहिले यह हवन, कथा प्रचार होता है। ता. १६ अप्रैल बजवाड़ा के सारे नगर में भारी समारोह होता है। सभा के सज्जन, होश्यार पुर के नेता प्रेमी नर नारी वहां जाते हैं विवरण तो अगले सप्ताह दिया जायगा। अन्य समाजों में भी समारोह से मनाया जाता है। आर्य समाज अनारकली नई देहली में भी यह दिवस बड़े ही विशेष ढंग उत्साह से सम्पन्न होता है। भारी भीड़ इस दिवस में इकट्ठी होती है। देश के नेता श्रद्धाञ्जलियां भेंट कर के जनता को महात्मा जी के जीवन पथ पर चलने का सन्देश दिया जाता है। आर्य समाज चण्डी गढ़ राज धानी में यह समारोह मनाया जाता है। जालन्धर की सारी समाजें मिल कर मनाती हैं। इस प्रकार से यह दिवस सर्वत्र मनाया जाता है बड़ी प्रसन्नता होती है।

हम उसी पथ पर चलते रहें जिस का प्रदर्शन स्वर्गीय महात्मा जी ने किया। आर्य प्रदेशिक सभा उन के जीवन की बड़ी स्मृति है। इसे स्थापित किया, पौधे की रक्षा की, पानी दिया। उन के साथ २ और बाद इस वृक्ष को पूज्य महात्मा आनंद स्वामी जी महाराज तथा सभा के मान्य महानुभाव कर्णधारों ने सींचा और सींच रहे हैं हमारा कर्त्तव्य है कि स्वर्गीय महात्मा जी का जीवन प्रकाश लेते हुए उनके इस स्मारक को तन मन धन से सींचते रहें। सभा का यह खूब फल फूल रहे। आर्यो! उस देवता का स्मृति दिवस मनाते हुए संकल्प करो कि इस सभा को तन से मन से और धन से सबल सशक्त बना देंगे। सब से बड़ी श्रद्धाञ्जलि यह है। सभा आगे बढ़ती रहे। इसे किसी बात की न्यूनता न रहे। यह माता है। इसकी हरप्रकार से सेवा सत्कार होता रहे। आओ! जीवन में इस माता की सेवा का संकल्प ले कर जो भी इस के लिए देसकते हैं देवें।

—त्रिलोक चन्द्र

सरल जीवन

(ले०—श्री राम विचार जी आर्य एम० ए० हिसार)

सरल जीवन से मेरा अभिप्राय है आडम्बर हीन जीवन। जीवन का विश्लेषण यदि हम स्थूल दृष्टि से करें तो इसे दो पक्षों में विभाजित कर सकते हैं। एक जीवन का बाह्य पक्ष और दूसरे आन्तरिक पक्ष इस लेख में मेरा संकेत जीवन के बाह्य पक्ष की ओर है। आज के भारतीय युवक का जीवन नहीं रहा उस में आडम्बर, सजावट और बनावट का समावेश होता जा रहा है। क्या वेष-भूषा की दृष्टि से और क्या रहन-सहन की दृष्टि से भारतीय युवक चमक-दमक और तड़क-भड़क की दलदल में फंस रहा है। इस आक्षेप के समाधान के लिए यह उत्तर दिया जाता है कि इस प्रकार का जीवन-यापन आडम्बरमय नहीं है अपितु यह तो Standard of Living को ऊंचा करना है। यदि तात्विक दृष्टि से इस पर विचार किया जाए तो इस से जीवन का स्तर महर्षि दयानन्द जी ने सत्यार्थ प्रकाश में यही लिखा है कि इस तड़क-भडक को अपनाने से विषयासक्ति और देहाभिमान उत्पन्न होते हैं। हमारे प्राचीन ऋषियों का बाह्य-जीवन अत्यन्त सरल और सादा था। उनके जीवन में किसी प्रकार की टीप-टाप का समावेश नहीं था। आधुनिक भारत ने भी ऐसी विभूतियां उत्पन्न कीं। इन राष्ट्र नायकों का जीवन कैसा सरल था। आज यह बाह्याडम्बर और यह चमक-दमक हमारे राष्ट्र के युवकों के विचारों को अत्यन्त दूषित कर रही है। वस्तुतः की अनावश्यक सज-धज और शरीर के शृंगार की दूषित प्रवृत्ति आज युवक मण्डल का महान ह्रास कर रही है। जीवन का महत्त्व और गौरव केवल सजावट और बनावट से ही न हो कर विचारों की शुद्धता और पवित्रता पर निर्भर होता है जितने ही विचार उत्कृष्ट हों उतना ही व्यक्ति का व्यक्तित्व महान होता है। व्यक्तित्व (Personality) के विषय में भी एक महान भ्रान्ति आज युवक समुदाय में फैली हुई है। आज का युवक केवल बाह्य शारीरिक सौन्दर्य और असौन्दर्य को ही व्यक्तित्व की उच्चता और नीचता का माप-दण्ड माने हुए है। आर्य कुमार परिषद के सदस्यों से हमारा विनम्र-निवेदन है कि वे अपने जीवन को सरल बनायें। अपने दैनिक जीवन में सरलता का समावेश करें और अपने जो मित्र हैं उन को भी इसी विचारधारा से प्रेरित एवं प्रभावित करें ताकि वर्तमान भारतीय युवक उत्कृष्ट जीवन के वास्तविक रहस्य को समझ सकने में समर्थ हो सकें।

तपोवन देहरादून

अध्यात्मवाद के प्रेमी साधकों के लिए देहरादून का तपोवन वैदिक साधनाश्रम कितना भव्य प्रशान्त, एकान्त, सुन्दर स्थान है? यह वही जानते हैं जो एक बार भी उस आश्रम में हो आये हैं। प्रतिवर्ष वहां जो महान् योग, ब्रह्मचिन्तन का समारोह होता है। सारे भारत व वर्मा आदि बाहिर से भी बड़े परिवार योगसाधन के लिए वहां आते हैं, उसे देख सुन कर मनुष्य रस विभोर हो जाता है। पूज्य महात्मा आनंद स्वामी जी महाराज की देखरेख में जो वार्षिक ब्रह्मशिविर चलता है-इस बार कितना भव्य दृश्य था-इसका विवरण वहां के एक दर्शक जिज्ञासु द्वारा देखा लिखा अगले सप्ताह पढ़ें।

—सं०

दीप से दीप जले

(ले०—प्रिंसिपल जयदेव जी डी ए. वी स्कूल कादियां)

◆◆◆◆◆◆◆◆◆◆◆◆◆◆◆◆◆◆◆◆◆◆◆

ओ३म् तमसो मा ज्योतिर्गमय

वेद की इस सूक्ति में भगवान् ने मानव समाज को आदेश दिया है कि हे 'मनुष्यो अन्धकार को छोड़ कर प्रकाश की ओर बढ़ो।' अन्धेरे में चोर, डाकू तथा ठगों का राज होता है। अन्धकार में घूमने वाला यात्री अपना सर्वस्व लुटा बैठता है। किन्तु जहां पर प्रकाश की रश्मियां प्रत्येक वस्तु को आलोकित कर रही होती हैं वहां मनुष्य अभय विचरण कर सकता है। वहां पर चोर, डाकू तथा शत्रु और साप आदि हिंसक जन्तुओं से सतर्क रहता हुआ आत्म रक्षा के साधन जुटा सकता है। अन्धेरे मे तो उसे इन का आभास भी नहीं हो सकता। अन्धकार अज्ञान का प्रतीक और अज्ञान पाप का मूल है। संसार में बहुत से पाप तो केवल अज्ञानता के कारण होते हैं। जरा अपने दैनिक जीवन पर दृष्टिपात कीजिए। घर मे नौकर ने प्लेट तोड़ दी। हमें क्रोध आ गया। तत्काल छड़ी उठाई और उस पर चला दी। छड़ी की नोक नौकर के माथे पर लगी। लहु लुहान हो गया। हम सोचते हैं कि हम ने यह क्या कर डाला। जरा सोचिए। क्रोध के बादल उठे और उन्होंने हमारी बुद्धि को ग्रस लिया। हम सर्वथा विवेक हीन हो गए। अज्ञानी बन गए और आवेश में आकर छड़ी उठा मारी। लहु देखा, एक झटका लगा। अज्ञान के बादल छिन्न-भिन्न हुए। विवेक जागृत हुआ और हमें पश्चात्ताप होने लगा। मैंने मूर्खता की है। जब तक अज्ञानी बने रहे हमें धर्म-अधर्म, सत्य-असत्य, कर्तव्य-अकर्तव्य तथा दोस्त और दुश्मन की कोई पहचान न रही थी।

महर्षि दयानन्द जी सरस्वती जब गुरु-आज्ञा से कार्य क्षेत्र में, निकले तो मानवता के सच्चे वैद्य के रूप में उन्होंने समाज के रोगी शरीर का गहन निरीक्षण किया। पदे-पदे विधवाओं, अनाथों तथा बेकसों का चीत्कार, अछूतों तथा स्त्रियों की दीन दशा और पाखण्ड तथा आडम्बर के रोग मुंह बाए खड़े थे। वह कुशल वैद्य इन सब रोगों द्वारा उत्पीडित, समाज के जर्जर ढांचे को देख कर घबराया नहीं अपितु उसे निरोग बनाने के लिए कटिबद्ध हो गया। उसने देखा कि इन सब रोगों की जड़ अज्ञानता है। इसका इलाज होने से समाज निरोग बनेगा। अज्ञान का अन्धकार फैल रहा था। अन्धकार में यदि रोग के कीटाणु न फैलेंगे तो और क्या होगा। योगीराज ने घोर तप किया। प्रभु की आशीर्वाद लेकर कूद पड़े कार्य क्षेत्र में। वेद-भानु उदय हुआ। अज्ञान-तिमिर दूर हुआ। समाज के शत्रु जो धार्मिकता के बहाने प्लेग के पिस्सुओं की तरह इसका रक्त शोषण कर रहे थे, सामने आ गए। द्वंद्व का श्री गणेश हुआ। बालब्रह्मचारी अकेला था। शत्रु घनेरे थे। किन्तु विजयी हुआ। बालब्रह्मचारी ऋषि दयानन्द ने प्रज्ञाचक्षु गुरु विरजानंद से प्राप्त विवेक रूपी तर्कश से निकाल-निकाल कर युक्ति के धनुष पर चढ़ा २ कर तर्क के वे तीर चलाए कि विपक्षियों में भगदड़ मच गई। ईसाई इंजील, मुसलमान कुरान और पौराणिक अपने पुराण लेकर उठ भागे और अपने २ ग्रन्थों के भाष्य दयानंद की मान्यताओं के प्रकाश में करने लगे। अज्ञान का अंधकार दूर हुआ। ज्ञान का सूर्य चमक उठा। वैदिक विचारधारा का प्रसार होने लगा। समाज सुधार की पावन धारा बहने लगी। भारत का तो नक्शा ही बदल गया। और विदेशी विद्वानों ने तो यहां तक कह डाला कि दयानंद ने भारत में वह आग सुलगा दी है कि अब अधिक देर तक भारतीयों पर कोई विदेशी सत्ता अपना शासन नहीं जमा सकती।

कौन सा क्षेत्र है जिस में दयानन्द ने सुधार नहीं किया था। सब मोर्चों पर वह वीर सेनानी एकाकी लड़ा। वीरवर लेखराम, पूज्यपाद स्वामी श्रद्धानन्द, पंजाब केसरी ला० लाज पत राए जैसे वीर इसी सेनानी की देन थे।

महर्षि दयानन्द ने वेद प्रचार की यह मशाल आर्य समाज के हाथ में दी। दीप जला। हृदय से हृदय में ज्ञान प्रविष्ट हुआ। धार्मिक, समाजिक तथा सांस्कृतिक जागृति का एक उज्वल विहान उदय हुआ। स्थान २ पर स्कूल, कालेज, गुरुकुल तथा विद्यालय खुले। अनाथालय, विधवा आश्रम, सन्यास आश्रम आदि अनेकों संस्थाओं ने समाज के उत्पीड़ित अंग की पीड़ा का हनन किया। विधवा विवाह जारी हुए, बाल-विवाह बन्द हुए। वर्णाश्रम का प्रचलन हुआ। लोगों में वेद के प्रति आस्था बढ़ी दिगम्बर, परम सुधारक महर्षि दयानन्द की जय कार से गूंज उठा। आज का यह युग दीवाली १८८६ के उस युग की भान्ति जगद्गुरु दयानंद की याद दिलाती हुआ हमें अपने कर्त्तव्यों की ओर संकेत करती है।

राष्ट्र प्रणेता योगीराज भगवान् दयानन्द वेद ज्ञान की ज्योति से हमारे बुझे हुए बौधिक जीवन को जला कर अपना जीवन-दीप विलीन कर गए। दीप से दीप जलता है। ज्ञान से ज्ञान बढ़ता है। प्रभु हमें सामर्थ्य दें कि हम भी वेद ज्योति को लेकर दीवानों की तरह निकलें और जोत से जोत जला कर संसार में बढ़ रहे अनाचार, भ्रष्टाचार तथा अन्यकुकर्मों का उन्मूलन कर सकें। शांति।

आर्य कुमार सभा, आर्य हाई स्कूल मंडी फूल जिला भठिण्डा का चुनाव

निम्नलिखित सदस्य चुने गए हैं। प्रधान श्री राम साहन्नी दशम कक्षा उपप्रधान श्याम लाल शर्मा मंत्री राजे कुमार गर्ग उपमंत्री विनोद कुमार कोषाध्यक्ष सुदर्शन कुमार प्रधान सूर्य प्रकाश साहन्नी निवेदक तरसेम चन्द संयोजक देव राज सिंगला पुस्तकाध्यक्ष घनश्याम दास डालमियां मुख्य सदस्य अशोक कुमार नवम श्रेणी। अध्यक्ष

गौरीशंकर शास्त्री।

आर्य प्रादेशिक उप सभा देहली का अप्रैल मास का प्रचार कार्य

1 से 5 अप्रैल तक आर्य समाज मस्जिद मोठे में श्री पं. हरि दत्त जी ने सफल प्रचार किया। इस समाज को पुनः जीवित किया गया है।

आर्यसमाज जंगपुरा विस्तार का उत्सव 6.7.8. अप्रैल को धूमधाम से सम्पन्न हुआ श्री. पं. भगवत दत्त जी डा. धर्मदेव जी के प्रभाव शाली व्याख्यान हुए।

आर्यसमाज पुलबंगश के दैनिक सत्संगों में पं. सुखानंद जी शास्त्री के मनोहर उपदेश होते रहे।

आर्य समाज नेता जी नगर में रामनवमीके शुभ अवसर पर9से13 अप्रैल तक प. सुखानंद जी शास्त्री व पं. हरि दत्त जी ने रामायण पर विचार धारा रखी।

आर्य समाज शकर बस्ती का उत्सव 20.21.22. अप्रैल को सम्पन्न हुआ। प. जगदीश चन्द्र जी शास्त्री, प. देस राज जी, प. हरि दत्त जी पधारे।

राज कुमार मंत्री सभा

(पृष्ठ ५ का शेष)

और देश के युवक आज से ४ गुणी तेजी से मृत्यु की ओर भागना आरम्भ कर देंगे। प्रत्येक आर्य-समाज का कर्तव्य है कि वह नेताओं को बता दे कि ये सांप कितने विषैले हैं ताकि विष के असर कर जाने पर वे यह न कहें कि ओहो हमें सांप के इन विचारों का पता नहीं था।

सम्पादकीय—

आर्य जगत्

वर्ष २२] रविवार ३१ वैशाख २०१८, १३ मई १९६२ [अंक १९

यह देवासुर संग्राम

भारत के इतिहास में नाना विध संग्रामों की चर्चा चलती है। समय २ पर देवासुर संग्राम भी पढ़ने को मिलता है। एक ओर दैवी शक्तियां अपनी समस्त साधन सामग्री के साथ कार्य करने में जुटी रहती हैं तो दूसरी ओर आसुरी दल अपने अपार बल को ले कर देवमण्डल को पराजित करने में दिन रात एक कर देता है। समय २ पर दोनों की जय पराजय का प्रसंग सामने आता रहता है दैवी सत्ता के दुर्बल होने पर सारा मानव जीवन दीनहीन हो जाता, धर्म का ह्रास तथा शीलाचार का बिगाड़ हो कर चारों ओर भोग वाद का महावात चलने लगता है। इन दोनों में पुरातन समय से संघर्ष चला आता है, टक्कर जारी है। यह संग्राम क्या है? संक्षिप्त तथा सरल शब्दों में कहना हो तो कह सकते हैं कि विश्व में दो प्रकार की विचार धाराएं चलती रहती हैं—आध्यात्मिकवाद की तथा कोरे भौतिकवाद, शरीरवाद या भोगवाद का सारा जीवन दो धाराओं मे बहता है।

अतीत का युग भी इन दोनों प्रकार की विचार लहरों से टकराता था। कुछ लोग अध्यात्मवाद को ले कर जीवन की चरमसाधना, निष्ठा एव मानवता की मंजिल मान कर संसार में रह कर सारे साधनों का प्रयोग करते हुए भी तेन त्यक्तेन भुंजीथा—के पवित्र वेद सन्देश के अनुसार इस चमकीले पदार्थ मण्डल में लिप्त और आसक्त न होने के पथ पर चलना चाहते हैं। शरीर भी आवश्यक है, किन्तु केवल इसे ही सब कुछ मान कर शरीरवाद इष्टदेव का पूजन नितांत असंगत है। भोग ही जीवन का भगवान् नहीं, इस की भक्ति ही मानव का चरमलक्ष्य नहीं—कोरा भौतिकवाद शान्ति, सन्तोष का साधन नहीं—ऐसा विचार देने वाला देवमण्डल है। दोनों के विचारों में भारी अंतर है। आर्य ग्रन्थों में इन दोनों विचारों तथा विचारकों को देव और असुर के नाम से पुकारा हैं। इन में संघर्ष पुरातन काल से जारी है। आज सामने है। आज के युग में दैवी शक्तियां कुछ निर्बल होती जा रही हैं। इन का प्रभाव व महत्त्व क्षीण हो रहा है। इन से जनता का प्यार कम है। इस के विपरीत भोगवाद का आसुरी दल बढ़ता जाता है। आत्मा, परमात्मा का स्थान शरीर, वेश की साजसज्जा ने ले रखा है। घर का समादर और घर वाले का निरादर है राष्ट्र के भौतिक रूप का सम्मान एव राष्ट्रपति का घोर अवमान जारी है। भोगों का भजन स्तवन होता है और योग को रोग कहा जा कर उस का पद्दलन है। चारों ओर आसुरी विचार धारा है। समाचार पत्रों, चित्रपटों, शिक्षा केन्द्रों, सहभोजों, समारोहों, गोष्ठियों, ज्ञान विज्ञान भवनों, परिवारों व्यापार के साधनों, शृंगार के बाजारों में, लड़के लड़कियों के सांस्कृतिक प्रोग्रामों में सर्वत्र आसुरी प्रवृत्तियां पनप रही हैं। भाषा, भोजन भवन, भूषा सब कुछ भोग मय ही हो रहा है। दैवी शक्तियां दुबक कर बैठ गई हैं। ऐसी अवस्था में वेद के प्रेमी आर्य भाई बहिनें क्या मौनसाधना मे लगे रहेंगे? यदि यह आसुरी दल सर्वत्र छा गया तो भारत की प्राचीन परम्परा समाप्त होती जायगी। देवता कभी शांत नहीं बैठते। आग लगने पर उदासीनता कैसी? आज के नर नारी बाल वृद्ध, युवा युवती सारे आसुरी चमकीले भोगवाद के प्रवाह मे बहते जा रहे हैं। आरम्भ मे जो रमणीय, सुन्दर है, परिणाम में वही भीषण, भयावह है। यह सच्चाई है। देव दयानंद के वीरो! अपने आप को इस प्रवाह लहर से बचाओ। परिवार के अपने लड़के लड़कियों को बचाओ। सारे जनजीवन, देश और विश्व को इस महान् पतन के गहरे गढ़े में गिरने से रोको। भोगवाद के विरुद्ध भारी अभियान जारी कर दो। हर समाज, सत्संग, उत्सव में इस के विरुद्ध सम्मेलन करो। इस बाढ़ को रोको। पूरी शक्ति लगा कर प्रतिकार करो। आज के इस देवासुर संग्राम में देवदल का पूरा सहायोग दो

—त्रिलोक चन्द्र

हमारा युवक समाज

आर्य प्रादेशिकसभा पंजाब जालन्धर ने अपने प्रचार व साहित्य प्रकाशन के साथ २ समाज की युवक शक्ति को संगठित करके उसे एक सूत्र में पिरोने की ओर भी विशेष ध्यान देना आरम्भ किया है। इसके लिए एक विशेष कार्य योजना तय्यार करके उस में विशेष अपने व्यक्तियों को लगा भी दिया है। डी. ए. वी. कालेज जालन्धर के मान्य प्रोफैसर श्री पं० वेदीराम जी शर्मा एम. ए. उपमन्त्री सभा द्वारा इस विशाल कार्य का संचालन भी कर दिया है। श्री शर्मा जी स्वयं युवक, आर्य सिद्धांतों के पंडित ओजस्वी वक्ता लेखक तथा युवकों को समाज के समीप लाने में विशेष रुचि लेते हैं। दयानन्द कालेज में बनाया और आप के द्वारा चलाया शानदार युवक समाज इसका जीता जागता उदाहरण है। कालेज के युवकों के विचारों में भारी परिवर्तन कर दिया है। इस प्रवाह को समाज का कितना उपयोगी बना दिया है। इस के लिए बधाई के पात्र हैं।

कालेज के अध्यापन कार्य के व्यस्त जीवन से समय निकाल कर स्थान २ पर समाजों के महोत्सवों पर जाकर समाजों, संस्थाओं रूपी छावनियों के इस युवक दल को सगठित करने में बड़ा ही स्तुत्य कार्य करके सभा का पूरा २ हाथ बटाते हैं। गत दिनों जलालाबाद जिला फिरोजपुर मे जा कर समाज के जल्से मे ओजस्वी भाषण के अतिरिक्त इस युवा शक्ति का संगठन कर कितना उत्तम कार्य किया। वहां के एक सनातन धर्मी परिवार ने अपने हा ही ठहरने का आग्रह किया। वहा के युवकों में एक चेतना स्फूर्ति आ गई। इसी प्रकार आर्यसमाज धारी वाल के जल्से पर पहुंच कर ओजस्वी विचार तथा युवक समाज के संगठन करने में बडा समय दिया। यह आंदोलन फैलता जा रहा है। सभा का युवक समाज का क्षेत्र व्यापक हो रहा है इधर रोहतक नगर के कालेज विभाग के महोत्सव पर जा कर युवकों में जीवन भर दिया। देख कर बडी प्रसन्नता होती है कि इस दिशा में कार्य करने से समाज क युवक दल इधर आने लगा है समाज की देर की कमी पूरी होने लगी है। आज कल कालेज बंद हैं। अवकाश में आराम के दि हैं। किंतु जहा भी आवश्यकता है युवक समाजों का निर्माण, सगठन करने तथा उनको क्रियापथ प चलाने के लिए श्री प्रोफैसर जी अपना समय दे कर सभा कार्य कं

(शेष पृष्ठ ६ पर)

बजवाड़ा में महात्मा हंसराज दिवस समारोह
सारा नगर जय-जय घोषों से गूंज उठा

आर्य प्रादेशिक सभा पञ्जाब जालन्धर की ओर से प्रतिवर्ष स्वर्गीय सर्वमेधी महात्मा हंसराज जी की जन्मभूमि बजवाड़ा जिला होश्यारपुर में उनका स्मृति दिवस बड़े ही धूमधाम से मनाया जाता है। होश्यारपुर में उनकी स्मारक कमेटी बनी हुई है जिसके मन्त्री श्री ससार चन्द्र जी एडवोकेट हैं। सभा की ओर से सारा प्रबन्ध करने के लिए प० महाराज कृष्ण जी जालन्धर से कुछ दिन पूर्व ही बजवाड़ा पहुँच गये थे। यज्ञ व प्रचार के लिए पं० त्रिलोक चन्द शास्त्री श्री मेलाराम जी रेडियो सिंगर तथा श्री रामकरण महावीर नत्थूराम जी की मण्डली तीन-चार दिन पहिले गये। यज्ञ व प्रचार होता रहा। जनता पूरा २ लाभ उठाती रही। ता० १६ अप्रैल महात्मा जी का जीवन स्मृति दिवस समारोह था।

उस दिन प्रात काल से ही शानदार यज्ञ सम्पन्न हुआ। भारी ऋषिलंगर का प्रबन्ध किया गया था। होश्यारपुर के डी० ए० वी० स्कूल के बैंड के विद्यार्थी भी अपने बैंड समेत पहुंचे थे। नगर से काफी संख्या में सज्जन, युवक तथा समाज के नेता पधारे हुए थे। जिनमें महामना श्री देवी चन्द जी एम० ए० प्रधान दयानन्द साल्वे- प्रिंसिपल राम दास जी, ला० संसार चन्द जी एडवोकेट, ला० हरिराम जी प्रधान समाज, श्री अमृतराय जी, मा० विहारी लाल जी, श्री सदाराम जी, श्री विष्णु मित्र जी, श्री कन्हैया लाल जी जेजों आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। दोपहर दो बजे से समाज मन्दिर से जलूस आरम्भ हुआ। इसमें स्काउट बैंड, महात्मा हंसराज कन्या पाठशाला की लड़कियां, नगर की जनता, नेता महानुभाव तथा बहिनें काफी संख्या में शामिल थीं। बजवाड़ा की गली महात्मा हंसराज जी के जय घोषों से गूंज उठी। जलूस में में बच्चियां बच्चे बड़े मीठे गीत गाते जा रहे थे। महात्मा हसराज कन्यापाठशाला में जलूस समाप्त होकर महामना देवी चन्द जी की प्रधानता में कार्यक्रम आरम्भ हुआ श्री मेलाराम जी के मधुर भजनों से कार्यवाही शुरू हुई।

इसमे ला० संसार चन्द जी एडवोकेट, प्रि० रामदास जी प० त्रिलोक चन्द शास्त्री, प० शिवचरण जी, महामना देवीचन्द जी कई महानुभावों के स्वर्गीय महात्मा हसराज जी के जीवन पर सारगर्भित भाषण हुए। जनता से कहा गया कि अमर पुरुष वही होते हैं जिन का जीवन परोपकार, सेवा तथा यज्ञ के लिए होता है। महात्मा हसराज जी ने अपना यौवन सारा जीवन समाज सेवा के लिए अर्पित कर दिया था। एक निष्ठा का पथ स्वीकार करके अबाध गति से उसी पर जीवन पर्यन्त चलते रहे। नाना प्रकार के प्रलोभन, बड़े २ चमकीले पदार्थ, ऊंची, ऊची २ नौकरियां तथा विरोधी बातें उनके जीवन पग को तनिक भी विचलित न कर सकीं। एक भाव, एक रस, एक निष्ठ होकर आगे ही आगे बढ़ते गये। शिक्षा का महान कार्य किया। आर्य प्रादेशिक सभा की स्थापना की। हमें उनके जीवन से पाठ पढ़ना है। इस प्रकार धूमधाम से समारोह सम्पन्न हुआ। हम सभा को कर्त्तव्यपूर्ति पर बधाई देते हैं।

—०—०—

आर्यसमाज माडलटाउन यमुनानगर महोत्सव
सभा को ३००) रु० वेदप्रचारार्थ भेंट

अपनी सभा से सम्बन्धित आर्य समाजों में यमुना नगर माडल टाऊन का समाज बड़ा ही प्रसिद्ध, कार्य करने वाला तथा प्रेमी उत्साही कार्यकर्ताओं वाला समाज है। माडलटाऊन वैसे भी सम्पन्न सज्जनों की कालोनी है। धन वैभव मे कमी नहीं है—फिर भी यह देखकर बड़ी प्रसन्नता होती है कि इतना होते हुए समाज के मान्य प्रधान सेठ चमनलाल जी, मन्त्री श्री मनोहर लाल जी, प्रिंसिपल प० रामलाल जी शर्मा डी० ए० वी० स्कूल, बहिन कमला देवी जी सारे सज्जन प्रभु के भक्त, वेद प्रेमी, समाज के उत्साही कार्यकर्त्ता हैं। अपना शानदार दयानन्द स्कूल है। लडकियों का भी स्कूल और कालेज है, शिशुमन्दिर है। समाज का प्रति सप्ताह बड़ा ही भव्य सत्संग होता है। स्त्री समाज का काम भी बहुत उत्तम है। सारे नगर में समाज तथा स्कूल की बड़ी प्रतिष्ठा है। स्कूल का सुन्दर कार्य भी प्रिंसिपल रामलाल जी शर्मा के नेतृत्व में सुन्दर चल रहा है। श्री कपूर जी का प्रयास इस दिशा में अच्छा है। श्री प्रधान जो का तो जीवन तथा परिवार इस धार्मिक रंग मे रंगा हुआ है। घर में भी अपने परिवार का आयसमाज बना रखा है। दैनिक प्रात सत्संग चलता है। इस प्रकार का समाज अपने रूप में पहिला है।

आर्यसमाज का महान् उत्सव गत २७ से २६ अप्रैल को धूमधाम से हुआ। जलसा क्या था—ऐसा प्रतीत होता होता था कि माडलटाऊन समाज की शानदार जयन्ती हो रही है। एक सप्ताह पूर्व बड़े सुन्दर यज्ञमण्डप में यजुर्वेद पारायण यज्ञ प्रातः सायं स्वामी प्रेमानंद जी, प० विद्यानन्द जी शास्त्री की देख-रेख में होता था। अम्बाला करनाल वेद प्रचार-मण्डली के प्रबन्धक पं० अमरसिंह जी अपने सारे मण्डल पं० शमशेर कुमार जी, ठा० दुर्गासिंह जो, पं० जगत् राम जी, पं० जयनारायण जी, श्री बस्तीराम जी समेत बड़ा यज्ञ, उत्सव के प्रबन्ध मे कई दिनों से बड़ा उत्तम सहयोग दे रहे थे। प्रचार हो रहा था।

महोत्सव बड़ा ही सफल तथा शानदार था। श्रद्धा रुचि, भाषणों भजनों, प्रबन्ध तथा प्रभाव के विचार से सब प्रकार से बड़ी धूमधाम थी। माताओं बहिनों का समाज के प्रति उत्साह, कुमार युवकों का सेवाभाव कार्यकर्ताओं का प्रेमभाव, जनता का उत्साह सचमुच दर्शनीय और प्रशंसनीय था। एकता, समन्वय का सुन्दर चित्र था। उत्सव में स्वामी भीष्म जी, स्वामी रामेश्वरानंद जी, श्री रामजी प्रसाद जी गुप्त, श्री तारा-चन्द जी वानप्रस्थी, स्वामी सत्यमुनि जी श्रीमती शन्नोदेवी जी उपाध्यक्षा पञ्जाब असैंबली, पं० त्रिलोकचन्द शास्त्री, प्रो० उत्तमचद जी शाद एम. ए., पं० राम स्वरूप शांत, पं० देसराज जी, पं० राजपाल मदन-मोहन मण्डली, बहिन कृष्णाबाला जी, प० अमरसिंह मण्डल अनेक सज्जन पधारे। कुमार सम्मेलन, संस्कृत सम्मेलन कमाल के थे। सारे नगर में इस सफल समारोह की धूममच गई। डी. ए. वी. स्कूल के लड़कों ने बड़ी सेवा की। ऋषि लङ्गर तो अपने ढङ्ग का आप ही था। स्त्री समाज का महोत्सव बड़े ही समारोह का हुआ। इतनी शानदार सफलता पर सब को बधाई।

—०—०—

अध्यात्मवाद, योगविद्या, ब्रह्मचर्चा का महान् केन्द्र

तपोवन

तपोवन देहरादून में अपूर्व रसमय आध्यात्मिक समारोह

महात्मा आनन्द स्वामी जी के अमृतमय प्रवचन

देहरादून तपोवन नाला पानी का आध्यात्मिक शान्त महान केन्द्र सारे भारत में एक दर्शनीय स्थान है। आत्मज्ञान की निरन्तर गगा बहती है। प्रतिवर्ष देश के कोने २ से सैंकड़ों हजारों साधक परिवार आत्मपिपासा को शान्त करने के लिए इस आश्रम में आकर जीवन प्रसाद पाते हैं। आदर्श तपस्वी पूज्य महात्मा आनन्द स्वामी जी महाराज की देखरेख मे कितना भव्य ब्रह्मज्ञान का प्रसाद बटता है, कितना स्वाद होता है—लेखनी व वाणी का विषय नहीं। वहा क्या देखा, क्या सीखा और लिया—कुछ विवरण दिया जा रहा है।

देहरादून—१ मई रेलवे स्टेशन देहरादून से लगभग तीन मील की दूरी पर नाला पानी जंगल में, बड़े रमणीक स्थान पर वैदिक साधनाश्रम बना है, इसे तपोवन कहते हैं, अमृतसर के बावा प्रद्युम्न सिंह जी के परिवार ने कई लाख रुपया के व्यय से यह सुन्दर स्थान बनवा कर इसे एक ट्रस्ट के हाथ मे दे दिया हुआ है, तपोवन में तपस्या करने की भावना रखने वाले, सच्चे प्रभुभक्त निवास कर सकते हैं, और योगाभ्यास द्वारा अपनी चित्तवृत्तियों का निरोध करके आत्म दर्शन पा सकते हैं। प्रतिवर्ष यहा साधना शिविर होता है, वैसाखी के पश्चात जो पहला रविवार आता है उस रविवार से अगले रविवार तक शिविर का बडा मनोरंजक कार्यक्रम होता है।

प्रातः तीन बजे सब उठ जाते हैं, एक घण्टा में आवश्यक नित्य कार्य कर लेते हैं, चार से पाच बजे प्रात साधना का समय होता है, फिर आध घण्टा प्राणायाम तथा योग आसनों की शिक्षा होती है ६ से ८ बजे तक गायत्री महायज्ञ होता है। तब कथा कीर्तन नौ बजे तक। फिर दो बजे कीर्तन कथा शुरु हो जाती है जो चार बजे तक चलती है चार से पाच बजे तक पुन: गायत्री महायज्ञ होता है। रात को फिर ७॥ से नौ बजे तक सत्संग होता है। अब के यह शिविर १५ से २२ अप्रैल तक बड़े सात्विक वातावरण से हुआ। महात्मा आनन्द स्वामी जी महाराज, महात्मा प्रभु आश्रित जी महाराज, महात्मा आनन्दभिक्षु जी, महात्मा जगन्नाथ जी, पं० ऋषिराम जी बी० ए० स्वामी विश्वानन्द जी, स्वामी विज्ञानानन्द जी तथा पन्द्रह बीस साधु संन्यासी पधारे हुए थे। भारत के सभी प्रान्तों से साधक साधिकायें तथा दर्शक पहुचे हुए थे, उड़ीसा, आंध्र प्रदेश, आसाम, बिहार, कश्मीर, हिमाचल प्रदेश, उत्तर प्रदेश, पजाब, बंगाल, बम्बई, महाराष्ट्र, सौराष्ट्र गुजरात, बर्मा, अफ्रीका तक से भी महानुभाव पधारे हुए थे। हजारों नर-नारियों ने इस आध्यात्मिक गगा स्नान करके मानसिक शान्ति प्राप्त की। महात्मा आनन्द स्वामी जी की कुटिया में श्रद्धालु सज्जनों की भीड़ लगी रहती थी, साधक लोग अपनी मानसिक कठिनाइयों तथा उलझनों को उन से सुलझाते रहे। ब्रह्मचारी महेश अपने मनोहर प्रभु भक्ति के गीतों से लोगों को तृप्त करते रहे। राष्ट्रीय विरजानन्द अन्ध कन्या विद्यालय की ३०-४० देवियां श्रीमती धनदेवी जी के साथ नई देहली से अपनी बस पर तपोवन पहुंची हुई थीं। इन देवियों ने प्रभु-प्रेम के संगीत से सब को लुभा लिया तथा अन्य देवियों ने अपने हस्त कौशल कार्यों की प्रदर्शनी भी की। श्रीमती धनदेवी जी ने प्रति शिविर पर पधारने का आश्वासन दिया—तपोवन के कार्य कर्त्ताओं ने भी प्रार्थना की कि अन्ध कन्या विद्यालय का यह मण्डल प्रतिवर्ष पधारा करे, महात्मा प्रभु आश्रित जी ने गायत्री मत्र की व्याख्या करते हुए बड़े रहस्य की बातें बताई। महात्मा आनन्द स्वामी की कथा सुनने के लिए सभी उत्सुक रहते। महात्मा जगन्नाथ जी चित्तवृत्तियों के एकाग्र करने का क्रियात्मक ढंग बतलाते पं० ऋषिराम जी ने उपनिषदों का अमृत पिलाया जितने साधक साधिकायें अब के पधारे वह यही कहते सुनाई दिये कि आठ दिन का स्वर्ग सुख प्राप्त कर चले हैं।

वेद और सहकारिता

(श्री ब्रह्मानंद जी कौशल माडलटाऊन यमुना नगर)

आज भारत में सहकारिता पर अत्यधिक बल दिया जा रहा है। कहा जा रहा है कि सब काम Co-operative Basis पर ही होना चाहिये। हमारे प्रधान मंत्री श्री जवाहर लाल जी नहरू तो अब हर भाषण में सहकारिता पर बल दे रहे हैं और खुले शब्दो में कहते हैं कि सहकारिता के बिना भारत की कृषि समस्या तथा खाद्य समस्या का सामाधान नहीं हो सकता।

परन्तु विद्यार्थियों को क्या पढ़ाया जाता है कि कोआपरेशन विदेश की देन है। जर्मनी में इस का जन्म हुआ दूसरे देशों ने इसे अपनाया इत्यादि। परन्तु मैं उन लेखकों से, उन शिक्षकों से, तथा भारत सरकार से यह सविनय अनुरोध करता हूं कि वह थोड़ा समय निकालकर ज्ञान मयकोष,मानव संविधान, सार्वभौमिक तथा शाश्वत सत्य वेद ज्ञान की केवल मात्र एक पवित्र सूक्त और वह भी ऋग वेद का अंतिम सूक्त पढ़ने की कृपा तथा कष्ट करें जो कि विश्व की सब से प्राचीनतम पुस्तक मानी जाती है। जिस का भाव यह है कि हे संसार के लोगों तुम सब मिल कर चलो, मिल कर बोलो, आपके विचार एक से हों आप का मन, वाणी, और कर्म एक हो, आप सुखमय जीवन व्यतीत करें।

अहा! कितना विशाल स्वरूप है वेद माता का? कितना विराट हृदय है वेद भगवान का, कितना उच्च आदर्श है वैदिक सस्कृति का, कितना पवित्र ज्ञान है वेद हमें प्रत्येक अवस्था में सदाचारी, चरित्रवान् बनने. का सन्देश दे रहा है सहकारिता का महान् और उच्चतम तथा पवित्र और सरल, रोचक मिश्र वेद प्रस्तुत करता है।

भोजन, दूध-फल का भी अच्छा प्रबन्ध रहा, ऋषि लंगर तो लगा ही हुआ था, जहां सहस्रों नर-नारी भोजन करते थे ऋषि लंगर में अमृतसर के ला० सर्वदास जी, माता नरेन्द्र, श्रीमती लक्ष्मी, श्री माया देवी आगरा के ला० ठाकुर दास तथा उनके साथियों ने खूब सेवा की इसके अतिरिक्त भोजन, दूध का होटल भी था, जिस का प्रबन्ध श्री वेदप्रकाश जी ने बड़ी सुन्दरता से किया। यात्रियों को निवास देने का कार्य बाबा गुरुमुख सिंह जी के हाथ में था, जिसे आपने दिन रात तपस्या करके खूब निभाया। तपोवन ट्रस्ट के प्रधान श्री ला० जयराम शाह जी ने तो पन्द्रह दिन निरन्तर भारी तप तपा, शायद ही किसी दिन समय पर भोजन किया हो।इनके सारे मोटर तथा कार्य करने वाले इस शिविर को सफल बनाने मे जुटे रहे।मास्टर बलबीरसिंह जी और इनके सारे ग्रामीण साथी भी पूरी लग्न से सेवा कार्य करते रहे, आर्य वीरदल के स्वयं-सेवकों ने भी सराहनीय कार्य किय, श्री बाली जी तथा श्री महेन्द्र सिंह जी ने भी सहयोग दिया। अब के गायत्री महायज्ञ के मुख्य यजमान अमृतसर के ला० रोशनलाल जी थे। यह सारा परिवार बडी श्रद्धा भक्ति से महात्मा आनंद भिक्षु जी के आदेश अनुसार यज्ञ करता रहा, महात्मा आनंद भिक्षु यज्ञ मे बड़ा रस पैदा करते हैं। इसलिये यज्ञ से कोई ऊबता ही नहीं, दूसरे यजमान कलकत्ता के सेठ रलियाराम जी गुप्त थे। यह भी सपरिवार पधारे हुए थे, और पूरी भक्ति से शिविर के हर कार्य में भाग लेते थे, और भी कितने ही सज्जन यजमान बने और इस सब से श्रेष्ठ यज्ञ कार्य में शामिल होते रहे। यज्ञ, कथा, कीर्तन में हर समय लौडस्पीकर कार्य करता रहा, जो कलकत्ता के सेठ घनश्याम जी गोयल (रोड ट्रांस्पोर्ट कार्पोरेशन वाले) ने खरीद कर महात्मा आनंद स्वामी जी को दिया था। सात दिन तो यह कार्यक्रम चलता रहा। २३ अप्रैल रविवार को पूर्णाहुति का कार्य हुआ। यह दृश्य जिस ने भी देखा वह "वाहवा" कह उठा। प्राचीनकाल के ऋषि आश्रमों की झलक इस कलिकाल में देखी गई, महात्मा आनद भिक्षु जी ने पूर्णाहुति की बड़ी सुन्दर व्यवस्था की, महात्मा प्रभु आश्रित जी, महात्मा आनंद स्वामी जी यजमानों तथा आहुति देने वालों को पुष्प मालायें तथा फल देकर आशीर्वाद लेते जाते थे, मन्त्रों की ध्वनि निरन्तर गूंज रही थी, अंत में वैदिक धर्म की जय से आकाश गूंज उठा और जनता यज्ञशाला से उठकर विशाल सदन में पहुंची जहां हजारों नर नारियों ने श्री पं० ऋषिराम बी० ए०, महात्मा आनंद स्वामी जी, श्री प० धमदेव जी वानप्रस्थी तथा महात्मा आनन्द भिक्षु जी के आत्मदर्शन की ओर ले जाने वाले उपदेश सुने, और फिर लगभग चार पांच हजार लोगों ने ऋषि लंगर में सहभोज किया। आज तो सारा दिन तपोवन मे मेला ही लगा रहा। देहरादून से हजारों प्रेमी नर नारी बसों, मोटरों, टांगों तथा साईकलों द्वारा पैदल भी पहुचे, अच्छी सुन्दर चहल-पहल रही ऐसा आध्यात्मिक मेला बड़े भाग्य से देखने में मिलता है।

तपोवन आश्रम के तीन भाग हैं, एक तो सूखी नदी के किनारे लगभग४०कमरे हैं, बड़ी सुन्दर विशाल यज्ञ-शाला है। इससे ऊपर थोडा पहाड चढकर१०-११ अलगर कोठीनुमा कुटियायें हैं जहां से एक ओर मंसूरी, दूसरी ओर देहरादूनका सुन्दर दृश्य नेत्रोंको लुभा लेता है।फिर एक मील पर्वतकी चढ़ाई चढ़कर विशाल घने जंगल में दो सुन्दर कुटियायें बनी हुई हैं।यहीं महात्मा आनंद स्वामी की कुटिया है।यह वही स्थान हैं, जहां आज से बारह वर्ष पूर्व संन्यास लेकर महात्मा जी ने तीन मास का मौन व्रत धारण किया था, तब यह पूर्ण कुटिया थी, इन तीनों भागों में साधक लोग जहा चाहें बिना किराया के निवास करके आत्म-चिन्तन, आत्म-निरीक्षण तथा आत्म-विज्ञान प्राप्त करके आत्म-दर्शन पा सकते हैं। आर्य-जगत् में यही एक मात्र स्थान है, जो केवल आत्म-विज्ञान प्राप्त कराने तथा प्रभु प्रेमियों को भक्ति मार्ग पर चलने के लिये कुछ सुभीता देने के लिये स्थापित किया गया है। जो चाहें लाभ उठायें। मेरा ऐसा अनुमान है कि कभी वह समय भी आयगा, जब यहा आत्म-विज्ञान विश्वविद्यालय की स्थापना होगी।

एक साधक यात्री

(जिस ने आठ दिन की आध्यात्मिक सृष्टि देखी)

तपोबन देहरादून
१-५-६२

अतः मेरी प्रार्थना है कि यह सब को बताया जाय कि सहकारिता पश्चिम की देन नहीं परन्तु भारतीय संस्कृति की आधार वेद माता की आज्ञा है। भूल जाओ तुम कि यह विदेश की देन है और बजा दो डंका कि यह ,तो भारतीय वैदिक संस्कृति की आधार वेद माता की असंख्य मधुर लोरियों में से एक है, असंख्य प्रकाश स्तम्भों में से एक हैं, असंख्य आत्माओं में से एक है और असंख्य पवित्र उपदेशों में से एक है।

अतः सब सज्जन उस पवित्र वेद को पढ़ने का संकल्प अवश्य करें ताकि उन्हें विश्व-विख्यात कल्पना की सच्चाई ज्ञात हो सके कि सहकारिता पश्चिम की नहीं, अपितु भारतीय वैदिक संस्कृति का मानव मात्र के कल्याणार्थ वेद भगवान में एक आदेश है। जीवन उत्थान का केवल मात्र साधन तथा उपाय है ही यह। हम प्रत्येक कार्य बात, सिद्धांत और जीवन व्यवहार में सदा पश्चिम की ओर न देखा करें। हम कंगाल नहीं अपितु मालामाल हैं। आचार-विचार, ज्ञान-विज्ञान, कलाकौशल निर्माण सब में हम ऊंचे हैं। कमी केवल अपने घर को देखने की है। हम गुरु हैं, शिक्षक हैं, अपने इस रूप को पहिचानें।

हमारा युवक समाज

(पृष्ठ ३ का शेष)

आगे ही ले जा रहे हैं। हमारे प स संस्थाओं की विशाल छावनियां हैं। परिवारों में अपने कुमार युवक हैं किंतु संगठन न होने से विशेष लाभ नहीं था। अब सुव्यवस्थित कार्य शुरू है। प्रभु करें कि हमारा यह संगठन सूत्र में पिरोने का सुन्दर कार्य शानदार बन कर समाज कार्य को सशक्त बनावे। —सं०

दो विषैले सांप

(ले०—श्री अमृत लाल जी साढौरा अंबाला)

हमारी पंजाब सरकार निकट भविष्य में सभी शिक्षा संस्थाओं में सहशिक्षा आरम्भ कर रही है उसके लिए नौ सदस्यों की कमेटी बनाई गई है। सह शिक्षा आर्यसमाज के संचालक स्वामी दयानन्द जी सरस्वती के विचारों से सर्वथा प्रतिकूल है। इस विषय में लेखक के विचार पढ़िए।

—व्यवस्थापक

श्रीमत् शंकराचार्य कहते हैं—

विषेभ्यो विषयः
कृष्ण-सर्पः विषादपि।
विषं निहन्ति भोक्तारं
द्रष्टारं चक्षुषाप्यहम् ॥

अर्थात्—काले सांप के विष से भी बढ़कर विषय जन्य विष अत्यन्त भयानक है। विष तो पी लेने पर मनुष्य मरता है पर यह विषय-विष इतना उग्र है कि केवल उसकी ओर देखने मात्र से ही मनुष्य धूल में मिल जाता है।

क्या शंकराचार्य के ये शब्द सत्य हैं? हां सत्य और सत प्रतिशत सत्य। यही शिक्षा हमें लक्ष्मण जी के जीवन से भी मिलती है। ऋष्यमूक पर्वत पर जब सीता देवी के गहने श्री लक्ष्मण जी के सामने जांचने के लिये रक्खे तब श्री लक्ष्मण जी कहते हैं—

नाहं जानामि केयूरे
नाहं जानामि कुण्डले।
नूपुरेत्वाभिजानामि
नित्य पादाभिवन्दनात् ॥

'इन सब गहनों में केवल नूपुर ही मेरे पहिचान के हैं जो रोज वन्दना करते समय मैं सीता माता के चरणों को देखता था। इन केयूर कुण्डलों तथा अन्य गहनों को मैं नहीं जानता हूं। क्योंकि चरणारविंद को छोड़कर मैंने दृष्टि उठाकर कभी ऊपर देखा ही नहीं।' और यही तो कारण था कि आप चौदह वर्ष पर्यन्त सीता देवी जैसी त्रैलोक्य सुन्दरी के साथ रहते हुए भी अपने ब्रह्मचर्य का अटूट पालन कर सके।

मद्रास में स्त्रियों ने ऋषि दयानन्द का भाषण सुनने के लिए बड़ा आग्रह तथा अनुरोध किया। तब स्वामी जी के तथा उनके बीच में एक पर्दा डाल दिया और स्वामी जी ने अपना भाषण आरम्भ किया।

जयपुर के राजा ने स्वामी जी से प्रार्थना की कि रानियां आपका दर्शन करना चाहती हैं, तो स्वामी जी ने कहा कि जिस समय मैं समाधि में बैठा हूंगा तो वे चुपचाप आकर मुझे देख सकती हैं।

एक बार गंगा नदी के तट पर स्वामी जी समाधि लगाये बैठे थे कि एक स्त्री ने आकर उनके चरणों को पकड़ लिया। स्वामी जी ने आंखें खोल लीं क्या देखते हैं कि उनके सामने एक सुन्दर स्त्री उनके पाओं को पकड़े हुए बैठी है। इसके पश्चात स्वामी जी ने तीन दिन तक एक जंगल में जाकर भूखे रह कर तपस्या की ताकि उनके विचारों में कोई अन्तर न आजाये।

हां, तो ऋषि दयानन्द का जीवन चरित्र भी शंकराचार्य द्वारा कहे हुए एक २ शब्द को सत्य सिद्ध करता है। स्वामी जी बाल ब्रह्मचारी थे और उनकी शक्ति का सिक्का उस समय के सब पहलवानों के हृदयों में जमा हुआ था। जब स्वामी जी से कोई राजा, महाराजा या अन्य सज्जन ब्रह्मचारी रहने का उपाय पूछता तो स्वामी जी सदा एक ही उपाय बताते और वह यह 'नाच' रंग और तमाशे मत देखो। और किसी भी स्त्री पर नजर टिका कर मत देखो। स्त्रियों में बहुत आओ जाओ भी नहीं।'

फिर वही प्रश्न आजाता है कि भारतवर्ष के लोग दाने २ के लिये मुहताज क्यों हो गये? उनकी आयु १०० वर्ष से २७ वर्ष क्यों हो गई? वे अपने गौरव से हाथ क्यों धो बैठे? हमने अपने ऋषि-मुनियों की बातों को नहीं सुना। हमने उनके जीवन से कोई शिक्षा नहीं ली। और आज भी हमारे घर में बहती हुई गंगा से दूसरे लोग लाभ उठा रहे हैं, परन्तु अभी तक हम तो गहरी निन्द्रा में सो रहे हैं।

कवि ने तो कहा है—

जिस को न निज गौरव तथा,
निज पूर्वजों का अभिमान है।
वह नर नहीं, नर-पशु निरा,
और मृतक समान है ॥

हम अपने ऋषि-मुनियों की बातों को न सुनकर पश्चिमी सभ्यता की ओर जा रहे हैं। याद है आप को कि सारे देशों के मनुष्य प्राचीन समय में विद्या को ग्रहण करने के लिये भारतवर्ष के उन ऋषियों के पवित्र पाओं पर अपने सिरों को रख देते थे जिनकी आज्ञा का पालन न करके हम अपना सर्वनाश कर रहे हैं। खुश होते होंगे वे लोग आज जो कि हमारे देश में सिनेमा की इस बीमारी को छोड़ गये। आज यदि दूरदर्शी आंख से देखा जाये, इसी सिनेमा ने हमें हमारे प्राचीन गौरव को भुला दिया। इसी ने हमारे चरित्र को बिगाड़ दिया। इसी ने हमारे देश के नवयुवकों को मृत्यु की ओर दौड़ने पर मजबूर कर दिया। ओ सिनेमा के देखने वाले लोगो! क्या आप शंकराचार्य के शब्दों से सहमत नहीं? क्या आप अपने ऋषि मुनियों का उनकी आज्ञा को न मान कर स्वयं अपमान करना चाहते हैं? यदि नहीं, यदि हमें अपने ऋषि मुनियों के ऋण से उऋण होना है तो हम सिनेमा देखना बंद करें और इस १० करोड़ रुपये को किसी अच्छे काम पर व्यय करें।

हम केवल आज उन्हीं ही बातों पर आचरण नहीं करते जो कि इङ्गलिस्तान वाले करते हैं परंतु हम उन पर भी आचरण करते हैं जिन्हें कि पहले वे करते हैं और फिर देखते हैं कि इसका करना ठीक नहीं और फिर उसे बंद कर देते हैं। सहशिक्षा की यह प्रणाली सब से प्रथम इङ्गलिस्तान वालोंने निकाली जब उन्हें मालूम हुआ कि सहशिक्षा ठीक नहीं तो उन्होंने उसे बन्द कर दिया परन्तु भारतवर्ष में इसका प्रचार होने लगा। आज इस प्रकार के कई स्कूल खोले जा रहे हैं। इस समय ऋषि के ऋण से उऋण होने का समय है। क्या कम है ऋषि का ऋण १४ बार हमारे लिये विष के प्याले पी गये। ऋषि ने सत्यार्थ-प्रकाश में लिखा है कि 'लड़के और लड़कियों की पाठशाला दो कोश एक दूसरे से दूर होनी चाहिये। जो वहां अध्यापिका व अध्यापक आदि हों, वे कन्याओं की पाठशाला में सब स्त्री और पुरुषों की पाठशाला में सब पुरुष रहें। स्त्रियों की पाठशाला में पांच वर्ष का लड़का और पुरुषों की पाठशाला में पांच वर्ष की लड़की भी न जाने पावे। अर्थात जब तक वे ब्रह्मचारी व ब्रह्मचारिणी रहें तब तक स्त्री व पुरुष का दर्शन, स्पर्शन, एकान्त सेवन, भाषण विषयकथा परस्पर क्रीडा, विषय का ध्यान और संग इन आठ प्रकार के मैथुनों से अलग रहें।"

तो क्या इन दो विषैले सांपों के होते हुए हम इन आठ मैथुनों से बच सकते हैं। ऋषि ने तो लिखा है कि पांच वर्ष का बालक वा कन्या भी स्त्रियों व पुरुषों की पाठशाला में न जाये परन्तु सहशिक्षा और सिनेमा में २०, २५ वर्ष के युवक तथा कन्याएं इकट्ठी बैठती हैं और पढ़ती हैं। देश का कल्याण कैसे हो सकता है? पहले तो सिनेमा का ही रोग था, परन्तु थोड़े ही समय में सहशिक्षा का रोग इस से भी भयानक रूप धारण कर लेगा।

(शेष पृष्ठ ४ पर)

कोई हानि नहीं, हम सुरक्षित हैं। भयभीत होने की आवश्यकता नहीं।

तदनन्तर खबर मिली 'कुल्हाड़ा तैयार हो गया।' 'अब भी निश्चिन्त रहो' उसी समझदार वृक्ष ने कहा। अब वृक्षों को पता दिया गया। 'कुल्हाड़े में लकड़ी का दस्ता पड़ गया' बड़े वृक्ष ने शोकातुर होकर कहा—'अब हमारे बचने का कोई उपाय नहीं क्योंकि हम में से ही निकलकर दूसरे के साथ जाकर मिल गया है। अब रोओ और पीटो।' इस आख्यायिका को सुना कर महात्मा जी (हिन्दू) जनता से अभ्यर्थना (अपील) की थी कि उसे अपनों को सम्भाल कर रखना चाहिए अन्यथा बहिष्कृत भाई आर्यों (हिन्दुओं) की बहुत हानि पहुंचा सकते हैं। कितना दर्द था हिन्दू जाति के लिए उनके दिल में।

एक और भाषण में अपने जीवन की घटना सुनायी कि वह पचाराय गये। वहां हिन्दू विधवा रमाबाई जो ईसाई मत ग्रहण कर चुकी थी, स्त्रियों में ईसाइत का प्रचार कर रही थी। उन्होंने उससे मिलने के लिए समय मांगा। पहिले तो उसने यह कह कर साफ इन्कार कर दिया कि वह उस हिन्दू जाति के सदस्य का मुंह तक देखना नहीं चाहती जिसने उसके साथ दुर्व्यवहार करके धर्मान्तर करने पर विवश कर दिया पर फिर केवल ५ मिनट दिये क्योंकि उसे कहा गया कि वह पंजाब से गये थे और यह कि वहां वह उच्चकोटि के शिक्षाशास्त्री, प्रथम श्रेणी के समाज सुधारक और पहले दर्जे के धर्मप्रचारक थे। यह घटना बताकर महात्मा जी ने विधवाओं से सद्व्यवहार करने का उपदेश दिया था।

एक और अवसर पर व्याख्यान देते हुए उन्होंने नीचे लिखे शब्दों में देश में शिक्षा विस्तार करने पर

आदर्श आर्यसमाजी महात्मा हंसराज जी

[ले०—श्री भक्तराम जी (अफ़ोका वाले) जालन्धर]

(गताङ्क से आगे)

बल दिया था :—

'शिक्षा के क्षेत्र को अधिक विस्तृत करने की परमावश्यकता है। अविद्या का नाश और विद्या की वृद्धि करने में हम अन्य देशों की अपेक्षा बहुत पीछे हैं। देश में कालेजों तथा स्कूलों का जाल बिछ जाना चाहिए जिनमें धर्मशिक्षा की विशेष व्यवस्था हो ताकि धर्म्म पूर्वक सांसारिक जीवन बिताने वाले नागरिक उन शिक्षणालयों द्वारा उत्पन्न हों! दस बीस बच्चों को एकान्त में बिठाकर, शिक्षा देने से तो शिक्षा की समस्या सुलझायी नहीं जा सकती।'

स्वर्गीय देवता की अनेक घटनायें हम आर्यसमाजियों के लिए शिक्षाप्रद हैं परन्तु कुछ एक अनुकरणीय बातें निम्नाङ्कित हैं—

१—आपके जीवन से प्रभावित होकर कई लोग वैदिक धर्म की सेवा में संलग्न हो गये। उनके दर्शनमात्र से रावलपिण्डी के एक सनातनी सेठ वैदिक कर्म काण्ड में प्रवृत्त हो गये थे। उनकी कथनी और करनी एक थी।

२—स्पष्टवादी होते हुए भी उनकी सहानुभूति का क्षेत्र विस्तृत था। सनातन धर्म सभाओं की ओर से भी यदा कदा उन्हें मानपत्र प्राप्त होते थे क्योंकि वह संकुचित न थे।

३—गुरुकुल कांगड़ीमें आमन्त्रित कर उनकी सेवा में अभिनन्दन पत्र भेंट किया गया था जिस में लिखा था—'महात्मन्! आपकी सब बात अनुकरणीय है' वह ईर्ष्या व द्वेष से कोसों दूर थे।

४—अपने घर पर आये हुए अतिथियों की नौकर से सेवा न कर स्वयं अतिथि सेवा धर्मपालन करते थे। एक महोपदेशक ने मुझे बताया था कि महात्मा जी ने भोजन कराने से पूर्व उनके पांव धोये थे।

५—यदि उन्हें यह बताया जाता था कि उनके अमुक स्थान पर अथवा अमुक अधिवेशन में उपस्थित होने वा न जाने से आर्यसमाज का हित है तो वह स्वीकार कर लेते थे। झगड़ा मोल लेने के विरुद्ध थे।

६—आर्यसमाज के साप्ताहिक सत्सङ्ग में कभी नागा नहीं करते थे। उन्होंने एक 'सेवक मण्डली' स्थापित की थी जिसके सदस्य रोगी आर्य समासदों की बीमार पुर्सी करने जाते थे। महात्मा जी भी खबर लेते थे।

८—विदेशों में उन्होंने देशीवेश (बन्द गले का कोट, पाजामा और पगड़ी) नहीं त्यागा।

९—अपने विद्यार्थियों के लिए तो किसी के पास सिफारिश करते थे परन्तु सन्तान की चिन्ता न थी।

१०—आर्यसमाज के नगर कीर्तनों में आदि से अन्त तक सम्मिलित रहते थे।

११—वह नियम पूर्वक भ्रमणार्थ जाया करते थे।

१२—आजीवन सदस्यों की योजना महात्मा जी द्वारा निर्मित हुई थी।

१३—उनके श्रद्धालु कई प्रकार के उपहार लाया करते पर वह कालेज को दे देते थे।

ऐसे महामानव संसार में कहीं-कहीं और कभी २ पैदा होते हैं अन्यथा हमसे ढोंगियों ने देश, जाति और समाज को बदनाम कर दिया है। 'पिदरम सुलतान बूद' अर्थात् मेरा बाप बादशाह था' के गीत गाकर कबतक निर्वाह होगा? आर्यसमाज को उन्नत करने के लिए हमें आर्य व्यवहार से जनता को आकर्षित करना होगा। आर्य भाइयो! आज आर्यसमाज की गति मन्द होती चली जा रही है। मैं समझता हूं कि इसका कारण हम स्वयं हैं। हमारे आर्यत्व हीन व्यवहार से दूसरे लोगों ने तो समाज में क्या सम्मिलित होना है अपने पुराने सभासद् हम से परे हो रहे हैं। अत: आओ। आज के पावन पर्व पर आर्यत्व धारण करने का व्रत लेकर स्वयं आर्य बनें तभी हम उस आर्य-समाजी महात्मा की स्तुति गान के अधिकारी हो सकते हैं।

—०—०—

अलावलपुर में फ्री डिस्पैंसरी

२१ वर्ष से आर्य समाज अलावलपुर ने श्रीमद्दयानन्द धर्मार्थ आयुर्वेदिक औषधालय' के नाम से जनता की सेवा के लिये फ्री डिस्पैंसरी खोली हुई है। जिस में किसी भेदभाव के बिना सबकी एक सी सेवा हो रही है। कविराज वैद्य रामप्रकाश जी शर्मा आयुर्वेद भिषक तथा एक कम्पाउंडर बड़ी लगन से सेवा कर रहे हैं। हर एक औषधि वैद्य जी स्वयं तैयार करते हैं ताकि रोगियों को विश्वास युक्त औषधि दी जा सके एवं अधिक से अधिक रोगी लाभ उठा सकें।

गतवर्ष १ अप्रैल १९६१ से ३१ मार्च १९६२ पर्यन्त १६८२६ रोगियों ने तथा इस मास अप्रैल १९६२ में १४१४ रोगियों ने लाभ उठाया।

औषधालय के खर्च के लिए कोई स्थायी आय नहीं, २१ वर्ष भिक्षा मांगते हो गये। आगे की भगवान् जाने। दानी महानुभावों को इधर अवश्य ध्यान देना चाहिये।

सहयोगाभिलाषी—

गुरु प्रसाद मन्त्री आर्यसमाज

अलावलपुर (जालन्धर)

सभा की समाजों के उत्सव प्रचार की धूमधाम

—आ. स. खन्ना का उत्सव २७, २८, २९ अप्रैल को सम्पन्न हुआ। उत्सव से पूर्व श्री ओमप्रकाश जी की कथा श्री हजारी लाल जी के भजन होते रहे। उत्सव पर श्री खुशी राम शर्मा श्री मा. ताराचन्द्र जी ने भाग लिया।

—आ. स. कालेज विभाग फिरोजपुर शहर का उत्सव २७ से २९ अप्रैल को सम्पन्न हुआ। सभा की ओर से श्री पं० चन्द्रसेन जी, श्री शिवचरण जी, श्री मेलाराम जी, श्रीरामकरणजी की मंडली श्री प्रो.सत्यदेव जी विद्यालंकार पधारे। २४ ता. से पं०त्रिलोकचन्द्र जी की कथा हुई।

—आ. स. माडल टाऊन जमुनानगर का उत्सव २७ से २९ अप्रैल को समारोह से सम्पन्न हुआ। गणमान्य महानुभाव पधारे। श्री पं० त्रिलोकचन्द्र जी, श्री राजपाल जी श्री मदनमोहन जी, पं०अमरसिंह जी का सारा सभा मंडल पधारा।

—आ. स. कालिज विभाग रोहतक का उत्सव ४ से ६ मई को समारोह से सम्पन्न हो रहा है। १ मई से श्री पं० त्रिलोकचन्द्र जी कथा और राजपाल जी, मदनमोहन जी, के भजन होंगे। उत्सव पर श्री खुशीराम शर्मा श्रीमान् प्रो. वेदी राम जी, मेलाराम जी, भाग ले रहे हैं।

आ. स. मन्नौर का उत्सव ११ से १३ मई को सम्पन्न हो रहा है श्रीमेलाराम जी, श्री पं० त्रिलोकचंद्र जी पधार रहे हैं।

—आ. स. प्रेम नगर (करनाल) का उत्सव २५ से २७ मई को सम्पन्न हो रहा है। २० ता. से कथा पं० ओमप्रकाश जी, करेंगे।

—आ. स. [illegible] का उत्सव ११ से १३ मई को सम्पन्न हो रहा है।

—आ. स. भऊ (रोहतक) का उत्सव १६ से १६ मई को सम्पन्न हो रहा है। श्रा चौ भूराराम जी, श्री प्रभु दयाल जी मंडली पधारेगी।

—आ. स. रिवाड़ी का उत्सव १८ से २० मई को सम्पन्न हो रहा है। श्री राजपाल जी, प्रो. मदनमोहन जी पधार रहे हैं।

आ. स. हमीरपुर (कांगड़ा) का उत्सव १८ से २० मई को समारोह से सम्पन्न हो रहा है। १५ मई से खुशी राम शर्मा की कथा और मा- ताराचन्द जी के भजन होंगे।

आ स लारेन्स रोड अमृतसर में श्री पं ओं प्रकाश जी कथा कह रहे है।

श्री हजारी लाल जी, श्री शिवचरण जी राजौरी के इलाका में प्रचार के लिये पधारे हैं।

आ. स. तालू मा उत्सव ६ से ९ मई को सम्पन्न हो रहा है।

आ. स. खांडा खेड़ी का उत्सव २२ से २४ मई को सम्पन्न हो रहा है।

आ. स. महोउद्दीन पुर का उत्सव ८ से १० जून को समारोह से सम्पन्न हो रहा है।

आ. स. कलसोरा का उत्सव १ से ३ जून को सम्पन्न हो रहा है।

खुशी राम शर्मा
अधिष्ठाता वेद प्रचार सभा

हार्दिक बधाई

हमें यह जानकर बड़ी प्रसन्नता हुई है कि प्रभु की अपार कृपा से आर्य समाज अलनूर के सुयोग्य पूर्व कर्मठ मंत्री श्री जियालाल जी आर्य के घर पुत्र रत्न उत्पन्न हुआ है। हम भगवान से पुत्र की दीर्घ एवं यशस्वी आयु की कामना करते हैं तथा जियालाल जी व उनके परिवार जनों को आर्य जगत् की की ओर से हार्दिक बधाई देते हैं।

खुशी राम शर्मा
वेदप्रचार अधिष्टता

झालरापाटन

से प्रकाशित होने वाले सजय साप्ताहिक के सम्पादक लिखते है कि सजय पत्र में (आर्य परिवारों में सबंध स्थापित करने के लिए) कन्याओं के परिचय, तथा जातपात तोड़कर विवाह के इच्छुकों का परिचय विधवा और विधुरों के परिचय संबन्धी समाचार निशुल्क प्रकाशित किए जाएगे। इससे हिन्दु जनता अवश्य लाभ उठाए।

लीला राम आर्य
सम्पादक 'सजय'

आर्य समाज सैक्टर ८ चण्डीगढ़ में महात्मा हंसराज जयन्ती

तिथी १६—४—१९६२ को चण्डीगढ़ की दोनों आर्यसमाजों की ओर से डी० ए० वी० स्कूल में महात्मा हंसराज जयन्ती की सार्वजनिक सभा में महात्मा जी के महान जीवन पर प्रकाश डालते हुए प्रिं० रलाराम जी ने कहा कि उन्हें अधिक निकटता से देखने पर उनके जीवन का महान दिग दर्शन होता था जबकि बड़े कहलाने वाले व्यक्ति प्राय निकट देखने से घृणित पाये जाते हैं। महात्मा जी को यह गौरव प्राप्त था कि वह पहले भारतीय थे जो किसी कालेज के प्रिंसिपल बने। प्रबंधक बने और अपने अनुपम त्याग से उसे सारी आयु चलाया। आज के युग में इस उच्च आदर्श की कल्पना भी नहीं कर सकते कि एक कालेज का प्रिंसिपल जो कालेज कार्यालय में हजारों रुपए हाथों में रखे परन्तु घर जाने पर जब बच्चे पैसा मांगे तो उसकी जेब खाली हो।

विदेशी सरकार की ओर से हजारों और लाखों की देन को अपने और कालेज के लिए ठुकरा दिया। इन आदर्शों के कारण आर्यसमाज आगे बढ़ा यह सभा श्री वृषभानु जी, मन्त्री पंजाब सरकार की प्रधानता में हो रही थी जिनका स्वागत करते हुए श्री संतराम जी सैनी ने कहा कि आज के प्रधान महोदय पुरानी रजवाड़ा शाही के विरुद्ध अंग्रेजी सरकार से सदा लड़ते रहे जिस के लिए हमारे हृदयों में आपका बड़ा सम्मान है।

पंजाब के सनातन धर्म नेता पं० अमरनाथ जी शर्मा एम० एल० ए० ने सभी पंजाबियों तथा सनातन धर्म की ओर से जोरदार शब्दों के साथ महात्मा जी को श्रद्धांजली देते हुए कहा कि भारतीय संस्कृति सभ्यता को विदेशी सरकार की हिंसात्मक नीति से बचाने के लिए महान त्याग और बलिदान ने हम सबको सुरक्षित कर लिया। यदि महात्मा जी इतना बलिदान न कर पाते तो स्वतन्त्रता का युद्ध लड़ने के लिए हम कदापि समर्थ न हो सकते।

प्रधान सभा ने अपनी श्रद्धांजली भेंट करते हुए कहा कि ऋषि दयानंद से ज्योति लेकर महात्मा हंसराज ने जो विद्या का प्रसार किया उससे राष्ट्र की चौमुखी उन्नति हुई जो मार्ग उन्होंने धारण किया आजीवन उस पर दृढता पूर्वक चलते रहे। आर्यसमाज की उन्नति भी उसी मार्ग के अपनाने से होगी।

प्रिंसिपल श्री श्रीराम जी शर्मा ने महात्मा जी के निर्भय जीवन के कतिपय उदाहरण प्रस्तुत किये।

श्री राजलाल जी की कविता और डी० ए० वी० स्कूल के विद्यार्थियों का गीत हुआ।

—आसूराम पुरोहित सभासद

टलीफोन न० ३०५७ [आर्यप्रादेशिक प्रतिनिधि सभा पंजाब जालन्धर का साप्ताहिक मुखपत्र] Regd No.P·121

एक प्रति का मूल्य १२ नये पैसे — वार्षिक मूल्य ६ रुपये

वर्ष ७२ अंक १९) रविवार ३१ वैशाख २०१८— १३ मई १९६२ दयानन्दाब्द १३८ (तार-प्रादेशिक जालन्धर

वे द सू क्त यः

अग्ने प्र च वर्धय इमम्

हे अग्निरूप प्रभो ! इमम्-इस जीव को वर्धय-बढाओ। भगवन ! मै तेरा हू मेरे आत्मा को शक्ति दो, बल पराक्रम दो। ज्ञान विज्ञान से बढा। शुभगुणो को देकर उन्नति प्रदान करे।

त्वामग्ने वृणते ब्राह्मणाः

त्वाम्-तुझ को अग्ने-अग्निरूप प्रभो ! वृणते-वरते हैं ब्राह्मणा-ब्रह्मज्ञानी लोग। जितने ब्राह्मण हैं, ब्रह्मज्ञान के प्रेमी हैं—वे तेरा ही वरण करते हैं वे ही भक्त बनते हैं। तुझे वरते हैं। तेरे सिवाय और किसी से प्रेम नहीं है।

स्वे गये जागृहि

हे मनुष्य ! स्वे-अपने गये-घर, जीवन, राष्ट्र में जागृहि-जागता रह। अपने जीवन में जाग ताकि दोष न आवे। राष्ट्र मे जाग ताकि राष्ट्रघाती कोई गडबड न कर सके। सावधान रह सब ओर से सतर्क रहें।

अ थ र्व वे द से

माननीय प्रिंसिपल सूर्यभानु जी एम. ए.

कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय के उच्च सम्मानित वायस चांसलर के प्रतिष्ठित आसन पर समासीन हुए हैं

आन्तरिक हार्दिक बधाई शतशः बधाई

प्रिंसिपल सूर्यभानु जी

अतीव हर्ष है कि विश्वविद्यालय कुरुक्षेत्र मे पधार कर अत्यन्त व्यस्त जीवन मे भी सभा प्रधान के नाते उसी प्रकार सभा का नेतृत्व करते रहेगे। बधाई

ऋषि दर्शन

स एव सर्वेषां पिता

वही भगवान सब का पिता है, पालने वाला है। रक्षा करने वाला है। सारे जीव उसकी प्यारी सन्तान हैं। हम सब उसके अमृत पुत्र और पुत्रियां हैं। वही हमारा सब का सच्चा पिता है।

न ह्यस्य कश्चित् जनकः

न हि-नहीं है अस्य-इस परमेश्वर का कश्चित्-कोई जनक-पिता। उसका कोई उत्पन्न करने वाला नहीं। वह किसी का भी पुत्र नहीं बन कर पैदा होता। कभी जन्म मरण मे नहीं आता। अमूर्त और निराकार है।

सच्चिदानन्दस्वरूपः

वह परमात्मा सदा सत् चित ज्ञानी तथा आनन्द स्वरूप है। वह सत् है, चित् है और आनन्दमय है। प्रकृति केवल सत्, जीव सत् और चित् किन्तु परमेश्वर सत् चित् आनन्द है।

आ र्य भू मि का

सम्पादक—त्रिलोक चन्द्र शास्त्री — अधिष्ठाता—सन्तोष राज मंत्री सभा

आर्य कुमार आंदोलन क्यों ?

(ले—श्री राम प्रकाश जी ज्योति निकेतन धर्म शाला)

इस शीर्षक के अन्तर्गत एक लेख माला लिखने का विचार है। तीन विषयों पर इस लेख माला में विचार किया जाएगा।

एक—आर्य कुमार आन्दोलन क्यों ?

दो—आर्य कुमार आन्दोलन किस प्रकार ?

तीन—आर्य कुमार आंदोलन अब तक ?

लेख माला की आवश्यकता क्यो पड़ी ?

बड़े दिनों से—लग भग दस वर्ष से—मन में मन्थन चलता आ रहा था। कोई युवक आंदोलन भारत में छिड़ना चाहिए और आर्य समाज को युवकों का नेतृत्व अपने हाथ में लेना चाहिए

कुछ नजर आ नहीं रहा था। और हृदय मन्थन तीव्र से तीव्र तर होता गया। जब रह न सका तो कुछ हाथ पाव मारे। परिणाम स्वरूप पता चला कि कुछ हो रहा है। कुछ होने वाला है। कुछ न कुछ हो कर ही रहे गा।

अब मैं ने हृदय मन्थन अर्थात् स्थिति के अध्ययन विश्लेषण का—प्रयास तीव्र तर कर दिया। इन पिछली सर्दियों में पंजाब दिल्ली तथा हिमाचल प्रदेश का भ्रमण किया। कुछ आर्य कुमार सभाओं की स्थिति को पढ़ा और कुछ आर्य समाजों की दशा भी देखी।

यह अध्ययन-भ्रमण पंजाब प्रांतीय आर्य कुमार परिषद की ओर से व्यवस्थित किया गया था।

लोग पूछते थे कि यह संगठन क्यों ?

उन को उत्तर देने के लिए यह लेख माला है।

कुछ अपने मन में भी ऐसे विचार उठते थे जिन के लिए स्पष्टीकरण की आवश्यकता प्रतीत होती थी।

अपने ही मन को स्पष्ट करने के लिए भी यह लेख माला आवश्यक प्रतीत हुई।

युवकों से वृद्धों से नेताओं से माननीय जनों से बातें करते करते बहुत सी बातें ऐसी प्रकाश मे आई जिन्हें सुन कर कुछ आश्चर्य हुआ।

पता यह लगा कि कुमार आदोलन वीर आदोलन युवक आदोलन कई चले कई मिटे होता हवाता तो कुछ नहीं।

पिछले आंदोलनों की विफलता के कारणों तथा इस आदोलन की सफलता के उपायों पर विचार विनियम करने के लिए भी इस लेख माला की आवश्यकता प्रतीत हुई।

अपनी नई पीढ़ी में जोश मैं ने बहुत देखा—बहुत अधिक—जोश का ठाठे मारता हुआ सागर—सागरों के सागर—ऐसा प्रतीत होता था कि अपनी शक्ति अथाह तथा अनन्त है।

पर कुछ उलझने भी देखी परेशानिया भी समस्याओं के ढेर के ढेर—स्तभन सी किं कर्तव्य विमूढ़ता सी।

युवक पूछते थे—करने को तो सब कुछ तैयार हैं—समय भी है। जोश बड़ा उबलता है पर कैसे ? करें क्या ? कोई मार्ग दर्शन होना चाहिए।

(क) मार्ग दर्शन देने के लिए।

(ख) उद्देश्य को स्पष्टतम भाषा मे खोल कर रख देने के लिए।

(ग) कार्य करने की विधि तथा पद्धति समझा देने के लिए।

(घ) संगठन की समस्याओं पर प्रकाश डाल कर उन का समाधान प्रस्तुत करने के लिए।

(ङ) अनन्त अथाह शक्ति को एक सूत्र में पिरोने की भूमिका निर्माण करने के लिए भी इस लेख माला की आवश्यकता प्रतीत हुई।

और भी अनेक स्पष्ट अस्पष्ट ज्ञात अज्ञात छोटा बड़ा बातें हैं जिन के कारण इस लेख माला को लिखना आवश्यक जान पड़ा।

और यथा सम्भव हर बात को इस लेख माला में स्पष्ट करने की चेष्टा की जाएगी।

स्पष्टीकरण

मैं समूचे भारत में—भारत के कोने कोने में—नगर नगर में ग्राम ग्राम में आर्य कुमार आदोलन को फैलता हुआ देखना चाहता हूं

'कृण्वन्तो भारत मार्य्यम्' मेरे अपने जीवन का स्वयं स्वीकृत लक्ष्य है। स्वयं की प्रेरणा से ही मैं इस ओर प्रवृत हुआ हूं। मेरे परम पूजनीय गुरु देव पण्डित बुद्ध देव विद्यालंकार जी की कृपा मुझ पर अनन्त तथा अपार है उन का शुभाशीर्वाद मुझे सम्प्राप्त है। संरक्षण भी मार्गदर्शन भी।

और पंजाब प्रांतीय आर्य कुमार परिषद से मेरा नाता है अन्तरंग सदस्य के नाते भी और वैसे मन के अन्यतम मेल क नाते भी।

पर मैं आरम्भ मे ही यह स्पष्ट कर देना चाहता हूं कि इस लेख माला में आने वाले विचारों का उत्तर दायित्व मुझ पर ही रहेगा—केवल मुझ पर—समस्त भारत मे—अखण्ड भारत में—आर्य कुमार आदोलन सम्पूर्ण वेग के साथ फैलाकर सारे भारत के सामाजिक जीवन पर छा जानेकी परम उदात्त तथा परमपुनीत कामना से प्रेरित होकर इस लेख माला का आरम्भ कर रहा हूं इस लेख माला में कुछ सुझाव आयेंगे—कुछ स्पष्टीकरण होंगे कुछ स्थिति का निर्मम निर्दय सा विश्लेषण होगा।

कुछ युवकों के लिए होगा—अधिकतर उन्हीं के लिए होगा कुछ वृद्धों के लिए भी होगा। थोड़ा थोड़ा—इशारों इशारों में—नेताओं के लिए भी होगा।

और सब कुछ उनके लिए होगा जिन के जीवन का उद्देश्य ही हो "कृण्वन्तो भारत मार्य्यम्"

उन के लिए तो यह लेख माला मात्र ही पर्याप्त नहीं होगी ऐसे जीवित हुतात्मा वीरों कुमारों तथा युवकों के लिए तो रामप्रकाश का हृदय खुला है। शरीर प्रस्तुत है सर्वस्व उपस्थित है। सम्पूर्ण व्यक्तित्व समेत।

इन प्रारम्भिक शब्दों के साथ मैं अब लेख माला को प्रारम्भ करता हूं।

पहले कुछ लेखों में विवेचन होगा कि—आर्यकुमार आंदोलन क्यों ? इसकी आवश्यकता ही क्या है ?

आर्य जगत् के अधिष्ठाता जी

आर्य जगत् साप्ताहिक आर्य प्रादेशिक सभा पंजाब का अपना मुखपत्र है। सभा के वेदप्रचार के विशाल कार्य को ले कर स्थान २ पर मौन किन्तु प्रभावपूर्ण सन्देश ले कर निरन्तर सेवा में लगा है। सब को यह सुन कर अतिहर्ष होगा कि आर्य जगत् के प्रबंध की सारी देख रेख, अधिक विस्तार तथा और भी अधिक उत्तम बनाने के लिए सभा के महामंत्री श्री लाला सन्तोष राज जी ने कार्यों में व्यस्त होते हुए भी इस का आधिष्ठाता बनना स्वीकार किया है। हमें पूर्ण विश्वास है कि उनकी देख रेख में आर्य जगत् उन्नति करता जायगा सारे समाज, स्कूल कालेज, परिवार सज्जन युवक इस जगत् के कार्य में पूरा २ सहयोग देवें। हम श्री आधिष्ठाता जी का स्वागत करते हैं। —सं.

सभा की समाजों के उत्सव प्रचार की धूमधाम

—आ. स. कालिज विभाग रोहतक का उत्सव ४ से ६ मई को समारोह से सम्पन्न हुआ है। राजपाल जी, मदनमोहन जी, के भजन हुए। उत्सव पर श्री खुशीराम शर्मा श्रीमान् प्रो. वेदी राम जी, मेलाराम जी ने भाग लिया। प्रो० उत्तम चन्द जी प्रो० राम विचार जी भी पधारे।

आ. स गन्नौर का उत्सव ११ से १३ मई को सम्पन्न हो रहा है श्री मेलाराम जी पधार रहे हैं।

—आ. स. प्रेम नगर (करनाल) का उत्सव २५ से २७ मई को सम्पन्न हो रहा है। १८ ता. से कथा पं० ओंप्रकाश जी, करेंगे।

—आ. स. मडयड़ का उत्सव ११ से १३ मई को सम्पन्न हो रहा है।

—आ. स. मऊ (रोहतक) का उत्सव १६ से १६ मई को सम्पन्न हो रहा है। श्री चौ. भूराराम जी, श्री प्रभु दयाल जी मंडली पधारेगी।

आ. स रिवाड़ी का उत्सव १८ से २० मई को सम्पन्न हो रहा है। श्री राजपाल जी, प्रो. मदनमोहन जी पधार रहे हैं।

आ. स. हमीरपुर (कांगड़ा) का उत्सव १८ से २० मई को समारोह से सम्पन्न हो रहा है। १५ मई से खुशी राम शर्मा की कथा और मास्टर ताराचन्द जी के भजन होंगे। उत्सव पर मेलाराम जी, चन्द्रसेन जी पधार रहे हैं।

आ. स. लारेन्स रोड अमृतसर में श्री पं० ओं प्रकाश जी कथा कह रहे हैं।

श्री हजारी लाल जी, श्री शिवचरण जी राजौरी के इलाका में प्रचार के लिये पधारे हैं।

आ. स. तालू का उत्सव ६ से ९ मई को सम्पन्न हो रहा है।

आ. स. खांडा खेड़ी का उत्सव २१ से २४ मई को सम्पन्न हो रहा है।

आ स. महेउद्दीन पुर का उत्सव ८ से १० जून को समारोह से सम्पन्न हो रहा है।

आ. स कलसोरा का उत्सव १ से ३ जून को सम्पन्न हो रहा है। १६ से २१ मई कौल। २१ से २३ बस्तली। २५ से २७ मई जयधर के उत्सव पं० अमरसिंह जी द्वारा सम्पन्न हो रहे हैं।

खुशी राम शर्मा
अधिष्ठाता वेद प्रचार सभा

—०—०—

दयानंद साल्वेशन मिशन हुशियारपुर का

जनवरी से अप्रैल ६२ तक का कार्य

५१२ ईसाई और २६४३ भाई शुद्ध करके वैदिक धर्म में प्रविष्ट हुए। यह सब कार्य पंजाब मध्य प्रदेश, बिहार और उड़ीसा आदि प्रांतों में किया गया।

—शादीलाल मन्त्री, मिशन।

—०—०—

फिरोजपुर और रोहतक

आर्य समाज चौक बाजार फिरोजपुर शहर का महोत्सव इस बार बड़ी शान से मनाया गया। समाज के प्रधान श्री अर्जुनदास जी डा० साधुचन्द जी मन्त्री श्री ब्रह्मदत्त जी, स्कूल के मुख्याध्यापक जी, श्री हरिदेव जी तथा सारे मान्य भाई बहिनों के विशेष उत्साह से बड़ा उत्तम समारोह हुआ। पहिले कथा होती रही। कथा उत्सव में प्रो० सत्यदेव जी विद्यालंकार एम० ए०, पं० त्रिलोक चन्द्र शास्त्री, पं० चन्द्रसेन जी, श्री मेलाराम जी रेडियो सिंगर, श्री रामकरण मण्डली आदि पधारे नगर कीर्तन भव्य था। जनता भारी संख्या में पधारती रही। कई दिन पूर्व श्री पं० रघुवीर जी शास्त्री की अध्यक्षता में वेद यज्ञ होता रहा। स्त्रीसमाज का सहयोग वर्णनीय था। अगले सप्ताह पुरा विवरण पढ़ें।

—०—०—

प्रधाना मुहल्ला रोहतक

का महोत्सव भी पूरी शान से मनाया गया। श्री प्रधान जी, मन्त्री गुरुदत्त जी, समाज के दीवाने श्री परमानन्द जी विद्यार्थी श्री जगदीश चन्द्र जी सारे सज्जनों के उत्साह से खूब शोभा रही। उत्सव में श्री पं० खुशीराम जी शर्मा अधिष्ठाता वेद प्रचार विभाग, पं० त्रिलोक चन्द्र जी शास्त्री, प्रो० उत्तम चन्द जी एम० ए० शरर प्रो० रामविचार जी एम ए. हिसार, सभा के उपमन्त्री प्रो. वेदीराम जी शर्मा एम. ए, पं. राजपाल मदनमोहन मण्डली पं. मेलाराम जी रेडियो सिंगर, श्री प्रभुदयाल मण्डली, दयानन्द मठ के मान्य तपस्वी सोमानन्द जी महाराज ने अमृत वर्षा की। देवियों और कुमार युवकों ने बड़ा उत्साह दिखाया। समाज के कार्यकर्ताओं का उत्साह बड़ा ही प्रशंसनीय था। श्री विद्यार्थी जी का समाज प्रेम तथा कार्यकर्ताओं की रुचि देखकर मन प्रसन्न हो गया। दयानन्द मठ के प्रबन्धक स्वा. सोमानन्द जी का सौम्य स्वभाव, सत्कार भावना तो सदा स्मरण रहेगी।

—०—०—

शोक समाचार

डी० ए० वी० हायर सैकंडरी स्कूल माडल टाऊन यमुना नगर के मान्य प्रिंसिपल श्री पं० रामलाल जी शर्मा के पूज्य पिता श्री प० गगाधर जी के निधन का समाचार सुनकर हार्दिक दुःख हुआ। ६५ वर्ष की आयु तक स्वर्गीय पण्डित जी प्रभु निष्ठा, स्वाध्याय तथा सेवा कार्य मे बड़े ही प्रसिद्ध रहे हैं। जीवन सात्विक, सौम्य तथा यज्ञमय था। यजुर्वेदी ब्राह्मण होने के नाते वेद कण्ठस्थ था। परिवार परम्परा से चली आ रही यजुर्वेद की पुस्तक का नित्य स्वाध्याय करते थे अन्तिम समय तक पूरी चेतना में रहकर सारी शरीर क्रिया का श्री शर्मा जी को पास बिठाकर आदेश देते रहे कि मेरी अस्थिया गगा में न डाली जायें, कोई भी वेद के विरुद्ध कार्य न किया जाये। प्रभु भजन, मन्त्र के उच्चारण के साथ शरीर छोड़ा। प्रिंसिपल जी ने अपने पूज्य पिता जी की सेवा करने में रात दिन एक कर दिया। सारे परिवार के साथ समवेदना, सहानुभूति प्रकट करते हुए प्रभु से शांति व धैर्य के प्रार्थी हैं।

—०—०—

पत्र सूचना

कार्यालय भारत से

राष्ट्रपति और उपराष्ट्रपति १३ मई

डा० राजेन्द्र प्रसाद का सायंकाल प्रस्थान

देहली ५ मई, १९६२ नए राष्ट्रपति और उपराष्ट्रपति १३ मई को सुबह संसद-भवन के केन्द्रीय हाल में शपथ लेंगे। इस अवसर पर मंत्रिगण, संसद-सदस्य, राजदूत और कुछ उच्च-अधिकारी उपस्थित होंगे। राष्ट्रपति और नए राष्ट्रपति की सवारी राष्ट्रपति-भवन से संसद-भवन आएगी। मार्ग के दोनों ओर सैनिक तैनात होंगे। संसद-भवन के बाहर राष्ट्रपति के अंगरक्षक उन्हें राष्ट्रीय सलामी देंगे। द्वार पर नए उपराष्ट्रपति, प्रधान मन्त्री, मुख्य न्यायाधीश और लोकसभा के अध्यक्ष, राष्ट्रपति और नए राष्ट्रपति का स्वागत करेंगे।

राष्ट्रपति और नए राष्ट्रपति जलूस में हाल में आएंगे और उनके साथ नए उपराष्ट्रपति, मुख्य न्यायाधीश और लोकसभा के अध्यक्ष होंगे। पहले गृह-सचिव चुनाव आयोग के पत्र से नए राष्ट्रपति के नाम की घोषणा करेंगे और फिर उन्हें शपथ दिलाई जाएगी। नए राष्ट्रपति के पद-ग्रहण करते ही ३१ तोपों की सलामी दी जाएगी।

इसके बाद नए उपराष्ट्रपति को शपथ दिलाई जाएगी।

नए राष्ट्रपति संक्षिप्त भाषण देंगे और डा० राजेन्द्र प्रसाद को "भारत-रत्न" अलंकार भेंट करेंगे। डा० राजेन्द्र प्रसाद इसका उत्तर देंगे।

राष्ट्रपति और पुराने राष्ट्रपति राष्ट्रपति-भवन लौटेंगे जहां राष्ट्रपति तीनों सेनाओं की सलामी लेंगे। १३ मई को सायंकाल राष्ट्रपति एक भोज देंगे, जिस में लगभग दो हजार व्यक्ति निमंत्रित किए जाएंगे। उसी शाम डा० राजेन्द्र प्रसाद एक विशेष रेलगाड़ी से पटना रवाना हो जाएंगे। उनके साथ श्री सत्यनारायणसिंह साथ जाने वाले मंत्री की हैसियत से यात्रा करेंगे।

—डाक-तार विभाग १३ मई को राष्ट्रपति डा० राजेन्द्र प्रसाद के सेवानिवृत्त होने के अवसर पर एक विशेष डाक-टिकट जारी करेगा।

यह डाक-टिकट १५ न. पै. का होगा और इस पर राष्ट्रपति डा० राजेन्द्र प्रसाद का चित्र होगा।

—जिनेवा में ८ मई से जो १५वां विश्व स्वास्थ्य सम्मेलन हो रहा है, उस में भारतीय प्रतिनिधिमंडल का नेतृत्व मद्रास विश्वविद्यालय के उपकुलपति डा० ए० एल० मुदलियार करेंगे।

आजकल आकाशवाणी के आडिटोरियम में टेलीविजन से पढ़ाई के बारे में जो बैठक हो रही है, उसके तीसरे दिन ५ मई, १९६२ को दिल्ली के लगभग १८० स्कूलों के प्रिंसिपल उस में हिस्सा लेंगे। बैठक में टैलीविजन के स्कूल-कार्यक्रमों पर विशेष कर इन्हें स्कूलों के टाइम-टेबल में स्थान देने पर विशेष रूप से विचार होगा।

दस नियमों का पालन करना आर्यों का नित्य कर्म है

समालोचना

प्रेरणा के अक्षय स्रोत

पृष्ठ संख्या २४ साईज २०×३०/१६ कीमत आर्य कुमारों में ज्योति विस्तार।

लेखक श्री राम प्रकाश जी ज्योति निकेतन धर्मशाला छावनी।

श्री राम प्रकाश जी, आर्य कुमारों में जागृति पैदा करने वाला साहित्य सृजन कर रहे हैं इस ग्रन्थमाला का पहला पुष्प "मैं आर्य कुमार हूं, पहले में लिखा जा चुका है दूसरा पुष्प" प्रेरणा का अक्षय स्रोत हमारे सामने है। ९८ कविताएं लिखी गई हैं जिनका सम्पूर्ण झुकाव ईश्वर भक्ति वा युवक प्रेरणा की ओर है। यही लक्ष्य रख कर ही ज्योति निकेतन की स्थापना की है। अनेक छोटे २ आर्य युवक सम्बन्धी विषय बालकों के ओत-प्रोत ट्रैक्ट निर्माण किये जा रहे हैं कुछ लिखे जा चुके हैं और शेष लिखने वाले हैं। इन में जनता के मानसिक व बौद्धिक स्वास्थ्य के स्तर को ऊंचा करने का लक्ष्य ही रखा गया है। पुस्तक नव युवकों युवतियों के लिये लाभदायक, ज्ञानकारी है।

प्राप्ति स्थान—श्री राम प्रकाश जी अध्यक्ष शांति निकेतन धर्मशाला छावनी जिला कांगड़ा।

आर्य समाज की स्थापना

रविवार दि० २२ अप्रैल १९६२ रात को ठीक आठ बजे शीतल चौक आर्य प्रतिनिधि सभा सिन्ध द्वारा संचालित 'दयानन्द हिन्दी रात्रि विद्यालय' में आर्य भाइयों का समारोह हुआ। जिस में कमरा नं० २ में आर्य समाज की स्थापना की गई। जहां निम्नलिखित पदाधिकारी सर्व सम्मति से चुने गये :—

(१) प्रधान श्री वेदाराम वैद्य

(२) मन्त्री श्री नेभाराम

(३) कोषाध्यक्ष श्री भगवानदास

और श्री [illegible] सदस्य अंतरंग सभा के चुने गये और उसके अतिरिक्त [illegible] आर्य प्रतिनिधि सभा सिन्ध के लिये चुने गये।

स्त्री आर्यसमाज की स्थापना

रविवार दि० २४-४-६२ शाम को पूरे चार बजे श्री महावीर हनुमान मन्दिर कल्याण कैम्प ३ में पंजाबी स्त्रियों का विशेष सत्संग हुआ। सत्संग के बाद स्त्री आर्य समाज की स्थापना हुई। जिस में २५ स्त्रियां सम्मिलित हुई। चुनाव इस प्रकार सम्पन्न हुआ।

(१) प्रधान—विमलादेवी हरबंसलाल, (२) उपप्रधान—सत्यादेवी हरिमालाल, (३) मन्त्री—भगवन्तीदेवी रामलाल, (४) उपमंत्री—वीरांवाली सीताराम (५) कोषाध्यक्ष—शांतिलाल कृष्णलाल।

—अन्तरंग सदस्य—

(१) विशम्बरीदेवी रामचन्द्र आर्य; (२) चम्पादेवी ओम प्रकाश, (३) चन्द्रकांता भीखमदास, (४) सुशीलादेवी त्रिलोकचन्द्र।

सिन्ध आर्य प्रतिनिधि सभा के सदस्य

(१) प्रधान— विमलादेवी, (२) मन्त्री— भगवन्तीदेवी, (३) विशम्बरीदेवी, (४) कमला देवी बिहारीलाल।

मुद्रक व प्रकाशक श्री संतोष राज जी मंत्री आर्यप्रादेशिक प्रतिनिधि सभा पंजाब जालंधर द्वारा वीर मिलाप प्रैस, मिलाप रोड जालंधर से मुद्रित तथा आर्य जगत कार्यालय महात्मा हंसराज भवन निकट कचहरी जालन्धर शहर से प्रकाशित साप्ताहिक—आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा पंजाब जालन्धर

टेलीफोन नं० ३०५७ [आर्यप्रादेशिक प्रतिनिधि सभा पंजाब जालन्धर का साप्ताहिक मुखपत्र] Regd No.P 121

एक प्रति का मूल्य १३ नये पैसे | वार्षिक मूल्य ६ रुपये

वर्ष २२ अंक २०) रविवार ७ ज्येष्ठ २०१९— २० मई १९६२ दयानन्दाब्द १३८ (तार-प्रादेशिक जालन्धर

वे द सू क्त यः

अग्ने स्वेन संरभस्व

हे वीर ! स्वेन-अपने बल से, ज्ञान से संरभस्व-विजय आरम्भ कर। हे ज्ञानी नर ! तू अपने पराक्रम, ज्ञान, जीवन आचार विचार से सब पर विजय पाने का कार्य आरम्भ कर दे।

अग्ने मित्रधा यतस्व

हे बलशाली वीर पुरुष ! तू मित्रधा अपने मित्रों को धारण करता हुआ यतस्व-विजय का यत्न कर। सारे मित्रों को साथ मिला ले। सारी शक्ति के साथ सर्वत्र विजय प्राप्त कर। तेरे सामने कोई न ठहर सके।

अभिमातिजिद् भव

हे वीर ! जो लोग वा शत्रु अभिमानि अपने बल वा ज्ञान पर अभिमान करते हैं—उनको जित् जीतने वाला भव-हो जा। अभिमानियों का मान चूर २ करके विजयी बन जा।

अ थ र्व वे द से

वे दा मृ त

अग्ने नय सुपथा राये अस्मान् विश्वानि देव वयुनानि विद्वान् । युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठां ते नम उक्तिं विधेम ॥ यजु० ४०-१६

अर्थ—हे (अग्ने) स्व प्रकाश ज्ञानस्वरूप सब जगत् के प्रकाश करने हारे (देव) सकल सुखदाता परमेश्वर ! आप जिस से (विद्वान) सम्पूर्ण विद्या युक्त हैं कृपा करके (अस्मान) हम लोगों को (राये) विज्ञान व राज्य आदि ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिए (सुपथा) अच्छे धर्मयुक्त आप्त लोगों के मार्ग से (विश्वानि) सम्पूर्ण (वयुनानि) प्रज्ञा और उत्तम कर्म (नय) प्राप्त कराइये और (अस्मत्) हम से (जुहुराणम्) कुटिलतायुक्त (एनः) पाप रूप कर्म को (युयोधि) दूर कीजिये इस कारण हम लोग (ते) आप की (भूयिष्ठाम्) बहुत प्रकार की स्तुति रूप (नम उक्तिम्) नम्रता पूर्वक प्रशंसा (विधेम) सदा किया करें और सदा आनन्द में रहें।

(ऋषि भाष्य)

भाव—हे मेरे जीवनरथ के सारथी ! अग्निरूप नेता ! हम नहीं जानते कि हमारे जीवन के लिए कौन सा पथ ठीक है, सीधा है हमारा ज्ञान बहुत थोडा है। कभी २ कुपथ को भी सुपथ समझ कर चल पड़ते हैं। परन्तु बाद में ठोकर खाकर गिर पडते हैं। महान पाप कर बैठते हैं। कुछ नहीं सूझता कि क्या करें ? ऐसी अवस्था में आपके बिना जीवनरथ का सारथी कौन बने ? आप सर्वज्ञ हो पिता हो। पापमार्ग से बचाने वाले हो।

देव ! जीवन के नेता बन कर सुपथ पर, सुखसरणी पर ले चलो। पाप से बचाओ, दोषों से दूर रखो। आपको नमस्कार है। आप का ही भजन पूजन अर्चन व स्तवन करते हैं—मेरे—नाविक ! ले चलो मेरी नय्या—सं०

ऋ षि द र्श न

नैव वेदानामनित्यत्वम्

नैव—नहीं है वेदनाम्-वेदों का अनित्यत्वम-अनित्यपन। वेद सदा नित्य हैं। कभी भी अनित्य नहीं। क्योंकि ब्रह्म सदा नित्य है। वेद उसी का ज्ञान होने से सर्वदा नित्य ही हैं।

सर्वदैक रस वर्तमानत्वात्

सर्वदा एक रस में वर्तमान होने से। क्योंकि ब्रह्म सदा ही एक रस है। उस में न कभी विकार और कोई परिवर्तन होता है। इसीलिए उसका ज्ञान वेद भी सदा नित्य ही है। इस में भी कोई परिवर्तन नहीं होता।

वेदा नित्याः सन्ति

प्रभु के ज्ञान वेद नित्य हैं। सदा ही बने रहते हैं। मनुष्य का ज्ञान बदल सकता है। अनेक रस भी हो सकता है। परन्तु ब्रह्म का वेद रूपी ज्ञान सदा ही नित्य और अविनाशी रहता है। वेद नित्य हैं।

भा ष्य भू मि का

मुद्रक: त्रिलोक चन्द्र शास्त्री | अधिष्ठाता—संतोष राज मंत्री सभा

सामाजिक और राष्ट्रीय क्रान्ति के उद्घोषक कवि

पं० प्रकाश चन्द्र 'कविरत्न'

(ले०—श्री भवानी लाल जी M.A भारतीय जोधपुर)

सन् १९२५ में आर्य समाज के संस्थापक और सामाजिक तथा धार्मिक क्रान्ति के सूत्रधार महर्षि दयानन्द की जन्मशताब्दि मथुरा में बड़ी धूम धाम से मनाई गई। इस अवसर पर एक नवयुवक कवि का गीत बड़ा लोकप्रिय हुआ और उत्तर भारत के सुधार प्रिय लोगों की वाणी पर चढ़ गया। वह गीत था 'वेदों का डंका आलम में बजवा दिया देव दयानन्द ने' और गीत के रचयिता थे सुप्रसिद्ध कवि पं० प्रकाशचन्द्र कविरत्न। इसके बाद कविरत्न जी प्रचार सत्र में उतर पड़े और उनकी समाजिक राष्ट्रीय उद्बोधन युक्त कविताएं जनता का कंठहार बनने लगीं।

पं० प्रकाश चन्द्र जी का जन्म आश्विन शुक्ला नवमी वि० सं० १९६० में अजमेर में हुआ। इन के पिता पं० बिहारीलाल शर्मा पुराने विचारों के अनुदार सनातन धर्मी परन्तु साथ ही कवि और संगीतज्ञ थे। काव्य और संगीत के प्रति रुचि प्रकाश जी को पैत्रिक संपत्ति के रूप में मिली। किशोर प्रकाश का प्रारंभिक शिक्षण डी. ए. वी. हाई स्कूल अजमेर में हुआ। जहां उन्होंने मिडिल तक अध्ययन किया। पिता के स्वर्गवासी हो जाने के पश्चात् वे गुजरात की मिल में लेखक का कार्य करने लगे। इस काल मे भी प्रकाश जी को क्रिकेट, कविता, तथा संगीत से अपार प्रेम था और उन की कुछ कुछ गति इन कलाओं में होने लगी थी।

अमृतसर में हुए जलियान वाला बाग हत्याकाण्ड ने देश के सहस्त्रों नवयुवकों के मानस को बुरी तरह झकझोर दिया। युवक प्रकाश के लिये भी निर्णायक घड़ी उपस्थित हो गई। अपना संपूर्ण जीवन दासता की बेड़ियों को कठोर करने में लगाये अथवा उन से मुक्त होने का प्रयास करे यही समस्या थी। अन्त में राष्ट्रीय विचारों की विजय हुई और प्रकाश जी ने मिल की नौकरी छोड़ कर राष्ट्रीय कार्यों में भाग लेना प्रारंभ किया। महात्मा गांधी के के नेतृत्व में चलने वाले स्वाधीनता संग्राम मे उन्होंने सक्रिय रूप से भाग लिया।

इसी बीच प्रकाश चन्द्र जी का आर्य समाज के सांस्कृतिक और धार्मिक पुनर्जागरण के कार्य से परिचय हुआ। शुक्लतीर्थ (गुजरात) के मेले में उन्होंने भोले भाले दलित वर्ग के लोगों को विदेशी ईसाई प्रचारकों के चंगुल में फंसते देखा और साथ ही यह भी अनुभव किया कि आर्य समाज के कार्यकर्ता उन्हें अपने पैतृक धर्म में ही रखने के लिये चेष्टा कर रहे हैं। इसी बीच मालावार मे मोपला हत्याकांड की अवाञ्छनीय घटनाएं हुई और युवक कवि प्रकाश का हृदय दोलायमान हो उठा। अब वे आर्य समाज मे प्रविष्ट हो गये और गुजरात को उन्होंने अपना कार्य क्षेत्र बनाया। यहां उन्हें स्वर्गीय स्वामी श्रद्धानन्द जी प० सत्यव्रत सिद्धान्ता लंकार वर्तमान उपकुलपति गुरुकुल कांगड़ी आदि महापुरुषों का संसर्ग एवं मार्गदर्शन प्राप्त हुआ।

कुछ समय के उपरांत प्रकाश जी अपने जन्म स्थान अजमेर लौट आये और राज स्थान के सुप्रसिद्ध वैदिक मिशनरी पं० राम सहाय जी की प्रेरणा से आर्य प्रतिनिधि सभा राजस्थान के प्रचारक होकर प्रान्त मे सामाजिक, राष्ट्रीय और धार्मिक क्रांति का शंखनाद करते रहे। अजमेर में ही सुप्रसिद्ध आर्य समाजी नेता स्व० देशभक्त कुंवर चांद करण जी शारदा और स्व० कर्मवीर जिया लाल जी से उन्हें मार्गदर्शन प्राप्त होता रहा।

प्रकाश जी को काव्य रचना की प्रेरणा हिंदी के सुप्रसिद्ध कवि कविता कामिनीकांत प० नाथु राम शंकर राम शर्मा से प्राप्त हुई। प्रकाश जी उन्हें अपना काव्य गुरु मानते हैं। यद्यपि महाकवि शंकर का अभी हिंदी साहित्य मे यथार्थ मूल्यांकन नहीं हुआ है और वे कट्टर आर्य समाजी प्युरिटिन काव्य के प्रणेता ही माने जाते रहे हैं। परन्तु वह दिन दूर नहीं जब कि उन के काव्य की रसोद्रेक करने वाली शक्ति का ठीक ठीक परिचय सुधी समलोचकों को मिलेगा और स्वर्गीय शंकर का यथार्थ मूल्याकन हो सकेगा। सुप्रसिद्ध पत्रकार पं० बनारसी दास जी चतुर्वेदी, विशाल भारत संपादक पं० श्री राम शर्मा, और शंकर जी के सुपुत्र पं० हरि शंकर जी शर्मा इस विषय में प्रयत्नशील हैं। अस्तु। प्रकाश जी की काव्य प्रेरणा के स्रोत भी शंकर जी के काव्य ग्रन्थ 'शंकर सरोज' और अनुराग रत्न' ही रहे हैं। महाकवि शंकर को श्रद्धांजलि अर्पित करते हुये कविरत्न जी ने निम्न कवित्त की रचना की है।

शंकर सरोज सुकलित मृदु मकरंद पान जिसने भी किया वो निहाल हो गया
अनुराग रत्न की अनूप आभा अवलोक
अनुराग से विभोर अन्त राल हो गया।
गुरुदेव शंकर कृपा से मैं 'प्रकाश' तुच्छ
आज जनगण मन मंजु माल हो गया।
अथवा यूं कहदूं कबीर के वचन भांति
लाली देखने चला था मैं भी लाल हो गया॥

पं० हरिशंकर शर्मा जी की भी पूर्ण कृपा प्रकाश जी पर रही है और वे कवि की रुग्णावस्था में उन्हें पर्याप्त सहायता प्रदान करते रहे हैं।

१९३० के राष्ट्रीय आंदोलन में कविरत्न जी को कारावास भुगतना पड़ा। जेल जीवन की स्मृति में उन्होंने एक मनोरंजक कविता लिखी जो इस प्रकार है:—

नंगी देह पै उड़ाते चाबुक थे अधिकारी
किन्तु वो हमारे लिये फूल की थी छड़ियां।
स्वाद आता था सुधा सा रूखी रोटियों में
मारे भूख जब सूख जाती थीं अंतड़ियां।
गाते थे तराने देश प्रेम के दीवाने बन
तबले की ताल पै बजा के हथकड़ियां।
था हर्षोन्माद था किंचित् विषाद आह,
आती है वो याद जेल जीवन की घड़ियां॥

कहना न होगा कि प्रकाश जी के अनेक राष्ट्रीय भावों से परिपूर्ण गीत अपने समय में अत्यधिक लोकप्रिय हुये थे।

अपने कार्यकाल में प्रकाश जी का परिचय और सम्पर्क देश के सभी प्रमुख नेताओं तथा साहित्य-कारों से रहा। स्वामी श्रद्धानन्द जी, वीतराग स्वामी सर्वदानन्द जी, पंजाब केसरी लाला लाजपतराय जी, महामना मालवीय जी, नेता जी सुभाष बोस, पं० जवाहर लाल नेहरू आदि के निकट सम्पर्क में वे सुप्रसिद्ध समालोचक पं० पद्मसिंह शर्मा, पं० बालकृष्ण शर्मा, 'नवीन' महाकवि 'निराला, गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही' महाकवि अनूप शर्मा श्री जगदम्बा प्रसाद 'हितैषी' श्री हरिकृष्ण प्रेमी, मुंशी महादेवी आदि का सान्निध्य भी उन्हें प्राप्त हुआ। (क्रमशः)

-सम्पादकीय—

आर्य जगत्

वर्ष २२] रविवार ७ ज्येष्ट २०१८, २० मई १९६२ [अंक २०

राजमहल के जनक

भारतीय आदर्श सभ्यता के स्वर्णिम अतीत युग के महाराजा जनक को विदेह के शुभ नाम से भी पुकारा जाता है। जो भौतिक वैभव भण्डारों में रहता हुआ, खाता पीता हुआ, उनका योग प्रयोग करता हुआ भी उन में आसक्त, अनुरक्त, लिप्त विक्षिप्त नहीं होता। पद्मपत्र मिवाम्भसा के अनुसार जल में रह कर, जीवन रस लेकर भी कमल फूल के समान सदा पानी से ऊपर ही ऊपर रहता है। उस में डूबता नहीं, जल उसे छू नहीं सकता—उसे आर्य सभ्यता में विदेह कहा गया है। शरीर होते हुए भी बिना शरीर के है। महाराजा जनक के लिए यह उपाधि प्रसिद्ध हो चुकी है। आसन शासन पर बैठ कर शक-चक्र चलाते हुए, राजमहल में निवास करते हुए भी सदा भौतिकवाद में अलिप्त रहे, तभी विदेह कहलाये। राजभवन में भी सन्त महात्मा थे।

गत दिनों पूज्य तपस्वी आदर्श राष्ट्रपति डाक्टर राजेन्द्र प्रसाद जी का राष्ट्रपति आसन से एक उच्च आदर्श स्थापित करते हुए स्वयं ही इस पद से मुक्त होने वाले का विदाई स्वागत सम्मान करने के लिए आर्य समाज के गवय मान्य नेता सज्जन एक हजार की संख्या में जब राष्ट्रपति भवन में गये। तो आर्य जगत् के आदर्श सन्यासी महात्मा आनन्द स्वामी जी महाराज ने श्री राष्ट्रपति का सम्मान करते हुए बड़े सुन्दर शब्दों में कहा कि—इस महान् राजमहल में सन्त जनक बैठे हैं। इसें अतीत पुनीत युग का स्मरण कराते हैं। इस विदेह जनक के उदात्त जीवन त्याग तप निष्ठा, कर्मशीलता, अध्यात्मवाद के भावों से भरे जीवन के द्वारा सारे देश समाज का मस्तक बहुत ऊंचा है। आज के भौतिक युग में भोग भण्डारों का वेग वाला प्रवाह चल रहा है। इस में सारा विश्व बहता जा रहा है। शरीर वाद का बोल बाला है। लोग विस्त-देह बन रहे हैं। किन्तु ऐसे समय में भी भारत जैसे विशाल, विभूतिमय राष्ट्र के इतने गौरवमय आसन पर बैठ कर, इतने भव्य प्रत्येक जीवन सामग्री से भरे राष्ट्रपति भवन में रह कर भी हमारे देवता राष्ट्रपति इन भोगों से बहुत ऊंचे हैं। राजमहल में विदेह जनक हैं। भारत की सभ्यता के सुन्दर प्रतीक हैं। सारे देश को बड़ा गौरव है।

महात्मा जी के गम्भीर शब्द सर्वथा सत्य गम्भीर और अपने अन्दर भारतीय जीवन का आदर्श लिये हुए हैं। माननीय राष्ट्रपति जी की नानाविध भाषाओं की योग्यता, लेखन कला, वाक् शक्ति, गम्भीरता कितनी ऊंची है—पर उनके शरीर और जीवन पर आज के भोगयुग ने अपना प्रभाव तनिक भी नहीं डाला। आज का साधारण सा छात्र-छात्रा या और कोई चार अक्षर अंग्रेजी के या चार पैसे धन के पाने पर फैशन और फैशन में विचार, उच्चार, व्यवहार में कितना बदल जाता है ! सब सब के सामने है। किन्तु इतना महान् व्यक्ति विचारों में, वेषभूषा, खानपान में रत्ती भर नहीं बदला। आज कोई भी आसन शासन को जीते जी नहीं छोड़ना चाहता। मौत छुड़ा दे तो छुड़ा दे। इस पदलिप्सा ने जीवन का सारा चित्र ही बिगाड़ दिया है। आयु की कोई सीमा नहीं। खिलवाड़ सा जाती है। पर राष्ट्रपति ने एक महान् आदर्श पेश किया है। देश उन को अभी चाहता था पर वे नहीं माने। भारी त्याग है। प्रभु करे कि वे सदाकत आश्रम पटना में बैठ कर सदा स्वस्थ रहें। अपने परामर्श से जनता का पथ-प्रदर्शन करते रहें। दूसरे लोग भी राजमहल के इस जनक से जीवन पाठ पढ़ें। —त्रिलोक चन्द्र

तपोवन नाला पानी देहरादून

हाथी में बड़ी शक्ति है, किन्तु चालक का अंकुश बड़ा आवश्यक है। नदी की धारा, बिजली का केन्द्र, नाना प्रकार के यान टांगा, मोटर, रेल, जहाज, विमान, घोड़ा आदि बड़ा काम देते हैं—परन्तु सब के लिए ब्रेक, लगाम और किनारों की सीमा अनिवार्य है। मर्यादा की देखभाल के बिना ये सारे साधन राष्ट्र का विनाश करके रख देते हैं। शरीर का सारा कार्य तभी चल सकता है जब ऊपर का ब्रह्म चल ठीक हो। उसका शासन सारे शरीर को वश में रखता हो—नहीं तो मानवी जीवन का सारा भव्य भवन भस्म हो जाता है। चालक बिना रेल दुर्घटना का शिकार हो जाती है। यही नियम देश समाज पर भी लागू होता है। प्राचीन भारत में सारे देश के कोने २ में ऋषि महात्माओं के बड़े सुन्दर आश्रम होते थे—जहां बैठे हुए महात्मा जन निष्काम होकर सारे देश की प्रजा के जीवन पथ को देखा करते थे। भौतिकवाद का बोलबाला न हो जाये, अध्यात्म धारा सूख न जाये—इस ओर विशेष ध्यान देते थे। रामायण काल में ऋषि भरद्वाज, अगस्त्य, अत्रि, सुतीक्ष्ण वसिष्ठ तथा महाभारत युग में संदीपनि, व्यास आदि एवम् दूसरे युग में ऋषि जैमिनि, पिप्पलाद, यम, याज्ञवल्क्य सरीखे देवों के आश्रम थे। यहां से सारे समाज को जीवन रस मिलता था। भारत की प्राचीन प्रथा आज भी कायम है। आज भी अरविन्दाश्रम, रमण आश्रम, बेलूर मठ, शंकर आश्रम किसी न किसी रूप में प्रतीक बने हुए हैं।

आर्य समाज ने भी इस दिशा में सुन्दर काम किया है। कई आध्यात्मिक आश्रम बनाये। उन में देहरादून का तपोवन नाला पानी अपना खास स्थान रखता है आश्रमों की ख्याति उनके मकानों से केवल नहीं होती अपितु महान व्यक्तियों से होती है। अकेला गुरु विरजानन्द साधारण सा मथुरा में शाला आश्रम बना कर सारे भारत को हिला सकता है। जीवन से आकर्षण होता है। महात्मा आनन्द स्वामी ने परिवार में सब कुछ होते हुए संन्यास लिया। खेद है कि आज समाज में आदर्श व्यक्ति बहुत कम संन्यास लेते हैं। पर से कोई निकलना नहीं चाहता। श्री आनन्द स्वामी जी ने संन्यास लिया। सारा वर्ष भारत और बाहिर वेदसन्देश देने भ्रमण करते हैं। वर्ष में अप्रैल मास में तपोवन देहरादून में रह कर सप्ताह दो सप्ताह के लिए योग साधना, ब्रह्म चिन्तन आध्यात्मिक शिविर लगता है। जगत् के गतांक में तपोवन के इस ब्रह्म सप्ताह के समाचार को पढ़ कर कौन रस-विभोर नहीं हो जाता। पढ़ने सुनने लिखने तथा आंखों से सारा दृश्य देखने में भारी अन्तर होता है।

(शेष पृष्ठ ५ पर)

आर्य समाज चौक फिरोज़पुर का धर्म मेला

यज्ञ कथा और भाषणों की धूम

सभा वेद प्रचार में ५०० रु. भेंट

आर्य प्रादेशिक सभा के साथ जिन समाजों का सम्बन्ध है उन में फिरोजपुर चौक आर्य समाज का भवन तो देखने वाला ही है। स्वर्गीय ला. काशी राम जी आर्य समाज के परमभक्त थे। महात्मा हंसराज जी के बड़े श्रद्धालु थे। ऊंचे पद पर बैठ कर तथा वैभव के भण्डारों में खेलते हुए भी आर्य समाज की सेवा को सदा जीवन में आगे आगे रखा। अपनी देख रेख में इतना सुन्दर भव्य, आलीशान समाज मंदिर बनवाया—जिसे आज भी देख कर मन नाच उठता है। एक २ ईंट में उन का समाज प्रेम, धर्मश्रद्धा टपकती है। ऐसे मंदिर बहुत थोड़े ही होंगे। साथ ही ट्रस्ट भी बना गये ताकि प्रचार में सहायता मिलती रहे। सैंकड़ों रुपये दुकानों के किराये की भी मासिक आय है। बड़ा सुन्दर दैनिक वाचनालय भी चलता है जिस में दैनिक साप्ताहिक-मासिक पत्र आते हैं। समाज का उपासना हाल तो बड़ा ही सुन्दर शान्त है। स्वर्गीय भक्त धर्मामल जी द्वारा बनवाई यज्ञ शाला भी मनोरम है।

इस वर्ष समाज का महोत्सव बड़ी ही शान से मनाया गया। जैसा समाज है वैसा ही इस का महोत्सव भी शानदार होता है। स्त्री समाज भी बड़ा जागृत है। बड़ी श्रद्धा से काम होता है। उत्सव से पहिले श्री पं. त्रिलोक चन्द्र जी शास्त्री तथा प. राम करण, महावीर, नथू राम जी मण्डली के मनोहर उपदेश कथा व संगीत होते रहे। लोगों की धर्म रुचि और आध्यात्मिक विचारों को सुनने की भावना देखकर सब का मन प्रसन्न होता है। उत्सव में समाज के गम्भीरवक्ता श्री पं. सत्यदेव जी विद्यालंकार एम. ए. प्रोफेसर डी. ए. वी. कालेज जालन्धर, श्री. प्रि. मेला राम जी वर्क करनाल, पं. शिवचरण जी, पं. मेला राम जी रेडियो सिंगर, पं राम कर्ण मण्डली आदि महानुभावों ने पधार कर खूब आनन्द दिया। श्री प्रो. सत्य देव जी विद्यालंकार के गम्भीर प्रवचनों ने कमाल किया। जनता बड़ी प्रभावित थी श्री वर्क जी के ओजस्वी भाषण थे। श्री पं. चन्द्र सेन जी प. मेला राम जी, पं. राम कर्ण मण्डली का भी खूब प्रभाव पड़ा। जलसा बड़ा ही शान्दार था। प्रातः यज्ञ श्री पं. रघुवीर सिंह जी शास्त्री की अध्यक्षता में चलता था। सभा को वेद प्रचार के लिए ५०० रु. भेंट किए गये।

इस समाज के मान्य अधिकारियों ने अनथक परिश्रम, बड़ी श्रद्धा का परिचय दिया। श्री. ला. अर्जुनदास जी प्रधान समाज, श्री पं. ब्रह्मदत्त जी मंत्री का उत्साह देख मान होता है। डा. साधु चन्द जी तथा उन की श्रीमती जी, बहिन सत्यवती जी, श्री. ला. हरि देव जी आर्य पुराने तपस्वी समाज के आदर्श कार्यकर्ता महन्त राम जी, श्री यश राज जी जग्गा, मान्य दीवान जयकृष्ण जी, श्री महता प्रताप चन्द जी, हरभगवान मैमोरियल स्कूल के मान्य हैडमास्टर जी, श्री म. मदनजित् जी श्री. भण्डारी, श्री. मुंशी जी आदि सारे महानुभावों ने कार्य में अनथक परिश्रम किया। माताओं बहिनों ने भी कमाल किया। समाज की जागृति पर बधाई है। यह वर्ष के वर्ष जागृति बनी रहे।

आर्य समाज लाजपत नगर सोनीपत समारोह

प्रसिद्ध नेताओं विद्वानों के ओजस्वी भाषण

सभा वेद प्रचार के लिए २५० रु. भेंट

आर्य प्रादेशिक सभा के योग्य आर्योपदेशक श्री. पं चन्द्र सेन जी ने बड़े परिश्रम, उत्साह से लाजपत नगर सोनीपत में सभा से सम्बन्धित आर्य समाज वहां के प्रतिष्ठित सज्जनों के सहयोग से बनाई। इस में आर्य समाज के सच्चे दीवाने प्रसिद्ध कवि स्वर्गीय मनोहर लाल जी शहीद का बड़ा सहयोग था। आज कल श्री. म. भरत देव जी प्रो० श्री. आसानन्द जी, श्री दयाल चन्द्र जी मा. मेघ राज जी मा. रामचन्द जी, मा. खुशी राम जी, आदि अनेक उत्साही सज्जन समाज के लोक सेवा के काम को अपना तनमन धन देकर आगे ही आगे ले जाने में लगे रहते हैं। सोनी पत की इस समाज का वार्षिक उत्सव देखने और सुनने वाला ही होता है। जनता इतनी आती है कि देख कर यह गौरव होता है कि आर्य समाज की आवाज, सन्देश तथा वैदिक धर्म के सिद्धान्तों को सुनने के लिए लोगों में कितनी श्रद्धा रुचि है। जो लोग कभी ऐसा कह देते हैं कि लोग आज समाजके प्रति कमश्रद्धा रखनेलगे हैं। वे इस जलसे की भीड़ को देख कर प्रसन्न हो जाते हैं। अधिकारियों का उत्साह बड़ा ही प्रशंसनीय है। प्रति वर्ष का उत्सव अपनी विशेषता रखता है।

आर्य प्रादेशिक सभा की ओर से श्री. पं. ओं प्रकाश जी महोपदेशक तथा प्रसिद्ध चिमटा भजनमंडली श्री. पं. राजपाल मदन मोहन जी मनोहर कथा व संगीत के लिए पधार कर आनन्द रस की धारा बहाते रहे। उत्सव से पूर्व कथा का ठाठ बना रहा। उत्सवमें शानदार कवि दरबार भी देखने सुनने वाला ही था। ओजस्वी कविताओं का क्या कहना? अनेक विख्यात कवियों ने भाग लिया। इस महोत्सव में स्वामी रामेश्वरानन्द जी M. P., पं. यज्ञदत्त जी शर्मा, श्री. पं. श्याम जो परशार एम. ए., श्री. पं. राम गोपाल जी शाल वाले देहली, श्री. राम मेहर सिंह जी रोहतक, श्री. पं. ओं प्रकाश जी आर्य, श्री प. राज पाल मदन मोहन मण्डली, प. जगत् राम जी, श्री. कुंवर भान जी पधार कर ओजस्वी भाषणों और मधुर गीतों की धारा बहा दी। उत्सव की सफलता के तीनों साधन बड़े सुन्दर थे। अपील के विचार से, जनता की उपस्थिति तथा उत्सव का प्रभाव व प्रबन्ध बड़ा उत्तम था। जनता को आज भी आर्य समाज पर कितना विश्वास है? उस के आदेश पथ पर श्रद्धा से चलती है। उस के कार्यक्रम में सहयोग देती है। इसे देख कर मन बड़ प्रसन्न हो जाता है। यह उत्सव अपने प्रचार द्वारा सोनीपत के लोगों के विचारों पर अपना एक खास प्रभाव छोड़ता है। आर्य प्रादेशिक सभा को वेद प्रचार के लिए २५०) रु. भेंट किए गये। सभा के योग्य अंग तथा सोनीपत के इस महोत्सव के अनथक कार्यकर्ता पं. चन्द्र सेन जी का यह प्रयत्न प्रशंसनीय है। उन को तथा सारे समाज के मान्य स्तम्भों को इस सफलता पर बार २ बधाई हो।

राष्ट्र की निर्माता कौन ? 'नारी'

(ले० कु० अरुण जी आर्या टाहाना)

प्रत्येक राष्ट्र एवं देश की सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक और आर्थिक उन्नति ठीक रूप से तभी परिपक्व रह सकती है जबकि नारी की उन्नति हो। नारी की उन्नति का रुक जाना राष्ट्र की उन्नति का रुक जाना है।

इसमें सन्देह नहीं कि आज के प्रगतिवादी युग में नारी जाति में जागृति का संचार हो चुका है। तथा नारी किसी भी कार्यक्षेत्र में कम नहीं है। परन्तु फिर भी उस की अवस्था बिगड़ चुकी है।

प्राचीन काल में नारी को 'साम्राज्ञी' का रूप दिया गया था तथा उसके बिना प्रत्येक कर्म अपूर्ण समझा जाता था। पर मुगलों एवं अंग्रेजों की राज्य सत्ता स्थापित होने के उपरान्त नारी का अधिकार केवल घर की चारदीवारी में रहने तक सीमित हो गया। उस को शिक्षा देना भी पाप समझा जाने लगा। कहने का तात्पर्य यह कि नारी का जीवन घोर अन्धकार मय बन गया। इस घोर अन्धकार मय जीवन से नारी को प्रकाशमय जीवन प्रदान करने का श्रेय केवल महर्षि दयानन्द सरस्वती को है। स्वामी जी ने नारी जीवन में नव स्फूर्ति का संचार किया। जबकि नारी अपने पूर्ण अधिकारों से वंचित हो चुकी थी, स्वामी ने उसके अधिकारों से परिपूरित किया। आज उसी की कृपा से नारी उन्नति के उच्च शिखिर पर पहुंच गई है। वह न्यायलय में जा कर न्याय करती है। वह भारत की राजदूत कहलाती है। पर कई बातों में नारी विपरीत मार्ग की अनुयायी बन गई है। क्योंकि उस की सभ्यता पर पाश्चात्य सभ्यता की छाप अंकित हो चुकी है। ऋषिवर ने हमें वेदों की ज्ञाता बनने के लिए कहा। उन्होंने यह नहीं कहा कि तुम केवल फैशन परस्ती में आकर अपने नग्न चित्र को उपस्थित करो एवं अपने चरित्र को कलंकित करो। बापू गांधी जी ने भी हमें यह शिक्षा दी कि Simple living and high Thinking) सादा जीवन उच्च विचार। अत. हम सब बहनों को चाहिए कि हम अपने चरित्र के अस्तित्व को कायम रखते हुए पुरुष को यह बतला दें कि नारी अबला नहीं, प्रत्युत सबला है उसके हृदय में जहां प्रेम एवं दया की भावना कोमल तृषा है, वहां अठखेलियां लेता हुआ शक्ति का तूफान भी है। वह नर की अर्चना करने में अपना सर्वस्व अर्पण कर देती है। पुरुष समझता है कि वह उस की परिचारिका है। पर वह यह नहीं जानता कि नारी अजस्त्र शक्ति का स्रोत है। वह कौन सी कला है जिस से नारी अपरिचित हो। भारतीय नारी जब हाथ में तलवार पकड़ती है तो दुर्गा बन जाती है। वीणा पर अंगुली रख ले तो सरस्वती का रूप धारण कर लेती है। पुरुष का दामन पकड़ती है तो लक्ष्मी बन जाती है। वह सर्वस्व है। वह राष्ट्र की बलिवेदी पर अपने प्राणों की आहुतियां देने के लिए सदा प्रस्तुत रहती है।

(क्रमश)

(पृष्ठ ३ का शेष)

भारत के कोने २ से कितने बड़े २ लाखों पति धनिक लोग इन दिनों तपोवन में आते हैं क्यों? आत्म प्रसाद लेने, मानसिक शांति पाने। प्रात. तीन बजे से लेकर रात के नौ दस बजे तक आध्यात्मवाद का एक रसीला प्रवाह चलता है। व्यक्ति सब कुछ भूल जाता है। महात्मा जी का अपना जीवन प्रभाव, रसीली वाणी, तप त्याग चित्र तथा क्रियात्मक जीवन सब को स्वयं पाठ पढ़ाता रहता है। ऐसे आश्रम समाज के सच्चे तीर्थ, अकुश हैं—जिन से राष्ट्र मर्यादा सीखता है। प्रभु करें कि ऐसे २ तपोवन जन-जीवन की प्यास शांत करने में फूलते फलते रहें। —सं०

आर्य समाजों से नम्र निवेदन

आर्य समाज के कार्य को बढ़ाने देने कार्य क्षेत्र में प्रसार करने और ऋषि ऋण से उऋण होने को एक मात्र साधन जो मुझे सूझ पड़ता है वह यह है कि हम आर्य समाजी अपनी अपनी समाज के साथ आर्य युवक समाज भी चलाएं। हम में से कोई उत्साही सज्जन इस काम को अपने हाथ में ले और अपने ही बच्चों (युवकों) को आर्य युवक समाज में संगठित करे। वह युवक अपने मित्रों को इस संगठन में खैंच लाएं। इस युवक समाज की अपनी बैठकें हों और ऐतवार को आर्य समाज के सत संग में भी आए। इन के लिए भी आर्य समाज के साप्ताहिक कार्य क्रम में कुछ समय रखा जाए यह उसमें भाग लें और प्रोत्साहित हों। इस युवक संगठन का मार्ग दर्शन संचालन आदि आर्य समाज के मन्त्री वा उप मन्त्री सुन्दर रूप से कर सकते हैं।

संचालक महोदय देख लें कि इन युवकों में किस युवक में विशेष लगन है। आर्य समाज से प्रेम है। इस युवक के जिम्मे आर्य कुमारों (बारह वर्ष की आयु तक के) को आर्य कुमार सभा के संगठन में लाने का कार्य भार सौंप दिया जाए। वह उत्साही युवक आर्य कुमारों को इकट्ठा करे और प्रति दिन साय वा प्रात. सुविधानुसार आर्य समाज मंदिर मे बुला कर शुद्ध चिन्तन शुद्ध वचन, शुद्ध व्यवहार की शिक्षा दे। मीठे सुरीले प्रभु भक्ति के भजन गायत्री मन्त्र। सन्ध्या मन्त्र, प्रार्थना मन्त्र आदि सिखाए। हवन करने की विधि आदि भी सिखाई जाए। सब से अच्छी बात सिखाने की यह है कि इन कुमारों में शिष्टाचार बड़ों की आज्ञापालन कर्तव्य परायणता की भावना पैदा हो जाए।

इस प्रकार हमारे कुमार आर्य कुमार बनेंगे, युवक आर्य युवक बनेंगे यही युवक आगे चल कर हमारे हाथ से आर्य समाज के काम की बाग डोर सम्भालने के योग्य हो जाएंगे। आर्य समाज की नैया खेवी चली जायगी। कार्य को प्रोत्साहन मिलेगा आर्य समाज जीती जागती संस्था बन जायगा और हिन्दूमात्र देश और जाति का सहायक बना रहेगा। आशा करता हू कि मेरे इस नम्र परन्तु परमावश्यक निवेदन पर सभी आर्य समाजें पुरुष अथवा स्त्री आर्य समाजें ध्यान देंगी और आर्य युवक समाज चला कर सभा को सूचित करेंगी। प्रभु करे कि ऋषि के पवित्र कार्य को आगे बढ़ाने में हम समर्थ हों।

अनुभवी और आर्य समाज के भक्तों से प्रार्थना है कि वे इस सम्बन्ध में कुछ सुझाव भी दें। धन्यवाद।

सन्तोष राज मन्त्री सभा

विशेष निवेदन

सभी आर्य समाजों के अधिकारी महानुभावों से नम्र निवेदन है कि जिन समाजों के उत्सव अभी नहीं हुए दूसरे सीजन में होने हैं। कृपया अपनी २ समाज के उत्सव की तिथियों के निश्चय शीघ्र सभा को सूचित करने की कृपा करें जिस से प्रबन्ध म सुभीता रहे।

खुशी राम शर्मा, वेद प्रचार अधिष्ठाता

त्याग और तपस्या के देवता महात्मा हंसराज जी

(ले० श्री ओम् प्रकाश जी कार्यालय मन्त्री आर्यसमाज अनारकली नई देहली)

आर्य समाजी आकाश के रौशन सितारे और डी० ए० वी० आंदोलन के पथ प्रदर्शक महात्मा हंसराज त्याग और तपस्या की मूर्ति थे। उनका सारा जीवन और आदर्श उनके साक्षी हैं। उन्होंने अपनी तपस्या के बल पर अपने जीवन को महान् बनाया और त्याग की शक्ति से वे दूसरों के लिए रोशनी का मीनार बन गए। अंग्रेजी राज्य की जड़ें मजबूत हो चुकी थीं। ईसाई मिशनरी स्थान २ पर स्कूल कालिज खोल कर अंग्रेजी सभ्यता का प्रचार कर रहे थे और इस देश में एक ऐसा सम्प्रदाय खड़ा कर दिया जो रंग और शक्ल से तो हिन्दोस्तानी थे मगर वेषभूषा, वाणी, धर्म कर्म और मजहब व सभ्यता के लिहाज से अंग्रेज थे। महर्षि दयानन्द ने वैदिक धर्म का नाद बजाया और महात्मा हंसराज जी ने वैदिक शिक्षा और संस्कृति का प्रचार किया और लाखों युवकों को ईसाइयत की शरण में जाने से रोका। महात्मा हंसराज जी अभी दस वर्ष के ही थे कि उनके पिता का देहान्त हो गया और उसके साथ ही उनकी विपत्ति का प्रारम्भ हो गया। वे शुरू से ही बहुत बुद्धिमान थे हमेशा श्रेणी में प्रथम आते। गरीबी का यह प्रभाव था कि नंगे पैर ही स्कूल जाते थे और उनके बड़े भाई ला० मुल्कराज जी ने लाहौर में नौकरी कर ली इसलिए वे बिजवाड़ा से लाहौर आगए। यहां एक बार मिशन स्कूल के हैडमास्टर ने आर्य धर्म के बारे में कुछ अनुचित शब्द प्रयोग किए। म० हंसराज जी उन्हें सहन न कर सके परिणाम यह हुआ कि उन्हें स्कूल से निकाल दिया गया।

१८८० में जब कि उनकी आयु १६ वर्ष की थी गवर्मैन्ट कालिज लाहौर में दाखिल हुए और बी० ए० की परीक्षा में सारे पंजाब में दूसरे दर्जे पर रहे।

महर्षि दयानंद ने १८८३ में निर्वाण प्राप्त किया और आर्यसमाज लाहौर ने उनकी यादगार बनाने का निश्चय किया। ला० लालचन्द्र जी की अपील पर ३६००० हजार रुपया इकट्ठा हुआ। अब डी० ए० वी० स्कूल के लिए एक योग्य और परिश्रमी नवयुवक की जरूरत थी महात्मा हंसराज जी ने आर्यसमाज के वार्षिक उत्सव पर अपना सारा जीवन आर्यसमाज के अर्पण करके इस कमी को पूर्ण कर दिया। जिन दिनों की यह बात है उस समय सारे हिन्दोस्तान में बी० ए० पास नवयुवकों की संख्या उंगलियों पर गिनी जा सकती थी। ऐसे युवकों को सैकड़ों रुपए की नौकरी तत्काल ही मिल जाती थी। इन हालात में महात्मा जी का बलिदान अत्यन्त श्लाघनीय है।

१८८६ में डी० ए० वी० हाई स्कूल कायम किया गया। महात्मा हंसराज उसके प्रथम हैडमास्टर बनाए गए। उस समय के गवर्मैंट हाई स्कूल के अंग्रेज हैडमास्टर ने कहा था कि यह पगड़ी वाला बेवकूफ नौजवान क्या हाईस्कूल चलाएगा। मगर हंसराज जी ने दो वर्ष में ही हाई स्कूल को कालिज बना दिया। उस समय केवल ईसाइयों के या सरकारी कालिज ही थे। डी० ए० वी० की देखादेखी इस्लामिया और खालसा कालिज भी खुलने शुरु हो गए। मगर उनके प्रिंसीपल अंग्रेज थे। धीरे २ डी० ए० वी० कालिज लाहौर देश का एक आदर्श कालिज बन गया और महात्मा हंसराज जी का नाम दूर दूर तक फैल गया। महात्मा हंसराज जी ने अपनी सरगर्मियों को यहीं तक ही बन्द न रखा। १८८६ से १९११ तक पंजाब और दिल्ली वगैरह के भिन्न २ स्थानों पर उन्होंने डी० ए० वी० स्कूलों कालिजों और आर्य संस्थाओं की स्थापना की।

१८९५ में बीकानेर में काल पड़ा तो महात्मा हंसराज जी पीड़ितों की सहायता के लिए वहां पहुंचे। १९०५ में कांगड़ा में भूचाल आया तो वहां मौजूद थे। १९१२ में गढ़वाल में भयानक दुर्भिक्ष पड़ा तो महात्मा जी वहां भी सहायतार्थ पहुंच गए। १९३५ में क्वेटा में भूकम्प आया तो चारों तरफ हाहाकार मच गया महात्मा जी कुछ आर्य स्वयं सेवकों को लेकर वहां पहुंच कर सेवा कार्य में जुट गए। यमुना की बाढ़ से क्षति पहुंची तो महात्मा जी वहां पर भी सेवा करते हुए दिखाई दिए।

कालिज में कोई छात्र बीमार होता तो व उसकी सेवा स्वयं करते थे। पं मेहरचन्द्र जी को तपेदिक हो गया तो वे उनके फेफड़ों से निकलने वाले खून को स्वयं साफ करते थे अपनी अनथक सेवा लगन, और तपस्या से निर्धन बाप के घर जन्म लेने वाला महात्मा हंसराज बन गया और इनकी गणना नवीन पंजाब के निर्माताओं में होने लगी। डी० ए० वी० मैनेजिंग कमेटी के तो प्रधान थे ही, इस के साथ आर्य प्रादेशिक सभा के भी प्रधान बन गए।

इस तपस्वी के त्याग का भी वर्णन कहां तक किया जाए ऐसी महान आत्माएं कभी-कभी ही जन्म लेती हैं। जो धनवान बनने की योग्यता रखते हुए निर्धनता का जीवन व्यतीत करना पसंद करती हैं। वे स्कूल या कालिज से कोई वेतन नहीं लेते थे उनके भाई ला० मुल्कराज जी जो कुछ उन्हें दे देते थे उसी में सादगी से निर्वाह करते थे। तीसरे दर्जे में यात्रा करते थे। सादी खुराक खाते थे। एक दिन कोई सेठ उन से मिलने आया तो उस समय आप फटे कंबल में बैठे थे दूसरे दिन वह सेठ पशमीने के दो कंबल उन्हें भेंट करने को ले आया लेकिन उस सेठ के बार बार आग्रह करने पर भी महात्मा जी ने लेने स्वीकार न किए। अंत में सेठ को खुश करने के लिए वे कम्बल कालिज कमेटी को दे दिए।

उन के लड़के श्री बलराज पर दिल्ली साजिश केस के आधीन मुकद्दमा चला तो उन्होंने किसी से सहायता नहीं ली। ला. लाजपत राय जी ने १०००) रुपया सहायता वास्ते भेजा तो उसे भी वापस लौटा दिया। उनके जीवन का लक्ष्य किसी की सहायता या सेवा स्वीकार करना नहीं था अपितु दूसरों की सेवा और परोपकार करना था और आखीर तक इस व्रत पर अटल रहे।

१५ नंवबर १९३८ को उनका स्वर्गवास हुआ। अब हमें गम्भीरता से इस बात पर विचार करना चाहिए कि हम उन के जीवन से कितनी प्रेरणा ले रहे हैं? क्या हम उन के पद चिन्हों पर चलते हुए निष्काम भाव से आर्य समाज की सेवा कर रहे हैं? कहीं उन की चलाई हुई डी. ए. वी. संस्थाएं स्वार्थ का गढ़ तो नहीं बन रहीं? आज उन की कुर्सी पर बैठने वाले कितने प्रिन्सिपल हैं जो अपने आचरण से छात्रों के दिलों में महर्षि दयानंद के काम के लिए तड़प पैदा कर रहे हैं?। डी. ए. वी के सज्जनों को इस पर गौर करना चाहिए तभी हम महात्मा हंसराज जी के ऋण से उऋण हो सकते हैं।

———

सभा की समाजों के उत्सव प्रचार की धूमधाम

आ. स. गन्नौर का उत्सव ११ से १३मई को सम्पन्न हुआ श्री मेलाराम जी जगतराम जी पधारे।

—आ. स. प्रेम नगर (करनाल) का उत्सव २५ से २७ मई को सम्पन्न हो रहा है। १८ ता. से कथा पं० ओंप्रकाश जी, करेंगे। उत्सव पर पं० त्रिलोकचंद्र श्रीराजपाल जी, मदनमोहनजी, ताराचन्द जी, खुशीराम जी शास्त्री भाग लेंगे।

—आ. स. मडवड़ का उत्सव ११ से १३ मई को सम्पन्न हो रहा है।

—आ. स. भऊ (रोहतक) का उत्सव १६ से १६ मई को सम्पन्न हो रहा है। श्री चौ. भूराराम जी, श्री प्रभु दयाल जी मंडली पधारेगी।

आ. स. रिवाड़ी का उत्सव १८ से २० मई को सम्पन्न हो रहा है। श्री राजपाल जी, प्रो. मदनमोहन जी पधार रहे हैं।

आ. स. हमीरपुर (कांगड़ा) का उत्सव १८ से २० मई को समारोह से सम्पन्न हो रहा है। १५ मई से खुशी राम शर्मा की कथा और मा- ताराचन्द जी के भजन होंगे। उत्सव पर मेलाराम जी, चन्द्रसेन जी पधार रहे हैं।

आ. स. लारेन्स रोड अमृतसर में श्री पं० ओं प्रकाश जी कथा कह रहे हैं। १६ ता० से पं० त्रिलोकचन्द्र जी पधारेंगे २३ तक।

श्री हजारी लाल जी, श्री शिवचरण जी राजौरी के इलाका में प्रचार के लिये पधारे हैं।

आ. स. तालू का उत्सव ६ से ६ मई को सम्पन्न हुआ।

आ. स. कांझा लेढ़ी का उत्सव २१ से २४ मई को सम्पन्न हो रहा है।

आ. स. महोब्बीन पुर का उत्सव ८ से १० जून को समारोह से सम्पन्न हो रहा है।

आ. स. कलसोरा का उत्सव १ से ३ जून को सम्पन्न हो रहा है। १६ से २१ मई कौल। २१ से २३ वसली। २५ से २७ मई जयधर के उत्सव पं० अमरसिंह जी द्वारा सम्पन्न हो रहे हैं।

—०—०—

आर्यसमाज (कालेज विभाग) कादियां का चुनाव

१०—५—६२ वीरवार को निम्न प्रकार से हुआ—

प्रधान—बहन सत्यावती चौहान

उप प्रधान—श्री धनीराम भल्ला

मन्त्री—श्री ओम प्रकाश जी प्रेमी।

सहायकमंत्री—श्री उर्वीदत्त जी शास्त्री।

कोषाध्यक्ष—श्री मंसाराम जी।

प्रतिष्ठित सभासद

१ श्री जे० डी० राजपूत।
२ श्री डा० जगन्नाथ जी।
३. सन्तोष वेदी।
४ श्री देशराज जी भाटिया।
५. श्री धमपाल जी शर्मा।
६ श्री गुरबचन सिंह जी भाटिया।
७. श्री मंगली देवी।
८ श्री रोशन लाल जी।

—ओमप्रकाश मन्त्री आर्यसमाज कादियां

—०—०—

आर्यसमाज माडलटाऊन गुड़गावां

महात्मा हंसराज दिवस २२—४—६२ को बड़े समारोह से मनाया गया। पं० विश्वा मित्र जी की भजन मंडली के मनोहर भजन और पं० वासुदेव जी शास्त्री विद्यालंकार का प्रभावशाली व्याख्यान हुआ।

—त्रिलोक नाथ मंत्री।

लक्ष्मी पूजन

धन पाया जो सत्य से, वह धन लक्ष्मी जान।
जिस घर यह लक्ष्मी वसे, वहां बसे भगवान॥
पूजें लक्ष्मी सत्य-धन, इस में है कल्याण।
पूजन सद् उपयोग है, पूजन आदर मान॥
प्रभु दर्शन, दर्शन में प्रभु, अगर न सुख परिणाम।
हुई न आत्मा तृप्त जो, मिला न जो विश्राम॥
मान ब्रह्म को दें प्रथम, सुनें ब्रह्म उपदेश।
पालें ब्रह्मादेश फिर, पावें ब्रह्म सुलेश॥
पा लेने पर ब्रह्म प्रभु, दुःख नहीं निशेष।
आत्म तृप्त हो जाय है, रहे अशांति न लेश॥

—मुन्शी लाल गुप्त, वानप्रस्थ मोहन आश्रम हरिद्वार।

दुःखद मृत्यु

यह खबर आर्यजगत में बड़े शोक से सुनी जाएगी कि श्री महाराज कृष्ण जी, हैडक्लर्क, आर्य प्रादेशिक सभा, जालन्धर ११—५—६२ को रात्रि के ६ बजे, इस असार संसार से चल बसे। श्री महाराज कृष्ण कुछ दिन बीमार रहे। कष्ट बढ़ता गया तो उन्हें ६—५—६२ ऐतवार को जालन्धर के बड़े हस्पताल में ले जाया गया। वहां उनका भली प्रकार से इलाज हुआ उनके बड़े पुत्र ने तन, मन, धन से सेवा की। दिन रात एक कर दिया। सभा के अधिकारी, दफ्तर के कर्मचारी पं० खुशीराम जी वेदप्रचार अधिष्ठाता तथा श्रीमान भक्तराम जी अफ्रीका वाले, सभी उनकी देखभाल में लगे रहे। परन्तु परम पिता परमात्मा को ऐसा ही मनजूर था और वे दिवंगत हुए। उनकी अर्थी के साथ डी०ए० वी० कालिज जालन्धर के प्रिंसीपल वेहल जी, सभा के महामंत्री जी, पं० खुशीराम जी वेद प्रचार अधिष्ठाता, आर्यवीर के सम्पादक, पं० मेहरचन्द जी, श्री पं० भक्तराम जी अफ्रीका वाले आर्यजगत के मैनेजर हरिदत्त जी, श्री पिशोरी लाल जी खजाची सभा तथा चरणदास जी सेवक सभा शामिल हुए। इनके इलावा स्थानीय स्त्री पुरुष भी सम्मिलित हुए।

श्री महाराज कृष्ण जी अपने पीछे तीन लड़के और दो लड़कियां छोड़ गए हैं। इनकी धर्मपत्नी की मृत्यु तो बारह वर्ष हुए, हो गई थी। अब घर की देखभाल की समस्या बहुत कठिन हो गई है। परमात्मा ही सहायक हो सकते हैं। इतना सन्तोष अवश्य है कि उनके दोनों बड़े पुत्र बहुत सुयोग्य और कार्यकुशल हैं। भगवान की कृपा से अपनी बिगड़ी बना लेंगे।

श्री महाराज कृष्ण ने सभा की २४—२५ वर्ष सेवा की है। उनकी मृत्यु पर हम सब दुःखी हैं और परमात्मा से प्रार्थना करते हैं कि उनकी आत्मा को सद्गति प्राप्त हो तथा उनके परिवार को इस आघात के सहन की शक्ति प्रदान हो।

—व्यवस्थापक

—०—०—

अदालती नोटिस

..ष्णलालदास सब जज साहब दरजा अव्वल मुकाबाद

नम्बर ७०४ सन् १९६१

..तापसिंह वल्द श्री राम मेहर कौम .. सकना मुकाबाद

..ण्ड

..प्रकाश वल्द सिरीचन्द, साकिनी दर्वे सभे..

..वर सिरीचन्द सकना बर्डी दादरी जिला..

..दावा बगबाय बाबत मैं मुद्दई ने एक नालिश बाबत .. वकूद बनाम सिरी चन्द मुदालय दायर की। दौराने मुकदमा सिरी चन्द मुदालय वफात पा गया। जिस पर मुद्दई ने दरख्वास्त बाबत बनाने कायम मुकाम मतसफी दायर की। लिहाजा इस्तहार हुआ बनाम ओम प्रकाश वगैरह कायम मुकाम .. बजरिया .. वगैरह अदालत हुआ मैं बतारीख २१-५-६२ पेश होकर पैरवी मुकदमा करें। वरना कार्यवाई हुफज जाब्ता अमल में लाई जाएगी। आज बतारीख ६ मई १९६२ बदस्तखत मेरे व मोहर अदालत से जारी हुआ।

मोहर अदालत दस्तखत हाकिम

अदालती नोटिस

बअदालत जनाब श्री महेन्द्रसिंह जी M A. नायब तहसीलदार साहब बा अख्त्यारात असिस्टैंट कलैक्टर II ग्रेड सिरसा जिला हिसार (पंजाब)

मुकदमा नं० १६ सन् १९६१ ईस्वी०

अमीराम सुपुत्र रामजस जाट सकना बारी सुरेरा तहसील सिरसा (पंजाब)

बनाम—श्रीमती नत्थी सुपुत्री श्री राजो, नत्थूराम, घनीराम सुपुत्र श्री राजो साकनान मौजा पचकराई, तहसील नोहर जिला .. (राजिस्थान)

श्रीमती मुन्नी सुपुत्री रामजस, श्रीमती निक्को सुपुत्री रामजस, अमीराम सु० रामजस, महावीर, .. नाबालिगान सुपुत्र अमीराम .. अमीराम—वालिद खुद साकनान बारी सुरेरां तहसील सिरसा, आईदान, सुल्तान, मामचन्द बनवारो नाबालिगान सुपुत्र श्रीमती .. जाट साकनान आरावरपुर तहसील हनुमानगढ़ बराफकत अमीराम मामा खुद साकनान बारी सुरेरां तहसील सकना जिला हिसार (पंजाब)

दरख्वास्त तकसीम आराजी जर्ई वाकया मौजा बारी सुरेरां दरगाह हसबे इतमीनान अदालत यह साबित हो गया है कि श्रीमती नत्थी वगैरह मजकूरान बाला पर मामूली तरीका से तामील होनी नामुमकिन है। लिहाजा इस इश्तहार के द्वारा श्रीमती नत्थी वगैरह मजकूरान बाला को इतला दी जाती है कि अगर वो २१-५-६२ को इस अदालत में सवेरे ६॥ बजे हाजिर न होंगे तो उनके खिलाफ कारवाई यकतरफा अमल में लाई जाएगी।

आज ब-सबत दस्तखत हमारे व मुहर अदालत के जारी किया गया।

मोहर अदालत महेन्द्रसिंह राव असिस्टैंट कलैक्टर

ता० २३-३-१९६२ II ग्रेड, सिरसा जिला हिसार

पत्र सूचना कार्यालय
भारत सरकार

नई देहली १४ मई, १९६२—अखबार सम्बन्धी मामलों के शीघ्र निपटारे के लिए केन्द्रीय सरकार अखबार नियोक्ता अधिनियम और .. मजदूरी में संशोधन करने के प्रस्तावों पर विचार कर रही है।

नई दिल्ली १४ मई, १९६२—आज लोकसभा में केन्द्रीय शिक्षा मन्त्री डा० श्रीमाली ने श्री डी० एन तिवारी के प्रश्न के लिखित उत्तर में बताया कि कलकत्ता और मद्रास में हिन्दी प्रचार करने वाली संस्थाओं के काम की देखरेख करने और मेल रखने के लिए क्षेत्रीय कार्यालय खोलने पर विचार किया जा रहा है। आशा है ये कार्यालय शीघ्र ही काम कर देंगे।

नई देहली १४ मई, १९६२—केन्द्रीय वैज्ञानिक अनुसंधान व संस्कृति उपमंत्री डा० मनमोहन दास ने आज लोकसभा में श्री महेश्वर नायक के प्रश्न पर बताया कि सरकार का ताजमहल में बिजली लगाने का कोई विचार नहीं है।

नई देहली १४ मई, १९६२—सरकार ने कारखानों द्वारा खुली बिक्री के लिए २,५०,००० टन चीनी छोड़ी है। यह सूचना चीनी और वनस्पति निदेशालय की एक विज्ञप्ति में दी गई है।

नई देहली १५ मई, १९६२—भारत सरकार ने स्टैंडर्ड और पोर्टेबल हिन्दी टाइपराइटरों के कुञ्जीपटल को अन्तिम रूप दे दिया है।

स्टैंडर्ड टाइपराइटर के कुञ्जी-पटल में ४६ कुञ्जियां होंगी और पोर्टेबल टाइपराइटर के कुञ्जी-पटल में ४४ कुञ्जियां। पोर्टेबल टाइपराइटर में कुञ्जी संख्या ४४ और ४५ (चार्ट संलग्न है) नहीं होंगी।

राष्ट्रपति डा० राधाकृष्णन् को बधाई

नई देहली १४ मई, १९६२—राष्ट्रपति, डा० सर्वपल्ली राधाकृष्णन् के अपने पद का कार्यभार संभालने पर विदेशों से ये बधाई-सन्देश मिले हैं—

चीन के राष्ट्रपति श्री ल्यू-शाओ-ची का सन्देश.

आप के भारत के राष्ट्रपति-पद पर आसीन होने के शुभअवसर पर मेरी हार्दिक बधाई। मैं आप के देश की समृद्धि और आप के देश-वासियों का सुख चाहता हूं।

जर्मनी की फेडरल रिपब्लिक के चांसलर डा० कौनराड आडेनावर का सन्देश —

भारतीय गणतन्त्र के राष्ट्रपति-पद का कार्यभार संभालने के अवसर पर मैं आप के सुख और आप के देशवासियों की समृद्धि की कामना करता हूं, जिन के प्रति हमारे हृदय में गहरा मैत्री-भाव है।

आस्ट्रेलिया के गवर्नर-जनरल का सन्देश

आप के भारत के राष्ट्रपति-पद पर आसीन होने के शुभ अवसर पर मेरी हार्दिक बधाई स्वीकार करें। मुझे विश्वास है कि आपके राष्ट्रपति रहते समय हमारे दोनों देशों की मित्रता और भी दृढ़ होगी।

इस अवसर पर कृपया मेरी ओर से भूतपूर्व राष्ट्रपति डा० राजेन्द्र प्रसाद को सम्मान प्रदर्शित करें।

मुद्रक व प्रकाशक श्री सतोष राज जी मन्त्री आर्यप्रादेशिक प्रतिनिधि सभा पंजाब जालंधर द्वारा वीर मिलाप प्रैस, मिलाप रोड जालंधर से मुद्रित तथा आर्य जगत कार्यालय महात्मा हंसराज भवन निकट कचहरी जालन्धर शहर से प्रकाशित मालिक—आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा पंजाब जालन्धर

टैलीफोन नं० २०४५ [आर्यप्रादेशिक प्रतिनिधि सभा पंजाब जालन्धर का साप्ताहिक मुखपत्र] Regd No. P-121

एक प्रति का मूल्य १३ नये पैसे   वार्षिक मूल्य ६ रुपये

वर्ष [illegible] अंक [illegible]) रविवार १४ ज्येष्ठ २०१[illegible] — २७ मई १९६२ दयानन्दाब्द १३८ (आर्य-प्रादेशिक जालन्धर

वेदसूक्तयः

अग्ने दुरितातर

हे अग्निरूप वीर तू दुरिता-दुःखों से कष्टों से तर-तैर जा पार कर जा। अपनी शक्ति तथा ज्ञान आचार विचार से सारे दुःखों, बाधाओं को पार करता जा। सारे दुःख दूर कर ले।

शिवो अग्ने संवरणे भव

हे वीर नर ! तू शिव-सुख देने वाला संवरण-रक्षा के काम में भव हो। जिन से हमें भय हो तथा जो हमें भयभीत करके हानि पहुंचायें, हमारा अनिष्ट करें, हे वीर ! तू अपने बल से हमारी सदा रक्षा करता रह।

दिव्येन दीदिहि रोचनेन

हे बलशाली नर ! तू चमकने वाले दिव्य रोचनेन-ज्ञान, विद्या आचार के तेज से दीदिहि-चमकता रह। तेरा ज्ञान, आचार सर्वत्र प्रकाश करता रहे। तू हर गुण में कीर्ति वाला बन।

अथर्ववेद से

वेदामृत

अग्निमीडे पुरोहितं यज्ञस्य देव ऋत्विजम्।
होतारं रत्नधातमम् ॥ ऋ० १-१-१

अर्थ— मैं (अग्निम्) अग्निरूप परमेश्वर की (ईडे) स्तुति करता हूं (पुरोहितम्) सब का नेता, उत्पत्ति से पहले परमाणुओं का धारक (यज्ञस्य) यज्ञ का शुभ क्रिया का (देवम्) प्रकाशक है (ऋत्विजम्) ऋतुओं का उत्पादक (होतारम्) सब पदार्थों का देने वाला (रत्नधातमम्) सब रत्नों को उत्पन्न करके धारण करने वाला है।

भाव—हे मेरे अग्निदेव ! प्रकाश देने वाले मेरे जीवनरथ के नेता ! मैं आपकी ही स्तुति करता हूं, तेरे ही गीत गाता हूं, तेरा भक्त बन कर भजन वन्दन करता हूं। इसलिए कि आप ही मेरे पुरोहित हैं। जीवन यज्ञ के हितकारी बन कर सदा मेरा पथ-प्रदर्शन करते हैं। मैं अल्पज्ञ होने से पद २ पर भूल जाता हूं, कर्तव्य में विमूढ़ हो जाता हूं। ऐसे समय में आप सदा मेरे पुरोहित बन कर मार्ग दिखाते हो मेरे यज्ञ के देवता हो। आप का इस विश्व में कितना महान यज्ञ हो रहा है ? इस के देव हो।

प्रभो ! आप होता हो, महादानी हो। आपका कितना यह दान निरन्तर बांटा जा रहा है। प्रकृति के सारे पदार्थ आपके दिये दान को ही तो बांट रहे हैं। रत्नों के धारक हो, भण्डार हो। कितने अमूल्य पदार्थ रत्न नानाविध अनुपम वस्तुएं आपने निर्मित की हैं। यह सब आप की ही तो सब देन है। इतने महान दानी हो। फिर पिता जी ! आप को न गाऊं, न पूजूं, न भजन करूं तो और किस का करूं। परमेश्वर ! मैं आपका और आप मेरे— स०

ऋषिदर्शन

नासत आत्मलाभः

न असत-असत् से न आत्मलाभ-सत् होता है। असत् से सत् कभी भी नहीं होता। अभाव से भाव नहीं हो सकता। अभाव से भाव हो भी कैसे सकता है। कारण बिना कार्य कैसा।

न सत आत्महानम्

सत् का अभाव नहीं होता। जो वस्तु है उसका अभाव कभी नहीं होता। भाव से भाव ही होता है। भाव का कभी विनाश नहीं होता। सत् से सत् और असत् से असत् ही होगा।

योऽस्ति स भविष्यति

जो है वह होगा। जिसकी सत्ता है भाव है, उसकी आगे भी सत्ता ही रहेगी। उसका आगे भी भाव ही होगा। अस्ति का नास्ति तथा नास्ति का अस्ति नहीं होता। है से है और नहीं से नहीं है।

भाष्यभूमिका

[सम्]पादकः त्रिलोक चन्द्र शास्त्री   अधिष्ठाता—संतोष राज मंत्री सभा

पूज्य महात्मा जी के अध्यात्मवाद के रसीले गम्भीर प्रवचन जीवन में नवजीवन भर देते हैं। आप की मधुर रस भरी कथाएं सारे भारत में विशेष आकर्षण रखती हैं। अध्यात्मवाद को इतना रसीला, मीठा, प्रभाव शाली, सरल बना देना आप के ही हिस्से में आया है। आर्य जगत् के पाठक इस अमृत का समय समय पर पान करते रहें—इसी लिए महात्मा के प्रवचनों सन्देशों व लेखों का प्रबन्ध किया जाता है—स

यह तो भगवान् का मन्दिर है। पता नहीं इसे मनुष्य शरीर का नाम क्यों दिया गया है? यही वह स्थान है, जहां सचमुच परमात्मा के दर्शन किये जा सकते हैं। निस्सन्देह परमात्मा सर्वव्यापक है, ससार के अणु २ में वह इसी प्रकार रमा हुआ है, जैसे हर वस्तु में अग्नि विद्यमान है। अग्नि का किसी भी स्थान पर आह्वान कीजिए वह प्रकट हो जायगी। परन्तु परमात्मा हर स्थान और हर वस्तु में होते हुए भी हर जगह दृष्टिगोचर नहीं हो सकता। इस का कारण यह कि परमात्मा को देखने वाला नेत्र केवल इसी मन्दिर ही के भीतर खुलता है। परमात्मा और जीवात्मा का मिलाप यहीं भली भान्ति होता है। यहीं होता है संगम इन दोनो का। यही है वह मन्दिर जिस के सब बाह्य द्वार बन्द कर जब मन भीतर बैठ एकाग्र और निर्विषय हो जाता है, तब वह प्रकाश स्वयमेव प्रकट हो जाता है, जिसे देखने को उत्कंठा तथा लालसा आत्मा को इस बन्दी शरीर में ले आती है। इस ज्योति को देखने से कैसा आनन्द प्राप्त होता है—इस का वर्णन नहीं किया जा सकता। यह तो वह स्वाद है जिसे स्वयं ही अनुभव किया जा सकता है। किसी के बतलाने का न यह विषय है और न बतलाया ही जा सकता है।

भगवान् का मन्दिर

(श्री महात्मा आनन्द स्वामी जी महाराज सरस्वती)

ऋषि वाष्कलि एक बार योगेश्वर श्री बाधव के योगाश्रम में पहुंचे प्रार्थना की—भगवन्! सच्चिदानन्द परब्रह्म का स्वरूप आप ने देखा है, उस का वर्णन कीजिये कि वह स्वरूप कैसा है?

बाधव महाराज चुपचाप बैठे कुछ बोले नहीं। थोड़ी देर बाद ऋषि वाष्कलि ने फिर वही प्रश्न किया। अब भी वह चुप्पी ही साधे रहे। तीसरी, चौथी वार भी यही प्रश्न किया और उत्तर भी वही मौन ही मिला। बार २ एक ही प्रश्न दोहराते हुए जब वाष्कलि ऋषि उकता गये तो कहने लगे—मेरे तप्त हृदय को आप शान्त क्यों नहीं करते? तब योगेश्वर बाधव कुछ मुस्करा कर बोले—अरे वाष्कल! तेरे प्रश्नों का उत्तर तो साथ ही साथ तत्काल देता रहा हू। यदि समझ में न आये तो इस में मेरा क्या दोष। भाई! स्वरूप कोई वाणी से बतलाने वाली वस्तु नहीं। यहां तो सब वाणियां पहुंच कर मौन साध लेती हैं और जब लौट कर आती हैं तो कुछ भी बोलने मे असमर्थ होती हैं। इस गूंगे के गुड का स्वाद कैसे बतलाया जाये? और निश्चय ही यह स्वाद इस मन्दिर में ही मिलता है, ससार की और किसी वस्तु में नहीं।

छान्दोग्य उपनिषद् के अन्तिम प्रपाठक के आरम्भ मे ब्रह्मपुर का वर्णन किया है ब्रह्म तो सर्वत्र है और सर्वव्यापक है, फिर उस की कोई पुरी कैसे हो सकती है। हां यह मनुष्य शरीर ही उस की नगरी है। इसी मे ब्रह्म को पहिचान ने वाला रहता है। छान्दोग्य के इन शब्दों पर ध्यान दीजिये ऋषि-कहता है—

यद् इदम् अस्मिन् ब्रह्मपुरे दहरं पुण्डरीक वेश्म—यह जो ब्रह्मपुर—शरीर है, इस में एक छोटा सा हृदय कमल का मन्दिर है। इस मन्दिर के भीतर एक छोटा सा आकाश है। इस आकाश के भीतर जो कुछ है, उस का अन्वेषण करना चाहिए, उस की जिज्ञासा करनी चाहिए यही कमल का मन्दिर भक्त और भगवान् का मिलन स्थान है और वह इसी ब्रह्मपुर या शरीर के ही अन्दर है। इसी स्थान पर उस को खोज करना होता है। इसी स्थान का नाम वह गुहा है जिस के सम्बन्ध मे यजुर्वेद कहता है—वेनस्तत् पश्यन् निहित गुहा—अर्थात् ज्ञानी पुरुष उस सत् ब्रह्म को हृदय की गुहा मे निहित देखता है। यही अथर्व वेद के दूसरे काण्ड के पहले मन्त्र में कही है।

वेनस्तत् पश्यत् परम गुहा योगी उसे परम गुहा मे देखता है, वहां सारा विश्व एक रूप हो जाता है अर्थात् भक्त के लिए फिर प्रभु के अतिरिक्त और कोई भी वस्तु देखने योग्य नहीं रहती। यही है वह ब्रह्मपुर, जिस का उल्लेख मुण्डक-उपनिषद् मे किया गया है—य सर्वज्ञ सर्वविद्.. जो सब को जानता है और सब का समझता है, जिस की इस भूमि पर प्रत्यक्ष महिमा है, वह दिव्य ब्रह्मपुर हृदयाकाश मे रहता है। स्वर्ग भी इसी को कहा जाता है। स्वर्ग संसार का कोई विशेष स्थान नहीं है अपितु इसी शरीर के अन्दर ही वह स्वर्ग विद्यमान है। वेदभगवान ने तो स्वर्ग का बहुत ही सुन्दर और विस्तृत विवरण दिया है।

अष्ट चक्रा नव द्वारा देवाना पूरयोध्या-यह देवताओं का दुर्ग जिस के आठ चक्र और नौ द्वार हैं और जिस को जीतना दुष्कर है, उस में ज्योति से भर पूर स्वर्ग है और उसी में सुनहरी कोष है। यह आठों और नौ द्वारों वाली अयोध्या नगरी योरोप, अमरीका, एशिया, अथवा अन्तरिक्ष लोक या द्युलोक में तो कहीं दिखलाई नहीं देती अपितु यह नगरी हर देश, नगर, ग्राम और हर घर के अन्दर देखी जा सकती है। वह है यह मनुष्य शरीर। मनुष्य शरीर ही में नौ द्वार हैं। दो नेत्र, दो नासिकायें, दो कान एक मुख, दो मलमूत्र त्यागने के स्थान—ये नौ द्वार इस नगरी के स्पष्ट दिखलाई देते हैं। और आठ चक्र—वे भी इसी शरीर में निम्न आठ चक्र हैं। इन के द्वारा प्राण ऊपर चढ़ता हुआ ब्रह्म द्वार में प्रवेश कर सकता है। जब ब्रह्म के दर्शन करने होते हैं तो इस नगर के बाहर के सब द्वार बन्द कर स्वर्ग में पहुंचना होता है। तब ज्योति दिखलाई देती है और परमप्रिय का दर्शन होता है।

आवश्यकता

आर्यसमाज, यमुना नगर के लिए एक पुरोहित की आवश्यकता है अतः अनुभवी विद्वान, वैदिक धर्म में पूर्ण आस्था रखने वाले सज्जन अपनी आयु, अनुभव तथा योग्यता के प्रमाण-पत्रों सहित प्रार्थना-पत्र मन्त्री, आर्य समाज, जगाधरी रोड यमुना नगर, जि० अम्बाला, पंजाब के पते पर भेज सकते हैं।

नोट—उपदेशक विद्यालय या गुरुकुल के स्नातक तथा सङ्गीतज्ञ को विशेषता दी जाएगी। कम से कम स्वीकार्य वेतन भी साथ लिखना आवश्यक है। निम्न पते पर पत्र-व्यवहार करें।

कविराज रामसिंह वैद्य
मन्त्री—आर्यसमाज,
यमुनानगर (जिला अम्बाला)

सम्पादकीय—

आर्य जगत्

वर्ष २२] रविवार १ ज्येष्ठ २०१८, २७ मई १९६२ [अंक ७

आशा और विश्वास

आशा और निराशा जीवन को दो मीठे व कड़वे फल हैं। आशा व्यक्ति, समाज को प्रगति, समृद्धि, विभूति तथा विख्याति के वातावरण में पहुंचा देती है किन्तु निराशा आलस्य प्रमाद, निर्बलता एवं सर्वथा दीनता हीनता के गढ़े में गिरा कर कहीं का नही छोड़ती। आशा जीवन तथा निराशा निरी मौत का दूसरा नाम है। एक दिन व दूसरी काली रात है। समाज जब कभी आशावाद का दामन पकड़ता है तब उस के सारे काम बनते जाते हैं और जब निराशा वादी बन जाता है तब सुधार भी बिगाड़ में बदल जाता है। निराशा महापाप तथा आशा पुण्य है। वैदिक धर्म में निराशा को शत्रु बतला कर सारे समाज को इस से बचने का सन्देश दिया गया है। कुन्ती पुत्र अर्जुन के उस निराशावाद के व्यामोह को आशा विश्वास के सूर्य महात्मा कृष्ण यदि दूर न करते तो भारत का महाभारत इतिहास किसी और रूप में लिखा जाता। आशा के प्यारे श्री राम ने इसी दिव्य शक्ति का सहारा ले कर सारे राष्ट्र का चित्र ही बदल दिया। सारे समाज के जीवन आकाश पर समय २ पर आवे छाये निराशा की काली घटा को दूर करने मे अतीत युग के महापुरुषों ने कितना महान् कार्य किया? राजनीतिक धार्मिक, सामाजिक क्षेत्रों में क्रान्ति मचाने वाले उस देव दयानन्द ने तथा उन के द्वारा स्थापित समाज ने कितना परिवर्तन पैदा किया—यह सामने ही है।

आशा विश्वास एक महान् इन्द्रवज्र है। इसी को ले कर वेद के शब्दों मे कहा जाता है—अहम् इन्द्रो न पराजिग्य इद्धनं न मृत्यवे ऽवतस्थे कदाचन। मैं इन्द्र हू कभी नहीं हारता, मौत मेरा क्या बिगाड सकती है।

आर्य समाज वेद के आशा विश्वास के धर्म को ले कर प्रचार सुधार के व्यापक मिशन मे जुटा हुआ है। किन्तु कभी २ अपने ही लोग निराशा, उदासीनता तथा कार्य शिथिलता का रोना रोते हैं। आज के भौतिक युग में क्या बनेगा? भोगवाद का यह प्रवाह कैसे रुकेगा? इस प्रकार की कितनी चर्चा चलती रहती है। शरीर में रोग व कमजोरी पैदा होने पर निराश हो कर बैठ जाना तो अपने ही जीवन के साथ खिलवाड़ करना है। जिसने दूसरों के रोगों को दूर करने का पुनीत व्रत लिया है, वही आशा छोड बैठे तो क्या बनेगा? कितनी विपत्तियां आयें, बाधाएं खड़ी हो जावें, प्रतिकारी विरोधी डटे हों, प्रतिकूल परिस्थिति हो—तब भी आशा विश्वास न छोड़ें। यह तथ्य है कि आज रोग आ गये हैं, निर्बलता ने घेर रखा है। गति मन्द है—पर इस का यह अर्थ नहीं कि इस रुग्ण अवस्था मे रोने चिल्लाने लग जाये। धैर्यशान्ति रखें। वह भी समय था जब रोग नहीं आया था आर्य समाज स्वस्थ था यह रोग अवस्था भी नहीं रहेगी,—अवश्य जायेगी जायेगी। निराश न होवें,—उदासीन न बनें। बीमारी दूर करने में लग जाओ। बड़े साधन, शक्ति है। यदि आर्य समाज निराश हो गया तो मानवता का मान और कौन करेगा—

त्रिलोक चन्द्र

राष्ट्रपति का सन्देश

बारह वर्ष राष्ट्रपति के उच्च आसन पर बैठ कर देश की महती सेवा कर के अपनी इच्छा से मुक्त होने वाले पुराने राष्ट्रपति डाक्टर राजेन्द्र प्रसाद जी ने सुन्दर सन्देश दिया है। वह सारी जनता के लिए कितना आवश्यक है। उन्होंने कहा है कि आज भारत भौतिक रूप मे, जीवन का सामग्रियों बडी उन्नति कर रहा है, किन्तु आध्यात्मिक रूप मे नहीं। यह उन्नति परम आवश्यक है। इन शब्दों मे सब कुछ कह दिया। जीवन का केवल भौतिक वाद कभी शांति नहीं दे सकता, जब तक आध्यात्मिक वाद नहीं आता तब तक जीवन चचल, अस्थिर तथा अशात रहेगा। सारे राष्ट्र का कर्तव्य है कि आज के इस भौतिक वाद के इस प्रखर प्रवाह में अपने पुरातन आध्यात्मिक वाद के बन्ध को बान्ध कर प्रवाह को रोकें। जीवन को उस दिशा मे मोडें।

प० महाराज कृष्ण जी

यह दुखद समाचार सुन कर मन को बहुत ही दुःख शोक हुआ कि आर्य प्रादेशिक सभा के कार्यालय में प्रमुख एकाउंटेंट पं महाराज कृष्ण जी का देहावसान हो गया। मन बहुत ही दुखी अशात हो गया। स्वर्गीय पण्डित जी सभा में बहुत ही पुराने, अनुभवी थे। लाहौर के चले जाने के बाद जालन्धर मे सभा के दफतर मे पहिले साहित्य प्रकाशन विभाग का काम करते रहे, फिर मुख्य लेखा गणक बन कर सेवा करते रहे। बडा मीठा स्वभाव था यह स्वप्न में भी नहीं आया था कि एक दम चल देंगे। अभी गत दिनों बजवाडा में महात्मा हंसराज मेला पर सारा सभा की ओर से प्रबन्ध करने गये। वहां चार पाच दिन प्रचार मे रहने का कार्यक्रम था। दौड़ धूप में लगे रहते थे। पेट व जिगर में कुछ रोग हो गया। जालन्धर सिविल हस्पताल में प्रविष्ट हो गये। वहां दर्शन करने तथा बात करने का अंतिम अवसर मिला। बीमारी उन को ले ही गई। अपने पीछे बच्चे बच्चियां छोड गये हैं। भारी चोट क्षति है। पर मौन ही हो जाना पड़ता है परिवार के इस अपार दुःख मे हम आर्य जन दुखी हैं हार्दिक समवेदना सहानुभूति है प्रभु महान् दुःख सहन करने की परिवार को सामर्थ्य दें। दिवगत आत्मा को शांति प्रदान करे। सभा को बडी क्षति पहुची है। सारा प्रचारक वर्ग इस दुखद समाचार पर अतीव हार्दिक शोक प्रकट कर के परिवार से गहरी सहानुभूति रखता है।

वैदिक पुस्तकालय

आर्य समाज, अलावलपुर

(जि० जालन्धर)

'अलावल पुर जिला जालन्धर में पवलिक के लिए वाचनालय, लग भग ४० वर्ष से अलावल पुर आर्य समाज ने पवलिक सेवा के लिए वैदिक लाइब्रेरा (वैदिक वाचनालय) खोली हुई है जिस में अभी तक उर्दू, हिन्दी, अंग्रेजी पंजाबी और फारसी की १५५२ पुस्तकें धार्मिक (वेद शास्त्र आदि) व्योपार, हिकमत, नैतिक पोलीटीकल इतिहासिक इत्यादि सम्बन्ध की जनता की जानकारी के लिए जमा हो सकी हैं। पुस्तक घर मे ले जा कर पढ़ने की कोई फीस अथवा किराया नहीं लिया जाता। पुस्तक की कीमत ली जाती है जो कि पुस्तक की वापिसी पर वापिस की जाती है।

(शेष पृष्ठ ६ पर)

(गतांक से आगे)

इतना सब जानते हुए भी आज का पुरुष नारी जाति का तिरस्कार कर रहा है। आज नारी का जीवन समस्यामय बन गया है। उस की इस रहस्यमयी गुत्थी को सुलझाना अति कठिन हो गया है। वह समस्या क्या है? विवाह! आज का प्रत्येक मानव अर्थाभाव के कारण चिन्तित है। आज प्रत्येक परिवार मे लडकी का उत्पन्न होना पाप समझा जाने लगा है। ज्यों २ लडकी बडी होती जाती है त्यो २ मां बाप का जीवन दु खमय बनता चला जाता है क्यों कि वह आज के लडकों की मांगो को पूरा करने मे असमर्थ हैं। लडका चाहे कितना कुरूप तथा अशिक्षित हो वह भी एक सुन्दर एव सुशिक्षित लडकी से विवाह करना चाहता है। यही नहीं इस के साथ २ हजारो रु० के दहेज का उत्सुक है। क्या इन दोनों का सम्बन्ध स्थापित होना ठीक रहेगा कदापि नहीं! ऐसा होना नारी जाति का तिरस्कार है। इसी विषय को ले कर कितने लोगों ने उपद्रव मचाया। लोक सभा मे जा कर बिलों को पेश किया। भाषण झाडे। और न जाने कितने प्रयत्न किए। प्रथम तो इस की ओर कोई ध्यान नहीं दिया गया। और जब से पीट कर लोगो ने कानून बनवाया तो वह भी बेकार बात यह हुई कि 'खोदा पहाड़ निकला चूहा।' उन्हो ने कानून बनाया कि जब लडके वाला मागे तो लडका वाला Police Station मे जा कर स्वय शिकायत करे। भला लडकी वाला यह कैसे कर सकता है। यदि शिकायत कर भी दे तो उस की लडकी का सम्बन्ध विच्छेद हो जाता है तथा आगे सम्बन्ध होने में रुकावट पैदा हो जाती है और सबसे बडी बात तो यह कि जो कनून के निर्माता होते हैं, जो सभा के सदस्य होते है वही सर्वप्रथम इस कानून को तोडते हैं।

राष्ट्र की निर्माता कौन? नारी

(ले० कु० अरुण जी आर्य टोहाना)

आज की दुनिया अपने आप को सब से अधिक धर्म करने वाला समझती है। पर ओ धर्म के ठेकेदारो ओ लडकों को बेचने वालो! तुम्हारे धर्म मे कहा लिखा है कि तुम अपने लडकों को सरे बाजार बेचो! कुछ सोचो और समझो! अपने मस्तिष्क को ठिकाने लगावो और लालच की भूख को सर्वदा के लिए मिटा दो। मागा तो वह करता है जिस के घर का दीवाला निकल चुका हो। पर तुम मागने मे और हजारो रु टीका लेने मे अपनी शोभा समझते हो और फिर उस की प्रदर्शनी करते हो। पर ओ भीख मागने वालो! ऐसा कुकम करने से तुम पाप के भागी बनते हो। भगवान ने तुम्हे दो हाथ और दो पैर दिए हैं। परिश्रम करो। परिश्रम का फल सदा मीठा होता है। यदि तुम्हारी दशा अब भी इसी प्रकार से रही और तुम ऐसा कुकम करने से नही हटे तो समझ लो कि अब नारी अपना इतना घोर उपमान सहन न कर सकेगी। वह एक दिन उठेगी और अपनी ठंडी आहो रूपी विषैली हु कारो से तुम्हारा सवनाश करने मे कदाचित नहीं हिचकिचाएगी आज का पुरुष, अनाथों, अबलाओ और विधवाओ पर अत्याचार करते बिल्कुल नही हिचकिचाता मगर याद रखिए! विधवा को, अबला को सताने वाला व्यक्ति कभी भी अपने जीवन मे सुख प्राप्त न कर सकेगा। तथा वह एक दिन उसके अभिशाप से जल कर भस्मीभूत हो जाएगा। हमे चाहिए कि हम सब बहने मिल कर एकता के सूत्र में बध कर पुरुष को यह बतलाएं कि नारी में अनन्त शक्ति विद्यमान है। पुरुष की सार्थकता तो पुरुष को मुक्त करने मे है उसे बन्धन मे डालने मे नहीं।

अन्त मे फिर हम उस ऋषि वर दयानन्द का, इस वेदी के देवता का सहस्त्र बार धन्यवाद करते हैं जिन्हो हमे शिक्षा दे कर इतने उच्च पदाधिकारों पर सुशोभित होने का अवसर प्रदान किया तथा जिन की कृपा से हमे वेदी पर बोलने का स्वर्णिम अवसर प्राप्त हुआ। हमे हमारे महापुरुषों पर गौरव है। आइये, हम उन के मार्गों का अनुसरण करते हुए, अपने आप का अनुसरण करते हुए, अपने आप का निरीक्षण करते हुए, अपने चरित्र के अस्तित्व को ऊचा उठाएं और समस्त ससार को बतलादें कि भारत के पास सब कुछ है। क्यों कि इस की सम्भावना की जड मे वेद निहित है। इस के प्रागन मे गीता के पावन श्लोकों की ध्वनि ध्वनित हो रही है। इस के अन्तस्तल मे ऋषिवर दयानन्द व बापू गाधी मौन पडे हुए हैं। इस की प्राचीन संस्कृति का गायक बाल्मीकि और तुलसीदास है। तब कौन सी नूतन संस्कृति इस स्वर्ण भूमि को मरुभूमि मे मिलाना चाहती है। कौन सी नतनता इस पर छा कर अपना आधिपत्य स्थापित करना चाहती है। कौन सी मशाल प्रज्जवलित हो कर भस्म फैलाना चाहती है। कौन सी घटाएं अब विनाश का समुद्र उत्पन्न करना चाहती है।

हे भारत के भाग्याकाश में चमकने वाली चन्चला नारी! तू जीवन की ओजमयी पवित्र प्रतिमा है। तेरा अतीत उज्जवल था। तेरा वर्तमान गौरवपूर्ण है। तेरा भविष्य भी गरिमामय होगा।

आर्य समाज के पत्र पत्रिकाएं

(ले० प्रिंसिपल भगवान दास जी शोलापुर)

आप इस बात में मेरे साथ सहमत होंगे कि आज के युग में आर्य समाज विचार-धारा तथा वैदिक तथ्यों के प्रचार व प्रसार की एक बडी भारी आवश्यकता है। व्यर्थ तथा काल्पनिक अडंग व ढग विचारों क आधार पर कोई मत जीवित नही रह सकता अतएव इस विज्ञान के युग में वैदिक सत्य ही जीवन का पथ-प्रदर्शक बन सकते हैं।

ऊपर की वास्तविक्ता के अनुसार आर्य समाज को शक्ति-शाली बनाना होगा तथा इसके लिये सर्व प्रिय समाचार पत्रों को सुसंघटित करके उनको आर्थिक कष्टों से मुक्त करना होगा। इस बात में कुछ अंश तक सत्यता है कि कुछ समाचार पत्र कभी भूल ने अवैदिक विचार-धारा भी दे देते हैं। पर फिर भी आर्य समाज के कार्य-कर्ताओं तथा लेखकों और समाचार पत्र पत्रिकाओं द्वारा बहुत प्रभावशाली तथा सुंदर भाव दिये जाते हैं तथा आर्य समाज के पत्र पत्रिकायें मराठी, गुजराती हिंदी उरदू तथा अंग्रेजी के द्वारा अच्छा प्रभाव डाला रहे हैं। पर जिनका परिचय सबको नहीं आर्य समाजों में भी यह पत्र पत्रिकायें नहीं मगवाई जातीं। मैं इस न्युनता को दूर करने के लिये निम्न मत प्रस्तावित करता हूं अगर आप सहमत हों तो इस मत का प्रचार करें तथा स्वयं इस के पूरा करने में सहायता दें —

(क्रमशः)

इन्द्र का गान करो

(ले० "सत्य भूषण" जी वेदालंकार एम० ए० नई दिल्ली)

मा चिदन्यद्वि शंसत सखायो मा रिषण्यत।
इन्द्रमित्स्तोता वृषण सचा सुते मुहुरुक्था च शंसत ॥
ऋग् म० ८ अ० १ सू० १ म० १

हे सुहृद्गण ! हे मित्रो ! आप ईश्वर के स्तोत्र को छोड़कर अन्य देवों की स्तुति मत करें। अन्य की स्तुति करने से हिंसित न होवे। निखिल कामनाओं के वर्षक परमात्मा की ही आप सब स्तुति करें। ज्ञानात्मक वा द्रव्यात्मक यज्ञ में सब कोई मिलकर उसी का बारम्बार भजन करें।

इस संसार में आकर कोई किसी की स्तुति करता है कोई किसी की। कोई धनवान की खुशामद करता फिरता है कोई अपने से बड़े की पूजा करता है। कोई पत्थरों को पूजता है, कोई पीपल आदि पेड़ों को। शायद सोचता है, कि यही भगवान् है। घंटे घड़ियाल द्वारा उसे बुलाता है। उसी को भोग लगाता है। किन्तु वेद कहता है, केवल इन्द्र की परमैश्वर्यशाली निराकार सर्वव्यापक भगवान् के ही स्तोत्र गाओ, अन्य किसी के नहीं।

इस मंत्र का ऋषि प्रगाथ व घौर काण्व है। और देवता इन्द्र है। इसका विषय इन्द्र है। इस में इन्द्र का वर्णन है। वेद के शब्दों में इन्द्र किसे कहते हैं। पौराणिक इन्द्र नहीं जो वृत्रासुर का नाशक है। तपस्वी ऋषि मुनियों की तपस्या में विघ्न डालने वाला गौतम पत्नी अहल्या से जार कर्म करने वाला है। वैदिक शब्द यौगिक या योगरूढ़ि होते हैं। वे किसी पुरुष या देवता विशेष के नाम नहीं अपितु उस गुण से युक्त वस्तु वा सामान्य व्यक्ति के नाम हैं।

यास्काचार्य इन्द्र की व्याख्या करते हैं।

(१) इन्द्र इरां दृणातीति वेरां ददातीति वेरां दधातीति।

अन्न प्राप्ति के लिए जो मेघ को विदीर्ण करता है, वर्षा से जो अन्न देता है, जो जल देकर पोषण करता है। अर्थात् सूर्य।

(२) इरां दारयत इति वेरां धारयत इति वेन्दवे द्रवतीति वेन्दौ रमत इति वेन्धे भूतानि इति वा।

जो पृथ्वी पर विविध अन्नों को स्थापित करता है। सकल पदार्थों की रक्षा लिए जो दौड़ता है।

जो चन्द्रमा को अपना प्रकाश देता है। जो सब भूतों में प्रविष्ट होकर प्रकाशित होता है।

(३) तत् यदेनं प्राणैः समैन्धंस्तदिन्द्रस्येन्द्रत्व इति विज्ञायते।

इदं करणात् इत्याग्रयणः। इदं दर्शनात् इति औपमन्यव। इन्दतेर्वैश्वर्य कर्मणः इन्दञ्छत्रूणां दारयिता वा द्रावयिता वा दारयिता च यज्वनाम्। नि० दै० ४।१।८

जो इस जगत को करता है, रचाता है वह इन्द्र। जो विवेक से देखा जाय। जो शत्रुओं को भय दिखाता वा भगाता है। ऐसा आग्रयण औपमन्यव आदि ऋषियों का मत है।

कहिये अहिल्या से जार कर्म करने वाला वृत्र नाशक ऋषियों के तप में विघ्न डालने वाला इन्द्र जगत की रचना कर सकता है? कदापि नहीं। क्या उसे ज्ञान योग से विवेक से देखा जा सकता है? अरे, जो अपना ही कल्याण न कर सका, वह दूसरों का कल्याण कैसे करेगा। फिर पत्थरों और पेड़ों आदि जड़ पदार्थों को पूजने से इन्द्र परमात्मा की प्राप्ति होगी? कदापि नहीं। वेद कहता है, भोले मानव! क्यों भ्रम में पड़े हो उसी की उपासना करो केवल उसीकी जो सच्चिदानन्द स्वरूप और सर्वव्यापक है। 'तस्य भासा सर्वमिदं विभाति। सूर्य, चन्द्र आदि में उसी का प्रकाश है। नदी, सरोवर, पर्वत, पेड़ सर्वत्र उसकी महिमा विराजती है। 'पाहन पूजे हरि मिलें, तो मैं पूजूं पहार। ताते ये चाकी भली पीस खाय संसार।'

अन्य देवी देवताओं की उपासना करके हिंसित मत होओ। उसी परमैश्वर्यशाली परमात्मा इन्द्र की उपासना करो। जड़ वस्तुएं तो जड़ ही है न। वे तुझे कैसे सुख दे सकती हैं। तेरा कल्याण इसी में है। जड़ पदार्थ न चल सकता है, न बोल सकता। महर्षि दयानन्द ने शिवलिंग पर यही तो देखा था। पत्थर का बना शिव चूहे को भी न रोक सका।

फिर तू क्यों भ्रम में पड़ा है। उठ, उस निराकार परमैश्वर्यशाली सब कामनाओं के पूरक इन्द्र की उपासना कर। 'नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय।'

भारतीय संस्कृति

लेखक—बाबूराम शर्मा "सिद्धान्त शास्त्री ओ० टी० प्रभाकर हिन्दी संस्कृत अध्यापक श्री आर्य हाई स्कूल मण्डी फूल (भटिण्डा)

सागर वत् अपार संसार में भारत वर्ष को जगद् गुरु कहा जाता था क्योंकि यहीं त्यागी, योगी, यति, ऋषि, मुनि एवं पर-द्रव्य को लोष्ठ वत् समझने वाले अनेक पुरुष हो चुके हैं, किसी देश की महत्ता यदि आंकी जाति है तो वहां की सभ्यता एवं संस्कृति से जानी जाती है।

भारतीय संस्कृति से सम्पन्न एक दम्पति एक समय कहीं जा रहा था जाते २ पतिदेव ने मार्ग में पड़े हुए स्वर्ण-हार को देखा, पति देव स्वकीय अर्धांगिनी से पांच दस कदम आगे जा रहे थे, पति देव ने यह विचार कर कि मेरी दृष्टि में तो मार्ग में पड़ा हुआ तथा पर गृह का स्वर्ण आदि द्रव्य मिट्टी के ढेले के समान है 'सम्भव है कहीं मेरी पत्नी इसे देख कर लोभ के वशीभूत हो, उठा न ले जिस से इस पाप का फल मुझे भी भोगना पड़े' ऐसा सोच कर उस स्वर्ण हार पर मिट्टी डाल कर उसे ढांपने लगगए, इतने में पत्नी जी भी आ पहुंची पति देव की पूर्वोक्त क्रिया देख कर बोली कि यह आप क्या कर रहे हैं? इस मिट्टी को मिट्टी से क्यों ढांप रहे हैं?' यह सुन कर पति देव गद्गद् हो गया कहने लगे कि सचमुच मैं धन्य हूं जिसे ऐसी अर्धांगिनी मिली है, पत्नी से कहा कि आप मुझ से भी आगे बढ़ चुकी है, आप के जीवन से मुझे बहुत कुछ सीखना होगा।

ऐसी थी भारतीय संस्कृति, सन्तोष एवं सदाचार। आज ऐसी २ बातें असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य प्रतीत होती हैं, क्योंकि 'सावन के अन्धे को चारों ओर हरा ही दीखता है' इस उक्ति को आज का मानव समाज चरितार्थ कर रहा है, चारों ओर साधारण व्यक्ति से लेकर राजा तक के मन में कपट छल, बेईमानी एवं हार्दिक संकीर्णता का साम्राज्य है। आओ पूर्वोक्त दृष्टांत को स्वकीय जीवन में उतारें।

———

आर्य कुमार आन्दोलन क्यों ?

(लें० श्री रामप्रकाश जी ज्योति निकेतन धर्मशाला छावनी)

लेखमाला—न. २

आर्य कुमार आन्दोलन क्यों चल रहा है ? अथवा क्यों इसके लिए ये भीष्म प्रयत्न किए जा रहे हैं ?

इसका एक कारण—और सब से पहला तथा सब से बडा—तथा मूल प्रेरक कारण तो यह है कि.—

आज इस आन्दोलन की आवश्यकता है—आवश्यकता इस की पहले भी थी पर आज आवश्यकता बढ़ गई है। आज यह परमावश्यक हो गया है। बल्कि आज यह अनिवार्य है। अति अनिवार्य।

आज आन्दोलन न चला और आज यदि इस आन्दोलन को सफल बनाने के प्रयत्न न किए गए आज यदि यह सफल न हो पाया। तो ...

आर्य समाज की हानि हो जाएगी। बहुत बडी हानि होगी आर्य समाज का सर्वनाश उपस्थित हो सकता है। सर्वनाश की तैयारिया नजर आ रही हैं। आर्य कुमार ही आर्यसमाज की नई पीढ़ी है। आर्य कुमारों से ही आर्य बनते हैं आर्यों में ही आर्य समाज के सदस्य बनते है आर्य समाज के सदस्यों से आर्य समाज को शक्ति मिलती है।

आर्य कुमार नई पीढी ही नहीं आर्य कुमार आर्यसमाज की जड़है।यह जड़ आज खोखली हो चुकी हैं। उखड़ने को समुद्यतहै। लगभग उखड ही चुकी है।

आर्य कुमार आन्दोलन ही इस जड़ को दृढ कर सकता है। इस जड को गहरा ले जा सकता है। मूल को मजबूत कर सकता है।

यह बात सत्य है। शत प्रतिशत सत्य—

लोग कहते हैं। आर्य समाज में ढिलाई आ गई है। आर्य समाज का प्रचार शिथिल पड़ गया। आर्य समाज में कमजोरी आ चुकी है। आर्य समाज में फूट पड़ गई है।

और लोग तो कहते ही हैं। स्वयं आर्य समाज के अधिकारियों के मुख से मैंने यह सुना है। सुन कर धक से रह गया हू। आर्य नेताओं से सुना है। आर्य उपदेशकों के मुख से सुना है।

और इस ढिलाई को दूर करना आर्य कुमारों के वश की बात है। आर्य कुमारो का रक्त उष्ण है उन के रक्त मे जोश है। वे इस शिथिलता को हटा देवेंगे।

उन का आना अनिवार्य हो चुका है। इस आवश्यकता को आर्य जनों का हृदय महसूस करता है।

पिछली शति के पजाब हिमाचल व दिल्ली के भ्रमण में मैंने जब जबभी जहा कहीं भी इस आन्दोलन की चर्चा चलाई तो आर्य जनों के मुख मण्डल एक नई आशा से खिल जाते देखे।

सहज ही उन के हृदय से ये उदगार निकल पड़ते थे—

ब्रह्मचारी जी—यही कार्य सर्वोत्तम कार्य है इसी की आवश्यकता प्रतीत हो रही है। इसी की पुकार हो रही है।

यह आदोलन चलना चाहिए वे कहा करते थे—अवश्य ही चलना चाहिए, हम हर प्रकार का सहयोग—देने को समुद्यत हैं।

ढीले ढाले निराशावादी नेता भी यही कहते सुने हैं—हो जाए तो अच्छा ही है—इस जैसा कार्य तो कोई नहीं। पर होगा भी ?

तब मेरा रक्त उबल जाता था और तुनक कर मैं कह उठता था कि होगा—होगा—होगा अवश्य होगा—यही होगा, इस लिए होगा कुछ मतवाले वीरों ने तब प्राण की बाजी लगा कर यह निश्चय कर लिया है कि इस आदोलन को चलाना ही है सफल ही बनाना है।

उन मस्ताने आर्य युवकों ने इस प्रश्न को अपने जीवन का प्रश्न बना लिया है, अपने जीवन को सर्वप्रथम — एकमेव— कार्य बना लिया है।

उन के हृदयों में इसकी आवश्यकता की प्रतीति हो चुकी है।

और आज के युग मे यह आवश्यक भी हो गया है। क्या आवश्यक हो गया है ?

(१) यह आवश्यक हो गया है कि आर्य कुमार आदोलन चलाया जाये पूरी शक्ति से चलाया जाए तथा उसे सफल बनाया जाए।

(२) यह आवश्यक हो गया है कि आर्य समाज में नवचेतना भरी जाए नए प्राण फूके जाएं इसे गतिशील बनाया जाए।

(३) यह आवश्यक हो गया है कि बीस वर्ष की अवधि के भीतर भीतर समस्त भारत को तो पहले आर्य बना लिया जाए और फिर विश्व को आर्य बनाने की ओर पग बढाए जाएं।

यह सब कुछ आवश्यक हो चुका है बहुत सी औरभ्बातें भी आवश्यक हो चुकी है।

उन सब बातों की चर्चा अपने अगले लेखों में करूंगा।

युवक-चर्चा

तीन प्रश्न और तीन उत्तर

(श्री ब्रह्मानन्द जी कौशल माडलटाऊन यमुनानगर)

प्रश्न (१) क्या आप जानते हैं कि आप के बच्चे आप के कहे में क्यों नहीं ?

(२) क्या जानते हैं कि आप के अपने चरित्रवान्, सदाचारी, विद्वान् और धर्मात्मा होने पर भी आप के बच्चे आप के अनुयाई क्यों नहीं ?

(३) क्या आप जानते हैं कि युवक मुसीबतों को ऐसे क्यों खोज निकालता है जैसे मछली गहरे पानी को ?

उत्तर (१) बच्चे आप के कहे में इस लिये नहीं हैं कि आप के बच्चों का आप के साथ स्वतन्त्रता पूर्वक वार्तालाप का सम्बन्ध स्थापित नहीं है। बच्चों के मन में एक प्रकार का आप की ओर से भय है, जिस के कारण वह आप से वह सब कुछ नहीं कह पाते जो वह करना चाहते हैं अथवा प्रयत्न करते हैं। परिणाम स्वरूप वह उस व्यक्ति से बातचीत का सम्बन्ध स्थापित करता है जो उसे बोलने तथा विचार व्यक्त करने में प्रोत्साहन दे। चाहे वे विचार गन्दे ही क्यों न हों अथवा वह व्यक्ति चरित्रहीन ही हो।

(क्रमश.)

(पृष्ठ ३ का शेष)

२. श्री महाशय चन्द्र गुप्त जी आर्य सेवक वर्षों से अवैतनिक सेवा कर रहे हैं। हर रोज रात को दो घण्टे लाइब्रेरी खोलते हैं।

३. उर्दू, हिन्दी तथा अंग्रेजी की दैनिक, साप्ताहिक तथा मासिक पत्र भी रखे जाते हैं। हर रोज पढ़ने वाले समय पर इकट्ठे हो जाते हैं। और खूब लाभ उठाते हैं।

४. इस परोपकार के कार्य में जितनी आप दानी सहायता देंगे, उतनी ज्यादा से ज्यादा सेवा हो सकेगी और नयी से नयी पुस्तकें जमा की जा सकेंगी।

गुरुप्रसार

मन्त्री आर्य समाज,

सभा की समाजों के उत्सव प्रचार की धूमधाम

—आ. स. प्रेम नगर (करनाल) का उत्सव २५ से २७ मई को सम्पन्न हुआ। १८ ता. से कथा पं० ओंप्रकाश जी, की हुई। उत्सव पर पं० चन्द्रसैन जी श्रीराजपाल जी, म.न. मोहनजी, ताराचन्द जी, खुशीराम शर्मा भाग लेंगे।

आ. स. हमीरपुर (कांगड़ा) का उत्सव १८ से २० मई को समारोह से सम्पन्न हुआ है। १५ मई से खुशी राम शर्मा की कथा और मा तारा चन्द जी के भजन होते रहे उत्सव पर मेलाराम जी, चन्द्रसैन जी श्री राजपाल जी मदन मोहन जी, राम कृष्ण जी पधारे।

पं त्रिलोक चन्द्र जी,

आ. स. लारेंस रोड में कथा कह रहे हैं।

श्री हजारी लाल जी, श्री शिव चरण जी राजौरी के इलाका में प्रचार के लिये पधारे हैं।

आ. स. तालू का उत्सव ६ से ८ मई को सम्पन्न हुआ।

आ स. खाडा खेड़ी का उत्सव २१ से २४ मई को सम्पन्न हो रहा है।

आ. स महोब्बदीन पुर का उत्सव ८ से १० जून को समारोह से सम्पन्न हो रहा है।

आ. स. कलसोरा का उत्सव से ३ जून को सम्पन्न हो रहा है। १६ से २१ मई कौल। २५ से २७ मई जयधर के उत्सव पं० अमर सिंह जी द्वारा सम्पन्न हो रहे हैं।

विशेष निवेदन

सभी आर्य समाजों के अधिकारी महानु भावों से निवेदन है कि जिन समाजों के उत्सव अभी नही हुए। दूसरे सीजन में होते हैं। कृपया अपने २ समाज के उत्सव की तिथियों के निश्चय से शीघ्र सभा को सूचित करने की कृपा करें। ताकि प्रबन्ध में सुभीता रहे।

खुशी राम शर्मा, वेद प्रचार अधिष्ठाता

गीत

(ले० श्री नरेन्द्र कुमार 'आर्य' आर्य युवक समाज लेखराम नगर कादियां)

तर्ज (तज कर घर और बार... ...बार)

छोड़ के घर और बार को, माता पिता के प्यार को
और फिर इस ससार को, वे वेद उठा कर चल दिये
दुनिया की हर गली २ मे, वेद उपदेश सुनाया।
घर बाहर को छोड़ कर न वे सच्चा शिव पाया।
वेदों का प्रचार कर, जाति का उद्धार कर, अन्धकार
का नाश कर, ने मुक्ति के राह पर चल दिये।
झूठे पथ से महर्षि ने, अपने आप को रोक लिया।
मूर्तों का खडन कर के उन से नाता जोड लिया।
पूर्वजों का मन्न कर, और विद्या का दान कर, सत्य के
पथ का दान कर, वे सत्य के पथ पे चल दिये।
बचपन ही में वे सच्चे शिव को ढूढना चाहते थे।
ढूढ लिया और पथिक बने वे मुक्ति पथ के पहले थे।
सत्यार्थप्रकाश, धर्म का प्रचार कर, शिक्षा का प्रसाद
कर, वे वेद उठा कर चल दिये।

सामाजिक और राष्ट्रीय क्रान्ति के उद्घोषक कवि पं० प्रकाशचन्द्र 'कविरत्न'

(ले०—श्री भावानी लाल जो ऐम ए भारतीय जोधपुर)

(गतांक से आगे)

प्रकाश जी का काव्य राष्ट्रीय और स्वदेश भक्ति के भावों से ओतप्रोत है। जिस समय राष्ट्रीय भावों के जागरण के लिये भारत के गौरव पूर्ण अतीत से प्रेरणा ली जाती थी उस समय प्रकाश जी मध्य कालीन राजपूती शौर्य और पराक्रम को अपने काव्य के द्वारा वाणी प्रदान करते रहे। उन्होंने रामायण, महाभारत, इतिहास, एवं पुराण के शतश: आख्यानों को काव्य रूप प्रदान किया है। रूढिवाद, कुसंस्कार और गतानुगतिका के प्रति तीव्र आवेश का भाव उनके काव्य में मिलता है। उनके द्वारा रचित साहित्य प्रकाश तरंगिणी, प्रकाश भजनावली, 'प्रकाश भजन सत्संग, प्रकाश गीत, तथा वीर अभिमन्यु० शीर्षकों के अन्तर्गत प्रकाशित हो चुका है।

इधर लगभग १३ वर्षों से हमारा यह लोकप्रिय कवि गठिया रोग से ग्रस्त है और उनके लिये सुगमता से चलना फिरना भी दूभर हो गया है। उनके सुयोग्य शिष्य संगीतज्ञ और कवि श्री पन्नालाल 'पीयूष' उनके साहित्य प्रकाशन और प्रचार की सुव्यवस्था करते हैं, जिसके कारण आर्थिक दृष्टि से विपन्न होने पर भी कवि की जीवन यात्रा जैसे तैसे चल रही है। इन पंक्तियों के लेखक को अजमेर जाने पर प्रकाश जी के दर्शनों का सौभाग्य प्राप्त हो ही जाता है। इन्हें 'कविरत्न' की उपाधि जगद्गुरु शकराचार्य ने प्रदान की। परमपिता के प्रार्थना है कि वह राष्ट्रीय वाणी के उद्घोषक इस कवि को शतायु करे।

आर्य समाज, यमुना नगर मे
वेद प्रचार सप्ताह

आर्य समाज यमुना नगर (अम्बाला) में ३० अप्रैल से ८ मई तक पं० तेज राम जी वैदिक मिशनरी प्रचार करते रहे प्रात काल सत्संग में उनके प्रभाव शाली उपदेश होते रहे तथा सांय ६ बजे से साढे सात बजे तक बच्चों में सन्ध्या प्रार्थनादि सिखाने का सुन्दर कार्यक्रम चलता रहा।

रवि वार ६ मई को 'वैदिक चक्रवती राज्य' पर पण्डित जी का अत्यन्त प्रभाव शाली व्याख्यान हुआ जिसको ट्रैक्ट के रूप में 'वैदिक साधनाश्रम यमुना नगर के पूज्य स्वामी आत्मानन्द जी प्रकाशन विभाग की ओर से प्रकाशित करने का निश्चय किया गया। जो आर्य सज्जन इसके लिए आर्थिक सहयोग देना चाहें वे वैदिक साधनाश्रम यमुना नगर (अम्बाला) को भेज सकते हैं।

आर्य कन्या महाविद्याल बड़ोदा

का नवीन सत्र ता० १६ जून से आरम्भ होता है। नया प्रवेश ता० १६ जून से ता० ३० जून तक चालू रहेगा। कन्याओं को प्रविष्ट करने के लिये प्रवेश पत्र मंगा लें और शीघ्र ही आचार्या के पास भेजकर स्वीकृति प्राप्त कर लें। गुजरात सरकार ने संस्था की पांचवीं से दसवीं श्रेणी तक एस. एस. सी समकक्ष मान्यता दी है। प्रवेश शुल्क रु० ६०, मासिक शुल्क रु० ५५ लिया जाता है।

निवेदिका—
यशोदा
आचार्या

आल इण्डिया दयानन्द साल्वेशन मिशन होशियारपुर

सूचना

सब सज्जनों से प्रार्थना है कि वे जो चैक या ड्राफ्ट भेजें वह प्रधान आल इंडिया दयानन्द साल्वेशन मिशन होशियारपुर के नाम भेजें। इस के इलावा किसी दूसरे पते पर भेजे हुए चैकों या ड्राफ्टों को कैश कराने में तकलीफ होती है। और कभी २ पता ठीक कराने के लिए चैक वापिस भेजे जाते हैं। आशा है दानी सज्जन चैक भेजते समय इस बात का ध्यान रखेंगे।

शादी लाल
एडवोकेट
मन्त्री मिशन होशियारपुर

सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा नई दिल्ली

वैयक्तिक आयोजनो को सहायता न दी जाए

सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा के मन्त्री श्री बाबू कालीचरण जी आर्य की आर्य जनता को चेतावनी।

आयोजन ... स्वाध्याय, मंदिरों आदि की स्थापना के नाम पर सार्वजनिक रूप से धन संग्रह करने की प्रवृत्ति बढ़ रही है। व्यक्तिगत आयोजनों के लिये दिए हुए धन पर जनता का नियन्त्रण नहीं होता है। अतः सर्वसाधारण जनता और आर्य जनता को इन आयोजनों के सम्बन्ध में धन इत्यादि का सहयोग देने में विशेष सावधान रहना चाहिए। इस प्रकार के आयोजन किसी प्रामाणिक संस्था के नियन्त्रण और संरक्षण में होने से धन के दुरुपयोग की आशंका नहीं रहती और कार्य के सुचारु रूप से चलने की आशा रहती है। इस प्रकार के नियन्त्रित आयोजन ही सहायता के पात्र हैं।

प्रांतीय सभाओं और आर्य सभाओं को इस प्रवृत्ति को न बढ़ने देने में सक्रिय होना चाहिये। इसी में सबका हित है।

—o—

आर्यसमाज गुरुकुल झज्जर का चुनाव

प्रधान—श्री फतेहसिंह जी,
उपप्रधान—,, पं० गंगाराम जी,
मन्त्री —,, देसपाल जी,
उपमन्त्री—,, चन्द्रपाल जी,
कोषाध्यक्ष—,, धर्मदेव जी
पुस्तकालयाध्यक्ष—सत्यपाल जी,

देसपाल मंत्री आर्यसमाज

आर्यसमाज नया बांस देहली

का निर्वाचन इस प्रकार हुआ—
प्रधान—श्री सत्य देवजी विद्यालंकार
उपप्रधान—श्री देवकी नन्दन तथा श्री बनवारी लाल जी शर्मा
मन्त्री—श्री धर्म पाल जी
उपमन्त्री—श्रीफूलचन्द्जी तथा सुरेन्द्र
कोषाध्यक्ष—श्री पूर्ण चन्द्र जी
पुस्तकाध्यक्ष—श्री प्राण नाथ जी

—धर्मपाल मन्त्री समाज

...तक समालोचना

...श्री १०८ स्वामी प्रकाशानन्द जी महाराज, ...संख्या १६८ मूल्य अजिल्द ३१ N. P. सजिल्द ५० N. P. 20×30/32 के आकार में छप कर तैयार है।

इस लघु पुस्तिका में ईश्वर प्रार्थना, ओंकार महिमा, धर्म ... विद्या आदि विविध विषयों पर सरल भाषा में दोहों में रचना की ...

प्रात. उठकर देवियों और कन्याओं तथा भक्तों के लिए स्वा... करने योग्य यह पुस्तक, जपजी श्री संतवाणी, श्री गुरु ग्रन्थ साहब ... सम्मुख रख कर प्रात पाठ करने के योग्य लिखी गई है। पाठकों के मनों को एक बार तो शान्ति प्रदान कर देती है इस के बारे में श्री पूज्य म० आनन्द स्वामी जी सरस्वती के विचार—

सच्चे ईश्वर प्रेमी और आर्यसमाज के प्रसिद्ध संन्यासी श्री १०८ स्वामी प्रकाशानन्द जी सरस्वती की यह सुन्दर पुस्तक अमृतवाणी है। इस में वास्तविक रूप से अमृत भरा पड़ा है। स्वामी जी ने अपने जीवन में भिन्न २ विषयों पर जो दोहे बनाए तथा एकत्रित किए हैं, उनका यह एक संग्रह है। अंत में प्रात. कालीन पाठ करने वाले मन्त्रों को भी एकत्रित किया है। मेरे विचार में हर एक गृहस्थी को इसकी कापियां घरों में रखनी चाहिएं और प्रात उठकर पाठ करके मन को शान्ति देनी चाहिये।

नोट—बाईडिंग क्लाथ की बनी हुई बढ़िया जिल्द का मूल्य केवल 50 N P है।

प्राप्ति स्थान—महात्मा हंसराज साहित्य विभाग
आ० प्र० पी० सभा निकट कोर्ट जालंधर

चुनाव

हिसार टैक्स टाईल मिल आर्य समाज

हिसार का वार्षिक चुनाव निम्न प्रकार से हुआ रविवार दिनांक ६ मई, १९६२ को खुले अधिवेशन में क्वार्टर न. बी १८/७६ में हुआ जिस में निम्न लिखित महानुभाव सर्वसम्मति से निर्वाचित किये गए —

प्रधान—श्री मोहन लाल जी
उपप्रधान—श्री बाल कृष्ण जी
प्रबन्ध मंत्री—
श्री किरोड़ी लाल जी गुप्त प्रभाकर
प्रचार मंत्री—
श्री ओम प्रकाश जी मिश्र
उप-मंत्री—श्री कुल भूषण जी
कोषाध्यक्ष—श्री धर्म पाल जी आर्य
पुस्तकाध्यक्ष—श्री बृज मोहन जी
प्रबन्धक—श्री वेद प्रकाश जी
सहायक-प्रबन्धक—श्री ईश्वर दत्त जी
संगीत-प्रबन्धक—श्री लीला कृष्ण जी
निरीक्षक—
श्री मामचन्द जी
श्री ओम सेन जी त्यागी

अन्तरंग सभा के अन्य सदस्य
श्री ओंकार नाथ, श्री धर्म सिंह, श्री रामकिशन प्रभाकर, श्री रूप लाल श्री दयानन्द, श्री चन्द्र भानु, श्री बलवन्त सिंह।

—किरोड़ी लाल गुप्त मंत्री समाज

दस नियमों का पालन करना आर्यों का धर्म है

मुद्रक व प्रकाशक श्री संतोष राज जी मंत्री आर्यप्रादेशिक प्रतिनिधि सभा पंजाब जालंधर द्वारा वीर मिलाप प्रैस, मिलाप रोड जालंधर से मुद्रित तथा आर्य-जगत कार्यालय महात्मा हंसराज भवन निकट कचहरी जालन्धर शहर से प्रकाशित मालिक—आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा पंजाब जालन्धर

टेलीफोन नं० ३०५७ [आर्यप्रादेशिक प्रतिनिधि सभा पंजाब जालन्धर का साप्ताहिक मुखपत्र] Regd No.P

एक प्रति का मूल्य १३ नये पैसे वार्षिक मूल्य ६ रुपये

वर्ष १२ अंक २२) रविवार २१ ज्येष्ठ २०१८— ३ जून १९६२ दयानन्दाब्द १३८ (तार प्रादेशिक जालन्धर

वे द सू क्त यः

इदं देवाः शृणुत

इदं—यह मेरी बात वचन देवा. हे देवों ! विद्वान ज्ञानी लोगो शृणुत सुनो। जो कुछ भी भले की हित की बात कहता हूं—जिस से सबका कल्याण होगा मेरे उस विचार. वचन को सुनो।

स बद्धो दुरिते नियुज्यताम्

स बद्ध-उसे बाध कर दुरिते दुःख में दण्ड में नियुज्यताम्-जोड दो ! जो भी राष्ट्रघाती और शत्रु है उसे बांध कर इस अपराध मे कडा से कड़ा दण्ड दिया जाये। उसे बन्धन में डाल कर देश द्रोह में दण्डित किया जाये।

मन इदं हिनस्ति

जो शत्रु मन-मन का हमारे अच्छे विचारों का इदं-यह हिनस्ति नाश करता है। जो हमारे शुभ भावों को बुरे भावों में बदलना चाहता है—उसे दण्ड दो।

अ थ र्व वे द से

वे दा मृ त

स नः पितेव सूनवेऽग्ने सूपायनो भव ।
स च स्वा नः स्वस्तये ॥ ऋ० १-१-६

अर्थ—(स) वह भगवान (न) हमें (पिता इव) पिता के समान (सूनवे) सन्तान के लिए पुत्र के लिए (अग्ने) हे प्रकाशमय परमेश्वर (सूपायन·) शुभ कर्मों मे लगाने वाला (भव) हो (सचस्व) और जोड दो (न) हमे (स्वस्तये) कल्याण और सुख के लिए।

भाव—हे पिता जी ! जीवन मे प्रकाश भरनेहारे ज्योति स्वरूप ! हम आपकी प्यारी सन्तान हैं, अमृत पुत्र हैं। आप हमारे पूज्य, प्यारे पिता हो। हम आपके पास आने मे फिर संकोच क्यों करे ? पुत्र को अपने पिता से क्या दुराव और बिलगाव हो सकता है। उसके समीप जाने में कठिनता कैसी ? पिता और पुत्र के मध्य तीसरा व्यवधान कैसा ? पुत्र जब चाहे तभी अपने पिता के समीप पहुंच कर उसका आशीर्वाद प्राप्त कर सकता है। पिता का द्वार तथा उसकी गोद उसके लिए निरन्तर खुली हुई है। पिता सदा अपने पुत्र का है और पुत्र अपने पिता का ही। दोनो मे बाधा कैसी ? हे प्यारे पिता जी ! फिर भी हमें अपने कर्मों के, त्रुटियों के कारण आप से संकोच हो आता है। अपने मैले मन को देख कर, मलिन कार्मों के कारण लाज आती है। कृपा करो पिता जी ! हमें आशीर्वाद दो ताकि आपका प्यार प्राप्त कर सके। हमें कल्याण एवं सुख के पथ पर ले चलो। शुभ कर्मों में जोड़ दो। हमारी प्रवृत्ति शुभ कार्यों में लगी रहे। पिता जी ! हम तेरे बालक हैं, तू हमारा पिता है—प्यार दे दो—सं०

ऋ षि द र्श न

यस्य प्रत्यक्षः तस्यैव संस्कारः

जिस का प्रत्यक्ष होता है, उसी का संस्कार होता है। संस्कार उसी वस्तु का होता है जिसका पूर्व प्रत्यक्ष अनुभव हुआ हो। जिसका प्रत्यक्ष ही नहीं हुआ उसका संस्कार कैसा ?

संस्कारः तस्यैव स्मरणम्

जिस वस्तु का संस्कार होता है उसी का स्मरण होता है। वही वस्तु याद आती है जिसका पहले अनुभव हो चुका है और जिस का संस्कार मौजूद हो। संस्कार के बिना स्मरण नहीं होता।

तेनैव प्रवृत्ति निवृत्ती

तेन—उस स्मरण से एव-ही प्रवृत्ति-शुभ में प्रवृत्ति रुचि और निवृत्ति-अशुभ से निवृत्ति होती है। उसी स्मरण के द्वारा ही अच्छी बातें व कर्मों में लगाव और बुरी बातों व कर्मों से दुराव हो जाता है।

भा ष्य भू मि का

[illegible]—संतोष राज मंत्री सभा सम्पादकः त्रिलोक चन्द्र शास्त्री

रोटी बेटी का सम्बन्ध

(ले० प्रो० हरनाम सिंह शान, एम, ए पंजाब विश्वविद्यालय प्रकाशन विभाग, चण्डीगढ़)

रोटी बेटी का सम्बन्ध विश्व में एक बहुत बड़ा और अटूट सम्बन्ध है। सांस्कृतिक एकता की महान् एवं पवित्र सोपान भी यही है। भिन्न-भिन्न विचारों, विश्वासों एवं रहन सहन वाले लोगों को मिलाने और उन्हें सदा के लिए एक बनाने में आज तक यही सम्बन्ध सब से सफल सिद्ध हुआ है। आर्थिक एवं राजनीतिक सम्बन्ध टूट सकते हैं और सदा टूटते रहे हैं, परन्तु ऐसे सांस्कृतिक सम्बन्धों को टूटने में सदियां लगती हैं। यह इस लिए कि इन की नींव और टेक खूनी रिश्ते की पीढी दर पीढ़ी आंतरिक ताने-बाने पर आधारित है।

इस लिए सम्राट् अकबर ने भारतमें दो भिन्न-भिन्न संस्कृतियों को मानने वाले हिन्दू-मुस्लिमोंको एकता के सूत्र में पिरोने के लिए इसी का एक बहुत सफल परीक्षण किया था। राजपूत स्त्रियों के साथ विवाह, उन की सन्तानों के लिए मुगलराज, ललित कलाओं का समिश्रण और धार्मिक विचारों तथा स्थानों के लिए आदर इसी तजर्बे के कुछ व्यावहारिक प्रमाण हैं। परन्तु सौभाग्य या दुर्भाग्य से यह प्रयोग स्थिर न रह सका और अकबर की आंखे मुंदते ही उस की सब आशाएं भूमिसात् हो गई।

इस ऐतिहासिक प्रयोग की असफलता का, मेरे विचार से, एक बड़ा कारण यह था कि हिंदु मुसलमान जनता (दरबारियों, सरकारी कर्मचारियो और उन के मुंह लगे अनुयायियों आदि के अलावा) ने इसे तन- मनसे अपनाना स्वीकार नहीं किया था। यह अस्वीकृत कई प्रकार की विवशताओं के कारण थी। सदियों से चली आ रही भिन्न भिन्न सभ्यताओं और संस्कृतियो पर आधारित प्राणी रोटी और बेटी जैसी बुनियादी सांझ के साथ रातों रात कैसे संबन्धित किए जा सकते थे? हिंदुओं को 'काफिर' और मुसलमान को 'म्लेच्छ' कहने वाले--

अभाख्या का बुड्ढा बकरा खाणा
चौके उप्पर किसे न जाणा।

विश्वासों के अनुयायी और कर्मकाण्डों तथा शरहशरीयत के बन्धनों से बन्धे हुए लोग इस प्रकार के क्रान्तिकारी प्रोग्राम को झट-पट किस तरह अपना सकते थे? इसलिए यह प्रयोग न केवल असफल हुआ बल्कि पाकिस्तान बनने तक किसी न किसी रूप में गड़-बड़मचाये रखनेका कारण भी बना रहा। सूअर और गाय, चोटी और सुन्नत का भेद न मिट सका और न ही इस के मिटने की कोई सम्भावना अभी प्रकट है। यह इस लिए कि रोटी और बेटी की सांझ डालने के लिए न कोई उस का समय तैयार था और न कोई अब दिखाई पड़ रहा है।

सिख लहर भी इसी समय अपना सिर उठा रही थी। इस के महान् प्रवर्तक के ऐसे नारे चारों ओर गूंज रहे थे :—

१. न हिंदू न मुसलमान
अल्ला राम के पिंड प्रान
२ हक पराया नानका
उस सूअर उस गाय
गुरपीर हामां तां भरे
जा मुरदार न खाए
(गुरु ग्रन्थ साहिब)

गुरु नानक साहिब ने उलझन को सुलझाने के लिए एक सांझा प्लेटफार्म बनाया और हिंदुओं को अच्छे हिंदू तथा मुसलमानों को अच्छे मुसलमान बनने के लिए प्रेरित किया। इसके साथ ही कुछ नए सिद्धान्तों के अलावा दोनों सभ्यताओं के अच्छे गुणों और पवित्र भावों को अपना कर एक सर्वव्यापी एकता के सफल प्रयोग किए।

'बाबर शाहियों की 'तौहीद' और 'जमात' नामक शाहीयों की इक ईश्वरता' (FATHERHOOD OF GOD) और 'भ्रातृत्व' BROTHERHOOD OF MAN के साथ मिलती जुलती थीं। ऐसे ही हिंदुओं के साथ भी बहुत सारी बातें समान थीं, पर 'रोटी बेटी की सांझ' न होने के कारण हिंदू हिंदू ही रहे और मुसलमान मुसलमान।

परन्तु जहां तक हिंदू सिख की परस्पर साझ का सम्बन्ध है वह तो प्रारम्भ से ही है। हिंदू चाहे सनातनी था या आर्यसमाजी सिख चाहे सिंह-सभाई था या नामधारी, सभी एक ही वृक्ष की शाखाए थे, हैं और बने रहेंगे। पंजाबीयत के पुतले, लाला धनीराम, चात्रिक' ने यह जो कभी कहा था कि—

सिख सनातन आरिए
इक बिरछ दे डाल
तारे इक्को अम्ब दे
हीरे पन्ने लाल

इस की सचाई से न उस समय इन्कार था और न ही अब इस को अस्वीकार किया जा सकता है। इस महान् सांझ की अटूटता और स्थिरता की सब से बड़ी टेक और निशानी मेरे विचार में रोटी बेटी की साझ ही है। इतिहास इस बात का साक्षी है कि मुगल आए और चले गए, अंग्रेज आए और लौट गए, लेकिन रोटी बेटी की सांझ न होने के कारण न तो वे हिन्दू—सिख भाईचारे का अंग बन सके और न ही इन को अपने साथ मिला सके। अपनी मर्जी या विश्वास के साथ मुसलमान बने हुए किसी सिख का नाम मैं ने तो अभी तक न कहीं पढ़ा है और न ही सुना है। इसी प्रकार इतने लोभ लालच और प्रेरणाओं के बावजूद विश्वास के साथ ईसाई [illegible] की गिनती भी केवल अंगुलियों पर ही गिनी जाने वाली है। इस का कारण भी तो इसी रोटी बेटी की सांझ का अभाव ही प्रतीत होता है।

इस के विपरीत हिन्दू सिखों के इस परस्पर सम्बन्ध और एकता से तो इन्कार नहीं किया जा सकता। इसी लिए मैं कहता हूं कि एक ही चौके में बैठ कर एक ही थाली में मिल कर दाल रोटी खाने वाले, एक दूसरे की बहु बेटी को एक दूसरे के साथ ब्याहने वाले किस प्रकार पृथक् हो सकते हैं। नित्यप्रति नए झगड़े छेड़ने और भेद डालने वाले जानते नहीं कि :—

इक्को देश ते इक्को उद्देश साझा,
इक्को वेश इक्को रूप रंग साझा।
इक्को फलसफा इक्को तहजीब साझी,
मंजी वांग उणिया अंग अंग साडा।

हमारे सम्बन्ध रक्त के सम्बन्ध हैं। हमारे रिश्ते नख और मांस से भी समीप और स्थायी हैं। छोटी छोटी बात पर खीजने, लड़ने लग पड़ने, डराने और मुक्के उठाने वाले जानते नहीं कि इस दिन की खटपटी और अविश्वास के नतीजे इतने भयानक हैं कि इनका विचार आने से ही रोम रोम कांप उठता है। पिछले आठ नौ वर्षों से धुआं दे रही धूनी को यदि दबाया न गया तो, ईश्वर न करे, किसी न किसी दिन यह ज्वाला बन सकती है और यह आग सन ४७, वाली आग से सौ गुना अधिक भयानक, हानिकारक और घातक हो सकती है। इतनी अधिक भयानक जितना कि एटम बम्ब से हाईड्रोजन बम्ब सिद्ध हुआ है। सन १९४७ के पहले संयुक्त पंजाब में तो हिन्दू, सिखों और मुसलमानों के गांवों के गांव और मुहल्लों के मुहल्ले अलग-अलग थे। अब 'आम' सभी तो अपनी जान और माल बचाने के लिए अपनी अपनी जगहों पर इकट्ठे हो, कट मर, कौन भी मंग और कट भी जाये।

(क्रमशः)

युवक-चर्चा

तीन प्रश्न और तीन उत्तर

(श्री ब्रह्मानन्द जी कौशल माडलटाऊन यमुनानगर)

(गतांक से आगे)

अत आप अपने बच्चों का मानसिक विकास करने में सत्य, सनातन नियमों का आश्रय लें और उनके निर्माण में वैदिक सिद्धांतों को अपनाये तथा बच्चों को प्रेम तथा सरलता से उनके प्रत्येक प्रश्न का उत्तर दें और स्वयं भी प्रश्न करें।

उत्तर २

आप अच्छे हैं, विद्वान् हैं, सदाचारी तथा चरित्रवान् हैं परन्तु आपके बच्चों को यह सब इसलिए पसन्द नहीं है कि उनके विचार आपसे भिन्न हैं। बच्चों का स्वाभाविक गुण है कि वह ३, ४ वर्ष की आयु से लेकर १२, १४ वर्ष की आयु पर्यन्त खेलना पसन्द करते हैं और खेलते हैं।

क्या आपने अपने बच्चों के खेलने के लिए कोई सुव्यवस्था कर रखी है? यदि नहीं तो वह क्या खेलते हैं? कौनसी खेल खेलते हैं। कब और कहा खेलते हैं? किससे और किस प्रकार खेलते है? इत्यादि के विषय में आप क्या जानते हैं? यदि नहीं तो अवश्य जानें।

आपके अच्छा होने पर भी आपके बच्चे इसलिये अच्छे नहीं हैं कि उनकी आयु के महत्वपूर्ण वर्ष केवल खेल कूद मे बीतते हैं और वे खेलते हैं उन बच्चों के साथ जिनके माता-पिता दुर्व्यसनों से बुरी प्रकार से ग्रस्त हैं आधुनिक फैशन तथा पाश्चात्य विचार धारा को महत्व देते हैं जिसका परिणाम यह निकलता है कि आपके बच्चे खेलकूद के अतिरिक्त उन बच्चों से बुरे विचार भी अपने साथ ले आते हैं और आप उन गन्दे विचारों के प्रभाव को नष्ट करने को शुभ विचारों का इन्जैक्शन लगाने का प्रयत्न नहीं करते जिसके फल स्वरूप वह दिन प्रतिदिन बढते चले जाते हैं और " और एक दिन वह आता है जब आपके अपने बच्चे आपके नहीं रहते।

अत आप अपने बच्चों के लिए व्यवस्थित, उच्चतम स्तर के क्रीड़ा केन्द्रों का निर्माण करें तथा जो बच्चे छात्रालय मे रहते हैं उनकी आध्यात्मिक शिक्षा का प्रबन्ध करें और बच्चों के मानसिक विकास मे उनकी सहायता करें।

उत्तर ३

युवक मुसीबतों को ऐसे खोज निकालता है जैसे मछली गहरे पानी को। परन्तु वह न तो उनका सामना करने का साहस रखता है और न उनको टालने के साधन से परिचित है। कारण यह कि मा बाप ने उसका मानसिक विकास नहीं होने दिया और विचारने की योग्यता ही उत्पन्न नहीं की।

मा-बाप ने उसे B A, M A तो अवश्य पढाया परन्तु उसे न तो धार्मिक शिक्षा दिलाई और न ही अपने विशाल गृहाश्रम के अनुभव से वैवाहिक जीवन व्यतीत करने का ढग बतलाया। परिणाम स्वरूप युवक को दूसरों से सहायता लेनी पड़ी नावल के रूप में, गन्दी अश्लील पुस्तकों से तथा चल-चित्रों से। क्योंकि वह वासना, स्मृति और संस्कार के आधीन इन बातो का इच्छुक होता है और उनकी पूर्ति को पूरे हाथ-पाँव मारता है। अत. माता-पिता को चाहिये कि वे अपने बच्चो को दूसरी शिक्षा के साथ-साथ महत्वपूर्ण-वैवाहिक जीवन के विषय में भी थोड़ा-थोड़ा संकेत करते रहा करें। इस विषय मे अब उत्तरदायित्व मा-बाप पर है न कि बच्चो पर बच्चों का क्या दोष इसमें?

मा-बाप ने उन्हे न तो अच्छे क्रीडा केन्द्रों पर भेज कर उनके शरीर को सुगठित किया न ही उन्हें चरित्रवान शिक्षकों से शिक्षा दिलाई और न ही सभ्य एव सदाचारी पुरुष के संरक्षण मे छात्रावास मे रखा और न ही उसे मानसिक विकास के वातावरण में पलने दिया।

अत यदि आप चाहते है कि आपके बच्चे आप जैसे सुयोग्य एव चरित्रवान बने तो आज ही अपने बच्चो को आर्य पाठशालाओं मे प्रविष्ट करायें जहा उन्हें शारीरिक, मानसिक, आत्मिक, सामाजिक नैतिक, तथा बाकी शिक्षायें मिलेगी वहा वह चरित्रवान सदाचारी बनेगा और वह बन सकता है केवल वेद भगवान की आज्ञा का पालन करे और वेद ज्ञान के प्रकाश स्तम्भ से प्रकाश पाकर जीवन उत्थान के मार्ग पर बढे।

—०—०—

आर्यजगत की उन्नति कैसे हो

एक सुझाव

(ले०—श्री ओमप्रकाश जी महोपदेशक सभा)

आर्यजगत् आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा का मुख्य साप्ताहिक पत्र है। पर्याप्त घाटा उठाकर सभा इसका प्रकाशन कर रही है। प्रति-वर्ष घाटा उठाना सभा के समक्ष आर्थिक कठिनाइयों को उपस्थित करता है। जहा तक आर्यसमाजों का सम्बन्ध है उनको अपनी सभा के इस मुख्य विचार पत्र को अवश्यमेव अपनाना चाहिये। जितनी ग्राहक संख्या बढ़ेगी उतना ही इसका आंतरिक और बाह्य रूप सुन्दर होता जायेगा। विद्वान महानुभाव भी इसी पत्र में लेख प्रकाशित करवाना उचित समझते है जिसके प्रति अपने आत्मिक सक्रियता का परिचय दे रहे हों। आर्यजगत् की ग्राहक संख्या को बढाने का एक अचूक उपाय हम सभी के समक्ष उपस्थित करते हैं इसे कार्यरूप में परिणत करने से इसका प्रकाशन सहस्त्रों की संख्या में हो जायेगा और घाटे के स्थान पर लाभ की भी आशा की जा सकेगी।

सभी जानते हैं कि प्रादेशिक सभा के प्रभावान्तर्गत अनेक कालेज, स्कूल, कन्या महाविद्यालय और अन्य सस्थाये हैं। सभा के मान्य अधिकारी और अन्तरङ्ग सदस्य स्वयं आर्यजगत् के नियमित रूपेण ग्राहक बनकर अपनी सभी संस्थाओं के अधिकारियों प्रिंसिपलों और प्राध्यापक महानुभावों को यदि इस पत्र का ग्राहक बनाले तो जहा इसका प्रकाशन अत्यधिक हो जायेगा वहा पाठ्य सामग्री भी उत्तम हो जायगी और घाटे का प्रश्न भी स्वाहा हो जायेगा सभा के मान्य अधिकारियों तथा अन्य सभी हितैषी बन्धुओं को इस सुझाव पर सहानुभूति से विचार करना चाहिए। सदा स्मरण रखिये कि Charity Begins at Home

—

" सैकेन्ड्री स्कूल कादिया का

र परिणाम

इस परीक्षा के परिणाम में डी. ए. वी. हायर सैकेन्, र में द्वितीय रहा जिला में द्वितीय आने वाला छ ो स्कूल का छात्र है, साथ . शिक्षा विभाग ने छात्रों महेन्द्र पाल सिंह, सं. सम, अशोक कुम ..सिंह को छात्र वृत्ति देनी स्वीकार की है। इस शानदार प. ..म का श्रेय स्कूल के अनुभवी तथा सुयोग्य प्रींसिपल महोदय तथा अध्यापकों पर है।

धनी राम भल्ला मैनेजर डी. ए.वी. हायर सै० स्कूल कादियां

आर्यसमाज प्रीतनगर जालंधर का निर्वाचन

प्रधान—श्री ओमप्रकाश जी शर्मा, उप-प्रधान—श्री [illegible] सिपी वाले, मन्त्री—श्री गणपतलाल जी शर्मा, उप-मन्त्री—श्री सत्यपाल जी गुप्ता, कोषाध्यक्ष—श्री चन्द्रप्रकाश जी महाजन, पुस्तकाध्यक्ष तथा लेखा निरीक्षक—श्री धर्मवीर जी भाटिया अन्तरङ्ग सभा के सदस्य—(१) महता कृष्णदेव मोहन, (२) श्री कर्मसिंह ठाकुर, (३) डाक्टर सुखदेव सिंह, इसके अतिरिक्त समाज की ओर से आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के लिये महता कृष्णदेव मोहन को प्रतिनिधि चुना गया।

—गणपतलाल शर्मा मन्त्री समाज

रोहतक में आदर्श विवाह

रोहतक शहर के प्रसिद्ध सोशल कार्यकर्ता श्री विद्यार्थी जी की सुपुत्री कुमारी यजुर्वेद आर्या B.A.B.T. प्रभाकर, सिद्धान्त भास्कर का [illegible] १३ मई को श्री राजेन्द्र जी जिज्ञासु M.A. के साथ वैदिक [illegible] हुआ। श्री विद्यार्थी जी के घर निरन्तर एक सप्ताह तक [illegible] सुरेन्द्रानन्द जी महाराज ने यज्ञ तथा कथा की। बरात के [illegible] रिकार्डों का नाम नहीं था, केवल साधारण रूप में बिजली के बल्ब प्रकाशमान थे, ताकि विवाह वाला घर प्रतीत हो। पूज्य विद्यार्थी जी ने पश्चिमी पंजाब की विवाह पद्धति का समय सर्वथा बदल दिया था, जो कि ११ बजे से प्रारम्भ हो कर पिछली रात तक चलता रहता था।

७-४० पर विवाह क्रिया प्रारम्भ हुई और १०-३० पर समाप्त हुई। आर्य समाज भज्जर रोड के माननीय पुरोहित अमरनाथ जी ने यह शुभ कार्य सम्पन्न कराया। इस विवाह-संस्कार क्रिया को सम्पन्न कराने के लिए श्री स्वामी सुरेन्द्रानन्द जी, स्वामी सोमानन्द जी श्री प० गणेश दास जी आर्य सेवक, श्री उत्तमचन्द जी शरर M.A. साथ रहे। वर तथा कन्या पक्ष के सब स्त्री पुरुष विद्यमान थे। प्रातः ठीक ६ बजे सन्ध्या तथा यज्ञ प्रारम्भ हुआ। श्री स्वामी सुरेन्द्रानन्द जी महाराज ने वर तथा वधू को आशीर्वाद दिया। पूज्य विद्यार्थी जी ने अपनी पुत्री को भावपूर्ण शब्दों में विदाई दी, तथा हिन्दी अंग्रेजी भाषा में [illegible] ऋषि दयानन्द, गुरु विरजानन्द पं० लेखराम जी के विशाल चित्रों के साथ वर को कुशा तथा वधू को छुरा भेंट किया। लड़की की ओर से श्रीमती सुरजीतकौर ने दहेज का सामान बन्द ट्रंकों में दिया। इस शुभ अवसर पर वर तथा वधू पक्ष की ओर से १११ रु० विभिन्न संस्थाओं को दान दिये।

—प्रकाशवती अधिष्ठात्री धनवंती आर्य गर्ल्ज हाईस्कूल रोहतक

डी ए. वी हायर सैकन्डरी स्कूल करनाल

Core परीक्षा परिणाम शत प्रतिशत

हायर सैकन्डरी कोर सबजेक्टस में इस वर्ष स्कूल ने २१६ परीक्षार्थी भेजे जिन में सारे परीक्षार्थी बड़े सुन्दर अंक प्राप्त करके पास हो गये हैं। फर्स्ट डिवीजनों की तो एक प्रकार से बाढ़ सी आ गई है। दो विद्यार्थी मैरिट लिस्ट में आये हैं। इसी प्रकार मिडिल परीक्षा में भी मैदान इसी स्कूल के हाथ रहा। स्कूल की उन्नति का सेहरा पं० गिरिधारी लाल जी शर्मा M.A.B.T. प्रिंसीपल और उन के सुयोग्य स्टाफ के सिर पर है। प्रिंसीपल जी ने स्कूल को चार चाद लगा दिये हैं।

प्रेषक
स्कूल स्टाफ

आर्य समाज माडल टाउन गुड़गांवां का चुनाव निम्न प्रकार से हुआ

प्रधान—म० मूलचन्द जी कपूर, उपप्रधान चौ. ठाकुरामजी, मन्त्री श्री त्रिलोकनाथ जी, उपमंत्री श्री रामप्रकाश जी लेखा निरीक्षक—पं० तीर्थराम जी, खजांची ला० कुन्दनलालजी। पुस्तकालयाध्यक्ष—श्री भीमसेनजी सचदेव श्री सुभाषचन्द्रजी स्टोरकीपर—मा. गिरधारी लाल जी आडीटर—श्री केवलकृष्ण। अन्तरंग सदस्य—श्री बृज भूषण जी गलहू M.A.B.T. श्री यशपाल जी खन्ना, श्री कृष्ण बलदेव जी मलहोत्रा, श्री बावासिंह जी, श्री ईश्वरचन्द्र जी ठेकेदार, मा. होतूराम जी।

निवेदक—त्रिलोकनाथ मन्त्री

मुद्रक व प्रकाशक श्री सतोष राज जी मंत्री आर्यप्रादेशिक प्रतिनिधि सभा पंजाब जालंधर द्वारा वीर मिलाप प्रैस, मिलाप रोड जालंधर से मुद्रित तथा आर्य जगत कार्यालय महात्मा हंसराज भवन निकट कचहरी जालन्धर शहर से प्रकाशित मालिक—आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा पंजाब जालन्धर

टेलीफोन नं० ३०५७ [आर्यप्रादेशिक प्रतिनिधि सभा पंजाब जालन्धर का साप्ताहिक मुखपत्र] Regd No. P.121

एक प्रति का मूल्य १२ नये पैसे वार्षिक मूल्य ६ रुपये

वर्ष २२ अंक २३) रविवार २८ ज्येष्ठ २०१८— १० जून १९६२ दयानन्दाब्द. १३८ (तार-प्रादेशिक जालन्धर

वे द सू क्त यः

ब्रह्मद्विषं द्यौरभि संतपाति

जो ब्रह्म से ज्ञान से द्वेष करता है जो ब्रह्म द्वेषी है, उसे द्यौ-विश्व अभिसंतपाति तपाता है, दु:खी करता है। उस से दूर ही रहता है। ज्ञान और प्रकाश से द्वेष करने वाले को जीवन में सदा कष्ट ही मिलता है, सुख नहीं मिलता।

अया यमस्य सादनम्

हे मानव तू अया-आ प्राप्त कर यमस्य यम के विश्व को नियम में रखने वाले परमेश्वर के सादनम् आश्रय में। हे नर! तू अब उसकी शरण में आ। प्रकृति के प्यार का त्याग करके प्रभु नियामक की प्रीति प्राप्त कर।

आयुर्दा अग्ने

हे अनिर्वचनीय परमेश्वर! आप आयु:-आयु, जीवन के दा:-देने वाले हैं। हम आप से ही जीवन पाते हैं। सारी जीवन तथा प्राण की शक्ति आप से ही मिलती है।

अ थ र्व वे द से

वे दा मृ त

स्वस्ति नो मिमीतामश्विना भगः स्वस्तिदेव्यदितिरनर्वणः।
स्वस्ति पूषा असुरो दधातु नः स्वस्तिद्यावा पृथिवी सुचेतन

ऋ० ५-५१-१

अर्थ—(स्वस्ति) कल्याण (न) हमारा (मिमीताम्) करें (अश्विना) अध्यापक ज्ञानी उपदेशक (भग) ऐश्वर्यशाली (स्वस्ति) कल्याण करे (देवी) दिव्य गुणों से युक्त (अदिति) अखण्डित शक्ति (अनर्वणा) ऐश्वर्य से वाली। (स्वस्ति) कल्याण करे (पूषा) पोषण करने वाला (असुर) मेघ (दधातु) धारण करे (न.) हमारे लिए (स्वस्ति) कल्याण करे (द्यावा पृथिवी) द्यौलोक और पृथिवीलोक (सुचेतुना) सुख प्रदान करें। हमे सुख आनन्द मिलता रहे।

भाव—भगवन! हम सारे विश्व के लिए सुख, कल्याण और शान्ति चाहते हैं। ये ज्ञानी अध्यापक तथा उपदेशक अपने सदुपदेशों तथा उत्तम ज्ञान से हमारा कल्याण करें निरन्तर इनका प्रकाश हमारे जीवन को प्रशस्त पथ पर चलाता रहे। ऐश्वर्य भण्डार से भरे जगदीश्वर! आपकी अखण्डित शक्ति के द्वारा हम सदा ऐश्वर्य को प्राप्त करते रहें। हमारी झोली विपुल वैभव से भर दीजिये। जल बरसाने वाले मेघ सदा सुख वर्षा से हमें पुष्ट सम्पन्न करते रहें। यह द्यौलोक और यह विशाल पृथिवीलोक सदा हमारा कल्याण करते रहें।

अनादिदेव! हम कल्याण के इच्छुक हैं। सुख साधना में लगे रहते हैं। विश्वपति! तेरा सारा विश्व हमें सदा सुखी कर दे। हम कल्याणपथ के पथिक बन कर शाश्वत सुख को पावें। न हमें प्यारा है तेरा यह संसार भी हमारा कल्याण करता रहे। —सं०

ऋ षि द र्श न

ईश्वरे विद्यानन्ता

ईश्वर में अनन्त विद्या है. अनन्त ज्ञान है। मनुष्य का ज्ञान अल्प तथा सीमित है। किन्तु ब्रह्म को अनन्त कहा गया है। अनन्त ब्रह्म का ज्ञान भी अनन्त तथा असीम है।

न कस्यापि ज्ञानोन्नतिः

उस परमेश्वर के उपदेश वेद के बिना किसी की भी विद्या ज्ञान की उन्नति नहीं होती। सृष्टि के आरम्भ में वेदोपदेश के बिना, उस विश्व-गुरु प्रभु के बिना विद्या और ज्ञान मनुष्यों को कैसे आ सकते हैं?

अशिक्षित बालक वनस्थवत्

जैसे बालक तथा वन में रहने वाले को बिना विद्या ज्ञान सिखाये कुछ भी नहीं आता। बालक को सिखाने पर आता तथा वनवासी को पढ़ाने पर ही आता है। बिना पढ़ाये सिखाये कुछ भी नहीं आता।

भा ष्य भू मि का

संस्थापक—संतोष राज मंत्री सभा सम्पादकः त्रिलोक चन्द्र शास्त्री

आर्यकुमार आंदोलन क्यों चलाना चाहिए ?

इसका दूसरा कारण है कि कृण्वन्तो विश्वमार्यम् की कल्पना को पुनः जगाया जाए।

क्या आज यह कल्पना नहीं है ? है—अवश्य है—हर आर्य-समाज मन्दिर के द्वार पर लिखी रहती है या सत्संग मन्दिर में कहीं लिखी रहती है, या किसी लाल पीले कपड़े पर लिखकर लटकायी होती है, या आर्यसमाज के उत्सव पर उसका प्रदर्शन किया जाता है, या आर्य नेता, उपदेशक, प्रचारक, कार्यकर्ता कई बार, या बहुत मंच पर से इसको घोषणा भी करते हैं।

इन सब रूपों में यह कल्पना है तो अवश्य है—और अन्य भी कई रूपों में यह विद्यमान होगी।

पर मैं पूछना चाहता हूँ कि वह कितनी सीमा तक एक सजीव कल्पना है ? कितनों को प्रेरणा देती है ? कितना उस पर आचरण होता है ?

कितने लोगों को आर्य बनाया गया ?

यदि वादविवाद का विषय इस चर्चा को बना लिया जाए तो सच ही आप मेरे सामने इतनी भारी मात्रा में सामग्री उपस्थित करेंगे कि मैं भौंचक्का सा होकर देखता रहूँगा।

आप क्या करेंगे—यदि मैं स्वयं ही अपने किसी विरोधी को शान्त करने पर तुल जाऊं तो ढेर के ढेर तर्कवितर्क कर उसकी बोलती बन्द कर दूं।

मगर मेरे आर्य सखा—यह तो कोई ढंग नहीं, हमने किसी विरोधी को शान्त नहीं करना। आज तो हमने अपने घर को संवारना है इसलिए शान्त मन से शीतल मस्तिष्क से बैठकर इस बात पर विचार करना है।

कि आर्यसमाज चलाया किस लिया गया था ?

लेखमाला—नं० ३

आर्य कुमार आंदोलन क्यों ?

(ले०—श्री रामप्रकाश जी, ज्योति बिल्डिंग धर्मशाला कैंट)

◆◆◆◆◆◆◆◆◆◆◆◆◆◆◆◆◆◆◆◆◆◆

'कृण्वन्तो विश्वमार्यम्'

इसके मूल में था, अब भी वही इसके मूल में है।

यह मन्त्र है, वेद का मन्त्र, और जब यह मन्त्र और इसकी उदात्ततम कल्पना किसी सजीव प्राणवान युवक के कान में फूंक दी जाती है तो वह युवक मतवाला हो जाता है। प्राण वान हो जाता है। विद्युत की शक्ति से सम्पन्न हो जाता है।

फिर तो उसकी शक्ति सम्भाले नहीं सम्भलती। उसका उत्साह थामे नहीं थमता। उसके कार्य का वेग रोके नहीं रुकता।

फिर तो आर्यसमाज में भी रंग आ जाएगा—निखार आ जाएगा, जीवन भर जाएगा, यौवन छा जाएगा।

आज तो हम छोटी-छोटी बातों में उलझ गए प्रतीत होते हैं। कुछ सामयिक समस्याओं में देश काल तथा परिस्थिति की परिधि में फंस कर रह गए हैं। कुछ धन की समस्याएं हैं। कुछ साधन सामग्री की कुछ संगठनों की, कुछ संगठनों के चलाने की कुछ पदों की कुछ पदों को सम्भालने तथा सम्भाले रखने की समस्याएं।

अधिक शक्ति हमारी इधर नष्ट हो जाती है।

शेष शक्ति से हम संसार को आर्य बनाने चलते हैं तो शरीर मन मस्तिष्क बुद्धि क्लांत-क्लांत से प्रतीत होते हैं। उत्साह मन्दसा पड़ गया लगता है। हमारी कार्य की गति धीमी पड़ जाती है।

कल्पना तो है। पर कल्पना न होने के समान है।

आर्यकुमार आंदोलन ही इस कल्पना को अपने पूरे उभार तक ले आ सकता है।

और

सब से बड़ी और आश्चर्य में डालने वाली बात तो यह है कि आज तक जो कुछ हो रहा है। वह 'कृण्वन्तो विश्वमार्यम्' की आड में 'कृण्वन्तो आर्यसमाज प्रचारम्' हो रहा है।

यह क्या ?

आप चौंक क्यों गए ?

मैं ठीक ही कह रहा हूँ।

आप कहेंगे इसमें अन्तर ही क्या है ?

मैं मानता हूँ कि इसमें अन्तर कोई विशेष नहीं। आप ठीक ही सोचते हैं कि 'कृण्वन्तो आर्यसमाज प्रचारम्' में भी तो आर्य धर्म का ही प्रचार किया जा रहा है।

ठीक है भाई, आप ठीक कह रहे हो, पर थोड़ा सा गहराई से देखो तो बात का तत्त्व समझ में आ जायगा।

अपने किसी अन्य लेख में मैं इस सूक्ष्म भेद की सविस्तार व्याख्या करूंगा।

आज तो इतना ही कहना चाहता हूँ कि आर्य बनाने पड़ते हैं। उनका निर्माण करना पड़ता है।

प्रचार से आर्य बनते हैं अवश्य—पर बनाने से जो बनते हैं, उनमें कुछ अन्तर होता है।

आर्यकुमार आंदोलन इसलिए चलाया जाना चाहिए कि आर्य बनाने की भावना को पुनः जागृत किया जाए।

—o—

सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा नयी दिल्ली

ब्रह्मचारी कृष्णदत्तके प्रवचनों को प्रोत्साहित न किया जाए

देहली तथा बाहर के कुछ आर्य समाजों व आर्य जनों ने ब्रह्मचारी कृष्णदत्त के प्रवचन कराये हैं। इन प्रवचनों के आयोजन से सर्वसाधारण जनता को यह दिखाना अभीष्ट होता है कि यद्यपि वह नाम मात्र के वा साधारण पढ़े लिखे हैं फिर भी पूर्व संस्कारों और योग समाधि द्वारा वह वेदों के प्रवचन देकर चमत्कार दिखाते हैं। कोई उन्हें शृंगी ऋषि का अवतार कहते हैं। सार्वदेशिक के अप्रैल के अंक में इस विषय पर आचार्य वैद्यनाथ जी शास्त्री का एक लेख छपा था। उन्होंने दिल्ली में ब्रह्मचारी जी का प्रवचन सुना था। उनके प्रवचन में प्रयुक्त शब्दों को ही लोग वेद मन्त्र समझ लेने की भूल कर बैठते हैं, जिनसे बहुत भ्रम फैलता है। अन्य विद्वानों को भी इसी प्रकार की अनुभूति हुई है। उनके प्रवचनों में अनेक बातें इतिहास और सिद्धांत विरुद्ध भी होती हैं जिनका प्रचार आर्यसमाज की वेदी से होना अत्यन्त अनुचित है। ऐसी अवस्था में जबतक वस्तु स्थिति न जानली जाय आप तब तक इस प्रकार के आयोजनों से आर्यसमाजों और आर्यजनों को पृथक रहना चाहिए। इसी में आर्यसमाज का हित है।

प्रांतीय समाजों को अपने-अपने क्षेत्रों में इस प्रकार के आयोजनों को रोकने का पूरा प्रयत्न करना चाहिये।

—कालीचरण आर्य, मन्त्री
सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा.

सम्पादकीय—

आर्य जगत्

वर्ष २२] रविवार २८ ज्येष्ठ २०१८, १० जून १९६२ [अंक २३

जीवन का हिन्दीकरण

भारत के संविधान में हिन्दी को राष्ट्रभाषा मान ‹या है। उसे प्रचारित व प्रसारित करने के प्रयत्न किये जा रहे हैं। कुछ सज्जनों का थोड़ा बहुत इस के साथ विरोध होता रहता है, उनके दिल में अनेक प्रकार की आशंकाएं पैदा होती हैं, इन में कई बड़े लोग भी शामिल हैं। किन्तु उनकी इन आशंकाओं, विरोध को बड़े प्रेम, प्रीति एवं सद्-भावना सेही दूर करना होगा। वे भी भारत के अंग हैं, हमारे बड़े और छोटे भाई हैं। पुराने विचारों को दूर करने में समय तो लगता ही है। हां जिनके मन में भारत की अपनी भाषा के प्रति घृणा व विद्वेष की भावना है, इसे कदापि किसी रूप में भी पनपने नहीं देना चाहते। अपने को भारत से अलग बनाकर किसी दूसरे देश से जोड़ देने की मांग करते रहते हैं—उनकी तो इस पृथक्करण नीति का प्रतिकार करना है किन्तु जो हिन्दी को जानने सीखने का समय चाहते हैं उन से तो प्रेम का व्यवहार करना है, इसी में सब-का-हित लाभ होगा। जो इंगलिश विदेशी भाषा को ही भारत भाषा बनाये रखना चाहते हैं। भारत की अपनी भाषा कोई न मान कर हीनभावना का परिचय देते हुए विदेशी भाषा के मुख से लिखना बोलना और पढ़ना-पढ़ाना चाहते हैं, सारे देश को गूंगा बना कर रखना चाहते हैं। उनके विचारों को भरसक रोकने में तो सब भारतीयों को प्रेम संगठन पूर्वक प्रयत्न करना पड़ेगा।

अंगरेजी पढ़ें लिखें हमें आपत्ति नहीं, जितनी भाषाओं का ज्ञान हो जाये उतना अच्छा है। किन्तु अंगरेजी के व्यामोह में फंसकर भारत को गूंगा बनाने का उनको अधिकार नहीं दिया जा सकता। अपनी भाषा पर गौरव मान करना ही होगा। जिस देश जाति की अपनी कोई भाषा ही नहीं वह देश भी क्या है? भाषा आवश्यक है।

किन्तु भाषा के प्रसार का एक अपने जीवन का क्रियात्मिक पहलु भी है। यदि हमारे संविधान में हिन्दी को राष्ट्रभाषा का स्थान मिला है। भारत सरकार अपना कर्तव्य समझ कर उसके लिए यत्नशील है। चाहे उसकी प्रगति कितनी धीमी हो किन्तु अपने पारित विधान के सम्मान के नाते अबेर सवेर उसे हिन्दी को ऊंचा स्थान देना ही है। पर इस के लिए हमारा भी तो कुछ कर्तव्य है। सरकार को भी हमने ही चलाना है। यदि हमारे जीवन में हिन्दी भाषा के प्रसार के लिए उमंगें नहीं, पूरा ध्यान नहीं. इसके प्रति श्रद्धा आस्था नहीं—तो हम भी उत्तरदायी तथा दोषी हैं। आर्य समाज के जीवन में तो हिन्दी आर्य भाषा आज चौदह वर्षों से नहीं अपितु अपने पूज्य संस्थापक महर्षि दयानन्द के जीवन समय से ही अभिन्न अंग बन चुकी है। कोई आर्य नहीं जिसे हिन्दी न आती हो। इसी के प्रचार की कृपा का ही सुपरिणाम है कि आज वह सारे देश की भाषा बन कर संविधान में गौरवमय स्थान पा चुकी है। किन्तु थोड़ा खेद भी है। जब लोगों की अवस्था सोचने आती है तो मन भी [illegible] है। हम अपने दैनिक, पारिवारिक, व्यापारिक, सामाजिक जीवन में हिन्दी को क्या स्थान दे रहे हैं—यह सब के सामने है, इस पर कहने की आवश्यकता नहीं। आर्यसमाज ने इतने आन्दोलन, बलिदान प्रचार तथा व्यय करके जो काम किया है। उसके बाद भी हालत क्या है।

आज के जीवन मे हिन्दी के लिए अभी पूरे प्रकार से रुचि, प्रेम पैदा नहीं हो रहा। नगरों में दुकानों तथा कारखानों के नाम पट्ट देख लीजिये। किसी नगर मे आप घूम जायें। दोनों ओर आंखों से देखते जायें प्रतीत होता है कि हम भारत के एक नगर मे घूम रहे हैं, यह भारत का बाजार है या विदेश के बाजार में हैं, अभी तक हमने अपनी राष्ट्रभाषा के महत्व को समझा नहीं। हम अंगरेजी में नाम बोर्ड लिखवाना बड़ा गौरवमय समझते हैं। परिवारों का सारा वातावरण अभी सौ पैसे अंगरेजी है। वहां प्रत्येक वाक्य में विदेशी भाषा की पुट है। हमारी सन्तति की भाषा हिन्दी नहीं बल्कि अंगरेजी है। हमारे पत्र व्यवहार में हिन्दी कहां है। कारोबार में अंगरेजी है। समाचार पत्र भी उसी के लेते पढ़ते हैं। सत्य तो यह है कि राष्ट्र के संविधान में तो हिन्दी है पर हमारे परिवार, व्यापार, मन के विचार के संविधान में अंगरेजी चलती है। हमारा सारा जीवन इंगलिशमय बनता जा रहा है, इस को हिन्दी करण किये बिना काम नहीं चलेगा। अपने और समाज के साथ यह विडम्बना है।

आर्यसमाज अपने महान् संस्थापक के आदेश पथ पर चलता हुआ अपना परिवार, पत्र व्यवहार तथा क्रियात्मिक व्यवहार का हिन्दी करण करे। बहुत ही आवश्यक है। चित्र सामने है। इसे बदलना होगा तभी हिन्दी पनपेगी। सारे काम सरकार पर न छोड़ो अपने आप भी करो। संकल्प करो कि [illegible] का स्थान देंगे। समाजों तथा संस्थाओं में हिन्दी को मान दो।

—त्रिलोक चन्द्र

महात्मा वसिष्ठ जी

आर्य जगत् में यह समाचार बड़े खेद से सुना जायगा कि तपस्वी श्री स्वामी वसिष्ठ जी महाराज करनाल में इस भौतिक शरीर को छोड़ गये हैं। आप आरम्भ से प्रभु प्रेमी, वेदनिष्ठ तथा तपस्वी थे। सिन्ध प्रान्त में बड़ा कार्य किया। आर्य प्रादेशिक सभा पंजाब से विशेष सम्बन्ध व पूज्य महात्मा आनन्द स्वामी जी महाराज के श्रद्धालु थे, करनाल में महात्मा जी तथा बाबा गुरमुख सिंह जी की प्रेरणा से बड़ा कार्य किया। अब तो काफी वर्षों से भारत में घूमकर बड़ा कार्य करते थे। चित्तौड़ में सती साध्वी मेला के आरम्भ करने वाले थे। तपस्वी, अनथक कार्यकर्ता थे। उनके चले जाने से आर्यसमाज की भारी क्षति हुई है। उनके सारे परिवार के साथ गहरी समवेदना है। प्रभु धैर्य दें दिवंगत-आत्मा को शान्ति देवें।

सभा को न भूलें

आज के भौतिक युग में धर्म प्रचार में कितनी कठिनता है। यह उस क्षेत्र में काम करने वाले जानते हैं। आर्य प्रादेशिक सभा धार्मिकता के मैदान में पूज्य महात्मा हंसराज जी के जीवन पथ पर चल रही है। कार्य कितना महान् है किन्तु साधन सीमित हैं। हम सारे धर्म प्रेमी, महात्मा जी के परम श्रद्धालु, वेद प्रचार के मस्तानों तथा सभा के सारे हितैषी भाई बहिनों परिवारों से विशेष कहना चाहते हैं कि इस सभा के केन्द्र को न भूलें। इसे हर प्रकार से पूरा २ सहयोग देते रहें। समाजें ही तो सभा हैं। इसे दृढ़ बनाने में पूरा २ त्याग करते रहें ताकि सभा अपने प्रचारकों, साहित्य तथा मुखपत्र आर्य जगत् के द्वारा दूर २ तक वेद प्रचार कर सके।

—

"पूजा किस की ?"

(ले०—श्री ओ३म् प्रकाश जा 'प्रेमो' मन्त्री आर्य समाज (कालेज विभाग) कादियां)

✦✦✦✦✦✦✦✦✦✦✦

"पात्थर पूजे हरि मिले
तो मैं पूजूं पहाड़,
ताते चक्की ही भलि,
जो पीस खाए संसार।"

कबीर जी के उपरोक्त शब्द मूर्तिपूजा अर्थात् पाषाण पूजा की सारहीनता की ओर संकेत करते हैं कि यदि पत्थर की मूर्ति को पूजने से परमपिता परमेश्वर की उपलब्धी हो पाती तो भक्त प्रवर कबीर जी पहाड़ों की ही पूजा करते, परन्तु उन्हें तो सच्चे ईश्वर की उपासना करनी थी और देखिए प्राप्त भी कैसे कि स्वयं ईश्वरमय हो गए यथा—"लाली मेरे लाल की जित देखूं तित लाल, लाली देखन मैं गई मैं भी हो गई लाल" यह लालिमा श्रद्धानन्द सहोदर की लाली सर्वत्र फैली हुई है इसे देख तो कोई ही सकता है। जो तप, तपस्या के यज्ञ में निज आहूति देता है उसे ही उसकी सर्वव्यापकता का सौभाग्य प्राप्त होता है। स्वामी दयानन्द जी ने भारतीय संस्कृति तथा सभ्यता के मूलभूत सिद्धांत को पुनः जागृत किया, स्वयं जग के अत्याचारों को सहा और 'पाखण्ड खण्डनी पताका' गाड़कर संसार के पथ प्रदर्शन के लिए एक बाग लगाया आर्य समाज को जो नित्य अमूल्यों फूलों के तप-त्याग तथा सुगन्धी से संसार को वास्तविक आनन्द प्रदान कर जीवन पथ पर चलने का सही मार्ग प्रदर्शन कर रहा है। यह अम्लान फूल यथा महात्मा हंसराज जी, श्रद्धानन्द जी सरीखे नित्य प्रभू उपासना का स्रोत बहा रहे हैं। आज मानव जिस पत्थर की मूर्तियों का पूजन कर रहा है उसी से वह दूसरों का सर फोड़ने में भी संकोच नहीं करता ? अर्थात् आज मानव मनचाहे पाप करने में जुट गया है। क्या यही है न पाषाण पूजा का फल ?

बालक मूलशङ्कर भावी भारत के महान सुधारक नेता स्वामी दयानन्द जी ने जब देखा कि पत्थर का शिव, कृत्रिम शिव, चूहे से अपनी रक्षा नहीं कर सकता तो वह संसार का किस विध कल्याण कर सकेंगे। तभी सौगन्ध खाई सच्चे शिव को प्राप्त करने की और घोर-तप त्याग से शिव को प्राप्त किया तथा संसार को शिव के दर्शन कराने के लिए गुरु के आश्रम से गुरु का पुनीत आशीर्वाद लेकर निकल पड़े। प्रथम उन्होंने अपने हृदय में, आत्मा में, शरीर के ब्रह्मपुर में तथा कण-कण में उस सच्चिदानन्द के दर्शन किए। उसकी विद्यमानता सर्वत्र होते हुए भी सभी जगह दर्शित नहीं होती क्योंकि उसे बाहरी चक्षु नहीं देख पाते अपितु अन्तर में छिपे ज्ञान चक्षु द्वारा भीतर के मन्दिर में देख सकते हैं। छांदोग्य में भी लिखा है 'यद् इदम् अस्मिन ब्रह्मपूरे दहरं पुण्डरीक वेश्म" इसी बात की स्पष्टी एक उर्दू के कवि ने किस भांति की है "दिल के आईने में है तस्वीर यार, जब गर्दन झुकाई देख ली" कितनी विचित्र बात है कि हम दिन में कई बार गर्दन झुकाते फिर भी हमें दर्शन नहीं हो पाता और एक वह है जो बिना किसी विशेष साधना के प्रभु को दिल मन्दिर मे देख पाते हैं। कारण क्या है ? बस यही कि उन्होंने अपनी आहुति तप रूपी यज्ञ में दी होती है और हम उस यज्ञ में सर्वस्व समर्पण कर नहीं पाते, फिर कैसे दर्शन हो पाए उस सर्व-व्यापक परमेश्वर के ?

स्वयं रवीन्द्र नाथ जी टैगोर ने भी कहा है कि परम परमात्मा के दर्शन बाहरी झूठे मन्दिरों के दरवाजे खटखटाने से नहीं अपितु हृदय-मन्दिर के द्वारे अलख जगाने से हो पाते हैं।

अतः आज जब की हम भौतिकता की पकड़ में जकड़े हुए हैं, हमारा जीवन पूर्णतया भौतिकवादी बन चुका है केवल माया के मोहनी जाल में हम फंस चुके हैं, आवश्यकता है पुनः वैदिक धर्म के जागरण की, तभी भौतिकता की जकड़ से छूट कर आध्यात्मिकता की शरण में पहुंच कर जीवन के वास्तविक स्वरूप को पहचान सकते हैं। अन्यथा हमारी गति नाश के गर्त की ओर बढ़ती जाएगी। हम गिर जाएंगे कभी न उठ सकने के लिए ? अतः हमारे लिए अब भी समय है कि हम सच्चे लक्ष्य को पहचान कर वास्तविक धर्म नीति का अनुसरण कर जीवन को सफल बनाए। यदि हमें लक्ष्य की प्राप्ति करनी है, मृत्यु के आंचल में जाने से पहले सन्तोष की सांस लेनी है और यदि जीवन को सार्थक करना है तो स्वामी दयानन्द जी के लगाए बाग के फूल बन कर औरों का पथ प्रदर्शन करें। उनके पथ का अनुसरण कर, जो तप-त्याग का मार्ग है, निरन्तर आगे बढ़ें तभी ब्रह्मानन्द की प्राप्ति होगी। इस आनन्द को महात्माओं ने अनुभव द्वारा प्राप्त किया, यह शब्दों में व्यक्त की जाने वाली वस्तु नहीं अपितु यह तो गूंगे का गुड़ है, जिस ने खाया उसने अनुभव किया। हृदय मन्दिर में ज्ञान-ज्योति जब जगेगी तभी हृदय के सभी अज्ञान अन्धकार दूर हो जाएगा और वहां एक आनन्द सर्वत्र मलकता दृष्टिगोचर होगा। इस परमानन्द की तेजस्वी मूर्ति पूजकों को नहीं बल्कि हृदय-मन्दिर में रमते भगवान् की पूजारियों को हो सकती है। पत्थर में इतनी सामर्थ्य कहां कि वह अमी-रस की अविरल धारा बहा सके। उस रसीलि पय-पान का आनन्द ईश्वरी-उपासना द्वारा, जो स्वयं हमें आत्मा से, हृदय मन्दिर से पुकार रहा है, अपनी ओर बुलाता है, उसके निमन्त्रण की स्वीकृति से प्राप्त होगा। यही वेदामृत है जिस का पान स्वयं स्वामी जी ने किया तथा संसार को कराया।

युवकों का संगठन

सारे समाजों, संस्थाओं से अनुरोध पूर्वक कहना चाहते हैं कि सभा ने यह दृढ़ निश्चय कर लिया है कि अपने कुमारों तथा युवकों के समाजों का निर्माण करके एक विशाल संगठन के सूत्र में पिरो दिया जावे। सभा के महामन्त्री श्री ला० सन्तोषराज जी इस दिशा में विशेष दृष्टि रख रहे हैं। युवक समाजें अपने निर्माण तथा कार्य प्रगति से सभा को सूचना देती रहें। —सं०

शोक समाचार

भगवतीपुर आर्य पाठशाला के अध्यापक पं० श्री राम जी का देहान्त हो गया। पं० जी रिटायर हो चुके थे, और कई वर्ष से बीमार चले आ रहे थे। पं० जी दृढ़ आर्य और भजनोपदेशक भी थे। आस-पास के ग्रामों में जाकर वेद प्रचार भी करते थे। इन की कोशिश से आज भगवतीपुर में डी. ए. वी. हाईस्कूल बना हुआ है परमात्मा उनकी आत्मा को शांति दें।

—बालकिशन आर्य भाई

जालिम गरीब को न सता

रोमांचकारी गल्प

(श्री अमृतलाल जी साढोरा, अम्बाला)

राम् को चैन कैसे आये ? इसकी आत्मा को शांति कैसे मिले। इन दो महीनों में उसका सुर्ख मुंह पीला बन चुका था। उसका ताकतवर शरीर अब एक हड्डियों का ढांचा था। उसे अब किसी वस्तु का चाव न था। न उसे भूख लगती थी और न उसे प्यास सताती थी। और न ही वह अब किसी काम को करने में समर्थ था। अब काम करने के लिए उसके पास कोई शक्ति बाकी नहीं थी। उसे किसी चीज से लगन नहीं थी। वह तो अब बात करने से भी घबराता था। संसार में क्या हो रहा है, इसके बारे में तो वह कुछ भी नहीं जानता था। आसाम में क्या हो रहा है, यह जानना तो दूर रहा, शायद वह यह भी नहीं जानता था कि उसके साथ क्या हो रहा है। वह तो चिन्ताओं के कूप में गिर चुका था। उसका निवास तो चिन्ताओं के संसार में था। सूर्य प्रतिदिन समय पर पूर्व से निकलता और पश्चिम में लीन हो जाता, परन्तु रामू को अब इन चीजों से कोई लगाव नहीं था। चांद अपनी चांदनी से दुनिया वालों का दिल बहला देता, परन्तु रामू को इससे कोई कार्य नहीं था। वह तो दो महीनों से बीमार था और चिन्ताओं के बिस्तरे पर पड़ा था। एक दिन बिस्तरे पर लेटा हुआ सोच रहा था 'जालिम मौत भी तो नहीं आती। ऐसे जीने से तो मर जाना इससे कहीं अच्छा है।' इतने में रामू की छोटी लड़की ने कमरे में [illegible] और तोतली वाणी में से कहा, 'पिता जी बाहर साहूकार आये हैं।'

यह सुनते ही रामू का दिल डगमगाने लगा। भूमि उसके पाओं से निकल गई। उसका सिर चकराने लगा। हां यह साहूकार। हमें लूटने वाला साहूकार, हमें ठगने वाला साहूकार, हमें बरबाद करने वाला साहूकार, हमें उजाड़ने वाला साहूकार।' ऐसे विचारों से उसका हृदय भर गया। फिर भी यूं तूं करके अपनी फटी हुई धोती को लपेट कर टूटी हुई जूती को पैर में डालकर बाहिर आया और साहूकार को नमस्ते की।

'भाई रामू, नमस्ते तो होगी पीछे, पहले लाओ मेरे रुपये' साहूकार ने बड़ी तेजी से कहा।

रामू ने धीरे से उत्तर दिया, 'महाराज आप जानते हैं कि मैं दो महीनों से बीमार हूं। इसलिये कृपा करके दो तीन महीने ठहर करके आपके १२५ रुपये दे दूंगा।' यह शब्द सुनकर साहूकार का मुंह लाल हो गया। उसके शरीर के भीतर क्रोध की चिंगारियां भड़क उठीं। वह जोर से कहने लगा, 'बीमार हो तुम मुझे इससे क्या ? मुझे तो अपने रुपये इसी समय चाहियें। रुपये देने हैं तो इसी वक्त दे दो नहीं तो देखो अभी पोलीस को लाता हूँ।

रामू बिचारा एक भोला-भाला किसान था। उसे पोलीस से कभी वास्ता न पड़ा था, परन्तु वह यह जानता था कि पोलीस वाले लोगों को बड़ा मारते हैं। पोलीस का नाम सुनते ही वह जाल में बैठी हुई मछली की तरह तड़पने लगा। परन्तु करता क्या ? रुपए होते तो देता ? साहूकार उस स्थान से चल दिया पोलीस को लेने को। सहसा रामू के मुंह से जोर की एक चीख निकल गई। लोगों ने समझा कि रामू बीमार था, सम्भव है मर गया हो, सब उसके घर की ओर आने लगे। मुहल्ले के लोगों से रामू का आंगन भर गया। शामू जोकि रामू का मित्र था उसके पास आया और उससे पूछने लगा 'क्या बात हो गई रामू तुम रो क्यों रहे हो ?

'शामू क्या कहूँ ? किसमत को रो रहा हूँ!' यह कहते ही रामू की आंखों से आंसुओं के समुद्र बह निकले।

'फिर भी बताओ तो सही ?' शामू के ऐसा कहने पर रामू ने कहा, 'आज से छे महीने हुए होंगे मैं घनीराम साहूकार से १२५ रुपये उधार लाया था। आप सब लोगों की तरह मैंने भी गेहूँ बोए, परन्तु टिड्डी दल ने सबका सत्यानाश कर दिया। मेरे खेतों से गेहूँ का एक दाना भी पैदा न हुआ। उसके पश्चात मैं बीमार पड़ गया। इसलिए चावलों की फसल भी न बो सका। अभी

(शेष पृष्ठ ७ पर)

डा० राजेन्द्र प्रसाद १६ जून को दिल्ली आएंगे

भारत के सेवानिवृत्त राष्ट्रपति डा० राजेन्द्र प्रसाद १६ जून को नई दिल्ली में आणविक शस्त्रास्त्रों के विरुद्ध त्रिदिवसीय अन्तर्राष्ट्रीय प्रसभा का उद्घाटन करेंगे।

गांधी शांति संस्थान ने, जो प्रसभा की आयोजक है, १२० से अधिक विचारकों, वैज्ञानिकों, विद्वानों और लेखकों को प्रसभा में आमंत्रित किया है।

—०—०—

शानदार परीक्षा परिणाम

चण्डीगढ़ डी० ए० वी० हायर सेकण्ड्री स्कूल (लाहौर) चण्डीगढ़ के परिणाम इस बार प्रशंसनीय सफलता के साथ निम्न प्रकार से निकले हैं—१० वीं श्रेणी (कोर) की परीक्षा में १६० विद्यार्थी बैठे जिसमें से १८८ उत्तीर्ण हुए। परिणाम ९९ प्रतिशत रहा। ६ विद्यार्थी योग्यता सूची पर आये। ११ वीं श्रेणी (इलक्टिव) की परीक्षा में १८७ विद्यार्थी बैठे, जिन में से १६३ उत्तीर्ण हुए। परिणाम ८७ प्रतिशत रहा, जबकि विश्व-विद्यालय का परिणाम ५६ प्रतिशत है। स्कूल के १४ विद्यार्थी पंजाब-भर में सबसे ऊपर की योग्यता सूची में आये। चण्डीगढ़ के सभी स्कूलों से डी. ए. वी. स्कूल १९ स्थान ऊपर ले गया है।

—•—•—

आकाशवाणी की भाषा में कोई परिवर्तन नहीं

केन्द्रीय सूचना एवं प्रसारण उपमन्त्री श्री शामनाथ ने कल यहां कहा कि आकाशवाणी की भाषा नीति मे किसी बुनियादी परिवर्तन का कोई विचार नहीं है। परन्तु, प्रसारणों की भाषा, विशेष रूप से समाचार बुलेटिनों की, ऐसी होनी चाहिए जिसे अधिकाधिक लोग सरलता से समझ सकें।

यह दिल्ली के प्रमुख नागरिकों द्वारा आयोजित एक समारोह मे भाषण दे रहे थे।

—•—०—

रोटी बेटी का सम्बन्ध

(ले० प्रो० हरनाम सिंह शान, एम. ए. पंजाब विश्वविद्यालय प्रकाशन विभाग, चण्डीगढ़)

दोनों का लहू एक समय एक उद्देश्य से एक ही स्थान पर बहा और जब घरबार छोड़ कर के भागना पड़ा तो कई ऐसे इलाके भी मौजूद थे जिन की सीमा पार करने की देर थी कि असामयिक मृत्यु का भय दूर हो गया। कड़े और जनेऊ के कारण भी कई जलती हुई आग से बच गए। दुःख-तकलीफ, तंगी-तुरशी, चाहे बहुत हुई पर जानें तो बच गईं। और जो मार धाड़ हुई भी उस बारे में यह अरमान तो नहीं कि यह 'अपनों' ने की। यदि उन्हों ने 'काफरों' का वध किया, या हम ने 'म्लेछों' को मारा, तो मरने वाले कम से कम इस बात से तो एक दूसरे से 'पराए' थे कि उन के मध्य रोटी बेटी का कोई सम्बन्ध नहीं था।

ईश्वर न करे, अगर इस प्रकार की भयानक कार्यवाही इस अटूट सम्बन्ध से जुड़े हुए व्यक्तियों के मध्य हो गई तो उस की भयानकता का अनुमान सहज में ही लगाया जा सकता है। प्रत्यक्ष के लिए कोई प्रमाण की आवश्यकता नहीं। सिख की लड़की हिन्दू के साथ ब्याही हुई है और केशधारी का बेटा केश रहित का जवाई है। मामा हिन्दू तो भांजा सिख, पिता केशरहित तो पुत्र केशधारी है।

गांवों और मुहल्लों की पृथकता तो कहां, गली गली और घर घर का निवास चारपाई की मूंज की तरह बुना हुआ है। मैं कहता हूं कि हमारी करतूतों और मन मुटावों ने सन्, '४७ वाली आंधी (ईश्वर कृपा रखे) अगर फिर चला दी तो एक ही आंगन में रहने वाला हिन्दू कहां छुपेगा ? सिख कहां जाएगा ? केशरहित पिता और केशधारी पुत्र तथा हिन्दू मामा और सिख भांजे को अपनी जान बचाने के लिए किधर जाना पड़ेगा। भाइयो ! बाबा तो किसी ने पार करने नहीं देना और न ही यहां के सब निवासियों ने दिल्ली या उस से आगे जा बसना है। सदा रहना भी यहीं है इसी धरती पर और इसी वातावरण में फिर यह रोज का खटका. खींचा तानी, अविश्वास और छीना-झपटी किस लिए ? नखों के साथ मांस कभी छीला नहीं जाता और इसे उखाड़ने का यत्न करने वाले 'दिलू राय' (मुसलमानों के आने के समय सिंध के राजा) के साथ जो हुआ वह किसी से छिपा नहीं है।

हमारे विचार और विश्वास सांझे. रीत और त्यौहार सांझे, बहनें और बेटियां सांझी, पुत्र-जंवाई सांझे, लेना-देना और खाना-पीना एक साथ। सामाजिक और सांस्कृतिक रूप से भी तो हम बहुत सी बातों में एक समान हैं। फिर केवल निजी लाभ या राजनीतिक स्वार्थ के लिए इस सांझ को सदा के लिए तोड़ने के यत्न करना कहां की बुद्धिमता है ? क्या इसे बनाए रखना एसैम्बली की कुछ सीटों या कुछ अफसरों की पदाई से मंहगी है..... .फिर सीटें भी वे जो भाइयों ने ही लेनी हैं और अफसर भी वे जो अनादि से अपने हैं ! ! ! कवि चात्रिक ने अपने जीवन काल में जो दुहाई दी थी तो आप ने उसे मान लिया था। क्या उस की मृत्यु के साथ ही ऐसे भूल जानी थी ? —

इसलिए, आओ एक दूसरे को समझाएं; एक दूसरे के दुख सुनें; एक दूसरे के साथ कंधा मिलाएं; एक दूसरे पर विश्वास करें, एक दूसरे के भावों का आदर करें; अपना अपना धर्म निभाएं और दूसरे के धर्मों का आदर कर के ठीक अर्थों में, धार्मिक बनें। आओ, अपनी जन्मजात तथा अति प्राचीन काल से चली आ रही सांझ को और भी दृढ़ कर के देश और कौम के सामने खड़ी पहाड़ जैसी समस्याओं का हल ढूंढें। आओ यह नारा रोज लगाएं कि .—

हमारी रोटी सांझी है।
हमारी बेटी सांझी है।

छाती ठोक कर फिर मैं कहता हूं कि इस नारे को हृदय से लगाने और इस के भावों को मन में बसाने वालों में किसी प्रकार का वैर-विरोध और पृथकता उत्पन्न हो ही नहीं सकती।

किस की सुने पुकार

(ले०—मुंशी.राम गुप्त मोहन आश्रम हरिद्वार)

प्रभु तो आना चाहते, करें वास तुम पास।
रिक्त कहां तुम पास बस, जहां करें वे वास॥
आते ईश अवश्य ही, सुन कर दीन पुकार।
जाते लौट तुरन्तु तब, उर में भरे विकार॥
बसें हृदय में ब्रह्म तो, कपट जहां पर नाहिं।
देख हृदय में क्या नहीं, भरा कपट सब माहिं॥
आत्म निरीक्षण कर सदा, रहे न एक विकार।
तेरे तट प्रभु आ बसें, तेरी सुनें पुकार॥

चारों वेदों का बढ़िया मूल संस्करण

आर्य समाजों के लिए सुवर्ण अवसर

ज़ालिम गरीब को न सता

(पृष्ठ ६ से आगे)

दो चार मिनट हुए धनी राम साहूकार अपने १२५ रुपये लेने के लिये आया था, परन्तु जब मैं ने उसे बताया कि मेरे पास तो फूटी कौड़ी भी नहीं है तो वह पोलीस को बुलाने के लिये गया है। यह कहते हुए रामू की आंखे आंसुओं से टिप टिपा जाती हैं।

एक मनुष्य ने बाकियों को धीरे से कहा, 'चलो भाई, यहां से चलें, यहां तो पोलोस आनी है। चलो शीघ्रता से काम लो, कहीं ऐसा न हो कि हम भी···। सब मनुष्य धीरे-धीरे वहां से चले जाते हैं। और रामू बिचारा अकेला रह जाता है।

रो २ कर रामू की आंखे लाल हो चुकी थीं। वह थकना चूर हो चुका था। उस ने अपने गोडा पर अपने सिर को रख लिया। इतने में साहूकार, थानेदार और पोलीस के दो और सिपाही वहां आ पहुंचे। थानेदार ने आते ही रामू के सिर को ऊंचा उठाया और उस को टांगो में दो बैंते लगाईं। रामू बिचारा कांप उठा 'नहीं अदा करोगे साहूकार के रुपये आज?' थानेदार ने बेदरदी से पूछा।

सिपाहियो यदि यह रुपये देने से इन्कार करता है तो इसे पकड़ कर इस की कोई हड्डी बोटी, उड़ा दो। बेकार, चोर कहीं का।' थानेदार का हुकम पाते ही सिपाहियों ने रामू पर डंडे बरसाने आरम्भ कर दिये। रामू की वाणी से कोई शब्द न निकला परन्तु उस की आंखों से आंसुओं के समुद्र बह निकले।

रामू की बुढ़ापे की लाठी, आठ नौ साल की उस की अकलौती बेटी यह देख कर छाती पीटने लगी और सिपाहियों से प्रार्थना करने लगी। परमात्मा के लिये मेरे पिता जी को छोड़ दो। इन्हें मत मारो यह बिमार हैं। परन्तु वहां पर उस बच्ची की बात को कौन सुनता था।

थानेदार साहिब, यह ऐसे नहीं मानेगा, इस के घर की सब चीजे नीलाम कर दो।' सारे नगर में इस बात का ढंढोरा पीट दिया गया। लोग शीघ्रता से रामू के घर की ओर आने लगे, उस के साथ सहानुभूति करने के लिये, उसे पोलीस तथा साहूकार के अत्याचार से बचाने के लिये नहीं, परन्तु उस की चीजों को सस्ते दामों पर खरीदने के लिये। चीजें नीलाम होनी आरम्भ हो गईं। एक रुपये वाली चीज तीन आने में बिकने लगी। नीलामी अभी हो ही रही थी साहूकार का एक नौकर रोता २ आया और कहने लगा, 'सेठ जी, आप के मकान को आग लग गई है और आप की धर्म पत्नी आग में जल गई हैं। इस खबर को सुन कर साहूकार बेहोश हो कर जमीन पर गिर पड़ा। रामू भी एक ओर बैठ कर अपने दुर्भाग्य पर रो रहा था। चीजे नीलाम होनी बन्द हो गईं। और सब चुप चाप हो गये। उस स्थान पर जहां कि पहले बड़ा शोरोशर था अब खामोशी का राज्य था।

अन्त में साहूकार होश में आया। सिपाहियों के साथ अपने घर की ओर चलने लगा। अभी वे थोड़ी ही दूर गये थे कि साहूकार को अपना दूसरा नौकर आता दिखाई दिया। उसे देख कर साहूकार ने समझा कि आग बुझ गई होगी। अभी वह १०० गज की दूरी पर था कि साहूकार ने जोर से उस से पूछा 'क्या आग बुझ गई है? उस ने आश्चर्य से उत्तर दिया, 'आग कैसी? मैं तो मोहन के साथ बाजार में आ रहा था। इतने में एक तेज रफ्तार मोटर से मोहन की टक्कर हो गई। चोट लगते ही मोहन भूमि पर गिर कर तत्काल मर गया।

हाये मेरे मोहन, मेरे पुत्र, मेरी आंख के तारे, मेरे अकलौते बेटे, मेरे जीवन की आशा, मेरे बुढ़ापे की लाठी तू मुझे छोड़ कर कहां चला गया। बताता क्यों नहीं कि तू कहां चला गया? यह कहते ही साहूकार अपने कपड़ों को फाड़ डालता है। हां, साहूकार पागल हो चुका था।

अब पोलीस वालों को भी अपना कर्त्तव्य याद आ जाता है। वह साहूकार को पकड़ कर थाने की ओर जाते हैं। अभी थोड़ी ही दूर पहुंचे थे कि उन्हें थाने का चपड़ासी मिला। उस के हाथ में एक तार था। थानेदार ने सोचा कि ऐसा आनं पड़ी है कि अब एक बड़ी रकम बनेगी। ऐसा सोच कर उस ने तार को खोला। वह तार District Inspecter of Police का था और उस में लिखा था चूंकि आप ने और सोहन लाल और कृष्ण लाल दो सिपाहियों ने बेकसूर रामू को एक साहूकार से रिश्वत लेकर अभी २ पीटा है इस लिये आप को आज से और इसी वक्त से dismiss किया जाता है।

'धर्म के नाम पर जग में बड़े उत्पात होते हैं'

(ले०—श्री पिशौरी लाल जी प्रेम रेणुका (H.P))

धर्म के नाम पर जग में बड़े उत्पात होते हैं
धर्म के नाम पर सब से ज्यादा पाप होते हैं
गरीबों और मजदूरों के लहू को चूसने वाले
वे ऐसे दुष्ट भी धर्मात्मा जग में कहाते हैं
धर्म के नाम पर ही पेट भरते मांस मदिरा से
धर्म के नाम पर व्यभिचार तक भी जग में होते हैं
हजारों लाखों गौएं ईद के दिन काटी जाती हैं
हजारों लाखों बकरे देवताओं पर चढ़ाते हैं
जो सच्चे साधू हैं उन को तो भोजन तक नहीं मिलता
निठल्ले हैं भी साधु दूध घी बादाम उड़ाते हैं
बिचारी बाल विधवाएं तड़पती और बिलखती हैं
मगर धर्मात्मा बड़े विवाह अपना रचाते हैं
गरीबों और मुहताजों के बच्चे भूखे मरते हैं
मगर पंडे पुजारी हलावा पूरी खीर खाते हैं
धर्म के नाम पर बलवान निर्बल को सताते हैं
धर्म के नाम पर मानव का मानव रक्त पीते हैं
प्रभु हमको बचाओ ऐसे उल्टे धर्म मार्ग से
कि जिसके नाम पर दुनिया में अत्याचार होते हैं
बता दो प्रेम को जगदीश्वर वैदिक धर्म का मार्ग
कि जिससे दूर हर प्राणी के सन्ताप होते हैं!

डी०ए०वी० हायर सै० स्कू

इस वर्ष निकट भूतकाल में डिस्ट्रि... ...

हाट वेदर टूरनामेंट में जूनियर और सीनियर विभाग में क्रमश: की और दस टीमों ने भाग लिया जिसमे डी०ए०वी हायर सैकेन्ड्री स्कूल कादिया की टीम ने दोनों विभागों में भाग लेकर सभी टीमोंको हराकर शानदार विजय प्राप्त की तथा दोनो चलविजयोपहारो (शील्डों) को जीतकर स्कूल के प्रधाना चार्य श्री जे. डी. राजपूत तथा स्कूल के नाम को रौशन किया। साथ ही हायर सैकेन्ड्री के कोर विषय के परिणाम मे भी यह स्कूल जिलाभर में प्रथम रहा। जिला में प्रथम आने वाला छात्र नरेन्द्र मोहन शर्मा इसी स्कूल का छात्र है। परिणाम ६७ प्रतिशत रहा। इस शानदार परीक्षा परिणाम का श्रेय सुयोग्य मुख्याध्यापक तथा अध्यापकों पर है।

—मैनेजर डी. ए वी. स्कूल, कादिया

आर्य समाज राजौरी (जम्मू) में प्रचार की धूम

आर्य प्रादेशिक सभा के प्रचारक श्री हजारी लाल जी व श्री शिव-चरणजी के द्वारा राजौरी तहसील के ग्रामों बल, गुन्नी, डागरो. जवाहर नगर, राजौरी ठन्नका, कागडी, किलपाडी, भजवाल आदि में प्रात सायं सत्संग होता रहा।

श्री हजारी लाल जी ने राजौरी निवासी महता ओमप्रकाश जी के चाचा के दो बालकों का मुडन संस्कार कराया तथा कांगडी में श्री भगत राम जी नंबरदार के सुपुत्र का नाम करण संस्कार पूर्ण वैदिक रीति से कराया। इस अवसर पर पर्याप्त जनता ने सम्मिलित होकर संस्कार की शोभा को बढ़ाया।

इस कार्य में श्री ओमप्रकाश जी मन्त्री समाज, व श्री रूपलाल जी एडवोकेट, तथा श्री स्वामी जटाधारी जी का विशेष हाथ है। यह कार्य क्रम लगभग १ मास तक चलता रहा। राजौरी तहसील के ग्रामों मे जागृति पैदा हो गई।

—कृष्णलाल हरिशूर कागड़ी(राजौरी)

आर्यसमा लक्ष्मणसर का प्रस्ताव

२६ मई १९६२ शनिवार के दैनिक हिन्दी मिलाप समाचार पत्र में छपी सूचनानुसार भारत सरकार की ओर से स्वतन्त्रता संग्राम सैनिक सहायता समिति को आश्वासन देने के बावजूद इस कारण सहायता देने से इन्कार कर दिया है कि हिसाब किताब हिन्दी में हैं। आर्य समाज लक्ष्मणसर का यह सार्वजनिक (पब्लिक) अधिवेशन भारत सरकार की इस हिन्दी घातक नीति को घृणा की दृष्टि से देखता हुआ हार्दिक रोष प्रकट करता है और भारत सरकार को अपने व्यवहार से राष्ट्रीय भाषा हिन्दी को ईमानदारी से सहायता करने की प्रेरणा करता है।

रुद्रदत्त शर्मा (प्रधान) समाज

आर्यसमाज कालका जी नई देहली का चुनाव

संरक्षक—श्री कृष्ण चन्द्र जी M.A, M.O.L शास्त्री, वरिष्ट उपप्रधान—श्री जे० आर, कपूर, उपप्रधान—श्री इन्द्रसैन जी, मन्त्री—श्री जगदीश चन्द्र जी M.S.C पुस्तकाध्यक्ष—श्री धर्मीचन्द्र जी, कोषाध्यक्ष—श्री मिलखी राम जी।

—पूर्ण प्रकाश B.A मन्त्री समाज

आर्य समाज बस्ती हर फूलसिंह देहली का चुनाव

प्रधान—श्री आशासिंह जी...., उपप्रधान—श्री वजीरचन्द जी, मस्तवती देर्... ...रामनाथ जी सहगल, उपमन्त्री—श्री सामना... ...श्रीमती शांति देवी जी, कोषाध्यक्ष—श्री ...ला निरीक्षक—ला० सीतारामजी, लायब्रे रियन—श्री अर्जुन... ...भास्कर, स्टोरकीपर—श्री मेलाराम जी।

निवेदक—रामनाथ, मन्त्री

आर्य समाज सुन्दर बनी (राजौरी) का चुनाव

श्री ला० रामलाल जी सैनी, M.L.C की प्रधानता में चुनाव इस प्रकार हुआ।

प्रधान डा० कृष्णलाल जी, उपप्रधान डा० न.राधणदास जी मंत्री मास्टर मदनलाल जी, उपमन्त्री श्री वीरबल जी, कोषाध्यक्ष श्री मा० आनंदराम जी ....।

अंतरंग सदस्य—

पं. सीता रामज, ला मुलखराज, पं. तारा चन्दजी, श्री जगमोहन लाल जी,।

—मदनलाल मंत्री समाज

गुरुकुल स्नातकों का संगठन

हरिद्वार गुरुकुल महाविद्यालय (ज्वालापुर) में गुरुकुल आयुर्वेदीय स्नातको की एक सभा राजस्थान के भूतपूर्व शिक्षामंत्री श्री आचार्य गौरीशंकर शास्त्री वैद्य के सभापतित्व में सम्पन्न हुई। इस में गुरुकुल के आयुर्वेदीय स्नातकों के अखिल भारतीय संगठन 'गुरुकुल आयुर्वेद मण्डल' की स्थापना हुई और निर्विरोध पदाधिकारियों का चुनाव हुआ

प्रधान—श्री लक्ष्मीनारायण शास्त्री आचार्य, एम० ए०, उपप्रधान—श्री विजय कुमार, मन्त्री—श्री शेरसिंह, उपमन्त्री—श्री गीताराम मिश्र, प्रचार सचिव—श्री ज्ञानेन्द्र पाण्डेय, कोषाध्यक्ष—श्री जीवाराम शर्मा।

कार्यकारिणी समिति तथा मान्य परामर्शदातृ समिति की घोषणा बाद में की जावेगी। यह संगठन आयुर्वेद विज्ञान की सेवा, स्नातको की अधिकाधिक प्रतिष्ठा तथा गुरुकुल की उन्नति के लिए निरन्तर कार्य करेगा।

—ज्ञानेन्द्र पाण्डेय, प्रचार सचिव

सभासदों से निवेदन

आर्य समाजो के सत्संगों मे पधार कर शांति से कार्य क्रम को निभाए और प्रवचनो को मनन कर के अपने जीवन में घटाने की चेष्ठाकरे। तब तो आप का समाजो मे जाना सफल होगा। वरना समय नष्ठ करना ही है।

इस के साथ ही आर्य समाजो के सत्संगो में सपरिवार पधारें ताकि आप की सन्तति भी भविष्य मे आर्यत्व के विचारों से ओतप्रोत हो।

—सत्संगी

मुद्रक व प्रकाशक श्री सतोष राज जी मंत्री आर्यप्रादेशिक प्रतिनिधि सभा पंजाब जालंधर द्वारा वीर मिलाप प्रैस, मिलाप रोड जालंधर से मुद्रित तथा आर्य जगत कार्यालय महात्मा हंसराज भवन निकट कचहरी जालन्धर शहर से प्रकाशित मालिक—आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा पंजाब जालन्धर

सम्पादकीय—

आर्य जगत्

वर्ष २२] रविवार ३ आषाढ २०१८, १७ जून १९६२ [अंक २४

आचारः परमो धर्मः

जीवन में आचार बड़ा ऊंचा धर्म कर्तव्य है। जिस प्रकार किसी पुष्प का उस की सुगन्धि से मूल्य बढ़ जाता है, सब का उस के प्रति आकर्षण, प्रेम अधिक हो जाता है। उसी प्रकार जीवन और समाज के सुन्दर पुष्प का मूल्य आंकन करने में आचार की सुगन्धि का होना नितान्त आवश्यक माना गया है। वैसे तो कोई भी भ्रष्टता अच्छी नहीं है-धन से भ्रष्ट, बल एवं कर्म भ्रष्ट, ज्ञान से गिराहुआ, परिवार भ्रष्ट आदि अनेक पतित लोग मिल सकते हैं—किन्तु सत्य यह है कि आचार भ्रष्ट इन सब में अधिक बुरा माना जाता है। चरित्र से गिरना दूसरों के सामने गिरना तो है ही पर ऐसा मनुष्य अपनी नजरों में भी गिर जाया करता है। आचार हीनता सब से बड़ी जीवन हीनता है। व्यष्टि तथा समष्टि दोनों को समाप्त कर के रख देती है। यही कारण है कि भारतीय सभ्यता में आचार पर विशेष बल दिया गया है। धन से हीन निर्धन नहीं अपितु चरित्र हीन सब से बड़ा निर्धन कहा जाता है। राजा से ले कर रंक तक के लिए आचार संहिता की विशेष मर्यादाएं हैं, जिन से गिरने वाला सब का घृणापात्र समझा जाता था। हमारे देश के पास सब से बड़ी सम्पत्ति, विभूति चरित्र की थी। इसी दृष्टि से भारत सारे देशों का महान् गुरु था। आचार संहिता का पाठ दूसरे लोग यहां आ कर पढ़ते थे। इस युग में अपने आचार के दीपमीनारों पर सारी जनता को मान है। आर्य समाज वैदिक आदर्श के अनुसार इसी चरित्र चित्र का प्रशंसक है। महात्मा हंसराज, स्वामी श्रद्धानन्द जी, अमर शहीद वीर लेख राम, पं. गुरुदत्त एम. ए सरीखे चरित्र के पुतलों ने समाजके प्रत्येक क्षेत्र में अपने आचार विचार की धाक बिठा दी थी। आज की यह विशाल डी. ए वी धारा उसी चरित्रनिष्ठ महात्मा की तपस्या का मीठा फल है। सारा देश समाज में इन चरित्र धनियों का सदा ऋणी रहेगा।

परन्तु आज के देश का चित्र सामने आता है, तो दिल बैठने लगता है। आज के जीवन में चरित्र पीछे जा रहा है और चित्र सामने आरहा है। चित्र की सुन्दरता तथा पूजा ने आचार को बहुत परे धकेल दिया है। हर मैदान मे इसकी अवहेलना जारी है। जीवन का स्तर नीचे २ गिरता जा रहा है। हमारा राष्ट्र जिस आधार शिला पर ठहरकर चारों ओर के महावातों से टकराता था, उन को अपनी आचार स्थिरता से समाप्त कर देता था—आज देश के समूचे जीवन से वह इन्द्र-वज्र है जिस के द्वारा वह सारी भौतिक विलासमयी आसुरी शक्तियों से सदा लोहा लेता है। वज्र ही उस के पास विशेष अस्त्र है। दोनों में यही महान् भेद है। वज्र धारी इन्द्र की इसी लिए विजय होती है। यह वज्र चरित्र का ही होता है जो असुरों के पास नहीं होता। वे तो भोगवाद, विलास शृंगार तथा चारु चित्रों पर, इन्द्रियों के विषयों पर ही मरने वाले होते हैं। इसी लिए वे हारते रहते हैं। भारत वज्री इन्द्र है। आचार का वज्र इन्द्र है। आचार का वज्र इस के पास था भौतिक भोगवाद के असुरदल आये और हार मान कर रह गये। इन्द्र विजयी रहा। आचार चरित्र की सर्वत्र विजय होती है। आज भारत के हाथों से वह आचार का चरित्र जा रहा है। विलास, शृंगार प्रसाधनों की बहुलता, भोग वादी प्रवृत्तियां अपना मनोमोहक रूप लेकर फैलती जा रही हैं। पतन का गढा बड़ा होता जा रहा है। यदि इसे रोकने, पाटने का प्रबन्ध न किया गया तो आचार धनियों का दिया धन लुट जायगा। सम्भलो व सारे देश को सम्भालो।

आर्यो! दायित्व को पहिचानो। इस वज्र को हाथ से न जाने दो। इस भोग वाद से टक्कर लेने के लिए आज और अभी कमर कसलो। देर नकरो—त्रिलोक चन्द्र

समाज की विभूतियां

आर्य समाज ने अपने अतीत काल में बड़ी विभूतियों को पैदा किया है, जिन के जीवन के प्रकाशस्तम्भ से न जाने कितने जीवनों ने प्रकाश पाया। वर्तमान समय में समाज इन आदर्श विभूतियों से मालामाल है। आर्य के प्रत्येक क्षेत्र में इन के दर्शन हो जाते हैं। इस वार हरिद्वार कुम्भ के अवसर जहां और महानुभावों के दर्शन हुए वहां आर्य जगत के तपस्वी, सादगी की प्रतिमा, पाण्डित्य के अगाध सागर आचार्य नरदेव जी वेदतीर्थ कुलपति गुरुकुल ज्वालापुर के दर्शन भी हुए। यह भी समाज की एक विभूति हैं। हम चाहते हैं कि समय २ पर इन विभूतियों से जनता को भली भान्ति परिचित कराया जावे। अगली बार इसका प्रबन्ध किया जायगा।

आर्य केन्द्रीय सभा अमृतसर

जिस के प्रधान मान्य कैप्टन केशव चन्द जी तथा मन्त्री श्रीयुत धर्मपाल जी म्युनिसिपलकमिश्नर हैं—जिसमें अमृतसर नगर के सारे समाज शामिल हैं, अपनी एक विशेष बैठक में एक आवश्यक उपसमिति बना कर इस कार्य को अपने हाथ में लिया है, कि आज कल बारातों में जो नाच विशेष कर लड़कियों की ओर से आरम्भ हो गया है, तथा आतिशबाजी की प्रथा चलने लगी तथा पैसों की मुठियां भर २ कर बाजार में वर से फैंकने की रीति एवं और भी अधिक अनावश्यक रिवाज शुरू होते जा रहे हैं, इन को बन्द कराने का प्रबल आंदोलन किया जाये। हम केन्द्रीय सभा का इस दिशा में उठाये पग की प्रशंसा करते हुए सारे नगरों की दूसरी आर्य केन्द्रीय सभाओं से कहना चाहते हैं कि वे भी इन प्रचलित नई पुरानी कुरीतियों को रोकने में ऐसा ही पग उठावें। इस से सब का भला होगा।

बधाई हो

श्री जियालाल जी आर्य समाज अरवनूर के बड़े ही उत्साही, अनथक मन्त्री हैं। सभा के बड़े हितैषी हैं। समाज में समय २ पर प्रचार कराते रहते हैं। भगवान् ने उन को पुत्र प्रदान किया है। इसी प्रकार सभा के योग्य भजनोपदेशक श्री. जगत् राम जी अम्बाला मण्डली को भी पुत्र रत्न की प्राप्ति हुई है। हम आर्यजगत् की ओर से दोनों भाइयों को आन्तरिक बधाई देते हैं। प्रभु करें कि ये बालक दीर्घायु वाले, वर्चस्वी, तेजस्वी श्रीमान् होवें—सं.

'नमस्ते' के साथ पंजाब सरकार का अन्याय

[ले०—श्री भक्तराम जी (अफ्रीका वाले) जालन्धर]

कोई समय था ईश्वरोक्त, ऋषि सम्मत, लोकप्रिय, आप्यत्व द्योतक और एकता सूचक 'नमस्ते' शब्द का घोर विरोध हुआ था। यहां तक कि वेद तथा शास्त्रानभिज्ञ संस्कृत पण्डितों के साथ आर्य विद्वानों के शास्त्रार्थ होते भी सुने सुने गये थे। ऐसे अनेक व्यक्तियों को मैं जानता हूँ जो मेरे 'नमस्ते' से अभिवादन करने पर उत्तर में 'जयराम जी की' और 'जय कृष्ण जी की' कहा करते थे। कुछ एक भाई केवल 'महाराज जी' कहना पर्याप्त समझते थे। अफ्रीका में मेरे एक सनातनी मित्र, जो 'नमस्ते' का उत्तर 'महाराज जी' से दिया करते थे, के सम्बन्ध में सुना था कि उन्होंने एक बालक के 'नमस्ते' कहने पर उसके मुंह पर चपत मारी थी।

मुझे भली भांति स्मरण है कि मैं जब डी० ए० वी० मिडल स्कूल में प्रधानाध्यापक था तो एक वृद्ध सनातन धर्मी भाई ने मुझे चुनौती दी थी कि वह मुझे तब जानेंगे यदि मैं उनके मुंह से 'नमस्ते' निकलवा दूं। वह बुजुर्ग एक भाई के साथ वार्त्तालाप कर रहे थे कि मैंने चुपके से पीछे होकर 'नमस्ते' कर दी और उनके मुंह से झट 'नमस्ते' निकल गया और खिलखिला कर हंसते हुए उन्होंने कहा था—'मास्टर जी! आप को आज मान गये।' इतना उन्होंने अवश्य कहा कि मैंने उन्हें चोर भुलाई दे कर 'नमस्ते' कहलवायी। इस घटना से मुझे यह दर्शाना अभीष्ट है कि पहिले ऐसा काल आया जब 'नमस्ते' का विरोध हुआ।

अब तो 'नमस्ते' का इतना प्रचार हो गया है कि ईसाई और मुसलमान भी इसके प्रयोग में उदारता दिखा रहे हैं। फिल्मों में परस्पर अभिवादनके लिए अभिनेता और अभिनेत्रियां भी 'नमस्ते' प्रयुक्त करती हैं! यहां तक कि एक फिल्म का नामकरण ही 'नमस्ते जी' किया गया है। और तो और विदेशी नेताओं को भारत में पधार कर भारतीय नेताओं से मिलते और विदा होते समय कर बद्ध नमस्ते करने में गर्व है। 'जय हिन्द' कहने में नहीं। इसलिए कि 'जय हिन्द' जातीय घोष है। सत्कार के लिए सर्वश्रेष्ठ शब्द 'नमस्ते' ही है। राम-राम, जय श्री कृष्ण, जय हरि, बन्दे-मातरम्, राधा स्वामी, बन्दगी, सलाम, सत् श्री अकाल, साहिब जी आदि नहीं। अस्तु।

न जाने निर्वाचनों के समय, पंजाब सरकार को क्या सूझी कि उसने एक भ्रमण पत्र द्वारा राज्य कर्मचारियों को आदेश दिया है कि वे नमस्ते और सत्श्री अकाल के स्थान पर 'जय हिन्द' कहा करें। जय हिन्द, जय भारत, जय जगत् आदि शब्द घोष हैं। मिलते समय यथा योग्य सत्कार के शब्द नहीं। नमस्ते पर प्रतिबन्ध वैयक्तिक स्वतन्त्रता में अधिकार चेष्टा और नागरिकता पर छापा है। केवल आर्य समाजियों को नहीं अपितु समस्त देशवासियों को इस अनुचित आज्ञा की निन्दा करनी चाहिए, परन्तु मैं देख रहा हूँ कि आर्य-समाजियों की ओर से भी यथोचित प्रतिवाद नहीं हुआ। पंजाब सरकार के इस आदेश के विरुद्ध नियमित और प्रबल आंदोलन होना चाहिए।

'नमस्ते' के प्रयोग की पुष्टि में वेद, वेदांगी, ब्राह्मण ग्रंथों, उपनिषदों, पुराणों, इतिहास, काव्य नाटक, व्याकरण कोष, देशविदेश के विद्वानों तथा सत्पुरुषों के वाक्यों के अनेक प्रमाण मैंने संग्रह किये हुए हैं जिनसे 'नमस्ते' की सार्थकता और श्रेष्ठता सिद्ध की जा सकती है परन्तु लेख लम्बा हो जाने के भय से उनको यहां प्रस्तुत करना कठिन है। तथापि 'नमस्ते' की व्युत्पत्ति और उसके अर्थों पर इस लघु लेख में विचार किया जावेगा। भला महर्षि दयानन्द सरस्वती जिन्होंने हमें यथा योग्य सत्कार वाचक एक ऐसा शब्द सिखाया जो सर्वत्र प्रचलित हो गया है।

'नमस्ते' शब्द नमस् और धातु पाठ मे आये अनेक सूत्रों द्वारा 'नमस्' पद सिद्ध होता है। महाभाष्य में 'नमस् पूजायाम्' लिखा है। ऐसे ही 'युष्मद्' शब्द से चतुर्थी विभक्ति के एक वचन में 'ते' और 'अस्मद्' से 'मे' गद्य तथा पद्य दोनों में प्रयुक्त होते हैं। यह नहीं कि 'मह्यम्' के स्थान 'मे' और "तुभ्यम्' के स्थान 'ते' केवल पद्य में आते हैं। यथा—१ श्री शस्त्वाऽवतु माऽपीह दत्तात्ते मेऽपिशर्म्मस। २. स्वामी ते मेऽपि सहरि पातु वामपिनौ विभु। ३. शालीनां ते ओदनं दास्यामि। ४ धाता ते भक्तोऽस्ति। ५ तस्मै ते नम। (सिद्धात कौमुदी हलन्त पुलिंग युष्मदास्मद् प्रकरण)।

नम एकार्थ पूजा के प्रयोग में ही नहीं आता। नम शब्द अनेकार्थ वाची हैं। जैसे निम्न-लिखित वाक्यों में प्रयुक्त 'खाना' धातु के प्रसंगानुसार नानार्थ हैं—१. मैंने लड्डू खाये। २. उसने मुंह की खायी। ३. राज्यकर्मचारी रिश्वत खाता है। साक्षी ने शपथ खायी। ५. बातूनी ने मेरा मगज खा लिया। ६. लड़का माता की गालियां खाता है। ७. इकलौता पुत्र माता पिता को तोड़ २ कर खाता है। ८. उसने मुझसे मार खायी।

जिस प्रकार उपर्युक्त वाक्य 'खाना' शब्द के विविध अर्थ प्रकट करते हैं उसी प्रकार 'नम' अनेकार्थ वाचक हैं।

'नमस्' के नीचे अर्थ कोष्टों में पाये जाते हैं—सत्कार, आदर, अन्न, वज्र, पूजन, यथोचित उपयोग। केवल 'नमस्कार करता हूं' नहीं। 'नमस्ते' शब्द के अर्थ हैं 'मैं तुम्हारा सत्कार करता हूं' जो सब ओर मार करता है। बड़ों को नमस्कार, बराबर वालों का सत्कार और छोटों को आशीष अर्थात् पैरी पौना, मस्था टेकना, राम सत्य और प्यार आदि सबका इस एक शब्द में समावेश है। अत 'नमस्' शब्द अनेकार्थ बोधक है।

'श्वभ्यो नम' में नम के अर्थ अन्न दान के हैं। 'राक्षसेभ्यो नमः' में वज्रार्थ प्रयुक्त हुआ है। 'नमः शिवाय' में नमः का प्रयोग नमस्कारार्थ हुआ है और 'उपानद्भ्याम् नम.' में नमः उपयोग के अर्थ में आया है। यजुर्वेद के १६ वें अध्याय के मन्त्रों में नमस्ते अगणित बार आने के कारण इसे नमस्ते अध्याय कहा जा सकता है। अथर्ववेद में मन्त्र आया है—ओ३म् आत्मानं पितरं पुत्रं पौत्रं पिता महम्। जाया जनित्रीं मातरं में प्रियास्तानुप ह्वये। अथर्व० कां० ६ सू० ४ मं० ३०। इस में पिता, पुत्र, दादा, पत्नी और तथा प्यारों के आदर करने की आज्ञा है।

(शेष पृष्ठ ८ पर)

आवश्यकता

आर्यसमाज दसूआ की अ. रंग सभा ने 'दयानन्द औषधालय खोलने का निश्चय किया है। उसके लिए एक सुयोग्य अनुभवी दृढ़ आर्य समाजी कविराज उपाधि प्राप्त वैद्य की आवश्यकता है। आयु ४० और ५० के बीच हो निवास स्थान मुफ्त होगा। वेतन योग्यतानुसार दिया जाएगा। निम्न पते पर पत्र व्यवहार करें।

हरवंस लाल 'मुजरिम
प्रधान आर्यसमाज दसूआ
जिला हुशियारपुर

सुयोग्य वैद्य की आवश्यकता

आर्य समाज लाडवा को अपने धर्मार्थ औषधालय के लिये एक सुयोग्य, त्यागी एवं सेवा भाव वाले आर्य विचारों के वैद्य या हेमेपेथ डा० की आवश्यकता है आर्य समाज लाडवा उनकी जीविका का व्यय मात्र वहन कर सकेगा गृहस्थी की अवस्था में मामूली वेतन दिया जा सकेगा।

यह औषधालय गत ६, ७ वर्ष से स्व. डा० वेणी प्रसाद जी आधारण रूप से चला रहे थे और २४-३-६२ को इसको वृहत रूप देने के लिये इस के नये भवन का उद्घाटन पूज्य स्वा रामेश्वरानन्द जी महाराज संसद सदस्य के कर कमलों द्वारा कराया गया था पर डा० जी के आकस्मिक निधन से अब यह बन्द पड़ा है।

भवदीय
राजेन्द्रपाल मन्त्री आर्य समाज लाडवा करनाल

आर्यजगत् में विज्ञापन देकर लाभ उठाएं

माडल टाऊन
) का चुनाव

...न्द जी कपूर
... जी
...
उप...   श्री
लेखा...   ...र्थराम जी
कोषाध्यक्ष   ...कुन्दनलाल जी
पुस्तकालयाध्यक्ष—श्री भीमसेन जी सचदेव
"   श्री सुभाषचन्द्र जी
आडीटर—श्री केवल कृष्ण जी
स्टोरकीपर—मा० गिरधारीलाल जी

कार्यकारिणी सम्मति

श्री बृज भूषण जी गलहू M.A B.T.
श्री ईश्वर चन्द्र जी गवर्नमैंट कन्ट्रेक्टर
श्री यशपाल जी खन्ना
श्री कृष्ण बलदेव जी मलहोत्रा
मा. होतूराज जी
स. बाबासिंह जी

त्रिलोक नाथ
मंत्री समाज

साई दास ए ऐस हायर सैकण्ड्री स्कूल, जालन्धर का

शानदार परीक्षा परिणाम

इस वर्ष साई दास ए ऐस. हायर सैकण्ड्री स्कूल जालन्धर का हायर सैकण्ड्री "कोर" का यूनिवर्सिटी परीक्षा परिणाम अति-उत्तम रहा। इस स्कूल के छात्र पवनजीत ने ७७४ अङ्क लेकर प्रान्त भर में द्वितीय स्थान प्राप्त किया। इसी प्रकार प्रदीप कुमार, शांतिलाल जैन तथा राजेन्द्र कुमार जोगी क्रमश ७२१, ७०३ तथा ६६६ अङ्क लेकर प्रान्त भर में तृतीय, चतुर्थ और सप्तम रहे। ३० छात्रवृत्तियों मे से १३ छात्रवृत्तिया उस स्कूल के विद्यार्थियों ने प्राप्त कीं।

कुल ४१० विद्यार्थी परीक्षा मे प्रविष्ट हुए, जिन मे ४०७ उत्तीर्ण हुए। परीक्षा परिणाम ६८.८ प्रतिशत रहा। यह स्कूल परीक्षा परिणाम को दृष्टि से प्रान्त भर में अपनी समता नहीं रखता।

—प्यारेलाल बेरी

आर्यप्रादेशिक प्रतिनिधिसभा पंजाब, जालंधर की अन्तरंग सभा

दिनाक ३-६-६२ प्रस्ताव न १

श्री महाराज कृष्ण हैड क्लर्क आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा पजाब जालन्धर, श्री पं० ठाकुरदास, (महात्मा वशिष्ठ स्वामीजी महाराज) तथा श्री सत्यपाल जी भूतपूर्व उपदेशक आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा, पंजाब जालन्धर आर्य बन्धुओं के देहावसान हो जाने के सम्बन्ध में श्री मन्त्री जी ने सभी को परिचित कराया तथा सभी ने खड़े होकर प्रभु से ऐसी प्रार्थना की कि दिवंगत आत्माओं को सद्गति प्रदान हो तथा उनके सम्बन्धियों को इस पीडा के सहन करने की शक्ति प्रदान हो।

—मन्त्री सभा

वैदिक साधन आश्रम यमुना नगर में

उपदेशक विद्यालय में प्रवेश होने वाले विद्यार्थियों का प्रवेश आरम्भ हो गया है अत इच्छुक विद्यार्थी शीघ्र प्रार्थना पत्र योग्यता सहित लिख भेजें क्योंकि संख्या पूरी होने पर प्रवेश बन्द हो जाएगा।

आश्रम में कुछ सन्यासी और वान प्रस्थी महात्माओं के निवास का प्रबन्ध किया गया है जो महानुभाव साधना स्वाध्याय और वेद-प्रचारार्थ निवास के इच्छुक हों, वह पत्र व्यवहार कर ले, उनके भोजन आदि का प्रबन्ध आश्रम की ओर से होगा।

ताराचन्द आर्य
वानप्रस्थी

सरकार का अन्याय

(पृष्ठ ७ का शेष)

'नमस्ते' शब्द ही एक ऐसा है जिस में साम्प्रदायिकता की गन्ध तक नहीं। न ही इस से किसी के धार्मिक भावों को ठेस लगती है फिर ईश्वर जाने पंजाब सरकार को नमस्ते पर प्रतिबन्ध लगाने की आवश्यकता क्यों पड़ी? इस में कोई बुराई नहीं दीखती। जिन्हें 'नमस्ते' के अर्थ नहीं आते वे ही ऐसी आज्ञा दे सकते हैं। अन्यथा यह शब्द आपत्तिजनक नहीं है। चाहिए तो यह था कि सरकार इस ईश्वरीय वाक्य का प्रचार करती पर उल्टा इस पर धारा १४४ लगा दी। कैसी विचित्रता! आर्यसमाजी लोक सभा सदस्य इस प्रश्न को लोक सभा में उठा कर इस आदेश को लौटा लेने पर बाध्य करें ताकि 'नमस्ते' के साथ न्याय हो सके।

शोक समाचार

"श्री पंडित ठाकुरदास(महात्मा) वशिष्ठ स्वामी जी महाराज) महासती मेला चित्तौड़गढ़ एवं प्रसिद्ध समाज सुधारक का स्वर्गवास दिनांक २६ मई मंगलवार को हो गया तथा उनका अन्तिम संस्कार पूर्ण वैदिक रीति से किया गया। ३ जून रविवार को हवन-यज्ञ तथा रसम पगड़ी के पश्चात् स्वर्गीय महान आत्मा को श्रद्धांजलि अर्पित की गई।"

मोहनलाल गाँधी
मंत्री आ. समाज दयालपुरा
करनाल।

शोक समाचार

श्रीमान राजपाल जी की साली के देहावसान का हार्दिक दुःख है। वे देर से देहली हस्पताल मे बीमार थीं सारे प्रचारक वर्ग की ओर से सहवेदना तथा परिवार में मङ्गल कामना की प्रार्थना है।

खुशीराम शर्मा

मुद्रक व प्रकाशक श्री संतोष राज जी मंत्री आर्यप्रादेशिक प्रतिनिधि सभा पंजाब जालंधर द्वारा वीर मिलाप प्रैस, मिलाप रोड जालंधर से मुद्रित तथा आर्य जगत कार्यालय महात्मा हंसराज भवन निकट कचहरी जालन्धर शहर से प्रकाशित मालिक—आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा पंजाब जालन्धर

टैलीफोन न० ३०५७ [आर्यप्रादेशिक प्रतिनिधि सभा पंजाब जालन्धर का साप्ताहिक मुखपत्र] Regd No.P.121

एक प्रति का मूल्य १३ नये पैसे वार्षिक मूल्य ६ रुपये

वर्ष २२ अंक २५) रविवार १० आषाढ २०१९— २४ जून १९६२ दयानन्दाब्द १३८ (तार-प्रादेशिक जालन्धर

वेदसूक्तय:

नेच्छत्रु: प्राशं जयाति

न इत्-कभी नहीं शत्रु-कोई भी शत्रु प्राश-आत्मा को जयाति-जीत सकता है। तेरे आत्मा को कोई भी न जीत सकता है और न खरीद ही सकता है।

सहमानाभिभूरसि

सहमाना - तू सहनशील है, अभिभू: शत्रु को दबा देने वाला असि-है। हे वीर ! तू सहनशक्ति का केन्द्र है इस से अपने शत्रुओं को दबाने में तू सदा समर्थ है।

प्राशं प्रति प्राशो जहि

— तेरे प्राश-आत्मा को प्रतिपाश: दबाने वाले बुरे भावों को, विरोधियों को जहि-मार दे कुचल दे। उनको सिर न उठाने दे। वीर बन।

अथर्ववेद से

वेदामृत

विश्वे देवा नो अद्या स्वस्तये वैश्वानरो वसुरग्नि स्वस्तये।
देवा अवन्त्वृभव: स्वस्तये स्वस्ति नो रुद्र: पात्वंहस:॥

ऋ० म० ५ सू० ५१ म० १३

अर्थ—(विश्वे) सारे (देवा) देव (अद्य) आज (न:) हमारे (स्वस्तये) कल्याण के लिए होवें (वैश्वानर:) सब का नेता (वसु) बसने योग्य (अग्नि) प्रकाशमय प्रभु (स्वस्तये) सुख के लिए हो। (देवा) दिव्य तेजस्वी देव (अवन्त) रक्षा करें (ऋभव) मेधावी (स्वस्तये) कल्याण के लिए हों (स्वस्ति) सुख देवे (न) हमें (रुद्र) दुष्टों को रुलाने वाला रुद्र भगवान (पातु) बचावे (अंहस) पाप से-हमें पाप कर्म से रक्षित करे।

भाव—संसार के जितने भी देव कहलाते हैं, जिनका जीवन स्वयं आचार विचार में चमकता दिव्य है, परोपकार में लगे रहते हैं—वे सारे हमारा कल्याण करते रहें। हे प्रभो ! आप वैश्वानर हो, सब के नेता हो, जीवन के सारथी हो, वसु हो, सारा संसार आप में ही निवास करता है, सब के आलम्बन व सहारा बने हो, सब के आधार हो, अग्नि बन कर सदा हमारा कल्याण करते रहें ये सारे मेधा तथा ज्ञान से भरे देव लोग हमारी रक्षा किया करें, जब २ विपथ-कुपथ पर हमारा पग पड़े हमें सचेत सावधान करते रहें। हे रुद्र ! आप दुष्टों, पापियों को अपने दण्ड शासन से रुलाने वाले हो। पाप करने वाला आप से कभी बच नहीं सकता। उसे एक न एक दिन रोना ही होता है। ऐसी कृपा करो कि हमें पापों से बचाते हो ताकि हमें जीवन में रोना न पड़े। पाप का पथ देखकर हम उस से सदा दूर रहें। सर्वदा कल्याण करते रहो मंगलमय मंगल करो—सं०

ऋषिदर्शन

सर्वानन्दमयम्

वह ब्रह्म सारे आनन्दों का केन्द्र है। आनन्दघन, आनन्द स्वरूप, आनन्दधाम है। उस में दु:ख क्लेश का नाममात्र भी नहीं है। परमानन्द है।

सर्वदु:खेतरत्

वह ब्रह्म सारे दु:खों से इतरत्-रहित है। तीन प्रकार के दु:ख हैं। उस में लेशमात्र भी नहीं। वह तो सदा सर्वदा ही आनन्दरूप कहा जाता है। उसी से आनन्द मिलता है।

तदेवोंकार वाच्यम्

उसी ब्रह्म को ओ३म् ओंकार नाम से पुकार गया है। ओ३म् परमेश्वर का ही निज प्यारा नाम है। ओ३म् खं ब्रह्म है।

भाष्य भूमिका से

विधाता—संतोष राज मंत्री सभा सम्पादक: त्रिलोक चन्द्र शास्त्री

प्रवचन में जब मनन चिन्तन, अनुशीलन और आचरण का समन्वय हो जाता है। तब वह अनुभवजन्य होने से ठोस एवं साक्षात् सा हो जाता है। पूज्य महात्मा जी के विचार वर्षों के निरन्तर क्रियात्मिक साधन से पूर्ण होते हैं, अतः उनमें विशेष आनन्द लेवें—सं०

ध्यान का अभिप्राय यह है कि आज्ञाचक्र (भ्रकुटि) ब्रह्मरन्ध्र अथवा हृदय प्रदेश या शरीर के किसी स्थान पर मनको इस प्रकार से बाध देना, जैसे कीला गाड़ कर पशु बाध दिया जाता है और वह उस कीले के ही गिर्द चक्कर लगाने लगता है, तथा चक्कर लगाते २ अन्त मे थक कर वहीं बैठ जाता है। इस प्रकार जब साधक हृदय प्रदेश मे अथवा भ्रकुटि में मन को बाध देगा और वहीं ध्यान जमाये रखेगा, तो पहले-पहले तो मन बहुत उछल कूद मचायेगा और भाग निकलने का यत्न करेगा। परन्तु जब साधक के ध्यान की रस्सी खूब दृढ़ होगी तो मन उसे तोड नहीं सकेगा। उसी परिधि पर घूमता रहेगा और अन्त में थक कर विश्राम करने लगेगा। यह सत्य है कि मन की गति कभी रुकती नहीं। समाधि अवस्था मे पहुंचने वालों का भी यही अनुभव है कि मन की क्रिया निरन्तर जारी रहती है। हां, वह क्रिया इतनी हो जाती है कि शून्य सी प्रतीत होने लगती है। परन्तु गति अथवा क्रिया रहती अवश्य है।

मन निर्विषय कैसे ?

अब यह शका होगी कि सांख्य शास्त्र में तो ध्यान के सम्बन्ध में यह कहा गया है कि—ध्यानं निर्विषयं मन.। मन को निर्विषय करने का नाम ही ध्यान है। इसका प्रयोजन क्या है ? प्रयोजन तो यही है कि मन निर्विषय का अभिप्राय यह है कि मन किसी भी भौतिक विषय का चिन्तन न करे, हां एकाग्रता के लिए ब्रह्मतत्व का तो उसे चिन्तन करना ही होगा।

आध्यात्मिक लेख

ध्यान किस प्रकार

(पूज्य महात्मा आनन्द स्वामी जी महाराज)

यदि एक कमरे में कूड़ा कबाड़ और अन्य कई वस्तुएं पड़ी हों और नौकर से यह कहा जावे कि इस कमरे को खाली करके साफ कर दो। इसके अन्दर कोई भी वस्तु रहने न पाये और नौकर उसी प्रकार कमरे को साफ कर के आकर यह कहे कि कमरा सर्वथा साफ कर दिया है और आप यह पूछें कि क्या कोई भी वस्तु उसमें नहीं रही ? देख लिया है तूने ना, कहीं किसी कोने अथवा खूंटी पर तो कोई वस्तु नहीं रह गई ? और नौकर जब यह कह दे कि अब कमरा सर्वथा निर्वस्तु हो गया है, आप सन्तुष्ट हो जायें, तो क्या इसका यह प्रयोजन है कि सचमुच कमरे में कुछ नहीं रहा ? सुनिये, कमरा सर्वथा निर्वस्तु होने पर भी उसमें वायु तो है ही।

इसी प्रकार मन के अन्दर से अपने अभ्यास से धीरे २ जब एक-एक करके संकल्पों विकल्पों को निकालते चले जायेंगे और सासारिक विषयों का सारा कूड़ा कबाड आप निकाल देंगे और मन सर्वथा निर्मल व निर्विषय हो जायगा, तो यह निर्विषय व निर्मल मन ब्रह्मतत्व से तो भरपूर होगा ही। ब्रह्मतत्व को तो कहीं बाहर फैंका नहीं जा सकता। अतएव मन को निर्विषय करने का प्रयोजन यही है कि इसे बाहिर के विषयों और अनात्म पदार्थों से खाली कर दिया जावे।

मन का खेल

जब साधक ध्यान में बैठता है तो मन अपना और ही व्यापार प्रारम्भ कर देता है। साधक आज्ञा-चक्र में ओ३म् पर ध्यान जमाना चाहता है और मन रसोई घर में जा पहुंचता है अथवा किसी और स्थान पर चल देता है! एक साधक ने बतलाया कि ध्यान में बैठते २ मैंने अनेक संकल्पों विकल्पों से तो छुटकारा पा लिया है परन्तु अब एक पदार्थ पीछे पड़ा हुआ है। मैं ने पूछा 'क्या है वह ? साधक कहने लगा कि ध्यान में जब बैठता हू तो मन सिद्धि प्राप्त करने में लग जाता है। मैं बैठा हूं ससार के नाना दु:खों से पीडित मेरे पास आ रहे हैं। एक पेट पीडा से तड़पता युवक आया। मैं ने उसके पेट पर हाथ रखा और पीड़ा शांत हो गई दस पन्द्रह अन्धे आए। मैंने उनकी आंखों पर अपने हाथ से जल सिंचन किया और उनको दृष्टि मिल गई। एक माता का एक मात्र बालक मर गया था, वह रुदन कर रही थी। मैंने उसके बालक को पुनर्जीवित कर दिया। कितने ही ऐसे दृश्य सामने आ जाते हैं। दूसरों के दु:खों और पीड़ाओं को दूर करने की भावना अच्छी ही है, परन्तु यह भी तो सब भौतिक पदार्थों का ही चिन्तन है। ऐसी सिद्धियों की भावनायें भी मन को निर्विषय नहीं होने देतीं। ऐसे सारे संकल्पों से पल्ला छुड़ाना होगा। तभी मन निर्विषय होगा।

जो साधक नाना प्रकार के चित्रों द्वारा मन को एकाग्र करने का यत्न करते हैं वे बतलाते हैं कि ध्यान में उनके सामने अपने ही कल्पना किये चित्र आते रहे हैं कभी गंगा प्रवाहित हो रही है, कभी पर्वत खड़े दृष्टिगोचर होने लगते हैं, कभी देवी देवताओं के चित्र और कभी अपना ही चित्र। कभी किसी प्यारे मित्र या सम्बन्धी का चित्र दिखाई देने लगता है। यह तो सारी मन की कल्पना मात्र है, मन की एकाग्रता नहीं। मन की एकाग्रता तो तभी होगी जब इसे निर्विषय कर दिया जायगा। हां इतनी एकाग्रता तो है कि एक के अतिरिक्त मन और कहीं भटकता नहीं परन्तु यह एकाग्रता अभी अधूरी है।

भारतीय बैंकों का समस्या

वित्त मन्त्री श्री मुरार जी देसाई ने बम्बई में पिछले दिनों बैंकों के अधिकारियों से मिल कर उनके सामने आने वाली कुछ कठिन समस्याओं पर वार्तालाप किया। ऐसा पता चला है कि सरकार ने पहले ही यह निश्चय किया है कि २६० करोड़ रुपया इस वर्ष मारकीट से उधार लिया जाए। इसके साथ ही यह उचित था कि वित्तमन्त्री महोदय अपना ऋण लेने का प्रोग्राम बनाने से पूर्व इस विषय पर बैंकों के साथ परामर्श करते।

यह तो विदित ही है कि बैंकों को अमानतों पर सूद के रूप में कुछ समय से अधिक रेट देना पड़ता है और गवर्नमैंट से अधिक से अधिक ३॥% सूद मिलता है। इस लिए बैंकों के लिए यह कठिन समस्या हो गई है। यदि वह बाजार में अधिक से अधिक रुपया लगाने की नीति जारी रखें तो गवर्नमैंट के कर्जा लेने का प्रोग्राम भली प्रकार सफल नहीं हो सकेगा। यदि बैंक गवर्नमैंट को कर्जा देने के मामले में सहायता करना चाहें तो वे बाजार में रुपया नहीं लगा सकते, और इस तरह उनको भारी हानी उठानी पड़ेगी इसका कोई न कोई सुझाव निकालना पड़ेगा ताकि सरकार की योजना भी पूरी हो सके और बैंकों को भी आर्थिक हानी न उठानी पड़े।

सम्पादकीय—

आर्य जगत्

वर्ष २२] रविवार १० आषाढ़ २०१८, २४ जून १९६२ [अंक २५

सभा का पत्र आर्यजगत्

वेद प्रचार के महान् व्यापक, विशाल मिशन को लेकर आर्य प्रादेशिक सभा पंजाब जालन्धर ने अपने स्वर्णिम अतीत में जो धर्म-प्रचार, लोकोपकार, जनसुधार के पथ पर चलते हुए उदार भावना से तन-मन-धन से सेवा का कार्य किया है तथा वर्तमान् काल के अतीव विषम, भोगवाद से भरे युग में कर रही है--उससे सारे समाज का मस्तक ऊंचा हो जाता है।

प्रचार के नानाविधि साधनों को यथा शक्ति प्रयोग में लाते हुए विशेष कर दोनों प्रमुख उपायों से पूर्ण लाभ उठाया जारहा है। प्रचार और प्रकाशन, प्रैस और प्लेटफार्म। सभा अपनी दोनों शक्तिया इस प्रचार कार्य मे लगाकर वेदमिशन का कार्य करने में जुटी है। प्रचार कार्य मे इसके पास प्रचारकों की सेना है जो चौबीस घंटे और तीस दिन सभा के आदेश पर सारे प्रान्त तथा अन्य प्रान्तों में भी गर्मी सर्दी में सभा के आदेश पर प्रचार में लगी हुई है। प्रकाशन के द्वारा साहित्य का काम भी जारी है। वैदिक धर्म के विस्तार में सुन्दर २ ग्रन्थों का चयन व प्रकाशन सभा द्वारा होकर समाजों, सस्थाओं एवं जनता तक पहुंचता रहता है। इस के अतिरिक्त सभा अपने साप्ताहिक मुखपत्र आर्यजगत्के महान् साधन से भी अपना सन्देश तथा समाज के गण्य मान्य महात्माओं,विद्वानों नेताओं के दिव्य सन्देशों, लेखों को दूसरों तक पहुंचानेमें कर्मशील है। आर्यजगत् उसका मुख है।

सभा के पत्र के सामने अपनी विशेष सीमाएं, मर्यादाएं होती हैं। इसका चरमप्रयोजन वेद प्रचार है। जनता को आध्यात्मिक, धार्मिक, सामाजिक विचारों का प्रसाद देना है। पूरा प्रयत्न किया जाता है कि इसके प्रेमी पाठकों तक ऐसी ही सामग्री पहुंचाई जाये। आर्यजगत् को जिन मान्य महानुभावों का सदा आशीवाद प्राप्त है, उन में पूज्य महात्मा आनन्द स्वामी जी महाराज, प्रिंसीपल दीवान चन्द्जी कानपुर, प्रिंसीपल सूर्यभानु जी एम ए. कुलपति आचार्य नरदेवजी शास्त्री वेदतीर्थ, पं. भवानी लालजी भारतीय एम ए. महामना श्री देवीचन्द जी एम ए प्रि रलाराम जी. प्रि. भगवान दास जी एम ए बहिन जनकजीएम.ए बहिन सुशीला आर्या एम ए. बहिन अरुणाजी, श्रीराजेन्द्र जी जिज्ञासु प्रो शरदजी एम ए पं वजीर चन्द्जी, प्रो सुरेश चन्द्र जी विद्यालंकार, प्रि ज्ञानचन्द जी एम.ए. कितने ही प्रख्यातनेता विद्वान् प्राप्त हैं। इनका समय २ पर सुन्दर विचार लेखप्रसाद व कविता विचार मिलता रहता है। आर्यजगत् व सभा के मान्य अधिकारी, श्री प. सुधीराम जी वेदप्रचार अधिष्ठाता तथा हमारे सारे प्रचारक भाई इसे अपना जानकर पूर्ण सहयोग देते हैं। सबके आभारी तो हैं ही। इस प्रकार यह काम चलता है। फिर भी सज्जनों की रुचि भिन्न-भिन्न होती है। समय २ पर हमें समाजों तथा मान्य सज्जनों के उत्तम सुझाव भी मिलते रहते हैं। उनका भी पालन होता है। मुख पृष्ठ पर कुछ वेद की चुनी सुक्तियां वेदमन्त्र की व्याख्या क्रम से ऋषि के सुन्दर सूत्र चयन करके स्वाध्याय का प्रसाद भी जुटाया जाता है। थोड़े पृष्ठ हैं पर यत्न करके कुछ न कुछ उत्तम बनाने का प्रयास है। फिर भी कमियां हमारी हैं समाजों, संस्थाओं, सज्जनों ने नम्र निवेदन है कि आज के युग में सभा अपने पत्र का प्रचार निष्ठा से चला रही है। इसके लिए सहयोग तो आपने देना है। सभा भी आपकी और सभा पत्र भी आपका। हम तो केवल सिपाही हैं। इस सभा पत्र के लिए अपने दिल में स्थान देकर अधिकसेअधिक इस परिवार के विस्तार में सहायक बनें। —त्रिलोक चन्द्र

आर्यसमाज लारेंस रोड अमृतसर की ओर से सभा को ११०१ रु० वेद प्रचार में भेंट

आर्यसमाज लारेंसरोड अमृतसर का अपना शानदार विशाल भवन है। बड़ी श्रद्धा से निर्माण किया गया है। इसका सत्संगभवन तथा यज्ञ मण्डप भवन दर्शनीय है। इसके साथ २ बड़ी प्रसन्नता है कि यहां भी प्रात सत्संग लगता है। दैनिक यज्ञ के बाद उपदेश चलता है। बारह महीने प्रचार जारी है। सायं कम्पनी बाग में भी दैनिक कथा चलती रहती है। प्रति वर्ष पूज्य महात्मा आनन्द स्वामी जी महाराज एक सप्ताह इस समाज मे अपनी मधुर कथा करते हैं। गत होली के दिनों में महात्मा जी की कथा हुई। उनके प्रभावशाली प्रवचनों के बाद पूज्य महात्मा जी की प्रेरणा पर आर्यसमाज के सज्जनों ने समाज की ओर से सभा को ११०१ रु वेदप्रचार के लिए भेंट करने का विश्वास दिया। सभा मन्त्री श्री ला. संतोष राजजीने समाज के सज्जनों को पुन स्मरण कराया।

श्री पं. ओम् प्रकाश जी महोपदेशक सभा ने वहां पंद्रह दिन बड़ी प्रभाव पूर्ण कथा की। प्रवाह चलता रहा। उनके बाद मुझे भी वहां पर जाकर निरन्तर २२ दिन तक प्रात. सायं कथा करने का सभा द्वारा आदेश मिला। बाद मे मेरे साथ सभा के प्रसिद्ध भजनोपदेशक प. मेलारामजी रेडियोसिंगर भी आठ दिन आकर मिल गये। प्रात समाज में वेदकथा, सायकाल बाग में वेदान्त शास्त्र पर कथा आरम्भ थी। बड़े सुन्दर श्री मेलारामजी के संगीत चलते थे। रात को गोपाल नगर मे श्री बद्री नाथ जी के विशेष उत्साह से प्रचार होता रहा। आज क भौतिक भोगवाद भरे युग मे आध्यात्मिकता आत्म-तत्व के गम्भीर से गम्भीर विचारों को सुनने के लिये बड़े २ लोगों की कितनी रुचि है यह तो देखकर ही मन प्रसन्न हो गया। नर नारियों की यह धर्म के प्रति रुचि देखकर चित्त प्रभावित होता था। लाखों की कोठियों मे रहने वाले नर नारी प्रभु के भक्त हैं। वेद को सुनने कितनी तन्मयता से आते हैं। समाज के सारे मान्य अधिकारी बड़ी लग्न से कार्य कर रहे हैं। समाज में कोई न कोई सज्जन साधु आते ही रहते हैं। सत्सग प्रवाह चलता है। रविवार को नर नारियों के अतिरिक्त युवक कुमार और शिशु भी आते तथा वेदी पर बैठ कर जब गीत, वेद मन्त्र सुनाते हैं तो समाज का स्वर्णिम भविष्य प्रतीत होने लगता है। कुमारो, शिशुओं को भी समाज के प्रति तैयार किया जा रहा है। समाज के इस उत्साहमय चित्र को देखकर हम सारे अधिकारियो को बधाई देते हैं। समाज के प्रधान श्री सेठी जी रिटायर्ड सैशन जज, नवयुवक मन्त्री श्री देवव्रत जी डाक्टर, उपमन्त्री श्री पं० विद्यासागर जी सारे मान्य महानुभावों को बधाई देना चाहते हैं।

आर्य समाज ने सभा को वेद प्रचार के लिए ११०१ रु० भेंट किया। सभा के प्रति जिस सहयोग का प्रदर्शन किया उसके लिए आभारी हैं। —त्रि० चन्द्र

कहानी

देवदूत

(श्री प्रो० वासुदेव जी एम० ए० वैदिक मिशनरी मालवीयपथ अमृतसर)

रामू ने अपना हाथ जेब में डाला, बार-बार। उसे विश्वास नहीं होता था। क्या सारे दिन की कमाई हुई धन-राशि खो गई? विश्वास नहीं होता—असम्भव है। क्या आज ही उसकी कमाई खो जानी थी, आज जबकि उसका भाग्य ने साथ दिया और उसने एक रुपया कमा लिया। आज ऐसा नहीं हो सकता जबकि मा ने कहा था घर में पैसे भी नहीं और भोजन सामग्री भी समाप्त है।

परन्तु रुपया तो जेब मे नहा था। थोडी ही देर हुई उसने खनखनाते हुए सिक्के अपनी जेब से निकाले थे और बदले में एक रुपये वाला करारा नोट लिया था। कैसा प्रसन्न था वह प्राय उसे लोगों के गले पड २ समाचार पत्र बेचना पड़ता था। आज तो लोग उसके पीछे समाचार पत्र के लिए भागते थे। आज कैसा भाग्यशाली दिन था। आज तो सोचता था कि घर जाते हुए कुछ मिठाई ले जाय। जिससे वह बहन की आखों को मिठाई देखकर खुशी से नाचते देख सके। बेचारी छोटी उमा प्राय रोग ग्रसित रहती थी। पिता की मृत्यु के पहले भी उस बेचारी का यही हाल था। उमा के कारण ही उनकी मा बाहर काम करने के लिए न जा पाती थी।

रामू पहले तो उद्विग्न था कि वह दूसरे बच्चों की भांति खेल न पाता था। धीरे २ यह उद्विग्नता में बदल गई। उसे मा और नन्ही-सी बहन उमा से प्यार था। वह परिवार पोषक होने में गर्व अनुभव करने लगा। वह आठ वर्ष में ही अपने आपको 'पुरुष' देखने लगा। घर पहुचते वह इतना थक जाता कि खानाखाते ही चारपाई पर लेट जाता और शीघ्र ही निद्रा देवी की गोद मे चला जाता। सोने से पहले मा घर का काम समाप्त करके रामू के पास आया करती—उसके पास बैठती प्यार करती और उसके दैनिक कार्य की प्रशसा करतो वह उसे सुन्दर कहानियां सुनाती जिससे रामू अपनी दरिद्रता को भूल जाता और ऐश्वर्य के स्वप्न देखने लगता। वह उसे बताती कि प्रभु अपने दूतों द्वारा अपने दुखी भक्तों के क्लेश दूर किया करता है।

एक दिन वह दिन मे कुछ कमा न सका। भोजन के बिना सबको सोना पडा। मा ने अपनी देवदूतों की कहानी सुनानी आरम्भ की। रामू उद्वेग से कह उठा, 'मुझे इन दूतों में विश्वास नहीं। यदि कोई देवदूत होते भी होंगे तो वह धनी मानी पुरुषों की सहायता करते होंगे।' मां को अपने प्यारे रामू क शब्दों पर दुख हुआ सजल नेत्रों से वह बोली, 'रामू ऐसा न कहो—कहीं प्रभु का आश्रय हम से न छिन जावे, प्रभु का कोप हमे कहीं का न छोड़ेगा। आज खाली जेब में हाथ डालते हुए उसे मा की बात स्मरण हो आई।

उसका रुपया खो गया था। इस भयंकर सत्य का सामना आज उसे करना था। दुकानें बन्द हो रही थीं। धनोपार्जन का कोई समय न था। परन्तु वह खाली हाथ घर कैसे अपनी वृद्ध निर्धन मां को बताए कि वह आज भोजन के लिए कुछ नहीं लाया। वह माता की निराशा और तीनों के बिना भोजन रहने के विचार से सहम गया। यह उसकी शक्ति के बाहर की बात थी। वह भूल गया कि वह रोटी कमाने वाला पुरुष है। आखों मे आंसू आ गए। उसने अपने आपको सम्हालना चाहा परन्तु व्यर्थ। अश्रुधारा वह निकली जोर २ से सिसकी लेने लगा। साथ मे ही खासना शुरू हो गया।

शीला दुकान से बाहर निकली और बस स्टेंड न० ३ की ओर चलने लगी। अरे यह शब्द कैसा है। वह जरा रुकी। जोर की सिसकिया बीच मे खासना। स्पष्ट है कोई बच्चा कष्ट में है। मुझे अवश्य जाकर देखना चाहिए।

अरे यह तो समाचार पत्र बेचने वाला बालक दुख से रो रहा है। शायद उसके अखबार नहीं बिके। साधारणतया उसे सायंकालीन पत्रों में रुचि न थी। लेकिन छोटे बच्चे की सहायता के अभिप्राय से उसने कुछ पैसे निकाले और एक अखबार मागा। उसको यह देखकर विस्मय हुआ कि उस बच्चे ने उसकी बात पर ध्यान नहीं दिया। उसने प्यार से पूछा—'बच्चे क्या बात है।' इन शब्दों को सुनकर बच्चे ने ऊपर देखा, अश्रु पूर्ण नेत्रों से क्या देखता है कि एक देवी पुरानी चप्पल पहने साधारण छपी हुई सूती साडी धारण किए और साधारण से चेहरे से युक्त उसके सामने खड़ी है। उस देवी को सुन्दर नहीं कहा जा सकता, परन्तु वह दयालु सज्जन तथा हंसमुख है।

रामू ने उसे अपनी दुःख भरी गाथा सुनाई—रुपए का खो जाना, मां तथा बहन को व्यथा और भूख को आशका। शीला ने मन मे सोचा—महीना समाप्ति पर है। इस बार हाथ भी तग है अपने बच्चे के लिए जो थोडी मिठाई लेने का विचार उसने किया था उसे भी छोड़ना पड़ेगा। उसने अपने बटुआ खोला, एक रुपए का नोट निकाला और उस छोटे बच्चे के हाथ पर रख दिया।

रामू ने ऊपर को देखा। शीला शीघ्रता से जा रही थी। यह तो अवश्य ही कोई अच्छी 'देवदूत' होगी। मा ने ठीक ही कहा था। प्रभु ने उस ने करुण क्रन्दन को सुन लिया था और सहायता भेज दी थी। लेकिन मुझे किसी ने यह क्यों नहीं बताया कि प्रभु के दूत टूटी चप्पल और पुरानी साड़ी में भी हो सकते हैं। (अनूदित)

आर्य समाज को कैसे सर्वप्रिय बनाया जाए

(ले०—श्री ब्रह्मानन्द जी कौशल ४३७-माडल टाऊन, यमुनानगर)

विश्व को सदैव ऐसे महापुरुषों की आवश्यकता रही है जिन की विशेषज्ञता के पीछे कोई सिद्धात हों, प्रबल क्रियाशीलता ही जिनके जीवन का नियम हो, और सब से बढ़ कर उन व्यक्तियों की विश्व को सदैव आवश्यकता रही है जो उपदेश जीवन से दें, पुस्तकों में से नहीं।

विश्व की इस आकाक्षा की पूर्ती के हेतु ही महर्षि दयानन्द का जन्म हुआ था। आर्य समाज के जन्मदाता ने विश्व की समस्याओं के समाधान में 'सत्यार्थ प्रकाश' दिया तथा इस पवित्र सस्था के १० नियम बनाये जो कि महर्षि के विशालतम हृदय, विराट स्वरूप, तीक्ष्ण तथा सूक्ष्म मेधा, स्वतन्त्र विचारधारा तथा मानव जाती के कल्याण के प्रति उत्सुकता के प्रत्यक्ष और अटल प्रमाण हैं।

अब जिस सस्था का आधार वैदिक संस्कृति पर हो जिस के जन्म दाता महानतम व्यक्ति हो तथा तर्क को जहा मान्यता प्रदान हो, अन्ध विश्वास जिसका शत्रु हो—

(क्रमश)

Bari Doab Bank Limited

Registered Office

Gowshala Bazar, HOSHIARPUR.

Subscribed Capital	Rs. 2,00,000
Paid up Capital	. Rs. 2,00,000
Reserves	... Rs. 8,10,000

FORTY-SEVENTH REPORT BY THE DIRECTORS.

The Directors beg to submit to the shareholders the Balance Sheet and Profit and Loss account of the Bank for the year ended 31 st December, 1961, together with the Auditors' Report.

The net profit for the year amounts to Rs 1,03,266 17 which with Rs. 2,29 289 23 brought forward from the previous year makes a total of Rs. 3,32,555 40 available for disposal.

The Directors recommend the amount to be disposed of as under:—

	Rs	nP.
To Statutory Reserve Fund	30 000	00
To Dividend at 18 % p. a	. 36 000	00
To Provision for income-tax	40,000	00
To Dharmada	. 2,000	00
To Carry-Forward	2,24,555	40
TOTAL	Rs. 3,32,555	40

The Bank's business continued to function satisfactorily

Hoshiarpur,
24 th March, 1992.

JAS RAJ
SHAM SINGH
JANAK RAJ } Directors.

Report of the Auditors to the Shareholders

We have audited the foregoing Balance-sheet of Ba[ri] Doab Bank Limited, Hoshiarpur, as at 31 st December, 196[1] and also the foregoing Profit and Loss Account of the Bank f[or] the year ended upon that date

In accordance with the provisions of Section 29 of t[he] Banking Companies Act, 1949, read with the provisos to sul[b] section (1) and (2) of Section 211 and sub-section (5) of Sectio[n] 211 and 227 of the Companies Act, 1956, the Balance-sheet a[nd] Profit and Loss Account are not required to be and are n[ot] drawn up in accordance with the Sixth Schedule to t[he] Companies Act, 1956, they are, therefore, drawn up [in] conformity with Forms A and B of the Third Schedule to t[he] Banking Companies Act 1949.

We report that —

[a] We have obtained all the informations and expl[a]nations which, to the best of our knowledge and belief, we[re] necessary for the purpose of our audit and have found them be satisfactory

[b] The transactions of the Bank which have co[me] to our notice have been within the powers of the Bank.

[c] In our opinion proper books of account as requir[ed] by law have been kept by the bank so far as appears fr[om] examination of those books.

[d] The Bank has got no branch

[e] The Bank's Balance-Sheet and Profit and Lo[ss] Account dealt with by this report are in agreement with t[he] books of account.

[f] In our opinion and to the best of our informati[on] and according to the explanations given to us, the said accou[nts] give the information required by the Companies Act, 1956, [in] the manner so required for banking companies and on su[ch] basis the said Balance Sheet gives a true and fair view of t[he] state of the affairs of the bank as at 31 st December, 1961, a[nd] the Profit and Loss Account gives a true and fair view of t[he] profit for the year ended upon that date.

NEW DELHI,
Dated 20 th March, 1962

SODHBANS & Co,
Chartered Accountan[ts]

Bari Doab Bank Limited, Hoshiarpur.

PROFIT & LOSS ACCOUNT FOR THE YEAR ENDING 31 st DECEMBER, 1961

31.12.1960 Rs	EXPENDITURE	Rs.	nP
57,691	1 Interest paid on Deposits, borrowing etc.	54,456	53
15,821 (4,920)	2 Salaries and allowances and Provident Fund (including Rs. 4,920/- paid to manager besides residential accommodation)	16,558	86
720	3 Directors' and Local Committee Members' Fees and allowances	Nil	
1,557	4. Rent, Taxes, Insurances, Lighting etc	1,663	26
340	5. Law Charges	913	58
228	6 Postage, Telegrams and Stamps	613	16
300	7. Auditors Fees	300	00
2,075	8 Depreciation on and Repairs to the Banking Company's Property	1,429	78
500	9. Stationery, Printing and advertisements etc.	504	03
—	10. Loss from sale of or dealing with non-banking assets	Nil	
—	11. Net loss on sale of shares and securities ..	Nil	
35,087 (34059)	12 Other expenditure (including Income-tax paid at source Rs. 33,088 01)	34,574	35
26,819	13. Bad debts written off	896	13
1,06,603	14. Balance of Profit (Subject to Taxation) ..	1,03,266	17
2,47,741	TOTAL .	2,15,175	85

31.12 1960 Rs.	INCOME			Rs.
	(Less provision made during the year for bad and doubtful debts and other usual or necessary provision)			
1,00,944	1 Interest and Discount .			1,12,128
104	2 Commission, Exchange and Brokerage			248
—	3. Rent ..			Nil
56,042	4. Net profit on sale of investments, Gold, Silver, land and other assets (not credited to Reserves or any particular fund or account)			Nil
—	5 Net profit on revaluation of investment, Gold and Silver, land premises and other assets (not credited to Reserves or particular fund or account)			Ni[l]
20,243	6 Income from non-banking assets	21,618	15	
15,421	Less expenses	16,323	30	5,294
4,822				
	7. Other Receipts :			
83,272	(i) Dividend on shares	83,629	50	
2,157	(ii) Miscellaneous Earnings	2,379	14	
400	(iii) Written off debts realized	11,494	90	
85,829				97,503
2,47,741	TOTAL			2,15,178

DURGA DASS,
Manager

JAS RAJ
SHAM SINGH
JANAK RAJ } Directors.

Bari Doab Bank

BALANCE SHEET AS

31,12,1960 Rs.	CAPITAL & LIABILITIES			Rs. nP	Rs. nP.
	1. Capital				
(2,00,000)	Authorised Capital 4000 equity shares of Rs 50 each ..				2,00,000 00
	Issued, Subscribed and paid up Capital .				
2,00,000	4000 equity Shares of Rs. 50 each fully paid up				2,00,000 00
7,80,000	**2. Reserve Fund and other reserves** ..				8,10,000 00
	3. Deposits and other Accounts :				
14,04,890	Fixed Deposits			12,12,736 33	
3,29,454	Saving Bank Deposits			3,35,694 92	
2,07,513	Current accounts, Contingency accounte etc.			2,26,783 93	
2,500	Employees' Security Deposit			2,500 00	17,77,715 18
19,44,357					
—	**4 Borrowing from other Banking Companies, agents etc.** ...				Nil
—	**5. Bills payable** ..				Nil
—	**6 Bills for Collection being bills receivable as per contra**				Nil
	7. Other liablities ..				
	Provision for Income-tax :				
11,312	Balance as per last Balance Sheet	15 674	15		
16,000	Additions during the year	40,000	00		
27,312		55,674	15		
11,638	Less Income-tax paid	35	02	55,639 13	
15,674					
1,550	Dharmada			3,055 00	
82	Dividend unpaid .			238 30	58,932 43
17,306					
—	**8. Acceptances, endorsements and other obligations as per contra** ...				Nil
	9 Profit and Loss Account :				
2,75,686	Balance as per Balance Sheet as at 31st December, 1960			29,289 23	
	Less appropriations .				
20,000	Statutory Reserve	30,000	00		
16,000	Dividend	28,000	00		
1,000	Dharmada	2,000	00		
16,000	Provision for Income-Tax	40,000	00	1,00,000 00	
2,22686				2,29,289 23	
1,06,603	Add Profit for the year ended 31-12-61 ..			1,03,266 17	3,32,555 40
3,29,289					
	10 Contingent Liabilities				
(16,750)	On Partly paid Shares Rs. 12,250				
32,70,952	TOTAL .				31,79,203 01

Limited, Hoshiarpur.

ON 31 st DECEMBER, 1961.

31.12.1960 Rs.		PROPERTY & ASSETS		Rs.	nP.	Rs.	nP.
	1.	**Cash :**					
1,04,321		In hand & with Reserve Bank & State Bank of India (including foreign currency notes). ..				78,466	71
	2.	**Balances with other Banks**					
		(i) In India					
2,24,989		(a) On current account ...		80,366	71		
14,32,357		(b) On deposit account (including Rs 2500/- on a/c of Employees' Security Deposite) ...		9,58,084	13		
—							
16 57,346		(ii) Outside India ...		Nil		10,38,450	84
—	3.	**Money at call and short notice** ...				Nil	
7,88,790	4.	**Investments at Cost below market value**					
—		(i) Securities of the Central and the State Governments.		8,63,881	01		
3,29,880		(ii) Shares—Preference (fully paid up)		Nil			
39,181		Ordinary (fully paid up)		3,01,040	46		
—		Ordinary (partly paid up)		27,841	24		
—		(iii) Debentures or Bonds ..		Nil			
10,934		(iv) Other investments ..		Nil			
11,68,785		(v) Gold ..		10,934	16	12,03,696	87
	5.	**Advances**					
		(Other than bad and doubtful bebts for which Provision has been made to the satisfaction of the auditors)					
2,35,526		(a) Loans, Cash Credits and Overdrafts		7,26,958	47		
—		(i) In India		Nil			
—		(ii) Outside India		Nil		7,26,958	47
		(b) Bills discounted and purchased					
		Particulars of Advances					
(2,06,526)		[i] Debts considered good in respect of which the Bank is fully secured. ...		6,95,149	18		
(27,200)		[ii] Debts considered good for which the bank holds no other security than the debtor's personal security		31,809	29		
(1,800)		[iii] Debts considered good, secured by the personal liabilities of one or more parties in addition to the personal security of the debtors		Nil			
—		[iv] Debts considered doutful or bad, not provided for		Nil			
—		[v] Debts due by directors or officers of the Bank or any of them either severally or jointly with any other person		Nil			
—		[vi] Debts due by companies or firms in which the directors of the Bank are interested as directors, partners, or managing agents or in the case of private companies as members.		Nil			
—		[vii] Maximum total amount of loan including temporary advance made at any time during the year to directors or managers or officers of the Company or any of them either severally or jointly with any other person		Nil			
—		[viii] Maximum total amount of loan including temporary advance granted during the year to the companies or firms in which the directors of the Bank are interested as directors, partners or managing agents or in the case of Private companies as members		Nil			
—		[ix] Due from Banking companies		Nil			
—	6.	**Bills receivable being bills for collection as per contra** ...				Nil	
—	7.	**Constituents' liabilities for acceptances, endorsements and other obligations as per contra**					
—	8	**Premises less depreciation**				Nil	
	9.	**Furniture and Fixture less depreciation**				Nil	
3,618		Last Balance	3,618 39				
—		Addition during this year	213 20	3,831	59		
3,618							
1,356		Less depreciation upto 31-12-60	1492 44				
136		Depreciation during the year	140 34	1,632	78	2,198	81
2,126							
	10.	**Other Assets :**					
25		(i) Miscellaneous		25	00		
6,447		(ii) Interest accrued but not realised		9,345	25		
		(iii) Agricultural machinery at cost :					
6,362		Last Balance	5408 19				
—		Addition during the year	—				
954		Less Depreciation during the year	811 20	4,596	99		
5,408		(iv) Advance Tax		26,363	75	40,330	91
11,880							
—	11.	**Non-Banking Assets acquired in satisfaction of claims (at cost)**					
91,869		Last Balance (including property left in Pakistan Rs. 22,573 08) ...		90,967	97		
712		Less Sale during the year	1,683 00				
189		... Depreciation during the year	184 65	1,867	65	89,100	1
[illegible]							
						31,79[illegible]	

आर्य समाज योगेन्द्र... प्रदेश) का वार्षिक अधिवेशन

आज दिनांक २० मई १९६२ को प्रात १० बजे आर्य मन्दिर में वार्षिक अधिवेशन श्रीमान एस० पी० कपूर की अध्यक्षता में हुआ जिस में निम्न लिखित कार्यवाही संपन्न हुई।

प्रस्ताव नं०—१

दिनाक २१-१-६१ के साधारण अधिवेशन की पुष्टी की गई।

प्रस्ताव नं०—२

वेद प्रचार फण्ड—इस वर्ष आर्य समाज ने आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधो सभा को वेदप्रचार फण्ड के लिये ७०४ रुपये ५० नये पैसे दिये हैं।

(ख) प्रचार कार्य

वेदप्रचार—१५ जून से २१ जून १९६१ तक प० ओम प्रकाश जी व पं० हजारी लाल जी ने वेद कथा तथा भजनोपदेश द्वारा प्रचार किया। दिनाक १५ से १८ अक्टूबर तक प० त्रिलोक चन्द जी शास्त्री तथा पं० मेला राम जी रेडियों सिंगर ने प्रचार किया।

ग्राम प्रचार—श्री रंचु राम सदस्य न्याय मण्ड के द्वारा पेटु (भराडु) ग्राम में तथा सारली ग्राम मे वेद पचार हुआ।

स्कूलों में—राजकीय हाई स्कूल में विद्यार्थियों में पं० ओम प्रकाश जी ने विद्यार्थी जीवन पर भाषण दिया।

पर्व—इस वर्ष आर्य समाज जोगेन्द्रनगर में सभा के आदेशानुसार आर्य समाज स्थापना दिवस बड़ी धूमधाम से मनाया गया ... भी हुई।

सस्कार—इस वर्ष कई सस्कार वैदिक रीति से संपन्न हुए।

परिवारिक संत्सग—बाबू मिलखी राम जी श्री कायस्थ साहिब रैजीडैन्ट इजिनिअर के निवास स्थान पर विशेष रूप से सत्सग हुए।

साहित्य प्रचार—इस वर्ष आर्य समाज की ओर से लगभग ६०० ट्रैक्टों का मुफ्त वितरण किया गया जिस मे दैनिक यज्ञ प्रकाश, आर्य सिद्धान्त परिचय तथा आर्य समाज नाम ट्रैक्ट बांटे गये।

भवन निर्माण—इस वर्ष मे पक्की सिमैन्टेड स्टेज का निर्माण हुआ हाल की जली हुई दिवार को पूर्ण किया गया तथा समस्त भवन में पेंट हुआ। इस प्रकार से सदस्यों में नवस्फूर्ति तथा उल्लास था।

वार्षिक यज्ञ तथा उत्सव—दिनाक ९ अप्रैल से १३ अप्रैल तक यज्ञ तथा प्रचार हुआ जिस मे पं० ओम प्रकाश जी तथा पं० राज पाल मदन मोहन की चिमटा मण्डली ने प्रचार किया यज्ञ की पूर्ण हुति वैसाखी को हुई। मण्डी समाज के अधिकारियों मे विशेष रूप से श्री इन्द्र सिंह जी व श्री भक्त ईश्वरदास जी ने भाग लिया।

प्रस्ताव नं०—३

समाज का निर्वाचन—आगामी वर्ष के लिये निम्नलिखित अधिकारी सर्व सम्मति से चुने गये।

प्रधान—श्री गुरुदयाल जी मल्व, उपप्रधान—श्री एसी० पी० कपूर —श्री परमानन्द जी कोषाध्यक्ष—श्री जयलाल जी मन्त्री—मुरारीलाल उपमन्त्री—श्री तुलसानन्द जी लेखा निरीक्षक—श्री गंगा धर जी स्टोर कीपर व पुस्तकाध्यक्ष—श्री शिवराम जी प्रचार मन्त्री—श्री मास्टर भुल्कर सिंह जी इस के अतिरिक्त अंतरग सदस्य—श्री गोपाल दास श्री अनंतराम जी चुने गये।

अनुपस्थित सदस्यों मे से श्री वेद मित्र जी, श्री जयसिंह जी और योरक्ष राम जी को अन्तरंग के लिये मनोनित किया गया

प्रचार मण्डल की स्थापना—अन्त में समस्त सदस्यों ने सर्व सम्मति से स्वीकार किया कि इस पर्वतीय क्षेत्र में आर्य समाज के संगठन को व्यापक रूप देने के लिये प्रचार मण्डल की स्थापना की जाये।

आर्य समाज का आय को बढाने के लिये नौमीनल मैम्बर बना कर मासिक चन्दे में बढ़ोत्री की जाये।

अन्त में शान्ति पाठ हो कर साधारण अधिवेशन समाप्त हुआ।

निवेदक—मुरारीलाल मंत्री
आर्य समाज योगेन्द्रनगर
(हिमाचल प्रदेश)

डी० ए० वी० कालिज जालन्धर का शानदार नतीजा

१३ जून जालन्धर पंजाब यूनिवर्सिटी की प्री मैडिकल परीक्षा का नतीजा आज घोषित हुआ। जिस में डी० ए० वी० कालिज जालन्धर का रामप्रकाश बधवा ६५० में से ४८० अक प्राप्त करके सारे पंजाब के कालिजों मे सर्व प्रथम रहा। इसी प्रकार धर्मपाल अलरेजा पाचवीं, हरिचन्द्रपुरी छटी, विचित्रसिंह नौवीं, तेजराम ठक्कर ग्यारवीं और बलराज बाबा—बारहवीं पोजिशन पर रहे।

तीन छात्र वृत्तियां आने की पूरी आशा है।

इस कालिज के २६ छात्रों ने प्रथम श्रेणी प्राप्त की जो कि पजाब के सभी कालिजों से सर्वोत्तम है।

कालिज का परीक्षा परिणाम ८०% रहा जब कि पंजाब यूनिवर्सिटी का ५३.२ है।

इस शानदार परीक्षा परिणाम के लिए आर्य जगत की ओर से कालिज के प्रिंसिपल व आध्यापक वर्ग को बहुत २ बधाई।

—व्यवस्थापक

आर्यसमाज लाजपतनगर(सोनीपत)का चुनाव

प्रधान—श्री खुशी राम जी, कार्यकर्ता प्रधान म भरत देव जी, उपप्रधान—श्री देवराज जी बत्रा, मन्त्री मास्टर जयदयाल जी, उपमन्त्री तथा पुस्तकाध्यक्ष—म० दयाल चन्द्र जी, कोषाध्यक्ष—म० धर्म देव जी तनेजा, अतरंग सदस्य—श्री प. चन्द्र सैन जी आर्य, डा. ठाकुर दास जी, म. मेघराज जी, म. राम चन्द्र जी, श्री विश्व भर नाथ जी, आडीटर—श्री कृष्ण जी शास्त्री आदर्श नगर देहली

—खुशीराम प्रधान समाज

मुद्रक व प्रकाशक श्री सतोष राज जी मंत्री आर्यप्रादेशिक प्रतिनिधि सभा पंजाब जालंधर द्वारा वीर मिलाप प्रैस, मिलाप रोड जालंधर से मुद्रित तथा आर्य जगत कार्यालय महात्मा हंसराज भवन निकट कचहरी जालन्धर शहर से प्रकाशित मालिक—आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा पंजाब जालन्धर

टैलीफोन न० २०५६ [आर्यप्रादेशिक प्रतिनिधि सभा पंजाब जालन्धर का साप्ताहिक मुखपत्र] Regd No.P.121

एक प्रति का मूल्य १३ नये पैसे वार्षिक मूल्य ६ रुपये

वर्ष २२ अक २६ रविवार १७ आषाढ २०१८— १ जुलाई १९६२ दयानन्दाब्द १३८ (तार-प्रादेशिक जालन्धर

वेदसूक्तय:

तथ हं शत्रून् साक्षे

तथा-उस आत्मशक्ति के द्वारा अहं-मैं शत्रून-सारे शत्रुओं को साक्षे-तिरस्कार करता हू, दबाता हू, आत्मा का बल सब को दलित कर देता है।

यो न इन्द्र अभिदासति

हे इन्द्र वीर पुरुष। य -जो न - हमें अभिदासति-विनाश करता है, दास बनाना चाहता है। शत्रु बन कर हमें दबाना, तपाना और सताना चाहता है। हे इन्द्र! हमारे नेता वीर नर—उसे

तस्य प्राशं त्वं जहि

तस्य-उस शत्रु के, हमें दबाने व दास बनाने वाले के प्राशं-बल को, सामर्थ्य तथा उसके सारे मित्र-मण्डल को जहि-मार दे। शत्रु को कुचल कर रख दे।

अथर्ववेद से

वेदामृत

स्वस्ति मित्रावरुणा स्वस्ति पथ्ये रेवति।
स्वस्ति न इन्द्रश्चाग्निश्च स्वस्ति नो अदिते कृधि ॥

ऋ० म० ५ सू० ५१ म० १४

अर्थ—(स्वस्ति) कल्याण करें (मित्रावरुणा) मित्र अर्थात प्रेम-कारक परमेश्वर और वरुण वरण के योग्य भगवान् हमारा कल्याण करें। (स्वस्ति) सुख हो (पथ्ये) पथ पर (रेवती) धन भण्डार से भरे हुए मार्ग पर चलते हुए हमारा भला हो। धनी होकर अभिमानी न बन जाये। (स्वस्ति) कल्याण हो (न) हमारा (इन्द्रश्च) ऐश्वर्य का स्वामी (अग्नि च) सब का नेता, प्रकाशमय ईश्वर हमारा कल्याण करे। (स्वस्ति) कल्याण करे (न) हमारा(अदिते)एक रस अजर अमर परमेश्वर! (कृधि) कल्याण करो।

भाव—हे जीवन के प्रीतम! आपको कितने नामों से पुकारू। अनन्त नाम वाले हो। आपके अनन्त सिर, नेत्र, पैर तो हैं ही। सब को देखते, सुनते और सर्वत्र व्यापक हो रहे हो। वहां आपके नाम भी अनन्त ही हैं। हरेक नाम आपका प्यारा लगता है, उसी नाम में ही हमारा कल्याण करते हो, सुख देते हो। आप सब के मित्र हैं, सारे आपके स्नेह के योग्य हैं। सारा विश्व आपके प्यार में समाया है। वरुण हो, हितैषी हो, हम धनवान् होने पर भी शुभ पथ पर चलते रहें। धन पाकर अभिमानी न बन बैठें। आप इन्द्र और अग्नि हो। सारा ऐश्वर्य व तेज आपका है। हे अदिति मा! तेरा आशीर्वाद चाहते यह मांगते हैं कि सब का कल्याण करो। हमे भी जीवन में प्रकाश तथा ऐश्वर्य दीजिये। प्रत्येक अवस्था में कल्याण करें। —सं०

ऋषिदर्शन

सर्वशक्तिमद् ब्रह्म

वह परमेश्वर सर्वशक्तिमान् है। सारी शक्तियों का भण्डार है, उस में अनन्त उत्पत्ति, स्थिति, प्रलय की शक्तियां हैं। उसके समान और कोई भी नहीं है।

प्रजापतिः प्रजापालकत्वात्

वह प्रजापति है क्योंकि सारी प्रजा की पालना करता है। जितना भी विश्व का जीवन है वही सब को पालन कर रहा है। हम सब उसी की प्रजाएं हैं, वह भर्ता है।

स षोडशीत्युच्यते

वह ब्रह्म सोलह कलाओं वाला है। उस मे सोलह प्रकार की कलाएं हैं। सोलह की अनुपम शक्तियों का स्वामी है। सर्वत्र उसी की कला दिखाई देती है।

भाष्य भूमिका से

अधिष्ठाता—संतोष राज मंत्री सभा

सम्पादकः त्रिलोक चन्द्र शास्त्री

अध्यात्मवाद—

इन्द्रपुरी का यन्त्र-मन

(श्री बलदेवराज जी एम० ए० साधुआश्रम होश्यारपुर)

बालक पर माता-पिताके संस्कारों का अधिक प्रभाव रहता है। पांच वर्ष की आयु के उपरांत बच्चा स्कूल में जाता है। अनेक प्रकार के लोगों से अपना मेल-जोल करता है। ज्यू २ वह बड़ा होता है, उस पर संगति का प्रभाव पड़ता जाता है। किन्तु कई लोग ऐसे हैं जिन पर न ही संगति का और न ही सस्कारों का प्रभाव रहता है। मेरे विचार में इसका मुख्य कारण 'मन' ही है। जेसे स्पष्ट कहा है 'मन एव मनुष्याणा कारणम् बन्धमोक्षयो' अर्थात् मन ही बन्धन और मोक्ष का कारण है। जिसका मन बहुत ही निर्मल हो उसपर कुसगति का अथवा जिसका बहुत ही मलीन मन हो उसपर उत्तम सत्संगति का असर नहीं पड सकता। अत संस्कार, सगति व मन तीनों मे से मन ही प्रबल है।

मन, बुद्धि व आत्मा का परस्पर सम्बन्ध समझने के लिए मान लो हमारा शरीर एक पाठशाला है। चचल विद्यार्थी इसमें 'मन' हैं। बुद्धि 'अध्यापक' है। आत्मा 'मुख्याध्यापक' है। चंचल विद्यार्थी जब कुमार्ग की ओर जाते हैं तो अध्यापक सचेत करता है कि मेरे से ऊपर भी एक शक्ति (मुख्याध्यापक) है।

मन के अनेक सिद्धात हैं जिनमें से मुख्य सिद्धात है कि मन बहुत चंचल है। क्षणभर मे मन कहीं का कहीं चला जाता है। वायु से भी इसकी गति सूक्ष्म है। शिव-संकल्प मन्त्रों मे उचित ही कहा है 'यज्जाग्रतो दूरमुदति दैवं तदु सुप्तस्य तथैवेति . . . ' अर्थात् सोते हुए भी मन कहीं का कहीं चला जाता है। नौजवानों का मन प्राय ज्यादा चचल होता है। किन्तु दिखावे के लिए न मानें तो अलग बात है। बृहदारण्यक उपनिषद् के अनुसार 'हृदयम्' शब्द मे हृ का अर्थ चुराना अथवा आकर्षण करना द का अर्थ देना अर्थात् विचार-विमर्श और यम् का अर्थ गति अर्थात् चंचलता बताया है। हृदय का आरोप मन पर किया जाए तो स्पष्ट है कि मन चंचल है।

मन का दूसरा सिद्धांत है कि मन एक समय में एक ही काम कर सकता है। जैसे कोई विद्यार्थी या तो पढ़ सकता है या मित्र से बातें कर सकता है

मन का सिद्धात है कि आदमी जो मन में सोचता है। वही बोलता है और वही करता है अथवा वही हो जाता है। जैसे एक उपनिषद् मे कहा भी है—'यद् मनसा ध्यायति तद् वाचा वदति, यद् वाचा वदति, तद् कर्मणा करोति।' इस सिद्धात को जर्मन के विद्वान नहीं माना करते थे। बाद मे जर्मन के एक डाक्टर ने किसी लड़के को कहा—'बेटा तुझे बुखार है क्योंकि तेरा शरीर गर्म है, रग लाल है।' वह लड़का धूप मे दौड़ता हुआ माता के पास गया, शीशे में देखा कि उसका चेहरा लाल है और शरीर गर्म है। माता को कहने लगा, 'माता जी मैं बीमार हूं।' चारपाई पर लेट गया। दिन-प्रति-दिन बुखार बढ़ता ही गया। उसी डाक्टर ने कहा, 'अरे बेटा, अब तू तन्दरुस्त है।' जल्दी ही वह लड़का स्वस्थ हो गया। लड़के ने जो सोचा, वही कहा और वही हुआ। इसलिए तो कहते हैं कि रोगी के सामने कहा जाए कि अब तू ठीक है। उसकी आधी बीमारी उसी समय दूर हो जाती है।

मन का सिद्धात है कई बार मन जान-बूझकर अथवा अज्ञानता के कारण हठी बन जाता है। जैसे कोई राजनैतिक-नेता वोटों के लालच से अपनी गलती को जानते हुए भी नहीं मानते हैं। इसी तरह कई पौराणिक स्वार्थ के कारण वैदिक-सिद्धांतों को ठीक जानते हुए भी नहीं मानते। इस प्रकार की मन की जिद को दूर करने का कोई उपचार नहीं। 'You can bring the horse to water, but cannot make him drink' अर्थात् सोए हुए को तो जगाया जा सकता है जो जानबूझ कर सोया हो उसे कौन जगाए। किन्तु अज्ञानता के कारण जिसका मन जिद्दी हो उसे युक्ति व प्रमाणों से मनाया जा सकता है। जैसे मेरा एक मित्र अज्ञानता के कारण जिद किया करता था कि ईश्वर नहीं है। मुझे कहता था 'अगर ईश्वर है तो मुझे दिखाओ।' सायंकाल को उसे सैर करने में ले गया। ठण्डी २ पवन चल रही थी। मुझे कहने लगा, 'बलदेव! अब वापिस चलो बहुत ठण्डी हवा चल रही है।' तब मैंने कहा 'मुझे दिखाईए हवा कहां चल रही है।' दोस्त कहने लगा, 'अरे मैं दिखा थोड़ा सकता हूं, आप खुद अनुभव कर रहे हैं।' मैंने कहा—'प्यारे, इसी प्रकार सर्वव्यापक ईश्वर को दिखाया नहीं जा सकता, उसे अनुभव किया जा सकता है।' इस वाक्य को सुनकर उसने जिद छोड़ दी।

मन का सिद्धांत है अगर आदमी सादृश्य वस्तु को देखे अथवा सादृश्य चीजों का नाम सुने तो उसके मन में पुरानी बातें स्मरण हो आती हैं। जैसे मैं अपने मने एक लड़के रामेश्वर दयाल को देखता हूं तो सोचता हूं 'आह मेरा भी एक मित्र रामेश्वर दयाल था।' बच्चे को देखकर आदमी सोचता है, 'मेरा भी बचपन इसी प्रकार का था।' कहते हैं एक स्थान पर पार्टी हो रही थी। सभी हंस रहे थे।' एक सज्जन ने फिरनी का चमच मुह तक लगाया तो आंखों में आसू आ गए। साथ वाले ने कहा 'सरदार जी क्या गम फिरनी है?' वह बोले 'मैंने भी अपने पुत्र के विवाह पर ऐसी पार्टी दी थी। आज मेरा लाल इस संसार में नहीं है। उसका स्मरण आ रहा है।'

मन का सिद्धात है कि मन में अनेक-प्रकार की गलत धारणाएं बैठ जाती हैं। जिसे मैं भ्रम के नाम से पुकारता हूं। इस प्रकार की गलत भ्राति दूसरों के प्रति बहुत जल्दी हो जाती है। जैसे एक बार एक महात्मा पंजाबी में गा रहे थे, 'न पहली दे, न पिछली दे, बारी जावा गवली दे।' अर्थात् मेरा बचपन दुखपूर्ण था चूंकि मुझे अध्यापक व माता-पिता झिड़कते रहते थे। अन्तिम जीवन बुढ़ापे में अपने पुत्र ही साथ नहीं देते हैं। इसलिए बीच की अवस्था अर्थात् यौवनावस्था सर्वोत्तम है।' इसी समय तीन स्त्रियां जा रही थीं। उनमें बीच की स्त्री सुन्दरी नवयुवती थी। उसे झट गलतफैमी हो गई कि यह महात्मा मुझे देखकर ही मस्ती मे गा रहा है—'न पहली दे, न पिछली दे, बारी जावा गवली दे।' इस प्रकार की भ्रांति दूसरों के प्रति ही नहीं कई बार अपने ही प्रति हो जाती है। जैसे परीक्षार्थी सोचता है, 'हां मैंने बहुत बढ़िया पेपर किए हैं।' किन्तु उसे इतना पता नहीं रहता कि मैंने व्याकरण की कितनी गलतियां की हैं।

(क्रमश.)

सम्पादकीय—

आर्य जगत्

वर्ष २२] रविवार १७ आषाढ २०१८, १ जुलाई १९६२ [अंक २६

वेद प्रचार का केन्द्र

केन्द्र का विशेष महत्व होता है। यह इसीलिए बनाया जाता है ताकि इसके द्वारा संगठन शक्तिशाली बन सके, इससे सम्बन्धित सारे अंगों को हर अवस्था में जीवन मिलता रहे। जिस का केन्द्र भरा हुआ है, दृढ़ और व्यवस्थित है, वहां शक्ति और संगठन को चार चांद लग जाते हैं। केन्द्र की निर्बलता में सारा ताना बाना बिखर जाता है। पंजाब में सैंकड़ों आर्यसमाजें हैं। इन से बड़ा महान् कार्य हो रहा है। इन सब को एक ही सूत्र में पिरोकर केन्द्रीकरण कर दिया गया है। इस संगठन केन्द्र को आर्य प्रादेशिक सभा पजाब कहा है। सभा के द्वारा सारे समाजों का उत्तम प्रबन्ध है, कार्य तथा प्रचार व्यवस्था है। बड़ा भारी विशाल प्रकाशन तथा प्रचार आयोजन चलता रहता है। प्रति वर्ष महान् अधिवेशन में समाजों के मान्य सज्जन इकट्ठे होकर वर्ष के लिए सुन्दर कार्यक्रम बनाते तथा उसमें तन मन धन से सहयोग देते हैं। सारी समाजें सभा के विराट् शरीर के भव्य अंग है और सभा इनको जीवन देने वाला प्रभावशाली केन्द्र है। इसी प्रकार यह सारा कार्य चलता है।

किन्तु कभी २ मन में खेद भी होता है। क्या? इसलिए जब इस केन्द्र के प्रति ध्यान कुछ कम होने लगता है। आर्य समाजें व आर्य पुरुषों द्वारा जो दान समय २ पर दिया जाता है, वह कम नहीं है। लोगों की श्रद्धा में कमी नहीं आई। धर्म का प्रेमभाव भी उसी प्रकार का बना हुआ है। जनता देती और खूब देती है, श्रद्धा का परिचय भलीभांति प्रत्यक्ष है, किन्तु सभा रूपी संगठन केन्द्र को क्या और कितना मिलता है। इस विराट् शरीर को स्वस्थ रखने के लिए कितना जीवन प्रसाद दिया है। यह देख सुनकर मन में क्षोभ अवश्य होता है। विवाह संस्कार सारे परिवारों में होते हैं, धूमधाम के समारोह होते हैं। हर बात में सैंकड़ों हजारों के व्यय भी किये जाते हैं, पर उनमें आवश्यक संगठन सभा केन्द्र के वेदप्रचार को क्या मिलता है, यह सब जानते हैं। इतना ही कह सकते हैं कि खेदजनक है। आर्यसमाज के पास कितनी विशाल संस्थाएं हैं। उनपर कितना भारी व्यय होता है। लाखों का बजट है। उनके भी प्रत्येक वर्ष अपितु वर्ष में दो तीन बार कई समारोह होते रहते हैं। पर्याप्त व्यय होता है। पर वहां भी वेद प्रचार केन्द्र सभा के लिए कितना ध्यान रखा जाता है। क्या कुछ मिलता है, यह भी सामने है। कौन नहीं जानता? और भी कितने आश्रम हैं, संस्थाएं हैं, आयोजन हैं, जुदा २ संस्थाएं बनी हैं, अलग २ व्यक्ति बैठकर अपने २ प्रबन्ध मे बारह मास समाजों में भ्रमण करते ही रहते हैं। लोग आर्यसमाज के कारण उनकी झोलियां भी भरते रहते हैं। उनका सम्बन्ध किसी भी सभा से नहीं होता। अलग-अलग व्यक्ति भी घूम २ कर झोलियां भरते हैं। भाई बहिनों की ओर से दान देने मे संकोच नहीं होता। वर्ष में काफी दान जाता है परन्तु केन्द्र को क्या मिलता है? इसी का परिणाम सामने आ रहा है। सभा का केन्द्र दुर्बल हो जायगा। शाखाओं को मूल से ही जीवन शक्ति मिलती है। इस स्थिति पर सभा को भी गम्भीरता से विचार करके समाजों को आवश्यक सन्देश देना चाहिए, तथा समाजों, परिवारों, व्यक्तियों का भी कर्त्तव्य है कि विशेष महत्व वाली सभा को प्रमुखता देवे। हम यह नहीं कहते कि किसी को न दो। प्रत्युत् हमारा भाव तो यह है कि जहा इच्छा हो दीजिये किन्तु केन्द्र को सबसे प्रमुख मानकर इसमें विशेष रुचि लेवें। केन्द्र मुख्य है अन्य गौण हैं। मुख्य को मुख्यता देना परमकर्त्तव्य है। समाजें, संस्थाएं, परिवार तथा सज्जन सारे इस आवश्यक बात की ओर आज और अभी से ध्यान देवें। वेद प्रचार के लिए बड़ा जरूरी है।

—त्रिलोक चन्द्र

गीत

(श्री रोशनलाल जी कांत, लेखराम नगर कादियां)

कैसी अरुण ज्योति मन भाई!
प्रभु अरचन करने को ऊषा स्वर्ण थाल भर लाई।
मुक्तामणि समेट रजनी के आंचल में भर लाई।
पुष्प पराग छिटक अवनी पर, शुभ सौरभ फैलाई।
ओसकणों से कर स्नान प्रभु, तब मन्दिर में आई॥ कैसी अरुण...
तेरी आराधना करने को प्रभु, दिनकर दीप जलाया।
आलोकित कर जगती को जिस, दिव्य प्रकाश फैलाया।
कर जागृत नर, खग, पशु जग प्रभु! सग सभी को लाई॥ कैसी...
गा मानव अरु कूक कोकिला, ने प्रभु नाम धियाया।
नाना विधि अभिनन्दन कर प्रभु, तेरा नाम जपाया।
हर्षित पुलकित मन्त्र मुग्ध हो, ऊषा रानी आई॥ कैसी·
खग-कुल-कलरव प्रखर नाद सुन, मेरा मन हर्षाया।
प्रात दीप से आलोकित हो कान्त नाम वर पाया।
तेरी प्रभा से प्रभावित हो प्रभु, यह तुच्छ रागणी गाई॥
कैसी अरुण ज्योति मन भाई।

(६ पृष्ठ का शेष)

ऋषि पुलस्त्य तथा रावण का सिलसिला (वंश परम्परा) जोड कर कुछ लोग ब्राह्मण भी बन गये।

इतने पर भी यदि कोई आर्यसमाजी उन संस्थाओं में जिनका केवल आधार हिन्दू हो उनके प्रचार मे अपना समय लगाता है तो वास्तव में वह हिन्दू ही है, आर्य नहीं है, और उनको आर्य समाज का कोई भी अधिकारी न बनना चाहिए अपितु उन्हे केवल सहायक सदस्य ही तब तक बनाए रखना चाहिए जब तक वे वास्तव मे आर्य न हो जावे, नहीं तो आर्यसमाज के अस्तित्व को ये लोग शीघ्र ही विनष्ट कर देंगे।

सार्वदेशिक सभा व आर्य प्रतिनिधि सभाओं को चाहिए कि उनका एक कमीशन प्रत्येक आर्य समाज में जावे, और सदस्यों की जांच करे और जो ऐसे नकली सदस्य हों चाहे वे समाज या सभा के अधिकारी हों तुरन्त पृथक करें। और उनको सहायक सदस्य।ं मे कर दें।

—०—०—

किरण—बहुत दिनों से मन में इच्छा थी कि तुम से मिलूं और नारी के वास्तविक धर्म के सम्बन्ध में तुम से पूछूं। आज उस परम पिता की अपार कृपा से आप से मिलने का, धर्म चर्चा करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है।

माधुरी—आइये बहन। मैं भी अपने को सौभाग्य शाली समझूंगी कि जो कुछ मुझे इस विषय में थोड़ा-सा ज्ञान प्राप्त है, उसे मैं अपनी बहन के सम्मुख प्रकट कर सकूंगी। लेकिन बहन, एक बात स्मरण रखना कि इसे अपने तक ही सीमित मत रखना, अपनी अन्य सहेलियों को भी इन बातों से परिचित करवाना ताकि उनका गृहस्थ जीवन, जिसे कि आज कल नरक के नाम से पुकारा जाता है, स्वर्ग बन जाए। हां, बताइये, आप क्या पूछना चाहती हैं।

किरण—बहन, सर्वप्रथम यह बतलाइये कि नारी के बाल्यकाल से लेकर वृद्धावस्था तक क्या-क्या धर्म अर्थात् क्या कर्त्तव्य है।

माधुरी—बहन! तुम ने यह बहुत अच्छी बात पूछी आज जो मेरी बहनें व माताएं दुःखी हैं, उनके दुःख का वास्तविक कारण इन बातों से परिचित न होना ही है। बाल्यावस्था में, जब कि बच्चा अशक्त, विचारहीन होता है तब उसे माता-पिता अपने दुलार प्यार से उसका पालन पोषण करते हैं। थोड़े शब्दों में यही कहना उचित होगा कि माता-पिता अपना सर्वस्व तक अपने शिशु के लिए न्यौछावर करने के लिये तत्पर रहते हैं। अत जब तक लड़की माता पिता की प्यार रूपी ओट में रहे तब तक उन की सेवा शुश्रूषा मन से करे। प्रत्येक कार्य उनकी इच्छा के अनुसार करे। फिर जब वह इन माता-पिता को छोड़ कर दूसरे माता-पिता के घर जाती है तब इस के उत्तरदायित्व पहले की अपेक्षा अधिक हो जाते हैं। उत्तरदायित्वों का बढ़ना ही नहीं, बल्कि उस का खान-पान, रहन-सहन भी उनके आधीन हो जाता है। इसका तात्पर्य यह कि अब ऐसी कठोर अवस्था में उसे अपने खान-पान रहन सहन तथा विचारों में परिवर्तन लाना चाहिए। उसे इस प्रकार से उनके साथ घुल मिल जाना चाहिए कि बिल्कुल भी परायापन अनुभव न होने पाए। अपने सास ससुर, देवर जेठ और पति की तन, मन, धन से सेवा करे। अपनी इच्छा से कोई कार्य न करे। सदा उन के आधीन रहे। क्योंकि मनु महाराज ने भी कहा है—

नारी स्तम्भ

"नारी का मुख्य धर्म" सवाद रूप में

(ले०—कु. अरुण जा आर्या प्रभाकर, टोहाना)
इस स्तम्भ की सम्पादिका

✦✦✦✦✦✦✦✦✦✦✦✦✦✦✦✦

'बालया वा युवत्या वा
वृद्धया वापि योषिता।
न स्वातन्त्र्येण कर्तव्यं
किंचित्कार्यं गृहेष्वपि॥
बाल्ये पितुवशे तिष्ठेत्
पाणिग्राहस्य यौवने।
पुत्राणां भर्तरि प्रेते न
भजेत् स्त्री स्वतन्त्रताम्॥

बालिका, युवती और बढ़ा स्त्री को भी घरों में कोई कार्य स्वतन्त्र होकर नहीं करना चाहिए। बाल्यावस्था में पिता के वश मे, यौवना अवस्था मे पति के वश में और पति की मृत्यु के उपरात पुत्रों के वश में रहे, पर स्वतन्त्र न रहे।

किरण—तो क्या स्त्रियों को पति की आज्ञा के बिना किसी प्रकार का व्रत, नियम इत्यादि नहीं करना चाहिए?

माधुरी—कदापि नहीं! क्योंकि स्त्री का मुख्य धर्म केवल पति सेवा ही है। अन्य सारे धर्म तो गौण हैं। और इनका आचरण भी केवल पति की प्रसन्नता और परिवार की प्रसन्नता के लिए ही किया जाता है। स्त्रियों को पति की आज्ञा के बिना अलग यज्ञ, व्रत और उपवास नहीं करना चाहिए। केवल पति सेवा से ही नारी स्वर्ग लोक में पूजित होती है। शास्त्रों में भी कहा है कि—

"पत्यौ जीवति या तु
स्त्री उपवासं व्रत चरेत्।
आयुष्य हरते भर्तु-
र्नरकं चैव गच्छति॥"

पति के जीवित रहते जो स्त्री पति सेवा न करके निर्जल और निराहार उपवास व्रत करती है, वह पति की आयु हरती है और स्वय नरक में पड़ती है।

किरण—लेकिन आज कल तो लोग कहते हैं कि स्त्री तथा पुरुष के समान अधिकार हैं। फिर अकेली स्त्री ही पति की सेवा क्यों करे? पति अपनी स्त्री की सेवा क्यों न करे?

माधुरी.—ऐसा कहने वाले लोग आर्य नारियों के पतिव्रत धर्म के महत्त्व को नहीं जानते। हमारे यहां तो स्त्री के लिए पति ही एक मात्र उपास्य देवता है और उसी की सेवा से ही स्त्री के समस्त मनोरथ सिद्ध होते हैं। हां, यदि संकट में, रोग में, पुरुष स्त्री की प्रवाह नहीं करता, उसके रोग का कोई उपचार नहीं करता तो अवश्य महा अपराधी है। पर पति कैसा ही क्यों न हो, चाहे अंधा बहरा, लूला लंगड़ा अत्याचारी और क्रूर स्वभाव का हो, पर स्त्री को अपने कर्त्तव्य पर आडिग रहना चाहिए। उसका कर्त्तव्य यही है कि वह उसे ही भगवान मान कर उसकी सेवा शुश्रूषा करे। मनु महाराज ने कहा है।—

'विशील. कामवृत्तो वा गुणैर्वा परिवर्जितः।
उपचर्यः स्त्रिया साध्व्या सततं देववत् पति.॥'

साध्वी स्त्री को शील रहित, काम वृत्ति वाले वा गुणहीन पति की भी सदा देवता के समान पूजा करनी चाहिए।

हमारे लिए तो अपने धर्म का पालन करना ही आवश्यक है। हमारे प्रति पति का व्यवहार कैसा है या आचरण किस प्रकार का है, इस बात का देखना साध्वी स्त्री का कार्य नहीं है। स्त्री का कर्त्तव्य तो केवल पतिपरायणा होना ही है और मेरा तो यह विश्वास है कि यदि स्त्री वास्तवमें पतिपरायणा हो तो वह अपने शुद्ध आचरणके बलसे कुमार्ग में पड़े हुए पति को पुन सुमार्ग पर लासकती है। और एक नया आदर्श दिखला सकती है।

किरण—बहन! मुझे संक्षेप में सब बता दो।

माधुरी.—सारांश यह है कि यदि संसार तथा स्वर्ग का सुख और मुक्ति का परम सुख प्राप्त करना चाहती हो तो तन, मन और वाणी से अपने पति की सेवा और आज्ञा में रहो। तन से जिस प्रकार बने पति को सुख पहुंचाओ; मन से कपट छोड़ कर पूर्ण प्रेम करो; पति यदि तुमसे प्रेम भी न करे तो भी तुम अपनी तरफ से प्रेम में कमी मत होने दो। वाणी से निरन्तर मृदु, मधुर, प्रिय, प्रेम भरे, क्रोध रहित और आदर सूचक शब्दों का प्रयोग करो, यदि पति क्रोध भी करे तो भी तुम अपने शब्दों को वैसा ही रखो। जिस कार्य से पति को प्रसन्नता और सुख हो वही कार्य करो। अर्थात् पति से एक प्राण और दो देह होकर रहो।

किरण—अच्छा बहिन। इस कष्ट के लिए शतश धन्यवाद। मैं तुम्हारे उपकार को कभी नहीं भुलाऊंगी और इन सब बातों को दूसरी बहनों को भी बतलाऊंगी। अन्य बातें फिर कभी पूछूंगी।

नमस्ते।

आर्य समाज को कैसे सर्वप्रिय बनाएं

ले० श्री ब्रह्मानन्द जी कौशल
(मोडलटौन यमुनानगर)

(गतांक से आगे)

उस को सर्व प्रिय बनाने का सुझाव देना मानों सूर्य को दीपक दिखाना है। परन्तु फिर भी आर्य समाजी विचारधारा के पक्षपाती होने के नाते, मैं साहस कर रहा हू कि विद्वान पाठकों के सामने कुछ सुझाव रखूं। मुझे डर है इस बात का कि कहीं मैं उस महर्षि की आर्य समाज को संकुचित करके न दीखा दूं। आशा है आप क्षमा करेंगे। सुझाव यह हैं—

(१) नियमों का प्रचार—आर्य-समाज को सर्वप्रिय बनाने में नियमों के प्रचार को महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। आज का युवक वैज्ञानिक विचार धारा का है तथा यदि थोड़ा भी परीक्षण किया जाये तो युवक की श्रद्धा नियमों में बंधाई जा सकती है, अत १० नियमों को लाखों की संख्या में छपवा कर गांव-गांव, घर-घर, पहुंचाया जाये। समाचार पत्रों में विज्ञापन के रूप में, आर्य परीवारों में तथा प्रतिष्ठित स्थानों पर इश्तहार के रूप में लगवाया जाये। १००० प्रतिशत पढ़ने वालों में से एक को तो पसंद आयेंगे ही और इस निम्न क्रम से मुझे विश्वास है एक दिन सभी युवक आर्य विचारधारा के बन जायेंगे।

(२) अर्थ सहित सन्ध्या—प्राय यह सत्य है कि सभी आर्य सज्जन संध्या के अर्थ नहीं जानते और बिना अर्थ जाने संध्या करना लाभ-प्रद सिद्ध नहीं हो सकता। अत. दैनिक नहीं तो अवश्य साप्ताहिक सत्संग की संध्या अर्थ सहित हो ताकि उपस्थित सज्जनों को पता लगे कि वह अपनी श्रद्धांजली भगवान के दरबार में किन शब्दों में प्रस्तुत कर रहे हैं वह भी आर्यसमाज को अधिक सर्वप्रिय बनाने में सहायता करेगा।

(३) दैनिक एक मन्त्र की व्याख्या—कोई विद्वान महानुभाव जो कि मन्दिर में उपस्थित हो, एक मन्त्र की व्याख्या किया करें और इसे अधिक समय नहीं लगता परन्तु लाभ बहुत होता है।

(४) शंका समाधान—रविवार को साप्ताहिक सत्संग के पश्चात एक आध घंटा ऐसा समय रखना आवश्यक है जिस में लोग शंका समाधान कर सकें। शंका समाधान तो आर्यसमाज का मुख्य कार्य है अत. इसे प्रोत्साहन दें जिस से न आने वाले व्यक्ति भी समाज मन्दिर में आया करेंगे।

(५) सब संस्कार मन्दिरों में हों—आर्य सज्जन अपने बच्चों के लगभग सभी संस्कार समाज मन्दिर में किया करें जिस से देखादेखी दूसरे लोग भी आयेंगे तथा खर्च भी कम होगा और समाज का प्रचार भी होगा।

(६) सम्मेलनों का आयोजन—आर्यसमाज मे मासिक अधिवेशन होने चाहिये जिन में कोई विषय निर्धारित कर दिया जाये कि अमुक दिन अमुक विषय पर लोग अपने अपने विचार प्रस्तुत करेंगे। विषय हों जैसे वैदिक धर्म ही क्यों? आर्य समाज का इतिहास, महर्षि दयानन्द इत्यादी—इस से युवकों को प्रोत्साहन मिलेगा और परिणाम स्वरूप सभी सम्प्रदायों के युवक आर्यसमाज के बारे में जान जायेंगे और प्रथम रहने वाले की विषयवस्तु समाचार पत्रों में छपवा दी जाये। इस से बहुत लाभ होगा।

(७) पुस्तकालय तथा क्रीड़ाकेन्द्र—आर्यसमाज मन्दिरों में सुव्यवस्थित क्रीडा केन्द्रों तथा अच्छे पुस्तकालयों का होना अति आवश्यक है। बच्चे ३-४ वर्ष की आयु से १२,१४ वर्ष पर्यन्त खेलना पसन्द करते हैं तथा खेलते हैं। अत उन्हें दूषित वातावरण में खेलने से बचाने के लिए यह कार्य आर्यसमाज मन्दिरों में होना चाहिये जिस से सभी सम्प्रदायों के लोग अपने बच्चों को भेजेंगे और वहां खेल के पश्चात संध्या का प्रबन्ध हो तो सोने पर सुहागे का कार्य करेगा। इस से भी आर्यसमाज को सर्वप्रिय बनाने में सहायता मिलेगी।

(८) बच्चों को शिक्षा—शाम को आर्यसमाज में नि:शुल्क शिक्षा ६-१२ वर्ष के बच्चों को देने का प्रबन्ध होना चाहिये जिस में सभी बच्चे आयेंगे उन्हें खेल, विद्या के साथ साथ अध्यात्मिक शिक्षा भी दी जाये जिस से आर्यसमाज अधिक सेवाप्रिय बनेगा।

अत. मेरे विचार से यदि इन बातों पर ध्यान दिया जाये तो सम्भव है कि कोई लाभ हो सके। कहने का भाव यह है कि इन मे से कुछ उपाय हमारे अजमाये हुए हैं तथा हमें बड़ी सफलता मिली है।

बुराइयां

(गतांक से आगे)

यदि हम ऐसा नहीं करते हैं, तो कदम-कदम पर हमारा ह्रास हो सकता है, जिसका पता शायद हमें तब चले, जब किसी प्रकार का निरोध बहुत ही कठिन हो जाय।

हम अनेक बार व्यक्तिगत दुराचरण का बीज विकीर्ण करने वाला समाज को कहकर उसकी भर्त्सना करने लगते हैं। ऐसे प्रसंग में यह न भूलना चाहिए कि समाज व्यक्तियों द्वारा ही निर्मित हुआ है। व्यक्तियों के सदसदाचारों के कारण उनके पारस्परिक सम्बन्धों में होते हैं और उन्हें वहां ढूंढा भी जा सकता है, परन्तु व्यक्तिगत विचार-शून्यता ही पतन का सब से बड़ा कारण होती है। सामाजिक आधार पर बनाये गये नियमों के पिछड़ेपन अथवा अपूर्णत्व के कारण भी व्यक्ति विवश होकर कुमार्ग पर चल रहा हो, ऐसा भी सम्भव है। तथाविध स्थितियों में व्यक्ति की अपेक्षा समाज अवश्य अधिक दोषी होता है।

यद्यपि यह सब ठीक है, तो भी व्यक्ति की बुराइयों को दूर करने की जिम्मेदारी विशेषत. व्यक्ति पर ही आती है। व्यक्तिगत बुराइयों का कुफल हमें व्यक्तिगत रूप में ज्यादा और जरूर भोगना पड़ता है, इसलिए हमें अपने बचाव के लिए तैयार होना ही चाहिए। इस विषय मे समाज को धीरे-धीरे या जितनी जल्दी हो सके, सहयोगी बनाने का यत्न करना ठीक है, लेकिन उसके सहयोग की चाह में अपनी राह से हट कर बैठ जाना बिल्कुल अनुचित होगा।

समाज क्या है? समाज को देखिये तो व्यक्ति और व्यक्तियों के संगठन ही तो हैं। व्यक्तियों के पारस्परिक सहयोग तथा उनके नियमित सम्बन्धों के ही आधार पर तो समाज खड़ा है न? तो व्यक्तियों की बुराइयां व्यक्तियों द्वारा ही दूर होंगी। हां, दूसरे को बुराइयों से बचाने की कोशिश हरेक कर सकता है।

अब प्रश्न हो सकता है, आगे आने का। कौन पहले बुराइयों को दूर करने की कोशिश करे? अन्तत यह प्रयत्न सब को करना है, यदि सब न करेंगे, तो सब का फायदा भी न होगा। विचार कर के और इस निष्कर्ष पर पहुंच कर कि 'बुराई का फल बुरा है और वह व्यक्ति के हिस्से में अवश्य आता है' कोई भी और हर एक बुराइयों से लड़ना शुरू कर सकता है।

आर्य समाज साम्प्रदायिकता से ऊपर उठे

(ले स्वामी आत्मानन्द जी भारती ७२ महारानी रोड इन्दौर)

✦✦✦✦✦✦✦✦✦✦✦✦✦✦✦✦✦✦✦✦

आर्य समाज की स्थापना का उद्देश्य यदि संक्षेप में कहा जावे तो आर्य समाज के छटे नियम में प्रतिपादित संसार का उपकार करना ही है। परन्तु आर्य समाज ने कुछ वर्षों से अपना कार्य क्षेत्र इस प्रकार का बना लिया जिस से वह केवल मात्र हिन्दू जाति का उपकार करने वाली संस्था बन गई। तथा आर्य समाज के उच्च कोटि के विद्वानों एव नेताओं के उपदेशों से इसी प्रकार के भाव व्यक्त होने लगे। कार्य भी इसी प्रकार के होते रहे। कोई भी कार्य आन्दोलन अथवा प्रोग्राम ऐसा नहीं अपनाया गया जो हिन्दू जाति के अतिरिक्त अन्य जातियों के उद्धार, उपकार या भलाई के लिये होता। परिणाम यह हुआ कि प्रारम्भ में यह संस्था विशुद्ध हिन्दू जाति की रक्षक मानी जाने लगी और अब वतमान में आर्य समाज का हिन्दुओं से पृथक अस्तित्व नष्ट हो गया। जनता यह समझने लगी कि आर्य समाज जाने मुस्लिम व ईसाई विरोधी सस्था। है आर्य समाजी स्वयं अपने को हिन्दू कहने लगे। यह आर्य समाज का हिन्दू समाज में प्रत्यावर्तन उस के उद्देश्य के विपरीत था। यह अवस्था आर्य समाज के लिये अत्यन्त घातक प्रमाणित हो रही है। आर्य समाज की व असाम्प्रदायिकता और सार्वभौमिकता पर यह भयंकर आघात हुआ। आर्य समाज को इस स्थिति से उठाना इसके नेताओं का काम है। जनता ने आर्य समाज से जो जो आशाएं की और हैं। वे मृगतृष्णावत् होती जा रही हैं। आज यह देखने मे आ रहा है कि आर्य समाज के कई बड़े कहे जाने वाले नेता अपनी इस स्थिति को गौरवमयी समझते हैं। और ये आज हिन्दुओं से इतने अभिन्न हो गये है कि स्वयंको हिन्दू कहते ही नहीं अपितु उन दलों का नेतृत्व कर रहे हैं, जिसका आधार विदेशियों द्वारा दिया गया कलंकित नाम हिन्दू है। और इसी नाम के प्रचार तथा इस नाम को गौरवशाली प्रतिपादितकरना जिन का उद्देश्य है।

मैं इस लेख द्वारा महर्षि स्वामी दयानन्द जी के उन उद्धरणों को जनता के समाने प्रकट कर देना चाहता हूं जिसके द्वारा महर्षि ने हिन्दू और आर्य का स्पष्ट भेद प्रतिपादित किया है। महर्षि ने भ्रान्ति निवारण में पं महेशचन्द्र न्यायरत्न के प्रश्नों का उत्तर देते हुए निम्नवाक्य लिखे हैं।

'हिन्दू शब्द ... जिस के अर्थ गुलाम व काफिर आदि के हैं। और जो कि आर्यावर्तियों को कलंक रुप नाम यवनादिक की ओर से हैं और आर्य शब्द जिस के अर्थ श्रेष्ठ के हैं। वह वेदों मे अनेक ठिकाने मिलता है। सो पंडित जी नौका में धूर उडाते हैं। सो कम हो सकता है। भूषण को दूषण कर के मानने हैं।

इसका ठीक ठीक विचार आर्य लोग ही कर सकते हैं। हिन्दू विचारों का क्या ही सामर्थ्य है।'

इन दो उद्धरणों में से पहले उद्धरण से स्पष्ट है कि हमें हिन्दू नाम को कभी अपनाना नहीं चाहिये न उसका कभी प्रचार करना चाहिये और जो लोग हिन्दू नाम का प्रचार कर रहे है वे ऋषि के उद्देश्य के विपरीत कर रहे है।

दूसरे उद्धरण से स्पष्ट है कि आर्यों में व हिन्दुओं में परस्पर बुद्धि साम्य नहीं हो सकता। यदि आर्यों को हिन्दू बनाना है तो उनका विवेक नष्ट होने के बाद ही वे हिन्दू हो सकते हैं।

आर्य समाज को अनेक स्वार्थी तत्व अपना शिकार बनाने का प्रयत्न करते हैं। और उस से आर्य समाज का क्षेत्र सकुचित होता जाता है। और उन्नति रुक जाती है। यह प्रहार राजनैतिक साम्प्रदायिकादियों द्वारा तथा जातीय सम्प्रदायवादियों द्वारा होता रहता है। आर्य समाज को इस से बचने बचाने का प्रयत्न करना चाहिये। आज हम देखते हैं कि आर्य समाज की कुछ शक्ति जिस में देश प्रेम की भावना अधिक थी उन में से कुछ आर्य से हिन्दुस्तानी हो गये। और जिन में जातीय साम्प्रदायिकता का जोश उफान ले रहा था। वे आय से हिन्दू बन गये। देश के इन दोनों राजनैतिक व जातीय साम्प्रदायिक दलो मे जो अल्प मत मे है वे प्रयत्न यह करते हैं जो सस्थाएं राजनीति से तथा साम्प्रदाकिता से पृथक है उन्हे अपनी लपेट में लेकर अपना बल बढाया जावे। ऐसे व्यक्ति आर्य समाज में आकर अपना मतलब बनाना चाहते हैं। और आय समाज को अपनी ओर आकर्षित करने के लिये नाना प्रकार से उस पर आधिपत्य करने के प्रयत्न करते हैं। जिस से आर्य समाज का मुख्य उद्देश्य एक तरफ पड़ा रहा जाता है और आर्य समाज नाम मात्र के लिये ही रहा जाती है। यही कारण है कि आज आर्य समाज की वास्तविक उन्नति रुक गई। आज आर्य समाज पूर्णत. हिन्दुओं के कब्जे में है मूर्ति पूजा करने वाला जन्मानुसार जाति-पाति मानने वाला पौराणिक रीति से विवाह करने वाला हिन्दुओं में आर्य समाज का आत्मसात कर देने वाला व्यक्ति केवल चार आना दे कर भी आर्य समाज का सदस्य रह सकता है। और गोपीवल्लभ, राधाचरण, फेरू लाल आदि अवैदिक मंतव्य द्योतक नामों के साथ तथा मुत्सद्दी लाल, कबूलसिंह, ख्यालीराम, विलायती राम, बख्तावर सिंह गुलजारी लाल खुशहाल चन्द आदि खिचड़ी नाम से भी रह सकता है। इन सब के विपरीत बातों के साथ इन सब के लिये आर्य समाज का द्वार इन हिन्दू आर्यों ने खोल रखा है परन्तु यदि कोई उमरावां नाम से आय समाज में प्रवेश पाना चाहे और वह मूर्ति पूजा न करता हो हिन्दू अन्धविश्वासों को न मानता हो और वैदिक धर्म के प्रति उसकी रुचि जागृत हो और इन सब से अधिक वह वेदिक धर्म पर आचरण करता हो तो उसका रास्ता बन्द है। वह आर्य समाज में आवे तो जब तक पूरा आर्य न हो जावे तब तक बिना शुद्धि और नाम परिवर्त्तन किये नहीं आ सकता।

आर्य समाज जो संसार का तथा कृण्वंतो विश्व मार्य्यम् का झंडा लेकर चला था उसका द्वार सम्प्रदायवादियों ने अन्यों के लिये बन्द कर दिया और आर्य समाज की विशालता को अपनी क्षुद्र सीमा में बन्द कर दिया।

आर्य जनों के लिये अपनी स्थिति सुधारने के लिये इतना बहुत पर्याप्त है आर्य समाज का कार्य तो विशुद्ध आर्यों सेही चलेगा। सम्प्रदायवादी तो उसको नष्ट कर रहे हैं। इन से सचेत रहना चाहिये।

कहने का मतलब है कि संसर्ग से इस प्रकार की जाली रचनाओं के कारण कार्य जाति हिन्दू हो गई।

इसी प्रकार पृ ४७७ पर निम्न है।

.. इस प्रकार से राज्य और ऐश्वर्य को खो कर ये सुचे हुए अनार्य अपने को हिन्दू कहने लगे। और

(शेष पृष्ठ ३ पर)

आर्य समाज पुरानी मंडी जम्मू की देवियों और आर्य बन्धुओं द्वारा सभा को वेद प्रचारार्थ नकद व वचन रूप में सहयोग

वेद प्रचार की भिक्षा के लिये मैं पुरानी मंडी जम्मू समाज में हाजिर हुआ। समाज के नर नारियों ने मेरी प्रार्थना स्वीकार करते हुये जो परम पुनीत वेद प्रचारार्थ सहयोग दिया है, उस के लिये मैं इन सब का हृदय से आभारी हूं। विशेषत श्रीमान् पं. हरिश्चद्र जी शास्त्री, बा. कृष्ण लाल जी प्रधान समाज, हंसराज जी तनेजा, कविराज विष्णु गुप्त जी बहिन जनक जी, माता चन्दन देवी जी, गोपाल कृष्ण जी, आदि गण्यमान्य सज्जनों के प्रति अति आभार प्रदर्शन करता हू जिन्हा ने मेरे साथ कड़ी धप में भिक्षा के लिये भ्रमण किया।

स्त्री समाज का सदस्याओं क प्रति भी कृतज्ञता प्रकाशित करता हूं। भगवान् इन्हें मगल दर्शन कर पाये। यही प्रार्थना है।

अतिक्ति इस सूची के अन्य सदस्यों को सूची शीघ्र प्रकाशित हो जावेगी। मैंने ११ सौ रुपये के सदस्य पूरे करने की मेंने तनेजा साहिब जी प्रधान जी से प्रार्थना की है। उन्होंने स्वीकार किया है। धन्यवाद।

जून मास के प्रथम सप्ताह में मैं माडल टाउन पानीपत भिक्षा करने गया था। उन महान् आर्यों ने भी वेद प्रचारार्थ काफी सहयोग दिया। श्री. ओम प्रकाश जी गुप्त, बा. नन्दलाल जी, कालरा साहिब जी। लीला कृष्ण जी, नरेन्द्र नाथ जी कपूर, लाल चन्द जी, शामलाल जी, दीना नाथ जी, आदि बन्धुओं राम रखी जी, राज जी, विद्यावती जी, पद्मा जी, श्रीमती गुप्ता जी आदि बहिनों का भी मैं हृदय से धन्यवाद हूं।

सभी आर्य बन्धुओं को वेद प्रचारार्थ पूर्ण योग देना चाहिये। तभी संसार में सुख का सन्देश फैल जावेगा।

—खुशी राम शर्मा
अधिष्ठाता वेद प्रचार

दानी सज्जनों की सूची

श्री बूटा राम जी सेठी	१०१/-
श्रीमती जी गुप्ता	१२/-
पं. हरिश्चन्द्र जी	१२/-
कविराज विष्णु गुप्त जी	६०/-
श्रीमती शकुन्तला जी	६०/-
श्री कम चन्द जी	१२/-
श्री जितेन्द्र नाथ जी	१०/-
श्रीमती राजरानी जी	१६/-
,, चन्द्र कान्ता जी	१२/-
श्री ओम प्रकाश जी बजाज	१२/-
मास्टर सोहन लाल जी	१२/-
श्री कृष्ण लाल जी	१२/-
श्री चूनी लाल जी	१२/-
श्री मुलख राज जी	१२/-
श्रीमती सुशीला जी तुली	१२/-
श्री मगा शाह जी	१२/-
श्री मोहन लाल जी मोरयाल	१२/-
श्रीमती रीता कुमारी जी	१२/-
,, प्रेम कुमारी जी	१२/-
श्री वेद जी	१२/-
श्री केदार नाथ जी	१२/-
श्रीमती दुर्गा देवी जी	१२/-
श्री नौबत राय जी	१२/-
श्रीमती चन्दन देवी जी	१०/-
,, राज मोहिनी जी	१२/-
,, सावित्री देवी जी	१२/-
बाबा दुसहरा नाथ जी	१२/-
श्री बृज लाल जी	१२/-
श्री विश्वंभर नाथ जी	१२/-
श्रीमती कमला देवी जी	१२/-
श्री ओम प्रकाश जी खन्ना	१२/-
श्री मोहन लाल जी नारंग	१२/-
श्रीमती बंसो देवी जी	१२/-
श्री ढेरा शाह जी	२५/-
श्रीमती भगवती देवी जी	१२/-
,, रामेश्वरी देवी जी	१२/-
श्री मक्खराम जी	१०/-
श्रीमती केसरा देवी जी	२४/-
,, शान्ति देवी जी	१६/-
,, पद्मावती जी	१२/-
श्री हंसराज तनेजा	१० -
श्री राम धन जी	१०/-
श्री पिशौरी लाल जी	१०/-
श्रीमती कृष्ण देवी जी	१०/-
स्त्री समाज	४१/-
श्री दौलत राम जी	१०/-
श्री गोपाल कृष्ण जी	१२/-

शुभ विवाह

श्रीमती कृष्णा कुमारी जी धर्मपुत्री श्री. पं. हरिश्चन्द्र जी, शास्त्री का शुभ विवाह आ. स पुरानी मंडी जम्मू में १८ जून को धूम-धाम से सम्पन्न हुआ। १० वर्ष निरंतर पालन पोषण करने के बाद सुयोग्य शादी लाल जी मीरपुर निवासी से पाणी ग्रहण हुआ।

बरात का भव्य स्वागत समाज की ओर से हुआ। पं. जी ने वस्त्र, आभूषण आदि से संयुक्त कर विदा किया। जनता की भारी भीड़ में कार्य सम्पन्न और विदाई हुई।

इस पुनीत कार्य की सम्पन्नता के लिये सभी आर्य भाई बहिनों और पं. जी को सपरिवार बधाई हो। जोड़ सौभाग्य सम्पन्न हो।

—खुशी राम शर्मा

बुराइयां

(ले. श्री सत्यव्रत सिंह जी केसर-गज बहराइच)

दुरितानि परासुव, वाक्याश पर विचार

बुराइयों की क्या परिभाषा हो सकती है? मैं इस समय इस विषय अधिक कहना नहीं चाहता। इतना काफी होगा कि मनुष्य की वाह्य आन्तरिक शक्तियों का क्षय करनेवा वृत्तिया तथा आदतें बुराइयों में शामिल हैं।

जीवन का क्षेत्र अत्यन्त विस्[illegible] है। यहा मेरा मतलब मानव जी[illegible] से है। जीवन ऐसा नहीं कि [illegible] उसे समाज से अलग देख या स[illegible] सके। प्रत्येक मनुष्य की व्यक्ति[illegible] शक्ति तथा इच्छा अनिच्छा है है, परन्तु उसका मूल्यांकन [illegible] प्रकाशन समाज मे ही होता है। [illegible] सकता है कि जीवन को अन्य-जन[illegible] निरपेक्ष बनाया जा सकता हो, औ[illegible] यह भी सही है कि ऐसे प्रयो[illegible] अतिप्राचीन काल से लेकर [illegible] निरन्तर होते चले आ रहे हैं, कि[illegible] यह भी स्वीकार करना पडता है [illegible] उनका महत्त्व समाज द्वारा मा[illegible] हुआ है और इसलिए भी वह प्रय[illegible] की परम्परा चलती रही है। खै[illegible] जो बुराइयों की बात है, वह समा[illegible] तथा व्यक्ति दोनों से समान सम्ब[illegible] रखने वाली बात है। हमारी आन्त[illegible] बुराइया हमारे शरीर और मन [illegible] विपन्न एव दीन बनाती हैं औ[illegible] उन के द्वारा परिचालित हम समा[illegible] के क्षेत्र को दूषित करने लगते हैं।

यह आवश्यक नहीं है [illegible] हमारी सभी बुराइया शीघ्र [illegible] हमारे समक्ष आ जायें। अने[illegible] ऐसी बुराइया भी होती हैं, ज[illegible] सुदीर्घकाल तक वाह्य कारणों से अथ[illegible] विशेष प्रवृत्तियों के कारण दब[illegible] रहती हैं। वे अनुकूल समय पा[illegible] ही उभरती हैं। इसलिए हमे अपने कार्यों तथा अपनी मनोवृत्तियों [illegible] विषय में गम्भीरता-पूर्वक विचा[illegible] करते रहने की आवश्यकता रहती [illegible]

(शेष पृष्ठ ५ पर)

डी. ए. व ... जालन्धर का शानदार नतीजा

१७ जून जालन्धर—पंजाब यूनिवर्सिटी की श्री साईंस परीक्षा का नतीजा आज घोषित हुआ। जिस मे विनोद कंवरसिंह ८०० मे से ६४७ नम्बर लेकर पंजाब मे सैकेन्ड दर्जे पर रहा। जब कि प्रथम दर्जे पर आने वाले छात्र से केवल ३ अङ्क कम रहा।

इसी प्रकार गत वर्ष रामप्रकाश चानन ६७३ अङ्क लेकर सारे पंजाब में फस्ट रहा था।

पंजाब यूनिवर्सिटी की पहली २५ पोजीशनों में इस कालिज ने १० प्राप्त की हैं। १६७ छात्र प्रथम श्रेणी में रहे जो कि अन्य कालिजों से सर्वोत्तम हैं।

परीक्षा परिणाम ७०% रहा जबकि यूनिवर्सिटी का ४५.५ रहा। इस सफलता के लिए कालिज के प्रिंसीपल श्री B.S. अहेल जी व उनके प्राध्यापक वर्ग को आर्य जगत की ओर से बहुत २ बधाई।

—व्यवस्थापक

आर्य समाज मंडी (HP) का मई, जून का प्रचार कार्य

१७-५-६२ को मई मास का मासिक सत्सग म० ईश्वरदास जी के घर पर हुआ माता जी का गृहस्थ सुधार पर मनोहर प्रवचन हुआ।

३०-५-६२ को म० मायाधर जी के जन्म दिवस के उपलक्ष्य मे उनके घर पर यज्ञ और सत्संग हुआ।

५-६-६२ को बाबू काहनसिंह जी की माता के निधन पर उनका अन्त्येष्ठी संस्कार भ्राता केवलराम जी ने पूर्ण वैदिक रीति से करवाया आर्य समाज की ओर से इस आकस्मिक मृत्यु पर शोक प्रस्ताव पारित हुआ।   —इन्द्रसिंह मंत्री समाज

श्री आत्माराम पथ आर्यसमाज बड़ौदा का प्रस्ताव

ता १६-६-६२ के साप्ताहिक रविवार के अधिवेशन में निम्न-लिखित प्रस्ताव सर्व सम्मति से पारित हुआ।

श्री आत्माराम पथ आर्य समाज सार्वदेशिक सभा की अंतरंग सभा ने देहली मे ता० ६-६-६२ को, विधान को भंगकर गुजरात प्रांतीय आ प्र सभा को अमान्य किया उसके लिये अत्यन्त खेद प्रकट करता है।

हमे दु ख है कि सार्वदेशिक के प्रधान पू० स्वामी ध्रुवानन्द जी ने हमारी समाज के सम्बन्ध मे जो वक्तव्य दिया वह सर्वथा वस्तु स्थिति से दूर है। ऐसे जिम्मेदार व्यक्ति से जानबूझ कर किया गया यह व्यवहार अशोभनीय है।

समस्त गुजरात में हमारी समाज गत ३३ वर्षों से वैधानिक संगठन के रूप में नियमित रूप से साप्ताहिक अधिवेशन करती है। परिस्थिति वश एक रुपया चन्दा लेना कोई अवैधानिक कार्य नहीं है।

सार्वदेशिक सभा की अंतरग सभा के ८-६-६१ के प्रस्ताव के विरुद्ध जाकर बम्बई प्रदेश आ. प्र. सभा की जांच का उल्लेख भी न करना और केवल गुजरात प्रांतीय पर ही कदम उठाना कहां तक न्यायोचित है? सार्वदेशिक सभा के प्रधान जी का यह पक्षपात पूर्ण व्यवहार दु:खद है।

अनंत आर्य मंत्रिणी श्री आत्माराम पथ, आर्यसमाज बड़ौदा

एस.एस. हाई स्कूल अलावलपुर जि. जालंधर

का मैट्रिक और अष्टम श्रेणी का परिणाम गत वर्षों की तरह इस बार भी बहुत शानदार रहा। मैट्रिक और अष्टम कक्षाओं का परिणाम लगभग ६१% रहा और दोनों श्रेणियों में से एक-एक छात्र के छात्र वृत्ति प्राप्त करने की पूर्ण आशा है।

नोट—इस शानदार परीक्षा परिणाम के लिए स्कूल के मुख्या-अध्यापक जी तथा उनके अध्यापक वर्ग को आर्य जगत् की ओर से बहुत-बहुत बधाई हो।   निवेदक—बालाराम शर्मा मुख्याध्यापक

ए. ऐस. हाईस्कूल अलावलपुर

ज़िला हिसार में वेदप्रचार

आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा की ओर से पं० चन्द्र सैन जी आर्य हितैषी सोनीपत निवासी के साथ श्री ठा० दुर्गासिंह जी व पं० जयनारायण जी शर्मा हिसार जिला के ग्रामों व नगरों में धर्म प्रचार कर रहे हैं। इसके साथ ही रोहतक के ग्रामों में भी प्रचार किया है। आज कल यह मंडली बरवाला, टोहाना, जमालपुर आदि ग्रामों में प्रचार कार्य समाप्त करके डकलाना, फतेहाबाद आदि ग्रामों मे बड़े उत्साह व लगन के साथ प्रचार कर रहा है। अन्य समाज भी इस प्रचार मण्डल से लाभ उठाएं ऐसा सुनहरा अवसर हर समय हाथ

—व्यवस्थापक

आर्यसमाज माडलटाऊन पानीपत का चुनाव

प्रधान—श्री ओम प्रकाश जी गुप्ता, उपप्रधान—श्री शानूलाल जी, रायसाहब डा० आसाराम जी, मन्त्री—श्री नन्दलाल जी, उपमन्त्री—श्री आसाचन्द्र जी चक्रवर्ती, खजाची—श्री तुलसीदास जी, पुस्तकाध्यक्ष—श्री डा० मेहरचन्द्र जी व प्रिंसीपल शोभाराम जी।

—नंदलाल मन्त्री आर्य समाज

आर्य युवक समाज लेखराम नगर कादियां का निर्वाचन

प्रधान—श्री तिलकराज जी, उपप्रधान श्री रवीन्द्र नाथ व नरेन्द्रजी, मन्त्री श्री सत्यपाल सहदेव जी, उपमन्त्री—श्री अशोक कुमार जी, व करनैलसिंह जी, कोषाध्यक्ष—श्री जनक जी आर्य, पुस्तकाध्यक्ष—श्री सुरेन्द्र जी, अरुणजी व सुभाष जी।   —सत्यपाल सहदेव मंत्री आ यु सभा

डी० ए० वी० हायर सैकण्डरी स्कूल गुरदासपुर

का शानदार परीक्षा-परिणाम इस वर्ष डी० ए० वी० हायर सैकण्डरी स्कूल गुरदासपुर का मैट्रिक का परीक्षा-परिणाम स्थानीय दूसरे सभी स्कूलों से बहुत ऊंचा रहा।

यह परिणाम ७५ प्रतिशत है जबकि यूनिवर्सिटी का ५८ प्रतिशत है। इसका श्रेय श्री हैडमास्टर जी व उनके परिश्रमी, अनुभवी स्टाफ पर है।

सावल स्टाफ सैकेटरी

मुद्रक व प्रकाशक श्री संतोषराज जी मन्त्री आर्यप्रादेशिक प्रतिनिधि सभा पंजाब जालन्धर द्वारा वीर मिलाप प्रैस, मिलाप रोड़ जालन्धर से मुद्रित तथा आर्य जगत कार्यालय महात्मा हंसराज भवन निकट कचहरी जालन्धर शहर से प्रकाशित मालिक—आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा पंजाब जालन्धर

टेलीफोन नं० ३०५७ [आर्यप्रादेशिक प्रतिनिधि सभा पंजाब जालन्धर का साप्ताहिक मुखपत्र] Regd No.P.121

एक प्रति का मूल्य १३ नये पैसे | वार्षिक मूल्य ६ रुपये

वर्ष २२ अंक २७) रविवार २४ आषाढ २०१८— ८ जुलाई १९६२ दयानन्दाब्द १३८ (तार-प्रादेशिक जालन्धर

वेदसूक्तय:

अधि नो ब्रूहि शक्तिभिः

हे वीरवर ! अधिन-हम को ब्रूहि-बता उपदेश कर शक्तिभि अपने बल पराक्रम से। हे इन्द्र ! हमें भी अपनी शक्ति से शक्ति के साधनों का उपदेश देव।

त्वमीशिषे पशूनाम्

हे प्रभो ! त्वम्-आप ईशे-स्वामी हैं पशूनाम-सारे विश्व के पशुओं के-जीवमात्र के। पश्यति इति पशु - जितना भी जीव प्राणि जगत् है प्रभु सब का ईश है।

आयुषे वर्चसे नय

हे भगवन् ! इसके आयुषे-दीर्घ आयु और वर्चसे-तेज, शक्ति के लिए नय-ले चलो। इसे चिरायु वाला व वर्चस्वी बना दो। स्वास्थ्य व बल के पथ पर ले चलो।

अ थ र्व वे द से

वेदामृत

स्वस्ति पन्था मनु चरेम सूर्या चन्द्रमसाविव।
पुनर्ददताघ्नता जानता संगमेमहि ॥

ऋ० म० ५ सू० ५१ मं० १।

अर्थ—(स्वस्ति) हम कल्याण व सुख देने वाले (पन्थाम्) मार्ग पर (अनुचरेम) मिल कर चलें (सूर्या चन्द्रमसौ) सूर्य और चन्द्रमा के (इव) समान नियम मर्यादा में रहें (पुन) फिर २ (ददता) देने वाला (अघ्नता) किसी को हानि न पहुंचाने वाले (जानता) ज्ञानी परोपकारी के साथ (संगमेमहि) मिलकर चलते रहें।

भाव—जीवन का लक्ष्य क्या है? चलते रहना' चल २ रे नौजवां-रुकना तेरी शान नहीं है चलना तेरी शान। यही मानव की निष्ठा है जिसे लेकर वह चल रहा है। पर चलना कैसे है? क्या अन्धाधुन्ध आंखें बन्द करके—नहीं कदापि नहीं। कल्याणकारी मार्ग पर चलना है। जिस पथ पर चलते हुए कष्ट न हो, पतन न हो, पछतावा न हो ऐसे सीधे सरल मार्ग पर आगे बढ़ते जाना मानव जीवन का ध्रुव ध्येय माना गया है। सूर्य और चांद दूसरों को मर्यादा, परोपकार, नियम अनुशासन का पाठ निरन्तर पाठ पढ़ाते रहते हैं। दूसरों को ज्योति देते रहो अपनी है तो भी और यदि दूसरे से ली है तब भी उसे अपने पास न रखो। दूसरों को देते रहो। किसी को कष्ट न दो। मिलकर चलना सीखो, ज्ञानी जनों के साथ रहना चलना होगा। इसी से कल्याण होगा। स्वार्थ पाप तथा परमार्थ पुण्य है। हिंसा अधर्म तथा प्रेम धर्म है, अकेला चलना भय देने वाला तथा मिलकर चलना शक्तिशाली है। ये पाठ पढ़ने होंगे—सं०

ऋषिदर्शन

यन्न क्षीयते कदाचित्

जो ब्रह्म कभी भी नष्ट नहीं होता, घटता बढ़ता नहीं, जस में कभी परिवर्तन नहीं होता। सदा से अक्षर, अविनाशी, एक रस है।

चराचरं जगद् अश्नुते

वह परमेश्वर चर-चेतन और अचर-जड दोनों प्रकार के विश्व में व्यापक हो रहा है। इस सारे स्थावर जगममय ब्रह्माण्ड मे सर्वत्र व्याप रहा है। उस से शून्य, रहित कोई भी स्थान नहीं है।

सर्वस्मादधिकोत्कृष्टत्वात्

संसार के सारे चराचर पदार्थों में उत्कृष्ट, उत्तम होने से वह ब्रह्म सब से बड़ा है। ब्रह्म ही सर्वोत्तम, सर्वप्रिय और सर्वव्यापक है। न उसके समान न उत्तम।

भा ष्य भू मि का से

प्रधान—संतोषराज मंत्री सभा

सम्पादक: त्रिलोक चन्द्र शास्त्री

मन का एक और सिद्धात है कि मन में अनेक प्रकार के विचार दबे रहते हैं और अनेक प्रकार के प्रकट होते रहते हैं। 'मन' शब्द में दो अक्षर 'म' और 'न' हैं। 'म' इस प्रकार का कोठा है जिसमें अनेक प्रकार के विचार दबे रहते हैं। कोई भी ऐसा मार्ग नहीं जिससे बाहिर निकल सकें। चारों ओर से मार्ग बन्द है। किन्तु जब कोई विश्वास-पात्र मिलता है तो उस समय अपने विचार प्रकट कर दिए जाते हैं। 'म' का एक दरवाजा खुल जाता है और 'न' बन जाता है।

मन जब अस्त-व्यस्त हो तो सारा संसार ही अस्त-व्यस्त दिखाई देता है। उस व्यक्ति को जिसका मन पहले ही दुखी हो, मामूली सी बातें कही जाएं तो बुरा मनाता है। कभी-कभी तो उसके सामने सुख के साधन भी फीके लगते हैं। जैसे उपरिनिर्दिष्ट व्यक्ति को पार्टी का आनन्द नहीं आता था क्योंकि उसका मन पुत्र-वियोग के दुख से भरा था। इसीलिए दुखी मन वाले की भूख मारी जाती है।

मन कभी भी बेकार नहीं रहता। अच्छाई की ओर मन कम ही जाता है, बुराई की तरफ बहुत जल्दी जाता है। एक बार एक आदमी अपने दोस्त को रोज ही कोई न कोई बुरी बात कहा करता था। एक दिन सोचने लगा कि आज मैं कौनसी बात से दोस्त की हंसी उड़ाऊं। एक क्षण मे ही योजना बनाली। एक लम्बा सा डण्डा लेकर उसपर एक रोटी लटकाकर चल पड़ा। रास्ते मे मित्र ने कहा, 'अरे! हमे रोटी दिखाते हो, उत्तर मिला, 'मैं पहले ही सोचता था कि कुत्तों की नजर ऊपर चली जाती है।' देखिए मन बुरी बात सोचने मे कितनी शीघ्रता से योजना बनाता है। मन कभी २ उलझनमें फंस जाता है। 'नहीं' व 'हां' के चक्र में फस जाता है।

अध्यात्मवाद--

इन्द्रपुरी का यन्त्र-मन

(श्री बलदेवराज जी एम० ए० साधुआश्रम होश्यारपुर)

(गतांक से आगे)

मन का सिद्धांत है कि इसमें उत्कण्ठाएं स्वत. जागृत होती रहती हैं। जैसे कोई मच से भाषण दे रहा हो तो श्रोताओं के मन में उत्कण्ठा रहती है कि पता नहीं इसके आगे वक्ता क्या बोलेगा। जब किसी सुहृदका पत्र मिलता है तो एक दम उत्कण्ठा होती है कि पता नहीं इसमें क्या लिखा होगा। सिनेमा के शौकीन तो भलीभांति जानते हैं कि खेल देखते हुए उत्कण्ठित होते हैं कि देखिए इसके आगे क्या होना है। इसी तरह मन में दूसरों का भेद जानने की उत्कण्ठा रहती है। एक व्यक्ति दूसरे के कान में कुछ कहे तो उत्कण्ठा होगी पता नहीं उसके कान में क्या कहा गया है।

मन सदा अपने अनुकूल पदार्थों की ओर आकर्षित होता है। उन्हीं मे रम जाता है। जिनकी रुचि संस्कृत में नहीं होती। उनके सामने कोई मित्र सस्कृत का श्लोक पढे। तो वे कह देंगे 'क्या फ्रांसीसी बोल रहे हो' किन्तु सस्कृत के अनुरागी तो बड़े प्रेम से श्लोक सुनते हैं क्योंकि उनकी रुचि उस ओर रहती है। कइयों की रुचि सिनेमा के प्रति बहुत रहती है। वे सिनेमा में काम करने वाले अभिनेता व अभिनेत्रियों के नाम आसानी से स्मरण कर लेते हैं जबकि महापुरुषों के नाम स्मरण नहीं रख सकते।

कालिदास के शब्दों में मन का बहुत सुन्दर सिद्धात है कि 'मनोरथानामगतिर्न विद्यते' अर्थात् मन मे अनेक इच्छाएं रहती हैं। जब भोजन, निवास व वस्त्र की जरूरत पूरी हो जाती है तो आदमी सोचता है कि अब मैं बढ़िया कोठी बनाऊं, रेडियो खरीदूं, कार खरीदूं। इस तरह जरूरते पूरी ही नहीं होतीं। इसीलिए तो लोग बड़े प्रेम से गाते हैं—

'आशा बन्दे दीवा,
हुंदिया नहीं पूरिया।
यत्न बथेरा करदा,
फिरभी रहंदिया अधूरियां।

किन्तु एक लक्ष्य बनाया जाए तो एक विशेष इच्छा पूरी हो सकती है। जैसे किसी ने निश्चय किया हो कि मैंने M A. पास करनी है। परिश्रम से इस प्रकार का लक्ष्य पूरा हो सकता है।

इस प्रकार मनोविज्ञान के जिज्ञासु मन का और भी विश्लेषण करें तो मन के सम्बन्ध में अनेक सिद्धात निकाले जा सकते हैं। मैं अब सक्षेप से मनोविकार के सबध में भी एक-दो बातें लिखना उचित समझता हू। शारीरिक रोगों की तरह अनेक मनोव्याधियां भी हैं। जैसे कोढ़ आदि के लोगों से लोग घृणा करते हैं। जहा तक कि उसे रहने के लिए कोई किराए पर भी कमरा देने को तैयार नहीं होता। इसलिए मन को रोकने से पूर्व मनोविकार के कारणों को जानना अत्यावश्यक है।

मनोविकार का सब से प्रमुख कारण है कि तामस अन्न को खाना। प्राय सुना जाता है कि स्त्रियों का मन पुरुषों से ज्यादा चंचल होता है। इसका मेरे विचार में यही कारण है कि स्त्रिया चटपटी चीजें ज्यादा खाती हैं। इसीलिए तो कहा गया है कि 'जैसा खाओगे अन्न, वैसा बनेगा मन।'

मन को अगर किसी प्रकार का काम न दिया जाए तो बुरी बातें सोचता है। इसलिए रात को सोते समय विश्राम के समय मन में अनेक प्रकार की बुरी भावनाएं आती हैं। जब आदमी अपने काम में मग्न रहता है उस समय बुरे विचार कम ही आते हैं।

संस्कारों का भी मन पर प्रभाव पड़ता है। माता-पिता के विचारों व कर्मों का प्रभाव सन्तान पर अवश्य ही पड़ता है। जेसे कहा जाता है कि एक स्त्री ने किसी का जेवर उठाया। उस समय वह गर्भवती थी। उसका लड़का स्कूल में सहपाठियों की तख्तियां चुराना सीख गया। क्योंकि उसपर माता के संस्कार का असर पड़ा हुआ था।

कुसंगति का मन पर बहुत बुरा असर पड़ता है। बुरों की सगति में बैठने से आदमी अप-शब्द सुनता है, बुरी आदतें सीखता है और बुरे शब्द बोलता है। इन सबका मन पर प्रभाव पड़ता है। इसलिए तो वेद में आता है 'भद्रं कर्णेभि शृणुयाम।'

विचारों का मन पर असर पड़े बिना नहीं रह सकता। जिसके दूषित विचार है, मन भी दूषित बनेगा। जैसे कि एक बार गुरु व चेला सैर गए तो चेले के मन में स्त्रियों के प्रति आकर्षण की भावना पैदा हो गई। गुरु जी को कहने लगा मैं 'विवाह करवाना चाहता हू।' गुरु जी न माने। सारा दिन व रात भी सोने तक चेला विवाह के सम्बन्ध में ही सोचता रहा। कुए के पास उसकी चारपाई थी। सोचते २ नींद आ गई। स्वप्न में उसकी पत्नी उसकी चारपाई पर आ जाती है। और कहती है 'अरे थोड़ा परे हटो।' जब वह परे हटा तो कुएं के बीच जाकर गिरा। देखा। दूषित विचारों का मन पर कितनी जल्दी असर पड़ा।

(क्रमशः)

सम्पादकीय—

आर्य जगत्

वर्ष २२|रविवार २४ आषाढ़ २०१८, ८ जुलाई १९६२|अंक २७

धर्म और धन

व्यक्ति और समाज के लिए इन दोनों की आवश्यकता है। जब से मानवजाति की उत्पत्ति हुई है और जब तक जीवन चक्र चलता है— दोनों का उपयोग माना गया है। अन्तर केवल यह है कि इन दोनों तत्वों का स्थान जुदा २ है। धर्म का अपना अलग स्थान है तथा धन अपनी अलग सत्ता रखता है। जीवन के विकास, राष्ट्र की समुन्नति, परिवार की प्रगति के लिए दोनों का प्रयोग नितान्त आवश्यक है। इन में जो तत्व भी कम हो जाता है, तो उस का परिणाम यह होता है कि सारे समाज का स्तर गिरने लग जाता है। धन तो धन कहा ही जाता है, धर्म को भी धन के नाम से पुकारा गया है। जब सारे नर नारी धर्म और धन को अपने २ स्थान व स्तर पर रख कर इस से लाभ उठाते हैं तब सारा जीवन धर्ममय एवं धनमय बन जाता है। उस समय कहीं पर भी अनाचार, अत्याचार का नाम भी नहीं सुनाई देता।

परन्तु जब धर्म के तत्व को ओझल कर के केवल धन की पूजा आरम्भ हो जाती है, सारा जीवन केवल [illegible] बन जाता है, धर्म का अंकुश [illegible] जाता है तो उस समय नायक, सेना के बिना राष्ट्र की जो [illegible] होती है, [illegible] के बिना [illegible] [illegible] के बिना जो [illegible] का होता [illegible] अंकुश के बिना जो [illegible] हाथी की होती है, वही अवस्था सारे समाज की हो जाती है। वहां पशुपन खुल खेलता है— इसी लिए कहा था—धर्मो धारयते प्रजा धर्म सारी प्रजा को धारण करता है, वश में रखता है जहां धर्म को मार दिया जाता है वहां सारे सद्गुणों की हत्या हो जाती है। सारे अच्छे २ गुण, सत्य धर्म हीन स्थान को छोड़ कर चले जाते हैं। यही कारण है कि धर्म को महाधन कहा है और धर्मात्मा को महान धनवान् माना गया है। धर्मधनी ऋषियों का स्थान इसी लिए आर्य भारतीय सभ्यता में सब से ऊंचा है। धर्महीन जीवन पशुजीवन तथा धर्मशून्य समाज पशुवत् है। महात्मा चाणक्य ने कहा था—सुखस्य मूलं धर्म सुख का मूल धर्म है। जीवन के चारों प्रसाद तत्वोंमें, धर्म अर्थ काम मोक्ष में धर्म का स्थान सब से प्रथम है। शेष इस के आश्रय हैं। धर्म के अनुकूल धन, धन के अनुकूल काम और फिर मोक्ष है। भारत में धर्म के प्रति बड़ी श्रद्धा थी—किसी भी मूल्य पर धर्म का परित्याग नहीं करते थे। धर्मप्रिय राम ने राज्य तो छोड़ दिया पर धर्म न छोड़ा। युधिष्ठिर को तो कहा ही धर्मपुत्र जाता है। महाभारत में आता है कि तनिक भी धर्म का पालन भारी [illegible] देता है। धर्म का पतन जीवन में सब से अधिक पतन माना गया है। रावण को इसी लिए राक्षस कहा जाता है कि वह धर्म से गिर कर [illegible] बन गया था। पुरातन युग धर्मयुग था।

किन्तु आज ? धर्म का स्थान धन ने ले रखा है। अर्थ बुरा नहीं परन्तु धर्म हीन धन गिरा देता है। आज धर्म की पूजा समाप्त हो कर धन पूजा चल पड़ी है। धन को बहुत ऊंचा स्थान मिल गया है। धर्म के प्रति अनास्था है। धन पर धर्म का अंकुश समाप्त होता जा रहा है। वह धन आवारा बेलगाम घोड़े, बिना महावत हाथी के समान तथा बिना ब्रेक मोटर की नाई क्या २ उत्पात मचा रहा है। धर्म से युक्त धन सब के लिए वरदान तथा धर्म हीन अर्थ जीवन के लिए अभिशाप बन जाता है। परिणाम सामने आता जा रहा है। जीवन की सारी लज्जा, मर्यादा, आचार तथा नम्रता भागती जा रही है नंगापन खुल खेलने लगा है। धन की आड़ ले कर समाज के सारे दोष छिप गये हैं। ऐसी अवस्था में यह युग दुःखागार बन गया है। धर्म के ऊपर अब धन का अंकुश है। इस समय धर्म के अनुरूप धन नहीं अपितु धन के अनुसार धर्म बनाया व चलाया जा रहा है। धन की सत्ता अपना चक्र तेजी से चला रही है। आज के युग में धर्मपुत्रों की पूजा न हो कर धन पुत्रों की अर्चना, वन्दना जारी है। सारा चक्र ही विपरीत हो गया है। जीवन में इसी कारण अशान्ति है, उत्पात है, विकनाश की ज्वाला जलतीहै, दानवता दनदनाती है धर्म पर धन का अधिकार है। धन जो चाहता है करवाता है, बुलवाता है, लिखवाता सुनवाता है। धर्म मौन है। जब तक ऐसी अवस्था रहेगी-विश्वशान्ति न होगी। अत्याचार दूर न होगा। यह सारा रोना धोना नहीं बन्द होने का। इस स्थिति को बदलना होगा। धर्म को अपना स्थान देना होगा और धन को अपना। धन पर धर्म का अंकुश सदा रखना होगा। मूल को मूल के स्थान पर रखने से ही वृक्ष पर पत्र और फूल आवेंगे—अन्यथा सारा वृक्ष धूल में मिल जायगा। आर्यो ! इस की विपरीत अवस्था को बदलने लिए तैयार रहो। यतो धर्म जय —जहां धर्म है वहां निश्चित है, चाहे देर से ही होगी अवश्य। सारे अर्थयुग धर्मयुग में बदल दो। तभी [illegible] का कल्याण है—त्रिलोक चन्द्र

जगत् का नारीस्तम्भ

आर्य जगत्, सभा के मुख में जहां मान्य विद्वानों के [illegible] पूर्ण लेख कविताएं प्रकाशित रहती हैं वहां पर विदुषी बहिनें उत्तम विचार भी समय २ पाठकों को प्रसाद के रूप में [illegible] होते रहते हैं। उन में मान्या बहिन सुशीला एम. ए. नर वाना, बहिन अरुण प्रभाकर टोहाना, बहिन सन्तोष शास्त्री मान्या प्रिंसिपल आनन्द जी, बहिन जनक कुमारी एम. ए. जम्मू, बहिन सत्या जी, सीता जी रणवीर सिंह पुरा जम्मू आदि कई विदुषी बहिनें हैं जिन की अमूल्य कृतियों से आर्य जगत् प्रेमी पाठक लाभ उठाते हैं। अब निश्चय है कि नारी स्तम्भ जारी किया जाये जिस में मान्या बहिनों उच्च विचारों का प्रति सप्ताह [illegible] एक सप्ताह युवकों के सुन्दर लेखों तथा एक सप्ताह विदुषी बहिनों के उच्च विचारों का प्रसाद मिलता रहे। इस के लिए जम्मू की विदुषी मान्या बहिन जनक कुमारी एम. ए. आचार्या आर्य कन्या हायर सैकंडरी स्कूल पुरानी मण्डी जम्मू से प्रार्थना की है कि वह समय दे कर इस कार्य को सम्भालें। प्रसन्नता है कि वह इस कार्य को सम्भाल रही हैं। स्वयं [illegible] बहुत सुलझी हुई बोलने वाली, लिखने वाली, कवयित्री हैं। बड़ा लाभ होगा। सब के उत्तम विचार पढ़ने को मिलेंगे।

(शेष पृष्ठ ४ पर)

संघर्ष व संग्राम

(ले० श्री कल्याण स्वरूप जी गुप्त बी. ए.)

भारत एक शान्तिप्रिय देश है महात्मा बुद्ध महावीर तथा [महात्]मा गान्धी प्रभृति सुधारकों व [दा]र्शनिकों ने प्राणीमात्र से प्रेम [कर]ना तथा किसी के मन को न [दुखा]ने का उपदेश दिया, अहिंसा [...]का को परम धर्म बतलाया। [इस]का यह अर्थ नहीं है कि हम [संघर्ष] व संग्राम के लिए अपने मन [में ए]क प्रकार की घृणा बिठालें और [अप]ने आप को संघर्ष व संग्राम से [दूर] रखने का प्रयत्न करें। संघर्ष से [भाग]ना अकर्मण्यता है पाप है। [संग्रा]म जब सिर पर आ पड़े तो उस [से] भी जी चुराना कायरता है, धर्म [व] नीति दोनों के विरुद्ध है।

संघर्ष प्राणिमात्र के जीवन का [एक] अनिवार्य अंग है। पशु पक्षी [त]था अन्य कीट पतंग को अपनी [दैनि]क आवश्यकताओं की पूर्ति के [लि]ए नित्य निरन्तर संघर्ष करना [पड़]ता है। मनुष्य को न केवल [अ]पनी दैनिक आवश्यकताओं की [पूर्ति]यों के लिए बल्कि अपनी वैय[क्ति]क सामाजिक व राष्ट्रीय उन्नति [के] लिए सदा प्रयत्न शील रहना [प]ड़ता है और रहना चाहिए। संघर्ष [प्र]कृति का नियम है। यह प्रतिक्षण [च]लता है और चलना चाहिए। इस [के] चलते रहने से ही मनुष्य अपने [बल] को बढ़ा सकता है, उन्नति कर [स]कता है। जो व्यक्ति व समाज [इसे] छोड़ बैठते हैं वह नीचे गिर [जा]ते हैं। इस दुनियां में कमजोर [के] लिए कोई स्थान नहीं है। बड़ी मछलियां छोटी मछलियों को सदा [से] खाती चली आई हैं। निर्बल व [बल]वान के रहम पर ही जीवित रह सकता है। इसी आधार को लेकर हमारे पूर्वजों ने वर्ण व्यवस्था का सूत्रपात किया था। ब्राह्मण, क्षत्रिय व वैश्य क्रमशः असत्य, अन्याय व अभाव को दूर करने का व्रत लिया करते थे और आयु भर इन से संघर्ष करते थे।

जिन महात्माओं ने अहिंसा अर्थात् किसी के मन को न दुखाने का उपदेश दिया उन्होंने क्या सारी आयु संघर्ष में नहीं व्यतीत की। क्या उनके संघर्ष मय जीवन से किसी का मन नहीं दुखा। अवश्य दुखा और बहुत दुखा। क्या बिना किसी का मन दुखे ही महात्मा ईसा मसीह को फांसी के तख्ते पर चढ़ना पड़ा? क्या बिना किसी का मन दुःखे ही स्वामी दयानन्द को विष का प्याला दिया गया? क्या किसीका मन दुखे बिना ही महात्मा गांधी को गोली का शिकार बना दिया गया? इन महात्माओं ने एक का नहीं, हजारों लाखों व्यक्तियों का मन दुखाया। उनके निहित स्वार्थों पर चोट करके उनकी आजीविका को नष्ट किया।

यहां पर समझना आवश्यक है कि अहिंसा व दया इस बात में निहित नहीं है कि हम किसी का मन न दुखायें। हमें सत्य व न्याय आश्रय लेना चाहिए। असत्य व अन्याय से किसी प्रकार का सम-झौता नहीं करना चाहिए। असत्य व अन्याय पर आश्रित व्यक्तियों का मन तो दुःखेगा ही जब हम असत्य व अन्याय को नष्ट करने के लिए अपनी पूरी सामर्थ्य से संघर्ष करेंगे। इस संघर्ष का न करना कायरता है।

एक और विचार धारा है जिस ने भारतमें संघर्ष न करने की प्रवृत्ति को बढ़ावा दिया है। प्रभु जो करता है अच्छा करता है उसकी इच्छा के बिना पत्ता तक नहीं हिल सकता। यह धारणा नितान्त भ्रम पूर्ण है ऐसा तो नहीं कह सकते, परन्तु अनुभव के आधार पर यह कहा जा सकता है कि इस धारणा ने कई व्यक्तियों को उन्नति पर अग्रसर होने से रोक दिया है। एक मनुष्य यत्न करता है परीक्षा में अनुत्तीर्ण हो जाता है, फिर यत्न करता है और फिर अनुत्तीर्ण हो जाता है, बस वह यह समझ लेता है कि प्रभु की ऐसी ही इच्छा है कि मैं परीक्षा में पास ही न होऊं। शायद इसी में मेरे लिए कुछ भलाई हो। वह यत्न करना छोड़ देता है उसके अन्दर एक प्रकार की हीन भावना (Inferiority complex) व हारने की मनोवृत्ति (Defeatistment-ality) घर कर जाती है। दूसरी तरफ हमारे सामने ऐसे अनेक उदाहरण हैं कि कई व्यक्तियों ने उसी परीक्षा को छटे या सातवें साल में पास किया। उन्होंने हौसला नहीं हारा, अपने प्रयत्न को नहीं छोड़ा। प्रभुकी इच्छा व अपने आप पर विजय पाई।

यहां अमेरिका के सुप्रसिद्ध तत्त्वों के अन्वेषण कर्ता रेफिल सोबोनो का नाम याद आता है। उसने एक सूखी नदी की तलहटी को हीरे की खोज के लिए चुना। उसका विश्वास था कि वहां हीरे की एक बड़ी खान है। सोबोनो ने अपने दो साथियों के साथ काम प्रारम्भ कर दिया परन्तु पत्थर उखाड़ते उखाड़ते एक दिन वह निराश हो गया और बोला—मैंने अकेले ने ही इतने पत्थर उखाड़े हैं कि दस लाख होने में एक की ही कसर रहगई है। अब मैं व्यर्थ अधिक शक्ति गंवाने को तैयार नहीं। उस साथी ने व्यंग किया एक की ही कसर क्यों रखी जाये पूरे दस लाख करलो न। सोबोनो एक पत्थर और उखाड़ने को तैयार हो गया परन्तु इस शर्त पर कि एकही पत्थर उखाड़ा

(क्रमशः)

आर्यसमाज लक्ष्मण सर (अमृतसर) का १-७-६२ का प्रस्ताव

आर्यसमाज लक्ष्मण सर का यह साप्ताहिक अधिवेशन भारत सरकार की ओर अखिल भारतीय रेडियो पर बोली जाने वाली हिंदी में संस्कृत के स्वदेशी और मीठे शब्दों की मिलावट करके इसकी कीमत घटाने और समझाने में कठिन बनानेके विरुद्ध घोर मतभेद तथा रोश प्रकट करता हुआ इसका शीघ्राति शीघ्र प्रतिकार करने की मांग करता है।

अन्य च भारत की अपनी भाषा और संस्कृति सब से ऊंची और श्रेष्ठ होते हुए भी सरकार तथा जनता से हर बात में विदेशों की नकल करने की दासता पूर्ण मनोवृत्ति को त्यागने का प्रेरणा करता है।

—निवेदक: [illegible] शर्मा प्रधान

आर्यसमाज बला (करनाल) का उत्सव

६ से ८ जुलाई को धूमधाम से श्री अमरसिंहजी अध्यक्ष अंबाला, मण्डलके प्रबन्ध में सम्पन्न हो रहा है।

सभा की ओर से गण्यमान्य महानुभाव पधार रहे हैं। इस समा-रोह के लिए समाज के अधिकारियों का धन्यवाद।

खुशीराम शर्मा वेदप्रचार अधिष्ठाता

(पृष्ठ ३ का शेष)

इसी प्रकार हम चाहते हैं कि एक लेख अध्यात्म वाद पर प्रति सप्ताह हो तथा एक लेख वैदिक सिद्धान्तों पर प्रकाशित होता रहे। कुछ न कुछ बाल जगत् के लिए भी होता रहे। युवकों की प्रगति पर भी होता रहे। युवकों की प्रगति पर भी एक स्तम्भ महीने में कम से दो बार हुआ करे। एकाध उत्तम गीत या कविता भी दी जाया करे। सभा के प्रगति मय समाचार भी होते रहें। इस प्रकार सभा के पत्र को अधिक से अधिक सुन्दर तथा उपयोगी बनाने की ओर पूर्ण ध्यान है। यह आर्य जगत् आप का ही है। हम तो केवल मात्र सिपाही हैं। हमें समय २ पर अपने कृपा-पूर्ण सुझाव भी देते रहें। आपकी कृतियों, आशीर्वाद, सहयोग तथा पथ प्रदर्शन से भी कृतार्थ करते रहें। आप का ही है, इसे अपना बनायें [illegible]

क्या आज धर्म की आवश्यकता है ?

(ले०—श्रीओम प्रकाश जी नारंग एम. ए, डी ए वी. कालेज जालधर)

आज के युग में राजनीति का बोलबाला है और धर्म का यदि मुंह काला नहीं तो कम से कम सिर नीचा जरूर है। बहुत समय नहीं गुजरा कि धर्म का सिक्का संसार में चलता था। धार्मिक नेताओं का न केवल सम्मान ही होता था बल्कि उनके कहे पर भी फूल चढ़ाए जाते थे। परन्तु आज धर्म को घटिया दर्जे का शहरी बना कर रख दिया गया है। आज इसकी चहार दिवारी में छेद कर के इस पर तरह २ के आरोप लगाए जा रहे हैं। आज से लगभग चालीस वर्ष पूर्व अकबर इलाहाबादी ने धर्म के प्रति लोगों की अरुचि देख कर यह शेर कहा था।

रकीबों ने रपट लिखाई है जा २ के थाने में, कि अकबर नाम लेता है, खुदा का इस जमाने में।

उस समय तो शायद हालत इतनी खराब न थी परन्तु आज के जमाने में धर्म की बेबसी देखकर अकबर की भविष्य वाणी याद आ जाती है। धर्म के नाम पर आज के बड़े २ विचारक निम्नलिखित पॉच बड़े आरोप लगाते हैं

१. धर्म लड़ाई झगड़े और फसाद की जड़ है। इसके नाम पर बड़े २ युद्ध हुए हैं जिन में लाखों लोगों की जानें गई, करोड़ों का माल असबाब लुटा और नष्ट हुआ स्त्रियों का सतीत्व भंग हुआ और अशान्ति तथा अराजकता फैली। फलस्तीन की सलीबी जंगें, योरुप का सौ वर्षीय युद्ध और इस प्रकार की बीसियों ही लड़ाईयां इस बात के ऐतिहासिक प्रमाण हैं। दूर क्यों जाए, भारत का ताजा विभाजन और उसके भयानक परिणाम भी तो आखिर धर्म के परिणाम हैं।

धर्म इलाईंस का शत्रु है और बुद्धि से कोसों दूर भागता है। इसके हाथ वैज्ञानिकों के खून से रंगे हुए हैं। यह एक ऐतिहासिक सच्चाई है कि इटली के फिलासफर ग्लेलयू ने जब धरती को गोल बताया तो ईसाईयत के धार्मिक पोप इसके विरुद्ध लठ ले कर खड़े हो गए। उन्होंने इसे ईसाई धर्म पर सीधी चोट बताया और ग्लेलयू के विरुद्ध जहाद खड़ा कर दिया। उसके फलस्वरूप ग्लेलयू को फांसी पर लटकाया गया। तत्पश्चात कोपर निक्कस को भी जमीन की गोलाई की घोषणा करने के अपराध में देश निकाला दिया गया। चिरकाल तक योरुप के भिन्न २ देशों में ऐसे अत्याचार होते रहे और बहुत से वैज्ञानिकों को नई २ खोजें और आविष्कार करने पर तरह २ के कष्ट दिए गए। उदाहरणों से यह सिद्ध होता है कि धर्म का रूढ़िवाद विज्ञान के प्रगतिवाद का विरोधी है।

३. वर्तमान युग के सर्वश्रेष्ठ मानव प० जवाहरलाल जी के शब्दों में धर्म संकीर्णता और भ्रमजाल का दूसरा नाम है।

साम्यवाद जन्मदाता कारल मार्कस जिसके सिद्धान्तों का प्रयोग रूस में भली भान्ति सफल हुआ और जिस के झन्डे तले आज आधी दुनिया खड़ी है धर्म का सब से बड़ा शत्रु माना जाता है। मार्कस लिखता है, "*Rlegion is opcum of the masses.*" अर्थात यह अफीम है जो पूंजीपति गरीब जनता को खिला कर उनके गाढ़े पसीने की कमाई पर हाथ साफ करता है। गरीब मजदूर सुबह से ले कर शाम तक जी तोड़ कर मेहनत करता है, परन्तु इसका फल पूंजीपति खाता है। धर्म रूपी अफीम के नशे में चूर गरीब खून के आंसू रोकर भी अपने ही भाग्य को कोसता है। दूसरे शब्दों में "घर वाले का माल उसकी आंखों के सामने गोल होता है मगर धन के नशे में मदमस्त घर वाला चोर को तो अपना अंगरक्षक समझता है और चोरी को कर्म-फल कह कर अपने दुखी दिल को ढारस देता है।

५ धर्म जीवन की मूलभूत समस्याओं से हमारा ध्यान हटा कर किसी काल्पनिक परलोक की की ओर लगा देता है। रोटी, कपड़ा, मकान, दवाई तथा जीवन की अन्य अवश्यकतायें जो हर मनुष्य के साथ लगी है समाधान मांगती है। परन्तु धर्म के ठेकेदार कहते है कि पेट की चिन्ता छोड़ कर आत्मा और परलोक की चिन्ता करो। शायद वह नहीं सोचते कि जब बांस ही न रहेगा तो बांसुरी किस से बनेगी।

उससे पूर्व कि उन आरोपों का क्रमश. उत्तर दिया जाए पाठकों का ध्यान तस्वीर की दूसरी ओर दिलाना चाहता हूँ। आज से सौ पचास वर्ष से पूर्व जब लोग धर्म में श्रद्धा रखते थे तो वे ज्यादा सच्चे ईमानदार, नेक और विश्वास-पात्र थे। उन दिनों लोग जबानी वायदों पर फूल चढ़ाते थे और आज हम लोग लिखी हुई रजिस्ट्रियों से भी मुकर जाते हैं।' इक बगाना 'नानका इस गाए उस सूर' तब की बात है और 'इक बगाना नाकका दानिया बांगु चब' अब की बात है। यह तो रही धर्मपरायण और धर्मविमुख युगों में आचार और चरित्र के भेद की बात अब जरा सोचें कि धर्म है क्या ? पतञ्जली मुनि योग दर्शन में लिखते हैं।

"यतो अभ्युदय निश्रेय सिद्ध स धर्म:

अर्थात् धर्म जीवन निर्वाह का सुन्दर ढंग है जिस से यह लोक और परलोक सुधर जाते हैं। महर्षि पतंजली की युक्ति धर्म पर लगाए गए पांचवें आरोप का सीधा उत्तर है। आलोचक कहता है कि धर्म हमें इस जीवन से उदासीन कर देता है परन्तु शास्त्र कहता है कि धर्म परलोक से पहले इस लोक की चिंता सिखाता है।

तस्वीर के दोनों पक्षों को देख कर घड़ी भर तो मनुष्य भुलभलैया में फंस जाता है परन्तु ज़रा गहरा विचार करने से पता चलता है कि वास्तव में धर्म के साथ घोर अन्याय किया है। सच तो यह है कि धर्म बेचारा मुफ्त में बदनाम है और (*Politics*) इसके नाम पर गुलछर्रे उड़ा रहा है। कट्टे और बन्दर की कहानी से यह सुगमता से समझी जा सकती है। कहते है कि एक मालिक ने एक कट्टा और बन्दर पाल रखे थे। मालिक काम पर जाने से पहले दाल रोटो बना कर रसोई में रख जाता था। एक दिन बन्दर ने देख लिया। उसने दाल और रोटियां उतार लीं और थोड़ी सी दाल बचा कर कट्टे के मुंह पर मल दी। दोपहर को जब वह रोटी खाने आया तो देखता है कि सब कुछ गायब है। कट्टे के मुंह पर लगी हुई दाल की गवाही पर विश्वास करके उसने कट्टे को खूब पीटा। बेचारा बेजुबान दुखी तो बहुत हुआ परन्तु मुंह पर लगे हुए ताले के कारण अपनी सफाई न दे सका। यह सिलसिला कई दिन चलता रहा। अर्थात बन्दर मौज उड़ाता रहा और कट्टा मार खाता रहा। एक दिन मालिक ने चोर पकड़ने की ठानी। रोटियां और दाल रख कर वह किवाड़ की ओट में छिप गया और बन्दर का तमाशा अपनी आंखों से देखा। (क्रमशः)

धनौंदा जिला महेन्द्रगढ़ में प्रभावशाली शास्त्रार्थ

आर्यसमाज की अपूर्व विजय तथा पौराणिकों की पराजय

आर्य समाज धनौंदा जिला महेन्द्रगढ़ का प्रथम वार्षिकोत्सव पंचायत स्कूल में बड़ी धूमधाम से मनाया गया। आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब की ओर से शास्त्रार्थों और उत्सव की जो तिथियां निश्चित की गईं, वह स्वीकार कर ली गईं, जिस से २२ जून से २४ जून ६२ पंजाब में और किसी स्थान पर उत्सव न होने के कारण सभा का योग्य स्टाफ इन शास्त्रार्थों में पहुंचा। सभाकी ओर से पण्डित शान्तिप्रकाश जी शास्त्रार्थ महारथी, अधिष्ठाता वेद प्रचार, पण्डित मुनिश्वरदेव सिद्धान्त शिरोमणि श्री पं० रामकिशोर जी वैद्य, श्री पंडित रामस्वरूप जी शांत, श्री पं० मनुदेव जी, श्री पं० अर्जुनदेव जी, श्री पं० शिवनारायण जी श्री स्वामी बेधड़क जी महाराज श्री पं० ब्रह्मानन्द जी, श्री पं० दयाचन्द, पं० मुन्शीलाल धर्मपाल मण्डली, पं० रामपत के अतिरिक्त पं०ताराचन्द की मण्डली और पं० विश्वामित्र की मण्डली तथा गुरुकुल झज्जर के प्रसिद्ध विद्वान पं० महावीर शास्त्री व्याकरणाचार्य भी पधारे हुए थे।

पौराणिकों के दिए गए शास्त्रार्थों के चेलेंज को स्वीकार किया गया था। उनकी ओर से पं० माधवाचार्य, पं० प्रेमाचार्य, पं० भीमसेन इत्यादि शास्त्रार्थी विद्वानों के अतिरिक्त कई एक मण्डलियां भी पहुंची हुई थीं। दोनों ओर के प्रचारकों को एक ही स्कूल के भवन में ठहराया गया और पंडाल भी एक ही था, जिस पर सनातनधर्मी पण्डितों ने अनुरोध किया कि आधा आधा समय दोनों ओर बोलने के लिए विभक्त किया जाए। शास्त्रार्थों के नियम निश्चित करने में भी बहुत अधिक खींचातानी हुई। अतः पंचायत को इकट्ठा प्रबन्ध करना पड़ा।

२३ जून १९६२ प्रात: ८ बजे से ११ बजे तक पहला शास्त्रार्थ आर्यसमाज के प्रसिद्ध विद्वान पण्डित मुनीश्वरदेव सिद्धान्त शिरोमणि और सनातन धर्म के नूतन शास्त्रार्थी पंडित प्रेमाचार्य के मध्य हुआ। इस शास्त्रार्थ का विषय था—क्या 'स्वामी दयानन्दकृत ग्रन्थ वेदानुकूल हैं अथवा वेद विरुद्ध हैं ?'

पंडित मुनीश्वरदेव जी की प्रबल युक्तियों और अकाट्य प्रमाणों ने पण्डित प्रेमाचार्य को प्रबल पराजय दी।

दूसरा शास्त्रार्थ पंडित शान्तिप्रकाश शास्त्रार्थमहारथी और पंडित माधवाचार्य के मध्य ३० जून मध्यान्होत्तर २ बजे से ५ बजे सायं तक होना निश्चित हुआ। इस शास्त्रार्थ का विषय था कि—

'क्या अष्टादश पुराण वेदानुकूल हैं या वेद विरुद्ध हैं ? पं० शान्तिप्रकाश ने न्याय दर्शन के अनुसार प्रतिज्ञा हेतु उदाहरण उपनय और निगमन पंचअवयवोपपत्तधारा प्रवाही संस्कृत से अपनी उत्थानिका उठाई कि अष्टादश पुराण वेद विरुद्ध हैं। मांस भक्षण, मद्यपान, द्यूत तथा दुराचार आदि दोषों की आज्ञा देने से।

बायबल और कुरान की भान्ति इसी प्रकार पुराणादि भी ऐसे ही हैं। अतः अष्टादश पुराण वेद विरुद्ध होने से अमान्य है।

इन दोनों शास्त्रार्थों का उपस्थित जनता पर बहुत बड़ा प्रभाव पड़ा। और पौराणिकों के छक्के छूट गए।

२४ जून को पुनः प्रातः ८ बजे शास्त्रार्थ शुरू हुआ पण्डित भीमसेन ने रात को २ विषयों पर शास्त्रार्थ करने का चैलेंज दिया था जो कि आर्य समाज ने स्वीकार कर लिया। एक आर्य और नमस्ते वेदों में है या नहीं? दूसरा विषय नियोग का था। इन दोनों शास्त्रार्थों के लिए दो नए मध्यस्थ चुने गए। पं० माधवाचार्य ने भी कह दिया कि अब प्रात. के समय आर्य और नमस्ते पर शास्त्रार्थ होगा। और सायंकाल के शास्त्रार्थ का विषय हम स्वयं निश्चित करेंगे। क्योंकि अब आर्यों की मांग मान ली गई है।

जब संस्कृत का परचा किसी से लिखवाकर पं० भीमसेन ने पढ़ना शुरू किया तो यह दूसरा धोखा था कि आर्य और नमस्ते पर कुछ न बोल कर स्वामी दयानन्द की जात और उनके ग्रन्थों पर कीचड़ उछालना शुरू कर दिया। तब पं० शान्ति प्रकाश ने गरजकर कहा कि मैं नियम विरुद्ध कार्यवाही कदापि सहन नहीं करूंगा। आज का विषय आर्य नमस्ते की वेदानुकूलता है। महर्षि दयानन्द सरस्वती और उनके ग्रन्थों के सम्बन्ध में कल शास्त्रार्थ हो चुका है और उसका पिष्टपेषण नियम विरुद्ध है। तब पं० माधवाचार्य ने उत्सव का इश्तिहार पढ़कर सुनाया जिस में लिखा था कि शास्त्रार्थ स्वामी दयानन्द कृत ग्रन्थों और पुराणों पर होंगे। पं० शान्तिप्रकाश ने कहा कि इन दोनों विषयों पर कल शास्त्रार्थ हो चुके हैं और रात पण्डित भीमसेन ने दो नए विषयों पर शास्त्रार्थ का चैलेंज दिया था, जो स्वीकार कर लिया गया। जिस का समर्थन आप पहले कर चुके हैं। यदि आप लोग मान लें, कि हम आर्य और नमस्ते पर शास्त्रार्थ नहीं कर सकते, तब और बात है ? एक मध्यस्थ ने कहा कि सनातनधर्मी पण्डित अपने समय में जो चाहें बोलें, और आर्यसमाज को चाहे अपने समय में बोले। [illegible] सनातनधर्मी पण्डित स्वामी दयानन्द पर बोले और आर्यसमाज नमस्ते पर बोले। यह अवस्था [illegible] अनेक थी। जो [illegible] मध्यस्थ की [illegible] को प्रकट करती थी। [illegible] महोदय को इसका शीघ्र ही अनुभव हो गया। तब पं० माधवाचार्य ने कहा कि हमें यह अधिकार हो कि हम आर्यसमाज के किस भी सिद्धांत पर चाहें शंका करें। और शाम को आर्यसमाज शंका करें। पं० शांतिप्रकाश ने उत्तर देते हुए कहा कि यह शंका समाधान नहीं है। शास्त्रार्थों में निश्चित विषयों पर निश्चित नियमों के साथ ही शास्त्रार्थ हुआ करते हैं। यदि स्वामी दयानन्द और उनके ग्रन्थों पर एक से ज्यादा शास्त्रार्थ करने का विचार है, तो इसके पश्चात जितने दिन चाहो कर लो। किन्तु अब जो विषय निश्चित हो चुका है, जब तक उसके सम्बन्ध में अपनी पराजय स्वीकार न करो, तब तक उसे बदला नहीं जा सकता।

पण्डित जी ने गर्जकर कहा कि हमारी शराफत का अनुचित लाभ न उठाओ। या तो अपने दिए चैलेंज को वापस लो अन्यथा नमस्ते और नियोग पर शास्त्रार्थ के लिए तैयार हो जाओ, जिस नियोग पर इतना शोर मचाते हो, जब आर्यसमाज उस पर शास्त्रार्थ करने को तैयार है, तो उस से क्यों घबराते हो। आज नमस्ते और नियोग पर शास्त्रार्थ होंगे। कल जोन सो विषय चाहें, हम अपना उत्सव बढ़ा कर आपके चैलेंज को भी स्वीकार करेंगे। सनातनधर्मी पण्डितों पर मुर्दनी छा गई। वे दिए हुए चैलेंज पर भी शास्त्रार्थ के लिए तैयार न हुए। और मध्यस्थों के पूछने पर नमस्ते और नियोग पर शास्त्रार्थ करने से इन्कार कर दिया। यह आर्यसमाज की [illegible] विजय थी। [illegible] जनता पर बहुत [illegible] प्रभाव पड़ा।

ब्रह्मा कुमारियों से सावधान

अपनी बहिनो बेटियो तथा बहुओ को इस मत के फंदे मे फसने से बचाओ। वरना पछताना पडेगा।

(आर्य समाज बजवाड़ा होशयार पुर के अधिकारियों से प्राप्त)

आज वैदिक सत्य-सनातन धर्म से दूर रहने के कारण जनता में अगणित अवैदिक मतमतान्तर सिर उठा रहे हैं। उन मतों में एक सर्वथा नवीनमत ब्रह्मा कुमारी मत 'ब्रह्माकुमारी ईश्वरीय विश्व विद्यालय' के नाम से प्रचलित हो गया है। इन की प्रचारिकाए (ब्रह्माकुमारिया) भोली भाली जनता तथा विशेष रूप से नारी जाति को अपने भ्रमजाल में फसाने में सलग्न हैं। पुरुष वर्ग तो अपने काम धन्धों, कर्यालयों, या दुकानो पर चले जाते हैं, घरो मे भोली भाली अनपढ़ अथवा अपने धर्म से अनभिज्ञ पढ़ी लिखी नारी जाति जो अपने घरों में रहती हैं। उन के पास जा जा कर अपने नवीन मत को देवी देवताओं का अनादि धर्म बतला कर उन्हें अपने सैंटर मे पहुचने की प्रेरणा करती हैं और ज्ञानचर्चा, ब्रह्मा के साक्षात्कार एवं मुक्ति दिलाने के बहाने अपने जाल में फसा लेती हैं। इन के जाल में फंसी नारिया अपने घरों को छोड़ छाड कर इन की शिष्याए बन जाती हैं। कुवारी कन्याए ब्रह्मचर्य के नाम पर घरबार को तिलाजलि दे देती हैं और गृहस्थी स्त्रिया ज्ञान, ध्यान की आड में अपने पतियों को छोड़ कर ब्रह्मा-कुमारी बन बैठती हैं। इस प्रकार नवयुवक (भले वे अविवाहित हों या विवाहित) भी इन के जाल में फंस जाते है। यह मत सर्वथा नवीन और अवैदिक है। इस के सिद्धान्त न तो सनातन धर्म से मेल खाते हैं और न ही आर्यसमाज से, इस मत को यदि गड़बड़ चौथ या खिचड़ी मत कह दिया जावे तो अत्युक्ति न होगी। इन के सिद्धान्त क्या हैं कहीं की ईंट कहीं का रोडा भानमती ने कुनबा जोडा। इस लिये जनता से प्रार्थना है कि वह ब्रह्मा-कुमारियों से स्वयं सावधान रहे और अपनी बहिनों, बेटियों और बहुओं को इन के जाल से बचा कर पुण्य के भागी बनें।

निवेदक—पं० दुर्गा दास जी, प्रधान
—मुलख राज आर्य मंत्री

आर्यसमाज यमुना नगर के समाचार

३-६-६२ रविवासरीय सत्संग में श्री पण्डित ज्ञान चन्द जी शास्त्री अध्यापक डी० ए० वी० हाई स्कूल कालिज अम्बाला छावनी का 'जो जागत है सो पावत है' पर बडा प्रभाव शाली व्याख्यान हुआ और उस के पश्चात् उनकी दश वर्षिया सुपुत्री प्रिय निरुपमा कुमारी का व्याख्यान महर्षि जीवन के विषय पर हुआ जो अत्यता ही प्रभाव—शाली तथा बालक बालिकाओं तथा उनके माता पिताओ के लिए भी बहुत ही प्रेरणादायक सिद्ध हुआ।

कन्या का उत्साह बढाने के लिए आर्य समाज तथा जनता की ओर सेप रितोषिक भी दिया गया।

पंजाब राज्य के शिक्षा मन्त्री जी के 'मिलाप' पत्र मे १-६-६२ को प्रकाशित सहशिक्षा विषयक निर्देश का विरोध करते हुए मन्त्री जी की ओर से एक प्रस्ताव उपस्थित किया गया, जिसको जनता ने सर्व सम्मति से पास किया।

प्रस्ताव —

'३-६-६२ रविवार के सर्व साधारण सत्संग में उपस्थित सर्व जनता का यह अधिवेशन १-६-६२ के 'मिलाप' पत्र में प्रकाशित शिक्षा मन्त्री पंजाब राज्य, के सहशिक्षा विषयक निर्देश का विरोध करती है और शिक्षा मन्त्री जी से यह प्रार्थना करती है कि भारतीय संस्कृति के विरुद्ध देश के युवक युवतियों के चरित्र को नष्ट करने वाले इस निर्देश पर पुनर्विचार करे तथा विदेशियों के कटु अनुभवों से लाभ उठाते हुए इस सहशिक्षा विषयक निर्णय को वापिस लें।

पंजाब राज्य की समस्त समाजों तथा सभाओं से प्रार्थना है कि इस राष्ट्रीय स्वास्थ्य और चरित्र विनाशक सहशिक्षा सम्बन्धि निर्देश का पूर्ण विरोध करें और सरकार से अनुरोध करें कि वे अपने निश्चय पर पुनर्विचार करें।

निवेदक—कविराज राम सिंह वैद्य

आर्य वीरों से

(ले० प्रो० उत्तमचन्द्र जी, 'शरर', आर्य कालिज पानीपत)

अब भी बात बना सकते हो
तुम चाहो तो उजड़े उपवन में वसन्त को ला सकते हो

(१)

गिरने दो यह सूखी कलियां, झड़ने दो यह पीले पत्ते
जाने दो निर्गन्ध पुष्प यह, इन की आयु के दिन बीते
आखिर सोचो, क्या इन से
उपवन मे शोभा ला सकते हो?

(२)

नव क्रान्ति से डरो न किंचित् मोह छोड दो जीर्ण शीर्ण से
देखो नेत्र खोल कर देखो नवयुग झांक रहा पीछे
बोलो इस अतिथि के 'स्वागत में क्या साज सजा सकते हो'

३

अटल नियम है जग स्रष्टा का मिटे निशा विहान मुस्कार।
नया कहा से आ सकता है, यदि पुराना भी रह जाए?
धाय धाये जलने दो गत को, तुम शव से क्या पासकते हो?

४

मत प्रवाह रोको झरनो का, इस से पानी सड़ जायेगा
कोमल किसलय फूटे गा, जब पीला पल्लव झड़ जायेगा
वर्तमान का साथ निभा कर
गत वैभव तुम पा सकते हो

५

डरों न झटकों से क्रान्ति में यह झटके आते रहते हैं
सूर्य रश्मि है सुलभ उन्हें जो तारों की मृत्यु सहते हैं
तुम तारों का मोह छोड़ कर
नव प्रभात फिर पा सकते हो
अब भी बात बना सकते हो

आर्य परिवार की ओर से बहुत बहुत बधाई

आर्य जगत साप्ताहिक पत्र के आशुकवि श्री वेद प्रकाश जी B.A. अध्यापक आर्य हाई स्कूल लधियाना ने इस वर्ष M.A. Part 1st,, हिन्दी की परीक्षा में सफलता प्राप्त की है। प्रभु इन्हें दिन दूनी रात चौगनी उन्नति दें जिस से कि आप आर्य जगत की और भी अधिक से अधिक सेवा कर सकें।

—व्यवस्थापक

रजिस्टर्ड नं० पा० १२१

सू०

भारत सरकार द्वारा

मक्खी नाश सप्ताह

भारत में मक्खियों की मुसीबत

यद्यपि 'मक्खी विहीन भारत' की कल्पना कितने ही दशाब्दों में पूरी होने की सम्भावना नहीं है, फिर भी इसके लिए हमें निरन्तर कोशिश करते रहना चाहिए। वैसे तो मक्खियों को मारने का काम बराबर होना चाहिए, लेकिन मक्खीनाशक सप्ताह प्रतिवर्ष जुलाई के पहले सप्ताह में मनाया जाता है ताकि जनता के इस बड़े शत्रु को नष्ट करने की ओर सबका ध्यान दिलाया जाए।

घरेलू मक्खी एक अत्यन्त गंदा जीव है जो बहुत से भयंकर रोग फैलता है, जैसे मोतीमरा, हैजा, आंव, तपेदिक, ऐंथ्राम्स, अतिसार पोलिया बच्चों का लकवा।

मक्खियों की गंदी आदतें

मक्खी की गंदी आदतों के विषय में कुछ जान लेना आवश्यक है। वह मल-मूत्र, लार, कूड़ा कर्कट, खाद, और गन्दगी की ओर विशेश रूप से आकर्षित होती है। इस के शरीर के बालों और चिपकने पांवों पर गंदगी आसानी से बैठ जाती है और यह खाने की जिस चीज पर बैठती है, उसे दूषित कर देती है। यह ठोस भोजन नहीं खा सकती, इसलिए इस पर उल्टी कर इसे पावों से कुचल नरम बनाती है। इस प्रकार यह ठोस भोजन को दूषित कर देता है। आमतौर पर खाते समय यह पाखाना भी कर देती है। इस प्रकार निरीह दिखने वाली इस छोटी सी मक्खी से उपद्रव के परिणाम बहुत भयंकर होते हैं।

इस पर तुर्रा यह कि मक्खियों की संख्या बहुत तेजी से बढ़ती है। एक मक्खी सौ-सौ डेढ़ सौ करके, ६०० से ६०० तक अंडे देती है। ये अंडे सफेद होते हैं और बहुत छोटे में एक इंच के बीसवें हिस्से के बराबर। ये अंडे गीले गोबर के ढेरों और सड़ते हुए कूड़ा ककट पर दिए जाते हैं। आदमी के मल में ये विशेष रूप से बढ़ते हैं।

८ से २४ घंटे के बाद अंडों में से बिना पाव के सफेद नोकदार कीड़े निकलते हैं। इन्हें डिंभ कहते हैं। पांच दिन के बाद ये डिंभ पूपा का रूप धारण कर लेते हैं और इसके तीन दिन बाद पूरी मक्खी बन जाती है। गर्मी, नमी और भोजन मिलने से पांच ही दिन में मक्खी तैयार हो जाती है, लेकिन आम तौर पर इस में ८ से २० दिन तक लग जाते हैं। चार ही दिन बाद यह नवजात अंडे देने योग्य हो जाती है। इस तरह ये मक्खिया रक्त बीज के वंश की तरह बढ़ती रहती हैं।

मक्खियों का कैसे नाश हो

मक्खियों से छुटकारा पाने के लिए दो बात जरूरी हैं, उनकी उत्पत्ति रोकना और उनसे बचाव करना। मक्खियों के अंडे गंदगी और कूड़ा कर्कट में पैदा होते और बढ़ते हैं। इसलिए सब से पहले गंदगी को रोकना चाहिए। सब प्रकार का कूड़ाकर्कट और रसोईघर की गंदगी कूड़ादानों में डालनी चाहिए। इसे कभी खुला नहीं छोड़ना चाहिए और न इधर-उधर बिखेरना चाहिए। पाखानों को साफ रखें और रहने की जगह के पास गंदगी नहीं रहनी चाहिए। ताजे गोबर को बहुत देर तक खुले नहीं पड़ा रहना चाहिए। कूड़ेदानों में जो गंदगी इकट्ठी हो जाए उसे वहां से जल्दी ही हटा देना चाहिए। संभव हो तो उसे जला दे।

रसोई और खाने की जगह से मक्खियां दूर रखने के लिए दरवाजों और खिड़कियों पर जाली लगा देनी चाहिए। भोजन ऐसी अलमारी में रखना चाहिए जिस में मक्खिया न घुस सकें। यदि इस भोजन को मक्खियों से बचाने का दृढ निश्चय कर ले, तो यह कार्य कठिन नहीं है। घड़े, सुराही, लोटे आदि को जाली के चौकोर टुकड़ों से ढक कर रखा जा सकता है। इसी प्रकार प्यालों को जब इस्तेमाल न करना हो तो तश्तरी में उलट कर रखना चाहिए। गिलास, कटोरे भी उल्टे ही रखने चाहिए। समय पर पाइरीथ्रम जैसी कीटाणुनाशक दवाओं का भी प्रयोग करना चाहिए।

मक्खियों से लड़ाई वास्तव में अनगिनत घातक बीमारियों से लड़ाई है। इस लिए हमें निश्चय करना चाहिए कि हम अपने देश में मक्खियों का नाम निशान न रहने देंगे।

डी. ए. वी. कालिज जालन्धर का शानदार नतीजा

२७ जून जालन्धर—पंजाब यूनिवर्सिटी का New 3 years Degree Coruse का नतीजा आज घोषित हुआ। श्री सोमनाथ कुकरेजा 3 years B.Sc (B.A) (Part I) में ४५० नम्बरों में से ३७५ नम्बर लेकर पंजाब में सैंकड दर्जे पर रहा।

७—पंजाब यूनिवर्सिटी की पहली ८ पोजीशनों में से ३ इस कालिज ने प्राप्त कीं। ६ छात्र प्रथम श्रेणी में रहे जो कि सब कालिजों से सर्वोत्तम है।

परीक्षा परिणाम 3-years B A में ६६ प्रतिशत और 3 years B Sc में ४५ प्रतिशत रहा जबकि यूनिवर्सिटी का ५८.५ और ३६.६ प्रतिशत रहा।

इस सफलता के लिए कालिज के प्रिंसीपल श्री B. S. बहल जी व उनके प्राध्यापक वर्ग को आर्यजगत की ओर से बहुत २ बधाई।

—व्यवस्थापक

भूल सुधार

आर्य जगत् के पाठकों से निवेदन है कि १-७-६२ के आर्य जगत पृष्ठ ७ पर जम्मू के दानी सज्जनों की सूची में "श्रीमती गुप्ता जी" प्रकाशित हो गया है उसके स्थान में जनक जी गुप्ता M A. समझें।

—व्यवस्थापक

ग्राहक महानुभाव पत्र व्यवहार तथा शुल्कादि भेजते समय अपनी ग्राहक संख्या अवश्य लिखें, ताकि उत्तर देने में आसानी रहे।

मुद्रक व प्रकाशक श्री संतोषराज जी मन्त्री आर्यप्रादेशिक प्रतिनिधि सभा पंजाब जालन्धर द्वारा वीर मिलाप प्रेस, मिलाप रोड जालन्धर से मुद्रित तथा आर्य जगत कार्यालय महात्मा हंसराज भवन निकट कचहरी जालन्धर शहर से प्रकाशित मालिक—आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा पंजाब जालन्धर

टैलीफोन न० ३०५७ [आर्यप्रादेशिक प्रतिनिधि सभा पंजाब जालन्धर का साप्ताहिक मुखपत्र] Regd No P.121

एक प्रति का मूल्य १३ नये पैसे — वार्षिक मूल्य ६ रुपये

वर्ष २२ अक २९) रविवार ७ श्रावण २०१९— २२ जुलाइ १९६२ दयानन्दाब्द १३८ (तार-प्रादेशिक जालन्धर

वेदसू क्तय:

तथा पिनष्मि मंक्रिमीन्

अपनी शक्ति से पिनष्मि—पीस देता हूँ। क्रिमीन्—रोग, मौत, बुराई अनाचार के कीडों को। रोग के कीडों तथा मानवता को खा जाने वाले दुष्टों को पीस देता हू।

दृषदा खल्वां इव

जैसे दृषदा—चक्की से खल्वान चनों इव—के समान। जैसे पत्थर की चक्की चनों को पीस कर रख देती है वैसे ही दुष्टों को भी मैं पीस डालता हूं।

क्रिमीन् वचसा जम्भयामसि

मैं इन रोग, बुराई, पाप फैलाने वाले दुष्टों को अपनी वाणी की शक्ति से ही बान्ध देता हू। उन को रोक कर बन्धन में डाल देता हूं।

अथर्व वेद से

वेदामृत

ये देवानां यज्ञिया यज्ञियानां मनोर्यजत्रा अमृता ऋतज्ञाः।
ते नो रासंतामुरुगायमद्य यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥

ऋ० म० ७ सू० ३५ म० १५

अथ—(ये) जो (देवानाम) देवों का, (यज्ञिया.) यज्ञमय, मान योग्य हैं (यज्ञियानाम्) परोपकार यज्ञ करने वालों के (मनो) मनन शील का (यजत्रा) सग करने वाले (अमृत.) अमर हैं (ऋतज्ञा·) सत्य ज्ञाता हैं। (ते) वे देव पुरुष (न) हमे (रासन्ताम्) उपदेश देंवे (उरुगायम्) बहुत कीर्ति वाला (अद्य) आज (यूयम) तुम लोग (पात) रक्षा करो (स्वस्तिभि) कल्याण वाले साधनों से (सदा न) सदा हमे।

भाव —हमें उपदेश देने वाले कैसे हों ? इस मन्त्र में उनकी बड़ी सुन्दर चर्चा है। जो लोग अपने जीवन में यज्ञ करने वाले हैं, परोपकार के लिए जिनका समय बीतता है, देव हैं, दिव्य गुणों मे भरपूर है, मनन चिन्तन करने वाले विद्वान के सगी साथी हैं। जिनका सारा जीवन ऋत मर्यादा मे चलता है, सत्य के जानने, मानने और करने वाले हैं। ऐसे दिव्य जीवन वाले देव पुरुष ही यश, कीर्ति से भरा हुआ हमें सदा उपदेश किया करें। हे देव पुरुषो! आप लोग ही सदा अपने शुभ कल्याण करने वाले प्रवचनों, साधनों तथा सन्देशों से हर प्रकार से हमारी रक्षा करें। कुपथ से हटा कर जीवन के सुपथ पर चलाते रहें। आप लोग ही हमारे नेता बनें।

ऐसे देवपुरुष जिस व्यक्ति तथा समाज के नेता, देवता और उपदेष्टा बन जाते हैं। उस देश का निस्सन्देह कल्याण हो जाता है। ऐसे देवनर को भी अग्नि कहा है। अग्ने! नय सुपथा—मुझे सुपथ से ले चलो—सं०

ऋषि दर्शन

मुख्यो देव एक:

मुख्य देव एक ही है। नाना प्रकार के जड चेतन देवता हैं, उन सब का महादेव ब्रह्म ही है। वही मुख्य है और एक है।

परमेश्वर एव उपास्य:

परमेश्वर की ही उपासना करनी चाहिए। वही ब्रह्म ही पूजन के योग्य है। वही उपास्य है। उसके सिवाय और किसी की पूजा नहीं करनी चाहिए।

नात: परं किञ्चित्

उस ब्रह्म से बढ़कर और कोई सत्ता बड़ी नहीं। वही ब्रह्म सब से महान् है, सब से ज्येष्ठ और श्रेष्ठ है। उससे पर और कोई भी न था, है और होगा।

भाष्य भूमिका

अधिष्ठाता—संतोषराज मंत्री सभा — सम्पादक: त्रिलोक चन्द्र शास्त्री

अध्यात्मवाद—लेखमाला ३

कठ उपनिषद् का सार—९वां

(श्री ज्ञान सिंह जी आर्य करोल बाग नई देहली)

गत लेख में बताया गया था कि कि उस लेख के साथ कठउपनिषद् का प्रथम अध्याय समाप्त हो गया है। वास्तव में नचिकेता के प्रमुख प्रश्न का उत्तर किया जा चुका है। वह प्रश्न यह था कि मनुष्य की मृत्यु के बाद आत्मा की क्या अवस्था होती है। क्या उसका शरीर के साथ नाश हो जाता है अथवा वह कायम रहता है। यम ने इस प्रश्न का उत्तर यह दिया कि आत्मा अजर व अमर है। अर्थात् न यह कभी पैदा होता है और न उसका कभी नाश होता है। दूसरे अध्याय में लगभग पहले अध्याय में दी गई शिक्षा की पुष्टि की गई है।

यम ने आत्मा के विषय में यह बताया है कि आत्मा शरीर छोड़ने के बाद अपने ज्ञान व कर्म के अनुसार विभिन्न योनियों में प्रवेश करता है। इन योनियों में बार-बार जन्म लेता हुआ चक्कर काटता रहता है और अपने कर्मों का फल भोगता रहता है जब तक कि वह मुक्ति प्राप्त कर जन्म मरण के बन्धन से छूट नहीं जाता योनियां दो प्रकार की होती हैं। एक का नाम कर्म योनि है दूसरी का नाम भोग योनि।

मनुष्य शरीर कर्म योनि और भोग योनि दोनो है। उसमें आत्मा अपने पहले किये हुए कर्मों को भोगता है और स्वतन्त्र रूप से कर्म करने के कारण उसे उन्नति प्राप्त करने का अवसर भी मिलता है।

मनुष्य योनि के अतिरिक्त जो योनिया हैं उन्हें भोग योनिया कहा जाता है। पशु आदि भोग योनियां हैं। शेर आदि हिंसा करते हैं परन्तु उन्हें उसका फल नहीं भोगना पडता क्योंकि वह तो बिना ज्ञान के पूर्व वृत्ति या संस्कारों के प्रभाव से ही काम करती हैं। उन में यह विवेक नहीं कि कौन सा कर्म करना है और कौन सा नहीं। गधे को भूख लगती है तो वह जहां कहीं हरी घास देखेगा मुंह मार देगा। बिना इस बात का विचार किये कि उसे ऐसा [illegible] चाहिए अथवा नहीं। अर्थात् पशुओं में विवेक शक्ति नहीं जो कि मनुष्यों में है।

मनुष्य शरीर में ज्ञान इन्द्रियों और कर्म इन्द्रियों के अतिरिक्त मन और बुद्धि से वह भले बुरे की तमीज कर सकता है। उस में विवेक शक्ति है परन्तु पशु-पक्षियों में यह ज्ञान बुद्धि नहीं। उनमें केवल स्वाभाविक ज्ञान है।

मनुष्य शरीर छोड़ने के पश्चात् जो आत्मा मुक्ति प्राप्त नहीं कर लेते या तो वे मनुष्य शरीर में ही जन्म लेते हैं और फिर भोग व कर्म में लग जाते हैं और कुछ पशु-पक्षि आदि का शरीर धारण कर अपने कर्मों का फल भोगते हैं और जो मनुष्य जीवन में बहुत ही अधम गति को पहुँच जाते हैं अर्थात् बहुत ही नीच कर्म करते हैं वे वृक्ष आदि के रूप में कैदी बनाकर रख दिए जाते हैं। इससे एक और भी बात स्पष्ट होती है कि जीवात्मा ब्रह्म से एक भिन्न शक्ति है। जीव अपने ज्ञान व कर्म के अनुसार जन्म व मरण के चक्कर काटता रहता है जब तक कि वह मुक्ति प्राप्त नहीं कर लेता परन्तु ब्रह्म जन्म मरण के बन्धन से मुक्त है।

मनुष्य शरीर आत्मा का निवास स्थान है। इस नगरी के ११ द्वार कहे गए हैं जा ये हैं। दो नेत्र, दो कान, दो नासिका, एक मुख, एक शिर का ब्रह्मरन्ध्र द्वारा, एक नाभी, एक मल व एक मूत्र स्थान वैसे परमात्मा सब व्यापक है। हर स्थान विद्यमान है। वह मनुष्य के शरीर में भी है लेकिन चूंकि मनुष्य योनि में ही आत्मा परमात्मा के दर्शन करने के योग्य होता है इसलिए मनुष्य शरीर को ब्रह्मपुरी भी कहा गया। ९।

आत्मा एक यात्री है। मुक्ति [illegible] था जन्म-मरण के चक्कर से छुटकारा पाना इसका उद्देश्य है। इस यात्रा की समाप्ति के लिए मनुष्य शरीर एक गाड़ी के समान है। यह एक साधन है इसलिए इसको स्वस्थ रखने में लापरवाही नहीं करनी चाहिए। यह शरीर सांसारिक काम करने का साधन तो है ही उसे धर्म का भी और ब्रह्म के दर्शन करने का भी साधन माना गया है। इसलिए उस की अवहेलना कदापि नहीं करनी चाहिए। परन्तु नहीं उसे साध्य जानकर सारा जीवन उसकी देख-रेख, बनावट-सजावट में व्यतीत कर देना उचित है। यदि एक मनुष्य कुछ समय के लिए किराये पर तांगा ले और बजाए इसके कि उस पर सवार हो कर यात्रा पूरी करने के लिए चल दे। वह साईस को उसका रंगोरोगन करने व घोड़ों को खिलाने पिलाने में सारा नियत समय खर्च करने की इजाजत दे दे तो तांगा वापिस करने का समय आ जाने पर उसकी क्या अवस्था होगी। क्या वह अफसोस से हाथ नहीं मलेगा कि उसने अपने गन्तव्य स्थान पर पर पहुँचने के लिए उस तांगे का उपयोग नहीं किया उसी तरह यदि हम इस मनुष्य जन्म को अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए उपयोग नहीं करते तो हमें भी इस शरीर को छोड़ते वक्त पश्चाताप ही करना होगा।

एक आर्य समाज का जलसा हो रहा था। एक भजनीक महोदय को दस मिनट गाने के लिए दिए गए परन्तु उस ने यह सारा समय सितार की किल्ली को ठीक करने में ही लगा दिया। और अभी राग आरम्भ ही नहीं किया था कि मन्त्री ने कह दिया—महाराज, आपका समय समाप्त हो गया है। और उसे बिना राग गाये ही स्टेज को छोड़ना पड़ा। हमें भी यह मनु[illegible] जन्म अच्छे कर्मों के [illegible]रूप मिला है और अपने गन्तव्य स्थान पर पहुँचने के लिए एक अवसर प्राप्त हुआ है। लेकिन यदि हम इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए कोई यत्न नहीं करते और अपने गन्तव्य स्थान की ओर चलने के लिए पग नहीं उठाते बल्कि इसके विपरीत अपने उच्च उद्देश्य की उपेक्षा करते हुए केवल खेल-कूद, ऐशोइशरत व इन्द्रियों को विषयों की प्रीति में या केवल शारीरिक आवश्यकताओं को ही पूरा करने में जीवन लगा देते हैं तो हमें भी शरीर छोड़ते वक्त कहना पड़ेगा—

फूल चुनने आए थे,
बागे अयात (जीवन) में।
दामन को खारेज़ार (काटों)
में उलझा के रह गये॥

जैसा ऊपर कहा गया है, यह जीवन एक दुर्लभ अवसर है। हम शुभ कर्म करते हुए व ब्रह्म ज्ञान को प्राप्त करते हुए अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए कुछ आगे बढ़ सकते है और इससे बेहतर जन्म का अधिकार प्राप्त कर सकते है। ईश उपनिषद् में कहा गया है कि जो मनुष्य अपनी आत्मा का हनन करता है वो ऐसी योनियों में जाता है जहां अन्धेरा ही अंधेरा होता है। आत्मा को मारने या उसके हनन करने का एक अर्थ यह है—आत्मा को गिराना या ऐसे कर्म करना जिससे आत्मा उन्नति की

(शेष पृष्ठ ७ पर)

सम्पादकीय—

आर्य जगत्

वर्ष २२] रविवार ७ श्रावण २०१८, २५ जुलाई १९६२[अंक२८

शक्ति की पूजा

परम्परा से चली आरही है। जीवन के व्यष्टि और समष्टि क्षेत्रों में इसकी आवश्यकता बनी रहती है। पापों की गणना में निर्बलता को भी शामिल किया जाता है। व्यक्ति में तो शक्ति के तीन रूप हैं—शरीर, मन और आत्मा। समाज के लिए भी इसका होना नितान्त आवश्यक है। निर्बल शरीर तो रोगों का घर बन जाता है, उसी प्रकार दुर्बल समाज भी स्थान २ पर दलित और दमित होता रहता है। आर्यसभ्यता में प्रभु को बलमसि कह कर बलं मयि धेहि की प्रार्थना की जाती है। शक्ति जीवन है। शक्तिमय व्यक्ति तथा राष्ट्र ही पनपा करते हैं। आर्यसमाज अपने जीवन में सदा ही शक्ति का पाठ पढ़ता और पढ़ाता आया है। समय समय पर सत्य एवं न्याय के लिए बलपूर्वक अपनी बात कहता आया है।

भारत की राष्ट्रभाषा हिन्दी है। उस में आज तक केन्द्र द्वारा सारे समाचारों का प्रसार होता रहा है। किन्तु सूचना प्रचार व प्रसार मन्त्री के बदलने के साथ २ भाषा की नीति ही बदल दी गई। उस में उर्दू फारसी के शब्द डालकर प्रसारित किये जा रहे हैं। कहा यह जाता है कि हिन्दी को सरल किया जा रहा है। इतने वर्षों के बाद एकदम इस विचित्र सरलीकरण के रहस्य की बात समझ नहीं आरही। क्या यह राष्ट्रभाषा के तथा जनता के साथ अन्याय नहीं है? क्या किसी अन्य देश में अपनी राष्ट्रभाषा के साथ ऐसा विचित्र व्यवहार हो सकता है? इस रहस्यमय सरलीकरण के विचित्र परिवर्तन पर सारी जनता में आश्चर्य और क्षोभ पैदा हो गया है। चारों ओर असन्तोष का तूफान उठ खड़ा हुआ है। इस को सहन नहीं किया जा सकता। इस अन्याय पर मौन रहा भी कैसे जाये? सब ओर से विरोध होने लगा है। सारी संस्थाएं बोल उठी हैं। भारी ले दे हो रही है। राष्ट्रभाषा के प्रेमी इस नीति पर बड़े चकित हैं कि यह क्या होने लगा है। यदि हिन्दी समझ नहीं आती तो क्या उर्दू फारसी के शब्द समझ में आजाते हैं? विचित्र तर्क दिया जा रहा है। आर्यसमाज तो एक जीवित जागृत संस्था है। यह तो ऐसे अवसरों पर सब से पहिले अपना विरोध प्रकट करता है। आर्यसमाज में सर्वत्र इस नीति पर भारी असन्तोष फैल गया। शिरोमणि सभा आर्य सार्वदेशिक सभा देहली की ओर से निकाली घोषणा के अनुसार सारे समाज ने १५ जुलाई को इस परिवर्तन रीति के विरुद्ध अपना दिवस भी मनाया। उस में भाषा सम्बन्धी इस परिवर्तन का विरोध करते हुए अपना मत व्यक्त किया। भारत की आर्यसमाजों ने भी इस परिवर्तन को बन्द करने को कहा। जनता का ध्यान आकर्षित किया। आर्यसमाज का सारे देश पर बड़ा प्रभाव है। उसकी आवाज में भारी शक्ति है। वह सदा से ही पथ प्रदर्शन करता चला आता है। अन्याय तथा अनीति के विरुद्ध अपना असन्तोष प्रकट करता रहता है।

हम सारे समाज से कहना चाहते हैं कि विश्व और सरकारें शक्ति का पूजन करते हैं। अपने नेता लोग भी शक्ति का प्रभाव मानते हैं। आर्यसमाज के पास प्रैस और प्लेट फार्म की भारी शक्ति है। अपना न्यायपूर्ण आंदोलन इन दोनों साधनों द्वारा जारी रखे। इस भाषा नीति के परिवर्तन को रोकने के लिए अपनी आवाज उठाता रहे। आर्यसमाज को किसी प्रकार का भी स्वार्थ नहीं, वह तो न्याय को न्याय व अन्याय को अन्याय कहने में बडा प्रसिद्ध रहा है। कई बार अन्याय के सामने मौन होने से निर्बलता प्रतीत होती है।

इस वर्ष भी

पजाब यूनिवर्सिटी की परीक्षाओं में अपनी डी० ए० वी० संस्थाओं का स्थान बहुत ऊंचा रहा है। परिणामों से फिर एक बार यह सिद्ध हो गया है कि आर्यसमाज के इन शिक्षा केन्द्रों में पढ़ाई का स्थान कितना गौरवपूर्ण है। प्रतिवर्ष ये संस्थान अपनी परम्परा को कायम रखते हैं। यही कारण है कि डी० ए० वी० संस्थाओं में प्रविष्ट होने वाले छात्रों की भारी भीड़ होती है। हमें अपनी इन संस्थाओं पर बड़ा गौरव है। हम इस बार भी इन में कार्य करने वाले सारे मान्य महानुभावों का, उनके इस तप, परिश्रम का हार्दिक प्रशंसा करते हुए उनको इस सफलता पर बधाई देते हैं।

अपने बच्चों को

प्रति रविवार के सत्संग में आर्य समाज मन्दिर में अवश्य साथ ले जाये, यह नितान्त आवश्यक है। इस का बड़ा सुखद फल होगा। जिन परिवारों में यह प्रथा है उनके बच्चे आरम्भ से जीवन में बहुत कुछ सीख लेते हैं। उन में धर्मभाव, आस्तिकता तथा कर्म करने की रुचि पैदा हो जाती है। यह स्वाभाव उनको सारे जीवन में काम देता है। जहां यह नहीं वहां क्या अवस्था है देख लीजिये। आर्य समाज में काम करने वालों से विशेष कहना है कि यह अत्यन्त आवश्यक है—इसे महत्व दीजिये। प्रति सप्ताह समाज के सत्संग में अकेले मत जाइये। अपने बच्चों को साथ ले जायें।

अनुरोध गीत

(ले० श्री सत्यव्रतसिंह जी केसरगं बहराइच यू० पी०)

कर सकूं, प्रभुवर, हृदय का मधुसमर्पण
पासकूं अपवर्गका निश्चित अतुल व
भाग की इच्छा हमें तड़पा रही है
बहुत कुछ है, देखते हैं, कुछ नहीं है
मरण से हो मत सतत सत्रास जावन
किस दिवस निर्भय निरामय होसकूं?
तापको, तपकर, अमृतमय खोसकूंगा
काट डालूं, हे दयामय, सकल बधन
पंखुरी-सी देह रज में हो तिरोहित,
भावना की बीज मानवको समर्पित
पुन भूलुठित न होऊं पतित पावन!

अच्छा ही किया

उत्तर प्रदेश सरकार ने अपनी शिक्षा-संस्थाओं को यह आदेश दिया है कि आगे के लिए किसी सांस्कृतिक कार्यक्रम में स्कूल की लड़कियों का हावभाव वेशपूर्ण डांस न रखा जाये। नाटक भी यदि करना हो तो लड़कियों के अभिभावकों से पूर्व अनुमति लिये बिना न रखे। हम इस पग की प्रशंसा करते हैं। आज कल्चरल समारोह की आड़ में जो कुछ हो रहा है उसका कितना बुरा परिणाम हो रहा है। हम पंजाब की सरकार से भी आशा करते हैं कि वह भी इस ओर शीघ्र कदम उठायेगी।

—सं०

आर्यसमाज के प्रवर्त्तक [illegible]पाद स्वामी दयानन्द जी [illegible]राज ने आर्यसमाज की [illegible]पना के साथ २ वेद के इस मन्त्र [illegible] वर्धन्तो अप्तुर कृण्वन्तो [illegible]श्वमार्यम्' का उद्घोष करके [illegible]एक कर्त्तव्य पथ भी आर्यसमाज [illegible]ो सुझाया । स्वामी जी के [illegible]हावसान के पश्चात् विश्व सुधार [illegible]ा कार्य आर्यसमाज ने अपने हाथ [illegible]ले लिया और यह प्रतिज्ञा की कि [illegible]म समस्त विश्व को आर्य बनाने के लिए अपना तन-मन-धन इस [illegible]हान् यज्ञ में होम करेंगे।

परन्तु यह अत्यन्त खेदपूर्ण बात है कि आर्यसमाज अभी तक अपने इस उद्देश्य को पूर्ण करने मे सफल नहीं हुआ। इसका क्या कारण है? इसका कारण है कि आर्यसमाज ने वेद की सुमार्गदर्शक, मधुर एवं अमृतमयी वाणी पर पूर्णतया आचरण करना छोड दिया है। आर्यसमाज जबतक ऋग्वेद के अन्तिम सूक्त के निम्न-लिखित मन्त्र पर पूर्णरूपेण आचरण नहीं करता तब तक इसका अपने उद्देश्य में सफल होना असम्भव सा प्रतीत होता है।

'संगच्छध्वं संवदध्वं सवो मनासि जानताम्'।

ऋग्वेद के इस मन्त्र के पीछे एक गूढ रहस्य छिपा है। यदि समस्त विश्व इस का अनुसरण कर ले तो समस्त जगत् मे कोई अभागा पुरुष ही ऐसा होगा जा सुखी न हो। इस मन्त्र पर आचरण सारी दुनिया तभी तो करेगी जबकि स्वयं आर्यसमाज इस मन्त्र पर पूर्णत आचरण करके समस्त विश्व को आर्य बनाने में सफल हो।

इस मन्त्र में सब से पूर्व कहा गया है 'संगच्छध्व'। सब मिल चलो अर्थात् सब संगठन करो। इस वर्तमान संसार में कोई भी कार्य शक्ति के बिना न तो किया

आर्य युवक स्तम्भ—

उन्नति के मूलाधार:
संगठन, सवाद और सामनस्य

(ले० श्री जयप्रकाश जी आर्य, आर्य युवक समाज, डी० ए० वी० कालिज, जालन्धर)

जा सकता है और न ही सफल हो सकता है। परन्तु शक्ति तब तक नहीं आती जब तक संगठन न हो। विशेषतया इस युग में शक्ति को बढाने के लिये सगठन का होना अत्यावश्यक है। तभी तो किसी ने कहा है—

,सघे शक्ति कलौयुग'

परन्तु यह अत्यन्त विषादपूर्ण बात है कि आज हमारा झुकाव 'संगच्छध्व' की ओर न होकर 'सलडध्व' की ओर अधिक है। आज जहा आर्यसमाजके एक सदस्य की दूसरे से नहीं बनती अर्थात् उन दोनों में नहीं बनती वहा हमे यह भी स्वीकार करना पडेगा कि आर्यसमाज के कई ऐसे प्रतिष्ठित व्यक्ति भी हैं जिनकी आर्यसमाज के दूसरे प्रतिष्ठित व्यक्तियों से नहीं बनती और उनमे मतभेद है तथा इसके साथ २ वे एक दूसरे को नीचा दिखाने की ताक में बैठे रहते हैं और अवसर प्राप्त होने पर वे ऐसा करने में चूकते भी नहीं इतना करने पर भी वे बडे गर्व से कहते हैं कि आर्यसमाज के प्राण हम ही हैं परन्तु मेरे विचार में वे आर्यसमाज के प्राण न होकर उसके शत्रु हैं।

दूसरी बात जो मन्त्र में कही गई है 'संवदध्वं' अर्थात् तुम्हारी वाणी एक हो। सब मिलकर एक समान ही बात करो—तुम संवाद करो विवाद न करो। इसके साथ २ यह भी स्मरण रहे कि 'संगच्छध्व' का आधार 'सवदध्वं' है। क्योंकि यदि हम संवाद करने की अपेक्षा विवाद करेंगे तो इसमें कोई संदेह नहीं कि हमारे मनों में प्रेम के स्थान पर फूट का अकुर उत्पन्न हो जाएगा और हमारा सगठन बनाने का प्रयास असफल हो जाएगा। फूट उत्पन्न होने से हमारे मार्ग में अनेकों कठिनाइयां एवं बाधाएं उपस्थित होंगी और हमारे लिए अपनी मंजिल पर पहुँचना एक समस्या बन जाएगी। इस प्रकार हम एक ऐसे जाल में फस जाएंगे जिससे निकलना असम्भव हो जाएगा अर्थात् हमे यत्र-तत्र निराशा ही निराशा मिलेगी। इसी फूट के कारण भारत को इतने लम्बे काल के लिए अंग्रेजों और दूसरी जातियों के पराधीन रहना पड़ा।

आज आर्यसमाज भी विवाद रूपी जाल में फस रहा और यह 'सवदध्व' के सिद्धात का अनुसरण करने को अपेक्षा 'विवदध्व' के सिद्धात पर अधिक आचरण कर रहा है। आर्यसमाज में अधिक सगठन न होने का कारण यह भी है कि आज एक दूसरे से और दूसरा तीसरे से प्राय. छोटी से छोटी बात पर भी विवाद आरम्भ कर देता है और यहां से वे दोनों एक दूसरे के विरुद्ध हो जाते हैं।

तीसरी और अन्तिम बात इस मन्त्र में कही गई है 'सवोमनासि जानताम्' अर्थात तुम सब अपने मनों में एक ही प्रकार के विचारों को स्थान दो। तुम सब में सांमनस्य अर्थात् मतैक्य हो। इनके साथ २ यह भी स्मरण रहे कि जिस प्रकार 'संगच्छध्वं' का आधार 'संवदध्वं' है उसी प्रकार 'सवोमनासि जानताम्' है। क्योंकि जब तक हम में मतैक्य नहीं होगा तब तक यह सर्वथा असम्भव है कि हम विवाद न करें। मतैक्य न होने से प्राय विवाद हो ही जाता है। क्योंकि 'सगच्छध्व' का आधार 'सवो मनांसि जानताम्' है इसलिए 'संगच्छध्वं' का मूलाधार हुआ 'संवो मनांसिजानताम्'।

जिस प्रकार किसी भवन के निर्माण करते समय भवन निर्माण-कर्ता इस बात का विशेष रूप से ध्यान रखता है कि भवन की नींव कहीं कच्ची तो नहीं रह गई? इसी प्रकार संगठन रूपी भवन के निर्माण करने वाले आर्यसमाज को विशेषतया इसकी नींव अर्थात मूलाधार को सुदृढ बनाना पडेगा और वह है 'संवो मनासि जानताम्' अर्थात् सामनस्य।

हमें सबसे पूर्व अपने मनों में एक प्रकार के विचारों को स्थान देना पड़ेगा और जब हमारे विचार एक समान होंगे तो किसी बात पर विवाद होने का तो प्रश्न ही नहीं उठता और जब हम विवाद नहीं करेंगे तो हमारे मनों में एक दूसरे के प्रति प्रेम की भावना उत्पन्न होगी और प्रेम उत्पन्न होने से निस्सदेह हम सगठन के बन्धन में बध जाएगे।

अत यदि हमारी उत्कट अभिलाषा है कि हम अपनी प्रतिज्ञा को पूर्ण करलें, हमने जो निश्चय किया है उसमें सफल हो जाएं और ऋषि की मनोकामना पूरी हो जाए तो हमारा यह प्रथम कर्तव्य हो जाता है कि हम वेद की सुखदायक एवं कल्याणकारीवाणी पर पूर्णतया आचरण करें। तब सारे भूमण्डल के वासियोंके सम्मुख केवल एक ही आवाज होगी :—

मानस भवन में आर्यजन
जिसकी उतारें आरती,
भगवान् सारे विश्व
गूंजे हमारी भारती

—०—०—

आर्य कुमार आन्दोलन क्यों ? लेख—३रा

(ले०—श्री राम प्रकाश जी ज्योति-निकेतन धर्मशाला छावनी)

कृण्वन्तो भारतमार्य्यम्

विश्वभर को आर्य बनाना बड़ी ऊंची कल्पना है, बहुत ऊंची.

विश्व के इतिहास के पन्ने उल्ट कर देखो तो आप को बहुत से ऐसे साहसी वीर योद्धा तथा पवित्र हृदय महान् नेता मिलेंगे जिन्हों ने विश्व विजय के सुहाने स्वप्न लिए थे और उन्हें कार्य करने वाले सच्चे भक्तों का सहयोग भी मिल गया था। और वे कार्य पर निकले भी थे, और आज उनके अनुयायियों ने विश्व के कुछ भागों में अपने अपने अधिकार जमा रखे हुए हैं बहुत से सम्प्रदाय ऐसे हैं जिन्होंने विश्व के कई भाग अपने अधिकार में ले लिए हुए हैं।

जिन्हों ने कुछ किया उन्हों ने प्रथम तो प्रचार से आरम्भ किया और उस के तुरन्त पश्चात् तलवार का आश्रय लिया प्रचार ने अपना कार्य किया तलवार ने अपना।

उसी तलवार के जोर से उन सम्प्रदाय के अधिपतियों ने परम-प्रिय भारत पर भी अपना प्रभुत्व जमाया। अपितु भारत को परतन्त्र भी बना दिया था आज भारत कहने को तो स्वतन्त्र है पर बाह्य सम्प्रदायों का वैचारिक प्रभाव स्पष्ट दृष्टि मे आता है। अपितु बढ़ता जा रहा है।

भारत की परम्परा तथा इतिहास में कहीं भी तलवार के जोरसे प्रचार की चर्चा नजर नहीं आती। भारत शान्तिप्रिय रहा है। आज भी है।

शान्ति से शक्ति वह है जो पर हृदय में प्रवेश करके हृदय पर सम्पूर्ण अधिकार जमा कर अपने वश में कर लेती है।

वेद ने विश्व को आर्य बनाने का इशारा किया और साथ में कुछ और भी कहा।

हमें उस इशारे की ओर ध्यान देना चाहिए, और शान्ति का आश्रय लेना चाहिए, और अपने आपको आगे बढ़ाना चाहिए।

पर हमारा कार्य बहुत बड़ा है इस के विस्तार की कल्पना करते ही माथा भन्ना जाता है।

जब से मैंने पंजाब हिमाचल व दिल्ली की आर्यसमाजों तथा आर्य कुमार समाजों का निरीक्षण किया तो एक विचार मन मे आता रहा है कि हमें अपने कार्य को कुछ संगठित तथा व्यवस्थित करना चाहिए।

एक सोची हुई तथा समझी हुई हुई तथा सुलझी हुई योजना बनानी चाहिए देश काल तथा परिस्थिति तथा अपने साधन सामग्री इत्यादि का ध्यान रखते हुए तथा अपने लक्ष्य को भी सदा सामने रखते हुए कार्यक्रम बना लेना चाहिए।

यह सब सोचने का कार्य समझने का कार्य नए मस्तिष्क ही कर सकते हैं।

युवक रक्त मे आदर्श के प्रति तड़प होती है तथा वास्तविकता का सामान भी होता है। उनकी आशाएं उमंगे भी जवान होती है। कार्य-शक्ति भी उन में पर्याप्त होती है।

इस लिए उन्हीं के हाथों मे यह कार्य-भार सौंप दिया जाना चाहिए और वृद्धों तथा नेताओं को चाहिए कि अपना सर्व प्रकार का सहयोग भरपूर मात्रामे इन युवकों को प्रदान करें उनको उत्साह देवे, गिरने से हटावें, उदास होने से हटावें-निराशा रोकने की व्यवस्था करें अपने अनुभवों को युवकोंके उपयोग प्रयोग के लिए उपस्थित कर देवें सब के मेल मिलाप से कार्य चलेगा परमैं आज एक अति महत्त्व पूर्ण बात कहने लगा हूं। यह जो भारत है यह धरती माताका उत्तमभाग है—क्या यह उपयुक्त नहीं होगाकि हम धरती के मानवों को आपूर्ण बनाने निकलने से पूर्व अपने इस उत्तमांग को आर्य बनालेवें अपने घरको सवार लेने के पश्चात् उस सरलता से आगे बढ़ा जा सकता है। [illegible] एक यथार्थ वादी कार्यकर्त्ता की यथार्थ सूझ है।

यह एक व्यावहारिक कल्पना प्रतीत है। हम एक निश्चित अवधि मे इस कार्य को सम्पन्न भी कर सकते हैं कार्य के अंश के सम्पन्न हो जाने से जो सन्तोष मिलता है और उसके पश्चात् जो नई शक्ति नया उत्साह तथा आत्मविश्वास का जन्म होता है उसका महत्त्व आंका नहीं जा सकता और भारत हमारे कार्य के लिए अधिष्ठान है, आधार है एक प्रकार से साधन है।

अधिष्ठान आधार तथा साधन को ठीक करना कितना महत्त्व पूर्ण है यह अनुमान लगा लेना चाहिए और भारत आज समस्यायों से भरा देश है। हमारी समस्याएं सामाजिक आर्थिक सांस्कृतिक सब प्रकार की हैं यह देश पिछुड़ा हुआ है, निर्धन है भूखा है नगा है अनपढ़, है, और बहुत कुछ और भी है।

मैं तो समझता हू कि सब से बुरी बिमारी हमारे देश मे है साम्प्रदायवाद।

साम्प्रायवाद के झगडों ने इस देश के टुकडे तक करके रख दिए। साम्प्रदायवाद ने ही भाषावाद का रूप लेकर और मनके बवण्डर खडे कर रखे है अभी भी इस देश मे टूट फूट होती रहती है साम्प्रदायिक दंगे होते रहते हैं भारत की प्रगति रुक जाती है।

सारे विश्व में हमारा मुह काला हो जाता है हमारे नेता कहीं अभिमान से सिर ऊंचा करके खडे होने के योग्य नहीं रहते कितनी लज्जा की बात है? मैं स्थिति का विश्लेषण करने में अधिक समय नहीं लेना चाहता मैं तो सोचता हू कि इसका समाधान क्या है?

आर्यसमाजके समझदार नेताओं ने इसका हल निकाला था। वह हल था 'कृण्वन्तो भारतमार्य्यम्' भारत को आर्य बनालेने का गम्भीर प्रयास आरम्भ कर दिया जा चुका था। यदि वह प्रयत्न सफल हो जाता तो आज भारतकी समस्याएं नब्बे प्रतिशत सुलझ जातीं। भारत आज अखण्ड होता एक इकाई के रूप में होता और प्रगति की राह पर बढ़ रहा होता आज तक विश्व का नेतृत्व भारत ने बडी सरलता से सम्भाल लिया होता।

मै यह दृढ विश्वास रखता हूं कि भारत मे से साम्प्रदायिकता मिट जानी चाहिए—समूल—और यह भी निश्चय ही है कि जब तक सम्प्रदाय रहेंगे तबतक साम्प्रदायिकता भी नहीं जा सकती। यह कैसे हो सकता है कि आप आमों के पेड़ के पेड़ बगीचे के बगीचे लगे रहने दें और उन्हें पनपने दें फैलने और फूलने दें फिर फल आने से रोक दें यह कैसे हो सकता है? अन होनी बात नहीं हो सकती साम्प्रदायिकता मिटाने का उपाय है साम्प्रदायों को मिटाना। साम्प्रदायों के मिटाने का यह अर्थ नहीं कि व्यक्तियों को मिटाना या देश से निकाल देना।

इसका अर्थ तो इतना ही है कि उनके पृथक अस्तित्व को मिटा देना उनको आत्म सात कर लेना उनका भारतीय करण कर लेना उनको आर्य बना लेना! हिमालय की चोटीसे सागर की लहरों तक भारत का रूप एक ही रहना चाहिए भारत के प्रति भारत मे रहने वालों की निष्ठा एकही समान होनी चाहिए। कृण्वन्तो भारतमार्य्यम का यही अभिप्राय है।

(क्रमश)

कैसे बढ़े प्यारा आर्यसमाज आओ मिल कर सोचें

(ले० श्री आशुराम जो पुरोहित आर्य समाज सैक्टर ८ चंडीगढ़)

(गतांक से आगे)

मनोविज्ञान

का इतना भाग पद्धति अनुसार ठीक है कि जिस कला, गुण और कर्म में सन्तति को अधिक रुचि माता पिता और आचार्य देखें उस में उन्हें संयुक्त कर दें जिस से उन की उन्नति सबल हो जाये। किन्तु यह समय तो बाल्य काल के पश्चात आता है। विचार दान वा संस्कार तो माता पिता से गर्भ में आने के भी एक वर्ष पूर्व मिलने आरंभ हो जाते हैं। फिर यह कैसे माना जा सकता है कि बालक बालायें विचार लेने में स्वतन्त्र हैं ? हां यह मानना ठीक होगा कि माता पिता के संस्कारों और विचारों में कोई बल नहीं। स्वयं संकल्प, आदर्श और उद्देश्य हीन हैं। जैसे एक व्यक्ति गुरुकुल भक्ति की बडी डींग मारता है किन्तु अपने पुत्र पुत्रियों को उस शिक्षा पद्धति की हवा भी लगने नहीं देता, तो बताओ उसकी ऐसे क्षीण हीन विचारों का अपनी सन्तति वा समाज पर कहीं अनुकरण हो सकता है ? धर्म की दुहाई देने वाला एक व्यक्ति धर्म ध्वजी बन कर अपने व्याख्यानों और लेखों से जनता को बड़ा तृप्त करता है किन्तु धन संग्रह और मान के लिये धर्म और सिद्धांत छोड़ घुटने टेक देता है। ऐसे-ऐसे धर्म ध्वजी महात्माओं का क्या कोई प्रभाव वा संस्कार ले सकता है ? इस लिये, आओ ! अपनी वैदिक संस्कृति के।

मूलमन्त्र

को देखें जिस का शीर्षक है 'अनुव्रत पितु पुत्रो मात्रा भवतु समना पुत्र पिता के विचारों के अनुकूल हो माता के मन के साथ संयुक्त रहे। इस से आगे जब वह विद्यालय में प्रवेश करता है तो आचार्य उसे गोद में बिठा कर और उस के हृदय पर हाथ रख कर कहता है कि पुत्र ! मम व्रते ते हृदयं दधामि मम चित्तमनुचित्तम् ते अस्तु। मेरे व्रत के अनुकूल तेरा हृदय हो मेरे चित के अनुकूल तेरा चित हो। इस प्रकार शिक्षा लेता हुआ जब विद्या समाप्त कर समावर्तन संस्कार के पश्चात संघर्षमय गृहस्थ जीवन में प्रवेश करता है जो वास्तविक समय होता है समाज के साथ घुलमिल कर चलने और अपनी गति विधियों का आरंभ करने का। उस समय भी अपनी जीवन साथिनी धर्म पत्नी के हृदय पर हाथ रख कर फिर वही प्रतिज्ञा दोहराता है।' मम् व्रते ते हृदय दधामि मम चित्त मनुचित्त ते अस्तु मेरे विचारों के अनुकूल तेरे विचार हों। आओ प्रिये ! हम एक चित एक मन हो कर इस नये जीवन को आरभ करें। यही प्रतिज्ञा देवी भी अपने प्रिय के हृदय पर हाथ रख कर करती है और अपने प्रियतम को अपने विचारों में बांधती है।

भला कोई बतलाये कि हमारे परिवारों में पुत्र और पुत्रियों में विचार भिन्नता कहां से आई ? पुत्र पुत्रियां माता पिता के विचारानुकूल और पति पत्नी उन्हीं परम्परागत परस्पर के विचारानुकूल होकर अत्यन्त मिठास, प्रेम और स्नेह का सुगठित जीवन लिए हुए आजीवन चलते रहें। यही सुंदर आयोजन समष्टि मानव समाज का प्राचीन वैदिक संस्कृति के अंदर सदा रहा है अत: अब भी इसी पद्धति अनुसार पारिवारिक जीवन बनाने से ही आर्य समाज की इस समस्या का समाधान तो होगा ही, साथ ही सम्पूर्ण मानव समाज का कल्याण और उत्थान भी इसी से ही होगा।

घरों में

प्रातः सायं नित्य कर्म पद्धति को चलायें। उस में सभी बड़े छोटे पुत्र पुत्रियों को साथ बिठायें। छोटे कुमार और कुमारियों को तो कोई आपत्ति होगी नहीं यदि युवक युवतियों को कुछ उपरामता भी हो तो कोई बात नहीं। बड़े प्यार से स्नेह और हृदय की तड़प से स्वयं माता पिता जब श्रद्धा विभोर होकर उन्हें प्रेरणा देंगे तो वे सन्मार्ग पर अवश्य आयेंगे। हां यदि आवश्यकता हो तो पति पत्नी राजा और रानी का रूप धारण कर कभी शासन पद्धति को चलायें। माता, पिता और आचार्यों की दण्ड पद्धति पुत्र पुत्रियों के लिये अमृत समान होकर उन्हें सौभाग्य से जोड़ने वाली होती है। पढ़ो शिक्षा के समुल्लास सत्यार्थ प्रकाश में। महर्षि स्वामी दयानंद ने कितनी हृदय की वेदना के साथ इस प्रकरण को लिखा है। इस प्रकार जब घर में ऐसा अभ्यास हो जायेगा तो आर्य समाज के सत्सगों में भी यह प्यारा परिवार रुचिपूर्वक आयेगा। और हमारे वंशों की खेतियां वेद धर्म के जल से सींची जाकर लहलहाती हुई संसार को 'कृण्वन्तो विश्वमार्यम्' का संदेश देंगी जो कि सार्थक और उचित होगा। पर जब मातापिता जागेंगे तो इस समस्या का समाधान होगा। युवक और युवतियां साथ होंगी और परिवार एक पूरा समाज होगा धन्यवाद।

दस नियमोंका पालन करना आर्योंका धर्म है

आर्य समाज सैक्टर ८ चंडीगढ़

दिनांक १५।७।६२ को आर्य समाज सैक्टर ८ चंडीगढ़ की यह साप्ताहिक सार्वजनिक सभा भारत सरकार की आकाशवाणी हिन्दी परिवर्तन कारी नीति का घोर विरोध करती है। जिस के परिणाम स्वरूप रेडियो की भाषा को सरल करने के नाम पर उस को सर्वथा विकृत कर दिया है।

उचित तो यह था कि आकाशवाणी की जिस सरल भाषा से देश के लोग गत १५ वर्ष से अभ्यस्त हो गये हैं उस को समृद्ध तथा समुन्नत बनाया जाता जिस से राष्ट्र भाषा का स्तर ऊंचा होता किन्तु सरकार ने तथा कथित हिन्दुस्तानी के नाम पर जिस भाषा विवाद को प्रोत्साहन दिया है वह देश की एकता शान्ति और अखडता की घातक है २-भाषा को सरल बनाने का यह ढग सर्वथा दोष पूर्ण है जिस में कि साठ प्रतिशत उर्दू फारसी और अंग्रेजों के शब्द मिला दिये गये हैं और चालीस प्रतिशत हिन्दी के रह गये हैं जो कि देश की राष्ट्र भाषा है।

यह सभा भारत सरकार और उस के रेडियो विभाग से प्रेम और बल के साथ मांग करता है कि वह इस गलत नीति को वापिस ले कर उसी भाषा का प्रयोग करे जो गत १५ वर्ष से देश की जनता सुन रही है।

— कृते मंत्री आशु राम

आर्य समाज बला जिला करनाल का वैदिक मेला विशेष सफलता से सम्पन्न हुआ

इस अवसर पर प्रादेशिक सभा जालन्धर को ५३५/- वेद प्रचारार्थ प्राप्त हुए

आर्यसमाज बला जिला करनाल में ६ से ८ जुलाई १९६२ तक उत्सव के रूप में एक बड़ा भारी वैदिक मेला बड़ी धूमधाम से मनाया गया, जिस में लगभग १॥ हजार बला ग्राम के नर-नारी और इस ग्राम के आस-पास ग्रामों के लोग सैकड़ों की संख्या में वर्षा होते हुए भी विशेष श्रद्धा और आर्य समाज के प्रति प्रेम रखते हुए उत्सव में प्रतिदिन वैदिक धर्म प्रचार सुनने एकत्र होते थे। उत्सव का प्रबन्ध गवर्नमेंट हाईस्कूल के विशाल प्रांगण में किया गया था, जिस में हजारों स्त्री पुरुषों के बैठने का प्रबन्ध किया गया था।

इस अवसर पर आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा पंजाब की ओर से निम्न सज्जन वा भजन मंडलियां पधारीं।

श्री स्वामी रामेश्वरानन्द जी महाराज सदस्य लोकसभा घरौंड़ा श्री चौ० भूराराम जी आर्योपदेशक बानप्रस्थी रोहतक, चौ० भरतसिंह जी जमादार, पं० प्रभुदयाल जी, श्री पं० हरिचन्द्र जी, श्री सुमेरसिंह जी, चौ० रामकरण जी, चौ० महावीर जी, दादा सत्थूराम जी, पं० हरिदत्त जी, कु० जगतराम जी, पं०शमशेर, कुमार जी, श्री बस्तीराम जी ढोलक मास्टर, चौ० श्री हरलाल जी मधार निवासी की प्रसिद्ध भजन मंडली तथा रमेशचन्द्र जी।

इस अवसर पर निरन्तर तीन दिन तक बड़े समारोह से प्रचार होता रहा। प्रातः ७ बजे से हवन यज्ञ प्रारम्भ होकर ११॥ बजे तक भजन उपदेश आदि होते थे। श्री चौ० रामशरण जी और आ० स० की ओर से ऋषि लंगर का अति उत्तम प्रबन्ध किया गया था। इस सारे प्रचार के कार्यक्रम का सारे जिले की जनता पर विशेष प्रभाव पड़ा। वेदप्रचार और आर्य समाज की धूम मच गई। श्री चौ०रामशरण जी ने वेदप्रचारके लिये सभाको५०५) रुपये की थैली अपने पास से प्रदान की। इस के अतिरिक्त अन्य लोगों ने भी दिल खोल कर दान किया। उत्सव का प्रबन्ध वैसे तो सब ग्राम की ओर से किया गया था, किंतु विशेष कार्यकर्त्ताओं मे श्री मा० शिशु पाल सिंह जी प्रधान, श्री चौ० काम सिंह जी मत्री नेकी राम जी पांचाल, श्री चौ० सजान सिंह जी और चौ० फतेह सिंह सरपंच, श्री प. चन्दगी राम जी श्री चौ० खेमलाल जी का कार्य विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

इस अवसर पर श्री ला० सूर्य भानु जी एम० ए० प्रधान सभा ने पधारना था किंतु वह वर्षा के कारण नहीं पहुंच सके। ५००) की थैली उन को ही प्रदान करनी थी इस के अतिरिक्त और लोगभी उन्हें थैलयां देने आये थे किंतु वह नहीं पधार सके।

इस सारे समारोह को सफल बनाने का सेहरा, उत्साही, परिश्रमी सतत लगनशील पं. अमर सिंह जी अध्यक्ष अंबाला करनाल मडल के सिर पर है। —व्यवस्थापक

आर्य समाज आदर्शनगर जयपुर के समाचार

श्री सुन्दर लाल भाटिया का प्रशंसनीय दान।

१. आर्य समाज आदर्श नगर, जयपुर के प्रधान श्री सुन्दर लाल जी भाटिया, जो केन्द्रीय सरकार के अकौंटैन्ट जेनरल के आफिस में अब तक अकौंटैन्ट अफसर के पद पर कार्य कर रहे थे, दिनाक ८ जून १९६२ को सेवा से निवृत हो गये हैं।

इस अवसर पर श्री भाटिया जी ने अपने घर पर यज्ञ कराया और उन्होंने बालकों में चरित्र निर्माण तथा उन में आर्य वैदिक सस्कृति के विचारों का प्रचार करने के लिये आर्य समाज आदर्श नगर को आर्य विद्यालय को स्थापना के लिये १०००) दान दिया है।

२ आर्य समाज आदर्श नगर की ओर से गत ८ वर्षों से वैदिक कन्या विद्यालय का संचालन हो रहा है जिस में शिशुशाला से लेकर दशम् श्रेणी तक सामान्य सरकारी पाठ्यक्रम के अतिरिक्त संस्कृत तथा धर्मशिक्षा भी नियमित रूप से पढ़ाई जाती है। इस वर्ष उक्त कन्याविद्यालय की मैट्रिक-परीक्षा का परिणाम ९१ प्रतिशत रहा है जो जयपुर तथा सम्पूर्ण राजस्थान में सर्वोत्तम रहा है। मन्त्री

—आर्य समाज, आदर्श नगर जयपुर

स्वामी धनंजय जी का अनशन

श्री वैद्य नारयण प्रकाश ग्राम बराना डाखाना घरौंडा जिला करनाल का पत्र आया है कि वहां एक स्थान है जिस के साथ ६०० बीघा जमीन है। यह हिन्दुओं का स्थान है मगर सिखो ने कब्जा किया हुआ है। प्रोटेस्ट के लिये स्वा० धनंजय जी ने गत् १५ या १६ दिनों से अनशन किया हुआ है कृपया करनाल मण्डल की मार्फत अथवा सीधे उचित कार्यवाही करने की कृपा करें। —पिण्डीदास ज्ञानी

कठ उपनिषद्...

(पृष्ठ २ का शेष)

बजाए अवनति की ओर जा[illegible] था दूसरे शब्दों में आत्मा [illegible] चादर को बुरे संस्कारों व कर्मों [illegible] मैला करना। ऐसा करने [illegible] जीवात्मा ऐसी योनि में जन्म ले[illegible] है जहा बुद्धि की रोशनी उपलब्[illegible] नहीं होती। आत्मा को मारने [illegible] एक अर्थ यह भी है कि उस सुनह[illegible] अवसर से जो परमात्मा ने इ[illegible] अपना सुधार करने के लिए दि[illegible] है उस से लाभ न उठाना या उ[illegible] बिल्कुल व्यर्थ गवा देना इस[illegible] भी मनुष्य अगले जन्म में बुद्[illegible] रूपी प्रकाश से वंचित होने क[illegible] खतरा मोल लेता है।

इसलिये जब मनुष्य इस शरी[illegible] का सुदपयोग करता है अर्थात् बुद्धि को सरल व मन को शुद्ध और चित्त को चचलतारहित बनाकर तमाम इन्द्रियों पर अपना अधिकार जमा लेता है। उनका सेवक नहीं बल्कि स्वामी बन जाता है तब वह शरीर उसके लिये सुख का साधन बनता है और जब मनुष्य इस शरीर को छोड़ता है तो वह सब दु.खों से छूट कर मुक्ति का अथवा अधिक अच्छे जन्म का अधिकारी बन जाता है। मनुष्य को एक जन्म के बाद दूसरा जन्म उसके ज्ञान व कर्मो के अनुसार मिलता है। इसलिये यदि जीवात्मा अपने आपको प्रत्येक जन्म में बेहतर बनाता जाता है। पवित्रता प्राप्त करता जाता है तो एक समय ऐसा आ सकता है जब कि उस जन्म की समाप्ति पर वह मुक्ति का अधिकारी हो जाय और जन्म मरण के छूट जायें।

मनुष्य के शरीरी में ज्ञान इन्द्रियां भी हैं परन्तु सबसे महत्त्वपूर्ण वस्तु आत्मा है। जो प्राण व अपान से काम लेता हुआ शरीर में रहता है।

(क्रमशः)

आर्य सम...

—आर्य कुमार सभा टोहाना का चुनाव

प्रधान—श्री स्वामी वेदानन्द जी महाराज गुरुकुल भटिंडा, उपप्रधान—श्री परमानन्द जी विद्यार्थी रोहतक, श्री आशानन्द जी लुधियाना, श्री आचार्य भद्रसैन जी, मन्त्री—प्रो० रघुवीर सिंह जी रोहतक, संघटन मंत्री—श्री राजेन्द्र जी जिज्ञासु एम० ए० साहित्य मन्त्री—जयदेव जी आर्य एम० ए०, उपमन्त्री—श्री चन्द्रप्रकाश जी आर्य बी०ए० आनर्ज, लेखा निरीक्षक—वैद्य कुन्दन लाल जी एम० ए०, अन्तरंग सदस्य—श्री स्वामी भीष्म जी हिसार, श्री धर्मवीर जी आर्य, स्वामी सुरेशानन्द जी, श्री प्रीतम लाल जी, श्री हुकुमचन्द्र जी, श्री दयानन्द जी, श्री गुरुदत्त जी, श्री वेदव्रत जी, M.S.C., श्री राम प्रकाश जी M S.C., श्री राम स्नेही जी आर्य।

—अरुणा आर्या प्रभाकर

—पंजाब प्रान्तीय आर्य कुमार परिषद

की यह सभा सर्वसम्मति से भारत सरकार द्वारा आकाशवाणी की भाषा में परिवर्तन की तीव्र शब्दों में निन्दा करती हुई मांग करती है कि हिन्दी को सुगम बनाने के नाम पर उस में उर्दू. फारसी के शब्दों को न डाला जाए।

इस सभा की सम्मति में आकाशवाणी द्वारा दस वर्षों से प्रयुक्त भाषा ही सच्चे शब्दों में हिन्दी का प्रतिनिधित्व करती है। अत. यह सभा प्रधान मंत्री तथा राष्ट्रपति से प्रार्थना करती है कि वे हिन्दी के शुद्ध स्वरूप को बिगडने से बचाएं।

इस सभा की सम्मति में संस्कृतनिष्ठ हिन्दी ही सही शब्दों में राष्ट्र भाषा बन सकती है क्योंकि देश की समस्त भाषाओं (उर्दू को छोड़कर) में ५० प्रतिशत से भी अधिक शब्द संस्कृत से लिए गए हैं।

—रघुवीर सिंह मन्त्री

—मुंडन सस्कार

श्री बस्तीराम जी भजनीक प्रचारक सभा के भतीजे का चूड़ाकर्म सस्कार उनके अपने निवासस्थान अलाहर में बड़ी धूमधाम से सम्पन्न हुआ। यह शुभ कार्य प०अमरसिंहजी अध्यक्ष अम्बाला करनालमंडल व बहिन कमला देवी ने पूर्ण वैदिक रीति से सम्पन्न कराया। पठित जनता ने ह८१ ग्राम निवासियों ने सम्मिलित होकर संस्कार की शोभा को चार चांद लगा दिए। इस अवसर पर प० बस्तीराम जी ने सब का दान दक्षिणा आदि से यथोचित सत्कार किया।

—अमरसिंह सभा प्रचारक

—आर्यसमाज किला मुहल्ला

का यह साप्ताहिक अधिवेशन महान देशभक्त, भारत के स्वतन्त्रता संग्राम के महान सेनानी, राजर्षि पुरुषोत्तमदास टंडन तथा बंगाल के मुख्यमंत्री डा० राय जिन्होंने पचास वर्ष तक हर प्रकार का बलिदान देकर देश सेवा की उनके निधन पर हार्दिक शोक प्रकट करता हुआ यह अनुभव करता है कि इन दोनों व्यक्तियों के रिक्त स्थानों की पूर्ति करना असम्भव है। ईश्वर से प्रार्थना है कि दिवंगत आत्माओं को सदगति व उनके परिवार, इष्टमित्रों और देशवासियों को इस महान कष्ट सहन करने की शक्ति प्रदान करें।

चौधरी रामशरण जी का परिचय

(प० अमरसिंह जी अध्यक्ष अम्बाला करनाल मंडल)

आप बला ग्राम के एक प्रसिद्ध ...ी मानी सज्जन पुरुष हैं। आप ...र धर्म में विशेष श्रद्धा ...। आप धार्मिक कार्यों में दिल खोलकर दान करते हैं। जहां पर भगवान ने आपको धन दिया है वहां पर दिल भी उसी प्रकार का उदार दिया है।

गवर्नमैंट हायर सैकंडरी स्कूल बला में आपके नाम के स्थान २ पर पत्थर लगे हुए हैं। आपने वहां पर अनेक कमरों का निर्माण अपने पवित्र धन से करवाया है। स्कूल के चारों ओर का कोट और मुख्य दरवाजा आपने अपने खर्च से बनवाया है और इसी प्रकार से बच्चों के पानी पीने के लिये एक नलका भी स्कूल में लगवाया हुआ है।

श्री चौधरी रामशरण जी ग्रा० बला

उत्सव के अवसर पर आपने आर्य प्रादेशिक सभा को वेद प्रचार अर्थ ५००) की थैली दी और आ० स० मंदिर बनवाने का विश्वास दिलाया है। प्रभु से प्रार्थना है कि वह आपको और अधिक धन दे ताकि आप अधिक से अधिक दान करके अपने नाम को उज्ज्वल कर सकें। सभा की ओर से और आर्यजगत की ओर से आपका बहुत धन्यवाद।

—किला मुहल्ला

का यह साप्ताहिक अधिवेशन भारत सरकार की हिन्दी सम्बन्धी ढिलमिल नीति पर रोष प्रकट करता हुआ मांग करता है कि रेडियो पर बोली जाने वाली हिन्दी में किसी प्रकार का परिवर्तन न करे।

—खुशहाल चन्द पाराशर मन्त्री समाज

—महर्षि दयानन्द स्मारक ट्रस्ट टंकारा

टंकारा ट्रस्ट को सुप्रसिद्ध एलम्बीक केमीकल एण्ड ग्लास वर्क्स बड़ोदा की ओर से रु० दस हजार अन्तरराष्ट्रीय उपदेशक विद्यालय के लिये दान में प्राप्त हुये हैं। यह रुपया ट्रस्ट के प्रधान जी श्री स्थिर कोष के लिये देहली भेज दिया गया है।

—देहरादून आर्यसमाज की ओर से १२००) रु० एक महर्षि के भक्त ने गुप्तदान के रूप में दिये हैं तथा ६७५) रु० के इनामी बांडस भी दान में मिले हैं। इस समाज का उत्साह प्रशंसनीय एवं अनुकरणीय है। हम उन्हें जितना भी धन्यवाद दें थोड़ा है।

—टंकारा में आगामी शिवरात्रि पर अंतर्राष्ट्रीय उपदेशक विद्यालय प्रारम्भ है इसका गम्भीरतापूर्वक आयोजन हो रहा है।

हम चाहते हैं कि आगामी शिवरात्रि पर अंतर्राष्ट्रीय उपदेशक विद्यालय प्रारम्भ कर सकें तदर्थ चाहें तो एक लाख आर्यसमाजी हमें दस रुपये प्रदान करें अथवा एक हजार आर्य महानुभाव एक हजार दान दें।

—आनन्दप्रिय मंत्री

मुद्रक व प्रकाशक श्री सतोषराज जी मन्त्री आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा पंजाब जालन्धर द्वारा वीर मिलाप प्रैस, मिलाप रोड जलन्धर से मुद्रित तथा आर्यजगत कार्यालय महात्मा हंस राज भवन निकट कचहरी जलन्धर शहर से प्रकाशित मालिक—आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधी सभा पंजाब जलन्धर

टलीफान न० ३०५६ [आर्यप्रादेशिक प्रतिनिधि सभा पंजाब जालन्धर का साप्ताहिक मुखपत्र] Regd No .121

एक प्रति का मूल्य १३ नये पैस वार्षिक मूल्य ६ रुपये

वर्ष ७२ अक २८) रविवार ३ आपाढ २०१८ – १५ जुलाइ १९६१ दयानन्दाब्द १३८ (तार-प्रादेशिक जालन्धर

वेदसूक्तय:

आयुरस्मै धेहि

हे परमात्मन् ! आयु —लम्बी आयु अस्मै इस बालक के लिए धेहि प्रदान करें। आपके आशीर्वाद से परिवारों की सन्तान दीर्घायु प्राप्त कर के सदा स्वस्थ रहें।

शतंजीवाति शरद:

हमारी सन्तान शत-सौ शरद - शरत् काल वर्ष जीवाति-जीवन लाभ करे। आप की कृपा से हमारी सन्तति सौ वर्ष की आयु का प्रसाद पाते रहें।

शिवाभिष्टे हृदयम्

हे प्रिय बालक ! मैं शिवाभि - कल्याण करने वाले उत्तम २ वचनों उपदेशों से ते—तेरे हृदयम्—दिल को विचारों को पवित्र व ऊंचा बनाता हूँ। शुद्ध करता हूँ।

अथर्व वेद से

वेदामृत

ये देवानां यज्ञिया यज्ञियानां मनोर्यजत्रा अमृता ऋतज्ञाः।
ते नो रासन्तामुरुगायमद्य यूयंपात स्वस्तिभिः सदा नः॥

ऋ० म० ७ सू० ३५ म० १५

अर्थ—(ये) जो (देवानाम) देवों के (यज्ञिया) यज्ञ परोपकार वाले हैं (यज्ञियानाम्) यज्ञमय लोगों के (मनो) मनन आचरण करने वाले ज्ञानी के (यजत्रा) साथी हैं (अमृता) अमर पद पाने वाले हैं (ऋतज्ञा) ऋत, मर्यादा को जानते हैं (ते) वे लोग (न) हमें (रासन्ताम) उपदेश देवें (उरुगायम) महान संगीत जीवन गीत से भरे (अद्य) आज (यूयम्) आप लोग (पात) रक्षा करो (स्वस्तिभि) कल्याण के भण्डारों से (सदा न) सर्वदा ही हमारी रक्षा करें।

भाव—हमारे जीवन रथ के सारथी, नौका के नाविक तथा उपदेश देने वाले कैसे हों—वेद कहता है कि हरेक न तो नेता बन सकता है और न बनाना ही चाहिए। इस लोक व्यवहार में भी तो प्रत्यक विशेष काम के लिए विशेष ही मनुष्य होता है। हर काम पर हर मानव नहीं लग सकता। नेता में परोपकार, बलिदान त्याग उत्सर्गभाव, यज्ञमय। विचार भरे होने चाहिए। ज्ञानी जनों के प्रेमी हो, इन के सम्पर्क में रहने वाले हों, मर्यादा निष्ठा को निभाने वाले हों, जीवन में ऊंचे अमर पद वाले हों। ऐसे जीवन निष्ठ लोग ही हमारे नेता. सारथी बनें, वही हमें जीवन निर्माण का मीठा गीत सुनाये। वही हमारा कल्याण करते रहें। हम स्वार्थ के पुतलों, मर्यादा निष्ठाहीनों तथा विलास भाजनों, उत्सर्ग बलिदान से भागने वाले नेताओं, जीवन सारथियों से दूर २ रहें—सं०

ऋषिदर्शन

यज्ञः परोपकाराय

यह यज्ञ दूसरों के भले के लिए होता है। जितना भी यज्ञ का कर्म है, उससे दूसरो का सदा लाभ होता है, भला ही होता है।

तस्य परार्थत्वात्

उस यज्ञ के दूसरों के लिए होने के कारण से। जब भी यज्ञ होता है, उसकी सुगन्धि, प्रकाश आदि से सब को समान लाभ पहुंचता है। समान उपकार होता है। इसलिए इसे परोपकार कर्म माना है।

यज्ञेन धर्मोजायते

इस यज्ञ के परोपकार कर्म से कर्ता को धर्म होता है, पुण्य होता है। उसे धर्मी और परोपकारी कहा जाता है। इसके द्वारा जीवन में सुख ही मिलता है।

भाष्य भूमिका से

अधिष्ठाता—संतोषराज मंत्री सभा सम्पादक: त्रिलोक चन्द्र शास्त्री

अध्यात्मवाद—

इन्द्रपुरी का यन्त्र-मन

(श्री बलदेवराज जी एम० ए० साधुआश्रम होशयारपुर)

(गतांक से आगे)

क्रोध व असत्य बोलने से भी मन-विकृत हो जाता है। आवेश में आकर दूसरे को अपशब्द कहे जाएं तो उत्तर में भी सुनने पड़ते हैं। जिस से मन अशान्त व क्लान्त रहता है।

आजकल के वातावरण में तो चलचित्रों के प्रभाव के कारण नौजवानों के मन दूषित हैं।

मनोविकार के कारणों को जानने के उपरान्त मन को आसानी से रोका जा सकता है। मनोविकार के कारणों को दूर करने से मन नियन्त्रण में रखा जा सकता है। जैसे शुद्ध आहार, शुद्ध व्यवहार, शुद्ध आचार, ज्ञान, उत्तम-सगति, उत्तम संस्कारों, धार्मिक पुस्तकों के स्वाध्याय व शुद्ध विचारों से मन को रोका जा सकाता है। इसके अतिरिक्त इन बातों पर ध्यान दें।

किन्तु मन को रोकना सरल काम भी नहीं है। सतत प्रयास की आवश्यकता है। 'करत २ अभ्यास के जड़मति होत सुजान।' ठीक ही उक्ति है। स्वामी रामतीर्थ जी के सम्बन्ध में कहा जाता है कि उन्हें निम्बू चूसने की आदत थी। एक दिन उन्होंने मन पर नियन्त्रण करने के लिए प्रतिज्ञा की कि मैं निम्बू बिल्कुल नहीं खाऊ गा। किन्तु मन कहां माने। दूसरे दिन निम्बू बेचने वाले की दुकान पर जाते हैं, निम्बू खरीदकर घर में चाकू से चीरते हैं पलेट मे डालकर होठों तक लाते हैं तो पलेट फर्श पर फैंकते हुए कहते हैं 'जीत लिया भई जीत लिया, मन को जीत लिया।' मन आकर्षक पदार्थों की ओर जाएगा ही। किन्तु सावधान सारथि की तरह मन रूपी रथ के इन्द्रियां रूपी घोड़ों को रोकना चाहिए। अभ्यास से सब काम सिद्ध हो सकते हैं। राम जी भी स्वर्णमयी लंका से आकर्षित नहीं हुए 'स्वर्णमयी लंका लक्ष्मण मे न रोचते ..'

मन को रोकने के लिए मन को कभी भी बेकार नहीं बैठने देना चाहिए। अगर कोई काम न हो तो 'ओम्' का ही मन में जाप करना चाहिए ताकि मन बुरी बातें सोच ही न सके। अगर प्राणायाम के साथ जाप किया जाए तो मानों सोने पर सुहागे का काम होगा।

मन के अशान्त रहने पर सारा शरीर व्याकुल हो जाता है। जैसे कि किसी के शरीर में फोडा हो तो आदमी तड़पता रहता है। जब फोड़े से पाक व खून निकल जाते हैं तो तब कहीं जाकर शान्ति होती है। इसी प्रकार दु:खी मन रूपी फोड़े से उद्गार रूपी खून निकलने से मन हल्का हो जाता है। इसलिए अपने मित्रों के सामने अपने मन के दु:खों को प्रकट कर देना चाहिए क्योंकि '*Exbression lightenes the mind*' अर्थात् वाणी से विचार व्यक्त कर देने से मन हल्का हो जाता है। शायद मित्रों को मनोव्याधि बताने से उन से कोई उत्तम सुझाव ही मिल जाए। मन की शान्ति का सब से सुगम उपाय यही है कि किसी की बात को बुरा न मनाना चाहिए। सदा प्रसन्न रहना चाहिए। परिस्थितियों के साथ संघर्ष करना चाहिए। 'ईश्वर जो करता है भला ही करता है' ऐसा सोचने से दु:ख में भी मन सन्तुष्ट रहता है।

आत्म-विश्वास को कभी भी नहीं खोना चाहिये। आत्म-विश्वासी मन को अवश्य ही नियन्त्रण कर सकता है। आत्म-विश्वास से

विद्यार्थी जीवन में सफलता के लिए कुछ आवश्यक संकेत

श्री देवीदयाल जी 'अशेष' (संगठन मन्त्री) आर्य युवक समाज डी० ए० वी० कालेज, जालन्धर

(अनुशासन)

विद्यार्थी जीवन में सब से प्रथम स्थान पर अनुशासित जीवन आवश्यक है अनुशासन न रहने पर क्या कुछ हानि सम्भव नहीं? मान लीजिए एक सेना को, चाहे वह कितनी बड़ी भी सेना क्यों न हो, भारत की पश्चिमी सीमा पर देश रक्षा हित ठहरा दिया जाए परन्तु सेना में अनुशासन न हो। वे सैनिक अपने प्रमुख सैनिक की आज्ञा का उल्लघन करते हों तो निस्संदेह माना जा सकता है कि पाक-सैनिकों की एक छोटी टुकड़ी हिन्द सैनिकों के महान दल को चीरती फाड़ती हुई आगे बढ़ सकती है।

अनुशासन हीन विद्यार्थी किसी भी प्रकार से विद्या ग्रहण कर सके सम्भव नहीं। वह न केवल अपना जीवन नष्ट करता है बल्कि अपने अन्य भाइयों का भी। सोचिए एक विद्यालय के शान्त वातावरण में जबकि सब लड़के अपने अपने काम में लगे हैं। अध्यापक बड़ी दिलचस्पी से बच्चों को पढ़ा रहे हैं और प्रत्येक विद्यार्थी अपने अध्यापक की ओर पूरा २ ध्यान देकर ठीक कार्य कर रहा है यदि उस समय एक अनुशासन हीन विद्यार्थी विद्यालय के बरामदे में खड़ा होकर ऊंचा ऊंचा गाने गाना प्रारम्भ करे अथवा अत्यन्त ऊंची आवाज से किसी को बुलाए तो उस समय अध्यापक और विद्यार्थियों की क्या अवस्था होगी? वह अनुशासन हीन विद्यार्थी उस समय न केवल अपना ही समय खो रहा है बल्कि जैसा आप जानते ही हैं, पूरे विद्यालय का। इसी प्रकार श्रेणी में बैठे बैठे लड़कों को तंग करने वाला, कोई भी कार्य करते समय लाइन में न ठहर कर झगड़ा मोल लेकर आगे पहुंचने वाला अथवा अन्य इसी प्रकार के कार्य करने वाला विद्यार्थी, मैं जहां तक समझता हूँ, अध्ययन का अधिकार नहीं रखता।

स्वाभिमान की भावना पैदा होती है जिस से मन प्रत्येक काम को उत्साह से करता है।

आज क संसार में जबकि सर्वत्र संघर्ष का ही राज्य है मन को उत्साहित करना अत्यन्त आवश्यक है। एक बार पाओं उखाड़ने से, फिर पाओं जमाना कठिन होता है। मन पर ही मनुष्य के जीवन की हार व जीत है। जैसे कहा है—'मन के हारे हार है, मन के जीते जीत।'

(कठोर परिश्रम और विकास)

विद्यार्थी जीवन में कठोर परिश्रम की आवश्यकता रहती है और इसके साथ २ विश्वास की भी।

एक बार एक इन्टरव्यू में कुछ अध्यापक व्यक्ति पहुंचे। प्रथम व्यक्ति से पूछा गया आप किस लिए अध्यापक बनना चाहते हैं? उत्तर मिला,'आजीविका कमाकर अपना पेट पालन करना चाहता हूं।' उसे वापिस भेजने के पश्चात दूसरे व्यक्ति से भी यही प्रश्न किया गया। उत्तर मिला, 'एक पत्नी है, दो बच्चे हैं, एक मां है और एक मैं हूं। पैसा कमा कर इस छोटे से परिवार का पालन कर सकूंगा।' दूसरे व्यक्ति के चले जाने पर तीसरे व्यक्ति से भी यही प्रश्न किया गया। उत्तर मिला, 'मैं अपने देश की प्रिय सन्तान में वह विश्वास उत्पन्न करने का

(शेष पृष्ठ ७ पर)

सम्पादकीय—

आर्य जगत्

वर्ष २२] रविवार ३१ आषाढ २०१८, १५ जुलाई १९६२ [अंक २७

वीरो ! बढ़े चलो

यदि पथ भयानक है, नानाविध भय सामने हैं, पग २ पर गिरने की आशंका है, चारों ओर विषाक्त वातावरण है। भारी विघ्नें बाधा पैदा करती हैं। इस मार्ग पर चलना मौत से खेलना है, अपने जीवन की आहुति देना है। यदि भीषणता को देख कर आंखें चक्कर खा जाती हैं, पांव लड़खड़ाने लगते हैं तथा सारा शरीर पसीना २ हो जाता है, दिल धड़कने व कांपने लगता है। आगे अपने भय को बढ़ाता जाता है। चारों ओर अंधेरा छा गया है। नीचे से मार्ग नहीं सूझता और ऊपर से घन गर्जन होता है। ऐसे समय कौन है जो जान बूझ कर मौत के मुख में जाना चाहेगा? किन्तु वीरो! क्यों और कैसी चिन्ता? आर्य तो पैदा ही ऐसी विकट परिस्थिति का सामना करने के लिए हुआ है। विकट सकट में भी चलना जानता है। अहम् इन्द्रो न पराजिग्ये—मैं इन्द्र हूं, हारना नहीं जानता। आत्मा का बल साथ है। वेद जिसका पथ दर्शक है। प्रभु जिसका नेता अग्नि है। वह रुकना झुकना थकना क्या जाने। आर्य ऐसे मार्ग में सदा आगे बढ़ते रहे हैं। इसके महान् संस्थापक दयानंद ने जीवन में ऐसी विषम अवस्था में जूझना ही सिखाया है। जो डरकर बैठ जायें, वापस लौट आयें। वह आर्य कैसा? वेद का प्रेमी कैसा तथा ऋषि भक्त कैसा? अनेक बाधाओं में, विपरीत वातावरण में भी वीरो! बढ़े चलो। यही हमारी परम्परा है, मर्यादा है।

यदि हम अकेले हैं या बहुत थोड़े हैं। इस भीषण समय में सारे साथी साथ छोड़ गये हैं। भयभीत हो लौट गये। बाधाओं का सामना नहीं कर सके। हमारी संख्या बहुत अल्प है। पास पर्याप्त साधन भी नहीं। तब भी क्या चिन्ता—क्या हम ने वेद का सन्देश लेकर नहीं चले कि सूर्य एकाकी चरति सूर्य भी तो अकेला ही होता है। उसका कौनसा साथी है। पर उसके प्रकाश के सामने रात कैसी? मह उसी के चारों ओर ही तो घूमते हैं। चन्द्रमा उसी से ही तो प्रकाश पाता है। अकेला क्या नहीं करता? श्रीराम, कृष्ण, भीम, अर्जुन क्या दस-बीस थे? अज्ञान पाखण्ड को दूर करने वाले देव दयानन्द क्या पांच दस थे? भारत में भारतीय शिक्षा की धारा बहाने वाले महात्मा हंसराज क्या दो चार थे। शिवा, प्रताप क्या बीस-तीस थे। सारे अकेले थे। कितना काम कर दिखाया। अकेलों ने सारी धरती हिला कर रखदी। अकेला वीर जब चलता है—अनेक धाराएं उसमें आ मिलती हैं। साम्राज्य हिल जाते हैं। आर्यसमाज के प्यारो! आप ने अकेले में कितना महान् कार्य किया, कितना भारी परिवर्तन कर दिया। आज जितनी भी जीवन के तीनों क्षेत्रों में जागृति है। इसके पीछे उसी अकेले वीर दयानन्द की शक्ति लगी थी। अकेले ने वह काम कर दिखाया जिसका आज अनेकों अनुकरण कर रहे हैं। आर्य अकेला ही चल पड़ता है। सूर्य बनकर अकेला ही चमक उठता है। आर्यो! अकेलेपन का विचार छोड़ कर आज के दम्भ भरे जीवन को बदलते रहो। पाखंड का खंडन करते रहो। सब साथी बन जायेंगे।

इस बात की भी तनिक चिन्ता न करो कि लोग हमारे प्रतिकूल हैं, हमारा विरोध करते हैं, हमारी आवाज को दबाना चाहते हैं। उनके पास बड़े २ शख भेरियां, ढोल नगाड़े तथा बड़ी २ आवाज वाले साधन हैं। उन्हें भय है कि आर्यों की बातों, सिद्धान्तों, प्रचार का जनता पर सुनते ही प्रभाव पड जाएगा। तर्कवाद के इन के अस्त्रों का प्रतिकार कौन करेगा। इसलिए भारी कोलाहल करके हमारी आवाज को समाप्त कर देना चाहते हैं। तब भी वीरो! घबराना नहीं। विचारों का देवासुर संग्राम पुरातन काल से चलता आ रहा है। रावण ने आर्यसम्राट राम की आवाज को अपनी प्रभुता से दबाना चाहा। कौरवों ने अपने अभिमान भरे शस्त्रों से आर्य सभ्यता के प्रेमियों पाण्डवों के विचार बन्द करने में सारा बल जुटा दिया। नास्तिक वाद तथा वाममथ ने आस्तिकता व ब्रह्मवाद को दबाने में क्या २ शक्ति नहीं लगाई। ऋषि दयानन्द की वेद ध्वनि को दबाने में करोड़ों जनों ने क्या २ पाखण्ड दम्भ के ढोल नगाड़े नहीं बजाये? गुरु विरजानन्द की आत्मा को दबाने में विद्वानों ने क्या २ षड्यन्त्र नहीं रचे—पर क्या हुआ? क्या आवाज दब सकी। सब पर्दों को फाड कर सत्य की ध्वनि ही विजय हुई। सत्य का रवि काली घटा को चीर कर चमक उठा। इन्द्र ने वज्र से वृत्र को हटा ही दिया। दयानन्द की आवाज आज भी आर्यसमाज के रूप में चारों ओर गूंजती है। आर्यो! चिन्ता न करो। आज चारों ओर फैलने वाले पाखण्ड, भ्रम भ्रान्ति के जाल को तार २ करने में अपनी आवाज लगाते रहो। दूसरों के शोर की परवाह न करो। हमें कोई दबा नहीं सकता।

आज की विकट परिस्थिति में जबकि भोगवाद का भयंकर भूत सारे जीवन को अपनी लपेट में लेना चाहता है, माया का गीत गाया जा रहा है, काया की छाया का पूजन जारी है, पाखण्ड का प्रवाह प्रखरता से बह रहा है, नया-नया दम्भ स्वार्थजाल अपने पाश-तारों को फैलाने में लगा है। ऐसी अवस्था में आर्यसमाज के प्यारो! आपके सिवाय और कौन है, जिसे सारे विश्व सुधारने की चिन्ता बेचैन किये रहता है। और कर भी यह काम कौन सकता है। स्वार्थ-सरिता के सेवादार तो बहुत हैं पर परोपकार के लिए बलिदान आपके सिवाए कौन करने वाला है। इसलिए वीरो! चिन्ता न करो। पत्थरों से भरी इस वेगवती पर्वत की नदी की धारा को देखकर घबराना नहीं। साहसी वीर बनकर इसे पार करने में लगे रहो। कोई साथी बने या न, विरोध करे तथा आवाज दबाये तो भी आर्य परम्परा पर चलते हुए उत्क्राम अतः पुरुष-शक्तिशाली बनकर आगे ही आगे बढ़ते जाओ। बढ़ने में शान मान तथा रुकने में निन्दा अपमान है—वीरो! आगे बढ़ो।

—त्रिलोक चन्द्र

वेद सप्ताह पर्व

आर्यसभ्यता के पर्वों में श्रावणी उपाकर्म, वेदसप्ताह का बड़ा महत्त्व है। वेद स्वाध्याय इस समय से जारी होता था। वेद प्रभु की दी हुई विश्व-जीवन के लिए कल्याणी वाणी है। ऋषि दयानन्द जी ने वेद पढ़ने-पढ़ाने सुनने सुनाने को परम धर्म लिखा है। रक्षाबन्धन, वेद सप्ताह आ रहा है। सारी समाजें इस पावनपर्व सप्ताह को वेद कथाएं रखकर धूमधाम से मनाकर आज के भोग वाद प्रधान जीवन में

(शेष-पृष्ठ ४ पर)

संघर्ष व संग्राम

(ले० श्री कल्याण स्वरूप जा गुप्त B.A.)

(गतांक से आगे)

आय अधिक नहीं। तीनों जुट गए अन्तिम पत्थर उखाड़ने में और जब वह पत्थर उखड़कर ऊपर आया तो सब की आंखे चमक उठीं। वह खुशी से चिल्लाया साथियो हीरा मिल गया। दूसरे दिन ही उस हीरे को न्यूयार्क के एक जौहरी ने २० लाख डालर में खरीद लिया।

सच तो यह है कि प्रभु इस सृष्टि का कर्ता है स्थावर जंगम सब का पालन कर्ता है। इस बृहत सृष्टि के कुछ नियम हैं। नियम सब की रक्षा व पालना के हेतु बनाये गये हैं। उन्हीं नियमों के अनुसार संसार का सारा कार्य चलता है। एक एक प्राणि के जीवन में, उस की दिन चर्या में प्रभु कोई दखल नहीं देता। अपने अपने संस्कार, अपने अपने विचार व अपने अपने कर्मो के अनुसार प्रत्येक प्राणि सुख व दुख भोगता रहता है। अपनी सफलता व असफलता के लिये प्रत्येक प्राणि स्वयं उत्तरदायी है। अपनी असफलताओं निराशाओं व दुःखों के लिये सर्व शक्ति मान प्रभु को दोषी ठहराना, अनुचित ही नहीं, महापाप है। जिन्हों ने इस बात को हृदयंगम कर लिया है वे कहते हैं।

मुझे हर हार नई जीत सुझा देती है
मेरे सोये हुए साहस को
जगा देती है।

अब रहा संग्राम। यह संघर्ष का ही दूसरा रूप है संघष को शीत युद्ध (cold war) और संग्राम को उष्ण युद्ध (hot war) कहें तो भेद समझमें आजाता है। संघर्ष में शान्तिपूर्ण साधनों से काम लिया जाता है और संग्राम में अस्त्र शस्त्र व अन्य विस्फोटक तत्वों को काम में लाया जाता है। हमने देखा कि संघर्ष जीवन का एक आवश्यक अंग है जिस व्यक्ति व जाति में संघर्ष की आदत नहीं वह मृतप्राय है संघर्ष ही जीवन की निशानी है। यह ठीक है कि जहां तक हो सके हमें शान्तिपूर्ण साधनों से असत्य अन्याय व अभावका मुकाबिला करना चाहिए परन्तु ऐसे समय आसकते हैं और सब देशों के इतिहासों में आये हैं जब शान्ति पूर्ण ढग से किसी समस्या का हल न हो सका और मनुष्य को मनुष्य का खून बहाना आवश्यक हो गया। ये हिंसा व निर्दयता बुरी उसी समय है जब कि वह किसी व्यक्ति व जाति की काम, क्रोध, लोभ, मोह अभिमान जनित वासनाओं की तुष्टि के लिये की जाये। अलाउद्दीन खिलजी ने काम वासना की तुष्टि के लिये पद्मिनी को हथियाने के लिये चित्तौड़ पर चढ़ाई की। रावण ने अपनी बहिन शूर्पणखा को नाक काटी जाने से क्रोधित हो कर श्री राम चन्द्र जी से लड़ाई मोल ली। महमूदगजनवी तैमूर जग व नादिर शाह भारत की दौलत को पाने का लोभ संवरण न कर सके। धृतराष्ट्र ने पुत्र दुर्योधन के मोह में फंसकर महाभारत का युद्ध करवाया। सिकन्दर व हिटलर ने अभिमान में आकर अन्य देशों पर नाहक हमला कर दिया। ये संग्राम बुरे हैं क्यों कि ये बुरे उद्देश्य को अर्थात् हीन वृत्ति को लेकर प्रारम्भ किये गए। परन्तु धर्म सत्य न्याय व स्वदेश की रक्षा के लिये यदि संग्राम किया जाये, हजारों लाखों आदमियों का खून बहाया जाये तो क्या बुरा है। इन अमूल्य वस्तुओं की कीमत सदा खून से ही चुकाई जाती रही है।

भारत शान्ति प्रिय देश है, शान्ति पूर्ण साधनों से प्रत्येक समस्या को सुलझाना चाहता है परन्तु ऐसा विचार मन में आना कि अन्य साधनों की कभी अवश्यकता न पड़ेगी, अपने आप को धोखा देना है संग्राम कभीभी हमारे सिर पर थोपा जा सकता है। पाकिस्तान व चीन की हरकतें हमें इस तथ्य की याद दिला रही हैं। हमें शान्ति का पाठ यदि करते, युद्ध के लिये सर्वतोन्मुखी तैयारी को किसी दशा भी भुलाना नहीं चाहिए। शत्रु को कभी निर्बल नहीं समझना चाहिए।

(पृष्ठ ३ का शेष)

आध्यात्मिकता का अमृत भरें। यज्ञ कथाएं, प्रभात फेरियां तथा सुन्दर वेद समारोह किये जायें। अपने केन्द्र आर्य प्रादेशिक सभा पंजाब को अधिक शक्ति शाली बनाने में तन मन धन का सहयोग दिया जाये। जन्माष्टमी का पर्व भी है।

चौधरी वेदव्रत जी

आर्य समाज के पुराने दीवाने हमारे साथी भी आंखें बन्द कर गये। जीवन का क्या पता? भारत के नेता राजर्षि टण्डन तथा बंगाल के मुख्य मंत्री डा. राय जी के निधन की क्या किसी का आशङ्का थी? पर दुखद समाचार सब को शून्यवत् बना ही गया। स्वर्गीय वेद व्रत जी ने सारा जीवन समाज की सेवा में लगाया। आर्य प्रादेशिक सभा से सम्बन्धित रह कर लाहौर मे आर्य गजट के सम्पादक, अनार कली समाज के मन्त्री, सभा के उपदेशक तथा मद्रास में भी प्रचार कार्य में रहे। वानप्रस्थी बन कर भी समाज सेवा में जुटे रहे। उनके निधन से भारी दुख हुआ। पुराने सेवक धीरे धीरे आंखें बन्द करते जा रहे हैं। प्रभु आत्मा को शान्ति प्रदान करें—

विशेष धन्यवाद

जम्मू पुरानी मंडी समाज सभा का प्रसिद्ध समाज है। श्री कृष्ण लाल जी प्रधान, श्री. गोपाल आर्य जी मन्त्री तथा सारे मान्य अधिकारी बड़े प्रेमी हैं। गत दिनों श्री पं. खुशीराम जी सभा वेद प्रचार अधिष्ठाता जम्मू गये। सभा के लिए समाजके सज्जनों ने झोली भर दी। मैं तथा पं मेला राम जी रेडियो सिंगर भी जम्मू में प्रचार करते हुए, नवां शहर, अलनूर में प्रचारार्थ गये। नवांशहर के आर्य पुरुषों अखनूर के प्रेमियों को भी धन्यवाद जम्मू निवासियों का धन्यवाद—सं.

पं. अमर सिंह अध्यक्ष अंबाला करनाल मंडल का वेद प्रचार कार्य

कु० जगत राम जी के सुपुत्र का नाम करण संस्कार १७.६२ को अलाहर ग्राम में सम्पन्न हुआ। इस शुभ अवसर पर दो दिन प्रचार भी होता रहा और ४०) वेद प्रचार सभा को प्राप्त हुआ। अमर सिंह प्रचारक सभा।

प्रादेशिक सभा का हिसार मंडल मौत का ग्रास होते होते बाल २ बचा

पं० चन्द्रसेन जी आर्य हितैषी अपनी मण्डली समेत फतेहाबाद, धांगड़ की ओर से ३—७—६२ को प्रातः बस द्वारा हिसार आ रहे थे अग्रोहा से एक मील दूर बस का टायर फट जाने से लारी सड़क से दूर झाड़ियों में जा गिरी। प्रभु कृपासे ड्राइवर की चतुराई से लारी उलटने से बच गई। जिस से सब को संतोष हुआ प्यास और धूप से सब यात्री त्राही त्राही कर रहे थे। कुछ समय बाद हिसार से दूसरी लारी यात्रियों को लेकर हिसार पहुंची।

—व्यवस्थापक

क्या आज धर्म की आवश्यकता है?

(लि०-श्री ओमप्रकाश जी नारग एम.ए, डी ए वी. कालिज जालन्धर)

(गतांक से आगे)

ठीक यही हालत धर्म और Politics की है। धर्म कट्टा है तो Politics बन्दर है। *Politics* से हमारा अभिप्राय सरकार या किसी पार्टी विशेष से नहीं बल्कि मानव की अधिकार चेष्टा और पद लालसा की भावना से है जो इस से तरह-तरह के पाप करवाती है। इसी पद लालसा के मारे धर्म की वेदी पर बैठ कर भी मनुष्य पाप करता है, झूठ बोलता है। अपनी गद्दी को बचाने के लिए नाना प्रकार के षड्यन्त्र रचता है और अपने पर पक्षी को अनुचित उपायों से नीचे गिराने की कोशिश करता है। इस दृष्टांत, को भली-भांति समझ लेने पर धर्म पर लगाए गए सारे आरोप निस्सार प्रतीत होंगे। वास्तव में धर्म उन व्यापक सिद्धांतों का नाम है जिन पर आचरण करने से मनुष्य-मनुष्य बनता है। धर्म देश काल और परिस्थिति के बन्धन से मुक्त व्यापक सच्चाई है। धर्म वह कल्प वृक्ष है जिसकी छत्रछाया में मानवता बढ़ती फलती, फूलती और प्रवाण चढ़ती है। धर्म किसी सम्प्रदाय विशेष का नाम नहीं। इस दृष्टिकोण से सोचें तो प्रतीत होगा कि भिन्न २ मत सम्प्रदाय धर्म और Politics के मिश्रण से बने हैं जिन में बाह्य रूप तो धर्म का है परन्तु भीतर में राज-नीति का बन्दर उछल कूद मचा रहा है। यदि हम मनुमहाराज द्वारा किए गए धर्म के दस लक्षणों पर विचार करें तो साफ पता चलेगा कि यह सार्वभौतिक सिद्धांत हैं जो किसी भी मत अथवा सम्प्रदाय से सम्बन्धित नहीं। वह लक्षण यह है—(१) धीरज (२) क्षमा (३) दमन अर्थात् अपने आप को काबू में रखना, (४) अस्तेय अर्थात् चोरी न करना, (५) शौच अर्थात् पवित्रता (६) इन्द्रिय निग्रह अर्थात् इन्द्रियों पर कंट्रोल (७) धी अर्थात् सब कामों को बुद्धिपूर्वक विचार कर करना (८) विद्या (९) सत्य १० क्रोध रहित होना।

परन्तु इन सब बातों का दिग्दर्शन वर्तमान युग के सब से बड़े सुधारक महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती ने कराया। उन्होंने ही इस राजनीति रूपी बन्दर को पकड़ा जो उछल कूद मचा कर धर्म रूपी कट्टे को बदनाम कर रहा था। यह बात कोरी गप नहीं बल्कि ऐतिहासिक सच्चाई है। ऋषि ने इलाहाबाद में समय के बड़े २ धार्मिक नेताओं को एकत्र किया जिन में सर सईद अहमद खां, मौलवी मुहम्मद 'कासिम' और पादरी स्काट जैसे लोग शामिल थे। इन महानुभावों के सामने ऋषि ने यह सुझाव रखा कि जो सिद्धांत सभी धर्मों में एक से हैं। उनका सग्रह किया जाए और जिन पर मतभेद है उन को छोड़ दिया जाए। इसी सत्य सिद्धान्तों के सग्रह को आप विद्वान लोग स्वीकार करें और जनता में इसी का प्रचार करें। इस तरह भारत की जनता एक मतावलम्बी हो कर परस्पर का वैर विरोध छोड़ सकेगी और भारत में सुख शांति का राज्य स्थापित हो सकेगा। सभी विद्वानों ने ऋषि के सुझाव की प्रशंसा की परन्तु इसे स्वीकार करने के लिए कोई भी मैदान में न आया। इस बात को हम यों कह सकते हैं एक दृष्टि से मनुष्य की कुटिलता ने सात्त्विकता पर विजय प्राप्त की और दूसरी दृष्टि से ऋषि ने धर्म रूपी भेड़ के भेष में छिपे हुए *Politics* रूपी भेड़िए को नंगा कर दिया। जहां पर धर्म एक ईश्वर की पूजा सिखाता और परस्पर प्रेम का उपदेश देता है वहां पर मत मतांतर भेदभावों को जागृत करके और मनुष्यको मनुष्य का शत्रु बनाताहै। उदाहरण स्वरूप 'लाईइला-इल-लीला' कहने वाला व्यक्ति तब तक मुसलमान नहीं बनता जब तक वह 'मुहम्मद रसूल-इला' न कहे। इसी प्रकार जो व्यक्ति ईसा को खुदा का बेटा नहीं कहता वह ईसाई नहीं हो सकता। यही हाल सभी अन्य मत-मतांतरों का भी है। ऋषि ने जहां भारत की भोली जनता को कई एक सामाजिक बुराइयों से बचाया, वहां पर उसने धर्म और *Politics* के झगड़े मे दूध का दूध और पानी का पानी कर दिया।

धार्मिक, सामाजिक, साहित्यिक ऐतिहासिक और राजनैतिक लेखों को पढ़नेके लिए आर्य जगत साप्ताहिक के आज ही ग्राहक बनिये। वार्षिक शुल्क केवल ६) रु० है

दस नियमोंका पालन करना आर्योंका धर्म है

ग्राहक महानुभाव पत्र व्यवहार तथा शुल्कादि भेजते समय अपनी ग्राहक सख्या अवश्य लिखें, ताकि उत्तर देने में आसानी रहे।

अम्बाला छावनी में ब्रह्मा कुमारी मत आलोचना

दादा लेखराज (खूबचन्द्र) कृपलानी के पाखंड का भांडा फूटा ब्रह्माकुमारी समिति अंबाला छावनी की ओर से डी. ए. वी. हाई स्कूल के सामने और ब्रह्माकुमारी केन्द्र के बिलकुल नजदीक ८ से १५ जून तक आठ दिन वेदप्रचार तथा ब्रह्मकुमारी विरोध प्रचार की खूब धूमधाम रही। इस प्रचार में ब्रह्माकुमारी मत दर्पण के लेखक श्री ब्रह्मचारी जगदीश चन्द्र विद्यावाचस्पति, साहित्य रत्न और वैदिक साधन आश्रम के प्रसिद्ध स्नातक श्री ब्रह्मचारी सत्यव्रत जी सिद्धांत शिरोमणि शास्त्री, और अंबाला छावनी के सनातन धर्म सभा के बुजुर्ग विद्वान श्री पं० कलानंद जी वैद्य और आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के मशहूर संन्यासी स्वामी बेधड़क जी ने वेदों की महानता जतलाकर ब्रह्मकुमारी मत के अनोखे असूलों की पोल खोली शका समाधान का मौका भी दिया गया। प्रचार का जनता पर अच्छा प्रभाव पड़ा।

सयोजक
चिरंजीवलाल जी गुप्त
ब्रह्मकुमारी निरोध समिति
अम्बाला छावनी

आर्य समाज रीडिंग रोड नई देहली में वेद कथा

गत जून मास में श्री प जगदीश चन्द्र जी दर्शनाचार्य ने आर्य समाज बिडला लाइन, हनुमान रोड, तथा आर्य समाज पटेलनगर में वेद कथा की। इन स्थानों पर उपस्थिति पर्याप्त रही। पं. श्री जी की विद्वता से आकर्षित नर-नारी प्रतिदिन उत्साह से पधारकर श्रवण लाभ उठाते रहे प्रतिदिन पं. जी की माग बढ़ रही है आप आजकल आर्य समाज रिडिंग रोड में ठहरे हुए हैं।

—मत्री समाज

कैसे बढ़े प्यारा आर्यसमाज

आओ मिल कर सोचें

(ले० श्री आशुराम जी पुरोहित आर्य समाज सेक्टर ८ चंडीगढ़)

दु:ख क्यों नहीं जब हम आर्य समाज पर अपना सर्वस्व न्योछावर करने के लिए तैयार हैं। इसके वेद धर्म प्रसार के लिए प्राण तक भेंट करने को उद्यत हैं और हमारी उत्पन्न की हुई प्रजा हमारा बनाया हुआ परिवार जिस की रक्षा में हम ने अपने जीवन की एक एक घडी को लगा दिया। वह भी हमारे इस आंदोलन में भागीदार न बने। न सत्संगों में आयें न शिक्षा ग्रहण करें। तो क्या दु:ख की बात नहीं है।

—लेखक

—आज के पुत्र और पुत्रियां स्वत: प्रमाण वा परत. ?—

वर्तमान युवक सम्मेलनों पर प्राय: युवकों के संगठन और सुधार की योजनायें बनाई जाती हैं और अनेक प्रस्तावों में इनके लिये अनेक आदेश, संकेत और प्रेरणायें भी दी जाती हैं। इधर मिश्नरी आर्य समाजी वर्ग जिन के हृदय में वेद धर्म प्रसार की ज्वाला दिन रात जलती रहती है हर समय यही कहते रहते हैं कि नवयुवक और युवतियां आर्यसमाज के सत्संगों में नहीं आते अत: आर्यसमाज का वंश कैसे चलेगा ?

अभी गत दिनों मुझे हांसी जाना पड़ा। वहां के पुराने आर्य समाजी कार्यकर्त्ता श्री पारसनाथ से भेंट हुई। उन्होंने सत्संगों की चर्चा पर वार्तालाप में मुझे बतलाया कि वहां के वार्षिक उत्सव पर व्याख्यान के लिये एक प्रसिद्ध आर्य नेता के सुपुत्र के पास जाकर प्रार्थना की उन्होंने उत्तर दिया कि न मैं आर्य समाजी हू और न आर्य समाज के सम्बन्ध में कुछ जानता हू' यद्यपि वह आर्यसमाजी पुत्र दैनिक पत्र के सम्पादक हैं और प्रसिद्ध वक्ता हैं किन्तु आर्य समाजी पिता के वेद धम के लिये वह कुछ नहीं हैं। इस पर मनालो जितना खेद करलो सम्मेलन, परन्तु होगा क्या ?

रोग क्या है ?

यह कि 'हम क्या करें पुत्र पुत्रियां मानते ही नहीं हैं।' यह उत्तर माता पिताओं का है। जो कि प्राय सुनने को मिलता है। वास्तविकता यह है कि सभी आर्य समाजी सदस्य तो स्वयं भी सत्संगों में नहीं आते भला सन्तानों का क्या वर्णन ? हां कुछ आर्य सदस्य स्वयं तो अवश्य आते हैं किन्तु बिना गाड़ी के इन्जन की भान्ति। कुछ ऐसे हैं जो देवियों को तो ले आने में सफल हैं पर पुत्र पुत्रियों को ले आने में वह भी निर्बल। इसका अर्थ यह कि वेद धर्म शिक्षा की देना वा दिलाना अपनी सन्तति के लिये हमारा कोई ध्येय ही नहीं है। सम्भवत पाच सात प्रतिशत ऐसे हो जाय जो अपने कुमार और कुमारियों को भी प्रेरणा करके ले आते हैं। ऐसे श्रद्धालु माता पिता के श्रद्धा युक्त सन्तानों को आर्य समाज के समारोहों में खिले हुए फूलों की भान्ति प्रसन्न मन कार्य करते हुए देख आर्यसमाज का भविष्य कुछ उज्जवल प्रतीत तो होता है परन्तु शेष नव्वे वा पचानवे प्रतिशत भ्रष्ट वश का क्या किया जाये ? मैं पुराने आर्यसमाजियों वा आर्य वृद्धों में बड़ी श्रद्धा रखता हूं। जहां भी किसी ऐसे महानुभाव का सम्पर्क हो जाये। घण्टों उनके सह-वास में बैठने को मन करता है। वह भी छोड़ना नहीं चाहते और मैं भी नहीं जाता। सम्भवत इस-लिये कि खेतों को दे लो पानी अब बह रही है गंगा। इन से जो कुछ आर्यसमाज की पुरानी कथा और प्यार, तड़प और दर्द की वार्ता सुन सकते हो सुन लो फिर इन की टिकट तो कटने वाली है और आयो इतिश्री है। प्राय पुराने मिश्नरी आर्यसमाजियों का वंश आर्यसमाज और इस के कार्यक्रम से सर्वथा अनभिज्ञ है और है उपराम।

समस्या का समाधान

अब कभी कार्यकर्ताओं की बैठक में इस पर विचार विनिमय होता है कि युवकों को आर्यसमाज में कैसे लाया जाये ? तो प्राय. मेरा उत्तर वही एक होता है कि यह पुत्र पुत्रियां किस के हैं ? निस्संदेह हमारे तो प्रश्न यह नहीं कि क्यों नहीं आते अपितु यह कि हम क्यों नहीं लाते ? माता पिता ने उन्हें जन्म दिया। संस्कार दिये, बनाया पालन किया और शिक्षा दी। हम प्रजापति हैं और वह हमारी प्रजा हैं। फिर यह असमर्थता क्यों ? कि वह नहीं आते ?

इसका कारण एक बीमारी है जो पढ़े लिखों में अधिक चल रही है। उनका कहना यह है कि पुत्र पुत्रियां शिक्षित होकर अपनी विचार-धारा के अनुसार अपने मार्ग पर चलते हैं। हम बलात उन्हें खैंचने वाले कौन हैं ? यह साईकालोजी-कल फैक्ट है।

पता नहीं यह अंधा मनोविज्ञान वा अनार्यता कहां से आगई है पश्चिम के पृथकतावाद से ? जिस में कि परिवार का प्रत्येक सदस्य, शुतुर बे मुहार (बिना लगाम के ऊंट) की भान्ति स्वतन्त्र होता है वा आर्य संस्कृति के शत्रु मैकाले की शिक्षा पद्धति का दुष्परिणाम है ? जो भी हो वह किस हिन्दु समाज में इतना फैल गया है कि माता पिता अपने पुत्र पुत्रियों को भी अपने विचार देने में बुरी तरह पछाड़ गये हैं। यह अंधा मनो-विज्ञान आर्य तथा आर्य संस्कृति (हिन्दु संस्कृति) को निगले जा रहा है जिसके लीडर भी यह कहते हुए शर्माते हैं कि '*I am hindu by accident*' हम तो वेदादि सत्शास्त्रों के आधार पर बुद्धि और युक्तिवाद से भी परम्परा से यह मानते आये हैं कि मनुष्य संस्कारों से बनता है और यह संस्कार उसे जन्म लेने के पश्चात् क्रमश: तीन आचार्यों अर्थात माता-पिता और शिक्षक से मिलते हैं और बहुत आगे जाकर जब वह समाज (सोसाइटी) में स्वतन्त्रता पूर्वक गतिविधि करने लगता है तो वहां से भी उसे संस्कार मिलते हैं, किन्तु माता-पिता और आचार्य की अपेक्षा वह विचार उसे दबाने वा गिराने में असमर्थ होते हैं। कारण यह कि पूर्व के सस्कार उसके अन्दर जड़ पकड़ कर सुदृढ़ हो चुके होते हैं। हां पूर्व जन्म के संस्कारों की सम्पत्ति भी मनुष्य इस धरती पर ले आता है किन्तु यह नहीं भूलना होगा कि वह सस्कार भी इस वर्तमान जन्म में उपयुक्त साधन मिलने पर ही सींचे जाते हैं और फलते फूलते हैं। अन्यथा बिना जल, वायु और प्रकाश के जैसे वृक्ष वनस्पति आदि जड़ से सूख कर मर जाते हैं वैसे इनकी दशा होती है वा अनुकूल वातावरण न मिलने पर निर्बल रह कर वर्तमान के सबल संस्कारों से सदा दबे रहते हैं दूसरे यह कि उन पूर्व के संस्कारों के मिलने का साधन भी परम्परागत वही हैं जिनका वर्णन हम ऊपर कर चुके हैं। पूर्व के माता-पिता का नाम, धाम और था। परन्तु साधन वेद, शास्त्र और बुद्धि युक्ति सिद्ध रही हैं। अत: हम पुत्र पुत्रियों को स्वयंभू नहीं मानते। कोई उनके जन्मदाता हैं कोई उनके निर्माता हैं। हां,

(क्रमशः)

आर्यसमाज कुल्लू में कथा

श्री पं० नन्दलाल वैदिक मिश्नरी तथा श्री स्वामी सुधानन्द जी महाराज कुल्लू पधार चुके हैं आज से लगातार १५ रोज कुल्लू आर्य समाज में दोनों महानुभावों के भाषण प्रातः ७॥ से ८॥ बजे तक और रात्री ८॥ बजे से १०॥ बजे तक हुआ करेंगे—१५ से २२ जुलाई मनाली का प्रोग्राम बना है।

मन्त्री समाज

स्वामी आत्मानन्द वैदिक साधन आश्रम यमुनानगर

आर्य उपदेशक विद्यालय में ग्रीष्म के अवकाश के बाद नए वर्ष की पढ़ाई आरम्भ हो गई है श्री पं० रविदेव जी शास्त्री अध्यापन का कार्य बड़ी लगन से कर रहे हैं, जिस से विद्यार्थी बहुत सन्तुष्ट हैं, हर रविवार को विद्यार्थी साथ के समाजों में प्रचारार्थ भेजे जाते हैं। सुयोग्य प्रचार की लगन रखने वाले विद्यार्थी और भी लिये जाएंगे, इच्छुक अपने प्रार्थना पत्र भेज दें।

रक्षा बन्धन से वेद सप्ताह आरम्भ हो जाएगा, जिन २ आर्य समाजों की सूचना समय पर मिल जायगी उन के लिये उपदेशकों का प्रबन्ध कर दिया जायगा आर्य संन्यासी और वानप्रस्थी प्रचार कार्य भली प्रकार चला रहे हैं, प्रांतीय समाजों को प्रचार में सहयोग दिया जा रहा है। आश्रम में और महात्माओं के आने की आशा है, साधना, स्वाध्याय और वेदप्रचार की लगन रखने वाले महानुभावों का व्यय आदि आश्रम की ओर से है।

—ताराचन्द वानप्रस्थी

सार्वदेशिक आर्यप्रतिनिधि सभा नई दिल्ली ?

१५ जुलाई को हिन्दी दिवस मनाएं

भारत सरकार से हिन्दी के स्वरूप को न बदलने की मांग की जाए

सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा के मन्त्री श्रीयुत बा० कालीचरण जी आर्य ने १५ जुलाई को हिन्दी दिवस मनाने का समस्त आर्य समाजों को आदेश दिया है। उनका प्रेस वक्तव्य इस प्रकार है—

सभी को यह समाचार पत्रों द्वारा ज्ञात हो ही चुका है कि केन्द्रीय सरकार आकाशवाणी की हिन्दी को सुगम करने के स्थान पर, उस में उर्दू फारसी के शब्द भरने का प्रयत्न कर रही है। सरकार का यह प्रयत्न संविधान के विरुद्ध एवं देश की भावात्मक एकता पर प्रबल प्रहार है।

अतः देश के सभी आर्य समाजों से निवेदन है कि वे १५ जुलाई को अपने-अपने नगरमें हिन्दी दिवस मनाएं। सभाओं द्वारा जनता को विषय की गम्भीरता से परिचित कराया जाए और एक प्रस्ताव पारित कर, राष्ट्रपति, प्रधान मन्त्री गृह-मन्त्री, सूचना मन्त्री, सार्वदेशिक सभा, व प्रांतीय सभा तथा समाचार पत्रों को भेजा जाए। जिस में यह मांग की जाए कि यह नीति अविलंब बदलें।

आर्य-युवक परिषद्, दिल्ली की सत्यार्थ प्रकाश की परीक्षायें

आर्य युवक परिषद् दिल्ली ने महर्षि दयानन्द के अमर ग्रन्थ सत्यार्थ प्रकाश के लिए १५ अगस्त १९६२ को सारे देश में तीन परीक्षायें कराने का अभूत पूर्व आयोजन किया है।

इन परीक्षाओं सम्बन्धी सभी प्रकार की जानकारी परीक्षा मन्त्री श्री देवव्रत जी धर्मेन्दु, १६५४ कूचा दखिनी राय, दरिया गंज, दिल्ली से प्राप्त की जा सकती है।

देवीदयाल आर्य
प्रधान

भारत पितामह—दयानन्द—

(श्री मित्रसैन जी आर्य, शास्त्री, एम एस सी. अलीगढ़)

विकल था जब देश सारा आ ऋषि तुमने बचाया।
मंवर में जलयान था उसको किनारे से लगाया।
सत्य विद्या खो चुकी थी, ज्ञान का दीपक जलाया।
देश जब परतन्त्र था स्वाधीनता का गान गाया॥
रम्य आर्यावर्त उपवन जब कि सूखा हो चला था।
विहग गया सब मौन, भूला, मोर भी नर्तन कला था।
शिक्षा सभी दूषित हुई, पाश्चात्य दर्शन ही भला था।
'दुर्भाग्य भारत पितामह! तेरी शक्ति से टला था॥

ब्रह्मकुमारी निरोध समिति का चुनाव

२४ जून ६२ को ब्रह्मकुमारी निरोध समिति अम्बाला छावनी की बैठक आर्यसमाज मन्दिर पंजाबी मुहल्ला में हुई जिसमें समिति के अधिकारिओं का निम्न प्रकार चुनाव हुआ।

प्रधान—श्री प्यारेलाल कालरा (आर्यसमाज लाल कुर्ति बाजार)।

उपप्रधाना—श्रीमती लीलादेवी चौपड़ा (आर्य स्त्री समाज)।

उप प्रधान—श्री वेद प्रकाश (आ० स० कच्चा बाजार)।

मन्त्री—श्री चिरजीव लाल गुप्ता (आ० स० कबाड़ी बाजार)।

सहायक मन्त्री—श्री रमेशचन्द्र कपिल (पंजाबी मुहल्ला)।

कोषाध्यक्ष—श्री रघुनाथ राय (आ० स० कबाड़ी बाजार)।

—चिरजीवलाल गुप्त

(पृष्ठ २ से आगे)

प्रयत्न करूंगा जिस से वे प्रत्येक कार्य में अपने देश का हित अहित सोच लें और देश की उन्नति के प्रत्येक कार्य में प्रथम पग उनके पड़ें।' आप बड़ी सरलता से उत्तर दे सकते हैं कि किस का चुनाव होगा। इस से स्पष्ट है कि विद्यार्थी को संकुचित हृदय न रख कर अपने मन में पूर्ण विश्वास रखना चाहिए कि 'केवल मैं ही हूं' जिस ने कठिन परिश्रम करके अपने व्यक्तित्व को ऊंचा कर राष्ट्र भर का अपने कन्धों पर लेना है।

बड़ों के प्रति श्रद्धा—

विद्यार्थी जीवन में बड़ों के प्रति श्रद्धा का होना भी अत्यन्त आवश्यक है क्यों?

हम भली प्रकार से जानते हैं कि यदि हमारे पिता, हमारे अध्यापक अथवा अन्य कोई बड़े व्यक्ति कोई भी कार्य हमें करने के लिए समझाते हैं तो वह अपने हित के लिए नहीं बल्कि हमारे हित के लिये। अब यदि हमारी उन में श्रद्धा नहीं तो हम उनकी बात को नहीं मानेंगे और अपने जीवन के हित का अवसर खो बैठेंगे।

(पृष्ठ ८ का शेष)

सांस्कृतिक कार्य है। भारत की प्रत्येक संस्था को इसे करना है। हमारी आपसे प्रार्थना है कि आप इस अभियान को अपने हाथों में लें, इस एक मास के समय में जन-मानव को सचेत और जागृत करने का पुनीत कर्त्तव्य निभायें और सम्मेलन में अधिक से अधिक संख्या में सम्मिलित हों।

सस्नेह सवदीय
रघुवीर, संयोजक अखिल भारतीय भाषा-सम्मेलन

वर ... गाते सो

(श्री वेद प्रकाश जी ... र्य स्कूल लुधियाना)

प्रातः उठ गुरु जन ... चढ़ाते जो।
शुभ कर्मों का निश्चय ... राते जो॥
बल भरने हित अपने ... ने जो।
अनुशासन में रख अपने ... त जो॥
स्नान ध्यान सन्ध्या वन्दन मे ... लगाते जो।
हवन यज्ञ सत्संग धर्म की घर ... धूम मचाते जो॥
चाय पी पी न दिल फूंके दूध मलाई खाते जो।
रक्खे उच्च विचार सादगी फैशन मूल भगाते जो॥
मात पिता गुरु सेवा आदर कर के हर्ष मनाते जो।
दीन दुखी के बनें सहायक करुण हृदय कर पाते जो॥
सत्य सुपथ पर डट वैरी के छक्के खूब छुड़ाते जो।
गलती हो तो माग क्षमा लें कुपथ नहीं अपनाते जो॥
सद्ग्रन्थों को पढ़ें विचारे चलते आप चलाते जो।
संस्कार करते नित अपना देव तुल्य बन जाते जो॥
नहीं स्वार्थ में जीवन खोते पर उपकार कमाते जो।
गुण गण गौरव को अपना कर यश की गन्ध उड़ाते जो॥
सद्विद्या सद्ज्ञान कर्म में अपना चाव बढ़ाते जो।
प्रेम प्रीति रखते लघु जन से मैत्री भाव दृढ़ाते जो॥
सीख कला विज्ञान सभी कुछ मर्म जान इर जाते जो।
कमल सरीखे रह भव जल में मुक्ति अन्त में पाते जो॥
नहीं पूजते पत्थर प्रतिमा ढोंगों से टकराते जो।
देश धर्म पर कटते मरते कभी नहीं घबराते जो॥
कण कण व्यापक परमेश्वर को शुद्ध हृदय से ध्याते जो।
हाथ सुमरनी बगल करनी रखना दम्भ रचाते जो॥
श्रद्धामृतक का कभी न करते श्रद्धा सत्य दिखाते जो।
यथा योग्य व्यवहार करें और जीवन सफल बनाते जो॥

अदालती नोटस

अदालत श्री कृष्णलालदास सब जज साहब दरजा अव्वल गुड़गावा

मुकद्दमा नम्बर २०४ सन् १९६१

मुकद्दमा महताबसिंह वल्द श्री राम मेहर बगैरह सकना गुड़गावां

बनाम—सिरीचन्द्र

बनाम—ओमप्रकाश वल्द सिरीचन्द्र, सावित्री उर्फ सत्तो दुख्तर सिरीचन्द्र बल्ला दुख्तर सिरीचन्द्र सकना चर्खी दादरी जिला महेन्द्रगढ़ कायम मुकाम।

मुकद्दमा मुन्दरजा अनवान वाला मे मुद्दई ने एक नालिश बाबत जर नकद बनाम सिरी चन्द मुदालय दायर की। दौराने मुकद्दमा सिरी चन्द्र मुद्दाला वफात पा गया। जिस पर मुद्दई ने दरख्वास्त बाबत बनाने कायम मुकाम मतमफी दायर की। लिहाजा इश्तहार हजा बनाम ओम प्रकाश बगैरह कायम मुकाम जारी किया जाता है कि ओम प्रकाश बगैरह अदालत हजा में बतारीख २४. ७. ६२ पेश होकर पैरवी मुकद्दमा करें। वरना कार्यवाई हस्ब जाब्ता अमल में लाई जाएगी। आज बतारीख ६ मई १९६२ बदस्तखत मेरे व मोहर अदालत से जारी हुआ।

मोहर अदालत — दस्तखत हाकिम

हिन्दी समस्या पुनः जागृत

(ले० श्री डा० रघुवीर जो सयोजक अखिल भारतीय भाषा सम्मेलन नई देहली)

बन्धुवर,

आज हिन्दी भाषा पर बहुत बड़ा संकट आया है। इतिहास में इतना भीषण प्रहार हिन्दी भाषा पर कभी न हुआ था।

सन् १९४७ में हम अंग्रेजों की दासता से तो मुक्त हुए किन्तु सन् १८३८ में प्रचालित मैकाले की दासता की शृंखलाओं से मुक्त न हो पाए। ये शृंखलायें बढ़ती ही गई। भारतीय जनता की उभरती हुई आशाओं को संभालने के लिए सन् १९५० में हिन्दी भाषा को राष्ट्र य पद घोषित तो किया किन्तु उस पद पर हिन्दी को बिठाया नहीं गया। कहा गया कि १५ वर्ष के पश्चात् बिठायेंगे। दो-तीन वर्ष व्यतीत होते ही हिन्दी का विरोध आरम्भ किया गया और हिन्दी जनता को साम्राज्यवादी ठहराया गया। अभी १२ वर्ष ही पूरे हो पाएँ थे कि भारतीय शासन ने मर्मविदारक घोषणा की कि ६ अगस्त १९६२ को आरम्भ होने वाले ससदीय सत्र में अंग्रेजी को राष्ट्रभाषा हिन्दी की सखी-भाषा घोषित किया जायेगा और अनिश्चित काल तक भारतीय शासन, शिक्षा, व्यापार, न्याय और संसद् के क्षेत्रों में अंग्रेजी का अनिवार्य प्रयोग होगा। जिन-जिन क्षेत्रों में आज अंग्रेजी का आनिवार्य प्रयोग होगा। जिन-जिन क्षेत्रों में आज अंग्रेजी चलती है उन-उन क्षेत्रों में वह चलती रहेगी।

यह भारत और भारतीय आत्मा का अपमान है। यह लोकतन्त्र का व्याघात है। जिस भाषा को कृत्रिम रूप से जानने वाले केवल २ प्रतिशत जन हों उस भाषा को भारत की राष्ट्रभाषा बनाना लोकतंत्र का उपहास है। हिन्दी भाषा के बोलने वालों की संख्या ४२ प्रतिशत कही जाती है। ४२ प्रतिशत की भाषा के स्थान में २ प्रतिशत की भाषा को रखना अन्याय है! छः सहस्र मील दूर की भाषा को शिक्षा का माध्यम बनाना देश के विकास को रोकना है।

भारत की जनता को भ्रान्ति में डाला गया है कि अंग्रेजी केवल हिन्दी की सखी भाषा बन रही है। अहिन्दी-भाषियों को इससे लाभ होगा। निराधार वंचना मात्र है। प्रत्येक प्रान्त में शासन, विधान-सभा, न्यायालय, शिक्षा, उद्योग, व्यापार तथा सर्वसाधारण के उच्च सामाजिक जीवन में अंग्रेजी प्रान्तीय भाषाओं का रूप ले रही है। अतः यह सभी भारतीय भाषाओं के बोलने वालों का कर्त्तव्य हो जाता है कि वे आत्मगौरव, आत्माभिव्यक्ति एवं आत्मविकास के हेतु एक स्वर से अंग्रेजी का सामूहिक विरोध करें। यदि इस समय अंग्रेजी का न विरोध किया गया तो फिर हमारी सन्तान अपनी मातृभाषा को कैसे बढ़ सकेगी। वे तो केवल अंग्रेजी की भक्त बनेंगी। उनके जीवन कार्यों का माध्यम अंग्रेजी बनेगी। यदि हमने आज से ही अंग्रेजी का विरोध आरम्भ कर दिया और इसको चलाते रहे तो आज न सही तो कल अथवा परसों, एक वर्ष में या चार वर्ष में शासन का सिंहासन डोलेगा और भारतीय भाषायें देश के जीवन में अपना स्थान ग्रहण करगी।

हमने अंग्रेजी का विरोध करने के लिए एक अखिल भारतीय भाषा-सम्मेलन का आयोजन किया है। इस सम्मेलन का पहला अधिवेशन ११ तथा १२ अगस्त को दिल्ली में होगा। इस अधिवेशन में भारत के सब प्रांतों और सब भाषाओं के प्रतिनिधि आयेंगे। वह महान्

(शेष पृष्ठ ७ पर)

मुद्रक व प्रकाशक श्री संतोषराज जी मन्त्री आर्यप्रादेशिक प्रतिनिधि सभा पंजाब जालन्धर द्वारा वीर मिलाप प्रेस, मिलाप रोड जालन्धर से मुद्रित तथा आर्य जगत कार्यालय महात्मा हंसराज भवन निकट कचहरी जालन्धर शहर से प्रकाशित मासिक—आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा पंजाब जालन्धर

टैलीफोन न० ३०५७ [आर्यप्रादेशिक प्रतिनिधि सभा पंजाब जालन्धर का साप्ताहिक मुखपत्र] Regd No. P.121

एक प्रति का मूल्य १३ नये पैसे — वार्षिक मूल्य ६ रुपये

वर्ष २२ अंक ३० रविवार १४ श्रावण २०१९— २९ जुलाई १९६२ दयानन्दाब्द १३८ (तार-प्रादेशिक जालन्धर

वेद सूक्तय:

ईशे पशुपतिः पशूनाम्

जो मनुष्य अपनी पशूनां—इन्द्रियों को ईशे—वश में कर लेता है वह पशुपति—स्वामी बन जाता है। प्रभु भी पशुपति है क्योंकि वह सारे प्राणियों का स्वामी है। प्राणी उसी के हैं।

स यज्ञियं भाग मेतु

अपनी इन्द्रियों को जीतने वाला वह यज्ञमय भागं—स्थान को एतु—प्राप्त करता है। ऐसा व्यक्ति सदा ही ऊंची भूमि व अवस्था को पाता है।

रायस्पोषा यजमानं सचंताम्

ऐसे जितेन्द्रिय यजमान को रायस्पोषाः—धन सम्पत्तियां सचन्ताम् मिलती हैं। इन्द्रियों को जीतने वाला सब प्रकार की विभूतियों से मालामाल हो जाता है।

अथर्व वेद

वेदामृत

येभ्यो माता मधुमत् पिन्वते पयः पीयूषं द्यौरदितिरद्रिबर्हाः। उक्थशुष्मान् वृषभरान्त्स्वप्नस सस्तां आदित्यां अनुमदा स्वस्तये ॥

ऋ० मं० १० सू० ६३ म० ३

अर्थ—(येभ्य) जिन के लिए (माता) माता तथा भूमिमाता (मधुमत्) मीठे (पय) दूध आदि पदार्थ (पिन्वते) देती है (पीयूष) अमृतजल को (द्यौ) प्रकाश से भरा (अदिति.) नाश न होने वाला (अद्रि) मेघों से (बर्हा) ढका हुआ द्युलोक अमृत जल देता है। ऐसे (उक्थ शुष्मान्) ज्ञान से बलवान् (वृष भरान) शक्ति से भरे हुए (सुअप्नस) शुभ कर्मों वाले (तान्) उन (आदित्यां) सूर्य की भांति दिव्यजनों को (अनुमदा) प्राप्त करें (स्वस्तये) कल्याण के लिए—ऐसे २ ज्ञान व शक्ति से भरे हुए, शुभ कर्मों को करने वाले, सूर्य के समान आचार विचार में चमकने वाले देव जन हमें जीवन पथ दिखलाने व उपदेश देने के लिए प्राप्त होते रहें।

भाव—यह भूमि माता है तथा प्रकाश से भरा द्यौ पिता है। जन्म देने वाली जननी भी माता तथा ज्ञान के प्रकाश का दाता आचार्य पिता है। यह धरती मां व द्युलोक पिता बनकर जिनको अपने अन्न, फलों के उपहार देकर सदा पालता है। विदुषी माता और ज्ञानी गुरू जिन के लिए जीवन की शिक्षा दीक्षा देता है। जो शरीर की शक्ति से भरे हुए हैं, ज्ञान की सम्पदा से मालामाल हैं, जिनका आचार सौंदर्य सदा अनुकरण के योग्य है, जिनकी तीनों अवस्थाएं सुन्दर हैं, जो अपने तेज से आदित्य के समान चमकते चमकाते हैं—ऐसे दिव्य गुणों अनुपम शक्तियों, जीवन निर्माण में समर्थ विचारों के केन्द्र बने हुए है। वे मान्य सज्जन उपदेशक, नेता हमें सदा प्राप्त होवें तथा ऐसे निर्भित देवजन ही हमें कल्याण के लिए सद्उपदेश करने वाले मिलते रहें। ये देवजन ही सच्चे देवगण हैं। इन के द्वारा ही कल्याण है—सं०

ऋषि दर्शन

सर्वेभ्यो महत्तरम्

वह ब्रह्म सर्वेभ्य—सब से महत् तरम्—बड़ा है। संसार में जितने भी पदार्थ हैं—इन सब से परमेश्वर महान् है। उससे कोई भी बड़ा नहीं है।

सर्व मनुष्यैः पूज्यम्

वही परमेश्वर ही सर्व—सारे मनुष्यै—मनुष्यों से पूज्य—पूजने योग्य है। पूजा उसी एक ब्रह्म की करनी चाहिए। वही पूज्य है।

तदेव ब्रह्म विज्ञेयम्

लोगो! तद् एव ब्रह्म ही विज्ञेयम—जानने के योग्य है। इसी मानव जीवन में यदि उसे न जाना तो कुछ भी न जाना उसे जानना ही होगा।

भाष्य भूमिका

अध्यात्मवाद—लेखमाला ४

कठ उपनिषद् का सार—९-१०वां

(श्री ज्ञान सिंह जी आर्य करोल बाग नई देहली)

(गतांक से आगे)

वह तमाम इंद्रियों का राजा है। उसकी शक्ति की उसी के कारण है। जब जीवात्मा शरीर से बाहर निकल जाता है तो शरीर निकम्मा व निरर्थक हो जाता है। प्राण व अपान व अन्य इंद्रियां शरीर में जीवात्मा के आश्रित होकर काम करती हैं। उनकी शक्ति उसी वक्त तक रहती है जबतक जीवात्मा शरीर में रहता है।

यम ने जीवात्मा को मीठे फल खाने वाला कहा है। यह ठीक है कि मनुष्य अपने कर्मों का फल भोगता है। परन्तु यह फल हमेशा मीठा तो नहीं होता, कडवा फल भी खाना पडता है। मीठा फल सुख का सूचक है और कड़वा फल दुःख का। मनुष्य को जीवन में सदा सुख तो मिलता नहीं दुःख भी मिलता है। इसलिये आत्मा को स्वादु व मीठा फल खाने वाला कहने से यह अभिप्राय प्रतीत होता है कि जीवको जो सुख दुख अपने कर्मों के अनुसार मिलता हैं वह उसे मीठा समझ कर भोगे।

भगवान न्यायकारी है। जिस तरह डाक्टर जब कोई ओपरेशन करता है यह कडवी दवाई पिलाता है तो वह ऐसा रोगी की बेहतरी के लिये ही करता है। इसी में वह उसका लाभ समझता है। इसी तरह हमें जो दुःख मिलता है उसमें भी हमारे आत्मा की उन्नति की भावना ही छिपी हुई होती है। किसी मैले कपड़े को स्वच्छ करने के के लिये पत्थर या लकड़ी के तख्ते पर पटकना ही पड़ता है। जब यह दुख हमें अपने कर्मों के अनुसार मिलते हैं और उनमे हमारी भलाई निहित होती है तो हम उन्हे प्रसन्नता से क्या न भोगें और क्यों इस जीवन को हंस कर न गुजार दें।

ऐ शमा तेरी उमर तबई, है एक रात।
रो कर गुजार दें या हसकर गुजार दे॥

दुख भोगना तो पड़ेगा ही अगर हम इससे बच नहीं सकते तो रो रो कर भोगने से क्या लाभ।

देह धरे का दण्ड है, काहू के होय,
ग्यानी भुगते हंसी हंसी, मूरख भुगते रोये।

सुख को भी परमात्मा का प्रसाद समझ कर ही भोगना चाहिये ताकि मन मे अभिमान पैदा न हो।

लेख दसवां

आत्मा न कभी पैदा होता है और न मरता है। यह अपने ज्ञान व कर्म के अनुसार शरीर बदलता रहता है और एक योनि से दूसरी मे जाता है। यदि उसे मनुष्य शरीर मिलता है तो जहा वह पूर्व जन्म के कर्मो का फल भोगता है वहां उसे नये कर्म करने का अवसर भी मिलता हैं पशु पक्षी के शरीर में वह अपने पिछले कर्मों का ही फल भोगता है। नये कर्म नहीं करता। केवल मनुष्य जन्म में ही वह अपना सुधार करके आगामी अधिक अच्छे जीवन का अधिकार प्राप्त कर सकता है। इस तरह वह जन्म मरण का चक्र काटता रहता है। जब तक कि वह मुक्ति प्राप्त नहीं कर लेता। मनुष्य का शरीर ११ द्वार वाली पुरी कहा गया है जिसमें आत्मा निवास करता है।

यम ने यह भी बताया कि जीव आत्मा दोनों आत्मा हैं। जीव आत्मा शरीर में रहता है और परमात्मा सारे ब्रह्माण्ड में। आत्मायें अनेक हैं परन्तु उनकी जाति एक ही है। जैसे शुद्ध पानी की सौ बूंदे, अनेक तो हैं परन्तु एक बूंद दूसरी से भिन्न जाति की नहीं है। जीव आत्मा भूत व भविष्य दोनों पर शासन करता है। भूत व भविष्य पर एक ही पुरुष का शासन तभी हो सकता है जब उसकी एकता बनी रहे। यदि आत्मा केवल इस दशा में वर्तमान अवस्था का ही नाम है और इससे पूर्व दशा में कोई भिन्न अवस्था जीव था और आगामी दशा में कोई और ही अवस्था दृष्टिगोचर होगी तो तीनों कालो में एक ही शक्ति का शासन तो न रहा। क्योंकि जीव आत्मा भूत व भविष्य दोनों पर शासन करता है। इससे स्पष्ट है कि एक ही शक्ति भूत व भविष्य में विद्यमान रहती है। वर्तमान काल का वर्णन नहीं किया गया यह इसलिए कि वास्तव में वर्तमान काल की कलपना कठिन है। कोई वर्तमान दशा, इससे पहले कि हम उसके बारे में सोचें, भूत बन जाता हैं। वतमान केवल भूत व भविष्य के मिलाप का नाम है। वह एक बिन्दु के समान है जिसकी लम्बाई चौड़ाई व मोटाई नहीं होती है। इससे भी यम का अभिप्राय यही है कि वही आत्मा जो वर्तमान शरीर धारण करने से पहले था वही अब है और वही शरीर छोड़ने के बाद भी कायम रहेगा। अर्थात आत्मा का नाश नहीं होता। यम का उपदेश इसी तत्व के समझाने में केंद्रित है कि आत्मा का कभी नाश नहीं होता।

आत्मा शरीर के अन्दर विराजमान तो है परन्तु प्रश्न उपस्थित होता है कि वह शरीर के किस भाग में स्थित है। शरीर के दो भाग इस सम्बन्ध में प्रमुख समझे जाते है एक मस्तिष्क और दूसरा हृदय। जब हम कोई आवाज सुनते है तो कान से तरंगें विशिष्ट नसों के द्वारा मस्तिष्क के किसी विशिष्ट भाग में आ पहुंचती हैं और हमें उस ध्वनि का या ध्वनि के स्रोत का ज्ञान होता है। इसी तरह नेत्र या अन्य ज्ञानेन्द्रियों के द्वारा प्राप्त होने वाले ज्ञान की अवस्था है। तो क्या जीवात्मा मस्तिष्क में बैठा हुआ है ऐसा तो नहीं परन्तु एक बात स्पष्ट है कि देखने सुनने का सम्बन्ध हाथ पांव की अपेक्षा मस्तिष्क से अधिक है। इसी तरह भावों का सम्बन्ध हृदय से है भय से हृदय धड़कता है। प्रसन्नता व अप्रसन्नता के साथ भी हृदय का सम्बन्ध है।

उपनिषद में हृदय की गुफा को आत्मा का निवास स्थान माना गया है और कहा गया है कि वह अंगूठे के बराबर मात्रा वाले हृदयाकाश में स्थित है। जीवात्मा का अपना कोई शरीर नहीं इसलिए इसकी कोई मात्रा नहीं हो सकती। मात्रा के दृष्टिकोण से कहा जाता है कि वह छोटी वस्तु से भी छोटा है, अर्थात वह अणु हैं। जो लोग उसकी मात्रा को नहीं बल्कि उसके प्रभाव को ध्यान में रखते हैं वह उसे विभु अर्थात व्यापक मानते हैं। उपनिषद में यह भी कहा गया है कि आत्मा जीवन धारण करने वाला है इस का अर्थ यही है कि शरीर में जहां जीवन है वहां आत्मा का प्रभाव है। क्योंकि शरीर के सारे अंग जीवित हैं इसलिये इस दृष्टिकोण के अनुसार आत्मा सारे शरीर में व्यापक है। वह सारे अंगो में विद्यमान है। उपनिषद में जैसा कि ऊपर कहा गया है हृदय को आत्मा का स्थान माना गया है जब यह हृदय से निकल जाता है हृदय की गति बन्द हो जाती है और शरीर मृतक बन जाता है जब तक यह हृदय में रहता है इस का प्रभाव सारे शरीर के अंगो में दिखाई देता है। एक और उपनिषद में कहा गया है कि आत्मा सिर की चोटी से लेकर नाखून के अन्तिम भाग तक

(क्रमशः)

सम्पादकीय—

आर्य जगत्

वर्ष २२] रविवार १४ श्रावण २०१८, २९ जुलाई १९६२ [अंक ३०

भवन और भावना

भारत में दोनों का सुन्दर समन्वय था। भवन निर्माण-कला में भी हमारा देश सारे विश्व का शिरोमणि था इसमें कोई सन्देह नहीं है। रामायण युग के भव्य-भवन महाभारत काल की शिल्प-कला तथा उसके बाद के राष्ट्रिय राज्यके सुन्दर आवासों की निर्माण कला के प्रसगों को पढ़कर, पुराने भवन अवशेषों को देखकर आज भी हमार मस्तक गर्व से उन्नत हो जाता है। उनमें लगाये हुए लघु और विशाल पत्थरों को तथा उन को जोड़ने वाले वज्रलेप (सीमेंट) को देखकर कौन चकित नहीं होता। किन्तु इस बात का भी हमें मान है कि इन भवनों में भव्य-भावना भी सर्वत्र जीवन में काम करती थी। भवन केवल खाली भावनों के रूप में ही नहीं थे प्रत्युत भावना से भर-पूर थे। विदेशी यात्रियों, राजदूतों, शिक्षा ग्रहण के लिए समय २ पर आनेवाले लोगों ने भारत के भव्य-भवनों की भरपूर प्रशंसा की है वहां पर इन को भावनाओं से भरा हुआ भी बताया है। इतिहास के ये प्रसग आज भी सोने के अक्षरों में लिखे मिलते हैं। राजमहल भी इस भावना से खाली न थे। आर्य-सभ्यता की इन दोनों का समन्वय विभुति बन कर रहा। जो अवस्था सुन्दर शरीर में आत्मा की है। जैसे सुन्दर से सुन्दर शरीर भी आत्मा से शून्य सर्वथा बेकार होता है वैसे ही भावना से रहित भव्य-भवन भी बेकार माना जाता है। आर्यसभ्यता में दोनों के समन्वय पर परम्परा से ही ध्यान दिया गया है किन्तु आगे इस भोग प्रधान युग में भवन और भावना का सम्बन्ध समाप्त होता जा रहा है। केवल शरीर के बाह्य लावण्य का मान होने लगा है। भवन के भव्यपन का ध्यान रखा जाने लगा है। उस के अन्दर की भावना प्राय. ओझल होती जा रही है। ऐसी अवस्था में जो फल होता है वही सामने आ रहा है। जीवन के प्रसाद आज के प्रासाद से निकालता जा रहा है। क्या आज के भवनों में विचारों की उच्चता, आचार की पवित्रता तथा निर्माण की दिव्यता दिखाई देती है ? सहानुभूति कितने भवनोंमें है ? पर वेदना में वेदनामय बन जाना कहां है ? पर सेवा में समय का समपर्ण अब तो सपने की वस्तु बनती जा रही है। भावनाके भागने से हित, परोपकार, सेवा, उदात्त-भाव, विश्व प्रेम, करुणा, परानु-भूति, विश्वात्म विचार-सारे उच्च विचार धीरे धीरे पर लगा कर उडते जा रहे हैं। सक्षेप में कहा जा सकता है कि आज भवन तो चारों ओर बनरहे हैं पर इनको भव्य बनाने वाली भावना भागती जा रही है तभी इन में शांति नहीं, प्रेम नहीं, कल्याण की ज्योति नहीं है।

आर्य समाज के पास बड़े-बड़े सुन्दर भवन हैं, संस्थाएं हैं और हैं विशाल मन्दिर। इन को देख-देख कर चित्त बड़ा प्रसन्न होता है। अनेक समाज भवन तो इतने महान्, भव्य तथा दुर्ग के समान प्रतीत होते हैं। यह भी वैभव व सम्पन्नता का चिन्ह है। अपनी समाज की विशाल संस्थाओं में कितनी रौनक है, ये छावनियां सी हैं। परन्तु सावधान ! यहां भी भवन और भावना का पुराना समन्वय टूटता दृष्टिगो-चर होने लगा है। यदि हम ईंट पत्थरों की पूजा करने वाले दूसरों की समालोचना करते हैं, उनका ध्यान ईंट प्रस्तर की जड़मूर्तियों को बनाने सजाने में लगा है। कहीं समाज के अन्दर भी ईंट पत्थरों के निमित्त इन भवनों की पूजा में भावना समाप्त न होती जाये—इस का पूरा-पूरा ध्यान रखना चाहिए ! भवन भी हों तथा उन में भावना भी काम करती रहे। इनमें जब कोई आ जाये उसे ऐसा प्रेम व्यव-हार हो कि उसके मन में आर्य समाज के लिए श्रद्धा पैदा हो जाये। लोग सिन्द्धातों को बाद देखते हैं—जीवन में इनका कहां तक समावेश है यह पहिले देखते हैं। भवन में भावना प्रथम देखते हैं।

इस लिए अपने भवनों में भावना का पूर्ण ध्यान रखे। नहीं तो प्राण हीन शरीर के समान इन की अवस्था होगी।

—त्रिलोक चन्द्र

एक और ज्योति गई

आर्य समाज के प्रसिद्ध, ऊचे आचार वाले शात सौम्य स्वभाव के श्री पं. भीमसेन जी विद्या-लंकार का निधन पढ़ कर सुन कर कौन आर्य भाई बहिन है जिसे अतीव शोक नहीं हुआ होगा। स्वर्गीय पण्डित गुरुकुल कांगड़ी की पुरानी पीढ़ी के स्नातक थे। आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के कई वर्ष तक मन्त्री रहे। बड़े प्रसिद्ध लेखक थे। आप की गणना उन स्तम्भों में होती थी जो आर्यसमाज की सेवा मौन हो कर करते हैं। लाहौर के बाद अम्बाला छावनी में आर्य प्रैस चलाते थे। कैंसर रोग आप को ले ही गया। श्री गोविन्दपुर में आप के मान्य पिता जी ने आर्य समाज बड़ा भारी कार्य किया। आप समाज सेवा में अपना समय थे। आर्य समाज की चमक ज्योति थे। आपके सौम्य दर्शन के तथा बातें करके मन बड़ा प्रस होता था। श्री पं जी के निधन सारे समाज की भारी क्षति हुई है हम दिवगत आत्मा की शाति तथ सारे परिवार के साथ इस गहरी समवेदना में दु.खी है।

समाज के नेताओं

से नम्र एव सानुरोध निवेदन है कि इस बात पर गम्भीरता से विचार करें कि इस आने वाले अक्टूबर मास में पंजाब के इस भाग की सरकारी भाषा गुरुमुखी लिपि मे पजाबी हो रही है। सारा काम पंजाबी में हो जाएगा। ऐसी अवस्था में हिंदी की क्या अवस्था होगी तथा इसका इस रूप में क्या स्थान होगा ? अत इस गम्भीर प्रश्न व अवस्था पर विचार करके लोगों को वास्तविक स्थिति से परिचित करायें।

आय सम.ज लोहगढ़
(अमृतसर)

साप्ताहिक सत्सग के बाद एक शोक सभा द्वारा श्री प० भीमसैन जी विद्यालकार व चौ० वेदव्रत जी के अचानक स्वर्गवास पर हार्दिक दु ख प्रकट किया गया तथा उनकी आत्मा की सद्गति के लिए प्रभु से मगल कामना की गई और उनके परिवारों को इस दारुण दु ख सहन करने की शक्ति प्रदान करने की प्रार्थना की गई।

पं० भीमसैन जी विद्यालकार गुरुकुल कांगड़ी के पुरातन स्नातक तथा हिन्दी के प्रेमी व सुधारक के नाते उनका नाम आर्यजगत मे अमिट रहेगा।

भवदीय
वेदव्रत मन्त्री आर्यसमाज

या विराजते नूनमानन्दश्चापि शोमते।
यानन्द दयायुक्त! दिव्य देव नमोऽस्तु ते।'

जिस के नाम में दया और ानन्द शोभायमान हो रहे हैं, स परम दयावान् दयानन्द को ोटिश प्रणाम हो।

क. पद्मिनीनां वद तिग्मदीधितिर्धर्म. पर. क कविवाचिक स्थित।
का कण्ठभूषा न यमाद्बिभेति क स्वामी दयानन्द सरस्वती यमी॥

१. प्र०—पद्मनियों का सूर्य क्या है?

उ०—'स्वामी'।

२ प्र०—सर्वश्रेष्ठ धर्म क्या है

उ०—'दया'।

३. प्र०—कवियों की वाणी में क्या रहता है?

उ०—'आनन्द'।

४ कण्ठ का भूषण क्या है?

उ०—'सरस्वती'।

५ कौन ऐसा है जो यम से नहीं डरता?

उ०—'यमी'।

परन्तु कवि ने अपनी कवित्व-शक्ति के बल से उस विचित्र ऋषि ही को सब प्रश्नों का उत्तर माना है।

१. उलझी हुई आध्यात्मिक गुत्थियों रूपी पद्मिनियों को विकसित रूप देने वाला सूर्य—स्वामी दयानद सरस्वती यमी है।

२ सर्वश्रेष्ठ धर्म कौन सा है—स्वामी दयानन्द सरस्वती यमी (द्वारा सम्मत)।

३. कवियों की वाणी में क्या रहता है—स्वामी दयानन्द सरस्वती यमी (का नाम)।

४ कण्ठ का भूषण क्या है—स्वामी दयानन्द सरस्वती यमी (का गुणगान)।

५. मृत्यु से किसे भय नहीं—स्वामी दयानन्द सरस्वती यमी (सिद्ध पुरुष)।

विचित्र-ऋषि

(ले०—श्री विद्यासागर जी उमन्त्री कालीदास संस्कृत परिषद् डी. ए वी कालेज जालन्धर)

नोट —(स्वामी जी ने सत्यार्थ प्रकाश की भूमिका में लिखा है कि किसी वाक्य को समझने के लिए पाच वस्तुओं की आवश्यकता होती है। लेखक के आशयानुसार अर्थ करना उनमें से एक है।

मैं एक तुच्छ विद्यार्थी उस अनूठे ऋषि के गुणों का कहा तक गान कर सकता हूं जिसकी सराहना करते-करते बड़े कवि लेखक और दार्शनि कलोग नहीं अघाते। उस अनुपम ऋषि के किन गुणों का गान किया जाए जिसका समस्त जीवन ही महत्व पूर्ण घटनाओं से भरा है।

उदये सविता रक्ते रक्तश्चास्त-मये तथा'—जिस प्रकार सूर्य उदय होते समय भी लाल होता है और अस्त होते समय भी लाल होता है उसी प्रकार महर्षि दयानन्द का जीवन बाल्याकाल से ले कर निर्वाणपर्यन्त अनुपम एवं शिक्षादायिनी घटनाओं से परिपूर्ण है।

कितनी अद्भुत बात है कि एक नन्हा बालक—जिसे ससार की परम्पराओं का कुछ भी ज्ञान नहीं होता—शिव-मूर्ति पर एक अपावन मूषक को देख कर दृढ धारणा कर लेता है कि यह परमात्मा नहीं हो सकता। तत्पश्चाद् अपने चाचा तथा अपनी बहिन की मृत्यु को देख कर वैराग्य ले कर वनों में भटकते रहे। अन्तत. गुरु विरजानन्द का द्वार खटकाते हैं। अन्दर से आवाज आती है—तुम कौन हो? बालब्रह्मचारी दयानन्द बोले—यही तो जानना चाहता हूं कि मैं कौन हूं? कैसा विचित्र एव विवेकमय उत्तर है।

ऐसे अनूठे एवं बुद्धिमान शिष्य को पा कर गुरु जी ने उन्हें स्नेह पूर्वक ज्ञान का भण्डार सौंपा और गुरुदक्षिणा में वेदों के ज्ञान का समूची जनता में विस्तार करने का आदेश दिया।

उस निर्भीक संन्यासी ने बड़े साहस पूर्वक सत्य का मण्डन और असत्य का खण्डन किया। वेदसम्मत मत ही उन्होंने सर्व श्रेष्ठ माना और माना और अन्य आडम्बरों का बलपूर्वक खण्डन किया। लार्ड रावटस की अध्यक्षता में होते हुए व्याख्यान मे स्वामी जी ने बाईबल के सभी पोल खोल दिये। व्याख्यान के पश्चाद् अध्यक्ष महोदय उठे और बोले—'**When you can speak in this fashion on the Bible in our presence you must care but little, for others A real Sanyasi will fear nothing**' अर्थात् जब आप हमारी उपस्थिति में इस बाईबल पर बोल सकते हैं तो और छोटे मोटे लोगों की तो आप को कुछ परवाह ही नहीं होती होगी। ठीक है सच्चे सन्यासी को किसी का भय नहीं होता। धन्य है ऐसा अनूठा साहसी सन्यासी।

इस प्रकार सत्यासत्य का निर्णय करते हुए स्वामी जी ने कुछ कठिनाइयों का भी सामना किया। उन्हें कई बार विष पिलाया गया। एक बार ब्राह्मण ने स्वामी जी को पान में विष मिला दिया। कुछ दिनों के बाद एक मुसलमान तहसीलदार जो कि स्वामी जी का भक्त था उस ब्राह्मण को बन्दी बना लाया और बोला कि इसे क्या दण्ड दिया जाए? स्वामी जी ने उत्तर दिया—'आपने इसे क्यों बांधा है? मैं संसार में किसी को बन्धवाने के लिये नहीं आईया अपितु मुक्त करवाने आया हूं।' कितना अद्भुत आदर्श है!

स्वामी जी ने वेदों का उपदेश स्थान २ पर दिया। यहां तक कि राजा, महाराजा-लोग भी उनके भक्त बन गये। अन्त तक स्वामी जी का जीवन दया से भरा रहा है। जब वह महाराजा यशवन्त सिंह के यहां ठहर रहे थे तो महाराज को वैश्यागमन के विषय पर बहुत डांट पिलाई। जिससे वेश्या ने स्वामी जी के रसोईया जगन्नाथ से मिल कर उन्हें विष दिलवा दिया। स्वामी जी पर जब विष का प्रभाव होने लगा उन्होंने जगन्नाथ को बुलाया और कहा कि—'यह लो कुछ रुपये नैपाल में कहीं भाग जाओ। किसी को बताना नहीं।' धन्य है ऋषि दयानन्द तू धन्य है। 'अपकारिषु या साधु स साधु सद्भिरुच्यते।' अर्थात् सच्चा साधु तो वही है जो अपकारियों पर दया करता है। स्वामी जी की उदारता का कितना प्रज्वलन्त उदाहरण है।

अन्तत वह परम अनूठा ऋषि दीपावली के दिन परम निर्वाण पद को प्राप्त हुआ। इस पर शोक प्रकट करते हुए महाराणा सज्जन सिंह जी उदयपुर नरेश ने क्या ही सुन्दर लिखा है कि —

'जा के जी है जोरते प्रपंच फिलासिन को, अस्त सो समस्त आर्य मण्डल में मान्यो मैं।
वेद के विरुद्ध बुद्धि सत्यके निरुद्धि सदा, मन्द भद्र आदिनपै सिंह अनुमान्यों मैं।
ज्ञाता षट् शास्त्रन को वेद को प्रणेता जेता, आय विद्या अर्कगत अस्ताचल जान्यों मैं।'

अर्थात् जिस के जीते हुए उसे फिसलाने के लिये षड्यन्त्र रचे जाते थे, उस ऋषि को मैं आर्य मण्डल से अस्त हुआ २ मानता हू। वेदों और सत्य के विरुद्ध आचरण करने वालों पर वह सिंह जैसा प्रहार करते थे चारों वेदों और छः शास्त्रों का जिसे पूर्ण ज्ञान है उस आर्य-विद्या के सूय दयानन्द को अस्ताचल में गया हुआ मानता हूं। अर्थात् वह दयानन्द रूपी सूर्य आज अस्त हो गया है।

आर्य कुमार आन्दोलन क्यों ?

लेख चौथे का शेष व पाचवा

(ले०—श्री राम प्रकाश जी शान्ति-निकेतन धर्मशाला छावनी)

(गताक से आगे)

मैं तो समझता हूं कि आर्य कुमार आन्दोलन में भाग लेने वाले प्रत्येक कुमार, वीर, युवक का अपने जीवन का व्यक्तिगत लक्ष्य यह होना चाहिए कि भारत को आर्य बनाना

और एक अनिश्चित काल के लिए इसकी कल्पना ही करते नहीं रहना है अपितु अपने जीवन काल की निश्चित अवधि के भीतर-भीतर ही अपनी इस कल्पना को हमने साकार कर लेना है।

ताकि हम फिर विश्व को आर्य बनाने का और भी अपना योग प्रदान कर सकें।

योजना उतनी बनानी चाहिए जितनी पूरी हो सके आर्य कुमारों के करने का ही यह कार्य है, इसलिए भी आर्य कुमार आन्दोलन चलाना चाहिए आर्य कुमार आन्दोलन चलाने के लिए यह चौथा कारण है पांचवा कारण नीचे के लेख में पढ़िए।

लेख पांचवा

आर्यसमाजों में उपस्थिति बनाने के लिए।

आर्य कुमार आन्दोलन चलाने की आवश्यकता इसलिए भी पड गई है कि आजकल आयसमाजों में उपस्थिति क्षीण होती जा रही है।

दस वर्ष हो चुके हैं मुझे भारत का भ्रमण करते हुए लगभग सारे भारत की छोटी बडी बहुत-सी समाजों की अवस्था देखी है, मैंने मंच पर बैठकर घूमकर व्याख्यान देने वाले उपदेशक के रूप मे भ्रमण नहीं किया अपितु एक विद्यार्थी के रूप में भ्रमण किया है, इसलिए जहा मैंने स्वय अपनी आखों से समाजों की शोचनीय अवस्था के दर्शन किए हैं वहा समाज के अधिकारियों के साथ इस विषय में वार्तालाप भी किया है उपस्थिति कम होने अथवा बिल्कुल ही न होने के कारणों को जानने का प्रयास किया है, लगभग सभी स्थानों पर एक ही अवस्था देखी।

लोग आर्यसमाज से तो प्रेम रखते हैं पर आयसमाज में आने का कष्ट नहीं करते। एक अर्थ मे रुचि नहीं लेते। कारण क्या है ?

एक दो कारण नहीं—कारण बहुत हैं उनकी चर्चा का स्थल यह नहीं किसी पृथक लेख में विस्तार से कारणों की चर्चा की जाएगी तथा उसका विश्लेषण किया जाएगा।

पर अवस्था चिन्तनीय है यह बात निर्विवाद है।

पर्वतीय प्रदेशों मे तो आर्य समाज की अवस्था है ही विचित्र जिला कागडा तथा हिमाचल प्रदेश के उदाहरण देखने योग्य हैं इस प्रदेश मे मैंने सगठन का तथा प्रचार का कार्यक्रम भी बनाया था पर एक बड़ा भारी झटका खाकर पीछे हट गया और कान पकडकर तोबा भी करली।

पंजाब की उत्तर प्रदेश की तथा दिल्ली इत्यादि कुछ प्रदेशों की कुछ समाजे हैं जहां पर कि गतिविधि नजर आती है और उन्हीं की गतिविधि के कारण आर्यसमाज में समूचे रूप में कुछ जान है।

यह तो रहा बड़ों का हाल—युवकों तथा कुमारों के दर्शन ही किसी समाज मे दुर्लभ हैं, यह शिकायत सब जगह पाई जाती है कि युवक रक्त समाजोंमे नहीं आता नेता कहते हैं उपदेशक कहते हैं अधिकारी कहते हैं कार्यकर्ता कहतेहैं।

(क्रमश)

श्री देसराज चौधरी पर वज्रपात

यह समाचार बडे दु:ख के साथ सुना जायगा कि सार्वदेशिक सभा के उप प्रधान तथा दिल्ली नगर निगम के उप महापौर श्री युत देसराज जी चौधरी की धर्मपत्नी श्रीमती चन्द्रवती देवी का ६—७—६२ के प्रात ८।। बजे तीर्थराम हस्पताल दिल्ली में देहात हो गया। वह ७—८ दिन पर्यन्त पेट क रोग से पीड़ित रहीं।

देवी जी बड़ी सौम्य प्रकृति की सद्‌गृहिणी देवी थीं। श्री देसराज चौधरी को अपने व्यस्त सार्वजनिक जीवन के दायित्वों की पूर्ति मे उनसे बड़ी सहायता मिलती थी।

मैं अपनी सभा प्रधान तथा आर्यजगत की ओर से इस महान दु:ख में श्री देसराज चौधरी और उनके परिवार के प्रति हार्दिक समवेदना प्रकट करता हुआ परमात्मा से प्रार्थना करता हूं कि वह दिवंगत आत्मा को सद्‌गति और परिजनों को इस महान् दु:ख को सहन करने की क्षमता प्रदान करें।

—कालीचरण आर्य मन्त्री समाज

(पृष्ठ ६ का शेष)

पत्तों के स्थान पर मूल को सिंचित करना होगा। जितना भी धन आर्यसमाजों को मिलता है उसका अधिक भाग आर्य प्रादेशिक सभा को मिलना चाहिए। तब ही वेद प्रचार होगा। केन्द्र ही जब मजबूत होगा तो आर्यसमाजों में भी शक्ति का संचार होगा। आर्य भाईयों के चरणों में मेरी तुच्छ सी प्रार्थना है आशा है, मेरे भाई इसपर विचार करेंगे।

शक्तिनगर (देहली) आर्य समाज मन्दिर का शिलान्यास

१५-७-६२ को टोहाना निवासी ला० देवी दयाल गुप्त मालिक फर्म ला० देवी दयाल बृजलाल, नया बाजार देहली द्वारा शक्तिनगर आयसमाज मन्दिर का शिलान्यास किया गया। छ सात साल हुए शक्तिनगर के कुछ उत्साही आर्य सज्जनों ने आर्यसमाज की स्थापना की। अब तक आर्यसमाज के सत्संग एक खाली प्लाट में ही लगते रहे, दो साल हुए श्री मिठनलाल सुपुत्र ला० देवीदयाल गुप्त टोहानवी को शक्तिनगर समाज का प्रधान चुना गया। श्री मिठनलाल ने आर्यसमाज के उत्साही अधिकारियों से मिलकर एक विशाल भवन के निर्माण की योजना बनाई क्योंकि सत्संगों के लिये एक स्थान का होना बहुत ही आवश्यक था। एक प्लाट का २४ हजार रुपये में सौदा किया गया। शक्तिनगर की जनता के सहयोग से एक मास में ही यह राशि इकट्ठी हो गई। देहली कारपोरेशन की मंजूरी मिलने पर अब मन्दिर के निर्माण का कार्य आरम्भ किया गया है। श्री मिठनलाल प्रधान जी ने मन्दिर के निर्माण के लिये दस हजार रुपया दिया है। ला० अमरनाथ जी सूरी ने पांच हजार और ला० पूर्णचन्द जी अरोड़ा ने साढ़े तीन हजार रुपया दान दिया है। इन के अतिरिक्त बहुत से सज्जनों और देवियों ने प्लाट और मन्दिर निर्माण के लिये दिल खोलकर दान दिया। शिलान्यास से पूर्व दानी महानुभावों की सूची पढकर सुनाई गई और उन सब का समाज की ओर से धन्यवाद किया गया।

—मन्त्री आर्यसमाज,
शक्तिनगर

पत्तों को नहीं, मूल को सींचिए

(—ले० श्री जियालाल जी आर्य मन्त्री आर्य समाज अखनूर)

भारत में महान योगी अरविन्दु के शब्दों में ऋषि वर देव दयानद वेद को अपने जीवन में दृढ़ ज्ञान के रूप में अपनाया वह वेद अपने जीवन का प्रेरणा प्रदाता पनी अन्त. सत्ता का नियम वाह्य र्य का मार्गदर्शक मान्ते थे और शाश्वत सत्य का वचन मानते थे।

अपने गुरु वार महात्मा विरजानन्द की आज्ञा से वह संसार को वेद ज्ञान आलोकित करने निकले और पवित्र वेद ज्ञान का पता और प्रसार करते हुए उन्हें लाखों कष्ट क्लेश सहने पड़े और वह अपने मार्ग पर अडिग रहे संसार की कोई शक्ति उन्हें अपने पथ विचलित न कर सकी किसी प्रकार का लालच लोभ उन्हें अपने सकल्प से विमुख न कर सका और न ही कभी उन्होंने वेद के नाम पर अन्याय और असत्य से समझोता ही किया।

वेद के प्रति उनको कितनी अटूट श्रद्धा थी इसका प्रत्यक्ष प्रमाण इस बात से मिलता हैं किसी ने आचारको परम धर्म बताया किसी ने अहिंसा को किसी ने किसी बात को मगर मेरे आर्चाय देव दयानन्द ने आय समाज के तृतीय नियम में लिखा कि वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है वेद का पढ़ना पढ़ाना सुनना सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है लगे हाथों पाठकों के सन्मुख एक बात का जिकर कर दूं कि थियोसाफिकल सोसायटी आफ अमेरिका के नेता करनल अल्काट जी और मैडम ब्लोटसकी ने एक बार पूज्य स्वामी जी महाराज को कहा कि यदि आप आर्यसमाज के तृतीय नियम में से यह सब का शब्द निकाल देवें केवल सत्य विद्याओं का शब्द रहने देवें तो हम अपनी जमात को आर्यसमाज से सम्बन्धित करने को तैयार हैं उस समय वेदभगत देवदयानद ने उत्तर दिया कि यह कभी नहीं हो सकता। मेरा यह अटल विश्वास ही नहीं अपितु यह शाश्वत सत्य है कि वेद सब सत्य विद्याओं की पुस्तक है। यह थी वेद भगवान के प्रति मेरे गुरुवर दयानन्द महान की सच्ची श्रद्धा, सच्ची लग्न दृढ़ता अटल विश्वास परम आस्था—

महर्षि ने जीवन भर उसी वेद ज्ञान का प्रवाह और प्रसार किया और अपने अन्तिम समय में भी यही आदेश आर्यों को दिया वेद रूपी अमूल्य निधि जो कि मैं आपके हाथों में दिये जा रहा हूँ यह मेरी धरोहर है इस को सम्भाल के रखना—संसार के प्राणी मात्र के कल्याण से इसका प्रचार और प्रसार करना आर्यसमाज के आरम्भ काल में तो आर्यों ने अपने कर्त्तव्य का पालन किया। परन्तु अब आर्यों की श्रद्धा वेद के प्रति उतर गई अर्थात आर्यों ने अपने परमधर्म का परित्याग कर दिया है अब वैदिक धम की जय के नारे तो अवश्य लगाये ही जाते हैं मगर अपने आचरण द्वारा तो हम वेदों का क्षय करते जा रहे हैं। आज हमारे जीवन में वेद का कोई स्थान नहीं। हमारी संस्थाओं में वेद की कोई स्थान है। आजतक सभाओं द्वारा कुछ थोडा बहुत वेद प्रचार होता रहा है। अब वह भी दयानीय है कुछ माली हालत उनकी बिल्कुल बुरी है। एक वह समय था जबकि लाखों रुपया इन समाओं के पास स्थिर निधि में होता था और हजारों रुपए वार्षिक आय हुआ करती थी, अब वेदप्रचार का केन्द्र बहुत कमजोर हो चुका है। बड़ी मुश्किल से दौड़ धूप करके थोड़े बहुत जो उपदेशक हैं उनका वेतन ही पूरा होता है। धनाभाव के कारण बहुत से उपदेशकों को छुट्टी देनी पड़ी। पाठक सोचेंगे कि इसका कारण क्या है। इसका मुख्य कारण है कि आर्यसमाजों का धन अब केवल अपने लिए ही इकट्ठा होता है। केन्द्र के लिए नहीं अर्थात अब मूल को छोड़कर पत्तों को पानी दिया जा रहा है, इसलिए मूल भी सूख रहा है। पत्ते भी यदि हम सब सच्चे अर्थों में ऋषि भगत कहलाना चाहते हो तो हमें

(शेष पृष्ठ ५ पर)

'नारी है शक्ति का तूफान'

(कु० अरुण जी आर्या प्रभाकर, टोहाना)

चपला की चंचलता लेकर, ले अन्धड़ की अतुल उड़ान।
सागर की गहराई लेकर, हुआ है नारी का निर्माण ॥
सदा रहती है ये तत्पर, करने को जग का उत्थान।
वेद, उपनिषदों के परम ज्ञान की यह एक है उज्ज्वल खान ॥
'आर्य धर्म की सच्ची पुजारिन', 'देवी' कहलाती है यह।
मातृ भूमि की रक्षा-हेतु, प्राण समर्पण करती है यह ॥
कर में ले तलवार शत्रुओं का दमन करती है यह।
'ओज की साक्षात् प्रतिमा', इतिहास साक्षी देता है यह ॥
कभी न चूकी अपने पथ से, करती आई नव-निर्माण।
इसीलिए ऋषियों का कथन है, मातृशक्ति है महान् ॥
दुनियां कहती है नारी को, 'ये' मार्ग की बाधक है।
हम कहती हैं बाधक नहीं 'ये' सिद्ध होती साधक है ॥
पथ प्रदर्शिका बनकर तुम्हारे जीवन में 'पत्नी' बनकर आती।
जहां २ कांटे होते, फूलों को बिछाती जाती ॥
तुम जब भूल जाते कर्त्तव्य को, स्मरण कराती जाती।
समस्त विश्व को नया-नया संदेश सुनाती जाती ॥
ऋषियों ने प्रशंसा की है, तेरी अनन्त महान्।
देश जाती और राष्ट्र को है, तुझ पर अभिमान ॥
नारी में वो शक्ति है, 'ये' भूकम्प को ला सकती।
पृथ्वी और आकाश सभी को जड़ से वह हिला सकती ॥
एक पलक झपकाने से ही 'ये' भस्म फैला सकती।
आंख मात्र दिखाने से ही, शत्रु को वो भगा सकती ॥
कहा तक लिखें, कहां तक गाएं, तेरी महिमा है महान्।
लेखनी नहीं कर सकती, तेरे अनन्त गुणों का बखान ॥
'ज्योतिर्मय' रूप है 'तेरा', तम को दूर भगाती है।
पानी में आग लगा सकती, वायु तक रोक दिखाती है ॥
राष्ट्र का निर्माण करे यह 'जग माता' कहलाती है।
कहती नहीं है केवल, कथनी को करनी में लाती है ॥
जब वेद मन्त्रों और श्रुतियों का ये करती गान।
भूल जाती है कोयल भी अपने मीठे स्वर की तान ॥
बन जाते जो नर श्रृगाल, उनको वह शेर बनाती।
युगों की चाल पलट देती यह, 'युग निर्माता, कहलाती ॥
संकट चाहे कितने आएं, कभी न पीछे कदम हटाती।
वर्षा आए, आंधी आए, कभी न ये घबराती ॥
कभी न इसने परवाह की, लुटा देती सब अरमान।
ऐसे अनेकों मिलते हमको साक्षात् ज्वलन्त प्रमाण ॥
जब २ संकट आता देश पर, वीरों को करती आवाहन।
दुर्गा बन ललकारती है, हो जाओ देश की खातिर बलिदान ॥
'फिर 'तुम' कैसे ? कहते हो, कि यह निर्बल और अनजान।
जरा कान खोलकर सुनलो, 'अरुण' 'यह' है शक्ति का तूफान ॥

आयसमाजों के भारतीय आकाशवाणी के हिन्दी परिवर्तन विरोधी प्रस्ताव

—आर्य समाज सीसामऊ (कानपुर)

उपरोक्त आर्यसमाज के उपप्रधान श्री डा० शिवदत्त जी भतीजे व स्वर्गीय ला० केशवराम जी के सुपुत्र श्री लाजपतराय के निधन पर शोक प्रकट किया गया तथा उनकी आत्मा को सद्गति प्रदान करने के लिए ईश्वर से प्रार्थना की गई तथा उनके सम्बन्धियों को शान्ति प्रदान करने की प्रार्थना की गई।

—आर्यसमाज सीसामऊ ने सर्वसाधारण सभा में भारत की आकाशवाणी की हिन्दी भाषा परिवर्तन नीति का घोर विरोध करते हुए भारत सरकार से हिन्दी को उर्दू फारसी मिश्रित बनाकर हिन्दी पर कुठाराघात न करने की मांग की गई।

—बलराम गम्भीर मन्त्री समाज

—आर्य समाज मेस्टन रोड कानपुर

आर्यसमाज कानपुर की यह सभा केन्द्रीय सूचना मन्त्री द्वारा घोषित आकाशवाणी की हिन्दी सरलीकरण सम्बन्धी नई नीति पर अपना क्षोभ प्रकट करती है तथा हिन्दी को मिश्रित रूप होने से बचाने के लिए भारत सरकार से मांग करती है तथा निश्चय करती है, कि वह इस प्रकार के किसी भी प्रयत्न को निर्मूल करने मे प्रत्येक विधान का उपयोग करने मे कोई ऊहापोह न करेगी। तथा देशभक्तों से इस कार्य में सहायता करने की पूर्ण आशा करती है कि वे सरकार के इस प्रकार के असांस्कृतिक प्रयास का विरोध करने के लिए आर्यसमाज को अपना पूर्ण सहयोग प्रदान करें।

—विद्याधर मन्त्री समाज

—आर्य समाज (अनारकली) मंदिर मार्ग नई देहली

एक प्रस्ताव द्वारा भारत सरकार की हिन्दी भाषा को खिचड़ी का रूप देन का घोर विरोध करती है तथा प्रार्थना करती है कि इस मामला को पुन संसद भवन में रखकर विचार करे।

—श्याराम शास्त्री मंत्री समाज

—आर्य समाज होली मुहल्ला करनाल

करनाल नगर के नागरिकों की यह सभा सर्वसम्मति से भारत सरकार द्वारा आकाशवाणी की भाषा में परिवर्तन की तीव्र शब्दों में निन्दा करती हुई मांग करती है कि हिन्दी को सुगम बनाने के नाम पर उस में उर्दू-फारसी के शब्दों को न डाला जाए।

प्रतिलिपि श्री जवाहरलाल जी नेहरू, प्रधान मन्त्री, श्री राधाकृष्णन राष्ट्रपति, श्री लाल बहादुर शास्त्री, गृह मन्त्री व वी० गोपाल रेडी नई दिल्ली व समाचार पत्रों को भेजी जायें।

भद्रसेन
मन्त्री समाज
आर्यसमाज होली मोहल्ला, करनाल

—आर्य समाज मन्दिर ३०३ भिवानी स्ट्रीट माटुंगा, बम्बई १९

आर्यसमाज माटुंगा (बम्बई) ने अपने १५-७-६२ के साप्ताहिक सत्संग में भारत सरकार की आकाशवाणी की भाषा के सम्बन्ध में घोषित नई भाषा नीति के विरोध में, सार्वदेशिक सभा की आज्ञानुसार 'हिन्दी दिवस' मनाकर सरकारी नीति के विरोध में प्रस्ताव पास किया।

—मंत्री आर्यसमाज

आर्य समाज साऊथ एक्सटैन्शन नई देहली का १५.७.६१ का प्रस्ताव

नई देहली साउथ एक्सटेन्शन की आर्यसमाज यह अनुभव करती है कि केन्द्रीय सरकार आकाशवाणी की हिन्दी को सुगम करने के स्थान पर उस में उर्दू फारसी व ऐसे अंग्रेजी के शब्द जिनको समझना अहिन्दी प्रान्तीय लोगों के लिए और भी कठिन है, भरने का प्रयत्न कर रही है। अत सरकार से यह अनुरोध करती है कि वह इस संविधान के विरुद्ध किये जाने वाले प्रयत्न को शीघ्रातिशीघ्र रोके ताकि राष्ट्रभाषा का अहित न हो।

—मंत्री आर्यसमाज

आर्य समाज लोहगढ अमृतसर

भारत सरकार की आकाशवाणी के लिए हिन्दी के प्रति नीति का कडा विरोध करती है और सर्वसम्मति से यह प्रस्ताव करती है कि राज्य सरकार को चाहिये कि हिन्दी को अवनति पर लाने के स्थान पर उन्नति की ओर लाने का प्रयत्न करें। यही प्रस्ताव आर्य केन्द्रीय सभा की ओर से भी पारित किया गया है।

वेदव्रत मंत्री
आर्यसमाज, लोहगढ़

आर्य समाज आदर्शनगर जयपुर का चुनाव

१ प्रधान—श्री कृष्णचद्र महाजन
२ उपप्रधान—श्री वेदव्रत
३. ,, श्री सुन्दरलाल भाटिया, प्रधान डी०ए०वी० हाईस्कूल
४ ,, श्री हरिश्चन्द्र जी, प्रधान वैदिक कन्याविद्यालय
५. ,, श्रीमती प्रधान महिला आर्यसमाज
६. मन्त्री— श्री ओम्प्रकाश आर्य
७. उपमंत्री—श्री डा० देवेन्द्रनाथ जी
८. कोषाध्यक्ष—श्री अतरचन्द जी
९. पुस्तकालयाध्यक्ष—श्री जेसाराम जी
१० लेखानिरीक्षक—पी० आर० भटनागर
११. मन्त्री, वैदिक कन्याविद्यालय ऐस० पी० दीवान
१२. मैनेजर वैदिक कन्याविद्यालय—श्री बोगाराम जी
१३. मंत्री डी० ए० वी० हाईस्कूल सभा ने श्री एस० एल० भाटिया को अपनी इच्छानुसार प्रधान चुनने का अधिकार दिया।
१४. मैनेजर, डी० ए० वी० हाईस्कूल—श्री गुरदित्तामल जी खन्ना
१५ अन्तरंग सभा के सदस्य

१. श्री लाजपतराय जी २. श्री पृथ्वीराज जी ३. श्री डा० मनोहर लाल जी ४ श्री राजेन्द्रनाथ जी ५. श्री बोगाराम जी ६. श्री बुधलाल जी ७. श्री ५० सुदर्शन जी वैद्य।

मंत्री—आर्यसमाज

आर्य समाज मण्डी

हिमाचल प्रदेश मण्डी नगर के नागरिकों की यह विशेष सभा सर्वसम्मति से भारत सरकार द्वारा आकाशवाणी की भाषा मे परिवर्तन की तीव्र शब्दों में निन्दा करती हुई मांग करती है कि हिन्दी को सुगम बनाने के नाम पर उस मे उर्दू-फारसी के शब्दों को न डाला जाए।

इन्द्र सिंह
मन्त्री समाज

पत्र सूचना कार्यालय

भारत सरकार

स्वतन्त्रता-दिवस-समारोह

नई दिल्ली के स्वतन्त्रता-दिवस के समारोहका आरम्भ लाल किले [पर रा]ष्ट्रीय झण्डा फहराने से होगा। प्रधान मन्त्री झण्डा फहराएंगे [ब]ाद में उनका भाषण भी होगा।

[दि]ल्ली में कोई सैनिक परेड नहीं होगी। स्थानीय सैनिक पदाधिकारियों की सलाह के बाद अगर राज्यों और केन्द्र प्रशासित क्षेत्रों में सैनिक परेड होना सम्भव हो तो, इसकी व्यवस्था करने की अनुमति दे दी गई है।

पिछले वर्षों की तरह १५ अगस्त को देश भर में सार्वजनिक छुट्टी होगी और नई दिल्ली में राष्ट्रपति भवन में एक स्वागत-समारोह में [illegible] निमंत्रित किए जायेंगे।

—खुली बिक्री के लिए २ लाख २५ हजार टन चीनी

केन्द्रीय सरकार ने खुली बिक्री के लिए कारखानों को २ लाख २५ हजार मीट्रिक टन और चीनी दी है।

गांवो की उन्नति के लिए ट्रेनिंग कार्यक्रम

सामुदायिक विकास और पचायती राज सम्मेलन मे विचार

नई दिल्ली २१ जुलाई—सामुदायिक विकास और पंचायती राज के वार्षिक सम्मेलन में, गावों के विकास तथा लोकतंत्रीकरण के लिए ट्रेनिंग कार्यक्रम को सुधारने और बढ़ाने पर विचार किया जायगा। यह सम्मेलन इस महीनेके अन्त में दिल्ली में होगा और तीन दिन चलेगा।

१९६३ तक देश भर के हरेक क्षेत्र में सामुदायिक विकास खण्ड बनानेका प्रस्ताव है। कुछ राज्यों में ग्राम सेवकों की कमी है। इस कमी को दूर करने के लिए सघन ट्रेनिंग कोर्स चलाने पर विचार किया जायगा।

आदिम जाति क्षेत्रों में कर्मचारियों को ट्रेनिंग देने के बारे में भी इस सम्मेलन विचार किया जाएगा। तीसरी योजना में ३३० आदिम जाति विकास खण्ड बनाने का प्रस्ताव है। अतः आदिम जाति क्षेत्रों में काम करने वालों को आदिम जाति के जीवन और संस्कृति की जानकारी देना जरूरी है। इसके लिए हाल में रांची के ट्रेनिंग केन्द्र में ४ महीने का कोर्स चलाया गया।

सम्मेलन में पंचायती राज ट्रेनिंग केन्द्रों की [illegible] की भी समीक्षा की जाएगी। राज्यों में कुल १०० केन्द्र खोले जाएंगे, इनमें से ७१ केन्द्र खोलने की स्वीकृति दे दी जा चुकी है।

आर्यसमाज भारतनगर गाजियाबाद

आर्यसमाज भारत नगर गाजिया बाद की यह सभा सर्वसम्मति से भारत सरकार द्वारा आकाशवाणी की भाषा में परिवर्तन की तीव्र शब्दों में निन्दा करती हुई मांग करती है कि हिन्दी को सुगम बनाने के नाम पर उस में उर्दू फारसी के शब्दों को न डाला जाय।

इस सभा की सम्मति में आकाशवाणी द्वारा १०.वर्षों से प्रयुक्त भाषा ही सच्चे अर्थों में हिंदी का प्रतिनिधित्व करती है। अतः यह सभा प्रधान मन्त्री व राष्ट्रपति से प्रार्थना करती है कि वे हिन्दी के शुद्ध स्वरूप को बिगड़ने से बचावें।

—सत्यपाल मन्त्री समाज

महात्मा हंसराज साहित्य विभाग की

अमूल्य पुस्तकें

सर्व साधारण को सूचित किया जाता है कि आर्य प्रादेशिक [सभा] पंजाब के महात्मा हंसराज साहित्य विभाग ने निम्न पुस्तकें D.P.I. द्वारा memo no. 6/16.58-B-14659 Dated 23 A ril 1958 और No. 7077-B-Dated 2 9.60 से स्वीकृति हो गई है। अतः देश कि सभी स्कूलों, कालजों, आर्यसमाजों व आर्य संस्थाओं को निस्संकोच भाव से अपने पुस्तकालयों और छात्रों को इनाम में देने के लिए अधिक संख्या में मंगाकर सभा का हाथ बटाना चाहिए।

महात्मा आनन्द स्वामी जी कृत—

१. [illegible] २५न. पै. २. [illegible] [illegible]न. पै.
३. [illegible] ६२न.पै. ४. महर्षि दर्शन २.०० ५. नवीन और प्राचीन समाजवाद (डे० नारायण स्वामी कृत) मूल्य १.००
६. Dayanand his life and work (English) By Principal Suraj Bhan ji M.A.. १.५० न. पै.
७. Teaching of Ishupnishad (English) By L. Sain Dass ji १.२६ न० पै०
८. Massage of Gita (English) By L. Sain Dass ji १.५० "

अन्य प्रकाशन—

गीता दीग्दर्शक—प्रि० दीवान चन्द जी कृत		५० न० पै०
जीवन ज्योति	"	६२ "
महर्षि दर्शन	"	२.०० "
दयानन्द शतक	"	१.०० "

—सभा का प्रकाशन—

अमृतवाणी	"	५० न० पै०
सत्यार्थ प्रकाश उर्दू	"	३.५० "
प्रभु दर्शन	"	२.५० "
आर्य भजन संग्रह	"	५० "
सत्यार्थ प्रकाश भाष्य I समुल्लास		१ ०० "
" II "		१.०० "
स्वाध्याय संग्रह	— —	[illegible] "

[illegible]

प्रबन्धक महात्मा हंसराज साहित्य विभाग आर्यप्रादेशिक प्रतिनिधि सभा जालन्धर

ग्राहक महानुभाव पत्र व्यवहार तथा शुल्कादि भेजते समय अपनी ग्राहक संख्या अवश्य लिखें, ताकि उत्तर देने में आसानी रहे।

मुद्रक व प्रकाशक श्री संतोषराज जी मन्त्री आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा पंजाब जालन्धर द्वारा वीर प्रिंटिंग प्रैस, मिलाप रोड जालन्धर से मुद्रित तथा आर्यजगत कार्यालय महात्मा हंस राज भवन निकट कचहरी जालन्धर शहर से प्रकाशित मालिक—आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा पंजाब जालन्धर

टेलीफोन नं० ३०५७ [आर्यप्रादेशिक प्रतिनिधि सभा पंजाब जालन्धर का साप्ताहिक मुखपत्र] Legd No.P.121

एक प्रति का मूल्य १३ नये पैसे वार्षिक मूल्य ६ रुपये

वर्ष २२ अंक ३१ रविवार २१ श्रावण २०१९— ५ अगस्त १९६२ दयानन्दाब्द १३८ (तार-प्रादेशिक जालन्धर

वेद सूक्तय.

गातुं धत्त यजमानाय

हे साधको ! इस अपने यजमानाय—आत्मा के लिए गातु—ज्ञान को धत्त—धारण कराओ। अपने आत्मा के अज्ञान आवरण को दूर कर के ज्ञान प्रकाश से चमका दो।

देवानामप्येतु पाथ:

यह आत्मा देवानाम्—देवताओं का पाथ. —मार्ग एतु—प्राप्त करे। हम सद दिव्यजनों के बतलाये हुए पथ पर ही चलें। असुरों का भोग मार्ग न अपनायें।

मुमोक्तु देवो विश्वकर्मा

वह विश्वकर्मा—सारे विश्व का पैदा करने वाला देव —भगवान् हमें बन्धन से मुमोक्तु—छुड़ा देवें। वह प्रभु सारे जीवन के बुरे २ बन्धन पाश काट कर मुक्त कर दें।

अथर्व वेद

वेदामृत

नृचक्षसो अनिमिषन्तो अर्हणा बृहद्देवासो अमृतत्वमानशुः।
ज्योतीरथा अहिमाया अनागसो दिवो वर्ष्माणं वसते स्वस्तये॥

ऋ० म० १० सू० ६३ मं० ४

अर्थ—जो (नृचक्षस) मनुष्यों को ज्ञान देने वाले हैं (अनिमिषन्त) सदा सतर्क, जिनकी आंखें सदा खुली हैं (अर्हणा) पूजा से (बृहत्) सब से बड़े महान (देवास) देवलोग हैं (अमृतत्वम्) अमरपद को (आनशु) प्राप्त करते है। ऐसे देवजन (ज्योतिरथा) दिव्य साधनों वाले (अहिमाया) कभी न बिकने वाले (अनागस) पाप से रहित (दिव) प्रकाश के (वर्ष्माणं) स्थान को (वसते) पाते हैं तथा वे (स्वस्तये) कल्याण के लिए हैं।

भाव—इस मन्त्र में वेद उपदेश करता है कि महान् अमरपद को, दिव्य स्थान तथा जीवन की परम उत्कृष्ट अवस्था को ऐसे देवजन, दिव्य ज्ञानी पुरुष ही प्राप्त करते हैं जो लोगों को ज्ञान का प्रकाश देने वाले है, जो सदा सावधान रहते हैं। जीवन मे हर समय पतन की सम्भावना बनी रहती है। पलक मारते पतन हो जाता है। इसलिए सदा सावधान रहने वाले हों। जिनका जीवन, आचार, विचार प्रकाश से भरपूर हो। बड़े से बड़े प्रलोभन पर भी बिकने वाले न हों कोई भी उनको खरीद न सके। अपने दिव्य पथ पर अविचल होकर अपनी बात को कहने वाले हों। पाप का भाव उनको स्पर्श न कर सके। इतने दिव्य एवं लोकोत्तर गुणों से भरे हों। ऐसे लोग ही अमर पदवी को पाते हैं तथा जीवन की चरम और परम उत्कृष्ट अवस्था को प्राप्त कर लेते हैं। ऐसे देवपुरुष ही विश्व के कल्याण के योग्य नेता, उपदेश तथा पथ प्रदर्शक बन सकते हैं। प्रभो ! हमें ऐसे दिव्य नेता प्राप्त होते रहें—सं०

ऋषि दर्शन

परमेश्वर एक एव

वह परमेश्वर एक ही है। हे मनुष्यो ! अनेक परमात्मा मानकर उस विश्वपति का अपमान न करो। वह एक और केवल एक ही है।

नैवातो भिन्नः

प्रभु पूजको ! न एव—नहीं है अतः—उससे भिन्न—अलग कोई दूसरा ईश्वर। उस एक परमेश्वर के सिवाय और कोई दूसरा ईश्वर कभी न मानो।

सर्वं जगत् स पश्यति

वही ब्रह्म सर्वं—सारे इस जगत्चर अचर जड और चेतन विश्व को पश्यति—देखता है स व्यापक होकर सब कुछ देखता है। उससे कुछ भी गुप्त नहीं।

भाष्य भूमिका

अधिष्ठाता—संतोषराज मंत्री सभा सम्पादकः त्रिलोक चन्द्र शास्त्री

अध्यात्मवाद—लेखमाला 5

कठ् उपनिषद् का सार—10वां

(श्री ज्ञान सिंह जी आर्य करोल बाग नई देहली)

(गतांक से आगे)

इस विचार के अनुसार आत्मा हमारे शरीर में व्यापक है। परन्तु यह भी शायद आत्मा के प्रभाव को ध्यान में रखते हुए कहा गया है क्योंकि यदि आत्मा सारे शरीर में व्यापक है तो ईश्वर के भी जो सारे शरीर में व्यापक है, किसी अंग में दर्शन हो सकते हैं। परन्तु इस उपनिषद में भी व अन्य शास्त्रों में भी व हृदय को ही प्रभु दर्शन का स्थान बतलाया गया है और इसका कारण यह दिया गया है कि आत्मा हृदय में विराजमान है जहां परमात्मा भी सर्वव्यापक होने के कारण मौजूद है। और क्योंकि दोनों इस स्थान में विद्यमान हैं इस लिए इस स्थान में ही आत्मा परमात्मा के दर्शन कर सकता है।

शरीर में आंख अपनी शक्ति से नहीं देखती बल्कि जीवात्मा आंख का साधन के रूप में उपयोग करता हुआ देखता है। यदि आंख खुली हो परन्तु सूर्य का प्रकाश न हो तो भी वह नहीं देख सकती। इस लिए देखने का कारण केवल आंख ही नहीं सूर्य भी है। यदि सूर्य और आंख दोनों ही परन्तु मन का सम्बन्ध जीवात्मा से न हो तो भी रूप का ज्ञान नहीं हो सकता। कई दफा किसी से पूछा जाता है कि आप ने अमुक व्यक्ति को यहां से जाते देखा है तो उत्तर मिलता है कि कि मेरा ध्यान इस ओर नहीं था इसलिए मैं नहीं जानता, इसलिए केवल आंख व सूर्य भी प्रकाशक नहीं अपितु यदि मन का सम्बन्ध जीवात्मा से न हो तो भी रूप का अथवा किसी और बात का ज्ञान नहीं होता। क्या यह समझा जाये कि मन ही किसी वस्तु के ज्ञान का कारण है। मन तो एक जड़ वस्तु है। इससे तो किसी वस्तु का ज्ञान नहीं हो सकता। इसलिए मन भी प्रकाशक नहीं। वास्तव में जीवात्मा ही देखने वाला, सुनने वाला आदि है। आंख सूर्य और मन उसके देखने के साधन हैं। जिस प्रकार एक फोटोग्राफर बिना कैमरा आदि के चित्र नहीं खैंच सकता इसी प्रकार जीवात्मा शरीर रूपी कैमरा और मन व इन्द्रिया रूपी शीशे के बिना किसी वस्तु का चित्र नहीं ले सकता। जिस प्रकार फोटोग्राफर का काम कैमरा आदि यन्त्रों के बनाने वाले के आधीन होता है इसी प्रकार जीवात्मा का काम ब्रह्मा के आधीन है जिस के यह शरीर, मन और इन्द्रियों यन्त्रों अर्थात साधनों के रूप में दी है। आत्मा के बारे में जो यम ने कहना था कह दिया। पहले और इस लेख का सारांश यह है।

आत्मा अमर है इसका नाश नहीं होता।

2. शरीर आत्मा का निवास स्थान है यह जीवन रूपी यात्रा को समाप्त करने के लिए एक गाडी के समान है जिस की भली प्रकार देख रेख करनी चाहिए, परन्तु यह नहीं भूलना चाहिए कि यह एक साधन है इसे साध्य समझकर इस की आवश्यकताओं को पूरा करने में ही जीवन व्यतीत कर देना एक बड़ी भारी भूल होगी।

3. जीवात्मा हृदय की गुफा में स्थित है परन्तु उस का प्रभाव सारे शरीर के अंगों में दिखाई पड़ता है। परमात्मा के लिए सारा ब्रह्माड उसकी पुरी है जिस में वह निवास करता है।

4. मनुष्य का ज्ञान व कर्म उसका भाग्य बनाने में भाग लेते हैं, जीवात्मा एक शरीर को छोड़ कर दूसरा धारण करता है नया शरीर उस को अपने कर्म व ज्ञान के अनुसार मिलता है। यह शरीर मनुष्य का शरीर हो सकता है या पशु-पक्षी का। यदि मानव जीवन में उस के कर्मों की अवस्था अति न्यूनतर स्तर को पहुंच गई हो तो वृक्ष आदि के रूप में कैदी बनाकर रखा जाना भी सम्भव है।

5. जीवात्मा भिन्न-भिन्न योनियों में जन्म लेता रहता है जब तक कि वह मुक्ति का अधिकारी नहीं बन जाता और जन्म मरण के चक्कर से छूट नहीं जाता।

6. जीवात्मा असंख्य हैं परन्तु उस की जाति एक ही है अर्थात परिमाण और स्वरूप में एक समान होते हुए भी सात्विक राजसिक और तामसिक दृष्टि से विभिन्न है। सतोगुणी स्थिति में आ कर मुमुक्षु होना होना ही जीव का कर्त्तव्य है।

महर्षि स्वामी दयानन्द

श्री सुन्दरलाल जी भाटिया प्रधान आ. स. आदर्शनगर जयपुर

सारा आर्य जगत, नहीं नहीं दुनिया के विद्वान और महापुरुष स्वामी दयानन्द सरस्वती को इस युग का सब से बड़ा सुधारक मानते हैं, क्यों?

इस घोर काल में जबकि लोग प्राचीन वैदिक संस्कृति से विमुख हो कर संस्कृत भाषा और वेदों की शिक्षाओं को भुला चुके थे, नाम मात्र के पण्डितों के चंगुल में फंस कर अच्छे पढ़े लिखे लोग भी उन की बहकों २ बातों में आ जाते थे, महर्षि ने प्राचीन संस्कृति को वास्तविक स्वरूप में और ठीक २ अर्थों में प्रस्तुत किया। मन्त्रों का सही अर्थ बतला कर महती कृपा की सब के लिए ठीक २ पथ प्रदर्शन किया।

किसी शायर के निम्नलिखित शेर का भी स्वामी जी ने कितना सशक्त उत्तर स्पष्ट किया—

'शेर है—रोज एक पैगम्बर आता है नया सन्देश खुदा का लेकर,
जैसे के रब भूल है जाता पहिले
रहबर का अतिया
एक अर्श के नीचे।

'अगर सब का खुदा एक है और वह खुद जब जुल्म और अन्धेर बढ़ जाता है, जन्म लेता है तो उसकी तालीम में अन्तर क्यों है और विभिन्न धर्म और उनके चलाने वाले अलग २ पूजा के तरीके क्यों बताते हैं। और वेद ही समस्त ज्ञान के कोष हैं व उनकी शिक्षा सब काल के लिए लागू है तो फिर क्यों उनको पीठ दे कर नये से नये धर्म व मत पैदा हो रहे हैं?'

महर्षि ने यह स्पष्ट किया यह सब तथाकथित पैगम्बरों और उनके अनुयायियों की स्वार्थपरता का परिणाम है अन्यथा वेदों को मानने वाले एक ही ईश्वर को सर्वशक्तिमान मानें और उसी की आराधना करायें।

2. हजरत ईसा और उनके मानने वाले केवल उन को (ईसाको) ही परमात्मा का पुत्र कहते हैं तथा यह मानते हैं कि वे सब लोग जो उन (ईसा) पर ईमान लावें या लायेंगे, उनके (लोगों के) सारे गुनाहों के बदले ही वे (ईसा) शूली पर चढ़े। स्वामी जी ने बतलाया कि हम सब ही परमात्मा के पुत्र हैं और अपने २ कर्मानुसार फल भोगेंगे। कोई किसी के गुनाह का बोझ नहीं उठा सकता जैसे जो भोजन करेगा उसी की भूख मिटेगी-देखने सुनाने वाले की नहीं।

(शेष पृष्ठ 7 पर)

सम्पादकीय—

आर्य जगत्

वर्ष २२] रविवार १८ श्रावण २०१८, ५ अगस्त १९६२ [अंक ३१

वेद का पवित्र पर्व

वेद सप्ताह के रूप में प्रतिवर्ष आता है। इसे श्रावणी उपाकर्म तथा वेद-यज्ञ के नाम से पुकारा जाता है। रक्षा बन्धन भी है और समाप्ति के दिन 'वेद के अनन्य उपासक महात्मा कृष्ण का जन्माष्टमी का पुनीत दिन भी साथ है। इस प्रकार इस में तीनों पर्व ही मिल जाते हैं। सारा देश बड़ी श्रद्धा से इन समारोहों को मनाता है। आर्य समाज के युग पुरुष महान् संस्थापक देव दयानन्द ने अपना सारा जीवन वेद प्रचार के लिए दे दिया। जीवन का मैघ सब से बड़ा यज्ञ और महान् दान है। अपने व परिवार के लिए तो सारे लोग कष्ट उठाते तथा जीवन भेंट करते रहते हैं परन्तु देश, धर्म जाति तथा प्राणिमात्र की भलाई के लिए जीवनदानी आत्मबलिदानी विरले होते हैं। ऋषि दयानन्द सत्य के पुजारी थे। वेद को सब सत्य विद्याओं का भण्डार मान कर इसी के लिए सर्वस्व अर्पण कर दिया। आर्य समाज की स्थापना भी वेद प्रचार के लिए ही की। वेद प्रचार ही इस के जीवन का परमधर्म लिखा। आर्य समाज के सारे साधन, सारे श्रम तथा सारा ताना बाना इसी के लिए है।

आर्य समाज के भवन की आधार शिला, जीवन, प्राण स्रोत, सब कुछ वेद ही है। इस वेद सप्ताह को बड़ी धूमधाम से मनाते हैं। प्रायः सारी समाजों में वेद का विशेष आयोजन किया जाता है। सारा सप्ताह वेद कथा, यज्ञ और मधुर संगीतादि का प्रबन्ध किया जाता है। इस बार ता. १२ अगस्त से २२ अगस्त तक वेद सप्ताह, रक्षा बन्धन और जन्माष्टमी का त्यौहार मनाया जा रहा है। ता. १५ अगस्त का दिन भारत का अपना गणतन्त्र दिवस भी है। आर्य समाजों में अपनी सभा के द्वारा वेद कथा का उपक्रम किया जायगा। तथ्य रूप से यह कहा जा सकता है कि जिस लक्ष्य को पाने के लिए आर्य समाजका यह सब कुछ है—उसी वेद प्रचार का ही यह पुनीत सप्ताह आ गया है। इसी से आर्य समाजों पर एक महान् दायित्व आ जाता है। हम ने भी सारे विश्व को आर्य बनाने का भारी व्रत लिया है। कितनी बड़ी दीक्षा है, कितना भारी संकल्प है, कितना विशाल लक्ष्य है। इस सप्ताह को बड़ी श्रद्धा, उत्साह लगन के साथ मनाने का प्रबन्ध किया जाये!

आज का संसार तथा मानव जीवन सर्वथा भौतिक वाद का प्यारा बन गया है। इस का सब कुछ ही बिगड़ता जा रहा है। भौतिक पदार्थ बनते जा रहे हैं पर आध्यात्मिक तत्व बिगड़ गये हैं। भोग भागवान् को ही भुवभावन और विश्वपावन मान कर भक्ति का विषय बनाया जाता है। आत्म-योग को रोग का नाम दिया जाता है। विषयों को ही जीवन का विषय बनाने का प्रयास है शिव को छोड़ कर शव तत्व का पूजन जारी है। शरीरी का स्थान शरीर ने ले लिया है। केवलमात्र काया की ही सर्वत्र है। विलास का ही विकास होता जा रहा है। सारा विश्व ज्वाला मुखी बन कर जलने, फटने को तैयार बैठा है। विषम अवस्था में आर्य समाज ही वेद ज्ञान का प्रचार कर के शान्ति प्रदान कर सकता है। इस लिए इस सप्ताह को मनाने का पूरा आयोजन किया जाये। यज्ञ हों, कथाएं हों स्वाध्याय का अभ्यास व्रत, हो, समाजें अपने केन्द्र आर्य प्रादेशिक सभा पंजाब जालन्धर को तन मन धन से और भी दृढ़ करें। वेद प्रचार के लिए अधिक से अधिक धनराशि से सभा के कार्य का विस्तार करें। आर्यो! अपने जीवन, संगठन, श्रद्धा तथा वेद आस्था का परिचय देते हुए इस सप्ताह को धूम धाम से मना कर नव जीवन की संक्रान्ति ला दो। नव चेतना भर दो　—त्रिलोक चन्द्र

डा० मार्क्स का स्वागत

अमरीकामें वेद मन्दिर के संस्थापक श्री डा. मार्क्स अमरीका से चल कर भारत में आये हैं। अपने छः वर्ष के बालक को वेद पठन आदि के लिए भी साथ लाये हैं। आज वह गुरुकुल कांगड़ी में ठहरे हैं वह स्वयं भी वेद विषयक गवेषणा में कुछ प्रसाद पाने की इच्छा रखते हैं। अमरीका में भी वेद मंदिर बना कर वेद ज्ञान के प्रसार में लगे हैं। उन का विश्वास है कि वेद ज्ञान द्वारा ही विश्व में शांति होगी। हम भारत में पधारने पर इन का हार्दिक स्वागत करते हैं। सार्वदेशिक सभा उन के स्वागत सम्मान का तथा सारे प्रबन्ध का विशेष प्रबन्ध करे। बड़ी २ समाजें अपनी सभाओं द्वारा उन के सम्मान का आयोजन करें डा. मार्क्स आर्य समाज के संगठन, गौरव, कार्य प्रवाह तथा नेतृत्व को देख कर अच्छे अनुभव ले सकें।

इतना घटिया स्तर

सिद्धांतों, विचारों, रुचियों में मतभेद होता रहता है। मतभेद इतना बुरा नहीं जितना मनोभेद। आर्य समाज अपने पौराणिक भाईयों से श्राद्ध, मूर्ति पूजा अवतार वाद, मृतकपितर आदि कई बातों में मतभेद रखता हुआ उन से शास्त्रार्थ भी करता है। किन्तु प. माधवाचार्य जी को बोलने व लिखने में इतने घटिया स्तर पर उतरते हुए देख सुन कर अतीव रोष व खेद होता है। क्या इन के जीवन का निर्वाह उज्जवल चरित्र उस देव दयानन्द जी को इतनी अक्षम्य, गदी सभ्यतासे गिरी गालियां देने से ही होता है? हम सार्वदेशिक सभा से कहना चाहते हैं कि वह इस का शीघ्र निर्णय कर के समाजों को आदेश दे या तो एसे निम्न स्तर व्यक्ति को सर्वथा मुह लगाना छोड़ दें या खुल कर मुह तोड़ उत्तर देने के लिए देहली में शास्त्रार्थ की चुनौती देवें। शोक है कि मनुष्य इतने घटियास्तर पर भी जा सकता है? शायद इन की जीवन दुकान ही इसी प्रकार से चलती हो।

श्री० थापर जी

'आर्य जगत्' के अनन्य प्रेमी श्री. हरिश्चन्द्र जी थापर के ही योग्य सुझाव पर वेदामृत में क्रमानुसार आठ मन्त्रों के बाद स्वस्तिवाचन व शांतिप्रकरण के मन्त्रों का सरलार्थ दिया जाता है। इस का बड़ा लाभ हो रहा है। हम श्री. थापर जी के सुझाव व उन द्वारा हर प्रकार के सहयोग के आभारी हैं　—सं.

आर्यसमाज और पौराणिकता

(ले०—श्री जियालाल जी मंत्री, आर्यसमाज अबोहर)

आर्यसमाज के पूज्य प्रवर्तक महान महर्षि दयानन्द जी जब अपने गुरुदेव के चरणों में अपना जीवन भेंट करके गुरु आज्ञा से वेद की ज्योति से संसार को आलोकित करने के लिए कार्य क्षेत्र में उतरे तो उन्हें वहां ईसाई मुसलिम आदि मतों से टक्कर लेनी पड़ी वहां पोपलीला के पोषक पौराणिक दल से भी जबरदस्त मुकाबला करना पड़ा। स्वामी जी महाराज का इतना विरोध ईसाई आदि मत-वादियों ने नहीं किया। जितना पौराणिकों की ओरसे हुआ। स्वामी जी पर पत्थर लाठियां बरसाने वाले तीर तलवार उठाने वाले जहर के प्याले पिलाने वाले पौराणिक ही तो थे।

क्योंकि स्वामी जी महाराज ने यहां अन्य मतों पर आलोचना की वहां पाखण्ड पोषक पुराणों पर भी कड़ी आलोचना की। पुराणों के विषय में स्वामी जी महाराज ने अपने अमर ग्रन्थ सत्यार्थ प्रकाश में दुखभरे शब्दों में लिखा कि भागवत रचने वाला मां के गर्भ में ही क्यों नहीं मर गया।

स्वामी महाराज का यह अटल और सत्य पर आश्रत विचार था कि सत्य के मण्डन के लिए असत्य का खण्डन अति आवश्यक है जैसे आपने यदि किसी क्षेत्र में बीजा-रोपन करना हो और वह खेत झाड़ियों से भरपूर हो आप जब तक उन झाड़ियों को उखेड करके उस भूमि में हल नहीं चलाते तब तक बीजा रोपण नहीं हो सकता। यदि बीज बो दिया जावे तो फलदायक न होगा। पहले झाड़ियां उठाने के लिए उस खेत का खण्डन किया जाता है फिर मण्डन बीजा रोपन करके होता है। इसी प्रकार देव दयानन्द जी महाराज संसार में मतमतांतरों द्वारा फैलाई हुई बुराईयों का यदि खण्डन न करते तो सत्य का मण्डन करने का क्या लाभ होता। स्वामी महाराज ने पहले खण्डन का कुल्हाड़ा चलाकर पाखण्ड की झाड़ियों का खण्डन किया फिर वेद प्रचार रूपी बीज आरोपण किया।

अपने पवित्र मिशन की पूर्ति के लिए महाराज को क्या-क्या दुख कष्ट क्लेश और आपत्तियां सहन करनी पड़ीं, उनकी यदि गणना की जावे तो शुमार में आने वाली नहीं। अपने और पराये सब शत्रु हो गए परन्तु विरोधी भावनाओं और अत्याचारों की परवाह न करते हुए दया मूर्ति दयानन्द अपने पवित्र मिशन पर डटे रहे। दुनिया का कोई लोभ लालच उन्हें अपने पथ से विचलित न कर सका। निरन्तर वह अपने पवित्र मार्ग पर दृढ़ चट्टान की तरह डटे रहे। आखिर उनकी आवाज सत्य प्रेमी आत्माओं के पास पहुंची और उन्होंने स्वामी जी के चरणों में आत्म समर्पण कर दिया। तब उन आर्य पुरुषों की मांग पर वेद प्रचार के कार्य को विस्तृत करने के लिए उन्होंने एक समाज की स्थापना की, उस समाज को उन्होंने प्राचीन युग का सर्वश्रेष्ठ नाम (आर्यसमाज दिव्य अर्थात श्रेष्ठ सदाचारी, सद्-व्यवहारी प्रगतिशील पुरुषों का समाज) आर्यसमाज के आरम्भ युग के आर्यों ने अपने आचार्य वर देव दयानन्द के पद चिन्हों पर चलते हुए अपने आचरण द्वारा आर्यसमाज को सर्वश्रेष्ठ सबकी शिरोमणी संस्था बना दिया। आर्यसमाज के अपने सत्य प्रेम विद्या बल सिद्धांतवाद की धाक सारे संसार में बिठा दी अर्थात् प्रचार युग के उन आर्य पुरुषों ने अपने सरल और शुद्ध आचरण द्वारा कलियुग में सतयुग का दृश्य बांध दिया। मुट्ठी भर आर्य वीरों ने अपने तप त्याग परिश्रम से वेद पताका को अपने हाथों में थाम लिया तो हर पग पर सफलता ने उनके पग चूमें सारा संसार आर्यसमाज के आगे नतमस्तक हो गया। तब दूर देश अमेरिका में बैठे हुए महात्मा ऐन्ड्रो जेक्शन ने कहा था कि भारत की पवित्र भूमि में आर्यसमाज रूपी भट्टी के अन्दर योगी दयानन्द ने वह अग्नि सुलगाई है जिसमें मतमतांतरों द्वारा फैलाई हुई संसार की तमाम बुराईयां जलकर भस्म हो जावेंगी।

उक्त महात्मा के शब्दों में कितना सार था इसका अनुमान इस बात से लगता है जब आर्य-समाज का मुकाबिला करते हुए मुसलिम और ईसाई आदि परास्त हो गए तो उन्होंने आर्यसमाज द्वारा प्रचारित वेद की सच्चाइयों को स्वीकार करके अपने ग्रन्थों की तसवीरें बदलनी आरम्भ करदीं। और पौराणिकों ने तो आर्यसमाज की बहुत सी बातों को स्वीकार कर लिया। कल का पौराणिक मूर्ति पूजा करते हुए यह दावा करता था कि मूर्ति भगवान की है मगर आज का पौराणिक अपना दृष्टिकोण बदल चुका है। अब वह मूर्ति को परमात्मा प्राप्ति का साधन नहीं मानता। कलका पौराणिक कहता था कि श्राद्ध में दिया हुआ भोजन पित्रों को पहुंचता है परन्तु आज का पौराणिक कह रहा है कि श्राद्ध का भोजन पित्रों को नहीं पहुंचता अपितु वह दान करने का बहाना है छूतछात के मामले में भी पौराणिक दल ने हार मान ली है। अन्य भी कुछ बातों में पौराणिक दल ने आर्यसमाज का दृष्टिकोण स्वीकार कर लिया है।

परन्तु आर्यसमाज रूपी वैद्य जिसको संसार से अज्ञान अन्धकार रूपी रोगों को मिटाने का कार्यभार आपने सौंपा था। आज वह आर्यसमाज स्वयं ही बीमारी का शिकार हो रहा है।

आज कुछ ऐसे स्वार्थी लोग आर्यसमाज में घुस आये हैं जिन्होंने पौराणिकता के साथ समझौता कर लिया है। आर्य समाज की पवित्र वेदि जो कभी, केवल वेदप्रचार के लिए प्रयुक्त होती थी उसी वेदी से आज पौराणिकता का प्रचार हो रहा है। आर्यसमाज की वेदी को आज एक नटशाला का रूप दे दिया है। यहां अब भांत २ की बोलियां बोली जाती हैं। किसी को समाज सिद्धांत रक्षा का ध्यान नहीं है। एक वह स्वर्णयुग आर्यसमाज का था जब सिद्धांतों के लिए व्यक्ति कुरबान किए जाते थे। आज व्यक्तियों के लिए सिद्धांत कुरबान हो रहे हैं। जिस वेदि से एक दिन पौराणिकता का खण्डन होता था, आज उसी वेदि से पौराणिकता का मण्डन हो रहा है। आज आर्यसमाज मन्दिरों में 'राम राम हरे' रामहरे गोपाल का कीर्तन होता भी मैंने सुना है पौराणिक पण्डित आर्य समाजकी वेदि पर बैठकर अवतारवाद सिद्ध करते हैं कितने ही आर्य समाजों के पुरोहित कट्टर पौराणिक बने हुए हैं आर्य समाजो के अधिकारी भी आज पौराणिक बने हुए हैं अपनी स्टेटके कितने ही समाजों के अधिकारी ऐसे हैं जो कि पौराणि-कता पर विश्वास [illegible] हैं समाजों में तो हवन यज्ञ करते [illegible] में

(शेष पृष्ठ ५ पर)

आर्य कुमार आन्दोलन क्यों ?

लेख चौथे का शेष व पांचवां

(ले०—श्री राम प्रकाश जी शान्ति-निकेतन धर्मशाला छावनी)

(गतांक से आगे)

एक ही बात कहते हैं कि युवक तथा कुमार आर्य समाज में नहीं आते।

मैंने स्वयं बातें की हैं कुमारों से तथा युवकों से भी उन का कहना है कि ये जो हमारे पुराने महार थी हैं ये मठाधीश गद्दी धारी बन कर बैठ गए हैं ये हमें आगे आने नहीं देते मन तो हमारा भी करता है कि समाज में जाए गति विधि में भाग लें कुछ कार्य करें कुछ हल चल पैदा करें पर . .

हजारों ही युवकों के मुख से ये बातें सुनी हैं।

आपस में अविश्वास का वातावरण है अविश्वास का नहीं तो कम से कम आपस में मनों के मेल का अभाव तो स्पष्ट ही नजर आ जाता है।

इस अविश्वास के वातावरण को दूर करने के लिए तथा मनों के मेल के लिए भूमिका निर्माण करने के लिए भी आर्य कुमार आन्दोलन की आवश्यकता है।

मैंने प्राय. देखा है कि साप्ताहिक सत्संग में हवन करने के अवसर पर एक या दो वृद्ध सज्जन पहुंचते हैं ढीले ढाले से आकर बैठ जाते हैं घुटनों में सिर रख कर बैठ जाते हैं चिन्ताओं की मूर्तिमान प्रतिभा स्वरूप समस्याओं के प्रतीक।

उदासियों परेशानियों तथा निराशाओं के ढेर साथ ले आते हैं। सारी आर्य समाज में उन की अंतःस्थिति का प्रकाश छा जाता है समाज फटी दीवारों पर समाज के भीतर लटके चित्रों तक पर उन के अन्दर मन का अन्धकार छा जाता है।

कहीं मुस्कराहट तो नजर नहीं आती। कहीं फूल के से विकास का नाम नहीं कहीं सुगन्धि का नाम नहीं कहीं नहीं सौन्दर्य नहीं आभा नहीं तेज नहीं ओज नहीं।

यह सब कुछ तो आर्य समाज से फूट फूट कर पड़ना चाहिए था।

आर्य समाज में जीवन की ज्योति की किरणें प्रखर रूप से निकलनी चाहिए थीं।

अब यह सब कुछ फिर से लाना होगा।

आर्य कुमारों का निर्बाध प्रवेश ही आर्य समाज को सजीव गति मान प्राण वान कर सकता है।

आर्य कुमारों का सामूहिक आन्दोलन एक योजना के अनुसार व्यवस्थित ढग से सारे पंजाब में सारे हिमाचल में सारे दिल्ली प्रदेश में और समूचे भारत में आज के इस गति रोध छिन्न भिन्न कर के रख देगा।

एक हल्ले के साथ हमें उठना होगा और आर्य समाजों के अन्दर आर्य कुमारों तथा आर्य युवको की भीड़ एकत्रित कर देनी होगी।

अपने आर्य नेताओं आर्य उपदेशकों आर्य अधिकारियों आर्य कर्त्ताओं की यह शिकायत दूर कर देनी होगी कि युवक तथा कुमार आर्य समाज के सत्सग में भाग नहीं लेते।

यह आज परम आवश्यक हो गया है कि युवक तथा कुमार अपने आप को आन्दोलन के रूप से संगठित करें तथा आज की स्थिति की चुनौती का सम्यक् प्रत्युत्तर देवें।

यह सब हो सकता है। यह होना भी चाहिए। इसके बिना अब चारा कोई नहीं रहा यदि यह न हुआ तो आर्यसमाजों के भवनों के अन्दर ताले लग जायेंगे आर्यसमाजों के नाम निशान तक मिट जायेंगे।

अभी भी बहुत स्थानों पर ऐसा हो रहा है। अनेकों स्थलों पर आर्य समाजों के भवन लाखों रुपयों के बनाए हुए आज गिर चुके हैं या गिर रहे हैं बरबाद हो रहे हैं। उन भवनों के किराए भी आते हैं पर उनका हिसाब किताब कोई नहीं।

बहुत सारे भवन बेच तक दिए गए हैं। इस लिए कि उन की संभाल नहीं हो पाती थी।

जिसके हृदय में आर्यसमाज का दर्द या पीड़ा है वही इन चीजों को देखकर बेकल-बेचैन हो सकता है। यह स्थिति बिगडती ही जारही है।

इस बिगाड़ को रोकना पड़ेगा और इसके रोकने का उपाय यही है कि समाजों की उपस्थिति बढ़ाई जाए। सदस्य संख्या बढ़ाई जाए। समाज के कार्य कर्मों में रुचि उत्पन्न की जाए लोगों को आर्यसमाज के कार्य में रुचि लेने के लिए प्रेरित किया जाए।

नया खून-नया यौवन नई आशा-नई उमंग ही यह सब कार्य करने में समर्थ है।

आर्य कुमार आन्दोलन न चलाया गया और उसे सफल न बनाया गया तो यह सब कार्य नहीं हो पाएगा।

आर्य कुमार आन्दोलन चलाने तथा उसे सफल बनाने के लिए यह एक प्रबल कारण है।

यह हुआ पांचवां कारण।

(छटा कारण आगामी लेख में)

मैं झुकाता माथ उनको।

[लेखक —श्री राममूर्ति कालिया एम ए नई दिल्ली]

दीप बन कर जो जले,
अज्ञान के तम को हरें,
रवि रश्मि बनकर जलजको,
जो सदा सुरभित करें।
मैं झुकाता माथ उन को॥

जो मेघ बन कर सदा
तृषित धरणी पर झुकें,
भावना हित की लिए,
सर्वस्व जो अर्पण करें।
मैं झुकाता माथ उन को॥

(पृष्ठ ४ का शेष)

बुत परस्ती इधर आर्य समाज मन्दिर में दिन को ऋषि निर्वाण दिवस मनाते हैं उधर घर में रात्री को लक्ष्मी पूजन कराते हैं।

आज समाज की अवस्था को देख कर यही विचार होता है कि यदि पौराणिकता का प्रवेश इसी प्रकार आर्य समाज में होता रहा तो एक दिन आर्य समाज समाप्त हो जावेगा, इस समय आर्य समाज की अवस्था पर यही शब्द रास आते हैं कि—

सफाईयां हो रही हैं जितनी
दिल उतने ही हो रहे हैं काले
अंधेरा छा जावेगा इक दिन
जहां में अगर यही रोशनी रही

अन्त में ऋषि भक्त आर्य वीरो सिद्धांत प्रेमी आर्यों से पूछना चाहता हू कि आप कब तक आर्य समाज की इस दशा को देखते रहोगे आर्य समाज की माता की इस दुर्दशा को देखकर आप खामोश क्यों बैठे हैं यदि आप के दिल में दर्द है यदि आप का रक्त ठण्डा नहीं हो गया हो तो मेरी आप से प्रार्थना है कि आप आर्यसमाज को मौजूदा अवस्था से निकालने का यत्न करें आर्य वीरो पवित्र वेद का वास्ता है ऋषि के प्यार की कसम है एक बार आर्यसमाज की नौका को मंझदार में डूबने से बचाओ।

'नौकरी, नारी और परिस्थितियां'

(कु० अरुण आर्या प्रभाकर, टोहाना)

हमारे आर्य समाज में नारी का नौकरी करना मानो रिवाज सा बनता चला जा रहा है। कुछ वर्ष पहले तो यह केवल बड़े २ नगरों तक ही सीमित था किन्तु अब चारों ओर नगर क्या और ग्राम क्या, प्रत्येक प्रबुद्ध लड़की के मस्तिष्क में प्रतिक्षण यही विचार धारा प्रबल रहती है कि 'मैं नौकरी करूं और करूं तो कैसे करूं?' यह सत्य है कि जो भी उस ने विद्या ग्रहण की है उसका सदुपयोग अवश्य मेव करना चाहिए लेकिन लाभ तभी है जबकि उस कमाए हुए अर्थ का भी सदुपयोग किया जाए। लेकिन इस प्रथा ने कई सामाजिक समस्याओं को जन्म दिया है।

प्राचीन विचारों के आदमी कहते हैं कि लड़कियों को नौकरिया नहीं करवानी चाहिए, उन का चरित्र कलुषित होने का भय बराबर बना रहता है। उन का विचार कुछ मात्रा तक ठीक भी है क्योंकि आजकल की घटित घटनाएं उनके सम्मुख है। प्रतिदिन हमें समाचार पत्रों में ऐसी घटनाएं पढ़ने में और सुनने में आती हैं कि अमुक नगर में या ग्राम में एक लडकी का एक लड़के के साथ love हो गया और उनका विवाह हो गया अत जो भी लड़की नौकरी करे उसे सर्वप्रथम अपने मन पर संयम करना होगा। यदि वो ऐसा नहीं करती तो वह अपने पूर्वजों के नाम पर धब्बा लगाती है। क्यों कि ऋषि दयानन्द जी ने बड़े गर्व और अभिमान से लिखा है कि, 'भारतवर्ष का धर्म भारत वर्ष के पुत्रों से नहीं वरन स्त्रियों की कृपा से स्थिर है। यदि भारतीय रमणियां अपना धर्म छोड़ देतीं तो अब तक भारत नष्ट हो जाता।' इन शब्दों से स्पष्टतया प्रतीत होता है कि महर्षि के हृदय में नारी के प्रति अति श्रद्धा तथा सम्मान के भाव थे। अतः हमें इन शब्दों के मूल्य को बढ़ाना होगा।

अब यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि क्या नारी का नौकरी करना नितान्त आवश्यक है तो इस का उत्तर यही होगा कि 'नहीं'! जैसी परिस्थिति हो उसी के अनुसार प्रत्येक कार्य करना चाहिए। जिन परिवारों की आर्थिक दशा अच्छी है उन्हें लड़कियों से नौकरियां नहीं करवानी चाहियें क्योंकि विद्या का सदुपयोग अन्य कई साधनों के द्वारा भी किया जा सकता है। हां, किसी लडकी के पिता का असमय देहान्त हो गया है या उसका पिता कमाने के अयोग्य है अथवा उसका पिता इतना नहीं कमा पता जिससे कि वो परिवार का पालन पोषण ठीक नहीं कर पाता है तो ऐसी अवस्था में लडकी से नौकरी करवाना कुछ अनिवार्य हो जाता है। इसी तरह यदि पति की आय पर्याप्त न हो तो स्त्रियों का नौकरी करना उचित रहता है यदि वो फैशन में या दूसरों की देखा-देखी करने लग जाती हैं तो ऐसा करना उनके लिए उचित प्रतीत नहीं होता। ऐसा करने वाली नारी में प्राय दम्भ आ जाता है। और वह अपने को सब से अधिक महत्वपूर्ण समझने लग जाती है। उस दृष्टि में पति के लिए कोई सम्मान नहीं रह पाता। और परस्पर बराबरी का दावा लगना प्रारम्भ हो जाता है। आपस में मनमुटाव सा रहने लग जाता है।

इसी प्रकार जो लड़कियां विवाह के पूर्व नौकरियां करने लग जाती हैं, वह भी स्वच्छन्द प्रकृति की हो जाती हैं। बहुत सी इसीलिए बहुत वर्षों तक अविवाहित रह जाती हैं कि माता पिता उन से अधिक कमाने वाले पति नहीं ढूढने पाते। माता पिता चाहते हैं कि जब उनकी कन्या इतना कमाती है तो कम से कम उससे अधिक कमाने वाला वर तो होना ही चाहिए। इस नौकरी की होड में, पिछले दस बारह वर्षों से बड़ी आयु की अविवाहित लड़कियों की संख्या में वृद्धि होती चली जा रही है।

स्त्रियां यदि नौकरी करती हों तो, उन्हें अपने घर में तथा कार्य स्थानों में अपने व्यक्तित्व को दूसरी नारियों से भिन्न बनाना चाहिए। चार पैसे यदि हाथ में आ जायें तो उस का यह तात्पर्य नहीं कि बाजार में जो भी घटिया बढिया, नए ढंग की साड़ी हो, उसे खरीद ले। ढेरों पर्स रुमाल सैंडल और चप्पलों से घर को भर ले। घर की मालकिन या बेटो के यदि नौकरी करने पर भी घर को आर्थिक लाभ न हो तो उस का नौकरी करना सर्वथा बेकार है।

अन्तत. इन सभी बातों के दृष्टिगत यह निष्कर्ष निकलता है कि नारी को परिस्थितियों के अनुसार अपने मन पर सयम रखते हुए नौकरी करनी चाहिये। यदि इस से विपरीत दशा हो तो नहीं करनी चाहिए। क्योंकि जिस प्रकार पृथ्वी के फलों को उनकी कमियकता सुन्दर बना देती है उसी प्रकार नारी को उसके गुण सुन्दर बना देते हैं।

आर्य समाज लक्ष्मणसर अमृतसर

आज कल वास्तविक अर्थों में तीर्थ स्थान बना हुआ है लगभग तीन सप्ताह से श्री प० ओ३म् प्रकाश जी महोपदेशक आ० प्रा० प्र० सभा अपनी मनोहर कथा से आनन्दित करते रहे। इस के पश्चात विख्यात आर्य नेता श्री म० राम गोपाल जी शाल वाले तथा श्री स्वामी रामानन्द जी पधारे हुए हैं और प्रतिदिन प्रात. सत्सङ्गों में अत्यन्त प्रभावशाली भाषण दे रहे हैं। इस के साथ ही ४ अगस्त से श्रीयुत आचार्य कृष्ण जी एक सप्ताह तक अमृत वर्षा करेंगे। इस प्रकार यह ज्ञान गङ्गा निरन्तर ऋषि तर्पणी तक जारी रहेगी।

धर्म प्रेमी भाई और बहिन इस शुभ अवसर से अधिक से अधिक लाभ उठावें।

आज रविवार के साप्ताहिक सत्संग में श्री म० राम गोपाल जी ने अपने भाषण में आकाश वाणी की हिन्दी में फारसी, अरबी के विदेशी शब्द सम्मिलित करके इस का स्वरूप बिगाडने के विरुद्ध रोष प्रकट करते हुए समस्त रेडियो रखने वाले भाइयों को प्रेरणा की कि रेडियो की हिन्दी में इस परिवर्तन के विरुद्ध, प्रधान मन्त्री गृह मन्त्री तथा श्री गोपाल रैड्डी मन्त्री रेडियो विभाग को रोष के पत्र (पोस्ट कार्ड) अवश्य भेजें जिन पर रेडियो का लाइसैन्स नम्बर अवश्य दें।

निवेदक—रुद्रदत्त शर्मा (प्रधान)

ग्राहक महानुभाव पत्र व्यवहार तथा शुल्कादि भेजते समय अपनी ग्राहक सख्या अवश्य लिखें, ताकि उत्तर देने में आसानी रहे।

हिसार मंडल का प्रचार कार्य

(प. चन्द्रसैन जी आर्य हितैषी द्वारा)

—सभा के प्रसिद्ध वक्ता पं चन्द्रसैन जी हितैषी डा. दुर्गा सिंह जी को साथ ले कर हासी, भवानी तहसीलों में प्रचार कार्य करते रहे। आर्य समाज माडल टौन हिसार में चार दिन और जाखल मंडी में दो दिन तक बडी धूमधाम के साथ प्रचार होता रहा। अब २८ से ७ अगस्त तक अपने मंडल समेत हिसार के गावों मे प्रचारार्थ जा रहे हैं। अन्य समाजे भी इस सुअवसर से पूग २ लाभ उठाये। पं चन्द्र सैन जी कई वर्षों से इस जिला मे तथा अन्य प्रन्तों में प्रचारार्थ जाते रहते हैं। आप अच्छे जोशीले व्याख्याता हैं सभा के पास अनमोल रत्न हैं। यह सारा मडल श्री मुरारीलाल जी शास्त्री प्रधान आर्य समाज हिसार की देख-रेख में बड़ी तत्परता के साथ प्रचार कार्य कर रहा है।

—आल इंडिया दयानन्द मालवेशन मिशन होशियारपुर ने जून जुलाई ६२ में १६७६ ईसाई पंजाब, बिहार और उडीसा प्रान्तों के शुद्ध करके वैदिक धर्म में प्रविष्ट किया, तथा ७३१० भाई मध्य प्रदेश के शुद्ध करके वैदिक धर्म की दीक्षा मे लाए गए।

शादीलाल
मन्त्री मिशन

—आर्य समाज हमीरपुर का चुनाव—

प्रधान—ला. माधोराम जी एडवोकेट, उपप्रधान—महाशय जगदीश चन्द्र जी, मन्त्री—श्री वेदप्रकाश जी गुप्ता, उपमन्त्री—श्री देवी शरण जी, कोषाध्यक्ष—राजकुमार जी आर्य,—पुस्तकाध्यक्ष ला मंगत राम जी एडवोकेट।

वेद प्रकाश गुप्ता
मन्त्री आर्यसमाज

—आर्य समाज गगरेट (हुशियारपुर) का चुनाव—

इस समाज की स्थापना १० जुलाई ६२ मंगलवार को की गई और निम्न अधिकारी चुने गए—

प्रधान-पं. परस राम जी, मन्त्री—प. हेमदत्त जी वैद्य, खजाची—पं. देवशर्माजी, अंतरग सदस्य—डा. बलदेव दत्त जी, प रामदास जी हैडमास्टर, ला. रामजी दास जी सराफ, वैद्य रत्न चन्द जी, ला. रत्न चन्द्रजी, ला रामकृष्ण जी।

होमदत्त मन्त्री
आर्यसमाज

—पंजाब प्रान्तीय आर्यकुमार परिषद्—

की यह सभा सर्व सम्मति भारत सरकार की आकाश वाणी की भाषा परिवर्तन नोति का घोर विरोध करतो हुई भारत सरकार से उर्दू, फारसी शब्दों का मिश्रण न करने की मांग करती है।

राष्ट्रपति से प्रार्थना करती है कि वे हिन्दी के शुद्ध रूप को बिगड़ने से बचाएं। क्यों संस्कृत निष्ठ भाषा ही सही अर्थों मे राष्ट्रभाषा बन सकती है इस में ५० प्रतिशत से अधिक शब्द देश की समस्त भाषाओं (उर्दू को छोड़कर) संस्कृत से लिए गए हैं।

रघुबीर सिंह मन्त्री
आर्यकुमार परिषद्

महर्षि स्वामी दयानन्द

(पृष्ठ २ का शेष)

४ हजरत मुहम्मद साहब ने पाच समय की नमाज और एक माह के रोज़ों से ही मुक्ति मानी है और आज तक न कहीं खुदा सातवें आसमान से बोला है और न कोई खास जगह बहिश्त की किसी को नसीब हुई है और न ही कब्र से मुर्दे उठे हैं। अगर रूहों और मुर्दा शरीरों का मिलाप होता होगा जैसा कि मुसलमान मानते हैं तो जो मुर्दे सदियों से गल सड चुके है उनके शरीर कहा से आयेंगे। स्वामी दयानन्द ने इन सब बातों का वेज्ञानिक विश्लेषण करते हुए स्पष्टीकरण किया तथा कर्म के दर्शन पर बल दिया।

५ महात्मा बुद्ध ने अहिंसा को अपनाया तथा उसका प्रचार किया। किन्तु ईश्वर के अस्तित्व में उनको सन्देह था। किन्तु फिर उन का निर्माण कैसे हुआ? आजकल उनके अनुयायी अण्डे, मछली व मदिरा आदि का प्रयोग करते हैं फिर भी बौद्ध धर्मी अहिंसा की की दुहाई देते हैं।

स्वामी जी ने अहिंसा का प्रचार भी किया और ईश्वर के आस्तित्व तथा उनके सत चित आनन्द स्वरूप का प्रतिपादन करते हुए मोक्ष का सही मार्ग बतलाया।

स्वामी जी ने निम्नलिखित तथ्यों को सही रूप में प्रस्तुत किया।

१ ईश्वर, जीव और प्रकृति अनादि है।

२. ईश्वर सवशक्तिमान, अजन्मा, अजर, अमर, अभय, नित्य शुद्ध, बुद्ध व सच्चिदानन्द स्वरूप है। उसी की पूजा करना सब का परम कर्तव्य है।

३ जीव की उत्पत्ति व मृत्यु स्वयं के कर्म अनुसार होती है।

४ जैसा कोई कर्म करेगा उस का फल अवश्य भोगेगा।

५ प्रत्येक मनुष्य अपनी तपस्या व त्याग से मोक्ष तथा अक्षय आनन्द प्राप्त कर सकता है।

६. वर्णविचार उत्पत्ति से नहीं कर्म से होता है।

७. स्त्री जाति व शूद्रों को भी वेद पढ़ने व ज्ञान प्राप्त करने का अधिकार है।

वस्तुतः हम स्वामी जी के परम आभारी हैं कि उन्होंने अनेक प्रकार के अन्ध विश्वासों का मूलोच्छेदन करके विश्व के लिए मानव धर्म का एक सरल व सीधा मार्ग दिखलाया। इसी लिए वे इस युग के सब से बड़े सुधारक माने जाते हैं।

शोक समाचार

आर्य जगत को यह पढ़ कर अति खेद होगा कि आर्य ससार के प्रसिद्ध कार्य-कर्त्ता व लगनशील व्यक्ति श्री निरजन दास जी जेहन का २६. ७. ६२ को रात के १० बजे आकस्मिक स्वर्गवास हो गया।

आप भारत सरकार के under secretary पद से मुक्त हुए थे तथा A. P P. सभा जालन्धर के मन्त्री पद पर भी कार्य करते रहे थे। आप के निधन से आर्य जगत को जो हानि पहुंची है वह अवर्णीय है।

हम स्वर्गीय आत्मा की सदगति व उनके परिवार के साथ सम वेदना प्रकट करते हुए प्रभु से शुभ गति देने की प्रार्थना करते हैं।

-व्यवस्थापक

पत्र सूचना कार्यालय

भारत सरकार

आकाशवाणी संगीत प्रतियोगिता—१९६२

नई देहली २१ जुलाई आकाशवाणी की वार्षिक संगीत प्रतियोगिता ६ दिसम्बर को शुरु होगी। आरम्भिक प्रतियोगिता आकाशवाणी के प्रत्येक केन्द्र में होगी। हिन्दुस्तानी संगीत की अंतिम प्रतियोगिता दिल्ली में और कर्नाटक संगीत की मद्रास में होगी। इनकी तारीख बाद में घोषित की जाएगी। संगीत की यह प्रतियोगिता युवक कलाकारों के लिए होती है।

मद्रास हाईकोर्ट की शताब्दी पर विशेष डाक-टिकट

१ अगस्त, १९६२ को मद्रास हाईकोर्ट को स्थापित हुए सौ साल हो जायेंगे। उस दिन एक विशेष डाक टिकट जारी किया जाएगा। नासिक के सरकारी सिक्यूरिटि प्रेस के कलाकारों ने इस टिकट का नमूना तैयार किया है। भूरे रंग वाले इस टिकट में अशोक चक्र और तीन शेरों की आकृति भी बनी रहेगी।

प्रसिद्ध समाज सेविका श्रीमती रमाबाई रानाडे के सम्मान में २५ अगस्त को विशेष डाक टिकट जारी किए जाएंगे।

१४ नवम्बर को बाल-दिवस के अवसर पर भी विशेष डाक टिकट जारी किए जाएंगे।

इस वर्ष अक्टूबर में अन्य जन्तु सप्ताह में अन्य वस्तुओं पर डाक टिकटों का पहला संग्रह जारी किया जाएगा।

दिसम्बर में गोवा की मुक्ति पर भी एक विशेष डाक टिकट जारी किया जाएगा।

श्री प्रकाशवीर शास्त्री एम. पी. जालन्धर में

जालन्धर निवासियों को यह जानकर प्रसन्न होगी कि आर्यजगत के सुप्रसिद्ध श्री प्रकाशवीर जी शास्त्री मैंबर पार्लियामैंट रविवार ५ अगस्त प्रातः ६ बजे फ्रन्टीयर मेल से जालन्धर पधार रहे हैं। जनता से प्रार्थना है कि अधिकाधिक संख्या में स्टेशन पर पहुँच कर अपने प्रिय नेता का हार्दिक स्वागत करें। उसी दिन (रविवार ५ अगस्त) रात के ८ बजे साई-दास ए.ऐस. हायर सैकन्डरी स्कूल के विशाल मैदान में श्री शास्त्री जी के सम्मानमें जालन्धर की समस्त आर्य समाजों की ओर से एक सार्वजनिक सभा होगी। उसमें भारी संख्या में सम्मिलित होकर उनके उच्च तथा अमूल्य विचारों को सुनिए। निवेदक.—खुशहाल चन्द पाराशर मन्त्री—आर्य समाज किला जालन्धर।

शोक प्रस्ताव

आर्यसमाज किला जालन्धर का यह अधिवेशन अपने अन्तरंग सभासद श्री निरंजन देव जी मेहन की अकाल मृत्यु पर हार्दिक शोक प्रकट करता है। और भगवान से प्रार्थना करता है कि वह दिवंगत आत्मा को स्वर्गधाम में शांति एवं सद्गति प्रदान करें और उनके सम्बन्धियों को इस महान कष्ट को सहन करने की शक्ति प्रदान करें।

खुशहाल चन्द्र पाराशर मन्त्री—आर्य समाज किला जालन्धर।

महात्मा हंसराज साहित्य विभाग

आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा पंजाब जालन्धरने स्वर्गीय महात्मा हंसराजजी की पुण्य स्मृति में वैदिक धर्म संबंधी पुस्तकों के प्रकाशन का विभाग खोला हुआ है जिसने समय २ पर समयानुकूल पुस्तकों के प्रकाशन द्वारा महात्मा जी के नाम व काम को चिरस्थायी किया है। अब आर्य समाजों, व महात्मा जी के श्रद्धालु भक्तों का कर्तव्य है कि इस विभाग की अधिक से अधिक पुस्तकें मंगाकर उनके नाम को अमर करें साथ ही इस विभाग की आर्थिक सहायता करें।

आर्य समाजों के सदस्य व आय व्यय सम्बन्धी सुन्दर पक्की जिल्द के रजिस्टर	१.००
महात्मा हंसराज जी का सम्पूर्ण विस्तृत तथा सचित्र जीवन	२.००
प्रभु दर्शन	२-५० न०पै०
महर्षि दर्शन (प्रिं. दिवानचन्द कृत)	२.००
गीता दिग्दर्शन	.५०
जीवन ज्योति	.६२
स्वाध्याय संग्रह (नयाप्रकाशन)	५०
दयानन्द शतक	१.००
आर्य भजन संग्रह	.५०
सत्यार्थ प्रकाश भाष्य I समुल्लास	१.००
” II	१ ००
स्वामी दयानन्द जी के पत्र व्यवहार III	.५०
” IV	.५०
पातंजल योग अरविंद की योग पद्धति	७५
अमृतवाणी सजिल्द	.५०
अजिल्द	.३१
आर्यसमाज की सदस्यता के प्रवेश पत्र	२.५०
चारों वेदों के मूल पुस्तक	२२.५०
संस्कार विधि	१.२५
पंचमायज्ञ विधि	.२०
आर्या भिविनय	.२५
वैदिक सत्संग गुटका(उर्दू)	.२५
वैदिक धर्म का महत्त्व	१२.००
वैदिक धर्म मुझे क्यों प्यारा है ?	१ ५०
चारों वेदों के शतक बढ़िया चित्ताकर्षक जिल्द प्रति कापी	१ ००
राधा स्वामी मत आलोचन	३७
दयानन्द हिज लाइफ एण्ड वर्क अंग्रेजी में (प्रिं.सूर्य भानु जीM.A. लिखित)	१ ५०
टीचिंग ऑफ ईशउपनिषद(अंग्रेजी) में (श्री दीवान चन्द जी लिखित)	१ २५

नोट—इनके अतिरिक्त आनन्द स्वामी जी महाराज लिखित स्वाध्याय व अध्यात्म वाद सम्बन्धी सभी पुस्तकें हमारे यहां से प्राप्य हैं।

मिलने का पता—

प्रबन्धक—महात्मा हंसराज साहित्य विभाग A.P.P. सभा निकट कचहरी जालन्धर।

आर्य जगत के पाठको के लिए

शुभ सूचना

चिरकाल से आर्य समाजों की शिकायत आ रही थी कि आर्यजगत ठीक समय पर नहीं आता और हम इस पत्र का सदुपयोग अपने साप्ताहिक सत्संगों में नहीं कर सकते। इस त्रुटि के निवारणार्थ पोस्ट ऑफिस के अधिकारियों से पत्र व्यवहार किया गया जिसके फल स्वरूप अब यह पत्र शुक्रवार की बजाए बृहस्पति वार को पोस्ट हुआ करेगा जिस से कि सभी समाजों में ठीक समय पर पहुंचकर लाभकारी सिद्ध होगा।

२—समाज संबंधी प्रकाशनार्थ सूचनायें व लेख रविवार तक सभा के कार्यालय में पहुच जाने चाहिए।

मुद्रक व प्रकाशक श्री संतोषराज जी मन्त्री आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा पंजाब जालन्धर द्वारा वीर मिलाप प्रेस, मिलाप रोड जालन्धर से मुद्रित तथा आर्यजगत कार्यालय महात्मा हंस राज भवन निकट कचहरी जालन्धर शहर से प्रकाशित मालिक—आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा पंजाब जालन्धर

टेलीफोन न० ३०४७ [आर्यप्रादेशिक प्रतिनिधि सभा पंजाब जालन्धर का साप्ताहिक मुखपत्र] Regd. No.P.121

एक प्रति का मूल्य १३ नये पैसे — वार्षिक मूल्य ६ रुपये

वर्ष २२ अंक ३२) रविवार २८ श्रावण २०१९— १२ अगस्त १९६२ दयानन्दाब्द १३८ (तार-प्रादेशिक जालन्धर

वेद सूक्तय:

एभिः सृजतु विश्वकर्मा

वह विश्व का कर्ता भगवान् एभि इन शुभ गुण कर्म स्वभावों से हमें सृजतु-युक्त कर दे। वह प्रभु हमें उत्तम २ गुणों से भरपूर कर दे। हम गुणी बनें।

एनश्चकृवान् बद्धः

यह जीवन बद्ध-विषम वासनादि जाल पाश में बधा हुआ एन-पाप आदि चक्रवान्-कर देता है। मनुष्य विषयों में फंस कर जो पाप कार्यों में लग जाता है।

विश्वकर्मन् प्रमुञ्चा

हे सारे विश्व के मालिक! मुझे इन बन्धनों, पाशों और विषय-विकारों के इन जालों से प्रमुञ्चा छुड़ा दे। मेरे सारे ये बन्धन काट कर इन से दूर कर दे।

अथर्ववेद

वेदामृत

येभ्यो होत्रां प्रथमामायेजे मनुः समिद्धाग्निर्मनसा सप्त होतृभिः। त आदित्या अभयं शर्म यच्छत सुगा नः कर्त्त सुपथा स्वस्तये॥ ऋ० मं० १० सू० ६३ मन्त्र ७

अथ—(येभ्य) जिन के लिए (होत्रा) यज्ञ को (प्रथमा) उत्तम (आयेजे) करता है (मनु) मनन वाला विद्वान् (समिद्धाग्नि) अग्नि को दीप्त करने वाला यज्ञशील (मनसा) मन से श्रद्धा से (सप्त होतृभि) सात होताओं यज्ञ करने वाली इन्द्रियों के द्वारा जिन के लिए यज्ञ करता है। (ते) वे (आदित्या) सूर्य के समान हर बात में चमकने वाले लोग (अभय) अभयपन (शर्म) सुख कल्याण को (यच्छत) देवें (सुगा) सरलता से प्राप्त होने वाले ये दिव्यजन (न) हमें (कर्त्त) करें (सुपथा) सन्मार्ग से चलाते हुए (स्वस्तये) कल्याण के लिए हमें प्राप्त होवें।

भाव—मनु मननशील है। मनन करने वाले को ही मनुष्य और मनु कहा जाता है। अपने शरीर के सात होताओं सात इन्द्रियों के द्वारा परोपकार, ज्ञान तथा कर्म करने की यज्ञ अग्नि को प्रदीप्त करता है। ज्ञान, कर्म व परोपकार यज्ञ करता है। क्यों और किस लिए? इसलिए कि ज्ञानी और परोपकारी जन उसे ऐसा यज्ञ कर्म करने के लिए कहते हैं। उन ज्ञानियों की आज्ञा मान कर ऐसा शुभ कर्म करता है। ऐसे ज्ञान, विद्या, आचार विचार में चमकने वाले जो आदित्यजन हैं—वे हमें जीवन में सदा प्राप्त होते रहें। हमारा ऐसे दिव्य सूर्य ही पथ-प्रदर्शन करें, हमें सरलता से प्राप्त होते रहें, हमारा सदा कल्याण मंगल करते रहें। सुनेता अपने अनुयायियों को सुख से सुपथ पर चलाता हुआ ठीक स्थान पर पहुंचा देता और कुनेता सब का बेड़ा डुबा देता है। प्रभो! हमें सदा ऐसे ज्ञानी नेता प्रदान करें—स०

ऋषि दर्शन

इदं जगद् व्याप्तम्

प्रभु के प्यारो! उसी परमात्मा से इदम्-यह जगत्-जड़ चेतन सारा जगत् व्याप्तम्-व्याप्त है। इस सारे विश्व में वही ब्रह्म व्यापक हो रहा है।

स खलु एक एव

स-वह भगवान खलु-निश्चय जानो एक एव-एक ही है। अनेक पदार्थों को ब्रह्म मानकर पूजने वाले नरनारी प्रभु का निरादर ही करते हैं। वह एक ही है एक ब्रह्म-ब्रह्म एक है।

तस्य सर्वशक्तिमत्वात्

वही ब्रह्म सारी शक्तियों का भंडार है। सारे बलों का केन्द्र है। जितनी भी विश्व की शक्तियां हैं इन सब का केन्द्र भण्डार वही परमेश्वर ही है।

भाष्य भूमिका

अधिष्ठाता—संतोषराज मंत्री सभा — सम्पादक: त्रिलोक चन्द्र शास्त्री

मेरा अनुभव

(पूज्य महात्मा आनन्द स्वामी जी सरस्वती महाराज)

पूज्य महात्मा आनन्द स्वामी जी महाराज ने अध्यात्मवाद की साधना का केवल पुस्तक ज्ञान का पठन मनन ही नहीं किया अपितु लम्बे अभ्यास मार्ग पर चल कर जीवन में बहुत कुछ अनुभव भी किया है, पर्याप्त प्राप्त भी किया है। तभी अध्यात्मप्रवचनों में अनुभूति की तत्व पूर्ण बातें वे विश्वासपूर्ण शब्दों से कहते रहते हैं। पाठक भी इस मधुरप्रसाद को प्राप्त करें सं—

मेरा अनुभव यह है कि जब तन्मय हो कर हृदय की अन्तिम कोर से गायत्री मन्त्र का जप किया जाता है और साथ ही अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह तथा शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय, ईश्वर प्रणिधान की चट्टान पर मानव जीवन के भवन का निर्माण करने का भरसक प्रयत्न किया जाता है, तो परमात्मा की सविता शक्ति ने जिस प्रकार सोई हुई प्रकृति को प्रेरणा कर के उसे दृश्यमान ससार का रूप दे दिया था—उसी प्रकार गायत्री का साधक इस सविता शक्ति द्वारा परमात्मा से प्रेरणा प्राप्त करता है। उस की बुद्धि निर्मल, सात्विकी, तीव्र, शुभ तथा पवित्र होते २ ऋतम्भरा हो गई और साथ ही प्रभु कृपा प्राप्त हो गई तो फिर संसार की कौन सी वस्तु गायत्री के साधक के लिए अलभ्य रह जाती है। ठीक ही तो कहा है—किमलभ्यं भगवति प्रसन्ने—भगवान् के प्रसन्न होने पर क्या अलभ्य रहता है? योगदर्शन का भाष्य करते हुए श्री व्यास मुनि ने अपना अनुभव भी बतलाया है—भक्ति विशेषादावर्जित ईश्वरस्तमनुगृह्णाति अभिध्यान मात्रेण। अर्थात् भक्ति विशेष से झुका हुआ ईश्वर अपने शुभ सकल्प से उस पर अनुग्रह करता है। जड़ पदार्थ-प्रकृति को प्रेरणा दे कर उस प्रभु ने क्या से क्या बना दिया और मनुष्य तो एक सत्य, चेतन और अमर आत्मा वाला है तो क्या इस चेतन को वह प्रेरणा न देगा? वह तो सर्व व्यापक प्रेरक और नियन्ता है।

उस की प्रेरणा शक्ति केवल आदि सृष्टि के लिए नहीं थी वह तो अब भी प्रतिक्षण हमें प्रेरणा दे रही है। हृदयाकाश में विराजमान वह प्रेरक प्रतिक्षण मानव के कल्याण के लिए प्रेरणा करता है। महर्षि दयानन्द ने सत्यार्थ-प्रकाश के सातवें तथा नवम समुल्लास में इस का वर्णन बडे सुन्दर शब्दों में किया है। महाराज लिखते हैं—

जब आत्मा मन और मन इन्द्रियों को किसी विषय मे लगाता वा चोरी आदि बुरी या परोपकार आदि अच्छी बात के करने का जिस क्षण में आरम्भ करता है, उसी समय जीव की इच्छा, ज्ञानादि उसी इच्छित विषय पर झुक जाते हैं। उसी क्षण में आत्मा के भीतर से बुरे काम करने में भय-शका और लज्जा तथा अच्छे कामों के करने में अभय, निःशंकता और आनन्दोत्साह उठता है। वह जीवात्मा की ओर से नहीं किन्तु परमात्मा की ओर से है—और नवम समुल्लास में यह आदेश है—

जब इन्द्रिया अर्थों के, मन इन्द्रियों और आत्मा मन के साथ सयुक्त हो कर प्राणों को प्रेरणा कर के अच्छे या बुरे कर्मों में लगाते हैं तभी बहिर्मुख हो जाते हैं। उसी समय भीतर से आनन्द, उत्साह, निर्भयता और बुरे कर्मों में भय, शका, लज्जा उत्पन्न होती है। यह अन्तर्यामी परमात्मा की शिक्षा है। जो कोई इस शिक्षा के अनुकूल चलता है, वही मुक्ति जन्य सुखों को प्राप्त होता है और जो विपरीत चलता है वह बन्ध जन्य दुःख भोगता है।'

हां यत्न यह होना चाहिए कि गायत्री का साधक अन्तरात्मा में आने वाली प्रेरणा को, शिक्षा को और इस आवाज़ को अनुभव करने के लिए तय्यारी करे। यह गायत्री-जप द्वारा ही करनी होती है। साधक को इस श्रद्धा और विश्वास के साथ परमात्मा से यह याचना करनी है कि हे सारी शक्तियों के भण्डार प्रभो! जब तूने अपनी अपिता शक्ति के नन्हें से प्रयोग से इतना बडा विशाल संसार रच दिया है, जिस में एक, दो, तीन नहीं अपितु दो अर्ब सूर्य और सूर्यों के नक्षत्र ग्रह तथा मण्डल विद्यमान हैं। तब ओ दयावान! मेरी नन्ही सी बुद्धि को प्रेरणा करने में तुझे क्या कोई श्रम होगा? मेरी टेर सुन और मेरी बुद्धि को प्रकृति से हटा कर अपनी ओर ले चल। मेरी बागडोर तेरे अर्पण है।

वेद तथा श्रावणी

(डा० सूर्यदेव जी एम. ए. डी. लिट्. अजमेर)

वेद ही जग में हमारा ज्योति जीवन सार है।
वेद ही सर्वस्व प्यारा पूज्य प्राणाधार है॥
सत्य विद्या का विधाता ज्ञान वह गुरु गेय है।
मानवों का मुक्तिदाता धर्म धी का ध्येय है॥
ब्रह्म कुल का देवता है राज कुल रक्षक रहा।
वैश्य वंश विभूषिता है शूद्र कुल स्वामी महा॥
वेद ही वर्णाश्रमों का आदि है आधार है।
श्रावणी का श्रेष्ठ उत्सव पुण्य पावन पर्व है।
वेद व्रत स्वाध्याय वैभव आज ही सुखसर्व है॥
वेद पाठी विप्र का यह दिव्यदिन व्यवहार है।
वेद का पाठन पठन हो वेद वादविवाद हो।
वेद हित जीवन मरण हो वेद हित आल्हाद हो॥
आर्यजन का आज से व्रत विश्ववेद प्रचार हो।
रोज रोज सरोज समश्रुति सूर्य से खिलते रहें।
वेद चन्द्र चकोर हम श्रुति मोद मिलते रहें।
वेद ही स्वामी सखवा सब वेद ही परिवार है।

आर्य समाजें वेद सप्ताह धूम धाम से मनायें। दिल्ली के आर्य विद्वानों की घोषणा

आर्य जनता से निवेदन है कि वह वेद सप्ताह १५ अगस्त से २२ अगस्त तक वेद स्वाध्याय सप्ताह के रूप में धूम धाम से मनायें। इस कार्य क्रम में श्री स्वामी दयानन्द जी महाराज की लिखी पुस्तक 'आर्याभिविनय' पर ही व्याख्यान करावें जहां बड़ी सभायें न हो सकें वहां आर्य समाज के सदस्य चाहे वह सख्या में कितने ही क्यों न हों इस पुस्तक का स्वाध्याय मिल कर करें। यत्न करें कि यह पुस्तक प्रत्येक सदस्य की अपनी हो। यह निश्चय उपदेशक मंडल की बैठक तिथि २९.७.६२ में सर्व सम्मति से किया गया है। राजकुमार मंत्री उपसभा देहली।

सम्पादकीय—

आर्य जगत्

वर्ष २२] रविवार २१ श्रावण २०१८, १२ अगस्त १९६२ [अंक ३२

देवत्तं ब्रह्म गायत

तारीख १५ अगस्त बुधवार से राखी बन्धन के त्योहार के साथ २ श्रावणी पूर्णिमा से वेद सप्ताह प्रारम्भ हो रहा है। यह पर्व बड़े ही महत्व का है। इस दिन से वेद के पठन पाठन का व्रत लिया जाता है। वर्षा ऋतु मे प्राय. सारे वानप्रस्थी और सन्यासी भ्रमण को छोड़कर एक ही स्थान पर एकत्रित होकर स्वाध्याय का विशेष संकल्प लेते थे। इसे ऋषितर्पणी भी इसीलिए कहा जाता है कि इसमें भारतीय जनता अपने महान् ऋषि मुनियों का तर्पण किया करती थी। तर्पण का अर्थ उनकी यथोचित सेवा करके उनके वेदोपदेश का श्रवण कर अपने जीवन में उन सत्सदेशों का आचरण किया जाता था। इसको श्रावणी भी संभवत. इसीलिए कहा जाता है—क्योंकि इस दिन से वेद के श्रवण और श्रावण सुनने सुनाने का सवत्र आयोजन होता था। घरों में, सत्संग वनों में, आश्रमों, शिक्षा के संस्थानों में वेद स्वाध्याय का व्रत लेते थे। वेद में आता है—देवत्तं ब्रह्म गायत—परमेश्वर का दिया ज्ञान वेद गायन करो। गाना है तो वेद का संगीत गाओ। वेद गीत गायन करने का यह पर्व है।

वेद सप्ताह आ गया है। वेद आर्य जाति का परम पुनीत धन वैभव है। यह ब्रह्म मयी है प्रभु की दी गई सारे विश्व की कामधेनु है। जीवन की सारी कामनाओं को पूर्ण करने वाली [illegible] जैसा मीठा दूध देने वाली गौ है। इसीलिए यह भी माता वेदमाता है। यह वरदा वेद जननी है। सबको पवित्र करने वाली है। अपनी सन्तान को प्रत्येक पदार्थ देती है। यह कल्प वृक्ष है। इसके उपदेश के फल इतने स्वादु, मीठे, अनुपम और उत्तम हैं जिनका स्वाद वही जानता है जो इसके फल को खाता है। जिस परिवार में, समाज में तथा राष्ट्र में इस वेद कामधेनु का निरादर होता है, इसको दबाने का प्रयास होता है अथवा इससे लोग उदासीन हो जाते हैं—उस परिवार, समाज एवं देश का जीवन जीवन नहीं रहता। प्रतिवर्ष इसीलिए वेद के स्वाध्याय का व्रत लिया जाता था। श्रीराम का जीवन, महात्मा कृष्ण की सारी विचार-धारा, दर्शनकारों के सूत्र, उपनिषद् काल के सारे सन्त इसी वेद के पुनीत प्रेम से भरे हुए हैं। जिस समय इस कामधेनु का अपमान होता है उस देश की मानसिक शांति, आत्मिक विकास, सामाजिक वृद्धि तथा राष्ट्रीय कल्याण सर्वथा रुक जाता है।

हम वेद सप्ताह बड़ी आस्था से मनायें। वेद पढने का व्रत लेवें। जीवन में इसके लिए विशेष रुचि दिखावें। परिवारों में इसके उपदेश का व्यवस्था बनावें। आज कितने परिवार ऐसे हैं जिन में वेद के पवित्र ग्रन्थ हैं। घरों मे और तो सब कुछ है पर जिन से जीवन को तो शान्ति मिलती है वह नहीं है हमारे जीवन का तो यह परमधर्म है। इस महान देवदयानन्द ने जिस वेद [illegible] माता-पिता परिवार के प्यार को भी छोड़ दिया, अनेक कठिनाइया सहीं, विष के प्याले पिये, जीवन भेंट कर दिया—उस वेद के लिए हम में कितनी आस्था है—इसका परिचय इस सप्ताह से पता लगेगा। वेद को केवल वाणी से न मानें अपितु कर्म आचरण में भी वेद को मानें तभी हम सच्चे वेदभक्त आर्य हैं। अन्यथा नाममात्र के ही वेदी, द्विवेदी, त्रिवेदी और चतुर्वेदी हैं। आर्यसमाज इस दिशा में वेद के लिए विशेष व्रत लेगा तथा वेद प्रचार कार्य में लगी अपनी आर्य प्रादेशिक सभा पंजाब को भी तन मन धन से स्मरण करता हुआ अपने हर प्रकार के सहयोग से सशक्त तथा अधिक प्रगतिशील कर देगा। कर्त्तव्य की आज यही पुकार है।

—त्रिलोक चन्द्र

राखी के मन्त्र

बड़े सुन्दर बने होते हैं। रक्षा बन्धन के दिन रंग बिरंगे तारों वाली मनोमोहक राखिया लेकर बहिनें भाईयों को तथा ब्राह्मण अपने यजमानों के दक्षिण हाथ पर बाधते हैं। बड़ी प्रसन्नता होती है। सम्भवत बहिनें अपने हार्दिक विशुद्ध भाई बहिन के अटूट सबंध को पुन व्यक्त करती हैं। भाई यथा शक्ति बहिनों को यथा सम्भव पदार्थों से भर देता है। जिसे एक बार भाई और राखी बन्ध भाई कह दिया, सारा जीवन उसे बहिन मान कर उसके बहिन के विशुद्ध स्नेह को निभाना पड़ता है। भारत के इतिहास में राखी का बड़ा ही महत्व बढ़ गया है।

इसी प्रकार ब्राह्मण अपने यजमानों को राखी बाधता है तो उसका यही भाव होगा कि देखना कहीं ब्रह्म ज्ञान को भूल न जाना। या अपने परिवार में ब्रह्म निधि का अपमान न कर बैठना। इस ब्रह्म सूत्र के द्वारा ब्राह्मण प्रतिवर्ष याद कराता रहता है कि ब्रह्म के ब्रह्म को याद रखना। भगवान के ज्ञान को अपने वैभव, ऐश्वर्य, सत्ता या परिवार के अन्य कार्यों में मस्त होकर भूल मत जाना। यदि राष्ट्र की भूमि पर कोई आक्रमण होगा तो उसका तो वीर सैनिक प्रतिकार करेंगे। पर यदि ब्रह्म ज्ञान पर आक्रमण हुआ तो आप सब को तैयार रहना होगा। ब्राह्मण इस ब्रह्मसूत्र के बन्धन के द्वारा इसी बात की प्रेरणा देता है। यह भाव भी अच्छा है। इससे भी यदि इसी रूप में दिया जाय तथा आज का ब्राह्मण चेतना लेकर ऐसा ही विचार कर करे तो सारे समाज का बहुत कल्याण हो सकता है।

इस प्रकार से रक्षा बन्धन भी आ गया। इस पर्व पर हम बहिन भाई के अटूट विशुद्ध स्नेह, वेद स्वाध्याय की श्रद्धा तथा ब्रह्मसूत्र बन्धन वेद के लिए सर्वस्व समर्पण करने के भव्य भाव को लेकर इस त्योहार को पूरे उत्साह से मनायेंगे आर्यसमाजें वेद की पुस्तक लेकर दूसरों को भेंट करें। वाणी, मन, कर्म से मनायें। स०

—०—०—

आर्य समाज, मेस्टन रोड, कानपुर

की यह शोक सभा गुरुकुल विश्व विद्यालय, वृन्दावन के आचार्य विश्वेश्वर जी, गुरुकुल विश्व विद्यालय कांगड़ी के प. भीमसेन जी विद्यालंकार, तथा ज्वालापुर महा विद्यालय के श्री १०८ स्वामी आनन्द बोध तीर्थ के देहावसान पर अपना हार्दिक दु ख प्रकट करती है और परम पिता परमात्मा से प्रार्थना करती है कि दिवंगत आत्मा को शान्ति प्रदान करें और हम सब को शक्ति देवें कि आर्य जगत की इन विभूतियों के द्वारा प्रदर्शित सन्मार्ग पर चल सकने में समर्थ हो सकें।

आपका विद्याधर स०मन्त्री

श्रावणी पर्व का शुभ संदेश

वेदों का स्वाध्याय और प्रवचन

(ले०—प० धर्मदेव जी विद्यामार्तण्ड (देवमुनि वानप्रस्थी) प्रधान सार्वदेशिक धर्मार्य सभा—ज्वालापुर)

✤✤✤✤✤✤✤✤✤✤✤

श्रावणी पर्व (जो इस वर्ष श्रावणी पूर्णिमा पर १५ अगस्त को पड़ता है) आर्यों के प्रमुख पर्वों में एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। पर्व शब्द पर्व- पूरण इस धातु से बनता है जिसका अर्थ 'पर्वति-पूरयति जनान् आनन्देन कर्त्तव्य भावनया वा' इस व्युत्पत्ति के अनुसार मनुष्यों को आनन्द और कर्त्तव्य भावना से भरपूर करना है। ये पर्व हमारे लिये कई विशेष सन्देश लेकर आते हैं और यदि उस सन्देश का श्रवण कर हम उसके अनुसार अपने जीवन को बनाने का प्रयत्न करें तो वे हमारे जीवन को उन्नत करने में बड़े सहायक होते हैं। श्रावणी पर्व का सन्देश जिसे ऋषितर्पण के नाम से भी पुकारा जाता है वेदों के नियमित रूप से प्रतिदिन स्वाध्याय और प्रवचन का है। इसदिन से प्राचीन काल में वेदों के स्वाध्याय का विशेष रूप से उपक्रम वा प्रारम्भ किया जाता था इस लिये इसे दक्षिण में उपाकर्म भी कहते हैं। इसी लिये श्रावणी पर्व की विधि में चारों वेदों के प्रारम्भ और अन्त के मन्त्रों का प्रतीक रूप में पाठ किया जाता है और वेद के शादनपन गृह्यसूत्र में यहां तक विधान पाया जाता है कि ऋग्वेद के प्रत्येक मन्त्र को पढ़ कर उस से आहुति दी जाए।

यह खेद की बात है कि यद्यपि महर्षि दयानन्द जी ने आर्य समाज के तृतीय नियम में यह स्पष्ट लिखा था कि 'वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है। वेद का पढ़ना, पढ़ाना इन आर्यों का परम धर्म है। अनेक आर्य नर-नारियों का—यहां तक कि बहुत से नेताओं का भी ध्यान इस परमधर्म के पालन की ओर बहुत कम है। इसका परिणाम यह है आर्य-नरनारियों में ऐसी बहुत सी संख्या है जिसे वेद की शिक्षाओं और अपने सिद्धांतों का ज्ञान बहुत कम है अतएव उन के अन्दर उस श्रद्धा और स्फूर्ति का अभाव है जो वेदों के नियमित स्वाध्याय से प्राप्त होती है।

हमारे पूज्यपाद परम श्रद्धेय आचार्य अमर धर्मवीर स्वा. श्रद्धानन्द जी महाराज ने स्वाध्याय के विषय में जो लिखा था वह भी उल्लेखनीय है। वह निम्न हैं—

'अग्नि होम इकट्ठे करने के पश्चात् सद गृही स्वाध्याय में लग जाए। इस में वृद्ध, बाल, स्त्री पुरुष सब को ही स्वाध्याय नित्य प्रति करना चाहिये। धर्म के मर्म को जानने के लिये स्वाध्याय से बढ़ कर अन्य कोई साधन नहीं है। प्रात काल को स्वाध्याय क्रिया-योग का एक अङ्ग महामुनि पतञ्जलि ने बताया है और समाधि की सिद्धि के लिये उसकी अत्यन्त आवश्यकता है। तात्पर्य यह है कि आर्य गृह में कोई भी स्त्री पुरुष ऐसा नहीं होना चाहिए तो नित्य स्वाध्याय न कर ले। इस से धर्म में तुम्हारी श्रद्धा बढ़ेगी। आपत काल में भी धैर्य स्थिर रखने का अभ्यास पड़ेगा।' (आर्यों के नित्य कर्म) इस लिये मैं सब आर्य नरनारियों और कुमार-कुमारियों से अनुरोध करता हूं कि वे श्रावणी पर्व पर वेदों के प्रतिदिन स्वाध्याय का व्रत अवश्य ग्रहण करें। यदि प्रतिदिन १ वेद मन्त्र का भी अर्थ सहित स्वाध्याय किया जाए तो १ वर्ष में ३६५ मन्त्रों का स्वाध्याय हो जाएगा। इस प्रकार कुछ ही वर्षों में वेदों का पर्याप्त ज्ञान बढ़ सकता है। इस परम धर्म का सब आर्यों को अवश्य पालन करना चाहिए।

अंबाला छावनी में ब्रह्माकुमारी निरोध प्रचार

दादा लेखराज खूबचन्द कृपलानी के पाखण्ड का भाण्डा फोड़

ब्रह्माकुमारी निरोध समिति अम्बाला छावनी की ओर से कसेरा बाजार में २७-२८ और २९ जुलाई तीन दिन वेद प्रचार तथा ब्रह्माकुमारी निरोध प्रचार की खूब धूम रही।

इस प्रचार में आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के महोपदेशक श्री प० मुनिश्वर देव जी सिद्धांत-शिरोमणि सभा के भजनोपदेशक श्री ओमप्रकाश जी तथा आर्य कालेज पानीपत के प्रोफैसर श्री उत्तम चन्द जी शरर ने वेदों की महानता जतला कर ब्रह्माकुमारी मत की अनोखी मान्यताओं की खूब पोल खोली।

इस मत की पुस्तक 'सच्ची गीता' में से श्रीमद् भागवत तथा महात्मा गांधीमें अन्य आपत्ति-जनक मान्यताओं को पढ़कर सुनाया गया और कहा गया कि यदि उनको कोई शंका हो तो लिख कर भेज दें उसको उत्तर दिया जावेगा—परन्तु कोई न मिलो 'ब्रह्माकुमारी मतदर्पण की दो हजार प्रतियां छपवा कर वांटी गई।

प्रचार का जनता पर बहुत अच्छा प्रभाव पड़ा।

चिरंजीवलाल गुप्त, मन्त्री
ब्रह्माकुमारी निरोध समिति

झंडा ऊंचा रहे हमारा।

(पृष्ठ ५ का शेष)

का नाद है। जब-तक संसार भर के आर्य सज्जन (अथवा भद्र पुरुष) इकट्ठे नहीं होते तो संसार का कल्याण कैसे हो सकता है। यही आर्य समाज के कार्य की कसौटी है यह ऊंट के निकेल की तरह संसार को सुमार्ग पर ले जावेगी तो झंडा ऊंचा है अगर ऐसा करने की बजाये स्वयं ही जाति-पाति भेद-भाव, जोड़ तोड़, वैर विरोध आदि में पड़ी रही तो झंडा ऊंचा कैसे होगा।

एक प्रश्न सब भाई पूछते हैं कि भारत में आर्यसमाज सरकार के साथ रहे अथवा विरोध में। कई भाई आर्यसमाज के प्लेट फार्म से हर समय सरकार का विरोध ही करते हैं तथा कई भाई हर बात मे सरकार को हां में हां मिलाते रहते हैं चाहे आर्यसमाज ही बिक जावे। मेरे तुच्छ विचार में दोनों गलत हैं। आर्यसमाज किसी भी राजनैतिक दल की दासी नहीं। राजनैतिक क्षेत्र के अन्दर न सही पर देश की राजनीति पर सुप्रभाव डालना आर्यसमाजियों का पूर्ण अधिकार है। हम इस देश के नागरिक हैं तथा आर्यसमाज ने देश-भक्ति में सुन्दर कार्य किया है तथा कर रही है। इसलिये वह बातें जिन में सरकार राष्ट्रीय तत्वों का तथा नैतिक स्तर की ऊंचाई का विचार रखकर चलती है हमें उन बातों में सरकार का साथ देना चाहिये। देश के भले की बात को भी करें तो आर्यसमाज को उसका साथ देना चाहिये। तथा जिस बात में सरकार देश के अराष्ट्रीय तत्वों को उभार कर अपनी पार्टी के स्वार्थ सिद्धि के कुकृत्यों में फंस जाये वहां आर्यसमाज सरकार को ललकारे तथा ठोस विरोध करें। देश उन व्यक्तियों का ही नहीं जो सरकार में आज हैं सारे देश-वासियों का है तथा राजनीति के गंदे कीचड़ में फंसकर यह लोग गलतियां कर सकते हैं पर आर्य समाज उनकी उन गलतियों को ठीक करने के लिये सदैव आगे बढ़े। तभी हम कह सकते हैं—

"झंडा ऊंचा रहे हमारा"

झंडा ऊंचा रहे हमारा।

(ले०—प्रिंसिपल श्रीभगवानदासजी ए एम. दयानन्द कालेज सोलापुर)

आर्य समाज का झंडा ओ३म् का झंडा है। ओ३म ईश्वर का नाम ही नहीं परन्तु ईश्वर के गुणों का वर्णन भी करता हैं। इस लिए प्रत्येक आर्य समाजी के लिए ईश्वर में अटूट श्रद्धा होना आवश्यक है। इसमें मन्तव्य का प्रश्न ही नहीं उठता यह तो जीवनधारा है। जो ईश्वर विश्वासी नहीं वह आर्य समाजी नहीं ईश्वर के प्रति आर्य समाज के नियमों में वर्णित गुणों तथा उनके द्वारा सृष्टि संचालन का नियन्त्रण ही हमारे प्रत्येक मन्तव्य तथा अमन्तव्य का आधार है। आर्य समाज का अथवा वेद का ईश्वर सारे संसार के लिए हैं केवल आर्य समाजी के लिए ही नहीं। यह बात बहुत महत्व की है।

ईश्वर विश्वास वेद विद्या की प्राप्ति का श्रीगणेश भी है अगर इस विश्वास में झूठ है तो सब किया कराया समाप्त हो जाता है। यह विश्वास केवल रटने की वस्तु नहीं यह तो रग-रग की ध्वनि है। यही तो कठिन है पर इस रास्ते के सिवाये मनुष्य के लिए और रास्ता भी नहीं इस से विमुख होना ही भटकना है तथा ठोकरें खाना है। जीवन का वह क्षण जो ईश्वरीय मार्ग सुझाता है तथा वह पग जो ईश्वरीय कार्य की ओर उठता है वही सुन्दर है तथा आत्मा की पहचान ही वहीं है। मायावाद के चक्कर से हटाकर मनुष्यतत्व के मार्ग पर लानेवाला यही एक साधन है। बहुत उचित कहा 'तेरी खुश नसीबी है केवला तेरा इस तरफ को जो मन चला' दिनचर्या में सब से सुन्दर घड़ी वही है जिस में हमारी अन्तर आत्मा हमें ईश्वरीय कार्य की प्रेरणा देती है तथा कुपथ्य से रोकती है। अगर हमारा ईश्वरी विश्वास ऊंचा न होगा तो हम आपस की फूट: जाति-पाति, मत-भेद, स्वार्थभावना के पंजे में फंस जाते हैं। ईश्वर ने मनुष्य मात्र को लड़ने झगड़ने के लिए पैदा नहीं किया। यह ईश्वर विश्वास जिस का प्रतीक हमारे झंडे में है सारे संसार को एक कर देता है तथा सब के हृदयों में कोमलता निर्मलता तथा शक्ति का सन्देश देता है। वह, वैमनस्य का दूर भगाता है तथा इस झंडे में विश्वास रखने वालों को धर्म-पथ पर अग्रसर करता है तथा निर्भीक करता है। जब आर्य समाजी लड़ते हैं अथवा साम्प्रदायकता के कीचड़ में फंस जाते हैं तो लोग हम पर हसते हैं। इस ध्वज के नीचे तो भेद-भाव का प्रश्न ही नहीं उठता।

यह खेद से कहना पड़ता है कि हमारे 'कृण्वन्तो विश्वमार्यम के नाद को ठीक प्रकार से नहीं समझा जाता। हम विश्व विजयी होना चाहें अथवा नहीं। यह आर्य समाज के लिए राजनैतिक प्रश्न है। पर अलग-अलग राज्यों मे रहते हुए भी आर्य समाजी ओ३म के झंडे को अपना सकते हैं इस देश में हमारा राष्ट्र ध्वज हमारे लिये बहुत प्यारा है। ऋषि दयानन्द एक बड़े भारी देश भक्त थे। ईश्वर भक्ति देशभक्ति तथा मातृ-भक्ति है। दूसरे देशों में रहने वाले आर्य समाजी (अर्थात वैदिकधर्मी) अपने राष्ट्र तथा देश के झंडे का पूर्ण मान देते हैं तथा देश के प्रति पूर्ण श्रद्धा और भक्ति का प्रदर्शन करते हैं। किसी देश में कभी भी किसी आर्य समाजी ने उस देश की सरकार को तंग नहीं किया है तथा न वह गुप्त कार्यों में विश्वास रखते हैं। इसीलिए विरोधियों का यह भ्रम कि आर्य समाज विश्वव्यापी राजनैतिक शक्ति स्थापन करके भारत का राज्य प्रत्येक देश में करना चाहता है निरर्थक है तथा तर्क पर नहीं टिकता। हां मनुष्य के उद्धार के लिए तथा नैतिक स्तर को ऊंचा करने के लिए आर्य समाज भरसक प्रयत्न करता है तथा वेद के ठोस सार्वभौमिक प्रचार के लिए ही ऊपर का नाद लगाता है। मनुष्यता तथा मनुष्य-धर्म का प्रचार पाप नहीं। आर्य समाज को इस पवित्र कार्य में देश तथा विदेश मे अग्रसर रहना चाहिए। इस महान कार्य में सदैव 'झंडा ऊंचा रहे हमारा।' यह नाद प्रत्येक देश में बैठा आर्य समाजी लगा सकता है।

इस में कोई सन्देह नहीं कि यह झंडा भारतीय प्राचीन संस्कृति का प्रतीक भी है तथा इसका प्रदर्शन भारतीय मान मर्यादा तथा इसकी रक्षार्थ जो त्याग तथा बलिदान हुए उन सब का दिग्दर्शन है। पर ध्यान से न देखें तो यह बात भी केवल भारत के रहने वाले लोगों पर लागू नहीं होती। भारतीय संस्कृति क्या है। मनुष्य-धर्म का निर्विवाद सूर्य है जो सब को बराबर चमका देता है। कोई तो बात इस के अन्दर किसी एक मत, देश तथा काल के लिए नहीं। इसकी छाया सारे संसार को निर्मल सन्देश देती है। इसलिए ऊपर लिखित नाद पर कोई व्यक्ति आक्षेप नहीं कर सकता। दूसरे देशों में रहने वाले वैदिक धर्मी इसको बिना संकोच अपना सकते हैं तथा अपने देश प्रेम के साथ-साथ वैदिक संस्कृति का अमृतपान कर सकते हैं। मेरा मत तो यह है कि वैदिक संस्कृति को अपनाने के लिए देश की राजनीति बाधक नहीं हो सकती। विज्ञान के युग में वैज्ञानिक धर्म ही अपनाया जा सकता है केवल दो चार मनुष्य-कृत मन्तव्य मानने से तो मनुष्य की समस्याएं हल नहीं हो जाती।

आर्य समाज के अन्दर यह प्रश्न ही नहीं उठता कि आर्य समाज क्या करे। आज वैतक पतन के वायु मण्डल में आर्य समाज का झंडा ही आशा की किरण है। आर्य समाजी इस झंडे को हाथ में लेकर आगे बढ़े

याद रहे कि आर्य समाज तन्त्रीय नियमों पर बना है इस लिए दो बातों की शिकायत आवश्य रहेगी एक तो यह कि नाम मात्र के खोटे मनुष्य आर्य समाजी बन कर हमारे अन्दर घुस गए हैं हमें उनको धिकारना नहीं चाहिए उनको अच्छे बनाना चाहिए। कोई आर्य समाजी यह कहे कि वह अच्छे मनुष्यों को ही आर्य समाजी बना सकता है यह गलत है। फिर आर्य समाज का काम ही क्या रह गया। अपने अन्दर की गन्दगी को धोना भी हमारा कार्य है तथा बाहर को गन्दगी को दूर रखना भी हमारा कर्त्तव्य है। आर्य समाज के बाहर जो अच्छे प्राणी हैं उनका आदर करना तथा अपने अन्दर के आदमियों को ठीक करना यही तो हमारा कार्य है। आर्य समाज के अन्दर जो आए तथा जो अन्दर है वह बाहर जाये क्यों। हमारा नाद यह होना चाहिए। 'कोई बुरा है तो उसको सुपथ पर लाना है कोई अच्छा है तो उसको सहयोग देना है।' मन को इतना सकुचित नहीं होने देना कि जो अपने से मत भेद रखता है वह बुरा है तथा मनको इतना गिराना नहीं कि जो अच्छा है वह अगर आर्य समाजी नहीं तो वह बुरा है। अगर हम [illegible] सोचेंगे तो आर्य समाज का [illegible] ठप हो जावेगा तो 'झंडा ऊंचा रहे हमारा' का दूसरा अर्थ है कि 'संसार भर के भद्र पुरुषों एक हो जाओ' यह ऋषि दयानन्द

(शेष पृष्ठ ४ पर)

जल-क्रिया के चमत्कार

(श्री प० परमा नंद जी विद्यार्थी रोहतक)

आखों की दृष्टि स्थिर रखना, चढ़ी हुई ऐनक उतारना, आखों को नाना प्रकार के रोगों से बचाना, स्मरण शक्ति बढ़ाना, नींद को वश में रखना, श्वेत बालों को काला करना, शरीर को फुर्तीला बनाना, हर प्रकार की सिर की पीड़ा को दूर करना, कब्ज को हटाना, नजले जुकाम से बचना, आदि लाभ हैं

जल क्रिया का नाम तथा अत्ता-पत्ता

कौन सा व्यक्ति है, जो जल के लाभ से अनभिज्ञ हो। प्रत्येक छोटा बड़ा, स्त्री—पुरुष, वृद्ध—युवा, नित्य प्रति जल को प्रयोग में लाता है। आर्य लोग तो नित्यप्रति सन्धा, हवन के आरम्भ में जल द्वारा अंग-स्पर्श कर के शरीर की शुद्धताई तथा मन की पवित्रता करते हैं। वैसे तो हमारी हरेक क्रिया प्राय जल की सहायता से समाप्त होती है। निसन्देह वायु के पश्चात दूसरा स्थान जल का है। यही कारण है कि सारा संसार इस जल क्रिया से हरा-भरा तथा सुन्दर एवं आकर्षक दिखाई दे रहा है। यदि उस जल को जीवन से निकाल दिया जाये, अथवा न्यून से न्यून प्रयोग मे लाया जाए तो हमे नाना प्रकार के दुःख-कष्ट भोगने पड़ते हैं। अत हमारे (आयुर्वेदिक) ग्रन्थों में जहां पानी की महिमा वर्णन की गई है, वहां दुःखों, कष्टों, क्लेशों के दूर करने के लिये जल के प्रयोग के साधन बताये गये हैं, ताकि मनुष्य रोगों में फस कर आत्म हत्या कर बैठें हम आज की बैठक में आर्य जगत के पाठकों के सन्मुख एक जल—क्रिया की विधि लिखते हैं, जिसे पाठक गण बड़ी सरलता से अपना कर महान सुख प्राप्त कर के दीर्घ आयु के आनन्द भव सांस [illegible] सकते हैं। शर्त यह है कि साधक नि[illegible] पूर्वक इस जल क्रिया को करता चला जाये। जल द्वारा किये जाने वाली क्रियायें 'जल-क्रिया' के नाम से पुकारी जाती हैं। शरीर के जिस भाग से जल की क्रिया की जाती है, उस क्रिया का नाम उसी स्थान से सम्बन्धित कर दिया जाता है। हमारे विषय की जल क्रिया का नाम 'नासिका द्वारा जल पीना है।'

नासिका द्वारा जल पीने की विधि

(क) सामग्री — ठण्डा पानी, एक गिलास का बर्तन।

(ख) समय —प्रात. काल शौच से निवृत हो कर या पहले यह जल-क्रिया कर सकते हैं।

(ग) सर्व प्रथम जल से नाक साफ कर लें अर्थात हाथ की हथेली पर कुछ पानी ले कर नाक में चढ़ाये फिर जोर से बाहर सांस फैंके। इस प्रकार दो-तीन बार करने से नासिका साफ हो जाती है। पुन गिलास में तोला भर ठण्डा जल ले कर खड़े हो जायें। ध्यान रहे कि यह ठण्डा पानी बर्फ वाला न हो तथा गन्दा, नंगा, दुर्गंध वाला भी न हो। अपितु ढके हुये बर्तन का ठण्डा जल हो, चाहे वह पानी वासी ही क्यों न हो। जब पानी गिलास में तोला भर ले तो पहले अपने हाथ को टेढा कर के नाक के मध्य में रखे और नाक की वायु को बाहर फैंकें, ताकि पता लगे कि नाक का कौन सा नथुना चल रहा है। जिस नथुने से वायु का आना-जाना है, उसी नथुने से पानी पीना है। यदि नाक के दोनों नथुने चलते हैं तो फिर उस नथुने से पानी पीना है, जो अधिक सास ले रहा है। जिस नाक के नथुने से वायु का [illegible]र नहीं हो रहा, उस नथुने को उसी ओर के हाथ की अगुंलि से बन्द करे और दूसरे हाथ से गिलास पकड़े, मुख बन्द रखे, सिर थोड़ा सा पीछे रखे और गिलास को कुछ झुका कर लगा लेने वाले नथुने के साथ लगा दें। जल को एका एक नाक से डालने का प्रयत्न न करे, अपितु जल को सास के साथ नाक के अन्दर जाने दे। वह जल सांस की नाली तथा भोजन की नाली में चलता हुआ आमाशय में पहुचे गा। जहां आखों, मस्तिष्क की नसों और नाड़ियों को छुए गा। वहां आमाशय के भीतर जा कर अपना कार्य करेगा। रुकी टट्टी को बाहर धकेलेगा, मसाने की गर्मी अर्थात लघुशका (पेशाव) की पीली रंगत को श्वेत बना देगा। अन्य शब्दों में त्रिकुटी पर प्रभाव डाल कर आमाशय, तथा मसाने को ठीक करेगा। यह ठीक है, कि केवल एक तोला जल इतना अद्भुत प्रभाव नहीं दिखा सकता, किन्तु आरम्भ करने वाले साधक के लिये एक तोला जल भी प्रभावोत्पादक रहेगा। दूसरे सप्ताह दो तोले से, तीसरे सप्ताह तीन से, इसी प्रकार हरेक सप्ताह एक तोला बढ़ा कर आध सेर तक पहुंचे। फिर नित्य प्रति आध सेर या कुछ कम जल से यह क्रिया करें, तो आप को एक मास मे इस की महानता का बोध होजावेगा। प्रत्येक मस्तिष्क कार्य करने वाला तथा रोगी व्यक्ति इस जल-क्रिया से लाभ उठा सकता है।

सावधानता

जिस व्यक्ति का नाक पका हुआ हो, जिसे ज्वर चढ़ा हुआ हो, जो लगन का कच्चा हो, जो वैद्यों, डाक्टरों, हकीमों के पन्जे से न छूटना चाहते हो, उन्हें इस क्रिया से बचना चाहिये, यदि शीर्ष-आसन करने वाला कोई व्यक्ति हो, उसे दो घण्टे पश्चात यह क्रिया करनी चाहिये।

लाभ

इस जल क्रिया के द्वारा सिर के बाल 'भंवरे—भ्रमर' के समान काले हो जाते हैं, आखों की दृष्टि 'गीध पक्षी' के समान मीलों तक देखने वाली हो जाती है, चिरकाल से चढ़ी हुई ऐनक छ: मास में उतर जाती है, श्वेत बाल काले हो जाते हैं, रात्रि को चिट्ठियां अधेरे में पढ़ी जा सकती हैं, आखों का प्रत्येक रोग कोसों दूर भाग जाता है, सुर्मा या अन्य कोई औषध प्रयोग करने की आवश्यकता नहीं पड़ती, कब्ज टूट कर शरीर हलका बना रहता है, प्रात. काल सन्ध्या के लिए नींद खुल जाती है, चढ़ते—उतरते सूर्य का सिर दर्द तथा अन्य प्रकार की शीर्ष पीड़ा समाप्त हो जाती है। जुकाम पहले तो होता नहीं, यदि हो भी जाए तो प्रभाव शून्य रहता है।

तनिक विचार करें कि इतने बड़े भारी लाभों से जो भी व्यक्ति लाभान्वित नहीं होना चाहता उस जैसा मूर्ख कौन होगा। इस लिए उचित है कि अपने आप को रोगों से बचा कर अपनी शुभ कमाई से आर्य समाज की सेवा किया करें।

टिप्पणी

सर्दी के दिनों में जल अधिक ठंडा होता है, इस लिए धातु वाले बर्तन लें और यह बर्तन ठंडी वायु से बचा रखें। क्यों कि देखा गया है कि अत्यत ठंडे जल से कुछ कष्ट अनुभव होता है एक बात आर भी समझ लें कि जल क्रिया करते समय त्रिकुटी मे चयूंटयों जैसी काटने की सी पीड़ा हो या छींकें आयें या सिर चकराने लगे (वैसे होता नहीं किसी किसी को अनुभव होता है) तो इस साधारण से थोड़े से दिनों का कष्ट इतने सुख के आगे कुछ अर्थ नहीं रखता। अतः धैर्य तथा लगन से क्रिया करते चले जाएं।

रोहतक मण्डल के प्रचारक

पं० प्रभुदयाल जी प्रभाकर ने अपने मंडल समेत आर्यसमाज चिड़ी में बड़ी धूमधाम से वैदिक धर्म का प्रचार किया। जनता के पूर्ण सहयोग से प्रचार का प्रभाव सर्वोत्तम रहा इस शुभ अवसर पर ३५४) सभा को वेद प्रचारार्थ प्राप्त हुए। जिसकी सूची निम्न है—

आर्यसमाज घोघड़ियां जि० संगरूर से ३१)
" चिड़ी जिला रोहतक से १८४)
" मैंणा (रामराए) संगरूर ५०)
" गुलकनी जि० संगरूर २६)
" श्री गोपीराम जी जींद मंडी द्वारा ६३)

आर्यसमाज यमुनानगर का प्रस्ताव

२२-७-६२ की आर्यसमाज यमुनानगर के सदस्यों की यह सभा आर्य प्रतिनिधि सभा के पुराने सेवक और आर्य जाति के सपूत श्री पं० भीमसैन जी विद्यालंकार की अकाल मृत्यु पर शोक प्रकट करती है। और परमपिता से दिवंगत आत्मा को शान्ति एवं सद्गति प्रदान करने की तथा वियुक्त परिवार को शोक सहन करने की शक्ति की प्रार्थना करती है। तथा उनके पद चिह्नों पर चलने की शक्ति और भक्ति प्रदान करने की याचना करती है। कविराज रामसिंह वैद्य

मन्त्री—आर्यसमाज, यमुना नगर (जिला अम्बाला)

पं० चन्द्रसैन जी आर्य हितैषी

सभा के उत्साही प्रचारक पं० चन्द्रसैन जी आर्य हितैषी आजकल रुग्णावस्था में हैं और अपने निवास स्थान सोनीपत में राज हस्पताल का इलाज करवा रहे हैं। आप १-८-६२ से अवकाश पर हैं। आर्य परिवार प्रभु से पं० जी के स्वस्थ होने की मंगल कामना करता है।

आर्यसमाज कोटली बस्ती बख्शीनगर (जम्मू) का चुनाव

१४-७-६२ को श्री कृष्णलाल जी के प्रधानत्व में निम्न प्रकार से सम्पन्न हुआ—

प्रधान—श्री रामनाथ जी, उपप्रधान—श्री ओम् प्रकाश जी खन्ना, श्री ओम प्रकाश जी ट्रांस्पोर्टर, मन्त्री—श्री देवीचन्द्र जी, उपमन्त्री—श्री जगमोहन जी खन्ना, श्री सुरजीत कुमार जी, खजांची—श्री त्रिलोकचन्द्र जी, पुस्तकाध्यक्ष—श्री कुन्दनलाल जी।

अन्तरग सभा के सदस्य—

चौ० सीताराम जी, श्री हेराशाह जी, श्री लक्ष्मी चन्द जी, श्री साईंदास जी सराफ, श्री कृष्ण लाल जी, श्री सत्यपाल जी खन्ना, प० तुलाराम जी, श्री मोतीराम जी खन्ना।

—मन्त्री देवीचन्द्र आर्यसमाज

आर्यसमाज मोडल कालोनी यमुनानगर का प्रस्ताव

१-५-६२ के मिलाप अखबार में प्रकाशित शिक्षा मन्त्री पंजाब सरकार के सहशिक्षा सम्बन्धी निर्देश का घोर विरोध करती है कि भारतीय संस्कृति के विरुद्ध देश के युवक, युवतियों के चरित्र को नष्ट करने वाले इस निर्देश पर पुनः विचार करें तथा विदेशियों के कटु अनुभवों से लाभ उठाते हुए सहशिक्षा को वापिस लें।

—मन्त्री आर्यसमाज

राखी का सन्देश

(कु० सुशीला आर्या एम० ए० नरवाना)

यह पावन सन्देश सुनाने आया राखी का त्यौहार।
भ्रातृभाव की भव्य भावना भाइयों में भर आए,
सादा जीवन पावन प्रेम यदि बहिनों में आए,
दुराचार हो दूर देश से, व्यर्थ तभी होगा व्यभिचार,
आया राखी का त्यौहार।

घर घर प्रेम की धार बहे हो पहले सी मर्यादा,
शिक्षा से उत्तरदायित्वों का अनुभव हो ज्यादा,
स्नेह सद्भाव सुगन्धि फैले बने सादगी ही शृंगार।
आया राखी का त्यौहार।

आज बहिन का प्यार सिसकता भारत के संविधान में,
रक्षा के बन्धन का बन्धन रहे कवि के गान में,
वहन करेगा कौन पुरानी गौरव गाथा का गुरु भार?
पूछ रहा है यह त्यौहार।

धन धरती घर के घेरे में लड़ते भाई बहिना,
यह उत्तराधिकार का युग है राखी का क्या कहना,
फिर भी आओ, बचा बचालें जो कुछ है आपस का प्यार,
कहता राखी का त्यौहार।

दो कागज के टुकड़ों पर यह प्यार न बिकने पाए,
दिव्य भावना मन में ले राखी बांधे बन्धवाएं,
राखी के तारों में भर दें अमर प्यार की मधु झंकार,
तभी बसेगा सुख संसार।

सोलापुर आर्यसमाज की १५-७-६२ को हुई अन्तरग सभा का स्वीकृत प्रस्ताव

अन्तरंग सभा की यह बैठक सरकार को परिवर्तित हिन्दी विषयक नीति का विरोध करती है। भारतीय माता भगिनियों के समान आधार संस्कृत को छोड़कर यदि हिन्दी अलग नीति को अपनायेगी तो वह दिनों दिन अन्य भारतीय भाषाभगिनियों से दूर होती जायेगी। अत राष्ट्र-भाषा का तथाकथित सरल रूप राष्ट्र के भावनैक्य पर गहरा आघात पहुंचा रहा है। आर्यसमाज इस नीति के विरुद्ध घोर असंतोष प्रकट करता है।

—भगवानदास प्रधान समाज

अनाथालय में शोक दिवस

२७-७-६२ को स्वर्गीया माता चन्दन देवी जी नन्दा (सुपुत्री त्याग मूर्ति तपस्वी महात्मा हंसराज जी) की पांचवीं बरसी अनाथालय में मनाई गई।

श्री यशराज जी जग्गा की प्रधानता में यह सभा हुई। इस में अनाथालय के बालक बालिकाओं ने अपनी पूज्य माता जी के गुण-गान किये। जो कि कविताओं तथा प्रस्तावों के रूप में थे।

आर्यसमाजों के प्रधानों तथा मन्त्रियों ने भी अपना २ हार्दिक शोक प्रकट करके श्रद्धांजलियां भेंट कीं।

—प्रतापचन्द महता अधिष्ठाता अनाथालय

महात्मा ह[illegible]

आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा पंजाब जालन्धर ने स्वर्गीय महात्मा हंसराज जी की पुण्य स्मृति में वैदिक धर्म संबंधी पुस्तकों के प्रकाशन का विभाग खोला हुआ है जिसने समय २ पर समयानुकूल पुस्तकों के प्रकाशन द्वारा महात्मा जी के नाम व काम को चिरस्थायी कर दिया है। अब आर्य समाजों, व महात्मा जी के श्रद्धालु भक्तों का कर्त्तव्य है कि इस विभाग की अधिक से अधिक पुस्तकें मंगाकर उनके नाम को अमर करें साथ ही इस विभाग की आर्थिक सहायता करें।

आर्य समाजों के सदस्य व आय व्यय सबन्धी सुन्दर पक्की जिल्द के रजिस्टर १.००
महात्मा हंसराज जी का सम्पूर्ण विस्तृत तथा सचित्र जीवन २.००
प्रभु दर्शन [illegible] .५०
महर्षि दर्शन (प्रि. दिवानचन्द कृत) २.००
गीता दिग्दर्शन .५०
जीवन ज्योति .६२
स्वाध्याय संग्रह (नयाप्रकाशन) ५०
दयानन्द शतक १.००
आर्य भजन संग्रह .५०
सत्यार्थ प्रकाश भाष्य I समुल्लास १.००
" II १ ००
स्वामी दयानन्द जी के पत्र व्यवहार III .५०
" IV .५०
[illegible], योग अरविंद की योग पद्धति .७५
[illegible]वाणी सजिल्द .५०
अजिल्द ३१
आर्यसमाज की सदस्यता के प्रवेश पत्र २.५०
चारों वेदों के मूल पुस्तक २२ ५०

संस्कार विधि १.२५
पंचमहायज्ञ विधि .२०
आर्याभिविनय .२५
वैदिक सत्संग गुटका(उर्दू) २५
वैदिक धर्म का महत्व १२ ००
वैदिक धर्म मुझे क्यों प्यारा है ? १ ५०
चारों वेदों के शतक बढ़िया चित्ताकर्षक जिल्द प्रति कापी १.००
राधा स्वामी मत आलोचन ३७
दयानन्द हिज़ लाइफ़ एण्ड वर्क अंग्रेजी में (प्रि.सूर्य भानु जीM.A. लिखित) १ ५०
टीचिंग ओफ ईशउपनिषद(अंग्रेजी) में (श्री दीवान चन्द जी लिखित) १ ५६

नोट—इनके अतिरिक्त आनन्द स्वामी जी महाराज लिखित स्वाध्याय व अध्यात्म वाद संबन्धी सभी पुस्तकें हमारे यहां से प्राप्य हैं।

मिलने का पता—

प्रबन्धक—महात्मा हंसराज साहित्यय विभाग A.P.P. सभा निकट कचहरी जालन्धर।

आर्य जगत के पाठकों के लिए

शुभ सूचना

चिरकाल से आर्य समाजों की शिकायत आ रही थी कि आर्यजगत ठीक समय पर नहीं आता और हम इस पत्र का सदुपयोग अपने साप्ताहिक सत्संगों में नहीं कर सकते। इस त्रुटि के निवारणार्थ पोस्ट औफिस के अधिकारियों से पत्र व्यवहार किया गया जिसके फल स्वरूप अब यह पत्र शुक्रवार की बजाय बृहस्पति वार को पोस्ट हुआ करेगा जिस से कि सभी समाजों में ठीक समय पर पहुंचकर लाभकारी सिद्ध होगा।

२—समाज संबंधी प्रकाशनार्थ सूचनाएं व लेख रविवार तक सभा के कार्यालय में पहुंच जाने चाहिए।

रजिस्टर्ड न० पा० १२१

पत्र सूचना कार्यालय

भारत सरकार

बम्बई हाईकोर्ट की शताब्दी पर विशेष डाक-टिकट

नई दिल्ली [illegible] अगस्त—बम्बई हाईकोर्ट को स्थापित हुए १४ अगस्त [illegible] पूरे हो जायेंगे। उस दिन एक विशेष डाक-टिकट जारी किया जाएगा। नासिक के सरकारी सिक्यूरिटी प्रैस के कलाकारों ने इस टिकट का नमूना तैयार किया है। भूरे रङ्ग वाले इस टिकट में अशोक चक्र और तीन शेरों की आकृति भी बनी रहेगी।

गावो में सुधार

३१ जुलाई को नई दिल्ली में सामुदायिक विकास और पंचायती राज के वार्षिक सम्मेलन में गांवों के निर्धन वर्ग की हालत सुधारने, कृषि-उत्पादन बढ़ाने और [illegible] के कार्यक्रमों को शुरू करने के लिए कई सुझाव दिए गए।

प्रत्येक राज्य की एक बहूद्देशीय माध्यमिक शाला का पूर विकास

तीसरी पंचवर्षीय योजना में हर राज्य के एक बहूद्देशीय (मल्टी परपज) माध्यमिक स्कूल का पूरी तरह विकास किया जाएगा। भारत सरकार इस काम में लगने वाले पूरे खर्च का ५० प्रतिशत देगी।

नाटक मण्डलियो को यात्रा अनुदान

भारत सरकार ने १९६२-६३ में भी नाटक मण्डलियों को अन्य मण्डलियों के तौर-तरीकों का अध्ययन करने के लिए यात्रा अनुदान देने का निश्चय किया है। इस साल इस काम के लिए ४ लाख रु० रखे गये हैं, जबकि १९६१-६२ में ३ लाख रु० रखे गए थे।

छात्रो के देश-भ्रमण के लिए १ लाख ८२ हज़ार रु०

भारत सरकार ने छात्रों के देश-भ्रमण के लिए राज्य सरकारों को कुल १ लाख ८२ हज़ार रु० देने का निश्चय किया है।

पूर्वी पाकिस्तान, आसाम और पश्चिम बगाल के मुख्य सचिवों की सीमा-कान्फ्रैंस

ढाका में १ और २ अगस्त को पूर्वी पाकिस्तान, आसाम और पश्चिम बंगाल के मुख्य सचिवों तथा त्रिपुरा के मुख्य आयुक्त की छैमासी बैठक हुई।

आकाशवाणी से संसद-समीक्षा

आकाशवाणी के दिल्ली केन्द्र से ६ अगस्त से अंग्रेजी और हिन्दी में संसद समीक्षा शुरू कर दी जाएगी। उसी दिन से संसद की बैठक शुरू होगी। यह समीक्षा संसद की बैठक के दिनों में रोजाना रात के ८ बजकर ५५ मिनट पर सुनाई जाएगी।

विकलांगो को नौकरी

सरकार विकलांग व्यक्तियों को नौकरी दिलाने के लिए हैदराबाद में विशेष रोजगार दफ्तर खोल रही है। यह देश में इस प्रकार का चौथा दफ्तर है। बम्बई, दिल्ली और मद्रास में तीन ऐसे दफ्तर पहले से ही काम कर रहे हैं।

इसी साल कलकत्ता और बङ्गलौर में भी विशेष रोजगार दफ्तर खोले जाएंगे।

ये विशेष रोज़गार दफ्तर प्रशिक्षित अन्धों, बहरों और लंगड़े-लूलों को उनके योग्य काम दिलाता है।

मुद्रक व प्रकाशक श्री संतोषराज जी मन्त्री आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा पंजाब जालन्धर द्वारा वीर मिलाप प्रेस, मिलाप रोड जालन्धर से मुद्रित तथा आर्यजगत कार्यालय महात्मा हंस राज भवन निकट कचहरी जालन्धर शहर से प्रकाशित मालिक—आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा पंजाब जालन्धर

टेलीफोन नं० २०५४ [आर्यप्रादेशिक प्रतिनिधि सभा पंजाब जालन्धर का साप्ताहिक मुखपत्र] R. No. P 121

एक प्रति का मूल्य १२ नये पैसे — वार्षिक मूल्य ६ रुपये

वर्ष २२ अंक ३३) रविवार ३ भाद्रपद २०१८— १९ अगस्त १९६२ दयानन्दाब्द १३८ (तार-प्रादेशिक जालन्धर

वेद सूक्तय:

महिष द्युमन् नम:

हे महिष-ऊंचे पद स्थान को प्रदान करने वाले तथा द्युमन-सब से अधिक भगवान नम-आपको नमस्कार है। जीवन में प्रभु ही उन्नति देता है, वही महान है।

विश्वकर्मन् नमस्ते

हे सारे जड़ चेतन विश्व को रचने हारे परमेश्वर ' आपको सदा नमस्कार हो। उसी सभापति को ही नमस्कार करना चाहिए। प्रभु के बिना किसी के आगे न झुको।

सोमो हि राजा

वह सोम-शान्ति देने हारा प्रभु राजा-सब जगह प्रकाशित हो रहा है। वही सब का राजा है। सोम बन कर शान्ति प्रदान करने वाला भी वही परमेश्वर है।

अ थ र्व वे द

वेदामृत

य ईशिरे भुवनस्य प्रचेतसो विश्वस्य स्थातुर्जगतश्च मन्तव:। ते न: कृतादकृतादेनसस्पर्यद्या देवास: पिपृता स्वस्तये ॥ ऋ० मं० १० सू० ६३ मन्त्र ८

अर्थ—(य) जो (ईशिरे) स्वामी हैं (भुवनस्य) लोक के (प्रचेतस) ज्ञानी व विद्वान (विश्वस्य) सारे (स्थातु) जड जगत के (जगत च) और चेतन जगत के (मन्तव) मनन वाले हैं। (ते) वे दिव्यजन (न) हमें (कृतात) किये हुए और (अकृतात्) न किये हुए (एनस) पाप से (अद्य) आज ही (देवास) दिव्य गुणों वाले देव (पिपृता) पालन करें (स्वस्तये) कल्याण के लिए हों। विश्व के नाना प्रकार के ज्ञान से भरे हुए विद्वान देव हमें सब पापों से बचाते हुए सुमार्ग पर चलाते हमारा कल्याण करते रहें।

भाव—हम पाप से बचना चाहते हैं, जीवन में दिव्यगुणी बनकर कल्याण चाहते हैं। इस के लिए वेद के इस मन्त्र में आदेश है कि ऐसे लोगों को अपने जीवन की बागडोर दो अपनी जीवन नौका का नाविक बनाओ रथ का सारथी बनाओ—जो सच्चे अर्थों में देवास हों, देवता हों। जिन में दिव्य गुण भरे हों। दूसरों से विशेषता रखते हों। सदा मन्तव मननशील हों। प्रचेतस हों-विशिष्ट ज्ञान के केन्द्र बने हों। जड चेतन जगत् के विशेष नियमों को ज्ञान-विज्ञान की दिशा में चतुर हों। बहुत ऊंचे हों। सब के कल्याण मंगल की कामना करने वाले हों। साधारण मानव समुदाय से बहुत ऊंचे उठे हुए होने चाहिएं। ऐसे दिव्य चरित्र वाले देवजन ही हमें पाप पथ से बचा सकते हैं। हमारा नेतृत्व करने में समर्थ हैं तथा कल्याण करने वाले हैं। नेता बनने के कितने सुन्दर गुणों की आवश्यकता है। ऐसे जन-नेता हों—सं०

ऋषि दर्शन

धर्म एव सेवनीय:

मानवों 'धर्म-जीवन में सदा धर्म का एव-ही सेवनीय-सेवन करना चाहिए। धर्म से प्यार व धर्म की रक्षा करनी चाहिए मारा हुआ धर्म मार देता है।

न अधर्म: च

और अधर्म-अकर्म पाप का सेवन न-कभी नहीं करना चाहिए। अधर्म मनुष्य को पत्थर की नौका की तरह भवसागर में डुबा देता है। पाप से प्यार कभी भी न करे।

वेद प्रतिपाद्यो धर्म:

यह धर्म-धर्म पुण्य वेद प्रतिपाद्य-वेदों में बताया गया है। वेदों में धर्म का सुन्दर उपदेश दिया गया है। इसलिए इस वैदिक धर्म का सेवन करना ही चाहिए।

भा ष्य भू मि का

अधिष्ठाता—संतोषराज मंत्री सभा — सम्पादक: त्रिलोक चन्द्र शास्त्री

वह इन्द्र कैसा है

(ले०-श्री प सत्यभूषण जी, वेदालकार, एम. ए, नई दिल्ली)

पिछले लेख में मैंने आप को बताया था, कि इन्द्र, परमैश्वर्यशाली प्रभु का गान करो। इन्द्र की ही उपासना करो। इस लेख में मैं आप को वेद के आधार पर यह बताऊगा, कि वह इन्द्र, भगवान् कैसा है।

"अवक्रक्षिण वृषभ यथाजुर
गा न चर्षणीसहम्।
विद्वेषण सेवनने भयङ्कर महिष्ठमुभयाविनं ॥
ऋ मं ८। अ १। सू १ म ३

(अवक्रक्षिण) दु खनिवारक (वृषभ यथा) मेघ के समान (अजुर गान) अथवा पृथ्वी के समान अथवा युवा बैल के समान (चर्षणी सहम) दुष्टों का दण्डदाता (विद्वेषणम) दुष्टों से द्वेष करने वाला (सवनना) भक्त जनों से सेवनीय (उभयङ्कर) स्थावर, जगम का शासक अथवा निग्रहानुग्रह मे समर्थ (महिष्ठम्) अतिशय दाता (उभयाविनम) उभयरक्षक है।

परमैश्वर्यशाली इन्द्र, प्रभु कैसे हैं। जैसे सतप्त धरती पर मेघों द्वारा वर्षा होने से शाति छा जाती है, वैसे ही आध्यात्मिक आधिभौतिक, आधि दैविक दु खों के आने पर प्रभु की कृपा से ही दु ख भाग जाते हैं। सब दु खों को दूर करने वाला वही इन्द्र है। मेघ की वर्षा से पृथ्वी हरी भरी हो जाती है। इसी प्रकार ईश्वरीय करुणा से मानव-जीवन मे निराशा के स्थान पर आशा का सचार हो जाता है। प्रभु के सच्चे भक्त को कष्ट-कष्ट प्रतीत ही नहीं होता। हैदराबाद दक्षिण के सत्याग्रह की बात है। एक वीर युवक 'वैदिक धर्म की जय" का नारा लगाता जा रहा है। पुलिस रोकती है, पर वह नहीं रुकता। उसे टिकटिकी के साथ बांध दिया जाता है। कोड़े पडने लगते हैं। एक कोड़ा पड़ता है—वीर ऊंचे स्वर से पुकार उठता है—"वैदिक धर्म की जय दूसरा कोड़ा और तेजी से पड़ा। वीर भी और उच्च स्वर मे बोल उठा, "वैदिक धर्म की जय" ज्यों-ज्यों कोड़े पड़ते युवक का साहस दूना हो जाता। बेहोशी मे भी वह यही जाप कर रहा था, "वैदिक धर्म की जय"। शरीर पर छाले ही छाले हैं। घातक विष का प्रभाव है। गुरुदत्त खड़े-खडे महर्षि को देख रहे हैं। इतना भारी कष्ट, पर मु ह से आह तक नहीं निकलती। हे दयामय! सर्वशक्ति मान् ईश्वर! तेरी यही इच्छा है। तेरी इच्छा पूर्ण हो! अहा! मैंने अच्छी लीला की।" सुनकर गुरुदत्त मन्त्र मुग्ध हो गये। गुरुदत्त ने देखा, कि ईश्वर विश्वासी किस शाति से मरता है। नास्तिकता के विचार बदल गये। जीवन ने पलटा खाया।

यहा वृषभ का अर्थ मेघ वा सूर्य है। "वर्षतीति वृषभो मेघ। यद्वा वर्षणस्य यो हेतु भवति स वृषभ सूर्य। वह प्रभु अथवा पृथ्वी के समान वा युवा बैल के समान हैं। कहीं यह वसुन्धरा पृथ्वी क्षीण हो भी जाए, किन्तु प्रभु का कोश कभी रिक्त नहीं होता। स्वामी दर्शनानन्द जी गुरुकुल ज्वालापुर मे बैठे थे। आज ब्रह्मचारियों के लिए भोजन नहीं है। स्वामी जी ने कहा, घटी बजाओ। ब्रह्मचारी भडार मे आकर बरतन थाली आदि रखकर बैठ गये। इतने मे गाव से एक व्यक्ति बैलगाड़ी पर भोजन लाद कर आ जाता है। भोजन खाकर ब्रह्मचारी तृप्त हो जाते हैं। असख्य भूखों को अन्न कौन खिलाता है। आप हम तो उनकी ओर देखने का भी कष्ट नहीं करते। समय पर वर्षा होती है। अनाज पैदा होता है। पृथ्वी वसुधा में अनन्त रत्नों, सोने, चादी आदि की खानें हैं। वे कहा से आयीं। सब उसी इन्द्र का चमत्कार है, जादू है। अथवा जैसे युवा बैल दूसरे पशुओं का प्रहार नहीं सहता, वैसे इन्द्र भी दुष्टों का अपराध सहन नहीं करता। हम चाहे गुफा, अंधेरे मे कहीं भी पाप करे, किन्तु प्रभु से नहीं बच सकते। वह हमारे पापों का दण्ड अवश्य देता है। वह दुष्टों को दण्ड देता है। चर्षणि का अर्थ मनुष्य है। मनुष्या, नरा, धना, जन्तव, विश, क्षितय, कृष्टय चर्षणय नहुष, हरय, मर्या, मर्त्या भर्त्ता, व्राता आदि २५ नाम निघंटु में मनुष्यों के गिनाये गये हैं। भक्त जनों से वह सेवनीय है। सभी भक्त उसका भजन करते हैं। ऋषि, महर्षि, सन्त सभी उसका भजन करते हैं। अत प्रतिदिन प्रात साय ब्रह्मयज्ञ सन्ध्या अवश्य करनी चाहिये। अतिशयदाता, स्थावर जगमात्मक, जड़-चेतन द्विविध सृष्टि का निर्माता भी वही है। इनका निग्रहानुग्रह भी वही करता है। पापी को दण्ड वही देता है, सज्जनों की रक्षा वही करता है। अत हे जीव, तू उसी इन्द्र प्रभु, ओ३म् का स्मरण कर। 'श्वास श्वास पर ओ३म् रट, वृथा श्वास मत खोय ना जाने इस श्वास को आव न होव न होय।

मैं झुकाता माथ उन को।

(लेखक—श्री राममूर्ति कालिया एम. ए. नई दिल्ली)

(१)

दीप बन कर जो जलें,
अज्ञान के तम को हरे,
रवि रश्मि बन कर जलज को,
जो सदा सुरभित करें।
मैं झुकाता माथ उन को॥

(२)

जो मेघ बन कर सदा,
तृषित धरणी पर झुकें,
भावना हित की लिए
सर्वस्व जो अर्पण करे।
मैं झुकाता माथ उन को।

(३)

त्याग का सम्बल लिए
ससार में विचरण करे,
कटकों में पनप कर
जो बन सुमन हसते रहें।
मैं झुकाता माथ उन को।

(४)

सरल चित्त, और मधुर भाषि,
धर्म पर निष्ठा लिए,
ऋजु पंथ गामी,
आप्त पुरुषों के लिए।
मैं झुकाता माथ उन को।

सम्पादकीय—

आर्य जगत्

वर्ष २२] रविवार ३ भाद्रपद २०१८, १९ अगस्त १९६२ [अक ३३

आर्यों का परम धर्म

जब कोई आर्य समाज के विराट् शरीर का अंग बनने के लिए अपने जीवन में संकल्प करता है। आर्यसमाज के विशाल संसार में प्रवेश करता है, तो उस समय उसे वेद के पढ़ने पढ़ाने और सुनने सुनाने के परमधर्म की प्रतिज्ञा करनी पड़ती है। वेद के ज्ञान को जीवन में सब से प्यारी वस्तु समझनी पड़ती है तथा जीवन पर्यन्त इसी के प्रचार प्रसार के लिए तन, मन, धन का समर्पण करना होता है। एक आर्य का वेद ही परमधर्म, परमधन तथा परमकर्म है। जीवन में उसके लिए सब से प्यारी वस्तु सब से अमूल्य निधि और सब से प्यारा कार्य वेद ही है। यह मुख्य है तथा बाकी सारे कार्य गौण कहे जाते हैं। इस युग के वेद प्रचारक महर्षि दयानन्द सरस्वती ने अपना सारा जीवन ही इसी पवित्रवेद के अर्पण कर दिया। वेद के सिद्धान्तों की अवहेलना उन्हें कभी भी स्वीकार नहीं थी। इस पर तो किसी के साथ भी समझौता नहीं किया। उनका सारा जीवन, सारा समय, सारी साधना और सारी दौड़-धूप इसीलिए थी कि सारे संसार में वेद का ज्ञान फैल जाये। जनसमाज वेदों का परमभक्त बन जाये। अपना सर्वमेध कर दिया किन्तु वेद का सम्मान बहुत ऊ चा रखा। वेद उनका जीवन और प्राण था। वेद प्रचार की प्रतिज्ञा लेकर निकले तथा प्राणपण से उसी में लगे रहे।

आर्यसमाज की स्थापना किस लिए की? इस के कार्य का केन्द्र-बिन्दु क्या है? किस विशेष प्रयोजन को सामने रखकर इतने महान् एवं विशाल, व्यापक आन्दोलन का सूत्रपात किया गया। इस से पहिले ब्रह्मसमाज आदि कई समाज और भी थे, जो लोगों में अपना कुछ न कुछ काम कर रहे थे। उन सब के होते हुए महर्षि ने अपने जीवन में अपने आरम्भ किए हुए पवित्र कार्य को विश्व व्यापी बनाने के लिए आर्य समाज की स्थापना की तो किस विशेष उद्देश्य को ले कर? और इस को सारे विश्व में क्या काम करने का आदेश दिया? इन सारे प्रश्नों को एक ही सरल उत्तर है कि वेद प्रचार का काम ही समाज के जीवन का आधार बनाया। वेद ही आर्यों का परम धर्म माना गया। विश्व के कोने २ में इस के विचारों का प्रचार करना ही इस के जिम्मे कर्तव्य लगाया गया। जिस प्रकार एक व्यक्ति अपनी निश्चित और मन में निर्धारित साधना को पूरा करने के लिए नाना प्रकार के साधनों को अपनाता है। उन का सहारा ले कर अपनी साधना को पूर्ण करना चाहता है। एक यात्री अपनी यात्रा के पथ को पूरा करने के लिए कई प्रकार के साधनों को अपने काम में लाता है। उसी प्रकार आर्य समाज ने वेद प्रचार की साधना को ले कर इस पथ पर चलते हुए अनेक साधनों को अपनाना स्वीकार किया है। जीवन में साध्य केवल एक ही होता है उस के लिए साधन भिन्न २ अनेक हो सकते हैं। ये हमारे प्रकाश किस लिए हैं? ये वेदी क्यों बनाई गई? पुस्तकें और समाचार पत्र पर व्यय कर परिश्रम क्यों होता है? ये कथाए, प्रचार, सम्मेलन तथा यदा कदा आन्दोलन किस लिए किए जाते हैं? ये विशाल सस्थाए क्यों खोल कर उन में इतना परिश्रम किस लिए? ये किस साध्य को पूर्ण कर इतना ताना बाना क्यों बुना जाता है? यह सारा पसारा किस लिए? ये किस साध्य को पूर्ण करने के लिए साधन अपनाए जा रहे हैं? केवल मात्र वेद प्रचार के पवित्र कार्य को लेकर ये सारी साधना चल रही है ताकि आज के भौतिक वाद तथा भोग प्रधान युग में जीवन का सच्चा आदर्श पेश कर दिया जाए।

इस सत्य को कहने में लेशमात्र भी सकोच नहीं कि आज के समय में आर्य समाज के अतिरिक्त और है भी कौन, जिसे इस बातकी चिंता है? और कौन समाज या सस्था है जिस को इस बात का ध्यान है कि आज का मानव किस डगर पर चल रहा है है। उसके जीवन निर्माण की आवश्यकता है। आर्य समाज के सिवाय कौनसी और सस्था है जिस के दिल मे विश्व के प्राणिमात्र की वेदना देख कर दर्द पैदा होता है। जो दूसरों के दु ख दूर करने केलिए बडे सेबडे कष्टों मे कूदने के लिए हर समय तत्पर रहता है। लोग अपने अपने स्वार्थकी साधना मे लगे हैं। अपने अपने जीवन मे विश्रामस्थान बना कर मनोविनोद की सामग्री जुटा कर बैठ कर सहस्त्रों चेले बना कर मस्त हो गए हैं। आर्य समाज के दीवानों के समान कौन बलिदान कर सकते हैं। आर्य सन्यासियों के समान कितने लोग हैं जो सारे भारत में घूम घूम वेद संदेश देते हैं महात्मा आनन्द स्वामी जी सरीखे कितने साधनामय जीवन हैं जो कभी ग्रामों में, नगरों और पहाडों पर रात दिन घूम-घूम कर वेद प्रचार के कार्य को ही जीवन का एकमात्र कार्य मान कर तपस्या मे लगे हैं। यह सब किस लिए—केवल इस लिए कि परमधर्म वे का प्रचार हो सके।

आर्यसमाज का जन्म ही वे के प्रचार के लिए है। महान् वे के भक्तों ने इसी मे अपना जीव समिधा बना कर दे दिया मौत भी हंस कर प्रेम किया। प्यारी प्यारी वस्तु भी दे दी। स समाज का मस्तक इससे ऊंच है। जब जब समाज का स्थापन दिवस आता है तब ये सार इतिहास सबके मन, मस्तिष्क मे एक बार घूम जाता है श्रद्धा से सबका मस्तक झुक जाता है किन्तु यह सब होते हुए भी हम आर्यों से एक बात कहना चाहते हैं कि इस परमधर्म वेदप्रचार के कार्य को प्रमुखता ही दिए रहना साध्य को साधन और जो इस के लिए साधन बनाये गये थे, जिनके द्वारा वेदप्रचार के कार्य को प्रगति देना अभिष्ट था उन साधनों को साध्य न बना दना। वेद के सिद्धा पर आज भी नाना प्रकार के विचारो लेखों, पुस्तकों तथा भाषणों द्वारा आक्रमण किए जा रहे हैं पुरातन वैदिक सभ्यता को किसी और रूप मे पेश किए जाने के प्रयत्न भी जारी हैं। वेद के नाम पर कई प्रकार की परिपाटिया चलाई जा रही हैं। वेदों के कई भ्रमपूर्ण भाष्य रचकर जनता मैं वेदों से अश्रद्धा पैदा करने मे कोई कसर नहीं रखी जा रही। पता नहीं कितना साहित्य केवल इसी लिए लिखा जा रहा है कि जैसे भी हो सके वेद, धर्म इसके पुरातन ऋषियों की विचारधारा, सस्कृति तथा सभ्यता को बिगाडा जा सके। यह सब कुछ सब के सामने है। इस का प्रतिकार कौन करेगा? आर्यों ने ही पूर्व भी किया है अब भी करना है। वेद के लिए पूर्व भी किसी से समझौता नहीं किया अब भी किसी से समझौता करने को तैयार नहीं होगा। आर्यो! अपने सकल्प को दृढ करके प्रण करें कि हमारा तन मन धन वेद प्रचार के लिए होगा।

नारी स्तम्भ

"नारी की उदारता"

(कु अरुण आर्या प्रभाकर, टोहाना)

प्रत्येक जीवन किसी प्रश्न का उत्तर है। आकाश और काल का अनन्त विस्तार प्रश्नों का एक सागर है। तारों की झिलमिल मे, सूर्य की लाली उषा देवी की लालिमा में, चन्द्रमा की अरुणिमा मे, तितलियों की कालापूर्ण विचित्र रचना मे, पावस के काले बादलों मे, घासों पर बिखर कर चमकते हुए ओस कणों मे, जर्रे २ में, पृथ्वी के कण २ में एक जिज्ञासा है, एक प्रश्न है। सागर की उद्वेलित तरगे की तरह जीवन प्रश्न बन कर उठता है और उत्तर बन कर गिर पड़ता है। प्रश्नों और उत्तरों की इसी श्रृंखला का नाम ससार है। इसी प्रकार नारी का जीवन भी आदिकाल से प्रश्नों के द्वारा घिरा हुआ है। नारी पुरुष से प्रतिक्षण प्रश्न करती है, उस से एक जिज्ञासा रखती है मगर पुरुष उसकी जिज्ञास को पूर्ण नहीं करता, क्यों कि वह उसे पराधीन समझता है। नारी चाहे कितनी ही स्वतन्त्र हो लेकिन फिर भी वह परतन्त्र है। क्यों कि कौमार्य अपस्था में माता पिता के आधीन युवावस्था में पति के आधीन तथा वृद्धावस्था में सन्तान के आधीन है। कहने का तात्पर्य यह कि नारी अकेली का इस संसार में निर्वाह नहीं। वह आदि से अन्त तक मनुष्य का आश्रय ले कर अपने जीवन को व्यतीत करती है।

वह प्रारम्भ से अपने माता पिता की स्नेह मयी पवित्र गोद मे, उन के प्रेम की छत्र छाया में बड़ी है। किन्तु इस गोद का पवित्र स्नेह वह थोडे ही दिन पाती है कि उस के जीवन की डोर किसी दूसरे के हाथ में सौंप दी जाती है। लड़की के पाणिग्रहण के समय परिवार का प्रत्येक व्यक्ति दृष्टिगोचर होता है। प्रत्येक के हृदय में आनन्दोल्लास उमड रहा होता है मगर उस बेचारी के हृदय की व्यथा को कौन जाने! यह सत्य है कि जीवन के सुख के पीछे दु ख और आह्लाद के पीछे विषाद निहित है। अर्थात इस उल्लासमय सत्य का एक दूसरा पहलू भी है। वियोग, विदाई और बिछुडन! यह नारी जीवन का अमर अभिषप है। विश्व कल्याण के लिए नारी का सब से बड़ा बलिदान यही है। कितना बड़ा मूल्य दे कर नारी एक नवीन दुनिया का निर्माण करती है? इसे ससार क्या जाने।

बाल्यावस्था में, जब कि वह ससार की प्रत्येक बात को समझने में असमर्थ होती है, उस समय भी वह अपने भैया के लिए कितना स्नेह रखती है। जब वह 'भैया' कह कर सम्बोधित करती है तो शायद वह अपने हृदय में सोचती है मानो उस ने संसार की सुख सम्पत्ति, वैभव समृद्धि को पा लिया हो। वह अपने भैया के लिए अपने जीवन सकटमय, दु खमय यहा तक कि विपत्तयों के घोर तूफानों में भी डालने में सकोच नहीं करतीं। यह नारी की उदारता का प्रथम ज्वलन्त दृष्टान्त है।

युवावस्था मे, वह अपना दूसरा रूप धारण करती है। वह रूप है 'पत्नी' का। वह अपने पति के लिए अपनी समस्त आकांक्षाओं का त्याग कर देती है। इसी लिए इसे 'त्याग मूर्ति' एव 'देवी' का स्वरूप दिया गया है। उस का पति चाहे कितना मूढ़, अत्याचारी और क्रूर स्वभाव का हो मगर फिर भी वह उस को भगवान का रूप देकर उस की पूजा करती है। केवल पति के लिए ही नहीं, वह प्रत्येक के प्रति अपना कर्त्तव्य समझती है। वह अपनी सन्तान के प्रति अपना समस्त स्नेह रूपी परिमल को न्यौछावर कर देती है। चाहे सन्तान कुरूप हो, गुण हीन हो पर उस के लिए तो वही एकमात्र सम्पत्ति है। जब बच्चा कीचड़ से लथपथ अपनी मा की गोद में दौड़ कर आता है तो मा इस की गन्दी अवस्था को नहीं देखती बल्कि उसे एक दम गोदी में उठा कर चूमती है। कितना विशाल और उदार हृदय है मां का!

वृद्धावस्था में जब कि वह अपनी सन्तान के आधीन होते हैं उस समय भी वह अपने बलिदान पथ से पग पीछे नहीं हटाती। पुत्र चाहे उसे कितना हो दुःख दे, उस की मनोकामनाओं को पूर्ण न करे परन्तु फिर भी वह स्वप्नलोक में भी उस के लिए अहित की आकांक्षा नही करती।

केवल भैया, पति और सन्तान के लिए ही नहीं, बल्कि वह राष्ट्र की बलिवेदी पर अपना जीवन समर्पण करने के लिए सदा उद्यत रहती है। इस के पुष्टि के लिए हमें अनेकों ज्वलन्त प्रमाण इतिहास में मिलते हैं। जैसे महारानी लक्ष्मी बाई, रानी दुर्गावती। और इस ने राष्ट्र निर्माण के लिए कितने हो पुत्र-रत्न उत्पन्न किए। जब २ राष्ट्र पर संकट आया तब तब उस ने स्वयं अपने प्राणप्यारे पुत्रों को सजा कर रण-भूमि में मातृभूमि की रक्षा के लिए भेजा। वाह री नारी! कहा तक तेरे आत्म बलिदान की गाथा गायें।

तू इसी प्रकार अपने जीवन को सेवा रूपी भट्टी में डाल कर कुन्दन बनाती चली आ। इसी में तेरी महत्ता है।

हे मां! तू धन्य है। धन्य है तेरा विराट हृदय।

स्वतन्त्रता दिवस आया

ध्वस हुआ साम्राज्य तिमिर का, सूर्यालोक मुस्काया।
बीत गई रजनी रजनी की रही न काली छाया।
उषा काल की लाली ने बहु दिश गुलाल बिखराया॥
भारत भू के कण कण में नव जीवन ज्योति जगाया।
चटक उठी फिर कली कली, पुष्पों ने यौवन पाया॥ स्वतं ....
देख बेड़ियां पग की बन्धी रहता था मुरझाया।
काट गिराया आज उन्हें गौरव से शीश उठाया॥......
पूर्ण साधना करके वीर जवाहर ने वर पाया।
आज तिरङ्गा लाल किले पर हुमक हुमक लहराया॥
धन्य धन्य वह योगी जिसने सोया भाग जगाया।
अमृत दान जगत को दे खुद विष का घूट चढ़ाया॥ स्वतं ..

—शरर एम ए.

तहसील ऊना के इलाका लोहारा में आर्यसमाज की स्थापना

जिला वेद प्रचारिणी सभा होशियारपुर के उपदेशकों की कोशिशों से इलाका लोहारा के ग्राम अरनवाल में जो भरवाईं से ५ मील की दूरी पर है, २१ जुलाई को आर्यसमाज स्थापित की गई। जिसके २८ सदस्य बने। चुनाव निम्न प्रकार किया गया—

प्रधान—श्री रलाराम जी।
मन्त्री—श्री प्रताप चन्द जी।
उपमन्त्री—श्री जगतराम जी।
खजांची—श्री दयाल चन्द जी।

८ मैम्बर अन्तरंग सभा के लिए चुने गये।

निवेदक
बूटाराम मन्त्री,
जिला वेदप्रचारणी सभा होशियारपुर

"पाहन-भूत-खेत"

(लेखक—श्री हरिश्चन्द्र जी विद्यार्थी B A (Honours)
संयोजक अखिल भारतीय दयानन्द
सालवेशन मिशन—राची

आर्य-जगत् के पाठकों के लिए बड़ा अपरिचित सा शब्द है, मगर है बहुत महत्वपूर्ण इस शब्द के अन्दर जो बात छिपी है, उसने छोटा नागपुर में ग्रामों के ग्राम ईसाई बना दिए हैं। मैंने रांची जिला के कुछ ही थानों के आंकड़े इकट्ठे किए हैं। इन में ७५ ग्राम ऐसे मिले, जिनमें ईसायत इसी के कारण फैली।

'पाहन-भूत-खेत' क्या है ? बात पुरानी है। जब छोटा नागपुर मे बसने वाले मुंडा, उराव आदि जातियों के पूवजों ने जंगल साफ करके ग्राम बसाए, तो हर ग्राम मे कुछ भूमि—प्राय ६—७ एकड़ अलग रख दी गई। इस भूमि की उपज पाहन (पुरोहित) को मिलती है। इसलिए यह खेत भी पाहन-भूमि या पाहन-भूत-खेत (भूतों आदि को दूर रखने के लिए पाहन को दिया गया खेत) कहलाता है।

पाहन यहां का बड़ा प्रभावशाली व्यक्ति है। आर्यसमाज के पुरोहित की तरह वह मन्त्री या प्रधान का नौकर नहीं, न ही सनातन धर्मी पुरोहित की तरह वह अपने योगक्षेम के लिए घर-घर जाता है। वह तो वैदिक कालीन पुरोहित है। वह ग्राम का नेता है। प्रत्येक धार्मिक कृत्य वही करवाता है। सरना (धर्म मंदिर—जो प्रदान साल वृक्षों का एक झुंड है।) में उसके सिवाय या उसकी आज्ञा के बिना कोई प्रवेश नहीं कर सकता। सभी सामाजिक काम, सभी कर्म कांड, पर्व, त्यौहार, हर प्रकार की पूजा, श्राद्ध ग्राम देवता पूजन आदि करवाना, पाहन का ही कर्त्तव्य और अधिकार है।

प्राचीन आर्यों की परम्परा इन लोगों में है। इनका हर काम यज्ञमय है। हल चलाना, खेत में बीज डालना, धान की पनीरी उखाड़ना, लगाना, फसल काटना, अनाज घर में लाना, अनाज पकाना, खाना आदि सभी काम यज्ञ ही हैं। प्रत्येक काम विधान अनुसार विशेष पूजा आदि के साथ किया जाता है। पाहन ही यह सब करवाता है। पाहन के बिना इन लोगों के पारिवारिक या सामाजिक जीवन का चित्र मन में आ ही नहीं सकता।

यह पाहन वंश-परम्परा से नहीं होता। हर तीसरे वर्ष ग्राम वासी अपना नया पाहन चुनते हैं। यह उनकी इच्छा है कि पुराना ही पाहन रहने दे, या नया चुनले। पाहन-खेत भी पाहन के ही योग-क्षेम के लिए होता है।

यह खेत ग्राम का सब से अच्छा 'दून खेत' होता है। हरेक ग्राम में ग्राम निवासी सर्वप्रथम इसी में हल चलाते, इसी में बीज बोते, इसी की फसल काटते, इसी का अन्न ग्राम में लाते हैं। चाहे ग्राम का फसल खराब हो जाय, मगर जब तक 'पाहन-खेत' की कटाई आरम्भ न हो, ग्राम के किसी खेत की कटाई नहीं की जा सकती।

जब पादरयों ने ईसायत का प्रचार शुरू किया तो उनका सारा बल इस पाहन को ईसाई बनाने पर लगा। पाहन के ईसाई बन जाने पर ग्राम का ईसाई बन जाना आसान बात थी पाहन के ईसाई बनने में 'पाहन-खेत' बड़ी भारी रुकावट था। क्योंकि ईसाई पाहन को तो जाति से निकाल जाता था। उस के हाथ का कोई खाता न था। भूमि नए पाहन को चली जाती थी।

अंग्रेजी शासन काल में पादरयों का राज था। जो चाहते थे कर या करवा सकते थे। इस में भी इन लोगों ने हस्तक्षेप किया। सरकारी अफसरों को कह कर पाहन भूमि ईसाई पाहन के नाम दरज करवा दी। इस प्रकार इस समय बहुत से ग्रामों की यह पाहन भूमि ईसायों के पास है।

इस का परिणाम भयानक हुआ है। प्रथम तो पाहन को ईसाई बनाने में रुकावट दूर हो गई। इस प्रकार पाहनों के पीछे सैंकड़ो ग्रामों में लोग ईसाई बन गए। दूसरे पादरी की शक्ति का लोहा बैठ गया। वह ग्राम की भूमि भी ईसाई को दिलवा सकता है यह उसकी शक्ति का चिन्ह है, अत: उस का मान बढ़ा, इज्जत बढ़ी और उस की ईसाई बनाने की शक्ति बढ़ी। तीसरे सब से बड़ी कठिनाई यह हुई कि नए पाहन का योग क्षेम कैसे चले, ग्राम में उसकी पोजीशन कसे कायम रहे। उसे भूमि की उपज न मिले तो वह ग्राम का कर्म काण्ड कैसे कराए। पूजा पाठ का, देवताओं को प्रसन्न करने का, पित्तरों को राजी रखने का, पर्वों का—काम कौन करे ? इन चीजों का प्रबन्ध न रहने से समाज शृंखला विहीन हो गया। प्राचीन प्रथाएं और परम्पराएं ढीली पड़ गईं।

जंगल में बसे इन ग्रामों का संचालन इन प्रथाओं और नियमों द्वारा ही होता है। ग्रामों का सामाजिक संगठन कमजोर हो गया। इस असहाय अवस्था में वह लोग आसानी से ईसायत का शिकार हो गए।

जब स्वतंत्रता मिली तो आशा हुई कि इस अन्याय का प्रतिकार होगा, और पाहन खेत (जो ग्राम की मलकियत है) पाहन को मिल जायगा। मगर हमारी सरकार तो आन्दोलन के बिना किसी बात पर ध्यान देने की आदी ही नहीं। आन्दोलन करने की इन गरीब लोगों के पास न शक्ति है, न साधन। ईसाई पादरी का मुकाबला तो यह किसी प्रकार भी नहीं कर सकते।

अखिल भारतीय दयानन्द सालवेशन मिशन ने इस काम को भी अपने हाथ में लिया। ग्रामों से आकडे इकट्ठे किए गए। सरकार तक आवाज पहुंचाई गई। प्रत्येक पद अधिकारी सहमत हैं कि यह पाहन-भूमि अवश्य पाहन को मिलनी चाहिए। मगर 'बिल्ली को घंटी बांधने' वाली बात हो रही है।

मैं समझता हूं कि आर्यसमाज को यह काम अपने हाथ में लेना चाहिए। इस पर आंदोलन खड़ा होना चाहिए ताकि न्यायोचित काम हो सके।

जिन ग्रामों में पाहन भूमि ईसाइयों के पास है, किसी प्रकार का भी प्रचार कार्य तब तक प्रभाव नहीं डाल सकता जब तक वह भूमि असली पाहन को मिल नहीं जाती।

केवल इसी एक बात ने ग्रामों के ग्राम ईसाई बनाए थे। उन में से यदि वापस लाने की आशा की जा सकती है तो केवल इस अन्याय को दूर करने से। इन ग्रामों में और आस पास भी ईसायत के फैलाव को रोकने का यह एक प्रभावशाली साधन है।

—०—०—

सदाचार-प्रवेशिका

(ले०—श्री करनैलसिंह 'विद्यार्थी' उपप्रधान आर्ययुवक समाज कादिया,)

महापुरुषों के जीवन पर जब कभी भी मैं दृष्टिपात करता हूं तो मुझे सचमुच ही एक नई, अनोखी एवं हैरानी-युक्त बात उनके जीवन में दिग्दर्शन होती है। यह हैरानी, अचम्भे वाली बात केवल उनको ही दिखाई देती है जिन का कि अध्ययन महापुरुषों के, महान-आत्माओं के जीवन पढ़ने व सुनने की ओर आकृष्ट होता है। मैं तो कभी-कभी उन महापुरुषों की उन घटनाओं को पढ़-पढ़ कर, सुन-सुन कर अथवा स्मरण करके इस ही कहता हूं कि इन चूहों से जिन्हें हम प्रतिदिन देखते हैं वह महापुरुष शिक्षा लेते हैं। क्या था शिवरात्री को, भला चूहा ही तो शिव की मूर्ति पर नाचता था न पर शिक्षा लेने वाले ने इस चूहे से शिक्षा लेकर इतना दुनियां में काम किया जितना कि अभी तक शायद न कोई करेगा और न ही किसी ने किया है। सो कहना न होगा कि कितना पावन जीवन था उस ऋषि का।

भला महात्मा गांधी के नाम को आज कौन नहीं जानता। भला इस महात्मा के गुरु कौन थे। इसके भी जीवन को निरीक्षण करने से विदित होता है कि इस महान आत्मा ने भी अपने गुरु तीन बन्दर ही तो नियुक्त किये हुए थे कौन नहीं जानता, सुनता उन बन्दर की मूर्तियों को जिन में एक बन्दर ने तो अपने कानों पर अपने दोनों हाथ रखे हुए हैं तथा दूसरे ने अपने नेत्रों पर हाथ रखे हुए हैं और तीसरे ने अपने मुख पर हाथ रखे हुए हैं। महात्मा गांधी का सुझाव था कि यदि हम इन बन्दरों की तरह इन से शिक्षा लेकर अपने मुख से कोई अपशब्द न निकालेंगे और मुख से सदा मीठी पवित्र वाणी बोलेंगे तो इसका प्रभाव यह पड़ेगा कि हमारी जहां पर निजि जीवन की दिन चर्या सुधरेगी, जहां पर हमारी रसना पावन शब्दों से दूसरों को मोहित कर लेगी वहां पर उनकी आंखों में भी हम अच्छे, सभ्य, सदाचारी प्रतीत होंगे। मीठी वाणी बोलने के जहां पर अनेक लाभ हैं वहां पर यह भी मानव के जीवन में एक उपयोगी गुण उस में आ जाता है कि वह अपने जीवन को उदार-युक्त बना लेता है अर्थात् उस में नम्रता आ जाती है जिसके कारण आदमी अपने प्रत्येक कार्य को सुलभ कर पूर्ण कर सकता है। अतः महात्मा गांधी कहते थे कि इस मुख पर हाथ रखने वाले बन्दर से हमें यह शिक्षा लेनी चाहिए कि हमारा मुख अपशब्दों के कहने से, बुरी वाणी, कठोर वाणी बोलने से रुके और अच्छी तथा पवित्र वाणी की ओर प्रेरित होवे। देखिये महा-भारत का युद्ध भी तो इस कठोर वाणी के बोलने से ही तो हुआ तथा तभी ही इतना विध्वंस हुआ। यदि द्रोपदी यह न कहती कि अन्धों के अन्धे ही होते हैं तो यह भयंकर महायुद्ध कभी भी न होता। इसी ही लिए तो वेद का कथन है कि—

ओ३म् वाक् वाक्॥

और पावक न सरस्वति॥इत्यादि

मन्त्रों द्वारा वेद कहता है कि हे मानव तेरी बुद्धि श्रेष्ठ, सभ्य और पावन आचरण करने वाली हो। तथा इसी लिए ही तो एक सभ्य साधक भगवान से प्रार्थना करता है कि पावका न सरस्वति अर्थात् हे भगवान मेरी वाणी सदा पावन वेदवाणी का उच्चारण करे अर्थात मेरी वाणी सदा मीठी वाणी बोलती रहे कभी भी रुष्ट न होवे।

दूसरे बन्दर द्वारा गान्धी जी कहते हैं कि हमें इस बन्दर के संकेतानुसार अपने नेत्रों को सदा पावन पद्धति से प्रयोग में लाना चाहिए और इस बन्दर की तरह हमारी भी आंखें बुरी चीज को, बुरे दृश्य को जैसे सिनेमा आदि को न देखें, हमारी आंखें कभी भी बुरे चित्र, बुरी पत्रिकाओं का अवलोकन, बुरे नाटकों कहानियां आदि को न देखें तथा न ही उन का अध्ययन करें।

यह बन्दर हमें दर्शाता है कि हम पर-स्त्री, माता बहिन आदि को इसी ही उपयुक्त भावना से देखने में सदा उद्यत रहें पर इस भावना के बुरे विकार से हम इन्हें देखने से अपनी आंखों पर पट्टी बान्ध लें अर्थात हमारी आंखें कभी भी इस प्रकार बुरे विकार को लाने वाले दृश्य को न देखें। मेरा यह कहना है कि यदि हम भी उस राम के भ्राता लक्ष्मण तथा अर्जुन की भान्ति अपनी दृष्टि को चाहे हमारी बहिन हो, चाहे हमारी माता हो और चाहे हमारी पुत्री इत्यादि हो उसके साथ बातचीत करते या वैसे देखने में उन के चरणों में होनी चाहिए। अर्थात यदि स्त्री जाति के सुन्दर स्वरूप को देखा जाये तो यह हो नहीं सकता कि हमारे मन में विकार पैदा हो सके। इसी लिए हो तो लक्ष्मण यति ने कहा था कि 'भैया मैं अपनी माता (सीता) की यह केवल अंगूठी को ही पहचान चाहता हूं तथा और कोई गहना नहीं पहचान सका हूं क्योंकि जब कभी मैं अपनी माता जी से बात-चीत करता तो मेरी नजर माता जी के चरणों पर ही पड़ती थी। एवं प्रतिदिन जब मैं प्रणाम करने जाता तो मुझे केवल यही अंगूठी ही दिखाई देती थी"।

यह है सदाचार, ब्रह्मचर्य-व्रत तथा शिष्टाचार हमारे महापुरुषों का। अर्जुन के उदाहरण को भी कौन नहीं जानता जब कि एक अप्सरा खूब हार श्रंगार से युक्त महात्मा अर्जुन जी के पास आई और कहने लगी कि मैं हे दानी तुम से एक चीज मांगनी चाहती हूं कि आप के संग में आप जैसा मुझे शूरवीर पुत्र चाहिए। (अर्थात मैं आप से विवाह कराना चाहती हूं।) जब यह प्रश्न एक शूरवीर यति ब्रह्मचारी के सामने उपस्थित हुए तो बड़ी सोच-विचार कर उस ने जो उत्तर उस अप्सरा को दिया वह सचमुच ही अनुकरणीय था। महान विभूति का उत्तर था 'हे माता आप की इच्छा पूर्ण है क्योंकि आप मेरी माता हैं और मैं आप का पुत्र हूं। क्योंकि आप मुझे जैसे पुत्र लेने की इच्छुक हैं सो मैं वह आपके समक्ष हूं। (क्रमश)

पंद्रवां वार्षिकोत्सव

आर्यसमाज सलोगड़ा का पंद्रवा वार्षिकोत्सव ७, ८, ९, सितम्बर १९६२ बरोज शुक्रवार, शनिवार, इतवार समारोह के साथ मनाया जावेगा। इस वर्ष निम्न-लिखित महानुभावों के पधारने की पूर्ण आशा है।

महात्मा देवीचन्द जी एम० ए० प्रधान आल इण्डिया दयानन्द सालवेशन मिशन होशियारपुर, प० मेलाराम जी रेडियो सिंगर, श्री तारा चन्द जी, ठा० दुर्गासिंह जी आर्य तूफान, प० ओमप्रकाश जी उपदेशक आदि विद्वानों, उपदेशकों तथा भजनीकों के पधारने की पूरी आशा है। जोकि अपने मनोहर तथा भजनों द्वारा जनता को आनन्दित करेंगे। सब सज्जनों से प्रार्थना है कि दर्शन देकर लाभ उठावें और जलसे की शोभा को बढ़ावें। नगर कीर्तन ७ सितम्बर को दिन के २ बजे से आरम्भ होगा।

नत्थूराम महाजन मन्त्री,
आर्यसमाज

ज्योति-स्तम्भ-भगवान राम

(ले० श्री ज्ञानसिंह जी करोल बाग नई देहली)

आज से लाखों वर्ष पूर्व भी राम का राज्य था, फिर भी आज तक उनका नाम बड़ी श्रद्धा व प्रेम से लिया जाता है, उनके नाम को सुनते ही लोग श्रद्धा से नतमस्तक हो जाते हैं। लाखों-करोड़ों लोग उन्हें प्यार करते हैं। बहुत से लोगों का प्रेम तो यहा तक पहुंच गया है कि वे उन्हें ईश्वर का अवतार समझते हैं। परन्तु जो ऐसा नहीं समझते हैं वे भी उन्हें एक महान-पुरुष की पदवी देते हैं। वे भारत के ही नहीं वरन् संसार की एक महान विभूति है। संसार में कई परिवर्तन हुए हैं, राज्य बदले हैं, राज्यों की सीमाएं बदली हैं। समुद्रों का स्थान स्थल और स्थलों का स्थान समुद्रों ने लिया है, संस्कृतियां बदली हैं, भारत भी ऐसे परिवर्तनों से अछूता नहीं रहा, यहा पर भी कई तूफान आये हैं, विदेशियों ने इसे रौंदा है, लूटा है, अत्याचार किये हैं, कितनी ही आंधियां चलीं, परन्तु भारत अपने राम को न भूल सका। भारतवासियों के हृदय में उनके लिए प्रेम की भावनाएं ज्यों-की-त्यों विद्यमान हैं, उनके लिए श्रद्धा का स्रोत सूखा नहीं। रामनवमी, दशहरा व दीवाली के त्योहार बड़ी श्रद्धा और उत्साह के साथ मनाये जाते हैं। रामायण का पाठ किया जाता है। दशहरा के अवसर पर रामलीला द्वारा राम के जीवन की प्रदर्शन की जाती है, हरे-राम, हरे-राम का कीर्तन किया जाता है, रामनाम की ध्वनि गायी जाती है। रामायण केवल राम का जीवन-चित्र ही नहीं है, वरन् वह आध्यात्मिक ज्ञान का कोष भी है। यह राम को एक आदर्श पुरुष के रूप में पेश करती है। राम का जीवन एक ऐसी खुली पुस्तक है जिसके अध्ययन से मनुष्य अपने जीवन-पथ को सदा प्रकाशमान रख सकता है। प० जवाहरलाल जी नेहरू ने अपनी 'भारत की खोज' नामक पुस्तक में लिखा है कि 'मैंने अनपढ़ किसानों व मजदूरों की बड़ी-बड़ी भीड़ें देखी हैं, मैं उनकी झोपड़ियों में गया, उनके दिलों में झांक कर देखा, मैंने अनुभव किया, मुझे इन अनपढ़ लोगों से कुछ प्राप्त करना है। वे आधुनिक स्तर के अनुसार पढ़े-लिखे नहीं, परन्तु उन्हें रामायण के दोहे और चौपाइयां याद हैं, ज्ञान का बहुत बड़ा कोष उनके पास है। वे पढ़े लोगों से कहीं अधिक समझदार, बुद्धिमान व ग्राह्य-शक्ति रखने वाले हैं। सबसे बड़ी बात यह है कि उनके पास जीवन का एक ऐसा तत्व है जो जीवन की राहों को हर समय रोशन रखता है।' यह तत्व उन्हें कहां से मिला? रामायण से। राम के जीवन से।

राम के जीवन का कहां तक वर्णन किया जाय। वे ज्ञान की खान हैं। जीवन के हर क्षेत्र में उन्होंने आदर्श पेश किया है, एक मर्यादा स्थापित की है, इसीलिये उन्हें मर्यादा पुरुषोत्तम भी कहा जाता है। उनका त्याग कितना महान था। वे एक राजकुमार थे, लाड़-प्यार में पले थे, महलों मे जन्म लिया और सुख-चैन की सभी सामग्री से ओत-प्रोत थे। परन्तु पिता की आज्ञा का पालन करके, महलों को छोड़ सुख-चैन का जीवन त्याग कर वन जाने के लिए तत्पर हो गये। १४ वर्ष तक घास-फूंस की कुटिया में रहना था, जंगल के कंदमूल पर निर्वाह करना था, पर इससे उनके हृदय में तनिक भी रंज नहीं आया। उनके मस्तक पर बल नहीं पड़ा। उन्होंने पिता की आज्ञा को प्रसन्नता से शिरोधार्य किया, जब भरत ने उन्हें वापस अयोध्या आने और राज्य करने की प्रार्थना की तो उन्हों ने यह कह कर रघुकुल रीति सदा चली आयी, प्राण जायें पर वचन न जायी। अयोध्या में वनवास की अवधि व्यतीत होने के पूर्व आने को अस्वीकार कर दिया। यह दृश्य कितना अद्भुत था कि भरत राज्य को पेश करते और राम भरत को। राज्य फुटबाल की तरह एक स्थान से दूसरे स्थान पर धकेला जाता है और दोनों में से कोई भी स्वीकृत नहीं करता। अन्त में भरत ने राम की खड़ाऊं सिंहासन पर रख कर राम के नाम से उनकी अनुपस्थिति मे राज्य प्रबन्ध का उत्तरदायित्व अपने ऊपर लिया। ऐसा त्याग का उदाहरण इतिहास में कहीं ढूंढने पर भी नहीं मिलेगा। वनवास की अवधि में भगवान राम ने कितनी विपत्तियां उठाई परन्तु इस तपस्वी ने उनका दृढता और धैर्यता के साथ सामना किया। इसका उदाहरण भी कहीं नहीं मिलेगा। सीता जी का रावण ने हरण किया। जब भगवान राम ने देखा कि रावण के साथ युद्ध के सिवाय और कोई चारा नहीं तो साधन रहित होते हुए भी उन्होंने अपने आप को इसके लिए तैयार कर लिया। रावण का बलशाली राजा था, उसके पास सेना थी, खजाना था, वह एक देश का राजा था, परन्तु राम अकेले थे, निहत्थे थे, बिना साधन के थे, न फौज थी न शस्त्र थे न खजाना था, भरत से वे सहायता ले सकते थे। परन्तु ऐसा उन्हों ने नहीं किया। वे इसे उचित नहीं समझते थे। इसलिये आत्म-विश्वास के बल पर उन्होंने जङ्गली जातियों को सगठित किया, उनकी सेना तैयार की, अपनी बुद्धि से शस्त्रों का निर्माण किया और पूर्ण रूप से सुसज्जित होकर सैन्य बल के साथ लंका पर चढ़ाई कर दी। रावण को पराजित किया और सीता जी को उसके चंगुल से छुड़ा लिया। ऐसे आत्म-विश्वास, संगठन शक्ति और बुद्धिमत्ता का उदाहरण भी अन्यत्र नहीं मिल सकता।

'अहसानों को जो डुबो दे
उसे तूफान कहते हैं,
तूफान को जो दबा दे
उसे इन्सान कहते हैं।'

वस्तुतः राम एक आदर्श व्यक्ति थे।

भगवान राम ने न केवल पुत्र-भक्ति का आदर्श ही हमारे सामने नहीं रखा वरन् मातृ-भक्ति, भ्रातृ-प्रेम, पत्नी-प्रेम, सच्ची मित्रता तथा सेवक के साथ उचित व्यवहार का भी आदर्श संसार के सामने रखा। सारांश, भगवान राम त्याग, प्रेम, धैर्य कर्त्तव्यपरायण, सुख-दुख में एकरस रहना, सहनशीलता आदि गुणों के कोष थे। वे एक ज्योति स्तम्भ थे, जिस की ज्योति इतना समय व्यतीत होने पर भी कम नहीं हुई, बल्कि बढ़ती ही जा रही है। हमारा रामायण का पढ़ना, भगवान राम के जीवन की कथा सुनना, दशहरा का त्योहार मनाना आदि तभी सार्थक होगा जब हम उनके गुणों को अपने में धारण करें और अपने जीवन के अन्धकार को उससे प्रकाशमान करें।

दैनिक धार्मिक सत्संग

आर्यसमाज मन्दिर माटुंगा (नप्पू रोड) में पधारकर धर्म लाभ प्राप्त कीजिए। प्रतिदिन प्रातः ६ से ७ बजे तक सन्ध्या, हवन तथा भजन कीर्तन के बाद श्री सोमदत्त जी विद्यालंकार का मनोहर, शिक्षाप्रद धार्मिक प्रवचन होता है। परिवार सहित पधारकर लाभ उठाइये।

निवेदक—
ओंकारनाथ मन्त्री आर्यसमाज

महात्मा हंसराज साहित्य ।

आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा पंजाब जालन्धर ने स्वर्गीय महात्मा हंसराज जी को पुण्य स्मृति में वैदिक धर्म संबंधी पुस्तकों के प्रकाशक का विभाग खोला हुआ है जिसने समय २ पर समयानुकूल पुस्तकों के प्रकाशन द्वारा महात्मा जी के नाम व काम को चिरस्थायी कर दिया है। अब आर्य समाजों, व महात्मा जी के श्रद्धालु भक्तों का कर्त्तव्य है कि इस विभाग की अधिक से अधिक पुस्तकें मंगाकर उस ने नाम को अमर करें साथ ही इस विभाग की आर्थिक सहायता करें।

- आर्य समाजों के सदस्य व आय व्यय संबन्धी सुन्दर पक्की जिल्द के रजिस्टर १.००
- महात्मा हंसराज जी का सम्पूर्ण विस्तृत तथा सचित्र जीवन २.००
- प्रभु दर्शन २-५० न०पै०
- [illegible] (श्री [illegible] कृत) २.००
- गीता दिग्दर्शन .५०
- जीवन ज्योति ६२
- स्वाध्याय संग्रह (नयाप्रकाशन) ·५०
- दयानन्द शतक १.००
- आर्य भजन संग्रह ·५०
- सत्यार्थ प्रकाश भाष्य I समुल्लास १.००
- „ II १.००
- स्वामी दयानन्द जी के पत्र व्यवहार III.५०
- „ IV.५०
- पातंजल योग अरविंद की योग पद्धति .७५
- अमृतवाणी सजिल्द .५०
- अजिल्द .३१
- आर्यसमाज की सदस्यता के प्रवेश पत्र २.५०
- चारों वेदों के मूल पुस्तक ११.५०
- संस्कार विधि १.२५
- पंचमायज्ञ विधि ·२०
- आर्याभिविनय .२५
- वैदिक सत्संग गुटका (उर्दू) .२५
- वैदिक धर्म का महत्व .१२
- वैदिक धर्म मुझे क्यों प्यारा है ? १.५०
- चारों वेदों के शतक बढ़िया चित्ताकर्षक जिल्द प्रति कापी १.००
- राधा स्वामी मत आलोचन .३७
- दयानन्द हिज लाइफ एण्ड वर्क अंग्रेजी मे (प्रि.सूर्य भानु जी M.A. लिखित) १.५०
- टीचिंग ओफ ईशउपनिषद (अंग्रेजी) में (श्री दीवान चन्द जी लिखित) १.५६

नोट—इनके अतिरिक्त आनंद स्वामी जी महाराज लिखित स्वाध्याय व अध्यात्म वाद संबन्धी सभी पुस्तकें हमारे यहां से प्राप्य हैं।

मिलने का पता

प्रबन्धक—महात्मा हंसराज साहित्य विभाग A.P.P. सभा निकट कचहरी जालन्धर।

आर्य जगत के पाठकों के लिए

शुभ सूचना

चिरकाल से आर्य समाजों की शिकायत आ रही थी कि आर्यजगत ठीक समय पर नहीं आता और हम इस पत्र का सदुपयोग अपने साप्ताहिक सत्संगों में नहीं कर सकते। इस त्रुटि के निवारणार्थ पोस्ट ऑफिस के अधिकारियों से पत्र व्यवहार किया गया जिसके फल स्वरूप अब यह पत्र शुक्रवार की बजाए बृहस्पति वार को पोस्ट हुआ करेगा जिस से सभी समाजों में ठीक समय पर पहुंचकर लाभकारी सिद्ध होगा।

२—समाज संबंधी प्रकाशनार्थ सूचनाएं व लेख रविवार तक सभा के कार्यालय में पहुंच जाने चाहिए।

पत्र सूचना कार्यालय
भारत सरकार

पार्टियो के लिए सुरक्षित चुनाव चिन्ह
चुनाव आयोग द्वारा नई सूची तयार

नई दिल्ली ९ अगस्त १९६२—चुनाव आयोग ने सुरक्षित चुनाव-चिन्ह पाने वाली पार्टियों की नई सूची तैयार की है। चुनाव-चिन्ह सुरक्षित करते समय यह देखा गया है कि पार्टी को तीसरे आम चुनाव में वैध मतों में से कम से कम ४ प्रतिशत मत मिले हों मतों का हिसाब लगाते समय उन उम्मीदवारों को मिले मत नहीं गिने गए हैं जिन की जमानत जब्त हो गई थी।

सार्वजनिक स्वास्थ्य नर्सों को प्रमाण-पत्र

रोगियों का उपचार करते समय नर्सों को इस प्रकार से काम करना चाहिए कि रोगी व वह स्वयं उस रोग का शिकार न हो। ये शब्द कल यहां स्वास्थ्य मंत्री डा० सुशीला नैयर ने कल यहां लेडी रीडिंग हैल्थ स्कूल में कहे। वे सार्वजनिक स्वास्थ्य नर्सिंग कोर्स में उत्तीर्ण १५ नर्सों को प्रमाण-पत्र दे रही थीं।

स्कूल की सहायता के लिए भारतीय समारोह

लंका में भारतीय उच्चायुक्त की पत्नी श्रीमती बी० के० कपूर ने सात अगस्त को कोलम्बो में एक समारोह में अखिल लंका बौद्ध सम्मेलन की राष्ट्रीय समाज सेवा परिषद को ६,१०० रु० का चैक भेंट किया।

फ्रांस सरकार की छात्रवृत्ति

फ्रांस सरकार की १९६१-६२ को वनविज्ञान की छात्रवृत्ति के लिए श्री एल० के० पांडेय को चुना गया है।

इसका चुनाव केन्द्रीय वैज्ञानिक अनुसन्धान और संस्कृति मन्त्रालय करता है।

रमाबाई रानाडे की स्मृति में डाक-टिकट

बुद्धवार १५, अगस्त, १९६२ को श्रीमती रमाबाई रानाडे की स्मृति में १५ न० पै० के डाक-टिकट जारी किए जाएंगे। स्व० श्रीमती रानाडे ने औरतों के उद्धार आन्दोलन में प्रशंसनीय काम किया। २५ जनवरी, १९६२ को उनकी जन्म शताब्दी मनाई गई थी।

केन्द्रीय समाज कल्याण मण्डल की बैठक

आज यहां श्रीमती दुर्गाबाई देशमुख की अध्यक्षता में केन्द्रीय समाज कल्याण मण्डल की दो दिन की बैठक शुरु हुई।

ग्राहक महानुभाव पत्र व्यवहार तथा शुल्कादि भेजते समय अपनी ग्राहक संख्या अवश्य लिखें, ताकि उत्तर देने में आसानी रहे।

मुद्रक व प्रकाशक श्री संतोषराज जी मन्त्री आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा पंजाब जालन्धर द्वारा वीर मिलाप प्रैस, मिलाप रोड जलन्धर से मुद्रित तथा आर्यजगत कार्यालय महात्मा हंस राज भवन निकट कचहरी जालन्धर शहर से प्रकाशित मालिक—आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा पंजाब जालन्धर

टैलीफोन न० २०५६ [आर्यप्रादेशिक प्रतिनिधि सभा पंजाब जालन्धर का साप्ताहिक मुखपत्र] Regd. No.P.121

एक प्रति का मूल्य १३ नये पैसे — वार्षिक मूल्य ६ रुपये

वर्ष २२ अंक ३१) रविवार १० भाद्रपद २०१९— २६ अगस्त १९६२ दयानन्दाब्द १३८ (तार-प्रादेशिक जालन्धर

वेद सूक्तय:

आ त्वागन् राष्ट्रम्

हे राजन ! राष्ट्र के सब से उच्च अधिकारी ! यह राष्ट्र-देश की सारी बागडोर त्वा-तुझ को तेरे हाथों में आगन-सौंपी गई है। सारे विशाल राज्य का तुझे ही सब से बडा नेता चुना है।

मह वर्चसा उदिहि

इसलिए हे राष्ट्र के पते ! आप वर्चसा अपने तेज के साथ उदिहि-खूब चमके, उन्नति करें। इस आसन पर बैठकर आप का तेज, बल पराक्रम सूर्य के समान चमकता रहे।

प्राङ् विशां पति:

हे राष्ट्र के बड़े नेता ! आप प्राङ्-सब से आगे चलने वाले नेता हो। विशां-सारे प्रजाजनों के पति-पालने वाले स्वामी हो। राजा को पिता कहा है और प्रजा उसकी सन्तान है।

अ थ र्व वे द

वेदामृत

विश्वे यजत्रा अधिवोचतोतये त्रायध्वं नो दुरे वाया अभिहुत:। सत्यया वो देव हूत्या हुवेम शृण्वतो देवा अवसे स्वस्तये ॥ ऋ० १० सू० ६३० मं० ११

अर्थ—हे (विश्वे) सारे (यजत्रा) यज्ञशील लोगो ! आप हमारी (ऊतये) रक्षण रक्षा के लिए (अधिवोचत) उत्तम उपदेश करें और (अभि-हुत) चारों ओर से टेढी चाल से व (दुरे वाया) बुरी अवस्था से (न) हमारा (त्रायध्वम्) रक्षण करो। तथा हे (देवा) देवजनो ! (व) आप (सत्यया) सत्य से व (देव हूत्या) दिव्य वाणी से (हुवेम) बुलावे (शृण्वत) श्रवण करते हुए हम (अवसे) रक्षा के लिए व (स्वस्तये) कल्याण के लिए पुकारें। हे देवो ! आप अपनी सत्य, पवित्र वाणी से हमे बुराईयों से बचाते हुए रक्षण और कल्याण करते रहें। हम आपका सन्देश सुनते रहे।

भाव —हे दिव्य जीवन वाले देवो ! सारे ससार मे परोपकार यज्ञ का कार्य करने वालो ! हम आपके उपदेश को सदा सुनते रहें। आप हमें कुटिल चाल से, टेढ़े विचारों से, पाप में भर देने वाले बुरे विचारों से सदा बचाते रहें। हमारे नेता बनकर हमें धर्म पथ पर ले चले। आपकी वाणी सत्य तथा प्रभाव से भरी हुई है हमारा जीवनरथ कुटिल मार्ग पर असत्य के गढ़े में चलता २ गिर जाता है। उस समय हमारी अवस्था को देखकर देव पुरुषो ! आपके अतिरिक्त और कौन बचाने वाला है। गिरा हुआ गिरे हुए को कैसे उठा सकता है। आप ही सरीखा हमें नेता, दिव्य-जीवन वाला, सत्य व यज्ञ का प्यारा चाहिए। हे दिव्य ज्ञानियो ! हमें सुमार्ग कल्याण पथ पर ले चलो। —सं०

ऋषि दर्शन

परस्परं संगता भवत

हे मनुष्यो ! परस्परं-आपस में सगता-मिले हुए भवत-हो जाओ सदा संगठन और मेल-मिलाप रखो। संगठन जीवन और विगठन मरण है—ऐसा जानो।

सर्व दु:ख नाश: च

इस सगठन से सर्व-सारे दु:ख-दु:खों का नाश-नाश होता है। मिलकर रहने से सारे संकट कट जाते हैं और परस्पर की फूट से दु:ख घिर कर आजाते हैं।

सत्य विद्याद्युत्तम गुणा:

इसी सगठन से सत्य, विद्या, ज्ञान आदि उत्तम गुणा-उत्तम २ गुण आ जाते हैं। जहा मेल है वहा पर उत्तम गुणों का खेल हैं। जहां फूट वहा भूट है।

भा ष्य भू मि का

अधिष्ठाता—संतोषराज मंत्री सभा — सम्पादक: त्रिलोक चन्द्र शास्त्री

अध्यात्मवाद—

ईश्वर की त्रिकालज्ञता

प सत्यप्रियजी सिद्धान्त शिरोमणि दयानन्द ब्रह्ममहाविद्यालय हिसार

वैदिक विचार धारा का अनुगमन करने वाले आज के विद्वत्समाज में यह प्रश्न बहुत उग्ररूप में उभर रहा है कि क्या ईश्वर त्रिकाल दर्शी है ? इस प्रश्न की विवेचना में दो प्रकार की भेद वृत्तियें टकरा रही हैं। उन में से एक पक्षवालों का मन्तव्य है कि परमेश्वर जीवों द्वारा किये जाने वाले समस्त कार्यों को पूर्व से ही जानता है। जब तक कि यह सृष्टि का प्रवाह एवं कर्मचक्र चलता रहेगा, चाहे वह कभी तक हो। अर्थात् भविष्य के प्रत्येक क्षण में प्रत्येक जीव के द्वारा किये जाने वाले हर शुभाशुभ कर्म को परमेश्वर पूर्व से ही जानता है। दूसरे पक्षवालों की मान्यता इससे जरा भिन्न है, उन का मत है कि जीवों द्वारा भविष्य में किये जाने वाले कर्म को परमेश्वर पूर्व से नहीं जानता, प्रत्युत जैसे ही जीव के अन्त करण में कम करने का संकल्प जन्म लेता है, वैसे ही परमेश्वर जान लेता है। अथवा इस पक्ष का एक अश यह भी हो सकता है कि परमेश्वर यह जानता है कि जीव यदि अमुक २ कर्म करेगा तो उसे अमुक २ फल मिलेगा। पूर्व इसके कि इन दोनों पक्षों पर विचार किया जाये। मैं इस युग के अद्भुत वैदिक विद्वान आचार्य दयानन्द सरस्वती के विचार इस विषयक उपस्थित करना आवश्यक समझता हूं, जिस से कि उसके प्रकाश में हम सत्य मार्ग को देख सकें। '(प्रश्न) परमेश्वर त्रिकाल दर्शी है, इस से भविष्यत की बातें जानता है। वह जैसा निश्चय करेगा। इससे जीव स्वतन्त्र नहीं। और जीव को ईश्वर दण्ड भी नहीं दे सकता। क्यों कि जैसा ईश्वर ने अपने ज्ञान से निश्चित किया है, वैसा ही जीव करता है। (उत्तर) ईश्वर को त्रिकाल दर्शी कहना मूर्खता का काम है, क्योंकि जो होकर न रहे। वह भूत काल, और न होके होवे वह भविष्यत काल कहता है। क्या ईश्वर को कोई ज्ञान होके नहीं रहता तथा न होके होता है। इस लिये परमेश्वर का ज्ञान सदा एक रस, अखण्डित वर्तमान रहता है। भूत भविष्यत जीवों के लिये हैं। हां ? जीवों के कर्म की अपेक्षा से त्रिकालज्ञता ईश्वर में है, स्वत नहीं जैसा स्वतन्त्रता से जीव करता है वैसा सर्वज्ञता से ईश्वर जानता है। और जैसा ईश्वर जानता है वैसा जीव करता है। अर्थात भूत भविष्यत वर्तमान के ज्ञान और फल देने में ईश्वर स्वतन्त्र और जीव किञ्चिद वर्तमान और कर्म करने में स्वतन्त्र है। ईश्वर का अनादि ज्ञान होने से जैसा कर्म का ज्ञान है, वैसा ही दण्ड देने का भी ज्ञान अनादि है। दोनों ज्ञान उसके सत्य हैं। क्या कर्मज्ञान सच्चा और दण्ड ज्ञान मिथ्या कभी हो सकता है। इस लिये इस में कोई दोष नहीं आता। सत्यार्थप्रकाश सप्तम समुलास

उपरेक उद्धरण को मनन पूर्वक पढ़ने पर यह बात स्पष्ट हो जाती है कि ईश्वर भविष्यत में जीवों द्वारा किये जाने वाले कर्मों को अभी से नहीं जानता। अर्थात जीव के द्वारा क्रमश किये जाने वाले कर्मों को परमेश्वर नहीं जानता। क्योंकि यदि जानता है तो जीव तो उस के निश्चित जाने हुए के अनुसार कर्म करने में स्वतन्त्र न रह कर उसके उसके शुभाशुभ रूप फल से मुक्त हो जावेगा। इस पर इस मत के अनुगामियों का तर्क होता है कि जैसा जीव करता है, वैसा ही ईश्वर जानता है, अत पराधीन न हो कर कर्म करेगा तथा उसके यथोचित फल को भी भोगेगा। परन्तु उन लोगों के इस हेतु को जब हम न्यायदर्शन के अनुसार परखते हैं तो यह हेतु न होकर हेत्वाभास है। क्यों कि इस के विपरीत यह भी तो कहा जा सकता है कि जैसा ईश्वर जानता है उसी निश्चित क्रमिक ज्ञान से प्रेरित जड़यन्त्र की भांति जीव कार्य करता है। अत उसके फल का भागी भी नहीं रहता। इस प्रकार मुकाबले पर वैसा ही प्रति पक्षी हेतु आजाने से उन लोगों का यह कथन उनकी पुष्टि में हेतु न रहकर प्रकरण सम हेत्वा भास की कोटि में आजाता है तदर्थ उनका कथन मान्य नहीं हो सकता। हां दूसरा पक्ष जिस की पुष्टि महर्षि ने भी अपने उपरोक्त उद्धरण में की है, वह सर्वथा ग्राह्य है। ईश्वर की त्रिकालज्ञता इस बात में नहीं कि जीव भविष्यत में क्रमश कैसे, कौन २ कर्म करते हैं, इस को जानना। प्रत्युत परमेश्वर की त्रिकालज्ञता प्रथम तो इसी में है कि जीव कर्म करेगा। तथा तदनुसार फल भी भोगेगा। पुन कौन २ से कर्म का कैसा २ फल होता है परम न्यायाधीश होने से ईश्वर इस बात को जानता है कि ऐसा कर्म करेगा तो उसका यह फल भोगेगा इत्यादि क्योंकि ईश्वर सर्वज्ञ है, अत. कर्म सम्बन्धी समस्त व्यवस्था को जानता है। यही उसकी त्रिकालज्ञता है। इस के साथ ही जिस विशेष उद्देश्य से यह लेख लिखा गया, मैं अपनी तुच्छ बुद्धि के अनुसार यह मानता हूं कि जीवों ने अब तक - जो भी उल्टे सीधे कर्म किये, कर रहे हैं तथा आगे करेगें परमेश्वर उन सब को जानता है। अर्थात जीव जितने भी सीधे, अच्छे या बुरे कर्म कर सकता है, चाहे संख्या या कोटि की दृष्टि से वे कितने भी हों परमेश्वर उन सब को जानता है। जीव पहले भी उन्हीं परमेश्वर के जाने हुओं में से कर्म करेगें, इस तरह ईश्वर की त्रिकालज्ञता स्वत सिद्ध है।

जैसे कि मान लो मेरे घर में आठ कुर्सियें हैं। मुझ से मिलने कोई व्यक्ति आ जाता है, मैं अपने सेवक को उस के बैठने के लिये कुर्सी लाने को कहता हूं। अब सेवक कौन सी कुर्सी उन आठों में से लाये यह मुझे ज्ञात नहीं है। परन्तु इतना मालूम है कि लायेगा उन्हीं आठों में से जब ले आता है तब जान लेता हूं इसी प्रकार जीव भी परमेश्वर द्वारा ज्ञात सब शुभाशुभ कर्मों में से ही करते हैं। परन्तु परमेश्वर पूर्व से नहीं जानता कि कौन सा कर्म करेगा परन्तु उस से अज्ञात भी नहीं है। क्योंकि उसके जाने हुओं में वह कर्म भी है। अत महर्षि ने अपने लेख में स्पष्ट लिख दिया कि जीवों के कर्मों की अपेक्षा से ईश्वर त्रिकालज्ञ है। मेरी इस मान्यता की पुष्टि में सबसे बड़ा हेतु यह भी है कि वेद जो परमेश्वर का कर्मफल का संविधान है। उस में कहीं भी यह नहीं लिखा कि जीव आगामी सृष्टियों में यों कर्म करेंगे, क्योंकि ऐसा लिखा होता तो वेद भी अनित्य इतिहास की कोटि में आजाता। हां उस में उन सब प्रकार के कर्तव्य कर्मों का विधान एवं अकर्तव्य कर्मों का निषेध तथा इन के फलादि की ओर संकेत मिलता है जो 'कर्म सज्जन तथा दुर्जन कर्तव्य और अकर्तव्य मानकर करते हैं। अर्थात वेद में उन सब कर्मों का वर्णन है जो सदा सब को करने तथा छोड़ने चाहियें, इस दृष्टि से वेद ज्ञान भी तीनों कालों में उपयोगी है।

(क्रमशा),

सम्पादकीय—

आर्य जगत्

वर्ष२२]रविवार १० भाद्रपद २०१८, २६ अगस्त १९६२[अक३४

धर्म न्याय का प्यारा

जन्माष्टमी का पवित्र पर्व प्रतिवर्ष आकर सबको योगेश्वर की याद दिला देता है। सारे प्रेमी अपने २ स्थानों पर इस महापुरुष का यह महान् दिवस मनाते हैं। आर्यसमाज के संस्थापक ने श्री कृष्ण जी को बड़े ही सुन्दर शब्दों से अपने अमर ग्रन्थ सत्यार्थप्रकाश में स्मरण किया है। ऋषि के मन में इस महान् कर्मयोगी के लिए बड़ा ही मान था और सारे लोगों ने इसी ही दृष्टिकोण से उस महात्मा को देखने का आदेश दिया है। लोगों ने इतने बड़े युग पुरुष को भी किस विचार से विचारा, किस भाव से पूजा और किस प्रकार से इनका जीवन लिखा बताया। इसे यहां कहने की आवश्यकता नहीं। इतना कहना ही पर्याप्त है कि भागवतादि पुराणों में पवित्र चरित्र वाले इस महान् योगी पर कौन सा दोष है जो लगाया नहीं गया। पढ़कर आखें और मन दोनों रोने लगते हैं। श्री कृष्ण जी की वीरता, वेद विद्या, राजनीति, मित्रप्रेम, देश भक्ति तथा योगसाधन आदि सारे गुणों को भुला कर उसे रासलीला का प्रेमी नाचने वाला गोपीवल्लभ चोर जार शिरोमणि तथा न जाने क्या २ लिखकर, मान कर किस स्तर पर ला रखा है? इसे देखकर किसे कष्ट नहीं होता—कि अपने ही लोगों ने अपने महापुरुष का इतना घोर अपमान किया है। आर्यसमाज इन सारी असंगत बातों को न मान कर कृष्ण जी के उदात्त जीवन का प्रेमी है।

महात्मा कृष्ण जी के युग का भारत बड़ा ही विषम अवस्था में था। कंस ने राज्यासन के चमकीले स्वार्थ के लिए दूसरों के अतिरिक्त अपनों से भी बड़ा अन्याय किया था। अपनी बहिन देवकी तथा बहनोई वसुदेव तक को जेल में बन्द कर रखा था। अपने राज्य व शक्तिमद से धर्म तथा न्याय को दबाने मे लगा था। भारत में अनेक खण्ड २ राज्य बन गये थे। देश की एकता, अखण्डता सर्वथा समाप्त थी। बाद मे कौरव राज दुष्ट दुर्योधन ने अपना आतक जमा कर पाण्डवों के न्यायपूर्ण राज्यभाग को भी दबा रखा था। उसके पास दादा भीष्म, गुरुद्रोण कृपाचार्य, शकुनि जी जयद्रथ, शल्य आदि थे—इनकी शक्ति का ही उसे अभिमान था। राजपुत्री द्रौपदी का भरी सभामें निम्नस्तर पर अपमान किया था। सब देखते थे पर कोई न बोला—सबके मुख पर ताले लगे थे—कोई धन की चमकीली जजीर में बन्धा था और कोई अन्न से मौन था, कोई भय से भयभीत था। सब ओर त्रास फैला था। धर्म व न्याय दब गया था। बड़ा विषम काल था।

ऐसी अवस्था में श्री कृष्ण क्षेत्र में उतरे। चाहते तो वह भी दूसरों के समान दुर्योधन के साथ रहकर भव्य भवन, अपार धनराशि, जीवन की भौतिक सामग्री तथा मौज के साधन प्राप्त कर सकते थे। पर ऐसा नहीं किया। न्याय और धर्म से इनको अटूट प्रेम था। इसके लिए बडे से बड़ा प्रलोभन भी ठुकरा दिया। उन सबको भी फटकारा जो स्वार्थ के लिए धर्म न्याय को छोड़ बैठे थे। श्री कृष्ण जी ने सारा जीवन अधर्म व अन्याय से कभी भी समझौता नहीं किया। कौरव राज को ठुकरा कर विदुर के घर रहकर पाच पाडवों का साथ देकर न्याय धर्म का परिचय दिया। धर्म स्थापना, बुरों की बुराईयों का नाश, साधु परोपकारियों का साथ देना—उनके जीवन का प्रयोजन था। जीवन पर्यन्त इसे निभाया। धर्म व न्याय की विजय हुई। अन्याय अधर्म हार गया, खण्डित भारत एक सूत्र मे पिरो गया। धर्मपुत्र का राज्य अखण्डित तथा धर्म राज्य बन गया। जन्माष्टमी का पर्व न्याय धर्म का पर्व है। जहा पर धर्म वहा जय होती है। जहा धर्म वहा कृष्ण है।

आज वही अवस्था है। न्याय और धर्म दबता जा रहा है। लोग नानाविध प्रलोभनों, चमकीले पदार्थों, जीवन के भौतिक साधनों मे फंस कर मौन हो गये हैं। दिल से अनुभव करके भी वाणी से चुप है। अन्याय और अधर्म का बोलबाला है। इनसे समझौता किया जा रहा है। अब श्री कृष्ण जी की जन्माष्टमी आ गई है। आर्यो! आओ! इस पवित्र पर्व पर अन्याय अधर्म से कभी समझौता न करने तथा धर्म न्याय से प्रेम करने का व्रत लेवें। यही सच्ची जन्माष्टमी है।

—त्रिलोक चन्द्र

—o—o—

श्रीयुत निरंजनदास जी

का खेदजनक निधन सुनकर किस सज्जन को भारी शोक नहीं होगा। सरकारी उच्च नौकरी से रिटायर होने के बाद आप जालन्धर आकर रहने लगे। अपना शेष जीवन आर्यसमाज की सेवा में लगा देने का निश्चय कर लिया। आर्य प्रादेशिक सभा के मान्य सज्जनों ने आप की इस समाज श्रद्धा को देखकर आपको सभा का कार्यालय मन्त्री बना दिया। पूरा समय देकर सभा में बड़ा ही प्रशंसनीय कार्य करते रहे। हमें सभा के वे सुनहले दिन याद आते है। किन्तु आपके इतनी जल्दी निधन को सुनकर जीवन की अनित्यता सामने आ कर दिल को ठोकर मार देती है। आप बडे सज्जन, परिश्रमी तथा समाज के अनन्य प्रेमी थे। आपके वियोग से सभा, समाज, सारे परिवार को भारी क्षति हुई है। प्रभु से दिवगत आत्मा की शांति की प्रार्थना है। सारे व्याकुल परिवार तथा श्री लाला शंकरदास जी के सारे परिवार से भी हार्दिक समवेदना है।

—o—o—

कलियुगी कृष्णों की बाढ़

आ गई है। पानी की बाढ़ तो सुनते आये हैं, पर आज के समय मे भारत में बनावटी कृष्णों की बाढ आ रही है। कितने समाचार मिले है कि कई स्थानों पर भिन्न २ रसीले तथा कामुक व्यक्ति कृष्ण बनकर अपनी-अपनी गोपियां बनाकर उनके साथ रास-लीला या रातलीला या पता नहीं क्या २ लीला रचाने म लग हैं, न जाने कितने परिवारों की लड़कियां भाग गई हैं। विस्तार स पुन. लिखेंगे। आर्यसमाजें इन २ स्थानो पर इन बनावटी कृष्णों का पोल खोलने में लगजायें—सं०

—o—o—

आदरणीय पाठकगण। आप की सेवा में आचार्य प्रवर ऋषि दयानन्द के ग्रन्थों से चुन गए उनके कुछ विचार भेंट करता हू। आप इन पर विचार कर के देखें कि हमारे व्यक्तिगत तथा राष्ट्रीय जीवन की उन्नति और विकास के लिए यह कितने उपयोगी हैं। कहा तक इन को हमने जीवन का आधार बनाया है। राष्ट्र तथा मानव समाज के भावी भवन का निर्माण इन विचारों को नींव बना कर ही होगा अन्यथा सुख का वृक्ष ससार मे सूख जाएगा। शाति अशान्त हो रही है। विश्व एक विशाल शमशान भूमि बन जाएगा यदि इन विचारों को अपनाया न गया।

स्वदेश प्रेम—जिस देश के पदार्थों से अपना शरीर बना, अब भी पालन होता है और आगे होगा उस की उन्नति तन मन धन से सब जने मिल कर प्रीति से करें।

राज्य का नाश—परमात्मा की सृष्टि मे अभिमानी अन्यायकारी और अविद्वान् लोगों का राज्य बहुत दिन तक नहीं रहता।

किसान और मजदूर—राजाओं के राजा किसान आदि परिश्रम करने वाले हैं और राजा उनका रक्षक है। जो राजा (कर के रूप में) धन लेवे तो भी इस प्रकार से लेवे कि जिस से किसान आदि खाने पीने और धन से रहित हो कर दुःख न पावें।

राष्ट्रपति कैसा हो—जो सब राज सभा सदों मे सर्वोत्तम गुण कर्म स्वभाव युक्त महान् पुरुष हो और सबके प्राणवत पक्षपात रहित, दुष्टों को भस्म करने वाला और शीघ्र ऐश्वर्यकर्त्ता हो उसी को राजा या सभापति (राष्ट्रपति) करो।

निर्वाचित राजा—हे प्रजाजनो! तुम सम्मति कर के सर्वत्र पक्षपात रहित, पूर्ण विद्यायुक्त, सब के मित्र, सभापति राजा को सर्वाधीश मान कर सब भूगोल शत्रु रहित करो।

ऋषि की कल्याणी मधुवाणी

(ले० श्री राजेन्द्र जी, 'जिज्ञासु' M.A धुरी)

एकतंत्र का निषेध—प्रजा को सदा इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि उन के देश का शासन किसी सभा के अधीन हो न कि किसी एक व्यक्ति के।

कार्य विभाजन—जो पुरुष जिस कार्य के योग्य हो उसे वही करने का अधिकार देना चाहिए।

शत्रु के बन्दियों से व्यवहार—जब राज्य अच्छे प्रकार जम जाए और पुन युद्ध की आशका न रहे तो उन को सत्कार पूर्वक छोड कर अपने २ घर या देश को भेज देवे। (पाठकगण नोट करें चीन व अमेरिका मे कोरिया की युद्ध समाप्ति पर बन्दियों के घर भेजने और न भेजने का ही झगड़ा होता रहा है।

सत्याग्रह—सत्य के लिए जेल जाना कोई लज्जा की बात नहीं जहा तक हो सके वहा तक अन्यायकारियों के बल की हानि और न्यायकारियों के बल की उन्नति सदा किया करें। इस काम में चाहे कितना ही दारुण दुःख हो, चाहे प्राण भी भले ही जावे परन्तु इस मनुष्य रूप धर्म से विचलित कभी न होवे। यदि लोग मेरी अगुलिया भी जला दें तो भी कोई चिन्ता नहीं। सत्योपदेश मैं अवश्य करूगा।

विश्व शांति का मूल मन्त्र तथा राष्ट्रीय एवं व्यक्ति गत जीवन की सफलता का रहस्य—सब से प्रीति पूर्वक धर्मानुसार, यथा योग्य बर्तना चाहिए। (पाठकगण आचार शास्त्र के अगणित ग्रन्थ पढ जाए मानवीय आचार निर्माण का इस से सुन्दर सिद्धात मिलना कठिन है। इस ऋषिवाक्य की सुन्दरता शब्दों मे व्यक्त नहीं हो सकती।

राजपुरुष भ्रष्टाचारी न हों—इस पर भी ध्यान रखना चाहिए कि जैसा राजा होता है वैसी ही उसकी प्रजा होती है। इसलिए राजा और राजपुरुषों को अति उचित है कि कभी दुष्टाचार न करें, किन्तु सब दिन धर्म न्याय से बर्त कर उसके सुधार का दृष्टान्त बनें।

दुष्टराजजनों का अपमान करो—जो राज पुरुष इस ससार में उत्तम कार्यों के कर्त्ता हों उन का सब लोग सत्कार करें। और जो दुष्ट कर्म करते हों उन का अपमान करें।

बनों की रक्षा का आदेश—राजा तथा प्रजा के मनुष्यों को चाहिए कि बन आदि के रक्षक मनुष्यों को (वन विभाग के कर्मचारी) अन्नादि पदार्थ दे के वृक्षों और औषधिआदि पदार्थों की उन्नति करें।

व्यापारियों की उन्नति—जो राज पुरुष राजनीति के साथ वैश्यों की उन्नति करें वेही लक्ष्मी को प्राप्त होवें।

शिल्प विद्या की उन्नति—राज पुरुषों को चाहिए कि जैसे परमेश्वर ने सृष्टि मे रचना विशेष दिखाए हैं वैसे शिल्प विद्या से सृष्टि के दृष्टान्त से विशेष रचना किया करें।

प्रजा अनुकूल राजा—राजा को यह अति योग्य है कि जो प्रजा कहे उसे ध्यान से सुने जिस से राजा व प्रजा जनों का विरोध न होवे और प्रतिदिन सुख बढ़े।

राजा कैसा हो—वही राजा होने योग्य है कि जिसको मस्त प्रजाजन स्वीकार करें।

जन कल्याण की श्रेष्ठ भावना—प्रत्येक को अपनी ही उन्नति से सुतुष्ट न रहना चाहिए किन्तु सब की उन्नति में अपनी उन्नति समझनी चाहिए।

आर्यसमाज गुंजोटी आत्मकथन

(पृष्ठ ५ का शेष)

आज का आनंद भवन एकशनसे पहिले मुसलमानों की जामा समजिद था। मुसलमानों के पापों से तंग आकर यह जड़ भवन भी आर्य पुत्रों की पवित्रता त्याग तपस्या और प्रताप से विमोहित होकर एक निराली ईश्वरी लीला से आर्य समाज को प्राप्त हुआ एक्शन से पूर्व दो वर्ष जिस मसजीद में एक वानरों की टोली आयी यह टोली अपने स्वावनुसार मसजीद के जिमारतपर कुदने फांदने लगी जिस से मुसलमान क्रोधित होकर उन्होंने एक वानरको गोली का नशाना बना कर ढेर कर दिया। इस घटना के दूसरे दिन कहा से वानरों की टोली आयी नहीं मालुम। उन टोलियों के वानरों ने अपने हुतात्मा भाई का बदला लेने का काम शुरु कर दिया छोटे मिनारे गिरा दिये मसजिद के कंदील फोड़ दिये, फर्श फाड दिया दो तिन दिनोतक एक ही ऊधम मचा दिया और चले गये। इस घटनाका परिणाम एक्शन के काल में हिंदुओं के दिल पर गहरा हो गया और वह मसजिद गिराने पर तुल गये। गिराने का काम शुरु हुआ एक एक पत्थर कहने लगा कि समजिद नहीं हूं सोमनाथ का मंदिर हूं इस प्रकार भगवान की असीम कृपा से यह बड़ो शानदार इमारत आर्य समाज को प्राप्त हुई।

इस समाज में हर सप्ताह को साप्ताहिक होम, हवन और सत्संग हुआ करता है। दो चार माह में प्रसिद्ध उपदेशकों को द्वारा जनता में प्रचार किया जाता है। आवणी सप्ताह दशहारा पर्व दिवाली का ऋषि बाधोत्सव विशेषता से मनाए जाते हैं।

आर्यसमाज गंजोटीका आत्मकथन

(प्रेषक–श्री भगवान दास जी एम. ए. शोलापुर)

आर्य समाज गुंजोटी की स्थापना सन. १९३७ के सप्टेंबर मास में लगभग २४ वर्ष हुई। उस समय इस प्रान्त में अंधकार की शक्तियों का बोलबाला था। हम लोग एक प्रकार से एक बड़े बन्दी गृह के तीन सफीलों के अन्दर बन्द थे। पहिली सफील अंग्रेजों की दूसरी निजाम सरकारी की और तीसरी पाएगा सरकार की। यहा न शिक्षण की व्यवस्था थी, न सामाजिक जागृति के साधन समाचार पत्र प्राप्त थे और न धर्म प्रचार कर पाते और न सत्सग प्राप्त हो सकता था। मुसलमानों की तबलीग का जोर इतना था कि गाव के गाव मुसलमान बनाए जा रहे थे। हिन्दुओं को हर तरह तग करना, अपमानित करना, भीषण अत्याचारों द्वारा अर्थ जाग्रत हिन्दु युवकों को कुचलना, लूटना दगे करके खून बहाना सरे बाजार से हिन्दु स्त्रियों को भगा ले जाना उनको इस्लामी दीक्षा दे कर उन के जलूस निकालना यह हर फूटे टूटे मुसलमान का हाथ का खेल हो गया था। इस समाज की स्थापना से पूर्व १०।१२ वर्षों से ही हिन्दुओं के देवी देवताओं के उत्सव, जलूस गणेशोत्सव, यात्राएं पूजा-पाठ आदि विलक्षण कानूनों के फर्मानों द्वारा बन्द कर दिए गए थे। हिन्दुओं को अपने खर्च से अपने मठ मन्दिरों और धर्म स्थानों की मरम्मत करना दुश्वार कर दिया गया था। हर गांव मे अशूरखानों, टूटे फूटे कबरों पर मस्जीदों की हुरमत के नाम पर बाजानवाजी बन्द कर के अपशकुन करना रोज का धन्दा हो गया था। इन तमाम बन्दिशों का पूर्ण परिपालन कर के भी कोई कार्यक्रम किया गए तो झूठे चालान पेश कर के सैंकड़ों हिन्दुओं को मुकदमें बाजियों से परेशान कर के जेल में ठोस दिया जाता ताके भविष्य मे कोई हिन्दु ऐसी हिम्मत न करे। दूर क्यों हमारे गुजोटी ही की कुछ सुनिए समाज स्थापना पूर्व ८।१० वर्षों से यहा के तमाम गणेश उत्सव बन्द कर दिए गए थे। मोहरम में हिन्दुओं के घरों में पूजा-पाठ के समय घटी, घडियाल, शख आदि बजाना भी मना कर दिया था। श्रीकृष्ण विद्यालय की इमारत पर पत्थरों का वर्षाव करके शिक्षकों को हर प्रकार की धमकिया दे कर और मार पीट कर के भी विद्यालय को खत्म करने मे कोई कसर उठा न रखी थी। श्रीकृष्ण विद्यालय के सस्थापक श्री निवासराव जी वकील और उनके और एक मित्र रामराव जी रामेश्वरकर वकील इन दोनों महान नेताओं को बर सरे बाजार मुसलमान गुंडों के द्वारा जूतो से पिटवाया गया। यहा की मस्जिदों के नाम पर आधे गाव में शादी ब्याह में बजाए जाने वाले बाजे और यहा तक कि हिन्दु मृतकों की अर्थीयो मे बोले जाने वाले भजन ताल मृदंग भी बन्द कर दिए गए थे सारांश यहा के हिन्दुओं को हिन्दु रह कर जीना मुश्किल कर दिया था ऐसे घोर अन्धकार में आर्य समाज का दिव्य प्रकाश इस प्रान्त में आ पहुचा। आर्य समाज के महान सेनानी, निर्भय कर्मयोगी आर्य प्रतिनिधि सभा हैदराबाद के महामन्त्री भाई बन्सीलाल जी और भाई शामलाल जी ने इस भाग में आर्य ध्वजों को फहराया। अतराफ में आर्य समाजों की स्थापना करके आर्य सघटन को तेज बनाया। इस प्रचार से इधर के नवयुवकों में एक अजब तूफानी शक्ति का संचार हुआ। एक खेडे का प्रचार यशस्वी करने के लिए दस बार ग्रामों के ४००-५०० नवयुवक लाठी हथियारों से लैस हो कर आ धमकते और मुसलमानों के दिल दहल देते थे। ऐसे एक प्रचार के समय ही गुजोटी के एक सूचक श्री वेदप्रकाश ने मौजे उजलब मे आर्य समाज की दीक्षा ली और गुजोटी मे भी उस ने आर्य समाज का चैतन्य भरना शुरु किया परिणाम स्वरूप यहा आर्य समाज की स्थापना हो गयी फिर क्या था यहा के मुसलमानो की माया उनका यह गाव पहिले पाएगा सरकार जिले का स्थान था। गाव के एक चौथाई मुसलमान गुडे और जिले की पूर्ण सरकारी मिशनरी आर्य समाज के प्रचार को कुचलने में लग गई और उस ने आर्य समाज के स्थापना के ३।४ महीने बाद ही गुजोटी मे दिसम्बर१९३७मे योजना बद्ध भीषण दगा करके आर्य नवयुवक श्री वेद प्रकाश की बली ले कर ही दम लिया। वैसे तो उस दगे मे कई नेताओं ने बली दी थी किन्तु मारने वाले से रक्षण कर्ता ईश्वर जबरदस्त होने से यह लोग बार-बार बच गए। दंगे के दिन ऊपर के हिन्दु नेताओं को अमन स्थापित करने के बहाने पाएगा के कलेक्टर ने अपनी कचहरी में इकट्ठा करके मुसलमान दगाइयों को हथियारों से लैस होकर कचहरी की ओर आने का इशारा कर दिया ताकि दगेखोर आते ही इन नेताओं को उन के हवाले करके खत्म करा दिया जाए परन्तु सुदव से इस षड्यन्त्र का सूचना इन हिन्दुओं को हो जाने से वह दंगाई आज से पहिले हो कलेक्टरकी कचहरीसे बाहर निकल गए।

निजाम स्टेट में हुतात्मा वेद प्रकाश का आर्य समाज के वेदी पर पहिला बलिदान होने से अखिल आर्यो जग में गुजोटी एक पवित्र क्षेत्र बन गया। यह बलिदान इतना महान था कि एक वर्ष के अन्दर ही शोलापुर को आर्यो का महासम्मेलन हो कर निजामी अत्याचारों के विरुद्ध हैदराबाद प्रसिद्ध आर्य सत्याग्रह शुरु होकर निजाम को घूटने टेकने पड़े जिस सत्याग्रह मे यहां के नौजवान साठ तक भाग ले कर सफल बनाए। जिस में जेल की यातना से कै कोंडोपन्त माधव राय देश पांडे का स्वर्गवास हुआ। और आगे दस साल के अन्दर निजाम की सत्ता जड से उखड़ कर नामशेष हो गई।

आर्य समाज गुजोटी की स्थापना के बाद ९।१० वर्ष में भारत को स्वतन्त्रता प्राप्त हुई। इन आठ दस वर्षों मे गुजोटी के आर्य समाजियो पर बीसो झूठे मुकदमें चला कर सैकडों आर्य समाजियों को नलदुग की अदालत की हर आठ दस दिनों के पेशी चक्कर लगाने का गोरखधन्दा लगा कर नाक मे दम कर दिया। यहा से नलदग २४।२५ मील है धन्य हैं यहां के आर्य समाजी कि जिन्होंने ४।५ वर्ष तक नलदुर्ग के सैकडों पैदल चक्कर लगा कर भी अपनी मस्ती को कम नहीं होने दिया। हमारे आर्य समाज को प्रारम्भ से यहा के कुशल और साहसी त्यागी नेता मिले जिन के नेतृत्व मे आर्य समाज को नया भारत के स्वतन्त्रता काल तक सुरक्षितता मे आ पहुची इस आर्य समाज की ओर मे कुछ आर्य समाजो को दिल्ली भेज दिया। रजाकार के तौर में एक्शन से पहिले निजाम स्टेट के सब नेता अपना प्रांत छोड़ कर स्वतन्त्र भारत म आश्रय के लिए चले गए परन्तु धन्य है गुजोटी के नेता हाथ पेर जैसे सैकड़ों नवयुवक जिन्होंने गुजोटी ही में ठहरे रहकर ईश्वर के सवरक्षण में अपना दिव्य कर्म किया और गुजोटी के

(शेष पृष्ठ ५ पर)

सदाचार-प्रवेशिका

(लि०—श्री करनैलसिंह 'विद्यार्थी' उपप्रधान आर्ययुवक समाज कादिया)

(गतांक से आगे)

धन्य हों ऐसे महापुरुष तथा धन्य है वह देश जहां ऐसे २ महापुरुष अपने चरित्र को सदाचार को दुनियां के समक्ष रखने वाले हैं। यह है नेत्रों का सदुपयोग तथा दुरुपयोग। इसीलिए ही तो वेद के मन्त्रों द्वारा साधक कहता है कि—

ओ३म् चक्षु चक्षु। अर्थात् हे भगवन् मेरे चक्षु पावन हों, मैं इन का सदुपयोग सौ वर्ष से ज्यादा करता जाऊं क्योंकि 'पश्येम् शरदा शतमदीना।'

सो हमें बापू के दूसरे बन्दर से यह शिक्षा लेनी चाहिए कि हमारे नेत्र बुरे कर्म देखने के लिए बन्द रहें अच्छे तथा पावन कर्मों को देखने में सदा उद्यत रहें।

तीसरे बन्दर से हमें यह शिक्षा लेनी है कि हमारे कान सदा अच्छे शब्दों को, अच्छी वाणी को अच्छे अच्छे वेद मन्त्रों को सुनने में, भगवान के भजन सुनने में सदा उद्यत रहें। वास्तव में देखा जाये तो इन कानों से सुने हुए शब्दों का, वाणी का बहुत प्रभाव निजि जीवन पर पड़ता है और इस के अच्छे अथवा बुरे परिणाम का दर्शक मानव का निजी जीवन होता है। यदि हम अच्छे-अच्छे वेद मन्त्रों को अच्छे २ महापुरुषों के उपदेशों, प्रवचनों को सुनेंगे तो हमारा जीवन वास्तव में ही उन्नति के पथ पर अग्रसर होता जायेगा। हमारे जीवन में उपदेशों का असर जरूर प्रवेश होगा। वेद इसीलिए ही कहता है।

ओ३म् श्रोत्रं श्रोत्रं।

तथा ओ३म् शृणुयाम शरदा शतम्॥

सो वेद कहता है कि हे मानवो तुम अच्छी तरह काफी समय तक सुनते रहो। साधक भी यही प्रार्थना करता है कि हे भगवन मैं अपने कानों से सौ वर्ष तक सुनता रहूं। यह है वेद का सन्देश जो मानव मात्र के लिए भगवान ने दिया है। वेद ज्ञान का भंडार है। इसलिए वेद से इस प्रकार की निकलती हुई शिक्षाओं का आस्वादन प्रत्येक को करना चाहिए।

इसी सदाचार को हम कैसे ग्रहण कर सकते हैं यह भी एक सोचने योग्य वस्तु है। श्रेष्ठ महापुरुषों के गुणों का, आप्तों का, वेद की शिक्षाओं का ग्रहण करना या ग्रहण करने की ओर प्रेरित होना सदाचार में बड़ी सहायता देते हैं। क्योंकि वेद भी यही कहता है कि जैसे महापुरुषों ने अपने जीवन को बनाया उसी प्रकार हे मानवो तुम भी अपना जीवन व्यतीत करो। कहा भी है कि—

यद् देवा अकुर्वन् तत् करवाणि॥
श. प. ब्रा. ११

यह शतपथ ब्राह्मण का वचन है कि 'जैसा देवों ने किया वैसा मैं करूंगा।' वेद में भी एक मन्त्र इस प्रकार आता है कि—

'ओं या मेधां देवगणा पितरश्चोपासते। तया मामद्य मेधाग्ने मेधाविनं कुरु।'

अर्थात् साधक भगवान से प्रार्थना करता है कि हे भगवन मुझे वही मेरे पूर्वजों के (जैसे) गुणों को (बुद्धि) को दें जिस मेधा बुद्धि से वे आपको उपासते थे उसी बुद्धि को कृपा करके मुझे भी दें।

इस प्रकार वेद के कहने का तात्पर्य यह है कि पूर्वजों के गुणों का अनुकरण यदि हम भी करें तो हम भी अपने जीवन को जहां पर सफल करने में उपयुक्त हो सकते हैं वहां पर हम सदाचार का नमूना दूसरों के समक्ष भी रख सकते हैं। सो सिद्ध हुआ कि सदाचारी बनने के लिए महापुरुषों के जीवन का, उनके गुणों का अनुकरण करना परमावश्यक है।

(क्रमशः)

साकार करेंगे

(रचयिता श्री राजेन्द्र जा जिज्ञासु एम० ए० धुरी)

आज धरा का निकले हैं उद्धार करेंगे।
स्वप्न महर्षि का निश्चय ही साकार करेंगे॥
कूट कपट को नहीं कदापि सहन करेंगे।
कुटिल चक्र से काल कराल के नहीं डरेंगे॥
दम्भ दुर्ग पर निर्भय हो कर वार करेंगे।
विश्व विरोधी भले हमारा सारा हो।
संकट में नित जीवन भले हमारा हो॥
प्राण लुटा कर वेद धर्म से प्यार करेंगे।
झंझट और झमेलों से हम क्या घबराएं।
तूफानों से हंसते हंसते हम टकराएं॥
फंसी भंवर में जग की नौका पार करेंगे।
पीड़ित प्राणी व्यकुलता से रोदन करते।
सभ्य कहाने वाले निर्मम शोषण करते॥
दानवदल के दलबल का संहार करेंगे।
स्वप्न ऋषि का निश्चय ही साकार करेंगे॥

आ० स० मंडी (हि० प्र०) का प्रचार कार्य

२१—६—६२ मासिक पारिवारिक सतसंग ला० परमा नन्द जी सहगल के गृह पर हुआ।

२६—६—६२ चार दिन एक संन्यासी बंगाली जी ने आर्यसमाज में कथा की।

२८—६—६२ परिवारिक सतसंग श्री हरदयाल जी के गृह पर हुआ।

१९—७—६२ मासिक पारिवारिक सतसंग श्रीमती द्रौपदी देवी के गृह पर हुआ।

२४—७—६२ से ५—८—६२ आर्यसमाज मन्दिर में रात्री साढ़े आठ बजे से सवा दस बजे तक स्वामी शुद्धानन्द जी और पं० नन्दलाल जी ने वेद उपदेश और सोशल सुधार के गीतों से मण्डी जनता को कृतार्थ किया। —इन्द्रसिंह मन्त्री आर्यसमाज

करनाल अंबाला मंडल का प्रचार कार्य

१६ जुलाई से २ अगस्त तक पं० अमरसिंह, जगतराम व बस्तीराम जी द्वारा आर्यसमाज डेराबसी, हैबतपुर कोट, रामपुर रानी, रत्ते वाली, गढ़ी इन स्थानों पर बड़ी धूमधाम से प्रचार हुआ। इन स्थानों से ६३ रु० वेद प्रचार हेतु धन सभा को भेजा गया।

५ अगस्त से १३ अगस्त तक कक्कड़ माजरा, बुर्ज, बिचपड़ी, बिलास पुरा, कुंजपुरा आर्यसमाजों में बड़ी धूमधाम से वेद प्रचार हुआ। और ७४ रु० धन सभा को वेद प्रचार के लिए भेजा।

नोट—१२ अगस्त को कुंजपुरा ग्राम में चौ० गणेशदास जी के सुपुत्र का नामकरण संस्कार धूमधाम से सम्पन्न हुआ। इस शुभ अवसर पर दो दिन मंडली द्वारा प्रचार हुआ। किराए के अतिरिक्त ३६ रु० प्राप्त हुए। १२ रु० किराया।

—अमरसिंह आर्य

स्वास्थ्य सुधा व्यायाम

(ले०–सि० भूषण प० जयदेव प्रभाकर विद्या वाचस्पति चडीगढ)

व्यायाम प्रत्येक मानव के लिए उतना ही आवश्यक है, जितना कि पौष्टिक एवं सात्विक भोजन। व्यायाम के बिना उत्तम सुन्दरता स्वास्थ्य को प्राप्त करना ऐसा ही है जैसा कि मृगमरीचिका में जल की आशा करना।

आजका नवयुवक सुन्दरता एवं स्वास्थ्य के लिए भटक रहा है। और भटकना भी चाहिए। परन्तु उस वास्तविक एवं प्राकृतिक सौंदर्य की प्राप्ति का उपाय क्या है। इसके बारे में आज का शिक्षित युवक वर्ग प्राय. अनभिज्ञता के अन्दर पड़ा हुआ है। जिस नवयुवक के कन्धों पर स्वतन्त्र भारत के निर्माण का बोझ है, वह नवयुवक हां वही युवक आज युवा अवस्था के अन्दर वृद्ध दिखाई देता है। अठारह एव पच्चीस वर्ष की अवस्था में जबकि नवयुवक के मुखमण्डल से कांति का पुञ्ज निकलना चाहिए था। इस युग में वह कान्तिहीन एवं नीरस मुख-मण्डल लिए दृष्टिगोचर होता है। आजका नवयुवक केवल मात्र हड्डियां का एक ढांचा मात्र रह गया है मानों किसी **Laboratory** में विद्यार्थियों के दिखाने के लिए **sector** (पिंजर) रखा हो। या फिर एक वह वर्ग भी है जो वायु भरे हुए रबड़ के बलंडर की भांति दृष्टिगोचर होता है। एक धक्का दो तो ऐसे गिर पड़ते हैं जैसे बालू की भीत। यही अवस्था नवयुवतियों की है। क्या इसी प्रकार के लेला मजनू इस भारत के भविष्य को सुदृढ बनायेंगे। जो उठते हैं तो चक्कर आते हैं, चलते हैं तो दिल कांपता है और दौड़ते हैं तो **Heart fail** हो जाता है।

मेरे एक निकट मित्र धनि परिवार में जन्म हुआ है जिनका। एक दिन मेरे पास आये और बातों २ में पता चला कि मित्रवर पांच सौ रुपये का सट पहने हुए थे। परन्तु उस पांचसौ रुपये के सूट के नीचे पांच सेर हड्डियों का ढांचा, सूट ऐसे लग रहा था मानो किसी खूंटी के ऊपर टगा हुआ कपड़ा हो। मैंने अपने छोटे भाई देव को उनके पास खड़ा किया जोकि बहुत साधारण कपड़े पहने हुए था जिनका मूल्य पाच रुपये भी नहीं होगा। मैंने अपने मित्र मण्डल से पूछा कि बताओ आपको पांच सौ रुपये के सूटधारी सज्जन अच्छे लगते हैं या पाच रुपये वाले सभी ने उत्तर दिया पाच रुपय वाले। पाठको आप समझ गए होंगे सुन्दरता का कारण था स्वास्थ्य और स्वास्थ्य का कारण था व्यायाम। वास्तव में सुन्दरता और स्वास्थ्य का मूल व्यायाम है।

महर्षि धन्वन्तरी ने व्यायाम की प्रशंसा में उद्घोष करते हुए। सुश्रुत में एक श्लोक के अन्तरगंत इस प्रकार कहा है —

न चास्ति सदृशं तेन किंचित—
स्थौल्यापकर्षकम्।
न च व्यायामिनं मर्त्य मर्द-
न्त्यरयो भयात्॥

स्थूलता को कम करने के लिए व्यायाम से बढ़ कर इस भूतल पर औ॰ कोई औषधि नहीं है। व्यायाम-शील मनुष्य से उसके शत्रु। काम, क्रोध, एवं दुष्ट मनुष्य, सर्वदा भय-भीत रहते हैं।

व्यायाम स्थूल काय मनुष्य को पतला और पतले को उचित स्थूलता प्रदान करता है। जिस प्रकार एक बढ़ई उटपटांग लकड़ी को काट छांट कर सुन्दर बना देता है। ठीक इसी प्रकार व्यायाम भी मनुष्य के स्वास्थ्य का उचित अनु-पात से निर्माण करता है। जिस से वह व्यायाम शील मानव सुन्दर प्रतीत होने लगता है।

सुना जाता है कि राममूर्ति पहलवान शैशवकाल में बहुत ही निर्बलकाय बालक था।

शिक्षा काल में जब स्कूल में पढ़ते थे तो अपने अध्यापक की प्रेरणा से इन्हें व्यायाम का चस्का लगा और अपने युग के सब से अधिक बलशाली मानव हुए जिस का कि पता विदेश में घटित एक घटना से चलता है। कहते हैं जब राममूर्ति पहलवान विदेशों में अपनी शक्ति के प्रदर्शनों से विदेशियों को चकित कर रहे थे। तो किसी विदेशी से यह सहन नहीं हुआ, कि एक परतन्त्र देश का युवक इस प्रकार अपनी शक्ति की धाक बिठाकर चला जावे।

इस तथाकथित मनुष्य ने तत्कालीन यूरोपियन चैम्पीयन पहलवान को राममूर्ति के विरुद्ध खड़ा किया राममूर्ति ने इस विदेशी पहलवान की चिनौती (चैलज) को स्वीकार किया। न कोई कुश्ती हुई न दौड़ें केवल दो दो मुक्के मारने का निर्णय हुआ। प्रथम दो मुक्कों का वार विदेशी पहलवान ने किया, राममूर्ति को थोडी मूर्छा आई परन्तु रैफ्री अभी दस तक गिनती पूरी नहीं कर पाया था कि भारत का शेर राममूर्ति पुन पूर्व अवस्था के अन्दर खड़ा हो गया अब राममूर्ति की (टर्न) बारी थी निष्पक्ष इतिहास प्रणेताओं ने लिखा है, कि राममूर्ति पहलवान ने एक मुक्का ही मारा था कि विदेशी पहलवान धड़ाम से धराशाही हो गया। और फिर उठने का नाम ही नहीं लिया भारत के व्यायाम शील नर पुंगव ने उसे सदैव के लिए गाढ़ी निद्रा में सुला दिया। और गर्जते हुए कहा कि भारत का एक मुक्का विदेशियों पर सदैव के लिए ऋण रहेगा, यह था व्यायाम का अनुपम चमकाए जो राममूर्ति ने यूरोप के अन्दर चमकाया।

भूतकाल की घटनाओं का वर्णन फिर कभी आगामी लेखों के अन्दर करूंगा आज तो मैं पाठक वृन्द को वर्तमान काल की एक घटना लिखकर उपसहार करना चाहता हू।

आज के युग में सुधाकर भीम से कौन परिचित नहीं होगा। जिन्होंने कि आज राममूर्ति के स्थान को ग्रहण किया हुआ है। आप मेरे पास लगभग दो मास रहे। इस दो मास के सहवास में जो कुछ सुना उन सब को वर्णन तो नहीं कर सकता। परन्तु हा अपनी विषय की ओर ध्यान दिलाते हुए यह अवश्य लिख दिये देता हू कि आप श्री सुधाकर भीम भी राममूर्ति की भांति शैशवकाल में बड़े ही निर्बल थे, इस बन्धु ने मुझ को बताया कि व्यायाम वह साधन है जिसके द्वारा कोई भी युवक सबल शक्ति पुञ्ज बन सकता है।

इसलिए स्वास्थ्य और सुन्दरता के आराधक नवयुवको व्यायाम की ओर लोटो।

जीवन का आनन्द लूटना चाहते हो तो व्यायाम की शरण में आओ।

(क्रमश)

रोहतक ज़िला में A.P.P. सभा का ...

रोहतक जिला के चिड़ी गांव में प्रादेशिक सभा के उपदेशक पं० प्रभुदयाल जी आर्य की मण्डली ने २१-६-६२ से २४-६-६२ तक बड़ी लगन और परिश्रम से वेद प्रचार का कार्य सम्पन्न किया जो सब प्रकार से सफल रहा। इस शुभ अवसर पर १८४/- चिड़ी समाज की ओर प्रादेशिक सभा को वेद प्रचारार्थ दान मिला। किराया आदि इसके अतिरिक्त है।

इस कार्य को सफल बनाने का श्रेय श्री मा० रामचन्द्र जी मंत्री आ० स० चिड़ी, म० बनेसिंह जी, चौ० बलवंत सिंह जी को है। प्रभु इन सज्जनों को अधिक शक्ति व प्रेम से काम करने की क्षमता प्रदान करें।

डी. ए. वी. हाई स्कूल मोखरा (रोहतक) में श्री यश जी शिक्षा मंत्री का पदार्पण

८-८-६२ को श्री माननीय यशपाल जी शिक्षा मंत्री पंजाब सरकार डी० ए० वी० हाई स्कूल मोखरा (रोहतक) में पधारे। इस स्वागत अवसर पर पं० प्रभुदयाल जी आर्य उपदेशक A P P सभा ने सुमनोहर प्रशंसनीय भजन बना कर गाया। जिस पर मोखरा स्कूल के मुख्याध्यापक जी ने २०/- सभा को दान दिए।

ग्राम भाली आनन्दपुर (रोहतक) में वेद प्रचार और यज्ञ

उपरोक्त ग्राम में श्री वानप्रस्थी म० भूराराम जी तथा A.P.P. सभा रोहतक मण्डल के कार्यकर्ताओं ने ३०-७-६२ से ३-८-६२ तक वैदिक धर्म का प्रचार व यज्ञ करवाया। तथा लगातार पांच दिन तक दोपहर के समय श्री पं० प्रभुदयाल जी आर्य कथा करते रहे। ग्राम निवासी अत्यन्त प्रभावित हुए। इस शुभ अवसर पर एक सौ यज्ञोपवीत बांटे गए। आर्यसमाज भाली आनन्दपुर की ओर से किराया, दक्षिणा आदि के अतिरिक्त ८०/- अस्सी रुपया आर्य प्रादेशिक सभा को वेद प्रचारार्थ दिया गया।

—मन्त्री आर्यसमाज भाली आनन्दपुर (रोहतक)

बहुअकबरपुरा (रोहतक) में प्रचार व यज्ञ

बहु अकबरपुर के निवासी श्री वानप्रस्थी चौ० रामशरण जी ने मोखरा, मदीना दागी और बहुकला के मध्य अपने खेत में कुआं, एक कमरा और यज्ञशाला स्थापित करके प्रवेश संस्कार कराया और अपने घर तथा भाई भाड़े सिंह जी के घर तीन दिन तक यज्ञ करवाया। यह सारा कार्य वानप्रस्थी भूराराम जी व प० प्रभुदयाल जी की प्रचार मण्डली ने सम्पन्न कराया। प्रभु इन्हें दुगने उत्साह से काम करने की लगन पैदा करें। चौ० रामशरण जी वानप्रस्थी ने इस शुभ मौका पर ४०/- प्रादेशिक सभा को प्रचारार्थ भेंट किए उनका अति धन्यवाद।

प्रभुदयाल आर्य उपदेशक
आर्य प्रादेशिक सभा जालन्धर

आगामी ऋषि मेला

गत वर्षों की भान्ति इस वर्ष भी महर्षि की निर्वाणस्थली अजमेर नगर में ऋषि मेला का आयोजन किया जा रहा है। इस सम्बन्ध में यज्ञ का कार्यक्रम गुरुवार तारीख २५ अक्तूबर ६२ से प्रारम्भ होगा ... अक्तूबर ६२ को होगी। ऋषि मेला का आयोजन मंगलवार और बुधवार तारीख ३० व ३१ अक्तूबर ६२ को रखा ... [illegible] कार्यक्रम आनासागर के सुरम्य तट पर स्थित (स्वामी जी ... [illegible]) में होगा। इस वर्ष आनासागर जल-पूर्ण है अतः वहां का दृश्य शीतल और बड़ा ही सुहावना हो गया है। आगन्तुक सज्जनों के आवास, भोजन आदि की सब व्यवस्था वहीं ऋषि-उद्यान में होगी।

—श्री करण शारदा
संयुक्त मन्त्री
परोपकारिणी सभा

जि० रोहतक के गांव निडाना में वैदिक सप्ताह की धूम।

आर्य समाज गांव निडाना की ओर से ता० ९ से १५-८-६२ तक वैदिक सप्ताह बड़ी धूमधाम से मनाया गया। जिस में आर्य प्रादेशिक सभा के उपदेशक श्री म० भूरा राम वानप्रस्थी श्री पं. प्रभु दयाल जी आर्य प्रभाकर की मण्डली सम्मिलित हुई सात दिन तक प्रातःकाल यज्ञ होता रहा। यज्ञ के पश्चात भजन और भूराराम जी का व्याख्यान नित्य प्रति होता रहा। बाद दोपहर श्री पं. प्रभुदयाल जी ने सत्यार्थ प्रकाश की कथा की। जिस में गांव के सज्जन प्रीति पूर्वक आते रहे। रात्री को मण्डली के भजन होते रहे। यज्ञ का सब कार्य श्री पं. प्रभुदयाल जी व जमादार आनन्द सिंह जी ने करवाया। पचास यज्ञोपवीत भी दिए गए। आर्य समाज निडाना की ओर से आर्य प्रादेशिक सभा को वेद प्रचार में १०१ रुपया और अन्य विभागों में भी उचित धन से सहायता की गई।

इस पवित्र कार्य का प्रभाव गांव के सभी स्त्री पुरुष व बच्चों पर बहुत ही अच्छा रहा। कई एक देवियों ने भी यज्ञोपवीत धारण किए।

मन्त्री आ० समाज निडाना

आर्यसमाज जालन्धर छावनी में

११-८-६२ से १४-८-६२ तक श्री पं० रामपाल भजन मण्डली के भजन रात को ८॥ से १०॥ तक होते रहे। अब वेद प्रचार सप्ताह में श्री पं० निरंजन देव जी की कथा और श्री बलराम जी के भजन प्रति रात्री ८॥ से १०॥ तक २२-८-६२ तक हुआ करेंगे।

—मन्त्री आर्यसमाज

आर्य समाज जालन्धर

श्रद्धानन्द बाजार (अड्डा होशियारपुर) जालन्धर शहर

आज १२-७-६२ को आर्यसमाज अड्डा होशियारपुर जालन्धर में श्रद्धानन्द धर्मार्थ औषधालय का उद्घाटन श्री सेठ शिवचन्द्र जी के कर कमलों द्वारा किया गया।

इस औषधालय का संचालन श्री पं० धर्मपाल जी सि० भूषण रजिस्टर्ड प्रैक्टीशनर करेंगे। इस शुभ अवसर पर दानी महानुभावों ने दिल खोल कर दान देना स्वीकार किया। दानी महानुभावों के नाम आगामी अंक में पढ़े।

मुद्रक व प्रकाशक श्री संतोषराज जी मन्त्री आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा पंजाब जालन्धर द्वारा वीर मिलाप प्रैस, मिलाप रोड जालन्धर से मुद्रित तथा आर्यजगत कार्यालय महात्मा हंस राज भवन निकट कचहरी जालन्धर शहर से प्रकाशित मालिक—आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा पंजाब जालन्धर

टेलीफोन नं० २०४७ [आर्यप्रादेशिक प्रतिनिधि सभा पंजाब जालन्धर का साप्ताहिक मुखपत्र] Regd. No.P.121

एक प्रति का मूल्य १३ नये पैसे — वार्षिक मूल्य ६ रुपये

वर्ष २२ अंक ३५ रविवार १७ भाद्रपद २०१९— २ सितम्बर १९६२ दयानन्दाब्दः १३८ (तार-प्रादेशिक जालन्धर

वेद सूक्तयः

अग्निर्नः शत्रून् प्रत्येतु

अग्निः-हमारा नेता नः-हमारे शत्रून्-शत्रुओं पर प्रति एतु-चढ़ाई करे। जो हमारे नाशक शत्रु हैं-उन पर अग्नि तुल्य आगे चलने वाला तेजस्वी नेता चढ़ाई करके दमन करे।

स सेनां मोहयतु

वह अग्नि शत्रुओं की सेना को मोहयतु-मोह में डाल दे। शत्रुओं को ऐसी अवस्था में डाल दे जिस से वे अपनी सारी शक्ति और चौकड़ी तथा आक्रमण की नीति भूल जायें।

निहस्तांश्च कृणवत्

हमारा वीर अग्नि नेता उन शत्रुओं को निहत्था कर देवे। अपने बल से सारे हमारे शत्रु सैनिकों के हाथों से हथियार छीनकर उन को बिना शस्त्र के बना देवे।

वेदामृत

अपामीवामप विश्वामनाहुतिमपारातिं दुर्विदत्रामघायतः। आरे देवा द्वेषो अस्मद् युयोतनोरु णः शर्म यच्छता स्वस्तये॥ ऋ० १० सू० ६३ मं० १२

अर्थः—हे देवो! आप हम से (अप) दूर कर दो (अमीवाम्) रोगों को तथा (अप) हटा दो (विश्वाम्) सारी (अनाहुति) आहुति न देने की भावना को, यज्ञ परोपकार दान न करने की भावना को दूर करो। और (अप) दूर कर दो (अराति) दान न देने की भावना को (अघायतः) पापकारी लोगों को हम से परे भगा दो। तथा हे देवजनो! आरे-दूर हटा दो (द्वेषः) जो द्वेष करने वाले हैं (अस्मद्) हम से (युयोतन) परे हटा दो। और (उरु) बहुत (नः) हमें (शर्म) सुख (स्वस्तये) कल्याण के लिए (यच्छता) दीजिये। दुष्टों को हम से परे हटा कर हमारा कल्याण करो।

भावार्थः—देवजन, दिव्य पुरुष, परोपकारी मनुष्य कितना बड़ा काम करते हैं। हे ज्ञानी देव पुरुषो! हमें जितने भी बाहिर और अन्दर के रोग लगे हैं, हमारे अन्दर जितने भी अनाहुति-स्वार्थ के बुरे विचार भरे हैं। जितनी भी अदान की बुरी भावनाएं भरी हुई हैं। जो लोग हमें हानि पहुंचाना चाहते हैं। जो हम से घृणा तथा द्वेष करते रहते हैं। चारों ओर से जिन बुरे लोगों, बुरे विचारों तथा बुरे रोगों ने घेर रखा है। हे देव पुरुषो! आप अपने उत्तम उपदेश से उन सारे कुटिल विचारों से हमें बचाते रहें। हमें अपने जीवनदायक उपदेश द्वारा सुख देकर हमारा कल्याण करते रहें ताकि पुनः कभी भी वे रोग, कुभावनाएं, बुराईयां तथा कुटिल जन हमारे पास न आने पावें—सं०

ऋषि दर्शन

नैव कदाचित्सत्यनाशः

कदाचित्-कभी सत्यनाशः-सत्य का नाश न एव-नहीं है। सत्य कभी नष्ट नहीं होता। सच्चाई का नाश कभी नहीं करना चाहिए।

असत्य वृद्धिश्च

असत्य-झूठ की वृद्धि-बढ़ा वा कभी नहीं होता। असत्य संसार में कभी फूलता फलता नहीं है। सदा सत्य की ही वृद्धि व असत्य का नाश होता है।

धर्मस्य विलोपो न

धर्मस्य-धर्म का विलोप-लोप नाश न-नहीं करना चाहिए। जीवन में कभी भी धर्म की हत्या, लोप, त्याग न करे। धर्म का कभी लोप नहीं होता।

आ र्य भू मि का

प्रकाशक—संतोषराम मंत्री सभा

सम्पादकः त्रिलोक चन्द्र शास्त्री

ईश्वर की त्रिकालज्ञता

प सत्यप्रियजी सिद्धान्त शिरोमणि

(गतांक से आगे)

एक आक्षेप जो कि पूर्णमतवादियों द्वारा किया जाता है, वह यह है कि महर्षि ने ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका में लिखा 'ईश्वरोहि त्रिकालदर्शी, सखलु भूत भविष्यद् वर्तमानान कालान जानाति ॥ अर्थात् ईश्वर तीनों कालों की बातें जानता है। अत. जीव जो करेंगे वह अभी से जानता है। इसी प्रकार सत्यार्थ प्रकाश में ईसाइयों के खुदा की आलोचना करते हुए महर्षि लिखते हैं कि क्या खुदा को मालुम नहीं था कि शैतान को पैदा करने से यह भयंकर स्थिति आ जाएगी। उस आलोचना से भी प्रतीत होता है कि महर्षि मानते हैं कि जीवों द्वारा आगे किए किए जाने वाले कर्मों का ज्ञान परमेश्वर को पूर्व से ही होना चाहिए।

महर्षियों के वचनों में क्षुद्र मनुष्यों की नाई परस्पर विरोध नहीं होता। अत इन दोनों बातों का समाधान तो मेरी पूर्व कही हुई बातों से हो जाता है कि परमेश्वर कर्तव्याकर्तव्य रूपेण सब कर्मों को सदा से जानता आया, वही पहले किए तथा भंग किए जाते रहे। अब भी और आगे भी जीव उन्हीं कर्त्तव्यों तथा अकर्त्तव्यों का आचरण या अनाचरण करेंगे यही परमेश्वर की त्रिकालज्ञता है। परमेश्वर को मालुम है कि शैतान को उत्पन्न करने से शैतानी करेगा, चाहे वह किसी तरह की हो, हां हमारी अपेक्षा 'कैसी हो' को वह अधिक जानता है। अत उसे चाहिए था कि शैतान को न बनाता, इस दृष्टि से उस की संगति बैठ जाती है और कोई दोष भी नहीं आता। इस सारे शब्द जाल का अन्तिम अभिप्राय. यही है कि ईश्वर जीवों के कर्त्तव्याकर्त्तव्यकर्म तथा उनके शुभाशुभ फल के ज्ञाता के रूप में त्रिकालज्ञ मानना वैदिक सिद्धान्तानुकूल है। क्योंकि उसका वेदज्ञान भी इस बात का प्रमाण है। इस महान् विवेकगम्य सिद्धान्त के विषय में मैंने अपने स्वल्प विचार व्यक्त किए। आर्यजगत् के विद्वानों से सौहार्द की आशा करता हूं कि यदि वेदपथ से विचलित हूं तो सत्य श्रेष्ठ वेदमार्ग प्रदर्शन कराने की अनुकम्पा करें। इसी आशय से ये कुछ शब्द लिखे हैं।

अध्यात्मवाद—

ईश्वर की सत्ता

(श्री बलदेव राज जी एम. ए. साधु आश्रम होश्यारपुर)

जो उपनिषदों ने जिसे नेति, 'नेति' कह कर पुकारा है इस ईश्वर के जान लेने पर मुण्डकोपनिद् के इस श्लोक 'भिद्यते हृदयग्रन्थि छिद्यन्ते सर्वसंशया। क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन्दृष्टे परावरे ॥' के अनुसार मनुष्य के हृदय की ग्रन्थियां सुलझ जाती हैं, सब प्रकार के संशयों का निवारण हो जाता है और जीव सब प्रकार के बन्धन मुक्त हो जाता है। पाठशाला रूपी प्रकृति में अध्यापक रूपी ईश्वर का छात्र-वृन्द रूपी जीव से घनिष्ठ सम्बन्ध है। 'ओ३म्' बोलते समय अ, उ, म तीन अक्षरों का उच्चारण होता है। 'अ' प्रकृति, 'उ' जीव व 'म' परमात्मा है। 'अ' बोलते समय हमारे दोनों होंठ खुले रहते हैं जिस का अर्थ कि जीव का झुकाव प्रकृति की तरफ जब हो तो वह आन्तरिक आनन्द की ओर तनिक ध्यान नहीं देता है। प्रकृति को ही सर्वस्व मानता है। ईश्वर-सत्ता को भी भूल जाता है। जैसे एक कीड़ा गन्दगी में ही आनन्द समझता था। जब एक कवि ने उसे उठाकर सुगन्धित पुष्प के ऊपर रखा तो सोचने लगा 'आह पहले तो मेरा जीवन ही निरर्थक था। अब आनन्द ही आनन्द है।' इसी प्रकार 'म' का उच्चारण करते समय हमारे दोनों होंठ बन्द रहते हैं जिस का अर्थ कि जीव का झुकाव ईश्वर की ओर इतना अधिक हो जाता है कि वह भी कीड़े की तरह सोचता है प्रकृति का आनन्द तो क्षणभंगुर था, जितना आनन्द इस समय (ईश्वर-भक्ति में) है, उतना पहले कहां था?

कई नास्तिक कहते हैं कि प्रकृति व जीव तो जड़ हैं। ईश्वर जो चेतन है उसकी सत्ता को क्यों मानें। किन्तु प्यारे ! हम प्रतिदिन देखते हैं कि स्कूल में चपड़ासी ठीक समय घण्टी बजाता है। सभी अध्यापक व छात्र ठीक समय पर पाठशाला में पहुंच जाते हैं। और स्वत. ही स्कूल का काम चलता है। कोई न कोई मुख्याध्यापक अथवा कमेटी की सत्ता जरूर है जिसके संकेत पर अपने आप सारा काम चलता है। इसी प्रकार सृष्टि में भी सूर्य निकलता है। सभी प्राणी अपने अपने कामों में व्यस्त हो जाते हैं। कोई न कोई ईश्वर की सत्ता तो अवश्य होगी जिस के संकेत पर सृष्टि पर कार्य नियमित गति से हो रहे हैं।

कहने वाले तो कह देते हैं कि ईश्वर दिखाई नहीं देता है उस की सत्ता को क्यों मानें।

क्या पंखे की पवन को देख सकते हैं ? नहीं पर पंखे को देख सुखी आदमी को तो देख सकते हैं।

(क्रमशः)

मेरी दुर्बलता

(लें०—श्री शरर जी एम. ए. पानीपत)

एक मित्र कल मिले मुझे यूं बोले हंस कर
अरे खाक पाया है तुम ने एम. ए. हो कर

देखो वह लाला जो दसवीं फेल रहा है,
एम, एल, ए, बन धन दौलत में खेल रहा है,

क्या आनन्द आता तुम भी एम. पी. बन पाते
खुद भी करते मौज मित्र की ऐश उड़ाते

अब भी मन में जचे, राजनीति में आओ
प्रजातन्त्र के सदके बिगड़ा भाग्य बनाओ

क्या पाते हो कालिज में मक मार-मार कर आते हो बेसुध से हो कर
और हार कर कितनी पारटियां हैं तुम इक में मिल जाओ,
चढ़ते सूरज की कर लो पूजा सुख पाओ तकरीरें तो कर लेते हो लम्बी-
चौड़ी, गाली देने की भी कला सीख लो थोड़ी फिर देखो व झटता
अनोखा रंग जमाव जय-जय कार करे जनता ताली पीट जाए सुनकर
मैंने कहा मित्रवर बातें भली हैं।

तुम्हें नहीं पर ज्ञात कि मुझ में बड़ी कमी है।
मैं सर्वथा अपरिचित हूं इस धूमधाम का
कार्य मुझे करना है वीर वर जैसे राम का
मेरे सन्मुख वेद प्रचार का क्षेत्र खुला है
कौन चलेगा इस पर कितना मार्ग पड़ा है।

दयानन्द का मिशन सत्य को सत्य बताना, धीर प्रलोभन आपत्ति में कदम बढ़ाना और भुला देना क्या इस से स्वार्थ सधेगा, तेरी राजनीति में मित्रवर नहीं निभेगा, खूब कहा धन दौलत जोड़ आत्मा बेचूं एक जन्म की सोचूं, जन्म-जन्म को दे दूं जग हित छोड़, एक पार्टी से बन्ध जाऊं, अपने और पराए की रेखा खचकाऊं।

[illegible] मित्र-मित्र, यह मुझ से हो न सकेगा.
दयानन्द [illegible] जहां मन के [illegible] है।

सम्पादकीय—

आर्य जगत्

वर्ष२२] रविवार १७ भाद्रपद २०१८, २ सितम्बर १९६२ [अक ३५

अब क्या हो ?

पंजाब सरकार की ओर से पंजाब प्रांत का भाषाई विभाग से दो भागों में विभक्त करने की घोषणा कर दी गई है। दो अक्टूबर से पंजाबी रिजन में जिला स्तर तक सारा काम पंजाबी गुरुमुखी लिपि में आरम्भ हो जायगा और हिन्दी जोन में हिन्दी में। इस प्रकार एक प्रांत में भिन्न-भिन्न भागों में अलग-अलग भाषाएं चलेंगी। इस गम्भीर स्थिति पर विचार करने के लिए जालन्धर में हिन्दी प्रेमियों का एक अधिवेशन भी हो चुका है—जिस में पंजाब की दोनों आर्य प्रादेशिक सभा तथा आर्य प्रतिनिधि सभा के मान्य कुछ वरिष्ठ सज्जन भी शामिल हुए। और प्रतिष्ठित महानुभाव भी भाग लेने आये थे। वहां प्रभावपूर्ण प्रस्ताव भी पारित हुए तथा नौ सितम्बर को अम्बाला मे एक और शानदार अधिवेशन करके इस समस्या पर पूर्ण विचार करने क लिए निर्णय किया गया तथा भारत के प्रधान मन्त्री श्री नेहरू जी से शिष्ट मण्डल भेंट करने का कार्यक्रम भी बनाया गया। हमें सन्तोष है कि इस आवश्यक बात पर पूरा-पूरा विचार करके जनता के सामने कोई न कोई ठोस विचार रखा जा सकेगा। जिसे पंजाबी जोन कहा जाने लगा है—उस में हिन्दुओं का [illegible] से थोड़ा ही अन्तर है। [illegible] प्रतिशत से अधिक ही [illegible] होगा। इनकी संख्या [illegible] भी वहां केवल गुरुमुखी लिपि में पजाबी भाषा को ही सरकारी भाषा घोषित कर देना न्याय संगत कैसे कहा जा सकता है ? इस से तो प्रांत के विभाजन का श्री गणेश सा होने लगा है। आर्य समाज एक उदार विशाल महान् आंदोलन है। इसका अतीत का सारा इतिहास इसका साक्षी है। किन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि न्याय को दबता देख कर यह मौन रह जाये। ऐसे अवसर पर भी आर्यसमाज अपनी बात कह रहा है कि राष्ट्र भाषा हिन्दी को उसका उचित सम्मानपूर्वक स्थान दिया जाये। सरकार की इस घोषणा को क्रियात्मिक रूप देने से आगे चलकर प्रांत के लिए एक नई तथा विभाजन की समस्या खड़ी हो जाएगी। पंजाब के सारे आर्य समाज के वरिष्ठ महानुभावों को इस पर आवश्यक विचार करके कोई न कोई इसका निर्णय करना ही होगा। सारी स्थिति सामने आ गई है। समय बहुत थोड़ा रह गया है। लोगों में इस से निराशा तथा उदासीनता की भावना पैदा होने लगी है। सब की आंखें आर्य-समाज की ओर लगी हैं।

एक बात जनता से भी कहनी है कि उनके दिल में हिन्दी के लिए कितना प्रेम है ? इसके लिए अपना २ दिल टटोलें। विशेष कर पंजाबी जोन के हिन्दुओं के लिए विचारने का प्रश्न है कि हिन्दी-भाषा की प्रगति के लिए वे क्या विशेष प्रेम दिखला रहे हैं। यह छूट तो पंजाब सरकार ने अपनी घोषणा में स्पष्ट कर दी है कि जो भी जिस भाषा में अपना आवेदन पत्र देगा उसका उत्तर उसे उसी में मिलेगा। पजाबी जोन में गुरुमुखी लिपि में पजाबी भाषा मे जिला स्तर तक सारा कार्य होने पर भी यदि कोई हिंदी में अपना आवेदन पत्र देगा तो उसका उत्तर उसे हिंदी में दिया जाएगा। कार्य के दो रूप होते हैं—एक आदोलनात्मक और दूसरा क्रियात्मिक। सरकार के इस अन्याय का विरोध करते हुए हम ने अपनी प्रबल आवाज़ उठानी है। शिष्टमण्डल ले जाकर न्याय के लिए संघर्ष करना है। सारी जनता को साथ लेना है। इस का दूसरा पहलू यह है कि हम अपने सारे कार्य को हिंदी मय कर देवें। यह हिंदी भाषा के प्रति आतरिक प्रेम का परिचय है। जो भी आवेदन पत्र भेजें, लिख—हिन्दी में लिखें। उसका उत्तर हिंदी में मिलेगा। जो कुछ मिले उसे ले लो शेष के लिए अपनी मांग जारी रखो। किन्तु हमें क्या हिन्दी से प्रेम है ? पजाबी जोन के सारे छोटे बड़े नगरों, कस्बों के दुकानों के नामपट्ट आज भी हिन्दी मे नहीं है। अपना कार्य व्यापार क्या हिन्दी में है ? हमारा सारा पत्र व्यवहार अभी तक पता नहीं किस २ में है। हमारे वार्तालाप में क्या कुछ है—कौन नहीं जानता ? हमारा जीवन कितना हिन्दी मय है ? मन को भली प्रकार टटोलना होगा। हिन्दी के प्रति कितना स्वाभिमान है। कई कालेजों, स्कूलों में हिन्दी विषय लेकर पढ़ने वाले विद्यार्थी अब इस लिए हिन्दी छोड़ कर पजाबी ले रहे हैं—क्योंकि ऊपर हिन्दी पेपर देखने वालों का दृष्टि-कोण सम्भवत. वह नहीं जो पंजाबी वालों का है। छात्रों में निराशा छा रही है। बहुत सी ऐसी बातें हैं जिन को जीवनमें क्रियात्मिक रूप देकर हम हिन्दी की प्रगति कर सकते हैं। अतः दोनों पहलुओं को हाथ में लेकर आवाज़ भी उठाते जायें तथा स्वयं भी हिन्दी मय बनें।

—त्रिलोक चन्द्र

सर्वोदय समाज का पग

शराब जीवन के लिए विनाश ही है। इस से व्यक्ति परिवार और सारी जाति जाती रहती है। हमारे नेताओं ने स्वराज्य के मिलने पर शराब बन्दी के बड़े २ दावे किये थे। पर स्थिति वही है। इतने वर्षों के बाद भी जीवन वहीं खड़ा है। पहिले खुले रूप में पीते थे अब गुप्त रूप से पीते तथा सरकारी लाइसेंस लेकर पीते पिलाते हैं। पीने में कोई अन्तर नहीं। आर्य-समाज तो सिद्धांत रूप से ही इसके तथा सारे मादक द्रव्यों के विरुद्ध है। आर्यसमाज में शराबी नहीं रह सकता। इधर सर्वोदय समाज ने भी पंजाब में शराब बन्दी के लिए अपना काम जारी किया हुआ है। प्रस्तावों द्वारा जोर दिया जा रहा है कि सारे प्रांत से शीघ्र ही इस बुराई को समाप्त किया जाये आर्य-समाज सर्वोदय के सज्जनों का इस काम में सहयोगी है। पजाब सरकार को चाहिए कि सारे पजाब में शराब बन्दी करके प्रांत का मान बढाये।

नृत्य से धनसंचय

धन अच्छा है यदि उसके संचय करने के साधन भी ठीक हों। आज पता नहीं क्या प्रथा चल पड़ी है कि यदि किसी काम के लिए पैसा इकट्ठा करना हो तो नाच करा कर धनसंग्रह किया जाता है। छोटे मोटे लोगों तथा संस्थाओं का नाम क्या लेना। अभी भारत के प्रधानमन्त्री सहायता फंड के लिए धन इकट्ठा करना था तो उस के लिए नाच का प्रबन्ध किया गया। सारे समाचार पत्रों मे नाचने वाली लड़कियों का चित्र छपा है—जिसे राष्ट्रपति श्री राधा कृष्णन् तथा

(शेष पृष्ठ ५ पर)

सहयोग

(ले० श्री लाल चन्द्र जी मेरठ छावनी)

प्रत्येक को अपनी ही उन्नति में सन्तुष्ट न रहना चहिये किन्तु सब की उन्नति में अपनी उन्नति समझनी चाहियें यह आर्य समाज का नवा नियम है। यदि भारत के नागरिक इस नियम को अपने जीवन में चरितार्थ करें तो भारत में सभी का जीवन नैतिक होगा और सभी उन्नत होंगे। आस्तिक वृत्ति रखने वाले वेद में पूर्ण आस्था, विश्वास और श्रद्धा रखने वाले चरित्रवान, अतएव उन्नत व्यक्तियों का संगठन ही आर्य समाज हो सकता है। आर्यजनों का वह पुरुषार्थ जो वैदिक जीवन के प्रसार में अग्रसर है, उसी को हम वेद प्रचार का प्रयत्न कह सकते हैं। वेद प्रचार का प्रयत्न जीवन से संबन्ध रखता है। केवल मौखिक व्याख्यानों द्वारा वेद प्रसार सफल नहीं हुआ और न हो सकता है। इन व्याख्यनों और और प्रवचनों ने तो आगे का कार्य करने की केवल पृष्ठ भूमि ही तैयार की है। जहां तक मानव हृदय परिवर्तन का प्रश्न है वह तो आपस के सत्य और प्रेम के व्यवहार पर निर्भर है। आर्यों की सद भावना सत् संकल्प और सत्कर्म, ये तीनों आर्यत्व के प्रसार में लगे, तब ही सफलता संभव है। सद भावना के साथ ही साथ समवेदना, सहानुभूति और सहानुभूति के साथ साथ सक्रिय सहायता की चेष्टा, अवश्य वैदिक धर्म के प्रसार में सफलता लायेगी। आज सब से अधिक आवश्यकता इस बात की है कि हम जनता के हृदय में प्रवेश करें। हम ने लग भग ७० वर्ष तक जनता के मस्तिष्क पर ही प्रभाव डालने का प्रयत्न किया। जनता के हृदय में यदि प्रवेश किया गया होता और जनसाधारण के सुख दुख में सक्रिय सहानुभूति की जाती तो वैदिक धर्म लोक प्रिय होता और इसका श्रेय आर्य समाज को और व्यक्ति रूप से आर्य समाज के सदस्यों को मिलता। हम जनसाधारण को केवल अपनी सहानुभूति ही अपितु सक्रिय सहायता भी दें। जब हम अपने प्यारे वेद के प्रचार में पूरी लग्न से अपने आप को आहुत कर देंगे, तो वेद भगवान हमें ब्रह्मवर्चस देंगे। ब्रह्मवर्चस, वह सद्ज्ञान प्रेम और भगवान की भक्ति सहयोग है जिस में मनुष्य में न केवल तेज और शक्ति ही होती है, वह ज्ञान मय व्यक्ति भावों से जनता जनार्दन की निस्स्वार्थ सेवा कर के प्रसन्न होता है। भक्ति की सक्रिय भावना जन सेवा है, और वह भी इस भाव से कि हम घर घर वासी सब अन्तर्यामी भगवान की ही जन सेवा द्वारा अर्चना कर रहे हैं। यह भावना जब क्रियात्मक रूप धारण कर लेती है तो अदम्य शक्ति जाति में फूट निकलती है और मनुष्यों के हृदयों में प्रेम का स्रोत उमड़ आता है जो उन्हें आनन्द विभोर कर देता है।

धर्म के प्रचार में लग्न और निस्स्वार्थ सेवा की अपेक्षा है। धर्म के प्रसार में सब में आत्मीयता देखने और व्यवहार में लाने की परम आवश्यकता है। धर्म के प्रवर्तक धन की अपीलें नहीं किया करते, धन उन्हें कृतज्ञ जनता स्वयं भेंट करती है। सच्ची तत्परता और पूर्ण विश्वास से तथा श्रद्धा से यदि साधन किये जायें तो साध्य अवश्य साधन-साध्य होता है। समाज में तो निजी स्वार्थ अथवा निजी हित, यह ही समाज शरीर में विष का काम करता है। विषाक्त शरीर टिका नहीं करता। इसी प्रकार अन्दर स्वार्थ रखते हुए, केवल यश के लिए अथवा निभाने मात्र के लिए सेवा करना, मिथ्याचार है। सेवा धर्म बड़ा गहन है। साधु जन ही, वे जन जो तप में पूरे उतर चुके हैं इस में सफल हो सकते हैं।

आर्य समाज में धर्म प्रसार के योग्य व्यक्तियों के ढालने की कला अभी तक न होने के बराबर दीखती है। क्या हम में सब के हृदयों में जनसाधारण के कष्टों को अनुभव करने की सच्ची भावना है? यदि यह समवेदना की भावना जागृत हो जाय तो हम परस्पर एक दूसरे की उन्नति में सहायक होंगे, आजकल के समान बाधक न होंगे। क्या हम हम दूसरे व्यक्ति के दुख को ऐसा अनुभव कर रहे हैं जैसा कि अपने दुख को अनुभव करते हैं? क्या हम दूसरों से वैसा ही व्यवहार करते हैं जैसा कि हम चाहते हैं कि अन्य व्यक्ति हम से करें? क्या हम न करने योग्य बर्ताव तो अन्य व्यक्तियों से नहीं करते? ये प्रश्न प्रत्येक आर्य अपने आप से करे और उसका उत्तर अन्तरात्मा से चाहे। आपस का सहयोग ही सच्ची उन्नति का सच्चा उपाय है।

जिस नर में न निज देशोन्नति का ध्यान है।
नर नहीं नर पिशाच है वह जीवित मसान समान है॥

इलाकाई जबानों की समस्या और उसका विद्वतापूर्ण न्यायोचित सुझाव

श्री जगत रामजो सूद बरेसरा (गढशकर)

उर्दू के लिए शब्द जैसे मैंने किसी महानुभाव के वक्तव्य में पढ़े, वैसे ही रख दिए हैं॥

जिस अंग्रेज की पोलिसी विभक्त डालो, और हकूमत करो कहीं आती रही है वह तो भिन्न २ भाषा भाषी इलाकों की एकता स्थिर रखे रहा, परन्तु अब यह सिलसिला दुरुस्त हो रहा है, और कि इसकी बरकरारी के साधन जो सोचे जा रहे हैं वे पहाड़ पर से नीचे की ओर दौड़ लगाने के समान हैं। एक बार पैर उठाया कि संभलना अपने बस का न रहा। अब तजवीज हो रही है, कि यूनिवर्सिटी पढ़ाई में तीन जबानें अनिवार्य रखी जायें, जिन में एक जबान इलाकाई हो। इस पर श्री साअदी का यह शेर कहना पड़ता है, 'तरसम न रसी बका अबाए इराबी की रह की मीरवी बतुरकिस्तानऽस्त॥ यानी कि ऐ! इरानी मुझे डर है कि तू काबा नहीं पहुंच सकेगा, क्यों कि जिस मार्ग पर तू चल रहा है, वह तो तुर्किस्तान को जा रहा है। सैयद वारिसशाह ने एक स्थान पर हीर से कहलवाया है :—

'अक्क बीज के अम्ब न किने खादे,
असे फरवांह शतूत न लिआइ आए।

ऐसा ही भगवान मसीह के प्रसिद्ध 'पहाड़ पर का उपदेश' में आया है, 'पेड़ अपने फल से पहचाना जाता है, क्योंकि लोग ऊंट कटारा (झाड़ियों) से अंजीर नहीं तोड़ते और न मलैर (झड़बेरी) से अंगूर तोड़ते हैं।' प्राचीनों के सद वचनों और राह अमल का निरादर करके हिन्दी भाषा भाषी दावेदारों पर एक इलाकाई बोली का जबरी लादा सद्भावना का उदाहरण नहीं है। परन्तु इस सलूक की जिम्मेवारी किसी दूसरे पर इतनी नहीं जितनी यहां के हिन्दी भाषा के Advocates पर है जिन्होंने जबान की महत्ता को पीछे डालकर लिपि को आगे रख लिया। गोया कि शरीर को छुपा...

(शेष पृष्ठ ... पर)

"चरित्र का महत्व"

(कु० अरुण जी आर्या प्रभाकर, टोहाना)

धन गया, कुछ नहीं गया, स्वास्थ्य गया, कुछ गया और यदि चरित्र चला गया, तो सर्वस्व चला गया। (Wealth is lost, nothing is lost, health is lost, something is last, Charactar is lost, everything is lost)

रुपया पैसा, धन दौलत, बड़ी वस्तु समझी जाती है। लोग इसकी प्राप्ति के लिए रात दिन जी तोड़ परिश्रम करते हैं। सर्दी हो या गर्मी, धूप हो चाहे वर्षा, किसी की चिन्ता नहीं करते। कड़ाके की सर्दी हो, चिलचिलाती धूप हो, आंधी और पानी थमने का नाम न लेते हो, बिजली कड़क रही हो, बाल बच्चे घर में बीमार पड़े हों तब भी अभागे पेट के लिए घर से बाहर निकल पड़ते है। लेकिन इस में उनका भी क्या दोष? पैसे के बिना कोई भी कार्य सिद्ध नहीं होता। आज मनुष्य की पूछ केवल पैसे से होती है। यह पैसा आज की दुनिया का मूलमन्त्र हो रहा है, इसी के लिए भाई अपने सहोदर भाई की गर्दन पर छुरी फेरने को उद्यत दीख पड़ता है। पैसे के लिए कौन सा दूषित काम नहीं किया जाता। चोरी और ठगी, धोखा और विश्वासघात, छल और कपट गाली गलोज और मारपीट सभी कुछ तो पैसे के लिए होता है।

लेकिन पैसा तभी संचित किया जाता है यदि स्वास्थ्य हो। आज अमीर घरानों का एक मुख्य चिन्ह हो गया है—डाक्टरों का बिल। आज जुकाम है, कल सर्दी, परसों सरदर्द है तो परसों पेट में दर्द है इत्यादि। नित्य कोई न कोई रोग तैयार खड़ा रहता है। ज्यों-ज्यों चिकित्सा की जाती है त्यों-त्यों रोग बढ़ता जाता है।

स्वास्थ्य से पैसा तो उपलब्ध हो सकता है लेकिन पैसे से स्वास्थ्य नहीं। यदि पैसे से स्वास्थ्य मिल जाए तो सब पूंजीपति कभी भी रोग ग्रस्त न हों।

अत पैसे से इसीलिए स्वास्थ्य बड़ा है। क्योंकि स्वास्थ्य अमूल्य धन है। (Health is Wealth).

किन्तु, चरित्र!

चरित्र के सम्मुख स्वास्थ्य भी कुछ नहीं, फिर पैसा तो हाथ की मैल है। पर चरित्र क्या वस्तु है? रक्त पसीना एक करके पैदा किया जाने वाला पैसा और स्वास्थ्य के कठोर नियमों का पालन कर उपलब्ध किया जाने वाला स्वास्थ्य भी जब इसके पासग के बराबर नहीं ठहर सकता तो अवश्य ही यह अमूल्य होगा। वस्तुत बात ही ऐसी है। चरित्र अमूल्य ही है।

संसार के बड़े से बड़े साम्राज्य अधिक से अधिक सम्पत्ति, कोई भी लौकिक वस्तु, फिर उसका चाहे कितना ही मूल्य क्यों न हो, वह भी चरित्र के चरणों पर सहर्ष बलि चढ़ाई जा सकती है। रुपया पैसा रहे या न रहे, स्त्री पुत्र, घर परिवार रहे या न रहे, किन्तु यदि चरित्र धन हमारे पास है तो घोर-विपत्ति भी हमें पलभर को विचलित नहीं कर सकती।

चरित्र में एक नहीं, अनेक बातें हैं। सत्य, अहिंसा, सेवा, उदारता, सहन शीलता, कष्ट-सहिष्णुता, परिश्रमशीलता, नियमितता, नम्रता, प्रेम सद्व्यवहार, मीठी वाणी, ईमानदारी, मितव्ययिता सफाई, सन्तोष, निर्भयता और कार्य निपुणता आदि सभी बातें इसी के अन्तर्गत हैं। हमारा प्रत्येक कार्य, स्वभाव चरित्र में अन्तर्गत हैं।

जब भी हम अपने विचारों को कुमार्ग की ओर जाते हुए देखें तभी उसी क्षण उन्हें सुधारने का प्रयत्न करना चाहिए। कुविचारों को सुधारना ही चरित्रवान् बनने का सर्वश्रेष्ठ मार्ग है। दूसरों में जो गुण और विशेषताएं दीख पड़े, उनको ग्रहण करने का यथासाध्य प्रयत्न करना चाहिए।

हमे अभी से ही, जीवन के इस स्वर्णिम ऊषा काल में ही चरित्रवान् बनने का प्रयत्न करना है। हमारी उन्नति का एकमात्र आधार हमारा चरित्र ही है। चारित्रिक बल के आधार पर मान-धन की प्राप्ति हो सकती है। यदि हमारे चरित्र का अस्तित्व सुदृढ़ और परिपक्व होगा तो भावी पीढ़ी भी हमारे चरण चिन्हों पर चलकर गौरव अनुभव करेगी। और सदा गुणगान करती रहेगी।

(पृष्ठ ३ का शेष)

प्रधानमन्त्री श्री नेहरू जी ने भी देखा है। चित्र में दोनों विद्यमान हैं। ऐसी स्थिति में अन्य संस्थाएं तथा लोग धनसंग्रह के लिए क्या क्या नाच नचायेंगे—क्या कहना? पता नहीं यह क्या हवा चल पड़ी है। पश्चिम की यह धनसंग्रह की परिपाटी भारत में भी आरम्भ हो गई है। इसका जो परिणाम हो रहा है—उसे कौन नहीं जानता। जीवन मर्यादाएं टूट रही हैं। इस दृष्टिकोण को जितनी जल्दी बदला जाये उतना ठीक होगा।

समाजों के वेदसप्ताह

धूमधाम से सम्पन्न हो गए। जम्मू, पुरानी मण्डी आर्यसमाज रेलवे रोड अम्बाला नगर, दयाल पुरा करनाल. खन्ना तथा अन्य समाजों में बड़ा समारोह रहा।

(पृष्ठ ४ का शेष)

कर वे पोशाक को ही सब कुछ समझ बैठे। इस Leadership सदा यही कहा कि अगर हिन्दु पक्ष वाले पंजाबी जबान को अपनी मादरी जबान मान लेवें तो शायद के अकाली Leader ship पंजाबी जबान के लिए देवनागरी लिपि स्वीकार कर लेवें। कोई साठ साल हुए कि देहाती मदरिसों की पढ़ाई समाप्त करके जब अंग्रेजी शिक्षा के लिए हम शहरों में आए, तो हमारे गुरुओं का मन्तव्य तो हमारे सामने यही आया कि हमारी मादरी जबान हिन्दी भाषा है। वही निश्चय, तत्पश्चात साहित्य के पठन-पाठन से दृढ़ होता गया।

इस स्यासी दौर में स्वामी दयानन्द, महात्मा हंसराज और महात्मा मुन्शीराम (स्वामी श्रद्धानन्द) सरीखे धर्म निष्ठ महानुभावों के मन्तव्य का जिक्र तो जङ्गल में कूकना है, जबकि उनके अनुयाई ही आर्य भाषा वाले उनके मन्तव्य को मन-दलन करके एक इलाकाई बोली को स्वीकार करने को तैयार हो गए। अलबत्ता पंजाब केसरी ला० लाजपतराय के स्थाई नाम-लेवाओं की सेवा में अर्ज है, कि गवर्नमैंट कालिज लाहौर की पढ़ाई के दिनों, उनकी बहस, मादरी जबान वाले मसइले पर, अपने प्रोफैसर शमसुलउल्मा मौलाना मुहम्मद हुसैन साहब आजाद से छिड़ी रहती थी। (क्रमश.)

अम्बाला शहर समाज में इस सप्ताह में रहकर तथा समाज के भाई बहिनों का उत्साह देखकर देवियों, बच्चों सज्जनों की श्रद्धा देखकर प्रसन्नता हुई है। यहां समाज की बड़ी २ तथा शानदार संस्थाएं हैं। इस केन्द्र के कार्य से सन्तोष हुआ। यही अवस्था दूसरे स्थानों की है। विस्तार से वो फिर लिखा जावगा। वेदप्रचार के बिना विश्व में शांति नहीं होगी। आर्य-समाजें अपने केन्द्र को दृढ़ करें।

—सम्पादक

ार्य युवक समाज डी. ए. वी. कालेज जालन्धर नगर का द प्रचारार्थ उत्साह पूर्ण कार्य

आर्य युवक समाज डी. ए. वी. ज जालन्धर प्रांत के युवक उन में अपना एक प्रमुख स्थान ता है। गतवर्ष इस समाज ने जेज के अन्तर्गत तथा बाहर बड़ा अभूतपूर्व सेवा कार्य किया। समय इसकी सदस्यों की या ६०० थी। वर्ष पर्यन्त सभी व धूमधाम से मनाए जाते रहे।

इस वर्ष युवकों में प्रारम्भ से बड़ा उत्साह दिखाई देता है। की सख्या ८०० और ६०० के व हो गई है तथा अनुमान है १००० से अधिक सख्या हो गी। कालेज के प्रि० महोदय भीमसेन जी बहल एम. एस. .मी आर्य युवक समाज को सहयोग और उत्साह प्रदान रहे हैं। यज्ञशाला के लिए वर्ष विस्तृत रखे और नई यां भी खरीदी गई हैं। पुस्तका- के लिए लगभग २५० रु की र पुस्तकें भी ले ली गई हैं। तेक सत्सग में १७५ के लगभग स्य बड़े प्रेम और श्रद्धा से स्थित होते हैं। साप्ताहिक संग में और भी अधिक सख्या जाती है। उस दिन युवकों में ाद वितरण का भी प्रवन्ध है।

इस वर्ष का प्रारम्भ श्रावणी से किया गया। जिस में नए चारियों ने यज्ञोपवीत धारण ए। कालेज के प्रि० महोदय वणी पर्व के यजमान थे। समस्त का व्यय तथा प्रसाद वितरण उन्हीं की ओर से किया गया। ान २ पर ओ३म् की पताकाएं हरा रहीं थी। युवक उछलते ते अपने पर्व के प्रबन्ध में जुटे हुए थे। यज्ञशाला (उपासन गृह) युवकों के देदीप्यमान तेजस्वी मुख मण्डल से शोभायमान हो रही थी। प्रत्येक के मस्तक पर लगा हुआ चन्दन भारतीय सस्कृति के प्रतीत हो प्रयत्न सा करता हुआ प्रतीत हो रहा था। युवक बड़े ही भक्तिपूर्ण ढग से वेद मन्त्रों का उच्चारण कर रहे थे। बड़ा ही सुन्दर दृश्य था। पंडित सत्यदेव जी विद्यालकार का प्रवचन और प्रि० बहलजी का ब्रह्मचारियों को आशीर्वाद बड़ा ही अनुकूल, मार्ग दर्शक एवं ज्ञानवर्धक था।

श्रावणी पर्व से ले कर कृष्ण जन्मदिवस तक प्रतिदिन सायकाल संध्योपरान्त युवक समाज के संगठन मन्त्री श्री देवीदयाल जी श्री मद्दयानन्द सरस्वती स्वामी जी द्वारा निर्मित पुस्तक व्यवहारभानु की कथा करते रहे तथा पूजनीय प्रो० वेदी राम जी शर्मा एम. ए. सि. शास्त्री, अध्यक्ष आर्य युवक समाज अपनी ओजस्वी और सुमधुर वाणी में उसकी व्याख्या बड़े सुन्दर ढग से करते रहे। इस कथा का युवकों पर अत्याधिक प्रभाव पड़ा।

२३ अगस्त वीरवार सायकाल ६-३० बजे योगीराज महात्मा कृष्ण जी का जन्मदिवस बड़े समारोह पूर्वक मनाया गया कालेज का मेहरचन्द छात्रावास ओ३म् की पताकाओं से तथा रंग बिरंगियों झंडियों से सजाया गया। भारतीय सस्कृति के प्रतीक योगीराज कृष्ण के प्रति युवकों में कितना उत्साह है यह लिखना सम्भव नहीं। युवक सामुदाय दोनों छात्रावास तथा निकटवर्ती क्षेत्रों से भी उमड़ा चला आ रहा था। स्थानाभाव के होने पर भी छात्रों में संस्था के प्रति प्रेम तथा अनुशासन और शांति दर्शनीय थी। इतनी उपस्थिति होने पर भी प्रो० देवराज जी गुप्त एम. ए. द्वारा योगीराज कृष्ण जी के जीवन के सम्बध मे दिए गया सार गर्भित प्रवचन बड़ी शांति और गंभीरता पूर्वक सुना गया श्री पं. रोशनलाल जी पुरोहित ने अपने रसपूर्ण भजनों से एक नया ही वातावरण उत्पन्न कर दिया।

सभी उपस्थित आर्य सज्जनों में श्री ला० शंकरदास मोहन, श्री राम रतन जी सोन्धी श्री प्रकाशदेव जी बी. ए बी. टी., पण्डित टेक चन्द जी तथा पूज्य श्रीमती प्रि० भीमसेन जी बहल भी उपस्थित थीं। सबने मुक्त-कंठ से युवक समाजों के समारोहों की प्रशंसा की। इस प्रकार आर्य युवक समाज डी ए. वी कालेज जालन्धर ने इस वर्ष वेद प्रचारार्थ कार्य आरम्भ किया है।

जय प्रकाश
'आर्य' प्रचार मन्त्री

प्रादेशिक आर्य युवक संगठन के अध्यक्ष का निर्वाचन

पजाब प्रदेश की समस्त आर्य समाजों तथा युवक समाजों को यह जानकर अत्यन्त प्रसन्नता होगी कि आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा पंजाब की अंतरग सभा दिनांक २१ अगस्त को सर्वसम्मिति से श्री प्रो० वेदीराम जी शर्मा एम. ए. सि. शास्त्री साहित्य रत्न को समस्त पंजाब प्रदेश में युवक संगठन के निर्माण, प्रचार व प्रसार करने के लिए अध्यक्ष निर्वाचित किया गया है। अत. सभी युवक समाजों व आर्य समाजों को उन से सम्पर्क स्थापित कर इस पुनीत कार्य को सफल बनाने मे तन-मन-धन से सहयोग देना चाहिए।

व्यवस्थापक

आर्य युवक समाज डी. ए. वी. कालेज जालन्धर नगर का चुनाव

१. अध्यक्ष—प्रो० वेदी रामजी एम. ए. सि० शास्त्री साहित्य रत्न

२. महामन्त्री—श्री मदनलाल जी चौधरी

३. संगठन मन्त्री—श्री देवी दयाल जी

४. प्रचार मन्त्री—श्री जय प्रकाश जी 'आर्य'

५. पुस्तकाध्यक्ष—श्री रमेश कुमार जी

६. सहपुस्तकाध्यक्ष—श्री अमृत स्वरूप जी, श्री रामकुमार जी

७. कोषाध्यक्ष—श्री अमर चन्द जी

८. संध्या अधिष्ठता—श्री हरीश जी

९. कार्यकर्ता—(मेहर चन्द छात्रावास) १ श्री बिशनलाल जी २. श्री राम कुमार जी ३. श्री अमर चन्द जी ४. श्री जनक राज जी श्री मनोहर लाल जी ६. श्री सतीश जी।

१०. कार्य कर्ता—(लखपत राय छात्रावास) श्री राजेश्वर जी श्री वेद प्रकाश जी श्री किशोरी लाल जी श्री प्रद्युम्न लाल जी श्री कमल जीत जी 'आर्य' श्री लखपत पन्नु जी श्री राम कंवर जी श्री प्रेम भूषण जी श्री रमेश जी चोपड़ा श्री मदन जी श्री विनोदकुमार जी चोपड़ा श्री श्यामलाल जी।

प्रादेशिक सभा द्वारा उत्सवों की धूम

आ० स० पुरानी मंडी जम्मू—में १५ से २२ अगस्त तक वेदसप्ताह धूमधाम से सम्पन्न हुआ। श्रीमान् पं० हरिश्चन्द्र जी शास्त्री और श्री राजपाल जी. श्री मदन मोहन जी चिमटा भजन मण्डली पधारी।

आ० स० अखनूर—में वेद सप्ताह धूमधाम से सम्पन्न हुआ। श्री रामकरण जी, श्री महावीर जी, श्री नत्थूराम जी पधारे।

आ० स० खन्ना—में वेदसप्ताह धूमधाम से सम्पन्न हुआ। श्री हजारी लाल जी पधारे।

आ० स० रेलवे रोड अम्बाला—में वेदसप्ताह धूमधाम से सम्पन्न हुआ। श्री पं० त्रिलोकचन्द्र जी शास्त्री, श्री मेलाराम जी पधारे।

आ० स० दयालपुरा करनाल—में वेदसप्ताह धूमधाम से सम्पन्न हुआ। श्री प० ओमप्रकाश जी, श्री मा० ताराचन्द जी पधारे।

आ० स० माडल टाऊन जमुनानगर—में वेदसप्ताह धूमधाम से सम्पन्न हुआ। श्री अमरसिंह जी, श्री बस्तीराम जी श्री जगतराम जी पधारे।

आ० स० लक्कड़ बाजार शिमला—का उत्सव २१ से २३ सितम्बर को बड़ी धूमधाम से सम्पन्न हो रहा है। सभा की ओर से प० त्रिलोक चन्द्र जी शास्त्री, खुशीराम शर्मा, श्री राजपाल जी, श्री मदनमोहन जी, श्री दुर्गासिंह जी तथा मा० आनन्द स्वामी जी महाराज पधार रहे हैं।

आ० स० माडल टाऊन पानीपत—का उत्सव ७ से ९ सितम्बर को धूमधाम से सम्पन्न हो रहा है। १ सितम्बर से खुशी राम शर्मा की कथा और राजपाल जी मदन मोहन जी के भजन होंगे।

उत्सव पर श्री पं० त्रिलोकचन्द्र जी शास्त्री, मा० ताराचन्द जी, श्री हजारीलाल जी, श्री शमशेर कुमार जी, श्री रामकरण जी की मण्डली। बस्तीराम जी। डी० ए० वी० कालिज के प्रोफेसर महानुभाव पधार रहे हैं।

आ० स० दयालपुरा करनाल—का उत्सव २८ से ३० सितम्बर को धूमधाम से सम्पन्न हो रहा है। सभा की ओर से श्री पं० ओम प्रकाश जी, खुशीराम शर्मा, श्री मेलाराम जी, श्री दुर्गासिंह जी, श्री अमरसिंह जी, अम्बाला, करनाल मंडल पधार रहे हैं।

आ० स० सलोगढ़—का उत्सव ७ से ९ सितम्बर को धूमधाम से सम्पन्न हो रहा है। श्री ओंप्रकाश जी, श्री पं० चन्द्रसेन जी, श्री मेला राम जी, श्री दुर्गासिंह जी, श्री जगतराम जी पधार रहे हैं।

आ० स० कंडाघाट—का उत्सव सलोगढ़ा के बाद सम्पन्न हो रहा है। सलोगढ़ा के महानुभाव पधार रहे हैं।

आ० स० तरनतारन—का उत्सव २१ से २३ सितम्बर को धूमधाम से सम्पन्न हो रहा है। श्री पं० ओंप्रकाश जी, श्री पं० चन्द्र सेन जी, श्री मेलाराम जी, श्री ठा० दुर्गासिंह जी, श्री मा० ताराचन्द जी, श्री हजारी लाल जी पधार रहे हैं।

आ० समाज लांदल—का उत्सव २ से ७ सितम्बर को सम्पन्न हो रहा है। श्री चौ० भूराराम जी, श्री पं० प्रभुदयाल जी मण्डली सहित पधार रहे हैं।

आ० स० गुहाली—का उत्सव ८ से १४ सितम्बर को सम्पन्न हो रहा है। रोहतक के सज्जन पधार रहे हैं।

आ० स० [illegible] श्रीकार—का उत्सव धूमधाम से ३१ अगस्त १—२ सितम्बर को सम्पन्न हो रहा है। २९ अगस्त से पूज्य महात्मा आनन्द स्वामीजी महाराज की कथा होती है।

आ० स० भाली आनन्दपुर—का उत्सव ३ अगस्त तक धूमधाम से सम्पन्न हुआ।

आ० स० मउ अकबरपुर—का उत्सव ४ से ८ अगस्त को धूमधाम से सम्पन्न हुआ।

आ० स० निडाना—का उत्सव ९ से १५ अगस्त को धूमधाम से सम्पन्न हुआ।

आ० स० खरकड़ा—का उत्सव १७ से २३ अगस्त को धूमधाम से सम्पन्न हुआ।

मदीनादागी—का उत्सव २४ से ३० अगस्त को धूमधाम से सम्पन्न हुआ।

रोहतक, संगरूर—के इन उत्सवों पर श्री जमादार भरतसिंह जी, श्री भूराराम जी, श्री प्रभुदयाल जी मंडली सहित पधारे।

आ० स० धर्म शाला (कांगड़ा)—का उत्सव ५ से ७ अक्तूबर को सम्पन्न हो रहा है।

आ० स० मण्डी (हिमाचल)—का उत्सव ११ से १४ अक्तूबर को सम्पन्न हो रहा है।

आ० स० नूरपुर—का उत्सव १९ से २१ अक्तूबर को सम्पन्न हो रहा है।

आ० स० नया बाजार भिवानी—का उत्सव १९ से २१ अक्तूबर को सम्पन्न हो रहा है।

आ० स० टीका नगरोटा—का उत्सव २२ से २४ अक्तूबर को सम्पन्न हो रहा है।

आ० स० गुरदासपुर—का उत्सव २६ से २८ अक्तूबर को सम्पन्न हो रहा है।

आ० स० ८ सैक्टर चंडीगढ़—का उत्सव २६ से २८ अक्तूबर को सम्पन्न हो रहा है।

आ० स० जोगेन्द्र नगर का—उत्सव १५ से २१ को सम्पन्न हो रहा है।

खुशीराम शर्मा
अधिष्ठाता वेद प्रचार
आर्य प्रादेशिक सभा

समाजों से आवश्यक निवेदन

सभी सम्बन्धि आर्य समाजों के अधिकारी महानुभावों से प्रार्थना है कि वेदसप्ताह समाप्त हो चुका है। कृपया वेदप्रचार का धन इस सप्ताह का शीघ्र सभा कार्यालय में भेजने की कृपा करें।

वेद सप्ताह पर वेदप्रचारार्थ सभा को योग देना अत्यावश्यक है।

दूसरे, जिन समाजों की ओर से अभी उत्सवों की तिथियां निश्चय नहीं की गई। वे शीघ्र सभा कार्यालय को उत्सव की तिथियां निश्चय कर भेजने की कृपा करें ताकि प्रबन्ध में सुभीता रहे उत्सव अधिक हैं।

—खुशीराम शर्मा

शोक समाचार

श्रीमान् जियालाल जी आर्य मन्त्री आ० स० अखनूर के सुपुत्र के निधन पर हार्दिक सहवेदना प्रकट करते हैं। और परिवार में प्रभु से मंगल कामना करते हैं।

—खुशीराम शर्मा

आर्य समा[illegible]

२७ ८ ६२

उत्सव के प्रधान पद [illegible] महत्ता पर संक्षिप्त सा भा[illegible] कृष्ण के जीवन के मुख्य प्रद[illegible] संकेत किया। तत्पश्चात् श्री [illegible] विद्वानों के जन्माष्टमी सम्बन्धी [illegible] राम लाल जी तथा देवियों के सुभ [illegible] समाप्त हुई।

वेद सप्ताह की धूम

[illegible] की पूर्णाहुति के पश्चात् [illegible] [illegible]स्टर का गीता की [illegible] पुरोहित ने श्री [illegible] चरण करने का [illegible] म जी आदि [illegible] लाल जी, श्री [illegible] के साथ कार्य वाई

हरिराम मंत्री आर्य समाज

आर्य समाज यमुना नगर

२५-८-६२ से २२-८-६२ तक आर्य समाज यमुना नगर में वेद सप्ताह बड़ी धूम धाम से मनाया गया रहा कथन तथा जन्मा अष्टमी का त्यौहार भी मनाया गया। प्रचार से जनता खूब लाभ उठाती रही। निवेदक कविराज राम सिंह वैद्य।

सोलापुर में महात्मा आनन्द स्वामी सरस्वती

महात्मा आनन्द स्वामी सरस्वती जी १९३१ के आर्य समाज सत्याग्रह के पश्चात् १९४८ में सोलापुर पधारे थे। उस समय आर्य समाज के अनेकों वीर निजाम तथा रजाकारों के अत्याचारों से तंग आकर सोलापुर तथा अन्य नगरों में शरणार्थी बनकर रह रहे थे उनके कष्ट के निवारण तथा निजाम के अत्याचारों का ठीक अनुमान लगाने के लिए स्वामी जी पधारे थे। उनके सोलापुर में उस समय के भाषणों की गूंज अभी ताजा थी इसी लिए ४ अगस्त सायंकाल को स्टेशन पर सैंकड़ों नर-नारी उनके तीसरी बार सोलापुर पधारने पर उपस्थित थे। भीड़ इतनी थी कि उनके स्वागत के समय का निश्चय किया गया कार्यक्रम न चल पाया तथा जनता की भीड़ में से निकाल कर कार में बिठाकर उन को वहां से ले जाना पड़ा।

दो दिन आर्य समाज में कार्यक्रम हुआ तथा महेश्वरी भवन और दयानन्द कालेज में भाषण हुए। नगर के प्रमुख सज्जनों के साथ पार्टी दी गई। भाषणों की भीड़ तथा विद्यार्थियों का स्वामी जी से विशेष प्रेम प्रदर्शन उल्लेखनीय है। न्याय मूर्ति रानाडे (जिन्हों ने स्वामी दयानन्द जी महाराज को पूना में स्थान दिया था) की जन्म भूमि करकम्ब में दयानन्द कालेज कमेटी की ओर से चल रहे स्कूल में भी स्वामी जी का भाषण हुआ। बहुत भारी जनता ने लाभ उठाया याद रहे कि दयानन्द कालेज कमेटी ने इस दूर गाव में ७५००० रुपये की बड़ी रकम से शिक्षण प्रसार कार्य प्रारम्भ किया हुआ है। स्वामी जी के सोलापुर तथा करकम्ब के भाषणों से मानवता तथा भ्रातृभाव का प्रचार तो हुआ ही अर्थात आर्य समाज तथा आर्य संस्थाओं का मान तथा प्रतिष्ठा बहुत बढ़ी। कई सज्जन तो ये कहते हुए सुने गए कि आर्य समाज के उच्चतम सिद्धांतों का दिग्दर्शन उनको जीवन द्वारा प्रथम बार ही हुआ। ७ अगस्त को पूज्य स्वामी जी महाराज के प्रस्थान के समय का दृश्य तो अपूर्व था जब सैंकड़ों नर-नारी स्टेशन पर उनको छोड़ने आये देखकर मन भर आया।

यही नहीं उनके भाषणों में भारी संख्या में सनातनी विद्वान पण्डित, समाज, ईसाई तथा पादरी, मुसलमान, पारसी सब आते रहे। जनता को अपनी मिठास सीधे और गम्भीर विचारों तथा अपूर्व आकर्षण बल से पूज्य स्वामी जी ने मुग्ध कर दिया कई नवयुवकों के [illegible] ।

वैदिक कन्या विद्यालय, [illegible] आदर्शनगर के समाचार

दिनांक १४ व १५ अगस्त १९६२ को वैदिक कन्या विद्यालय का वार्षिक उत्सव बड़ी धूम-धाम से सम्पन्न हुआ।

१४ अगस्त को सायंकाल ५ से ६ बजे तक श्री [illegible] कार्यकर्त्री [illegible] प्रतिनिधि सभा राजस्थान की अध्यक्षता में वैदिक कन्या विद्यालय की छात्राओं के अत्यधिक मनोरंजक खेल [illegible] [illegible]

[illegible] ६ बजे डा० [illegible] दयाल रिटायर्ड डा[illegible] उत्तर प्रदेश के कर कमलों द्वारा विद्यालय की कला प्रदर्शनी का उद्घाटन किया गया। कन्याओं द्वारा बनाई गई विविध हस्तकलाओं के सौंदर्य को देखकर उपस्थित दर्शकों पर बहुत अधिक प्रभाव पड़ा।

१५ अगस्त को सायंकाल ५॥ बजे से ६ बजे तक स्वतंत्रता पर्व एवं विद्यालय का वार्षिकोत्सव बड़े समारोह से मनाया गया तथा ६ से ६॥ तक बहिन डा० रामप्यारी जी शास्त्री द्वारा वैदिक कन्या विद्यालय की आर्थिक सहायता के लिये अपील की गई। इस अवसर पर तीन हजार पाच सौ रुपये से अधिक धन संग्रह हुआ।—मन्त्री वैदिक कन्या विद्यालय

बाल दिवस

१२ अगस्त सन् ११६२ ई० को आर्य समाज माटुंगा द्वारा आयोजित बाल दिवस के अवसर पर बम्बई के नगर एवं उपनगर के लगभग दो सहस्र बालकोंने भाग लिया। स्वतन्त्र रूप से भाग लेने वाले बालकों के अतिरिक्त आर्य समाज बम्बई, कोर्ट, [illegible], चेम्बूर तथा गोरेगाव के कुछ चुने हुए बालकोंने भी बाल मेले में सक्रिय भाग लिया।

सर्व प्रथम आर्य समाज माटुंगा द्वारा संचालित दयानन्द बालक विद्यालय के बालकों द्वारा ईश वन्दना से कार्यारम्भ हुआ। तत्पश्चात् छोटे बच्चों के कार्यक्रम एवं श्री दयानन्द [illegible] बालिका विद्यालय के बालकों के नयनाभिराम विविध मनोरंजन कार्यक्रम प्रस्तुत किए गए।

उत्सव कार्यसंचालन आर्यसमाज माटुंगा के मंत्री श्री ओंकार नाथ जी ने तथा अध्यक्षता श्री राजा गोविंद [illegible] ने की थी। इनके अतिरिक्त हिन्दी के मूर्धन्य कहानीकार श्री पं० सुदर्शन जी, नवनीत के संपादक श्री पं० विद्यालंकार जी तथा श्री [illegible] जी निर्णायक पद पर आसीन थे।

[illegible] की [illegible] आर्य समाज माटुंगा के प्रधान श्री प्रताप सिंह सूर जी के बालकों को शुभ संदेश एवं आशीर्वाद के द्वारा हुई। उन्होंने पचास रुपये पुरस्कार स्वरूप भी बालकों को प्रदान किये। अन्त में आर्य समाज माटुंगा के मन्त्री श्री ओंकार नाथ जी ने सब को धन्यवाद दिया और मिष्ठान्न वितरण के पश्चात् मेला समाप्त हुआ।

बाढ़ में वेद सप्ताह का अपूर्व आयोजन

आर्य समाज एवं महिला आर्य समाज, बाढ़ के तत्वावधान में ता० १४-८-६२ से लगातार २२-८-६२ तक वेद सप्ताह का अपूर्व आयोजन किया गया। इस अवसर पर पं. [illegible] शर्मा 'राजमूर्ति' धर्मोपदेशक पधारे हुए थे। उनका [illegible] एवं उपदेशामृत [illegible] होता रहा। श्री देवेन्द्र कुमार, श्री पं. वासुदेव जी शास्त्री, आदि महानुभावों के श्री कृष्ण जी के चरित्र पर विद्वता पूर्ण भाषण हुए। इस सारे कार्य का सेहरा श्री राम [illegible] जी तथा श्री [illegible] जी व समाज के उत्साही कार्यकर्ताओं के सिर पर है।

—[illegible] प्रसाद मन्त्री आर्य समाज बाढ़।

मुद्रक व प्रकाशक श्री संतोषराम जी मन्त्री आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा पंजाब जालन्धर द्वारा वीर मिलाप प्रैस, मिलाप रोड जालन्धर में मुद्रित तथा आर्यजगत कार्यालय महात्मा हंस राज भवन निकट कचहरी जालन्धर शहर से प्रकाशित किया—आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा पंजाब [illegible]

रजिस्टर्ड नं० २०५६ [आर्यप्रादेशिक प्रतिनिधि सभा पंजाब जालन्धर का साप्ताहिक मुखपत्र] Regd 01.121

एक प्रति का मूल्य १३ नये पैसे   वार्षिक मूल्य ६ रुपये

वर्ष २२ अंक ३६ रविवार २४ भाद्रपद २०१९— ९ सितम्बर १९६२ दयानन्दाब्द १३८ (तार-प्रादेशिक जालन्धर

वेद सूक्तय:

यूयम् उग्रा मरुतः

हे मरुत-सेना के सैनिको! यूयम तुम लोग उग्रा-बड़े वीर और उग्र बलशाली हो। राष्ट्र के रक्षक सैनिको को वीरता का उत्साह देना चाहिए। वे वीर हों। उनकी वीरता पर सब को मान होता है।

अभिप्रेत मृणत सहध्वम्

हे वीरो! उन शत्रुओं पर अभि-प्रेत-चढ़ाई कर दो, मृणत-उनको मारो तथा यदि वे प्रहार या आक्र-मण करें तो सहध्वम्-सहन करो। वेद शत्रु पर प्रहार करने का आदेश देता है।

वज्रः प्रमृणन्नेतु शत्रून्

हे वीर! तेरा वज्र शत्रुओं को प्रमृणन-मारता हुआ एतु-आगे बढ़ता जाये। वीर नायक अपने वज्र शस्त्र से रिपुदल को मारता भगाता जावे।

अथर्ववेद

वेदामृत

अरिष्टः स मर्त्तो विश्व एधते प्र प्रजाभिर्जायते धर्मणस्परि।
यमादित्यासो नयथा सुनीतिभिरति विश्वानि दुरिता स्वस्तये।

ऋ० मं० १० सू० ६३ मं० १३

अर्थ—(स) वह (अरिष्ट) स्वस्थ व हिंसारहित होकर (विश्व) संसार व जीवन में (मर्त्त) मनुष्य (एधते) बढ़ता है। (प्रजाभि) पुत्रादि प्रजा से (धर्मण) धर्म कार्यों मे (जायते) उन्नति करता है। हे (आदित्यास) तेजस्वी विद्वानो (यम) जिस को (नयथा) ले जाते हो (सुनीतिभि) अच्छी नीतियों उपदेशों से (विश्वानि) सारे (दुरिता) दुष्ट विचारों, बुरे मार्गो से उसे पार पहुंचा देते हो। जिस के आप अगुवा बनते हो उसे सब दुःखो से परे कर देते हो।

भावार्थ—विश्व में प्रत्येक व्यक्ति उन्नति, सुख, शान्ति चाहता है। दुःखों से दूर होना चाहता है। इस का क्या साधन है? वेद का कितना सुन्दर उपदेश है कि वही मनुष्य स्वास्थ्य को पाता है, वही सुखी हो जाता है तथा इस संसार में और अपने जीवन परिवार मे वही सदा बढ़ता जाता है—जिस के जीवन को चलाने वाले नेता स्वयं चमकने वाले, अज्ञान के अन्धकार को दूर करने वाले सूर्य के समान बनकर अपने ज्ञान-उपदेश के द्वारा सुपथ पर ले चलते हैं ऐसे उत्तम देवपुरुषों को अपना नेता मानकर उनके बताये उपदेश के अनुसार चलने वाला व्यक्ति सदा सुखी रहता है, विपत्तियों से पार हो जाता है, हर विचार मे वृद्धि पाता है, सारे दुःखों को पार कर लेता है। ऊंचे जीवन का बन जाता है—सं०

ऋषि दर्शन

ब्रह्म सर्वदैवोपासनीयम्

ब्रह्म-परमेश्वर की सर्वदा-सदा एव-ही उपासनीयम्-उपासना करनी चाहिए। सदा उसी भगवान की पूजा उपासना आराधना ही करनी चाहिए

सत्यमेव वक्तव्यम्

सदा सत्य एव वक्तव्यम्-बोलना चाहिए। प्रत्येक अवस्था मे सत्य ही बोले। आपत्ति-विपत्ति मे, बड़े प्रलोभनो मे भी सत्य का सहारा न त्यागे। सत्य के प्रेमी बने।

इष्टं ब्रह्मोपासनम्

ब्रह्म की उपासना, भगवान की भक्ति को 'इष्ट' कहा गया है। वैसे तो अनेक पदार्थ जीवन मे इष्ट व प्यारे होते हैं पर ब्रह्म का उपासन सब से प्यारा है।

भाष्य भूमिका

अधिष्ठाता—संतोषराज मंत्री सभा   सम्पादकः त्रिलोक चन्द्र शास्त्री

अध्यात्म वाद

ईश्वर की सत्ता

(ले० श्री बलदेव राज एम. ए. साधु आश्रम होशियारपुर)

(गतांक से आगे)

कहने वाले तो कह देते हैं कि ईश्वर दिखाई नहीं देता है उस की सत्ता को क्यों मानें । क्या पंखे की पवन को देख सकते हैं ? नहीं पर पंखे को देख सकते हैं । सुखी आदमी को तो देख सकते हैं । किंतु आप उनके दुःख-सुख को देख सकते हैं ? आप विचार-वान् व्यक्ति को तो देख हैं, उसके विचारों को नहीं देख सक्ते । किन्तु इन सभी चीजों की सत्ता से भी इन्कार नहीं किया जा सकता यद्यपि हवा, दुःख-सुख, सर्दी-गर्मी आदि को हम देख नहीं सकते केवल अनुभव कर सकते हैं । अरे नास्तिको । कई बार तो प्रत्यक्ष वस्तुएं भी दिखाई नहीं देतीं उस परोक्ष सत्ता ईश्वर का तो कहना ही क्या । आप अपनी ही रीढ़ की हड्डी को, आंखों में डाले हुए सुर्मे को और माथे में लगाए हुए तिलक को अत्यन्त निकट होने के कारण प्रत्यक्ष होते हुए भी नहीं देख सकते । हां । दर्पण से सुर्मा व तिलक देखा जा सकता है । ठीक ईश्वर भी हमारे अत्यन्त निकट है । हमारे दिल में ही है ।

अत्यन्त निकट ईश्वर को भी ज्ञान रूपी शीशे से देखा जा सकता है । कोई वस्तु अत्यन्त निकट हो तो वह प्रत्यक्ष होते हुए भी दिखाई नहीं देती । जैसे एक पक्षी हमारी आंखों के सामने दूर, आकाश में उड़ जाता है, तो हम नहीं देख सकते । पण्डित नेहरू दूर हैं उनको नहीं देख सकते । किन्तु उनकी सत्ता से भी इन्कार नहीं किया जा सकता है । ठीक इसी प्रकार यदि हमारा अपना ही मन ईश्वर से कोसों दूर हो तो भला बताइये उसको कैसे देखा जा सकता है । कोई वस्तु दूसरी वस्तु में मिला दी जाए तो भी वह दिखाई नहीं देगी । जैसे शिकंजवी बनाते समय पानी में जब आप खांड डालकर निम्बू निचोड देते हैं तो बाद में आप न ही निम्बू को न ही खाँड को देख सकते हैं । केवल पानी ही पानी दिखाई देता है । इसी प्रकार परमात्मा भी प्रकृति के कण २ में सर्वव्यापक है अर्थात् समाया है । किंतु उसको अलग कर के खांड निम्बू की तरह नहीं दिखा सकते हैं । अगर आंखों के सामने पर्दा हो तो प्रत्यक्ष वस्तु दिखाई नहीं देती । जैसे रंगमञ्च पर पर्दा गिरने से हम नाटक के पात्रों को नहीं देख सकते हैं किंतु उनकी सत्ता से भी इन्कार नहीं कर सकते । ठीक दूसरी आंखों के सामने अज्ञानता का पर्दा होने से हम उस ईश्वर का दर्शन नहीं कर सकते हैं । कोई चीज दबी हो तो उसको भी नहीं देख सकते हैं । जैसे मृतक के शरीर को दबा दें तो हम उसे नहीं देख सकते हैं । इसी प्रकार सांसारिक-चिंताओं के भार के कारण दबे रहने के कारण हम ईश्वर को नहीं देख हैं किंतु ईश्वर की सत्ता का अनुभव किया जा सकता है ।

इतना ही नहीं, एक ही मनुष्य के दो बच्चों में से एक काला दूसरा गोरा, एक कमजोर, दूसरा बलवान, एक बदसूरत, दूसरा खूबसूरत हो सकता है । एक ही अध्यापक के शिष्यों में से एक शिष्य शून्य अंक लेकर फेल हो सकता है और दूसरा विश्वविद्यालय में सर्व-प्रथम आ सकता है । दो मित्रों में से एक मित्र थोड़ा सा परिश्रम करके भी उत्तीर्ण हो सकता है दूसरा बेचारा दिन-रात सख्त मेहनत करके भी अनुत्तीर्ण हो सकता है । कोई न कोई ईश्वर की सत्ता जरूर होगी जिसके कारण एक कोटि के दो व्यक्तियों में महान् अन्तर है ।

स्वामी दयानन्द जी सत्यार्थ प्रकाश में सत्य व असत्य का निर्णय करने की पांच प्रकार की परीक्षाएं देते हैं । उदाहरण के लिए एक परीक्षा है कि आत्मा के अनुकूल सत्य और आत्मा के प्रतिकूल असत्य मानो । आत्मा का आहार मोक्ष व परमानन्द है । सांसारिक आनन्द तो क्षणभगुर है । जैसे स्वप्न में आदमी अनेक प्रकार के आनन्द लूटता है, जब उसकी आंख खुलती है तो सोचता है 'हां स्वप्न का आनन्द तो नकली था, असली आनन्द तो अब है' इसी प्रकार आत्मा-परमात्मा का सम्मिलन होने पर जब ज्ञान-चक्षु खुलते हैं तो आदमी सोचता है 'सांसारिक आनन्द तो नकली था, आत्मा तो परमानन्द (असली आनन्द) से ही तृप्त हुई है' अत. ईश्वर सत्ता जरूर होगी जिसके कारण परमानन्द के लिए आत्मा तड़पती है । इतना ही नहीं जब मन बुराई की ओर जाता है तो आत्मग्लानि होती है । आत्मा पुकार २ कर कहती है 'रे पापी मन ! ईश्वर तुम्हें बुराई का अवश्य फल देगा ।'

इसी प्रकार पांचवीं परीक्षा में स्वामी दयानन्द जी ने अनुमान, उपमान, शब्द, ऐतिह्य आदि आठ प्रमाणों को लिया है । उदाहरण के के लिए एक दो ही प्रमाण पर्याप्त हैं । अनुमान के द्वारा बिना देखी हुई वस्तु के सम्बन्ध में भी बताया जा सकता है, कि उसका स्वरूप कैसा होगा । जैसे किसी का एक बार ऊंट खोया गया । एक महात्मा ने आकर पूछा, 'क्या उस पर कनक लादी थी ? क्या ऊंट एक टांग से लंगड़ा था ? ऊंट वाले ने कहा 'हां महात्मा जी । कहीं देखा ऊंट था । कृपा करके बताइए आपने कहां देखा है' महात्मा बोले 'अरे ! मैंने तो ऊंट देखा ही नहीं है' अनुमान द्वारा ही बताया है क्यों कि इस स्थान पर जहां तूने ऊंट बांधा था तीन टांगों के चिन्ह हैं, इस लिए एक टांग से लंगड़ा होगा । इस स्थान पर कनक के दाने बिखरे हैं, इस लिए मैंने अनुमान लगाया कि उस पर कनक लादी होगी ।' इसी प्रकार जब हम विशालकाय वृक्ष को देखते हैं तो अनुमान के द्वारा सोचते हैं कि कोई न कोई किसान जरूर होगा जिसने भूमि में बीज डाला होगा जिस से इतना वृक्ष बना है । क्यों कि कारण के बिना कार्य नहीं हो सकता है । इसी प्रकार कोई न कोई ईश्वर की सत्ता जरूर होगी जिसने सृष्टि का निर्माण किया है ।

उपमान के द्वारा भी बिना देखी हुई वस्तु को पहचाना जा सकता है । जैसे कोई विद्यार्थी हमारे आचार्य जी को मिलना चाहता है । तो उस विद्यार्थी को उपमान के द्वारा बताया जा सकता है कि आचार्य जी का इतना कद, इस प्रकार का वेष और इस प्रकारकी आकृति है तो विद्यार्थी आसानी से आचार्य जी को पहचान लेगा । इस तरह आप्त-वाक्य अथवा वैदिक ज्ञान की सहायता से कभी न देखे हुए ईश्वर को पहचाना जा सकता है ।

आज ९०%लोग प्रकृति व जीव तक ही रुचि रखते हैं । 'Eat,drink and be merry' अर्थात् खाओ, पीओ, करो आनन्द । किसने देखा है महानन्द ।' ही उनका ध्येय है । इसी लिए वे ईश्वर की सत्ता से इन्कार करते हैं । ईश्वर की सत्ता जरूर है । क्योंकि यही लोग मुसीबत के समय अपने-आप ही ईश्वर को पुकारते हैं । जैसे एक नास्तिक नदी में स्नान कर रहा था । पानी के बहाव ने उसे बहा दिया तब ही वह कहने लगा 'हे ईश्वर मुझे बचा' [illegible] ईश्वर की कृपा से किनारे पर आ [illegible]

(शेष पृष्ठ [illegible] पर)

सम्पादकीय—

आर्य जगत्

वर्ष२२] रविवार २४ भाद्रपद २०१८, ९ सितम्बर १९६२ [अंक३८

प्रगति की ओर

युवक और समाज, देश के भावी जीवन के सुन्दर स्तम्भ हैं। आज का कुमार तथा युवक ही कल का समाज एवं राष्ट्र है। यह निश्चित सत्य है कि इनके उत्थान में सारी जाति का उत्थान और युवकों के अपमान में समूचे समाज का अपमान है। इसी लिए इनकी ओर विशेष ध्यान देना पड़ता है। धार्मिकता के आंदोलन मे आर्य-समाज ने राष्ट्रीय, सामाजिक तथा शिक्षा के सेवाकार्यों को करते हुए युवकों के संगठन की ओर भी अपना पूरा २ ध्यान दिया दिखाया है। पूज्य स्वर्गीय महात्मा हंसराज जी ने अपने जीवन काल में दयानन्द कालेज व आर्य प्रादेशिक सभा पंजाब के कार्य विस्तार में इस युवक शक्ति का महान् संगठन कर के भारी देन दी। उसी परम्परा को लेकर सभा अपने अन्य प्रचार कार्यों के साथ २ इस नितान्त आवश्यक संगठन को भी चला रही है। प्रांत भर में तथा बाहिर भी दयानन्द कालेजों व स्कूलों की बड़ी २ कतारें हैं। इनमें हजारों कुमार तथा युवक शिक्षा पाते हैं। बड़ी संख्या में पढ़ाने वाले योग्य आचार्य व अध्यापक हैं। इन सब संस्थाओं में कुमार सभायें एवं युवक समाजें हैं। अपने २ स्थान पर बड़ा सुन्दर कार्य कर रही हैं। हर्ष गर्व है कि डी० ए० वी० संस्थाओं के शिक्षण, आचार-विचार की प्रशंसा अपने तो करते ही हैं—दूसरे लोग भी मुक्त कण्ठ से बड़ी श्रद्धाभरी प्रशंसा करते हैं। बड़े २ व्यक्ति भी अपने बच्चों को इन संस्थाओं में प्रविष्ट कराकर अपना गौरव समझते हैं। यह केवल देखी सुनी बात ही नहीं वरन् अनुभव के आधार पर सर्वथा सत्य है।

आर्य प्रादेशिक सभा पञ्जाब की ओर से इस दिशा में सुन्दर काम हो रहा है। सभा के प्रधान माननीय प्रिंसिपल सूर्यभानु जी एम० ए० (अब वायस चांसलर कुरुक्षेत्र यूनिवर्सिटी) तथा सभा मन्त्री श्री० सन्तोषराज जी एवं अब कार्यकर्ता प्रधान श्री प्रिंसिपल बहल जी तथा चेतनाप्रतीक प्रो० वेदीराम जी शर्मा एम० ए० बड़ी ही रुचि लेकर युवकों को विशाल संगठन सूत्र में पिरोने में लगे हैं। नार्मल स्कूल के छात्रों में समाज प्रेम, डी० ए० वी० कालेज के युवकों में धर्म भावना, उत्साह की तरंगों को देखकर मन गद्‌गद प्रसन्न होता है। डी० ए० वी० कालेज जालन्धर के गत समारोहों और इस वार की श्रावणी जन्माष्टमी पर्व के भारी संगम को देखकर आर्य युवक संगठन अमर है—ऐसा घोष अनायास दिल से निकलता है। गत दिनों डी० ए० कालेज तथा आर्य स्कूल अम्बाला शहर में युवक समाजों का उत्साह देखकर मन उछलने लगा। आर्य प्रादेशिक सभा पञ्जाब जालन्धर ने अपनी ता० २२ अगस्त की अन्तरंग सभा में इस विषय पर विशेष विचार करके उत्साही [illegible] विद्वान् प्रो० वेदीराम जी शर्मा एम० ए० डी० [illegible] डी० कालेज जालन्धर को सर्वसम्मति से इस विशाल संगठन के लिए सब सम्मति से अध्यक्ष निर्वाचित करके यह कार्य उनके सुपुर्द कर दिया है। बड़ी प्रसन्नता है। प्रोफैसर वेदीराम शर्मा स्वयं भी नवयुवक, अत्यन्त उत्साही, मञ्जे हुए योग्य वक्ता, शानदार लेखक तथा आर्यसमाज के अतीव श्रद्धालु हैं। योग्य स्थान पर योग्य व्यक्ति के निर्वाचन पर हम सभा के अधिकारियों को बधाई देते हुए उनका अभिनन्दन करते हैं। श्री शर्मा जी सभा के उपमन्त्री भी हैं। आर्यजगत् की ओर से विश्वास दिलाते हैं कि युवक संगठन के लिए सभा पत्र का स्थान उन के लिए सदा खुला है। युवक समाजें बनायें, युवक लिखें, प्रगति करें। पञ्जाब के सारे युवक समाज श्री प्रोफेसर जी से अपने २ समाज का सम्पर्क स्थापित कर उनसे समय २ पर आदेश लेते रहें। हम चाहते हैं कि श्री राजेन्द्र जी जिज्ञासु एम० ए० का भी सम्पर्क स्थापित हो जाये। युवक संगठन की यह शानदार प्रगति है हम सारी युवक शक्ति को बल वाली देखना चाहते हैं। एक सूत्र में पिरोई जानी चाहिए। —त्रिलोक चन्द्र

यह न्याय कैसा?

पंजाब सरकार ने अपनी एक घोषणासे प्रान्तके सारे प्राईवेट बेसिक लड़के लड़कियोंके स्कूलों को एकदम बन्द कर दिया है। इससे कितनी हानि हुई है। कई स्थानों पर नया स्टाफ भी भर्ती कर लिया गया था, कमरों का प्रबन्ध तथा अन्य भी काफी व्यय हो गया, सब बेकार गया, परेशानी अलग हुई। इस से भी बढ़कर महान् आश्चर्य तो यह हुआ कि दयानन्द नार्मल स्कूल जालन्धर (लाहौर) जैसा बहुत पुराना प्रसिद्ध स्कूल भी इसी लपेट में लिया गया। यह जितना पुराना और प्रसिद्ध स्कूल है। दयानन्द कालेज कमेटी देहली के प्रबन्ध के अन्तर्गत है। समझ नहीं आती कि इस प्रकार के समाज सेवी स्कूल को भी बन्द होना पड़ा। यह कैसा न्याय है। हम पूर्णाशा करते हैं कि पंजाब सरकार और विशेषकर प्रान्त शिक्षा मन्त्री इस अन्याय का प्रतिकार करके ऐसे पुराने नार्मल स्कूल को यथापूर्व जारी रहने के लिए शीघ्र ही अनुमति देगा।

आर्यसमाज का महान स्तम्भ

बख्शी टेकचन्द जी के दुःखद निधन के शोक जनक समाचार पर कौन आंख है जो नहीं रोई होगी, कौन सा दिल है जो शोकपूर्ण नहीं हुआ होगा। स्वर्गीय बख्शी जी पंजाब की दिव्य विभूति थे। अविभक्त पञ्जाब के हाईकोर्ट के न्यायधीश के ऊंचे आसन पर बैठ कर जो अनुपम कार्य किया—वह उन की प्रभुप्रदत्त विशेष योग्यता का परिचायक है। आपने आर्यसमाज के क्षेत्र में जो शानदार कार्य किया। उनकी सदा प्रशंसा की जाएगी। आप प्रभुभक्त, उच्च विचार, सात्विकभाव तथा आर्यसमाज के महान् कार्य मे सदा आगे-आगे थे। आपकी गणना समाज, प्रान्त और देश के विशेष स्तम्भों मे है। विभाजन से पूर्व आपने जो प्रान्त का कार्य किया—सारी जनता ऋणी रहेगी। दयानन्द कालिज कमेटी, आर्यप्रादेशिक सभा के बनाने ऊंचा उठाने मे आपका भी विशेष हाथ है। आपके निधन से सारे प्रान्त, समाज, देश को भारी क्षति हुई है। प्रभु दिवंगत आत्मा को शान्ति तथा सारे परिवार को धैर्य देवे। आर्यजगत् सारे परिवार से हार्दिक समवेदना प्रकट करता है। —स०

इलाकाई जबानों की समस्या और उसकी विद्वत्ता पूर्ण न्यायोचित सुझाव-

(ले० श्री जगत राम जी सूद बडेसरा गढ़श कर)

(गतांक से आगे)

मौलाना उर्दू के पक्ष में थे, और लाला जी हिन्दी भाषा के, पंजाबी बोली का तो उन दिनों शिक्षा विभाग में नाम ओ नमूद भी न था।

मादरी जबान की यह परिभाषा कि 'मादरी जबान वह होती है जो बच्चा मां की गोद में सीखता है,' हमें कभी भी प्रभावित नहीं कर सकी। यह न स्यासी है और न ही अच्छी। बरन फिरकादाराना या गुटबन्दाना कही जा सकती है। मातृ भाषा मातृ भूमि, और मातृ संस्कृति इन तीन नामों का इकट्ठे, आना मादरी जबान की सही २ Definition करता है। 'भाषा' (Language) की आलिमाना (Scholorly) परिभाषा आनरेबल श्री एन. वी गाडगिल के एक लेख में मिलती है, जो जनवरी फरवरी सन १९४९ ई के एक अंग्रेजी मैगजीन स्वस्तिका में छपी थी। लेख का शीर्षिक है Logic of Language (भाषा का दार्शनिक पक्ष) के फरमान में वे श्रीमान लिखतेहैं

Language in a wider sense represents culture and Tradition, History and Philosophy of a country'

यानी कि भाषा का वास्तविक रूप वह है, जिस में देश के रहन सहन, पिता पुरुखाओं के कारनामे और इतिहास तथा दर्शन ज्ञान लिखा गया हो उल्मा (Scholors) को यही Definition स्वीकार है। पंजाब में तैयारहुए साहित्य को जबान हस्त आमलक (हथेली पर धरा आमला) वाला न्याय हैं। तो हम आगे चलकर इस बारे में भाषा विज्ञानियों की सम्मतिया भी उद्धृत की जायेंगी। हिंदी रक्षा के दावेदारों का खेल अततक स्यासी खेलवाड बना रहा, वह लैजिसलेचरों में पहुंचने का एक साधन ही निकला उधर चुनाव खतम हुए साथ ही हिंदी रक्षा का भोग पड़ गया। रक्षा समिति के सरमाए में, सत्याग्रह नाम की चीज है, कन्वैनशनज (बड़े छोटे जलसे)

हैं ऊंची २ घोषणाएं हैं, लिट्रेचर ? सम्भवत जैसिया राम। कुछ अरसा हुआ, हमारी सरकार ने एक भाषाई सद्भावना कमेटी बिठाई थी। कमेटी ने पंजाब के लेखकों से सहयोग की अपील करते हुए कहा, कि प्रांत की भाषाई समस्या का दानिशमन्दाना हल्ल अच्छी, तालीमी और लस्सानी पहलुओं पर होना है। और कि इस में खुद गर्जाना, स्यासी और फिरका दाराना बातें बालाए ताक रख देनी चाहिए। अपने इस मन्तव्य को वह कहा तक पुगा सकी है, यह वह आप ही जानें। अलबत्ता पंजाब की भाषाई हद बन्दी कमीशन का निश्चय स्पष्ट है कि यहा कोई लाइन इस तक्सीम की नहीं खेंची जा सकती, दोनों ओर के बसाने वाले आपस मे बातें करते है और एक दूसरे को समझ और समझाते हैं। फरवरी मार्च सन 1961 में हमारे मुहतरिम प्रधान मंत्री ने और दूसरे मानजोग महानुभावों ने किन्ही २ अच्छी आधारों के उद्घाटन करते हुए लेखकों को आदेश दिये कि वे अपनी कृतियों में ऐसे शब्दों का प्रयोग किया करें, जो इन इलाकई बोलियों को निजदीक लाने में सहायक होवें। परन्तु हम तो इस निशकर्ष पर पहुचे हुए हैं कि ये बोलियां देश भाषा से विभिन्न हैं ही नहीं, अत आपिस में भी इन में कोई द्वत नहीं है।

हे गूना दीवाली कीती दीवे बाल के।
साडे दीवे ने दीवाली कती दीवा बाल के ॥

के अनुरूप सवा सौ रुपय का कड़वा घूंट भर कर, कई सालों का जोड़ २ कर रखा हुआ मसाला, संक्षिप्त रूप में।

'पुहुप गुल्थ अथवा भाषाई इत्थवती' के नाम से छपवा दिया हैं। यह पुस्तक हमारे पक्ष की अच्छी दृष्टि कोण से साक्षी। देती है। मुल्की यक जिहती और साल्मियत की कामना और शुभ भावना के सिरवारने खर्चडाक करके इसकी प्रतियां उल्माओं (Scholors) को भेजी जा रही हैं। अठारह कापियां एकता Council को भी भेज दी गई हैं।

तालीमी पहलू..

इलकाई जबानों की समस्या का तालीमी पहलू

उन इलाकों के लिये, जहां की जबान मुल्की जबान से अलग नहीं, जिन में पंजाब भी आता है, इलाकाई जबानों को पढ़ाई की जबान बनाने वाले सिद्धांत ने मुझे कभी प्रभावित नहीं कीया।

मैं ने बुजुर्ग देखे हैं जिन्होंने सिख राज के दिनों उन मक्तबों में तालीम हासिल की, जो मक्तब कि मसजिदों के साथ खुले हुए थे। वे मुसलमान बुजुर्ग जो 'इल्म बराए खिदमत खल्कअस्त न कि बराए दुनिया खरदने के मानने वाले थे, ऐसे मक्तब जारी रखते थे। ऐसा ही सन्तोषी ब्राह्मण भी अपने घरों में ही विद्या दान के भण्डारे खोल रखते थे। मेरे अपने गांव बडेसरों मे बाबा मस्त राम नाम के ब्राह्मण के पास दस बारह विद्यार्थी मैंने खुद देखे हैं।

मेरे बाबा जी अंग्रेज राज में पटवारी रहे, उन के छोटे भाई पैन्शनर कानगो थे, और वे दोनों बुजुर्ग मसजिदों के साथ चल रहे मदरसे के पढ़े हुए थे। इस प्रकार वैसे ही मक्तबों के पढ़े हुए महानुभाव अंग्रेज के दिनों अच्छे २ ओहदों पर लगे हुए थे महकमा माल में बहुत सारे पटवारी उन दिनों देव नागरी में भी काम करते थे। फिर जब अंग्रेज ने मदरसे खोले तो उन में पढ़ाई की जबान उर्दू थी, कोई इलाकाई बोली नहीं सो सांझी मुल्की जबान उर्दू में पढ़ाई आरम्भ करने वाले वे बुजुर्ग, जीवन के हर महकमे में ऊंची २ कुर्सियों तक पहुंचे हैं। कानून लीजिए, डाक्टरी लीजिए, Trade, Education, Administeration, Politics Engineering, किस्सा कोताह कोई लाइन भी देखिए उन्होंने चोटी तक के दरजे प्राप्त किए हमें अपने इन बुजुर्गों पर गर्व है। अब भी इन महानुभाव बरादरान में भी जिन्हों इलकाई बोलियों की धुन समाई है, मैं नहीं कह सकता कि कोई श्रीमान ऐसा हो जिस ने अपनी पढ़ाई अल्फ, बे, पे से नहीं वरन उड़ा एड़ा से आरम्भ की हो म या आ, इ, उ से।

मान मई अब हो ते भई जब पूरन जोवन जोति भरेगी।
देव वो तीन हूं लोक के रूप की रासि के ऊपर पाव धरेगी।
रंचक सी परपंचभरी अब ही ते करी विधि कैसे हरेगी।
देखहु'गी अब मैं उस के कोई, दूसरी गवांलि गमांन करेंगी ॥

यह इलाकई बोलियां अपने भाषाई कुटुम्ब से ही अजदहगी के गीत गाती हैं, कल कलां को मुल्की यक जिहती से भी मुंकिर हो सकती हैं।

हमें इन से द्वेष नहीं है। जो भाई इन के दिल दादह (इच्छुक) हैं। उन की दिल जूई अवश्य होनी चाहिये, परन्तु दूसरों पर ठांसी क्यों जावे।

(क्रमशः)

सरहदी प्रदेश पंजाब में

बालकों की सेवा के पांच वर्ष

पंजाब बाल चलचित्र समिति का आरम्भ बहुत शानदार है। प्रारम्भिक कठिनाइयों को दूर करने के पश्चात यह देश की भावी नागरिकों के लिये स्वस्थ शिक्षा और मनोरंजन का प्रबन्ध करने के लिये तल्लीन है। अपनी पांच वर्ष की अल्प अवधि में इससे ग्रामीण तथा शहरी क्षेत्रों में प्रत्येक स्तर के (अर्थात अमीर और गरीब) १० लाख बच्चों की सेवा की है।

पंजाब राज्य बाल चल चित्र समिति दिसम्बर १९५७ में बाल चल चित्रों द्वारा शिक्षा और सांस्कृतिक प्रचार और बच्चों और नवयुवकों की प्रकृति के अनुकूल तथा उनकी विशेष दिलचस्पी की फिल्मों की तैयारी, वितरण और प्रदर्शन के लिये स्थापित की गई थी। उसी वर्ष राज्य सरकार केन्द्रीय सरकार द्वारा चालित केन्द्रीय संगठन बाल चल चित्र समिति की सदस्य बन गई। इस समिति ने बाल चल चित्रों के प्रदर्शन, बच्चों की दिलचस्पी की फिल्मों की तैयारी, बच्चों के फिल्मी पुस्तकालय जारी करने और बच्चों के लिये फिल्मों सम्बन्धी विषयों पर व्याख्यान तथा प्रदर्शन आदि करने की व्यवस्था का उत्तरदायित्व संभाला।

इस सम्बन्ध में पूरी सरगर्मी से कार्य प्रारंभ कर दिया गया है। आगामी दो वर्षों में इस समिति ने जिलों के मुख्य स्थानों पर जिलों की बाल चल चित्र समितियां संगठित की। डिप्टी कमिश्नर इनके प्रधान हैं और जिले के लोक सम्पर्क अधिकारी मंत्री। ये समितियां जहां बाल चल चित्र के प्रदर्शन की व्यवस्था करती हैं वहां शिक्षा संस्थाओं में बाल चल चित्र वर्गों की स्थापना करती हैं ताकि बच्चों में कलात्मक तथा साहित्यिक प्रतिभा जागृत हो।

बाल चलचित्र उत्सव

देश का सब से पहला बाल चल चित्र 'जलदीप' और पंजाब की पृष्ठभूमि पर आधारित चल चित्र 'हरिया' का सारे राज्य में प्रदर्शन किया गया जिसे अत्यन्त सफलता मिली। इस सफलता से संचालकों को बहुत प्रोत्साहन मिला। परिणामस्वरूप उन्होंने अपने कार्य को पहले से अधिक उत्साह से जारी रखा। सबसे पहला बाल चल चित्र उत्सव जो देश भर में अपने प्रकार का उत्सव था, १५ अक्तूबर से १४ नवम्बर तक आयोजित किया गया। इस उत्सव से बच्चों को पूरा एक मास तक मनोरंजक फिल्में देखने का अवसर मिला। इसकी समापवर्ती अंतिम बैठक १४ नवम्बर को बाल दिवस पर हुई, जो सौभाग्य से चाचा नेहरू का जन्म दिवस भी है। इस समारोह के लिये बच्चों की दिलचस्पी की १८ विशेष फिल्में प्राप्त कर के राज्य के विभिन्न स्थानों पर दिखाई गईं। इस समारोह ने बच्चों के दिलों में बहुत मीठी स्मृति छोड़ी है और नाटक के लिये अपनी प्रतिभा के उपयोग की भावना का संचार किया है। इस समारोह को अपूर्व सफलता मिली। इस सफलता से प्रोत्साहित होकर संचालकों ने इस समारोह को वार्षिक रूप दे दिया है। बालक अब इस समारोह की बड़ी उत्सुकता से प्रतीक्षा करते हैं।

प्रतिभा की खोज

वर्ष १९६० के पश्चात समिति ने बालकों में नृत्य, संगीत ड्रामा तथा अन्य सांस्कृतिक रुचियों का पता लगाने के लिये एक नियमित कार्यक्रम जारी किया इस सम्बन्ध में समिति ने जिला और राज्य स्तर पर बालकों के लिये रंगारंग मनोरंजक कार्यक्रमों का संगठन किया। जिले के स्तर पर मुकाबले के पश्चात विभिन्न जिलों से चुने गये बालकों के १५ दलों ने शिमला में राज्य स्तर के रंगारंग मनोरंजक प्रतियोगिता में भाग लिया। सबसे उत्तम टीमों और बालकों को पारितोषिक और ट्राफियां दी गईं।

गत वर्ष इस सबंध में बहुत सी सरगर्मियां प्रकट की गईं। राज्य सरकार ने इस समिति को तृतीय पंचवर्षीय योजना के मध्य ४०,००० रुपये प्रति वर्ष अनुदान देने का वचन दिया है। राज्य सरकार के इस संरक्षण से यह समिति बहुत प्रोत्साहित हुई। यह कहना अनुचित नहीं होगा कि पंचायतों ने भी इस कार्यक्रम के लाभों को अनुभव कर लिया और पंचायत विभाग ने वर्ष १९६०-६१ के दौरान ५,००० रुपये इस समिति के फण्ड में दिये।

चलता-फिरता सिनेमा यूनिट

ग्रामीण क्षेत्रों में इस समिति की गतिविधियों को बढ़ावा देने के लिये समिति ने तीन स्वाधीन चलते फिरते सिनेमा यूनिट प्रत्येक डिवीजन के लिये जारी किये। इन यूनिटों के सदर मुकाम लुधियाना, चंडीगढ़ और करनाल में हैं। चालू पंचवर्षीय योजना काल में समिति प्रत्येक जिले में बालकों के लिये इस प्रकार के चल चित्र यूनिट जारी करने का विचार रखती है। समिति ने चल चित्र बनाने का कार्यक्रम तैयार किया और बी० आर० चोपड़ा और शांताराम जैसे प्रसिद्ध फिल्म निर्माताओं तथा निदेशकों की सेवाओं से लाभ उठाने का निश्चय किया। सर्वश्री बी० आर० चोपड़ा और शांता राम दोनों ने इस समिति को चल चित्रों की तैयारी में सहयोग देने की अनुमति दे दी है। यह समिति राष्ट्रीय भावना से ओत प्रोत पूरी लम्बाई का चल चित्र बनाना प्रारंभ कर देगी।

चलचित्रों के उद्योग को प्रोत्साहन

इस समय तक यह समिति केवल भारत की बालकों की चलचित्र सोसायटी के बनाये हुए चलचित्रों का ही प्रदर्शन करती रही है। हाल ही में समिति ने 'हम पंछी एक डाल के' 'फूल और कलियां', 'काले गोरे', 'जागृति', 'मासूम', 'रामराज्य', 'तूफान और दिया' 'बूट पालिश', काबुलीवाला' और 'धर्मपुत्र' जैसे चलचित्र खरीदने का निश्चय किया है जो सामाजिक समाजिक समानता, देशभक्ति और भावनात्मक ऐक्य की शिक्षा देते हैं। इससे शहीदे आजम भगतसिंह, धरती की झंकार, और राधाकृष्ण, चलचित्र भी खरीदने का निर्णय किया है। धरती की झंकार चलचित्र में सारे देश के चुने हुए ३५ लोक नृत्यों का प्रदर्शन किया गया है। इस सबका यह परिणाम होगा कि चलचित्र उद्योग बालकों की दिलचस्पी के अधिक चलचित्र बनाने के लिये प्रोत्साहित होगा।

बालकों के सब वर्गों की सूची के अनुसार चलचित्रों की व्यवस्था करते समय उन बालकों का विशेष ध्यान रखा गया है जो रुग्णावस्था के कारण सिनेमा नहीं जा सकते क्योंकि अमरीका और इंगलैंड जैसे प्रगतिशील देशों में समिति ने रोगी बालकों के लाभ और मनोरंजन के लिये अस्पतालों में चलचित्र मुफ्त दिखाने का निश्चय किया हुआ है। बालकों को सिनेमा घरों में ले जाने के लिये विशेषतया ग्रीष्म तथा वर्षा ऋतु में परिवहन सम्बन्धी सुविधायें जुटाने का भी निर्णय किया गया है।

श्री एच० एस० सेठी

इससे यह स्पष्ट होता है कि इस समिति ने अल्पकाल में ही बड़े शानदार तरीके पर कार्य प्रारम्भ कर दिया है। गत तीन वर्षों में इस समिति ने २५ चलचित्रों, १६५० प्रदर्शनों और लगभग ६ लाख बालकों के मनोरंजन की व्यवस्था की। आगामी वर्षों में इस कार्य में अधिक प्रगति और सफलता होने की पूरी पूरी आशा है।

देहरादून में

जल की सप्लाई की योजना

उत्तर प्रदेश सरकार ने देहरादून के कुछ मुहल्लों में पेय जल की अधिक सप्लाई के लिये एक योजना लागू की है। पानी की कमी को दूर करने के लिये स्वायत्तशासन अभियन्त्रण विभाग द्वारा सर्वेक्षण कार्य किया जा रहा है जिसके पश्चात इस सम्बन्ध में एक पुनर्गठन योजना तैयार की जायगी। पानी की कमी को दूर करने के लिये इस समय तीन नलकूपों के निर्माण का कार्य भी किया जा रहा है।

यह सूचना स्वशासन मंत्री, श्री विचित्र नारायण शर्मा ने आज विधान परिषद में श्री दीनदयाल शास्त्री के एक प्रश्न के उत्तर में दी।

हमारा सैनिक स्तम्भ

देश के नौनिहाल जिन पर हमें गर्व है

कटांगा के सिपाही संयुक्त राष्ट्रसंघ के सैनिकों को चिढ़ाने और उनसे झगड़ा मोल लेने की हरचन्द कोशिश करते हैं, ताकि उनको बदनाम करने का मौका मिले, मगर राष्ट्रसंघ सैनिकों की धीरता के सामने उनकी एक नहीं चलती। अभी मद्रास रेजीमेण्ट के चौथे बटालियन के सैनिक एस० पलानी ने एलिजाबेथविले में ऐसे ही संयम से काम लिया। कटांगा के सैनिक उनसे खास छेड़-छाड़ करते रहे, पर वे जरा भी उत्तेजित न हुए और सीटी बजाते रहे।

इस बटालियन की निगरानी में जितनी चौकियां हैं, उनमें एक हवाई जंक्शन के समीप है। यहां दो महत्वपूर्ण सड़कें मिलती हैं, एक 'कमिना' जाती है, जो कटांगा की एक महत्वपूर्ण फौजी छावनी है और दूसरी कसपा जाती है, जहां से जदोतविले और कपुसी के सैनिक दस्तों को रास्ता जाता है। यह चौकी निगरानी रखती है कि राजधानी में चोरी से हथियार न लाये जायें।

'वाई जंक्शन के चारोंओर ऊंची-ऊंची आधी घास के झुरमुट हैं और बहुत से छोटे छोटे टूहे और चट्टानें हैं। मद्रास बटालियन ने इन चट्टानों के ऊपर अपने संतरी तैनात किये गये हैं, जिससे पास में से छिपकर हथियार लाने वालों पर निगाह रखते हैं।

इसी महीने के आरम्भ में, एक दिन सिपाही पलानी एक चट्टान पर तैनात थे। उन्होंने कोई ४० गज दूर पीले रंग के एक मकान से कटांगा के सिपाहियों को निकलते देखा। उन्होंने अपने दो साथियों को सचेत किया। उसने देखा कि एक कटांगा अधिकारी के पीछे राइफलों में संगीन लगाए २० सैनिक छिप छिप कर आगे बढ़ रहे थे। कभी-कभी वे खुले में आकर चौकी पर धावा करने का भाव दिखाते थे।

कटांगा के सिपाहियों के पास आ जाने पर, पलानी ने चिल्लाकर बार-बार स्वाहिली भाषा अदा कवा (दूर जाओ, दूर जाओ) कहा। किन्तु कटांगी सैनिक पलानी की चौकी की ओर बढ़ते ही रहे और मुश्किल से दस गज दूर रह गये। ऐसा लगता था कि वे धावा बोलने ही वाले हैं।

सैनिक पलानी अपने ब्रेनगन में कारतूस भरे सतर्कता से तैयार थे। यदि वे हड़बड़ा कर घोड़ा दबा देते तो कटांगा के सिपाहियों को अपने दुस्साहस का उचित इनाम मिल जाता। लेकिन, पलानी ने धीरज नहीं खोया और अपनी जेब से सीटी निकाल कर जोर से बजाई। प्लाटून कमाण्डर, सूबेदार रामुनि नायर ने सीटी की आवाज सुनते ही तुरन्त और सैनिकों को पलानी की मदद के लिए भेजा। इनको आते देखकर कटांगा के सैनिक भाग खड़े हुए।

प्लाटून कमाण्डर ने कमाण्ड चौकी को भी तुरन्त टेलीफोन किया और कम्पनी कमाण्डर मेजर एस पी महादेवन ने, उस क्षेत्र के सभी चौकियों को सचेत कर दिया। शीघ्र ही मेजर ने भी आकर और बटालियन कमाण्डर ले कर्नल डी एस रघावा की ओर से सिपाही पलानी को शाबाशी दी।

मेजर ने कहा कि ऐसी स्थिति में अनुभवी सैनिक भी घबरा जाता और घोड़ा चला बैठता लेकिन पलानी ने अनुकरणीय धीरज से काम लिया। सीटी बजाने के बजाय, अगर उसने ब्रेनगन का घोड़ा दबाया होता, तो कटांगा वालों को संयुक्त राष्ट्रसंघ के विरुद्ध प्रचार करने का मौका मिल जाता और हमें सफाई देना कठिन होता।

इस घटना के बाद से मद्रास रेजीमेण्ट के लोग 'वाई, जंक्शन की चौकी को 'पलानी पहाड़ी, का नाम देने की सोच रहे हैं। सैनिक पलानी का नाम भी पश्चिम घाट की पलानी पहाड़ी के नाम पर है। यह पहाड़ी देव सैन्य के सेनापति कार्तिकेय का निवास स्थान मानी जाती है और यह उपयुक्त ही है कि, इस वीर भूमि के सैनिक पलानी ने कांगो में अपनी वीरता और अडिग धैर्य से भारत की सेना का नाम बढ़ाया।

वन विभाग के एक हजार से अधिक कर्मचारियों को आधुनिक तकनीकी प्रशिक्षण

लखनऊ—२४ अगस्त चालू आयोजनावधि में राज्य के वन विभाग १००० से अधिक कर्मचारियों को वन कार्यों सम्बन्धी आधुनिक तकनीकी में प्रशिक्षण दिया जायगा। जिन कर्मचारियों को प्रशिक्षण दिया जायगा उनमें ६०० वन रक्षक, ४७५ उपरेंजर और फारेस्टर, ५० रेंजर १५ सहायक अरण्यपाल और पांच उप अरण्यपाल होंगे।

वन रक्षकों के प्रशिक्षण के लिए वर्तमान चार विद्यालयों के अतिरिक्त दो और प्रशिक्षण विद्यालय खोलने का प्रस्ताव किया गया है। ये विद्यालय, पूर्वीय पश्चिमी, कुमाऊं, टिहरी गढ़वाल दक्षिणी और भूमि प्रबंधक तथा मुख्यालय मंडलों (रीजनों) में खोले जायेंगे।

वार्षिक रूप से ९५ उप रेंजरों तथा फारेस्टरों को प्रशिक्षित करने के उद्देश्य से वर्तमान फारेस्टर ट्रेनिंग डिवीजन के अलावा तीन और ट्रेनिंग डिवीजन बनाए जायेंगे।

सहायक अरण्यपाल और रेंजर को वन अनुसंधान संस्था एवं रेंजर विद्यालय तथा भारतीय वन महाविद्यालय, देहरादून में प्रशिक्षण दिया जायगा। इस योजना पर कुल ३० लाख रुपये व्यय होने का अनुमान है।

श्री शिवकुमार अग्निहोत्री द्वारा देश की दुर्दशा की तस्वीर प्रस्तुत

कथनी और करनी, नीति और व्यवहार के बीच नित्य-प्रति बढ़ती खाईको पाटिये

मान्यवर सपादक जी,

सादर वन्दे।

सरहदी के स्वतन्त्रता अक में आपका लेख 'हिम्मत से काम लीजिये' तथा अन्य लेखकों के लेखो [देश का उभरता मध्य वर्ग, शिक्षा विषयक समस्यायें] से दिल को महान सतोष प्राप्त हुआ – जैसा बापु और नेहरू की बातों से कभी कभी आनन्द प्राप्त होता था और होता है। डा० राजेन्द्र प्रसाद ने अपनी विदाई के समय नौजवानों से कहा था कि यदि वस्तु या स्थिति का सही सही आकन हो जाय और विवेक पैदा हो जाय तो बहुत सी समस्यायें अपने आप हल हो जाय और अधिकतर स्वतः सामने आ खड़ी हों—कर्तव्य पालन की त्रुटियों ने ही इन १५ वर्षो के समय में कांग्रेस के प्रति अश्रद्धा पैदा कर दी और आज जनता प्रगति की योजनाओं में रस नहीं लेती बल्कि वह जानती है कि यह सब कुर्सी पर चिपके रहने का ढकोसला है, क्योंकि किसी को कुछ अधिकार नहीं—पैसा खर्च करके तरह तरह के महकमें बनाना और फिर उसकी सही सही कार्यान्वियन न कर पाने से सर्वत्र ऐसा ही होता है। जनता का पैसा जनतन्त्र [कांग्रेस] और राजतन्त्र के अधिकारियों ने गुट बनाकर ग्रामीणों से लूट लिया है। कांग्रेस तो जनता की सीधी प्रतिनिधि है। उसे राजतन्त्र पर हावी होना चाहिये–इसलिए नहीं कि राजतन्त्र का काम जो सही और वास्तविक हो उसमें भी अड़चन लगे बल्कि ऐसा काम या प्रेम पूर्ण विरोध हो जैसा गाय के थन से दूध निकाल लेने का सघर्ष होता है।

यदि कांग्रेस के प्रतिनिधि सरकार का वास्तविक विरोध कर दें तो फिर वह सत्ता से निकाल दिये जाय और २०० रुपया से ४०० रुपया माहवार तक उनकी पेन्शन बद हो जाय।

अत. मेरी छोटी बुद्धि में हाई कमाण्ड को सबसे अलग रहना चाहिए जो सबका सही सही मूल्याकन करता रहे और राज्य तन्त्र को सही दिशा में मोड़ सके। यह वही हाई कमाण्ड है जिसने ब्रिटिश के सीखे सिखाये राजनीतिज्ञों को पछाड़ती रही और अब जब जनता में अटूट विश्वास तथा लाभ, प्राप्त करने का समय आया तब उसके मन में दुर्भाव और अश्रद्धा के बीज अंकुरित हो उठे।

आज दिन जनता की कोई सुनता नहीं उसे हर महकमे में ठोकरे खानी पड़ती है। पैसे के बल पर ही सभी छोटे बड़ी सहायतायें और इनाम प्राप्त होते हैं। राजतन्त्र के अधिकारियों के लिये ही मानो स्वराज्य आया है। जनता जो रात दिन परिश्रम करती इसी भांति की बाढ़ों को सहती उसके पास अब इस समय बहुत पैसा हो गया है — सब उसी से तलाश कर रहे हैं — अब दरिद्रनारायणता नहीं रही कुबेर बन गई है। राजनीतिक नेता, बड़े-बड़े वैतनिक परामर्शदाता, अर्थवेत्ता आज मध्यम वर्ग की उपेक्षा ही कर रहे हैं। कृषि के अधिकारी क्रोध का शासन रखते हुए वेतन और पद सुशोभित करते हैं तथा बोवाई का समय निकल जाने पर बीज किसानों के सिर पर मढ़ते हैं क्योंकि उनको उतना कोटा पूरा करना होता है चाहे उपज बढ़े या भाड़ चूल्हे में जाय— डायरी से ही उनकी तरक्की तनुज्जली होती है-काम से (आचरण) नहीं। अर्थात् वही नौकरशाही के तौर तरीके हैं जैसा ब्रिटिश काल मे थे। जितनी और जिसका समालोचना करके कांग्रेस ने जनता को अपनी ओर आकर्षित किया था वही सब बातें थोड़े उलट फेर से जैसे की तैसी हो हैं। विघ्नगुआ अब भी चौन उठाते हैं। लखनऊ की नवाबियत अब भी हमारे अधिकारियों पर हावी है— जैसे हमारे सबके ऊपर जिमीदारियत की बू अबतक बनी हुई है।

अत आपको हार्दिक धन्यवाद देना इसलिए उचित समझता हू आपको भी अपने देश को सही रास्ते पर लाने के लिए अपने समाचार पत्रों का एक गुट बनाना चाहिए। वेतन भोगी प्रतिनिधि तो चुनाव के बाद जनता की ओर मुह फेरना भी पाप समझते हैं चाहे वह कितना ही नजदीकी और जन्म का साथी हो। यदि कोई वर्ग सही दिशा में मोड़ने का सही २ प्रयत्न कर सके तो स्थिति अभी इतनी नहीं बिगड़ी है कि सुधारी न जा सके।

(१) हरिजन ६७४७ में कुछ कीमती से सकेत का लेख बापू के जीवन में था छपा जिसमें मि० चर्चिल की मनहूस भविष्यवाणी गलत साबित करने की प्रार्थना लेखक ने की थी। भविष्यवाणी यह थी वे जिस तरह इतजाम कर रहे हैं कि बड़ी से बड़ी बेवफाई के बाद बड़े-से बड़े बखेड़े होंगे। ब्राम्हणों की हुकूमत में तरफदारी घूसखोरी, रिश्वत खोरी और हर किस्म की दूसरी बुराइया मामूली बातें होंगी।

(२) भूदान १४८४९ में प्रसिद्ध गांधीवादी, अर्थशास्त्री जे सी कुमारप्पा को सारी स्थिति देखकर कहना पड़ा था 'जिस प्रकार फिजूलखर्ची हमारी सरकार कर रही है, यदि यही रफ्तार रही तो १० वर्ष में इस देश का ईश्वर ही मालिक होगा।

मैंने अपने उपेक्षित क्षेत्र मे सिंचाई सुविधायें (व्यवस्था) लाने हेतु सन १९५८ से प्रार्थनाओं, अखबारों में लेख भेजे और सभी प्रान्तीय केन्द्रीय सरकारों और का० कमेटियों के दरवाजे खटखटाने पर नक्कारखाने में तूती की आवाज नही ही पहुची। बल्कि सीतापुर के उस समय के अधिशासी अभियन्ता ने हम काश्तकारों को जो 'हरिया हरिसों हेतकर ज्यों किसान को खेत, ऋन बढ़े और बल घटे तभी खेत छोड़ते, के सिद्धांत पर जीते रहते हैं हताश करने के लिए नितांत असम्भव शब्द से निराश करने का प्रयत्न कर ही डाला। इस शब्द को लेकर हमने फिर सभी दरवाजे खटखटाये तब भी जू न रेंगी-बल्कि प्रधान मन्त्री, मुख्य मन्त्री राष्ट्रपति के सेवा में भी रोया रोया गया परन्तु सबसे बड़ी चुप ने सब काम ठप कर दिया। प्रधान मन्त्री की रसीदें मेरे पास मौजूद हैं राष्ट्रपति महोदय की प्राप्ति रसीद भी लौटकर नहीं मिली।

अबकी चुनाव के बाद मुख्य मन्त्री की प्रथम तड़क भड़क, किफायत शारी की बातों पर विश्वास करके फिर प्रार्थना पत्र सिंचाई व्यवस्था लाने हेतु, भेजे गये परन्तु स्थानीय ओवरसियर महोदय लेने देने के चक्कर में रिपोर्ट ही नही देते। जिस जगह से क्लास माइनर निकलवाने की प्रार्थना है वहा से कुलाबा निकला हुआ है और रिश्वत देकर ही निकलवाया गया था। जिस उपज की कमी के कारण विदेशों से अन्न मगाना पड़ता है उसी हेतु जनता की माग पर ध्यान न देना कहां तक उचित है? हमारा उपेक्षित क्षेत्र चौमास में समुद्र और ग्रीष्म (जेठ में) रेगिस्तान रहता है। पानी के विकास की भी कोशिश पड़ोस के एक महानुभाव कर रहे हैं पर उसका भी इस्टीमेट ओवरसियर महोदय अटकाये पड़े हैं।

क्षेत्र का निरीक्षण करने कोई विशिष्ट अधिकारी जिनकों पैसे की कम आवश्यकता हो देहात की गर्द-गुबारी रास्तों और विभिन्न कष्टों को कैसे सहे— चुनाव यदि होता तो सर के बल आते। यहा की स्थिति का मूल्याकन निम्न वर्गीय ही करता है जिसे पैसे की आवश्यकता है अत वैसा ही फल भी मिलता है।

अस्तु— आपने मेरे दिल के फफोलों पर मलहम लगाकर जो सुख दिया है उसके लिए आपको धन्यवाद और फिर आगे इसी धार पर बने रहनेकी प्रार्थना है।

भवदीय

—शिवकुमार अग्निहोत्री

सीतापुर

[सीतापुर से भाई शिवकुमार अग्निहोत्री ने अपने पत्र मे कुछेक ऐसी बातों का जिक्र किया है जिनकी ओर शासक के नेताओं का ध्यान तत्काल जाना चाहिये। आज देश की कुछ ऐसी स्थिति है कि जो राष्ट्रीय लक्ष्य और कार्यक्रम हमने अपने सामने रखे हैं, उनसे देश के बहुत कम नागरिकों को किसी प्रकार की आपत्ति हो सकती है। लेकिन शासन जिस तरीके से शहर और गांवो में और मुख्यतया गावो में काम कर रहा है। उससे केवल चन्द नागरिको को ही सन्तोष हो सकता है। यह अत्यन्त भयावह स्थिति है। हम तो यहा तक कहेगे कि इससे देश की जनता को लोकतन्त्र ही मे विश्वास उठता जा रहा है। इसीलिये हम देखते हैं कि सन ६२ के आम चुनाव में दक्षिण के एक निर्वाचित क्षेत्र के नागरिक विशाल बहुमत से एक कांग्रेसी उम्मीदवार को लोक सभा में भेजते हैं तो ३-४ महीने के दर्मियान ही वे नागरिक कांग्रेसी ससद सदस्य द्वारा रिक्त स्थान पर एक द्रविड मुन्नेत्र कषघम के उमीदवार को अपना प्रतिनिधि बनाकर लोक सभा में भेजते हैं। ब्रिटेन में ऐसी स्थिति की कल्पना भी नही हो सकती। क्योंकि उस देश में सरकारी तन्त्र गाव से लेकर लन्दन तक जो बात कहता है उसी को व्यवहार मे भी लाता है। अपने देश मे आये दिन कथनी और करनी के बीच दूरी बढ़ती जा रही है। ऐसी स्थिति के प्रति राष्ट्रीय नेतृत्व निश्चिन्त नहीं हो सकता। हम नेहरू जी और श्री सञ्जीवैय्या तथा उनके प्रादेशिक सहयोगियों से निवेदन करेंगे कि वे तत्काल उक्त चिन्ताजनक स्थिति को समाप्त करने के लिये कोई सुदृढ ठोस कदम उठायें। भाषणबाजी से रोग बढ़ेगा ही समाप्त नहीं होगा।–सम्पादक

●

३१ अगस्त के दिन आजाद राष्ट्रों के कुनबे में एक और देश शामिल

८,३०,००० इन्सानों का देश ट्रिनिडाड

जिसमें ११६ वर्गमील का टापू जमेका भी शामिल

वेस्ट इडीज के जमैका द्वीप मे स्वाधीनता समारोह अभी मुश्किल से समाप्त ही हुये हैं कि १,००० मील (१६१० किलोमीटर दक्षिण पूर्व स्थित एक अन्य द्वीप में इसी प्रकार के उत्सव प्रारम्भ हो गये हैं। आगामी अगस्त ३१ को ट्रिनिडाड एव टोबैगो सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न राज्य बन जायेगा। प्रिंसेज रायल इन स्वाधीनता समारोहों में महारानी एलिजबेथ द्वितीय की विशेष प्रतिनिधि की हैसियत से भाग लेंगी। इन दोनों द्वीपों का कुल क्षेत्रफल लगभग १९८० वर्ग मील है। इसकी जनसख्या कोई ८,३० ००० है। १९४८ में अपनी तीसरी यात्रा के दौरान कोलम्बस ने इस द्वीप का नाम ट्रिनिडाड रखा था। चू कि कोलम्बस को इस द्वीप में दूर से तीन पर्वत दिखाई दिये थे इसलिये उसने इसका नाम ट्रिनिडाड रख दिया था। ट्रिनिडाड और मुख्य भूमि के बीच से गुजरते हुये उसने एक और द्वीप देखा जो शायद टोबैगो था।

उन दिनों ट्रिनिडाड में अनेक वेस्ट इडियन जातियां—कैरिब, अरावाक, तथा अन्य—रहती थी जिनसे कोलम्बस ने मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध स्थापित कर लिये। इस प्रकार प्रारम्भ में ट्रिनिडाड स्पेनिश अधिकार में आ गया।

अट्ठारहवीं शताब्दी में इसमे बसने वाले फ्रांसीसियों को आकृष्ट करने के प्रयत्न किये गये तथा फ्रेंच अधिकृत द्वीपों और योरप से बहुत से लोग इनमें बसने के लिये गये भी थे। किंतु १७९७ में ट्रिनिडाड को ब्रिटिश सेनाओं ने जीत लिया तथा कुछ वर्षों बद औपचारिक रूप से यह स्पेन से अलग होकर ब्रिटेन के अधिकार में आ गया। इसमे पहले ब्रिटिश उपनिवेशों जैसे शासन की स्थापना की गई, तथा धीरे धीरे इसमें अनेक परिवर्तन किये गये और अन्ततः १९६१ में ट्रिनिडाड एव टोबैगो को पूर्ण आंतरिक स्वशासन प्राप्त हो गया।

ट्रिनिडाड मे दास प्रथा समाप्त करने के पूर्व भी मजदूरों की बड़ी कमी थी। इस द्वीप का विकास बड़ी द्रुत गति से हो रहा था तथा दास व्यापार के उन्मूलन के कारण रोपण उद्योगपतियों (प्लान्टरो) को और दास खरीदने की अनुमति नहीं थी। पुर्तगाली आप्रवासियों, चीनियों, उत्तर अमरीकी इंडियनों और हब्शियों के आगमन से, जिन्हे दास बन्धनों से मुक्त करा कर खेतों में काम दिया गया था, स्थिति में अधिक सुधार नहीं हो सका। १८३४ मे जब ट्रिनिडाड मे लगभ २१,००० गुलामों को मुक्त कर दिया गया तो श्रम स्थिति और भी बिगड गई।

इस कमी की पूर्ति भारतीय आप्रवासियों के इस द्वीप में आगमन से हुई और १८३८ तथा १९३७ (जब आप्रवजन बद कर दिया गया) के बीच ट्रिनिडाड में १,३४,००१ भारतीय आ चुके थे। इनमे से बहुतेरे तो भारत लौट गए किंतु अधिकतर यहीं बने रहे। ये भारतीय तथा इनके वंशज इस द्वीप की कुल आबादी के एक-तिहाई भाग का प्रतिनिधित्व करते हैं। ब्रिटिश शासनाधीन के इन १६१ वर्षों में ट्रिनिडाड की आबादी लगभग १८,००० से बढ़ कर आज ८,३०,००० हो गई है।

शायद इसकी जनसख्या में विभिन्न देशीय वंशानुक्रमों की उपस्थिति के कारण और शायद इसलिए भी कि ट्रिनिडाड के लोग धन कमाने में व्यस्त हैं, कैरोबियन के अन्य स्थानों की अपेक्षा यहाँ की राजनीति में दलों के बजाए व्यक्तियों का अधिक प्रभाव है। कोई आठ वर्ष पूर्व राजनीतिक क्षेत्र में डाक्टर ऐरिक विलियम्स नामक एक व्यक्ति का पदार्पण हुआ। आपने पिपुल्स नेशनल मूवमेंट के नाम से एक दल बनाया तथा विगत आम चुनावों में २४ में से १३ सीटें जीत लीं।

डाक्टर विलियम्स के ही नेतृत्व में इस द्वीप ने आंतरिक स्वशासन प्राप्त किया तथा स्वाधीन ट्रिनिडाड एव टोबैगो राज्य के आप प्रथम प्रधान मंत्री होंगे।

वेस्ट इडीज के अन्य द्वीपों की भांति ट्रिनिडाड भी एक कृषि प्रधान देश है। इसकी मुख्य फसलें हैं: गन्ना, कोको, काफी, केला और साइट्रस [नींबू की जाति के फल।

सर हिलेरी ब्लड

भू० पू० गवर्नर, मारिशस

यह द्वीप दक्षिण में बहुत दूर पर स्थित है जिसके कारण उत्तर में स्थित द्वीपों की भांति समुद्री तूफानों से इसे हानि नहीं पहुचती। अतएव इसकी फसलें अन्य द्वीपों की भांति अधिक स्थाई हैं, तथा ट्रिनिडाड के चीनी उद्योग के लिए राष्ट्रकुल चीनी करार बड़े महत्व का है।

इसके अतिरिक्त यहा तेल और बड़ी प्राकृतिक सम्पदा है— तेल, जहाजरानी और सवाद-वाहन—तथा पर्यटन व्यापार और इनके उद्योग भी इस देश मे हैं। ट्रिनिडाड की तेल परिष्करण क्षमता भी बड़ी व्यापक है।

औद्योगिक उत्पादों की सूची लम्बी है और दिन पर दिन बढ़ती जा रही है खाद, फर्नीचर, ऊनी तथा सूती कपड़ा, तम्बाकू, पेय पदार्थ, निर्माण कार्यों में काम आनेवाली वस्तुयें, तथा कृत्रिम दांत।

यह है वह आश्रित देश जो अधीनता की लम्बी यात्रा पूरी करने के पश्चात अगस्त ३१ को 'प्रभुता' नामक द्वार में प्रवेश करेगा।

●

ज्वालापुर में ५० करोड़ रु० लागत का बिजली का कारखाना

उ० प्र० के लिए चार बड़े कारखाने

उत्तर प्रदेश में केन्द्रीय सरकार द्वारा सार्वजनिक क्षेत्र में चार बड़े कारखानों की स्थापना की जा रही है। इनके नाम है – बिजली के भारी उपकरण बनाने का प्लाट, 'एण्टी-बायोटिक्स प्लाट, उर्वरक कारखाना और डीजल इजनों का कारखाना।

यह सूचना विधान परिषद् के प्रश्नोत्तरकाल में मुख्य मंत्री, श्री चन्द्रभानु गुप्त ने श्री हृदयनारायण सिंह के प्रश्न के लिखित उत्तर में दी।

उन्होंने बताया कि बिजली के भारी उपकरण बनाने का प्लांट ज्वालापुर (हरद्वार) में ५० करोड़ रुपयों की लागत से खोला जा रहा है। इस योजना के लिए उत्तर प्रदेश सरकार ४३ लाख रुपयों की लागत से आवश्यक भूमि का प्रबन्ध कर रही है और शेष व्यय केन्द्रीय सरकार वहन करेगी। तीसरी आयोजना के अन्त तक इस योजना के पूरी होने की आशा है जो 'हैवी इलेक्ट्रिकल्स लिमिटेड, द्वारा कार्यान्वित की जा रही है।

कीटाणुनाशक औषधियों के कारखाने (एण्टी-बायोटिक्स प्लांट) के बारे में मुख्य मन्त्री ने कहा कि इस कारखाने पर लगभग १५ करोड़ रुपये व्यय होंगे और यह ऋषीकेश में खुलेगा। राज्य सरकार इस योजना के लिए भी भूमि की व्यवस्था करेगी और शेष व्यय-भार भारत सरकार वहन करेगी। इस योजना को 'इण्डियन ड्रग्स एण्ड फार्मेसीटिकल्स लिमिटेड, कार्यान्वित कर रही है। इस योजना के तीसरी आयोजना के अन्त तक पूरी होने की आशा है।

इन्हीं प्रश्नकर्ता को बताया गया कि उर्वरक कारखाना गोरखपुर मे खुल रहा है जिसका पूरा व्यय-भार भारत सरकार वहन करेगी। इस योजना के भी तीसरी आयोजनावधि के अन्त तक पूरी होने की आशा है। इसको 'फर्टिलाइजर कारपोरेशन आफ इंडिया, बना रहा है। डीजल इजनों का कारखाना, भारत सरकार द्वारा अपने खर्चे पर मडुआडीह (वाराणसी) में खोला जा रहा है।

सुरसा भागीरथी के तट से :—

[हमारे विशेष सम्वाददाता श्री सुन्दरसिंह ध्याना द्वारा]

देवप्रयाग (डाक से) दिनांक—१५-८-६२ को स्वतन्त्रता दिवस के उपलक्ष में कन्या जूनियर हाई स्कूल देवप्रयाग की प्रधान अध्यापिका श्रीमती गोविन्दीदेवी के तत्वावधान में छात्राओं द्वारा डा रामकुमार वर्मा द्वारा लिखित कलिंग विजय नामक नाटक का सफल आयोजन किया गया। अशोक की भूमिका में विद्यावती नामक छात्रा और पद्मा की भूमिका मे हेमवन्ती डबवाल का कार्य अत्यन्त ही प्रशसनीय रहा। इस अवसर पर नगर के तहसीलदार श्री चारणदत्त पन्त महोदय ने छात्राओं और विशेष रूप से स्कूल की आध्यापिकाओं को बधाई दी।

●

देवप्रयाग (डाक से) यहा की एक मात्र शिक्षा संस्था आर के हा से. स्कूल में गतवर्ष की भांति फिर से अखाड़ेबाजी शुरू हो गई है। कई बार जि० विद्यालय निरीक्षक का ध्यान इस ओर आकर्षित करने की प्रार्थना भी की किन्तु यह महोदय कोई सक्रिय कदम नही उठाते, यहाँ तक कि पिछले साल शिक्षा मन्त्री उत्तर प्रदेश को लिखित रूप में भी यहाँ की अनियमितताओं का कच्चा चिट्ठा पेश किया था। पर कुछ फल न हुआ। खेद का विषय यह है कि सस्था के प्रधानाचार्य स्वय इस प्रकार की अखाड़ेबाजी में व्यस्त हैं यह महाशय अध्यापकों पर झूठा और गलत आरोप लगाकर निकालने में लगे हैं। स्मरण रहे कि पिछले दिनों घूडीलाल कोटियाल नामक अध्यापक पर भी एक बड़ा भयकर आरोप लगाकर उनको डरा धमका कर निकाल बाहर किया गया था। और अब यह महाशय अन्य अध्यापकों के पीछे पड़े हुए हैं। यदि समय रहते कदम न उठाया गया तो यह सस्था कभी भी रसातल को ओर अग्रसर हो सकती है। अत शिक्षाधिकारी इस ओर सख्त कदम उठायें ऐसा आग्रह है। [हमें इस समाचारको प्रकाशित करने में स्वत लज्जा महसूस हो रही है। हमारे दिल में एक अध्यापक के प्रति गहरी श्रद्धा है। प्रधानाचार्य तो किसी सस्था की आत्मा नहीं अपितु सस्था से सम्बन्धित क्षेत्र के भावी नागरिकों का निर्माता भी होता है। सम्भवत उक्त प्रधानाचार्य महोदय के सबध में कुछ गलत फहमिया भी हों। हमारा आग्रह है कि यह गलत फहमी भी तत्काल दूर की जाय और अगर इस सम्वाद में सच्चाई है तो प्रधानाचार्य महोदय से हमारा आग्रह है कि वे अपनी कुर्सी की मान मर्यादा की हर कीमत पर रक्षा करें। सम्पादक]

✱

देवप्रयाग (डाक से) पन्थ गाव पट्टी भरपुर का समाचार है कि उक्त ग्राम देवप्रयाग ऋषीकेश मार्ग के नवीन कटान के कारण काफी क्षतिग्रस्त हो गया है। यहाँ तक देखा गया है कि सड़क से ऊपर बने मकानों में दरारें पड़ चुकी हैं। हजारों रुपये के खेतों में खड़ी फसल सहित खेत मलबे और पत्थरों से ढक दिये गये हैं। बार बार ग्राम वासियों ने सार्वजनिक निर्माण विभाग के अधिकारियों से जाकर अपनी राम कहानी सुनाई थी किन्तु सार्वजनिक निर्माण विभाग के ये अन्धे कर्मचारियों को चाहिए कि पैसा बटोरने की अपेक्षा तत्काल इधर भी कदम उठायें।

टिहरी गढ़वाल में

अतिवर्षण और बाढ़ से हुई क्षति

लखनऊ— विगत कई वर्षों से जिला टिहरी गढ़वाल की कई नदियों में भयकर बाढ़ आ रही है। इस वर्ष बरहार पट्टी में खेतों को बड़ा नुकसान पहुचा है और उखेला गाव खतरे में आ गया है। २७ तारीख अगस्त, ६२ के दिन उत्तर प्रदेश के माल मन्त्री श्री हुकुम सिंह विशेन ने बाढ़ जन्य क्षति का जिलावार विवरण विधान सभा में पेश किया उसमें जिला टिहरी गढ़वाल का कोई उल्लेख नहीं था। टिहरी गढ़वाल की विधायका श्रीमती निय लक्ष्मी सुमन २८ अगस्त ६२ को माल मन्त्री का ध्यान आकर्षित करते हुए खेद प्रगट किया कि अगले दिन विधान सभा में पेश की गई लिस्ट में उनके जिले की बाढ़ जन्य क्षति का कोई उल्लेख नहीं था। ज्ञात हुआ है कि माल मन्त्री ने तत्काल माल सचिव को विधायिका श्रीमती सुमन से प्राप्त बाढ़ सम्बन्धी सूचनाओं से अवगत कराया और आदेश दिया कि टिहरी गढ़वाल के जिलाधीश से तत्काल अतिवर्ष एव बाढ़ से हुई क्षति की रिपोर्ट मांगी जाय और इसके बाद जिले के पीड़ित नागरिकों को तात्कालिक राहत देने का काम किया जाय।

सम्वाददाता

भारत में

डीजल रेल-इंजन का पहला कारखाना

आशा है भारत का पहला डीजल-रेल-इजन कारखाना अगले वर्ष के अन्त में काम करना शुरू कर देगा। इस काम में सहयोग देने वाली अमेरिकन फर्म एलको ने जो रिपोर्ट तैयार की थी, उसकी जांच का काम समाप्त हो गया है। रिपोट की कुछ बातों पर, जैसे वर्कशाप का नक्शा, मशीनों के विशेष विवरण और इजन तैयार करने की समयावली पर काम होना शुरू हो गया है। इस कारखाने में पहले पहल १५० डीजल रेल-इजन प्रतिवर्ष बनेंगे। इसका और विस्तार करने की व्यवस्था भी है, जिससे भविष्य मे प्रतिवर्ष २५० डीजल-रेल इजन बनने लगेंगे।

●

शासन से प्राप्त सुविधाओं का वितरण समाजवादी ढंग से हो

छात्रवृत्तियों के वितरण में पक्षपात??

जब उत्तराखण्ड का निर्माण हुआ तब इस प्रभाग के नागरिकों को विविध प्रकार की सुविधायें देने के शासकीय संकल्प का भी ऐलान हुआ, उन सुविधाओं में एक सुविधा, जिसे हम सर्वाधिक महत्व की सुविधा समझते हैं, इस प्रभाग के होनहार छात्र-छात्राओं को प्राप्त है, वह है छात्र वृत्ति आदि के रूप में आर्थिक सहायता प्राप्त करने की। ये सर्व सुविधायें समाजवादी राज और अर्थ-व्यवस्था के अन्तर्गत प्राप्त होती हैं, लेकिन निरन्तर प्राप्त होने वाली सूचनाओं से हमें मालूम हो रहा है कि उत्तर खण्ड में समाजवादी भावना का आदर उसका तिरष्कार करने में हो रहा है। यहां छात्रवृत्तियों के वितरण के मामले में नग्न रूप से सामन्तवाद का अनुसरण हो रहा है, यानि जो लोग असरदार हैं, पैसे और सम्पत्ति वाले हैं, उनके लड़के-लड़कियों को काफी मोटी रकम प्राप्त हो रही है और दीन-हीन का कोई नाम लेता भी नहीं है। हमारा विश्वास है कि शासन के उच्चस्तर पर इस लज्जाजनक परिस्थिति की समुचित जानकारी नहीं है, अन्यथा लखनऊ बहुत पहिले ही इस सम्बन्ध में उचित छान-बीन करता और इस पर रोक लगा देता। प्रस्तुत लेख को हम इस आशय और आशा से प्रकाशित कर रहे हैं कि भविष्य में शासन द्वारा दी जाने वाली सुविधाओं का वितरण समाजवादी सिद्धान्त और मान्यताओं को समादृत करते होगा और जिन्हे ये सुविधायें दी जाती हैं, उन्हे तब तक उसका इन्तजार करने के लिए मजबूर न किया जायगा जबतक खेती बुरी तरह सूख न जाय। उत्तराखण्ड में पक्षपात और लालफीताशाही केवल राष्ट्रहित को खतरे में डालकर ही बरती जा सकती है।

—सम्पादक

आज से २ वर्ष पूर्व २४ फरवरी सन १९६० को, तत्कालीन मुख्य मन्त्री डा० सम्पूर्णानंद ने पृथक उत्तराखण्ड डिवीजन की घोषणा की थी, इसी डिवीजन के अन्तर्गत चमोली जिले का निर्माण भी हुआ, सरकार इस क्षेत्र की विशेष परिस्थितियों एवं गरीबी को ध्यान में रखते हुए इस क्षेत्र के आर्थिक विकास के लिए प्रयत्नशील है। इसके अतिरिक्त शैक्षिक विकास की योजना हेतु भी सरकार हजारों रु० प्रतिवर्ष छात्रवृत्ति दे रही है। इस सबंध में एक राजा (जी० ओ०) भी प्रकाशित की गई कि सीमान्त क्षेत्र में सीमांत वजीफे का उद्देश्य गरीब पिछड़े तथा दलित वर्ग के छात्रों को उन्नति हेतु सहायता देना है।

अब प्रश्न यह है कि इस राजाज्ञा का पालन कहां तक किया जा रहा है। सन १९६१-६२ के बजट में कुल मिलाकर सैंतालीस हजार पांच सौ रुपये वजीफे के निमित्त बांटे गये किन्तु दुख के साथ कहना पड़ता है, कि राजाज्ञा के अनुसार गरीब पिछड़े तथा दलित वर्ग के छात्रों पर कोई ध्यान नहीं दिया गया। वजीफे की सूचियों को देखने से निम्नलिखित निष्कर्ष निकलता है।

१- बाडर वजीफे से गरीब, पिछड़े और दलित वर्ग के छात्रों के स्थान पर सुसम्पन्न परिवार के छात्र लाभान्वित हुए हैं। ये ऐसे छात्र हैं कि जिनके परिवार के आपके साधन अति उन्नतशील हैं।

२- वजीफे ऐसे छात्रों को दिये गये, जिनके परिवार में दो-दो तीन-तीन सदस्य ऊंची ऊंची आय वाले हैं,

३- वजीफा उन निर्धन तथा असहाय छात्रों को नहीं दिया गया है जिनकी कोई सिफारिश न थी और जिनके लिए यह वजीफा एक वास्तविक सहायता होती,

४- वजीफे की बड़ी २ धन राशि एक ही परिवार के कई छात्रों को दिया गया है, जबकि अधिकांश छात्रों को छोटी २ धन राशी भी उपलब्ध न हुई।

५- वजीफे से 'जी हुजूर' वर्ग के छात्रों, जिलाधीश के आधीन कर्मचारियों तथा जिला विद्यालय निरीक्षक के कर्मचारियों के अभिभावकों को अधिकाधिक लाभ हुआ।

६- वजीफा बांटने में औचित्य और न्याय का स्थान पक्षपात और सिफारिश ने लिया। इसका स्पष्ट उदाहरण यह है कि चमोली जिले से तीन छात्रों ने राजकीय बेसिक ट्रेनिंग कालेज वाराणसी में एल. टी की ट्रेनिंग प्राप्त की तीनों छात्रों की योग्यता समान थी किन्तु वजीफा उसी एक छात्र को दिया गया जिसके रिश्तेदार कलेक्टरी और जिला विद्यालय निरीक्षक के कार्यालय में काम करते थे।

७- कुछ आर्ट के छात्र जो कि लखनऊ विश्वविद्यालय में पढ़ते हैं वे छात्रवृत्ति के लिए जिलाधीश से मिलें जिलाधीश ने इस बहाने से सहायता देना मना किया, कि वे आर्ट के छात्र हैं, किन्तु आर्ट के दूसरे छात्रों को सहायता दी गई।

८ वजीफे की बड़ी धन राशि उन छात्रों को जिलाधीश ने दी जिनके परिवार चार चार पांच-पांच पीढ़ी से मैदानों में रह रहे हैं, उन्होंने न कभी चमोली जिले के उत्थान में कोई योग दिया है, और न उसके सुख दुख में ही योग दिया है, यहां तक कि वे अपने आपको चमोली का नागरिक कहने में भी लज्जा का अनुभव करते हैं ज्ञात हुआ है कि वजीफे के निर्धारण करने के लिए जिलाधीश द्वारा जिले के उच्च अधिकारियों की बैठक बुलाई जाती है, इस बैठक में न परामर्शदात्री समिति के सदस्य होते हैं, और न अन्य जन प्रतिनिधि ही होते हैं, यह एक सामन्तशाही युग की याद दिलाती है, ये अधिकारी अधिकांश मैदानों के रहने वाले हैं, जिन्हे कि किसी भी छात्र की आर्थिक स्थिति का सही ज्ञान नहीं होता है, जिलाधीश भी पटवारी या ग्राम पंचायतों से कोई भी लेखा छात्रों के सम्बन्ध में नहीं मंगाते जिसके आधार पर छात्रवृत्ति वितरण की जा सके।

यह गड़बड़ी प्रारम्भ से चली आ रही है, परामर्शदात्री समिति के समस्त सदस्य इस व्यवहार से असंतुष्ट हैं। इन्हीं सदस्यों के अनुरोध पर संसद सदस्य श्री भक्त दर्शन ने गत वर्ष एक बैठक में जिलाधीश को सुझाव दिया कि छात्रवृत्ति के निर्धारण के लिये एक कमेटी बनाई जावे जिसमें आधे सरकारी सदस्य रहें और आधे गैर सरकारी किन्तु जिलाधीश ने उनका सुझाव स्पष्ट शब्दों अमान्य कर दिया।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट ज्ञात होता है कि इसका सम्पूर्ण उत्तरदायित्व जिलाधीश पर है, जिलाधीश ने अपने उत्तरदायित्व को निभाने का कोई प्रयत्न नहीं किया है, श्री भक्त जी के सुझाव को न मानकर तो यह विदित होता है, कि वे ऐसे वर्ग का पालन पोषण करना चाहते हैं, जिनने सदैव प्रजातंत्र पर कुठाराघात किया है, अतएव पुरजोर शब्दों में सरकार से प्रार्थना है कि इस मामले की छान बीन के लिए एक 'हाई पावर' गैर सरकारी कमेटी नियुक्त की जाय।

★

एक उत्साहवर्द्धक रिपोर्ट

चमोली जिले में उद्यान विकास-कार्य

मैं अपने सम्पादकीय कर्तव्य से चमोली जिले में भ्रमण कर रहा था और विभिन्न स्थानों को देखने का शुभअवसर प्राप्त हुआ। चमोली, जोशीमठ, परसारी पाण्डुकेसर एवं बद्रीनाथ में मेरी इन आंखों ने उद्यान विकास के जो कार्य देखे उनको देखकर मैं स्वयं अचम्भित हो गया हूं। सारे जोशीमठ क्षेत्र में लगभग सभी जगह खेत आलू, गोभी, फ्रन्चबीन, टमाटर, मैरो, सलाद आदि से लहलहाते हुए दिखाई दिये। इसके अतिरिक्त जगह-जगह अति सुन्दर उद्यान भी लगे हुये हैं। जोशीमठ और चमोली के फल संरक्षण केन्द्रों में माल्टा एवं नीबू के पेय रस के लिए खूब भीड़ लगी रहती है। जोशीमठ के सारे बाजार के विभिन्न दूकानदारों और चमोली मोटर स्टेशन के पास तथा गोपेश्वर में विभागीय फल संरक्षण केन्द्रों द्वारा निर्मित पेय पदार्थ बहुत अच्छे रूप से बिक रहे हैं। मुझे यह जानकर एक अचम्भा सा हुआ कि उद्यान विभाग की इतनी आशातीत प्रगति जन-साधारण की जानकारी में न आ पाई है और नहीं यहां का कोई प्रचार हुआ जिला उद्यान अधिकारी से सम्पर्क स्थापित होने पर उन्होंने बताया कि सारी मंदाकिनी एवं पिण्डर घाटियों में इसी प्रकार विकास की गति है।

इस समय चमोली जिले में प्रत्येक विकासखण्ड में एक उद्यान उपकेन्द्र स्थापित है और पांच उद्यान सिंगधार (जोशीमठ), परसारी, सुभाई (जोशीमठ) ग्वालदम तथा जाखधार में स्थापित हैं। उद्यान विकास को बढ़ावा देने के लिए यह आवश्यकीय है कि प्रत्येक विकास खण्ड में एक आदर्श उद्यान स्थापित हो तथा अधिक से अधिक फल-संरक्षण केन्द्र चालू किये जाय।

मुझे यह देखकर और भी प्रसन्नता हुई कि जिला चमोली में और सब्जी उत्पादन के प्रति लोगों में काफी दिलचस्पी पैदा हो रही है। एक कमी जो थोड़ा सा खटकी है वह विभाग के सचल दल उपेक्षा की नीति है।

—धनञ्जय भट्ट

ताकि सरहदी नागरिकों का रोजगार और उनकी आमदनी बढ़े और उनकी जिन्दगी से अभाव और मजबूरियाँ दूर हों

उत्तरकाशी जिले में उद्योग-धन्धे

विकास — कार्यक्रम

श्री दिवाकर उपाध्याय
सूचना अधिकारी, उत्तरकाशी

उत्तरकाशी एक पिछड़ा हुआ पर्वतीय जिला है जहां लोगों की आर्थिक उन्नति के लिये कृषि विकास के अतिरिक्त भेड़ पालन, बागवानी और उद्योग धंधों का विकास आवश्यक है। यही कारण है कि जिला बनने के पूर्व ही सीमान्त ऊन विकास योजना के अन्तर्गत इस क्षेत्र में उद्योग धंधों के विकास के लिये कार्य प्रारम्भ कर दिया गया था। २४ फरवरी १९६० को नये जिले का संगठन हुआ। तब से अब तक इस क्षेत्र में व्यापक आकार पर औद्योगिक विकास के कार्यक्रम प्रारम्भ किये गये हैं। पहाड़ी प्रदेश होने के कारण इस जिले में प्राचीन काल से ही भेड़ पालने और ऊन पैदा करने का काम किया जाता है। जिस समय यातायात के साधनों का अभाव था यहां के लोग ऊनी सामान तैयार करने का काम करते थे परन्तु ऊन उत्पादन का तरीका बहुत पुराना था और अच्छी नस्ल की भेड़ों की भी कमी थी। इन कारणों से उत्पादन क्षमता बहुत कम थी।

सीमान्त ऊन योजना को चालू करने का उद्देश्य यहां की जनता को आधुनिक ढंग के औजारों पर कताई बुनाई और रंगाई सीखना, कच्चे माल की पूर्ति करना, उसके सामान की बिक्री की व्यवस्था करना तथा औद्योगिक विकास के लिए ऋण देना था। सन १९५५ में यह योजना चालू की गई थी परन्तु उस समय इसका क्षेत्र केवल भटवाड़ी विकास खण्ड तक ही सीमित था। जिला बनने के बाद न केवल इस योजना को पूरे जिले में बढ़ा दिया गया अच्छी नस्ल की भेड़ के विकास के कार्यक्रम से इसका सम्बन्ध स्थापित किया गया ताकि उत्पादन के किस्म में सुधार होने के साथ ऊन उत्पादन की क्षमता ६० प्र० श० बढ़ भी जाए।

ऊन उत्पादन का कार्य इस जिले में जाड़ और कोली जात के लोग मुख्य पेशे के रूप में करते हैं अन्य लोगों द्वारा भी यह काम किया जाता है परन्तु उन लोगों का मुख्य पेशा ऊन उत्पादन नहीं है। जाड़ और कोली लोगों को कताई बुनाई में अधिक प्रशिक्षित करने तथा कुशल बनाने के लिऐ ६०-६१ में एक सचल उत्पादन एवं प्रशिक्षण केन्द्र प्रारम्भ किया गया। इसके पूर्व उत्तरकाशी में तथा भटवाड़ी में ऐसे केन्द्रों की स्थापना हो चुकी थी परन्तु यह केन्द्र मोबाइल नहीं थे। जाड और कोली लोग वर्ष में ६ माह हरसिल के आस पास रहते हैं तथा ६ माह डुण्डा में जो उत्तरकाशी के समीप है रहते हैं। अतः इनके साथ मुबाइल प्रशिक्षण उत्पादन केन्द्र का होना आवश्यक था। इस प्रकार इस समय सीमान्त ऊन योजना के अन्तर्गत भटवाड़ी उत्तरकाशी तथा डुण्डा हरसिल के मोबाइल केन्द्र कार्य कर रहे हैं। इन केन्द्रों द्वारा ६० ६१ में ४१००० रु० का ऊनी माल तैयार किया गया और पहले के कुछ माल को लेकर ४४५०० रु० की बिक्री की गई। ६१-६२ में ५६७६८ रु० के ऊनी कपड़े तैयार किये गए। और ४२००० रु० की बिक्री की गई। इन केन्द्रों द्वारा उन्नत किस्म के चर्खे भी बांटे गए और गत दो वर्षों में ३६ व्यक्तियों को २५ रु० मासिक छात्रवृत्ति देकर प्रशिक्षित भी किया गया।

बिनाई प्रशिक्षण-केन्द्र नौगांव

कुछ ऐसे भी क्षेत्र हैं जहां के लोग ऊन उत्पादन तथा भेड़ पालन का कार्य मुख्य पेशे रूप में नहीं अपना सकते हैं परन्तु वे इस काम को सहायक धंधे के रूप में चालू रखना चाहते हैं। ऐसे लोगों की सुविधा के लिए नौगाव में एक बिनाई प्रशिक्षण केन्द्र स्थापित किया गया है जिसमें लोगों को भिन्न प्रकार के ऊनी कपड़े बुनने का प्रशिक्षण दिया जाता है। अभी इस केन्द्र की प्रगति हम बहुत संतोषप्रद नहीं कह सकते हैं परन्तु इसके भविष्य में अधिक कारगर होने की बहुत सम्भावना है। गत दो वर्षों में इसके अन्तर्गत ५२ व्यक्ति प्रशिक्षित किये गए हैं तथा ३५०० रु० का वस्त्र तैयार किया गया है।

सिलाई प्रशिक्षण केन्द्र

इस क्षेत्र में हरिजन लोग सिलाई का काम काफी समय से करते आ रहे हैं। ऐसे लोगों को प्रशिक्षित करने के लिए भटवाड़ी तथा नौगाव में सिलाई केन्द्रों की स्थापना की गई है।

जल-चर्खा

उत्पादन की मात्रा तथा किस्म में सुधार करने के लिए जल चर्खे स्थापित करने की योजना भी चालू की गई। ६० ६१ में रतूड़ी सेरा का जल चर्खा चालू किया गया तथा ६१ ६२ में भटवाड़ी का जल चर्खा भी चालू हो गया है इन जल चर्खों से तैयार किये गये तागे से बने कपड़े सस्ते और अच्छे होते हैं। शीघ्र ही मनेरी में भी एक जल चर्खा चालू हो जायगा। अब तक ६ जल चर्खों के भवनों का निर्माण हो चुका है। भटवाड़ी के जल चर्खे का काम गत मार्च से ही प्रारम्भ हुआ है परन्तु रतूड़ीसेरा जल चर्खा द्वारा ४६३ किलोग्राम तागा ६१-६२ में तैयार किया गया। प्रारम्भ में इन्हें चलाने के लिए प्रशिक्षित व्यक्तियों को उपलब्ध करने में बड़ी दिक्कत हो रही है फिर भी इस योजना के विकास की काफी गुंजाइश है।

अन्य कार्यक्रम

उद्योग विभाग द्वारा उत्तरकाशी में काष्ट कला केन्द्र भी चालू किया गया है इसके अतिरिक्त उत्तरकाशी में कढ़ाई बिनाई केन्द्र, नाकूरी में गलीचा केन्द्र, डुण्डा में साल बिनाई केन्द्र, भी कार्य कर रहे हैं, इनके द्वारा अब तक ६३ व्यक्ति प्रशिक्षित किए गए हैं जिन्हे १५) से लेकर २५) तक मासिक छात्रवृत्ति दी गई है। इन केन्द्रों द्वारा अब तक २५०००) का सामान तैयार हुआ है। उत्तरकाशी में एक कार्डिंग प्लान्ट भी ६० ६१ से चालू किया गया। जिले में वस्त्र उत्पादन की प्रगति में इस कार्डिंग प्लान्ट का मुख्य स्थान है। इससे ऊन की सफाई छटाई भी हो जाती है। गत वर्ष इस प्लान्ट के साथ रंगाई और मढ़ाई का भी काम शुरू किया। अब तक इस प्लान्ट द्वारा १०००० किलोग्राम ऊन की कार्डिंग की गई। ५० न० पै० प्रति सेर की दर से चार्ज लेकर दूसरे लोगों की भी ऊन को यहां कार्ड किया जाता है।

ऋण

जिले में उद्योग धंधे के विकास के लिए ऋण देने की भी व्यवस्था है। ६०-६१ में ४३५००) तथा ६१ ६२ में ३०००० रुपया ऋण वितरित किया गया।

जिले में औद्योगिक विकास की काफी सम्भावनायें हैं। तृतीय पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत उत्पादन एवं प्रशिक्षण केन्द्रों पर ३७५००० रु० व्यय होने का अनुमान है जिससे जिले के अन्तर्गत ऐसे १० केन्द्र स्थापित हो जायेंगे। ४८८००० रु० गृह उद्योग धंधों के विकास के लिए ऋण वितरित करने का भी प्रस्ताव है। तृतीय पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत ही एक कृषि औजार तथा लोहे के चादरों के ढालने के काम करने वाले केन्द्र, तीन वनस्पति रेशा उद्योग केन्द्र और एक ग्रामीण उद्योग संस्थान खोलने का भी प्रस्ताव है।

---

३ करोड़ २७ लाख रुपये की धनराशि

पर्वतीय जिलों में कृषि उत्पादन बढ़ाने के लिये

लखनऊ – २४ अगस्त ६२ तृतीय आयोजना काल में प्रदेश के पर्वतीय जिलों में कृषि उत्पादन बढ़ाने के निमित्त तैयार की गई योजना के लिए कुल ३ करोड़ २७ लाख रुपये की धनराशि निर्धारित की गई है।

कृषि विभाग के अतिरिक्त, स्वायत्त शासन, उद्योग तथा गन्ना विभाग भी ऐसी योजनायें कार्यान्वित करेंगे जिनका कृषि उत्पादन से सीधा सम्बन्ध है।

कृषि विभाग की उपर्युक्त उद्देश्य की पूर्ति के लिए ३५ योजनायें हैं। इनके लिए २ करोड़ २७ लाख रुपये की धनराशि निर्धारित की गई है। स्वायत्त शासन विभाग ५ लाख रुपये की लागत से देहरादून में सिवेज का उपयोग करने की केवल एक योजना कार्यान्वित करेगा।

उद्योग विभाग को अपनी योजनाओं को कार्यान्वित करने के लिये ३० लाख रु० दिया गया है। इन योजनाओं के अन्तर्गत वर्तमान पौधघरों का विस्तार, फल के पौधों के निर्यात सम्बन्धी व्यय के लिये अनुदान, राजकीय उद्यानों का विकास कार्य, चौबटिया स्थित फल शोध केन्द्र का विस्तार, चौबटिया में बागवानी का प्रशिक्षण कार्य, अतिरिक्त सामुदायिक फल संरक्षण एवं प्रशिक्षण केन्द्रों की स्थापना, प्रोसेसिंग इकाइयों की स्थापना के लिये उत्पादकों की सहकारी समितियों का निर्माण, देहरादून में फल प्रोसेसिंग इकाई की स्थापना तथा एक सचल प्रदर्शन संगठित किया जायगा।

गन्ना विभाग १४ लाख रुपए की लागत से शक्कर कारखानों के आस-पास छोटी छोटी पगडंडियों तथा तारकोल की सड़कों का निर्माण करेगा।

राज्य सरकार ने तृतीय आयोजना के प्रथम वर्ष में इन योजनाओं के अन्तर्गत पर्वतीय जिलों में जो कुछ प्रगति हुई है, उसका विवरण प्रत्येक जिले से मांगा है।

सरहदी क्षेत्र में स्वाधीनता-दिवस समारोह

[हमारे सम्वाददाताओं तथा सरकारी सूत्रों द्वारा]

दैडा से श्री नारायणसिंह जी प्रबन्धक जू०हाई० स्कूल दैडा लिखते हैं कि- सबसे पहिले प्रभातफेरी स्कूल के छात्रों द्वारा की गई, इस फेरी में ग्रामसेवक, सुपरवाइजर तथा अन्य कर्मचारी एवं वृहद् जन-समूह भी सम्मिलित था। दिन में इस दिवस को सफल बनाने के लिए विभिन्न खेलों का भी आयोजन किया गया— श्री बचनसिंह जी ग्राम करोली के सभापतित्व मे विभिन्न प्रकार के सांस्कृतिक कार्यक्रम तथा पाण्डव-नृत्यों का भी आयोजन किया गया— स्थानीय जनता ने भी बड़े उत्साह लगन व हर्षोत्साह के साथ इस पुनीत दिवस को मनाया— अन्त मे मिष्ठान्न वितरण भी किया गया।

●

दुम्मर मुनस्यारी से श्री, गोकुल सिंह हजवाल लिखते हैं कि— १५ अगस्त का स्वाधीनता दिवस हमारी नव निर्मित रा० आ० वि० दुम्मर में बड़े समारोह के साथ मनाया गया। प्रभातफेरी के पश्चात परम्परानुसार झण्डारोहण किया गया वृहत्त जन समुदाय ने बड़े उल्लास के साथ व तुमुल राष्ट्रीय नारों के साथ दिवस को सफल बनाने मे कोई कसर नही रखी है।

श्री त्रिलोकी सिंह जी बृजवाल ने अध्यक्ष का पद ग्रहण कर सभा की शोभा बढ़ाई, नव-निर्मित रा० पाठशाला के प्रांगण में एक सभा का भी आयोजन किया गया— पाठशाला के छात्र छात्राओं ने विभिन्न खेलों तथा सांस्कृतिक कार्यक्रमों का सृजन कर जनता का मनोरंजन किया है। तत्पश्चात श्री त्रिलोकी सिंह बृजवाल जी के सभापतित्व भाषण हुए हैं। श्री दुर्गेश बृजवाल हिमाल तथा कुन्दनसिंह बृजवालके भी बहुत ही महत्वपूर्ण भाषण हुए।

अन्त में अध्यक्ष महोदय के करकमलों द्वारा पुरस्कार वितरण हुआ तथा छात्रों को विभिन्न पारितोषिक देकर उनका साहस बढ़ाया।

●

गड़गाड (रवाईं) से हमारे विशेष सम्वाददाता लिखते है कि विगत वर्षों की भांति इस वर्ष भी गड़गाड में स्वाधीनता दिवस वहां की जनता ने बड़े हर्षोल्लास तथा उमंग से मनाया है, प्रातःकाल स्कूलों के छात्रों ने प्रभातफेरी की, सरकारी कर्मचारी भी इस फेरी में सम्मिलित थे। जनता अपने इस पुनीत दिवस को मनाने के लिए अपार समूह में उमड़ पड़ी थी, जनसमूह ने सादर झण्डारोहण किया है। जनता के द्वारा बनाये गये मैदान में विभिन्न कार्यक्रमों का आयोजन किया गया, पूरा मैदान बाजे-गाजों से भरा हुआ था। खेल-कूद तथा सांस्कृतिक कार्यक्रमों के पश्चात एक सभा भी बुलाई गई जिसका सभापतित्व डोभाल गांव के सभापति ने किया है। श्री बहुनी जी चिकित्साधिकारी ने १५ अगस्त की महत्ता पर प्रकाश डाला। अन्त मे जनता से एकत्रित धनराशि का मिष्ठान्न वितरण किया गया। इस दिवस को सफल बनाने में चिकित्सा कर्मचारी वर्ग, डोभाल गाव राजकीय उद्यान कर्मचारी वर्ग धरमोला एवं स्थानीय ग्रामसेवक श्री सजवाण का विशेष हाथ रहा। रात को युवक मंगल दल ने कैम्पफायर कर जनता का मनोरंजन किया।

●

गमशाली से हमारे सम्वाददाता लिखते हैं कि— पन्द्रह अगस्त का स्वाधीनता दिवस ग्रामसभा नीती, गमशाली, बाम्पा की तमाम जनता, रा० इण्टर कालेज गमशाली स्थित १४, राजपूत राइफल्स, २५ पायनीर कम्पनी और चकपोस्ट, पी०एस०सी० पोस्ट आफिस तथा अन्य सरकारी तथा गैर-सरकारी इस प्रकार ढाई हजार के अपार जन-समुदाय ने बड़े उमंग हर्ष तथा उल्लास के साथ मनाया। यह पुनीत दिवस रा० इण्टर कालेज के प्रांगण में मेजर श्री जयपाल सिंह जी चौहान के सभापतित्व में मनाया गया।

निकटवर्ती जनता गाजे-बाजों के साथ बड़ी सज-धज के साथ झण्डारोहण के लिए आई थी। दिन के ठीक १२ बजे रा० इंटर कालेज के प्रांगणमें तमाम जनता एकत्रित हुई। प्रधानाचार्य श्री कवीन्द्रशेखर ने स्वागत भाषण दिया। इसके पश्चात श्री पानसिंह जी बम्पाल ने मेजर चौहान के हाथ में राखी बांधकर उन्हें राजस्थान की परम्परा की याद दिलाकर अपनी रक्षा की जुम्मेदारी सौंपी और समस्त घाटी की भोटिया जनता की ओर से जो कि सदियों से भारत तिब्बत सीमा पर सन्तरी के रूप में निवास करती आ रही है उनकी ओर से श्री पानसिंह बाम्पाल ने भारत-सरकार को यह विश्वास दिलाया कि घाटी की समस्त जनता जबतक उनकी नसों में एक भी बूंद रक्त का रहेगा तथा जबतक उनकी अन्तिम सांस चलती रहेगी, तबतक वे भारत-माता की आन, मान, शान, व मर्यादा की रक्षा के लिए तथा अपनी स्वतन्त्रता की रक्षा के लिए वे अपने प्राणों की आहुति देने के लिए भी तैयार रहेंगे।

इसके पश्चात विभिन्न कार्यक्रमों का भी आयोजन किया गया है। रा० इ० का० की छात्राओं ने राष्ट्रीयगान से सांस्कृतिक कार्यक्रमों का श्रीगणेश किया। स्थानीय जनता ने प्राथमिक विद्यालय के छात्रों ने तथा सेना के जवानों में भिन्न-भिन्न कार्यक्रमों का सृजन कर जनता का मनोरंजन किया अन्त में अध्यक्ष महोदय के भाषण हुये जिसमें उन्होंने १५ अगस्त की महत्ता पर प्रकाश डाला तथा पारितोषिक वितरण कर हार्दिक बधाई दी। उन्होंने कहा कि उन्होंने तीन साल तक देहली में स्वाधीनता दिवस देखा किन्तु जिस प्रकार का उत्साह, लगन व निष्ठा यहां के लोगों में पाई गई है इस प्रकार की भावनाओं का वहां सर्वथा अभाव पाया गया है। रा० इ० कालेज के प्रधानाचार्य, अध्यापक तथा छात्रगण विशेष बधाई के पात्र हैं जिन्होंने कि जगल में मंगल का जैसा काम किया है। मेजर सिखारीके भी विशेष आभारी हैं जिनकी कृपासे लाउडस्पीकरकी भी प्राप्ति होसकी है एक बातसे जिससे कि जनतामें महान क्षोभ है कि विकास खण्ड पैनखण्डा से ध्वनि विस्तारक यन्त्र का न मिलना।

एक और सराहनीय कार्य जो इस महान पर्व के दिन हुआ वह यह था कि गरीब छात्रों के सहायतार्थ कुछ दानी-मानी लोगों ने दान दिया सर्व श्री श्यामसिंह पाल ने २५,०० रु० श्री माधोसिंह कुंवर ने २० रु० श्री भगतसिंह रावत गमसाली ने १५ रु० श्री मती हनी ४ रु० श्री जसवन्त सिंह पिलग ने ३) श्री दयाल सिंह रावत ने २) श्री दयालसिंह चौहान ने २) श्री उमेद सिंह रावत ने ३ रु० श्री अमनसिंह ने २ रु० इसके अतिरिक्त खेल के मैदान में ६१ रु० एकत्रित हुए हैं किन्तु उनके नाम प्राप्त नहीं हो सके हैं। दान दाताओं मे जिसका नाम सबसे उल्लेखनीय तथा अनुकरणीय है वह स्कूल की गरीब जमादारिन का है जिसने ११ रु० चन्दा प्रदान कर एक महान आदर्श की स्थापना की। क्या ही अच्छा होता कि नीती घाटी की नारी समाज भी इस गरीब जमादारिन का अनुकरण कर समाज सेवा कार्य में हाथ बटाते।

सैनिक भाईयो के सहयोग व उत्साह के लिए हार्दिक बधाइयां तथा आभार प्रदर्शन के साथ धन्यवाद।

महर्षि दयानन्द सरस्वती

(श्री अमीर चन्द जी गुप्त तोपखाना बाजार अम्बाला कैंट)

एक अन्धेरी रात में जब कि चन्द्रमा ने अपना मुह अपनी प्रिय रमा के आंचल में छिपा लिया है। इन्द्रदेव तुफानी पवन के के साथ रात्रि की कालिमा को और भी जटिल कर रहे हैं। पानी की रिम झिम और वायु का शब्द ही रात्री की नीरवता को भग कर कर रहा है। हाथ को हाथ नहीं सूझता। मेंढकों की टरटराहट अत्यन्त भयावनी प्रतीत हो रही है। ऐसे ही समय में एक पथिक मार्ग से भटक कर अन्धकार के पर्दे को चीरता हुआ आगे ही आगे बढ़ा जा रहा है। मार्ग में कांटे आते हैं उस के पैर छिल कर छलनी हो गए हैं। जगह २ से खून निकल रहा है। पैर थक कर चूर हो गए हैं। एक एक कदम एक एक मन का प्रतीत हो रहा है। किन्तु फिर भी यह पथिक अपने लक्ष्य की ओर बढ़ा जा रहा है। उस को इन सब कष्टों की तनिक भी परवाह नहीं है। उन की नजरों में तो है बीहड़ पथ और अतीत दूरी पर उस का लक्ष्य चलते २ उस को ठोकर लगती है वह गिर पड़ता है। उठता है और फिर चल पड़ता है। एक दो कदम चल कर फिर ठोकर खाता है फिर गिर पड़ता है घुटने छिल जाते हैं। किन्तु फिर भी वह उठता है और चल पड़ता है। थोड़ी दूर चलता है और लड़खड़ाते हैं किन्तु फिर सम्भल जाता है और सम्भल-सम्भल कर कदम रखने लगता है। थोड़ी दूर चलता है फिर लड़खड़ा कर गिर पड़ता है। मूर्छित हो जाता है। होश में आने पर फिर उठने का प्रयत्न करता है किन्तु कराह कर एक ओर को लुढ़क जाता है और तब अचानक ही उसके मुख से निकल जाता है "धूलिमय क्या नभ इसी से बांध दूं मैं नाव तट पर," इस प्रकार के कथानक से अपने को प्रसन्न करता हुआ और दुःखों को न समझता हुआ वह पथिक अन्त में अपने लक्ष्य पर पहुंचता है। आप पूछेंगे वह पथिक कौन था। वह पथिक देवता नहीं, राक्षस नहीं, भैरव नहीं, रुद्र नहीं बल्कि वह भी हमारे जैसा ही था। वह था दृढ़ निश्चयी, हृष्ट-पुष्ट, सच्चे शिव को तालाश करने वाला मूलशंकर।

मन के अन्दर एक धुन लगी हुई है 'सच्चा शिव कहा है और कौन सा है।' मार्ग मे इतने कष्ट भोगने पड़ते हैं किन्तु उस लग्न के सम्मुख सब कुछ शुष्क है। अपनी इसी लगन को लिए वह पथिक रात्री के ठीक १२ बजे दण्डी जी की कुटिया पर पहुचता है। दरवाजा खटखटाता है। दण्डी जो रात्रि को दरवाजे का शब्द सुन कर एक दम चौंक जाते हैं। सहसा दण्डी जी प्रश्न करते हैं 'कौन है'। उत्तर मिलता है 'कौन हू यही तो जानने आया हूं।' यह एक प्रश्न और एक उत्तर है। दण्डी जी के मुख से निकलता है 'अन्धे को लाठी मिल गई।' दरवाजा अभी तक खोला नहीं गया है। दोनों एक दूसरे से अपारदर्शनीय हैं। परन्तु फिर भी दोनों की इच्छाएं पूर्ण हो जाती हैं। विरजानन्द उठते हैं और दरवाजा खोलते हैं। दरवाजा खुलना था कि मानों दण्डी की कुटिया के द्वार पर मूलशंकर नहीं बल्कि भगवान भास्कर प्रतीक्षा मे खड़े थे। सारी कुटिया प्रकाश से जगमगा गई। विरजा नन्द की अन्धे से मूदी हुई आंखें मानो आज खुल गईं। मूलशंकर प्रज्ञाचक्षु, गुरु बिना देखे ही उन के चरणारविंदों में गिर पड़े। गुरु आशीश देते हैं और शिष्य को उठाते हैं। इतना ही नहीं बल्कि मूलशंकर उसी समय से गुरु की सेवा में संलग्न हो जाते हैं। प्रातःकाल होता है। मूलशंकर को गुरु के नहीं बल्कि अपने असली शिव के दर्शन हो जाते हैं। वह था हमारा प्राचीन गुरु शिष्य प्रेम।

मूलशंकर गुरु की सेवा करते हैं और शिक्षा अध्ययन करते हैं। एक दिन मूलशंकर कमरे में झाड़ू लगाते हैं और कूड़े को दरवाजे के पास इकट्ठा कर छोड़ देते हैं। गुरु आते हैं। द्वार पर ही एकत्रित कूड़े का ढेर देख कर क्रुद्ध हो जाते हैं और मूलशंकर की कमर पर पाद-प्रहार करते हैं। हाथ से भी मारते हैं। मूलशंकर बड़ी नम्रता के साथ उनको स्वीकार करते हैं और कुछ समय पश्चात् एक मोटा सा डंडा ले कर गुरु के पास पहुच जाते हैं और कहते हैं 'गुरु जी, आप ने मुझे अपने कोमल हाथों से मारा है। मेरा शरीर तो बहुत कठोर है। शायद आप को चोट आई होगी। यह लीजिए डंडा और मुझे मारिए।' गुरु शिष्य को आशीर्वाद देते हैं और भविष्य में ऐसा करने से रोकते हैं। यह थी हमारी प्राचीन संस्कृति और सभ्यता।

मूलशंकर कुशाग्र बुद्धि वाले थे। अत गुरु के वचनों को शीघ्र ही मौखिक याद कर लेते थे। गुरु के परम प्रिय शिष्य थे। अतः १२ साल में ही सम्पूर्ण शास्त्रों को मौखिक कण्ठस्थ कर लिया। गुरु से विदाई लेते हैं और लौंगों के बदले में गुरु के वचनों को 'तथास्तु' कहते हैं और अपने प्रभु को पुरः सर कर कुटिया छोड़ देते हैं। आर्य समाज का प्रचार करते हैं और पाखंडों के मतों का खण्डन करते हैं। मूलशंकर से अपना नाम दयानन्द रखते हैं। दयानन्द जी त्यागी, आत्म प्रशंसा को न चाहने वाले, दृढ़ निश्चयी, सत्याग्रह, और वेद के सच्चे प्रचारक थे। पंडो का बहुत खण्डन किया करते थे अत वे इन से विरुद्ध हो कर इन का मारने का षड्यन्त्र रचते थे।

महर्षि कुटिया में बैठे हुए अपने प्रभु की उपासना में लीन थे। दुष्टों ने एक वेश्या को खूब गहने पहना कर महर्षि के पास भेजा। वह वहां चली गई। और बैठ गई। महर्षि की सन्ध्या समाप्त हुई। गुरु ने आंखे खोली। क्या देखते हैं कि वैश्या बैठी है। उस से ऋषि ने पूछा 'हे माता! तू इस निर्जन स्थान पर कैसे। इतना कहना था कि वेश्या ऋषि के चरणोंमें गिर पड़ी और अपने जेवर उन को देने लगी। परन्तु ऋषि ने लेने से साफ इन्कार कर दिया। यह थी उन की नम्रता तथा स्थिरता।

महर्षि के संस्मरण कहां तक लिखें। ऋषि के ऊपर जितना कहें थोड़ा है। महान् आदमी जहां खुद अमर होते हैं वहां उन के कार्य भी अमर होते हैं। यदि हमें अपना और अपने जीवन का उद्धार करना है तो महर्षि का अनुकरण होगा। उन को आदर्श मानना होगा। अन्त में हम उन को श्रद्धांजली अर्पित अर्पित करते हैं।

पंजाब में राष्ट्रभाषा हिन्दी के साथ अन्याय

आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा पञ्जाब की अन्तरंग सभा का निश्चय

पंजाब की जनता को ज्ञात है कि २ अक्तूबर से पजाब में जिला स्तर तक पजाबी भाषा को जबरदस्ती जनता पर थोपा जा रहा है। यह नागरिकों के अधिकारों पर स्पष्ट कुठारा घात है।

आर्य प्रादेशिक सभा ने इस ओर समय२ पर जनता का नेतृत्व किया है। वर्तमान परिस्थिति पर भी गम्भीरता पूर्वक विचारा है और निश्चय किया है कि पजाब की जनता आने वाली इस आपत्ति का डट कर मुकाबला करें। अत: ६ सितम्बर को अम्बाला में तथा २६ सितम्बर को घरौंडे में हो रहे विरोध सम्मेलनों को सफल बना कर अपनी शक्ति का और संगठन का परिचय दें।

इसके साथ ही सभी आर्यसमाजें अपनी २ विशेष बैठकों में सरकार के इस निश्चय के विरुद्ध प्रस्ताव पास करें और २ अक्तूबर को समस्त पंजाब में प्रदर्शन और हड़ताल हो जिस से सरकार अपने निश्चय पर पुनर्विचार करने पर बाध्य हो। आपका बन्धु सन्तोषराजसभा मंत्री

पंजाब के लिये चुनौति

(ले०—श्री सुदर्शन ज 'अशु' देहली)

आज भारत का राजधानी देहली में नियुक्त एक सरकारी कर्मचारी इसलिए त्याग पत्र देने को उद्यत हैं कि उस द्वारा बोली जाने वाली भाषा के कारण उसकी खिल्ली उड़ाई जाती है। उसे स्थाई नहीं किया जा रहा, इसलिए कि वह भारतीय वेशभूषा का अनुगामी है। पिछले छ वर्षों से उसकी पदोन्नति नहीं हो रही, इसलिए कि वह भारतीय संस्कृति से प्यार करता है। उस पर छिंटापटी की जाती है, इसलिए कि वह अपना कार्य राष्ट्र भाषा में करना चाहता है।

अंग्रेजी जानते हुए भी वह हिन्दी निमित्त इतना बलिदान करने जा रहा है। आजकल नौकरी मिलना कितना दुर्लभ है, यह वही जानता है जिस ने कभी 'काम दिलाओ' कार्यालय के चक्कर काटे हों, वह क्या जाने जो भाई-भतीजा की दुआ से प्रशासन की ठण्डी हवा खा रहा है। यह सब विपत्तिएं सहना और उसी राष्ट्र भाषा हिन्दी के कारण नौकरी छोड़ देना वह भी गवर्मैंट की, कितना बड़ा त्याग है उसका ! जरा करिये उसके साथ अपनी तुलना—वह अंग्रेजी का उत्तर हिन्दी में देता है और आप . जी हा आप, नहीं तो आप के कई भाई, बहनें भी कहीं वे यह न समझ बैठें कि हम इस गिनती में नहीं आती। पत्र लिखते हैं सारा का सारा हिन्दी में और...और बताऊ पता लिखते हैं इंगलिश में। धिक्कार है ऐसे लोगों को जो धोती कुर्ते के ऊपर हैट लगा लेते हैं !

चाहिए तो यह कि ज्ञान वृद्धि के लिए यदि इंगलिश में पत्र लिखा भी जावे तो पता में तो हिन्दी को प्राथमिकता देते हुए शेरे-पजाब ला० लाजपतराय की भांति पैंट, कोट और टाई के ऊपर भारतीयता की द्योतक पगड़ी पहने।

दिल्ली के दिवानहाल आ० स० में कृष्ण जन्माष्टमी के दिवस पर गरजते हुए प० भगवद्दत्त ने सर्व-भारतीयों को, विशेषतया आर्य-जनों को चुनौती दी थी कि 'तुम जो हिन्दी, हिन्दी करते हो, भला यह तो बताओ तुम हिन्दी को अपनाते भी हो या नहीं ? तुम ने वोट दिए उनको जो आज हिन्दी का विरोध कर रहे हैं, भला अब रोते क्यों हो, अपने किए पर पछताओ और उन को तो छोड़ो, तुम क्या हिन्दी का प्रचार-प्रसार करते हो अपने निमन्त्रण-पत्र आदि तो इंगलिश में छपवाते हो और फिर मुझे कहते हो प० जी आज कष्ट करना। बताओ तो हिन्दी बढ़ेगी तो कैसे ?' यह थे पं० जी के चुनौती पूर्ण शब्द! जिन्हें सब लोग निस्तब्ध हो सुनते रहे।

तदोपरात संसद-सदस्य श्री पं० प्रकाशवीर जी शास्त्री ने उस चुनौती को स्वीकार करते हुए आ० प्रा० नि० सभा उत्तर प्रदेश क प्रधान होने के नाते सिंहनाद करते हुए कहा—मैं इस चुनौती को स्वीकार करता हूं, तालियों की गड़गड़ाहट के बीच उन्होंने आगे आश्वासन दिया कि आ० प्र० में कोई भी आर्य अपने निमन्त्रण-पत्र विवाह आदि के इंगलिश में नहीं छपवाएगा बल्कि अपना सारा व्यवहार हिन्दी में करेगा, मैं जुम्मेवार हूं।'

अब प्रश्न उठता है क्या इस चुनौती को कोई माई का लाल पंजाब निवासियों की ओर से भी स्वीकार करेगा व नहीं ? क्या क्रान्तिकारी पंजाब इस बात में पिछड़ जाएगा ? क्या आप सब लोग इस निमित्त कोई पग उठायेंगे ? (क्रमशः)

आर्यसमाज जामनगर

श्री मन्त्री जी,

आर्य सार्वदेशिक सभा,

रामलीला मैदान, देहली

गो-मास खाने का परामर्श

मान्यवर,

सादर नमस्ते, शायद आपने मुख्य मन्त्री पश्चिमी बंगाल का भाषण ऊपर लिखित विषय पर पढ़ा होगा। इस का उल्लेख Free Press Journal Dt 19 8. 62. में छपा है, जिसकी एक प्रति आपको भेजी जाती है।

गुजरात का प्रस्ताव आर्य समाज जामनगर गुजरात ने अपने अधिवेशन ति० 26. 8. 62. में इस वक्तव्य पर बहुत खेद और रोष प्रगट किया कि भारतवर्ष में जहां गोवध बिल्कुल बन्द होना चाहिये, वहां एक उच्च पदाधिकारी गो-मांस भक्षण का खुले तौर पर भारतीय संस्कृति के विरुद्ध प्रचार करे। अतः यह निश्चय हुआ कि आर्य सार्वदेशिक सभा से प्रार्थना की जावे कि वह आर्यसमाज की ओर से इस सुझाव का मुंह-तोड उत्तर देवे और मुख्यमन्त्री को चैलेंज करे कि वह अपने वक्तव्य (कि महाभारत काल में हिन्दू लोग गो-मांस खाते थे)] की पुष्टि में प्रमाण पेश करें।

आशा है कि आप इस बारे में उचित कारवाही शीघ्र ही करेंगे।

भवदीय

हरिश्चन्द्र थापर

मन्त्री—आर्यसमाज जामनगर

Bharat Jyoti Sunday Edition of Free Press Journal

Dated the 19th August 1962 at page 2

Eat more beef

Bengal

Novel Suggetions

The F P. J. News Service

Calcutta, Aug. 18 · West Bangal's Chief Minister Shri P. C Sen, sprang a surprise at the annual meeting of the Agricultural Society of Bengal here yesterday by suggesting that the people in the state should eat beef to make up for protein dificiency.

He said that this should not militate against Hindu belief. **Hindus in the Mahabharat era used to eat beef**

The Chief Minister added that against the West Bengal human population of 35 million the state has 10 million cattle, for the purpose of milk only one million cattle would be enough. The present craving for rice and dal in Bengal was obsolete in the modern era, he said.

With the present capite cereal consumption West Bengal would have to produce 100 Maunds of cereals per acre in the third Plan period against the present rate of 15.

प्रादेशिक सभा द्वारा उत्सवों की धूम

आ० स० लक्कड़ बाजार शिमला—का उत्सव २१ से २३ सितम्बर को बड़ी धूमधाम से सम्पन्न हो रहा है। सभा की ओर से प० त्रिलोक चन्द्र जी शास्त्री, खुशीराम शर्मा, श्री राजपाल जी, श्री मदनमोहन जी, श्री दुर्गासिंह जी, राजपाल जी, मंडली के भजन होंगे।

आ० स० माडल टाऊन पानीपत—का उत्सव ७ से ६ सितम्बर को धूमधाम से सम्पन्न हो रहा है। १ सितम्बर से खुशी राम शर्मा की कथा और राजपाल जी मदन मोहन जी के भजन होंगे।

उत्सव पर श्री पं० त्रिलोकचन्द्र जी शास्त्री, मा० ताराचन्द जी, श्री हजारीलाल जी, श्री शमशेर कुमार जी, श्री रामकरण जी की मण्डली। बस्तीराम जी। डी० ए० वी० कालिज के प्रोफेसर श्रीवेदीराम जी शर्मा पधार रहे हैं।

आ० स० दयालपुरा करनाल—का उत्सव २८ से ३० सितम्बर को धूमधाम से सम्पन्न हो रहा है। सभा की ओर से श्री पं० ओम प्रकाश जी, खुशीराम शर्मा, श्री मेलाराम जी, श्री दुर्गासिंह जी, श्री अमरसिंह जी, अम्बाला, करनाल मंडल पधार रहे हैं।

आ० स०—सलोगढ़—का उत्सव ७ से ६ सितम्बर को धूमधाम से सम्पन्न हो रहा है। श्री ओमप्रकाश जी, श्री पं० चन्द्रसेन जी, श्री मेला राम जी, श्री दुर्गासिंह जी, श्री [illegible]राम जी पधार रहे हैं।

आ० स० कण्डाघाट—का उत्सव सलोगढ़ा के बाद सम्पन्न हो रहा है। सलोगढ़ा के महानुभाव पधार रहे हैं।

आ० स० [illegible]—का उत्सव [illegible] से [illegible] सितम्बर को धूमधाम से सम्पन्न हो रहा है। श्री पं० ओम्प्रकाश जी, श्री पं० चन्द्र सेन जी, श्री मेलाराम जी, श्री ठा० दुर्गासिंह जी, श्री मा० ताराचन्द जी, श्री हजारी लाल जी पधार रहे हैं।

आ० समाज नांदल—का उत्सव २ से ७ सितम्बर को सम्पन्न हो रहा है। श्री चौ० मूराराम जी, श्री पं० प्रभुदयाल जी मण्डली सहित पधार रहे हैं।

आ० स० चुडाली—का उत्सव ८ से १४ सितम्बर को सम्पन्न हो रहा है। रोहतक के सज्जन पधार रहे हैं।

आ० स० वजीरबाग श्रीनगर—का उत्सव धूमधाम से ३१ अगस्त १—२ सितम्बर को सम्पन्न हुआ। २५ अगस्त से पूज्य महात्मा आनन्द स्वामीजी महाराज की कथा होती रही।

आ० स० धर्मशाला (कागड़ा)—का उत्सव ५ से ७ अक्तूबर को सम्पन्न हो रहा है।

आ० स० मण्डी (हिमाचल)—का उत्सव ११ से १४ अक्तूबर को सम्पन्न हो रहा है।

आ० स० नूरपुर—का उत्सव १६ से २१ अक्तूबर को सम्पन्न हो रहा है।

आ० स० नया बाजार भिवानी—का उत्सव १६ से २१ अक्तूबर को सम्पन्न हो रहा है।

आ० स० टीका नगरोटा—का उत्सव २२ से २४ अक्तूबर को सम्पन्न हो रहा है।

आ० स० गुरदासपुर—का का उत्सव २६ से २८ अक्तूबर को सम्पन्न हो रहा है।

आ० स० ८ सैक्टर चंडीगढ़—का उत्सव २६ से २८ अक्तूबर को सम्पन्न हो रहा है।

आ० स० जोगेन्द्र नगर का—उत्सव १५ से २१ को सम्पन्न हो रहा है।

खुशीराम शर्मा
अधिष्ठाता वेद प्रचार
आर्य प्रादेशिक सभा

ईश्वर की सत्ता

(पृष्ठ २ का शेष)

लगा। सुख पाकर पुन कहने लगा 'ईश्वर ने मुझे नहीं बचाया। मैं तो स्वयं किनारे पर पहुँचा हूँ।' एक बार फिर धक्का लगा कि वह पुन. बह गया। फिर सोचने लगा 'ओह ईश्वर। तेरी सत्ता से मैं इन्कार नहीं करता हूँ। मैं तो हसी मे कर रहा था। तू सच ही मान गया।' कबीर ने ठीक ही कहा है।

'दुःख मे सुमरण सब करें,
सुख में करे न कोई।

ईश्वर सत्ता को मान लेने के उपरान्त प्रश्न किया जा सकता है कि सत्ता एक है अथवा अनेक। एक ही निराकार ईश्वर को सत्ता है। अनेकों की सत्ता हो तो आपस मे खट-पट हो सकती है। जिससे सृष्टि का काम रुक सकता है। किन्तु सृष्टि का कार्य तो अबाध गति से चल रहा है। अत सत्ता एक ही है। हाँ। कई लोग भ्रान्ति से अनेक सत्ताए मान सकते हैं। ईश्वर के अनेक गुण इन्द्र, मित्र, वरुण आदि को अलगर देवता मानकर अनेक सत्ताएं मानना मूर्खता है चूंकि असली नाम तो 'ओ३म्' एक ही है। अगर किसी एक गुण को देवता मानकर स्मरण करेंगे तो केवल एक ही गुण आएगा। 'ओ३म्' निज नाम ईश्वर का कहने पर सभी गुण आ जाएंगे। अत. 'एको हि देव. सर्व भूतेषु गूढ़ ..' 'एकस्य बहूनि नामधेयानि सन्ति।' के अनुसार केवल एक निराकार 'ओम्' की सत्ता मानकर उसीका स्मरण करना चाहिए।

—०—०—

बलिदान-जयन्ती-समारोह-समिति अंबाला छावनी

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब द्वारा आयोजित

अम्बाला छावनी, ३ सितम्बर—७ से १४ अक्तूबर तक अम्बाला छावनी में होने वाली बलिदान जयन्ती के अध्यक्ष प्रसिद्ध आर्य महात्मा श्री आनन्द भिक्षु जी होंगे।

सम्मेलन की तैयारिया जोरों से आरम्भ हो चुकी हैं। इस अवसर पर अनेकों महत्वपूर्ण सम्मेलनों का आयोजन किया जा रहा है। जिनकी अध्यक्षता देश के प्रसिद्ध नेता करेंगे।

७ से १४ अक्तूबर तक निरन्तर यजुर्वेद पारायण महायज्ञ का भी आयोजन किया गया है।

—०—०—

समाजों से आवश्यक निवेदन

सभी सम्बन्धित आर्य समाजों के अधिकारी महानुभावों से प्रार्थना है कि वेद सप्ताह समाप्त हो चुका है। कृपया वेद प्रचार का धन इस सप्ताह का शीघ्र सभा कार्यालय में भेजने की कृपा करें।

वेद सप्ताह पर वेद प्रचारार्थ सभा को योग देना अत्यावश्यक है। दूसरे, जिन समाजों की ओर से अभी उत्सवों की तिथियां नियत नहीं की गई। वे शीघ्र सभा कार्यालय को उत्सव की तिथियां नियत कर भेजने की कृपा करें ताकि प्रबन्ध में सुभीता रहे उत्सव अधिक हैं।

—खुशीराम शर्मा

हंसराज कालिज देहली

हंसराज कालिज के अध्यापक तथा छात्रों की यह सभा श्री बख्शी टेकचन्द्र जी के स्वर्गवास होने पर गहरा शोक प्रकट करती है। आप हंसराज कालिज देहली की शासन कमेटी के चेयरमैन थे [illegible] कालिज की स्थापना में विशेष भाग था। श्री बख्शी जी जहां विख्यात एडवोकेट थे उस के साथ विशेष जज भी थे। आप [illegible] कोर्ट के चीफ़ जस्टिस भी रहे हैं। सर्वसाधारण की सेवा करने में भी आप अत्यंत रुचि रखते थे।

आप आर्य समाज और डी. ए. वी कालिज [illegible] थे। उच्च कोटि के विद्वान तथा पंजाब यूनिवर्सिटी के नेता थे। [illegible] उन के निधन पर अत्यंत वेदना प्रकट करती हुई उन के परिवार और संबंधियों से सहानुभूति प्रकट करती है तथा उनकी आत्मा की सद्‌गति के लिए प्रभु से प्रार्थना करती है।

प्रिंसीपल
हंसराज कालिज देहली

—०—०—

[illegible]समाजें केन्द्रीय सरकार के अंग्रेजी भाषा [illegible]ए रखने के विरुद्ध विरोध पत्र भेजें।

आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा पंजाब की सभी आर्य समाजों को यह विदित है कि केन्द्रीय सरकार अंग्रेजी को १९६५ के पश्चात भी अनिश्चित काल तक बनाए रखने के हेतु अभी संसद में एक विधेयक ला रही है। यह राष्ट्रभाषा को सर्वदा के लिए समाप्त करने का षड्यन्त्र प्रतीत होता है।

मैं सभी आर्यसमाजों से प्रार्थना करता हूं कि वह इस सम्बन्ध में सरकार की इस नीति के विरोध में प्रस्ताव पास कर गृह मन्त्री, प्रधान मन्त्री, शिक्षा मन्त्री, राष्ट्रपति तथा अपने संसद सदस्य को भेजें और अनुरोध करें कि सरकार अपने इस प्रकार के अहितकर निश्चय को बदले और राष्ट्र भाषा की उन्नति के लिए उचित पग उठाएं।

—[illegible], प्रधान [illegible] सभा

—०—०—

मुद्रक व प्रकाशक श्री [illegible] जी मन्त्री आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा पंजाब जालन्धर द्वारा वीर प्रताप प्रेस, प्रताप रोड जालन्धर से मुद्रित होकर आर्यजगत कार्यालय महात्मा हंस राज भवन निकट कचहरी जालन्धर शहर से प्रकाशित मासिक—आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा पंजाब [illegible]

कृण्वन्तो विश्वमार्यम्

ओ३म्

आर्य जगत्

टेलीफोन न० ३०५५ [आर्यप्रादेशिक प्रतिनिधि सभा पंजाब जालन्धर का साप्ताहिक मुखपत्र] Regd. I o.1 .121

एक प्रति का मूल्य १३ नये पैसे वार्षिक मूल्य ६ रुपये

वर्ष २२ अक ३७) रविवार ३१ भाद्रपद २०१९— १६ सितम्बर १९६२ दयानन्दाब्द १३८ (तार-प्रादेशिक जालन्धर)

वेद सूक्तय:

तान विषूची विनाशय

हे वीर नर ! उन सारे शत्रुओं को विषूच -अपनी शक्ति से छिन्न-भिन्न करता हुआ विनाशय-न कर दे। उनकी सारी शक्ति को अपनी वीरता से समाप्त कर दे।

सत्यं कृणुहि चित्तम्

या उन शत्रुओं के चित्त को सत्यं सत्य मार्ग पर चलने वाला कृणुहि-बना दे। उनकी शत्रुता समाप्त हो जावे और वे विरोधपथ को त्यागकर सन्मार्ग पर आजावें।

इन्द्र सेनां मोहय

हे वीर सेनानी इन्द्र ! इन शत्रुओं की सारी सेना को मोहय मोह में डाल दे। अपनी नीति, वीरता तथा प्रभाव से सब के होश भुला कर उनको मोहित कर दे।

अ थ र्व वे द

वेदामृत

य देवासोऽवथवाजसातौ यं शूरसाता मरुते हिते धने।
प्रातर्यावाणं रथमिन्द्र सानसिमरिष्यन्तमारुहेमा स्वस्तये॥

ऋ० मं० १० सू० ६३ मं० १४

अर्थ—हे (देवास.) देव पुरुषो ! विद्वानो ! (मरुत) हे वीरो ! (यं) जिस को (अवथ) रक्षा करते हो (वाजसातौ) ज्ञान मे बल में, अन्न आदि में तथा (शूरसाता) युद्ध आदि में (हिते धने) हितकर धन में जिसकी रक्षा करते हो। हम उस (इन्द्रसानसिम्) विद्वान जिसका सेवन करते हैं उसे (प्रातर्यावाणम्) प्रात से ही गमन करने योग्य (अरिष्यन्तम्) बिना रोक टोक चलने वाले (रथं) जीवनरथ पर (स्वस्तये) कल्याण के लिए (आरुहेम) चढ़ें।

भावार्थ—हम ससार यात्रा के लम्बे काल के यात्री हैं। दूर से चले आरहे, अब चल रहे और आगे भी चलते रहेंगे। यात्रा का सुन्दर जीवन रथ, शरीर की गाड़ी मिली है। बालपन से ही इसके द्वारा यात्रा आरम्भ हो जाती है। सब के पास अपना २ यह सुन्दर रथ है। सारे इसकी प्रशंसा करते हैं। इसके द्वारा ही जीवन का संग्राम जीता जा सकता है, इसी से ही विश्व की उपयोग में आने वाली सामग्री प्राप्त की जा सकती है। हम यात्रा का सुख और कल्याण चाहते हुए इस गाड़ी पर सवार होकर बैठे हैं। इसे कहीं बिगाड़ न दें, इसे तोड़ न डालें और इसको सर्वथा बेकार न समझ लें—इसीलिए दिव्यगुणी लोग हमारे इस रथ को बचाने के लिए हमें समय २ पर उपदेश करते रहें। शरीर विज्ञान, देह रक्षा का भी हम पूरा २ ध्यान रखें ताकि यह सर्वथा रोगों से मुक्त होवे। —सं०

ऋषि दर्शन

सत्य एव सम्यक् श्रद्धा

सत्ये-सत्य बोलने, मानने और करने मे एव-ही सम्यक्-भलि भान्ति श्रद्धा-श्रद्धा विश्वास करना चाहिए। सत्य में सदा श्रद्धा हो, अटूट विश्वास होवे।

असत्ये चा श्रद्धा

और असत्ये-झूठ बोलने, मानने और करने में सदा अश्रद्धा-अविश्वास घृणा होनी चाहिए। असत्य से कभी प्यार न करे। झूठ से सदा दूर ही रहे।

चित्तं धर्मे प्रवृत्तम्

चित्तम्-अपना चित्त सदा धर्मे-धर्म में प्रवृत्तम्-लगाया जाये। हे मनुष्यो ! अपने चित्त को धर्म में लगाये रखो पाप अधर्म से परे रहो।

भा ष्य भू मि का

अधिष्ठाता—संतोषराज मंत्री सभा सम्पादक: त्रिलोक चन्द्र शास्त्री

'आर्य जगत्' में प्रति सप्ताह एक लेख अध्यात्मवाद के प्रसंग में दिया जाता है। उसमें प्रतिमास एक विशिष्ट लेख सन्देश पूज्य महात्मा आनन्द स्वामी जी सरस्वती का होता है। आप का जीवन सारा आध्यात्ममय और यज्ञमय है। रसभरे प्रवचनों, कथाओं तथा लेखों में जीवन को शान्ति देने वाली एक विशेष साधना निहित है। मधुर प्रसाद होता है। इस दिव्य एवं मीठे प्रसाद से सारे पाठक समय २ पर लाभ उठाते रहें। —स.

अध्यात्म वाद

यह पुरुष यज्ञ है

(ले०—पूज्य महात्मा आनन्द स्वामी जी महाराज)

यह पुरुष सचमुच यज्ञ है। इस यज्ञ में तीन सवन हैं। पहला प्रातः सवन, दूसरा मध्य सवन, तीसरा सायं सवन। अर्थात् मनुष्य का जीवन यज्ञ रूप हो के दूसरे के भले के लिए जारी रह के तीन अवस्थाओं में से होकर निकलता है। प्रातः सवन का छन्द गायत्री छन्द है जिस में २४ मात्राएं हैं। माध्यन्दिन का सवन का छन्द है त्रिष्टुप् जिस में ४४ मात्राएं हैं और साध्य सवन का छन्द जगती है जिस में ४८ मात्राएं हैं। अब यह कि मनुष्य यज्ञरूप होके ४४ वर्ष तक गृहस्थ और वानप्रस्थाश्रम में रहे और जब जीवन की सन्ध्या आजाये तो ४८ वर्ष तक संन्यासाश्रम में रहे। इन सब को जोड़ कर देखिये तो ११६ वर्ष हो जाते हैं। महिदास ने अपने परम जीवनको यज्ञमय बना दिया। यज्ञरूप बनने के कारण उसे दृढ़ सकल्प प्राप्त हुआ। उसने प्रातः सवन से कहा—२४ वर्ष तक मैं मरूगा नहीं। मैं यज्ञ रूप हूँ। यज्ञ रूप यह भाग पूर्ण करके मुझे माध्यन्दिन सवन में पहुंचना है। और माध्यन्दिन सवन में पहुच कर उस ने फिर कहा—मैं यज्ञ रूप हूं मुझे मरना नहीं। माध्यन्दिन सवन को पूर्ण करके सन्ध्य सवन में पहुँचना है और सान्ध्यसवन में पहुँच कर उस ने दृढ़ सकल्प से कहा मुझे मरना नहीं है। ४८ वर्ष तक मुझे इस यज्ञ के अन्तिम भाग को पूरा करना है।

यह है दृढ़ संकल्प बनने की विधि। मनुष्य अपने आप को यज्ञ रूप बना ले तो उस में दृढ़ संकल्प उत्पन्न होता है, निश्चित रूप से सफल होता है। अपने आप को यज्ञरूप बनाने से ही दृढ़ संकल्प पैदा होता है। और ये जो तीन सवन-यज्ञ के तीन भाग बताये थे क्या हैं? प्रातः सवन को कहते हैं दीक्षा। ऐसी दशा जिसमें तप करना है। भोजन का ठीक प्रबन्ध नहीं, खाने का नहीं, रहने का नहीं फिर भी तप की भावना से ज्ञान और शक्ति प्राप्त करते जाना यह दीक्षा है। कष्ट, क्लेश संकट को सहन करना यह दीक्षा है।

माध्यन्दिन सवन को कहते हैं उपसदा-अर्थात् सुख चैन, आनन्द, खेल, हसते गाते हुए अपना और दूसरों का भला करते हुए कमाते और खर्च करते हुए आगे बढ़ते जाना। और सान्ध्यसवन को कहते हैं दक्षिणा—अर्थात् केवल दूसरों के कल्याण के लिए जीवन धारण करना। अपना समय अपनी सम्पत्ति, अपना स्वास्थ्य, अपना सब कुछ लोक कल्याण में लगा देना। सारे संसार को अपना परिवार समझ कर उसके भले के लिए प्रयत्न करते रहना।

ये तीन बातें जिस जीवन में हैं—यह दीक्षा, उपसदा और दक्षिणा वह यज्ञमय जीवन है। और जो व्यक्ति यज्ञरूप है उसका दृढ़ सकल्प कभी असफल नहीं होता है। परन्तु विशाय दीक्षा, उपसदा और दक्षिणा केवल जीवन की प्रातः, मध्यान्ह और सायं नहीं। जीवन में यह दशायें बार २ आती हैं। दीक्षा का अर्थ है कष्ट क्लेश सहन करना। यह भावना हर समय विद्यमान रहनी चाहिए। दुःख हो, सुख हो, कष्ट हो, रोग हो, शोक हो, सम्पत्ति हो, विपत्ति हो, सफलता हो, असफलता हो, प्रत्येक दशा में मस्त रहना चाहिए। संसार में तीन प्रकार की मस्तियां होती हैं। कुछ लोग चाल मस्त होते हैं। उन की चाल मे मस्ती होती है। कुछ लोग माल मस्त होते हैं। माल है तो मस्त हैं नहीं तो रो रहे हैं। कुछ लोग हाल मस्त होते हैं। किसी भी समय उन के हृदय में निराशा उत्पन्न नहीं होती। हर समय वे प्रसन्न रहते हैं। इस विश्वास के साथ आगे बढ़ते हैं कि अन्ततो गत्वा कभी न कभी तो दु:खों का अन्त होगा ही। उन से पूछा कि प्रसन्न क्यों हो? तो कहते हैं—ईश्वर ने हमें प्रसन्न रहने के लिए बनाया है। और जो लोग रोते रहते हैं उनसे पूछो, रोते क्यों हो? तो कहते हैं—शकल ही ऐसी है। अच्छा भाई! शकल ही ऐसी है तो फिर रोओ, परन्तु देखो यह जीवन को सफल बनाने का मार्ग नहीं है। यह अपने आप को यज्ञरूप बना देना नहीं। अपने आप को यज्ञरूप बनाना है तो आशावादी बनो। निराशावादी न बनो। ऊपर की ओर देखो नीचे की ओर न देखो। वेद कहता है—'उद्यानं ते पुरुष नावयानम्'—मैंने तुझे ऊपर उठने के लिए बनाया है नीचे गिरने के लिए नहीं। इस लिए रो नहीं, नीचे न गिर, ऊपर उठ। हंसता हुआ खिल खिला। इस लिए अपने विचार को छोटा न बना, छोटा न बना। आशावादी जिस क्षेत्र में आयेगा वहीं उस को सफलता मिलेगी। कोई रोग, कोई कष्ट, कोई विवशता, कोई असहायता, निर्धनता उसे सफलता से रोकेगी नहीं।

आर्य समाज किला जालन्धर

६-६-६२ रविवार को आर्य समाज किला जालन्धर की ओर से साईंदास एंगलो संस्कृत हायर सैकन्डरी स्कूल के विशाल हाल में, जालन्धर निवासियों की एक विराट सभा, सर बक्शी टेक चन्द्र जी के निधन पर शोक प्रकट करने के लिये राय बहादुर बद्रीदास जी की प्रधानता में हुई। जिस में श्री चूनीलाल जी पराशर एडवोकेट, श्री खिरायती राम जी शास्त्री, श्री बी. एस. बहल प्रिंसिपल डी. ए. वी. कालिज जालन्धर, श्री बी. एल. कपूर प्रिंसिपल द्वाबा कालिज तथा प्रिंसिपल चमन लाल जी एम. एस सी. ने श्रद्धाजली भेंट की। राय बहादुर बद्री दास जी ने बक्शी टेक चन्द्र जी के जीवन की कई एक घटनाएं प्रस्तुत कर के यह सिद्ध किया, कि बक्शी जी एक महान् खामोश कार्यकर्ता थे और उन के मन में देश तथा जाति के लिए बड़ा प्रेम था।

प्रस्ताव :—

जालन्धर निवासियों की यह सार्व जनिक सभा श्री मान् बक्शी टेक चन्द्र जी भूतपूर्व जज हाई कोर्ट पंजाब की अकाल मृत्यु पर हार्दिक शोक प्रकट करती है। उन की शिक्षा क्षेत्र, धार्मिक क्षेत्र और राजनैतिक क्षेत्र मे जो सेवाएं हैं, वह चिर स्मरणीय रहेंगी। पंजाब जनता की सामान्य रूप से और आर्य समाज की विशेष रूप से जो सेवाएं उन्होंने की हैं उसकी यह सभा मुक्त-कण्ठ से प्रशंसा करती है और यह अनुभव करती है कि यह क्षति पूर्ति सम्भव नहीं है।

यह सभा परमात्मा से प्रार्थना करती है, कि वह दिवगंत आत्मा को सद्गति प्रदान करें और उनके सम्बन्धियों को इस कष्ट सहन करने की शक्ति प्रदान करें।

चुन्नीलाल चन्द पाराशर
मन्त्री आर्यसमाज, किला
जालन्धर शहर।

सम्पादकीय—

आर्य जगत्

वर्ष २२] रविवार ३ भाद्रपद २०१८, १६ सितम्बर १९६२ [अंक ३७

अनुशासन की मांग

व्यक्ति और समाज दोनों के लिए अनुशासन का पालन बड़ा आवश्यक है। वह भी प्रत्येक प्रकार के राजनीतिक, धार्मिक एवं सामाजिक जीवन की प्रगति के लिए एक मर्यादा है, नियत किया हुआ बन्धन है जिस के द्वारा समाज व व्यक्ति की जीवनधारा अवाधगति से बहती रहती है। जहां भी अनुशासन टूटता है वहीं अराजकता फैल जाती है। अपने शरीर में भी कितनी सुन्दर मर्यादा काम करती है। जब यह टूट जाए तो नाना विध रोग आ घेरते हैं। राज्य हो अथवा संसार—हर स्थान तथा हर अवस्था में अनुशासन नितान्त आवश्यक होता है। मनुष्य चाहे कितना बड़ा हो, धनवान्, बलवान, विद्वान, या चक्रवर्ती सम्राट भी क्यों न हो—यदि नियमों व मर्यादा को तोड़ता है तो समाज के प्रति वह दोषी है—समाज का निर्धारित अनुशासन उसे मानना चाहिए। आर्य परम्परा यही है। आर्यसमाज इस मर्यादा में बन्धा हुआ है।

आर्य समाज एक विशाल आन्दोलन है। समय २ पर इसके सामने भी ऐसे प्रश्न आते रहते रहते हैं। अपने २ प्रान्त में कार्य करने वाली तमाम समाजों के ऊपर प्रबन्ध सभाएं हैं और भारत तथा बाहिर की सभाओं के ऊपर आर्य सार्वदेशिक सभा है। इस के आदेश सन्देश सब मानते हैं। कुछ ऐसे भी अवसर आए जब कि कुछ महानुभावों के सम्बन्ध में समाजों में कुछ शंकाएं पैदा होने लगीं। वैदिक सिद्धान्तों के विपरीत विचार-धारा के समाज की वेदी द्वारा प्रचार का ज्ञान हुआ। सार्वदेशिक सभा में उन के बारे में पूर्ण विचार विनिमय के बाद आर्य समाजों की वेदी वेदविरोधी विचारों के प्रचार के लिए बन्द हो गई। इस में व्यक्तियों का सम्मान करते हुए भी उन के वेद विरोधी विचारों के साथ सैद्धांतिक मत भेद था। गत कुछ वर्षों से स्वामी विद्यानन्द जी विदेह के विचारों के बारे में आर्य समाजों में शंकाएं हुईं। आर्य सार्वदेशिक सभा देहली में यह विषय पेश हुआ। भली भांति विद्वत् सभा में विचार विनिमय होता। स्वामीजी को भी सादर निमंत्रित करके वार्तालाप तथा स्पष्टीकरण करने का पूर्ण प्रयत्न किया गया। पर कुछ मौलिक सिद्धांतों में मत भेद था। इस पर सार्वदेशिक सभा ने सारा विवरण प्रकाशित कर के भारत भर की तथा बाहर की समाजों को भेज कर स्वामी जी की वेदी बन्द कर दी। स्पष्ट है कि सार्वदेशिक सभा ने अपना कर्तव्य निभाया था। सिद्धांतों की रक्षा की मर्यादा आवश्यक होती है। स्वामी जी ने अपनी पुस्तकों, प्रवचनों, पत्रों में जो सिद्धांत विरुद्ध लिखा व कहा बोला या बोलते हैं—सार्वदेशिक सभा के पास सारा विवरण है। विस्तार से लिखा भी जाता रहा है। स्वामी जी चाहे कितने मान्य हों पर वैदिक सिद्धांत सर्वतो मान्य है। उन के विरुद्ध किसी को समाज की वेदी से प्रचार की किसी को आज्ञा नहीं दी जा सकती।

स्वामी विदेहजी के लिए समाज की वेदी बन्द है। यह सार्वदेशिक सभा देहली का निर्णय है। आर्यों की सब से बड़ी सभा का अनुशासन है। श्री विदेह जी से किसी को वैर नहीं, अनुशासन का प्रश्न है। स्वामी जी की महत्ता इसी में थी कि इस अनुशासन के सामने मस्तक झुका कर प्रतिकूल कतिपय विचारों को अनुकूल बना लेते। सारा समाज सार्वदेशिक सभा द्वारा उनकी योग्यता से लाभ उठाता। पर हो कुछ और रहा है। हमें खेद है कि कुछ आर्यसमाजें अब भी अनुशासन को तोड़ती हैं। इस प्रकार मर्यादा का भंग करना अपनी शिरोमणि सभा का अपमान करना है। क्या स्वामी विदेह जी ने अपने विवाद वाले सिद्धांत ठीक कर लिए हैं। जिन के लिए वेदी बन्द हुई थी क्या उनका सुधार कर लिया गया है। यदि नहीं तो क्या अनुशासन का पालन न करने वाली समाजें अपने कर्तव्य से दूर नहीं जा रहीं। व्यक्ति से अनुशासन बहुत बड़ा है। हम सारे समाजों से अनुरोध करेंगे कि अपनी शिरोमणि सभा के अनुशासन में रहकर श्री विदेह जी महाराज के लिए समाज की वेदी बन्द ही रखें। आर्य प्रादेशिक सभा पंजाब के वेद प्रचाराधिष्ठाता जी की सूचनानुसार अपनी सारी समाजों को इस अनुशासन का पालन करना ही चाहिए—त्रिलोक चन्द्र

अध्यात्म-सिद्धान्त चर्चा

आर्यजगत् सभा का अपना ही साप्ताहिक मुखपत्र है। थोड़े पृष्ठों में हर प्रकार की उत्तम उपयोगी सामग्री देने का प्रयत्न जारी है। सभा के सारे उत्सवों तथा कार्यक्रमों तथा सामाजिक समाचारों का भी वेद प्रचार कार्यालय की ओर पर्याप्त विवरण प्रतिसप्ताह होता है। प्रथम पृष्ठ पर उपयोगी वेदामृत, सूक्तियां, ऋषिदर्शन भी होता है। उच्चकोटि के महात्माओं, नेताओं, विद्वान् भाई बहिनों के उच्च विचारों का प्रसाद भी होता है। युवक चक्र भी रहती है। दूसरा पृष्ठ आध्यात्मवाद लेख से युक्त होता है। अब इसमें सिद्धांत चर्चा को लेकर वैदिक सिद्धांतों पर भी लेख होंगे। आर्यसमाज के मंजे हुए प्रो० उत्तम चन्द जी शरर एम० ए० पानीपत के सुन्दर लेख से यह क्रम आरम्भ हो रहा है।

उत्तम सुझाव

दो अक्टूबर से पंजाबी जोन में सारा काम पंजाबी में सरकारी रूप से हो रहा है। आंदोलन के साथ २ यह प्रबन्ध भी किया जाये कि नगरों में संगठित रूप से ऐसे व्यक्ति नियत किये जायें जो लोगों को हिंदी में आवेदन पत्र लिख कर दें। जो आवेदन पत्र हिंदी में दिये जायेंगे उन के उत्तर भी हिंदी में मिलेंगे, ऐसी घोषणा है। इस काम के लिए स्थान २ पर ऐसे व्यक्तियों का नियत करना भी एक क्रियात्मक पहलू है। यह सुझाव बड़ा आवश्यक, उत्तम तथा संगठित रूप में तत्काल ही करना चाहिए। इससे पर्याप्त लाभ होगा।

महाशय कृष्ण जी

आर्य समाज के बहुत पुराने वयोवृद्ध नेता हैं। समाज की बड़ी सेवा की तथा कर रहे हैं। आप के रुग्ण होने का समाचार पढ़ कर सब को अतीव चिंता है। प्रभु से प्रार्थना है कि आप शीघ्र ही पूर्ण रूप से स्वस्थ हो कर चिरकाल तक समाज सेवा में तत्पर रहें। प्रभु करें कि समाज के ऐसे २ सारे वयोवृद्ध नेता चिरंजीवी होवें। सारे समाज को इन पथप्रदर्शकों की बड़ी आवश्यकता है —सं.

शुद्धि समारोह

लेखराम नगर कादियां में आर्य समाज मन्दिर में ता. दो सितम्बर रविवार को सात ईसाई परिवारों का शुद्धि संस्कार बड़े ही समारोह से सम्पन्न हुआ। मंदिर खचाखच भरा हुआ था। इस अवसर पर प. त्रिलोक चन्द्र शास्त्री आर्य प्रादेशिक सभा का उपदेश हुआ। श्री. देसराज जी उपप्रधान समाज ने विचार प्रकट किए। श्री सरदारी लाल जी का व आर्य युवकों व देवियों का खूब उत्साह था।

वाह रे अच्छा व्यक्तित्व

श्रीमतीशचन्द्रजी गुप्ता उपमंत्री आर्यकुमारसभा नवीरसिंहपुरा)

वर्तमान युग में जहां परमाणु बम्ब, हाईड्रोजन बम्ब आदि का अन्वेषण करके संसार को चकित करने में उन्नति की है, वहां सभ्यता भी पतन की ओर कम उन्नति नहीं की है। आजकल सभ्यता ने एक नये शब्द को उत्पत्ति दी है जो के बड़ी गति से हर एक स्थान पर प्रयोग किया जाने लगा है। वह शब्द है Good personality अर्थात अच्छा व्यक्तित्व। कोई भी मनुष्य जो सफेद कमीज, सफेद पैंट जिस पर टीनोपाल लगा हुआ हो, पहनकर बाजार से गुजरता है तो सब लोग बड़े आश्चर्य से फुस-फुसाहट करते हैं—'देखो जी कितनी personalty है।'

वर्तमान काल में लड़के जब कालेज में प्रवेश करते हैं तो वे सब से प्रथम इस बीमारी के शिकार हो जाते हैं। भिन्न-भिन्न लड़के अपना व्यक्तित्व अच्छा दिखलाने के लिये नये-नये शस्त्रों का प्रयोग करते हैं सब से प्रसिद्ध शस्त्र जिन से वह वार करते हैं, निम्नलिखित हैं।

१. नाई की कैंची से भी तेज वे अपनी वाणी चलाते हैं।

२. पैंट की क्रीज़ पर एक एक मिन्ट के बाद नजर दौड़ाते हैं। तंग घेरे वाली पैंट पहन कर अपने आपको दूसरे लोगों से महान समझते हैं।

३. रत्ती-सा भार उठाना भी शान के विरुद्ध समझते हैं।

४. कड़ी दोपहर को गली-गली में घूमते तथा फिल्मी गाने गाते हैं।

५. अपने सिर के बाल मोर की तरह खड़े कर देते हैं।

६. सब से अन्तिम और विशेष शस्त्र मुंह से इंजन की तरह काला धुंआ निकालना है।

आजकल के 'अच्छे व्यक्तित्व' के लक्षण जान कर मुझे उसी क्षण स्वामी विवेकानन्द जी काषाय वस्त्र पहने हुए अमरीका की सड़क से गुजरते हुए नजर आते हैं जब कि पीछे आरही महिला अपने साथके पुरुष से कहती है .—'जरा इस महाशय को तो देखो, कैसी अनोखी पौशाक पहनी हुई है। स्वामी जी यह बात एक दम समझ जाते हैं और रुक कर पीछे आ रही महिला को सम्बोधित करते हुए निर्भीक स्वर में बोलते हैं—बहन कपड़ों को देख कर इतना आश्चर्य मत करो। तुम्हारे इस देश में कपड़े ही व्यक्तित्व की कसौटी हैं पर जिस देश से मैं आया हूं वहां व्यक्तित्व की पहचान मनुष्य के कपड़ों से नहीं उस के चरित्र से होती है। अब आप स्वयं ही दोनों व्यक्तित्वों का अन्तर देखिए। मुझे आजकल के यह रगरूट देख कर अति खेद होता है और हर समय यह हो सोचता रहता हूं कि इस कुरीति को कैसे दूर करू।

एमर्सन लिखते हैं कि यदि तुम मुझे उठाना चाहते हो तो तुम्हारा ऊचे स्तर पर होना अर्थात् अच्छे व्यक्तित्व का रखना आवश्यक है। ऊंचा स्तर न तो सफेद सुरखी मिट्टी की मूरत से ही और न उस के कपड़ों से ही होगा। सज्जनों व्यक्तित्व का विपरीत अर्थ तो न लगाओ। ऐश्वर्य का जीवन अच्छे व्यक्तित्व का सकेत नहीं करता। चेहरे पर पाउडर लगाने से तथा शराब, मास आदि का सेवन करने से नहीं बल्कि सादा जीवन व्यतीत करने और आदर्श विचार रखने से अच्छा व्यक्तित्व बनता है। जिस प्रकार दीमक दरवाजों को खोखला कर डालते हैं, ठीक उसी प्रकार यह ऐश्वर्य व्यक्तित्व को खोखला कर डालते हैं। महाऋषि दयानन्द जी ने अपने अत्युत्तम चरित्र से, वाणी के मीठे रस से और भगवे कपड़ों से ऐसी कई एक भारत वर्ष में फैली हुई कुरीतियों को दूर किया और अच्छे व्यक्तित्व का नमूना आप के सम्मुख रखा। इस लिए मैं अपने आर्य वीरों से यह प्रार्थना करता हूं कि वह नए प्रचलित व्यक्तित्व को अपने मन्यु से जला डालें तथा इस को शुद्ध रूप दें।

'शक्ति का स्रोत ! नारी'

(कु: अरुण आर्या प्रभाकर, टोहाना)

गंगा जी के अनन्त प्रवाह को रोकने की, हिमालय की उत्तुङ्ग शिखरों को तोड़ने की, वायु के तीव्रातितीव्र झोंकों के थपेड़ों को सहने की, घनघोर वर्षा की, जल के बहाव में पड़ी हुई शिलाओं से टक्कर लेने की, सुख और दुःख की तीक्ष्ण चोटों को सहने की यदि शक्ति है तो किसमें ? उत्तर मिलेगा। नारी में !

एक बार एक पुरुष ने प्रश्न किया, 'यदि नारी न होती तो संसार में क्या होता ? तो उसे उत्तर दिया गया जो कि स्वर्णिम अक्षरों में अंकित करने योग्य है। वह यह कि 'यदि नारी न होती तो न तुम होते और न मैं होता न ये दुनिया होती और संसार में प्रलय ही प्रलय होती।' यह जरा गम्भीरता पूवक सोचने की बात है। जो पुरुष नारी की कोई महत्ता नहीं समझते, उसको व्यर्थ की बकवास और पैर की जूती के समान समझते, हैं वो वास्तव में भारी भूल में हैं। यदि उन के लिए ये शब्द प्रयुक्त किए जाए कि वो मस्तिष्क रखते हुए भी मस्तिष्क विहीन और दोनों नेत्र होते हुए भी अन्धे और दोनों श्रोत्र होते हुए भी बहरे हैं तो अत्युक्ति न होगी।

वास्तव में नारी तो युग राष्ट्र और देश की निर्माता है। वह देश के लिए सुन्दर २ लाल उत्पन्न कर उस की भेंट कर देती है। इसीलिए तो इसे 'जननी, कहा गया। यह गृह को सुखी बनाने के लिए अपने समस्त अरमानों को लुटा देती है तो उसे 'देवी' और 'साम्राज्ञी' का रूप दिया गया। और वह अपने राष्ट्र के कल्याणार्थ प्रत्येक कार्य करती है तो उसे 'कल्याणी' का स्वरूप दिया गया।

जो पुरुष नारी को अबला, शक्ति हीन समझते हैं तथा यह कहते हैं कि:

'अबला जीवन हाय ! तुम्हारी यही कहानी।
आंचल में है दूध और आंखों में पानी।'

वह यह कहते हुए भूल जाते हैं कि विपत्तियों की उन घड़ियों में, जिस समय संसार के सब प्राणी साथ छोड़ देते हैं तो नारी किस प्रकार शीघ्रता से सहारा देती है क्यों कि जानती है कि वह उस का जीवन साथी है और जीवन साथी का अभि प्राय यह है कि सुख एवं दुःख दोनों अवस्था में एक प्राण और दो देह हो कर रहना है। कुविचार के उन क्षणों में जब पुरुष पाप वृत्ति में पड़ कर अतल पतन कुण्ड में गिरने लगता है तो वह उसे बड़े प्रेम से शीघ्रता से उठा लेती है क्यों वह उसकी 'पत्नी' है पतिका अर्थ है कि पतन से बचाने वाली। कइयों के मत में नारी जीवन पथ में बाधक है। परन्तु यह उन का गलत विचार है। बल्कि वह तो गंगा की धारा के समान जो कि समस्त विघ्न बाधाओं को चूर चूर करती हुई समुद्र की ओर अविरल गति से बहती रहती है, उसी प्रकार वह जीवन रूपी पथ में जो भी विपत्तियें और संकट रूपी शूल आते हैं उन को हटा कर मार्ग को साफ करती चली जाती है। अत: नारी बाधक नहीं, प्रत्युत साधक है। जीवन पथ की प्रेरक है। पथ प्रदर्शिका है। कहां तक तेरे गुणों का बखान करें ? लेखनी में शक्ति नहीं। इस को यहीं तक सीमित रखते हुए अन्त में यही कह कर अपने विचारों को बन्द करती हूं कि 'नारी अनन्त शक्ति का स्रोत है।'

आर्यसमाज और धर्म निरपेक्ष राज्य

श्री मि हरचन्द धीमान् (प्रधान आर्य प्रतिनिधि सभा, बंगाल औ आसाम)

धर्म निरपेक्ष राज्य की आजकल बहुत चर्चा है कोई व्यक्ति धर्मावलम्बी और धर्म निरपेक्ष दोनों कैसे हो सकता है यह पूछा जाता है। इसके विविध उत्तर दिये जाते हैं। कोई कहता है दोनों में विरोध नहीं है, कोई दोनों को समानांतर मानता है। आर्यसमाज का आदर्श है 'कृण्वन्तो विश्वमार्यम्'। वर्तमान वायुमण्डल में इसका समुचित अर्थ क्या हो सकता है। लेखक ने अपने विचार इस बारे में प्रस्तुत किये हैं, जो कि विचारणीय है।

भारत विभाजन पर हिन्दुओं में यह आशा थी कि पाकिस्तान बनने पर जो शेष भारत होगा वहां हिन्दुओं का राज्य होगा, परन्तु ऐसा न हो सका। हिन्दुओं की आशाओं पर पानी फिर गया। प्रधान मन्त्री पं० जवाहरलाल नेहरू ने सेक्युलर स्टेट अर्थात् धर्मनिरपेक्ष राज्य की घोषणा करके जन-भावना को ही बदल दिया। १९४९ में जो आर्य महासम्मेलन कलकत्ते में हुआ और जिसका स्वागत ध्यक्ष बनने का श्रेय इन पंक्तियों के लेखक को प्राप्त हुआ, उस में मैंने इसका स्पष्ट समर्थन किया। क्योंकि महर्षि स्वामी दयानन्द जी के विचारों के अनुसार भारतवर्ष का कल्याण सेक्युलर स्टेट की पद्धति को अपनाने में ही है। किन्तु आज सेक्युलर स्टेट का जो अर्थ लगाया जा रहा है वह सही नहीं है। इसका यह अर्थ कभी भी नहीं कि जो धर्मनिरपेक्ष राज्य हो वह अपने धर्म से रहित हो। इसका सही अर्थ है कि स्टेट में सार्वभौमिक सिद्धांतों के मानने वाले नागरिक हों और जहां मतमतान्तर के झगड़े न हों।

जिन्होंने 'सत्यार्थ प्रकाश' का अच्छी तरह अध्ययन किया है और अन्त में स्वामी जी के मंतव्य पर ध्यान दिया है वे जानते हैं कि स्वामी जी का सारा प्रयास ही इस पर निर्भर रहा कि संसार में मत-मतान्तर के झगड़े दूर हों यह सारा विश्व एक बार फिर मानव धर्म के सिद्धान्तों को, जो कि वैदिक धर्म पर ही निर्भर करते हैं—आरूढ़ हो।

यहां एक उद्धरण देना उचित है जो कि महर्षि के आशय को दुहराता है—

'Arya' the call of the future (1933) में ग्राहम ने लिखा है—'सब वर्तमान सम्प्रदाय व विचार प्रणालियां, जो कि प्राचीन आर्य राज्य के दार्शनिक विचारों की विरोधी हैं, मानव की आशा और स्वतन्त्रता को नष्ट करने वाली समझनी चाहिए। आर्य सभ्यता अब भी मानव ज्ञान और प्रयत्न की उच्चतम विजय है। भारत की एकता आर्यों में समावेश एवं संगठन की भावना के उद्भव में निहित है। भारत की किसी भी समस्या का बुद्धिमत्तापूर्ण हल आर्यों की दार्शनिकता के आधार के बिना सम्भव नहीं है।

आज का राष्ट्र मानव जाति का ऐसा विकास है जो कि आर्य-युग के राष्ट्रों के समान है। वैज्ञानिक आविष्कारों, इन्जिन वाइनों और कानों के आश्चर्य ने आय युग के बाह्य रूप एवं दृष्टिगोचर चिन्हों में परिवर्तन किया है, पर दार्शनिक विचार, जो कि आर्ययुग में सब मौलिक मूल्यों को प्रभावित करते थे आज के मानवीय संगठनों के प्रशासन के लिए उतने ही महत्वपूर्ण हैं और मानव जाति के सुख को प्रकट करने वाले हैं जैसे कि वे वीर युग में आर्य राजाओं के समय थे।

भारतीय इतिहास और परम्पराओं में जो सुन्दर और उचित है, आर्य आदर्श उन सब का केन्द्र-बिन्दु है।

भारतीय राष्ट्रीयता की जड़ें वैदिक संस्कृति एवं साहित्य और वीरयुगीन आर्य इतिहास में गहरी गई हुई हैं, यद्यपि सम्भव है पश्चिम में और शायद भारत में भी यह अनुभव न किया जाए। वेदों से पृथक कोई भारतीय राष्ट्रीयता सगठनकारी शक्ति सम्भव नहीं है। प्रत्येक राजनीतिज्ञ को यह स्वयं सिद्ध होना चाहिए कि धार्मिक मतभेदों की, जो कि भारत के लोगों को परस्पर विरोधी वर्गों में पृथक एवं विभक्त करते हुए प्रतीत होते हैं, ऐतिहासिक जड़ें नहीं हैं और इस लिए ये कृत्रिम और अस्थायी हैं। परिस्थितियों का दबाव पड़ने पर या प्रेरणात्मक नेतृत्व मिलने पर ये लुप्त हो जायेंगे।

योगदर्शन में पांच प्रकार के यम बताए गए हैं —

अहिंसासत्यास्तेय ब्रह्मचर्यापरिग्रह यमा।

अहिंसा, सत्य, अस्तेय ब्रह्मचर्य अपरिग्रह ये यम हैं।

योगदर्शन में पांच प्रकार के नियम बताये गए हैं—

शौचसन्तोष तप. स्वाध्यायेश्वर प्रणिधानानि नियमा.।

शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय, ईश्वर प्रणिधान ये नियम हैं। इन दोनों का पालन होना चाहिए। ये मानव समाज पर भी लागू होते हैं।

हमारे प्रधान मन्त्री ने धर्म-निरपेक्ष राज्य की घोषणा की है वह ठीक है। हमें उसका अर्थ, सही अर्थ समझना चाहिए।

विश्व में केवल वेद ही अपौरुषेय हैं और सर्वतन्त्र सिद्धान्तों के प्रकाशक हैं। वे जातीय भेद भाव को मिटाने वाले हैं, सबको एकता के सूत्र में पिरोने वाले हैं।

आज हमें भारत में पूर्ण धर्म-निरपेक्ष राज्य की स्थापना करने के लिए भारत को मतमतान्तरों से विमुक्त करना होगा। सर्वतन्त्र सिद्धांतों के द्वारा ही हो सकता है। वे वेद हैं। इण्डूज जैकशन ने आर्य समाज को प्रमोथियन फायर (वैदिक अग्नि) बताया था। हमें इसी रूप में आना चाहिए। हमारे पास वेद है हम वेदों की ऐसी अग्नि बन सकते हैं।

जब हम ऐसी अग्नि बन जायेंगे तब हम अपने कृण्वन्तो विश्वमार्यम् को पूरा कर लेंगे। और तभी भूमण्डल में धर्म निरपेक्ष राज्य की स्थापना होगी। (आर्य संसार से)

शोक प्रस्ताव

निम्नलिखित भिन्न २ आर्य संस्थाओं की ओर से श्री बख्शी टेकचन्द जी के निधन पर शोक प्रस्ताव पास करके उनकी आत्मा की सद्गति व सम्बन्धियों से समवेदना प्रकट की गई।

आर्यसमाज लक्ष्मण अमृतसर, आर्यसमाज लोहगढ़ अमृतसर, आर्यसमाज दसूआ, आर्यसमाज सैक्टर ८ चण्डीगढ, दयानन्द ब्राह्म महाविद्यालय हिसार, आर्यसमाज (अनारकली) देहली, आर्यसमाज किला मुहल्ला जालन्धर, डी० ए० वी० हायर सैकण्डरी स्कूल दसूआ व गुरदास पुर तथा आर्यसमाज उज्जैन आर्य समाज सलोगढ़ा (H P)।

गुरुकुल कांगड़ी में विदेशी छात्र

(कर्नल सत्यव्रत जी सिद्धान्तालंकार, उपकुलपति गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय)

जब से गुरुकुल कांगड़ी की स्थापना हुई है यहां देश-विदेश से लोग आते रहते हैं। कई इस शिक्षा-संस्था की विशेषता देखने के लिए आते हैं, कई यहां रह कर यहां के जीवन, यहां की शिक्षा-दीक्षा से लाभ उठाने के लिए आते है। अभी पिछले दिनों यहां अमरीका से एक विशेष सज्जन आए हैं, उनके साथ एक अमरीकन बालक भी गुरुकुल में प्रविष्ट होने के लिए आया है। इन दोनों के विषय में समाचार पत्रों में काफी चर्चा रही है। इन दो के अलावा थाईलैंड से एक तीसरे सज्जन भी यहां आए हैं जो गुरुकुल में रहकर यहां की शिक्षा से लाभ उठा रहे हैं। इन तीनों के विषय में यहां कुछ जानकारी देना असंगत न होगा क्योंकि प्राय इन के विषय में पूछताछ के पत्र आते रहते हैं।

डा० मारकस

अमरीका में एक वैदिक सोसाइटी है जिसके अध्यक्ष डा० मारकस हैं ये डाक्टर वैसे तो कानों के डाक्टर हैं, बहरों को सुनने वाला यंत्र बना कर देते हैं, परन्तु इनकी रुचि वेद के विषय में बहुत गहरी है। इनकी वेद विषयक रुचि का इसी से पता चलता है कि ये हजारों मील की यात्रा कर के गुरुकुल कांगड़ी में इसी उद्देश्य से पहुंचे हैं कि यहां रह कर वेदों का अध्ययन कर सकें।

इन के अध्ययन के लिये यहां पूरी व्यवस्था की गई है। श्री धर्मदेव जी विद्यामार्तण्ड इन्हें घंटा-दो घंटा प्रतिदिन संस्कृत पढ़ाते हैं। प० सुखदेव जी विद्यावाचस्पति से ये दर्शन, आचार्य प्रियव्रत जी से वेद तथा पं० सुरेश कुमार जी से हिंदी सीखते हैं। सब उपाध्याय इच्छा पूर्वक इन्हें अपने-अपने विषय का ज्ञान करा रहे है। प्रात. से सायं तक इन का सारा समय भरा रहता है। इन की प्रबल इच्छा है कि ये वेद का जितना ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं करें। यहां वेद का अध्ययन करने के बाद ये अमरीका में प्रचारक का काम करेंगे। इन सब के साथ गुरुकुल को इन से यह लाभ है कि ये प्रतिदिन एक घटा छोटे तथा बडे ब्रह्मचारियों को अंग्रेजी सिखाने का भी काम कर रहे हैं। गुरुकुल में पिछले दिनों यह योजना चालू की गई थी कि छोटे बालक हिंदी तथा संस्कृत का सभाषण करें और इस के साथ-साथ अंग्रेजी भी बोल सकें। गुरुकुल की इस योजना मे डा० मारकस बड़े उत्साह से योगदान दे रहे हैं।

डा० मारकस ने अपने को भारत परिस्थितियों के अनुकूल बनाने का भरसक प्रयत्न किया है। उनके लिये सब से बड़ी समस्या भोजन की है। यहां का भोजन उनके अनुकूल नहीं पड़ता। रोटी-परोंठा खाना वे जानते नहीं, इनका अभ्यास भी उन्हें कठिन प्रतीत होता है। वे शुद्ध शाकाहारी है। भारत के दूध में भी वहां के लोगों को गन्ध आती है इस लिये हमारे यहां का दूध पीने का भी उन्हें अभ्यास करना पड़ रहा है। उनका भोजन दही, शहद, साग-सब्जी, फल आदि का है, परन्तु यह सब खा कर वे शारीरिक दुर्बलता अनुभव करते हैं। आशा है, कुछ दिनों में हम यह निर्णय कर सकेंगे कि उनके लिए कौन-सा भोजन अनुकूल पड़ेगा, और वे भी देख लेंगे कि किस प्रकार के भोजन से उनकी शारीरिक शक्ति बनी रह सकती है।

मास्टर डीन

डा० मारकस के साथ जो बालक गुरुकुल में शिक्षा ग्रहण करने के लिए आया है उसका नाम है मास्टर डीन। अंग्रेजी में बच्चों को मास्टर कह देते हैं, उसका असली नाम डान है। मास्टर डीन को गुरुकुल में दिनेश कुमार का नाम दिया है। यह बालक छ वर्ष का है। जब भो कोई उसे पूछता है कि उसका नाम क्या है तो वह अपने अमरीकी लहजे से चाव से कहता है—दिनेश कुमार। आश्चर्य की बात यह है कि यद्यपि यह बालक हजारों मील दूर अपने माता-पिता को छोड़ कर आया है, तो भी वह एक दिन भी नहीं रोया, और उसने एक दिन भी अपने माता-पिता को नहीं याद किया। गुरुकुल में जो बालक भर्ती होते हैं उनमें से कई तो हमारे नाक में दम कर देते हैं। यह बालक बड़े मजे में गुरुकुल में विचरता है। वह हमारी भाषा नहीं जानता, अंग्रेजी बोलता है, अंग्रेजी भी ऐसी कि उसे अंग्रेजी भी न समझ सकें क्योंकि उसका लहजा बच्चों का-सा, उच्चारण अमरीकनों का सा है। उसके लिये भी यहां का भोजन एक समस्या है, परन्तु यह बच्चा हमारे लिये एक दिन भी समस्या नहीं बना। यहां ऐसे विचरता है, हम लोगों के घरों में ऐसे आता है, ऐसे मिलता है, ऐसे बात करता है जैसे वह कभी से यहीं का रहने वाला हो।

अभी दिनेश कुमार को दूसरे बच्चों से अलग रखा गया है क्योंकि उस का सारा रहन-सहन पाश्चात्य ढंग का है। टट्टी के लिये वह कमोड पर बैठ सकता है, हिंदुस्तानी तरीके की टट्टी उसके लिये अजीब चीज है। इसी प्रकार शौच के लिये पानी ले जाना भारतीय पद्धति है, परन्तु सीधा अमरीका से आये बच्चों को ये बातें एकदम नहीं सिखायी जा सकतीं। इस बच्चे को यहां के सब तरीके सिखाने को कुछ समय लगेगा, किंतु यह बच्चा बड़ी शीघ्रता से यहां के तरीके सीखता जा रहा है और आशा है कि कुछ ही दिनों में हम लोग दिनेश को अन्य बच्चों के साथ एक ही आश्रम में रख सकेंगे। वह कुछ-कुछ शब्द सीख गया है, कुछ वाक्य भी बोलने लगा है। हमारे घर आ कर वह कहता है-माता जी, दो कप चाय दीजिये, कभी कहता है पानी लाओ।

अब यह बालक प्राय दिन का सारा समय अन्य बच्चों के साथ काटता है वह उनके साथ पढ़ता लिखता, उठता-बैठता-खेलता है। कुछ दिनों से भोजन भी वह अन्य बच्चों के साथ करने लगा है। जैसे अन्य बच्चे मार-पीट करते हैं वैसे ही वह भी करता है। अक्सर मारता भी है, मार खाता भी है, परन्तु वह रोता-चिल्लाता नहीं। अपने देश के जो लोग अपने बच्चों को गुरुकुल में भर्ती करा जाते हैं, वे यह सुन कर कि बच्चे मार-पीट भी करते हैं, परेशान हो जाया करते हैं, परन्तु इस बच्चे के माता-पिता हमें बार बार यह लिख रहे हैं कि इसे सबके साथ रखिये, इसे गुरुकुल के तपस्यामय जीवन का अनुभव होने दीजिये।

मुझे सर्व-साधारण को सूचना देते हुए हर्ष होता है कि उक्त दोनों विदेशी गुरुकुल में आनंद तथा उल्लास का जीवन व्यतीत कर रहे हैं।

(क्रमश:)

धर्म शिक्षा चर्चा (१)

आर्य समाजों के सत्संगों में पढ़ने के लिए उपयोगी लेखमाला

पांच कसौटियां

(सुरेन्द्र चन्द्र जी वेदालंकार एम ए.एल टी डी बी कालेज गोरखपुर)

स्वामी दयानन्द महाराज ने सत्यार्थ प्रकाश के सप्तम समुल्लास में परमात्मा को सर्वव्यापी सर्वान्तर्यामी, रूप से प्रत्यक्ष करने के लिए जो २ काम करने होते हैं उन का उल्लेख करते हुए सब से पूर्व यम नियमों का पालन बताया है पातञ्जल योगशास्त्र के साधनपाद सूत्र ३० का उल्लेख करते हुए जीवन निर्माण के लिए सब से पूर्व लिखा है :—

तत्राऽहिंसासत्यास्तेय ब्रह्मचर्या परिग्रहायमा. अर्थात् जो प्रभु को प्राप्त करना चाहे उस के लिए यही आरम्भ है कि वह किसी से वैर न रखे, सर्वदा सब से प्रीति करे, सत्य बोले, मिथ्या कभी न बोले, चोरी न करे । सत्य व्यवहार करे, जितेन्द्रिय हो, लम्पट न हो । और निरभिमानी हो अभिमान न करे । यह पांच कसौटियां हैं जिन पर जीवन को कसा जा सकता है।

छान्दोग्योपनिषद् में एक कथा आता है कि एक बार नारद सनत्कुमार के पास पहुंचे और बोले— भगवान मैंने चारों वेद, विज्ञान, नक्षत्र विद्या, अन्त विद्या सब कुछ पढ़ डाला है। परन्तु मेरी आत्मा को शांति नहीं मिलती। क्या बात है? नारद ने सनत्कुमार से आगे कहा—महाराज मैंने सुना है कि प्रकृति का ज्ञान तुच्छ ज्ञान है, आपका ज्ञान आत्मज्ञान है। मैं मन्त्रवित् हो गया हू, आत्मवित् नहीं हुआ और इस संसार में मन्त्रवित् को शांति नहीं मिल सकती, आत्मवित् ही शांति पा सकता है। इस लिए आप मुझे आत्मवित् बनाइए।

कठोपनिषद् में भी नचिकेता की कथा इसी विषय से सम्बन्धित है। यम ने नचिकेता को कहा कि तू हाथी, घोड़े संसार के ऐश्वर्य, भोगविलास प्रकृति पर शासन जो कुछ चाहे मांग. परन्तु आत्मज्ञान मत मांग। यह बड़ा दुरूह है, परन्तु नचिकेता ने कहा 'भौतिक वासनाएं' तो एक जन्म क्या, सैंकड़ों जन्म लेते जाए तब भी नहीं मिटती और जब मनुष्य को आत्म तत्व के दर्शन हो जाते हैं उस समय भौतिक जगत् स्वयं हाथ जोड कर खडा हो जाता है। इसीलिए मुझे आत्मा का उपदेश दीजिए।

बृहदारण्यक उपनिषद् मे याज्ञवल्क्य और मैत्रेयी का वार्तालाप भी इसी विषय पर प्रकाश डालता है। सन्यास लेते हुए याज्ञवल्क्य ने मैत्रेयी से कहा— लो अब मैं तुझे अपनी सम्पूर्ण सम्पत्ति देता हूं। मैत्रेयी ने कहा— अगर तुम्हारी सम्पूर्ण सम्पत्ति मुझे मिल जाए तो क्या मुझे शांति मिल जाएगी? याज्ञवल्क्य ने कहा क्या सम्पत्ति से भी शांति मिल सकती है? संसार के प्राकृतिक साधनों के मिलने से साधन-सम्पन्न व्यक्तियों का जीवन जितना सुखी होता है, उतनी सुखी तू अवश्य हो जायगी। तब मैत्रेयी इसी और उस ने कहा, 'येनाहं नामृता स्यां किमहं तेन कुर्याम्' अर्थात् जिस वस्तु को प्राप्त कर के मैं अमृत नहीं हो सकती, जिस से मुझे स्थायी शांति नहीं मिल सकती, उस को लेकर मैं क्या करूंगी मुझे तो आत्मतत्व का उपदेश दीजिए।

अब प्रश्न उपस्थित होता है कि यह आत्म तत्व क्या बला है? आत्म तत्व को समझने के लिए हमें 'अहंकार तत्व' का ज्ञान होना चाहिए। अहंकार शब्द का अर्थ है, 'अहम् भावना या मैं पनआ'। व्यक्ति के अहंकार का मतलब है है कि दूसरों को दबा कर स्वयं प्रबल होने की भावना, दूसरों को दबाने के लिए असत्य, हिंसा, चोरी इत्यादि का हमें सहारा लेना पड़ेगा। और इन वस्तुओं के हृदय मे आते ही व्यक्ति व्यक्ति का संघर्ष होगा। और इस प्रकार का संघर्ष विपत्तियों और बुराइयों का कारण है। क्योंकि मनोविज्ञान एवं मानव स्वभाव के अनुसार और युद्ध के समय कोई साधन अनुचित नहीं माना जाता और इस प्रकार अनुचित साधनों को अपनाकर कुछ विशेष व्यक्ति समाज देश तथा जाति पर शासन करने लगते हैं और जब एक देश, एक समाज, एक जाति, एक राष्ट्र का अहंकार प्रबल हो जाता है तब राष्ट्रों का संघर्ष प्रारम्भ हो जाता है।

अहंकार का ही रूप स्वार्थ है। और स्वार्थ पर आधारित सामाजिक संगठन और व्यक्तिगत कार्य मानवों के पारस्परिक संघर्ष मे सहायक हो जाते हैं। अहंकार तत्व प्रकृति का भाग है। और प्रकृति का भाग होने से वह मनुष्य की बुद्धि को इस प्रकार प्रेरित करता है कि मनुष्य प्राकृतिक वस्तुओं में आनन्द अनुभव करने लगता है।

परन्तु विचारणीय बात यह है कि क्या प्राकृतिक वस्तुओं में आनन्द है? नाना प्रकार के वैज्ञानिक आविष्कारों ने क्या मानव को आनन्दित किया है? क्या नाना प्रकार के सुख और ऐश्वर्यों तथा प्राकृतिक साधनों से घिरे हुए व्यक्तियों के जीवन आनन्द से परिपूर्ण हैं? नहीं— कभी नहीं। वास्तव में आनन्द तो आत्मा का विषय है। आपके पास सुख के साधन विद्यमान हैं परन्तु वे साधन आपको सुख नहीं दे सकते?

एक कथा स्मरण आरही है। एक नगरी में एक साधु रहता था, भक्ति के गीत गाता था। लोग उस का सम्मान करते, उसे कितनी ही वस्तुयें देते। साधु ने अपने शिष्य से कहा, बेटा चलो यहा से चलें। शिष्य ने कहा नहीं गुरु जी महाराज यहा चढ़ावा बहुत चढ़ता है. कुछ पैसे जमा हो जायें तब चलेंगे। गुरु ने कहा चल मेरे साथ पैसे जमा नहीं करने हैं हमें। चल पड़े दोनों। चेले के पास कुछ पैसे थे वह उसने धोती मे बाध लिए। मार्ग मे नदी मिली। एक वहां नौका थी। नौका वाले ने कहा कि वह दोनों से दो-दो आना के पैसे लिए बिना पार नहीं करेगा। साधु के पास पैसे थे नहीं। शिष्य देना नहीं चाहता था। दोनों बैठ गए, दोपहर हो गई, संध्या हो गई, रात हो गई।

नाविक अपने घर जाने लगा तो बोला—'बाबा तुम यहां कब तक बैठे रहोगे? यह है जंगल, रात को सिंह इस किनारे पर पानी पीने आता है। अन्य जंगली पशु भी आते हैं वे तुम्हें मार डालेंगे। शिष्य सिंह के नाम से डर गया। धोती से चार आना निकालकर बोला—'अच्छा नहीं मानता तो ले।' नाविक ने चार आने लिए और उन्हें पार ले गया। दूसरे पार जाकर शिष्य ने कहा, देखा, गुरु जी आप कहते थे पैसा इकट्ठा करने की आवश्यकता नहीं, अब देखिए हमारे पास पैसे न होते तो आज आपत्ति आती या नहीं? गुरु ने हंसते हुए कहा 'सोचकर देख बेटा! पैसा एकत्र करने से तुम्हें सुख नहीं मिला, पैसे को देने से मिला। सुख त्याग में है एकत्र करने में नहीं।

(क्रमश.)

आर्य युवक समाज ... से छः ईसाई परिवार ... समाज लेखरामनगर की शुद्धि का महान समारोह

आर्य समाज तथा ... युवक समाज के तत्वाधान में पूज्य पं. त्रिलोकचन्द्र जी 'शास्त्री' की अध्यक्षता में छे परिवारों के लगभग ५४ ईसाई सदस्यों ने वैदिक धर्म को दिनांक २-६-६२ को ग्रहण किया अपने बिछुड़े हुए भाईयों ने बड़े गौरव के साथ वैदिक धर्म की दीक्षा ली। शहर के लगभग सभी भाईयों ने बढ़ चढ़ कर भाग लिया। वैदिक धर्म की जय के नारों से आकाश गूंज रहा था सब ओर आर्य समाज के प्रचार कार्य का तहलका मचा हुआ था शुद्धि के पश्चात् पूज्य पं. त्रिलोक चन्द्र जी 'शास्त्री' ने बड़े मार्मिक शब्दों में लगभग पौने दो घण्टे तक शुद्धि के बारे में विचारों को रखा। सत्यपाल सहदेव आ.यु.स. कादियां।

सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा नई दिल्ली

श्रीयुत पं० विनायकराव जी विद्यालंकार का निधन

आर्य प्रतिनिधि सभा मध्य दक्षिण हैदराबाद के प्रधान श्री युत पं० विनायकराव जी विद्यालंकार बार-एट-ला के आकस्मिक निधन का समाचार आर्यजगत् में बड़े दुःख के साथ सुना जायगा। हृदय की गति एकदम रुक जाने से उनका देहांत हुआ। मृत्यु के समय उनकी आयु ६६ वर्ष थी। परमात्मा दिवंगत आत्मा को सद्गति प्रदान करें।

—स्वामी ध्रुवानन्द प्रधान

आर्यसमाज किला मुहल्ला जालंधर का भाषा सम्बन्धी प्रस्ताव

आर्यसमाज किला जालन्धर की २—१—६२ की यह महती सभा पंजाब सरकार के जिला स्तर तक सारे काम काज में पंजाबी भाषा तथा गुरुमुखी लिपि को २ अक्टूबर से प्रयोग में लाने के निश्चय को घोर निन्दा की दृष्टि से देखी है। इस सभा का यह निश्चित मत है कि सरकार की इस प्रकार की नीति पंजाब के हिन्दुओं के साथ एक पक्षपात पूर्ण व्यवहार से ओतप्रोत है। भारत में किसी भी अन्य प्रांत में भाषा को इस प्रकार अनिवार्य रूप में कहीं भी जनता पर नहीं ठोसा गया है। भाषा एक सांस्कृतिक और सामाजिक वस्तु है, इसे राजनीति का अखाड़ा बना देना जनता के साथ अन्याय है।

अब यह सभा पंजाब सरकार से सामह अनुरोध करती है कि वह अपनी नीति में परिवर्तन कर इस आदेश को वापिस ले और जनता के हितों की रक्षा कर यश की भागी बने।

यह सभा केंद्रिय सरकार को भी स्मरण दिलाना चाहती है कि गत हिन्दी आंदोलन के सम्बन्ध में दिए गए आश्वासन में वह शीघ्र ही अपना आध्यादेश कर पंजाब के हिन्दी प्रेमी जनता के हितों की रक्षा करें।

—सुदर्शनचन्द पाराशर

श्री पं० अमरसिंह जी 'आर्य पथिक' का नया पता

सभी को यह जान हर्ष होगा कि आर्य जगत के प्रसिद्ध शास्त्रार्थ महारथी पं० अमरसिंह जी 'आर्य पथिक' १ सितम्बर से अध्यापक रूप में दयानन्द ब्राह्म विद्यालय हिसार में कलकत्ते से आ गए हैं। सभी परिचित सज्जन भविष्य में उनका यह पता अंकित कर लें।

... समाज होली मुहल्ला करनाल तथा सभाओं का नगर ... का भाषा संबंधी प्रस्ताव

... सरकार ने पजाबी रिजन में २ अक्टूबर सन् ६२ ई० से जिले स्तर तक सब काम पजाबी में करने का निश्चय कर लिया है और २-१०-६२ से सरकारी कार्यालयोंमें सब काम पजाबी रीजनमें पजाबी ही किया जायेगा। इस से न केवल हिन्दी सत्याग्रह के नेताओं को जो केन्द्रीय सरकार ने आश्वासन दिये थे उस से फिर गई है, अपितु केन्द्रीय सच्चर फार्मूला में जो सुविधाएं थी उन को भी सरकार द्वारा समाप्त कर दिया गया है।

यह बैठक सरकार से मांग करती है कि पजाब की भाषा हिन्दी है और सारे पंजाब में सब काम हिन्दी में ही होना चाहिये और पंजाब सरकार की इस आज्ञा का विरोध करती है जिसके आधीन २-१०-६२ से सारे पजाबी रीजन में बलात पजाबी जबान लादी जा रही है।

भद्रसेन

—मन्त्री कार्यालय आर्य समाज होली मोहल्ला करनाल।

—०—०—

आर्य कुमार सभा चंडीगढ़ सैक्टर 22 A का चुनाव

प्रधान श्री करण सिंह जी, M.A. (Research Scholar) उप-प्रधान श्री रामस्वरूप जी, B.A. उप-प्रधान श्री सुशील ... जी, B.A. मन्त्री श्री राम प्रकाश जी, M.Sc Hons (Final) उपमन्त्री श्री राज कुमार जी, उपमन्त्री श्री मनमोहन जी, कोषाध्यक्ष श्री शिव ... जी,

मन्त्री

आर्य कुमार सभा, चण्डीगढ़

ध्यान रखिए!

१—आप ने ७ से १४ अक्टूबर तक लेखराम नगरी (अंबाला छावनी) में रहना है।

२—अपना भाग बलिदान-जयन्ती निधि में अवश्य देना है।

३—आर्यसमाज के लक्ष्य को आगे बढ़ाने को प्रतिज्ञा करनी है।

भूलिए नहीं

आर्यसमाज का भविष्य आप पर निर्भर है

हरिप्रकाश

मंत्री-बलिदान-जयन्ती-समारोह-समिति

अंबाला छावनी

मुद्रक व प्रकाशक श्री संतोषराज जी मन्त्री आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा पंजाब जालन्धर द्वारा वीर मिलाप प्रेस, मिलाप रोड जालन्धर से मुद्रित तथा आर्यजगत कार्यालय महात्मा हंस राज भवन निकट कचहरी जालन्धर शहर से प्रकाशित मासिक—आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा पंजाब जालन्धर

टेलीफोन नं० ३०२७ [आर्यप्रादेशिक प्रतिनिधि सभा पंजाब जालन्धर का साप्ताहिक मुखपत्र] Regd No P.12
एक प्रति का मूल्य १३ नये पैसे वार्षिक मूल्य ६ रुपये

वर्ष २२ अक ३८) रविवार ७ आश्विन २०१८— २३ सितम्बर १९६२ दयानन्दाब्द १३८ (तार-प्रादेशिक जालन्ध

वेद सूक्तय:

नय नमसा रातहव्यम्

हे मनुष्य ! उस रातहव्यम्-ज्ञान व अन्न देने वाले परमेश्वर को नमसा-भक्ति से नय-प्राप्त कर। प्रभु की प्राप्ति भक्ति से ही हो सकती है अत. भक्त बन कर उसे प्राप्त कर।

अयं राजा वरुण:

यह वरुण भगवान् सब में विराजमान, सब में प्रकाशित और सब का राजा है। सारा संसार उसी की प्रजा है। सब स्थानों पर उसी की ज्योति, दीप्ति चमकती है।

अपास्मत् सर्वदुर्भूतम्

हे प्रभो ! अस्मत्-हम से सर्व-सब दुर्भूतम्-दुष्ट विचार अप-दूर कर दें। हमारे अन्दर जो २ भी बुरा भाव, व्यसन तथा विचार है उसे हे परमेश्वर ! आप दूर भगा दो।

अ थ र्व वे द

वेदामृतं

स्वस्ति नः पथ्यासु धन्वसु स्वस्त्यप्सु वृजने स्वर्वति।
स्वस्ति नः पुत्र कृथेषु योनिषु स्वस्ति राये मरुतो दधातन ॥

ऋ० मं० १० सू० ६३ मं० १५

अर्थ—(न) हमारे लिए (स्वस्ति) कल्याण करे (पथ्यासु) मार्गो में (धन्वसु) जल से खाली स्थानो मे तथा (अप्सु) जलों मे (स्वस्ति) कल्याण हो (वृजने) सेना आदि मे (स्वर्वति) सुख भरे मार्ग मे सदा कल्याण मिले। तथा (न) हमे (पुत्रकृथेषु योनिषु) सन्तान के साधन गृहस्थ आदि मे भी सुख मिले और (राये) धनादि ऐश्वर्य मे (मरुत) हे वीर जनो ! कल्याण (दधातन) प्राप्त कराओ। हमारे वीर पुरुष सब के लिए जल में, स्थल मे, सब मार्गों में संग्राम आदि मे, गृहस्थ मे, सम्पत्ति में सदा कल्याण कराने वाले होवे। सुख साधन जुटाते रहे।

भावार्थ—मरुत वे वीरजन हैं, जो सारे राष्ट्र के जन समाज के लिए कल्याण के सारे साधन जुटाते रहते हैं। सारी प्रजा के संकटों के निवारण में रात-दिन लगे रहते हैं। देश को अनेक मार्गों से भय होता है। कभी जल मार्ग से, कभी स्थल मार्ग से, कभी युद्ध संग्राम छिड जाने पर सारे राष्ट्र के सामने महान कष्ट आकर खड़ा हो जाता है। कभी परिवारों मे अशांति भय का कारण बन जाती है। अन्दर की अशांति तथा भीतरी रोग अधिक हानि का कारण बनता है। अत ऐसी अवस्था में महत्-ही वीरजन ही देश के सारे समाज को अपनी वीरता बलिदान से बचा देते हैं। सारे समाज को इन मरुतो पर बड़ा मान होता है। मरुत ही राष्ट्र के आधार हैं—सं०

ऋषि दर्शन

ईश्वरोपदिष्टो धर्मः

धर्म-धर्म-ईश्वर से उपदि उपदेश किया गया है। धर्म उपदेश भगवान से ही मिला वेद का धर्म ईश्वर प्रोक्त है।

एक एव मन्तव्य:

वह भगवान एक एव-एक मन्तव्य मानना चाहिए। परमे एक ही है। उसे एक ही जान चाहिए। उस के साथ और कि को भी न माने व जाने।

तपो धर्मानुष्ठानम्

तप-तप क्या है ? धर्मका कर्तव्य कर्म का अनुष्ठान-प करना ही तप है। अपने ? क को हर अवस्था मे पालन करन तप कहलाता है।

भा ष्य भू मि का

अधिष्ठाता—संतोषराज मंत्रीसभा सम्पादक त्रिलोक चन्द्र शास्

अध्यात्मवाद

कठोपनिषद् का सार

(ले० श्री ज्ञानसिंह जी, करोलबाग नई देहली)

नचिकेता ने यम के दौरान में ब्रह्म के बारे में भी कुछ प्रश्न किए और ब्रह्म ने निम्नलिखित उत्तर दिए—

१. परमात्मा सर्व व्यापक है। वह सारे संसार में इस प्रकार छिपा हुआ है जैसे अग्नि लकड़ियों में छिपी रहती है। अथवा जिस प्रकार गर्भवती स्त्रियां गर्भ को धारण किए होती हैं।

२. ब्रह्म की शक्ति से सूर्य उदय होता है और उस की शक्ति से ही अस्त होता है। सूर्य, चांद, नक्षत्र, तारागण उसी पर आश्रित हैं। उस की आज्ञा का कोई उल्लंघन नहीं कर सकता। उसी की शक्ति से यह सब चमक रहे हैं।

सृष्टि की उत्पत्ति प्रकृति से पहले साम्य अवस्था में थी अव्यक्त अर्थात् दिखाई न देने वाला थी। परमात्मा ने तप किया। यह तप कर्म के रूप में नहीं था बल्कि ज्ञान के रूप मे उस ने प्रकृति को गति दी इस गति से ही विकास आरम्भ हुआ। प्रकृति ने सत, तम, रज की साम्यता (harmony) में विकार उत्पन्न हुआ और प्रकृति भिन्न-भिन्न अवस्थाओं में प्रगट हुई। और अन्त में सृष्टि का रूप धारण किया। प्रथम अवस्था वायवीय (gaseous) थी जिस में जीवन का तत्व नहीं रह सकता था। इस के उपरान्त दूसरी अवस्था। आग्नेय (Ignitious) आई जिस में जीवनतत्व नहीं रह सकता था इस के बाद जलीय (Acqueous) अवस्था आई जिस में जीवन तत्व रह सकता था। तब से जड़ जगत् अर्थात् वायवीय और आग्नेय जगत अथवा दूसरे शब्दों में वायु व अग्नि का विकास हुआ। जिन में जीवन तत्व कायम नहीं रह सकता था। जब विकास होते होते एक जलीय अवस्था आई जिस में जीवन तत्व रह था तो चेतन जगत के उत्पन्न होने का समय आया। अर्थात् ब्रह्म ने अव्यक्त प्रकृति को गति दी। पहले जड़ जगत् पैदा हुआ और फिर चेतन जगत्। ब्रह्म इस गति से जिसे तप कहा गया है, पहले विद्यमान था। था। इसलिए वह जड़ व चेतन जगत् के पहले था।

एक ही ब्रह्म इस लोक में मे व्यवस्था करता है और दूसरे लोकों में भी। ऐसा नहीं कि इस जगत् की कोई और व्यवस्था करता है और ब्रह्माण्ड के दूसरे भागों का प्रबन्ध कोई विभिन्न शक्ति करती है। जो मनुष्य ऐसा समझता है उसे कभी मुक्ति प्राप्त नहीं हो सकती। परमात्मा एक ही है। वह सारे ब्रह्माण्ड की व्यवस्था करता है। (५) जैसा पहले लिखा जा चुका है, आत्मा हृदय के अंगूठे मात्र आकाश में विराजमान है। ब्रह्म भी उसी में विद्यमान है। मुट्ठी बन्द की जाय तो अंगूठी अंगुलियों के बीच में आ जाता है। चूंकि ब्रह्म जीवात्मा के बीच में अंगूठे की तरह स्थित है इसलिए उसे भी अंगुष्ठ मात्र का नाम दिया गया है। जो इस प्रकार के सूक्ष्म व व्यापक परमात्मा को जान लेता है उसे किसी से घृणा नहीं रहती। वह सब प्राणियों को इस परमात्मा मे, और इस परमात्मा को सब में अनुभव करके सब को अपने समान देखने लगता है। उसे किसी से घृणा नहीं रहती। और घृणा का अभाव ही प्रेम का द्वार है। ऐसे व्यक्ति में प्राणिमात्र से प्रेम की भावना उत्पन्न हो जाती है।

६. ब्रह्म ज्योति स्वरूप है। अविद्या रूपी धूएं से रहित है वही आज है, वही कल है, वह नित्य है। अविनाशी है, एक रस है, महान् है, अमृत है, सब लोक-लोकान्तर अपने अस्तित्व के लिए उसका आसरा लिए हुए हैं। अविद्या की मोहमयी नींद में जीव जागते हुए भी सोए पड़े हैं। उन की देह देश और योनि के अनुसार कामनाओं को रचने वाला वह परमात्मा ही जागता है। सब के जीवन के लिए अनेक प्रकार की इन्द्रियों का और पदार्थों का निर्माण किए हुए है। वह कितना दयालु है, जिसने नाना प्रकार की वस्तुएं, वायु, अग्नि, जल प्रकाश, फल-फूल, वनस्पतियां आदि चीजें प्राणिमात्र के हित के लिए बनाई है। जीवात्मा तो कर्म ज्ञान के अनुसार भिन्न-भिन्न शरीरों में प्रवेश करता है पर ब्रह्म इस जन्म मरण के चक्कर से मुक्त है।

७. अग्नि और वायु भिन्न-भिन्न वस्तुओं में विद्यमान हैं। वह जिस वस्तु के अन्दर होते हैं उसी के आकार में दृष्टि गोचर होते हैं। इन का अपना कोई आकार नहीं। जैसे प्रकाश और जलवायु यदि एक कमरे में है तो कमरे के आकार के अनुसार ही दिखाई देते हैं। अगर किसी बर्तन में हैं तो उस के आकार के अनुसार दृष्टिगोचर होते हैं। इसी तरह ब्रह्म जो सर्व-व्यापक है जगत् की हर वस्तु में विद्यमान है। वह जिस वस्तु में रहता है उसी वस्तु के रूपवाला होता है परन्तु इस वस्तु से सर्वदा पृथक रहता है। न वह उस चीज में लिप्त होता है और न वह वस्तु ब्रह्म में लिप्त हो सकती है। सूर्य का प्रकाश हमारी आंखों को सब प्रकार की चीजें दिखाने का साधन है परन्तु यदि आंख में खाली आ जाए अथवा कोई और रोग उत्पन्न हो जाय तो सूर्य की रोशनी पर इन दोनों का कोई प्रभाव नहीं होता।

(क्रमशः)

एक सन्देश

(कु० कान्ता 'बाला' हुशियार पुर)

अगर चाहते हो तुम बनना
वीर धीर और अति सुज्ञान
साहस से काम करो और न,
दो चिन्ता को मन में स्थान।

चिन्ता अति भयंकर होती है,
नहीं चैन तुम्हें लेने देगी,
मन तुम्हारा इक मोती है,
'आभा' को क्षीण बना देगी।

चिन्ता लकड़ी में घुन की तरह,
है दिल खोखला बना देती,
इस से तुम सदा रहो बचते,
शान्ति नहीं यह लेने देती।

यदि इच्छा यह तुम्हारी है,
जीवन को सफल बनाने की
लो युक्ति आज तैयार करो,
चिन्ता को दूर भगाने की।

कर्तव्य तुम्हारा कर्म करो,
मत फल की इच्छा तुम करना
लड़ना विपत्तियों से डट कर
मत कभी भी इनसे तुम डरना।

सम्पादकीय—

आर्य जगत्

वर्ष २२] रविवार ७ आश्विन २०१८, २३ सितम्बर १९६२ [अंक ३८

कर्त्तव्य की पुकार

पंजाब सरकार की घोषणा के अनुसार इस दो अक्टूबर से सारे प्रान्त को भाषा के आधार पर दो भागों में विभक्त कर जुदा-जुदा दो सरकारी भाषाएं कर दी गई हैं। अम्बाला रिजन की भाषा हिन्दी और पंजाबी जोन की भाषा गुरुमुखी लिपि में पजाबी हो जायगी। अपने २ भागों में सारा सरकारी कार्य इन्हीं में आरम्भ कर दिया जायगा। आर्यसमाज के साथ मिलकर प्रांत के सारे हिन्दी प्रेमी इस आधार पर विभाजन प्रवृत्ति के अन्याय के प्रतिकार के लिए अपनी आवाज़ उठाते रहे और आगे भी इसको जारी रखे हुए हैं। स्थान २ पर आर्य समाजें भी अपने-अपने अधिवेशनों में इस सम्बन्ध में सार्वजनिक प्रस्ताव पारित कर के बहुत कुछ कर रहे हैं। न्याय की माग करना जीवन का सदा से ही अधिकार रहा है। आर्यसमाज का सारा इतिहास इस से भरा है। हमें चाहिए कि अपनी आवाज प्रभावपूर्ण करने के लिए पजाब के सारे मान्य नेता सज्जन मिलकर गम्भीरता से विचार विमर्श करें तथा अपने शिष्ट मण्डल बना कर प्रांत के उच्च शासकों, केन्द्रीय सरकार में श्री गृहमन्त्री प्रधान मन्त्री तथा राष्ट्रपति जी के पास पहुंच कर सारी वस्तु स्थिति रखें। हम किसी भाषा के विरोधी नहीं। आर्यसमाज जैसा अत्यन्त उदार आंदोलन तो सारे विश्व में ही और नहीं है। इसे न पंजाबी भाषा से द्वेष है और उसके फूलने फलने में कोई [illegible] राष्ट्रभाषा के साथ पूर्ण न्याय व सम्मान की मांग अभीष्ट है। जब हम दूसरों के लिए न्याय चाहते हैं तो अपने लिए जा रहे अन्याय पर मौन क्यों रहें ?

इस के साथ हम पजाब के सारे हिन्दी प्रेमियों, राष्ट्रभाषा का सम्मान करने वालों, प्रान्त की सारी धार्मिक संस्थाओं एव अपनी सारी आर्यसमाजों से बलपूर्वक एक आवश्यक बात कहना चाहते हैं—केवल कहना ही नहीं अपितु उनके जीवन मे क्रियात्मक रूप से आई हुई देखना चाहते हैं—वह यह कि आन्दोलन के दो रूप होते हैं एक यह कि न्यायके लिए अपनी आवाज सुनाते चलो वैधानिक तथा उचित रूप से अपनी माग के लिए सारे उचित उपायों को जारी रखो। भावना बनाये रखो तथा जनता को अधिक से अधिक सख्या तक अपनी बात पहुँचाते रहो। वेदी, प्रेस के द्वारा अपना कार्य करते रहे। ऊचे अधिकारियों के पास जाकर अपनी बात रखते जाओ। और दूसरा यह कि साथ २ रचनात्मक कार्य भी जारी रहे। पजाब सरकार ने यह भी घोषणा की है कि विभागीय भाषा के साथ २ ऐसा प्रबन्ध भी होगा कि जो व्यक्ति जिस भाषा में अपना आवेदन पत्र देगा उसे उसी भाषा में ही उत्तर मिलेगा। इस के अतिरिक्त सरकारी नकल जिस भी भाषा में मांगी जाएगी उसी भाषा में दी जाएगी। ये दोनों बातें ऐसी हैं जिन से हम पंजाबी जोन के लोग लाभ उठा सकते हैं। यदि हम मन में यह धारणा करलें, संकल्प करलें, कि अपने सारे आवेदन-पत्र हिन्दी में देंगे तथा सारी नकलें हिन्दी में मांगेंगे तो सुविधा हो सकती है। यह इसका रचनात्मक पहलू है। यदि पैंतालीस प्रतिशत इस को अपना लें तो कितना कार्य हो सकता है। यह बात तो हमारे अपने ही हाथ में है। किन्तु इसके लिए सकल्प, दीक्षा तथा परिश्रम की आवश्यकता है। सस्थाए इसे हाथ में ले कर जनता को पथ दिखलावें आवेदन पत्र हिन्दी मे लिखवाने का स्थान-स्थान पर पूरा प्रबन्ध करे। पजाब की सभाओं तथा हिन्दी रक्षा समिति को इस ओर तुरन्त ध्यान दे कर इस ओर विशेष जुट जाना चाहिए। इस का भारी प्रभाव पड़ेगा। उधर न्याय की माग और इधर कर्त्तव्य की पुकार दोनों साथ २ चले तभी सफलता है।

—त्रिलोक चन्द्र

एक अनुभव

यह है कि अब देश की जनता मानसिक, आत्मिक शान्ति के लिए आध्यात्मिक प्रवचनों को सुनना अधिक पसन्द करती है। विशेषकर समाज की वेदी से। वर्तमान राजनीति की गन्दी दलबन्दी, भौतिक वाद की निस्सारता तथा बाह्य टीपटाप से मानव जीवन ऊब गया है। मन की प्यास मिटाने के लिए नर-नारी गम्भीर विचार चाहते हैं। अत. आर्य समाज को इस ओर अधिक ध्यान दे कर गम्भीर प्रवचनों का प्रबन्ध करना ही होगा।

श्री पं. विनायकराव जी

विद्यालंकार प्रधान आर्य प्रतिनिधि सभा दक्षिण हैदराबाद का अतीव शोक जनक निधन का दुःखद समाचार पढ़ सुन कर अत्यन्त हार्दिक दुःख हुआ। स्वर्गीय विभूति केवल हैदराबाद के ही नहीं प्रत्युत् सारे समाज की दिव्य विभूति थे। आप बैरिस्टर होते हुए भी कितने सरल सादा तथा ऊंचे थे—यह उन का दर्शन होते ही मालूम हो जाता था। आर्य समाज का प्रेम आप को परिवार द्वारा घुट्टी में ही मिला था। वहां की सभा के आप प्रधान थे। वहा की जागृति में आप के व्यक्तित्व, कार्य तथा जीवन का भारी प्रभाव था। हैदराबाद सत्याग्रह में आप का त्याग व कार्य सदा स्मरण रहेगा। मुझे तो आप के साथ रहने, उत्सवों मे जाने, समाज कार्य करने का सौभाग्य मिला है—क्रियात्मक आदर्शमय व्यक्ति थे। हमे सारे परिवार, सभा से हार्दिक सहानुभूति है। यह रिक्त स्थान पूरा नहीं हो सकता।

महात्मा जी मारीशस को

पूज्य महात्मा आनंद स्वामी जी सारे भारत में भ्रमण करते हैं। उनका जीवन बहुत ही व्यस्त है। अभी २ श्रीनगर में मधुर वर्षा करके बम्बई पधार रहे हैं। वहा से भारत से बाहिर मारिशस जा रहे हैं। वहा वालों का चिरकाल से आग्रह था प्रभु करे कि महात्मा जी वहां की जनता को तृप्त करके फिर शीघ्र भारत लौटें।

सभा के प्रधान

माननीय प्रिंसीपल सूर्यभानु जी वायस चांसलर कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय इस महान् उत्तरदायित्व उच्चस्थान को संभालते हुए भी सभा के सचालन कार्य में भारी रुचि ले रहे हैं। बड़े गौरव की बात है। सभा की प्रगति के लिए पूरी देखभाल करते हैं। उनकी इस धर्मभावना को देखकर आर्यसमाज को कितना गर्व होता है—सं०

सिद्धांत-चर्चा

हम क्या हैं ?

(प्रो० उत्तमचन्द जी 'शरर' एम. ए पानीपत)

संसार एक विचित्र पहेली है। आदि काल से बडे बडे विद्वान तथा विभिन्न देशों के दार्शनिक इसे समझने का प्रयत्न करते आये हैं, और आज तक यह प्रयास जारी है परन्तु सर्व-साधारण की जिह्वा पर साधारणतया यही रहता है 'पड़े भटकते हैं लाखों दाना, करोड़ों पंडित हज़ारों स्याने, जो खूब देखा तो यार आखिर प्रभु की बातें प्रभु ही जाने' आश्चर्य की वस्तु तो यह है कि इस संसार का सर्वश्रेष्ठ प्राणि मनुष्य जो अपने बुद्धि बल पर बहुत गर्व करता है और जिस ने प्रकृति पर विजय की ठानी है, यही बुद्धिमान भी आज तक संसार तो क्या, स्वयं अपने आप को समझने में भी असमर्थ रहा है। संसार भर के विभिन्न दार्शनिक, स्वयं अपने अस्तित्व के सम्बन्ध में विचित्र धारणायें रखते आये हैं। ऐसी अवस्था में किस प्रकार सत्य का निश्चय हो ? और यह भी तथ्य है कि यदि मानव जीवन में हम स्वय अपने आप को भी न जान पाये तो अपने कर्तव्य का क्या निश्चय कर सकेंगे ? कर्तव्य के निश्चय किये बिना लक्ष्य प्राप्ति केवल मृगतृष्णा ही रहेगी, इस में सन्देह नहीं। ईश्वर की कृपा से हमें बुद्धि-बल प्राप्त है, वैदिक धर्मी होने के नाते हमें वेद ज्ञान भी सुलभ है। अत. यदि हम विभिन्न दृष्टिकोणों को वेद तथा तर्क के आधार पर पक्षपात रहित होकर विचारें, तो सत्य प्राप्ति कठिन नहीं होगी।

मानव के सम्बन्ध में कुछ विद्वानों के निम्न विचार इस समय हमारे सम्मुख हैं (१) मानव केवल शरीर मात्र का नाम है। इस में आत्मा की सत्ता केवल कल्पना है। (२) मनुष्य तथा इसका संसार वस्तुत: स्वप्नमात्र है। संसार का कोई पदार्थ भी अपनी सत्ता नहीं रखता। (३) मनुष्य जीव तथा शरीर के (प्रकृति) सम्बन्ध का नाम है इसे पूर्णतया ईश्वर ने अपनी महिमा के विस्तार के लिये बनाया। (४) मनुष्य देह में जीव ईश्वर का अंश है उस से जुदा होकर तड़प रहा है, पुन. उसी में मिलकर यह आनन्द स्वरूप हो जावेगा। (५) शरीर तथा जीव का मेल मनुष्य है इन दोनों को (प्रकृति तथा जीव को) किसी ने नहीं बनाया। कोई तीसरी सत्ता नहीं, यही जीव उन्नति करते-करते ईश्वर बन जाता है। (६) जीव तथा प्रकृति का सम्बन्ध ईश्वर की कृपा से होता है, इसे जीवन कहते हैं इसके वियोग को मृत्यु। ईश्वर जीव तथा प्रकृति यह तीनों अनादि पदार्थ हैं।

विस्तार भय से हम इस तालिका को बढ़ाना नहीं चाहते। सामान्यतया इसी में मतमतान्तरों का दृष्टिकोण आजाता है। कुछ सम्प्रदाय तो वह हैं जिन के प्रवर्तक गहनदार्शनिक विषय में मौन रहे हैं। अब हम तर्क द्वारा इन धारणाओं की समीक्षा करते हैं। पाठक महानुभाव भी पक्षपात रहित होकर इन्हें पढ़ें यदि इन में कोई बात सन्देहास्पद हो तो अवश्य बताने की कृपा करें। सर्वप्रथम यह दृष्टिकोण कि मनुष्य केवल शरीरमात्र है इस में आत्मा नाम की कोई चेतन सत्ता नहीं, वाममार्ग तथा आज के तथाकथित वैज्ञानिकों का है। रोहतक में एक विज्ञान के प्रोफैसर से इस विषय में मेरी काफी दिन चर्चा रही। वाममार्गी का कथन है कि शरीर के अंग इस प्रकार किये गये हैं कि उन में गति आगई है। घड़ी की सुइयां चलती हैं तो क्या उन में कोई आत्मा होती है ? लुधियाना के एक सज्जन ने मुझे कहा कि अब तो रेडियो के आविष्कार के साथ आत्मा के अस्तित्व का सिद्धान्त मर जाना चाहिए क्योंकि रेडियो बोलता है पर आत्मा उस में नहीं होती। यही अवस्था मनुष्य की है।

यदि हम विचार पूर्वक देखें तो सुनने में जितना यह सिद्धान्त सबल लगता है, गहराई में उतना ही निर्बल प्रतीत होता है। आत्मा के लक्षण में न्याय शास्त्र का कथन है, कि आत्मा इच्छा, द्वेष, सुख, दु ख प्रयत्न तथा ज्ञान के विशेष गुणों से युक्त है। आओ हम देखें कि उपयुक्त उदाहरणों में क्या इच्छा प्रयत्न तथा सुख दु ख की अनुभूति है ? हम पाते हैं कि न तो घड़ी में और न रेडियो में इन गुणों का समावेश है और न ही मानवकृत किसी अन्य मशीन में यह अनुभूति विद्यमान है वे तो केवल मशीन की तरह चलती रहती है जब तक कि स्परिंग कार्य करता है। परन्तु चेतन सत्ताओं ने च्यूटी से मनुष्य तक इच्छा, प्रयत्न तथा सुख दु.ख की अनुभूति विद्यमान है। अत. सजीव पदार्थों को निर्जीव कलों से मिलाना और उन से कोई परिणाम निकालना सर्वथा असंगत होगा। बुद्धि यही मानती है कि सजीव पदार्थ कुछ तत्व विशेष रखते हैं जिस से वह सुख दु:ख की अनुभूति करते हैं, इसे आत्मा कहते हैं। मनुष्य में यह अनुभूति है अत· यह केवल शरीर-मात्र नहीं, इस में आत्मा भी है। व्यावहारिकता में भी यदि किसी की अंगुली कट जाये, तो वह यही कहता है कि मेरी अंगुली कट गई इसी प्रकार आंख फूटने पर आंख फूट गई कहा जाता है जिस से सिद्ध है कि कहने वाला अंगुली नहीं आंख नहीं, उससे सर्वथा भिन्न सत्ता है। शरीर से आत्मा की पृथकता इस से ही सिद्ध है। पश्चिम के प्रसिद्ध दार्शनिक डेकार्ट आत्मा की सत्ता में युक्ति देते हुए कहते हैं "मैं चिन्तन करता हूं, अत मैं हूं" उन्होंने चिन्तन से चिन्तन करने वाले का अनुमान लगाया। ऊपर के विवरण में यह बात सर्वथा सिद्ध हो जाती है कि शरीर ही चेतन नहीं शरीर में चेतन वस्तु और है जो आत्मा कहलाती है और इस जड़ शरीर में प्रवेश के साथ इसे चेतना युक्त कर देती है वही हम हैं।

गु० कु० झज्जर का शोक-प्रस्ताव

आर्य समाज के मूर्धन्य नेता एवं आर्य समाज हैदराबाद के प्राण श्रीमान् पं० विनायकराव जी विद्यालंकार के आकस्मिक निधन पर आज ८-९-६२ को गुरुकुल झज्जर रोहतक में समस्त कुलवासियों की सभा हुई। जिस में कुलपिता पूज्य आचार्य भगवान् देव जी महाराज ने पं० जी द्वारा आर्यसमाज पर आजीवन किये गये महान् उपकारों को स्मरण करा कर उनके प्रति कृतज्ञता व्यक्त करते हुये कहा कि सब कुलवासियों को उनके पवित्र जीवन से शिक्षा लेकर उनके मार्ग का अनुसरण करना चाहिये। हैदराबाद में नवाब कालीन परिस्थितियों में आर्य समाज का प्रचार करना पं० विनायकराव जी जैसे लौह पुरुष का ही काम था। कुलवासियों को जहां अपने वयोवृद्ध नेता के वियोग से हार्दिक दु ख हुआ वहां सब ने उनके आदेशों पर चलने के लिये परमेश्वर से सामर्थ्य की याचना की।

निवेदक—मुख्याधिष्ठाता

सम्पादकीय

योजना को सब मिलकर कामयाब बनायें

देश के आजाद होने पर नेताओं और देश वासियों के सामने एक साथ कई समस्यायें आयीं। पराधीनता और पिछले महा युद्ध के कारण चारों ओर भयानक मँहगाई और जीवनोपयोगी चीजों को अत्यधिक कमी हो गयी थी। ऐसी हालत में ४२ करोड लोगों के लिए रोटी-कपडे के सवाल को ही हल करना कोई आसान काम नहीं था, उनकी शिक्षा दीक्षा और सभ्यता सस्कृति की बात तो अलग रही। उस समय तात्कालिक आवश्यकता के लिए विदेशो मे अन्न मगवाना स्वाभाविक ही था। लेकिन इसके साथ ही साथ योजनाबद्ध और सुव्यवस्थित प्रयत्नो की भी सबसे ज्यादा जरूरत थी, जो हमारे योजना-कमीशन ने पूरी की। इसके अनुसार पहली पचवर्षीय योजना २३,०० करोड की थी, दूसरी ७५० करोड रुपयों की और तीसरी १०४०० करोड रुपयो की बनी है। यह ठीक है कि इस तरह का कार्य हमारे लिए बिल्कुल नया था और प्रथम योजना के आँकडों की जानकारी अपर्याप्त तथा कुछ गलत भी हो सकती थी, लेकिन फिर भी उनके आधार पर जो निर्माण कार्य हुए या जिन पर जोर दिया गया, उनसे लाभ ही हुआ। प्रथम योजना से न केवल उत्पादन बढा, आँकडो के रूप मे देश की एक तस्वीर सामने आ गयी। उससे अन्न उत्पादन के अतिरिक्त देश के उद्योगीकरण, बेकारी तथा समाज सेवा को दूसरी योजना में यथोचित स्थान दिया जा सका और तृतीय योजना को और भी अधिक व्यापक बनाने में सहायता मिली।

देश की जरूरतें पूरी करने के लिए आवश्यक उत्पादन करने मात्र से काम नही चल सकता, बल्कि जनता मे खरीदने की शक्ति आये, इसलिए जनता को रोजगार देना भी आवश्यक था। बढती हुई जन-सख्या ने बेकारी की समस्या को और भी कठिन बना दिया। अधिक से अधिक लोगों को काम देने के साथ-साथ जीवन-स्तर ऊँचा बनाना और वे अच्छी तरह सुख पूर्वक जी सकें, ऐसा अवसर निर्माण करना आवश्यक था, क्योकि असन्तोष की स्थिति से राष्ट्र सबल तथा सशक्त नही बन सकता, आजादी टिक नही सकती। इसलिए दारिद्रय और अज्ञान को दूर करना ही होगा। जनता के जीवन-स्तर को ऊचा उठाने मे हमे विज्ञान की सहायता तो लेनी ही होगी, साथ ही साथ अपनी प्राचीन सस्कृति को भुलाने से भी काम नही चलेगा। इसलिये विज्ञान तथा प्राचीन सस्कृति या वैचारिक भूमि का समन्वय करना होगा जिससे आर्थिक समस्या को सुलझाने के साथ साथ नैतिक मूल्यो की भी स्थापना की जा सके और यह तभी सभव है जब आर्थिक विकास के साथ-साथ सामाजिक अन्याय भी दूर किये जायें। इसके बिना प्रत्येक देशवासी को अपनी उन्नति का समान अवसर मिलना मुश्किल है।

देश की आर्थिक उन्नति के लिए केवल कुछ शहर उन्नत हो जायें या कुछ उद्योग ही पनपें, यह काफी नही है। गावो मे बसी हुई ग्राम जनता की स्थिति सुधरे, यह आवश्यक है। भारत की अधिकांश जनता गावो मे बसती है और उनका प्रमुख उद्योग खेती तथा पशुपालन है। वे वैज्ञानिक व आधुनिक तरीको से केवल अपनी खेती का उत्पादन बढावें, इतना ही काफी नही है बल्कि साथ-साथ ऐसे उद्योग भी देहातो मे पनपें जो अपने घर बैठकर किये जा सकें और जिनसे देहातियो को बारह महीने पूरा काम मिल सके। इसके लिए यदि दूसरी योजना मे ५३० करोड रुपये खर्च किये गये हैं तो तीसरी योजना में १०६८ करोड व्यय करना प्रस्तावित है। विगत सन् ५०-५१ मे हमारे देश में अन्न उत्पादन के आकडे ५२२ लाख टन के थे और दोनो योजनाओ के बाद वे बढकर ७६० लाख टन तक जा पहुँचे हैं, और आशा की जाती है कि तीसरी योजना के अन्त मे देश १००० लाख टन तक अन्न उत्पादन करने लगेगा जो हमारे देश की अन्न सम्बन्धी निर्भरता के लिए पर्याप्त होगा।

भारत मे प्राकृतिक साधनों की विपुलता है और हमारा आज जो उत्पादन है, उसमें कई गुना वृद्धि की जा सकती है। जमीन से कृषि का उत्पादन बढाने के लिए नवीनतम औजार, खाद की ही नही, अपितु सिंचाई की व्यवस्था भी आवश्यक है। जगल तथा खदानो से उद्योग तथा अन्य उपयोगी कार्यों के लिए खनिज द्रव्य उत्पादन बढ़ाने मे तथा बिजली का उत्पादन व उपयोग बढाये बिना भी काम नही सकता। यह सब करने के लिए स्फूर्ति या शक्तिका केन्द्र है व्यक्ति अर्थात् नागरि मानवीय शक्ति काम मे लगे इसलिये लोगो के स्वास्थ्य की ओर ध्यान दिया चाहिए प्रजा को संतुलित और स्वास्थ्य-कर भोजन मिले, बीमारियो मे योग्य उप हो सके इसकी यथोचित व्यवस्था करना जरूरी है। बिना स्वास्थ्य के न परिश्रम ही किया जा सकता है और न काम मे स्फूर्ति आ सकती है।

यह सब होने पर भी यदि देश के उत्पादन या समृद्धि का योग्य बटवारा होकर कुछ-इने गिने लोग ही सुखी बनें, तो वह काम वैसा ही होगा—जैसे शरी सभी अवयव या इन्द्रिया सही अनुपात में न होकर एक अग मोटा हो दूसरा पतः इस प्रकार का मोटापा या कमजोरी, बीमारी है। इसलिए यह आवश्यक है कि के सभी लोग उचित अनुपात मे देश की समृद्धि से लाभान्वित हो। किसी एक का मोटा होना समाज के स्वास्थ्य का नही, बीमारी का लक्षण है।

श्रीमद् भागवत मे नारद का वचन है कि"—जितने से अपना पेट भरे, उतने ही मनुष्य का अधिकार है। जो इससे ज्यादा पर अपना अधिकार जताता या मा है, वह चोर है—उसे दड मिलना चाहिये।'

इसलिये सपत्ति एक स्थान मे केन्द्रित न हो, अपितु उसका सबमें उचित वित हो। प्रत्येक देशवासी की आमदनी मे बहुत अधिक अन्तर न हो, यह देखना जरूरी है। लोक कल्याणकारी सरकार को इस विषय मे सावधानी रखने की आवश्यकता है।

हर्ष की बात है कि इन सब बातों को ध्यान रखते हुए ही तीसरी पचव योजना बनाई गई है और उसमें खर्च किये जाने वाले धन का उचित वितरण किया गया है। निर्माण मे कृषि उत्पादन को इस प्रकार बढाने की योजना है अन्न की अपनी जरूरत पूरी होकर भी अन्य उद्योगो के लिए आवश्यक कच्चे म का उत्पादन हो सकेगा। उस हालत मे हम अन्न के लिए स्वावलम्बी बनकर बा ऐसा पक्का माल भिजवा सकेंगे, जो कि अब तक देश को बाहर से मगाना पडता है उस रकम की पूर्ति कर हम बाहर से धन ला सकेंगे। वस्त्र में तो हमने इतना उत्पा बढा लिया है कि बाहर से वह करोडो रुपये देश मे ला रहा है। छोटे यत्रों मे हमारी काफी प्रगति हुई है और वे विदेशो को भी भेजे जा रहे हैं। इसके अलावा यत्रो की कमी आगामी योजना मे पूरी होगी।

खनिज द्रव्यो के निर्माण का हम अब तक पूरा लाभ नही उठा पा रहे हैं। प अब उनके निर्माण से देश की जरूरत पूरी होकर कई चीजें बाहर भी भेज सकेंगे तैल की खुदाई पर तृतीय योजना मे काफी ध्यान दिया गया है और आशा होने ल है कि हम कुछ वर्षों मे तेल और पेट्रोल के लिये आत्म-निर्भर हो जायेंगे। रासायनि खाद तथा अन्य बहुत से उपयोगी रसायनो का उत्पादन भी काफी बढाने पर ध्य दिया गया है।

इस प्रकार देश की आवश्यकता, आत्मनिर्भरता, समृद्धि सभी अगो का विचा कर इस योजना को जितना व्यापक बनना सभव था, बनाया गया है। यही कार है कि देश के विभिन्न विचारधाराओ के लोगो का उसे प्रबल समर्थन प्राप्त हुआ है यदि पहली और दूसरी योजनाओ के परिणामों पर हम दृष्टिपात करें तो पता चलत है कि जहा हमारी राष्ट्रीय आमदनी सन् ५०-५१ मे केवल १०२ अरब रुपये थी वहा सन् ६०-६१ मे बढकर १४५ अरब रुपये हो गयी और तीसरी योजना के अ तक १६० अरब तक पहुँच जाने का सम्भावना है। जनता की सामर्थ्य या शक्ति बहुत बडी है। योजना मे रखे गये साधनो को यदि जनशक्ति का उत्साहपूर्ण समर्थ प्राप्त हो जाता है तो बहुत अधिक काम हो सकता है और योजना अपने आप बड बन जाती है। जैसे, हमे घर बनाना होता है, तब हम अपने खर्च मे बचत करते हैं अधिक कष्ठ उठाते हैं, परिश्रम करते है। उसी तरह क्या हम राष्ट्र निर्माण के लि अपने व्यसनो से पूर्ण मुक्ति न भी पा सकें, तो भी कुछ दिनो के लिए तो छोड ही सका हैं। विलास, दिखावा व बडप्पन के लिए किए जाने वाले खर्च की बचत भी हम क सके तो योजना का जो आज आकार है, उसमे बहुत बडी वृद्धि की जा सकती है।

वास्तव मे योजना का कार्य बडा व्यापक और बहुमुखी है। इसमे विभिन्न रुचि शक्ति व सस्कार वालो के लिए कार्य करने के पूर्ण अवसर हैं। इतना बडा कार्य यदि हम योजना पूर्वक नहीं करेंगे तो हम अपने निश्चित लक्ष्य को सिद्ध नही कर पावेंगे

(शेष पेज ५ पर)

ादर्श ज़िला बनाने में जनता का सहयोग

वात का इलाका पीछे नहीं रहेगा

मगरमच्छ के आँसू तो आज इतने बहाए जाते हैं कि बाढ ही गई है ! कुछ नकली लीडरो, रुपये के पुजारियों और झूठी ा वाले अफसरो का मुख्य काम क्रमश गरीब जनता, धर्म (वफादारी के नाम पर मगरमच्छ–आँसू बहाना है ।

स्वराज्य से पहले नकली लीडरो ने गरीब जनता को धर्म के पर भडकाया था, आजादी के बाद के पुजारियों ने 'रुपया धर्म खूब या, जो अफसर आजादी मिलने से देश भक्तो को ठोकर लगाते थे, वे ादी के बाद कुछ बदले और कुछ तन्त्र को बिना समझे उसे कोसने । वैसे तो पण्डित जवाहरलाल नेहरू श को बहुत सम्भाला और दुनिया मे त का सिर ऊँचा किया, विनोबा बापू के पद-चिन्हो पर खूब चले । ्त जी ऊँची कुर्सी पर बैठे रहे और ोबा जी पद-यात्रा पर चलते ही रहे । इतने ऊँचे, दूसरे कठोर भूमि पर ! ाना फासला !

इन दोनो महान हस्तियो को, ऋषि और सिपाही को—श्री रामनारायण चौधरी चुपचाप ग्राम सहयोग समाज के द्वारा एक दूसरे के निकट ला रहे है ! सब पार्टियो के लीडरो मे देश की भलाई के लिए मेल कराने का, पूँजीपतियो को सम्पत्ति का सच्चा ट्रस्टी बनाने का और अफसरों को लोकतन्त्र का जरूरी पाठ पढाने का उन्होंने ठोस प्रोग्राम बनाया है जिसे पण्डित जी और विनोबाजी दोनो पसन्द करेंगे । जैसे गाधी जी का डण्डी मार्च, सरदार पटेल का बारदोली का किसान सत्याग्रह और विनोबा का तैलगाना से आरम्भ होने वाला भूदान यज्ञ याद रहेगा, उसी प्रकार चौधरी जी का आदर्श जिला आन्दोलन भी एक ऐतिहासिक घटना मानी जावेगी । यह ऐतिहासिक प्रयोग जिला गुडगाँव से आरम्भ हुआ हैं ।

कई समझदार परन्तु कायर भाई-इन कहते हैं, "यह सब हवाई बातें हैं । ाए ने और सत्ता ने सबको पागल बना या है । यह योजनाए कागजी हैं, यह बायती राज गुण्डों के लिए भेड की ाल है ! कभी भेडिये को किसी ने ाया है, गीदड ने कभी ईख की रखली की है ? यहाँ तो डण्डा राज चाहिए । लातो के भूत बातो से नहीं मानते । भला अनपढ और लोभी लोग आजादी को क्या समझें । शोर मचाने और देश को लूटने का लाइसेसन्स मिल गया । कही शान्ति नहीं, कहीं मेल नही । अहा ! वे अग्रेज कितने अच्छे और मजबूत प्रशासक थे ! काश कि वे इतने जल्दी भारत न छोडते । हम तो आजादी के अधिकारी हैं ही नही । कैसे करोगे आप ग्राम सहयोग और कैसे बनाओगे आदर्श गाँव, आदर्श ब्लाक और आदर्श जिला ? सरकार पानी की तरह रुपया बहा चुकी, परन्तु व्यर्थ । ज्यों-ज्यो इलाज किया त्यो-त्यो बीमारी बढती गई । आप के पास तो कुछ साधन भी तो नही । कौन सुनेगा आपकी बातें । ईश्वर ही भला करें···· "

चौधरी जी ने चुनौती मंजूर कर ली है

श्री रामनारायण जी चौधरी ने समय की इस चुनौती को स्वीकार किया है, मुश्किल बात को आसान करने चले है, अविश्वास की धुन्ध को हटाने की पुरानी प्रतिज्ञा को दृढ किया, सत्य-पथ पर मजबूती से कदम उठाए । आदर्श जिला स्कीम तैयार की जिसके अनुसार अनगपुर एक आदर्श गाँव, फरीदाबाद एक आदर्श ब्लाक और गुडगाँव एक आदर्श जिला बनाया जाएगा । पजाब के मुख्यमन्त्री सरदार प्रतापसिंह कैरो ने इस महत्वपूर्ण स्कीम को पसन्द किया और अपने अफसरो को आदेश दिया कि वे इसे सफल बनाने मे पूर्ण सहयोग दें । पूँजीपतियो को अपनी दान-वृत्ति दिखाने और लीडरो को अपनी लीडरी ठोस काम के द्वारा चमकाने का शुभ अवसर मिला है ! इस प्रकार अब जनता की, सरकार की और पूँजीपति की शक्तियां सगठित होकर इस महान् कार्य मे जुटाई जाएगी । आध्यात्मिक बल, राजशक्ति और धन जब किसी काम में लगाए जाते हैं, तो वह अवश्य सफल होगा !

जनता सहयोग दे रही है

आदर्श जिला के लिए फिजा बनने लगी है, जनता अपनी दबी शक्ति को बाहर निकालने लगी, धर्म फिर सबको मिलाने चला, रुपया विकास और शिक्षा के काम के लिए लगने चला, सच्चे अफसर को मनचाहा काम दिखने लगा ! जिस प्रकार ईमानदार अफसरों, दानी किसानो, दुकानदारों और ठेकेदारो, बहादुर भूतपूर्व सैनिकों और ग्राम नेताओ, मेहनती मजदूरो, जोशीले जवानो और निःस्वार्थ समाज सेवकों ने चन्द महीने मे नेहरू कालेज झज्जर को जमीन, रुपया और श्रम देकर बनाया था, उसी प्रकार उससे भी थोडे समय मे चौधरी जी के नेतृत्व में नेहरू कालेज अजरौंदा, (फरीदाबाद) को बनाया जाएगा और साथ-साथ अनगपुर ग्राम, फरीदाबाद ब्लाक और गुडगाँव जिला नमूने का बनाकर देश के सामने एक शानदार उदाहरण पेश किया जायेगा । भारत माँ की आज यही तो माग है !

सत्य-पथ पर चल पडे तो फिर रुकना क्या ? ढील क्यो ? सोचने का समय कहा ? चौधरी जी ने जिले के सब ब्लाको मे बारी-बारी से जाना शुरू कर दिया है । ७ अक्तूबर तक नेहरू कालेज फरीदाबाद के लिए २० लाख रुपया जमा करने की चन्दा टीम बना दी गई है जिला विकास सम्मेलन की तैयारी शुरू हो गई, चूँकि मैंने शुरूसे अन्त तक नेहरू कालेज झज्जर के लिए चौधरी जी से आशीर्वाद और प्रेरणा लेकर काम किया था, इसलिए इस महान कार्य के सगठन का काम मेरे कन्धो पर रख दिया गया है । कितना आनन्द आता है कोई विकास कार्य निष्काम भाव से करने मे !! जीवन की पूर्णता इसी में होती है !

२० अगस्त को मेजर सुन्दरसिंह लाठर और मैं मेवात गये । कितना सुहावना समय था, कितने मोहक प्राकृतिक दृश्य ! अरावली पर्वत की शाखा धरती मा पर मानो मूर्छी सो रही हो ! हरे वृक्ष पहाडियों पर शीतल वायु मे नाच रहे थे ! दो जवान मेव गुडगाँव से अपने साथ हो लिए थे । उनसे मेवात की कहानी पूछी । एक बडा गाव आया । कहने लगे, "यह वह घासोडा गाव है जहा पाकिस्तान जाने के लिए मेव १९४७ मे इकट्ठे होते थे और बापू के समझाने से ही रुके ।"

मासूम बालक गलियों में और 'बगलों' के आगनो मे खेल रहे थे, बिना घूँघट मेवती कुए पर पानी खींच रहीं थीं, किसान मेव कुछ तो हुक्का बजा रहे थे; कुछ खेतों मे हल चला रहे थे, मेव लडके-लडकिया, खेतो से पशु गाव की ओर ला रहे थे, कुछ बहनें खेतों में घास काट रही थीं तो कुछ सिर पर घास की भारी गाठें सिर पर उठाए झूमती हुई और लोकगीत गाती खेतो की टेढ़ी-मेढ़ी मेडों पर चल रही थीं । इन्द्र की वर्षा से खेतो ने हरी चादर ओढ ली थी । यह सब कुछ देखकर दिल भर आया; आँसू टप-टप अपने आप गिरने लगे । क्या यह मासूम मेव बालक, यह भोले-भाले मेव किसान यह सरल और स्वस्थ मेव बहनें अपने प्यारे मेवात को छोडने को तैयार थे ? सचमुच, मासूम बच्चो को, पडोसी भाइयों को, अपनी ही माता बहनों को अपनी इज्जत, माल और जान बचाने के लिए पाकिस्तान की शरण में जाने की तैयारी हो चुकी थी, क्या बापू ने उस भयानक स्थिति में भी मजहबी जनून का मुकाबिला उन्ही अहिंसा और सत्य के शस्त्रों से किया था, क्या उन्हीं की अपील पर ये सब डरे हुए भाई-बहन भारत माँ की गोद मे ही बैठे रह गए ?··· कार नूह की ओर तेजी से बढती जाती थी और मेरे मन मे प्रश्न पर प्रश्न उठ रहे थे, दिल उछल-उछल पडता था । कहा वे मगरमच्छ के आसू और कहा वह भारत मा के गले मे डालने योग्य मोतियों की अश्रु-माला ! काश कि अग्रेजी साम्राज्य के साथ ही यह खूनी साम्प्रदायिकता भी भारत छोड देती !

मेवात हिन्दू-मुस्लिम एकता का सदा प्रतीक रहा है । १९४७ की आग भी यहा जल्दी शान्त हो गई । पाल तथा खाप पचायतें पुन काम करने लगीं । गाय हत्या तो यहा भाई-चारे के तौर पर सदा ही बन्द रही है । सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक सम्बन्ध सदा मीठे रहे हैं, तभी तो जो मेव पाकिस्तान चले गए हैं उनमे से ज्यादातर पुन भारत लौट आए । मेवात मे बस पिछडापन ही एक समस्या है । हमारी आदर्श जिला योजना मेवात की सब समस्याओं का हल निकालती है ।

नूह में हम एस० डी० एम० महोदय से मिलकर एस० डी० एम० पलवल के पास होते हुए यह विश्वास लेकर लछमन बाग लौटे कि 'विकास कार्य में मेवात किसी से पीछे न रहेगा । इनको विकास कार्य में जुटाने वाले नेता की जरूरत थी, वह श्री रामनारायण चौधरी ने पूरी कर दी है । सहयोग और एकता की चाबी उनको मिल गई है । बन्द तालों को खोलकर अथवा उलझी समस्याओं को हल करके ही दम लेंगे । विश्वास पहाडों को हिला देता है यहां भोजन, कपड़ा, मकान, इलाज और शिक्षा की जरूरतो को

(शेष पेज ६ पर)

(पृष्ठ २ का शेष)

कहीं भूल न जायें

काय योजनाएं बनाई जा रही हैं उनका सार यही है। आखिर, हमारी पचवर्षीय योजनाए इसके सिवाय क्या हैं कि इस विशाल देश में रहने वाले भिन्न जातियों और धर्मों के लोगों को मानसिक स्तर पर एक करने की कल्पना का विस्तार किया जाय और शारीरिक स्तर पर ७२ करोड हाथ पैरों को अपनी आर्थिक उन्नति के लिये अपनी शक्ति काम में लेना सिखाया जाय ? यह ऐसी एकता है जिसके लाभ से किसी को भी, चाहे वह कांग्रेसी या साम्यवादी हो, चाहे समाजवादी या सम्प्रदायवादी हो, हम सबकी मातृभूमि को वचित रखने का कोई हक नहीं है। हो भी क्यों, जब राष्ट्र-निर्माण के काम में मत या विचार का कोई भेद हो ही नहीं सकता। सबके सामूहिक परिश्रम से बनी हुई सडक, पाठशाला या अस्पताल की इमारत, कुआ या बांध बिना किसी भेद भाव के सभी के काम आयेंगे। जब तक मनुष्य मनुष्य है, बुद्धि सम्पन्न प्राणी है, तब तक राजनैतिक मतभेद रह सकते हैं—रहेंगे। परन्तु शालीनता और देशभक्ति दोनों का तकाजा है कि विचारो का भेद मीठे से मीठे शब्दों मे प्रकट किया जाय क्योंकि यही सबसे कारगर तरीका है और हमारे व्यक्तिगत और सामाजिक सम्बन्ध हार्दिक और सहायतापूर्ण रहने चाहिये।

राष्ट्र के उत्थान में कोई सबसे अधिक महत्वपूर्ण सहायता करना चाहता है तो वह शरीर श्रम के रूप मे ही हो सकती है। परन्तु वह होनी चाहिये समझकर सहयोग तथा परोपकार की भावना से और यह हमारे दैनिक जीवन का एक नियमित अग बन जानी चाहिये। यह काम पूरा हो सकता है, यदि हम सब स्त्री, पुरुष और बालक अपने अहकार को भूलकर कम से कम एक घण्टा रोज पडौसियो की भलाई के लिये मेहनत करने लग जांय और रात को सोने से पहले दूसरो की भलाई का एक न एक काम जरूर करलें। उदाहरण के लिये, मैं भारत सेवक समाज के तीन विनीत किन्तु सच्चे सेवको के नाम बताता हूं। श्री चन्द्र प्रकाश, सहायक सूचना मत्री एक मजे हुए विद्वान् हैं, फिर भी नम्रता और परिश्रमशीलता की मूर्ति हैं। श्री चक्रधारी सूचना विभाग के सगठन मत्री, एक इजीनियर हैं परन्तु उन्होने अपनी बडी कमाई के धन्धे और राजनैतिक आकाक्षाओ को तिलांजलि देकर रचनात्मक कार्य में अपने आपको पूर्ण तरह लगा दिया है। श्री सूर्यदेव नारायण सिंह अमीर घर में जन्म लेकर भी पूर्णिया (बिहार) के जिला सयोजक की हैसियत से सुबह से लगकर आधीरात तक काम करते हैं और उन्होने देहात मे इतनी सख्या मे शाखाएं सगठित करली हैं कि भारत सेवक समाज को जन-आन्दोलन बनाने की प्रदेश सयोजक श्री जगत बाबू की आकांक्षा सफल होती नजर आती है।

भगवान हम कार्यकर्ताओं को शक्ति दे कि हम स्वय मिशनरी बन जायें, ग्राम जनता को देशभक्त बना लें और शासकों को सच्चे जन सेवक बना दें। इस त्रिविध प्रतिज्ञा के लिये इस शुभ दिन से और कौन सा अच्छा अवसर हो सकता है ?

भारत सेवक

नई दिल्ली,

●●●

(पेज ३ का शेष)

योजना को सब मिलकर कामयाब बनायें

जैसे बाजे ताल-सुर का समन्वय साधकर योजना पूर्वक बनाये जाते हैं, तो वे कानो को मधुर लगते हैं, पर अगर कोई चाहे जैसे बजाये गाये तो उससे सरदर्द भी हो सकता है। वैसा ही हम राष्ट्र को स्वावलम्बी, समृद्ध और सुखी बनाना चाहते हैं तो उसके लिए सुव्यवस्थित और मिलकर प्रयत्न करने की जरूरत है और यही इस योजना मे आव्हान किया गया है।

एक बार प्रधान मन्त्री श्री नेहरू ने कहा था कि—"भारत की सेवा का मतलब है—करोड़ों दुखियों की सेवा करना। इसका मतलब है गरीबी का खात्मा-गाधी जी की यह ख्वाहिश रही है कि हर आंख का हर एक आंसू पोछ दिया जाये। ऐसा करना हमारी ताकत से बाहर हो सकता है, लेकिन जब तक आसू हैं और दुख हैं, तब तक हमारा काम भी अधूरा है। इसलिए हमें काम करना है और कमर कस कर मेहनत करनी है, जिससे हमारे सपने पूरे हों। तो आज हम आजाद देश के नागरिक हैं। हमारा हिताहित अब हमारे ही हाथ में है।"

—नाथ

(पहले पेज का शेष)

गुड़गांव को ही आदर्श जिला क्यों बनाया जा रहा

वह तो सिर्फ वोट की लडाई होती है। जिसको जिसने पसन्द किया, वोट दे दिया। जीतकर तो सबका काम करना पडता है, मुखालिफ का ज्यादा किया जाये तो वह भी दोस्त बन जाता है। चुनाव के बाद वैर भाव, मनमुटाव रखना ठीक नही। सहयोग की बात करनी चाहिए।

आपको कुर्सी मिली है, आप सभाओ मे बुलाये जाते हैं, अफसर आपका लिहाज करते हैं। आपको अब छोटी-छोटी बातो मे नही पडना चाहिए। आपने आगे कहा कि—

अपना घर बाद मे, लोगो का काम पहले। जिले के काम के लिए एक वक्त निकालना चाहिए। जिले की समस्याओ को हल करने की योजना बनानी चाहिए कायदे, कानून को मानकर, अनुशासन मे रह कर काम करें। खामख्वाह टीका टिप्पणी से काम न चलेगा। पचायती कानून पढो और दूसरो को बताओ। कारवाई अग्रेजी की जगह हिन्दी या उर्दू मे होनी चाहिए, ताकि सब समझ सके। जो एजेन्डा हो उसी पर विचार करने के लिए तैयारी से आना चाहिए।

सामाजिक पिछड़ापन

आज मैं असल बात यह कहने आया हूँ कि मैंने यहाँ के लोगो, नेताओ और अफसरो की सलाह से एक आदर्श जिला योजना बनाई है। गुडगांव को पजाब मे एक नमूने का जिला बनाया जाएगा। आपकी यह खुश किस्मती है कि मुख्य मन्त्री पजाब और प्रधान मन्त्री ने यह तजवीज पसन्द की है। तमाम विधान सभाई और ससद सदस्य तैयार हैं, डिप्टी कमिश्नर साहब और अन्य अफसरो की बरावर की दिलचस्पी है। फिर भी आप तो देहात के नुमायन्दे हो, आपको सदा गरीब का भला सोचना चाहिए। आप सेवा से ही लोकप्रिय होंगे। यह मौका है अपने जिले की तरक्की करने का।

सबसे बडी दिक्कत है हमारा सामाजिक पिछडापन। नये जमाने की मांगे हैं, नये विचार और नये काम। यह तरक्की का जमाना है। आपको तरक्की का साथ अपनाना ही होगा, क्यो न आज ही अपनाए ? ५००० वर्ष पहले की बातें अब थोड़े ही चलती हैं। पण्डित नेहरू और मुख्यमन्त्री तो दूर से ही सेवा कर सकते हैं, मगर आप तो लोगों के बीच मे रहकर उनके दुख मिटा सकते हो, बुरे रस्मो रिवाज छुडा सकते हो। सबकी भलाई के काम मे तो सब जुटें, पार्टियां मिलकर काम करें।

आदर्श जिले का मतलब

हमारी आदर्श जिले की बात न है। पुराने वक्त मे तो सडकें बना स्कूल, हस्पताल खोलना, बिजली दे नहर का पानी पहुँचाना आदि मोटी-मो बातें होना ही आदर्श बनाने की च समझी जाती थीं, परन्तु मैं तो शुद्ध आ रण पर बहुत जोर देता हूँ। प्रशा शुद्ध होना चाहिए। मेरे पास ३०। छोटे-बडे राज कर्मचारी विचार प्रशिक्ष ले चुके हैं। जैसे आप उनकी झूठा-सच शिकायतें करते हैं वैसे ही वह भी क हैं कि उन पर नाजायज दबाव डलवा नाजायज काम कराने का प्रयत्न कि जाता है, झूठी शिकायते करके वदन किया जाता है। एक तरफ लोग रि देना बन्द करें, दूसरी तरफ अफ रिश्वत लेना छोडें, तभी रिश्वत खो वन्द होगी। हमको गुडगांव जिले मे ऐ फिजा बनानी है कि रिश्वत देने त लेने की कोई हिम्मत ही न करे। अ तो आव का आवा ही खराब हुआ प है। हमे तो पुलिस, रेवेन्यू, नहर इत्य सब महकमो को शुद्ध करना पडेगा। तभी सम्भव है कि जब आप जनता जागृति लायें। नेहरू जी का कहना कि देश की रक्षा और ग्राम लोगो भलाई तो सबको मिलकर ही कर चाहिए। चुनावमे विरोध हो ही जात पर बडे कामो के लिए छोटी बाते छोड पडती है। जिला परिषद के लिए अ छोटे स्वार्थ छोडो, सरकारी गैर-सरका पार्टीबाजी और जात-पात आदि के प्र से ऊपर उठें।

जरूरियात की तफसील बना

हमे तीन महीने पहिले आदर्श जिल की स्कीम मुख्य मन्त्री को देनी थी, पर डी० सी० साहब अन्य मसरूफियात कारण इधर ध्यान कम दे सके। व सावधान हैं, कुछ धीमे हैं परन्तु उतने ह ठोस काम मे विश्वास करते हैं। व आँकडे इकट्ठे कर रहे हैं। आप भी अप अपने ब्लाक की सब जरूरतो और तक लीफो की फहरिस्त तैयार कर लें ताकि ७ अक्तूबर को होने वाले जिला विकास सम्मेलन मे यह स्कीम मुख्यमन्त्री के पेश की जाये। उसके बाद वह अपने मन्त्रि मण्डल से मजूरी लेगे।

जिले को आदर्श बनाने का काम बडा मुश्किल होता है और खासतौर पर जबकि यह जिला सबसे ज्यादा पिछडे

से दूसरे नम्बर पर है। इसे आप
ल कर करेंगे तो आसानी से हो
येगा, वरना न यह मुख्यमन्त्री के बस
है, न डी० सी० अकेला कुछ कर
कता है। और मेरे जैसा छोटा आदमी
कर ही क्या कर सकता है। हाँ, यदि
नता ने साथ दिया, आप लोगो ने
न्धे से कन्धा मिलाया, सब विधान
भाई मिलकर चले तो फिर यह शान-
र प्रयोग जरूर सफल होगा। आप इसे
श्वर का काम समझ कर करें, यही
सली पूजा है, यही सच्चा धर्म है।

अफसरों की इज्जत करो

कुछ भाई कहते हैं कि हरयाना को
छे फेंक दिया गया है। यह सच भी
मगर उनके लिए अब मौका है आगे
ने का; इस काम मे दिलचस्पी दिखाने
ा, सिर ऊँचा करके चलने का। अब
ोई किसी को दबाकर न रखेगा, धींगा
स्ती न होगी, भ्रष्टाचार न रहेगा।
स शुभ काम में अफसर हमारे साथ हैं।
नकी इज्जत करनी है। उनके पास
ाकत है, ज्ञान है और हमारी तरह देश
वा का जजबा भी है। वे हमारे ही
ाई हैं। हमारे और उनके बीच मे खाई
यों रहे ? आज तो सब मे प्रेम, दोस्ती,
रस्पर समझने की जरूरत है। अंग्रेज
समय मे तो देश-भक्त और अंग्रेजी
ाज के नोकरों की लडाई थी। आज
ो हमारे देश मे अफसर और लीडर
ोनो ही मिलकर देश की सेवा करेंगे,
ब काम चलेगा। गुडगाव जिले मे तो
मने मिलकर काम करने की योजना
ना ही ली है।

नेहरूजी खुश होंगे जब…

जिला परिषद ने डी० सी०
से मिलकर ही काम करना है और
मैं तो जिला परिषद और डी० सी०
दोनो को ही विश्वास मे लेकर
आदर्श जिला बनाने की बात करता
हूँ। न जुलम करना, न जुलम
सहना। यह पवित्र काम अब करना
जरूरी है। बार-बार मौके नही
आते हैं। कई साल तक बेखबर
रहे। इस वक्त हालत मुग्राफिक हैं।
शोर मचाने का न समय है न जरू-
रत। प्रधानमन्त्री जी भी इस काम
मे बराबर दिलचस्पी ले रहे हैं।
उनकी तन्दुरुस्ती ठीक रहती तो
उनको भी लाने की कोशिश करता।
परन्तु उनका आशीर्वाद हमारे साथ
है। सच तो यह है कि जो अपनी
मदद करता है, सरकार भी उसकी
मदद करती है। नेहरू जी को
यह जानकर खुशी हुई कि गुडगाँव
की जनता अपनी मदद खुद करनी
चाहती है। वह जिस अनगपुर मे
पहले पधारे थे, उसी गाँव को हम
आदर्श गाँव बना रहे हैं। हम उनकी
इज्जत करते हैं ठोस सेवा करके।
जब गुडगाँव से शराबखोरी, मुक-
दमेबाजी, पार्टीबाजी, फिजूलखर्ची
बन्द होगी तब उनको कितनी खुशी
होगी। इसलिए इस बडे काम के
लिए बडा दिल करो, अपनी आत्मा
को मजबूत करो। अपनी शक्ति को
इस यज्ञ में लगा दो।

जिले के ब्लाक का दौरा

१७ सितम्बर से मुझे गुडगाँव जिले
के सब ब्लाकों मे जाना है। आशा है,
आप आदर्श जिला बनाने की फिजा
बनाने में पूरा सहयोग देंगे, अपने-अपने
ब्लाक की बैठक मे ब्लाक समिति के
सदस्यों के अतिरिक्त ब्लाक के सब मह-
कमो के अफसर और पचायतों के मेम्बर,
पुराने फौजी सरदार अन्य मुअज्जिज
आदमी भी बुलाये जायेंगे। ब्लाक के सब
गाँवो की तकलीफें, जरूरतें और सम-
स्याएं इकट्ठी कर लें ताकि आदर्श जिला
स्कीम मे उनको दूर करने के लिए साधन
जुटाने पर विचार किया जा सके।

मुझे पूरी उम्मीद है कि जिस विश्वास
के साथ यह आदर्श जिले की बात चलाई
गई है, उसको आप सच्चा सिद्ध करेंगे।

अन्न की पैदावार बढ़ रही है

अब देश मे खाद्य की स्थिति सुधर
गई है। इस के दो कारण हैं, एक तो
देश मे पैदावार बढ गई है और दूसरे
काफी मात्रा मे अनाज का आयात भी
किया गया है। चावल की पैदावार ३
करोड टन से बढ कर ३ करोड ४०लाख
टन और गेहूँ की पैदावार १ करोड टन
से बढकर १ करोड १६ लाख टन हो गई
है। दो वर्ष पहले के एक करार के अन्त-
र्गत आगामी अक्तूबर मे ३ लाख टन गेहूँ
अमेरिका से आ जाएगा। आगामी ६
महीनो मे अमेरीका से ६लाख टन चावल
भी आ जाएगा। कपास पटसन, तिलहन,
और चीनी की स्थिति भी सन्तोषजनक
है। भारत १९६६तक अनाज और नगदी
फसलो मे आत्म-निर्भर हो जाएगा और
इसके लिए भरसक प्रयत्न किया जा रहा
है।

(पेज ४ का शेष)

पूरा करने के लिए सरकार, जनता
और पूँजीपति की सगठित शक्ति
लगाने की बात है। यही हमारा
मिशन है। हम मानव-हृदय की
कुदरती सच्चाई पर विश्वास रखकर
ही समाजवाद के कठिन पथ पर
चले हैं।

हरिसिंह

●इनसान की मेहनत को बेहतर बनाने के लिए औजारों का इस्तेमाल ●करना चाहिए। इससे काम जल्दी और सुभीते से हो जाता है। ●चारा-काटने की मशीन से पशुओं के लिए चारा बनाया जा रहा है। ●यह मशीन पूसा इस्टीट्यूट दिल्ली में ही बनाई गयी है।

महाविनाशकारी महाभारत के युद्ध द्वारा भारत के भाग्य का सूर्य अस्त हुआ। भारतीय जन जीवन में कदाचित् ही ऐसा समय आया होगा जब कि ऐसी प्रचण्ड समर ज्वालाओं में देश का ब्रह्म एवं क्षात्रबल इस बुरी तरह भस्मसात हुआ हो? देश के सब से बड़े दुर्भाग्य का समय वह था जब कि भारत वैदिक पथ प्रदर्शकों से विहीन होकर मनमाने अवैदिक मतमतांतरों की गन्दगी की ढेरीमात्र बन गया था। ऐसे समय में भारत के अन्तरिक्ष पर छायी जहालत की घनघोर घटाओं को चीरता फाड़ता, जनता के तमसाच्छन्न अन्तस्तलों को देदीप्यमान करता हुआ दयानन्द सरस्वती सूर्य का उदय हुआ। यह आर्य जाति के किन्हीं पुण्य कर्मों का फल था कि उसे यतिवर आचार्य दयानन्द सी सर्वांगपूर्ण विभूति मिली, जिस ने कि अपने अट्ठारह घण्टे की समाधि जन्य ब्रह्मानन्द को छोड़ कर वेद की यथार्थता का बोध कराया। ऋषि का सारा जीवन वेद के मनन एवं प्रचार का साधन रहा है। दूसरे शब्दों में यदि हम ऋषि को वैदिक तत्वों का प्रतीक अथवा दयानन्द और वेद को पर्यायवाची मानें तो कोई अत्युक्ति नहीं होगी। यद्यपि आज कल कुछ वेद विद्याभास ऋषि के भाष्य पर न जाने क्या २ अनर्गल प्रलाप करते हैं। परन्तु वे ऋषि के उस गम्भीर मनन को क्या समझें।

ऋषि का तत्व ज्ञान

(ले०—श्री सत्यप्रिय जी सिद्धात शिरोमणि द ब्रा वि. हिसार)

ऋषि से पूर्व प्रायः बहुत भाष्यकार वेद की ऋचाओं को केवल जादूटोनों ही समझ कर उनके अर्थ के प्रति आंख बन्द किये हुए थे, ऋषि ने अपने प्रबल घोष से ऐसे व्यक्तियों को चेताया और कहा कि वेद के प्रत्येक मन्त्र का अपना अर्थ है। आश्चर्य है कि "अग्नि" "वायु" या "इन्द्र" शब्द जब वेद में आता है तो वहां उसका कोई अर्थ नहीं जब कि लौकिक साहित्य में इनका कोई अर्थ अवश्यमेव होता है।

उस समय के कुछ वादों एवं सांप्रदायिक व्यक्तियों द्वारा वेद को विनियोगके बन्धनमें जकड़ दिया गया था। ऋषि ने ही सर्वप्रथम प्राचीन आर्य पद्धति के अनुसार घोषणा की कि वेदज्ञान असीम है। एक मन्त्र के अनेक अर्थ होते हैं अत मन्त्र को विनियोग की पूछ नहीं बनाया जा सकता, प्रत्युत विनियोग मन्त्र का अनुकरण करेगा। भारतीय जनता मे फैले इस भ्रम कि 'मन्त्र, सूक्त, अध्याय अथवा मण्डल पर नामाङ्कित ऋषि ही उस-उस अंश के कर्ता हैं' के निराकरण का श्रेय भी उस समय सर्वप्रथम महर्षि को ही है। उन्होंने कहा कि उस-उस अंश पर अंकित ऋषि उसका कर्त्ता न होकर द्रष्टा है। क्योंकि ऐसा न मानें तो एक २ स्थल के कई-कई ऋषि हैं तो क्या वे सभी उस एक स्थल के कर्ता मानने पड़ेंगे।

साथ ही उस समय विद्वत्समाज की वेदों के प्रति यह भी धारणा थी कि वेदों में 'अग्नि' 'इन्द्र' 'वरुण' आदि नामधारी अनेक जड़ देवों की पूजा का विधान है। ऋषि ने सर्वत्र अपने भाष्य में इस हेयमन्तव्य की समालोचना की तथा कहा कि वेद में केवल एक अन्तर्यामी ओ३म् की पूजा का विधान है उसी के अग्न्यादि अनेक नाम असङ्ख्य गुणकर्मस्वभावयुक्त होने के कारण कहे गये हैं। ऋषि के सम्पूर्ण साहित्य में जड़ पदार्थों के प्रति सम्बोधन नहीं मिलेगा, क्योंकि इनके मूल में जड़ पूजा निहित है अत. ऐसे स्थल मध्यम पुरुषस्थ होने पर ऋषि ने प्रथम पुरुष में व्यत्यय कर डाले हैं। ऋषिवर ने अपने भाष्य में अनित्य लौकिक इतिहास की भी प्रताड़ना की, क्योंकि 'देवस्यपश्यकाव्य न ममारन जीर्यति' इस वेद वचनानुसार वेद परमेश्वर का महान काव्य है। अत मानव कल्याणार्थ उसका जगदादि में ही भूतल पर प्रवृत्त होना युक्ति संगत है। पुन. उसमें लौकिक अनित्य इतिहास की तो कथा ही क्या कहनी, अत मनु जी ने भी कहा है—सर्वेषातु नामानि कर्माणि च पृथक २ वेद शब्देभ्यएवादौ पृथक सस्थाश्च निर्ममे।

इसी प्रकार वेद को जो गडरियों के गीत, प्रमत्तों की बड़ बड़ाहट एव जादू टोनों का पिटारा माना जाता था ऋषि ने अपने प्रबल तर्क के धक्के से इस रेत की दीवार को भी गिरा दिया, तथा प्रबल शब्दों मे सिंहनाद किया कि 'वेद सब सत्यविद्याओं की पुस्तक है।' इस प्रकार उस ऋषिवर ने अपने जीवन का लक्ष्य वेद का पठन, मनन एवं प्रचार ही बनाया था, इसी के लिए सांसारिक वैभवों को ठुकरा कर अपनी भरी जवानी को वेदप्रचार की वेदी पर बलिदान किया। कौन है आज हम में जो ऋषि के हृदय में छुपी उस तड़प को अनुभव करे, इसी के लिए तो ऋषिवर ने अपने भौतिक, जगत् से नाता तोड़ते हुए कहा था कि 'हे ईश्वर तेरी इच्छापूर्ण हो' अच्छा होता कि आर्यसमाज रूपी रथ की बाग डोर सम्भालने वाले एवं वेद के ठेकेदार आज यदि अपनी सम्पूर्ण शक्ति एवं विद्या को अपनी गद्दियें तथा प्रतिष्ठा के रक्षण में न लगा कर ऋषि के इस मन्तव्य की पूर्ति में लगापाते। ऋषि के इस महान् लक्ष्य की पूर्ति का गुरुतम उत्तरदायित्व उसके अनुयायियों पर है। यह ऋषि का पुण्य बलिदान पर्व है, अत. आज आर्य जगत् सचेत होकर अपने धर्माचार्य के जीवन लक्ष्य के प्रति जागरूक बनकर प्रयत्नशील हो पुण्य का भागी बने, आज हम अपने मनो मन्दिरों में ऋषि के इस लक्ष्य के दीप जलाकर वास्तविक श्राद्ध के भागी बनें।

आर्य कुमार सभा....

(पृष्ठ ६ का शेष)

उपस्थित होकर उत्सव की शोभा बढ़ा रहे थे।

यज्ञ श्री पं. ओमप्रकाश जी की देखरेख में ससमारोह से सम्पन्न हुआ। श्री ठा.अमरसिंहजी शास्त्रार्थ महारथी, महोपदेशक जो कि विशेष रूप से आमन्त्रित थे यज्ञ के पश्चात् उनका विद्वत्तापूर्ण व्याख्यान हुआ। सौभाग्य से श्री प जगदीश भूषण जी गायनाचार्य और श्री प. सेवा राम जी दीवानहाल देहली वाले भी इस अवसर पर उपस्थित थे। उनके भजन और सुन्दर विचारों से भी जनता ने पर्याप्त लाभ उठाया।

आर्य केन्द्रिय समाज की ओर से सार्वदेशिक सभा के आदेशानुसार एक प्रस्ताव भी स्वीकृत हुआ जिसमें सरकार से बलपूर्वक अनुरोध किया गया कि१९६५के पश्चात् राष्ट्रभाषाका स्थान पूर्ण रूपेण हिन्दी को ही प्राप्त रहे और अंगरेजी भाषा की अवधि ६५ के पश्चात् न बढ़ाई जाए। इस प्रस्ताव के पक्ष में पं० ओमप्रकाश जी का सारगर्भित एवम ओजस्वी भाषण हुआ।

कुमार सभाए आर्य वीर दल-स्त्री समाजे सभी आर्यसमाज की सच्ची और निष्काम सेवा करने के योग्य बन सके यही मगल कामना है। —व्यवस्थापक

ईश्वर के पवित्र नाम ओम का जाप करो।

सस्ती सम्मति

(ले० राजेन्द्र जी 'जिज्ञासु' एम० ए०)

वेद वाणी के संगठन सूक्त में मानव समाज को एकता के मौलिक सिद्धांत का बोध कराते हुए परमेश्वर ने आज्ञा व उपदेश दिया है कि तुम्हारी बोल चाल व मन के विचार एक होने चाहिए। कल्याणि वेद वाणी के इस उपदेश की गूंज संसार के प्रत्येक उस मानव के हृदय में गूंजती आप को सुनाई देगी जो पद दलित, पीड़ित अथवा अन्याय का शिकार हो। छल कपट के तीर का घायल प्रत्येक प्राणी यही पुकारता है कि एक होना चाहिए। पीड़ितों की तो बात ही छोड़िए इस समय विश्व के दोनो दल—रूसी गुट व अमरीकी गुट एक दूसरे को विश्व के निष्पक्ष राष्ट्रों की दृष्टि में गिराने के लिये एवं संसार के शान्ति प्रिय नागरिकों को अपने मत का बनाने के लिये एक दूसरे पर मन वाणी व कर्म से एक न होने का दोष आरोपण करते हैं। तो इस से सिद्ध हुआ कि वेद का मिल कर चलने का आदेश विश्व शांति का एक आवश्यक आधार है और मिलकर चलना एक दिखावा है यदि हम मिलकर बोलें नहीं और मिल कर बोलना दम्भ है यदि हमारे मन के विचार परस्पर मिले हुए नहीं हैं। अर्थात मन वाणी व कर्म की एकता आचार शास्त्र व विश्व शान्ति का आधार है। व्यक्तिगत मैत्री इस के बिना पंगू है विश्व शान्ति की तो चर्चा ही इस के बिना व्यर्थ है।

राजनीतिक शास्त्र व समाज शास्त्र भी राष्ट्रियता के सिद्धन्त की व्याख्या इसी संगठन सूक्त के इन्हीं मूल विचारों को ले कर ही करता है परन्तु भारत में कुछ लोग अपने आप को शान्ति वादी सिद्ध करने के लिये यह उपदेश देते फिरते हैं कि ईश्वर साकार हुआ या निराकार क्या अन्तर पड़ता है? बस मन में श्रद्धा होनी चाहिए। भगवान् भक्त के वस में होते हैं। मन की भावना जैसी है वैसी ही ठीक इष्टदेव दर्शन देते हैं। ऐसी मीठी मीठी बातें करने वाले लोग प्राय हिन्दुओं को ही यह उपदेश देते हैं। मुस्लिम, ईसाई के पास फटक कर तो बात करने का इन को साहस कहां? वे लोग तो कुरान व बाईबल के बिना बात भी न करें।

आश्चर्य तो यह है कि संघी भी यही उपदेश देता है और कांग्रसी भी। संघी भी यही कहता है कि हिन्दू धर्म एक अथाह सागर है। आस्तिक भी हिन्दू नास्तिक भी हिन्दू, साकार मानो या निराकार कोई बात नहीं, वेद मानो या गीता, रामायण, महाभारत आदि किसी को भी मानो परन्तु खण्डन मण्डन की आवश्यकता नहीं। जैसे देहली को बीसियों सड़कें जाती हैं वैसे ही ईश्वर को पाने के भी कई मार्ग हैं।

यह विचार सुनने में बड़ा प्रिय लगता है परन्तु इसका खोखलापन प्रकट करने के लिये आर्य युवकों को सुशिक्षित युवकों, अध्यापकों, प्राध्यापकों एवं जन साधारण को यह वैदिक सिद्धान्त समझाना होगा कि प्रभु सर्वव्यापक है एकदेशी नहीं। सर्वव्यापक प्रभु को पाने के लिये देहली की सड़कों की उपमा सर्वथा अशुद्ध है। यह बातें चौथे और सातवें आसामान पर बैठे खुदा या अल्लाह के बारेमें या कैलाश पर्वत पर सोये पौराणिक भगवान् के बारेमें चाहे जच जायें परन्तु सर्वज्ञ सर्वशक्तिमान् और सर्वव्यापक सृष्टि नियन्ता, सृष्टिकर्त्ता ईश्वर के बारेमें ऐसा सोचना मूर्खता है। सत्य सदा सत्य है। सत्य अटल और नित्य है। सत्य के दो रूप नहीं हो सकते। दो और दो चार ही होते हैं पांच या पौने चार नहीं होते। इस लिए मानव कल्याण के मूल सिद्धान्त भी नित्य और अनादि हैं। यह कहना कि वेद हो पुराण या कुरान या बाईबल सब ठीक हैं एक मिथ्यापूर्ण विचार है। इन सब में कुछ न कुछ सच्चाई तो है परन्तु पूर्ण सच्चाई उन में नहीं हो सकती। क्यों कि इन में बीसियों परस्पर विरोधी विचार हैं अतः यह सब सत्य कैसे हो सकते हैं।

आर्यों का यह तर्क अनुमोदित सिद्धान्त है कि सच्चाई सृष्टि के आदि से लेकर आज तक नहीं बदली। बदलने का प्रश्न ही पैदा नहीं होता। सच्चाई ही यदि बदल गई तो फिर बेईमानी और ईमानदारी में, सच्च और झूठ में भेद ही क्या रहा? अतः आर्य युवकों को वेद के अनादि व नित्य होने के सिद्धान्त का प्रचार करके इस सस्ती सम्मति का निराकरण करना चाहिए यह भी ठीक वह भी ठीक, यह भी सच्च वह भी सच्च। लोक में भी कहते हैं कि Truth never dies। सत्य न मरता न बदलता है।

आर्य कुमार सभा, कालेज विभाग प्रधाना मोहल्ला रोहतक का वार्षिकोत्सव समारोह एवम् सफलता पूर्वक सम्पन्न

आर्य समाज कालेज विभाग प्रधाना मोहल्ला, रोहतक नगर का एक प्रमुख एवम् सक्रिय समाज है। इस के संरक्षण में आर्य वीर दल तो वर्षों से कार्य कर रहा था अब आर्य कुमारों को भी संघटित करने में समाजके बन्धु विशेष उत्साह से कार्य कर रहे हैं। १९ से १७ सितम्बर ६२ तक कुमार सभा का प्रथम वार्षिक उत्सव अपूर्व सफलता से सम्पन्न हुआ। सभा की ओर से श्री पं ओमप्रकाश जी, तथा श्री राम करण जी की मण्डली वहां पधारे हुये थे। आर्य कुमारों और उन के शिक्षकों की कर्तव्य निष्ठा एवम् लग्न देख कर सभी का मन प्रसन्न होता था। वर्षा में भी कार्य कम बराबर चलता रहा। उत्सव को सफल बनाने में आर्य समाज के मन्त्री श्री गुरु दत्त जी तथा श्री जगदीश मित्र जी और कुमार सभा के मन्त्री श्री कुंवर भानु जी ने तो तो दिन रात एक कर दिया था। वैसे सहयोग सभी बन्धु यथा-शक्ति देते रहे। समाज के प्रमुख और उत्साही कार्यकर्त्ता श्री भाई विद्यार्थी जी आर्य वीरों और कुमारों का समय समय पर पथ-प्रदर्शन करते रहते हैं। इसी प्रकार श्री मेहरचन्द जी, श्री ईश्वर जी तथा अन्य आर्य वीर और आर्यसमाज के सभी सदस्य बड़े प्रेम और उत्साह से काम कर रहे हैं। भगवान् इन सब में मिल-जुल कर काम करने का भाव और भी दृढ़ बनावें यही मंगल कामना है। कुमार सभा की ओर से ५१) वेद प्रचार और २०) मार्गव्यय प्राप्त हुआ।

नई स्त्री समाज की स्थापना

आर्यसमाज प्रधाना मोहल्ला रोहतक में आर्य स्त्री समाज की स्थापना हो गई है। प्रति सोमवार को मध्यान्होत्तर ३ से ५ बजे तक उनका सत्संग लगता १७ सितम्बर ६२ से प्रारम्भ हो गया है। मातायें और बहिनें उत्साह से कार्य कर रही हैं।

नई यज्ञ-शाला का उद्घाटन

आर्यसमाज प्रधाना मोहल्ला रोहतक में रविवार १६-९-६२ को नई यज्ञ-शाला का उद्घाटन समारोह पूर्वक हुआ। आर्य केन्द्रिय समाज के आदेश एवम् व्यवस्थानुसार सभी समाजों के सदस्य

(शेष पृष्ठ ५ पर)

प्रादेशिक सभा द्वारा उत्सवों की धूम

आर्यसमाज माडलटाऊन पानीपत का उत्सव ७ से ६ सितम्बर को धूमधाम से सम्पन्न हुआ। उत्सव से पूर्व १ सितम्बर से खुशीराम शर्मा की कथा और राजपाल जी, मदन मोहन जी, हजारीलाल जी के मनोहर भजन होते रहे। उत्सव पर सभा की ओर से श्री मा० ताराचन्द जी, श्री पं० त्रिलोकचन्द्र जी, श्री रामकरण जी, महावीर जी, नत्थू राम जी, बस्तीराम जी, शमशेर कुमार जी, अमरसिंह जी पधारे। उत्सव हर प्रकार से सफल रहा। रविवार के दिन आम लंगर समाज की ओर से हुआ। जिस में हजारों ने भोजन किया। आ० स० के सज्जनों और देवियों का विशेष उत्साह देखने में आया।

आर्यसमाज सलोगड़ा का उत्सव ७ से ६ सितम्बर को समारोह से सम्पन्न हुआ। श्री पं० ओमप्रकाश जी, श्री पं० चन्द्रसेन जी, श्री मेलाराम जी, श्री ठा० दुर्गासिंह जी, श्री जगतराम जी पधारे।

आर्यसमाज कडाघाट का उत्सव १० से १२ सितम्बर को समारोह से सम्पन्न हुआ। श्री चन्द्रसेन जी, मेलाराम जी जगतराम जी, दुर्गासिंह जी पधारे।

आर्य कुमार सभा रोहतक का जलसा १२ से १६ सितम्बर तक समारोह से सम्पन्न हुआ। श्री पं० ओमप्रकाश जी, रामकरण जी की मंडली पधारी।

आर्यसमाज तरनतारन का उत्सव २१ से २३ सितम्बर को समारोह से सम्पन्न हो रहा है। उत्सव पर सभा की ओर से खुशीराम शर्मा, प्र० ओमप्रकाश जी, पं० शान्तिदेव जी, श्री ताराचन्द्र जी, श्री मेलाराम जी श्री हजारीलाल जी, श्री जगतराम जी पधार रहे हैं।

वैदिक साधन आश्रम गुरदासपुर में यज्ञ समारोह १६ से २३ सितम्बर तक समारोह से सम्पन्न हो रहा है। श्री अमरसिंह जी अम्बाला मंडल पधारा हुआ है।

आर्य समाज शिमला का वार्षिकोत्सव २१ से २३ सितम्बर को समारोह से सम्पन्न हो रहा है।

१६ सितम्बर से श्री पं० त्रिलोक चन्द्र जी कथा कह रहे हैं। और ठा० दुर्गासिंह जी के भजन। प० चन्द्रसेन जी आर्य हितैषी श्री राजपाल जी, मदन मोहन जी, मि० ज्ञानचन्द्र जी पधार रहे हैं।

आर्यसमाज दयालपुरा करनाल का उत्सव २८ से ३० सितम्बर को समारोह से सम्पन्न हो रहा है। खुशीराम शर्मा, श्री प० ओम प्रकाश जी, मेलाराम जी, श्री दुर्गासिंह जी, अम्बाला करनाल मंडल भाग ले रहे हैं।

आर्यसमाज मडो हिमाचल का उत्सव ११ से १४ अक्तूबर को धूमधाम से सम्पन्न हो रहा है। उत्सव से पूर्व श्री पं० ओंप्रकाश जी की कथा कहेंगे, ६ अक्तूबर से ठा० दुर्गासिंह जी के मनोहर भजन होंगे। उत्सव पर श्री राजाराम जी, मदन मोहन जी, श्री पं० चन्द्रसेन जी पधारेंगे।

आर्यसमाज नूरपुर कांगड़ा का उत्सव १६ से २१ अक्तूबर को समारोह से सम्पन्न हो रहा है। उत्सव से पूर्व खुशीराम शर्मा की कथा तथा श्री ताराचन्द्र जी के भजन होंगे। उत्सव पर श्री पं० चन्द्रसेन जी, मेलाराम जी, दुर्गासिंह जी पधार रहे हैं।

आर्यसमाज नया बाजार, भिवानी का उत्सव १८ से २१ अक्तूबर को समारोह से सम्पन्न हो रहा है। १४ अक्तूबर से यज्ञ और कथा श्री पं० त्रिलोकचन्द्र जी कहेंगे। श्री हजारी लाल जी के भजन होंगे उत्सव पर श्री राजपाल जी, श्री मदन मोहन जी पधारेंगे।

आर्यसमाज धर्मशाला का उत्सव ५ से ७ अक्तूबर को समारोह से सम्पन्न हो रहा है। उत्सव पर पं० त्रिलोकचन्द्र जी, श्री राजपाल जी मदन मोहन जी, ताराचन्द्र जी, मेलाराम जी, हजारी लाल जी, चन्द्रसेन जी पधारेंगे।

आर्यसमाज नगरोटा बगुवां का उत्सव ८ से १० अक्टूबर को समारोह से सम्पन्न होगा। धर्मशाला के सज्जन पधारेंगे।

आर्यसमाज नगरोटा टोका का उत्सव २२ से २४ अक्टूबर को समारोह से सम्पन्न होगा। नूरपुर के सज्जन पधारेंगे।

आर्यसमाज गुरदासपुर का उत्सव २६ से २८ अक्टूबर को समारोह से सम्पन्न हो रहा है। श्री प० ओंप्रकाश जी, ताराचन्द्र जी, मेलाराम जी, अमरसिंह जी की मंडली श्री चन्द्र सैन जी, खुशीराम शर्मा भाग लेंगे।

आर्यसमाज सेक्टर आठ चडीगढ का उत्सव २६ से २८ अक्टूबर को समारोह से सम्पन्न हो रहा है। २२ ता० से श्री पं० त्रिलोकचन्द्र जी कथा कहेंगे। और राजपाल जी मदन मोहन जी के भजन होंगे।

आ० स० दीनानगर में २२ से २८ अक्टूबर तक खुशीराम शर्मा की कथा और रामकरण जी मंडली के भजन होंगे।

आ० स० लोहगढ अमृतसर का उत्सव ६ से ११ नवम्बर को समारोह से सम्पन्न हो रहा है।

आ० स० माडल टाऊन अम्बाला का उत्सव ६ से ११ नवम्बर को समारोह से सम्पन्न हो रहा है।

आ० स० नकोदर का उत्सव १६ से १८ नवम्बर को सम्पन्न हो रहा है।

आ० स० हिसार का उत्सव २३ से २५ नवम्बर को सम्पन्न हो रहा है।

आ० स० पलवल का उत्सव ६ से ११ नवम्बर को सम्पन्न हो रहा है।

—खुशीराम शर्मा

आर्यसमाज सलोगड़ा (एच० पी) का शोक प्रस्ताव

आर्यसमाज सलोगड़ा की यह शोक सभा श्री डा० भगवान सिंह जी सोलन निवासी के अकस्मात निधन पर शोक प्रकट करती हुई उनकी आत्मा की सद्गति व सम्बन्धियों को शान्ति प्रदान करने की प्रभु से प्रार्थना करती है। —नत्थू राम महाजन मन्त्री सभा

आवश्यकता

आर्यसमाज, होशियारपुर के लिए एक योग्य, अनुभवी तथा वैदिक धर्म में पूर्ण आस्था, निष्ठा रखने वाले पुरोहित की आवश्यकता है। उपदेशक, विद्यालय, गुरुकुल-स्नातक; तथा संगीतज्ञ को विशेषता देंगे प्रार्थना-पत्र आयु, योग्यता, तथा अनुभव के प्रमाण-पत्रों सहित भेजें। इन में न्यूनातिन्यून स्वीकृत वेतन अवश्य लिखा जाय।

—हरि राव प्रधान।

आर्य समाज यमुनानगर का भा

दिनाक २, ६, ६२ रविवार को उपरि

की सभा पजाब सरकार की भाषा नीति के सम्बन्ध में घोषणा का विरोध करती है और समय पर यह चेतावनी दे देना अपना कर्तव्य समझती है कि पंजाब की एकता और दृढ़ता के लिए यह आवश्यक है कि सारे पंजाब के लिए एक ही भाषा नीति अपनाई जाये। जिस में प्रातीय भाषा पंजाबी के साथ-साथ राष्ट्र भाषा हिन्दी के प्रसार का पूरा-पूरा प्रबन्ध हो। स्वतन्त्र भारत में अपनी सतानों के लिए शिक्षा का माध्यम चुनने की स्वतन्त्रता प्रत्येक व्यक्ति को मिलनी चाहिए। विशेष कर राष्ट्र भाषा हिन्दी के शिक्षण और प्रसार पर किसी भी प्रकार का प्रतिबन्ध स्वतन्त्र भारत सरकार के लिए एक कलक है।

आशा है कि पजाब की एकता तथा दृढ़ता और देश के हित की दृष्टि से पंजाब तथा भारत सरकार के नेता इस ओर ध्यान देंगे और अपनी घोषणा पर पुनर्विचार करेंगे।

निवेदक—
कविराज रामसिंह वैद्य, मन्त्री

आर्य प्रतिनिधि सभा गुरुदत्त भवन जालंधर

जालन्धर में बलिदान जयन्ती की तैयारी जोरों पर

१६ सितम्बर को साय के ४ बजे आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के कार्यालय गुरुदत्त भवन जालन्धर में स्थानीय आर्यसमाजों के प्रधान मन्त्री तथा नगर के प्रतिष्ठित महानुभावों की एक बैठक श्री दुर्गादित्त जी प्रधान आर्यसमाज श्रद्धानन्द बाजार जालन्धर की अध्यक्षता में हुई। सभी ने एक स्वर से जयन्ती की तैयारी के लिए जोर शोर से तैयारी करने का विश्वास दिलाया।

११ सदस्यों पर आधारित एक बलिदान जयन्ती उपसमिति बनाई जिसके संयोजक श्री बालमुकन्द जी चुने गये। इस बैठक में यह भी निर्णय किया गया कि जयन्ती तक प्रत्येक बुद्धवार तथा रविवार को जन सभा का आयोजन किया जावे। धन सग्रह करने के लिये एक शिष्ट मण्डल भी बनाया गया है।

एक प्रस्ताव द्वारा २ अक्तूबर से जालन्धर में केवल गुरुमुखी जारी करने की पंजाब सरकार की नीति का घोर विरोध किया गया और आर्य नेताओं से प्रार्थना की गई कि वे जयन्ती के अवसर पर विशाल हिन्दी सम्मेलन पर हिन्दी रक्षा के लिये आवश्यक पग उठावे।

बालमुकन्द आर्य
सयोजक, बलिदान जयन्ती
उपसमिति जालन्धर

D.A.V. College Hoshiarpur

The Staff & the students of D.A V College Hoshiarpur place on record their profound grief & sorrow on the sad demise of Dr Bakhshi Tek Chand ji The services that the late Bakhshi Tek Chand rendered to the nation to the cause of education in general & the D A V Movement in particular are an everlasting memorial to this great soul In his death the country has suffered an irreparable loss The pray to the Almighty to grant peace to departed soul & courage and fortitude to the members of the bereaved family to enable them to bear this heavy loss

[illegible] श्रीनगर काश्मीर

का वार्षिकोत्सव बड़ी [illegible] साथ ३१ अगस्त से दो सितम्बर तक मनाया गया। पूर्व [illegible] उत्सव के पूर्व इस वर्ष भी श्री [illegible] आनन्द स्वामी जी उपनिषदों की कथा ७ दिन आर्य-[illegible] के विशाल हाल मे हुई। स्वामी जी के प्रभावशाली [illegible] आकर्षित होकर बड़े उत्साह से भारी संख्या में स्त्री, [illegible] ने उपस्थित होकर लाभ उठाया। ३१ अगस्त प्रथम द्वितीय सितम्बर का वार्षिकोत्सव डी० ए० वी हायर सैकेन्डरी स्कूल के (मैदान) में मनाया गया।

इसमें श्री महात्मा आनन्द स्वामी जी व ब्रह्मचारी सतीशचन्द्र जी वेदाचार्य के प्रभावशाली भाषण प्रतिदिन होते रहे। अन्य विद्वानों ने भी व्याख्यानों से जनता को लाभ पहुचाया।

श्री इन्द्रसैन विश्व प्रेमी जी के भक्तिरस व वीर रस भरे भजन भी होते रहे।

अन्तिम दिन स्कूल के विद्यार्थियों ने—१ स्वतन्त्र भारत में आर्यसमाज का कर्तव्य। २. हम ऋषि दयानन्द के ऋण कैसे चुका सकते हैं, इस विषयों पर भाषण दिए। ३ सभा के लिए ४०० रुपया दिया गया। इसी दिन प्रीतिभोज भी हुआ।

इसके अतिरिक्त श्री अमोलक राम जी सेठी प्रधान आर्यसमाज व प्रो० बी नन्दू जी, श्री ला० चूनीलाल जी खन्ना, के घरों मे पारिवारिक यज्ञ भी हुए। आरती व शांति पाठ के साथ यज्ञ कार्य समाप्त हुआ।

राधा कृष्ण गजू
मन्त्री आर्यसमाज वजीरबाग श्रीनगर

आर्यसमाज मालवीय नगर देहली का चुनाव

प्रधान—श्री गणेशदास जी कद, उपप्रधान—श्री मंगलदास जी धवन तथा श्री बलराम कालरा, मन्त्री—श्री देसराज जी जुनेजा, उपमन्त्री—श्री सत्यपाल तलवाड़ तथा श्री सुदर्शन कुमार जी, कोषाध्यक्ष—श्री सरदारी लाल जी, पुस्तकाध्यक्ष—श्री फतेहसिंह जी, आडिटर—मास्टर दरियादत्त जी।

—देसराज जुनेजा
मन्त्री आर्यसमाज

आर्य समाज सोलापुर में शोक सभा

डाक्टर बख्शी टेक चन्द जी भूत पू जज हाईकोर्ट पंजाब तथा श्री विनायक राव जी भूत पू. मिनिस्टर हैदाबाद की मृत्यु पर एक शोक सभा आर्य समाज सोलापुर में प्रिन्सिपल भगवान दास की अध्यक्षता में रविवार नौ सितम्बर को हुई। आर्य जगत के दोनों विख्यात वयोवृद्ध नेताओं को एक प्रस्ताव द्वारा श्रद्धांजली अर्पित की गई तथा उन की आत्माओं की सद्गति के लिए ईश्वर से प्रार्थना की गई। प्रोफेसर औलक जी तथा श्री अशोक कुमार जी ने श्री विनायक राव जी के बारे में अपने अपने सम्पर्क के आधार पर कहा कि वह गुरुकुल के प्रथम स्नातकों में से थे तथा सर्वस्व समाज सेवा में लगा दिया। उन्होंने कहा कि वह हैदराबाद निजाम के साथ सब से प्रथम टक्कर में आए तथा लोकशाही के लिए रास्ता साफ किया।

प्रिन्सिपल भगवान दास ने बख्शी टेकचन्द जी की उच्च कोटि की योग्यता, आर्य समाज तथा दयानन्द संस्थाओं का मार्ग दर्शन तथा सूझ बूझ का परिचय दिया। और कहा कि मुझे इन दोनों नेताओं के जाने से बहुत हानि हुई है।

भगवान दास
'प्रिंसिपल'

मुद्रक व प्रकाशक श्री संतोषराज जी मन्त्री आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा पंजाब जालन्धर द्वारा वीर मिलाप प्रैस, मिलाप रोड जालन्धर से मुद्रित तथा आर्यजगत कार्यालय महात्मा हंस राज भवन निकट कचहरी जालन्धर शहर से प्रकाशित मासिक—आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा पंजाब जालन्धर

टैलीफोन न० २०४६ [आर्यप्रादेशिक प्रतिनिधि सभा पंजाब जालन्धर का साप्ताहिक मुखपत्र] Regd. No.P I.

एक प्रति का मूल्य १३ नये पैसे — वार्षिक मूल्य ६ रुपये

वर्ष २२ अक ३९) रविवार १३ आश्विन २०१९— ३० सितम्बर १९६२ दयानन्दाब्द १३८ (तार-प्रादेशिक जालन्धर

वेद सूक्तय:

एकराट् त्वं विराज

हे राजन ! त्व-आप इस सारे राज्य के एकराट्-अकेले सब से बड़े अधिकारी नेता हो, विराज-अपने जीवन में शोभा देने वाले बने रहें। आचार-विचार, कार्यप्रबन्ध मे न्याय शासन मे आपकी शोभा होती रहे।

राजन् प्रदिशो ह्वयन्तु

हे राजन ! आप को सारी दिशाओं उपदिशाओं की जनता आदर मान के साथ बुलाये। चारों कोनों में आपका यश कीर्ति, न्याय का मान फैलता रहे।

उपसद्यो नमस्यो भव

सारे देश में आप को ही उपसद्य:—शरण देने वाला नमस्य — नमस्कार करने योग्य लोग जाने और माने। आपकी प्रशंसा व आप को ही नमस्कार प्राप्त होते रहें।

अ थ र्व वे द

वेदामृत

स्वस्तिरिद्धि प्रपथे श्रेष्ठा रेक्णस्वत्यभि या वाममेति।
सा नो अमा सो अरणे निपातु स्वावेशा भवतु देवगोपा॥

ऋ० म० १० सू० ६३ मन्त्र ७

अर्थ —जो पृथ्वी (प्रपथे) सुपथ पर चलने वालों को (स्वस्ति) कल्याण करने वाली(इत् हि)ही है। (श्रेष्ठ) व उत्तम है तथा (रेक्णा) धन से पूर्ण है तथा जो (स्वस्ति) कल्याण के लिए (वामम) यज्ञ को (अभ्येति) प्राप्त होती है। (सा) वह (न) हमारे (अमा) घर को (निपातु) रक्षा करे और वह (अरणे) निर्जन स्थानों मे भी रक्षा करे और यह पृथ्वी (देवगोपा) देवजनों के द्वारा रक्षिता होकर (स्वावेशा) उत्तम स्थानों वाली (भवतु) होवे।

भावार्थ—प्रभो ! आपकी दया से हमारा यह विशाल पृथ्वी के रूप में मिला निवास स्थान सदा ही कल्याण करने वाला होवे। इस पर रहते जो जन सुपथ पर चलते हैं, सरल मार्गी हैं वे सदा सुख पहुचाते रहें। यह धरती सदा श्रेष्ठ बनी रहे। ऐश्वर्य से भरपूर रहे। इस पर हम जीवन यज्ञ करते हैं। इस प्रकार से यह भूमि सदा हमारा परित्राण करने वाली हो। यह हमारी भूमि माता है। हमारे जीवन का निर्माण, पालन पोषण इसी के द्वारा ही होता है। इसी की गोदी मे पलते, खेलते और बढ़ते रहते हैं। पिता जी ! ऐसी कृपा करते रहो जिस से यह पृथ्वी हमें शान्ति, सुख और कल्याण देती रहे। इसकी विशाल सन्तान में कोई भी इसको अशान्ति का धाम, दुःख का घर तथा नरक का केन्द्र न बनाने पाये। —सं०

ऋषि दर्शन

शुभ गुणानां प्रकाश:

शुभ गुणों का-ऊंचे विचारों व भावों का सदा प्रकाश करना चाहिए। जीवन मे प्रत्येक का कर्तव्य है कि उत्तम गुण विचारों का ही सर्वदा और सर्वत्र प्रकाश करे।

सत्यगुण कामना च

और सदा ही सत्य से पूर्ण गुणों की कामना किया करे। जिस मे असत्य, छल, दम्भ और हानि की मिलावट हो, ऐसे विचारों की कभी भी इच्छा न करे। सत्य सकल्पी बने।

ब्रह्म सर्वदैवोपासनीयम्

सर्वदा ब्रह्म-उस महानतम भगवान की ही उपासना करनी चाहिए। जीवन के नाना प्रलोभनों में आ कर ब्रह्म को भुला न देवे या उस के सिवाय और किसी की पूजा न करे।

भा ष्य भू मि का

अधिष्ठाता—संतोषराज मंत्रीसभा — सम्पादक त्रिलोक चन्द्र शास्त्री

कठ उपनिषद् सार

(ले० श्री ज्ञान सिंह जी आर्य करोलबाग देहली)

(गतांक से आगे)

जिस प्रकार सूर्य आंख के दोषों से निर्लेप रहता है इसी प्रकार सब भूतों के अन्दर व्यापक परमात्मा सांसारिक जीवों के दुखी होने पर भी स्वयं दुःख से पृथक रहता है। विद्या आदि पाप व दोष इस ब्रह्मशक्ति को प्रभावित नहीं कर सकते । वह इन सब दुखों से ऊपर है। वह ब्रह्म संसार की बुरी से बुरी चीज में रहता हुआ भी उसके सारे दोषों व विकारों से पृथक रहता है। वह सांसारिक पदार्थों में रहता हुआ भी इनसे पृथक है।

८. ब्रह्म इस जगत को रचने वाला और नियम में रखने वाला है। सूर्य, चांद, तारागण, नक्षत्र आदि इसी के नियमों के आधीन लाखों सालों से अपनी परिधि में घूमते हुए ब्रह्माण्ड में स्थित है। उसी ने अव्यक्त प्रकृति से इस नाम व रूप वाली प्रकृति को बनाया है।

९. ब्रह्म नित्यों में नित्य है पर नित्यों मे नित्य का क्या अर्थ। इस से अभिप्राय ब्रह्म की बाकी दो नित्य सत्ताओं प्रकृति व जीव से कुछ विशेषता दिखाना है। प्रकृति नित्य तो है पर इस में परिवर्तन आता है, इस में विकार आता है। वह अव्यक्त अवस्था से व्यक्त अवस्था मे प्रकट होती है परन्तु ब्रह्म में विकार नहीं । जीव नित्य होता हुआ भी अविद्या में अपने आपको अनित्य समझता है। जैसे अविद्या के कारण कहता है कि मैं मर गया यद्यपि वह अमर है । नाशवान नहीं। ब्रह्म मे ऐसी अवस्थ कभी नहीं आती। उस में न प्रकृति जैसा विकार आता है और न ही जीव जैसी अविद्या। इसलिए उसे नित्यों में नित्य कहा गया है। कई विद्वानों ने लिखा है कि वह अनित्य पदार्थों में नित्य है जिसका अर्थ यह है कि संसार की सब चीजें नाशवान है केवल ब्रह्म अविनाशी, नित्य सदा एक रस रहने वाला है। चेतन पदार्थों में जीव और ब्रह्म दो सत्ताएं हैं। जीव अनेक हैं परन्तु प्रलयकाल और जन्म की अवधि में अथवा एक शरीर को छोड़ने और दूसरे के धारण करने के बीच में इनकी चेतनता प्रकट नहीं होती परन्तु परमात्मा सदा चेतन रहता है। इस लिए उसे चेतनों में भी चेतन कहा गया है।

यह संसार एक ऐसा सनातन वृक्ष है जिसकी जड़ ऊपर और शाखाएं नीचे की ओर हैं। संसार वैसे तो बनता और बिगड़ता है अर्थात् नाशशील है फिर उसे सनातन अर्थात् सदा से रहनेवाला क्यों कहा है। यह इस लिए कि कर्मोंका यह प्रवाह रूप से अनादिकाल से चलता आ रहा है और चलता रहेगा। सब से ऊपर उत्कृष्ट सत्ता ब्रह्म ही है। इसलिये यही संसार रूपी वृक्ष की जड़ है। जड़ वृक्ष को कायम रखती है और उसके लिए भोजन देती है। ससार भी इस वृक्ष पर आश्रित है और ब्रह्म इसका निमित्त कारण भी है। इसलिये इसे संसार रूपी वृक्ष का मूल कहना उचित ही है। प्रकृति के विकार, पंचतन्मात्रा, पंचमहाभूतादि इस संसार रूपी वृक्ष की शाखाएं हैं। ब्रह्म अमृत है, ज्योति स्वरूप है, विशुद्ध है। सब लोक लोकान्तर उस के आश्रित हैं। कोई भी शक्ति उसके नियमों का उल्लंघन नहीं कर सकती।

११. सूर्य की गर्मी से जल के वाष्पकण बनते हैं और वायु उन्हें एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाती है। सर्द स्थान पर जाने पर वह बादल बनते हैं फिर वर्षा होती है जिस से वनस्पतियां उत्पन्न होती हैं जिनपर हमारा जीवन निर्भर है। वह सूर्य अग्नि, विद्युत वायु आदि ब्रह्म के डर से तपते और इधर उधर दौड़ते हैं। मृत्यु भी ब्रह्म के नियमों के आधीन अपना कार्य करती है। अर्थात् ब्रह्म का नियम ही सारे जगत् में कार्य कर रहा है।

सारांश-ब्रह्म सर्व व्यापक है। ज्योति स्वरूप अविद्या रूपी धुएं से रहित नित्य अविनाशी, एक रस, महान् व अमृत है। वह एक ही विशुद्ध आत्मा व निर्लेप है।

वह हर वस्तु में विद्यमान तो है परन्तु वह उनके दोषों व विकारों से पृथक् रहता है। वही इस संसार को रचनेवाला व नियम में रखने वाला है। सब लोक-लोकान्तर उसी के आश्रय पर स्थित हैं। वह शक्ति का स्रोत है। सूर्य, चांद, तारागण उसी की शक्ति से प्रकाशमय हैं। वह जड़ व चेतन जगत की उत्पत्ति से पहले विद्यमान था।

ब्रह्म का नियम ही सारे ब्रह्माण्ड में काम कर रहा है।

सदाचार

(ले० प्रकाशचन्द्र कविरत्न, मदनगोपालरोड अजमेर)

अगर तुमको प्यारा सदाचार होगा।
तो निश्चय तेरी ओर संसार होगा॥
मनुज हो मनुज के न तू काम आया।
तो जग में तेरा जन्म निस्सार होगा॥
हनुमान सी जिसमें ही भक्ति शक्ति।
विकट विघ्न-वारिधि से वो पार होगा॥
मिले बच्चे-बच्चे को सद्धर्म शिक्षा।
तभी देश भारत का उद्धार होगा॥
'प्रकाशार्य' प्रभु तुमसे, खुश क्यों न होगा।
जो प्रभु के सुतों से तुझे प्यार होगा।

आर्य केन्द्रीय सभा

१५, हनुमान रोड, नई देहली

आर्य समाजियों द्वारा श्री राजा दिनेश सिंह का स्वागत दिल्ली राज्य के आर्य समाजियों द्वारा विदेश मंत्रालय के मंत्री श्री राजा दिनेश सिंह जी का रविवार को आर्य समाज पटेल नगर में भव्य स्वागत किया गया। इस अवसर पर बोलते हुए श्री दिनेश सिंह जी ने कहा कि मेरे लिये यह सौभाग्य का विषय है कि हमारे परिवार ने, आर्य समाज की सेवा की है। श्री महर्षि दयानन्द जी सौ वर्ष पहिले हमारे राज्य में आये। और उन्होंने हमारे समाज की अनेक बुराइयों को दूर किया। अन्त में उन्होंने अपने पिता जी के गुरु श्री स्वामी ध्रुवानन्द जी से मार्ग दर्शन चाहा। और श्री पं० प्रकाश वीर जी शास्त्री का विशेष आभार प्रगट किया। और सभी उपस्थित जनों का इस अवसर के लिए धन्यवाद किया।

सुधारक मासिक पत्र

का शहीद—विशेषांक ८१ पृष्ठ में प्रकाशित हुआ है कीमत ५० N. p. है। विशेषांक क्या है अमर शहीद पं राम प्रशाद 'बिस्मिल, का सर्वांगीण इतिहास है।

लेखक श्री ब्रह्मचारी महावीर मीमांसक की बड़ी खोज पूर्ण रचना है।

पढ़ते ही मुर्दा नसों में भी खून खौल उठता है। एक २ दृश्य संगठित रूप से तैयार किया गया है।

देश के स्वतंत्रता इच्छुक व्यक्तियों के लिए स्थायी अमूल्य सम्पत्ति है।

गुरुकुल झज्जर (रोहतक) का यह सचित्र मासिक लघु आकार के होते हुए भी प्रशंसनीय है। नव वर्ष का प्रथम अंक है। प्राप्ति स्थान गुरुकुल झज्जर रोहतक।

सम्पादकीय—

आर्य जगत्

वर्ष२२]रविवार १४आश्विन २०१८, ३० सितम्बर १९६२[अंक३९

देवासुर संग्राम

मानव समाज के दो वर्ग माने जाते हैं—देव और असुर। जो केवल भोगवाद, भौतिकवाद और केवल शरीर को बनाने सजाने, खिलाने पिलाने में ही लगे रहते हैं उन्हें असुर कहा गया है तथा इसके विपरीत जो प्रेय के साथ २ श्रेय का, शरीर के साथ आत्मा, प्रकृति के साथ ब्रह्म तथा भौतिकता के साथ नैतिकता व आध्यात्मिकता का समन्वय करके चलते हैं—उन्हें देव पुकारा जाता है। मनुष्य समाज में ये दोनों वर्ग पुरातन काल से चले आते हैं। इनका दृष्टिकोण और विचार बिन्दु जुदा २ है। जीवन के पथ भिन्न २ हैं, परस्पर विपरीत विचारधारा को लेकर काम करते रहते हैं। इन में आपस का संग्राम जारी रहता है। कभी दैवी शक्ति इस आसुरी दल को पराजित कर देती है तथा कभी आसुरी मण्डल देव समूह को दबा देता है। युग २ में दोनों में संघर्ष होता ही रहता है। दोनों के पास अलग-अलग सम्पदा होती है। इन दोनों के के टकराने को देवा-सुरसंग्राम कहते हैं। भारतीय इतिहास में इस युद्ध की चर्चा पढ़ने सुनने को मिलती है।

आसुरी शक्तियां जब प्रबल हो कर अपने भोगवाद के सिद्धांतों का प्रचार करके दैवी आध्यात्मिक मर्यादाओं को दबा देती हैं तो उस समय विश्व का मानवजीवन अस्त-व्यस्त होने लगता है। नैतिक मर्यादाएं टूट जाती हैं, उच्च आचार का पतन होकर अनाचार को प्रश्रय मिलता है। सारा समाज खानपान में, विचार में, भव्य भावना तथा गम्भीर चिन्तन में बिगड़ जाता है। केवल मात्र भोगों का भक्त बन जाता है जो चाहता है खाता है, पीता है, करता और बोलता है। उसके सामने कोई जीवन की सीमा नहीं, स्तर नहीं, परम्परा व नैतिकता नहीं होती। भोग ही भगवान शृंगार ही जीवन का आधार, वासना पूर्ति से प्यार हो जाता है। समाज के सारे बन्धन शिथिल हो जाते हैं। ऐसा समय समाज, देश और विश्व के लिए भारी पतन का होता है। मानव के सामने धर्म, कर्म परम सत्ता, परलोक, सदाचार, परम्परा, समाजमय, शिष्टमर्यादा, सहानुभूति विश्वप्रेम, साधना निष्ठा सब कुछ समाप्त हो जाता है। जब भी दैवी शक्तियां दुर्बल हो जाती हैं। तभी सारे संसार में पशु युग आरम्भ हो जाता है कि देवासुर संग्राम में देवमण्डल की शक्तियों को पूरा २ सहयोग देना चाहिए।

भारतीय परम्परा मे आसुरीदल की विचारधारा ने कई बार बल पकड़ा किन्तु उसे दबाने में सारे देवपुरुष मिल गए। अपने अध्या-त्मवाद के महान प्रभाव से उन सारे भोगवादियों को देर तक पनपने दिया। आर्य पुरुष इन आसुरी सेनाओं से पूरे बल के साथ टकराते रहे हैं। आज के युग में चारों ओर फिर भोगवाद की प्रवृत्तियां जोर मारने लगी हैं। शरीर की पूजा में आत्मा भूल गया है। शृंगार के बाजार में भौतिक वाद की चमक बड़े वेग से सामने आ गई है। आज के जीवन में धर्म पुराने युग की वस्तु बनता जा रहा है। नैति-कता की निन्दा जारी, अध्यात्मवाद को प्रलाप कह कर परे किया जा रहा है, प्रभुभक्ति को रूढ़िवाद का नाम दिया जाता है। चारों ओर भोग भण्डार भरे जा रहे हैं। खान पान सर्वथा बिगड़ चुका है, जीवन स्तर विपरीत हो गया है। आसुरी विचारधारा का प्रवाह बड़े वेग से चल रहा है समाचार पत्र हों या पुस्तकें, चित्रपट हों या नाट्य-शालाएं, वासभवन हों या विलास सदन, पानशालाएं हों या शिक्षा शालाएं, सांस्कृतिक समारोह हों या क्रीडाघर सब जगह जीवन में आसुरी भावनाओं का समावेश हो चुका है। भोगवाद में रोगवाद निश्चित है। इसी कारण से आज का सारा जीवन त्रस्त है, व्याकुल है, रोगी है और अस्त-व्यस्त हो चुका है। दैवी शक्तियां बहुत दुर्बल होती जा रही हैं। आर्यसमाज का आन्दोलन एक अग्नि है। अग्नि सदा आगे चलती है सारे देवों मे अग्रणी नेता है। आर्यसमाज इस देवासुर संग्राम मे सारी दैवी शक्तियों को इकट्ठी कर नेतृत्व करता हुआ भौतिकवादी आसुरी दल के साथ ब्रह्मवाद के वज्र को लेकर पूरे बल से टक्कर लेने को आगे बढ़े। भोगवादियों की इस लहर को रोक कर वैदिक जीवनवाद का प्रचार करे। आज के युग मे आर्यसमाज के सामने सब से बड़ा और सब से आवश्यक यही काम है।

—त्रिलोकचन्द्र

आर्य परिवारों से

विशेष कहना है कि अपने २ परिवारों में वैदिक विचारों का प्रचार करें। अपनी सन्तान को आर्य समाज के साप्ताहिक सत्संगों में रविवार को अवश्य ही साथ लेकर आवें। सत्संग में सुने हुए विचार उनके मन पर अपना भारी प्रभाव डालेंगे। आरम्भ में पड़े संस्कार बड़े ही पक्के होते हैं। आज हम इस ओर बहुत कम ध्यान देते हैं, जिसका परिणाम यह हो रहा है कि हमारी अपनी ही सन्तान हमारे अपने विचारों की नहीं बनती। यह बात तो हमारे अपने ही हाथ में है। यह आवश्यक है इस ओर विशेष ध्यान दिया जाए।

अपने घर की ओर

भी देखें कि क्या विचित्र तमाशा हो रहा है। घर का सज्जन आर्य है और आर्यसमाज मे जाता है पर उस की देवी मन्दिर में जा कर शिवपिण्डी पर जल चढ़ाती है, घंटी घड़ियाल बजाकर आरती करती है, राधास्वामी सत्संग में में जाती है अथवा मूर्तिपूजा करती है। इस का कारण क्या है? क्या हम ने अपने घर में अपनी जीवन साथी को आर्य समाज में लाने का प्रयत्न किया? उसे आर्य धर्म के विचार दिए तथा मूर्तिपूजा आदि की निस्सारता पर वार्तालाप किया है? परिवार में सन्तान पर तो माता के विचारों का ही प्रभाव होता है। इसी लिए हमारे बच्चे भी हमारे विचारों के नहीं बनते। इस की ओर भी विशेष ध्यान दिया जाए। परिवार मे देवी बन जाए। तो सारा परिवार स्वयं ही बन जाता है।

सारा काम हिंदी में

रचनात्मक कार्य से बड़ा लाभ होता है। हिन्दी केवल राष्ट्र-भाषा ही नहीं अपितु इसे ऋषि दयानन्द ने अपने युग में आर्य भाषा कह कर पुकारा है। आर्य समाज के जीवन व कार्य में तो इसका बड़ा महत्व है। अब सारे हिन्दी प्रेमियों का आवश्यक कर्तव्य है कि अपना सारा कार्य हिन्दी में करें। पत्र-व्यवहार तथा अपने सारे आवेदन पत्र हिन्दी मे ही करें। इसे न भूलें—स०

———

आर्य साहित्य परिचय लेख

गंगाप्रसाद उपाध्याय की दार्शनिक कृतियां

(श्री भवानीलाल जी 'भारतीय' M.A. प्रो. गवर्नमेंट कालिज पालो)

आधुनिक हिन्दी साहित्य में दार्शनिक ग्रन्थों के प्रणयन में श्री प. गंगा प्रसाद उपाध्याय एम. ए. का नाम अग्रगण्य है। उपाध्याय जी हिन्दी के मान्य लेखक और आर्य संसार के सुप्रसिद्ध विद्वान हैं। आप की ख्याति का कारण आप की वे दार्शनिक रचनायें हैं जिन के कारण कोई भी भाषा अपने आप पर गर्व कर सकती है और जिन में एक विशुद्ध दार्शनिक चिंतन धारा का परिचय मिलता है। आस्तिकवाद, अद्वैतवाद जीवात्मा, शांकर भाष्य लोचन आदि वे पुस्तकें हैं जिन्होंने हिंदी के दर्शन साहित्य में अपना एक पृथक महत्व बना लिया है और जो सभी विद्वानों द्वारा आद्रत हुई हैं। वैसे तो उपाध्याय जी ने और भी अनेकों धर्मिक तथा सामाजिक ग्रन्थों की रचना की है, परन्तु प्रस्तुत लेख का विषय उनकी दार्शनिक कृतियों का परिचय देना ही है।

जब हम उपाध्याय जी के ग्रन्थों का ध्यान पूर्वक मनन अनुशीलन करते हैं तो उनकी 'आस्तिकवाद' नामक मौलिक और प्रतिभामयी रचना का दर्शन होता है। हिन्दी साहित्य सम्मेलन के १६३१ के कलकत्ता अधिवेशन ने इस पुस्तक पर उपाध्याय जी को १२००) का मंगला प्रसाद पारितोषिक प्रदान किया और इस प्रकार अपनी गुण ग्राहकता का परिचय दिया। आस्तिकवाद में एक मौलिक विचार सरणि का अनुगमन किया गया है और विभिन्न तार्किक हेतुओं से ईश्वर की सत्ता को सिद्ध करने का यत्न किया है। वैसे तो वर्तमान समय में हिन्दू, ईसाई और मुसलमान आदि सभी मतों वाले अपने आप को आस्तिक कहते हैं और ईश्वरीय सत्ता को किसी न किसी रूप में मानते हैं। परन्तु उनकी परमसत्ता सम्बन्धी धारणा अनेक मिथ्या विश्वासों और साम्प्रदायिक रूढ़ियों पर आधारित होने के कारण उसे वह सार्वजनीन रूप नहीं मिल सका जो वैदिक धर्म में बताये गये ईश्वर को मिला है। इसलिये सुप्रसिद्ध ईसाई विद्वान फ्लिंट की Theism नामक पुस्तक के हेतुओं और तर्कों का सहारा लेते हुये भी लेखक ने फ्लिंट के सिद्धांत की त्रुटियों की ओर निर्देश कर दिया है, जो उसके ईसाई होने के कारण आगई थीं। संक्षेप में हम कह सकते हैं कि १९वीं शताब्दि के महान धर्म-प्रतिष्ठाता और धर्म सस्कारकर्ता ऋषि दयानन्द ने ईश्वर का जो वेदोक्त स्वरूप संसार के समक्ष रखा, 'आस्तिकवाद' उसी सिद्धान्त का शास्त्र और तर्कसम्मत सर्वांगीण भाष्य है। यदि ऐसे ग्रन्थ अंग्रेजी में अनुवादित होकर पाश्चात्य विद्वानों के हाथों में जायें तो निस्सन्देह उनके विचारों में मौलिक क्रांति हो सकती है।

उपाध्याय जी ने अपने 'अद्वैतवाद' नामक ग्रन्थ में शांकर सिद्धात की शास्त्रीय और युक्तियुक्त समालोचना प्रस्तुत की है। अद्वैतवाद दिखने में कितना सुन्दर और लुभावना सिद्धांत है। प्रत्येक व्यक्ति अपने आपको उसी महाशक्ति का रूप देखना चाहता है जो समस्त संसार में व्यापक है। अहं ब्रह्मास्मि के मोहक जाल में पड़कर हजारों भावुक व्यक्तियों ने कर्म और उपासना के वैदिक सिद्धान्त को तिलांजलि दे दी। वस्तुत अद्वैतवादी विचारधारा का आरम्भ कहां से हुआ और उसके प्रतिष्ठाताओं ने वेदादि शास्त्रों की कैसी व्याख्यायें की और किस प्रकार उसे श्रुति स्मृति प्रतिपादित ठहराया, यह सब विस्तार से इस ग्रन्थ में बताया गया है। शंकराचार्य के दादा गुरु गौड़ पाद आचार्य ने बौद्धों के मायावाद से प्रभावित होकर माण्डूक्य उपनिषद् पर कारिकाओं की रचना की। अद्वैत महल की यही आधार शिला है। परन्तु गौड़पाद ने जिस स्वप्न के सिद्धात पर जगत् मिथ्यात्व को स्थापित किया वह बालू की दीवार से अधिक मजबूत नहीं है। गौड़पाद ने अपनी तर्क प्रणाली में हेत्वाभासों से काम लिया है तभी तो वह संसार के मिथ्यात्व को सिद्ध करने के लिये स्वप्न के दृष्टांत का प्रयोग करता है। इस प्रकार उपाध्याय जी ने प्रस्तुत ग्रन्थ में अद्वैत के मूल सिद्धांत की खोज की है। इसके अतिरिक्त वेदांत शास्त्र में माया, स्वप्न, गन्धर्व नगरी, सर्प रज्जु, रजत शुक्ति आदि के सर्व प्रचलित दृष्टांत दिये जाते हैं उनकी भी युक्तियुक्त आलोचना की है। वेद में माया शब्द प्रज्ञा के अर्थ में आता है परन्तु वेदांताचार्यों ने उसका भ्रममूलक अर्थ किया मा + या = जो न हो। इस अर्थ की निस्सारता व्याकरण की दृष्टि से भी स्पष्ट है। उपाध्याय जी का यह ग्रन्थ अद्वैतवाद के सम्बन्ध में हमें सच्ची और निष्पक्ष जानकारी देता है। अद्वैतवाद को ही सर्वोपरि शास्त्रीय सिद्धान्त समझने वाले विद्वानों की आंखें खोलने में यह ग्रन्थ समर्थ है।

उपाध्याय जी ने अपने 'जीवात्मा' नामक ग्रन्थ में Self की पहेली को सुलझाया है। 'मैं' का प्रयोग विश्वव्यापी है, परन्तु 'मैं' क्या है, इसे कोई नहीं जान सका। उपनिषद में इन्द्र और विरोचन की कथा आती है। इन्द्र और विरोचन प्रजापति के पास उपदेश ग्रहण करने गये। विरोचन ने अपने सुन्दर शरीर और वस्त्राभूषणों को ही अपना स्वरूप समझा, परन्तु इन्द्र कुछ अधिक बुद्धिमान था, इसलिए उसने गहराई से इसकी मीमांसा की और अन्त में सच्चे आत्मतत्व को जानने में समर्थ हुआ। उपाध्याय जी ने प्रस्तुत ग्रन्थ में पाश्चात्य मनोवैज्ञानिकों और दार्शनिकों के आत्मा सम्बन्धी विचारों का भी संकलन किया है और वैदिक सिद्धांत से उनका सामञ्जस्य और विरोध प्रकट किया है। इसके अतिरिक्त जीवात्मासे सम्बन्धित पुनर्जन्म, मुक्ति, योनि परिवर्तन; मुक्ति से पुनरावृत्ति और ईश्वर जीव सम्बन्ध आदि अनेकों सिद्धान्तों पर भी प्रकाश डाला है।

'मैं और मेरा भगवान्' नामक पुस्तक 'I and my God' नामक पुस्तक का अनुवाद है। इस में भी जीवात्मा की पृथक् सत्ता की सिद्धि की गई है और इस प्रसंग में उपनिषद् के 'तत्वमसि' वाक्य की संगति लगाई गई है। इसके अनन्तर शंकराचार्य, रामानुजाचार्य, दयानन्द आदि दर्शनाचार्यों के जीव सम्बन्धी विचारों पर तार्किक दृष्टि से विवेचन किया गया है। रामतीर्थ विवेकानन्द आदि अद्वैतवादी महात्माओं ने अपने व्याख्यानों में किसी सुसगत तर्क प्रणाली को न लेकर जिन लुभावने हेत्वाभासों से काम लिया है और श्रोताओं की भावुकता को उभार कर जबरदस्ती उन से 'अहं ब्रह्म' का सिद्धान्त मनवाने की जो कोशिश की है, उपाध्याय जी ने उसका पर्दा फाश कर दिया है। उपरोक्त महानुभावों के कुछ एक विचार तो इतने तर्क विरुद्ध हैं कि उन पर कोई टिप्पणी करना भी अनावश्यक है।

शांकर भाष्यालोचन उपाध्याय जी का हाल ही का प्रकाशित है। इसके प्रकाशन ने उपाध्याय जी की प्रतिभा और कीर्ति में चार चांद लगा दिए हैं। (क्रमशः)

आर्य कुमार आंदोलन क्यों ?

आर्य नेता निर्माण करने के लिए

(ले०—श्री रामप्रकाश जी ज्योति निकेतन धर्मशाला छावनी)

✦✦✦✦✦✦✦✦✦✦✦✦✦✦✦✦✦

आर्य नेता निर्माण करने के लिये आर्यकुमार आन्दोलन चलाने का पांचवां कारण यह है कि आर्य नेता निर्माण करने की आव-आवश्यकता प्रतीत हो रही है।

क्या आज आर्य नेता नहीं हैं ? हैं तो—पर आज नेता आर्य नेता नहीं प्रतीत होते आज नेता नेता हैं नेतृत्व करते हैं आर्य समाज का भी नेतृत्व करते हैं और साथ ही साथ किसी न किसी राजनीतिक दल का भी नेतृत्व करते हैं।

आर्य समाज की परिधि में रह कर भी वे आपस में झगड़ पड़ते हैं अपनी राजनीतिक चालों तथा दलबन्दियों को वे आर्यसमाज के क्षेत्र में भी घुसेड़ देते हैं।

आर्यसमाज के वर्तमान नेताओं का जीवन प्रेरणा देने वाला जीवन नहीं हैं कहा वे पुनीत नाम हैं—प्रातः स्मरणीय नाम जिनका श्रवण करते ही झट से श्रद्धा सम्मान से झुक जाती है और हृदय मे गौरव भर जाता है अभिमान से छाती फूल जाती है।

उनकी तपस्या उनका त्याग उनकी विद्वता उनकी लगन उनका तप उनका उत्साह उनकी कार्य-शक्ति उनकी कार्य शैली उन का व्यक्तित्व उनका तेज उनका आज उनकी वाग्मिता उनका गाम्भीर्य उनका प्रभाव उनकी सरलता उनकी उदारता और उनके अनेकों अन्य गुण उन्हीं के साथ चले गए।

आज के नेता तो कीचड़ उछालने वाले नेता हैं एक दूसरे के प्रति अपशब्द कहने में ही चतुर प्रतीत होते हैं।

क्षमा करना—मेरे लेख को पढ़ने वाले मेरे मित्र मैं सत्य बात कह रहा हूं।

यदि हमारे नेता आर्य नेता होते तो आज आर्य समाज की यह अवस्था न होती—आज हमारा आंदोलन जोकि हिन्दी के लिए चलाया गया था वह इस बुरी तरह से कुचला न जाता।

आज हमारी इस प्रकार की दुर्गति न होती जैसी कि हो रही है।

क्या सम्मान है हमारा ?

नेता हैं हमारे पर आर्य नेता नहीं।

आर्य नेता तो अब बनाने पड़ेंगे—

कैसे आर्य नेता ?

ऐसे आर्य नेता जिनका पहला और अन्तिम उद्देश्य हो आर्यसमाज जिनको दिन रात यही लगी रहती हो कि आर्य समाज की उन्नति कैसे हो ? आर्यसमाज का विकास कैसे हो ? आर्य समाज के सत्संगों की शोभा कैसे बढ़ ? आर्यसमाज के भीतर धुरन्धर विद्वान कैसे निर्माण किए जाएं ? आर्यसमाज के उपदेशकों का सम्मान किस प्रकार बढ़ाया जाए ? आर्यसमाज को लोकसंस्था कैसे बनाया जाए ?

आर्यसमाज किस प्रकार सर्व-प्रिय बने ? लोकप्रिय बने, जन-जन का प्रेम भाजन बने ? कैसे भारत की कोटि-कोटि जनता आर्यसमाज की शरण में पहुंचने के लिए लालायित की जा सके ? किस प्रकार आर्य समाज समूचे भारतीय जीवन पर अपना प्रभुत्व जमा सके ? कैसे धरती की समूची मानवता को आर्य ध्वजा के नीचे एकत्रित किया जा सके ?

यज्ञ हवन को संध्या को अन्य दैनिक यज्ञों का परिवार परिवार में प्रचार कैसे किया जासके ? वेद शास्त्र की स्वाध्याय करने की प्रवृत्ति भारतीय समाज में किस प्रकार निर्माण की जासके ?

कोई एक समस्या है ? जिस पर विचार करने की आज अत्यन्त आवश्यकता नहीं है ?

अभी तो सहस्रों लाखों समस्याएं हैं जीवनों के जीवन इन समस्याओं के परिगणन में ही लग जाएं-समाधान के लिए तो न जाने कितने खप जाएंगे—

यह तो उन लोगों का काम है जो दिवारात्रि जीवन पर्यन्त इसी काम के लिए सुरक्षित हो चुके हों।

उन का कार्य यह नहीं जिन्हों ने इस को रिक्त समय का विलास मान रक्खा हो जिन्होंने अपने जीवन के अन्य व्यस्त धन्धों में से दो चार क्षण इधर भी फेंक देने का स्वभाव सा बना लिया हो।

यहां तो महर्षि दयानन्द जैसे चाहिए जिनका सर्वस्व हो आर्य समाज हो और जो इसी के लिए जन्मे हों इसी के लिये कार्य करते रहे हों इसी हित लिए प्राण भी त्याग जाएं।

आज तो आदत ही उलटी पड़ गई है कि ऋषि दयानन्द जैसा तो 'न भूतो न भविष्यति' न पहले कभी हुआ न फिर कभी होगा।

ऋषि के गुण गान की दृष्टि से तो यह ठीक है इससे उत्तर (बढ़कर) प्रशंसा उनकी नहीं की जा सकती पर आर्यसमाज के हित की दृष्टि से देखा जाए तो यह आर्य समाज के लिए घातक प्रवृत्ति है इस परदे की आड़ में हम अपनी दुर्बलता को छिपा लेना चाहते हैं समय की सबसे बड़ी आवश्यकता से आंख चुराना चाहते हैं।

मैं तो बलपूर्वक कहना चाहता हूं, हिमालय की धवल चोटियों से घोषित कर देना चाहता हूं। एक-एक आर्य पुरुष के हृदय तक यह ध्वनि पहुंचा देना चाहता हू कि आज एक दो नहीं दस बीस पचास ऋषि दयानन्द चाहिएं जो धरती के प्रांगण में सिंह की तरह गरजें—

मानव जाति के हृदय मे धस कर बैठी भय की भावना को भगा देवें आज की इस भयंकर घोर अशान्ति की आन्धी का डट कर सामना करे बड़े-बड़े शक्तिशाली साम्राज्यों के अधिपतियों के सामने निर्भय हो कर खड़े हो जाएं और उन्हें कह देवें कि इस धरती के विनाश का ठेका ले कर तुम नहीं आए हो—उतर जाओ इन गाद्दियों से छोड़ दो इस शासन सूत्र की बाग डोर और चले जाओ यहां से। यह आर्य की गरज है आर्य पुरुष विश्व में अन्धकार को सहन नहीं कर सकता अत्याचार अनाचार तथा भ्रष्टाचार नहीं सह सकता है,

आर्य पुरुष तो आर्य राज्य की कामना करता है समूची धरती पर चक्रवर्ती आर्य साम्राज्य इस प्रकार की सिंह गर्जना करने वाले दिव्य मानव की आज आवश्यकता है एक दो नहीं दस बीस पचास चाहिएं आप कहोगे कैसे पागल का प्रमत्त प्रलाप है।

✦✦✦✦✦✦✦✦✦✦✦✦✦✦✦✦✦✦✦✦✦✦

आर्य वीर फिर कार्य क्षेत्र में

आर्य समाजें, आर्य सिद्धांत प्रेमी आर्य वीर और हिन्दी प्रेमी सज्जन यह पढ़ कर प्रसन्न होंगे कि आर्य वीर हिन्दी मासिक जालन्धर जिस का प्रकाशन पूज्य पिता पण्डित मेहर चन्द जी शर्मा सम्पादक आर्य वीर की बीमारी के कारण कुछ मास से स्थगित था अक्टूबर मास से फिर कार्य क्षेत्र में आ रहा है। बलिदान जयन्ती अम्बाला के शुभ अवसर से इस का प्रकाशन आरम्भ हो जायगा।

ओ३म् प्रकाश शर्मा
व्यवस्थापक
आर्य वीर हिन्दी मासिक जालन्धर

हमें देश के लोगों के पतन के जो कारण हैं उन्हें भूलना न चाहिये, और उन्हें फिर कभी दोहराना भी न चाहिये। रूढ़िवाद मूर्तिपूजा, मृतक श्राद्ध बेमेल विवाह देशभक्ति में अरुचि भद्दे रीतिरिवाज तो अवश्य छोड़ने ही होंगे। भला कैसा निन्दनीय रिवाज है कि जीते जी तो माता पिता का आदर न करें बूढ़े लोगों का पोषण तक न हो और मरने पर उनका श्राद्ध किया जाय। बूढ़े माता पिता पितामह आदि की तो सेवा होनी चाहिये न कि उनकी पुण्य तिथि पर अथवा एक विशेष मौसम में पिंडदान आदि उपहास सूचक कार्य किये जायं? इसी प्रकार जानते हुए भी कि मूर्तिपूजा में साम्प्रदायिकता निहित है नाना देवताओं की पूजा करने वाले अलग-अलग रहते हैं आपस में संघर्ष तक करते हैं भेदभाव बढ़ाते हैं फिर भी नाना देववाद जारी हैं। नाना देववाद निन्दनीय हैं इस से हानि ही हानि है। एक ईश्वर की उपासना में सब का परमहित है आपस का मेल बढ़ता है सौहार्द और प्रेम होता है और समाज शक्तिशाली होता है। नाना देवताओं की पूजाओं से जो पृथकता पनप रही है उसे अपने देश की उन्नति के नाते भी अवश्य छोड़ना ही चाहिये इस मे लाभ तो कुछ भी नहीं। आपस की अन्यता बढती है साम्प्रदायिकता पनपती है। हम सब एक ही परमपिता की सन्तान हैं हमें उसी एक भगवान की उपासना करनी चाहिये और उसकी सरल-सी विधि है दिव्य गुणों का चिन्तन, मनन और गायन जिस से कि उन दिव्य गुणों को धारण करने की रुचि हो। इसी प्रकार तथ्य को जानकर हमें अपने बूढ़े माता पिता पितामह आदि का आदर करना चाहिये और उनकी सेवा करनी चाहिये। मृतकों का श्राद्ध का ढंग बदलना चाहिये उनके गुणों का उनके चरित्र का उनकी पुण्य तिथि के दिन विचार करना तो कुछ हितकर भी हो सकता है पर एक मौसम में उनके नाम पर कथित ब्राह्मणों को जिमाना तो निरर्थक है।

सही दृष्टिकोण

(ले० श्री लालचन्द्र जी मेरठ छावनी)

बहुत पतन हो चुका, अब तो सब के प्रयत्नों और बलिदानों के परिणाम स्वरूप हमारा अपना जनतन्त्र है यह हमारा जनतंत्र कैसे सशक्त हो और अधिकाधिक समृद्ध और प्रभावशाली हो वैसा सोच विचार कर व्यवहार करना चाहिये। पतन के कारण स्पष्ट हैं उन्हें तो त्यागना ही श्रेयस्कर है। अब तो हमें उन्नति के साधन निश्चय करने चाहियें और उन्हें अपने आपस के जीवन व्यवहार में और दैनिक-जीवन में लाकर उन्नत होने का दृढ़ निश्चय करना चाहिये। अब हम स्वतंत्र राज्य के नागरिक हैं, हमारा व्यक्तित्व उज्ज्वल और प्रभावशाली होना ही चाहिये। अब हम उन रूढ़ियों में क्यों फसे रहें जिनके कारण हम अनुभव कर चुके हैं कि हमारा ह्रास ही होता रहा। उन कुरीतियों को क्यों हम अपने से चिपका रहें या स्वय उनसे चिपटे रहें, जो स्पष्ट हमारी हानि का कारण बनी रहीं। अनेकों कुरीतियां हैं जिन के कारण हमारा समाज प्रगतिशील न रह कर अकर्मण्य सा रह गया था। हमें उन्नति के साधनों का निर्णय करना चाहिये और उन्हें अपना कर कर्मण्य और प्रगतिशील बनना चाहिए।

देखने में यह आ रहा है कि भारतीय लोगों की अवस्था पिंजरे में रहने वाले तोते जैसी है। वह तोता पिंजरे से बाहर आकर भी स्वतंत्रता से घबरा जाता है और पुन पिंजरे में ही घुसना चाहता है। इसी प्रकार यद्यपि भारतीय जनता के परतन्त्रता के बन्धन टूट चुके हैं पर न जाने क्यों वे उन्हीं रूढ़ियों रीति रिवाजों कुरीतियों रूपी बन्धनों में फसे हैं जिनके कारण वे परतन्त्र बन रहे थे। बन्धनों की रस्सियां टूट चुकी हैं पर भारतीय लोग उन टूटी रस्सियों को भी अपने साथ लिए फिर रहे हैं। हमें तो अब बन्धनों का चिन्ह तक मिटा देना चाहिए और स्वतन्त्रा के दृढ़ रहने के सभी साधन अपनाने चाहियें जिन कारणों से भारतीयों का नैतिक और सामाजिक पतन हुआ था उन्हें अभी तक लोग छेड़ना नहीं चाहते। यह देखकर दुख होता है। हम क्यों स्वतंत्र जनतत्र में रहते हुए भद्दी हानिकर रूढ़ियो में फसे रहें। रूढ़ियों में फैले हुए तो हम वास्तव में परतंत्र ही हैं।

भारत पर अन्य देशों के लोगों ने आक्रमण किए वे यहां बसे। दुर्बल लोगों ने उनका अनुकरण किया मुसलमानों के राज्य के समय लोगों ने उनकी नकल की थी। इसी प्रकार आजकल बाबू लोग अंग्रेजियत को नहीं छोड़ते चाहे अंग्रेज यहां से विदा हो चुके हैं। उनके देश में उनके रहने का ढग ठीक है। पर हम को मास मदिरा का दुरपयोग करके अपनी सस्कृति की सभ्यता पर लाछन लगाता नकल करने वाले दुर्बल स्वाभाव के प्रति प्राय. बुराई नकल करते हैं उनकी दृष्टि भले कामों की ओर तो जाती ही नहीं जा सकती भी नहीं। लोगों ने विशेषत. बाब लोग जिनमें बकील बैरिस्टर डाक्टर मास्टर आदि सभी सम्मिलित हैं उन्होंने अपने रहन सहन का ढंग ही बदल दिया। अंग्रेजो की नकल करते करते न तो अंग्रेज बने क्योंकि रंग सांवला रहना ही था और न देसी ही रहे। एक विचित्र सा मिश्रण हुआ जो इसी का कारण है। एक रिवाज बाबुओं में चला है कि घरों में डैडी मम्मी, बेबी, आंटी डार्लिंग आदि अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग जोरो पर रहा है और जीवन विलासी बन रहा है जो आयु बहुत से बाबुओं की आर्थिक स्थिति के भी अनुकूल नहीं नकल करना तो दुर्बलता का द्योतक है। हमारी अपनी संस्कृति है अपनी सभ्यता है. हमारे-रहन सहन के तरीके हमारे अनुकूल हैं हम तो पराई नकल करें? भारतीयता बिचारी टुकटुक देख रही है कि स्वतंत्र जनतंत्र में भी यहां के स्त्री पुरुष अपनी संस्कृति और सभ्यता की ओर ध्यान न देते हुए अंग्रेजित की ही नकल किये जा रहे हैं। स्वतंत्रा के बाद पेंट सूट का रिवाज तो इतना बढ गया है कि मैं तो एक दिन एक बिना अंग्रेजी पढ़े लिखे लड़के कोपूरे अंग्रेजी सूट में देखकर हैरान रह गया। बूटिड सूटिड वर मैंने घोड़ी पर विवाह के लिये जाते देखे हैं और असुविधा अनुभव करते हुए भी पैंट पहने हुए ही वेदि पर विवाह सस्कार करवाते हुए भी देखे हैं। अब एक अच्छी हवा चली है भले घरों के अर्थात पैसे वाले घरों के बच्चे अधिकतर ईसाई पादरियों के चलाए हुए अंग्रेजी स्कूलों में भेजे जा रहे हैं और वे वहां राष्ट्र विरुद्ध शिक्षा पा रहे हैं। क्या कहा जाए परतंत्रता अभी तक अपने डोरे डाले हुए हैं। क्या भारतीय लोग मिलकर अपनी सरकार की सहायता से अच्छा स्कूल नहीं चला सकते?

अंग्रेज तो चाहे अपने परिवारों में या गिरजाघरों में प्रेयर करते भी हों पर ये हमारे भारतीय अंग्रेजों के नकलची प्रायः सन्ध्यावन्दन ईश्वर पूजा से शून्य ही दीख रहे हैं।

प्रादेशिक सभा द्वारा उत्सवों की धूम

आर्यसमाज तरनतारन का उत्सव २१ से २३ सितम्बर को समारोह से सम्पन्न हुआ। उत्सव पर सभा की ओर से पं० ओम्प्रकाश जी, पं० साजनदेव जी, श्री ताराचन्द्र जी, श्री मेलाराम जी श्री हजारीलाल जी, श्री जगतराम जी पधारे।

वैदिक साधन आश्रम गुरुदासपुर में यज्ञ समारोह १६ से २३ सितम्बर तक समारोह से सम्पन्न हुआ। श्री अमरसिंह जी अम्बाला मंडल पधारा।

आर्यसमाज शिमला का वार्षिकोत्सव २१ से २३ सितम्बर को समारोह से सम्पन्न हुआ।

१६ सितम्बर से श्री पं० त्रिलोकचन्द्र जी की कथा होती रही और ठा० दुर्गासिंह जी के भजन। पं० चन्द्रसेन जी आर्य हितैषी श्री राजपाल जी, मदन मोहन जी, प्रिं० ज्ञानचन्द्र जी पधारे।

आर्यसमाज दयालपुरा करनाल का उत्सव २८ से ३० सितम्बर को समारोह से सम्पन्न हो रहा है। खुशीराम शर्मा, श्री प० ओमप्रकाश जी, मेलाराम जी, श्री दुर्गासिंह जी, अम्बाला करनाल मंडल भाग ले रहे हैं।

आर्यसमाज मण्डी हिमाचल का उत्सव ११ से १४ अक्तूबर को धूमधाम से सम्पन्न हो रहा है। उत्सव से पूर्व श्री पं० ओमप्रकाश जी कथा करेंगे, ६ अक्तूबर से ठा० दुर्गासिंह जी के मनोहर भजन होंगे। उत्सव पर श्री राजपाल जी, मदन मोहन जी, श्री पं० चन्द्रसेन जी पधारेंगे।

आर्यसमाज नूरपुर कांगडा का उत्सव १६ से २१ अक्तूबर को समारोह से सम्पन्न हो रहा है। उत्सव से पूर्व खुशीराम शर्मा की कथा होगी। श्री ताराचन्द्र जी के भजन होंगे। उत्सव पर श्री प० चन्द्रसेन जी, मेलाराम जी, दुर्गासिंह जी, पं० साजनदेव जी पधार रहे हैं।

आर्यसमाज नया बाजार, भिवानी का उत्सव १८ से २१ अक्तूबर को समारोह से सम्पन्न हो रहा है। १४ अक्तूबर से यज्ञ और कथा श्री पं० त्रिलोकचन्द्र जी करेंगे। श्री हजारीलाल जी के भजन होंगे उत्सव पर श्री राजपाल जी, श्री मदन मोहन जी पधारेंगे।

आर्यसमाज नगरोटा टीका का उत्सव २२ से २४ अक्तूबर को समारोह से सम्पन्न होगा। नूरपुर के सज्जन पधारेंगे।

आ० स० दीनानगर में २२ से २८ अक्तूबर तक खुशीराम शर्मा की कथा और राजपाल जी मंडली के भजन होंगे।

आ० स० लोहगढ अमृतसर का उत्सव ६ से ११ नवम्बर को समारोह से सम्पन्न हो रहा है।

आ० स० माडल टाऊन अम्बाला का उत्सव ६ से ११ नवम्बर को समारोह से सम्पन्न हो रहा है।

आ० स० नकोदर का उत्सव १६ से १८ नवम्बर को सम्पन्न हो रहा है।

आ० स० हिसार का उत्सव २३ से २५ नवम्बर को सम्पन्न हो रहा है।

आ० स० पल्वल का उत्सव ६ से ११ नवम्बर को सम्पन्न हो रहा है।

आर्य समाज कांगडा का उत्सव ६ से ११ नवम्बर को सम्पन्न हो रहा है।

आर्य समाज सैक्टर ८ चंडीगढ का उत्सव २ से ४ नवम्बर को समारोह सम्पन्न हो रहा है। २६ अक्तूबर से श्री पं० त्रिलोक चन्द्र जी की कथा और राजपाल जी, मदन मोहन जी के भजन होंगे।

आर्य समाज गुरदासपुर का उत्सव १६ से १८ नवम्बर को समारोह से सम्पन्न हो रहा है।

आर्य समाज टिवैली रोहतक का यज्ञ, उत्सव १३ से १६ अक्तूबर को समारोह में सम्पन्न हो रहा है।

आर्य समाज धर्मशाला का वार्षिक उत्सव १६ से १८ नवम्बर को समारोह से सम्पन्न हो रहा है। १२ नवम्बर से खुशीराम शर्मा की कथा होगी।

आर्यसमाज भरवाई का वार्षिक उत्सव बड़ी धूमधाम से सम्पन्न हुआ। इस पर्वत शिखर पर वैदिक धर्म का संदेश सुनाने का श्रेय श्री पं० हरिश्चन्द्रजी शास्त्री पुरोहित आर्य समाज पुरानी मंडी जम्मू को है। सर्व सम्मति से श्री हरिश्चन्द्र जी शास्त्री नव वर्ष के लिए प्रधान चुने गए।

खुशीराम शर्मा
वेद प्रचार अधिष्ठाता

आर्य समाज लक्कड़ बाज़ार शिमला का व

आर्य समाज लक्कड़ बाज़ार शिमला का वार्षिकोत्सव बड़ी धूमधाम से सम्पन्न हुआ। उत्सव से पूर्व पं० त्रिलोकचन्द्र शास्त्री की वेदकथा तथा ठाकुर दुर्गासिंह जी आर्य सुफल के भजन होते रहे। साथ-साथ संजोली में पं० चन्द्रसेन जी की कथा तथा पं० राजपाल मदन मोहन चिमटा मण्डली के भजन होते रहे। उत्सव में हिसार से ठाकुर अमरसिंह जी शास्त्रार्थ महारथी, प० त्रिलोकचन्द्र जी शास्त्री, पं० चन्द्रसेन जी, पं० राजपाल मदन मोहन चिमटा मण्डली, ठा० दुर्गासिंह जी पधारे, भारी वर्षा में भी नर-नारी बड़ी श्रद्धा से आते रहे। शिमला का डी. ए. वी. हायर सैकण्डरी स्कूल के विद्यार्थियों का उत्साह बड़ा ही दर्शनीय था। उनका सेवाभाव तथा जोश प्रशंसा के योग्य हैं। अध्यापक भी जुटे हुए थे। प्रिंसिपल श्री सत्यप्रकाश जी एम. एस. सी., श्री प० पृथ्वीनाथ जी भनोत प्रधान समाज, श्री राजाराम जी मन्त्री समाज का उत्साह देखकर प्रसन्नता हुई। पं० मुनिलाल जी, पं० जयकृष्ण जी शास्त्री, माताओं का उत्साह देखते बनता था। उत्सव हर प्रकार से सफल था। सभा को सब कुछ मिला कर चार सौ तीस रुपये मिले—

वर वधु के लिए सुभीता

टैलीफोन नं० २७५

मान्यवर श्रीमान् मन्त्री जी

सादर नमस्ते!

निवेदन है कि

हिन्दु जनता में लड़के और लड़कियों के विवाह की समस्या जटिल होते देख कर मैंने यह उचित समझा है कि 'वर' और 'कन्या' के अभिलाषी अपने परिवार का परिचय, लड़के तथा लड़की की योग्यता, परिवारिक स्थिति, आयु तथा अन्य आवश्यक बातें, जो लिखनी उचित समझें, और अपना पूरा पता लिखकर भेजने की कृपा करें, ताकि उनके लिए योग्य सहचर व सहचरी के पते, जो मेरे पास आए होंगे, उनको भेज दिया करूं। इससे उनको दूसरे पक्ष के साथ बात करने में सुभीता होगा।

इस कार्य के लिए उन्हें किसी प्रकार का खर्च करना नहीं पड़ेगा। मैं अपनी निशुल्क सेवाएं अर्पण करता हुआ प्रसन्नता अनुभव करूंगा।

मंत्री जी, इस कार्य के लिए मैं आपका सहयोग चाहता हूं। कृपा करके आप अपने साप्ताहिक सत्संग में कभी-कभी इस बात की सूचना दे दिया करें, ताकि मेरे पास दोनों पक्षों के पते अधिक संख्या में प्राप्त हो सके और मैं लोगों की सेवा करने के योग्य बन सकूं। मैं आपका अत्यन्त आभारी हूंगा।

भवदीय —

पृथ्वीनाथ बहल

बाजार वकीलां, होशियारपुर (पंजाब)

मैं श्री पृथ्वीनाथ बहल जी को जानता हूं। उनका यह-कार्य निष्काम सेवा भाव से युक्त है। आनन्दभिक्षु वानप्रस्थ

बलिदान जयन्ती की व्यापक तैयारियां

अम्बाला छावनी २१ सितम्बर। ७ से १४ अक्तूबर तक होने वाले आर्य समाज के विशाल बलिदान जयन्ती समारोह की तैयारियां देश भर में ... आरम्भ हो गई हैं।

... हैदराबाद और आगरा के अनेक नगरों में आर्य जनों ... जयन्ती के लिए सूचना प्राप्त हुई है।

बड़े-बड़े नगरों में बलिदान जयन्ती समारोह समिति बनाकर धन संग्रह व यात्रा के कार्यक्रम का संचालन आरम्भ हो गया है।

जालन्धर की समिति के संयोजक श्री बालमुकन्द आर्य ने जालन्धर क्षेत्र में पूरे बल से जयन्ती समारोह की तैयारियां करनी आरम्भ कर दी हैं।

अमृतसर पठानकोट अम्बाला करनाल आदि जयन्ती के उद्देश्यों को प्रसारित करने के लिए विशाल जन सभाओं के समाचार भी प्राप्त हुए हैं।

अनुमान है कि १२ अक्तूबर को जयन्ती के अवसर का विशाल जलूस ३ मील लम्बा होगा और इस में लाखों आर्य नर नारी भाग लेंगे। ७ अक्तूबर से लेखराम नगर में यजुर्वेद पारायण महायज्ञ की तैयारियां भी उत्साह पूर्वक की जा रही है।

आर्य समाज के सैकड़ों उपदेशक कार्यकर्ता आजकल देश के विभिन्न भागों में घूमते हुए बलिदान जयन्ती के उद्देश्य को प्रसारित कर रहे हैं।

लेखराम नगर में अपना पोस्ट आफिस होगा जिसका नाम अमर शहीद धर्मवीर पं० लेखराम के नाम पर लेखराम नगर पोस्ट आफिस होगा।

हरिप्रकाश सभामन्त्री

आर्य समाज जामनगर गुजरात

ने १६-९-६२ के सत्संग के पश्चात् श्रमती टेकचन्द जी और विनायकराव जी के निधन पर शोक प्रस्ताव पारित करके प्रभु से उनकी आत्मा की सद्गति के लिए तथा उनके परिवार को इस दारुण कष्ट सहन करने की शक्ति प्रदान करने के लिए प्रार्थना की गई इस अवसर पर डा. धर्मानन्द जी केसरवानी ने इन दोनों व्यक्तियों के जीवन पर भी प्रकाश डाला

मन्त्री समाज

आल इण्डिया दयानन्द सालवेशन मिशन हुशियारपुर

सूचना

किसी भद्र पुरुष ने लिफाफा में १००) रु० का नोट डाल कर मिशन को भेजा है परन्तु इस में कोई चिट्ठी या चिट नहीं भेजी जिस से यह मालूम हो सके कि दानी सज्जन का नाम क्या है। केवल डाकखाने की मोहर जो लिफाफा पर लगी हुई है उस से यह मालूम होता है कि लिफाफा बम्बई से आया है। इस लिए मैं दानी सज्जन को मिशन की ओर से रसीद नहीं भेज सकता। इसलिए इस सूचना द्वारा दानी सज्जन को सूचना देना चाहता हूं कि उनका दान मिशन में पहुंच गया है जिसके लिए मिशन उनका अति धन्यवादी है।

भवदीय

देवीचन्द

मुद्रक व प्रकाशक श्री संतोषराज जी मन्त्री आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा पंजाब जालन्धर द्वारा वीर मिलाप प्रैस, मिलाप रोड जालन्धर से मुद्रित तथा आर्यजगत कार्यालय महात्मा हंस राज भवन निकट कचहरी जालन्धर शहर से प्रकाशित मालिक—आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा पंजाब जालन्धर

टैलीफोन नं० ३०७७ [आर्यप्रादेशिक प्रतिनिधि सभा पंजाब जालन्धर का साप्ताहिक मुखपत्र] Regd No P.1

एक प्रति का मूल्य १३ नये पैसे

वार्षिक मूल्य ६ रुपये

वर्ष २२ अंक ४०) रविवार २० आश्विन २०१९— ७ अक्तूबर १९६२ दयानन्दाब्द १३८ (तार-प्रादेशिक जालन्धर

वेद सूक्तय:

राष्ट्रस्य ककुदि श्रयस्व

हे राजन ! तू राष्ट्रस्य—सारे देश के ककुदि—सब से ऊंचे आसन पर, सिंहासन पर श्रयस्व—आश्रित हो, विराजमान हो। राजा के या राष्ट्रपति के उच्च आसन पर बैठ।

उग्रो विभजा वसूनां

और तू उग्र—उग्रवीर होकर दण्डनियम को ले कर वसूनि—धन आदि विभजा बांटता रह। सारी प्रजा को जीवन सामग्री सुगमता से मिलती रहे कहीं गड़बड़ न हो। ऐसी व्यवस्था हो।

विशो वृणतां राज्याय

राजन ! आप को विश—सारी प्रजा राज्याय—राज्य आसन के लिए वृणता—चुने। जनता से निर्वाचित हो कर ही राजा और राष्ट्रपति बने। जनता के हाथ में तन्त्र हो ताकि राजा मनमानी न कर सके।

अथर्ववेद

वेदामृत

इषे त्वोर्ज्जे त्वा वायवस्थ देवो वः सविता प्रार्पयतु श्रेष्ठतमाय कर्मण आप्यायध्वमघ्न्या इन्द्राय भागं प्रजावतीरनमीवा अयक्ष्मा मा वस्तेन ईशत माघशंसो ध्रुवा अस्मिन् गोपतौ स्यात् बह्वीर्यजमानस्य पशून् पाहि॥

यजु० अ० १ मन्त्र ८

अर्थ—हे परमेश्वर ! हम (इषे) अन्नादि के लिए (त्वा) आपका पूजन करते हैं तथा (ऊर्जे) ऊर्ज शक्ति के लिए (त्वा) आपकी उपासना करते हैं। (वायव) वायु से प्रेरणा प्राप्त करने वाले (स्थ) हो। हे जीवो ! (व) आपका (सविता) उत्पन्न करने वाला ईश्वर (देव) महान् देव है—वही (प्रार्पयत्) सब को प्राप्त करावे, प्रेरणा देवे (श्रेष्ठतमाय) सब से उत्कृष्ट (कर्मणे) शुभ कर्म के लिए प्रेरणा करे तथा आप सारे उस के द्वारा (इन्द्राय) ऐश्वर्य भरे (भागाय) भाग को (आप्यायध्वम्) बढाते रहो, प्राप्त करो और (अघ्न्या) कभी न मारने योग्य व (प्रजावती) सन्तान वाली (अनमीवा) रोग से रहित (अयक्ष्मा) सदा स्वस्थ यक्ष्मा रहित गौओं को पाते रहो। तथा (व) आप में जो (स्तेन) चोर व (अघशंस) पापी हैं वह (मा ईशत) स्वामी न बने। और (बह्वी) बहुत-सी (ध्रुवा) देर तक रहने वाली गौएं (अस्मिन) इस (गोपतौ) गोस्वामी के पास (स्यान्) होवे तथा (यजमानस्य) यजमान के (पशून) सारे पशुओं की (पाहि) हे प्रभो ! आप रक्षा करो। यजमान का पशुधन बढ़ता रहे।

भावार्थ—सारे राष्ट्र की वृद्धि के लिए यह वेद का पूर्ण सन्देश है। देश में अन्न, धनधान्य, बलशक्ति, यज्ञ परोपकार को बढ़ाने वाले नीरोग स्वस्थ गौ आदि पशु समूह तथा शुभ कर्मों की भगवान् से प्राप्ति वृद्धि की प्रार्थना करते रहें। चोर दुष्ट हमारा नेता न बने। यजमान् प्रसन्न रहें। राष्ट्र के कर्णधारों को इन तत्त्वों पर पूर्ण ध्यान देना चाहिए—सं०

ऋषि दर्शन

सदा सत्यमेव वक्तव्यम्

मनुष्य को सदा जीवन में सत्य ही बोलना चाहिए। असत्य कभी न बोले सत्यवादी, सत्यकर्मी, सत्याचारी सत्यप्रेमी बने। असत्य चमकीला है फिर भी उस के पास न जाये।

इष्टं ब्रह्मो पासनाम्

उस सब से महान् भगवान की उपासना ही जीवन में सब से प्यारी वस्तु है। जीवन का यही सब से इष्ट है। इस से प्यारा, लाभकारी तथा मीठा और कोई पदार्थ नहीं।

सर्वोपकारकं यज्ञानुष्ठानम्

यज्ञ का अनुष्ठान करना सब का उपकार करने वाला है। या जितने भी परोपकार के कार्य हैं—वे भी यज्ञ का अनुष्ठान कहाते हैं। यज्ञ परोपकार और परोपकार यज्ञ है।

भाष्य भूमिका

अधिष्ठाता—संतोषराज मंत्रीसभा

सम्पादक त्रिलोक चन्द्र शास्त्री

एम ... गोर ... विद्व ... आप ... है।' ... माल ... आर्यः ... कि इन ... बठावें—स०

पांच यमों में योगदर्शनकार ने सत्य को प्रथम स्थान दिया है। सत्य शब्द व्याकरण के अनुसार सन्+यत् से बना है और सत् शब्द अस् धातु में शतृ प्रत्यय लगने से सत् बना है। इसका अर्थ होता है 'अस्तीति' है तथा सत्य का अर्थ 'सते हितम्' है। अर्थात जो तीनों कालों मे एक-सा ही रहे, यथार्थ ज्ञान का विषयत्व हो और जिस में हित हो उसको सत्य कहते हैं।

उपनिषद् मे 'सत्यम्' इस शब्द को ३ शब्दों का सघात बतलाते हुए कहा है—

त्यक्षर सत्यमिति स इत्येक-मक्षर तीत्येकमक्षर यमित्येकमक्षर प्रथमोत्तमे अक्षरे सत्यं मध्यतोऽनृत तदेतदनृतमुभयत सत्येन परिगृहीतम् सत्यभूयमेव भवति नैनं विद्वांसमनृत हिनस्ति। (बृहदारण्यकोपनिषद् अ० ५, ब्रा० ५ क० १)

अर्थात—इस 'सत्य' शब्द में तीन अक्षर हैं स त् य: प्रथम सकार और उत्तम अर्थात् अंतिम यकार ये दोनों अक्षर सत्य हैं अर्थात् स्वर युक्त होने के कारण सत्य हैं। इन दोनों स, य में परमात्मा वाचक अकार विद्यमान है अतः ये सत्य हैं और मध्यगत त् हल होने के कारण अनृत-असत्य है। परन्तु यह अनृत दोनों ओर सत्य से गृहीत है। इसी कारण जगत् में सत्य की ही अधिकता होती है। ऐसे जानने वाले को असत्य नष्ट नहीं करता।'

वास्तव में भौतिक जगत् में जो स्थान प्रकाश का है, आध्यात्मिक जगत् में वही स्थान सत्य का है।

सत्य

(श्री सुरेशचन्द्र जी वेदालंकार एम० ए० एल० टी० डी० बी० कालेज गोरखपुर)

सत्य ऐसा महाव्रत है जो सब देशों, धर्मों और सम्प्रदायों में भली-भान्ति माना जाता है और प्रमाण स्वरूप समझा जाता है। सत्य की महिमा का वर्णन कहां तक किया जाय। महाभारत में लिखा है कि 'नास्ति सत्यात्परो धर्म' (शान्तिपर्व १६२'२४) सत्य से श्रेष्ठ कोई धर्म नहीं। दूसरी जगह लिखा है—

अश्वमेध सहस्रं च
सत्यं च तुलया धृतम्
अश्वमेध सहस्राद्धि
सत्यमेव विशिष्यते।

हजार अश्वमेघ यज्ञ और सत्य की तुलना की जाए तो सत्य ही अधिक होगा। वेद में सत्य की महिमा क विषय में तो यहा तक लिखा है कि सारी सृष्टि का उत्पत्ति के पहले 'ऋत' और 'सत्यम्' उत्पन्न हुए और सत्य से आकाश, पृथ्वी, वायु आदि पंच-महाभूत स्थित हैं। "ऋत च सत्य चाभिद्धात्तपसोऽध्यजायत" "सत्येनोत्तभिता भूमि" अर्थात् यह पृथ्वी सत्य पर टिकी हुई है। सत्य शब्द का तात्पर्य भी रहने वाला अर्थात् जिसका कभी अभाव न हो अथवा 'त्रिकाल अबाधित।' सत्य के विषय में मनु जी महाराज ने एक बात और लिखी है।—

वाच्यर्था नियता सर्वे
वाङ्मूला वाग्विनि सृता।
तां तु य स्तेन ये द्वाच
स सवस्तेय कृन्नर।

अर्थात्—मनुष्यों के सब व्यवहारों का आधार वाणी है। एक के विचार दूसरे को समझाने का सब से बड़ा साधन और एक मात्र साधन वाणी है। अत जो व्यक्ति वाणी की चोरी करता है वह सम्पूर्ण वस्तुओं को चुराने वाला है। जब विद्यार्थी अपनी शिक्षा समाप्त कर संसार के, कार्य क्षेत्र में प्रवेश करता था तो उसे सब से पहले 'सत्यं वद' सच बोलो यही उपदेश दिया जाता था। मनुस्मृति में मनु जी ने लिखा है।—

'सत्यपूता वदेद्वाच' सत्य से पवित्र वाणी का प्रयोग करे। मृत्यु शय्या पर पडे भीष्म पितामह ने युधिष्ठिर को सब धर्मों का उपदेश देने के बाद प्राण छोडते हुए सब धर्मों का सार सत्य को माना और उन्होंने कहा, 'सत्येषु यतितव्यम् व सत्य हि परमंबलम्' सत्य का ही व्यवहार करना चाहिए, सत्य ही परम बल है। महात्मा गांधी ने सत्य को परमात्मा और परमात्मा को सत्य माना है और उनके गांधीवाद का मूल आधार यही आस्तिकता या सत्य है। सत्य का—परमात्मा का पुत्र होने के नाते हमारा और दूसरे सभी प्राणियों का पारस्परिक सम्बन्ध प्रेम का और अहिंसा का होना चाहिए। यही वैदिक विचार धारा विश्व को समझनी होगी।

आज भौतिकवाद के चक्कर में पडकर हम जिस रूप में हैं उस रूप में अपने को दिखाना नहीं चाहते हैं। हरेक बात के पीछे राजनीति दिखलाई देती है। और राजनीति एक ऐसा विज्ञान है जिससे झूठ बोलना एक कला हो गई है। राजनीतिज्ञ अपने मन की बात वाणी में और वाणी की बात क्रिया में नहीं आने देता। वह जो करता है उसे कहता नहीं जो कहता है उसे न करता है, न सोचता है।

इस प्रकार आज मनुष्य सत्य परिस्थितियों से अत्यन्त दूर है। सर्वत्र भ्रष्टाचार, घूसखोरी और असत्य का नग्न रूप दिखाई देगा। प्रत्येक व्यक्ति असत्य को समझता हुआ भी उसे असत्य नहीं मानता। परन्तु हम यह देखते हैं कि योरोप अमेरिका आदि देशों में राजनैतिक दृष्टि से कितना भी असत्य व्यवहार चले परन्तु व्यापार आदि के क्षेत्र में सत्य का व्यवहार ही चलता है। और यही कारण है शारीरिक, मानसिक एवं चेतना की दृष्टि से वे देश उन्नत हैं। सत्य के ग्रहण करने और असत्य को छोड़ने में हमें सदा तत्पर रहना चाहिए।

कहा जाता है कि इंगलैंड में और योरोप के दूसरे देशों में अखबार बेचने वाले सड़क के चौराहे पर अपना डिब्बा और पेपर वेट से दबाकार अपना समाचार पत्र रख जाते हैं और अखबार खरीदने वाले वाले अखबार का पैसा वहा डाल जाते हैं। आश्चर्य तो तब होता है जब हम यह देखते हैं कि शाम को जितने अखबार बिके होते हैं उसके हिसाब से पैसे वहा इकट्ठे होते हैं।

अभी मेरे एक मित्र इंगलैंड से लौटे हैं। उन्होंने बताया कि ट्राम पर बैठने के बाद एक आश्चर्य जनक घटना दिखाई दी कि उनके पास बैठा हुआ आदमी जब ट्राम से जाने लगा तो उसने अपने ट्राम का किराया पास बैठे हुए दूसरे आदमी को दिया और कहा कि टिकट बांटने वाला जब आए तो आप टिकट ले लीजिएगा। मेरा उतरने का स्टेशन आगया है, परन्तु थोड़ी देर बाद वह भी उतरा उसने अपना तथा पहले वाले आदमी का किराया पास बैठे हुए तीसरे आदमी को देते हुए कहा कि मैं भी जा रहा हूं यह दाम आप चुका दीजिएगा। मेरे आश्चर्य का तब

(शेष पृष्ठ ८ पर)

सम्पादकीय—

आर्य जगत्

वर्ष२२|रविवार २१आश्विन २०१८, ७ अक्तूबर १९६२ |अंक४०

मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम

भारत की महत्ता केवल पर्वत, नदी, वन, अन्नक्षेत्र तथा नगरों के भौतिक दृश्यों से ही नहीं अपितु उन महती विभूतियों से है। जिन का जीवन भास्कर के समान भास्वान, राकेश के समान रमणीय शीतल, सागर के समान गम्भीर एवं हिमालय के समान निर्मल व उन्नत था। युगों के परिवर्तन चक्रों के बाद भी आज उस में किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं। परम्परा से आज भी देश विदेश के करोडों नरनारी बच्चे बूढे बडे सम्मान के साथ उन महापुरुषों के जीवन से ज्योति और जागरण को प्राप्त करते हैं। ऐसे दिव्य पुरुष सारे समाज की अनुपम सम्पत्ति, भव्य विभूति तथा शासनीय शक्ति है। इनसे आज भी सारा देश और समाज बहुत कुछ प्रसाद पाता है। मर्यादा पुरुषोत्तम राम भी उन पुरातन विश्व विभूतियों की मनोरम माला में एक मनोहर मनके के समान हैं।

श्रीराम के इतिहास में कई नाम हैं। कहीं राघव, काकुत्स्थ दाशरथी पुकारा गया है तो कहीं सत्यव्रत, कौशल्या नन्दन आता है। इन सारे नामों में मर्यादा पुरुषोत्तम भी श्रीराम को कहा जाता है। श्रीराम के नामके साथ २ मर्यादा पुरुषोत्तम की प्यारी उपाधि सम्बन्धित है। पुरातन समय से ही मर्यादा पुरुषोत्तम से महान् राघव राम का ग्रहण होता चला आया है। वास्तव में रामजी का सारा जीवन इन्हीं दो संक्षिप्त शब्दों में आजाता है। पुरुष तो सारे हैं किन्तु पुरुषोत्तम कोई विरला ही बना करता है। जिस में पौरुष है, बल शक्ति है, पुरुषार्थ करता है, उत्साही है--उसे पुरुष कहते हैं अथवा शास्त्रके गंभीर शब्दों में जो पुरी में नगरी में, चाहे शरीर हो या अन्य हो, सोता है, रहता है उसे पुरुष कहते हैं। शरीर तो सब के पास है इस विचार से तो सारे ही पुरुष बन सकते हैं। किन्तु पुरुषोत्तम सारे नहीं बनते। कोई २ विरला श्री राम सरीखा ही बना करता है। पुरुषोत्तम कौन? जो अपने जीवन के प्रत्येक कार्य में, विचार में तथा क्षेत्र में मर्यादा बान्धता है। जिस की हर बात, क्रिया, गति नियम मर्यादा में होती है। पुरुषोत्तम मर्यादा में रहता तथा मर्यादा में चलने वाला ही पुरुषोत्तम बनता है। इन दोनों में गहरा अटूट सम्बन्ध है। मर्यादाहीन जल, अग्नि, वायु तथा विचार संसार में तबाही मचादेते हैं। आज पन्जाब में वर्षा के कारण जलवाढों ने क्या महाविनाश का चित्र उपस्थित किया है। क्यों? पानी तो वही है जो खेती को सींचता, प्यास मिटाता नदियों में बहता है पर मर्यादा तोड़ कर बाढ़ बन कर करोड़ों की हानि कर देता है। एक भी मर्यादाहीन जीवन विनाश के कारण पर संसार को खडा कर देता है।

श्रीराम जी मर्यादा पुरुषोत्तम थे। उनकी हर बात, हर वचन तथा कार्य मर्यादा में बन्धा था। तभी उनका रामराज्य एक आदर्श प्रतीक बन गया है। शिश्यपन में मर्यादा, मातृपितृ भक्ति में मर्यादा, भ्रातृस्नेह में, मित्रों के अनुराग में मर्यादा पत्निव्रतधर्म में, प्रजा प्रेम में, बनवास काल में मुनिव्रत में मर्यादा वचन पालन में, वीरता कार्य में, स्वामी बन कर अपने सेवकों के प्रति मर्यादा, आचार विचार में, किष्किन्धा, लंका विजय के बाद महान् त्याग में कितनी मर्यादा, शासन आसन सम्भालने पर सारे राष्ट्रपालन के प्रति मर्यादा प्रत्यक्ष है। उनका सारा जीवन मर्यादा में बन्धा था। तभी तो रामराज्य आज हमारा जीवन घोष है। सब को मान है।

आज हम फिर श्रीराम को याद कर रहे हैं। अपने देश और विदेश में सारी मर्यादाएं टूट गई है। हर काम बाढ बन कर उत्पात, विनाश मचा रहा है। हर ओर हाहाकार तथा पतन की पराकाष्ठा हैं। यह ज्ञान विज्ञान भी अभिशाप बनता जा रहा है। आओ! हम श्रीराम को याद करके उस महापुरुष, पुरुषोत्तम के जीवन कार्यों से प्रत्येक स्तर पर मर्यादा का पाठ पढे मर्यादा का गुण ग्रहण करे तथा मर्यादा का प्रकाश ले ताकि विश्व का यह जीवन मर्यादित होकर इस महाविनाश से बच जाये। जीवन से जीवन बनाना ही किसी महापुरुष की सब से बडी याद है।

वह दिव्य विभूति भी गई

आर्य समाज की विभूतियों का भरा भण्डार रिक्त ही होता जारहा है। अभी हमारे दिलों का स्वर्गीय बखशी टेकचन्द जी, पं भीमसेन जी, प. विनायकराव जी विद्यालंकार आचार्य विश्वेश्वर जी के शोक जनक निधन पर भारी शोक कम नहीं होने पाया था—कि एक और दिव्य विभूति आचार्य नरदेव जी शास्त्री उपकुलपति गुरुकुल ज्वालापुर के आखे बन्द कर लेने का अत्यन्त दुःख जनक समाचार सुनना पड़ा।

आचार्य नरदेव जी शास्त्री के देहांत का तो कोई विचार तक भी नहीं कर सकता था। अम्बाला छावनी में होने वाले बलिदान-जयन्ती सम्मेलन की प्रधानता के लिए आप का नाम प्रकाशित हो चुका था। किसी को क्या पता था कि आप प्रधानता तो क्या यह सम्मेलन देख भी नहीं सकेंगे। आर्य समाज को इस विभूति के चले जाने से भारी क्षति हुई है। आचार्य जी क्या थे, कैसे थे, कितने गम्भीर पाण्डित्य के मालिक तथा कितने आचार विचार ज्ञान में ऊंचे थे—यह कौन नहीं जानता। कलकत्ता यूनिवर्सिटी से वेद तीर्थ करने पर आर्यसमाज के कार्यक्षेत्र में उतर कर सारा जीवन देकर कितना महान कार्य किया इस का सारा वर्णन कैसे किया जाए? गुरुकुल ज्वालापुर का वर्तमान विशालरूप आप के जीवन कार्य का ही मीठा फल है। भारत की आजादी के लिए आप ने भी वर्षों जेल में बन्द रह कर कितनी यातनाए सहीं। आपकी जीवन कथा पढ़ कर परिचय मिलता है भारत की विद्वत्समाज में आप का बडा ही मान था। संस्कृत के प्रकाण्ड पंडित, सफल लेखक, योग्य वक्ता थे। अभी गत दिनों कुम्भ हरिद्वार में मोहनाश्रम में आये थे। कई दिनों आप के चरणों में बैठने, बातचीत करने, जीवन में बहुत कुछ सीखने का सौभाग्य मिला। आप की विद्वत्ता, प्रवचन मनोरंजता, तप साधना, निस्पृहता, प्रलोभनशून्यता, स्वाध्याय तत्परता, वेदभक्ति तथा समाज के लिए तडप देख कर मस्तक झुक जाता था—पूज्य महात्मा आनन्द स्वामी के पास बैठ कर घण्टों समाज विषयक चर्चा चलती थी। आपकी सौम्यमूर्ति नेत्रों के सामने तथा शब्द कानों में गूंजते हैं। समाज की भारी क्षति हुई है। हम चाहते हैं कि ज्वाला पुर गुरुकुल में उन का अनुपम स्मारक बने। सचमुच दिव्य विभूति थी—स.

———

संस्कृत-साहित्य की सरणी में वैदिक-साहित्य प्राचीनतम है। वैदिक-साहित्य ईश्वर की महिमा से ओत-प्रोत है। चारों वेद, वेदाङ्ग उपनिषदों इत्यादि में ईश्वर की महिमा दृष्टिगोचर होती है। इन्हीं ग्रन्थों से प्रेरणा लेकर लौकिक संस्कृत के नानाविध-ग्रन्थों में भी ईश्वर-महिमा के साथ २ परम-पिता परमात्मा से सम्बन्धित अनेक गुत्थियों को सुलझाने का सतत प्रयास हुआ है तथापि ईश्वर की अनन्त महिमा का पारावार नहीं। ईश्वर की गहराई तक पहुचने मे कुछ ही व्यक्ति अग्रसर होते हैं। ईश्वर-ज्ञान मान लो एक गहरा तालाब है। उस में कोई व्यक्ति घुटनों तक, कोई छाती तक, कोई गले तक, कोई मुह तक पानी मे ही स्नान करते हैं। आगे गहरे पानी में स्नान करने से डरते हैं। किन्तु गहराई तक पहुचे बिना भी तो कल्याण नहीं। गहराई को ही पाकार आनन्द-विभोर होकर ईश्वर भक्त परमानन्द को पा सकता है। यही भाव अक्षरश निम्नलिखित मंत्र में सुन्दर रूप से ग्रथित है—

'अक्षण्वन्त कर्णवन्त· सखाय
मनोजवेष्वसमा बभूवु।
आदघ्नास उपकक्षास उत्व
ह्रदा इव स्नात्वा उत्वे ददृश्रे ॥'
ऋ० ८।३४।२

वेद के एक मत्रानुसार जो व्यक्ति गहराई तक पहुंच जाता है उसके समक्ष सरस्वती (ईश्वर-विद्या) सारा भेद प्रकट कर देती है जैसे पत्नी अपने रूप को पति के समक्ष प्रकट कर देती है।

वह उस शब्द, रूप, रस, व्यय रहित नित्य अनादि ईश्वर को जान कर मृत्यु से मुक्त हो जाता है। यही भाव इस मन्त्र में हैं, अशब्दमस्प-र्शंयरूपमव्यय तथाऽरसं नित्यमगन्ध-वच्च यत् अनाद्यनन्तं महत· पर ध्रुव निचाय्य तन्मृत्युमुखात्प्रमुच्यते ।।

ईश्वर-ज्ञान तो अनन्त हैं। जिज्ञासुओं के स्वाद-मात्र के लिए

सिद्धान्त चर्चा

ईश्वर का स्वरूप

(श्री बलदेव राज जी एम० ए० साधु आश्रम होश्यारपुर)

वेदों व उपनिषदों के चुने हुए अनूठे कुछ मन्त्र देता हू। पूर्णतया अमृत-पान तो वेदों के सूक्ष्माध्ययन से वे स्वय कर सकते हैं।

वेदों में ईश्वर की केवल एक सत्ता मानी है। अज्ञानता के कारण चाहे लोग मन-माने जितने ईश्वर मान ले। जैसे 'सोऽहं' मन्त्रजाप करने वाले अपने आप को भी ब्रह्म (ईश्वर) समझते हैं। इस तरह भारत के ४४ करोड लोग ही ब्रह्म (ईश्वर) होंगे। एक ईश्वर के सम्बन्ध में वेदों मे अवलोकन कीजिए—

तदेवाग्निस्तदादित्यस्तद्
वायुस्तद् चन्द्रमा।
तदेव शुक्र तद् ब्रह्म ता आप
स प्रजापति ॥ यजु ३२।१

भावार्थ यह कि वही एक ईश्वर अनेक गुणों के कारण अग्न, आदित्य, वायु आदि कहलाता है। एको वशी सवभूतान्तरात्मा एक रूपं वहुधा य करोति—कठोपनिषद्

अर्थात् वह सबके अन्दर व्यापक है। परमात्मा अपने अनेक रूप बनाता है।

वेनस्तत् पश्यन्निहित गुहा सद्यत्र
विश्वं भवत्येकनीडम्।
तस्मिन्निदं स च विचैति सर्वं स
ओत प्रोतश्च विभु प्रजासु॥
यजु० ३२।८

ईश्वर महिमा से ओतप्रोत कितना यह सुन्दर मत्र है। वह ईश्वर-सम्बन्धी गूढ तत्त्व तो रहस्मय है। विद्वानों ने ही उस तत्त्व को पाया है जिसमे सारे जगत-प्राणी मिलकर एक हो जाते हैं। वही एक ईश्वर सर्वव्या-पक प्रजाओं में रमा हुआ है।

इसी प्रकार 'एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति' आदि अनेक मन्त्र ईश्वर की एक-सत्ता पर प्रकाश डालते हैं। और भी अनेक मन्त्र ईश्वर-व्याप-कता व महिमा को दर्शाते हैं। जैसे—

येन द्यौरुग्रा पृथ्वी चदृढा येन स्वस्त-मित येन नाक·
यो अन्तरिक्षे रजसो विमान, कस्मै देवाय हविषा विधेम।

जिस परम-पिता परमात्मा ने द्यौ को वृष्टि करने वाला बनाया है, पृथ्वी को दृढ बनाया है, प्रकाश-मण्डल को स्थिर बनाया है और जो अन्तरिक्ष मे वृष्टि-जल का निर्माण करता है उसको छोडकर किसकी पूजा करें अर्थात् उसी (प्रजापति ईश्वर) की ही पूजा करें।

'यस्तिष्ठति चरति यश्च वञ्चति यो निलाय चरति य प्रतङ्कम्।
द्वौ सनिषद्य यन्मन्त्रयेते राजा तद् वेद वरुणस्तृतीय ॥'

कई लोग कहा करते हैं कि ईश्वर साकार है। किन्तु मेरी समझ में नहीं आता कि ईश्वर साकार हो तो वह सर्वव्यापक कैसे हो सकता है। ईश्वर एक निराकार व्यापक शक्ति है। इस मन्त्र में बताया गया है कि जो व्यक्ति ठहरता है, चलता है ठगता है गुप्त-रूप से जो कुछ भी आचरण करता, है, जो साहस-पूर्वक विचरण करता है और दो व्यक्ति आपस में जो विचार-विमर्श करते हैं, इन सब बातों को तीसरा सर्वव्यापक वरुण (ईश्वर) सम्यक जान लेता है।

५ हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम् ..... यह ईश उपनिषद का वचन है। ईश्वर सत्य है। उस सत्य ईश्वर का शरीर स्वर्णमय पात्र से ढका हुआ है। भावार्थ यह है कि सांसारिक भोग मधुर हैं, रुचिकर हैं। इनका पर्दा जब हटता है तब कहीं जाकर सत्य-शक्ति का ज्ञान हो सकता है।

५ य. समाभ्यो वरुणो यो व्योम्यो य· संदेश्यो वरुणो यो विदेश्य। यो दैवो वरुणो यश्च मानुषा·।

A C. Bose ए. सी. बोस इस मत्र के सम्बध में लिखते हैं कि इस मत्र में 'सम' व 'वि' दो परस्पर विरोधी उपसर्गों से ईश्वर की सर्व-व्यापकता को दर्शाया गया है। सायण ने यद्यपि इस मत्र में रोग क विनियोग किया है, जो अमान्य है। इसकाअर्थ ईश्वत पक्ष मेबहुतसुन्दर है कि वह सर्वव्यापक ईश्वर सबके प्रति समान-भाव वाला है अथवा विशेष भाव से रहे, जो सब देशों में समान भाव से रहने वाला है अथवा विशेष भाव से, वह वरुण मनुष्यों व देवताओं मे भी समान-भाव से रहता है। अथवा जो मनुष्य लोक व देवताओं के लोक में रहने वाला है।

इस प्रकार मैं ने प्रसाद-रूप में ही थोड़े से मंत्र ईश्वर के सम्बध में दिए हैं। ईश्वर को खोजने के लिए इधर उधर भटकने की कोई आवश्यकता नहीं। कृष्ण जी ने वेदों से प्रेरणा लेकर लिखा है 'ईश्वर. सर्वभूतानाम् हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति ..' अर्थात वह ईश्वर सब के हृदय में स्थित है, अन्धकार में फंसे लोग इधर उधर भटकते हैं। आओ। सब-मिलकर वेदों के अध्ययन में जुटकर उस परमात्मा के रहस्य को पाकर मोक्ष-पद पाएं।

अंग्रेजी शासन के ये अमणिष्ट अभिशाप--

१—सहशिक्षा

(ले०—बहिन सुशीलादेवी जी आर्या एम ए प्रभाकर विद्यावाचस्पति, नरवाना)

✦✦✦✦✦✦✦✦✦✦✦

भारत से अंग्रेजी शासन का अन्त हुए १५ वर्ष से ऊपर हो चुके हैं किन्तु इस के द्वारा अपने स्थिति-काल में बोए गए विष-बीज भारत में द्रुतगति से पनप रहे हैं। हमारे स्वाधीन देश की पराधीन शासन-व्यवस्था ने इन्हें गोड़ा, सींचा और खाद प्रदान की है। इन्हीं विषैले पौधों में से एक है-सहशिक्षा। भारत की वरदा भूमि पर यह अभिशाप पनपना तो दूर रहा कभी प्रकट भी नहीं हुआ था। यह ऋषियों का देश है। जिसकी आचार श्रेष्ठता के विषय में इस प्रकार की गर्वोक्तिया प्रचलित रही हैं —

एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः
स्व स्व चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां
सर्वमानवा

मनु महाराज की इस भूमि पर शिक्षा का वह क्रम क्रियात्मक हो रहा था जिस के अनुसार लडके लड़कियों के शिक्षणालय समीप नहीं होने चाहियें। किन्तु समय पलटा, अंग्रेजी शासन में हम ने सहशिक्षा का स्वरूप देखा। इस की हानियों से भयभीत लोग चिल्लाए विरोध हुए पर विदेशी शासन के जूए के नीचे दबे कण्ठ के स्वर में इतनी तीव्रता नहीं थी कि इसे सुना जाता। जो भी हो स्वातन्त्र्य-संग्राम के रूप में देश मानो सभी बुराइयों के विरुद्ध संघर्ष किया। क्योंकि इस ने सोचा था 'एकै साधै सब सधै।' यदि स्वतन्त्रता मिली तो सहशिक्षा कहां शरण पावगी फिर तो हमारा देश वही ऋषि भूमि, वही मनु महाराज के विधान के अनुसार चलने वाला हो जाएगा। खेद, कि यह स्वप्न स्वप्न ही रहा। और हमें क्षोभ और आश्चर्य के साथ सुनना पड़ रहा है कि हमारे प्रान्त वीर भूमि पंजाब में प्रत्येक स्तर पर सहशिक्षा जारी की जाएगी। यह मिला हमें वीर भगतसिंह और ब्रह्मचारी रामप्रसाद 'बिस्मिल' के बलिदानों का प्रसाद। अब हमारे प्रान्त में बालक बालिकाओं का भोला शैशव, कच्ची किशोरावस्था और उभरता यौवन सब एक साथ नैतिकता की शिक्षा से वंचित इस प्रचलित पाठ्य-प्रणाली की छाया में बीतेंगे। फिर भी क्या इस के परिणाम की प्रतीक्षा की आवश्यकता है ?

कहने की आवश्यकता नहीं अंग्रेजी शासन की सहशिक्षा ने हमारे देश में नैतिक पतन की नींव रखी किन्तु स्वतन्त्र भारत की यह सह-शिक्षा इस से कई गुणा अधिक ढाएगी। क्यों ? एक तो उस समय सहशिक्षा का प्रचलन केवल उच्च कक्षाओं (विश्वविद्यालय स्तर) तक सीमित था। शिक्षा का प्रचार वैसे ही कम था। केवल इने गिने तथा कथित प्रगतिशील लोग अपनी कन्याओं को ऐसी संस्थाओं में शिक्षा दिलाते थे। अतएव इसी लघु संख्या तक इसका प्रभाव सीमित था। दूसरे देश में सह-शिक्षा के प्रति कठोर विरोध की बलवती थी। अभी नई रोशनी ने पुरानी मान्यताओं की आंखें चौंधियाई नहीं थीं। इसलिए लोग इसे विवशता वश विदेशी शासन दिया विष का प्याला समझ कर डरते डरते ही पीते थे किन्तु अब ?

अब हवा का रुख सर्वथा विपरीत दिशा में है। शिक्षा सामान्य-जन-सुलभ और सार्वत्रिक हो गई है। इसे निःशुल्क करने का प्रलोभन भी पूरा दिया गया है। फिर यह अपनी प्रजातन्त्रीय सरकार की देन है। सब से बढ़ कर इसे प्रारम्भिक, माध्यमिक व उच्च सभी स्तरों पर चालू किया जा रहा है। अब तो शिक्षा अनिवार्य भी है। अतएव निश्चय ही सहशिक्षा के वर्तमान रूप का जादू सिर चढ़ कर बोलेगा।

स्वतन्त्रता के पन्द्रह वर्षों में हमारे देश का कितना नैतिक पतन हुआ है यह किसी से छिपा नहीं। आज भले घरों की बहिन बेटियों का घर से बाहर निकलना सुरक्षित नहीं है। आए दिन समाचार पत्रों में लडकियों को तंग करने वालों (eve-teasers) की गिरफ्तारियों व काले मुंह करके नगर मे घुमाने के समाचार पढने को मिलते हैं। दिन दहाडे विवाहिता या अविवा-हिता लडकियों को उडाने के अभियोगों में न्यायालयों के अधि-कारी व्यस्त रहते हैं। यह सब हमारी शिक्षा-व्यवस्था का ही प्रताप है। 'आचार-निर्माण शिक्षा का ध्येय है'--इसे हमने सर्वथा विस्मृत कर दिया। हमारी शिक्षा, शिक्षा न रह कर 'कुशिक्षा' बन चुकी है। नैतिकता की शिक्षा रूप प्राण खींच लिये जाने से यह शिक्षा प्रणाली निर्जीव हो गई है। तिस पर सह-शिक्षा इसे सर्वथा आचारहीनता का केन्द्र बना रही है। इस समय भी सहशिक्षा के अभिशाप कीटाणु इसे तपेदिक की भांति रचा रहे हैं फिर नया सुधार (?) कड़वे करेले को और भी नीम चढ़ा बना देगा। युवक युवतियों के सम्मिलित नृत्य गीतों के रूप में प्रचलित तथा कथित सांस्कृतिक कार्यक्रमों ने पंजाब की वीरता की धज्जियां उड़ादी हैं। विलासिता का बोल बाला है। सब कुओं में 'भगड़ा' की 'भंग' पड़ गई। और रणजीतसिंह और ला० लाज-पतराय की सन्तानें हीर रांझा बन कर रह गई हैं। पंजाब तो भारत की सीमा का प्रहरी है। इस प्रान्त में चरित्रहीनता के वातावरण द्वारा वर्त्तमान और भावी पीढ़ी को दुर्बल बनाने का यत्न करना यह देश भक्ति का कौन सा नुस्खा है ? इस प्रश्न का उत्तर कौन दे ?

इस प्रकार सार्वत्रिक सहशिक्षा की भीषण आन्धी इस वीर प्रसविनी भूमि पर आ रही है जो इसके इतिहास प्रसिद्ध सौन्दर्य, स्वास्थ्य और शौर्य को धूली धूसरित करडालेगी यदि जनता अपने सर्वस्व की रक्षा करना चाहती है तो इस घातक प्रहार को रोकने के लिये उसे आवाज उठानी होगी। जनतन्त्र मे जनता की पुकार पर कान न दिया जाए यह असंभव है, पर जानता आवाज निकाले भी तो। और यदि जनता सब कुछ को 'सत-वचन महाराज' कह कर स्वीकार करना ही जानती है तो शासकों का क्या बिगड़ेगा ? आपकी सन्तानों का सत्यानाश हो जाएगा और इस देश का उच्चाचार इतिहास के पृष्ठों पर लिखा सिर धुनता रह जाएगा। भावी विकास और ह्रास का युग लाने का यह उत्तर दायित्व काले कलंक के रूप हमारे माथे पर विराजमान रहेगा।

दयानन्द अनाथालय, अजमेरका वार्षिकअधिवेशन

सन् १८६५ ई० मे संस्थापित अजमेर (राज०) का दयानन्द अनाथालय देश की संभवत इस प्रकार की सब से पुरानी संस्था है। इस वर्ष का वार्षिक अधिवेशन ता० १६ सितम्बर, १९६२ को श्री दत्तात्रैयजी वाव्ले कीअध्यक्षतामें संपन्नहुआ जिसमें, लगभग १०० अनाथ बालक-बालिकाओं की स्कूल कालेज खादी और दर्जी विभाग में दी जाने वाली शिक्षा की ओर अधिक उप-योगी बनाने पर विचार किया गया तथा आगामी वर्ष के लिए ३५०००) रु० पैंतीस हजार रुपए के खर्च का बजट स्वीकार हुआ।

७ अक्तूबर आ गयी...

आप क्या सोच रहे हैं... बताइए !

सोचने का समय बीत गया...अब तो—

७ अक्तूबर प्रातः लेखराम नगर पहुंचिए

हम आपको सपरिवार इष्ट मित्रों सहित
सादर आमंत्रित करते हैं।

* * * * * * *

क्या आपने.....

लेखराम—भवन के लिए अपना भाग भेज दिया है ?

यदि नहीं, तो फिर अब भी समय है—

आप जो भी भेज सकते हो—

इस पवित्र यज्ञ में आहुति के लिए अवश्य भेजिए या जयन्ती के अवसर पर जमा कराइए

भूलिए नहीं, आर्य समाज के शहीदों की समृति में
भव्य स्मारक का निर्माण बलिदान की राह पर बढ़ने की प्रेरणा देगा

महर्षि दयानन्द का लक्ष्य आपका लक्ष्य है।

हरिप्रकाश मंत्री
बलिदान-जयन्ती-समारोह-समिति लेखराम नगर (अम्बाला छावनी)

प्रादेशिक सभा द्वारा उत्सवों की धूम

आर्य समाज दयालपुरा करनाल का उत्सव २८ से ३० सितम्बर को समारोह से सम्पन्न हुआ है। खुशीराम शर्मा, श्री पं० ओमप्रकाश जी, मेलाराम जी, श्री दुर्गासिंह जी, अम्बाला करनाल मंडल ने भाग लिया।

आर्य समाज मण्डी हिमाचल का उत्सव ११ से १४ अक्तूबर को धूमधाम से सम्पन्न हो रहा है। उत्सव से पूर्व श्री पं० ओमप्रकाश जी कथा करेंगे, ६ अक्तूबर से ठा० दुर्गासिंह जी के मनोहर भजन होंगे। उत्सव पर श्री राजपाल जी, मदन मोहन जी, श्री पं० चन्द्रसेन जी पधारेंगे।

आर्य समाज नूरपुर कांगड़ा का उत्सव १९ से २१ अक्तूबर को समारोह से सम्पन्न हो रहा है। उत्सव से पूर्व खुशीराम शर्मा की कथा होगी। श्री ताराचन्द्र जी के भजन होंगे। उत्सव पर श्री प० चन्द्रसेन जी, मेलाराम जी, दुर्गासिंह जी, पं० साजनदेव जी पधार रहे हैं।

आर्य समाज नया बाजार, भिवानी का उत्सव १८ से २१ अक्तूबर को समारोह से सम्पन्न हो रहा है। १४ अक्तूबर से यज्ञ और कथा श्री पं० त्रिलोकचन्द्र जी करेंगे। श्री हजारीलाल जी के भजन होंगे उत्सव पर श्री राजपाल जी, श्री मदन मोहन जी पधारेंगे।

आर्य समाज नगरोटा टीका का उत्सव २२ से २४ अक्टूबर को समारोह से सम्पन्न होगा। नूरपुर के सज्जन पधारेंगे।

आ० स० दीनानगर में २२ से २८ अक्टूबर तक खुशीराम शर्मा की कथा और राजपाल जी मंडली के भजन होंगे।

आ० स० लोहगढ़ अमृतसर का उत्सव ६ से ११ नवम्बर को समारोह से सम्पन्न हो रहा है।

आ० स० माडल टाऊन अम्बाला का उत्सव ६ से ११ नवम्बर को समारोह से सम्पन्न हो रहा है।

आ० स० नकोदर का उत्सव १६ से १८ नवम्बर को सम्पन्न हो रहा है।

आ० स० हिसार का उत्सव २३ से २५ नवम्बर को सम्पन्न हो रहा है।

आ० स० पलवल का उत्सव ६ से ११ नवम्बर को सम्पन्न हो रहा है।

आर्य समाज कांगड़ा का उत्सव ६ से ११ नवम्बर को सम्पन्न हो रहा है।

आर्य समाज सैक्टर ८ चंडीगढ़ का उत्सव २ से ४ नवम्बर को समारोह सम्पन्न हो रहा है। २६ अक्टूबर से श्री पं० त्रिलोक चन्द्र जी की कथा और राजपाल जी, मदन मोहन जी के भजन होंगे।

आर्य समाज गुरदासपुर का उत्सव १६ से १८ नवम्बर को समारोह से सम्पन्न हो रहा है।

आर्य समाज टिटौली रोहतक का यज्ञ, उत्सव १३ से १६ अक्तूबर को समारोह में सम्पन्न हो रहा है।

आर्य समाज धर्मशाला का वार्षिक उत्सव १६ से १८ नवम्बर को समारोह से सम्पन्न हो रहा है। १२ नवम्बर से खुशीराम शर्मा की कथा होगी।

आर्य समाज भरवाई का वार्षिक उत्सव बड़ी धूमधाम से सम्पन्न हुआ। इस पर्वत शिखर पर वैदिक धर्म का संदेश सुनाने का श्रेय श्री पं० हरिश्चन्द्रजी शास्त्री पुरोहित आर्य समाज पुरानी मंडी जम्मू को है। सर्व सम्मति से श्री हरिश्चन्द्र जी शास्त्री नव वर्ष के लिए प्रधान चुने गए।

आर्य युवक समाज कादिया का उत्सव ५, ६, ७ अक्तूबर को सम्पन्न हो रहा है। खुशीराम शर्मा, श्री राजपाल जी, श्री मदन मोहन जी चिमटा मंडली पधार रही है।

खुशीराम शर्मा
वेद प्रचार अधिष्ठाता

अंबाला नगर का भाषा सम्बंधी प्रस्ताव

अम्बाला नगर के हिन्दी प्रेमियों की यह विराट सभा २ अक्तूबर से पंजाब में जिलास्तर तक जबरी पंजाबी भाषा को ठोसने, सच्चर फार्मूला में दी हुई सुविधायें भी वापिस लेने, एवं प्रधान श्री नेहरू जी का स्वर्गीय श्री स्वामी आत्मानन्द जी को लिखे पत्र द्वारा हिन्दी की रक्षा का विश्वास दिला कर भी जो हिन्दी भाषा पर प्रतिबन्ध लगाया जा रहा है इस के लिए अत्यन्त दुख प्रकट करता है। और भारत सरकार से सानुरोध प्रार्थना करता है कि इस अन्याय को रोक कर राष्ट्र भाषा प्रेमियों के दुखित दिलों को शान्त करें।

हम हैं आप के हिन्दी प्रेमी,
अम्बाला नगर निवासी।

सत्य

(पृष्ठ २ का शेष)

ठिकाना न रहा जब उस ने टिकटवाले के आने पर सब का मूल्य चुका दिया। इतना ही नहीं वहां बड़ी-बड़ी दूकानों में कोई आदमी विक्रेता के रूप में नहीं रहता है और बहु मूल्य घड़ियों और फाउन्टेन पैन से लेकर साग सब्जी तक की चोटी वायु में पड़ी रहती हैं और मनुष्य अन्दर जाकर सामान लेते हैं और उसका दाम चुका कर चले जाते हैं। कभी चोरी की बात सुनी गई। क्या मेगस्थनीज के वर्णन भारतीय चरमोत्कर्ष की सूचना नहीं देते कि घरों में ताले नहीं लगते थे। रुपया कागजों पर उधार नहीं दिया जाता था। और राजा बड़े गर्व से कहता था :—

न मे स्तेनो जनपदे न कदर्यो न मद्यपो अर्थात मेरे राज्य में चोर, शराबी नीच नहीं हैं।

इसी लिए कहा गया है कि सत्य ही राष्ट्र की रक्षा करता है, सत्य पर ही पृथ्वी टिकी हुई है। हो सकता है कि असत्य व्यवहार से क्षणिक लाभ हो परन्तु सत्य को कैसे भुलाया जा सकता है ? सत्य तो सूर्य है सूर्य पर कब तक पर्दा पड़ा रह सकता है ? संसार में झूठ भी चलता है, इस में संदेह नहीं, परन्तु झूठ तब तक चलता है जब तक झूठ को दुनिया सत्य समझती है। जहां पता चला कि यह झूठ है वहां क्या वह एक क्षण भी टिकता है ? खोटा सिक्का बाजार में तभी तक चलता है जब तक लोग उसे खरा समझते हैं। हमें तो 'अनृतात् सत्य मुपैमि' अनृत से सत्य की तरफ मिथ्या से यथार्थ की तरफ मुड़ जाना चाहिए।

भारतीय संस्कृति एवं शास्त्रकार कहते हैं 'जो लोग इस जगत् में स्वार्थ, परार्थ या मजाक में कभी झूठ नहीं बोलते उन्हीं को स्वर्ग की प्राप्ति होती है।' महाभारत में भगवान् श्री कृष्ण और भीष्म पितामह ने कहा है 'चाहे हिमालय पर्वत अपने स्थान से हट जाय, परन्तु हमारा वचन नहीं टल सकता।' भर्तृहरि जी ने लिखा है कि सत्पुरुष वही है जो अपनी प्रतिज्ञा कभी नहीं भंग करते।

तेजस्विन : सुखमसूनपि संत्यजन्ति
सत्यव्रत व्यसनिनो न पुन. प्रतिज्ञाम।

तेजस्वी पुरुष आनन्द से अपनी जान दे देंगे परन्तु वे अपनी प्रतीज्ञा का त्याग कभी नहीं करेंगे।

इसी लिए प्राचीन लोगों ने सत्य की महिमा गाई है। यह ठीक है कि सत्य ठक सकता है, पर वह झुक नहीं सकता। अपने जीवन में ही देखा जा सकता है कि दूध का दूध और पानी का पानी अलग रहता है। सत्य के सामने जो भी कठिनाईयां या रुकावटें आती हैं। सत्य- उन्हें ठोकरें लगाता हुआ आगे बढ़ जाता है। इसीलिए कहा गया है "सत्यमेव जयते नानृतम" । आइए हम बृहदारण्यक उपनिषद् के शब्दों में भगवान से प्रार्थना करें —

"असतो मा सद गमय तमसो मा ज्योतिर्गमय
मृत्योर्मा अमृतं गमय"

मुझे असत से सत की ओर ले चलो। अन्धकार से ज्योति की ओर ले चलो और मृत्यु से अमरता की ओर ले चलो।

आर्य संसार का एक और सूर्य अस्त होगया

आर्य जगत को यह समाचार पढ़कर अतिखेद होगा कि श्री पं. नरदेव जी शास्त्री, कुलपति ज्वालापुर महाविद्यालय, २४-९-६२ को रात के १२ बजे सर्वदा के लिए हम से जुदा हो गए हैं। उन का बिछोड़ा असह्य है। यह क्षति आर्य समाज के लिए और आर्य संस्थाओं के लिए अति असहनीय है। उनकी विद्वता और समाचार पत्रों का सदा सहयोग चिर स्मरणीय रहेगा।

व्यवस्थापक

आर्य जगत के पाठकों से

निवेदन

आर्य जगत का दीपमाला अंक २७ अक्टूबर को प्रकाशित हो रहा है और आप की सेवा में दीपमाला से दो तीन दिन पूर्व पहुंच जाएगा। यह विशेषांक २१, २८, और ४ नवम्बर का सम्मिलित अंक होगा। उसके बाद ११ नवम्बर के अंक की प्रतीक्षा करें।

—व्यवस्थापक

मुद्रक व प्रकाशक श्री संतोषराज जी मन्त्री आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा पंजाब जालन्धर द्वारा वीर मिलाप प्रेस, मिलाप रोड जलन्धर से मुद्रित तथा आर्यजगत कार्यालय महात्मा हंस राज भवन निकट कचहरी जालन्धर शहर से प्रकाशित मालिक—आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा पंजाब जालन्धर

टैलीफोन नं० २०४८ [आर्यप्रादेशिक प्रतिनिधि सभा पंजाब जालन्धर का साप्ताहिक मुखपत्र] Regd. No.1

एक प्रति का मूल्य १३ नये पैसे वार्षिक मूल्य ६ रुपये

वर्ष २२ अंक ४१) रविवार २८ आश्विन २०१८—१४ अक्तूबर १९६२ दयानन्दाब्द १३८ (तार-प्रादेशिक जालन्

वेद सूक्तय:

स देवान् यक्षत्

स -ऐसा जनता से चुना गया राजा राष्ट्रपति देवान्-देवों, विद्वानो व राज्य के बड़े २ सारे विशेष ज्ञान रखने वालों का यक्षत्-आदर मान करता है। राजा ज्ञानियों का मान करे।

इन्द्र मनुष्याः परेहि

हे राजन्! आप राज्य के सारे मनुष्यों से परेहि-परे रहो। राजा का जीवन, आचार-विचार, व्यवहार ज्ञान सारे राष्ट्र के अन्य प्रजाजनों से बहुत ऊंचे होने चाहिएं। सब में सब से विशेषता होवे।

स उ कल्पयाद् विशः

स उ-वही राजा राष्ट्रपति विशः-सारे देश की जनता को कल्पयाद्-काम में लगाये रखे। सब के कामों की भली प्रकार की व्यवस्था करे। देश में कोई भी बेकार न होने पावे।

ऋ थ र्व वे द

वेदामृत

यजुर्वेद के प्रथम अध्याय का प्रथम मन्त्र

इषे त्वोर्ज्जेत्वा वायवस्थ देवो वः सविता प्रार्पयतु।

मन्त्र पर कुछ विशेष विचार

यजुर्वेद यज्ञ कर्मकाण्ड का वेद माना जाता है इसको यजु. इसलिए कहा जाता है। क्योंकि इस के द्वारा यज्ञ किया जाता है। अनेकविध यज्ञों का इस में प्रतिपादन व्यक्ति के व्यष्टि और सारे समाज के समष्टिगत जीवन संसार की यात्रा के निमित्त परिवार तथा राष्ट्र की उन्नति के लिए जिन २ साधन सामग्रियों की आवश्यकता पड़ती है। उन सब का यजुर्वेद मे उपदेश है। इस वेद का प्रथम अध्याय का पहला मन्त्र गतांक में पूरा दिया जा चुका है। इस मन्त्र में परिवार, समाज तथा समूचे देश के लिए एक बहुत बड़ा सन्देश है। राष्ट्र को जीवन चलाने के लिए नाना प्रकार के अन्न की, उसका रक्षण करने के लिए बल की आवश्यकता है। इस में आता है कि सारी जनता आस्तिकता के साथ अन्न, शक्ति को प्राप्त करे। सदा श्रेष्ठतम कर्म यज्ञादि उपकार के कर्म में लगे रहें। दूध, घी की नदियां बहती रहें। उसके लिए गौ आदि पशुधन चाहिए। गौ सदा अघ्न्या है—इसे कोई नहीं मार सकता। गोधन राष्ट्र को स्वस्थ जीवन सम्पत्ति से मालामाल कर देता है। सारे समाज में कोई चोर डाकू हत्यारा दुष्ट न टिकने पावे। गोपतियों के गोष्ठों के अब सदा गौओं से भरे रहें। सारा देश अन्न से भरा, शक्तिसम्पन्न, दूध घी को बहाने वाली गौओं से, शुभ कर्मों से, स्वास्थ्य से भरा हो। कोई भी दुष्ट, पापी, राक्षस न हो। सारा ही राष्ट्र सारे भौतिक पदार्थों, सज्जीवन से भरपूर होवे-सुराज्य हो—सं

ऋषि दर्शन

सत्य वक्तैव भवेत्

प्रत्येक को सत्य बोलने वाला होना चाहिए। सदा सत्य आचार सत्य ग्रहण, सत्य मनन, सत्यकार तथा सत्य प्रचारण ही करना चाहि असत्य के पास भूल कर भी जावे।

सत्येनैव मोक्षसुखम्

सत्येन एव-सत्य से ही स मोक्षसुखम्-मुक्ति का सुख मिल है। संसार के दुःख रूप बन्धनों भी छुटकारा सत्य से ही होतता है झूठ तो बन्धन में फंसा देता है।

संसार-सुखं च

और सत्य के प्रेम से ही संस के सारे सुख, धन, यश, कीर्ति आदर मान, उच्च पदवी को प्रा होते हैं। सत्य से जगत् की स विभूतियां मिल जाती हैं।

भा ष्य भू मि का

अधिष्ठाता—संतोषराज मंत्री सभा

सम्पादक त्रिलोक चन्द्र शास्त्री

(महात्माजी का जीवन आध्यात्मवाद के रस से भरा हुआ है। आपका वचन, प्रवचन और दर्शन दूसरे में भी प्रसन्नता और रस भर देता है। सदा प्रसन्नता भर देता है। सदा प्रसन्न रह कर सब को भक्ति रस से प्रसन्नता देना सच्चे सन्त की विशेषता होती है। मन के सम्बन्ध में आपका अनुभूति भरा सन्देश का मधुर प्रसाद प्रेमी पाठकों को बहुत मीठा लगेगा—सं०)

भगवान् के मन्दिर में प्रत्येक इन्द्रिय और प्रत्येक नाड़ी काम आने वाली है। नाड़ियों द्वारा ही उपासना करनी होती है। परन्तु इन सब में सर्वोपरि मन है और सच पूछिए तो मन ही की कृपा है कि हम इस शरीर में बैठे हैं। प्रश्नोपनिषद् में तीसरा प्रश्न यही है कि यह इस शरीर में कैसे आता है—इसका उत्तर उपनिषद् में यह दिया है—

मनोकृतेनायात्यस्मिन् शरीरे।

अर्थात् मन के काम से यह शरीर में आता है। जो मन से शुभ अशुभ सकल्प किये जाते हैं, उन के कारण से यह शरीर में आता है।

महाभारत में भी यही कहा है कि मन ही मनुष्यों के बन्धन का और मोक्ष का कारण है। वेद भगवान् ने तो सब से पहले यह आदेश दिया है कि मन के बिना कोई भी काम नहीं किया जा सकता।

तन्मे मनः शिव सकल्प मस्तु-यजुः। यही है वास्तव में कुंजी सब कामों की। यदि यह हाथ में आ जाए तो सब कुछ मिल जाता है। निस्सन्देह परमात्मा तक मन की भी पहुंच नहीं, परन्तु यह एक प्रमाणित सत्य है कि प्रभुनिवास के द्वार तक पहुचा भी नहीं सकता है। इसकी शक्ति बहुत बड़ी है और श्री शंकराचार्य जी ने तो इसकी महिमा और भी बढ़ा दी है—किसी ने प्रश्न पूछा—जित जगत् केन? संसार को किस ने जीता? भगवान् ने उत्तर दिया—मनोहियेन-जिस ने मन पर विजय पाली। और छान्दोग्य

अध्यात्म वाद

मन का चमत्कार

(ले० पूज्य महात्मा आनन्द स्वामी जी महाराज सरस्वती जी)

उपनिषद् प्रपाठक ७ खण्डके ३ आदि ही में कहा है—मन ब्रह्म मन उपासे-वेति-मन ही लोक तथा ब्रह्म की प्राप्ति का साधन है। ऐसा है यह मन जो इस प्रभु-मन्दिर में वास करता है। जब तक इस को अपना साथी अथवा मित्र न बना लिया जाये, तब तक यह बाधक बन कर हमें तंग करता रहेगा और प्रभु-मन्दिर में पहुच कर भी प्रभुदर्शन से वंचित रखेगा। गगा में खड़े हो कर भी जल-पान नहीं करने पाएंगे। प्यासे के प्यासे ही रह जाएंगे। इस लिए सब से पहले मन की ओर ध्यान देना नितान्त आवश्यक है।

इस की ओर से नेत्र बन्द नहीं किये जा सकते, अपितु पहले इसी की शरण लेनी पड़ती है। यदि मन हाथ में आ गया तो फिर प्रभु के दरबार में बे खटके पहुंचा जा सकता है। यह कार्य कहने को तो सरल है, किन्तु करने को अत्यन्त कठिन है। गीता में अर्जुन भी तो यही पुकार उठा था—हे महाराज! यह मन बड़ा चंचल और प्रमथन स्वभाव वाला है तथा बहुत दृढ़ और बल वान् है। इस लिए उस को वश में करना मैं वायु की भान्ति अति दुष्कर मानता हू। और कृष्ण भगवान् ने भी यही कहा कि निस्सन्देह मन बड़ा चंचल और कठिनता से वश में होने वाला है, किन्तु धैर्य देकर यह भी कहा कि अभ्यास और वैराग्य से यह वश में किया जा सकता है।

पहला साधन ज्ञान

मन को वश में करने का सब से पहला साधन है ज्ञान। यदि यह ज्ञान हो जाये कि यह ससार क्या है? संसार की वस्तुओं की वास्तविकता और मूल्य क्या है—तो फिर यह इनके पीछे मारा २ न फिरेगा। जब यह पता मिल गया कि मनुष्य का सौंदर्य केवल मल का परिणाम है तो फिर मन उस सौंदर्य पर लट्टू क्यों होगा? जब विज्ञान ने यह प्रमाणित कर दिया कि हीरा कोला एक जैसे तत्वों से बने हुए हैं तो फिर हीरे की प्राप्ति के लिए मन कोई टेढ़ी चाल नहीं चलेगा। जब यह ज्ञान हो गया कि यह जो कुछ दिखलाई देता है कि यह सब नश्वर है तो फिर इन खिलौनों के लिए मन दुःखी नहीं होगा। तब विषय वासना नहीं सतायेगी, तब मोह, लोभ, अहंकार आदि कष्ट न दे सकेंगे। सच कहा है कि मन की दौड़ धूप, उछल कूद तब तक ही है, जब तक इसे सांसारिक वस्तुओं का वास्तविक ज्ञान नहीं हो जाता। इस लिए सब से पूर्व मन को समझाइये और उसे कहिये कि देख भाई—जिस सुन्दरता पर तू रीझा है वह तो पर्दे से ढकी गदगी है। उस पर्दे को हटा दे—फिर देख कि मुंह फेर लेता है या नहीं?

लिया हमने यह व्रतठान करेंगे दुनियां का उपकार

(मित्रसैन आर्य शास्त्री, एल. एस. सी. अलीगढ़)

साथ चलेंगे साथ रुकेंगे नहीं उठायेंगे हानी।
साथ पढ़ेंगे साथ कहेंगे वेदों की पावन वाणी।
दूर भगाओ छुआछूत को कहते हैं हम तो ललकार।
लिया हमने यह व्रतठान करेंगे दुनिया का उपकार ॥१॥

अबलाओं की रक्षा करने में होंगे हम सब तत्पर।
देश जाति का मान बढ़ायेंगे हम सारे जीवन भर।
बनेंगे प्रलयंकर हम सद्र मिटाने जुल्म दुष्ट आचार॥
लिया हम ने यह व्रतठान करे गे दुनियाँ का उपकार ॥२॥

स्वयं बनेंगे आर्य और फिर बने विश्व भी आर्य।
वेदों के मारग पर चलना हो सब को स्वीकार्य।
धन विद्या से भरा हुआ हो ईश! हमारा यह परिवार।
लिया हम ने यह व्रत ठान करगे दुनियां की उपकार ॥३॥

दयानन्द के स्वप्न पूर्ण हों हम तक तरक्की ऐसी।
जगद्गुरु कहलाये भारत शान हमारी हो वैसी।
वेद धर्म ही विश्व धर्म हो बोलें जय जय कार।
लिया हम ने यह व्रतठान करेंगे दुनियों का उपकार ॥४॥

आर्य केन्द्रीय सभा दिल्ली का चुनाव

प्रधान—श्री रामगोपाल जी शालवाले

उपप्रधान—सर्व श्री सोमनाथ एडवोकेट, प्रिंसीपल ईश्वरदास जी, श्री मनोहर लाल नगाई एडवोकेट।

प्रधानमन्त्री—श्री नारायण दास जी कपूर

मन्त्री—श्री ओम प्रकाश जी तलवाड़ तथा रामनाथ जी सहगल

कोषाध्यक्ष—श्री मनोहर लाल जी गुप्त

लेखा निरीक्षक—श्री गुमान सिंहजी

भवदीय
रामनाथ मन्त्री

सम्पादकीय—

आर्य जगत्

वर्ष २२] रविवार २८ आश्विन २०१८, १४ अक्तूबर १९६२ [अंक ४१

बलिदान का गान

व्यक्ति, समाज और सारे देश के जीवन में एक नई चेतना, प्रेरणा स्फूर्ति व उत्साह भर देता है। त्याग तथा बलिदान ही किसी जीवन या भवन की आधार शिला है। सुन्दर से सुन्दर मकान बनाने में जब तक उस की बुनियाद में ईंटें व पत्थर नहीं चिने जाते तब तक उस का निर्माण नहीं हो सकता। आधार शिलाओं पर बना हुआ भवन हर प्रकार की आंधी तूफान, बाढ़ भूचाल, आघात प्रतिघात का सामना करता रहता है। जो पत्थर बुनियाद में होते हैं—उन्हें न कोई देख सकता है और न उन का स्वयं ही प्रदर्शन होता है। वे तो मौन हो कर उस स्थान पर रहते हुए सारे भवन का रक्षण, संधारण करते रहते हैं। जड़ हो कर भी चेतन जगत् को महान पाठ पढ़ाते हैं। यदि जाति, समाज, राष्ट्र का विशाल भवन बनाना है तो उन के समान चुपचाप मौन हो कर अपने आप को बुनियाद बना कर बलि कर देना होगा। अपना प्रदर्शन न करना होगा। लोग बेशक न जानें, न देख सकें—किन्तु समाज के सारे भवन की रक्षा करनी होगी। समाज की आधार शिला का पत्थर बनने वाले कम होते हैं—पर कमरों, चौबारों, विलास भवन का सुन्दर पत्थर बनने वाले बहुत हैं—किन्तु आधार के बिना तो वे भी नहीं टिक सकते। समिधा अपने आप भस्म करने के बाद ही तो प्रकाश देती है। बीज निजसत्ता को गला कर ही विशाल पेड़ बन कर फूलता फलता है। बलिदान जीवन है और स्वार्थ मरण है।

भारतीय सभ्यता का विशाल भवन सहस्रों लाखों वर्षों के बाद भी आज तक उन्नतभाल हो कर खड़ा हुआ है इसका कारण इस के वन्दनीय बलिदानों की निरन्तर गाथा ही है। भारतीय समाज का इतिहास तो है ही बलिदानों का इतिहास। राजनीति, धर्म, परोपकार, सत्य, न्याय तथा लोक सेवा के क्षेत्र में भारत के बलिदान अमर हैं। इस युग में भी इन बलिदान वीरों की यश गाथा कौन नहीं गाता ?

आर्यसमाज का भव्य भवन इन्हीं बलिदानी वीरों के ऊपर स्थापित है। गुरु विरजानन्द का जीवन बलिदान क्या कम है ? दिव्य दयानन्द का सर्वस्व त्याग अमर रहेगा। इस जीवन उत्सर्ग की मनोरम माला में अमर शहीद पं० लेखराम, महात्मा हंसराज, स्वामी श्रद्धानन्द पं० गुरुदत्त ला० लाजपत राय, प० मेहर चन्द प्रिंसिपल, वीर राम, वीर श्याम पता नहीं कितने मनोहर मोती हैं—जिन का मुग्ध लोक आज प्रकाश देता है। जब बलिदान कम हो जाये स्वार्थ आ जाए तो सारा समाज कमजोर हो जाता है आज आर्यसमाज में यह बुनियादी पत्थर बनने की भावना कम हो कर ऊपर की मंजिल के पत्थर बनने की धारणा बढ़ रही है—तभी भवन में दरारें पैदा होने की आशंका होने लगी है। आर्यो ! समाज राष्ट्र तथा विश्व को आर्य बनाने के लिए अपने जीवन में इस भाव को पैदा करो। ध्यान रहे कि समाज को तन-मन-धन अर्पण करना पड़े तो पीछे न हटना—बलिदान ही उत्थान व कल्याण है। इसके लिए तय्यार रहो—त्रिलोकचन्द

दीपमाला अंक

आर्यजगत् प्रतिवर्ष दीपमाला के अवसर पर अपना विशेषांक ऋषि निर्वाण अंक के रूप में पूरी तैयारी से निकालता है। इस बार भी उसी परम्परा के अनुसार पूर्ण प्रबन्ध हो रहा है। यह विशेषांक स्वाध्याय के लिए अत्यन्त मीठा प्रसाद होता है। आर्यसमाज के मान्य महात्माओं, नेताओं, विद्वानों के उच्चकोटि के लेख तथा विदुषी बहिनों, प्रसिद्ध कवियों के सुन्दर २ विचार कविताएं होती हैं। हमारे पास इतनी समाजें तथा शिक्षण की संस्थाएं हैं। उनके द्वारा यह अंक प्रसाद व भेंट के रूप में बांटने के लिए उपयुक्त होता है। अत हम सारे समाजों, संस्थाओं तथा अन्य भी मान्य व्यक्तियों से प्रार्थना करते हैं कि इस विशेषांक को अधिक संख्या में मंगवा कर दूसरों में वितरण करके सभा के प्रचार कार्य में सहयोग देवें—सब की सेवा में पत्र लिखे गये हैं। जल्दी से जल्दी प्रतियों का आर्डर देवें। प्राय. ऐसा होता है कि आर्डर कई स्थानों के देर से आते हैं। उस में उनके आदेश को पूर्ण करना कठिन हो जाता है। अत शीघ्र ही इस प्रसाद का प्रबन्ध करें।

गोरक्षा के परमभक्त

श्री ला० हरदेव सहाय जी का शोकजनक देहान्त का दुःखदायक समाचार पढ़ सुन सब का दिल रो उठा। स्वर्गीय लाला जी ने भारत में गोरक्षा के पवित्र कार्य में अपना सारा जीवन भेंट किया हुआ था। अपने व्यक्तियों के हाथ में भारत का आसन शासन होते हुए भी चमड़े, मांस तथा विदेशी डालरों के लिए इतना गोवध होता हो। यह उन को सर्वथा असह्य था। बड़ा भारी आन्दोलन करते रहे। अखिल भारतीय गोहत्या निरोध समिति के महा मन्त्री थे। दिन रात एक कर के सारे देश में भ्रमण करते थे। कई प्रान्तों में गोहत्या बन्दी के कानून बनवाये। देश भक्ति भी आप के रोम २ में भरी थी। भारत से गोहत्या हर मूल्य पर समाप्त होनी चाहिए-इस सत्तर वर्ष की वृद्धावस्था में भी उन का काम दौड़धूप जारी थी। अनेक सम्मेलन किये, नाना विध पुस्तकें साहित्य, लेख लिखे। एक दिन भी आराम नहीं था। कर्मयोगी बन कर कर्मयोग में लगे रहे। उन का निधन सारे देश की क्षति है। उन का सब से बड़ा स्मारक यही है कि गोहत्या बन्द कराने के उन के काम को जारी रख कर पूर्णता पर पहुंचाया जाये—सं०

आर्य हाईस्कूल नाभा की शानदार विजय

आर्य जगत् में यह खबर हार्दिक प्रसन्नता के साथ पढ़ी जाएगी। कि आप के प्यारे आर्य हाई स्कूल नाभा ने गत वर्षों की भान्ति इ वर्ष भी महात्मा हंसराज आर्यन टूरनामैन्ट अम्बाला में कबड्डी की खेल में शानदार विजय प्राप्त करके सर्वप्रथम शील्ड प्राप्त की है। इस शानदार कामयाबी का श्रेय स्कूल के पुराने तजरबाकार परम उत्साही हैडमास्टर लाला राम निरंजन जी खोसला और कबड्डी के इन्चार्ज श्री सुरेन्द्र कुमार जी कौशल ज्ञानी के सर पर है।

भवदीय
धर्मदेव आचार्य
मंत्री आर्य हाई स्कूल
नाभा

हिन्दी सब की

ले० श्री सुदर्शन जी 'अंशु' नई दिल्ली

'यह क्या लिखा है ? इसको कौन पढ़ेगा ?'

उक्त शब्द भारत के रक्षा मन्त्री श्री कृष्णा मेनन ने गत वर्ष नई दिल्ली में हुई औद्योगिक प्रदर्शनी में भारतीय रक्षा-कक्ष का उद्घाटन करने के उपरान्त हिन्दी में लिखे गए सूचना पट पर दृष्टिपात करते हुए कहे। देखिए। हमारे केन्द्रिय रक्षा मन्त्री की राष्ट्र भाषा के प्रति निष्ठा ऐसा नहीं कि वे सूचना पट समूचे हिन्दी में लिखे थे बल्कि राष्ट्र भाषा के ठीक माथे पर तो विराजमान थी आंगल भाषा, लेकिन फिर भी इनको इतराज है और जबरदस्त रोष जो समय पर गंगा-लहरों की भांति उतार चढ़ाव लेता करता है। यह तो रहा एक पक्ष अब चित्र का दूसरा रुख भी देखिए।

उक्त घटना के ठीक दस मास उपरात हिन्दी दिवस के उपलक्ष्य में संसदीय भवन में भाषण करते यू फरमाने लगे 'मुझे खेद है कि मैं हिन्दी में बोल नहीं सकता, परन्तु इसका तात्पर्य यह नहीं कि मैं हिन्दी की उपेक्षा करता हू। चू कि यह हमारे संविधान में राष्ट्र भाषा स्वीकृत की गई है अतएव हम सबको इसकी उन्नति की कामना करनी चाहिए वैसे तो मैं राष्ट्रगान भी बोल नहीं सकता, लेकिन मेरे दिल में उसके प्रति इज्जत है, मान है।' तो यह थे कुछ शब्द उनके भाषण के। अब विचारणीय प्रश्न यह है कि वास्तव में उनके दिल में उसके प्रति इज्जत है, मान है। यदि उत्तर हां में हो तो हम इस लोकोक्ति को चरितार्थ समझते हुए यह कहेंगे कि यदि घर में सांय को दिन भर का भूला आ जावे तो उसका उचित आवभगत ही करना चाहिए न कि उसका व्यर्थ में परेशान, तो इसलिए हम उनका हार्दिक स्वागत करते हैं और इस निमित्त भारत का सौभाग्य समझते हैं परन्तु यदि उत्तर न में हो तो सारा निर्णय हम समय पर छोड़ते हैं। देखेंगे कि ऊंट किस करवट बैठता है ?

सर्व साधारण को स्मरण हो कि संविधान में हिंदी को राष्ट्र भाषा बनाने हेतु जिन जिन विभूतियों ने योग दान दिया था उन में अग्रगणी थे एक अहिन्दी भाषी सज्जन। और दूर क्यों जावे अपने हिन्दी साहित्य में कितने ही अहिन्दी भाषी क्षेत्र के सज्जन आए और राष्ट्रभाषा की उन्नति के साथ साथ वे लोग हिन्दी को सुअलंकृत करते हुए लोक प्रिय बने और सुयश के पात्र बनें।

अभी पिछले दिनों श्री रागेव-राघव का स्वर्गवास हुआ वह भी तो अहिंदी भाषी क्षेत्र में से थे और अपने अल्पकाल में भी देश की सतति को एक अमूल्य भण्डार दे कर गए।

इस के अतिरिक्त केंद्रीय विधि मन्त्री एव ससद सदस्यों ने हिंदी की उन्नति के विषय में हर सम्भव ढंग अपनाने एव ससद मे हिंदी में ही बोलने का सकल्प किया है। यद्यपि ऐसे लोग हिंदी बड़ी कठिनाई से बोल सकते हैं।

यह मुट्ठी भर अकाली लोग जो सर्व सिक्खों का ठेका लेते हुए हिंदी को दूर से ही नमस्कार करते हैं, इन से कोई पूछे ..क्या हिन्दी किसी व्यक्ति विशेष की है, यह तो समूचे देश के लिए ही नहीं बल्कि अब तो रूस आदि अन्य कई देशों में लोक प्रिय होने जा रही है।

इस वाटिका में जो भी आया सुगन्धित पुष्पों को लेकर ही लौटा खाली हाथ नहीं गया। चाहे वह हिन्दू हो, सिख हो चाहे कोई हो सब को उचित आसन पर बिठाया। इतना ही नहीं हिंदी की वाटिका के द्वार अभी भी सब के लिए खुले हैं। इस लिए आइए जी खोल कर आए हिंदी पहले आपकी है फिर हमारी, आप स्वयं पढ़ें दूसरों को पढ़ावें उन को पढ़ने देवें जो पढना चाहें, जो नहीं पढ़े तो समय के थपेड़ों से नष्ट होने के लिए हम नहीं २ हिंदी के प्रेमी आप-आप क्या जुम्मेवार होंगे ?

आर्य साहित्य परिचय लेख

गंगाप्रसाद उपाध्याय की दार्शनिक कृतियां

(श्री भवानीलाल जी 'भारतीय' एम ए प्रो० गवर्नमैंट कालिज पाली)

(गतांक से आगे)

शंकराचार्य समस्त दार्शनिक सम्प्रदाय के शिरोमणि विद्वान समझे जाते हैं, परन्तु किसी विद्वान ने उनके विचारों को परखने का साहस नहीं किया। शंकराचार्य उपनिषदों गीता और वेदान्त सूत्रो पर अपने विस्तृत भाष्य लिखे हैं और अपने दार्शनिक सिद्धान्त की पुष्टि उपरोक्त ग्रन्थों से की है। शंकराचार्य को अद्वैत सिद्धि के लिए कितने उलटे सीधे प्रयत्न करने पड़े यह कौन नहीं जानता। शास्त्रों की अपने मन्तव्य के अनुसार व्याख्या विरोधी के पक्ष को गलत रूप से प्रस्तुत करना और फिर उस को काट कर अपनी बहादुरी बताना, गौतम के न्याय शास्त्र का खण्डन करते हुए भी न्याय प्रदर्शित तर्क प्रणाली का उपयोग करना, शास्त्रों का परमार्थिक महत्व नहीं मानते हुए भी शास्त्र से अपने सिद्धान्त की सिद्धि, सांख्य, न्याय, वैशेषिक और मीमांसा आदि वैदिक दर्शनों की अप्रासंगिक और अनुचित आलोचना तथा अनेकों मनमानी स्थापनाएं—ये सब त्रुटियां शांकर भाष्य के एक क्षीर नीर विवेकी समालोचक की दृष्टि में आती हैं परन्तु अन्य विद्वान शंकर के महान व्यक्तित्व से प्रभावित हो कर ही उन को नजर अन्दाज कर देते हैं।

उपाध्याय जी ने अपनी सूक्ष्म दार्शनिक दृष्टि से उपरोक्त बातों को देखा है और इस प्रकार उन्होंने सिद्ध कर दिया है कि जिन वेदांत सूत्रों के आधार पर शंकर स्वामी अपने 'ब्रह्म सत्य जगन्मिथ्या जीवो ब्रह्मैव नापर' सिद्धात की स्थापना करने चले थे उन वेदांत सूत्रों में तो ब्रह्म की सत्ता का ही प्रतिपादन किया गया है, उससे जीव और प्रकृति का निषेध नहीं होता। वस्तुत. 'जन्माद्यस्ययत:' 'शास्त्र योनित्वात्' आदि सूत्रों में प्रदर्शित ब्रह्म का ही समन्वय शास्त्रों में किया गया है। परन्तु इससे प्रकृति और जीव का खण्डन नहीं होता।

उक्त विवेचन से स्पष्ट है कि उपाध्याय जी एक गौरवशाली दार्शनिक हैं और उनकी महान प्रतिभा, उनके महान् अध्ययन और उनके महान् व्यक्तित्व का दर्शन हमें उनकी कृतियों में होता है।

आर्यसमाज यूसुफ सरायग्रीन पार्क का चुनाव

प्रधान—प्रिंसीपल विशन सहाय जी, उप प्रधान—श्री देवराज जी कोछड़, श्री रघुवीर सिंह जी। मु० मंत्री—श्री शालीग्राम जी गौतम बी० ए, एल० एल० बी०। सयुक्त मन्त्री—श्री रामकृष्ण जी शास्त्री, श्री प्यारे लाल जी। प्रचारमन्त्री—श्री छोटेलाल जी। कोषाध्यक्ष—श्री सदानन्द जी चादना। पुस्तकाध्यक्ष—श्री राधाकृष्ण जी ठाकुर। लेखा निरीक्ष—श्री यशपाल जी।

ईश्वर के पवित्र नाम ओम का जाप करो।

जब तक दुनियां कायम रहेगी

तबतक काश्मीर भारत-माता का खून या मांस बन कर रहेगा

● लेखक
श्री बख्शी गुलाम मोहम्मद
प्रधानमंत्री जम्मू और कश्मीर

● कश्मीर भारत का अविभाज्य और अभिन्न अंग है। राज्य की जनता ने स्वयं अपनी इच्छा से यह फैसला किया है। मैं यह विश्वास दिलाता हूं जब तक दुनिया कायम रहेगी, तबतक यह निर्णय भी कायम रहेगा। हम उसी प्रकार भारत के अंग हैं, जैसे अन्य भाग हैं।

● भारत के सामने दो मुख्य समस्यायें हैं, पाकिस्तानी और चीनी आक्रमण। इन दोनों समस्याओं का काश्मीर से सम्बन्ध है। जहां तक काश्मीर का सम्बन्ध है, वह भारत मे मिल चुका और इस प्रश्न पर कोई बहस नहीं हो सकती, काश्मीर की जनता को इससे कोई सरोकार नहीं कि सीमाके पार के लोग काश्मीर को अन्तर्राष्ट्रीय समस्या समझते हैं। कश्मीर की जनता के लिये काश्मीर अन्तर्राष्ट्रीय मसला नहीं है। हमने दृढ संकल्प से हमलावरों को दूर करने की कोशिश की है और हम इस उद्देश्य को पूरा करने के लिये प्रयत्न कर रहे हैं।

● हमारी परिस्थितियां देश के अन्य प्रदेशों से भिन्न हैं। देश के किसी भी राज्य मे युद्ध-विराम रेखा नहीं है, और न कहीं दो ओर से अतिक्रमण हुआ है। इन्हीं परिस्थितियों मे संविधान मे धारा ३७० रखी गई। किंतु इसके बावजूद भी हमने अमल में सदा भारत से उतना ही नजदीकी रिश्ता रखने की कोशिश की है जितना खून और मांस का रहता है।

★ कुछ लोगों को यह गलतफहमी हो सकती है कि दूसरे राज्यों के लोग काश्मीर मे कोई व्यापार नहीं कर सकते या काश्मीर सरकार में नौकरी नहीं कर सकते। किंतु यह बात गलत है।

★ काश्मीर की उद्योग नीति भारत सरकार के उद्योग नीति प्रस्ताव पर ही आधारित है। यहाँ भी सरकारी निजी और सहकारी, तीनों क्षेत्रों के विकास पर एक साथ ध्यान दिया जा रहा है। काश्मीर सरकार के निमंत्रण पर बाहर के अनेक प्रमुख उद्योगपतियों और व्यापारियों ने काश्मीर में उद्योग धंधे खोले हैं।

उपरोक्त संदर्भ जम्मू और काश्मीर के प्रधान मंत्री बख्शी गुलाम मुहम्मद के उक्त भाषण से लिये गये हैं जो उन्होंने २५ सितम्बर ६२ के दिन राज्य की राजधानी श्रीनगर मे अखिल भारतीय समाचार पत्र सम्पादक सम्मेलन की स्थायी समिति का उदघाटन करते हुये दिया। प्रस्तुत लेख उसी भाषण से तैयार किया गया है। —सम्पादक

आप कश्मीर मे आये है यहां की स्थिति से सब परिचित हैं। कश्मीर एक खुली किताब है, जिसे सब पढ सकते हैं पर मित्रों और विरोधियों का अलग-अलग दृष्टिकोण होता है। आप लोग हमारे मित्र ही नहीं हैं, हमारा आपका खून का रिश्ता है। मेरा विश्वास है कि आप इसी नजर से हमको देखेंगे। हमारे यहां इधर-उधर कुछ कमियां हो सकती है। दोस्तों का काम है वे हमारी गलतियों को हमें बतायें, और उन्हें ठीक करने मे हमारी मदद करें। दुश्मन हमेशा कमजोर करने और नीचा दिखाने का प्रयत्न करता है।

आप जानते हैं कि कश्मीर भारत का अभिन्न और अविभाज्य अंग है। मैं इस बात को बार बार कह चुका हूं और इस फैसले को संविधान मे जगह मिल चुकी है। यहां की जनता अपनी इच्छा और तबियत से यह निश्चय कर चुकी है। मैं आपको विश्वास दिलाता हूं कि जबतक यह दुनिया कायम रहेगी तबतक हमारा यह निश्चय भी कायम रहेगा। हम इसी प्रकार भारत के अंग है, जैसे कोई भी और राज्य है।

हमारे बंगाली और पंजाबी भाई हो यह कहने के लिए माफ करें कि बटवारे के समय जब पंजाब और बंगाल की स्थिति स्पष्ट नहीं थी तब भी जम्मू-कश्मीर भारत का ही अंग था। आज हमारे सामने केवल यही समस्या है कि हम किस तरह अपने राज्य को, भारत के अभिन्न अंग रूप में, तेजी से आगे ले जाय।

देश के जवाहर ने कहा था—

प्रधान मन्त्री श्री जवाहरलाल नेहरू ने संसद में एक बार कहा था कि देश के सामने दो मुख्य समस्यायें हैं, चीन और पाकिस्तान का आक्रमण। इन दोनों का संबंध कश्मीर से है। जहांतक कश्मीरियों का संबंध है, कश्मीर भारत मे पूरी तरह मिल चुका है और यही तथ्य हमारी नीतियों और कार्यक्रमों की बुनियाद है। हां इस बात से कोई सरोकार नहीं कि सीमापार के लोग कश्मीर को अन्तर्राष्ट्रीय मसला नहीं है। हमें दृढ संकल्प करके जहां कहीं भी अतिक्रमण हो उसे दूर करना है, और इसी उद्देश्य के लिए हम निरन्तर संघर्ष कर रहे हैं।

काश्मीर को दुहरे आक्रमण का सामना करना है

हमारे सामने असाधारण स्थिति है। देश के किसी अन्य राज्य में युद्ध विराम रेखा नहीं है, और न ही कहीं दो ओर से आक्रमण है। यह स्थिति १९४७ से बनी हुई है। यही कारण है कि संविधान में धारा ३७० रखनी पड़ी। किंतु इस धारा के बावजूद भी, हां व्यवहार में भारत से उतना ही घना रिश्ता रखने का निरंतर और निश्चय पूर्वक प्रयत्न करते रहते हैं, जितना खून और मांस मे रहता है। इसी उद्देश्य से प्रेरित होकर पिछले ५ ६ वर्षों में हमने अनेक कदम उठाये हैं। देश में जो कुछ भी होता है, चाहे वह आर्थिक एकीकरण हो, चाहे सर्वोच्च न्यायालय और चुनाव कमीशन का अधिकार लागू करना हो, चाहे आर्थिक विकास की योजना हो या प्रशासनिक एकीकरण हो, वह सब कश्मीर पर भी लागू होता है। हमने अब केन्द्रीय सरकार से कहा है कि डाक्टरी, इंजीनियरी, शिक्षा और जंगलात की अखिलभारतीय सेवाओं में कश्मीर भी शामिल किया जाये।

आप यहां हैं, सो मैं ये सब बातें दोहरा रहा हूं। आप खुद देख सकते हैं कि यहां कोई भी बात अन्य राज्यों से भिन्न नहीं है। पण्डित जी और शास्त्री जी भी कह चुके हैं कि केन्द्रीय सरकार और कश्मीर सरकार में बडे छोटे सभी मामलों मे पूरा मतैक्य है, और हम इसी तरफ चल रहे हैं। और हम खड़े नहीं हैं, बराबर चल रहे हैं। आज हम इस धरती की बात सोचते हैं, तो कल अन्तरिक्ष की भी सोचनी है। तभी तो मैं कहता हूं कि कोई स्थिति ज्यों की त्यों नहीं रह सकती।

कुछ लोगों को यह गलतफहमी या भ्रम हो सकता है कि देश के अन्य भागों के लोग कश्मीर से व्यापार तथा नहीं कर सकते या यहां नौकरी नहीं कर सकते। लेकिन मेरा कहना है कि यह बात बिलकुल गलत है। मैं आपके सामने आधिकारिक आंकड़े पेश करता हूं जिसमें आप देख लेंगे कि यहां ऐसी कोई रोक नहीं है, बल्कि आपको यह जानकर खुशी होगी कि हम रेशम या बड़े काम देश के अन्य राज्यों से आये दोस्तों की देख-रेख मे चल रहे हैं। बड़े पट्टों, ठेकों और कारबार मे अन्य राज्योंके लोगोंका उतना ही बडा हिस्सा है जितना कश्मीरियों का। नौकरियोंमें भी लगभग १८०० गजेटिड पदों में से, १५० से भी अधिक महत्वपूर्ण पदों पर अन्य राज्यों के अफसर हैं। उदाहरण के लिए पुलिस के इन्सपेक्टर जनरल, सी० आई० डी० के डिप्टी इंसपेक्टर जनरल, लोक स्वास्थ्य के निर्देशक, बिजली और बाढ नियंत्रण के मुख्य इंजीनियर, जम्मू कश्मीर मिनरल्स के मैनेजिंग डायरेक्टर आदि पदों पर अन्य राज्यों के ही नागरिक काम कर रहे हैं। गैर गजेटिड पदों की नियुक्ति मे भी देश के अन्य भागों के लोगों पर कोई रोक नहीं है और ऐसे सैंकडों लोग यहां काम कर रहे हैं।

मैं पहले कह चुका हूं कि काश्मीर भारत के अभिन्न अंग की हैसियत से आगे बढ रहा है। हम अपने राज्य के आर्थिक विकास पर पूरा ध्यान दे रहे हैं। कश्मीर पिछड़ा हुआ राज्य कहा जाता है। देश मे कुछ और राज्य भी पिछड़े हुये है पर कश्मीर अधिक पिछड़ा है। अतः हमने अपने आर्थिक विकास पर अधिक ध्यान दिया है। हमारी पहली पंचवर्षीय योजना ११ करोड रु० की थी, जिसे हमने पूरा किया। दूसरी योजना २५ करोड रु० की बनायी तीसरी में हमें ७५ करोड रु० खर्च करेंगे, और हमें भरोसा है कि न केवल हम अपने लक्ष्य पूरे करेंगे, बल्कि कुछ चीजों में लक्ष्य से आगे भी बढेंगे।

आपको जो सूचना की सामग्री दी गई है, उसमें पता चलेगा कि १९४७ और १९५३ के मुकाबले हम आज कितनी प्रगति कर चुके हैं। पंचवर्षीय योजनाओं में हुई प्रगति प्रत्येक क्षेत्र मे स्पष्ट दिखाई देती है। सन् १९४७ ४८ मे हमें राजस्व से २ करोड ७४ लाख रु० की आमदनी हुई, १९५३ ५४ में ५ करोड २३ लाख रु० हुई, और १९६२ ६३ मे बढकर २१ करोड ८१ लाख रु० हो गई है। साथ ही शिक्षा और अन्य सामाजिक सेवाओं में हमारा खर्चा भी काफी बढ़ा है। १९५३-५४ मे शिक्षा पर ह

(शेष पेज ४ पर)

जबतक दुनियाँ कायम रहेगी

[पृष्ठ ३ का शेष]

केवल ४० लाख रुपया खर्च किये जबकि आज ४ करोड रु० खर्च कर रहे हैं।

केन्द्र से सहायता

केन्द्र स हमारा वित्तीय सम्बध वही है जैसा अन्य राज्यो का है। इसमें लेश मात्र भी अन्तर नही है। हमारे खर्च की जाँच, अनुदान और ऋण के नियम तथा व्याज की दर वही हैं जो अन्य राज्यो के लिए हैं। हम अपने कर्ज और ब्याज का भुगतान अन्य राज्यों की तरह ही कर रहे हैं। सविधान की धारा ३७० से इसमें कोई अन्तर नही पडा है वह अन्य राज्यों की तरह ही मिली है। आज सारे देश मे उद्योगों का विकास हो रहा है और हम भी उसी पथ पर चल रहे हैं। हमने सबसे पहले कारीगरो व कर्मचारियो के काम बढाने पर ध्यान दिया। हम अपने युवको को तरह तरह के हुनर सिखावे और १९५२ स अब तक लगभग ६ करोड रु० खर्च कर चुके हैं। मुझे यह कहते हुए गर्व होता है कि कुछ समय ही हम डाक्टरो के अलावा, अन्य सब कार्यों मे अपने हुनरमद युवको को अन्य राज्य मे काय करने को भेज सकेंगे। और हमने खानों की खोज की, और हमें पता है कि काश्मीर में कौन से माल कितनी मात्रा मे मिल सकते हैं। हमे आज पता है कि हमारी खानो में कितना कोयला, बाक्साइट, जिप्सम, गधक और अन्य खनिज मिल सकता है।

कश्मीर की उद्योग-नीति

हमारी उद्योग नोति भारत सरकार की उद्योग नोनि प्रस्ताव के ही अनुसार ही है। केन्द्रीय सरकार की ही तरफ हम भी निजी, सरकारी और सहकारी उद्योगो को एक साथ बढ़ावा दे रहे है। अमेरिका, इग्लैंड आदि गैर समाजवादी देशों में सरकारी कारखाने ६२ प्रतिशत से भी अधिक हे जबकि हमारे देश में केवल ९ प्रतिशत हैं। हमारी नीति है कि राष्ट्रीय महत्ता के उद्योग सरकारी क्षेत्र म रहें। उन्हे हम स्वय आरम्भ करने का प्रस्ताव करेंगे, पर जो उद्योग हम खुद नही सीख सकते, उसे आरम्भ करने के लिए हम केन्द्र से कहते हैं। कोयले की खानो की विकास राष्ट्रीय महत्ता का काम है। इसलिये हमने केन्द्र स कहा है कि यह कश्मीर में कोयले की खान खाले। इसी तरह नाथा खानी मे बिजली बनने के लिए भी हमने केन्द्र से कहा है। हमारी नीति कठोर नही है। निजी और सरकारी उद्योगो के साथ सहकारी उद्योग भी आरम्भ हो रहे हैं। हमारे नियत्रण पर, अनेक बडे उद्योगपतियो ने कश्मीर मे कारखाने खोले हैं। मेसर्स साहू जैन ने प्लाई वोड और वेनीयर (ढग) के कारखाने खोले हैं, जो चालू हो चुके हैं। मेसम अमीचन्द प्यारेलाल का कश्मीर सिर्दामक्स कारखाना लगभग तैयार हो चुका है। बिडला और सिहानिया के फर्म जम्मू में सूती कपडे की दो मीलें लगा रहे हैं। हमने इन उद्योग पतियों को पूरी सुविधाए दी हैं।

आज इस महत्व पूर्ण बैठक मे मैं यह फिर से कहता हू कि देश का कोई भी व्यापारी या उद्योगपति कश्मीर में कारखाना या कारबार चलाना चाहे तो हम उसका स्वागत करेंगे और पूरी सुविधायें देंगे।

यहा अनेक मझोले उद्योग भी खुले हैं। वन उत्पादन के अनेक छोटे मोटे कारखाने खुल रहे हैं। हमारा फलों का व्यापार भी खूब बढा है। १९५४ में यहा से केवल ५० लाख रुपया के फल भेजे गए, जबकि आजकल ६ करोड रुपया के हो जा रहे हैं। देश भर मे हमारी दस्तकारी की दूकानें खुली हैं, और दस्तकारी के सामान की बिक्री भी खूब बढी है। ये सब इस बात के सबूत हैं कि राज्य में शांति व स्थिरता है और हमारी अर्थ व्यवस्था मजबूत हो रही है। हम रेलों को चार करोड रु० की लकडी दे रहे हैं और हमे आशा है कि हम रेलों को जितनी लकडी की जरूरत है सब पूरी कर सकेंगे और इस प्रकार काफी विदशी मुद्रा बचा लेंगे।

१९५३ म कश्मीर मे २१ ३८० पर्यटक आये जबकि १९६१ मे ९६,४५२ आये। पहले कश्मीर मे बाहर से २ करोड रुपया का सामान आता था जबकि आज कल २० करोड़ रुपया का आ रहा है। अर्थ व्यवस्था को बनाने मे समय लगता है। हमें विश्वास है कि आगे हम और तरक्की करेंगे। राज्य में प्रति व्यक्ति आय काफी बढ़ी है और आर्थिक उन्नति के साथ, और बढ़ेगी।

काश्मीर तक रेल जाएं

इस अवसर पर मैं आपसे अपील करना चाहता हू कि आप सब कश्मीर तक रेल लाइन बिछाने का जोरों के साथ समर्थन करें। यह बहुत जरूरी है और इस लाइन के बिछ जाने पर सारे देश को लाभ होगा। मैं आपसे यह भी कहना चाहता हू कि, अन्य राज्यों में केन्द्र ने अनेक कारखाने व काम खोले हैं जबकि जम्मू-काश्मीर में कोई नही खोला गया। मैं यह नहीं कहता कि यहा इस्पात का कारखाना या कोई और बड़ा कारखाना खुले, पर कुछ कारखाने तो यहा जरूर खुल सकते हैं। इससे सारे राष्ट्र को बहुत सा लाभ होगा।

किन्तु जबतक हममें एकता नही होगी, तबतक यह सब प्रगति निरर्थक रहेगी। अगर हम राष्ट्रीय एकता कायम रखे, तो हम जो चाहेंगे वह कर सकेंगे।

मैं भारत और उसके करोडो लोगों के नाम पर आप सबसे अपील करता हू कि आपके देश में एकता और राष्ट्रीय सगठन के लिए अपनी कलम चलायें। हम चीन और पाकिस्तान से निपट लेंगे, हम जानते हैं कि उनसे कैसे निपटना है। किंतु बुनियाद बात यह है कि हम मिलकर रहें। आप इस काम में बहुत मदद दे सकते है। आपको आलोचना करने का अधिकार है, और जब भी कोई बात गलत हो, तो आप उसकी कडी आलोचना कीजिए। लेकिन देश की विदेश नीति और अन्य बडी नीतियो पर विचार करते समय हमें अपने देश का हित सबसे ऊपर रखना है। हमें राष्ट्रीय महत्व की सभी बातों में अपने प्रिय नेता, श्री जवाहरलाल नेहरू और राष्ट्रीय नेतृत्व के हाथ मजबूत करने चाहिए।

नौगाँव विकास क्षेत्र की बात

भेड़-पालन या जोर-जबरन ?

उत्तराखण्ड के नव-निर्मित जिलों में गत २ वर्षों से भेड पालन कार्य पर जोर दिया गया है। और योजना के अन्तर्गत लाखो रुपयों की भेड़ें तकावी पर दी गयी हैं। योजना तो उत्तम है क्योंकि इन पहाडी भू-भागों में भेड व पेड ही ऐसा वस्तु रह गई है, जिसके विकास से ही जनता का कुछ आर्थिक विकास हो सकता है। अत इन कार्यों के लिए सहायता का दिया जाना तो नितात आवश्यक है किंतु सहायता का जो स्वरूप अभीतक हमारे सम्मुख है और उसका जो प्रतिफल दिखाई दिया है, वह निश्चय ही अत्यन्त निराशाजनक है।

उत्तरकाशी के पुरोला नौगाव विकास क्षेत्रों में जो भेडें दी गई थीं उनमें ५० प्रतिशत मर चुकी हैं और शेष भेड इस वर्ष मर जावेंगी, ऐसा भी भ्रम है, यह भेड़ें क्यों मरी, इसका मुख्य कारण यह है कि भेड़ें उन भेडपालको से ली गई हैं। जो अपनी भेडों को मौसम के अनुसार घुमाते हैं और सदा खुले स्थान पर रखते है इन भेडों को जब बन्द कमरो में रखकर सूखी घास खिलाई गई तो इनका मरना स्वाभाविक ही है, किसानो को जब ये भेड़ें दी गई थी तब भी उन्होने यह निवेदन किया था कि ऐसे भेड उनको न दिये जाय। लेकिन उनको प्रतिरोध की परवाह किए बगैर उन्हे भेड दी गई, जिसका प्रतिफल स्पष्ट है।

जिन भेडपालको की भेड मर गई हैं उनसे अब रुपया ब्याज सहित लिया जायेगा और जब गरीब किसान रुपया न दे सकेगा तो उसकी जमीन का नीलाम होगा या उसे जेल की हवा खानी पडेगी यह तय सुदा बात है। यह स्थिति इतनी खतरनाक बनती जा रही कि जन-साधारणके रोगटे खडे होजाते हैं।

सुना है इस वर्ष भी भेड उसी प्रकार दी जावेगी। यदि वास्तव में ऐसा किया गया तो क्षतिपूर्ति के लिए सरकार ही उत्तरदायी रहेगी। मेरा सुझाव है कि इस वर्ष या तो नगद रु० दिया जाय या स्थानीय खरीद की जाय तथा अभीतक हुई हानि पर शासन विचार करे। —कुपलसिंह,

ग्राम, रवेडी उत्तर काशी

हमें दुख है कि उत्तराखण्ड की जनता जब कभी बुद्धिगम्य, अनुभवजन्य बात भी कहती है तब भी उसकी उपेक्षा की जाती है और विकास कार्यो पर लगे सरकारी कर्मचारियो का यह हाल है कि जिस चीज से उनकी जेब मे रुपया आये, उसी को वे टेकनिकली स उण्ड कहते हैं। आज ऐसा सरकारी कर्मचारी चिराग जलाकर भी दिखलाई नहीं देता जिसे अपने विषय का पूरा पूरा ज्ञान हो और जो अपने ज्ञान को अर्थलोलुपता की चेरी बनाने के लिए तैयार नहीं हो।

हमें दुख है कि उत्तर खण्ड में मन मानी एक महामारी का रूप धारणकर रही है और शासन खामोश बैठा है। स०

●

पौडी सितम्बर १८— राज्य के सभा सचिव श्री चन्द्रसिंह रावत ने सूचित किया है कि पौडी अग्निकाड में जिन लोगो को नुकसान पहुचा है उनकी सहायता के लिए राज्य के मुख्य मन्त्री जी ने १० हजार रुपया की आर्थिक सहायता मजूर कर दी है। जो बहुत जल्दी ही भेजी जायेगी।

—जिला सूचना अधिकारी, गढ़वाल

देश में भावनात्मक एकता लाने की दिशा में

क्षेत्रीय परिषदों की महत्वपूर्ण भूमिका

इन दिनों जब कुछ लोगों की ओर से, जिनमें पंजाब के मुख्यमंत्री सरदार प्रतापसिंह कैरों प्रमुख हैं, देश में भावनात्मक एकता कायम करने के लिये सुझाव पेश किया गया कि हिमाचल प्रदेश, पंजाब, राजस्थान और जम्मू और काश्मीर को लेकर देश की उत्तरी पश्चिमी सरहद पर एक विशाल, सशक्त और सम्पन्न प्रदेश का निर्माण किया जाय, तो इस सुझाव के पक्ष या विपक्ष में बहुत सी बातें बोली गई हैं। इनमें कुछ बातों का उल्लेख हमने 'सरहदी' के पिछले अंकों में कर दिया है। अभी हाल मे दो अन्य सूत्रों द्वारा इस सुझाव का विवेचन हुआ है। कम्यूनिस्ट पार्टी की पंजाब यूनिट ने सरदार कैरों के सुझाव की भर्त्सना की है, जबकि राजकुमारी अमृतकौर ने सुझाव पेश किया है कि देश विशाल क्षेत्रों मे विभक्त कर दिया जाय और क्षेत्रीय परिषदों को क्षेत्र-निर्मात्री इकाइयों से कुछ अधिक क्षेत्र के अन्दर सार्वभौमिक अधिकार सौंप दिये जाय। इस समय भी हमारा देश कुछ क्षेत्रों में विभक्त है। प्रस्तुत लेख मे मौजूदा इन्तजाम की असलियत और उसकी विशेष खूबियों पर प्रकाश डाला गया है। राजकुमारी द्वारा प्रस्तुत सुझाव का सही मूल्यांकन करने में प्रस्तुत लेखमें दिये गये तथ्यो से कुछ मदद मिलेगी, ऐसा हमारा विश्वास है। —सम्पादक

क्षेत्रीय परिषदो के बन जाने से अब राज्यों के मुख्य मन्त्री अक्सर मिला करते हैं और अपनी समस्याओं पर बात चीत करते हैं। समस्या किसी भी प्रकार की हो सकती है, जैसे नये उद्योग शुरू करने के लिये बिजली, सिंचाई के लिये पानी या गांवों के लिये अधिक डाक्टर। इससे राज्यों में सहयोग बढ़ा है और एक राज्य दूसरे की सहायता करने लगे हैं।

ऐसी सहायता के लिये कोई जोर-दबाव नही डाला जाता। केन्द्रीय गृह-मन्त्री इन बैठकों के अध्यक्ष होते हैं, पर वे किसी पर कोई जोर नहीं डालते। परन्तु पिछले पांच वर्षों का अनुभव यही है कि राज्यों मे एक-दूसरे की मदद करने की भावना बढी है।

उदाहरण के लिये हर राज्य में एक पुलिस दस्ता, काम पडने पर दूसरे राज्य की सहायता के लिए तैयार रखा जाता है। इससे बड़े-बडे पुलिस दस्ते रखने पर बेकार खर्च बचता है। इसी तरह कई राज्यों ने बिजली का ग्रिड बना रखा है और एक जगह बिजलीघर में खराबी आ जाय या अधिक बिजली की दरकार हो तो ग्रिड से बिजली मिल जाती है। इस तरह तीसरी व चौथी पंचवर्षीय योजनाओं में हर राज्य में कितने कर्मचारियों या कारीगरों की जरूरत होगी, किस राज्य मे कितने लोग मिल सकेंगे, इसकी पड़ताल जनशक्ति समितियां कर चुकी हैं।

क्षेत्रीय परिषदें

राज्यों के मुख्य मन्त्रियों की ये बैठकें क्षेत्रीय परिषद है, जिसमें उत्तर प्रदेश व मध्य प्रदेश हैं। इस क्षेत्र का क्षेत्रफल जापान से दुगुना है। दूसरा नम्बर उत्तर क्षेत्रीय परिषद का है, जिसमें जम्मू कश्मीर, पंजाब राजस्थान तथा केन्द्र प्रशासित हिमाचल प्रदेश व दिल्ली शामिल हैं।

इसके बाद दक्षिण क्षेत्र है, जिसमें आंध्र प्रदेश, मद्रास, केरल, मैसूर हैं। इस क्षेत्र मे देश की कुल आबादी के एक चौथाई अर्थात् ११ करोड लोग रहते हैं। लेकिन क्षेत्रफल में यह तीसरा है। सबसे छोटा पश्चिम क्षेत्र है जिसमें गुजरात व महाराष्ट्र राज्य हैं जो पहले बम्बई राज्य था।

क्षेत्रीय परिषदों की स्थापना

क्षेत्रीय परिषदों के गठन में भौगोलिक पहलू, आर्थिक विकास की जरूरतों संस्कृति व भाषा की समानता, सिंचाई व संचार के साधनों तथा सुरक्षा आदि बातों को ध्यान मे रखा गया।

क्षेत्रीय परिषद बनानें का विचार एकदम नया नहीं है। सन १९४४ मे प्रो० कूपलैंड ने इस तरह का एक प्रस्ताव रखा था, लेकिन उसका मुख्य उद्देश्य राज्यों के क्षेत्रीय संघ बनाना था जो केन्द्र और राज्यों के बीच तीसरी शक्ति के रूप में होते।

प्रधानमंत्री की सूझ

वर्तमान क्षेत्रीय परिषदें प्रधान मन्त्री श्री नेहरू की सलाह पर बनाई गयी। राज्यो के पुनर्गठन के बाद उन्होने नये राज्यों को ४ या ५ क्षेत्रीय परिषदों में संगठित करने का सुझाव दिया। उनका विचार था कि प्रत्येक परिषद के साथ एक-एक सलाहकार परिषद भी हो। १९५६ के राज्य पुनर्गठन कानून, मे इस सुझाव को कानूनी रूप दिया गया। लेकिन इससे केंद्र या राज्यो के कानून बनाने या शासन के अधिकारो मे किसी तरह की कमी नही हुई।

क्षेत्रीय परिषदो का निर्माण पुनर्गठन के बाद कुछ राज्यो में जो अलगाव की भावना हो गई थी उसे दूर करने, तथा राज्यो में एकता लाने के लिये किया गया। और अब ये परिषदें राज्यो मे सहयोग बढाने, मिलजुल कर आर्थिक उन्नति करने तथा राष्ट्रीय एकता बढाने के स्थाई साधन बन गये हैं। गृह मन्त्री श्री लालबहादुर शास्त्री के शब्दो मे क्षेत्रीय परिषदो ने राज्यों के बीच की दीवारें तोड़ दी हैं।'

हाल में क्षेत्रीय परिषदों की एक केन्द्रीय समिति बनाई गई, जिसमे राज्यों के मुख्य मन्त्री, भाषा अल्प संख्यकों या अल्प संप्रदायों के हितों की रक्षा पर विचार करते हैं। केन्द्रीय गृहमन्त्री इस बैठक के अध्यक्ष होते हैं। अल्प-संख्यकों के हितों की देख रेख के लिये, क्षेत्र राज्यों व जिलों मे अधिकारियों को जिम्मेदारी सौंपी गई है। क्षेत्र में सबसे ऊपर राज्यों के मुख्य मन्त्रियों की स्थाई समिति है राज्यो मे मुख्यमन्त्री स्वयं अल्पसंख्यकों के हितों की रक्षा के लिये जिम्मेदार होता है, तथा इस काम मे उनकी सहायता वहा के मुख्य सचिव व एक विशेष अधिकारी करते हैं। जिलो मे कलेक्टर को इस काम के लिए जिम्मेदार बनाया गया है।

यह तो नही कहा जा सकता कि क्षेत्रीय परिषदों ने राज्यों मे सारे भेदभाव खतम कर दिये हैं लेकिन इतना जरूर हुआ है, कि देश की सामाजिक और आर्थिक उन्नति के लिये अब राज्य मिल कर काम करते है, जिसे देश की एकता भी बढ़ती है।

विश्व ब्रह्माण्ड के रहस्य

आकाश गंगाओं की अधिकतम सीमा

अनुसंधानों मे पता चला है कि आकाशगंगाओं के पुंज की अधिकतम सीमा सूर्य पुंज की १० खरब गुनी है। यह असम्भव नही कि इसके प्रारंभिक उपादानो का पता चल जाय जो इनके निर्माण काल मे महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं। अनेक ताराभौतिकविदों को आशा है कि वे आकाश गंगाओं और तारागण के उद्भव पर प्रकाश डाल सकेंगे।

दूरवर्ती आकाश गंगाओं का अध्ययन करते समय ज्योतिर्विदों को एक अद्भुत बात का पता चला है। जो आकाश गंगा जितनी ही दूर है, उसकी वर्णावलि रेखायें वर्णावलि के लाल छोर की तरफ उतनी ही अधिक हैं। ऐसा डोपलर प्रभाव के कारण होता है। यदि कोई पदार्थ देखने वाले से दूर जाता है, तो उसकी वर्णरेखा लाल की तरफ हो जाती है। यदि वह पदार्थ देखने वाले की ओर को आता है, तो वर्णरेखा बैंगनी छोर की ओर आती है। गति की तीव्रता के अनुसार इस प्रभाव में वृद्धि होती है। तीन अरब प्रकाश वर्ष की दूरी वाली आकाश गंगाएं ७० हजार किलोमीटर प्रति सेकेण्ड के हिसाब से पीछे हट रही है, यानी प्रकाश की गति से आधी गति से। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि मेटा- आकाशगंगा फैल रही है।

तृतीय आयोजना काल में

शीघ्र बढ़ने वाले वृक्षों का आरोपण

लखनऊ—तृतीय आयोजना कालमें ३२,००० एकड़ भूमि में युक्लिप्टस और बांस जैसे शीघ्र बढ़ने वाले वृक्षों का आरोपण किया जायगा।

यह आरोपण वर्तमान वित्तीय वर्ष मे ३,५०० एकड में १९६३।६४ में ६,७०० एकड मे, १९६४।६५ में १०,५०० एकड क्षेत्र मे किया जायगा प्रदेश में पहली बार गूदेदार सामग्री को बढ़ावे का प्रयत्न किया जा रहा है। आशा है कि दस वर्ष पश्चात रेयान, कागज तथा अन्य सम्बन्धित उद्योगों में प्रयोग के लिए एक लाख टन गूदेदार सामग्री का उत्पादन हो सकेगा।

रेयन तथा कागज उद्योगो की भावी मांग को पूरा करने के लिए आगामी वर्षों में यह आरोपण क्षेत्र बढ़ाकर एक लाख एकड कर देने का प्रस्ताव है जिससे २,५०००० टन गूदेदार सामग्री पैदा की जा सके।

एक समाज शास्त्रीय अध्ययन

ग्रेट ब्रिटेन का विघठनोन्मुख सामाजिक ढाँचा

● लेखिका
श्रीमती शशिप्रभा डीर
एम० ए० बी० टी

आज हम विश्व के किसी भी देश में जाय, एक प्रवृत्ति दृष्टिगोचर हो रही है, सामूहिक रूपसे राष्ट्र समृद्ध होते जा रहे हैं, हर देश 'नेशनल औटार्की' (राष्ट्रीय आत्म-निर्भरता) के लक्ष्य को अपने सामने रखकर अपना आर्थिक नियोजन कर रहा है, हर देश मे उन नागरिकों का प्रतिशत बढ रहा है जो अपनी रोजी स्वय कमाने लगे हैं, इन नागरिकों मे महिलाओं की सख्या भी नित्य-प्रति बढ़ती जारही है और हर देश मे परिवार टूट रहा है, सामाजिक नियत्रण ढीला पड़ता जा रहा है। इसे समाज शास्त्री 'सामाजिक विघठन' की सज्ञा देते हैं। प्रस्तुत लेख की विद्वान लेखिका ने 'लोकतत्र की जननी' ग्रेट ब्रिटेन के सामाजिक ढाचे का अध्ययन कर उक्त प्रवृत्तियों की ओर हमारे पाठकोंका ध्यान आकर्षित किया है।—स०

जहाँ आधुनिक मशीनी सभ्यता ने आज के समाज को अनेकानेक सुविधाओं तथा सम्पदाओं से विभूषित किया है वहां अनेकानेक सामाजिक समस्याओं को भी जन्म दिया है। पुरानी मान्यताओं- मूल्यों, व्यवस्थाओं स्थिति तथा भूमिकाओं, परम्पराओं प्रथाओं, सस्थाओं तथा आचार व्यवहारों को आमूल परिवर्तित कर डाला और इस आमूल परिवर्तन का प्रभाव पड़ा व्यक्ति, परिवार तथा समाज पर, पुरानी व्यवस्थाओं के परिवर्तित होने तथा नई व्यवस्थाओं के पूर्ण रूपेण विकसित न होने के कारण आज का पूर्वोत्तर तथा पाश्चमीय दोनों ही समाज गम्भीर सामाजिक विगठन की प्रक्रिया के मध्य से गुजर रहे हैं। विगठन के लक्षण आज ससार के सभी समाजों मे विद्यमान है। वैसे विगठन की प्रवृत्तियां कुछ न कुछ रूप से हर व्यवस्था में विद्यमान रहती है हर काल में, हर समाज मे, लेकिन अब विगठित प्रवृत्तियां बहुतायत से समाज में घर करने लगती हैं तो परिणाम स्पष्ट ही है। समाज को नियत्रण करने वाले अकुश, मान्यता, उपादेयता तथा प्रभाव खो बैठते हैं। और फलस्वरूप समाज में अराजकता, बर्बरता तथा अमानवीय व्यवहार मानवीय व्यवहारों को निष्कासित करने लगते हैं। ठीक उसी प्रकार जबकि खोटे सिक्कों के अधिक प्रचलन से अच्छे सिक्के बाजार से लोप होने लगते हैं। आज हर व्यक्ति यही कहता नजर आता है कि जब सब ही बेईमान, चोर, अनैतिक तथा भ्रष्टाचारी हो चुके हैं तो मैं ही नैतिकता का तथा सदाचार का ढोल कब तक पीटता रहूगा, फलत राजा के दूध के तालाब की भांति हो रही है। हमारा समाज, समाज को नियन्त्रित करने वाले अकुश 'आन्तरिक' तथा वाह्य दो रूपों मे समाज की प्रवृत्तियों को दबाये रहती है।

आन्तरिक क्षेत्र में धर्म, चरित्र, आदर्श, मानवता आदि आते है। जो मनुष्य बुद्धि तथा विवेक से वशीभूत कर स्वय को नियन्त्रित करता है। सो आज यह सब तो कहने की ही बात रह गई है। हर व्यक्ति दूसरे को सुधारने तथा समझाने के लिये इनका प्रयोग करता है। अपने लिए नहीं, मन्दिर मसजिद प्रेरणा पाने के स्थान न रहकर सुरक्षा तथा सम्पन्नता के वरदान मागने के भव्य भवन रह गये हैं। नियत्रण के वाह्य रूप के साधन हैं। राजकीय कर्मचारी विशेष रूप से पुलिस, सो इनके विषय मे कुछ लिखना लेखनी का दुपयोग मात्र रह गया है। कहने वाले कहते ही हैं कि रक्षक भी भक्षक हो गये, बाड़ भी उजाड़ खाने लगी। दुर्भाग्य की न पूछिये, कल के स्वतन्त्रता सग्राम के बचे खुचे सैनानी, अगुली में गिने हुओं को छोड़कर आज जिस विभत्स रूप में अपने देश को पराया समझकर अपनी अपनी स्वार्थ पूर्ति हेतु जन धन, सम्पदा क्षणिक यश तथा साज के लिये देश से खिलवाड़ कर रहे हैं। उससे तो लगता है कि ८० प्रतिशत शिक्षित जनता से पूर्व राष्ट्रीयता का पाठ पहले इन्हे ही पढ़ाना होगा। लेकिन समस्याएं जहां की तहां ही रह गईं। पढ़ाइयेगा कौन? इन विषयो पर कोई बात कीजिये तो बड़े ही हल्केपन से तथा हंसी ठट्ठे में हमारे देश के नागरिक तथा हमारे देश के नेता उड़ा देते हैं।

★ स्मरण हो आती है विवेक नद जी की यह पक्तियां 'हरएक बात को हल्केपन से उड़ाना सिरियसली न लेना गुलाम का स्वभाव होता है। फिर अनायास ही सवाल हो उठता है तो अभी हम दिमागी रूप से गुलामी में ही झूम रहे हैं। यह मानसिक दासता हमें कब पटकेगी कुछ समझ में नही आता है। चाहते हैं हिन्दी को राष्ट्रभाषा नेता जी समर्थन में व्योरेक्रेट भी हामी भरेगा, लेकिन पुत्र पुत्री को बेड से सीखकर जब तक 'ममा' 'पापा' न कहे उनके शिक्षित होने का गौरव ही पूरा नहीं हो पाता इनकी नकल में बेचारा निम्न मध्यवर्गीय वर्ग बाबुओं, अध्यापकों तथा छोटी आय भोगी भी 'ममी' पापा सुनने की लालसा पेट काट कर दस दस पन्द्रह २ रुपये फीस देकर शिशु की नई व्यापारशालाओं के रूप मे खुले हुए 'चिल्डरन एकेडमियों' मे भेजकर पूरी करते हैं। कहावत है कौवा चला हंस की चाल की नकल, तन तन के (दिया दम) ● हो गये टुकडे २।

हां तो इन विगठित तत्वों से समाज को बचाने मशीनी व्यक्ति वादी तथा भुलक्कड़ी सभ्यता से अत्यन्त सामाजिक समस्याओं का विश्लेषण करने के कारण जानने हेतु भिन्न २ योरोपीय राष्ट्रों में जोर शोर से सामाजिक पहलुओं के आंकड़े एकत्रित किये जा रहे हैं ताकि उनका निराकरण कर समाज को सगठित, नियन्त्रित तथा व्यवस्थित किया जा सके। भारत में भी ऊट के मुह में जीरे की गति से प्रयत्न चल रहे हैं, जबकि भारत भाग्यवश ऐसी स्थिति में है जबकि वह दूसरे देशों के अनुभव से लाभ उठा सकता है, क्योंकि भारत को नई सभ्यता को अपनाकर उसमे समाज को नये सिरे से सगठित कर व्यवस्थित करना है। इस प्रयत्न की क्रमबद्धता में निम्नलिखित पक्तियों में दुनियां के अग्रगणी प्रजातन्त्रीय राष्ट्र इंगलैंड का चित्र सक्षेप मे आंकड़ों में देने का प्रयास किया गया है।

इंगलैंड की जनता कम गतिवान स्थापित मान्यताओं की अति विश्वासी है यहां की जन सख्या ने निष्क्रम तथा वृद्ध तत्व पर्याप्त सख्या में वर्तमान है। कुल जन सख्या का १४ प्रतिशत भाग वर्तमान मे अवकाश प्राप्त अवस्था के हैं। जो कि युद्ध से पूर्व ९ प्रतिशत मात्र थे। एक सदी पूर्व इंग्लैंड के लोगों की औसत आयु ४१ वर्ष थी जबकि आज ७० वर्ष है। युवावस्था में मृत्यु दर दिनों दिन घटती जा रही है। यद्यपि इंग्लैंड में लड़कियों की तुलना मे लड़कों के अधिक जन्म होते हैं। फिर भी जीवन के उतार-चढ़ाव मे स्त्रियों की तुलना में पुरुष अधिक मृत्यु के ग्रास होते हैं। फलस्वरूप इंग्लैंड की जनसख्या में स्त्रियां पुरुषों से १।। मिलियन अधिक हैं। औसतन औरतों की जीवनावधि पुरुषों से ६ वर्ष अधिक है। विधवाओं की सख्या विधुरों से तिगुनी है।

आकस्मिक तथा आश्चर्यजनक परिवर्तन जो आका गया है वह विवाह करने की आयु के सम्बन्ध में है। तथा कुवारे व कुवारी रहने की प्रथा विघटक है। विवाह करने की औसत आयु पुरुषों के क्षेत्र में १९३१ में २४ वर्ष थी, जबकि स्त्रियों के क्षेत्र में २३ वर्ष थी। आज वह उतर कर २३ और २१ पर क्रमश आ गई है। ५० वर्ष से ऊपर की आयु के चिर कुमारों तथा कुमारियों की सख्या का प्रतिशत भी घटकर ८ प्रतिशत ही रह गया है।

★ यद्यपि जन्म दर अभी भी मृत्यु दर से अधिक है फिर भी जन्मदर मृत्युदर की तुलना में घट रही है। फलस्वरूप जन सख्या की बढ़ोत्तरी मन्द गति से हो रही है। १९३० से अब इंग्लैंड की माताओं की सन्तानोत्पादन क्रिया अधिक तीव्र हो गई है। जो औसत सख्या १९३० में एक माता के शिशु जनन की थी वह आज बढ़ गई है। फलत जन सख्या के घटने की कोई आशका नहीं रही है। यद्यपि माताओं की जनन शक्ति के बढ़ने से परिवार के आकार बढ़ने की सम्भावना है। किन्तु व्यक्ति वादी विचार धारा के जोर पकड़ने से शीघ्र पृथकता आ जाती है, जिससे सामाजिक रूप से परिवार का आकार बढ़ने नहीं पाता।

आज प्राय ८० प्रतिशत जनता शहरों में रहती है, जबकि एक शताब्दी पूर्व ५० प्रतिशत ही रहती थी और इस ८० प्र० श० में ४० प्र० श० ही मे रहती है। लन्दन बिर्मिन्घम, लीड्स ब्रैडफोर्ड, मैनचेस्टर, लीवर पुल तथा न्यूकैसल, यद्यपि आवास की समस्या का बहुत कुछ निदान कर दिया गया है, फिर भी १५ लाख लोग आज भी सयुक्त रूप से रहते हैं। इनमें से अधिकांश विवशता से अपने ससुरालय में ही विरा-

समान रहती हैं। सम्पूर्ण आवास स्थलों के एक तिहाई में अभी निश्चित स्नानागार नहीं हैं और करीब ९० लाख मकानों के समीप पानी की व्यवस्था नहीं है।

१५ वर्ष की अवस्था के सब बच्चे स्कूल जाते हैं। लेकिन इस अवस्था से ऊपर शिक्षा जारी रखने वाले बच्चों की संख्या यद्यपि १९२१ से २॥ गुनी बढ़ गई है, यद्यपि कुल १५ प्र० श० ही है। ९२ प्र० श० बालक राजकीय व सहायता प्राप्त विद्यालयों में पढ़ते हैं। ७ प्र० श० स्वतन्त्र प्रकार के विद्यालयों में और केवल १ प्रतिशत इंग्लैंड की प्रसिद्ध २० पब्लिक स्कूलों में, 'अनस्किल्ड' मजदूरों के बच्चों को अब भी बहुत ही न्यून मात्रा में ग्रामर स्कूलों में प्रवेश मिलता है। श्रमिकों के बच्चों की संख्या अन्य विश्व विद्यालयों में २६ प्र० श० है। जबकि ऑक्सफोर्ड तथा कैम्ब्रिज में १३ प्र० श० तथा ९ प्रतिशत क्रमश ही हैं। सहायता प्राप्त विश्वविद्यालयों के छात्रों की संख्या युद्ध के पूर्व ३० प्र० श० से ७७ प्रतिशत हो गई है।

विश्वविद्यालयों से प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण स्नातकों में अधिकांश अध्यापन कार्य में खप जाते हैं। तत्पश्चात लोक सेवाओं में, और व्यापार में, किंतु वकालात जैसे बुद्धिजीवी व्यवसाय में सबसे कम संख्या में ये स्नातक जाते हैं और धार्मिक कार्यों में जाने वालों की संख्या अति न्यून है। डिग्रियों, प्रमाण पत्रों तथा मान्यता प्राप्त पारितोषकों की संख्या बहुत बढ़ गई है। अतः योग्यता इस अवसर तथा आवेदन की पृष्ठ-भूमि से अधिक महत्ता रखने लगी है। इस प्रकार सामाजिक तथा व्यवसायिक उतार-चढ़ाव अधिक नियमित रूप से होने लगी है। यदि व्यवसायों से रोजी कमाने वाले लोगों को सात प्रमुख व्यवसायों में बांट दिया जाय तो ३८ प्रतिशत उच्च स्तर पर कार्य करने वाले पिताओं के पुत्र क्रमश. निम्न व्यवसायिक स्तर पर आते जाते हैं। जबकि ७३ प्रतिशत निम्न स्तरीय व्यवसाय में पिताओं के पुत्र उच्च व्यवसायों की ओर बढ़ते हैं।

आज भी सेवाकाल के दरमियान पदोन्नति आश्चर्य-जनक गति से हो रहा है। व्यवसायिक फर्मों के मैनेजरों के सर्वेक्षण पर ज्ञात हुआ कि आधे से अधिक उनमें से सामान्य शिक्षा प्राप्त है २१ प्रतिशत ग्रामर स्कूलों की शिक्षा प्राप्त थे, तथा १९ प्रतिशत मात्र ही पब्लिक स्कूलों के शिक्षा प्राप्त थे। इनमें आधे से अधिक ने इन फर्मों शारीरिक श्रमिक के रूप में प्रवेश किया था। लोकसेवाओं में उप-सचिवों के पदों पर १९१९ में ९ प्र०श०, १९५० में १५ प्रतिशत और वर्तमान समय २९ प्र०श० मात्र बच्चे उच्च वर्गीय पिताओं के रह गये हैं। पादरियों के क्षेत्र में अलबत्ता अभी उच्च वर्गीय लोगों का ही बोलबाला है।

अन्य देशों की भांति इंगलैंड में भी उन लोगों की संख्या घटती जा रही है जो कि वास्तव में उत्पादन के कार्य में रत है, तथा उन लोगों की बढ़ रही है, जो कि व्यवसायिक, टैक्निकल, क्लर्कीकल व्यवसायों में हैं। किंतु यह औसत अमेरिका से कम ही है। जहां कि आधी से अधिक जनसंख्या अनुत्पादक कार्यों में रत है। प्राय पुरुष जनसंख्या का २२ प्र०श० वेतन भोगी हैं। तथा ७९ प्र श. वेज अरनर्स (मजदूरी कमाने वाले है। ७ प्र०श० कृषि कार्य में २६ प्र०श० न तो कृषि कार्य में हैं, न शारीरिक कार्य में हैं, न शारीरिक काय में ६४ प्र०श० कृषि को छोड़कर अन्य शारीरिक कार्यों में तथा ३ प्र०श० प्रतिरक्षा कार्य में रत हैं।

आय का वितरण युद्ध के पूर्व की स्थिति की तुलना में वर्तमान समय में अधिक समानता लिये हुये। जब कि व्यक्तिगत सम्पत्ति का वितरण अभी भी प्राय: असमान है, सम्पत्ति अधिकारियों का डेढ़ प्रतिशत (१ हजार पौंड मूल्य की सम्पत्ति प्रति व्यक्ति के अनुसार) ५४ प्रतिशत कुल व्यक्तिगत सम्पत्ति पर अधिकार जमाये हैं। ६४ प्रतिशत सपत्ति अधिकारी (प्रति व्यक्ति सौ पौंड की सम्पत्ति) ३ प्रतिशत व्यक्तिगत सम्पत्ति के अधिकारी हैं। देश के आधे परिवारों के पास औसतन ५० पौंड से भी कम की कुल पूंजी तथा सम्पत्ति आती है। ४ प्रतिशत प्रतिशत परिवार ही सौ पौंड व इससे अधिक मात्रा के स्टाक तथा शेयरों के स्वामी हैं।

लगभग समूची जनसंख्या के धनोपार्जनव कार्यों में लगे रहने तथा आर्थिक विकास के कारण सामान्य उपभोग के स्तर में आश्चर्यजनक परिवर्तन ला दिया है। धन का अत्यधिक व्यय यात्रा मनोरंजन, गृह उपभोग की स्थाई वस्तुओं, तथा मोटरों पर किया जाता है। इसके विपरीत गृह-सेवाओं, इन्शोरेंस सेवाओं तथा मादक द्रव्यों का सेवन का व्यय घट गया है। इधर कुछ वर्षों से इंगलैंड वासियों में सिगरेट पीने की प्रवृत्ति में वृद्धि तथा शराब पीने में बढ़ोत्तरी दृष्टिगोचर हो रही है। कठिनता से तिहाई मनुष्य तथा नगण्य स्त्रियां सप्ताह में एक से अधिक बार सुरा का सेवन करते पाये जाते हैं। भोजन पर युद्ध से पूर्व से अधिक व्यय किया जाने लगा है। साथ ही भोजन भी अधिक मूल्यवान खाया जाता है। अपौष्टिक भोजन यद्यपि बहुत अधिक लोगों के लिये कल की बात हो गई है, फिर भी श्रमिकों के बहुत से परिवारों में आज भी पौष्टिक भोजन प्राप्त नहीं है। स्वास्थ्य-स्तर यद्यपि उत्तरोत्तर ऊंचा उठता जा रहा है। तथापि निम्न मध्य तथा उच्च वर्ग सब ही में शिशु कालीन मृत्यु की दर पूर्ववत दुगुनी चल रही है। समाज कल्याणकारी सेवाओं ने यद्यपि युद्धपूर्व की अधिकांश दरिद्रता को नष्ट कर दिया है, तथापि वृद्ध वर्ग का जीवन अब भी अभाव तथा कठिनाइयों से ही घिरा हुआ है। यदि सम्पन्नता की तुलना अमेरिका से की जावे तो केवल १० प्र श के पास मोटरें हैं। ८ प्र श के पास कपड़े धोने की मशीनें हैं तथा ४ प्र श के पास रेफ्रिजेटर है।

●

❀ चार रुबाइयां ❀

लेखक—धरणीधर डंगवाल 'निर्बल'

—●—

(एक)

जिस उम्र की दुपहर ने जवानी का न पाया कोहरा,
जिस ख्वाब के शीशे पे उगा हो न रेशमी चेहरा,
बहलाये अपने दिल को वो देकर के हवाला ऐसा—
'क्या करू बन्दिशे धूप का, दुनिया बिठाये थी पहरा।

(दो)

प्रीत के जादुई हाथों से जले दिल का चिराग,
वेवा उदासी से छलक जाये दुल्हन का सा शबाब,
मेला खिजाओं पे लगे नग्मये बहारों का—
आने मैकद से लगे गीता औ, बाइबिल की आवाज।

(तीन)

सोच दी जिसने सरहद गम की और खुशियों की,
नापकर पीव जिन्दगी के इन पैमानों से—
मुझको हमदर्दी है नादाँ तेरी इस जुर्रत पर,
देखना गर था हिसाब, पूछता मैखानों से।

(चार)

गीत है जवानी गर, प्यार है महफिल उसकी,
राह भी यहीं से शुरू खत्म भी मन्जिल उसकी।
जिसके ओंठो से रही दूर मुहब्बत की शराब—
कहके उसे 'जिन्दगी' ऐसान उड़ाऊंगा मजाक।

२०९७ पहाड़ी गांवों में

भू-अभिलेख तैयार

जिला नैनीताल, अल्मोड़ा जिले की तहसील रानीखेत, टेहरी जिले की तहसील टेहरी और प्रताप नगर और सपूर्ण चमोली जिले के पहाड़ी हिस्सों में मालगुजारी निश्चित करने के लिए भूमि की पैमाइश का नाप समाप्त कर लिया गया है। उत्तर काशी जिले में भी यह कार्य समाप्त प्राय है। जिन स्थानों पर पैमाइश कर ली गयी है, वहां की तहसीलों के लिए मालगुजारी के निर्धारण का काम शीघ्र ही किया जायगा।

वर्ष १९५५-५६ में नैनीताल, अल्मोड़ा, पौड़ी एवं टेहरी गढ़वाल के चारों पहाड़ी जिलों में पैमाइश और भू अभिलेख तैयार करने का काम शुरू किया गया। इन जिलों में भू सर्वेक्षण और अभिलेख तैयार करने का काम बाद में शुरू किया गया।

गत वित्तीय वर्ष की समाप्ति तक तीन लाख एकड़ से अधिक भूमि की पुन पैमाइश की गयी और दोनों डिवीजनों के २०९७ गावों में भूमि सबंधी अभिलेख तैयार किये गये।

विनिमय व्यापार की गुंजाइश समाप्त हो जाने के बावजूद

भारत-तिब्बत, भारत-नेपाली सीमा-क्षेत्रमें नूतन निर्माण का व्यापक वातावरण

भारत तिब्बत व्यापार संधि के विगत २ जून से समाप्त हो जाने के कारण कतिपय क्षेत्रो में चिंता का वातावरण घिर गया था। तिब्बत से व्यापार मे संलग्न व्यक्तियों की रोजी रोटी का क्या होगा ? उनको कौन से उद्योगो व कार्यों में लगाया जाय कि उनकी आजीविका का प्रश्न हल हो सके।

परन्तु उत्तराखण्ड के इस जिले में जो तीव्र विकास की प्रक्रिया चल रही है उसमे इस प्रकार की चिन्ताएं व्यर्थ सिद्ध हुई हैं। आज इन सीमावर्ती निवासियो के लिये अजीविकोपार्जन के सहस्रों मार्ग खुले हैं। और व्यापार-संधि समाप्ति के उपरांत आज ये लोग इसका लाभ उठा रहे हैं। और सन्धि समाप्ति के उपरांत अधिकांश जनता पर कोई भी प्रभाव नही पड़ा है। बहुत से लोगों ने मोटर मार्ग निर्माण का ठेका लिया है और एक बड़ी संख्या मे लोक-भवन निर्माण व मोटर मार्ग के विशाल कार्यक्रम मे बहुत अच्छी मजदूरी कमा रहे हैं। यहा तक कि बोझा ढोने वाले व्यक्ति भी ७ रु० प्रतिदिन से १२ रु० प्रतिदिन तक मजदूरी पा रहे हैं। विशाल विकास कार्यक्रमो के कारण इनको कार्यान्वित करने के लिये मनुष्यों का मिलना दूभर हो गया है। इसी कारण मजदूरी की दरें बहुत अधिक बढ़ गई हैं। बेकारी का प्रश्न तो इन क्षेत्रो के लिये आज दूर की कल्पना मात्र है।

परन्तु इसमे भी एक बड़ी बात हुई है जिसका कि अत्यन्त दूरगामी लाभकारी प्रभाव हो रहा है और होगा। यह तथ्य है इस प्रदेश के निवासियों द्वारा उत्पादक कार्यों में अधिकाधिक अभिरुचि लेना। ये लोग अब अच्छी नस्ल की ऊन पैदा करने वाली भेड़ें पाल रहे हैं। पहले केवल यातायात मात्र के लिए भेड़ें पाली जाती थी, अब तेजी के साथ यहा के निवासी फलों के वृक्ष लगा रहे हैं। जड़ी बूटी उत्पादन का कार्य भी तेजी से चल रहा है। बहुमूल्य जड़ी बूटियो का विक्रय कर अच्छीखासी आमदनी यहा के लोग कर रहे हैं। साग भाजी दुधारू गाय भैंस पालना, बकरी पालना, कुक्कुट पालन, ऊनी माल तैयार करने के उद्योग इन सब कार्यों का विस्तार बड़ी तेजी से हो रहा है। स्थान स्थान पर दूकानें जीवन की कठिनाइयों को कम कर रही हैं। सरकारी संस्थाओं व नेताओ के अतुल विस्तार से न केवल आजीविकोपार्जन के साधनों की वृद्धि हुई है वरितु उन्नत-जीवन का मार्ग भी प्रशस्त हुआ है। उच्चतम शिक्षा की सुविधायें यहा अब उपलब्ध है। अधिकतम छात्र छात्राओं को छात्र-वृत्तिया दी जा रही हैं। स्वास्थ्य सेवाओं का विस्तार किया जा रहा है। अत वास्तव में व्यापार संधि विच्छेद एक छिपा वरदान सा सिद्ध हो रहा है। जो लोग अपने घर बार मे जान जोखिम में डाल कर साल भर व्यापार की चिंताओ में लगे रहते थे और जमीन जायदाद व बच्चो की लापरवाही से रहते थे आज अपने घर बार, खेती-बाड़ी, पशुधन इत्यादि के सुधार मे लगे रहे हैं। इससे चिरस्थायी लाभ होगा।

यह तथ्य जिलाधीश महोदय के व्यास चौदास पट्टियो के ६ सितम्बर से १७ सितम्बर तक के १२ दिवसीय भ्रमण से प्रकट हुये। सीमा क्षेत्र के निवासी बहादुरी से स्थिति का सामना कर रहे हैं और स्थान स्थान पर विकास कार्यो में दत्तचित होकर जुटे हैं और सरकार द्वारा दी गई सुविधाओ का लाभ उठा रहे हैं। जिलाधीश महोदय ने इस अत्यन्त दुर्गम भू-भाग में वर्षाकालीन कठिन परिस्थितियो में भी जब सारे रास्ते खतरनाक ढंग से टूट फूट गये थे १२० मील पैदल तथा १०८ मील जीपयात्रा कर ग्राम ग्राम जाकर स्थितिकी जानकारी प्राप्त की और अधिकतम ग्राम निवासियो से सपर्क स्थापित किया। उन्होने ३० वृहद सभाओ में भाषण किया व जनता की मागो को सुना। उन्होने अनेकानेक राजकीय संस्थाओ व योजनाओ का तथा उनके द्वारा जनता पर पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन किया। जहा कहीं भी जिलाधीश गये वहां उनका जनता ने उत्साहपूर्वक व सहज रुप से स्वागत किया, क्यो कि वे ऐसे शासन का प्रतिनिधित्व करते हैं जो सीमा क्षेत्र की जनता की भलाई व कल्याण के लिए चिंतित हैं और इसके लिये हर संभव उपाय कर रहा है।

अपने भाषणो व जनता के बीच वार्ता में जिलाधीश ने बताया कि चीन के नृशंस व्यवहार ने तिब्बतियो के साथ हमारे मैत्रीपूर्ण संबन्धो को समाप्त कर दिया। पहले मैत्री का भुलावा देकर जबरन उसने हमारी कई हजार वर्गमील भूमि पर अधिकार कर लिया है और अब हटने का नाम नहीं ले रहा है और उल्टे भारत पर अतिक्रमण के आरोप लगा रहा है।

अत ऐसे राष्ट्र के साथ व्यापार संधि बनाये रखना हमारे राष्ट्रीय सम्मान के भी प्रतिकूल है। जिस किसी को भी अपने देश से प्रेम होगा वह कभी भी राष्ट्रीय सम्मान को बनाये रखने के लिए संधि-विच्छेद के नियमो का पूर्ण पालन करेगा। चाहे कितनी ही कठिनाई हमे उठानी पड़े।

फिर आज इस क्षेत्र में फलोद्यान लगाना, जड़ी-बूटी पैदा करना, ऊन के लिये भेड़ पालना, दुधारु गाय भैंसो को पालना, सहकारी उपसमितियो के संगठन से भवन निर्माण, मोटरमार्ग निर्माण इत्यादि के ठेके लेकर तथा उद्योग धंधो मे काम करके स्थाई सम्पन्नता के साधन अपने गाव मे तथा क्षेत्र में ही पैदा कर सकते हैं। तिब्बत के व्यापार में जितनी जोखिम है साथ ही साल में अधिकांश समय घर व परिवारसे दूर रहना पड़ता है। अब घर पर रहकर उत्पादन कार्य करने से इन क्षेत्रो की दशा सुधर सकेगी। राष्ट्र की उत्पादक क्षमता भी बढ़गी। जहा तक ऊनी कारोबार का सम्बन्ध है उन्होंने बताया कि आस्ट्रेलिया से प्राप्त ऊन तिब्बती ऊन से केवल २ न० पै० प्रति सेर महगी पड़ती है और इसका रेशा लम्बा तथा ऊन साफ होती है। इस ऊन का पर्याप्त स्टाक उद्योग-विभाग के पास रखा है। अत. आगामी से पूर्ववत ऊनी सामग्री बनाने का कार्य चालू रह सकता है। फिर उन्होंने कहा कि मोटर मार्ग के बनने से तैयार माल साग सब्जी, जड़ी-बूटी, फल-फूल बड़ी मात्रा में बाहर भेजे जा सकते हैं। उच्च शिक्षा की सुविधायें प्राप्त हो जाने के कारण यहां के युवक युवतियों को विभिन्न सेवाओं में प्रवेश का अच्छा अवसर मिल गया है। उन्होने इस बात पर सीमा-वासियो की प्रशंसा भी की उन्हो ने इन दिशाओं में पर्याप्त रुप से कार्य प्रारम्भ कर दिया था तथा इन लोगो में राष्ट्र प्रेम की उत्कट भावना थी। लेकिन हो सकता है स्वार्थ-वश कुछ लोग व्यापार संधि-विच्छेद के प्रतिकूल कार्य करें। ऐसे लोगो के खिलाफ कठोर कार्यवाही की चेतावनी जिलाधीश महोदय ने दी। [क्रमश]

टेन्डर नोटिस

निम्नलिखित कार्यों के लिये मुहर बन्द टेन्डर निम्नलिखित हस्ताक्षर कर्त्ता के कार्यालय नैनीताल में दिनाक २३-१०-६२ को दिन के २ बजे तक लिए जायेंगे। टेन्डर फार्म तथा विशेष विवरण कार्यालय से छुट्टी के दिनो के अलावा प्राप्त किए जा सकते हैं।

क्र० सं०	कार्य का माप	अनुमानित लागत	बयाने रकम	टेन्डर फार्म की कीमत	कार्य पूर्ण करने की अवधि
	जिला अल्मोड़ा चम्पावत ब्लाक।				
१	पावर चैनल मय अल्प ड्रेनेज कार्य का निर्माण	१-५० लाख	३०००	२०	६ माह
२	कोलेक्टिंग टैंक व स्केप का निर्माण	९०००	२००	३	४ माह
३	विद्युत भवन का निर्माण	३६०००	८००	९	६ माह
४	सबसिडेहरी भवन का निर्माण	२४०००	५००	७ ५०	६ माह
५	जीप परिवहन योग्य रोड का निर्माण	२००००	४००	६	३ माह

ह० हरिवल्लभ
अधिशासी अभियन्ता
कुमाऊ सिंचन खण्ड, नैनीताल।

अफ्रीका का एक और देश जो ९ अक्तूबर को आजाद हुआ

युगाण्डा जिसमें बुगान्डा, तोरो, बन-योरो और अंकोले शामिल

● लेखक
डा० ए० पी० मेथ्रर

यूगाण्डा को आन्तरिक स्वशासन के अधिकार मार्च १,१९६२ को प्राप्त हुए थे जब इसके मुख्यमन्त्री, श्री बेण्डिक्टो किवानुका, ने प्रधान मन्त्री का पद समाला। श्री किवानुका के मन्त्रिमण्डल में १४ सदस्य थे— १२ अफ्रीकी, एक ब्रिटिश और एक भारतीय। आंतरिक स्वशासन में विदेशी मामलों, प्रतिरक्षा सैन्य बलों, आंतरिक सुरक्षा और पुलिस को छोड़कर अन्य सभी विभागों की जिम्मेदारी इस नयी सरकार को दी गयी।

अक्तूबर ९, १९६२ को यूगाण्डा द्वारा स्वाधीनता प्राप्त करने के पश्चात उक्त विभाग भी अफ्रीकी मन्त्रियों को दे दिये जायगे। इस राज्य क्षेत्र की स्वतन्त्रता के लिए यह तारीख इसलिए निश्चित की गयी, क्योंकि लन्दन में स्वाधीन यूगाण्डा का सविधान बने इस दिन एक वर्ष पूरा हो जाता है। ब्रिटेन ने इस नये राज्य को अनुदानों और ऋणों के रूप में लगभग १,५०,००,००० पौंडों (२० करोड़ रुपये) की सहायता देना स्वीकार किया है।

स्वशासन के अधिकार दिये जाने के एक सप्ताह पश्चात राष्ट्रीय सभा को आमचुनाव की तैयारी के लिए विघटित कर दिया गया ताकि यह निश्चित किया जा सके कि स्वाधीन यूगाण्डा की प्रथम सरकार का नेतृत्व कौन करे। विगत कुछेक वर्षों से स्वाधीन होने वाले अधिकतर देशों में जिस प्रधान मन्त्री को अन्तिम सत्ता हस्तांतरित की गई वह वही व्यक्ति रहा है जो पहले अंशत. निर्वाचित और अंशत असैनिक सेवकों की मिलीजुली कार्यपालक परिषद में मुख्य मन्त्री रह चुका होता है। किन्तु यूगाण्डा मे अप्रैल २५ को जो चुनाव किये गये उनमें बिल्कुल नयी सरकार सामने आयी।

इस असाधारण स्थिति का कारण यूगाण्डा की असाधारण परिस्थिति है। इस देश का नाम उस अफ्रीकी राजतन्त्र के नाम पर रखा गया है जिसमें इसकी जनसख्या के चौथाई लोग रहते हैं। बुगाण्डा इसका नाम है और इस शताब्दि के प्रारम में इसने ब्रिटेन से अपनी अलग सन्धियां की थीं—इन करारों द्वारा इसके शासक, कबाका और उनकी परिषद की स्थिति प्रत्याभूत करदी गई थी, और सदा से वे इस बात पर जमे रह हैं कि उन्हें उस किसी भी सविधान को अस्वीकार कर देने का अधिकार होगा जो उन्हें किसी व्यापक यूगाण्डा के अधीन करता होगा।

बुगाण्डा की स्थिति

सितम्बर अक्तूबर १९६१ के लंकास्टर हाउस सम्मेलन में बुगाण्डा तथा यूगाण्डा के अन्य भागों के प्रतिनिधियों म इस बात पर सहमति पायी गयी कि स्वाधीन यूगाण्डा के साथ बुगाण्डा का सम्बन्ध सघ राज्यीय हो, इसका तात्पर्य यह हुआ कि बहुत से प्रशासनिक मामलों में बुगाण्डा के विधानमण्डल को प्रभुता प्राप्त होगी।

इस करार पर हस्ताक्षर होने के समय तक यूगाण्डा विधान मण्डल में बुगाण्डा के प्रतिनिधित्व का प्रश्न बड़ा नाजुक था। कबाका का कहना था कि गवर्नर तथा ब्रिटेन में सेक्रेट्री आव स्टेट से उन्हें सीधे वार्ता करने का अधिकार है, किसी ऐसे विधान मण्डल मे वह अपने देश के प्रतिनिधि भेजने को तैयार नहीं हैं जिसमें वे अल्पसंख्या में होंगे। चूंकि उन्होंने यह दृष्टिकोण अपनाया था, इसलिये कबाका ने १९६१ मे हुए चुनावों का बहिष्कार करने के लिए अपनी प्रजा को मना किया।

इसमें श्री किवानुका की विजय हुई। श्री किवानुका स्वयं भी बुगाण्डा के रहने वाले हैं, किंतु इनके अधिकतर समर्थक देश के अन्य भागों मे हैं। इन्होंने बुगाण्डा की सबकी सब २१ सीटें जीत ली क्योंकि इनके समर्थकों के अतिरिक्त और कोई भी वोट देने नहीं गया।

अप्रैल १९६२ के चुनावों में स्थिति इससे भिन्न थी। लंकास्टर हाउस के सम्मेलन में जिन दो बातों पर समझौता हुआ वे ये थी बुगाण्डा के विधान मण्डल, जिसे वहां की भाषा में लुकिको कहते है, का पुनर्गठन किया जाये ताकि इसके १०० मे से ६८ सदस्य प्रत्यक्ष रूप से चुने जा सकें, तथा इन ६८ सदस्यों के चुनाव के बाद, यह इस सम्बन्ध में निर्णय लेगी कि यूगाण्डा की राष्ट्रीय सभा में बुगाण्डा के प्रतिनिधि पूरी जनसंख्या द्वारा प्रत्यक्ष रूप से चुने जाए या लुकिको द्वारा प्रत्यक्ष चुनाव किया जावे।

लुकिको के चुनाव फरवरी १९६२ में किए गये। इससे कबाका यक्का (जिसका अर्थ है अकेले कबाका) नामक दल, जो कबाका की परम्परागत स्थिति बनाये रखने का समर्थक है, की भारी बहुमत से विजय हुई।

नये प्रधान मंत्री

नयी लुकिको ने यह तय किया कि बुगाण्डा के २१ प्रतिनिधियों को वह स्वय चुने तथा स्वाभाविकतया उसने उस व्यक्ति के समर्थकों को नहीं चुना जिसने एक वर्ष पूर्व चुनावों के बहिष्कार को तोड़ा था। ये सभी निर्वाचित सदस्य कबाका यक्का के थे, यद्यपि इसका तात्पर्य यह नहीं कि स्वाधीन यूगाण्डा की सरकार के साथ सहयोग के सम्बन्ध मे बुगाण्डा किस प्रकार कार्य करे इस बारे में भी वे एकमत थे। कबाका यक्का ने यूगाण्डा पिपुल्स कांग्रेस, जिसने सबसे अधिक सीटें जीती थीं, यद्यपि पूर्ण बहुमत उसे प्राप्त नहीं था, से चुनाव गठबन्धन किया। इसका परिणाम यह हुआ कि इसके नेता, श्री मिल्टन ओबोटे, के लिये प्रथम स्वाधीन प्रधान मन्त्री बनने का मार्ग प्रशस्त हो गया।

बुगाण्डा के अतिरिक्त तीन बहुत छोटे राजतन्त्र है जिनके शासकों को भी ब्रिटेन से हुए औपचारिक करारों द्वारा मान्यता प्राप्त है। इन तीन राजतन्त्रों तोरो, बनयोरो, तथा अंकोले—के शासकों ने भी नये सविधान में विशेष मान्यता की माग की है।

लंकास्टर हाउस सम्मेलन में यह तय पाया गया था कि स्थानीय शासन में इन्हे भी वही शक्तियां प्रदान की जाए जो शेष यूगाण्डा में स्थापित जिला परिषदों को प्राप्त हों।

ब्लाक जौनपुर की क्षेत्रीय प्रतियोगिता

सांस्कृतिक कार्यक्रम, खेलकूद संपन्न

विकास क्षेत्र जौनपुर की समस्त क्षेत्रीय पाठशालाओं का आयोजित खेलकूद समारोह केन्द्र थत्यूड़ जू० हा० स्कूल मे क्षेत्रीय विद्यालय प्रति उप निरीक्षक श्री मोहनलाल बालकर की देखरेख में कार्यान्वित किया गया। खेलकूद समारोह का उद्घाटन विकास क्षेत्र के प्रगति सहायक श्री सुरेन्द्रसिंह जी रावत के कर कमलों द्वारा हुआ उद्घाटन करते हुए श्री रावत ने खेलों की उपयोगिता क्षेत्रीय स्तर जिला और मण्डलीय स्तर पर प्रकाश डालते हुए विद्यार्थियों के समक्ष सारगर्भित भाषण दिया। समस्त छात्र ध्वजा फहराते उच्चस्वर गीत गाते दो कतारों में बेसिक पाठशालाओं तथा पूर्व-माध्यमिक विद्यालयों के छात्रों ने भाग लिया। लम्बीकूद ऊंचीकूद १००।२०० ४०० मीटर की दौड़, कबड्डी, बालिकाओं की सुई धागा दौड़, म्यूजिक चियर मेढक दौड़, तथा तीन टांग की दौड़ अत्यधिक आकर्षक रहे। सध्या समय विभिन्न विद्यालयों के छात्रों द्वारा तैयार किए सांस्कृतिक कार्यक्रम प्रस्तुत किए गये। लोकनृत्य, लोकगीत, एवं विशेष व्यक्तिगत प्रदर्शनों को देखकर जनता प्रभावित हुई। क्षेत्रीय स्तर पर आयोजित युवक मंगल दल शिविर के सदस्यों ने समान रूप से कार्यक्रम में भाग लिया जौनपुर के जन-जीवन से सम्बन्धित एवं युवक मगल दल द्वारा प्रस्तुत लोकनृत्य को लोगों ने अत्यधिक पसंद किया। युवक मंगल दल के क्षेत्रीय सगठन कर्ता श्री भवानीदत्त नौटियाल ने सामूहिक पी०टी० का भव्य प्रदर्शन छात्रों द्वारा प्रस्तुत कराया। अन्त्याक्षरी, कवि दरबार कविता पाठ तथा वाद विवाद प्रतियोगिता आयोजित की गई। प्रधानाध्यापक तथा सहायक जू० हा० स्कूल थत्यूड़ अध्यापक बेसिक पाठशालायें, श्री सकलानी स०अ० पुनारथान जू०हा० कृषि अध्यापक घोड़ाखुरी तथा स० पंचायत अधिकारी श्री भारतसिंह नेगी श्री डिमरी जी तथा समस्त अधिकारी वर्ग ब्लाक जौनपुर ने अपना समग्र सहयोग प्रदान किया। अन्त में सरपंच श्री सुन्दरसिंह जी द्वारा पुरस्कार वितरित किए गए। छात्रों को सम्बोधित करते हुए प्रति उप निरीक्षक ने समस्त सहयोगियों को धन्यवाद दिया। साथ ही क्षेत्र से जिला स्तर पर प्रतियोगिता हेतु टीम का चुनाव हुआ। —सम्वाददाता

हमारा फौजी स्तम्भ

असैनिक कर्मचारियों को भी सरकारी मकान सुलभ हुये

प्राय पूछा जाता है कि दिल्ली छावनी मे काम करने वाले प्रतिरक्षा विभाग के असैनिक कर्मचारियों को राजसम्पत्ति निर्देशालय क्वार्टर क्यों नहीं देता, जबकि नगर भत्ता और अशदायी स्वास्थ्य योजना आदि के लिए छावनी और दिल्ली व नई दिल्ली का भेद नहीं किया जाता। सचाई यह है कि यह निर्देशालय दिल्ली व नई दिल्ली मे काम करने वाले सरकारी कर्मचारियों को ही क्वार्टर देता है, दिल्ली के निकटवर्ती स्थानो में नियुक्त कर्मचारियों को नहीं, क्योंकि दिल्ली व नई दिल्ली में मकानों की कमी है। प्रतिरक्षा मन्त्रालय के मन्त्री ने हाल मे यही बात कही थी कि यह जरूरी नहीं कि जिन्हें नगर भत्ता और स्वास्थ्य सेवा योजना की सुविधा मिलती है, उन्हें क्वार्टर देने भी जरूरी है।

प्रतिरक्षा व्यय से वेतन पाने वाले वही कर्मचारी क्वार्टर पाने के अधिकारी हैं जिनको ड्यूटी के स्थान पर रहना आवश्यक होता है। फिर भी रक्षा सेवाओं की आवश्यकता से बचे हुये मकान असैनिकों को भी दे दिये जाते हैं। दिल्ली छावनी और पालम के सैनिक हवाई अड्डे में ऐसे कर्मचारियों को क्रमश २९५ और २८८ सरकारी मकान दिये गये हैं।

कांगो में भारतीय फौजों का दशहरा

कांगो में आजकल २-५ गोरखा रायफल्स और अन्य भारतीय यूनिटें दशहरा मनाने की तैयारियों में व्यस्त हैं। इसलिये भारतीय ब्रिगेड कमाडर ब्रिगेडियर आर० एस० नरोन्हा के आदेशानुसार दो दर्जन बकरे खरीदे गये हैं। वहां बकरे मुश्किल से मिलते हैं इसलिये वे २०० मील दूर आबिले से बड़ी कठिनाई से मगाये गए हैं। दशहरा गोरखों का सबसे बड़ा त्योहार है। इसलिये ५ गोरखा रायफल्स के कमांडिंग आफिसर लेफ्टिनेंट कर्नल जेड० सी० बख्शी और सैनिकों ने ७ अक्टूबर को धूमधाम से दशहरा मनाने का कार्यक्रम बनाया है।

दौड़ में नया रिकार्ड

गाजा मे सयुक्त राष्ट्र सेना में सिखरेजिमेंट की दूसरी बटालियन के सैनिकों ने दौड़ का नया रिकार्ड कायम किया। उन्होंने ३५ किलोमीटर की दूरी एक घटा, ३४ मिनट ३७ सेकेन्ड में तय की। इससे पहला रिकार्ड भारतीय सेना की ४ राजपूत बटालियन का था। सिख बटालियन ने राजपूत की अपेक्षा इस दौड़ में २ मिनट ५५ सेकड कम लगाये। डेनोर बटालियन १ घटा ४१ मिनट और ५० सेकट लगाकर दौड़ मे दूसरी और स्वीडन के सैनिक १ घटा, ४८ मिनट और १२ सेकड लगा कर तीसरी रही।

दौड़ने वालों को देखने के लिये यूनेफ के अफसर भारी सख्या मे डेनोर चौकी पर एकत्र थे।

भारतीय नौसेना का आई० एन० एस० 'शिवाजी'

दुनिया में जहाज का सबसे ऊंचा क्वार्टर-डेक किसी सागर, झील अथवा नदी मे नहीं है बल्कि पश्चिमी घाट में है। यह है भारतीय नौ सेना का आई० एन० एस० शिवाजी। यह जहाज चाहे स्वय कभी समुद्र की यात्रा न करे परन्तु इसने हजारों युवकों को समुद्र की लहरों पर जीवन बिताने के योग्य बनाया है। यहीं पर भारतीय नौ सेना के नौ सैनिकों को आर्टिफसर अप्रेंटिस जहाज रानी और बिजली इजीनियरी, आर्डनेन्स, मिडशिपमैन आदि को ट्रेनिंग दी जाती है।

१९३८ तक भारतीय नौसेना दूसरे देशों की नौसेना से पिछड़ी हुई थी। इसलिये ब्रिटेन के नमूने पर आर्टिफिसर अप्रेंटिस, ट्रेनिंग शुरू की गई और १९६१ में १९ आर्टिफिसरों के पहले दल ने ट्रेनिंग शुरू की। लड़ाई के दिनों में नौ सेना का विस्तार होने से बहुत से कारीगरों की आवश्यकता पड़ी। उजाड़ जगल को साफ करके जमीन समतल की गई, सड़के बनी और बरसाती पानी एकत्र करने के लिये एक जलाशय बनाया गया। इस प्रकार आई० एन० एस० शिवाजी की स्थापना हुई।

बहुत से युवक स्नातक १९४५ से आई० एन० एस० 'शिवाजी' में चार साल तक जहाजरानी, बिजली इजीनियरी, आर्डिनेंस और जहाज सम्बन्धी विभिन्न कामों की ट्रेनिंग प्राप्त कर चुके हैं। ये कुशल कारीगर नौसेना में सेवा करने के बाद देश के औद्योगिक सस्थानों और जहाजरानी की बड़ी सेवा करते हैं।

आई० एन० एस० 'शिवाजी' में नौ सेना इजीनियरी का विस्तार हुआ है। और इजीनियर अफसरों की ट्रेनिंग भी शुरू हुई है। नौसेना का इजीनियरी कालेज खुलने पर अब वहां मिडशिपमैन की ट्रेनिंग भी दी जायेगी। इस ट्रेनिंग के लिए अब तक हमारे नौ सैनिकों को विदेशों मे जाना पड़ता था।

सक्षेप में लोनावला स्थित इस नौ सैनिक सस्थान हमारी नौ सेना के लिये इजीनियरों को टेकनिकल शिक्षा देने का महत्वपूर्ण काम कर रहा है। भारत की आधुनिक नौ सेना के विकास और शिक्षुओं मे सहयोग की भावना बढ़ाने में यह सस्थान महत्वपूर्ण योग दे रहा है।

●

कावेरी पंपतिनम

भारतीय पुरातत्व विभाग की महत्वपूर्ण खोज

भारतीय पुरातत्व विभाग की दक्षिण शाखा ने हाल ही मे मद्रास में चोल राजाओं की प्राचीन नगरी कावेरी पपत्तिनम, की खुदाई करवाई है, जिसमें बहुत सी प्राचीन वस्तुयें प्राप्त हुई है, जो वहा की प्राचीन सभ्यता पर प्रकाश डालती हैं।

कावेरी पपतिनम चोलों के समय मे एक प्रमुख पतन या बदरगाह था। यह स्थान मद्रास के शियाली ताल्लुक में है, जहा अब एक छोटा सा गाव बसा हुआ है। इस गाव के आसपास के इलाके की पुरातात्विक खोज की गई। प्राचीन समय में यह नगर कावेरी नदी के मुहाने पर स्थित प्रसिद्ध बदरगाह था। इसका उल्लेख टालमी ने पेरिप्लस (प्राचीन भूगोल ग्रथ) मे किया है। तामिल महाकाव्य 'शिलप्पदिकारम' और 'मणिमेखले' में भी इसका उल्लेख हुआ है।

खुदाई से समुद्रतट पर कई पुरानी बस्तियों के चिन्ह मिले हैं, जो ईसवी युग के आरम्भ और लगभग 'सगम' युग के हैं, कावेरी पपतिनम बहुत चलता हुआ समुद्री नगर था।

चौकोन मुद्राएं

नीदावासल से वनगिरि तक पाच मील लम्बे समुद्री तट पर, चार स्थानों पर प्राचीन अवशेष मिले हैं जैसे काले व लाल मिट्टी के बर्तन और अकीक यशस्पर आदि के मनके व मालायें। परन्तु सबसे महत्वपूर्ण वस्तु तांबे के चौकोर सिक्के हैं जिनके एक ओर पूछ उठाये हुए शेर और दूसरी ओर हाथी अंकित है।

समुद्र के पश्चिम लगभग एक फर्लांग पर किलायूर गाव के एक खेत में भूमि मे चार फुट नीचे, एक बड़ी दीवार मिली है जो बड़ी-बड़ी ईंटों (दो फिट तीन इच) की बनी है। यह दीवार लगभग १० फिट चौड़ी है। मालूम होता है यह किसी बड़ी इमारत का भाग है। इस स्थान को मगईमदम अर्थात भिक्षुणियों का मठ कहते हैं। तामिल के प्राचीन महाकाव्यों में वर्णन है कि कावेरी पपतिनम में बहुत से बौद्ध विहार थे।

रोम के सिक्के

'वेलेयन इरप्पू' नामक स्थान से तांबे के कुछ रोमन सिक्के भी मिले हैं। तामिल महाकाव्य में कावेरी पपतिनम मे यवनों का भी उल्लेख मिलता है और इस स्थान के वर्तमान नाम का अर्थ भी देवताओं का स्थान है।

इनके अलावा भी यहां ईसवी युग के आरम्भ और मध्य युग और उसके बाद की भी बस्तियों के चिन्ह मिले हैं कुछ स्थानों से महान राजराज और विक्रम चोल के सिक्के मिले हैं। मिटटी की कुछ सुन्दर मूर्तियां भी मिली हैं। सगम साहित्य मे वनगिरि सयक्काड, वेल्लेयन ईराप्प नीदावसल, मणिग्रामम आदि स्थानों के नाम आते हैं। इनसे मालूम होता है कि ये प्राचीन कावेरी-पपतिनम की बाहरी बस्तियां थीं। खोज में जो पुरानी चीजें मिली हैं, वे भी यह सिद्ध करती है कि यह बड़ा समृद्ध नगर रहा होगा।

यह खोज पिछले मार्च में, श्री के० वी० रमन ने पुरातत्व सर्वे के दक्षिण केन्द्र के सुपरिटेण्डेण्ट डा० आर० सुब्रह्मण्यम के निर्देशन में की थी।

★

'सर्व साधारण आर्यों के सम्बन्ध में मेरा निवेदन'

लेखक श्री पिशौरी लाल 'प्रेम' रेणुका जिला सिरमोर (हि० प्र०)

आर्य समाज के उच्च कोटि के नेता विद्वान, उपदेशक, साधु, संन्यासी, महात्माओं के सम्बन्ध में मैंने कुछ नहीं कहना। मैं तो केवल सर्वसाधारण आर्य समाजियों के सम्बन्ध में ही कुछ नम्र निवेदन करना चाहता हूं।

पुराने आर्य समाजियों को सिद्धान्त का पूर्ण ज्ञान होता था। उस समय के आर्यसमाजी मांस, मदिरा, तम्बाकू आदि अभक्ष पदार्थों का सेवन नहीं करते थे। आज कल के कई आर्यसमाजी इन अभक्ष्य पदार्थों का सेवन करते हैं। पुराने आर्यसमाजियों का चरित्र बहुत ऊंचा होता था। सन्ध्या, प्राणायाम, हवन यज्ञ आदि नियमानुर करते थे उनमें तप, त्याग और सेवा की भावना होती थी तथा आर्यसमाज के प्रचार की धुन होती थी। आज-कल के आर्यसमाजियों में इस प्रकार की कोई भी बात नहीं है, इस का क्या कारण है ? ऋषि निर्वाण दिवस पर इस विषय पर विचार करना है।

महर्षि दयानन्द के प्रचार से पूर्व कोई आर्यसमाजी नहीं था। इसलिए जो लोग आर्यसमाजी बने वह सब दूसरे सम्प्रदायों से ही थे जो कि वैदिक सत्य सिद्धान्तों को समझकर इनसे प्रभावित होकर आर्यसमाजी बने थे। इसलिए उनको वैदिक सिद्धान्तों का ज्ञान होता था। उस समय वह ऐसा अनुभव करते थे कि जिस प्रकार कोई व्यक्ति अमावस्या की घोर काली रात्री के गहन अन्धकार से एकाएक सूर्य के प्रकाश में आ जाये। उन्हें इस प्रकार अज्ञान अन्धकार से निकल कर ज्ञान के प्रकाश को प्राप्त करना अद्भुत वस्तु प्रतीत होती थी और जिस प्रकार किसी व्यक्ति के मन में कोई विचित्र वस्तु देख कर दूसरों को बताने की प्रबल इच्छा उत्पन्न हो जाती है इसी प्रकार पुराने [illegible] के [illegible] में भी अवैदिक सम्प्रदायों के अन्धकूप से लोगों को निकाल कर वैदिक सत्य ज्ञान के प्रकाश में लाने की स्वयं ही प्रबल इच्छा उत्पन्न हो जाती थी यह मैं जो कुछ लिख रहा हूं अपने अनुभव के आधार पर लिख रहा हूं क्योंकि आरम्भ में मैं स्वय भी पौराणिक सनातन धर्मी था जब मैं आर्य-समाज में आया और आर्यसमाज के सिद्धान्तों को समझा तो उस समय मेरे मन में भी दूसरे लोगों को आर्य समाजी बनाने की प्रबल इच्छा उत्पन्न हुई थी जैसे कोई दिवाना पागल होता है ऐसी ही मुझे आर्य समाज के प्रचार की धुन लगी हुई थी।

किन्तु आजकल के आर्यसमाजी वैदिक सिद्धान्तों के सत्य ज्ञान को प्राप्त करके आर्यसमाजी नहीं बने अपितु यह आर्यसमाजी माता-पिता की सन्तान होने से ही आर्यसमाजी हैं। या किसी कारण से आर्य-समाज में आने जाने लगे और आर्यसमाजी कहलाने लगे। इसके अतिरिक्त स्वाध्याय न करने के कारण और आर्यसमाजोंमें सिद्धांतों पर बहुत कम व्याख्यान होने के कारण भी उन्हें सिद्धांतों का ज्ञान नहीं है इसलिए इनमें आर्यसमाज के प्रचार की धुन क्योंकर हो सकती है।

मांस, मद्य, तम्बाकू आदि के सेवन का एक कारण ये है कि पहिले अभक्ष्य पदार्थों के सेवन करने वालों को आर्यसमाज का सभासद नहीं बनाया जाता था। परन्तु अब इस ओर विशेष ध्यान नहीं दिया जाता। दूसरा कारण ये है कि जिन आर्यसमाजियों के माता-पिता आर्यसमाजी होते हुए भी इन अभक्ष्य पदार्थों का सेवन करते हैं उनकी सन्तान भी उनका अनुकरण करती है। भारतीय शासन भी इसके लिए उत्तरदायी है। अन्न की कमी का बहाना बनाकर मांस भक्षण खुल्लमखुल्ला प्रचार हो रहा है। मछलियों के पालने तालाब, मुर्गी खाने, सूअर पालने आदि कार्यों को बढ़ावा दिया जा रहा है और साधारण क्लर्क से लेकर बड़े-बड़े पदाधिकारियों तक लगभग सब मद्य का सेवन करते हैं। तम्बाकू की उपज को बढ़ाने के लिए भारतीय शासन सब-कमेटिया बना रही है। इसके अतिरिक्त आर्यसमाजों में अधिकतर अमीर लोगों को लाने का यत्न किया जाता है और अमीर लोग भक्ष्य-अभक्ष्य का विचार नहीं करते। इस प्रकार दूषित वातावरण का सर्वसाधारण आर्य समाजियों पर प्रभाव पड़ना सम्भव है।

जिनके माता पिता आर्य समाजी होते हुए भी सन्ध्या, हवन आदि नहीं करते उनकी सन्तान ने सन्ध्या, हवन क्यों करना है। जहां ईश्वर और धर्म में श्रद्धा न हो वहां सन्ध्या, हवन आदि हो भी नहीं सकता। जिन लोगों के घरों में रेडियो सैट लगे हुए हैं वह प्रात सायम् सन्ध्या, हवन करने के स्थान पर रेड़ियो पर गाने सुनते है।

जब सिद्धान्तों का ज्ञान न हो, भक्ष्य-अभक्ष्य का विचार न हो, सन्ध्या, हवन आदि में श्रद्धा न हो तो आर्य समाज के प्रचार की धुन क्योंकर हो सकती है। तप, त्याग और सेवा की भावना क्योंकर हो सकती है। और चरित्र निर्माण कैसे हो सकता है। ये दोष किस प्रकार दूर हो सकते हैं इसके लिए दो सुझाव देना चाहता हूं।

१. आर्य समाज के उच्चकोटि के विद्वान, उपदेशक, प्रचारक, संन्यासियों की सेवा में मेरा नम्र निवेदन है कि जब आप प्रचार के लिए आर्य समाजों में आयें आपके व्याख्यानों के विषय हों मद्य, मांस, तम्बाकू आदि के सेवन का निषेध, सन्ध्या, प्राणायाम, हवन, यज्ञ, प्रभु भक्ति तथा वैदिक सिद्धांतों का मंडन और अवैदिक मत-मतांतरों का बलपूर्वक खण्डन। परन्तु खण्डन मधुर शब्दों में, युक्तियुक्त और वेद शास्त्रों के प्रमाणों सहित हो। कड़वे शब्दों में खण्डन न हो। जिससे किसी को चिढ़ने का अवसर न मिल सके।

(ii) उपरोक्त महानुभाव आर्यसमाज के सभासदों का पूर्ण परिचय प्राप्त करें उनके गुण, दोषों को जानने का यत्न करें। और एकान्त में एक-एक के दोषों को बड़े प्रेम से और मधुर वाणी से दूर करने का प्रयत्न करें। उनसे मांस मद्य, तम्बाकू आदि अभक्ष्य पदार्थों का सेवन छुड़ायें तथा सन्ध्या, प्राणायाम, हवन, यज्ञ आदि करने की उन्हें प्रेरणा दें। सत्यार्थ प्रकाश, ऋग्वेद आदि भाष्य भूमिका, व्यवहार भानु आदि ऋषि कृत ग्रन्थों आर्यविद्वानों के लिखे हुये ग्रन्थों के स्वाध्याय का बलपूर्वक उनसे अनुरोध करें। जो व्यक्ति जिस योग्यता का हो वैसी ही ही पुस्तकें पढ़ने के लिए उन्हें बताएं स्वयं आर्यसमाज के पुस्तकालय में पुस्तकें निकलवा कर उनके हाथों में दें। और इस प्रकार उन्हें स्वाध्याय शील बनाने का पूरा २ प्रयत्न करें। स्वाध्याय से ही सर्व साधारण आर्यसमाजी, दृढ़ आर्यसमाजी बन सकते हैं। आर्यों को सच्चे अर्थों में आर्य बनाने के सम्बन्ध में इतना लिखना ही पर्याप्त है।

सफल कौन है ?

(श्री शक्ति कुमार जी बी० ए०, सचालक आर्यसमाज यमुना नगर)

जीवन की यात्रा में वह मनुष्य ही सफल कहलाता है जो कि आत्म-विश्वासी हो।

आज का युग चाहे कितनी ही प्रगति की ओर बढ़ा चला जा रहा है परन्तु देखने में मनुष्यमात्र अशान्त है। यदि इसका कारण ढूंढे तो वह मिलेगा—आत्मविश्वास का न होना। यदि आप जीवन को आदर्श बनाना चाहते हैं, यदि आप अपने जीवन में दूसरों के लिए आकर्षण का केन्द्र बनना चाहते हैं, यदि आप अपना जीवन सुखी बनाना चाहते हैं तो आपको आत्म-विश्वासी बनना पड़ेगा। किसी कवि ने कितने सुन्दर शब्दों में कहा है—

'न हसो देखकर तदबीर को पलटा खाते देर लगती नहीं है तकदीर को पलटा खाते।'

यदि हम में आत्मविश्वास का अंकुर विद्यमान है तो हम अपनी तकदीर को भी अपने चाहे अनु-कूल परिवर्तित कर सकते हैं। आत्म-विश्वास में तो अनेक शक्तियां हैं परन्तु हैं छुपी हुई और इन्हें पाने के लिए मनुष्य को हर समय उद्यत रहना चाहिए।

मेरे विचारों में आपको जिसके सदृश बनना है आप उसी का आदर्श अपने सम्मुख रखें और यथोचित उस तक पहुचने के लिय प्रयत्न भी करें—यदि ऐसा करेंगे तो आप को सफलता की कुंजी मिल आएगी।—आप के मन में यदि कोई भी हीन विचार आवे तो उसे शीघ्र ही मन से दूर फैंक दें और फिर देखें कि सफलता आप के पांव कैसे नहीं चूमती। अवश्यमेव आप अपने में बहुत अन्तर देखेंगे अनुभव करेंगे कि आप उन्नति की ओर अग्रसर हैं। आशाजनक विचारों में तो एक विशेष प्रकार की शक्ति होतीहै जिससे मनुष्यमात्र अनेक प्रकार की उलझनों को सुलझा सकता है। हम जिसके लिये भी दृढ़ता पूर्वक विश्वास करे वह पदार्थ या गुण हम अवश्यमेव प्राप्त होगा—ऐसा उत्पादक शक्ति का नियम है। उदाहरण के लिये यदि आप सोचते हैं कि आप एक प्रभावशाली व्यक्ति होंगे और ऐसा सोचते रहें तो एक दिन आप देखगे कि आप एक भरी सभा के सभापति हैं और वह दिन दूर न होगा जब आप अपने में एक अलौकिक शक्ति का अनुभव करेंगे—इस सब का आधार है आत्मविश्वास।

सम्भत आप सोचते होंगे कि यह सब तो हवाई किले हैं परन्तु कभी २ हवाई किले भी सारपूर्ण होते हैं। जिस प्रकार से एक कुशल व सुयोग्य कारीगर किसी अच्छे भवन का निर्माण करने के लिये सर्वप्रथम अपने मानस-पटल पर उस का सुन्दर चित्र खींचता है इसी प्रकार से हमभी अपनी अभिलाषाओं व कार्यों को पूर्ण करने लिय पहले अपने मनों को शुद्ध व पवित्र विचारो से भरें और फिर देखेंगे कि आप का भाग्य आप को किधर ले चलता है। आप को यह नहीं पता तो पता होना चाहिए कि आप में अपने को पूर्ण व सुयोग्य बनाने के लिए पूर्ण सामग्री है। अत. आप यदि अपने आदर्श के लिये मन-वचन और कर्म से प्रयत्न करें तो आपको अवश्य ही सफलता मिलेगी। ईश्वर का यह आदेश है कि आप भी मुझ जैसे पूर्ण बनो सारहीन नहीं। आपके अन्दर भी उस जैसा बनने की शक्तियां हैं ऐसा निश्चय है।

आपको चाहिए कि अपनी कामनाओं की पूर्ति के लिए परम-पिता परमेश्वर से प्रार्थना करें और इस विश्वास से कि वह सबकी कामनाओं की पूर्ति करता है और ऐसा उसका स्वभाव है। एक जलती हुई मोमबत्ती से यदि दूसरी मोमबत्ती भी जला ली जाए तो पहली मोमबत्ती का कुछ भी न जाएगा। इसी प्रकार आत्म-विश्वास की पूंजी से मैत्रीभाव का पलड़ा और भी सुगम हो जाएगा।

कुछ लोगों का विचार है कि ससार में कुछ मनुष्यों को गरीब ही होना चाहिए पर हम पूछते हैं कि परमात्मा ने मनुष्य के लिए जो ढांचा बनाया है क्या उसमें दरिद्रता की बू आती है? कदापि नहीं। परमपिता का भंडार अनन्त समुद्र है परन्तु आश्चर्य है कि हम उसका उपयोग नहीं करते—इसका कारण है हमारे क्षुद्र व सकीर्ण विचार। मेरे विचारों में तो गरीब वह नहीं जिसके पास सोना, चांदी व जायदाद नहीं परन्तु वह है जिसके विचार गरीब तथा दरिद्रता से पूर्ण हैं। जितने भी महापुरुष हो चुके हैं सबने इसी 'आत्म-विश्वास' की सीढ़ियों को चढ़कर ही कुछ सम्मान व नाम पाया है।

आओ हम भी उच्च बनने के लिए ऊंचे विचारों को अपने अन्दर भर दें और अपने पर पूर्ण विश्वास रखें कि सब कुछ कर सकते हैं।

—०—०—

रूस में हिन्दी और नमस्ते

भारत का पार्लमेंटरी शिष्टमण्डल सरदार हुकमसिंह जी अध्यक्ष लोक सभा की प्रधानता में आजकल रूस का भ्रमण कर रहा है। लेनिन ग्राड के दौरे के सम्बन्ध में समाचार एजेंसी ने जो समाचार भेजे हैं—वह नीचे दिये जा रहे हैं—

सरदार हुकमसिंह स्पीकर लोक-सभा के नेतृत्व में भारत की लोक-सभा का शिष्टमंडल सोवियत सघ का भ्रमण कर रहा है। दल ने २०-२१ सितम्बर के दिन लेनिनग्राड में व्यतीत किये। वे एक ऐसा स्कूल भी देखने गये जहां अन्य विषयों के अतिरिक्त हिन्दी भाषा की भी शिक्षा दी जाती है। मंडल के सदस्य जब अपनी गाड़ियों से उतरे तो उनके कानों में भारत के राष्ट्रीय गीत के शब्द पड़े—जनगण-मन स्कूल के बच्चे गा रहे थे। सरदार हुकमसिंह तथा मंडल के दूसरे सदस्य भी सम्मिलित हो गये। सब ने मिलकर गीत गाया। छात्रों ने दोनों हाथ जोड़कर भारतीय अतिथियों को नमस्ते कहा। श्री जगन्नाथ कौशल ने कहा कि बच्चों का उच्चारण बड़ा शुद्ध है।

स्कूल के प्रिंसिपल ने अतिथियों का स्वागत किया और उन्हें बताया कि यह ग्यारह वर्षीय शिक्षा का स्कूल है। जहां हिन्दी दूसरी कक्षा से आरम्भ हो जाती है। यत्न किया जाता है कि अधिकतर बात-चीत हिन्दी भाषा में ही हो। प्रिंसिपल के दफ्तर में तथा स्कूल के कमरों में अधिकतर पट्टिकाएं हिन्दी भाषा में लगे हुए हैं। प्रिंसिपल ने शिष्टमंडल को बताया कि हमारे बच्चे आपके देश की भाषा तथा इतिहास से बड़ी रुचि रखते हैं। ऊंची कक्षा के छात्रों ने हिन्दी में इतनी योग्यता प्राप्त की है कि जो लड़के मैकेनकी कारखाने में शिक्षा प्राप्त करते हैं वे अपने यहां के बने औजार और औजार से सम्बन्धित आदेश का अनुवाद हिन्दी में कर लेते हैं।

(प्रताप से साभार)

वेदों का पढ़ना पढ़ाना सुनना सुनाना आर्यों का परमधर्म है

प्रादेशिक सभा द्वारा उत्सवों की धूम

आर्य समाज मण्डी हिमाचल का उत्सव ११ से १४ अक्तूबर को धूमधाम से सम्पन्न हो रहा है। उत्सव से पूर्व श्री पं० ओमप्रकाश जी कथा कहेंगे, ६ अक्तूबर से ठा० दुर्गासिंह जी के मनोहर भजन होंगे। उत्सव पर श्री राजपाल जी, मदन मोहन जी, श्री पं० चन्द्रसेन जी पधारेंगे।

आर्य समाज नूरपुर कांगड़ा का उत्सव १९ से २१ अक्तूबर को समारोह से सम्पन्न हो रहा है। उत्सव से पूर्व खुशीराम शर्मा की कथा होगी। श्री ताराचन्द्र जी के भजन होंगे। उत्सव पर श्री पं० चन्द्रसेन जी, मेलाराम जी, दुर्गासिंह जी, पं० साजनदेव जी पधार रहे हैं।

आर्य समाज नया बाजार, भिवानी का उत्सव १८ से २१ अक्तूबर को समारोह से सम्पन्न हो रहा है। १४ अक्तूबर से यज्ञ और कथा श्री पं० त्रिलोकचन्द्र जी करेंगे। श्री हजारीलाल जी के भजन होंगे उत्सव पर श्री राजपाल जी, श्री मदन मोहन जी पधारेंगे।

आर्य समाज नगरोटा टीका का उत्सव २२ से २४ अक्तूबर को समारोह से सम्पन्न होगा। नूरपुर के सज्जन पधारेंगे।

आ० स० दीनानगर में २२ से २८ अक्तूबर तक खुशीराम शर्मा की कथा और राजपाल जी मंडली के भजन होंगे।

आ० स० लोहगढ़ अमृतसर का उत्सव ९ से ११ नवम्बर को समारोह से सम्पन्न हो रहा है।

आ० स० माडल टाऊन अम्बाला का उत्सव ९ से ११ नवम्बर को समारोह से सम्पन्न हो रहा है।

आ० स० नकोदर का उत्सव १६ से १८ नवम्बर को सम्पन्न हो रहा है।

आ० स० हिसार का उत्सव २३ से २५ नवम्बर को सम्पन्न हो रहा है।

आ० स० पल्वल का उत्सव ९ से ११ नवम्बर को सम्पन्न हो रहा है।

आर्य समाज कांगड़ा का उत्सव ९ से ११ नवम्बर को सम्पन्न हो रहा है।

आर्य समाज सैक्टर ८ चंडीगढ़ का उत्सव २ से ४ नवम्बर को समारोह सम्पन्न हो रहा है। २९ अक्तूबर से श्री पं० त्रिलोक चन्द्र जी की कथा और राजपाल जी, मदन मोहन जी के भजन होंगे।

आर्य समाज गुरदासपुर का उत्सव १६ से १८ नवम्बर को समारोह से सम्पन्न हो रहा है।

आर्य समाज टिटौली रोहतक का यज्ञ, उत्सव १३ से १६ अक्तूबर को समारोह में सम्पन्न हो रहा है।

आर्य समाज धर्मशाला का वार्षिक उत्सव १६ से १८ नवम्बर को समारोह से सम्पन्न हो रहा है। १२ नवम्बर से खुशीराम शर्मा की कथा होगी।

आर्य समाज भरवाई का वार्षिक उत्सव बड़ी धूमधाम से सम्पन्न हुआ। इस पर्वत शिखर पर वैदिक धर्म का संदेश सुनाने का श्रेय श्री पं० हरिश्चन्द्रजी शास्त्री पुरोहित आर्य समाज पुरानी मंडी जम्मू को है। सर्व सम्मति से श्री हरिश्चन्द्र जी शास्त्री नव वर्ष के लिए प्रधान चुने गए।

आर्य युवक समाज कादिया का उत्सव ५, ६, ७ अक्तूबर को सम्पन्न हुआ। इस अवसर पर खुशीराम शर्मा, श्री राजपाल जी, श्री मदन मोहनजी चिमटा मंडली पधारी।

खुशीराम शर्मा
वेद प्रचार अधिष्ठाता

आर्य समाज लक्ष्मणसर अमृतसर

आज २ अक्तूबर मंगलवार प्रातः काल आर्य समाज लक्ष्मणसर अमृतसर में पंजाब सरकार की ओर से पंजाबी रीजन में सर्वत्र गुरमुखी ठोसने के विरुद्ध रोष दिवस मनाया गया। श्री महात्मा शंकर स्वामी जी तथा रुद्रदत्त शर्मा प्रधान लक्ष्मणसर समाज ने पंजाब सरकार के इस अन्याय एवं अत्याचार युक्त निर्णय को वापिस लेने पर बल दिया और यदि पंजाब सरकार अपने हठ पर कायम रहे तो जनता को सरकार का चैलेन्ज स्वीकार करके इसका क्रियात्मिक उत्तर देने के लिए तैयार होने की प्रेरणा दी। अर्थात् आज से हर पंजाबी को हिंदी सीखने और अपने समस्त काम हिन्दी में करने, और सभी सरकारी विभागों में प्रार्थनापत्र हिन्दी में ही देने का सानुरोध परामर्श दिया।

निवेदक
रुद्रदत्त शर्मा (प्रधान)

दयानन्द ब्राह्म महाविद्यालय हिसार के छात्र शंकरसिंह का पारितोषिक

"पंजाब भाषा विभाग की ओर से सी० ए० वी० स्कूल हिसार में हुई कविता—प्रतियोगिता में २९-९-६२ को दयानन्द ब्राह्म महाविद्यालय के विद्यार्थी शङ्करसिंह ने प्रथम रह कर ५० रु० का पारितोषिक प्राप्त किया।" निवेदक—रामविचार एम० ए० उपाचार्य

बलिदान जयन्ती समारोह समिति

(आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब द्वारा आयोजित)

पंजाब के हिन्दी प्रेमी चुनौती स्वीकार करे। धर्मकियो से हिन्दी प्रेमी नही झुकेंगे। अधिकारो की रक्षा के लिए बलिदान की तैयारी करें।

अम्बाला छावनी, (डाक से)—पंजाब सरकार के माल मन्त्री श्री अजमेरसिंह जी द्वारा हिन्दी प्रेमियों को धमकी की कठोर शब्दों में निन्दा करते हुए बलिदान व हिन्दी रक्षा समिति के मन्त्री डा० हरिप्रकाश ने अपने प्रेस वक्तव्य में कहा कि हम धमकियों से नहीं डरेंगे हमें मरना स्वीकार है। पर अपनी मातृभाषा-धर्म भाषा राष्ट्र भाषा हिन्दी का अपमान स्वीकार नहीं।

आपने कहा कि आर्य शहीदों की याद में ७ से १६ अक्तूबर तक जो भारी मेला बलिदान जयन्ती के नाम से हो रहा है, उसके प्रधान श्री महात्मा आनन्द भिक्षु जी का जलूस १२ अक्तूबर को निकलेगा। इसलिए पंजाब के हर हिन्दी प्रेमी का इस जलूस में शामिल होकर अपनी शक्ति का प्रदर्शन करना है।

गुरुकुल झज्जर रोहतक

गुरुकुल झज्जर के कुलपिता पूज्य आचार्य भगवानदेव जी महाराज पंडित नरदेव जी के जीवन पर प्रकाश डालते हुए कहा कि 'पण्डित जी का सारा जीवन तप, त्यागमय रहा है। आपका मुख्य प्रचार 'आर्य शिक्षा प्रणाली' ही था। आप राजनीति के भी कुशल खिलाड़ी थे। कुल वासियों को जहां अपने वयोवृद्ध नेता के वियोग से हार्दिक दुःख हुआ वहां उनकी आत्मा की सद्गति एवं परिचित वर्ग को शांति और धैर्य के लिए परमेश्वर से प्रार्थना की गई।

निवेदक—
मुख्याधिष्ठाता

आर्यसमाज भारत नगर गाजियाबाद

नामकरण संस्कार

दिनांक ३०।९।६२ रविवार प्रात १०॥ बजे से आर्यसमाज भारत नगर गाजियाबाद के उपमन्त्री श्री गिरधारी लाल जी के सुपुत्र चि० सुभाष का नामकरण संस्कार आर्य समाज भारत नगर के सुयोग्य पुरोहित श्रद्धेय पं० तीर्थराम जी सिद्धान्त भूषण के आचार्यत्व में समारोह से सम्पन्न हुआ। अन्त मे वहा उपस्थित सर्व मित्रों एवं बन्धु बान्धवों ने चि० सुभाष को आशीर्वाद दिया।

मन्त्री
आर्य समाज भारतनगर

आर्य जगत के पाठको से

निवेदन

आर्य जगत का दीपमाला अंक २७ अक्टूबर को प्रकाशित हो रहा है और आप की सेवा में दीपमाला से दो तीन दिन पूर्व पहुंच जाएगा। यह विशेषांक २१, २८, और ४ नवम्बर का सम्मिलित अंक होगा। उसके बाद ११ नवम्बर के अंक की प्रतीक्षा करें।

—व्यवस्थापक

...गंज ठठियारां मुहल्ला बटाला जि० गुरदासपुर

...और से मा० कृष्ण जी की सेहत के लिए प्रार्थना की गई आप ...के अनथक कार्यकर्ता हैं, परमात्मा आपको शीघ्र स्वास्थ्य प्रदान करें।

हिन्दी के बारे में सरकार की पालिसी के विरुद्ध रोष प्रकट करते हुए ...की लहर को ढीला करने वाली पालसी घोषित किया।

विजय मन्त्री समाज

आर्ययुवक समाज चंडीगढ़

आर्य युवक समाज, चंडीगढ़ की यह सभा आर्य समाज के मान्य नेता प० विनायक राव जी तथा वेद के प्रसिद्ध विद्वान पं० नरदेव जी के निधन पर शोक प्रगट करती है। प्रभु से प्रार्थना है कि उन की आत्माओं को शान्ति प्रदान करे।

मन्त्री
आर्य युवक समाज, चण्डीगढ़

आर्य केन्द्रीय सभा दिल्ली का शोक प्रस्ताव

'श्री नरदेव जी आचार्य गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर के देहावसान पर शोक प्रकट करती है। परमात्मा उनकी आत्मा को सद्गति प्रदान करें। यह प्रस्ताव सदस्यों ने खड़े हो कर गायत्री मन्त्र के साथ स्वीकार किया।'

भवदीय
रामनाथ मन्त्री

आर्य जागत्

का

ऋषि निर्वाण विशेषांक

आर्य जगत् के प्रेमी पाठकों को यह सूचना देते हुए हमें अपार हर्ष हो रहा है कि गत वर्षों की भांति इस वर्ष भी दीवाली के पुनीत पर्व पर २८ अक्टूबर ६२ को बडी सजधज के साथ भारी संख्या में प्रकाशित किया जा रहा है जिस में उच्चकोटि के संन्यासी महात्माओ, विद्वानों के सारगर्भित लेख तथा कविताए होगी।

(१) लेखक तथा कवि महोदयों से प्रार्थना है कि अपने लेख और कविताए १२ अक्तूबर तक भेजने की कृपा करें। (२) समाजों कालिजों, स्कूलों तथा अन्य संस्थाओं के अधिकारी महोदयों से प्रार्थना है वे अधिक से अधिक संख्या में इस अंक को मंगवाएं इस की सूचना १५ अक्तूबर से पहले भेजने की कृपा करें। (३) विज्ञापन-दाता व्यापारियों के लिए अति सुन्दर अवसर है उन से भी प्रार्थना है कि १५ अक्तूबर तक अपने विज्ञापन भिजवा दें।

व्यवस्थापक
आर्य जगत

मुद्रक व प्रकाशक श्री संतोषराज जी मन्त्री आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा पंजाब जालन्धर द्वारा वीर मिलाप प्रेस, मिलाप रोड जलन्धर से मुद्रित तथा आर्यजगत कार्यालय महात्मा हंस राज भवन निकट कचहरी जालन्धर शहर से प्रकाशित मालिक—आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा पंजाब जालन्धर

टैलीफोन न० ३०४७ [आर्यप्रादेशिक प्रतिनिधि सभा पंजाब जालन्धर का साप्ताहिक मुखपत्र] Regd No P.121

एक प्रति का मूल्य १३ नये पैसे वार्षिक मूल्य ६ रुपये

वर्ष २२ अंक ४५) रविवार २६ कार्तिक २०१८—११ नवम्बर १९६१ दयानन्दाब्द १३९ (तार-प्रादेशिक जालन्धर

वेद सूक्तय:

आदित्य: क्रिमीन् हन्तु

प्रकाश देने वाला सूर्य रोग के कीटों को मार दे। उसी प्रकार ज्ञान की ज्योति देने वाला विद्वान, राजा भी राष्ट्र के बुरे विचारों व शत्रुओं को समाप्त करता रहे। पाप तथा शत्रु पनप न पाये।

सं पिनष्म्यहं क्रिमीन्

अहम्-मैं उन सारे क्रिमीन-रोग के कीटों, बुराईयों तथा मानवता के शत्रुओं को सपिनष्मि-पीस देता हूं। ऐसे पाप भावों को सदा समाप्त करता रहूं।

नमो अस्तु ऐभ्य:

दिव्यजनों को, विश्व का उपकार करने वालों, दिव्य दृष्टि रखने वाले ऋषियों तथा प्रभु के प्यारे भक्तजनों को हमारा सदा नमस्कार हो। हम उनका सदा मान करते हैं।

अ थ र्व वे द

वेदामृत

भरेष्विन्द्रं सुहवं हवामहेऽंहोमुचं सुकृतं दैव्यं जनम्।
अग्निं मित्रं वरुणं सातये भगं द्यावा पृथिवी मरुत: स्वस्तये॥

ऋ म १० सू ६३ मन्त्र ९

अर्थ—हम लोग (भरेषु) यज्ञों में तथा युद्धों में (इन्द्र) इन्द्र को (सुहव) अच्छे नाम वाले को (हवामहे) बुलाते हैं, (अंहोमुचं) पापों से मुक्त कराने वाले को (सुकृत) उत्तम कर्मशील को (दैव्य) दिव्य विशेष (जनम) व्यक्ति को बुलाते हैं, उसे अपना नेता बनाते हैं। जो (अग्नि) नेता प्रकाशमय है, (मित्रं) स्नेहमय है, (वरुणं) स्वीकार करने योग्य है या अग्नि, वरुण, मित्र विद्या का ज्ञाता है। (भग) ऐश्वर्य गुणों वाला है (द्यावापृथिवी) द्यौ पृथ्वी विद्या का वेत्ता है, (मरुत) हे वीरो! (स्वस्तये) कल्याण व विजय के हम ऐसे अपने नेता को बुलाते हैं।

भाव—राष्ट्र और समाज को प्रसाद और विषाद के समय सुपथ पर चलाने वाले अपने नेता की आवश्यकता होती है। वेद ने इस मन्त्र में नेता के गुणों का वर्णन करते हुए सुन्दर सन्देश दिया है। समाज सारा मिलकर कभी परोपकार कार्यों के महान् यज्ञों का आयोजन करता है तथा कभी उसे शत्रुओं से युद्ध करने भी उतरना पड़ता है। ऐसी अवस्था में नेता ऐसा होवे—जो अग्नि विद्या, प्राण विद्या आदि नानाविध भूमि आकाश की विद्याओं का ज्ञाता हो। स्वयं सदाचारी, दिव्य गुणों से भरपूर हो। समाज को पापपथ से मुक्त करने वाला हो, कल्याणकारी हो—ऐसा वीर, दिव्य, उच्च विचार, पवित्र जीवन वाला नेता ही समाज का मार्गदर्शक बन कर विजय दिला सकता है। बुरे, स्वार्थी, कामी तथा अज्ञ नेता समाज को डुबा देता है। सुनेता चाहिए—सं०

ऋषि दर्शन

सत्याचरणमेव लक्षणम्

जीवन का लक्ष्य क्या है? सत्याचरणम् एव-सत्य पर चलना ही तो है। यह मानव जीवन सत्य पर चल कर उस सत्यस्वरूप ब्रह्म को प्राप्त होना है। प्रभु सत्य से ही मिलता है।

सत्ये खलु रमणीयम्

सब मनुष्यों को सदा ही सत्ये-सत्य में ही रमणीय-रमण करना चाहिए। सत्य का ही सहारा लेना चाहिए। सत्य के ग्रहण करने और असत्य के त्यागने में सर्वदा उद्यत रहना चाहिए।

धर्मलक्षणं किंचिन्न

सत्य से परे धर्म का और कोई लक्षण नहीं है। सत्य से बढ़कर धर्म नहीं तथा झूठ से बढ़कर कोई पाप नहीं अतः सत्य ही धर्म माना गया है।

भा ष्य भू मि का

अधिष्ठाता—संतोषराज मंत्री सभा सम्पादक त्रिलोक चन्द्र शास्त्री

अध्यात्मवाद—

क्या आत्मा आनन्द स्वरूप नहीं ?

(ले० आचार्य भद्रसेन जी अजमेर)

✤✤✤✤✤✤✤✤

नवीन वेदान्ती आदि सनातनी, जैन, बौद्ध आदि प्राय सभी भारतीय धर्म आत्मा को आनन्दस्वरूप मानते हैं । केवल आर्यसमाज के विद्वान ही (कुछ विद्वानों को छोड़कर) आत्मा को आनन्द स्वरूप नहीं मानते । वे अपने इस सिद्धान्त के समर्थन में 'सच्चिदानन्द' शब्द की शरण लेते हैं । 'सच्चिदानन्द' शब्द के टुकड़े करके वे यह दर्शाने का प्रयत्न करते हैं कि प्रकृति सत् हैं, आत्मा सत+चित है और परमात्मा सत्+चित्+आनन्द है । इस कथन में कहा तक सत्यता है । इसका विवेचन तो हम आगे चलकर करेंगे । किन्तु यहा हम इतना अवश्य बता देना आवश्यक समझते हैं कि यदि आत्मा आनन्द स्वरूप नही तो आत्म-साक्षात्कार की भी कुछ आवश्यकता नहीं । क्योंकि आत्म दर्शन का मुख्य उद्देश्य यही है कि मनुष्य दुःख, शोक, चिन्ता आदि तापों से छूटकर नित्यानन्द को प्राप्त करे । यह तभी होना सम्भव है जब साधक को आत्मसाक्षात् द्वारा आत्मिक आनन्द की उपलब्धि हो । किन्तु यदि आत्मा आनन्द स्वरूप ही नहीं तो उसे आत्मिक आनन्द की उपलब्धि ही कहा से होगी ।

अब हम युक्ति और प्रमाणों द्वारा आत्मा के आनन्द स्वरूप होने का प्रतिपादन करेंगे । आशा है विद्वद्जन इस पर निष्पक्षपात दृष्टि से विचार करेंगे ।

प्रश्न—आत्मा सुख स्वरूप है है या दु ख स्वरूप अथवा दु.ख स्वरूप भी और सुख स्वरूप भी, किंवा न दु ख स्वरूप और न सुख स्वरूप । यदि वह दु ख स्वरूप है तो मोक्षावस्था में भी वह दु ख से मुक्त नहीं हो सकता । यदि दु:ख तथा सुख दोनों स्वरूप वाला है तो दो परस्पर भिन्न स्वरूप एक पदार्थ में नहीं रह सकते । यदि न दु ख स्वरूप न सुख स्वरूप तो आत्मा और प्रकृति में कुछ अन्तर ही नहीं रहता । अत मानना पड़ेगा कि आत्मा सुख स्वरूप है । अब प्रश्न होता है कि वह सुख आत्मा का स्वाभाविक गुण है, अथवा किसी निमित से आत्मा को सुख मिलता है । यदि विषयों आदि ससर्ग के निमित्त से जो आत्मा को सुख मिलता है, वही सुख उसका गुण है तो वह विषय जन्य सुख आत्मा का स्वरूप नहीं हो सकता । क्योंकि स्वरूप किसी निमित्त से प्राप्त नहीं होता । और यदि सुख आत्मा का स्वाभाविक गुण है तो वह विषय जन्य नहीं हो सकता । क्योंकि विषय जन्य सुख क्षणिक होने से आत्मा का स्वाभाविक गुण नहा हो सकता । यदि कहें कि विषय जन्य से भिन्न आत्मा का जो अपना विलक्षण सुख है वही आत्मा का स्वाभाविक गुण है तो प्रश्न होता है कि विषय जन्य सुख और आत्मा के आत्मोन्द्रिय विलक्षण सुख मे क्या अन्तर है ? यदि कहें कि कुछ अन्तर नहीं तो आत्मा को अपने अतीन्द्रिय विलक्षण सुख के प्राप्त करने की कोई आवश्यकता नहीं ? क्योंकि वह सुख तो उसे सांसारिक विषयों से प्राप्त है ही यदि विषय जन्य सुख से आत्मा का विलक्षण अतीन्द्रिय सुख जो उसका स्वाभाविक गुण है भिन्न है तो उस विलक्षण अतीन्द्रिय सुख तथा आनन्द में कुछ अन्तर है अथवा नहीं ? यदि है तो उसे अपने शब्दों में स्पष्ट करिए । और यदि आत्मा के अतीन्द्रिय सुख और आनन्द में कुछ भेद नहीं तो आप के ही कथनानुसार आत्मा आनन्द स्वरूप हुआ । फिर आत्मा को आनन्द स्वरूप न मानकर उसे केवल सत् और चित् ही मानना कितनी भारी भूल है ।

दूसरा—कोई भी पदार्थ चेतन हो और आनन्द स्वरूप न हो, यह असम्भव है । यदि कहा कि चेतन होते हुए भी कुछ पदार्थ ऐसे हैं जो आनन्द स्वरूप नहीं तो आत्मा से भिन्न किसी एक भी पदार्थ को बताइये कि जो चेतन तो है किन्तु आनन्द स्वरूप नहीं । इस से सिद्ध हुआ कि आत्मा चूंकि चेतन है इसलिए आनन्द स्वरूप अवश्य है । जैसे परमात्मा । सम्भवत. आत्मा को आनन्द स्वरूप न मानने वाले कहेंगे—परमात्मा चूंकि सर्वदेशी है इसलिये आनन्द स्वरूप है । इसके विपरीत आत्मा यत एक देशी है, इसलिए वह आनन्द स्वरूप नहीं हो सकता ।

उत्तर—किसी भी वस्तु के परिमाण मात्र मे अन्तर होने से उसके स्वरूप में अन्तर नहीं होता । यदि पांच हाथ लम्बा साटा (ईख) मधुर है तो दो हाथ लम्बा साटा भी मधुर स्वभाव वाला ही होगा, कड़वा नहीं । इस प्रकार चूंकि आत्मा भी परमात्मा के समान चेतन है । इस लिये दोनों में परिमाण भेद होते हुए भी आत्मा भी परमात्मा के समान आनन्द स्वरूप ही है । सम्भवत. आप कहेंगे कि परमात्मा भी आनन्द स्वरूप और आत्मा भी आनन्द स्वरूप तो दोनों में भेद ही क्या रहा ? ऐसी अवस्था में नवीन वेदांत के 'अहं ब्रह्मास्मि' सिद्धांत के मान लेने में ही क्या दोष है । इसके उत्तर में निवेदन है कि प्रथम मुख्य भेद तो यही है कि परमात्मा असीम और अनन्त है किन्तु आत्मा ससीम और देश से सांत है । दूसरा—किन्हीं भी दो या दो से अधिक वस्तुओं के गुणों में साम्यता होने से वे एक नहीं हो जाते । जैसे छोटे सांटे तथा बड़े सांटे में गुण साम्यत. होने पर भी दोनों की सत्ता पृथक्-पृथक् है, एक नहीं ! इसी प्रकार परमात्मा और आत्मा के गुणों में साम्यत होने पर भी दोनों सत्ता से भिन्न ही रहेंगे । परमात्मा का कोई ऐसा गुण नहीं जो आत्मा में न हो । परमात्मा चेतन है, आत्मा भी चेतन है । परमात्मा निराकार है, आत्मा भी निराकार है । परमात्मा समष्टि जगत् का कर्ता, धर्ता तथा संहर्ता है, आत्मा भी व्यष्टि जगत् का कर्ता, धर्ता तथा संहर्ता है । परमात्मा 'ज्ञ' अर्थात् ज्ञान स्वरूप है आत्मा भी ज्ञान स्वरूप है । इसी प्रकार परमात्मा भी आनन्द स्वरूप है । आत्मा भी आनन्द स्वरूप ह । दोनों के गुणों में अन्तर इतना ही है कि जैसे परमात्मा चूकि असीम है उसके गुण भो असीम है और आत्मा चूकि एक देशी है अर्थात् ससीम अत उसके गुण भी ससीम अर्थात् 'महदूद' है । यदि संक्षेप से कहा जाए तो हम 'आत्मा' हैं तो भगवान 'परम+आत्मा' है । हैं दोनों ही आत्मा । इसी लिये वेद तथा उपनिषद् आदि आर्ष ग्रन्थों में परमात्मा को भी आत्मा नाम से पुकारा गया है ।

सम्भवत. आप कहेंगे कि ऋषि दयानन्द ने तो यह कहीं नहीं माना कि आत्मा और परमात्मा के गुण समान है । इसके उत्तर में हम सक्षेप्त इतना ही कहेंगे कि यदि ऋषि दयानन्द परमात्मा के गुणों के सदृश आत्मा के गुण न मानते होते तो वे सत्यार्थ प्रकाश में यह न लिखते कि—'इस प्रकार परमात्मा के नामों का अर्थ विचार कर परमेश्वर के गुण, कर्म, स्वभाव के अनुकूल अपने गुण, कर्म, स्वभाव को बनाते जाना ही परमेश्वर का नाम स्मरण है ।' ❋ अब यदि ऋषि दयानन्द के मन्तव्यानुसार आत्मा के गुण परमेश्वर के अनुसार बन ही नहीं सकते तो वे यह कैसे लिखते कि परमात्मा के गुण, कर्म, स्वभाव के अनुकूल अपने गुण, कर्म, स्वभाव को बनाना ही ईश्वर की सच्ची भक्ति है । क्रमशः

❋ सत्यार्थ प्रकाश [illegible]

सम्पादकीय—

आर्य जगत्

वर्ष २२] रविवार २६ कार्तिक २०१८, ११ नवम्बर १९६२ [अंक ४५

भारत माता की जय

अब केवल वाणी मात्र के जय-घोषों से नहीं है अपितु माता के मान सम्मान की रक्षा के लिये तथा वास्तविक जय लाभ करने के निमत्त तन मन धन और जीवन का बलि-दान करने से होगी । अपने शरीर के रक्त का एक-एक बिन्दु इस मात मन्दिर के प्रदीप्तदीप की शिखा को उज्वल बनाए रखने के लिए दे देना होगा । जीवन भी भेंट करना पड़ेगा । मातृ पूजन आज और किसी वस्तु से नहीं होगा वरन सर्वस्व का समर्पण करके ही किया जा सकता है । सन्तान के लिए माता का सम्मान जीवन तथा मां का शत्रु द्वारा अप-मान मौत है । मर्यादाहीन, निर्लज्ज चीन ने भारत के साथ जो विश्वास-घात किया है । दो जिह्वा रखने वाले सर्प के समान धोखे से जो भारत विराट शरीर पर विषैला डंक मारा है । उसका प्रायश्चित्त तो उसे करना ही होगा । उसे शीघ्र इस बात का परिचय मिल जायगा कि शान्ति प्रिय भारत को छेड़ने का क्या परिणाम निकलता है । हमारे बीर सैनिक चीनी आक्रमण का कितनी भारी वीरता से एक २ इंच पर सामना कर रहे हैं । हिम-स्थलों पर रात दिन निरन्तर जो उन शत्रुओं से टक्कर ले रहे हैं यह सुन कर सारे देशवासियों में उत्साह का सागर उमड़ आता है ।

सारा देश जाग पड़ा है । स्थान स्थान पर जनता के जोश को देख कर कौन है जिस में जोश नहीं भर आता ! बालक से लेकर बूढ़े तक भारत पर चीनी हिंसकों के इस नीचता पूर्ण आक्रमण को रोकने के लिए तनमन धन भेंट कर रहे हैं । देश के सारे दलों ने अपने २ आंदोलनों को बन्द करके अपना सारा सहयोग भारत सरकार को दे दिया है । भारत को माता मानने व कहने वाला कौन पीछे रह सकता है । सारे समाचार पत्र सारे नेता, सारे दल अपने २ भेदभावों को भुला कर राष्ट्र रक्षा के लिए अपने प्रधान मन्त्री जी को सर्वस्व भेंट करने का विश्वास दिला रहे हैं । सारा देश शत्रु को खदेड़ने मे एकता के सूत्र मे पिरोया जा चुका है । यह राष्ट्र के जीवन का सुन्दर चित्र है । हमारी सेनाएं इंच २ पर शत्रु से टक्कर लेकर उसकी भारी क्षति कर रही है । प्राय सारे विश्व के राष्ट्रों की सहानुभूति और सहायता हमे मिल रही है, मिलेगी भी ।

हमे अपार हर्ष है कि आर्य-समाज इस मातृरक्षा कार्य मे अन्य सारे कार्यों को छोड कर पूर्ण रूप से भारत सरकार को सहयोग दे रहा है । स्कूलों मे उत्साह है समाजों के उत्सवों मे जोश है, नेताओं के कर्त्तव्य भरे सन्देश निकल रहे हैं । धन इकट्ठा करके रक्षा कोष मे भेजा जा रहा है । देहली की सारी आर्यसमाजों की केन्द्रीय सभा, पंजाब का सारा समाज तथा भारत का सारा सामाजिक संगठन भारत सरकार को तन मन जन से सहयोग दे रहा है । सारा राष्ट्र जाग पड़ा है । सर्वत्र जोश है, बलिदान की भावना है—चीन ने जो नीचता पूर्ण हमला किया है उसे फल भोगना पड़ेगा—भारत माता की जय हमने अपने बलिदानों से बोलनी है ।

—त्रिलोकचन्द्र

कुंवर सुखलालजी

आर्य मुसाफिर आर्यसमाज के रत्न हैं । सारा जीवन आर्यसमाज की सेवा मे बिताया है । प्रभु ने इनकी वाणी मे कितना ओज व प्रभाव भर दिया है । मृत शरीर में भी जीवन फूंक देते हैं । निरन्तर समाज की सेवा प्रचार में रातदिन घूमते रहते हैं । यह समा-चार सुन कर चिन्ता लग गई कि आज कल श्री कुंवर जी बडे बीमार हैं । चिन्ताजनक रोग से बिस्तर पर पडे हैं । ठाकुर अमर सिंह जी उन की सेवा मे उन के पास पहुंचे हुए हैं । नया बास आर्यसमाज देहली मे है । आर्य मुसाफिर सारे समाज की सम्पत्ति हैं । समाजों का कर्तव्य है कि इस विषम रोग में आर्यमुसाफिर जी को तन, मन, धन का पूरा २ सहयोग देवें । प्रभु करे कि श्री कुंवर जी स्वस्थ होकर उसी प्रकार से सेवा मे लगे रहें ।

बलिदान--जयन्ती

अम्बाला छावनी मे समारोह से मनाई गई । आर्य समाज का कहीं भी किसी प्रकार का भारी समारोह होवे—उसे देख सुन कर आर्यजगत तथा सब को बड़ी प्रसन्नता होती है । बलिदान-जयन्ती के सप्ताह की समाप्ति पर हम आर्य प्रतिनिधि सभा के सारे मान्य अधिकारियों, समाजो को हार्दिक बधाई देते हैं । डाक्टर हरिप्रकाश जी मन्त्री का उत्साह सफल हुआ उनको भी हार्दिक बधाई हो । जनता में उत्साह भर गया । एक बात की बडी प्रसन्नता है कि इस जयंती में आर्यप्रादेशिक सभा ने भी एवं उससे सम्बन्धित समाजो ने भी तन, मन, धन से पूरा-पूरा सह-योग दिया । आर्यसमाज के कार्य सब के सांझे ही होते हैं ।

क्षमा याचना

आर्यजगत का दीपमाला अ[illegible] सजधज से प्रकाशित हुआ । उस[illegible] लेखों, कविताओं से सुन्दर त[illegible] उपयोगी बनाने मे जितना [illegible] प्रयत्न हो सका, कर्तव्य समझ क[illegible] किया गया । विशेषांक सब के सा[illegible] हैं । आत्म प्रशंसा उचित नहीं उत्तम वस्तु आप की अपनी है त[illegible] त्रुटियां हमारी हैं । समाज [illegible] मान्य नेताओं, विद्वानों ने अमूल[illegible] कृतियां भेजीं । उनका अन्तःकरण [illegible] धन्यवाद । देर मे आने से क[illegible] लेख रह गए । उनसे क्षमा प्रा[illegible] हैं । काफी संख्या मे छापा गया फिर भी अनेक स्थानों से आ[illegible] आर्डर देर से आए अत उनक[illegible] सेवा मे नहीं भेज सके अंक बिल[illegible] कुल समाप्त हो गया । समाजों संस्थाओं, सज्जनों के आर्यजगत के प्रति इस प्रेम के लिए विशेष धन्य-वाद । यह सभा का पत्र है । सभ[illegible] आप की है । हम तो केवलमा[illegible] सिपाही ही हैं । पूर्णाशा है कि आर्यजगत से अपना यह स्नेह बनाये और बढ़ायें रखेंगे ।

आर्य समाज पुल [illegible]गश का दशम्

वार्षिकोत्सव १६, १७, १८ नवम्बर १९६२ को मनाया जाएगा तथ[illegible] उत्सव के उपलक्ष में १२ से १[illegible] नवम्बर तक श्री पं० मनीषि देव जी वेद कथा करेंगे । उत्सव में बड़े-बड़े विद्वान महात्मा संन्यासी पधारेंगे ।

—सुदेश कुमार मन्त्री सभा

वेदों का पढ़ना पढ़ाना
सुनना सुनाना
आर्यों का परमधर्म है

मुझे वैदिक धर्म से शान्ति मिली संसार वेदों की शरण में आजाए डाक्टर मार्क्स का प्रवचन

डाक्टर मार्क्स अमरीका में रह कर वेदमन्दिर की स्थापना कर वैदिक धर्म के प्रचार में जीवन दे कर लगे हैं। आज कल वैदिक सिद्धान्तों का अध्ययन करने के लिए भारत में पधार कर गुरु कुल कांगड़ी हरिद्वार में निवास करते हैं। बलिदान जयन्ती अम्बाला छावनी के विशेष समारोह में प्रवचन हुआ जो बड़ा ही तत्वपूर्ण था। आप को वेद पर कितनी आस्था है, यज्ञ पर कितनी श्रद्धा है इस का परिचय इस प्रवचन से ही मिल जाता है। आपने आपने भाषण में कहा—

मेरा जन्म न्यूयार्क के एक रूढ़ी वादी ईसाई परिवार में हुआ था। प्रारम्भ में धर्म कर्म की बातों में मेरा विश्वास नहीं था। फिर जब मैं ने अपनी जीविका को चलाने के लिए खोज करनी तो मैंने देखा कि यद्यपि मैं बहुत अधिक योग्य नहीं था, फिर भी मुझे सफलता बराबर होती रही। मेरे मुकाबले पर अन्य व्यक्ति भी थे जो यद्यपि मुझ से अधिक योग्य थे फिर भी मेरी जितनी सफलता न प्राप्त कर सके। इस बात ने मुझे सोच में डाल दिया। इसी अर्से में मेरे पिता का देहान्त हो गया। अन्तिम समय में इन के पास उपस्थित न हो पाया। मैं ने उस नर्स व अन्य लोगों से जो अन्तिम समय उन के पास थे, पिता की मृत्यु का वृतान्त सुना। सब ने यही बताया कि मृत्यु के समय वह बिल्कुल शान्त और प्रसन्न थे,— और इतने अधिक शान्त थे जिस से कि जीवन में अन्य किसी अवसर पर वह शायद नहीं रहे थे।

इस बात ने मेरे मन में यह विचार पैदा कर दिया कि इस लौकिक संसार से ऊपर भी कोई ऐसी अलौकिक सत्ता है सही जो कि दिखाई नहीं देती। इन सब बातों ने मेरा ध्यान धर्म की ओर आकर्षित किया। क्योंकि मेरा जन्म एक ईसाई परिवार में हुआ था और इसी धर्म की पुस्तकें मुझे आसानी से प्राप्त थीं। इस लिए मैंने इसी धर्म को अपनाया। मैं एक पक्का ईसाई बन गया। परन्तु मैं ने ईसाई होते हुए भी यह अनुभव किया कि ईसाई लोग दूसरों को तो बदलते हैं परन्तु खुद को नहीं बदलते। यही एक कारण कि ईसाई अपने प्रचार कार्य में अधिक सफलता नहीं प्राप्त कर सके।

एक धर्म जो दूसरे धर्मों के प्रति अनुदार दृष्टिकोण रखता है, वह धर्म कभी भी सच्चा धर्म नहीं हो सकता। ईसाई धर्म की इन कमियों ने मुझे इस धर्म से विमुख कर दिया। मेरी आत्मा अब भी अशान्त और व्यग्र थी। तभी मेरी भेंट एक वैदिक धर्म के पण्डित जी से हुई। पण्डित जी ने केवल वैदिक धर्म व वैदिक दर्शन के प्रकाण्ड पण्डित ही थे बरन् पुरुषों में भी उत्तम पुरुष थे। उनकी सज्जनता ने मुझे बहुत आकर्षित किया। उन से मिल कर मेरा यह निश्चय और भी दृढ़ हुआ कि वह धर्म उत्तम है—जो मनुष्यों के हृदयों को बदल उन्हें सज्जन बनाता है।

तब से ले कर अब तक मैं ने अपना समय वैदिक धर्म की दीक्षा लेते हुए ही व्यतीत किया है। मेरा विवाह भी अमेरिका में वैदिक रीति से हुआ। मैं और मेरी पत्नी अब वैदिक धर्म के प्रचार कार्य में रत हैं। हम दोनों त्रिनिदाद आदि में जार्ज टाऊन गये और हम ने वहां पर देखा कि बहुत से भारतीय या तो ईसाई बन चुके हैं और या ईसाई बनने पर उद्यत हैं। हम ने उन्हें अपने अनुभवों से परिचित करा के उन्हें वैदिक धर्म का त्याग करने से रोक दिया। फिर हम ट्रनीडाड गये। वहां पर एक भारतीय, जिस की बीमार पत्नी को ईसाई प्रचारक के इलाज ने स्वस्थ कर दिया था, ईसाई धर्म के प्रचार में जोर शोर से लगा था। हम ने उसे अपने अनुभावों के विषय में बताया और उस ने ईसाई मत के प्रचार में सक्रिय भाग लेना छोड़ दिया। वह व्यक्ति पिछले साल भी मुझे न्यूयार्क में मिलने के लिए आया और इस वर्ष भी। जब उसे यह पता चला कि मैं भारत जा रहा हूं, तब उस ने अपने लड़के को गुरुकुलीय शिक्षा प्राप्त करवाने के लिए मेरे साथ भारत भेज दिया।

मैं प्रतिदिन यज्ञ करता हू और मुझे वैदिक धर्म से पूर्ण शक्ति मिली है। मैं चाहता हू कि सारा संसार वेदों की शरण में आ जाए।

(आर्योदय से)

आवश्यक निवेदन

सभी आर्य समाजों के अधिकारी महानुभावों से निवेदन है कि दीवाली का पर्व सम्पन्न हो चुका है कृपया चार आना फंड शीघ्र सभा में भेजने की कृपा करें।

खुशी राम शर्मा
वेद प्रचार अधिष्ठाता

आर्ययुवक समाज डी० ए० वी० कालेज जालन्धर का देश रक्षा के लिए व्रत

आर्य युवक समाज डी० ए० वी० कालेज जालन्धर के युवकों ने अपनी एक बैठक में राष्ट्र रक्षा के लिए अपने तन, मन, व धन सभी को राष्ट्र हित अर्पण करने का दृढ़ व्रत लिया है। उन्हों ने सरकार को अपनी सेवाएं अर्पित करते हुए कहा है कि वह जिस प्रकार भी चाहे युवकों से कार्य ले सकती है। आर्य युवकों ने अपना रक्त अपने वीर सेनानियों के लिए अर्पण किया है तथा आजकल धन संग्रह में लीन हैं वह अधिक से अधिक धन संग्रह कर शीघ्र ही सरकार को भेजेंगे।

जय प्रकाश आर्य
प्रचार मन्त्री

—आर्यसमाज दसुआ का वार्षिक उत्सव ३-४-५ दिसम्बर १९६२ को मनाना स्वीकृत हुआ।

शोकजनक निधन

आर्य परिवार को यह पढ़कर अति खेद होगा कि पं० साजनदेव जी सहायक उपदेशक सभा की धर्मपत्नी का १६—१०—६२ को अतिदेर तक रुग्ण रहने के पश्चात स्वर्गवास हो गया। इस मौत से पं० जी का एक प्रकार से दाहिना हाथ ही कट गया। सारा गृहस्थ का भार उसी देवी ने ही उठाया हुआ था।

आर्यजगत इस शोकजनक निधन पर पंडित जी के सारे परिवार से हार्दिक समवेदना प्रकट करता है।

—व्यवस्थापक

मेला कपाल मोचन

६ नवम्बर से ११ तक धूम धाम से श्री पं० अमर सिंह जी अध्यक्ष अम्बाला करनाल मंडल के प्रबन्ध में धूम धाम से मनाया जा रहा है। अम्बाला करनाल मंडल और प्रभुदयाल जी की मंडली पधार रही हैं।

खुशी राम शर्मा
वेद प्रचार अधिष्ठाता

धधकती ज्वाला

(ले० श्री प० खुशी राम जी शर्मा वेद प्रचार अदिष्ठाता प्रादेशिक सभा)

❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖

कृतघ्न चीन ने जो विस्तार की लालस से भारत की भूमि को निगलने का दु.साहस किया है। उस के परिणाम स्वरूप पावन गंगोतरी और कैलाश धधक रहा है। सत्य और अहिंसा को विश्वास घाती चीन नेफा लद्दाख आदि भारत भूमि में तोपों के गोलों से स्वाह कर रहा है। मित्र द्रोही ने अन्याय अत्याचार से पावन धरती को कलुषित रक्त से रंजित कर दिया है।

स्वतंत्रता रक्षा हित भारत मा के सुपूत सभी यातनाओं को सहन हुए अन्यायी अत्याचारी का सामना पूरे बल से कर रहे हैं। सर्वमेध करने वाले उन वीरों की आत्माओं ने भारत की जय के नारों से अन्तरिक्ष को गुंजा दिया है। उन के जय घोषों ने तुमुल नाद कर रखा है।

वीर योद्धाओं के अदम्य पराक्रम और असीम उत्साह के गीत समूचा पर्वत राज गा रहा है। विजय लक्ष्मी भारत मा की आरती उतारने को खड़ी है।

जागो और देखो भारत के प्राण धधक रहे हैं। इनके त्राण हेतु राष्ट्रनिवासी अपना कर्त्तव्य पालन कर आर्यसमाजके उत्सवों और दैनिक सत्सगों में राष्ट्र मृत आहुतियां और वीर गान करने चाहियें। विजय प्राप्ति की प्रार्थनायें। उत्सवों और प्रचार गति को तीव्र करने का यत्न करें आर्य प्रादेशिक सभा पंजाब की ओर से प्रचार कार्य में रत मान्य महापदेशकों गायनाचार्यों से निवेदन है कि राष्ट्र रक्षक भाषणों और वीर गानों से जन मन को जागृत करने का भरसक प्रयत्न करें।

आर्य समाज की वेदी अर्द्धित.व है। आरम्भ से इस ने जनमनों के सचेत सावधान करने मे महान कार्य किया है। अब भी यथा पूर्व हो रहा है। आर्य समाज के कार्य कर्त्ता कटिबद्ध हैं।

भगवान वेद के मानने वाले। जगद्गुरु महर्षि दयानन्द सरस्वती जी महाराज के युग चिन्हों पर चलाने वाले आर्य आबाल वृद्ध मूर्तिमान देश धर्म रक्षक हैं।

देश रक्षा हित कर रहे ताडव नृत्य भारत वीरों का वह ताडव शिवतांडव होगा। सारे अशिव सकल्प नष्ट होंगे। पुन किसी को इस प्रकार का दु सहाय करने का साहस न हो ऐसी मिल कर छाप लगा दें। भगवान राम की धरती को चीन रूपी रावण हर रहा है। जगद्गुरु भारत की मातृ भावना को जागत करने का यत्न करें। निराशा की झोली को आशा से भर देवें। ऐसे गीत, उपदेश सना दें।

जम्मू में आर्य सुरक्षा समिति बना कर आबाल वृद्ध आर्य नर नारी सुरक्षा कार्य में जुटे हुये हैं। सभी स्थानों में आर्य नर नारी, आर्य संस्थायें सुरक्षा में तन मन धन से जुटे हैं। देश रक्षा परम धर्म है। अन्तिम श्वास तक प्रत्येक मूल्य सुरक्षा हित आर्य समाज देने को कटिबद्ध है। लाखों स्वाह हो चुके वीरों के शरीर का यज्ञ शेष हमारी स्वतंत्रता है। इस की रक्षा प्राण प्रण से भुन २ कर झुलस २ करनी है भगवान् बल प्रदान करें।

खुशी राम शर्मा अधिष्ठाता वेद प्रचार
आर्य प्रादेशिक सभा जालन्धर

युवक समाज समारोह

❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖

आर्य युवक समाज लेखराम नगर कादियां का वार्षिक समारोह बड़े धूमधाम से मनाया गया। इस में आर्यप्रादेशिक सभा के वेदप्रचार-अधिष्ठाता श्री प० खुशीराम जी शर्मा प्रो. वेदोराम जी एम.ए.डी.ए.वी. कालेज जालन्धर पं० राजपाल मदन मोहन चिमटा मंडली, पं० त्रिलोकचन्द्र शास्त्री शामिल हुए। मोटर स्टैंड पर युवकों व सज्जनों द्वारा भव्य स्वागत किया गया। प० खुशीराम जी की रामायण कथा, मण्डली के भजनों, प्रोफेसर जी के ओजस्वी भाषणों का बहुत ही प्रभाव पड़ा। जनता रात के ग्यारह बजे तक सुनती रही। नगर मे नया जीवन वातावरण हो गया। युवक सम्मेलन बड़ा ही प्रभावशाली था। इस मे प्रि० सूर्यभानु जी वायस चांसलर, प० मोहनलाल जी गृहमन्त्री पञ्जाब सरकार, ला० सन्तोपराज जी मन्त्री सभा, सरदार गुरदयालसिंह बाजवा आदि ने अपने भव्य सन्देश भेजे। युवकों का उत्साह दर्शनीय था। नगर की जनता, डी० ए० वी० स्कूल, आर्य पुत्री पाठशाला, समाजों ने पूरा २ सहयोग दिया। समारोह हर प्रकार से सफल हुआ। आर्य गर्ल्स हाई-स्कूल की मुख्याध्यापिका कुमारी सन्तोष एम. ए. बी टी का प्रभावशाली भाषण हुआ।

आर्यसमाज दीनानगर

की ओर से इस बार ऋषि निर्वाण का समारोह पूरा एक सप्ताह तक समाज मन्दिर मे मनाया गया। श्री प० खुशीराम जी अधिष्ठाता वेदप्रचार आर्यप्रादेशिक सभा की मधुर कथा, प० राजपाल मदनमोहन मण्डली के श्री तारा चन्द जी के मीठे भजन होते रहे। सारा मैदान नर नारियों से भरा रहता था। इतने शान्त वातावरण में इतना सुन्दर कथा प्रवचन भजन हुए जिससे जनता ने बहुत ही लाभ उठाया। बहुत से जीवन प्रसाद पाकर कृतार्थ हो गये। प्रतिदिन रात को निरन्तर लगभग ग्यारह बजे तक यह सुन्दर प्रभावशाली कार्यक्रम चलता रहा। बीच में पं० त्रिलोक चन्द्र शास्त्री का भी प्रवचन हुआ। समाज मन्दिर का शांत वातावरण बड़ा ही आकर्षित करता है। समाज के प्रधान श्री ला० देवदत्त जी का तथा उनके सारे साथियों का धर्मप्रेम अतीव प्रशंसनीय है।

आर्यसमाज लक्ष्मणसर अमृतसर

देश रक्षा को आर्यसमाज का परम धर्म और परम कर्त्तव्य समझता हुआ आर्यसमाज लक्ष्मणसर का यह अधिवेशन चीन के साथ युद्ध के इस सकट काल में अपनी सरकार को तन मन धन द्वारा पूर्ण सहयोग का विश्वास दिलाता है और साथ ही ऐसे नाजुक समय के की अपनी नीति में सुदृढ़ता लाने तथा मित्र और अमित्र की पहिचान करने एवं सावधान रहने की प्रेरणा करता है।

इसके अतिरिक्त सरकारी स्कीम के अनुसार युवकों को मिलिटरी ट्रेनिंग के लिए तैयार करने तथा 'नैशनल डिफेंस फण्ड' के लिए धन एकत्रित करके भेजने की योजना भी बनाई जा रही है।

निवेदक
[illegible] शर्मा (प्रधान

भारतियो ! आगे बढ़ो कठिन परीक्षा का समय है इसमें उत्तीर्ण होना प्रत्येक देशवासी का कर्त्तव्य है

राष्ट्र पर आए संकट में युवकों का कर्त्तव्य

प्रादेशिक आर्य युवक संगठन पंजाब के अध्यक्ष की युवकों से प्रार्थना

युवक देश, जाति और धर्म की आन, शान और मान हैं। राष्ट्र का मेरुदण्ड युवकों की ही शक्ति है। जिस देश का युवक दक्ष और चौकन्ना रहता है उस देश की ओर शत्रु कभी भी आंखें उठा कर नहीं देख सकता। युवक वह प्रचण्ड प्रज्वलित अग्निपुंज है जिस में प्रत्येक प्रकार के मल नष्ट हो जाते हैं। देदीप्यमान युवक के मुखमण्डल के तेज के सम्मुख अरि स्वत दमन होकर सर्वत्र सुख, शान्ति और आनन्द विराजने लगता है।

आज हमारे देश की सीमा पर एक बर्बर, नास्तिक, क्रूर और विश्वासघाती व मित्र द्रोही शत्रु आ धमका है। उसने हमारे पवित्र मानसरोवर और कैलाश को नर रक्त से सींच पवित्र गंगा-अमृत को भी मृत करने की कुचेष्टा की है। आज उस शम्बर वंशी अंकुर ने देवों को, अहिंसक और धार्मिक समक्ष द्रोह करके युद्ध के लिए आ ललकारा है। वह यह नहीं जनता था कि देवों के पास भी दधीचि जैसे त्यागी और राष्ट्र पर न्यौछावर होने वाले राष्ट्रीय वीर हैं।

आज राष्ट्र की युवक शक्ति को शत्रु की ओर से चुनौती मिली है। क्या उस चुनौती का हमारे पास उत्तर नहीं है ? अवश्य है। अत आज ही हमें प्रतिज्ञा करनी चाहिए कि—

(१) राष्ट्र रक्षाकोष में अपने स्कूल, अपने कालेज, नगर, ग्राम आदि से अधिक से अधिक धन संग्रह करके शीघ्र ही जमा करावें।

(२) आहत सैनिकों को अपना खून देकर स्वतन्त्रता को सुदृढ़ करें।

(३) अधिक से अधिक संख्या में नेशनल केडिट कोर (एन सी.सी) में प्रविष्ट होकर हवाई और स्थल सेना का प्रशिक्षण प्राप्त कर सरकार की सहायता और देशवासियों में आत्म-निर्भरता लाने का प्रयत्न करें।

(४) युवतियां First Aid व डाक्टरी Nursing की शिक्षा प्राप्त करें। जिस से वह घायल सैनिकों की मरहम पट्टी कर सकें।

(५) आज प्रत्येक देशवासी का कर्तव्य है कि वह राष्ट्र हित के नाते स्वार्थ को छोड परार्थ में ही सब व्यवहार करे। यदि वह व्यापारी है तो उसे प्रयत्न करना चाहिए कि वह चीजों के भाव बढ़ने न दे। यदि वह प्रचारक है तो जनता में आत्म-विश्वास और आत्म-निर्भरता का उपदेश दे। यदि वह अध्यापक है तो राष्ट्रीय भाव अपने छात्र-छात्राओं के मस्तिष्क में भरे। आज फूट पैदा करने का अवसर नहीं अब तो सम्मिलन की घडी आ पहुंची है।

मुझे पूर्ण विश्वास है कि हमारे सभी बन्धु मेरी उपयुक्त प्रार्थना को अपने पवित्र हृदय में स्थान देकर राष्ट्र रक्षा के कार्य में जुट जावेंगे और आक्रान्त शत्रु से अपनी माता के अङ्ग-भङ्ग का पूरा बदला लेकर ही दम लेंगे।

आप का बन्धु
वेदीराम शर्मा एम ए.

ईश्वर के पवित्र नाम ओम का जाप करो।

डी०ए०वी० हायर सैकण्डरी स्कूल कादियां

के स्टाफ तथा विद्यार्थियों की यह सामूहिक असाधारण सभा चीन द्वारा भारतीय सीमाओं पर किए गए अमानुषिक आक्रमण को विश्वासघात तथा मित्रद्रोह समझती हुई घोर निन्दा करती है। भारत सरकार को आश्वासन दिलाती है कि राष्ट्र की मान रक्षा के लिए हम सब मुंह तोड़ जवाब देने के लिए प्रतिक्षण प्रस्तुत है।

भारत चीन सीमाओं पर अपने प्राणों की आहुति देने वाले वीरों के चरणों में अपनी श्रद्धांजली अर्पित करते हुए और लड़ने वाले बांके जवानों की जाबाजी की सराहना करती है। भगवान से प्रार्थना करती है कि देश रक्षा करते हुए वीर गति प्राप्त करने वाले परवानों की आत्मा को शांति प्रदान करें।

सभा में स्कूल स्टाफ तथा विद्यार्थियों ने मिलकर साढ़े तीन हजार रुपए इकट्ठे करके प्रधान मन्त्री महोदय के राष्ट्र रक्षा कोष में देने का फैसला किया है। और जरूरत पडने पर खून देने की भी पेशकश की है।

फिरोजपुर छावनी

फिरोजपुर की महिला केन्द्रीय आर्य समाजों ने डिफैंस वार्डर फन्ड में ५६५/- दान दिए। फिरोजपुर अनाथालय के छात्र-छात्राओं ने एक समय के भोजन का खर्च बचा कर और अनाथालय के कार्यकर्ताओं ने कुल मिलाकर १७५/- सुरक्षा फंड में दिये। तथा ३० विद्यार्थियों ने खून देना भी स्वीकार किया।

प्रतापचन्द्र महता

आर्यसमाज दसूआ (होशियारपुर) का चुनाव

प्रधान—प्रिन्सीपल चिरंजीव लाल जी ऋषि B.A.B.T. उपप्रधान—श्री हरवंस लाल जी मुजरिम, मन्त्री ला० अयोध्याप्रसाद जी बस्सी, उपमन्त्री राजेन्द्रनाथ जी S.C.B.T. और प० अमरचन्द्र जी, कोषाध्यक्ष—प० देवीदयाल जी, पुस्तकाध्यक्ष—प० मथुरादास जी ऋषि। अन्तरङ्ग सदस्य—ला० दुर्गादास जी, ला० जमनादास जी म० दीवानचन्द्र जी।

—२७ अक्तूबर को ऋषि निर्वाण उत्सव डी० ए० वी० प्राईमरी स्कूल में बडी धूमधाम से मनाया गया।

मन्त्री आर्यसमाज

आर्यसमाज मन्दिर, बाढ़ (पटना)

बेशर्म चीन द्वारा भारत की सीमा पर दुष्टतापूर्ण आक्रमण का आज की सभा विरोध करते हुए भारत सरकार की सीमा रक्षा नीति का हृदय से समर्थन करती हैं और प्रधान मन्त्री रक्षा कोष में १०१) एक सौ एक रुपए की राशि दान देने का निश्चय करती है। इस के इलावा आवश्यकता पड़ने पर स्वय सेवकों तथा अन्य प्रकार से भी मदद कर सरकार का हाथ बटाने का निश्चय करती है।

अध्यक्ष
महावीर दास

सभा द्वारा वेद प्रचार की धूम

आ. स भवानो नया बाजार का उत्सव १९ से २१ अक्तूबर, को धूम धाम से सम्पन्न हुआ। सभा की ओर से श्री प० त्रिलोक चन्द्र जी, राज पाल जी, मदन मोहन जी पधारे। उत्सव से पूर्व प० त्रिलोक चन्द्र जी की कथा होती रही।

आ. स नूर पुर का उत्सव १९ से २१ अक्तूबर को धूम धाम से सम्पन्न हुआ। उत्सव से पूर्व खुशी राम शर्मा। की कथा और तारा चन्द्र जी के भजन होते रहे। उत्सव पर प० ओ प्रकाश जी, प० चन्द्र सेन जी, मेला राम जी, हजारीलाल जी दुर्गासिंह जी पधारे। समाज की ओर से धर्मार्थ औषधालय चलाया जा रहा है। हजारों निर्धन रोगी आराम पाते हैं। वैद्य जय राम प्रकाश जी बड़े योग्य हैं। देव राज जी शाह ने सारा लगर का व्यय किया।

आ स मडी का उत्सव ११ से १४ अक्तूबर को धूम धाम मे सम्पन्न हुआ। उत्सव से पूर्व प० ओं प्रकाश जी की कथा दुर्गा सिंह जी के भजन होते रहे। उत्सव पर राजपाल जी मदन मोहन जी, प० चन्द्र सेन जी पधारे।

आर्य युवक समाज कादिया का उत्सव से ५ से ७ अक्तूबर को धूम धाम से सम्पन्न हुआ। प्रो० वेदी राम जी शर्मा प० त्रिलोक चन्द्र जी, राज पाल जी, मदन मोहन जी खुशी राम शर्मा ने भाग लिया। युवको का उत्साह प्रशंसनीय है।

आ स दीनानगर मे दीवाली पर्व धूम धाम से सम्पन्न हुआ। २२ से २८ तक खुशी राम शर्मा की कथा और राज पाल जी, मदन मोहन जी, तारा चन्द्र जी के भजन होते रहे। २८ ता. को कविसम्मेलन। पं० त्रिलोक चन्द्र जी ने भी भाग लिया।

आ स लारेन्स रोड मे दीवाली पर्व धूम धाम से सम्पन्न हुआ। पं० ओं प्रकाश जी २२ से २८ तक पधारे।

आ स माडल टाऊन जमनानगर मे २८ ता को दीवाली पर्व धूम धाम से सम्पन्न हुआ। प० मनीषि देव जी, अमर सिंह जी, शमशेर कुमार जी भगत राम जी, बस्ती राम जी पधारे।

आ. स माडल टाऊन लुधियाना में दीवाली पर्व २८ ता को धूम धाम से सम्पन्न हुआ। श्री प्रो. वेदी राम जी शर्मा पधारे।

आ० स० गुरदासपुर का उत्सव २३ से २५ नवम्बर को धूमधाम से सम्पन्न हो रहा है। १९ से प० ओंप्रकाश जी की कथा। मेलाराम जी के भजन होंगे। उत्सव पर प० मनीषि देव जी, दुर्गासिंह जी पधारेंगे।

आ० स० लोहगढ अमृतसर का उत्सव ९ से ११ नवम्बर को सम्पन्न हो रहा है। श्री ठाकुर अमरसिंह जी की कथा, दुर्गासिंह जी के भजन होवे। उत्सव पर प० त्रिलोक चन्द्र जी, मेलाराम जी पधारेंगे।

आ० स० दुलेहरा (जेजों) का उत्सव ९ से ११ नवम्बर को सम्पन्न हो रहा है। महात्मा देवीचन्द जी, कैं० बूटाराम जी, रामदेव जी, चन्द्रसेन जी, हजारीलाल जी पधारेंगे।

आ० स० होशियारपुर का उत्सव १६ से १८ नवम्बर को धूमधाम से सम्पन्न हो रहा है। प० त्रिलोकचन्द्र जी की कथा, हजारी लाल जी के भजन होंगे। उत्सव पर मेलाराम जी रामकरण जी की मडली व प० ओमप्रकाश जी पधारेंगे।

आ० स० खुल्दाबाद (प्रयाग) का उत्सव १० से १३ नवम्बर को धूमधाम से सम्पन्न हो रहा है। सभा की ओर से प०ओमप्रकाश जी पधार रहे हैं।

आ० स० अम्बाला नगर का उत्सव ७ से ९ दिसम्बर को सम्पन्न हो रहा है।

आ० स० कुंजपुरा का उत्सव, यज्ञ २ से ९ दिसम्बर को सम्पन्न हो रहा है।

आ० स० ऊना का उत्सव १४ से १६ दिसम्बर को सम्पन्न हो रहा है।

आ स. कोटली कालोनी जम्मू में दीवाली पर्व धूम धाम से सम्पन्न हुआ। प० चन्द्र सेन जी, हजारी लाल जी पधारे।

आ स अखनूर में दीवाली पर्व धूम धाम से सम्पन्न हुआ। श्री मेला राम जी पधारे। श्री प० हरिश्चन्द्र जी ने भी भाषण दिया।

आ स द मकेटर चडीगढ का उत्सव २ से ४ नवम्बर को धूम धाम से सम्पन्न हुआ। २९ से राज पाल जी मदन मोहन जी उत्सव पर पधारे सभा की ओर से प० त्रिलोक चन्द्र जी, मेलाराम जी पधारे।

आ स गढदीवाला का उत्सव २६ से २८ अक्तूबर को धूम धाम से सम्पन्न हुआ। राज पाल जी, मदनमोहन जी प० त्रिलोक चन्द्र जी पधारे।

आ स कागडा का उत्सव ९ से ११ नवम्बर को धूम धाम से सम्पन्न हो रहा है। खुशी राम शर्मा तारा चन्द्र जी, राज पाल जी, मदन मोहन जी मनीषिदेव जी, साजन जी भाग ले रहे हैं।

आ स नगरोटा बगुवा का उत्सव १२ से १४ नवम्बर क्यों धूम धाम से सम्पन्न हो रहा है। राज पाल जी मदन मोहन जो, मनीषि देव जी, साजन जी पधार रहे हैं।

आ स टीका नगरोटा का उत्सव १६ से १८ नवम्बर को धूम धाम से सम्पन्न हो रहा है। राजपाल जी तारा चन्द जी, मनीषि देव जी, साजना जी पधार रहे हैं।

आ. स पट्टी (अमृतसर) का उत्सव २३ से २५ नवम्बर को धूम धाम से सम्पन्न हो रहा है। १९ से चन्द्र सेन जी की कथा हजारी लाल जी के भजन होगे। उत्सव पर खुशी राम शर्मा, साजनदेव जी, तारा चन्द भाग लेंगे।

आ० स० दौलतपुर का उत्सव ७ से ९ दिसम्बर को सम्पन्न हो रहा है।

आ० स० सीताराम बाजार दिल्ली का उत्सव ३०—१२—६२ दिसम्बर को सम्पन्न हो रहा है।

आ० स० निडाना ७ से ९ दिसम्बर।

आ० स० मोखरा २५ से २७ दिसम्बर।

आ० स० तालू २८ से ३० दिसम्बर को धूमधाम से रोहतक के उत्सव सम्पन्न हो रहे हैं।

आ० स० टुहाना का उत्सव ३० नवम्बर १—२ दिसम्बर को धूमधाम से सम्पन्न हो रहा है। २९ नवम्बर से प० त्रिलोक चन्द्र जी की कथा होगी। राजपाल मडली के जम उत्सव पर खुशीराम शर्मा मा० ताराचन्द जी ठा० दुर्गासिंह जी प० मनीषि देव जी पधारेंगे।

आ० स० हिसार का उत्सव २३ से २५ नवम्बर को सम्पन्न हो रहा है। राजपाल जी, मदनमोहन जी पं० त्रिलोक चन्द जी पधार रहे हैं।

—•—•—•—

नोटिस

बा अदालत श्री देवराज जी महाजन पी. सी. एस, सीनियर सबजज दरजा अव्वल (A) भटिंडा इश्तहार जेर दफा ५ रूल २० मजमूआ जाब्ता दीवानी

मल सिंह वलद हरनाम सिंह सकना मैमा सरकारी मुद्दई, बनाम हरनाम सिंह प्रीतम सिंह वगैरह—सकना मैमा सरकारी मुद्दे ला दावा हुकम इम्तनाई दीवानी

नोटिस बनाम—भरपूर सिंह वलद प्रीतम सिंह सकना मैमा सरकारी व अवतार सिंह वल्द प्रीतम सिंह सकना मैमा सरकारी-मुद्दे ला

मुकदमा मुन्दर्जा वाला में अदालत पर बावर हो गया है और यकीन हो गया है कि भरपूर सिंह व अवतार सिंह मुद्दालया क तामील सम्मन मामूली तरीका पर होनी नामुमकिन है लिहाजा यह इश्तहार जेर आर्डर ५ रूल २० मजमूआ जाब्ता दीवानी जारी किया जाता है और हुकम दिया जाता है कि मुद्दे ला भरपूर सिंह व अवतार सिंह तारीख पेशी मोरखा 16.11.62 को अदालत हुजा में हाजिर होकर पैरवी मुकदमा करें वरना उनके खिलाफ बसूरत गैरहाजरी कार्यवाही यकतर्फी अमल में लाई जायगी।

आज २६ अक्तूबर १९६२ को बैसबत मोहरे अदालत और हमारे दस्तखतों के जारी हुआ।

मोहर अदालत दस्तखत—सबजज

पुस्तक समीक्षा

(१) बलिदान-जयन्ती-स्मृति-ग्रन्थ

प्रकाशक—आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब (जालन्धर)। कीमत ४-५० N.P.। पृष्ठ संख्या २०० साईज १८×२२/४ के मूल लेखक श्री हरिप्रकाश जी मन्त्री बलिदान जयन्ती समारोह समिति। इस पुस्तक के मुख्य दो भाग हैं पहला भाग १३६ पृष्ठ का है जिस में पंजाब और हैदराबाद के प्रसिद्ध हुतात्माओं का संक्षिप्त जीवन हैं। दूसरा भाग ६४ पृष्ठ का है जिस में 'आर्य समाज क्या चाहता है, इस पर विस्तृत विवेचन किया गया है। पुस्तक के अंत में आर्यसमाज के नेताओं विद्वानों और विचारकों के फोटो संगृहीत किए गए हैं। सभा ने पुस्तक को सर्वांगीण बनाने में कोई कसर नहीं छोडी। पुस्तक जहां चित्ताकर्षक है उसके साथ २ देश भक्तों के लिए अमूल्य स्थायी सम्पत्ति है इतिहास प्रेमियों के लिए मार्ग दर्शक है। लेखक का प्रयास सराहनीय है।

(२) वेद आदेश

आध्यात्मिक प्रेम के दीवाने डी० ए० वी० कालिज कानपुर के पूर्व प्रिंसीपल श्री डा० दीवानचन्द्र जी M A की लिखी हुई नवीन पुस्तक वेद आदेश हमारे सामने है। आपने अध्यात्मविद्या के ऊपर इस से पूर्व भी कई ग्रन्थ, वेदसंदेश, केन मुण्डक उपनिषद, स्वाध्याय संग्रह, जीवन ज्योति, गीता दिग्दर्शन, महर्षि दर्शन आदि लिखे हैं। यह नवीन पुष्प ग्यारह अध्यायों में विभक्त है प्रत्येक अध्याय में वेद के मंत्रों से हर एक विषय को पुष्ट किया गया है। स्वाध्यायशील व्यक्तियों के लिए और आत्मोन्नति के इच्छुकों के लिए अनमोल रत्न है। आर्य प्रेमियों की सन्तानों को मन शान्त करने का साधन है। मूल्य केवल ॥=) है। प्राप्ति स्थान—नानक चन्द वजीर देवी ट्रस्ट ६३ कानपुर छावनी।

राष्ट्रिय सुरक्षा निधि में

आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा पंजाब जालन्धर शहर के केन्द्रीय उपदेशक भजनीक मण्डली तथा आर्य जगत् विभाग ने भारत के प्रधान मन्त्री के राष्ट्रिय सुरक्षा कोष में अपना एक दिन का वेतन समर्पित किया है तथा पूर्ण सहयोग देने का विश्वास दिलाया है।

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब गुरुदत्त भवन

के मंत्री जी ने एक वक्तव्य में कहा है कि पंजाब में आर्य समाज द्वारा चलाया गया हिन्दी रक्षा आंदोलन तब तक बंद रहेगा जब तक कि हम चीनियों को भारत से बाहर नहीं खदेड़ देते। इसकी एक २ कापी पं० नेहरू जी को व मुख्य मंत्री पंजाब सरकार को भेज दी गई है। सभा से सम्बन्धित सभी समाजों को पूरी शक्ति के साथ [illegible] तैयार करके सरकार को सहयोग देने का आदेश दिया है।

आर्यसमाज किला जालन्धर शहर का उत्सव स्थगित

निश्चय हुआ है कि चीन के भारत पर आक्रमण और इस से पैदा हुई परिस्थिति को सामने रखते हुए आर्य समाज किला जालन्धर का वार्षिक महोत्सव जो कि २३-२४ और २५ नवम्बर १९६२ को मनाया जा रहा था, स्थगित किया गया।

खुशहाल चन्द पाराशर
मन्त्री

युवकों का उत्साह वर्धन

श्री बृज लाल जी का अपूर्व दान

सभी आर्य युवक समाजों को यह जान कर अत्यन्त प्रसन्नता होगी कि श्री बृजलाल जी गुप्त प्रधान आर्य समाज टोहाना ने प्रादेशिक आर्य युवक संगठन के संविधान आदि का सहायतार्थ १०१ रुपया का दान दे कर समस्त प्रान्त के युवकों का उत्साह वर्धन किया है। प्रादेशिक युवक संगठन के अध्यक्ष के नाते मैं मैं श्री गुप्ता जी को प्रदेश के सभी-युवकों की ओर से धन्यवाद देता हूं तथा भविष्य में भी इसी प्रकार की सहायता और सहयोग की याचना करता हूं।

वेदी राम शर्मा एम० ए०
अध्यक्ष,
प्रादेशिक आर्य युवक संगठन [illegible]

शोक प्रस्ताव

वयोवृद्ध, कर्म काण्डी, तपस्वी वेद के अनन्य भक्त श्री पण्डित परशुराम जो शर्मा के निधन का दुःखद समाचार सुन कर अतीव शोक हुआ। आर्य जगत इस महान दुःख में सारे परिवार के साथ हार्दिक समवेदना प्रकट करता हुआ परमात्मा से दिवंगत आत्मा की शान्ति की प्रार्थना करता है।

मुद्रक व प्रकाशक श्री संतोषराज जी मन्त्री आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा पंजाब जालन्धर द्वारा वीर मिलाप प्रैस, मिलाप रोड जलन्धर से मुद्रित तथा आर्यजगत कार्यालय महात्मा हंस राज भवन निकट कचहरी जालन्धर शहर से प्रकाशित मालिक—आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा पंजाब जालन्धर

टेलीफोन नं० ३०५७ [आर्यप्रादेशिक प्रतिनिधि सभा पंजाब जालन्धर का साप्ताहिक मुखपत्र] Regd. No.P.121

एक प्रति का मूल्य १३ नये पैसे वार्षिक मूल्य ६ रुपये

वर्ष २२ अंक ४७) रविवार १- आश्विन २०१९—२५ नवम्बर १९६२ दयानन्दाब्द १३९ (तार-प्रादेशिक जालन्धर

वेदामृत

विजय भारत की होगी

भारत के राष्ट्रपति डा० राधा कृष्णन ने अपने सन्देश मे कहा भारत चीन सीमा विवाद में अन्तत । विजय भारत की होगी, क्योकि हम सत्य और धर्म का पल्ला पकड़े हुए हैं। भारत सदा से एक शान्ति पूर्ण देश रहा है। हम विश्व शान्ति के लिए भर सक प्रयत्न करते रहे हैं। हमारा इतिहास शानदार रहा है। हम शत्रु को पछाड़ने में क्षमता रखते हैं। हमारी सभ्यता और संस्कृति महान् है। चीन ने भारत पर आक्रमण कर के विश्व शान्ति को भारी क्षति पहुंचाई है।

देवानां भद्रा सुमति ऋ'जूयतां देवानां रातिरभिनो निवर्त्त'ताम् दिवानां सख्यमुप से दिमावय' देवानः आयुः प्रतिरन्तु जीवसे ।।

यजु. अ० २५ मन्त्र १५

अर्थ.—हमें (देवानां) दिव्यजनों की (भद्रा) कल्याण करने वाली (सुमति) उत्तममति प्राप्त होवे। तथा (ऋजूयता) सरल पथ पर चलने वाले (देवाना) देवों का (रातिः) दान (नः) हम को (अभि) चारों ओर से (निवर्त्त'ताम्) प्राप्त होवे। और (देवानां) दिव्य जनों की सख्यम्) मित्रता संगति (उपसेदिम) प्राप्त करें (वयं) हम सब-हमें दिव्य पुरुषों की संगति मिलती रहे। (देवा.) सारे देव पुरुष (न.) हमें (आयुः) आयु (प्रतिरन्तु) बढाते रहें (जीवसे) जीवन के लिए हमें उपदेश मिलता रहे।

भाव.—हे जगत् पिता जी ! हम आप से क्या मांगें ? किस की याचना करें कौन सा पदार्थ और अमूल्य निधि है जो आप ने अपनी सन्तान को प्रदान नहीं कर रखी। यह धन धन्य भरी धरती, यह जल, वायु, अग्नि सूर्य चन्द्र, नाना भोजन भण्डार, यह नरतन चोला-किस २ का नाम लेवें-जीवन के कितने उपयोगी पदार्थ दिये। फिर भी महान दानी ! हम आप से झोली फैला कर प्रार्थना करते हैं कि हमें देवों दिव्य-जनों की सुपथ पर चलाने वाली सुमति प्राप्त होती रहे। सरल मार्गी देव पुरुष अपने ज्ञान् का महान् दान सदा हमें प्रदान करते रहें। हम सदा देवलोकों की शुभ संगति में रहते हुए उन से आयु, जीवन का पाठ पढ़ते रहें। देव पुरुष ही हमारा पथप्रदर्शन करते रहें। हमारा मार्ग देवों का प्रशस्त मार्ग हो। हमारे जीवन में दिव्यगुण आ जायें। हमारा संग देवजनों के साथ होता रहे। हे महादेव ! हमें जीवन प्रसाद देवें। देव संग दें तथा देवमति दीजिये।

—सं.

पं० नेहरू की ललकार

हम प्रतिज्ञा करते हैं कि जब तक भारत की भूमि से दुश्मन को निकाल नही लेगे, चैन से नही बैठेंगे। मैं पूरी ताकत से राष्ट्र को विश्वास दिलाता हूं कि हम दुश्मन से किसी ऐसी शर्त पर, जिस से भारत की शान को धक्का लगे, सुलह नहीं करेंगे. समझौता नही करेंगे, झुकेंगे नही, दबेंगे नही। हम आखिरी दम तक लड़ेंगे और इस में जीत हमारी होगी। हम इस पवित्र लडाई के लिए सब कुछ कुर्बान कर देंगे। हर हिन्दोस्तानी का एक ही धर्म है, लक्ष्य है और वह दुश्मन से टक्कर लेना है। यह हमारे इम्तिहान की घडी है और हम मजबूत दिल साहस, वीरता के बिना कोई ढील दिखाए दुश्मन का मुकाबिला करेंगे।

अधिष्ठाता—संतोषराज मंत्री सभा सम्पादक—त्रिलोक चन्द्र शास्त्री

अध्यात्मवाद—

यम नियम चर्चा ३— अहिंसा

(श्री सुरेश चन्द्र जी वेदालकार एम ए एल. टी डी बी. कालेज गोरखपुर)

श्री पातजल ऋषि ने 'योगदर्शन' द्वितीय अध्याय साधन पाद सू० ३० में कहा गया है "सत्याहिंसास्तेय-ब्रह्मचर्यापरिग्रहा यमा." के अनुसार सत्य के बाद अहिंसा का स्थान है। इन्हें 'यम' कहते हैं। यम का तात्पर्य है 'जिन से मन सहित सब इन्द्रियां विषयों से उपरत की जायें।' इन में अहिंसा एक महत्वपूर्ण व्रत है। मन, वचन, कर्म से सदा सब प्राणियों को पीड़ा न देना अहिंसा है। योगदर्शन में लिखा है—

जाति देशकाल समयाऽनवच्छिन्ना सार्वभौमा महाव्रतम ॥३१॥

ये यम आदि यदि जाति, देश, काल और समय से न करें और सब भूमियों में रहें तो महाव्रत हैं। इस विषय को स्पष्ट करना आवश्यक है। अहिंसा व्रत को लें। यदि यह अहिंसा का व्रत जाति से सकुचित है अर्थात् हम केवल यह व्रत करते हैं कि ब्राह्मण को नहीं मारेंगे औरों को भले ही मारें तो यह महाव्रत नहीं। महाव्रत तब होगा जब हम यह निश्चय कर लें कि विश्व मे किसी भी व्यक्ति को, प्राणि को या पशु को पीड़ा न देंगे। इसे ही अनवच्छिन्न अहिंसा कहा गया है। इसी प्रकार देश से समुचित अहिंसा यह है कि कुरुक्षेत्रादि तीर्थ स्थलों में न मारूंगा, कालाऽवच्छिन्न अहिंसा यह है कि अमावस्या, पूर्णिमा आदि पर्वों में न मारूंगा। समयावच्छिन्न अहिंसा है कि नियम या प्रतिज्ञा विरुद्ध न मारूंगा परन्तु यह सब अहिंसा महाव्रत नहीं। महाव्रत तो यह है कि जाति से अनवच्छिन्न, देशानवच्छिन्न, कालानवच्छिन्न, समयानवच्छिन्न अहिंसा का पालन करूंगा।

यमों का पालन करना मनुष्य के लिये आवश्यक कर्म है। मनु जी ने लिखा है यमान् सेवेत सतत न नियमान् केवलान् बुध' यमों का मनुष्य निरन्तर पालन करे। इन में अहिंसा का स्थान सर्वोपरि है। योगदर्शन मे लिखा है कि 'अहिंसा प्रतिष्ठायां तत्सन्निधौ वैर त्यागा' अर्थात् अहिंसा में स्थिति (निश्चलता) होने पर अहिंसा के समीप सब प्राणियों का वैर छूट जाता है।

जिस समय हम प्रकृति पर दृष्टि डालते हैं तो हमें सर्वत्र यह दिखलाई देता है कि बड़ा छोटे को खा रहा है, बलवान् कमजोर को जीवित नहीं रहने देना चाहता। पौधो मे, पशुओं में, पक्षियों में यही नियम काम कर रहा है। आजकल के विद्वान् इसे 'स्ट्रगल-फोर एक्जिस्टेन्स' कहते हैं। प्राचीन भारत में इसे मत्स्य न्याय कहते थे। जिस प्रकार बड़ी मछली छोटी को निगल जाती है और उस से बड़ी मछली उसे निगल जाती है वैसे ही 'मत्स्य न्यायाभिभूत जगत्' है। अंग्रेजी के एक कवि टैनीसन ने कहा है 'Nature Red in tooth and claw' अर्थात् प्रकृति के पंजे और दांत लाल हैं।

संसार में दो तरह के व्यक्ति हुए हैं। एक श्रेणीके व्यक्ति को हम भौतिकवादी और दूसरों को अध्यात्मवादी कह सकते हैं। भौतिकवादी या प्रकृतिवादी कहते हैं कि शक्तिशाली से जीवित रहने का अधिकार है। इस विचारधारा ने शक्तिशाली राष्ट्रों को पददलित करनेका अधिकार दिया। जिसके पास शक्ति थी उस ने विश्व विजय का नारा बुलन्द किया और निकल पड़ा। फलस्वरूप उसने खून की नदियां बहाई, लाखों निरीहों की जान ली, बच्चे अनाथ हुए, स्त्रियां विधवा बनीं। विश्व में एक बवडर खड़ा करके वह लौट आया। जमन जाति का विश्वास था कि वह विश्व का शासन करने के लिए बनी है परिणाम स्वरूप दो महायुद्ध हुए। अंग्रेजों ने इसी विचार से साम्राज्वाद को स्थापित किया।

परन्तु दूसरे विचार हैं अध्यात्मवादी। इनमें महात्मा बुद्ध, महावीर स्वामी, शंकराचार्य स्वामी दयानन्द और महात्मा गांधी जैसे महान् पुरुष हैं। जिन्हों ने इस दिशा में पथ-प्रदर्शन किया। उन्होंने मनुष्य को पशु नहीं माना। क्या पौधे, पशु-पक्षी, मछलियां, कीट-पतङ्ग मानव के जीवन की दिशा निर्धारित करेंगे। नहीं। अत इन महान पुरुषों ने मनुष्य को पशु मानने से इन्कार कर दिया।

इन्होंने भौतिकवाद के स्थान पर आत्मतत्व का विकास करने का उपदेश दिया। इन्होंने कहा हिंसा आत्मा का नियम नहीं जड़ प्रकृति का नियम है, आत्मतत्व का नियम अहिंसा है। किसी प्राणी को मारकर खा जाना—यह तो हिंसा का मोटा रूप है। इन महात्माओं का कथन था कि नानात्व भावना, भेद बुद्धि वह बुद्धि, जिससे हम ससार में जीने का अपना ही अधिकार समझते हैं, दूसरों का नहीं, जिससे हमने मानव समाज को पारस्परिक द्वेष और कलह का अखाड़ा बना रखा है। हम जियेंगे, दूसरों को नहीं जीने देंगे—यह भावना हिंसा है। अपने लिए दूसरों को बलि चढ़ा देना यह अंधी प्रकृति का नियम है। मछलियों कीड़े, मकोड़ों का है। प्रकृति की हिंसा उस प्रतिक्रिया को जगाने के लिए है जिस के द्वारा प्रकृति से भिन्न यह दैवीय अहिंसा के तत्व में ही अपनी पूर्णता को पा सकता है।

इस संसार में जिन्होंने अपने को दूसरों के लिए बलिदान कर दिया विश्व उनकी उपासना करता है। विश्व उनकी कीर्ति का गान करता है। क्या वह दयानन्द की जय जयकार का वह दृश्य कभी भूला जा सकता है कि भरी सभा में विरोधियों ने उनके ऊपर सांप फैंका ऋषि दयानन्द ने उसे फूलों की माला समझा, विरोधियों द्वारा फैंके गए पत्थरों की वर्षा को फूलों की वर्षा समझ कर स्वीकार किया, जहर देने वाले की जान बचाकर उसे रुपया देकर दूसरी जगह भेज दिया। क्या प्यासे को पानी पिला कर और उसके बदले में छाती पर तीन गोलियां खाने वाले स्वामी श्रद्धानन्द की प्यासों के प्रति की गई कर्त्तव्य भावना क्या सर्वभूतहित भावना की परिचायक नहीं? क्या सुकरात ने जहर का प्याला पीकर अमरत्व का उपदेश नहीं दिया? क्या भाई जी अहिंसाके अमर सत्य की साधनामें अपने प्राण न्यौछावर करके मनुष्यों से देवताओं की श्रेणी में नहीं चले गए?

अहिंसा का मतलब सनक या कमजोरी नहीं है यदि शत्रु के सामने नि.शस्त्र खड़े रहने की तैयारी न हो तो उसके ऊपर प्रहार की तैयारी से खड़े रहो। लेकिन भाग जाना तो पूरी तरह त्याज्य और निंद्य है। इस बात को गांधी जी ने सौ बार कहा है। यदि आप शस्त्रों से स्वराज्य ले सकते हैं तो आप उसे ले लीजिए। मैं दूर खड़ा रहूंगा। लेकिन गुलाम मत रहिए। यदि शस्त्रों से न लड़ सको तो मेरी निःशस्त्र लड़ाई में शामिल हो जाओ। स्वतन्त्रता की लड़ाई तो हमें चालू रखनी ही पड़ेगी। गुलामी से सड़ते रहना तो हमें शोभा नहीं देता।' अहिंसा का मूल तत्व भी यही है। मनु जी ने लिखा है—

'आततायिन मायान्तं हन्यादेव विचारयन्।

बिना विचारे ही आततायी को मार डाले।

(क्रमशः)

जिस प्रकार व्यक्तिगत जीवन में मनुष्य की उन्नति बाहुबल और बुद्धिबल पर निर्भर है उसी प्रकार राष्ट्रीय उन्नति के लिए सैन्य और शिक्षा दोनों की आवश्यकता है। सैनिक और शिक्षक दोनों की संयुक्त शक्ति से ही देश का अभ्युत्थान होता है। सैनिक क्षात्र शक्ति का प्रतीक है और शिक्षक ब्राह्म शक्ति का। सैनिक शारीरिक बल का आगार है और शिक्षक आत्म तेज का। सैनिक अस्त्र-शस्त्र द्वारा देश की बाह्य शत्रुओं से रक्षा करता है और शिक्षक देश-वासियों मे ज्ञान की वृद्धि करता है। देश के आन्तरिक और बाह्य आततायी और दुष्ट शत्रुओं का विनाश करने में सैनिक की तलवार काम करती है तथा दुर्वृत्तियों तथा दुर्भावनाओं का दमन करके सच्चरित्र का निर्माण करने में शिक्षक की साथकता सिद्ध होती है। सैनिक यदि राष्ट्र का शरीर है तो शिक्षक उसका हृदय। सैनिक के बिना देश सुरक्षित नहीं रह सकता तो शिक्षक के बिना देशकी प्रगति नहीं हो सकती। सैनिक की शक्ति राष्ट्र में शांति स्थापन के काम आती है तथा शिक्षक की सभ्यता के विकास में। देश को दोनों की आवश्यकता है।

सैनिक की अपेक्षा शिक्षक का कार्य गौरव पूर्ण है स्कूल या पाठशाला एक समाज है। अध्यापक उसका नेता है। नवयुवकों के जीवन नौका की पतवार उसी के हाथों मे है। वह उसे जिस ओर चाहे घुमा सकता है। अध्यापक जाति, समाज और देशका निर्माता है भले, सैनिक का कार्य इतना उत्तरदायित्व पूर्ण है।

सैनिक का पहला कार्य—बाह्य आक्रमणों से देश की रक्षा करना है। जब स्वदेश के ऊपर आतंक छाया हो, जब देश वासियों के शरीर सम्पत्ति और सम्मान खतरे में हों तब से सैनिक का कार्य प्रारम्भ होता है।

सैनिक और शिक्षक

(बहिन संतोष वेदी एम ए मुख्याध्यापिका वेद कौर गर्ल्ज हाई स्कूल कादिया)

सैनिक का दूसरा कार्य—विजयों द्वारा देश के गौरव की रक्षा करना।

सैनिक का तीसरा कार्य है—देश के भीतर शान्ति और सुव्यवस्था की स्थापना। सैनिकों के अभाव में देश लूट, मारकाट, हत्या, विध्वस आदि का घर बन जाता है।

शिक्षक की कार्य प्रणाली इस से बिल्कुल भिन्न है। इसका कार्य है देश की बौद्धिक व मानसिक उन्नति करना। जिस समय विद्यार्थी अध्यापक के समीप जाता है उस समय उसका शैशवकाल होता है। इस समय संस्कार सुकुमार मति बालक के हृदय पर अमिट प्रभाव डालते हैं। इस प्रकार शिक्षक मानव के शिशु के भविष्य जीवन का निर्माता है।

शिक्षक द्वारा धर्म और संस्कृति की रक्षा और विकास होता है इस से मनुष्य के ज्ञान का उन्नति है इस से असदाचार की अवनति और सदाचार की उन्नति होती है।

शिक्षक अपने सन्निकट रहने वाले बालकों की रुचि का निर्माण करता है उनके स्वभाव का गम्भीरता से निरीक्षण करता है। जिस को जिस कार्य के योग्य समझता है उस में वैसा ही प्रभाव फूकता है। वह उनको कर्तव्य और अधिकार का ज्ञान कराता है तथा उनके हृदय में राष्ट्र प्रेम की ज्योति जगता है। वह प्रत्येक बालक को देश का सपूत और चतुर नागरिक बनाता है जिस से राष्ट्रोन्नति का मार्ग प्रशस्त होता है।

यदि विचार कर देखा जाये तो सैनिक की अपेक्षा शिक्षक के कार्य अधिक चिरस्थायी होते हैं। शिक्षा द्वारा देश का जितना कल्याण हो सकता है उतना अन्य किसी प्रकार से सम्भव नहीं। उसके उपकारों का मूल्य चुकाना सर्वथा असम्भव है। एक-एक विद्वान एक एक शब्द के लिए अपने शिक्षक के ऋणी हैं।

सैनिक और शिक्षक की कार्य प्रणाली मे भी महान अन्तर है। सैनिक का कार्य तलवार से सिद्ध होता है और शिक्षक का वाणी से। सैनिक को वध, हत्या और विध्वंस का आश्रय लेना पड़ता है पर शिक्षक को काम स्नेह,सहानुभूति और उदारता से सम्पन्न होते हैं। सैनिक अपना कार्य सिद्ध करने के लिये नरमुंडों से खेलता है युद्धाग्नि से पृथिवि को कम्पित करता है और सब आतंक, भय और त्रास का राज्य स्थापित कर देता है। सैनिक अपने काम को हिंसा और प्रतिहिंसा की भावना से करता है जबकि शिक्षक अत्यन्त विनत और कोमल भाव से

यद्यपि देशोन्नति के लिये सैनिक और शिक्षक दोनों की अनिवार्यता आवश्यक है तथापि शिक्षक का गौरव महान है शिक्षक के अभाव मे कोई देश उन्नति नहीं कर सकता शिक्षक एक मंजूषा है जो शिक्षा के अमूल्य रत्नों से परिपूर्ण है। यह चतुर कलाकार है, निपुण जौहरी है, पारखी है और है मार्ग दर्शक। विशेष क्या कहें उसके चरित्र मे सभी रमणीय तत्वों का समावेश है। वह अनुशासक है, भावुक है और है मानव जाति का आदर्श। देश में जितने उपदेशक, सुधारक, वकील, बैरिस्टर एवं व्याख्यान दाता हैं उन्होंने अपने जीवन में प्रथम प्रेरणा अध्यापक से ही प्राप्त की है। उसी ने इनके हृदय क्षेत्रों में सद्विचारों का बीजारोपण किया था। जिन्होंने पुष्पित और पल्लवित होकर आज उनको इस उन्नत दशा तक पहुंचाया है। एतदर्थ वे सभी शिक्षक के आभारी हैं। यही कारण है कि प्रत्येक देश की आंखों में शिक्षक का दर्जा अत्यन्त ऊंचा और सम्मानपूर्ण है।

सैनिक को भी बनाने वाला शिक्षक है। शिक्षक की प्रेरणा ही उसे नरमुंडों से खेलने को उत्तेजित करती है और उसी की प्रेरणा उसे देश के लिये तन, मन और धन सपर्ण करने के लिये ललकारती है।

एक बात अन्त में फिर कहनी पड़ती है वह यह कि सभी कुछ तब सम्भव है जब शिक्षक वास्तव में शिक्षक हैं। उसे देश के प्रति सच्ची लग्न आज भारतमे समयहै।शिक्षकों की परीक्षा का। आज का शिक्षक भी किसी से पीछे नहीं रहेगा सदैव की भान्ति पथप्रदर्शक बनेगा।

आर्य वीर दल रोहतक शहर का मासिक डायरी असौज की

(शाखा)

दैनिक शाखा प्रात. ६॥ से ७॥ बजे लगती है।

(दशहरा-विजय दशमी)

आर्य केन्द्रीय सभा रोहतक के द्वारा लगाये गये विजय दशमीके पर्व को आर्य वीर दल रोहतक ने बड़ी धूम-धाम से मनाया। २७ सितम्बर को भवानी स्टैंड पर खुले रूप में प्रो० रघुवीर सिंह जी छोटू राम कालेज की अध्यक्षता में बड़ा भारी जलसा हुआ जिस में प्रो० उत्तमचन्द जी शरर ने विशेषता श्री राम मिहर जी वकील तथा स्वामी नित्यनन्द जी ने सामान्य रूप से दशहरा मनाने की विधि पर प्रकाश डाला। जिस से बुद्धिमान सनातन धर्मी अधिक प्रभावित हुये।

(७ अक्तूबर कार्यक्रम)

इस पर्व की दूसरी कड़ी ७ अक्तूबर को समाप्त हुई। ६ अक्तूबर को आर्य वीरों का सहभोज हुआ। प्रात. समस्त आर्य समाजों का इकट्ठा सत्संग हुआ जिस में आर्य वीरों के भाषणों के पश्चात स्वा० वेद मुनि जी स्वा० नित्यानन्द जी, मा० रामनारायण जी तथा महाशय गणेश दत्त जी आर्य सेवक ने श्री राम के उज्ज्वल चरित्र पर प्रकाश डाला।

१६ सितम्बर इस तिथि को आर्यवीर का कृष्ण दिवस मनाया गया जिसमें पं० ओ३म प्रकाश जी का भाषण हुआ। —विद्यार्थी

आर्यसमाज की राष्ट्रयज्ञ में जीवनाहुति

राष्ट्ररक्षा सम्मेलन का शानदार समारोह

आर्य समाज लोहगढ अमृतसर मे धूमधाम

आर्यसमाज लोहगढ़ अमृतसर आर्य प्रादेशिक सभा से सम्बन्धित समाजो में बहुत पुराना, प्रसिद्ध तथा विशाल भवन से युक्त है। अमृतसर के इस मन्दिर में कौन-सा समाज का ऐसा महान् नेता है, जिस के ओजस्वी प्रवचन यहा नहीं हुए। स्वर्गीय वीतराग स्वामी सर्वदानन्द जी, महात्मा नारायण स्वामी, महात्मा हंसराज जी, ला० लाजपतराय जी सरीखे नेता पधारे। इसलाम के नेता मौ० सनाउल्ला जी, अब्दुल्हक सरीखो से खूब शास्त्रार्थ हुए। समाज के पुराने युग का दृश्य आज भी आखो के सामने आ जाता है। जितने भी अमृतसर शहर के समाज हैं वे इसी मानसरोवर की उज्ज्वल पवित्र धाराए हैं। लोहगढ का मन्दिर भी लोह का गढ़ ही प्रतीत होता है।

इस समाज के कार्यकर्ता श्री बावा गुरुमुखसिंह जी सेठ जगत् बन्धु जी, श्री पुरी जी सरीखे रह चुके हैं। आज कल समाज के प्रधान ज्ञानी पिण्डीदास जी हैं। श्री ज्ञानी जी भी सभा तथा समाज के पुराने स्तम्भ हैं। निर्भीक कार्यकर्ता तथा वक्ता हैं। सभा से बहुत पुराना सम्बन्ध है यह सुन कर भी प्रसन्नता हुई कि कटड़ा सफेद समाज भी इस मे सम्मिलित हो गई है। उन में श्री प० धर्मपाल जी बी० ए० म्युनिसिपल कमिश्नर, मा० रामरखामल जी सारे सज्जन उत्साही, कर्मठ हैं। अमृतसर में विशाल डी० ए० वी० कालेज तथा डी०ए०वी० हायर सै० स्कूल तथा कन्या हाईस्कूल हैं। समाज का भारी काम है।

इस बार इस समाज का महोत्सव बड़े ही समारोह से हुआ। पुराना युग याद आ गया। समाज के मन्त्री प्रो० वेदव्रत जी एम० एस० सी० बड़े ही उत्साही, सौम्य तथा परिवार के आर्यसमाजी हैं। उत्सव से पूर्व श्री प० दौलतराम जी शास्त्री तथा प० शिवकुमार जी शास्त्री की अध्यक्षता में यज्ञ तथा ठा० अमरसिंह जी आर्य मुसाफिर की प्रभावशाली कथा होती रही। सभा से प० त्रिलोकचन्द शास्त्री, प० मेला राम जी, ठा० दुर्गासिंह जी आये हुए थे। कार्य सुन्दर था। कथा, यज्ञ, उत्सव मे धूमधाम रही। कालेज के प्रिंसिपल मान्य श्री चमनलाल जी एम० ए० स्कूल के आचार्य मान्य श्री भक्त रामजी व मुख्याध्यापिकाजी का सस्थाओ एव नगर के समाजो का पूर्ण सहयोग मिला। राष्ट्ररक्षा सम्मेलन मे तो कमाल हो गया। नीचे विशाल प्रागण तथा ऊपर गैलरिया खचाखच भरी थीं। लोहगढ का पुराना युग स्मरण हो आया। इस में सारे राजनीतिक दलो के प्रसिद्ध सज्जनों ने ओजस्वी विचार रखे। सेठ राधा कृष्ण जी, बाबा कर्मचन्द साहनी, ज्ञानी पिण्डीदास जी, श्री जीवन जी, प० रुद्रदत्त जी प्रधान लक्ष्मणसर समाज, वीर यशदत्त जी, बाबा रामसिंह जी आदि ने कमाल कर दिया। प० मेलाराम जी ठा० दुर्गासिंह जी ने ओजस्वी गीत गाये। आर्यसमाज के राष्ट्ररक्षा योग की सबने भूरि २ प्रशसा की। निश्चय किया गया कि सभा के प्रधान मान्य प्रिंसिपल सूर्यभानु जी वायस चासलर कुरुक्षेत्र यूनिवर्सिटी को सादर निमन्त्रण देकर उनकी सेवा में सभा के वेदप्रचार के कोष मे थैली भेंट की जाये। महोत्सव में कुमारों के कार्यक्रम ने भी खूब धूम मचादी। लोहगढ़ समाज के इस जागरण, जोश, उत्साह पर श्री ज्ञानी जी प्रधान, उत्साही मन्त्री प्रो० वेदव्रत जी एम० एस० सी० सारे अधिकारी, कालेज स्कूल के सारे सज्जन बधाई के पात्र हैं।

समय की पुकार

(बहिन सुशीला देवी आर्या एम ए नरवाना)

संकट जो आया आज, सभी मिल के देंगे टाल,
तू जाग मेरे देश, अब भी होश ले सभाल
गौरी से धोखा खा गए थे जैसे पृथ्वी राज,
आया विदेशी राज बच न पाई मां की लाज,
ऐसे ही धोखा खा गए 'चाऊ' से नेहरू आज
ले ओट पंचशील की चल निकली कपट चाल,
तू जाग मेरे देश . ...

आगे की सुध विचार ले, बातो का दे बिसार
तज नीन्द कर ले तेज अपने जग लगे हथियार,
'नेफा' बुला रहा हिमालय कर रहा पुकार,
मित्रों का मित्र बन रहा, शत्रु को बन जा काल,
तू जाग मेरे देश ....।

हे देश के जवान, खून को उबाल ले,
ठंडी जो हो कभी न, ऐसी आग बाल ले,
जो तेरे साथ बीन ली बदला निकाल ले,
करने व मरने का इरादा मन मे ले अब पाल,
तू जाग मेरे देश.. ... .

तुझ को शपथ है उन की जो शहीद हो गए,
तू जाग, वे सदा को मीठी नीन्द सो गए,
तू जान मूल्य उन का, जो हैं जान खो गए,
है आज तेरे जन्म मरण का उठा सवाल,
तू जाग मेरे देश .... ..

व्यापारी वर्ग अब मुनाफाखोरी छोड़ दे,
तोपों के मुह की भांति ही तिजोरी खोल दें,
अगले व पिछले दान के रिकार्ड तोड़ दें.
बन भामाशाह बढ़ें प्रताप मांगता धन माल,
तू जाग मेरे देश . . . ..

माताओ बहिनों, आप भी अब आगे आइये,
दुर्गा व लक्ष्मी बनने का बीड़ा उठाइये,
फैशन को लात मार कोमलता भगाइये,
बनना है चण्डी आप चढ़के चीन के चण्डाल,
तू जाग मेरे देश...... ... .

जो दे दे स्वर्णहार तो फिर कैसी हार है?
दो चूड़ियां सुहाग से जो सच्चा प्यार है,
शृंगार पट्टी दीजिए ये ही शृंगार है,
इतना ही क्यों, पड़ेंगे देने गोदियों के लाल,
तू जाग मेरे देश ....।

सम्भव है धन व जन पड़े सब भेंट चढ़ाना,
सम्भव है दुर्गा बन पड़े रणभूमि में जाना,
पर अपनी आन बान में धब्बा न लगाना,
बन पद्मिनी जलानी पड़े चाहे जौहर ज्वाल,
तू जाग मेरे देश... .....।

लोहे के बदले देना पड़े सोना चाहे तोल,
महंगी है आजादी चुकाना ही पड़ेगा मोल,
पर चीनियों के ढोल के हम खोल ही दें पोल,
देखेगा विश्व हो गया भारत में क्या कमाल,
तू जाग मेरे देश......... .।

सम्पादकीय—

आर्य जगत्

वर्ष २२] रविवार १० मार्गशीर्ष २०१९, २५ नवम्बर १९६२ [अंक ४७

सारा देश जाग उठा

जागने वाले व्यक्ति, परिवार, समाज और राष्ट्र को कौन लूट सकता है ? कौन दबा सकता और कौन पराजित कर सकता है ? भारत की यह पुरातन परम्परा रही है कि स्वय भी जीवन मे शान्ति से प्यार करते हैं तथा विश्व मे भी इसी सन्देश का प्रचार करने में लगे रहते हैं। भारतीय सभ्यता का प्रत्येक कर्मकाण्ड समाप्त ही शांति-पाठ के साथ होता है। किन्तु शांति-प्रिय और सारे विश्व का कल्याण, मगल मागल्य चाहने वाले भारत को समझने में कई बार दूसरों को भ्रम हो जाता है। हमारी शान्ति-भावना को दूसरे निर्बलता की प्रतीक समझने लगते हैं। ऐसे लोग और देश भारत को लूटना, दबाना तथा इसकी भूमि, भवन, भण्डारों को शस्त्र मद से हथियाना तथा भावना को समाप्त करना चाहते हैं। ऐसे समय भारत जाग कर अपना दूसरा रूप भी क्रान्ति का दिखाता है। शास्त्र के साथ शस्त्र भी उठाता है। अपने शत्रु के साथ दो २ हाथ करके उसको आगे के लिए जीवनभर ऐसा पाठ पढ़ा देता है कि फिर उसे स्वप्न में भी भारत की ओर आंख उठाने का साहस नहीं होता।

चीन ने भारत के साथ भारी धोखा, छल किया है। भारत जिस चीन के लिए दूसरे देशों से भी कई वार विरोध करता रहा। उसी चीन ने मित्रघात, विश्वास का द्रोह करके अपनी नीति का ओछापन प्रदर्शित कर दिया है। भारत की शान्ति प्रियता को हमारी कमजोरी मान कर अपनी शस्त्र शक्ति, जनबल के मद में मत हो कर भारतीय भूमि पर धोखे से आक्रमण कर के नीचता का परिचय दिया। किन्तु चीन का भ्रम शीघ्र ही दूर हो गया। सारा देश जागा ऐसा जागा कि इस विराट पुरुष ने अपना क्रान्ति का रूप भी दिखला दिया। हमारे मान्य प्रधान मन्त्री पण्डित नेहरू जी ने ठीक ही कहा है कि सारा राष्ट्र एक हो गया है। हमें न तो कोई दबा सकता है और न कोई पराजित ही कर सकता। भारत के वीर सैनिकों की वीरता सारे ससार में विख्यात है। भारत माता के पुत्र और पुत्रियां इस के मानसम्मान की रक्षा के लिए बड़े से बड़ा बलिदान देना जानते हैं। आज इस ने क्रान्ति का शंख बजाया है और समर की भेरी निनादित की है। बाघा से ले कर कन्या कुमारी तक सारा राष्ट्र चीन के विरुद्ध उठ खड़ा है। अब चीन देख लेगा कि भारत को छेड़ने का क्या फल मिलता है। आज सारा राष्ट्र अपने मान्य प्रधान मन्त्री के पैर के साथ पैर मिला रहा है। अपना सर्वस्वयोग दे रहा है। पंजाब बलिदान में सदा आगे रहा है। पंजाब के लोगों की ओर से प्रान्त के मुख्यमंत्री जी ने पण्डित नेहरू जी को उन के शरीरभार से दुगना सोना भेंट कर दिया है। आर्यसमाज की सारी संस्थाएं, समाजें, महिलाएं, युवक और बच्चे इस में हर प्रकार का समर्पण कर के कमाल का सहयोग देकर अपने कर्तव्य का पालन कर रहे हैं। राष्ट्र के इस आमरण पर सब को मान है। भारत ने ब्रह्मशक्ति के साथ अब क्षत्र शक्ति भी सम्भाल ली है। भारत के वीरो ! माता के मान की सुरक्षा के लिए तन, मन, धन, जीवन भेंट करते जाओ। जागते हुए हमे कौन दबा सकता है—त्रिलोक चन्द्र

उत्सव स्थगित न करें

आर्य समाज तो अपने जन्म काल से ही देश भक्त, स्वाधीनता प्रिय रहा है। इस के उत्सवों मे देश भक्ति की भावना का प्रवाह ठाठें मारता है। आज के चीनी आक्रमण की दशा में जहां हर प्रकार के बलिदान की आवश्यकता है वहा जनता में राष्ट्ररक्षा के लिए वीर भावना के विचारों के प्रचार की भी बड़ी आवश्यकता है। आर्य समाज चंडी गढ में युवकसम्मेलन आर्य समाज लोहगढ अमृतसर के राष्ट्ररक्षा सम्मेलन, आर्य समाज होशयार पुर के राष्ट्रिय कवि सम्मेलन में बड़ा शानदार वीरता भरे विचारों का प्रचार हुआ। उत्सव भी जनता को जीवन देते हैं। समाज के उत्सव तो अपने अन्दर एक विशेषता रखते हैं। किन्तु कुछ समाजें अपने वार्षिकोत्सवों को स्थगित कर रही हैं। हम नम्र निवेदन करना चाहते हैं कि उत्सव अवश्य होने चाहिएं। उस में राष्ट्ररक्षा सम्मेलन रख कर जनता को वीरता सन्देश देवें। उत्सवोंसे प्रेरणा मिलती है। हां-यह हो सकता है कि उस को सादा बना दें। किन्तु स्थगित न करें। ऐसे अवसर पर अन्य भेंट के साथ २ विचार दान भी सेवा है।

समाजों तथा संस्थाओं से

प्रार्थना है कि वर्तमान राष्ट्रिय-रक्षा के निमित्त आपके समाजों, स्कूलों कालेजों, स्त्री समाजों, कुमार व युवक समाजों की ओर से जो कुछ भी स्वर्ण, धन, रक्त तथा अन्य वस्तुओं के रूप में इस बलिदान यज्ञ में भेंट किया जा रहा है। उस समाचार की सूचना सभा के आर्यजगत् के कार्यालय में भी अवश्य भेजने की कृपा करें ताकि आर्यजगत् भी प्रतिसप्ताह उसे प्रकाशित करता रहे। इस से भी कर्तव्य की प्रेरणा मिलती है। पूर्णाशा है कि इस आवश्यक निवेदन पर अवश्य ही ध्यान दिया जायेगा।

श्री पं० निरंजन देव जी

आर्य प्रतिनिधि सभा पजाब के प्रसिद्ध उपदेशक हैं। गत वर्ष लेखराम नगर कादियां के शहीदी मेले पर दिये गये एक भाषण पर जो मुकद्दमा चल रहा था। वह वापस ले लिया गया है। इस पर हम आर्यजगत् की ओर से पण्डित जी को बहुत बधाई देते हैं। इस केस मे सबने अपना पूरा २ सहयोग दिया है। हमे पता है कि इसम किस २ सज्जन ने कितना परिश्रम किया है। परिश्रम सफल हुआ। सबको बधाई। स०

बिहार-राज्य, द्वादश आर्य-महा-सम्मेलन, पटना

आर्य-सम्मेलन की तिथि मे परिवर्तन

(१) भारतीय सीमा पर चीनियों के छद्मपूर्ण अचानक आक्रमण के फलस्वरूप राष्ट्र की जो सकटमय परिस्थिति है, उसके आलोक में यह समय बिहार-राज्य, द्वादश आर्य महासम्मेलन के लिए उपयुक्त नहीं है। अत, कार्य समिति का यह विचार है कि सम्मेलन की तिथि आगे बढ़ा कर १९६३ ई० के फरवरी मास में कर दिया जाय।

निवेदक
रामनारायण शास्त्री
स्वागत-मंत्री

आर्य समाज सोलापूर

२८ अक्तूबर को मराठवाड़ा के प्रसिद्ध आर्य समाजी नेता श्री शेषराव वाघमारे जी की अध्यक्षता में ऋषि उत्सव मनाया गया। यज्ञ के पश्चात प्रिन्सिपल भगवान दास ने चीन के शर्मनाक आक्रमण पर घृणा का प्रस्ताव उपस्थित किया जो सर्व सम्मति से पास हुआ जिस प्रस्ताव द्वारा प्रत्येक भारतीय नागरिक से तथा आर्य समाजियों से विशेषकर मांग की गई कि वह देश के इस संकट के समय एक होकर सरकार का हाथ बटावें।

भगवान दास एम ए.
प्रधान समाज

भारत पर चीन का अकारण आक्रमण

(महामना श्री देवी चन्द जी एम ए प्रधान दयानन्द साल्वेशन मिशन होश्यारपुर)

भारत के सामने वर्तमान काल में चीन द्वारा नीचता पूर्ण आक्रमण के कारण जो परिस्थिति पैदा हो गई है। अन्य सारे भारतवासियों के साथ भाई बहिनों का इस मे क्या कर्त्तव्य है। इसके सम्बन्ध मे आर्यसमाज के वयोवृद्ध नेता मान्यवर श्री ला देवी चन्द जी एम ए ने आर्य जगत के नाम सन्देश देते हुए कहा—

चीन सरकार ने भारत पर बिना कारण जो आक्रमण किया वह अत्यन्त निन्दनीय है। भारत सरकार सदैव चीन के साथ मित्रता का व्यवहार करती रही है। यू० एन० ओ० में जब कभी चीन को सम्मिलित करने का प्रश्न आया, तो भारती सरकार ने उस प्रस्ताव का समर्थन किया। थोडे दिन हुए जबकि रूस ने यह प्रश्न पुन प्रस्तुत किया तो उस समय भी जब कि युद्ध के घोर बादल गर्ज रह थे, चीन के हक में वोट दिया। कहां हमारी सभ्यता, सौजन्यता और कहां चीन का यह विश्वासघात? इन दोनों में पृथ्वी आकाश का अन्तर है। चीन सरकार को यह स्मरण रहना चाहिए कि भारत अन्त तक उसके साथ युद्ध करता रहेगा तथा इस में विजयी होगा। यह निश्चित है कि चीन सरकार की आन्तरिक अवस्था शोचनीय है दो हजार मील से युद्ध का सामान और सिपाहियों का राशन पहुंचाना कोई सरल कार्य नहीं है। कहा जाता है कि उस के पास लाखों सेना है। परन्तु जिस साहस, वीरता तथा उत्साह से भारतीय वीर सैनिक लड़ सकते हैं, वह बल शक्ति चीनी सिपाहियों में नहीं है। चीनियों के भीरुपन को संसार जानता है। उसके पास तो युद्ध का सामान भी पूरा नहीं है। हम चीन को अपना मित्र समझ कर उसके विरुद्ध लड़ने की विशेष तैयारी नहीं करते रहे। इस से धोखा अवश्य लगा है, परन्तु जिस उत्साह से व जोश से सारा भारत तमाम पारस्परिक भेदभावों को भुलाकर एकत्रित तथा संगठित हो गया है और जिस उदारता से दान के रूप मे सहायता मिल रही है तथा युवक अपने आपको राष्ट्र रक्षा के लिए मरने मारने के लिए पेश कर रहे हैं। ये सारी बातें बडी ही उत्साह जनक हैं। भारत सरकार का हौसला बढ गया है। उन ने निश्चय कर लिया है कि जब तक चीन को भारत की भूमि से बाहर न कर दिया जायगा, तब तक किसी प्रकार का समझौता नहीं हो सकता। परमात्मा न्यायकारी है। चीन ने हमारे साथ धोखा और अन्याय किया है अत इस को अवश्य दण्ड भोगना पड़ेगा।

आर्यसमाज स्वतन्त्रता के युद्ध मे सदैव अग्रसर रहा है। महात्मा गान्धी के आन्दोलनों में पंजाब मे जितने लोग आजादी के युद्ध में गये थे, उन में साठ प्रतिशत आर्य समाजी थे। इस राष्ट्रियरक्षा के महान् युद्ध कार्य में भी पूर्णाशा है कि आर्य समाज किसी से भी पीछे नहीं रहेगा। हमारे स्कूल, कालेज, समाजें राष्ट्र के सुरक्षा कोष में धन भेज रही हैं। विश्वास है कि प्रत्येक आर्य समाज इस समय अपना कर्तव्य पालन करने में आगे ही आगे रहकर अपनी परम्परा निभाता रहेगा। आर्य युवक देश रक्षा में अपने आप को युद्ध के लिए वालंटीयर करेंगे।

यह युद्ध भारत व चीन का नहीं है, अपितु जनतन्त्र और साम्यवाद का है। पाकिस्तान, नेपाल, भूटान सिक्कम, बर्मा, मलाया, लंका तथा एशिया के अन्य देश खतरे में हैं। यदि चीन जीत गया तो सारा एशिया उस के आधीन हो जायगा। अत. संसार के सारे देश इस युद्ध में भारत की सहायता कर रहे हैं। भारत संसार की शान्ति के लिए लड़ रहा है। पूर्णाशा है कि चीन को, जिस के दिमाग में अन्य देशों को अपने आधीन करने का भूत सवार है, अत्यन्त नीचा देखना पड़ेगा। रूस के साथ भी उस की अनबन हो रही है। रूस ने भारत को हवाई मिग जहाज भेजने का निश्चय कर लिया है। इस से चीन रुष्ट हुआ है और अपना सम्बन्ध उस से तोड़ने का सोच रहा है। शनै. २ सारी दुनिया की सहानुभूति भारत के साथ है तथा चीन के साथ विरोध हो गया है।

आर्यसमाज आजके इस विषम वातावरण में राष्ट्रसेवा, देशरक्षा तथा जनतन्त्र की सुरक्षा में अधिक से अधिक तन मन धन से पूरा सहयोग देता रहे।

चीनी आक्रमण

आर्य समाज को आवाहन

सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा के प्रधान श्री स्वामी ध्रुवानन्द जी सरस्वती ने निम्नलिखित वक्तव्य प्रेस को दिया है .—

शांत एवं शांतिप्रिय भारत के विरुद्ध चीनी आक्रमण का स्वरूप स्पष्ट रूप में भारतीओं के समक्ष आ चुका है। दोनों विशाल देशों के मध्य युगों से जो सद्भावना विद्यमान थी उसे चीन के कम्युनिस्ट शासकों द्वारा बड़ा आघात पहुचा है। प्रधान मन्त्री पण्डित जवाहरलाल नेहरू ने यह स्पष्ट कर दिया है कि भारतवर्ष अपनी सीमाओं की रक्षा और शत्रु द्वारा बलात् हथियाई गई भूमि का एक-एक इन्च पुन प्राप्त करने के लिए कृतसंकल्प है। इस निश्चय में समस्त राष्ट्र का उन्हें समर्थन प्राप्त है।

आर्य समाज का यह राष्ट्रीय पवित्र कर्त्तव्य है कि वह भारत की अखण्डता की रक्षा के लिए प्रत्येक सम्भव उपाय को क्रिया में लाए और आक्रान्ता चीनियों को अपने देश की सीमाओं से बाहर खदेड़ने मे प्रधान मन्त्री के संकल्प की पूर्त्यार्थ उन्हें पूरा २ सहयोग दे।

जब सेना मे भरती का समय आएगा तो मैं प्रधान मन्त्री जी को यह विश्वास दिला सकता हू कि आर्य समाज पीछे न रहेगा।

विवाह योग्य कन्याएं

आर्यसमाजों से आवश्यक निवेदन

प्रादेशिक सभा से सम्बन्धित अनेक आर्य समाजों ने देश की संकटकालीन स्थिति को ध्यान में रखते हुए अपने वार्षिकोत्सव स्थगित कर दिए हैं । मेरी प्रार्थना है कि अपने उत्सव स्थगित न करें । क्योंकि आर्यसमाज ने तो देश रक्षा का प्रण किया हुआ है और हमारे पथ प्रदर्शक महर्षि दयानन्द ने तो देश रक्षा पर पूरा बल दिया था । हां आप समाजों के उत्सवों में भाषण गायन आदि देश रक्षा पर करा कर जनता में देशभक्ति की भावना पैदा करे और उन्हें इस आवश्यक कार्य के लिए मैदान में आने को उत्साहित करें ।

आप की प्यारी सभा की आर्थिक दशा बहुत शिथिल है इस ओर भी आपने पूरा ध्यान देना है तथा इसको दृढ करना है । ऐसा करने से वेद प्रचार को बल मिलेगा मुझे पूर्ण आशा है कि समाजों के अधिकारी तथा जनता ऋषि के ऋण को समझेगी और वर्तमान युग में ऋषि के गौरव को बढ़ाएगी ।

आर्य जनो के सेवक—सन्तोषराज
मन्त्री आर्य प्रादेशिक सभा

आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा, पंजाब, जालन्धर

इस सभा के आगामी साधारण वार्षिक अधिवेशनमें आर्यसमाजों के चुने हुए प्रतिनिधि भाग लेंगे । अत आप अपने साधारण वार्षिक अधिवेशन में इस सभा के लिए प्रतिनिधियों का चुनाव के लिए सार्वदेशिक सभा की २७-२-५७ की अन्तरंग और २५-६-६१ की साधारण सभा द्वारा स्वीकृत निम्न नियम का कड़ाई से पालन किया जाय । उस से भिन्न कदापि न हो । नियम यह है कि इस सभा से संबन्धित आर्यसमाजों के ६ आर्य सभा सदों पर १ और उनके पश्चात् प्रत्येक २० पर १ प्रतिनिधि भेजा करेंगी यथा :—

६ आर्य सभा सदों पर—	१ प्रतिनिधि
२६ ,, ,, ,, ,,	२ ,,
४६ ,, ,, ,, ,,	३ ,,
६६ ,, ,, ,, ,,	४ ,,
८६ ,, ,, ,, ,,	५ ,,
१०६ ,, ,, ,, ,,	६ ,,

इसी प्रकार आगे भी प्रतिनिधियों का चुनाव होगा । अंश पर कोई प्रतिनिधि नहीं भेजा जाय ।

(२) आप अपनी समाज के प्रतिनिधियों के चुनाव की सूचना देते समय निम्न प्रकार चित्र त्यार करके उसकी दो पूर्तियां इस कार्यालय में भेजने का कष्ट करें । यह अति आवश्यक है ।

१	२	३
क्रम सं०	समाज का नाम	समाज के सभा सदों का नाम
४	५	६
मासिक चन्दा	वार्षिक प्राप्त चन्दा	समाज द्वारा निर्वाचन
	७	८
प्रतिनिधियों की सं०	प्रतिनिधियों के नाम	समाज द्वारा भेजी दशांश की राशि ।

—भवदीय सन्तोष राज मन्त्री सभा

प्रादेशिक आर्य युवक संगठन पंजाब के अध्यक्ष का

कालेज व स्कूलो के आचार्यो, आर्य समाजों
व
आर्य युवक समाजो के अधिकारियों से नम्र निवेदन

मान्यवर बन्धु ।

सादर नमस्ते ।

आपको यह जान कर अत्यन्त प्रसन्नता होगी कि आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा पंजाब ने अपने अन्तर्गत युवक शक्ति को संगठित करने के हेतु प्रादेशिक आर्य युवक संगठन पंजाब का निर्माण किया है । उसी सगठन का सविधान आपकी सेवा म भेज रहा हू । आपके आर्य समाज मे या आपके समाज के साथ सम्बद्ध स्कूल या कालेज मे युवक समाज या कुमार सभा अवश्य होगी । यदि अभी तक नहीं बन सकी है तो उसका निर्माण कर लीजिए । यह एक पुनीत कार्य है । आर्य समाज को बलिष्ट बनाने तथा चिरस्थायी करने का एक मात्र यही साधन हो सकता है । आप स्वयं विचारशील हैं । इस कार्य के महत्व के सम्बन्ध में भली प्रकार परिचित हैं । इसी भेजे जा रहे संविधान के अन्दर एक फार्म भी है । कृपया अपनी युवक समाज से भरवा कर १० रुपये सम्बन्ध शुल्क के साथ शीघ्र ही भिजवा दीजिए । साथ ही प्रतिनिधियों के नाम भी चुन कर निम्न पते पर भेज दीजिए, जिससे शीघ्र ही निर्वाचन के लिए बैठक भी बुलाई जा सके ।

आशा है प्रार्थना स्वीकार होगी—

आपका बन्धु
वेदीराम शर्मा एम. ए.
डी. ए वी. कालेज, जालन्धर नगर
अध्यक्ष
प्रादेशिक आर्य युवक संगठन, पंजाब

बम्बई की आर्यसमाजों की ओर से महात्मा आनन्द स्वामी जी को विदाई

१४ नवम्बर को आर्य समाज मन्दिर काकड़वाड़ी में बम्बई की सब आर्य सस्थाओं की एक विशाल सभा में श्री महात्मा आनन्द स्वामी जी का जोकि सार्वदेशिक सभा की ओर से मारीशस में वैदिक धर्म प्रचारार्थ जा रहे हैं, अभिनन्दन किया गया और उन्हें विदाई दी गई । बम्बई की १५ आर्य समाजों तथा ५, ६ आर्य सस्थाओं के पदाधिकारियों ने उन्हें पुष्पहार अर्पित किए और उनके सफलतापूर्वक वापिस लौटकर आने के लिए भगवान से प्रार्थना की ।

मन्त्री
सोमदत्त विद्यालंकार आर्य प्रचार समिति

आर्यसमाज किला जालन्धर का पुनर्विचार

किन्हीं कारणों से किला समाज ने अपना उत्सव जो २३, २४, २५ नवम्बर को होना था स्थगित कर दिया था । लेकिन आज १८-११-६२ को साप्ताहिक सत्संग के पश्चात अतरंग की बैठकमें उत्सव ११, १२, १३ जनवरी सन ६३ को करने का निश्चय किया है ।

व्यवस्थापक

देश के कोने-कोने से भारती धन और रक्तदान की सहायता

अनेक संस्थाओं [illegible], तथा देवियों का आभूषण दान

देश में नवीन जागृति

आर्य हाई स्कूल नाभा—के छात्रों ने ४११।८६ न. [illegible] करके एस. डी. एम नाभा के द्वारा भेजे हैं। स्टाफ ने अपना [illegible] वेतन दिया है। १४-११-६२ को पण्डित नेहरू जी के जन्म दिवस [illegible] सब्जी दूकान की सारी आय ८ ३७ नए पैसे भी सुरक्षा निधि मे भेज दिए हैं। स्कूल के स्टाफ और छात्रों का यह उत्साह सराहनीय है।

आर्य कन्या महाविद्यालय नरवाना—की अध्यापिकाओं तथा छात्राओं ने ११००) तथा २६ ५० ग्राम सोने के आभूषण राष्ट्र रक्षा कोष में सहायतार्थ दिए हैं। मान्या आचार्य जी तथा दो अन्य शिक्षिकाओं ने अपने वेतन का १० प्रतिशत प्रतिमास देने का निश्चय किया है। छात्राओं तथा अध्यापिकाओं में होमगार्ड एवं फस्ट एड की ट्रेनिंग लेने रक्तदान करने तथा अन्य किसी भी प्रकार से राष्ट्र रक्षा कार्य में योग देने के लिए अत्यन्त उत्साह है। सैनिक भाइयों के लिए स्वेटर आदि बुनने की भी तैयारी है।

वेद कौर आर्य गर्ल हाई स्कूल कादिया—के स्टाफ ने दो दिन का वेतन और छात्राओं ने अपनी शक्ति से अधिक राशि राष्ट्र सुरक्षा निधि मे दी है। स्टाफ तथा छात्राओ ने स्कूल समय के बाद घर जा कर धन संग्रह करने का भारी उत्साह किया जिसके परिणाम स्वरूप आज हमारा स्कूल २९०० रुपये नकद और पाच सोने की अंगूठियां सुरक्षा कोष में भेज रहा है।

वेद कौर गर्ल हाई स्कूल की छात्राओं का साहस—इस स्कूल की छात्राओं ने देश की इस वर्तमान शोचनीय अवस्था को देखते हुए अपना प्रति दिन मिलने वाला जेब खर्च मौत के मुंह जा रहे भाईयों की सुरक्षा के लिए देने का निश्चय किया है। स्कूल की छात्राओ का साहस देखते ही बनता है। उत्साह की सुलगती हुई चिंगारी से उत्साहित होकर नवम और दशम कक्षा की कुछ लड़कियों ने कपड़ों की धुलाई करके सुरक्षा कोष के लिए धन एकत्रित किया है।

आर्य समाज श्री गंगा नगर का नवीन कार्य—इस समाज ने अपने कोष से राष्ट्रीय सुरक्षा फंड के लिए ९०९/- भेजे हैं। आर्यसमाज के सदस्य श्री दीनानाथ जी ने अपने छ पुत्रों को राष्ट्र हित में कुर्बानी देने के लिए अर्पण करने का निश्चय किया है।

ऑल इण्डिया दयानन्द साल्वेशन होशियारपुर—ने भारतीय सुरक्षा कोष में १०००/- रु० दिया है और निश्चय किया है कि आगे के लिए जो रुपया रिजर्व फण्ड में जमा कराना हो वह बारह साला पोस्टल नेशनल सेविंग सर्टिफिकेट में जमा कराया जाए।

जिला वेद प्रचारिणी सभा होशियारपुर ने १०१/- राष्ट्रीय सुरक्षानिधि में दिया है और भारत सरकार के इस निश्चय का प्रबल समर्थन करती है कि जब तक चीनी-आक्रमणकारियों को भारत-भूमि से न निकाल दिया जाए तब तक चीन-सरकार के साथ कोई समझौता नहीं किया जायेगा।

साथ ही यह सभा भारत-सरकार को हर प्रकार का सहयोग देने का विश्वास दिलाती है।

दयानन्द ब्राह्ममहाविद्यालय हिसार सेवा के पथ पर—यद्यपि यह विद्यालय एक नि शुल्क संस्था है फिर भी विद्यालय की ओर से राज्य को ११०० रु० की सहायता देने का निश्चय किया गया। [illegible] भी प्रकट किया गया कि विद्यालय के विद्यार्थी युद्ध में घायल सैनिकों को खून देने के लिए तैयार हैं। यदि सीमा पर जाकर युद्ध करने की आवश्यकता हुई तो उस के लिए भी उद्यत हैं। विद्यार्थी वर्ग एवं प्राध्यापक वर्ग ने अपना पठन-पाठन-कार्य एक सप्ताह के लिए छोड़कर धन संग्रह एवं प्रचार के निमित्त १०—१०—६२ से पदयात्रा करने का संकल्प किया।

डा० ए० वी० हाई स्कूल डेरा बस्सी (अम्बाला)—में श्री डिप्टी कमिश्नर पटियाला की अध्यक्षता में पबलिक मीटिंग हुई जिस में स्कूल के स्टाफ और छात्रों ने ६२५।- डिप्टी कमिश्नर महोदय को राष्ट्रीय सुरक्षा कोष के लिए भेंट किए। इसके इलावा ६० छात्रों ने (१४ और १८ वर्ष की आयु के) घायल फौजियों के लिए खून देना स्वीकार किया।

श्री दीना नाथ जी 'बत्रा' हैड मास्टर डी० ए० वी० हाई स्कूल ने विवाह में प्राप्त सोने की अंगूठी सुरक्षा फंड मे भेंट कर दी। डी० ए० वी० स्कूल की शाखा शिशु मन्दिर के बच्चों ने भी २५।- भेंट किए।

भारत-चीन-सीमा-युद्ध के सम्बन्ध में आर्य प्रतिनिधि सभा, बिहार का निश्चय—आर्यसमाज सदा से 'स्वराज्य' तथा 'राष्ट्र-रक्षा' का पृष्ठ-पोषक रहा है। देश के स्वातन्त्र्य आंदोलन में आर्यसमाज की देन महत्वपूर्ण रही है। आज जब स्वराज्य तथा स्वदेश पर विपत्ति आयी हुई है, तब आर्यसमाज सर्वात्मना तन, मन और धन से देश की रक्षा में लगे हुए सैनिकों तथा शासकों के साथ हैं। यह 'सभा' भारत-सरकार को विश्वास दिलाती है कि आर्यसमाज सभी प्रकार के उत्सर्ग, देश के लिए करने को तैयार है।

साथ ही निश्चय हुआ कि २३ नवम्बर को पूरे बिहार राज्य में आर्यसमाज की ओर से 'राष्ट्र सुरक्षा दिवस विस्तृत पैमाने पर मनाया जाए। उक्त दिवस के दिवस आर्यसमाजों द्वारा जन-सभाओं में (क) राष्ट्ररक्षा के लिए धन तथा सोने का संग्रह किया जाए (ख) रक्त देने वाले महानुभावों के नाम अधिकाधिक संख्या में लिख कर 'सभा'—कार्यालय में भेजे जाएं॥

आर्य युवक समाज चण्डीगढ़ सैक्टर २२ ए—का यह अधिवेशन समस्त भारतीय जनता से इस संकट पूर्ण स्थिति में भारत सरकार की प्रत्येक स्थिति में सहायता करने की अपील करता हुआ अपनी राष्ट्रीय सरकार को विश्वास दिलाना अपना कर्तव्य समझता है कि आर्य समाज चीनी आक्रमणकारियों को भगाने के लिए अपनी सरकार की प्रत्येक स्थिति में तन-मन-धन से सहायता करेगा।

मुद्रक व प्रकाशक श्री संतोषराज जी मन्त्री आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा पंजाब जालन्धर द्वारा वीर मिलाप प्रेस, मिलाप रोड जालन्धर से मुद्रित तथा आर्यजगत कार्यालय महात्मा हंस राज भवन निकट कचहरी जालन्धर शहर से प्रकाशित मासिक—आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा पंजाब जालन्धर

टेलीफोन नं० ३०४५ [आर्यप्रादेशिक प्रतिनिधि सभा पंजाब जालन्धर का साप्ताहिक मुखपत्र] Regd. No P 121

एक प्रति का मूल्य १३ नये पैसे वार्षिक मूल्य ६ रुपये

वर्ष २२ अंक ४८) रविवार १३ मार्गशीर्ष २०१८ ३ दिसम्बर १९६२ दयानन्दाब्द १३० (नार-प्रादेशिक जालन्धर

वेदामृत

तमीशानं जगतस्तस्थुषस्पतिं धियंजिन्वमवसे हूमहे वयम् ।
पूषा नो यथा वेदसामसद् वृधे रक्षिता पायुरदब्धः स्वस्तये ॥

यजु० अ० २५ मं० १८

अर्थ —हे मनुष्यो ! (तम्) उस (ईशान) परमेश्वर को (जगत) का तथा (तस्थुष) सारे जड़विश्व का (पति) स्वामी पालने वाले को सारे चलन जगत का तथा जो (धिय) हमारी बुद्धि को (जिन्व) पवित्र करता है उस को (अवसे) अपनी रक्षा के लिए (हूमहे) पुकारते हैं (वयम्) हम सारे उसे बुलाते हैं वह (पूषा) पालन पोषण कर्ता (नः) हमारे (यथा) ताकि (वेद साम्) ज्ञान धनों की (वृधे) वृद्धि के लिए (असत्) होवे (रक्षिता) रक्षा करने वाला तथा (पायु) पालने हारा वह (अदब्ध) किसी से भी न दबने वाला प्रभु (स्वस्तये) कल्याण, सुख के लिए होवे—

भावार्थ —हे मनुष्यो ! यह सदा स्मरण रखो कि वह परमेश्वर सदा सब का रक्षक है, पायु पालक है। वह सदा ही अदब्ध है उसे कोई भी न दबा सकता है और न ही पराजित कर सकता है। ज्ञान की वृद्धि करता है हमें हर प्रकार की सम्पदा प्रदान करता है। हमारी बुद्धि को शुद्ध पवित्र करने वाला है। वही सारे विश्व का पालक पोषक है। सारा चराचर विश्व उसी के नियम अनुशासन विधान में अपनी नियत सरणी पर चल रहा है। ऐसे महान भगवान को ही हम अपनी रक्षा के लिए पुकारते हैं उसी की भक्ति करते व उसी से प्रार्थना करते हैं। क्योंकि सारे जड़चेतन विश्व का वही एक मात्र स्वामी है। उस के सिवाय और किसी को मत मानो, जानो और पूजो। सब कुछ उसी से —मांगो—सं०

बलिदान के लिए तैयार

भारत के प्रधान मन्त्री श्री पण्डित नेहरू जी ने अपने वीरता भरे संदेश में कहा—भारत ऐसा देश नहीं जो धमकियों से डर जाये। वह आजादी की रक्षा के लिए अधिक से अधिक बलिदान के लिए तैयार है। आज शत्रु हमारी धरती पर है। परन्तु भारत के लिए ये धमकियां कोई मूल्य नहीं रखती। हम अपनी आजादी की रक्षा करेंगे और इसे कायम रखेंगे। हम अपने आप को शक्तिशाली बनाएं और दुनिया को दिखादें कि भारत के लोग अपनी आजादी से प्यार करते हैं और उस के लिए हर कुर्बानी को तैयार हैं। भारत एक इम्तिहान से गुजर रहा है और निश्चय ही हम इस में सफल होंगे

घबराने की बात नहीं

राष्ट्र के गृहमन्त्री श्री लाल बहादुर शास्त्री जी ने अपने भाषण में कहा—

देश की आजादी की रक्षा के लिए प्रत्येक बलिदान देने के लिए तैयार रहना चाहिए। आजादी के लिए कोई भी कीमत बड़ी नहीं। हर व्यक्ति को अपने कर्तव्य में लगा रहना होगा और उसे दिया गया कार्य जारी रखना होगा। घबराने और आतंकित होने की कोई बात नहीं। भारत आज जो लड़ाई लड़ रहा है जनता की लड़ाई है। चीनी आक्रान्ताओं को भारतीय क्षेत्र में खदेड़ने के दृढ़ निश्चय के साथ संगठित रूप से सशक्त हैं। हमें अपनी सैनिक आवश्यकताएं पूरी करने के लिए अन्य आवश्यकताओं को स्थगित कर देना होगा।

अधिष्ठाता—संतोषराज मंत्री सभा सम्पादक—त्रिलोक चन्द्र शास्त्री

अध्यात्मवाद—

यम-नियम चर्चा—३ 'अहिंसा'

(ले०श्री प०सुरेशचन्द्र जी एम.ए एल टी , डी वी कालेज, गोरखपुर)

(गतांक से आगे)

प्राचीन काल में अहिंसा का इतना ध्यान रखा जाता था कि आश्रमों में तो शिकारियों को भी शिकार से रोक दिया जाता था। ष्यन्त दूसरे स्थानों पर हिंसा करता था, लेकिन जब वह आश्रम के पास आकर हिंसा करने लगा तो आश्रम के मुनियों ने कहा—

न खलु न खलु बाण.
सन्निपात्योऽयमस्मिन्।
मृदुनि मृगशरीरे
पुष्पराशाविवाग्नि ॥

राजन्, इन कोमल हरिणों पर तीर मत चला। एक ओर आकर्ण धनुष खींचने वाला राजा दुष्यन्त और दूसरी ओर हरिणों को अभय देने वाले वे तपोधन। एक ओर हिंसा में रमने वाला राजस राजा और दूसरी ओर प्रेम का उपासक सात्विक ऋषि। राजा का धनुष झुक गया उसका हृदय पिघल गया। अहिंसा की विजय हुई।

महात्मा भी अपने जीवन से अहिंसा की ही शिक्षा देते हैं। तलवार के द्वारा तलवार दूर नहीं की जा सकती। युद्ध के द्वारा युद्ध बन्द नहीं हो सकते। इसलिए मनुष्य को यह ध्यान भी रखना चाहिए कि बुराई अलग चीज है और बुराई करने वाला व्यक्ति देश या जाति अलग चीज है। हमें बुराई का विरोध करना है बुराई करने वाले का नहीं। बुराई करने वाला व्यक्ति तभी तक बुरा है जब तक वह बुराई को छोड़ता नहीं, उसे छोड़ते ही वह भला हो जाता है।

यदि हम इस सिद्धांत को देखकर कार्य करें तो हमें यह पता चलेगा कि ईर्ष्या और द्वेष मन के आवेग हैं और आवेग विचार शक्ति को नष्ट करता है। विचार शक्ति नष्ट होने पर हम यह भूल जाते हैं कि बुराई और बुरा व्यक्ति यह दोनों पृथक् वस्तुयें हैं और आवेग के वशी हम किसी पर क्रोध करते हैं। जिस पर क्रोध करते हैं उसे भी आवेग आता है। यदि क्रोध का मुकाबला शक्ति से, घृणा का मुकाबला प्रेम से किया जाए तो संसार में बहुत से कार्य सरल हो जाएं।

स्वामी दयानन्द, स्वामी श्रद्धानन्द महावीर स्वामी, महात्मा गांधी और महाप्रभु चैतन्य के जीवन इसके प्रमाण हैं। एक दिन चैतन्य अपने शिष्यों के साथ कीर्तन करते हुए मार्ग में जा रहे थे। झांझ और मृदंग का घोष हो रहा था। इतने में दो दुष्टों ने आकर चैतन्य के सिर पर प्रहार किया। रक्त बह निकला। चैतन्य का ब्रह्मचारी शिष्य उनकी ओर लपका। परन्तु चैतन्य ने कहा, 'निताई' उन्होंने मुझे भले ही मारा हो, मैं तो उन से प्रेम का ही व्यवहार करूंगा। भजन शुरू हो गए। चैतन्य 'हरिबोल' बोल रहे थे। सब लोग नाच रहे थे। वे दोनों दुष्ट भी नाचने लगे। वे भी उस भजन के रंग में रंग गए। चैतन्य की अहिंसा का प्रभाव पड़ा।

प्रेम से प्रभावित होकर मनुष्य ही नहीं पशु भी क्रूरता भूल जाते हैं। एण्ड्रोक्लीज और शेर की कहानी प्रसिद्ध ही है। यदि सेवा से, प्रेम से क्रूर पशु भी पालतू बन जाता है तो प्रेम से मनुष्य का सुधार क्यों नहीं हो सकता? इसीलिए तो वैदिक धर्म ने "अहिंसा प्रतिष्ठायां तत्सन्निधौ वैरत्यागः" का नारा बुलन्द किया। महात्मा बुद्ध, महावीर स्वामी ने "अहिंसा परमो धर्मः" की शिक्षा दी। ईसा ने एक गाल पर चपत लगाने वाले के सामने दूसरा गाल करने का उपदेश दिया। स्वामी दयानन्द का जीवन तो अहिंसा का एक उदाहरण है। स्वामी श्रद्धानन्द की सेवा और प्रेम गुरुकुल कांगड़ी की ईंटों से भी पूछा जा सकता है। भारतीय संस्कृति का यह उद्घोष अहिंसा का ही नारा था, "अक्रोधेन जयेत् क्रोधं असाधु साधुना जयेत्" क्रोध को अक्रोध से जीतें, असाधु को साधुता से जीते।

रक्तिम आंधी

(ले०—श्री राममूर्ति जी कलिया, एम० ए०, नई दिल्ली)

रक्तिम आन्धी उठी हिमालय के पीछे से,
क्या भारत के नभ मण्डल में वह छायेगी ?
नहीं नहीं, सर्वथा नहीं, यह बात असम्भव है,
बढ़ न सकेगी, दब जायगी, कुचली जायगी।

(२)

भारतीय जन आतर हैं आगे बढ़ने को,
साहस बटोर, एकागृत हो, जब फुंकारेगा।
हिमगिरि के वह पास पहुंच काले मेघों का,
रूप धरेगा, बरसेगा, हुंकारेगा।

(३)

भारतीय रण चण्डी भी तो ललकारेगी,
खप्पड़ लेकर काली भी तब फब जायेगी।
कड़केगी बिजली बनकर फिर काले मेघों में,
बरस पड़ेंगे मेघ कि आंधी दब जायेगी।

(४)

घुमड़ घुमड़ कर छाओ मेघो नभमण्डल में,
रूप भयकर धरो कि बरसो तुम जी भरकर।
दब जाय यह आंधी न नाम रहे इनका फिर,
धुलकर हिमगिरि हरा भरा हो चमके सजकर।

जीवन के फूल

अपने व्यक्तित्व के विकास के लिए आदमी को जो मन चाहे वही पढ़ना चाहिए यदि वह अध्ययन का तरीका जानता है तो हमेशा उसकी प्रगति होगी हम जो कुछ भी इच्छा से पढ़ते हैं उस का गहरा असर पड़ता है। अगर बेमन से पढ़ेंगे तो आधा दिमाग मन लगाए रखने में ही खर्च होगा, पढ़ाई में आधा ही लग पाएगा।

—जानसन

★

कर्ज लेने की आदत गरीबी की जुड़वां बहन है।

—टी. टी मुंगेर

समय की असली कीमत समझिए। इसे कस कर के पकड़िए और एक-एक क्षण का आनन्द लीजिए। जरा भी सुस्ती की तो गिरने में देर नहीं लगेगी। जिसे आज कर सकते हों उसे हरगिज कल पर मत छोड़िए।

—चेस्टरफील्ड

सम्पादकीय—

आर्य जगत्

वर्ष २२] रविवार १७ मार्गशीर्ष २०१९, २ दिसम्बर १९६२ [अंक ४८

यह देवासुर संग्राम

सृष्टि दो प्रकार की होती है—दैवी और आसुरी। जिन का न्याय, धर्म, परोपकार, सत्य से प्यार होता है, विश्व के निर्माण करने वाले विश्वपति पर भी श्रद्धा और विश्वास होता है—वे देवता कहलाते हैं, तथा जो केवल स्वार्थ साधना में लगे होते हैं। जिन की दृष्टि में सत्य, न्याय, धर्म का कोई मूल्य नहीं है। केवल भोगवाद और भौतिकवाद मानते हैं—भगवान् पर जिन की कोई आस्था नहीं है—वे असुर माने जाते हैं। इन दोनों में विचारों का संग्राम जारी रहता है। यह भारत-चीन का युद्ध भी देवासुर संग्राम है। भारत सदा से देवभूमि, देव प्रदेश और देवराष्ट्र कहा जाता है। इसे देवलोक भी माना गया है। यहां के लोगों को धर्म, न्याय सत्य तथा सत्य रूप भगवान् पर बड़ी श्रद्धा रही है और सदा रहेगी। लोककल्याण, प्राणिमात्र की सेवा तथा आत्मवत् सब के साथ व्यवहार इस को जन्म घुट्टी में ही मिला है। सर्वे भवन्तु सुखिन सब का भला मांगने में भारत सदा आगे है। स्वयं भी जिओ और दूसरों को भी जीने दो—यह इस की प्यारी घोषणा है।

दूसरी ओर विश्वास घाती, मित्र द्रोही चीन है, जिसे न सत्य पर विश्वास, न धर्म पर श्रद्धा, न न्याय से स्नेह और न ही भगवान् की मान्यता है। केवल अपने स्वार्थ का [illegible] तथा पशु बल का आधार मान [illegible] दूसरों को अकारण ही हड़प कर जाने की नीति पर विश्वास है। आज चीन ने अपनी राक्षसी मनोवृत्ति का परिचय देकर भारत के साथ जो महान द्रोह किया है, बिना कारण ही भारत के खून की होली खेली है, छल धोखे से सारे विश्व में जो निन्दनीय पाप किया है। भारत की शांत भूमि पर आक्रमण करके अपनी हिंसा वृत्ति को प्रकट किया है—यही आसुरीपन है। आज भारत-चीन में जो सग्राम जारी है—यह देवासुर संग्राम है। चीन के हिंसक भारत के देवों को खाने चढ आये हैं। इस की भारत को क्या चिन्ता है? भारतीय देवों ने कई बार असुरों से टक्कर ली है। इतिहास साक्षी है कई बार असुरों का मर्दन किया है। भारत के श्री राम, कृष्ण, चन्द्रगुप्त, विक्रमादित्य, वीर शिवा, राणा प्रताप, राणा सांगा, महारानी लक्ष्मी आदि देवगण असुरों को समाप्त करने में विश्वविख्यात हैं। इस देवासुर संग्राम में भी निश्चित रूप से मानिये कि विजय भारत के देवों की ही होगी। चीन की पाशविक शक्ति भारत को कभी पराजित नहीं कर सकती। देवीसेना न कभी हारी है और न हारेगी—भारतीय वीर सैनिक चीन के असुरों को जल्दी दिखला देंगे कि भारत पर आक्रमण करने का क्या परिणाम भोगना पड़ता है। शाबाश! देवशक्तियो! बढ़े चलो! अपनी वीरता से, शस्त्रों, संगठन से चीनी सेना को मार भगाओ। धर्म तुम्हारे साथ है।

—त्रिलोक चन्द्र

महात्मा आनन्द स्वामी जी

महाराज वैदिक धर्म प्रचार करने के लिए भारत से मारीशस (अफ्रीका) रवाना हो गए हैं। सारा वर्ष भारत में भ्रमण करके आध्यात्मवाद का उपदेश-प्रवाह बहाते रहते हैं। इतनी आयु में भी रात-दिन खूब धर्मप्रचार में लगे रहते हैं। शरीर यद्यपि अस्वस्थ था थकावट थी, विश्राम का डाक्टरों ने परामर्श दिया था किंतु मारीशस के भाईयों के प्रेम का पुनः आग्रह तथा सार्वदेशिक सभा की प्रार्थना पर इस अवस्था में भी मारीशस चले गये। बम्बई की लगभग १६ समाजों तथा अनेक संस्थाओं ने मिलकर आपका समारोह पूर्वक अभिनन्दन सम्मान करते हुए आप के स्वास्थ्य, की प्रार्थना की। भारत वापस आने की मगल कामना की। हम मंगलमय प्रभु से महात्मा जी के स्वास्थ्य, सफलता, वापस आने की मगल कामना करते हैं।

श्री मास्टर नन्दलाल जी

आर्यसमाज के, डी ए. वी कालेज कमेटी, आर्य प्रादेशिक सभा के पुराने जीवन स्तम्भों में से हैं। कुछ दिनों से बीमारी के बिस्तरे पर हैं। समाज के वयोवृद्ध नेताओं में उनकी गणना भी प्रमुखरूप से होती है। ८३-८४ वर्ष की अवस्था में भी इनका समाज प्रेम तथा आशावाद सबको साहस देने वाला है। आपका सारा परिवार, सुपुत्र श्री ला. इन्द्रसेनजी, ला. धर्मपाल जी अपने पूज्य पिताजी की सेवा में रात दिन लगे हुए हैं। हम परमात्मा से प्रार्थी हैं कि समाज के पुराने वयोवृद्ध नेता श्री नन्द लाल जी शीघ्र ही स्वास्थ्य प्राप्त करें। हमारा समाज ऐसे मान्य महानुभावों से फूलता फलता रहे। मान्य वयोवृद्ध नेता महाशय कृष्ण जी भी स्वास्थ्य लाभ करें। हम सारे समाज के साथ इन नेताओं के शीघ्र स्वस्थ होने की मंगल कामना करते हैं।

पं. बुद्धदेव जी विद्यालंकार

आर्य समाज के प्रसिद्ध, विद्वान् लेखक, वक्ता हैं। आप ने गत दीपमाला के अवसर पर अजमेर में ऋषि मेला के अवसर पर संन्यास ग्रहण करके चौथे आश्रम में जीवन रखा है। आर्य समाज को गौरव है। आप का सन्यास नाम स्वामी समर्पणानन्द सरस्वती है। हम आर्य जगत की ओर से मान्य स्वामी जी को हार्दिक बधाई देते हुए आशा करते हैं कि आर्य समाज में स्वामी जी की ओजस्वी प्रवचन माला खूब चलती रहेगी

आर्य समाजों से

आर्य प्रादेशिक सभा के महामन्त्री श्री ला सन्तोष राज जी ने सभा से सम्बन्धित सारे आर्य समाजों का विशेष रूप से ध्यान आकर्षित किया है कि अपने वार्षिक समारोह, महोत्सव स्थगित न करें। इस विकट समय में तो समाजें और भी भारी उत्साह से महोत्सव रचा कर जनता को राष्ट्र रक्षा के वीरता भरे विचार देकर राष्ट्र रक्षा सम्मेलन रख कर कर्त्तव्य का पालन करें। उत्सव स्थगित न करें। अपनी सभा का भी पूरा २ ध्यान रखें। इस चन्दे को भी भरना न भूलो।

—सम्पादक

डी.ए.वी. मिडल स्कूल भंभेवा

(तहसील जींद जि० संगरूर) ने रक्षाकोष के लिये विद्यार्थियों और अध्यापकों ने बड़ी हसी खुशी के साथ २००) रु० भेजे हैं यह मनीआर्डर सीधा प्रधान मन्त्री जी के नाम देहली भेज दिया है, इस डी. ए. वी. मिडल स्कूल के छात्र और अध्यापक आर्य प्रादेशिक सभा के आदेशानुसार देश सेवा के लिये समय समय पर तन मन धन की बलि देने के लिए तैयार हैं।

—०—

आर्यसमाज और राष्ट्ररक्षा

(ले० श्री पडित चन्द्रसेन जी आर्य हितैषी, उपदेशक आर्य प्रादेशिक सभा, सोनीपत निवासी)

❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖

सज्जनो—युग प्रवर्त्तक महर्षि दयानन्द सरस्वती ने लगभग सन १८७५ में आर्यसमाज की स्थापना की तब से लेकर लगभग ५०—६० वर्ष तक तो आर्यसमाज का सघर्षमय जीवन रहा इसका पता इसके इतिहास से लगता है। धार्मिक-समाजिक और राजनीतिक तीनों दृष्टियों से आर्यसमाज का ऊचा स्थान रहा है तब इसमें त्यागी-तपस्वी सम्जशील साधु और नेता थे, जब से कुछ स्वार्थी लोग इस पवित्र सस्था में अपनी वकालत, प्रिंसिपल, डाक्टरी, मास्टरी, सम्पादकी, एम पी एम एल. ए बनना तथा दुकानदारी चमकाने की दृष्टि से घुसे और जब ऊचा पद प्राप्त हुआ नाम प्रसिद्ध हो गया तथा अपना स्वार्थ सिद्ध हुआ तब ऐसे सज्जनो ने आर्यसमाज के गीत गाना छोड दिया। तब से ही आर्यसमाज में शिथिलता आई, नुक्ताचीनी करनी तो कई लोगो ने अपनी नीति ही बना रखी है। सभाओ की धडबन्दी देखकर लज्जा से सिर झुक जाता है ऐसे लोग न स्वय काम करते हैं और न ही औरो को करने देते हैं। 'शायद सभाओ को ले डूबेंगे।' इस कारण कुछ लज्जाशील व्यक्ति आर्य समाजियो के इस व्यवहार से तग आकर आर्यसमाज को छोड गये, चाहे वे व्यक्तिगत रूप से ऋषि भक्त हों, पर आर्यसमाज से दूर चले गये; आर्य विद्वानों तथा प्रचारकों का वह सम्मान नहीं जो स्वर्गवासी पूज्य महात्मा हसराज जी जैसे नेताओ के युग में था। इतना होने पर भी सच्चाई यह है कि आर्यसमाज के आदेश भरे दस नियमों द्वारा हमें देशभक्ति तथा राष्ट्र रक्षा का उपदेश मिलता है। आज चीनियों ने हमारी मातृभूमि पर हमला किया है जिस हिमालय पहाड को दृढ दरवाजा समझते थे वह ही तोडा जा रहा है, मैं समझता हू, अपनी सरकार की गलत और नरम नीति का परिणाम है जिसे स्वय भारत के प्रधान-मन्त्री श्री जवाहर लाल जी नेहरू ने स्वीकार किया और कहा हम· से कुछ गलतियां हुई। जिस कारण बेशर्म चीन ने भारत पर हमला किया है।

पर इस समय हम अपनी जाति शत्रुता तथा मनमुटाव भुलाकर राष्ट्र की रक्षा करें। ये बडी प्रसन्नता की बात है कि एक आध राजनीतिक पार्टी को छोडकर भारतीय जनसघ आदि एक रस होकर भारत सरकार का साथ दे रहे हैं तथा आज नेहरू जी के दाए साथी बने हुए हैं। इन लोगो की देश भक्ति पर स्वय भारत के लोग लट्टू हैं। चाहिये तो यह था आर्यसमाज इस आडे वक्त में अगुवा बनकर बढचढ कर काम करें क्योंकि इसमें धार्मिकता और राष्ट्रभक्ति कूट २ कर भरी हुई है।

अब भी हजारो आर्य समाजियो ने प्रथक २ रूप मे तन मन तथा धन से पूर्ण सहयोग दिया है और दे रहे है बहुत से नगरों मे आर्य समाजों ने हजारो की राशि राष्ट्र को दी और सोना पृथक, दिल्ली की समाजों ने तो निर्वाण दिवस पर ही पहल कर सरकार को पचास हजार से ऊपर की राशि तथा सोना दे कर आर्य समाज का गौरव बढाया।

पर दु ख है कोई आर्य नेता अगुआ बन कर सगठित रूप से कार्य नही कर रहा श्री महात्मा आनन्द स्वामी जी तो अफरीका प्रचारार्थ गये, पर आज उन्हें यहा रह कर ये महान कार्य करना चाहिये था माना कि वो भी बहुत बडी सेवा है। सार्वदेशिक सभा के प्रधान जी भी बीमार से रहते हैं पूज्य म कृष्ण जी की यही भी अवस्था है और ऐसा कोई नेता दीखता नहीं जो बडी निडरता व लग्न से इस बागडोर को सम्भाल सके। प्रान्तीय समाजो के प्रधान आदि तो दुनियादारी के चगुल में फसे हुए हैं औरों को भी काम नहीं सौंपते। धर्म रक्षा का भी ध्यान नही गद्दिया भी नही छोडते यदि यही रफ्तार रही तो वेद प्रचार सदा के लिये बन्द हो जाएगा इस का पाप इन नेताओं पर मढा जाएगा। ऋषि की आत्मा से धोखा समझा जाएगा। इस लिये आर्य समाज की जैसी देश भक्ति प्रसिद्ध है इस से भी अधिक हमें अब दिखानी चाहिये। आर्य समाज, आर्य युवक सभा, आर्य कुमार सभा आर्य स्त्री समाज तथा कालिज, गुरुकुल आदि सस्थाओं को सगठित कर राष्ट्र की रक्षा करनी चाहिये। जो व्यक्ति जो गुण रखता हो वह उसी रूप मे राष्ट्र की रक्षा करे। सब आर्य सज्जन तथा माताए बहिनें जो कार्य वैतनिक रूप मे करते हैं वे कम से कम एक दिन का वेतन जब तक जग रहे देते रहे। राष्ट्र भक्ति तथा ऋषि भक्ति की झलक दिखा दे मेरी भी ऐसी धारणा है। भारत मे एक करोड से अधिक आर्य समाजी रहते हैं कई करोडों की राशि वे राष्ट्र मे दे सकते हैं अन्य सभी सम्प्रदाय वाले भी पूर्ण योग दे रहे हैं। सरहदो पर लडने वालों वास्ते गर्म कपडे, कम्बल, स्वैटर, जुराबें, दवाईयां और खाने पीने की चीजें भेंट करें सभी फैक्ट्रियां तथा कारखाने वाले पूर्ण योग दें स्कूलों के बच्चे बच्चियां भी सिनेमा आदि देखना छोड दें रोज की जेब खर्ची बचा कर भी देनी चाहिये। डाक्टर आदि निष्काम सेवा भेंट करें। आज राष्ट्र भक्ति दिखाने का समय है आर्य-समाज शांति दायक अन्दरूनी आंदोलन चालू करें देश द्रोहियों पर कडी नजर रखें। आर्यसमाज के वार्षिक उत्सव बन्द न करें बल्कि बडे उत्साह से उत्सव मनाए। जागृति वास्ते सम्मेलन किए जाए। इससे सभाओं को भी हानि नही होगी और राष्ट्र शक्ति बढेगी घबराना नहीं चाहिए।

प्रान्तीय सरकारें भी अपने मन्त्री मडल के सदस्यो की सख्या को कम कर दें विधान सभाए भी कुछ समय के लिए स्थगित कर दें केवल राज्यपाल ही युद्ध तक प्रान्त के शासन को चलाए ऐसा करने से करोडों रुपया बच सकता है। ये आन्दोलन तरीके से आर्य समाज चलाए।

वजीर व विधान सभाई सदस्य साधारण राशि व भत्ता लेकर कम तक राष्ट्र सेवा करें इतने बडे सगठन और त्याग का प्रभाव विदेशी जनता पर बहुत होगा अच्छा प्रभाव शत्रु के दम खुश्क हो जाएगे। सीमा पर लडने वाले भारतीय सैनिकों के हौंसले बढेंगे। विजय निश्चय हमारी है। यदि भारतीय लोग तथा आर्यसमाजो इस ओर ध्यान दे तो सदियों तक शत्रु इस ओर मुड कर नहीं देखेगा बल्कि कोई भी देश स्वप्न मे भी भारत का विरोधी नही रहेगा काश्मीर की समस्या भी शीघ्र सुलझेगी इसी मे आर्यो! आप की राष्ट्र तथा ऋषि भक्ति है।

इसीलिए मैंने लिखा राष्ट्र रक्षा और और आर्य समाज—

नोट—मेरी ये पुकार सर्व साधारण तक पहुचाने की कृपा करें।

—०—०—

डी. ए. वी. हायर सेकंडरी स्कूल बटाला

के माननीय अध्यापकों ने राष्ट्रसुरक्षा कोष मे अपना एक दिन का वेतन भेंट किया है तथा स्कूल के छात्रों ने ५००) रु० की पहली किस्त राष्ट्रीय सुरक्षा फड में दी है। विद्यार्थियों ने राष्ट्रीय सेवा के लिए रिक्शा चलाकर, बूटपालिश कर के तथा कुली मजदूर बनकर सामान उठाने का काम करके पैसे इकट्ठे करके ओजस्वी का एक प्रशसनीय आदर्श पेश किया है। रेडियो स्टेशन का एक सज्जन जब एक रिक्शा में सवार होने लगा—पूछा क्या लोगे तब स्कूल छात्र बोला—राष्ट्ररक्षा में आप जो दे सकते हैं देवें। उन के परिवार के बच्चे को यह कार्य करता देख प्रभावित हुआ। रेडियो से भी स्कूल के छात्रों के इस सेवा आदर्श की जाकर प्रशसा की। प्रिंसिपल पं० युगल किशोर जी एम० ए० तथा सारा स्कूल बधाई के पात्र है

राष्ट्र की दो शक्तियां ब्रह्म-क्षत्र

प्रिंसीपल प० रलाराम जी एम. ए का ओजस्वी भाषण

श्री पं० रलाराम जी एम० ए० प्रिंसिपल डी० ए० वी० कालेज होशियारपुर आर्यसमाज के महाधन हैं। आपका जीवन सौम्य, गम्भीर तथा प्रभावपूर्ण है। लेखन तथा प्रवचन में ओजस्वी हैं। पंजाब विधान सभा के माम्य सदस्य हैं। आर्यसमाज लोहगढ़ अमृतसर के वार्षिकोत्सव पर आपने आज की राष्ट्र समस्या पर जो ओजस्वी भाषण दिया। उसे आर्यजगत के पाठकों के लिए प्रस्तुत किया जाता है—स०

जैसे व्यक्ति की आयु बढती है वैसे उसके पास विचार सामग्री भी बढ़नी चाहिए। वेद मे लम्बे जीवन की बडी सुन्दर प्रार्थनाए हैं। हम मानव चोला लेकर आये हैं, हम अनुभव भी प्राप्त करें। इसका तात्पर्य है, लक्ष्य क्या है ? इसका उत्तर दे सकें। यह दीर्घ जीवन भी प्रभु की देन है। वेद में आता है—अदाना स्याम—पराश्रित न हों। यदि हमारा जीवन आश्रित का है तो जितनी जल्दी जाये उतना ही अच्छा सर्व परवश दु.खम्—पराश्रित होना दु.ख तथा आत्मनिर्भरता सुख है। इस जीवन म सोचने की प्रवृत्ति होनी चाहिए। जीवन संतुलन का नाम है। इस संतुलन को खोकर केवल एक ओर झुक जाना जीवन नहीं है। भारत में जब हिंसा की लहर चली तो उसी ओर बह गये और जब अहिंसा का प्रवाह आया तो उधर ही हो गए। यदि इन भिन्न रूपों का सतुलन न कर सकें तो लाभ क्या ? जिस जीवन में विपत्ति नहीं आई उस में गहराई नहीं आ सकती। ठोकरों को खा कर ही सोचने की सामर्थ्य पैदा होती है। Are you a book into yourself क्या मैं आपने लिए स्वयं एक पुस्तक हूं ? इस पर विचार करें। जीवन बड़ा विशाल है, कोई भी पूरी सफलता का दावा नहीं कर सकता। मनुष्य स्वयं एक पुस्तक बन जाये। हमारे ऋषियों ने इसे स्वाध्याय कहा है, पुस्तकाभ्यास नहीं कहा। स्वयं को पढ़ना भी है। इस में मैं ने कुछ लिखा भी है या सर्वथा कोरा ही रखा है। हम इस गति से चलें कि ऐसा कहा जा सके कि इस मे सोचने की सामग्री है जब भी आंखें खुली तो ठोकर लगने से। adversity is a blessing of life दु.ख जीवन का वरदान है। भेड़ों ने सोचा कि हम तो अहिंसक है, यह भेड़िया हमारा बिगाड़ेगा ?

वेद का दृष्टि कोण सतुलित, है It is a balanced view of life अहिंसा जीवन का भारी पहलू है। यमों में पहिला तथा गीता मे दैवी सम्पत्ति में गिनाया गया है। पर अर्जुन को लड़ाया गया। आज विपत्ति में चीन ने युद्ध ठोंसा है। अब हमें भी दृष्टि कोण को बदलना है। वेद मे दोनों शक्तियों का उपदेश है—यत्र ब्रह्म च क्षत्र च—ब्रह्म और क्षात्र बल दोनों आवश्यक हैं। जहां ये दोनों इकट्ठे चलते हैं वह भाग्यवान् है। हम जीवन का संतुलित दृष्टि कोण नहीं रखते। यदि विश्वव्यापी युद्ध हो जाये तो भारी संहार होगा। हम ने शान्ति के लिए बड़ा प्रयत्न किया, इसे बड़ा टाला। पर हमारे प्रयत्नों के बाद भी यदि युद्ध आता है तो आजाए। याद रखें कि संकट भी आंखें खोल देता है विपत्ति का भी जीवन में बड़ा स्थान है। इस संकट का यह लाभ होगा है कि सारे भेद भूल गए। भारत में राष्ट्र-प्रेम की एकता है। सारे देश ने एकता के सूत्र में अपने को पिरो दिया है। स्थित धी कौन है ? जो दु.खों में व्याकुल नहीं होता और सुखों में मस्त नहीं होता। हमने युद्ध देखा न था पर सुना जरूर था। संकट में यह हमारी परीक्षा होगी। धीरोंके समान रहना है। उपनिषदों में आता है कि प्रभु को कौन पाता है—कश्चिद् धीरः-घबराने वाला भगवान् को नहीं पाता। श्रेयो हि धीर—धीरज वाला ही कल्याण मार्ग को पाता है। इस परीक्षा में धर्म सस्थाओं का तो बड़ा ही काम है। जाति के चरित्र को तो यही सस्थाए कायम रखती हैं, आंखे खोलने वाली हैं। सुखदु खे समे कृत्वा—दोनों जय पराजय आती है। चर्चिल ने कहा था—Blood and tear खून और आसू के सिवा और क्या सन्देश दे सकता हूं। किन्तु we will win हम अवश्य विजयी होंगे। मान अपमान में सम रहना विजय है। यह संकट हमे धैर्य का पाठ पढायेगा। युद्ध का रूप हम ने अपनी भूमि पर नहीं देखा। जिधर सत्य है उधर विजय है। श्री कृष्ण जी ने कहा था कि मैंने शान्ति के लिए बड़ा प्रयत्न किया, पर सफलता नहीं मिली। पर अब जिस समय के लिए क्षत्रियाणियां अपने पुत्रों को जन्म देती हैं वह समय आ गया। यही बात आज है। हतो वा प्राप्स्यसि स्वर्गम्—मरने पर स्वर्ग तथा जीने में विजय है। न्याय व धर्म का युद्ध तो भाग्यवान् को मिलता है। जिस भगवान् कृष्ण ने अहिंसा का उपदेश दिया वही अर्जुन को युद्ध का सन्देश देते हैं। अत धर्म के मर्म को समझना जरूरी है। हिमालय हमारी सम्पत्ति है, ऋषियों की तपोभूमि है। हम जीते जी चीन को कभी भी समर्पण नहीं कर सकते। यदि हमारे विचार शिथिल हों तो सेना भी कमजोर होगी। ब्रह्म बल विचार शक्ति है। युद्ध के दो फ्रंट हैं, एक सिपाहियों को और दूसरा होमफ्रंट विचारों का होता है। विचारों का फ्रंट कभी निबल नहीं होना चाहिए। वेद इन्हीं दोनों शक्तियों का सन्देश देता है—ब्रह्म बल और क्षत्र बल। हमारे देश के ये दोनों फ्रंट ठीक हों। निश्चित विजय हमारी है। अत. जीवन के दृष्टिकोण को सन्तुलित करें।

आर्यसमाजों से आवश्यक निवेदन

प्रादेशिक सभा से सम्बन्धित अनेक आर्य समाजों ने देश की सकटकालीन स्थिति को ध्यान में रखते हुए अपने वार्षिकोत्सव स्थगित कर दिए हैं। मेरा प्रार्थना है कि अपने उत्सव स्थगित न करें। क्योंकि आयसमाज ने तो देश रक्षा का प्रण किया हुआ है और हमारे पथ प्रदर्शक महर्षि दयानन्द ने तो देश रक्षा पर पूरा बल दिया था। हां आप समाजों के उत्सवों मे भाषण गायन आदि देश रक्षा पर कराकर जनता मे देशभक्ति की भावना पैदा करें और उन्हें इस आवश्यक कार्य के लिए मैदान में आने को उत्साहित करें।

आप की प्यारी सभा की आर्थिक दशा बहुत शिथिल है इस ओर भी आप ने पूरा ध्यान देना है तथा इसको दृढ़ करना है। ऐसा करने से वेद प्रचार को बल मिलेगा मुझे पूर्ण आशा है कि समाजों के अधिकारी तथा जनता ऋषि के ऋण को समझेगी और वर्तमान युग में ऋषि के गौरव को बढ़ाएगी।

आर्य जनो के सेवक—

सतोषराज

मन्त्री आर्य प्रादेशिक सभा

कपूरथला के जिलाधीश ने सुलतानपुर के इलाका की ओर से गतदिवस जेल विभाग के मंत्री ज्ञानी जैलसिंह को राष्ट्रीय रक्षा कोष के लिए ७३ हजार रुपए की थैली पेश की हमला का मुकाबला करने के लिए जगराओं के लोगों में असीम जोश-खरोश है तथा रक्षा कोष संग्रह अभियान खूब जोर-शोर से चल रहा है।

इस विषमस्थिति में बहनों का कर्त्तव्य

(कु०—अरुण जी आर्या प्रभाकर, टोहाना)

आज भारत माता के ऊपर जो विपत्ति की घनघोर घटाएं छाई हुई हैं, वह जिन संकटों का सामना कर रही है, इस संकटपूर्ण स्थिति से कौन परिचित नहीं है। और देश के वयोवृद्ध, नवयुवक महिलाएं और शिशुओं ने इस संकट को टालने में कितना सहयोग दिया हैं, यह सब बतलाना सूर्य को दीपक दिखलाना है। समाचार पत्रों द्वारा, आकाशवाणी द्वारा प्रति क्षण यही समाचार सुनने को, पढने को मिलते हैं कि अमुक व्यक्ति ने रक्षा कोष में १०००० रु० भेंट किया, महिलाओं ने नवयुवकों के लिए ऊनी स्वेटर और मोजे बुनकर भेजे एवं अपने हाथों से सोने की चूड़ियां व अंगूठी उतार कर दीं। बच्चों ने अपने बचाए हुए पैसे दिए तथा छात्रों ने रक्तदान दिया। भारत माता के बच्चे २ में कितना आत्म समर्पण है। यह सब देख कर सारे देश का मस्तक ऊंचा है। हमें तो क्या ? सभी देश विदेश भारत माता की सन्तानों की देश भक्ति देखकर आश्चर्यान्वित हो रहे हैं।

आक्रान्तकारी चीन ने शायद अकस्मात भारत पर इसलिए आक्रमण किया कि भारत शांतिप्रिय देश है कि उसका राजा जवाहर लाल नेहरू शांति का देवता है परन्तु उसे यह विदित नहीं कि जहा भारत मा की गोद में नेहरू जैसे शांति के पुजारी और गांधी जैसे अहिंसा के उपासक हैं, वहां महाराणा प्रताप और शिवा जी जैसे शूरवीरों की समाधि भी है। जीजा बाई, और झांसी की रानी लक्ष्मी बाई भी उसी की सन्तान है।

नारी सदैव से पुरुष की प्रेरणा रही है। आज उसी प्रेरक शक्ति को हम ने पुरुष को देना है। समय नहीं है अब मोह माया का। समय नहीं अब शृंगार करने का अथवा नृत्य गान करने का। अभी तो हम ने स्वतन्त्रता का प्रभात भी नहीं देखा था कि विपत्तियों का यह पहाड हम पर अकस्मात टूट पड़ा। क्या हम इस समय अपना कर्त्तव्य भुला दें ? नहीं नहीं। माताएं जीजाबाई बन कर अपने जिगर के टुकड़ों को वीरता की गाथाएं सुना कर रणक्षेत्र में भेजें। बहनें अपने भाईयों की कलाई पर शुभ राखी बांध कर उन्हें ललकारें कि भैया जाओ। अपनी मातृ-भूमि की लाज बचाने के लिए अपने प्राणों की आहुति दे देना मगर पीठ न दिखाना ! वास्तव में बहनों के लिए रक्षाबंधन का दिवस तो अब आया है और भाईयों का समय आ गया है उस राखी को मूल्य प्रदान करने का।

बहनों। सजग हो जाओ। आज हमारा कर्त्तव्य हमें बुला रहा है। प्राचीन इतिहास हमें आगे बढ़ने की प्रेरणा दे रहा है। महारानी लक्ष्मीबाई की गाथा पढ़ कर हम यहीं न रह जाएं बल्कि उस के अनुयायी बन कर हाथ में तलवार ले कर शत्रुओं के दांत खट्टे कर दें। बहनों ! उठो, तैयार हो जाओ, राष्ट्र रक्षार्थ। किसी न किसी रूप में तुम अपना कर्त्तव्य पालन करो, सेवा करके प्रेरक बन कर नारी जाति में देश की वास्तविक स्थिति को अवगत करा दो।

संसार कहता था कि अब नारी केवल शृंगार प्रिय है। पर अब हमें उन्हें अपनी शक्ति का अपूर्व चमत्कार दिखलाना होगा ताकि वह मान जाए कि नारी समय की चाल को पहचानती है। वस्तुत: वह पुरुष से पीछे नहीं है और उस में अनन्त शक्ति का भंडार निहित है।

हमें न समझे कोई
फूलों की क्यारियां।
हम हैं हिन्द की
असली चिंगारियां॥

—०—०—

प्रादेशिक आर्य युवक सगठन पंजाब के अध्यक्ष का

कालेज व स्कूलों के आचार्यों आर्यसमाजों व आर्य युवक समाजों के अधिकारियों से नम्र निवेदन

मान्यवर बन्धु।

सादर नमस्ते।

आपको यह जान अत्यन्त प्रसन्नता होगी कि आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा पंजाब ने अपने अन्तर्गत युवक शक्ति को संगठित करने के हेतु प्रादेशिक आर्य युवक सगठन पंजाब का निर्माण किया है। उसी संगठन का संविधान आपकी सेवा मे भेज रहा हूं। आपके आर्य समाज में या आपके समाज के साथ सम्बद्ध स्कूल या कालेज में युवक समाज या कुमार सभा अवश्य होगी। यदि अभी तक नहीं बन सकी है तो उसका निर्माण कर लीजिए। यह एक पुनीत कार्य है। आर्य समाज को बलिष्ट बनाने तथा चिरस्थायी करने का एक मात्र यही साधन हो सकता है। आप स्वयं विचारशील हैं। इस कार्य के महत्व के सम्बन्ध में भली प्रकार परिचित हैं। इसी भेजे जा रहे संविधान के अन्दर एक फार्म भी है। कृपया अपनी युवक समाज से भरवा कर १० रुपये सम्बन्ध शुल्क के साथ शीघ्र ही भिजवा दीजिए। साथ ही प्रतिनिधियों के नाम भी चुन कर निम्न पते पर भेज दीजिए, जिस से शीघ्र ही निर्वाचन के लिए बैठक भी बुलाई जा सके।

आशा है प्रार्थना स्वीकार होगी—
आप का बंधु
वेदीराम शर्मा
डी. ए. वी. कालेज, जालन्धर नगर
अध्यक्ष
प्रादेशिक आर्य युवक संगठन पंजाब

—०—

पंजाब को सैनिक शिविर बना दिया जाएगा : कैरों

संगरूर २८ नवम्बर—मुख्य मंत्री सरदार प्रतापसिंह कैरों ने आज यहां एक सार्वजनिक सभा में जनता से चीन और भारत की लम्बी लड़ाई के लिए तैयार रहने की अपील की।

उन्होंने घोषणा की कि वह पंजाब को एक सैनिक शिविर के रूप में परिणित कर देना चाहते हैं, जहां हर स्वस्थ पंजाबी को आगामी कुछ सप्ताह में हथियार चलाने का प्रशिक्षण दिया जाएगा। इस प्रकार वे अपनी मातृभूमि की रक्षा कर सकेंगे।

सभा में संगरूर की जनता की ओर से उन्हें ३५ लाख रुपए का एक चैक भेंट किया गया !

पंजाब में राष्ट्रीय रक्षाकोष में अब तक ३६७७६८५७ रुपए जमा हो चुके हैं। इसके अलावा ८६३१६ ग्राम सोना भी जमा हुआ है।

सात हजार जवानों ने सैनिकों के लिए रक्तदान की पेशकश की है।

—

आर्य युवक समाज लेखराम नगर कादियां

के युवकों ने देश रक्षा फंड में अपनी ओर से १०१) रुपये और भी भेंट किये। रेडियो विभाग ने इन आर्य युवकों के इस कर्त्तव्य योग की भी सूचना देते हुए प्रशंसा की है—

आर्य समाज के ये युवक रक्तदान की घोषणा पूर्व कर चुके हैं।

राष्ट्र रक्षा और हमारा कर्त्तव्य

(श्री. पं. ओम् प्रकाश जी आर्य महोपदेशक सभा)

इस समय हमारे आर्य्यावर्त देश पर कृतघ्न, क्रूर और विश्वासघाती चीन ने अपनी विस्तारवादी एवम् साम्राज्य-वादी लालसा मयी दूषित मनोवृत्ति के कारण आक्रमण कर रखा है। उस का यह आक्रमण केवल सीमाओं पर ही नहीं समूचे देश पर किया गया समझा जाना चाहिये। हमारा इतिहास इस बात को प्रमाणित करता है कि हम ने दूसरेके देश को कभी भी बल प्रयोग कर के अपने आधीन नहीं किया न किसीके साथ कभी अन्याय युक्त व्यवहार ही किया है हम तो सदा शत्रु का भी भला ही चाहा करते थे और आज भी वही भाव हमारे मन में है। शत्रु-शत्रुता का भाव त्याग कर और सत्यमार्ग अपना कर हमारा कभी भी मित्र बन सकता है। ऐसा हम करते रहे हैं। हम ने रावण को मारा उस के साथियों को भी नष्ट किया परन्तु उसी के कनिष्ठ भ्राता विभीषण को सत्य मार्गावलम्बी समझ कर गले लगाया। लंका विजय कर के उस पर अपना राज्य स्थापित नहीं किया बल्कि वहीं के लोगों को उस का राज्य सौंप दिया। कंस का वध कर के उग्रसेन को तथा जरासंध का वध कर के उसी के पुत्र सहदेव को हम ने राज भार सौंपा है। हमारा साम्राज्य वाद धरा का अपहरण कर के नहीं अपने सदाचार सद्व्यवहार और नैतिक उत्थान के प्रभाव से हृदयों को जीत कर स्थिर रहता था। हमारा अपने राज्य को बढ़ाने का यही ढंग रहा है और आज भी है।

जहां हम इस प्रकार अन्यदेश वासियों को अपनाने का, अपना बनाने का काम करते रहे हैं वहां अपनी मातृ भूमि की रक्षा भी प्राण-पण से करते रहे हैं। अपनी मातृ-भूमि पर हम ने विदेशियों को कभी सहन नहीं किया। छल-कपट से या हमारे आलस्य प्रमाद और फूट आदि के कारण जब भी हम पर विदेशी आक्रमण हुये हैं तभी हम ने बलिदान का मार्ग अपनाया है। महाराज शिवाजी राणा सांगा वीर छत्रसाल, महाराणा राजसिंह महाराणा प्रताप, चौहान वीर पृथ्वीराज आदि अपने वीरवरों को कौन भुला सकता है। क्रांतिकारी नर-नाहरों के बलिदान सच्ची देश भक्ति का पाठ पढ़ाते हैं—अतः आज भी हमें वही मार्ग अपनाना है। देश पर आई हुई आपत्ति को, अपनी सारी शक्ति लगाकर दूर हटाना है। तन-मन-धन देकर राष्ट्र की रक्षा करने के लिए हमें तैयार होना है। यह अवसर आपसी राग द्वेष का नहीं अपितु मन की मैल दूर करके सब शक्ति का परिचय देने का है। आर्यसमाज, पूर्ण राष्ट्र भक्त समाज है—अपने जन्मकाल से ही राष्ट्र रक्षा का परम पुनीत काम करता आया है। इसके प्रवर्तक जैसा पूर्ण स्वदेशी देशभक्त नेता-सुधारक तो कोई हुआ ही नहीं—क्या भाषा की दृष्टि से, क्या वेष की क्या भावना की दृष्टि से और क्या शिक्षा दीक्षा की दृष्टि से महर्षि पूर्ण स्वदेशी थे—ऐसे देशभक्त पूर्ण स्वदेशी अपने महान् प्रवर्तक महर्षि के अनुयायी इस आपत्काल के सामने आगे आकर जनता में देशभक्ति की भावना जगाने का पवित्र काम करें।

स्मरण रखिए—जनता को देश-भक्ति के पवित्र विचार सुनाने का और जनमानस को इस ओर प्रेरित करने का यह उपयुक्त अवसर है। उत्सवों का स्थगित करना किसी प्रकार भी राष्ट्र की सेवा नहीं—जो समाज उत्सवों को स्थगित कर रहे हैं उन्हें ऐसा नहीं करना चाहिये अपितु पहले से भी द्विगुणित उत्साह से उत्सव मनाने चाहियें—उत्सवों में अध्यात्म चर्चा के साथ-साथ देश भक्ति पर विशेष व्याख्यान कराने चाहियें और सारी बचत राष्ट्र रक्षा कोष में दे देनी चाहिए। उत्सवों और कथाओं तथा सम्मेलनों का विशेष आयोजन करते हुए जन-जागरण का काम आर्यसमाज को अपने ऊपर लेना चाहिये। इस समय यही हमारा कर्त्तव्य है—आओ अपने देश की सेवा सुरक्षा में जुट जाएं।

ऐ नव युवक

(ले जगदीश प्रसाद आर्य कौशिक रुड़की कला सगरूर)

जाति का तू गौरव है, और देश का अभिमान है
अब कुछ करके दिखला दे तू, इस में तेरी शान है
देश पे जब कोई संकट आया, पीछे न रह पाया तू।
कठिन परीक्षा में भी साथी, कभी नहीं घबराया तू।
हर मुश्किल को करता आया, पल भर में आसान है। अब—१
माना अमन पुजारी तू है, और नमूना त्याग का।
सच है, कि निर्माता तू ही, है भारत के भाग का।
सुख शान्ति की सुन्दर वीणा की तू मीठी तान है। अब—२
अमन अहिंसा की धरती पर, भयानक ज्वाला भड़क रही।
ऊपर चीनी अत्याचारों की है, बिजली कड़क रही
उठा प्यार के सागर में इक, नफरत का तूफान है। अब—३
तुला मिटाने 'चू, ऐन, लाई, सब सुन्दर आदेश तेरे।
मुंह खोले हैं खड़े सामने बड़े २ सर्प तेरे।
इन सर्पों से टकराजा, वीरों की सन्तान है। अब—४
आंख दिखाने लगा नीच वह, जिस पर था उपकार किया,
तेरा शत्रु बन बैठा है, तूने जिस से प्यार किया।
कुचल के रख दे सिर चीनी का, इस में ही कल्याण है। अब—५
पचशील का ढोंग रचा कर, अब भीषण उत्पात करे।
हम ने जिस को सम्माना था, वह ही मित्र घात करे।
नष्ट न होने देना तूने, राष्ट्र का अभिमान है। अब—६
राम कृष्ण को भूल गया क्या वीर शिवा प्रताप को।
नेता जी, गोविन्द भक्त सिंह हरा मातृ सताप को।
रक्त नसों में दयानन्द का तू भी वीर महान है। अब—७
उठ, और चल कर अब डट जा तू, नीफा और लद्दाख में।
दाग न लगने पाये कोई, मातृ-भूमि की साख में।
सीधा यमपुर पहुंचा उसको, नाच रहा शैतान है। अब—८
देश स्वतन्त्रता की देवी, कहीं रुठ न जाये फिर।
शत्रु सत्य पर विजय कहीं, नकाला झूठ न आये फिर।
'कौशिक, तेरे सिर के ऊपर ईश्वर का वरदान है।
अब कुछ कर के दिखलादे तू, इस में तेरी शान है।

ग्राहक महानुभाव पत्र व्यवहार तथा मनीआर्डर भेजते समय अपनी ग्राहक संख्या अथवा नया ग्राहक अवश्य लिखें।

टैलीफोन न० ३०४७ [आर्यप्रादेशिक प्रतिनिधि सभा पंजाब जालन्धर का साप्ताहिक मुखपत्र] Regd. No.P.121

एक प्रति का मूल्य १३ नये पैसे वार्षिक मूल्य ६ रुपये

वर्ष २२ अक ५०) रविवार २ पौष २०१९—१६ दिसम्बर १९६२ दयानन्दाब्द १३९ (तार-प्रादेशिक जालन्धर

वेदामृत

भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः।
स्थिरैरंगैस्तुष्टुवांसस्तनूभिर्व्यशेमहि देवहितं यदायुः ॥

यजु. अ २५ मन्त्र २१

अर्थ —हम सब (भद्र) शुभ शब्द (कर्णेभि) कानो से (शृणुयाम) सुनते रहें (देवा) हे दिव्यजनो। आप के सत्संग मे हम (पश्येम) देखते रहें (अक्षभि) आंखों से (यजत्रा) हे परोपकार करने वाले देवो। हम (स्थिरै अंगै) नीरोग अगों इन्द्रियों से (तुष्टुवांस) स्तुति करते हुए (स्तनूभि) अपने स्वस्थ शरीरों से (व्यशेमहि) प्राप्त करते रहें (देवहित) देवों का हित करने वाली (यत् आयु॰) जीवनशक्ति को—हमें दिव्यजनों को सुख देने वाली तथा परोपकार मे लगा हुआ जीवन मिले —

भावार्थ —हे दिव्य गुणों से भरे देव पुरुषो ! हम आंखों से देखते कानों से सुनते तथा शरीर के अंगों से कार्य करते हैं। किन्तु यही आंखें, कान और दूसरे अंग हमारे जीवन को सुपथ से हटा कर कुपथ पर डाल देते हैं फिर पता नहीं क्या २ देखते, सुनते और दूसरे काम करते रहते हैं। जिस का परिणाम हमारे जीवन के लिए अत्यन्त घातक सिद्ध होता है। इस लिए हे देवो ! आप की संगति मे रह कर हम आंखों से सदा भद्र ही देखें, कानों से सदा भद्र ही सुनें। सारी इन्द्रियों से जीवन के भले कार्य ही करते रहें। सारा शरीर नीरोग होवे। जितनी भी हमारी जीवन, हमारी आयु है। वह ऐसे कार्यों में बीते, ऐसे मार्ग पर चले-जिस से देवों का हित होता रहे दिव्यगुणों से शक्ति मिलती रहे। बुराईयां दूर करने में हमारा भी उन को सहयोग मिले। प्रभु की स्तुति करते हुए हम देव मण्डल का साथ देते रहें—सं.

चीन की भारत से आत्मा समर्पण की मांग निष्फल

पं० नेहरू जी ने चीन का त्रिसूत्री प्रस्ताव ठकरा दिया—चीन ने अपने त्रिसूत्री प्रस्ताव मे मांग की है कि चीनी सेना भारत की सीमा में साढे ५२ मील मे भी अधिक घुसा रहेगी। उत्तर प्रदेश, हिमाचल और पजाव में चीन जिन स्थानो पर अपना दावा करता है उसे दे दिए जाएं। उत्तर पूर्वी सीमान्त के महत्व पूर्ण दरों को चीनियो के अधिकार मे छोड दिया जाए। दूसरे शब्दो में चीन के हाथ में देश की उत्तरी द्वारा की कुंजी दे दी जाय ताकि जब कभी वह चाहे फिर हमारे घर में घुस आए। अतः पंडित जवाहर लाल जी ने इस त्रिसूत्री प्रस्ताव को ठुकरा कर देश को बचा लिया है।

केन्द्र द्वारा राइफल प्रशिक्षण अनिवार्य घोषित

राज्य सरकारें सूचित श्री शास्त्री की घोषणा

केन्द्रीय गृहमन्त्री श्री लाल बहादुर शास्त्री ने मध्य वर्ती क्षेत्र के सीमान्त जिलों के ससद् सदस्यों को कल यह बताया उस क्षेत्र मे सक्षम लोगों को राइफल प्रशिक्षण और नागरिक प्रतिरक्षा पर का विशेष रूप मे प्रशिक्षण देने का निर्देश दिया गया है सम्बद्ध राज्यों द्वारा इस सम्बन्ध में पग उठाए जा रहे

पजाब, हिमाचल प्रदेश और उत्तर प्रदेश पर आधारित हिमालय सीमांत जिलों के कुछ प्रतिनिधियों ने गृहमन्त्री से माग की कि प्रतिरक्षा तैयारी के इस मामले में भी क्षेत्र की ओर विशेष ध्यान दिया जाए।

अधिष्ठाता—संतोषराज मंत्री सभा सम्पादक—त्रिलोक चन्द्र शास्त्री

अध्यात्मवाद

सफल जीवन

(श्री. प्रिंसिपल दीवान चन्द जी एम. ए. कानपुर)

माननीय प्रिंसिपल जी आर्य समाज के महारथियों में हैं। शिक्षा के क्षेत्र में सारे भारत में बड़े प्रसिद्ध हैं। आप महान् दार्शनिक हैं। आप का प्रवचन, और लेखन गम्भीरता तथा दार्शनिकता से भरा रहता है। आर्य जगत् के प्रेमी पाठकों के लिए उन के गम्भीर विचार भी कभी २ प्रस्तुत किये जाते हैं—सं.

व्यक्ति को प्रथम काम तो अपने शरीर को बनाना है। पहले माता, अपने शरीर से बच्चे का पालन करती है, पीछे उसे अन्न आदि खिलाती है। आगे [illegible] वह अपने आप खाने लगता है। और अन्तमें जो कुछ खाता है उसे कमाता भी है। शरीर के स्वास्थ्य के सम्बन्ध में जो क्रियाएं आवश्यक हैं, उन्हें पांच प्राणों की कृति समझा जाता है। सकुचित अर्थ में प्राण का काम जीवन कायम रखने वाली सामग्री को शरीर में लेना और उसे अपना अंग बनाना है। हम जो कुछ खाते हैं, वह मुंह से पिसने के बाद गले से उतर कर मेदे में जा पहुंचता है, पानी के पीने की आवश्यकता नहीं, यह सुगम ही मेदे में जा पहुंचता है। वायु जो अन्न और जल से अधिक आवश्यक है, निरन्तर अन्दर जाती रहती है। खाद्यपदार्थों का कुछ भाग शरीर का अंग बन जाता है, शेष बेकार भाग मलमूत्र के रूप में बाहर फेंक दिया जाता है। पसीने के साथ अन्दर से मैल निकलती है और बाहर आने वाला सांस भी अपने साथ मैला को ले आता है। यह अपान का काम है। खुराक के सम्बन्ध में दो प्रमुख दोष होते हैं एक यह कि मेदा इसे पचा न सके, दूसरा यह कि बेकार भाग शरीर में पड़ा रहे। प्राण और अपान अपना काम उचित रीति से करें, तो यह नहीं होते। जो कुछ भी हम खाते हैं, वह मेदे में पकता है। वहां चावल, दूध, आलू का भेद मिट जाता है। जो कुछ शरीर की असंख्य घटकों को बनाने के लिए काम आ सकता है, वह अंतड़ियों की दीवारों से गुजर कर रक्त धारा में मिल जाता है और शरीर के हर एक भाग में जा पहुंचता है। विविध पदार्थों को अभेद बनाना समान का काम है। पाचक मंडल इस का करता है। व्यान इस अंश को शरीर को सभी घटकों तक पहुंचा देता है। संचार मंडल उस का करता है। जीवन उत्थान, आगे बढ़ना या ऊपर उठना है। यह उदान का काम है। जीवन एक घटक से आरम्भ होता है। एक से दो बनते हैं, दो से चार, और यह क्रम जारी रहता है। स्वस्थ जीवन के लिए आवश्यक है कि पांचों प्राण अपना काम ठीक करते जायें।

हमारा शरीर जगत् का एक अति अल्प भाग है। व्यक्ति और बाहरी पदार्थों के दरमियान क्रिया और प्रतिक्रिया निरन्तर होती रहती है। यही जीवन का चिन्ह है। इस क्रिया और प्रतिक्रिया के प्रमुख करण हमारी ज्ञानेन्द्रियां और कर्मेन्द्रियां हैं। कर्मेन्द्रियों की क्रिया से पहले हमें पता तो लगना चाहिए कि वातावरण का रंगरूप क्या है। यह बोध ज्ञानेन्द्रियों की देन है। नासिका और जीभ तो प्रायः यही बताती हैं कि कौन वस्तु खाने पीने के योग्य है और कौन नहीं। आंख और कान दूर पड़ी वस्तुओं के स्थान की बाबत बताते हैं। त्वचा ऐसे बोध में निश्चिन्तता में चरम हैं। आंख और कान कभी २ धोखा दे देते हैं, कान से प्राप्त मिथ्या ज्ञान आंख से ठीक हो जाता है। त्वचा की देन ज्ञान के शुद्ध या दूषित होने का निर्णय कोई और ज्ञानेन्द्रिय नहीं कर सकती। कर्मेन्द्रियों में हाथ प्रमुख है। पशु को ही लीजिये। पशु जीता रहने के लिए अपने आपको वातावरण के अनुकूल बनाता है। मनुष्य भी यही करता है, परन्तु वह वातावरण को अपने अनुकूल बनाने की क्षमता भी रखता है। पशु पक्षी खाने के लिए अपने मुंह को खाद्य पदार्थ के पास ले जाते हैं, मनुष्य खाद्य पदार्थ को मुंह के पास ले आता है। वह हाथ की सहायता से ऐसा कर सकता है। हमारा हाथ भुजा की लम्बाई से परे नहीं पहुंच सकता। हमारे पांव हमारी भुजा की लम्बाई को बढ़ा देते हैं। व्यक्ति के जीवन में नीचे के दो अंगो का व्यर्थ मादा को बाहर फेंकना है। जिह्वा कर्मेन्द्रिय की स्थिति में व्यक्ति को सामाजिक प्राणी बनाती है। बहुतेरे लोगों की हालत में यह शक्ति के बाहर निकलने का प्रमुख द्वार है, सौभाग्य से सुनने वालों के कान इस प्रहार को सहन करने की क्षमता रखते हैं।

अपने शरीर को [illegible] यह हमारा प्रथम धर्म है। बहुतेरे इसे चरम धर्म समझते हैं। परन्तु, नैतिक प्राणी होने के नाते मनुष्य केवल अपने लिए नहीं जीता। मैं अनेक रूपों में दूसरों के श्रम से लाभ उठाता हूं। इस ऋण को चुकाने के लिए मुझे भी समाज सेवा के लिए कुछ करना चाहिए। ऐसे सभी कामों के लिए यज्ञ शब्द का प्रयोग किया जाता है। यज्ञ में तत्व की बात यह है कि यज्ञ करने वाला सौदा नहीं करता। उसे यह आशा नहीं होती कि जिस किसी को उसकी क्रिया से लाभ पहुंचता है, वह उस लाभ को किसी रूप में उसे पलटा देगा। उसे तो यह ज्ञान भी नहीं होता कि उसके यज्ञ का लाभ किसे पहुंचता है। यज्ञ और [illegible] दान में भेद है। वेद का आदेश है—आप यज्ञ करो। दूसरों को जो लाभ होता है, उसमें तो भेद नहीं पड़ता, परन्तु यज्ञ करने वाले के आत्मिक कल्याण के लिए उचित यही है कि वह आप यज्ञ करे। इसी से उसमें यज्ञ के लिए श्रद्धा पैदा होती है, इसी से वह अपने आपको समाज का अंग समझता है।

आर्य जगत रोहतक के समाचार

आर्य वीर दल की शाखा श्री दयानन्द मठ में दैनिक रूप से चल रही है। देश की रक्षा निमित्त आर्य वीर दल के सैनिक व्यक्तिगत रूप तन-मन से सहयोग दे रहे हैं। अब उन्हें सामूहिक रूप से राईफल-ट्रेनिंग की समुचित व्यवस्था की जा रही है!

पहली मग्घर (१६ नवम्बर) को आर्य कुमार सभा के तत्वावधान में पंजाब केसरी लाला लाजपतराय की वर्षगांठ आर्य समाज मॉडल टाऊन में मनाई गई। जहां व्याख्यान दाताओं ने लाला जी की सेवाओं पर प्रकाश डाला वहां पंजाब सरकार से लाला लाजपत राय के दिवस पर छुट्टी का अनुरोध किया गया।

हर मास के अन्तिम सप्ताह के रविवार के दिन नगर की समस्त आर्य संस्थाओं का सम्मिलित [illegible] में सत्संग आर्य समाज मॉडल टाऊन में २६ नवम्बर को मनाया गया। [illegible] कि १६ दिसम्बर को आठ मरला शिवा जी कालोनी आर्य समाज में मनाया जायेगा।

—[illegible]
मंत्री आर्य समाज (मा. टि.) रोहतक

सम्पादकीय—

आर्य जगत्

वर्ष २२] रविवार २ पौष २०१९, १६ दिसम्बर १९६२ [अंक ५०

जहिशत्रून् परन्तप

कुन्ती पुत्र अर्जुन को उपदेश करते हुए जीवन रथ के सारथी बने हुए महान नेता कृष्ण ने कहा था कि शत्रुओं को तपाने वाले वीर पार्थ ! धर्म, जाति, समाज, संस्कृति, न्याय, देश मानवता के इन शत्रु बने हुए कौरवों को मार दे । इनके छक्के छुड़ा दे ताकि धर्म, न्याय द्रोहियों को पता लगे कि सत्य का स्थान अन्याय से बहुत ऊंचा है। भगवान् कृष्ण के वैदिक राजनीति से भरे वीर संदेश को सुनकर अर्जुन ने व्यामोह को दूर करके कुरुक्षेत्र के महाभारत संग्राम में वह अमर कार्य किया, जो आज भी जीवन में चेतना भर देता है । धनुष की टंकार, बाणों की ऊंची गुंजार तथा वीरता की ललकार आज भी कुरुक्षेत्र में जाने पर मानस के कानों से सुनाई दे रही है। महाभारत में गीता का यह संदेश अमर है । जब कभी राष्ट्र की जनता के अर्जुन को शत्रुओं से [illegible] तभी गीता का यह [illegible] में जीवन में जोश भर देता है । आज भी राष्ट्र की भूमि पर चीनी अन्याय से भरे [illegible] ने आक्रमण किया है। मनुष्य के रूप में ये भेड़िये अपने नुकीले दांत निकाले भारत की शांतिमयी जनता को खाने दौड़े हैं । इस युग के ये दुर्योधन, दुश्शासन, दुर्मुख, दुर्बुद्धि, जयद्रथ तथा जरासंध अपने बलमद में भरे हुए [illegible] का ताना बाना बुनकर भारत के धर्मी सुशील, पराक्रमी पाण्डव पुरुषों को मारना चाहते हैं । माऊ के इन चेलों, माऊ के इन मुरीदों, चीन के चमचों तथा चीनी कम्यूनिज़म के इन कायरों को शायद अपनी जनसंख्या पर स्वयं चालित हथियारों, तिब्बत को हथिया लेने के बाद बढ़े हुए अभिमान, छल भरी चालों, कपटपूर्ण कामों पर भारी मद है। इन की आंखों अन्याय की सुरा के नशे से लाल हैं। इनको न धर्म पर आस्था है, न परमेश्वर से प्रेम है, न सत्य से स्नेह और न मित्रता का का मान है। केवल स्वार्थ और अन्याय का ही आश्रय है। ये कौरव अपने कुत्सित कार्य क्षेत्र में उतरे हैं।

किन्तु वेद के प्यारे, आर्य सभ्यता के प्रतीक भगवान् कृष्ण का अर्जुन को दिया गया वीरता का सन्देश आज भी सारे राष्ट्र की धमनियों में रक्त के समान चक्कर काट रहा है। आज भी सारे देश वासियों के कानों मे कौरवों के महान अभिमान को चूर २ कर देने वाले महाभारत के सन्देश के ओजस्वी शब्द कानों में गूंज रहे हैं कि परन्तप ! इन सारे शत्रुओं को मार दे। इन को धकेल कर सत्ता ही समाप्त कर दे। इन का मान मर्दन कर के जयलाभ कर। इन अत्याचारियों के गर्वनशे को उतार दे। अर्जुन ने अपने पैने २ बाणों से जो चमत्कार दिखलाया, वह आज भी अमर तथा अमिट है। कायरों को वीर, सोते वालों को जागृत करने वाला, ठहरों को दौड़ाने वाला सन्देश गूंज रहा है। चीन के नीचता पूर्ण आक्रमण में आज भी सारे भारत जन जीवन के वीर अर्जुन को यही सन्देश सुनाया जा रहा है। वीरपुरुषों ने यही सन्देश सुन कर वीरता के कार्य किये थे। वीर शिवा, राणा प्रताप, बैरागी, छत्रसाल, झांसी ने इसी वीर पथ पर आचरण किया। देवदयानन्द ने स्वयं संन्यासी धर्म का पालन करते हुए भी सारे समाज को यही वीरता भरा राष्ट्रिय उपदेश दिया था। भारत के वीर अर्जुन ! तू वीर है। तेरी वीरता की धाक सारे विश्व पर बैठी है। अर्जुन बन कर अपना गगन भेदी शंख बजाता चल। अपने शस्त्रभण्डार से, पैने २ अग्नि बाणों से चीन के इन कायरों की, चीन के कुत्सित साम्यवाद की, शत्रु रूपी भेड़ियों की कबर नेफा और लद्दाख में बना दे। उस कुरुक्षेत्र के समान यह कुरुक्षेत्र भी तेरे जय घोषों से गूंज उठे। इन शत्रुओं को मार दे—त्रिलोकचन्द्र

सभा मन्त्री जी का सन्देश

आर्य प्रादेशिकसभा पंजाब जालन्धर के महामन्त्री श्री सन्तोष राज जी ने सभा से सम्बंधित अपने सारे समाजों तथा अन्य सारे आर्यों को कर्तव्य निर्देश करने वाला सन्देश देते हुए कहा है कि भारत की इस संकटकालीन परिस्थिति में वैसे तो सारे सज्जन अपने राष्ट्रीय धर्म का पालन कर रहे हैं। फिर भी विशेष ध्यान दे कर इस समय तन-मन-धन से पूरा २ सहयोग देवें। समाजें सामूहिक रूप से अधिक से अधिक धन स्वयं देकर दूसरों से भी एकत्रित करके राष्ट्र रक्षा कोष में भिजवाते रहें। आर्य समाज के जीवन में देशभक्ति का भाव कूट २ कर भरा हुआ है। राष्ट्र के इस संकट में आर्यसमाज की अपनी सारी संस्थाएं बढ़ चढ़ कर भाग लेती हुई अपने कर्तव्य-पथ पर चलती जावें।

रक्षामन्त्री का स्वागत

भारत के रक्षामन्त्री श्री यशवन्तराव बलवन्त राव जी चव्हाण का देहली के सारी समाजों की केन्द्रीय आर्यसमाज ने बड़े समारोह से स्वागत करते हुए ५१ हजार रुपये की थैली रक्षा फंड में भेंट की तथा सोने की बनी तलवार भी अर्पण की। आर्यसमाज का यह जनसमारोह बड़ा ही शानदार था। भारी भीड़ उपस्थित थी। सार्वदेशिक सभा के प्रधान स्वामी [illegible] तथा पण्डित प्रकाशवीर जी शास्त्री संसत्सदस्य ने भी राष्ट्ररक्षा कार्य में आर्यसमाज के कार्य में दिये जा रहे पूर्ण सहयोग पर प्रकाश डाला। जनता में आर्यसमाज की राष्ट्रभक्ति पर सदा से मान रहा है।

शराब बढ़ रही है

राष्ट्र विभाजन के बाद पंजाब ने कई बातों, कार्यों में बड़ी उन्नति की है जिसे देख कर बड़ी प्रसन्नता होती है। यह प्रान्त वैसे भी भारत का वीरद्वार है। इस के निवासी जीवन से भरे, सदा प्रसन्न, परिश्रमी तथा जोश से पूर्ण हैं। किन्तु इस में बढ़ती हुई शराब पीने की प्रवृत्ति को देख सुन पढ़ कर मन अतीव दुःखी होता है। इस व्यसन में धन नष्ट होने के साथ २ जीवनस्वास्थ्य का भी ह्रास होता है। इस बढ़ती हुई बुराई रूपी बीमारी को रोकना प्रत्येक का विशेष कर्तव्य है। आर्य समाज एवं धार्मिक, सामाजिक संस्थाओं को प्रान्त में शराब पीने के दुर्गुणों पर प्रकाश डाल कर इस तीव्र प्रवाह को रोकने में भा[ग] प्रचार करना चाहिए।

(शेष पृष्ठ ६ पर)

सब दिन होत न एक समाना!

(ले०—श्री पिशोरीलाल जी 'प्रेम' रेणुका जिला सिरमौर (हि०प्र०)

(रोमांचकारी-गल्प)

रोगी की अवस्था अच्छी नहीं, पर घबराओ नहीं, इलाज ठीक हुआ तो रोगी बच जायगा, यह कहते हुए डाक्टर ने एक पर्ची लिखकर रामू के हाथ में दी। जिसमें कुछ दवाइयां लिखी थीं। रामू ने तीन रुपये फीस के डाक्टर के हाथ में दिए। इसकी बड़ा जरूरत है कहते हुए डाक्टर ने हाथ जेब में डाल दिए और चलता बना।

रामू के पास केवल यही तीन रुपये थे जो-कि उसने डाक्टर को फीस में दे दिए। अब वह सोचने लगा—कि दवाँ कैसे लाऊं। डाक्टर ने दूध और फल देने को कहे हैं वो कहां से आएंगे, मेरे पास तो एक फूटी कौड़ी भी नहीं। एकदम उसे ख्याल आया, वो उठा, और चल पड़ा। चलते-चलते रामू मन ही मन में सोच रहा है, उनकी कपड़े की दुकान है कारोबार अच्छा चल रहा है किसी वस्तु की कमी नहीं है क्या वह अपने भतीजे के इलाज के लिए कुछ भी मदद नहीं देगा? सोचते २ रामू भाई के घर जा पहुंच गया। माधव, माधव रामू ने बाहर से पुकारा, कौन यह हैं माधव ने अन्दर से पूछा। रामू हूं आप का भाई, क्या मेरी आवाज भी नहीं पहचानते। माधव दरवाजा खोला भाई को घर के अन्दर ले गया। विमल की राजी खुशी का पूछा। रामू की आंखों से आंसू बहने लगे, दिल भर आया ...कनी कठिन हो गई, मन को ...करके बोला—विमल बीमार बहुत बीमार है, डाक्टर ने कहा, इलाज ठीक होगा तो बच जायगा। कुछ दवाईयां लिखकर दूध और फल देने को कहे मगर लाऊं कहां से, पैसा तो खाने को भी नहीं है। विमल बच्चे के लिए सहायता चाहिए।

माथे पर बल डालकर माधव बोला—मैं बाल बच्चेदार आदमी हूं। अपना गुजारा भी कठिनता से होता है इतने में माधव की स्त्री बोली हाथ पर हाथ रखकर बैठे रहते हो कुछ काम धाम करते तो दो पैसे तुम भी कमा लेते।

उनका ऐसा रूखा जवाब सुनकर, रामू के मन को बड़ी ठेस पहुंचा। रामू के लिए वहां एक पल भी ठहरना कठिन हो गया मुंह से एक शब्द भी कहे बिना उल्टे पांव बाहर निकल आया।

रामू के पांव भारी हो गए। दो कदम चलना भी दूभर हो गया किसी प्रकार अपने को सम्भालते हुए रामू धीरे-धीरे धनपत के घर की ओर चल पड़ा, मार्ग में फिर सोचने लगा—कहीं धनपत मेरा बचपन का साथी है अच्छी तनख्वाह लेता है वह अवश्य मेरी सहायता करेगा।

इसी प्रकार आशा और निराशा के भंवर में फंसा हुआ रामू धनपत के घर के दरवाजे तक पहुंच ही गया। दरवाजा खुला ही था धनपत सामने ही बैठा हुआ था रामू सीधा अन्दर चला गया और धनपत के पास बैठ गया। बहुत उदास दिखाई देते हो क्या बात है विमल की पढ़ाई तो ठीक चल रही है न, धनपत ने पूछा। रामू का दिल धड़क रहा था, लड़खड़ाती हुई जबान से रामू ने जवाब दिया, पढ़ाई क्या, विमल के तो बचने की आशा भी नहीं, बहुत ज्यादा बीमार है डाक्टर ने कहा है—कि इलाज ठीक हुआ तो बच पाएगा। मगर इलाज कैसे लाऊं मेरे पास तो कुछ भी नहीं है धनपत कुछ भी नहीं है। इतना कह कर रामू सिसकियां भरने लगा।

क्षमा करना रामू बहुत शर्मिन्दा हूं आप के सामने, क्या करूं, पिछली तनख्वाह रही नहीं और इस माह की अभी आई नहीं।

रामू ने इन शब्दों को सुना तो उसकी आंखों के आगे अन्धेरा छा गया। पैरों के नीचे से जमीन खिसकने लगी। रामू को ऐसा महसूस हुआ—कि अब उसका बच्चा नहीं बच सकेगा। चोट खाए हुए दिल को थामते हुए रामू वहां से भी निराश लौटा।

निराशा, चिन्ता और दुख के महासागर में डूबे हुए रामू को आशा की एक और किरण दिखाई दी, लखपत राय की कोठी, लखपतराय जी नगर के सबसे बड़े धनी व्यक्ति आदमी थे। उनका आढ़त का बहुत बड़ा कारोबार था। बाजार के चौधरी, पंचायत के सरपंच, और कई सभाओं के प्रधान थे।

अपनी कोठी में लखपतराय जी तकिया लगाए गदेले पर बैठे हुए थे। रामू वहां पहुंचा, अपना दुखड़ा रोया, बच्चे की खतरनाक हालत बताई। हाथ जोड़े, पांव पकड़े, भगवान का वास्ता दिया और मदद मांगी।

रामू के इतना गिड़गिड़ाने पर भी सेठ जी का पाषाण हृदय न पिघला। उसने डांट कर कहा-जाओ सुबह से शाम तक ऐसे कई भिखमंगे आते रहते हैं। मैं किस किस को मदद करूं।

रामू को बाहर धकेल दिया गया। रामू का दिल जोर जोर से धड़कने लगा, सर चकराया, शरीर कांपने लगा, टांगें लड़खड़ाई और धड़ाम से पृथ्वी पर गिर गया। एक नवयुवक जो नौकरी की आशा से सेठ जी की दुकान पर आया था, सेठ जी के इस दुर्व्यवहार को देखकर बिना कुछ कहे रामू के साथ ही कोठी से बाहर निकल आया था। रामू बेहोश पड़ा था नवयुवक दुख की तरह उसके पास बैठा था। रामू के होश आने पर युवक ने उसे धैर्य दिया और उसे कैमिस्ट की दुकान पर ले गया, दवाई लेकर रामू को दी और उसे घर भेज दिया कैमिस्ट ने दवाई की कीमत मांगी। युवक ने बड़ी नम्रता से सारी रामकहानी कह सुनाई और कहा-मेरे जेब में एक पैसा तक नहीं। प्रातःकाल से भूखा हूं। अभागे का दुख सहन न कर सका। इसीलिए ऐसा किया। आप मुझ पर विश्वास करें मैं दवाई की कीमत अवश्य दे दूंगा। कैमिस्ट भला आदमी था। युवक की सहानुभूति को देख कर और उसकी बातों से प्रभावित होकर उसे जाने दिया।

रामू मेहनत मजदूरी करके जो कुछ कमाता विमल के इलाज पर खर्च कर देता था स्वयं भूखा रहकर भी विमल को दूध और फल देने में कोई कमी न रखता था। विमल तो अच्छा हो गया, परन्तु कड़ा परिश्रम करने और खुराक न मिलने से रामू बहुत कमजोर हो गया। विमल बीमारी के कारण मैट्रिक की परीक्षा में न बैठ सका। परन्तु अब तो पढ़ाई का प्रश्न ही नहीं था, अब तो रोटी कमाने की चिन्ता थी, इसलिए विमल अपने पिता को साथ लेकर अपने नगर से दूर किसी और नगर में चला गया वहां रेढ़ी पर सब्जी बेचना आरम्भ कर दिया। कड़े परिश्रम और ईमानदारी के कारण, धीरे-धीरे जब उसका काम बढ़ने लगा तब उसने वहीं पर ही सब्जी की दुकान खोल ली। अब कुछ रुपया कमा लिया तो सब्जी की दुकान छोड़कर बड़े बाजार में कपड़े की दुकान खोल ली।

(क्रमशः)

ऋषि ऋण कैसे चुकायें ?

(श्री बूटाराम जी, रिटायर्ड कैप्टन, मन्त्री जिला वेद प्रचारिणी सभा, होशियारपुर)

महर्षि दयानन्द ने वेदों का यथार्थ रूप प्रस्तुत करके ससार पर बडा भारी उपकार किया है। वह वेदों को ही आधार रखकर सारी मानव जाति को एक प्रेम लड़ी में पिरोना चाहते थे। उन्हीं के आधार पर उन्होंने दुनिया को एक स्वर्णिम नियम (फारमूला) दिया 'कि सब से प्रीति पूर्वक धर्मानुसार यथा-योग बरतना चाहिए।' वही एक ऐसे महापुरुष हुए हैं जिन्होंने ससार का उपकार करना' अपना एक निश्चित लक्ष्य और उद्देश्य घोषित किया। केवल घोषित ही नहीं किया अपितु 'सब की उन्नति में अपनी उन्नति' मानते हुए अपने इस लक्ष्य की पूर्ति के लिये 'आर्य-समाज' के रूप मे एक सुव्यवस्थित सुसगठित प्रजातान्त्रिक सघ की स्थापना भी की। महर्षि का उत्तराधिकारी होने के नाते अब वेदो को उनके यथार्थ रूप में ससार के सामने प्रस्तुत करने का काम आर्य समाज के कन्धो पर है, दूसरे शब्दों में आर्य समाज पर यह एक बडा भारी ऋण है। आर्यसमाज को सोचना होगा कि वह इस ऋण से कैसे उऋण हो सकता है।

इस सम्बन्ध मे मैं आर्य पुरुषो आर्यसमाज तथा आर्य प्रतिनिधि सभाओं के विचार के लिए कुछ निवेदन करने की आज्ञा चाहता हूं।

इस समय तक के किए गए आर्य समाज के कार्यों को सन्मुख रखते हुए बहुत से लोगों की दृष्टि में ऋषि दयानन्द को एक सम्प्रदाय के महान पुरुष अथवा प्रवर्तक से अधिक दर्जा कदाचित नहीं मिल पाया। प्राय. उन्हें 'हिन्दु समाज' के एक सुधारक धार्मिक, क्रांतिकारी नेता का ही दर्जा दिया जाता है। यह बड़े खेद का विषय है।

ऋषि किसी सम्प्रदाय के तो क्या किसी जाति विशेष के भी नहीं थे, यहा तक कि वह हिन्दु जाति के वर्तमान और इसकी प्रचलित रूढ़िवादी मान्यताओं और परम्पराओं के इतने ही [illegible] जितने [illegible] के। वह हिन्दु जाति का कोई विशेष पक्ष-[illegible] नहीं करते थे— अपितु इसको भी उसी स्तर पर रखते थे जिस पर औरों को। हा इतना जरूर था कि वह समस्त मानव-जाति के हितैषी होने के नाते हिन्दू जाति का भी इतना हित चाहते थे जितना औरो का कुछ अन्तर यदि रहा भी हो तो १९-२१ का ही समझिए अर्थात नाम-मात्र का।

यह हमारी वर्तमान नीति और कार्य पद्धति ने तो उन्हे हिन्दू जाति का ही एक महापुरुष बना दिया है, इस से अधिक कुछ नहीं। न राष्ट्र ने ही उन्हें वह उपाधि प्रदान की है जो उन्हें मिलनी चाहिए थी वह राष्ट्रीयता के जन्मदाता थे। इस नाते से यदि महात्मा गाधी राष्ट्रपिता कहला सकते हैं तो वह पितामह कहलाने के अधिकारी हैं।

ऋषि का ऐसा आशय था कि वैदिक धर्म सर्व मानव जाति का धर्म बन जाये क्योंकि वह प्रत्येक नर नारी की जन्म सिद्ध सम्पत्ति है। जैसे ईश्वर ने जलवायु, पृथ्वी, प्रकाश, अन्न आदि सब के लिये रग, नसल, स्थान आदि के भेद-भाव के बिना समान रूपेण प्रदान किया है, उसी प्रकार वैदिक धर्म भी सब के लिये है।

अनेक कारणो से आर्य समाज अभी तक वैदिक धर्म के सच्चे स्वरूप को विश्वव्यापी बनाने मे उतना सफल और समर्थ नहीं हुआ है जितना उसे होना चाहिये था फिर भी निराश और हताश होने की अपेक्षा प्रत्येक विचारवान आर्य नर-नारी का वर्तमान दशा पर गहरी दृष्टि डालते हुए 'असली' कार्य का सूत्रपात करने की तरफ आर्य जनता का ध्यान आकृष्ट करना चाहिए और अपने अपने सुझाव प्रस्तुत करने चाहियें। मैं अपनी तुच्छ बुद्धि के अनुसार कुछ सुझाव प्रस्तुत करने की आज्ञा लेता हूं—

प्रचार विभाग की स्थापना

मेरे विचार में वर्तमान हालत में [illegible] उठाये जायें वे एकदम क्रांतिकारी होने चाहिये जिस मे देश विदेस मे सारी मानवजाति का ध्यान उनकी ओर खिच जाये और वह है सर्वप्रथम एक जबरदस्त ऋषि के आशय अनुसार वेदो शास्त्रों और आर्य ग्रन्थों मे से ऐसे स्थल चुने जायें जो सर्वत्र समान तौर पर लागू हो और जो सर्व साधारण के जीवन निर्माण, चरित्र निर्माण मे सहायक हों और साथ ही वैदिक विचारधारा (ऋषि के सिद्धातों के अनुसार) के पोषक हों। उच्च कोटि का दार्शनिक साहित्य भी तैयार किया जाये जो ससार भर की दार्शनिक विचारधाराओ का सफलता पूर्वक मुकाबला करने वाला हो। यह काम इतना विस्तृत तौर पर किया जाये कि देश की प्रत्येक भाषा और लिपि में यह साहित्य पुष्कल मात्रा में वितरित किया जा सके। इसी प्रकार विदेशो की बडी-बडी प्रसिद्ध भाषाओं मे ऐसा ही किया जाए।

इनके साथ-साथ महर्षि का जीवन चरित्र भी बड़े उत्तम और रोचक ढग मे प्रत्येक भाषा में निकाला जाए। और उसे अन्तर्राष्ट्रीय प्रसारण (International publicity) के ढग पर उनका निर्माण और वितरण किया जाए। याद रहे जब तक ऋषि के जीवन और चरित्र पर दुनिया की आस्था और श्रद्धा नहीं बैठेगी तब तक उनके काम और नाम पर किए गए कार्य की भी वह कदर, कीमत नहीं होगी जो हम सब देखना चाहेंगे। इसलिए इस विषय पर विशेष ध्यान देना होगा।

ऐसा पब्लिसिटी विभाग खोलने और चलाने के लिए सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा देश विदेश की सभी प्रतिनिधि सभाओं, आर्य समाजों और भिन्न भिन्न आर्य सस्थाओं को सबल सहयोग देना चाहिए और इसे प्रत्येक अन्य कार्य पर प्राथमिकता (तरजीह) देनी चाहिए और धन की सारी सम्भव शक्ति लगा देनी चाहिए। इस योजना पर विचार करने के लिए सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा को एक गोष्ठी बुलानी चाहिए और एक क्रम बद्ध योजना तैयार करके एक पब्लिसिटी विभाग स्थापित करना चाहिए। उस मे चोटी के विद्वान् और लेखक हो जिन के निर्वाह का ऐसा प्रबन्ध हो कि उनको इसकी जरा भी चिन्ता न रहे और वह निश्चिन्त मिशनरी स्प्रिट से अपने कार्य मे लगे रहें। इस कार्य के लिए लाखों नहीं करोड़ों की जरूरत होगी। पर आर्यसमाज की सामूहिक शक्ति के सामने यह कोई बड़ी बात नहीं।

इस योजना पर और ब्यौरेवार विचार करना इस लेख का उद्देश्य नहीं है। जो गोष्ठी आर्य सार्वदेशिक प्रतिनिधि बुलाये वह इसके प्रत्येक पहलू पर विचार करे।

क्या मैं आशा करू कि आर्य-समाज और देविया इस मेरे निवेदन पर अपने विचार प्रकट करने की कृपा करेंगे।

मेरा एक दूसरा सुझाव यह भी है कि सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा तथा अन्य प्रतिनिधि सभाए व बडी बडी समाजें अपने-अपने यहा एक दयानन्द अद्भुतालय (म्यूजियम) खोलें जिस मे गाधी म्यूजिम नई देहली के ढग पर ऋषि के सभी चित्र, उनके रचे ग्रन्थ वेद और शास्त्र जिनको ऋषि ने मान्यता दी, रक्खे जाए। स्वामी जी के सम्बन्ध मे बडे लोगो की राय खासतौर पर प्रदर्शित की जायें।

महर्षि को एक सार्वभौमिक आचार्य (वर्ल्ड टीचर) के रूप में दुनिया के सामने प्रस्तुत कीजिये। इसी में हमारी सफलता का भेद छिपा है। हो सके तो यू० एन० ओ० में या उसके निकट एक अपना विभाग खुलवाइए। बड़े काम करने के लिए बड़े स्वप्न ही लेने होते हैं। इसे (यूटोपियन स्कीम) कह कर न टाल दीजियेगा।

प्राचीन भारतीय संस्कृति का एक पृष्ठ

(लेखक—श्री भक्तराम जी अफ्रका वाले जालन्धर)

****

आर्य सभ्यता के आदिम राजनीतिज्ञ मनु भगवान् कहते हैं कि—

एतद्देश प्रसूतस्य सकाशादग्र जन्मन ।
स्वं स्व चरित्र शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्व मानवा ॥
(मनुस्मृति) २।२०)

अर्थात् आर्यावर्त्त के ब्राह्मणों से समस्त संसार के मनुष्य सदाचार की शिक्षा प्राप्त करें। वस्तुतः भारतवर्ष सब देशों का शिक्षा केन्द्र था। उसके महान् उत्कर्ष के कारण ही उसकी कीर्ति चारों ओर प्रसारित थी। इसीलिए उसे पुण्य भूमि, ऋषिभूमि और स्वर्णभूमि नामों से स्मरण किया जाता है। प्राचीन आर्यों ने अपनी वैदिक शिक्षा-दीक्षा और आचार-व्यवहार से ही सब जातियों को अधिकृत किया हुआ था।

उस समय वैदिक राज्य स्थापित था। सुशासन का इस से बढ़कर और क्या प्रमाण मिल सकता है कि राजा अश्वपति ने एक अवसर पर गर्वपूर्वक कहा था—

न मे स्तेनो जनपदे न कदर्यो न मद्यप.।
नाना हिताग्निर्नाविद्वान स्वैरी स्वैरिणी कुतः॥
(छान्दोग्य उपनिषद्)

अर्थात् मेरे राज्य में न चोर है, न कायर है, न मद्यपान करने वाला है, न अग्निहोत्र न करने वाला है, न मूर्ख है, न व्यभिचारी है और न ही व्यभिचारिणी है। क्या यह आदर्श राज्य नहीं? उस यथार्थ शासन द्वारा हम विश्व जगत् के गुरु तो कहलाये ही परन्तु मैं तो एक पग आगे जाता हूं और वह यह कि जब हम पराजित हुए तो भी हम विजयी थे।

भारत पर पहिला आक्रमण यूनान के बादशाह सिकन्दर का था। वह घर से ही भारतवर्ष से कुछ शिक्षा उद्देश्य से आया था। जब वह भारत के लिए प्रस्थान करने लगा तो उसने अफलातून से पूछा कि वह उसके लिए यहां से क्या उपहार ले जाए। अफलातून ने उसे एक दार्शनिक लाने के लिए कहा। सिकन्दर जब राजा पोरस को परास्त कर चुका तो उसने एक फिलासफर क्रय करने की ठानी। अपने मन्त्री (दूत) को पहिले नगर में फिलासफर लाने के लिए भेजा। लोगों ने उसे हसते हुए बताया कि दार्शनिक नगरों में नहीं रहा करते और एक दण्डी स्वामी का पता दिया। इस पर वह महल पूछने लगा परन्तु उसे सूचित किया गया कि दण्डी स्वामी वन में निवास करते हैं। वह वहां गया। दण्डी स्वामी कुटिया के बाहिर धूप में बैठे हुए थे। उसने इन से कहा—'सिकन्दर आप को स्मरण करते हैं।' दण्डी जी से उत्तर न पा कर फिर बोला—सिकन्दर बादशाह आप को बुला रहे हैं। अब की बार भी जब दण्डी जी से उत्तर न मिला तो क्रुद्ध हो वह बोला—'सिकन्दर बादशाह जिन्होंने राजा पोरस को पराजित किया है, आपको शीघ्र बुला रहे हैं। इन शब्दों की भी उन्हों ने परवाह नहीं की और कहा—'मैं सिकन्दर को मिलना नहीं चाहता। यही उत्तर दूत ने सिकन्दर को सुना दिया। सिकन्दर दण्डी की निर्भयता से आश्चर्य चकित हो गया और वह अपनी तलवार म्यान में रख कर नंगे पांव स्वामी के दर्शनों के लिए चल पड़ा। उन की सेवा में उपस्थित हो कर उसने नमस्कार किया और उपदेश के लिए प्रार्थना करने पर उन्हों ने उपदेश दिया। जब सिकन्दर उपदेश से कृत कृत्य हो कर विदा होने लगा तो शिष्टाचारानुसार उसने कहा—'मेरे योग्य सेवा हो तो निःसकोच आज्ञा दें।' दण्डी स्वामी ने उत्तर दिया—जो ईश्वर तुम्हें देता है वह दाता सब का पालक पोषक है। तुमने कुछ देना तो क्या है परमेश्वर की दी हुई, धूप को भी रोक कर खड़े हो। उसे छोड़ दीजिये। पाठक विचार करें जिस सिकन्दर ने संसार पर विजय प्राप्त कर ली थी वह भारत के एक साधु से [illegible] हो गया। ऐसी थी हमारे पूर्वजों की महिमा। परमात्मा करे कि [illegible] प्राचीन गौरव प्राप्त करें।

हमारी [illegible] है कि—

ऋषियों के ओ जमाने इक बार फिर भी आजा।
भारत को फिर भी अपनी पहिली झलक दिखा जा॥

जागो भारत के सुपूत जननी ने तुम्हें [illegible]

(श्री शरर जी एम० ए० आर्य कालिज पानीपत)

जागो जागो भारत जननी की प्यारी सन्तान उठो,
ओ नलवे के शौर्य जाग ओ राणा के अभिमान उठो।
शेवा के चातुर्य सम्भल बैरागी के अरमान उठो,
आज चुनौति देता है शत्रु, वक्षस्थल तान उठो।
तुम्हें हिमालय की चोटी पर दुश्मन ने ललकारा है!

समय आगया है वीरों की सिंह तुल्य हुंकार जगे,
अर्जुन के गाण्डीव धनुष की गगनभेदी टंकार जगे।
राणा सांगा का शत्रु सेना पर भीषण वार जगे,
लक्ष्मीबाई की बलखाती चमचमाती तलवार जगे।
आज हिमालय आग उगलता है हर कण अंगारा है!

वृद्ध हिमालय शुभ्र हिमालय वह प्रहरी भारत मां का,
सजग खड़ा है वक्षस्थल ताने कब से जो रण बांका।
आज उसी की धवल कीर्ति को पापी शत्रु ने झांका,
उठो चखा दो मजा उसे जिसने भारत बल कम आंका।
प्रहरी की आड़े में रक्षा करना फर्ज हमारा है!

जो जननी की करे न रक्षा पुत्र नहीं गद्दार है,
ऐसे पापी के जीवन पर युग युग तक धिक्कार है।
वीरो आज तुम्हारा दिन है मृत्यु का त्योहार है,
मन में साहस ज्योति नेत्रों में हाथों में तलवार है।
जीते तो हैं राज्य, मृत्यु में भी अपवर्ग तुम्हारा है!

तलवार और विचार

(पृष्ठ ३ का शेष)

युद्ध के दो मोर्चे होते हैं-तलवार और विचार। हमारे सैनिक मोर्चों में लड़े हुए शत्रुओं की पाशविक शक्ति को रोकने तथा मार भगाने में दिन रात एक करते हैं। किन्तु देश में विचार का भी दूसरा आवश्यक पहलू है जिस के द्वारा जनता में भावना बनी रहती है। मन के विचारों में स्थिरता तथा धीरज का बड़ी आवश्यकता होती है। विचारों के मोर्चों की सफलता पर तलवार का जौहर भी शानदार होता है। [illegible] विचारों के इस पहलू को [illegible] रूप में साथ रखना चाहिए।—सं०

[illegible] कपाल मोचन पर प्रचार की धूम

(अध्यक्ष श्री अमरसिंह जी अम्बाला करनाल मंडल)

कार्तिक की पूर्णिमा पर प्रति वर्ष होने वाले कपाल मोचन महा मेले पर पूर्व वर्षों की भांति इस वर्ष भी अम्बाला करनाल वेद प्रचार मण्डल (आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा पंजाब की ओर से ६ से ११ नवम्बर तक विशाल प्रचार कैम्प लगाया गया जिस में निरन्तर ६ दिन तक दिन रात प्रचार का कार्य क्रम बड़ी धूमधाम से चलाया गया। स्मरण रहे कि इस मेला पर प्रतिवर्ष प्रचार शिविर इसलिए लगाया जाता है कि इस अवसर पर भारत के कोने-कोने से भिन्न भिन्न विचार धारा के नर-नारी लाखों की संख्या में एकत्र होते हैं। इस मेला पर प्रायः सभी धार्मिक एवं राजनितिक पार्टियों की ओर से अपनी २ विचारधारा का प्रचार होता है। इसके अतिरिक्त ईसाई लोग भी भोली भाली जनता को अपने चंगुल में फंसाने का प्रयास करते हैं। इसलिए ऐसे स्थान पर वेद का पावन सन्देश अधिक से अधिक जनता तक पहुंचाना सभा अपना कर्तव्य समझती है। इस मेला प्रचार की व्यवस्था प्रतिवर्ष श्री पं० अमर सिंह आर्योपदेशक (अध्यक्ष अम्बाला करनाल वेद प्रचार मण्डल) और उनके मण्डल के सभी सज्जन मिल कर करते हैं।

प्रचार का कार्य-क्रम प्रतिदिन इस प्रकार से चलता था—

७ से ८॥ तक हवन यज्ञ तत्पश्चात १० बजे तक प्रार्थना, ईश्वर भक्ति से ओत-प्रोत भजन और अध्यात्मिक उपदेश होते थे। १० से १२ बजे तक बड़े प्रचार मंच पर देश भक्ति आदि के भजन और उपदेश होते थे। तत्पश्चात दोनो समय ऋषि लंगर का प्रबन्ध था।

मध्याह्नोत्तर १॥ बजेसे ५ बजे तक खुला प्रचार होता था, जिस मे हजारों की संख्या मे जनता भाग लेती थी। इसी प्रकार रात्रि में भी ७॥ बजे से प्रायः ११॥ बजे तक धूमधाम से प्रचार चलता रहता था।

इस प्रकार प्रचार की इन सभी विधियों का जनता पर स्थायी और महत्व-पूर्ण प्रभाव पड़ा। सारे मेले मे आर्य समाज और आर्य प्रादेशिक सभा के नाम की दुंदुभी बज उठी॥

आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा की ओर से पधारने वाले उपदेशको और प्रचारक महानुभावों के पुरुषार्थ से मेला प्रचार सम्पन्न हुआ—

मेले में सहयोग देने वाले निम्न सज्जनों का नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। आर्य समाज माडलटाऊन यमुना नगर आर्य स्त्री समाज माडल टाऊन यमुना नगर, श्री सेठ चमन लाल जी यमुना नगर और श्री बाबू मदन लाल जी एड-वोकेट करनाल का नाम विशेष उल्लेखनीय है। सभा की ओर से सभी दानी महानुभावों का हार्दिक धन्यवाद जिन्होंने सभी प्रकार का दान दे कर कृतार्थ किया है।

समस्त आर्य समाजों वा संस्थाओं से सानुरोध अपील

देश की वर्तमान संकटकालीन स्थिति में आर्य समाज जैसी राष्ट्रीय संस्था का क्या कर्तव्य है इसे आप भली प्रकार जानते हैं और यथा सम्भव इसकी पूर्ति भी आप कर रहे हैं तो भी मैं सभा की ओर से आप से बलपूर्वक अनुरोध करता हूं कि अपनी प्यारी मातृभूमि की रक्षा के परम पुनीत कार्य मे आर्य समाजें, आर्य संस्थाएं और आर्य भाई, तन मन धन व रक्त दान से राष्ट्ररक्षा कोष में सहायता देकर धर्म पालन करें। महर्षि दयानन्द सरस्वती जी का कोई भी सच्चा अनुयायी देशभक्ति से वंचित न रहे।

संतोषराज मंत्री
प्रादेशिक सभा जालन्धर

लुटाये चलो

(रचियता—श्री राजेंद्र जी 'जिज्ञासु' M. A. धुरी)

देश सेवा मे जीवन लगाये चलो। देश पर अपना सब कुछ लुटाये चलो।
दांत खट्टे करो दुश्मनों के अभी। कौम की लाज मिलकर बचाओ सभी॥
देश पर खून तक भी बहाये चलो. ....
किस की हिम्मत जो भारत से झगड़ा करे। किस की हिम्मत जो सन्मुख हमारे अड़े॥
तुम कदम से कदम को मिलाये चलो.. .
चीन पर अब जवाबी चढ़ाई करो—दंग दुनिया हो ऐसी लड़ाई करो॥
नाम तक चीनियों का मिटाये चलो ...
जिस ने छेड़ा है उसको नहीं छोड़ना। याद रखे जो ऐसा ही मुंह मोड़ना॥
ऋण शहीदों का आओ चुकाये चलो। देश पर अपना सब कुछ लुटाये चलो॥

आर्य जगत से अपील

यद्यपि इस संकट के समय में अपील करना उचित नहीं समझता था, क्योंकि समस्त आर्य जगत का तन मन धन देश पर आई विपत्ति को टालने में लगा हुआ है। परन्तु कस्टोडियन की ओर से मांगी जाने वाली भूमि सम्बन्धी ११००/- की धन राशि ने आर्य समाज प्रधाना मोहल्ला रोहतक के लिये एक संकट खड़ा कर दिया है। रोहतक नगर की एक दर्जन आर्य संस्थाओं में आर्य समाज प्रधाना मोहल्ला ही एकमात्र निर्धन आर्य मजदूरों की संस्था है, जिस में पिछले ११ वर्षीय जीवन में अभी तक न आंगन का फर्श लगवा सकी है और न पानी का नल। इसी प्रकार न कोई उल्लेखनीय कमरा। केवल आर्य-समाज के सदस्यों ने अपने त्याग और तप से दो तीन कोठड़ियां, एक यज्ञशाला तथा खाक मुरला भूमि का १०००/- मूल्य चुकाना आदि कार्यों को सम्पन्न करने मे समर्थ हो चुकी है। यदि समय पर आर्य समाज की एक कनाल भूमि का मूल्य तथा किराया कस्टोडियन को अदा न हो सका तो यह भूमि नीलाम हो जायेगी। इस भूमि के नीलाम होने पर आर्यसमाज को अकथनीय हानि होगी। अतः मैं आर्य जगत् के दानी महानुभावों से प्रार्थना करता हूं कि विपत्ति के टालने मे हमारी सहायता करें। ५०/- रु० या इससे अधिक दान देने वाले भाई बहनों का शुभ नाम शिला पर अंकित कराया जावेगा।

महर्षि सैनिकों की चरण धूली,—H No ६७१, B. ६, परमानन्द विद्यार्थी प्रताप मोहल्ला, आर्य गली, कार्यवाहक प्रधान रोहतक।

वैदिक आश्रम वेदव्यास, पानपोस में शुद्धि कार्य

वैदिक आश्रम, पानपोस मे एक शुद्धि समारोह किया गया था, जिस में ११४ ईसाईयो को शुद्ध करके वैदिक धर्म मे मिला दिया गया। वनवासियो के क्षत्रीय घोषित करके दसहरा उत्सव जिला का हैडक्वाटर सुन्दरगढ़ मे मनाने का आयोजन हो रहा है। जिस मे हजारो की संख्या मे वनवासी लोगो के भाग लेने की सम्भावना है १५ शुद्धि परिवारो के बच्चे जिन को पादरियो ने अपने स्कूल से पृथक कर दिया है आश्रम में स्वाध्याय कर रहे हैं। उनका भोजनादि व्यय हमें करना पड़ रहा है। शुद्धि परिवारो को समय समय पर अन्न आदि वस्तुएं एवं औषधियां वितरण की जा रही है। वनवासियों को जो प्रचार एवं सेवा कर बांटा जा रहा है उस से ईसाइयों के अन्दर खलबली मच गई है।

राष्ट्र रक्षाकोष में हमारी का योगदान

डी० ए० वी० हाईस्कूल कमाह देवी—[illegible] जी का जन्म दिवस चौ० दलबीरसिंह जी प्रधान डी० ए० [illegible] कमेटी होशियारपुर की अध्यक्षता में बडे समारोह के साथ मनाया गया। इस अवसर पर स्टाफ का एक-एक दिन का वेतन और विद्यार्थियों की ओर से धन मिला कर ३०१/- रु० राष्ट्रीय रक्षा कोष में दिया गया। उत्सव मनाते हुए अन्त में भाग लेने वाले चार विद्यार्थियों को पुरस्कार जो चार रुपये प्राप्त हुए थे वो उन्होंने रक्षाकोष में दान दे दिये। स्कूल के विद्यार्थी वर्ग और अध्यापक वर्ग प्रतिमाह रक्षाकोष के लिये धन दिया करेंगे।

रामप्रकाश सेठी—मुख्याध्यापक

आर्यसमाज हमीरपुर—आर्य समाज हमीरपूर ने अपने साधारण सत्संग दिनांक ११-११-६२ को निर्णय किया था कि राष्ट्रीय रक्षाकोष में एक सौ एक १०१/- रु० दिये जावें। इस निश्चय के अनुसार [illegible] महोदय जिला कांगड़ा की सेवा में १०१/- रु० भेंट कर दिये गए हैं।

गवर्नमेंट हायरसैकंडरी स्कूल ने लगभग १२००/- और गवर्नमेंट [illegible] हायर सैकण्डरी स्कूल ने ६००/- के लगभग एकत्र करके दिये हैं। डिवीजन ने एक लाख रु० से अधिक रक्षाकोष में दिये हैं।

डी ए. वी हायर सै० स्कूल दसूआ—डी० ए० वी० हायर सैकण्डरी स्कूल दसूहा के अध्यापक वर्ग तथा विद्यार्थियों ने एक हजार पैंतालीस रुपये राष्ट्र रक्षाकोष मे दिये।

स्कूल की फुटबाल टीम ने डिस्ट्रिक्ट में तथा डिविजन में शील्ड जीती। इसके लिये मास्टर बूटासिंह इन्चार्ज तथा सुरेन्द्रसिंह कैप्टेन का परिश्रम सराहनीय है।

निवेदक—चिरंजीवलाल ऋषि

डी. ए वी हाई स्कूल डराउस्सी (अंबाला)—इस स्कूल के छात्रों ने Inter School Music Contest के फैंसी ड्रैसिंग की प्रतियोगिता में भाग लिया। टिकटों की आमदनी जो हुई वह २००/- की नेशनल वार फन्ड में इन्सपैक्टर ऑफ स्कूल्स पटियाला डिवीजन की मारफत दे दी गई। इस से पहले भी ६५०/- नकद और एक सोने की अंगूठी (विवाह के समय की) श्री हैडमास्टर दीनानाथ जी भाटिया ने स्कूल की तरफ से डिप्टी कमिश्नर को १४-११-६२ को भेंट की। इस स्कूल के छात्रों, अध्यापकों और विशेषकर हैडमास्टर साहब का यह कदम दूसरे स्कूलों के लिए अनुकरणीय है।

डी० ए० वी० हायर सै० स्कूल करनाल—करनाल डी० ए० वी० हायर सैकण्डरी स्कूल ने इस से पूर्व [illegible] रु० देश के रक्षाकोष में भेजे हैं। और अब स्कूल के छोटी कक्षाओं के बच्चों ने और बड़ी कक्षाओं की विद्यार्थी मण्डली ने क्रम पूर्वक ०-५८ और ६४-७१ न पै चाय की दुकानें लगा कर इकट्ठा किया। J B T के छात्रों ने बूट पालिश करके ५६-८३ इकट्ठे किये। यह सारी रकम रक्षाकोष मे भेज दी गई है। श्री गिरिधारी लाल जी प्रिंसीपल देश सेवा के इस महान् यज्ञ मे बडा उत्साह दिखा रहे हैं।

आर्यसमाज माडल टाउन यमुनानगर (अम्बाला) का वार्षिक चुनाव—प्रधान—श्री चमनलाल जी सेठ, उपप्रधान—श्री [illegible] जी वोहरा तथा श्री मनोहरलाल जी साहनी, मन्त्री—श्री [illegible] जी महाजन उपमन्त्री—श्री प्रो० ह० दे० वर्मा कोषाध्यक्ष—श्री कृष्णलाल जी पाहुजा शिशु पाठशाला प्रबन्धक—प्रो ह दे वर्मा।

आर्यसमाज मण्डी—(१) २१.११.६२ ला० [illegible] जी के सुपुत्र के विवाह के उपलक्ष में उनके गृह पर वैदिक सत्संग हुआ।

(२) २२.११.६२ स्वर्गीय ला० देवीराम जी सराफ का वार्षिक स्मरण दिवस उनके गृह में मनाया गया। स्वामी कृष्णानन्द जी ने उनके जीवन पर प्रकाश डाला और श्रद्धांजली पेश की।

(३) भ्राता केवल राम जी ने महाशय [illegible] का विवाह वैदिक रीति से रहमसी ग्राम (५० मील [illegible]) [illegible] वहां की जनता पर इस विवाह का बहुत अच्छा प्रभाव पड़ा।

(४) आगामी वार्षिक निर्वाचन १६.१२.६२ को होगा।

(५) २८.११.६२ को हमारे सदस्य श्री [illegible] के पिता मा० हिम्मतराम जी का देहान्त हुआ। श्री भ्राता केवलराम जी ने अन्त्येष्टी संस्कार वैदिक रीति से करवाया और स्वर्गीय मास्टर जी की आत्मा को शान्ति प्रदान करने की प्रार्थना की गई।

सैन्ट्रल बोर्ड आफ हायर एजूकेशन—भारत की सरकारी सीमा पर लड़ने वाले सैनिकों के निमित्त राष्ट्र भाषा के [illegible] साहित्य की ४०५० पुस्तकें (जिनका मूल्य २०४३) है। २४-११-६२ को भारत सरकार के गृहमंत्री माननीय लालबहादुर शास्त्री जी को सैन्ट्रल बोर्ड आफ हायर एजूकेशन [illegible] नई दिल्ली-१८ के सचिव डा० दिनेशचन्द्र वाचस्पति ने भेंट की जिन्हें उन्होंने विशेष धन्यवाद पूर्वक स्वीकार किया। विदित रहे कि यह संस्था भारत की शिक्षा मे आमूल चूल परिवर्तन करने के उद्देश्य से गत छः वर्षों से भारत भर मे कार्य कर रही है।

वेद प्रचार की लगन—श्री गणेशदत्त आर्य सेवक भिवानी ने अपनी सारी आयु वेद प्रचार में लगा दी है। अब आपने २०००/- वेद प्रचार के लिए दान किया है। इसकी आय से लेखबद्ध प्रचार होता रहेगा। इस निधि से दो पोस्टर छप चुके हैं।

(१) राष्ट्र विजय का पवित्र मन्त्र।

(२) प्रार्थना मन्त्र कविता मे, अर्थ सहित।

आशा है वेद प्रेमी जनता लाभ उठाती रहेगी।

गणेशदत्त आर्य सेवक प्रधान आर्यसमाज भवानी हिसार

आदर्श विवाह

६ दिसम्बर को कैथल में टोहाना निवासी महाशय चानन लाल जी के सुपुत्र प्रिय वेद प्रकाश आर्य बी ए एम एस बी का शुभ विवाह कैथल निवासी चौधरी सोमप्रकाश जी की सुपुत्री मधुरानी के साथ प० राम स्वरूप जी "शांत" द्वारा पूर्ण वैदिक रीति से सम्पन्न हुआ। [illegible] वर श्री [illegible] पुत्र प्रधान आर्य समाज टोहाना ने [illegible] वधू को आशीर्वाद दिया। महाशय चाननलाल जी ने इस शुभ अवसर पर आर्य समाज टोहाना को ३६) और आर्यसमाज कैथल को १००) दान में दिये। महाशय चाननलाल जी ऋषि दयानन्द के परम भक्त और आर्यसमाज के सच्चे दिवाने हैं। आपने दूसरों की तरह लड़की वालों से किसी प्रकार के टीके और दहेज की मांग नहीं की जिस कारण इलाके में इस विवाह की बड़ी चर्चा है। सब आपकी प्रशंसा कर रहे हैं। सभी को चाहिए कि महाशय चाननलाल जी से प्रेरणा लेकर अपने लड़कों के विवाह में लड़की वालों से किसी प्रकार की मांग न करें और टीके की कुप्रथा को बन्द करने का प्रयत्न करें।

[illegible] गुप्ता—प्रधान [illegible]
टोहाना (हिसार)

मुद्रक व प्रकाशक श्री संतोषराज जी मन्त्री आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा पंजाब जालन्धर द्वारा वीर मिलाप प्रैस, मिलाप रोड जालन्धर से मुद्रित तथा आर्यजगत कार्यालय महात्मा हंसराज भवन निकट कचहरी जालन्धर शहर से प्रकाशित मालिक—आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा पंजाब जालन्धर

यम नियम-चर्चा (४)

अस्तेय (चोरी न करना)

(सुरेशचन्द्र वेदालंकार एम०ए०एल०टी०डी०बी०कालेज गोरखपुर)

अस्तेय व्रत का अर्थ क्या है? सरल शब्दों में इसका अर्थ है संसार में जो वस्तु मेरी नहीं तेरी है, जो तेरी है उसे किस तरह मेरी बनाया जाय, यह स्तेय भावना है और कौन वस्तु तेरी है मेरी नहीं जो मेरी नहीं उसे किस तरह तेरी बनाया जाय। इसी का नाम अस्तेय है। जब मनुष्य दूसरे की वस्तु पर अधिकार जमाने के मसूबे बांधना प्रारम्भ कर देता है, जब दूसरे की मेहनत मजदूरी को सस्ते या बिना मूल्य के प्राप्त करना चाहता है, वह चोरी है। दुकानदार खरा पैसा लेकर खोटा माल देना चाहता है, धर्मगुरु, पंडित, मौलवी और पादरी धर्म के नाम पर शिष्यों से दान दक्षिणा लेकर उन्हें बेवकूफ बनाकर रखना चाहता है, कचहरी का कर्मचारी या न्याय धीश रिश्वत लेकर इन्साफ बेचना चाहता है, पुलिस का सिपाही जब गोली कहीं जाय मुझे टकल्ली से मतलब इस भावना से कार्य करता है, यह सब स्तेय है, यह सब चोरी है। इसी प्रकार जब शासक प्रजा से टैक्स प्राप्त करके उसका ठीक-ठीक हिसाब नहीं रखते, उसे ऐशो आराम में बड़ी बड़ी तनख्वाहों में और फिजूलखर्ची में जाने देते हैं तो ये शासक भी चोरों की गिनती में गिने जायेंगे।

आज संसार में प्रत्येक मनुष्य के जीवन का उद्देश्य रुपया बटोरना हो गया है। रुपये की आवश्यकता है या नहीं, इसकी चिन्ता किये बिना रुपया बटोरने का परिणाम यह हो रहा है कि समाज में कुछ व्यक्ति ऐसे हो गए हैं जिन्हें पता नहीं कि उनके पास जो सम्पत्ति है वह कितनी है और उसका क्या उपयोग करें और दूसरी ओर करोड़ों व्यक्ति हैं जिनके खाने-पीने का, भोजन का, वस्त्र का और रहन सहन का ठिकाना नहीं है। हम सेंध लगाकर चोरी करने वालों को घृणा की दृष्टि से देखते हैं, हम किसी के घर में जाकर रुपया अन्य वस्तुएं उठाने वाले को नफरत की नजर से देखते हैं परन्तु हम यह नहीं समझते कि संसार के अधिकांश व्यक्ति अपने-अपने दायरे में गठ कतरा, चोर, डाकू और लुटेरा हैं। डाक्टर बढ़ रहे हैं, डाक्टरों के साथ रोग बढ़ रहे हैं, कचहरियों में न्याय करने में सहायता पहुंचाने के लिए वकील रखे जाते हैं परन्तु जो वकील अपने मुवक्किलों से झूठ बोलकर उनकी जेब का पैसा अपनी जेब में डालकर जितनी जल्दी अपनी कोठी, मोटर और अन्य सुख सुविधायें प्राप्त कर लेता है वह उतना ही अच्छा वकील माना जाता है। डाक्टरों की चर्चा की है। प्राचीनकाल में वैद्य भी ब्राह्मण होता था, अध्यापक भी ब्राह्मण होता था। ब्राह्मण होने के लिए उसे सम्पत्ति का लोभ छोड़ना पड़ता था। परन्तु आजकल के ये डाक्टर लुटेरे हो गए हैं, चोर हो गए हैं, जेब काटने वाले हो गए हैं। वे डाक्टर रोग को बिना समझे चिकित्सा करते हैं। एक साधारण से रोग के लिए थूक, मूत्र, रक्त की परीक्षा, एक्सरे की बातें करने लगते हैं और फिर भी परिणाम क्या होता है कि रोग घटने के स्थान पर बढ़ने लगता है। गोरखपुर के चिकित्सकों का अनुभव आपको बतलाऊं तो आप आश्चर्य करेंगे कि यह करोड़ों के विषय में कितने अनभिज्ञ हैं। अभी कुछ दिन पहले की बात है मेरी धर्म पत्नी के कान के पास दर्द प्रारंभ हुई। मैंने एक डाक्टर के पास जाकर दिखाया। यद्यपि वे कर्ण रोग विशेषज्ञ तो नहीं थे परन्तु कान देखने के बाद नाक भौं चढ़ाते हुए तथा कुछ चिन्ता व्यक्त करते हुए बोले कान का पर्दा एफेक्टेड है। 'एफैक्टेड' शब्द सुनते ही मैंने उन से अच्छी दवा देने को कहा। उन्होंने एक ऐसी दवा डाली कि अभी तक दर्द कान और गाल के बीच में थी अब वह कान के अन्दर भी होने लगी और वे छटपटाने लगी। उन्होंने मुझ से कहा कि मैं उनकी दवा नहीं डालूंगी परन्तु मैं कैसे मना करता-आखिर तो ५) खर्च करके वह दवा मैंने खरीदी थी। अब मैं दूसरे डाक्टर के पास पहुंचा। उन्होंने कान में छेद हो रहा है कह कर विटामिन बी की गोलियां दीं। पुन. चिकित्सालय के कर्ण रोग विशेषज्ञ के पास पहुंचा उन्होंने कान देखकर चिन्ता व्यक्त करते हुए घर पर देखने की बात की। मैं रास्ते में एक दूसरे डाक्टरसे मिला तो उन्होंने बतलाया कि मुझे संदेह है कि दांत में कैंसर हो गया है। अब दांत के चिकित्सक के यहां गया तो उन्होंने दांत उखाड़ कर चिकित्सा प्रारंभ की। मेरे जैसा एक साधारण अध्यापक २० दिन में ३००-४०० रुपयों के चक्कर में पड़ गया। आखिर यह क्यों? डाक्टर को दूसरों की जेब से पैसा निकालना होता है और उसी के लिए वह रोगों का वह रूप दिखलाते हैं। इसी प्रकार अध्यापकों का भी हाल है? कौन किसे दोष दे, किसी प्रशंसा करे। हरेक व्यक्ति का हाथ अपनी जेब में न होकर दूसरों की जेब में है। हरेक ठग है और हरेक ठगा जा रहा है। यही दशा समाज और विश्व की है।

जिस समय समाज का एक वर्ग दूसरे को लूटता था तब तक लूटना खटकता था। धीरे२ मनुष्यों ने लूटने को खराब मान लिया तो उसका नाम 'राज करना' रख दिया गया। अब 'राज करना' धर्मनिरपेक्ष कांग्रेस करना जो अच्छा नहीं माना जाता है अतः अब राज्य का विस्तार करने के स्थान पर प्रभाव क्षेत्र का विस्तार होने लगा है। परन्तु अस्तेय व्रत का व्रती इन सब से ऊपर उठ कर वह अपना कार्य प्रारंभ करता है। उसे मान और सम्मान भी अच्छे नहीं लगते। मुझे तुकाराम महाराज की गाथा याद आरही है। एक बार की बात है कि शिवाजी महाराज ने तुकाराम महाराज की कीर्ति गाथा सुनकर जलूस के साथ सम्मान पूर्ण रूप में लाने के लिए पालकी भेजी परन्तु इन सब चीजों को देखकर वे बोले 'भगवन्! ये मशालें, ये घोड़े, ये पालकियां, ये छत्र चामर ये सब किस लिए हैं? तुकाराम तो सेवा के लिए सेवा चाहते हैं, उनको मोक्ष फल की भी आवश्यकता नहीं। उन्होंने मोक्ष को भी ठुकरा दिया।

मैंने ठुकराये दंभमान
यश के सुख सुविधा के अवसर।
तुम उन्हें भुलावे में न डालो,
जिनको ये लगते मधुर मधुर।

वास्तव में 'अस्तेय' शब्द का दूसरा अर्थ है 'आवश्यकताओं को घटाना'। स्वामी रामतीर्थ ने कहा है आवश्यकताओं को जितना बढ़ाओगे वह उतना ही बढ़ेंगी उन्होंने एक दृष्टान्त दिया है कि जिस प्रकार मनुष्य यदि छाया के पीछे दौड़ेगा तो छाया उससे दूर भागती जावेगी। यदि छाया को अपने पीछे दौड़ाना है तो उस से मुंह मोड़कर चल दो छाया पीछे दौड़ने लगेगी। धन संपत्ति का भी यही हाल है। आप पीछे दौड़ेंगे तो संपत्ति आगे चली जायगी और संपत्ति को दौड़ाना हो तो उससे मुंह मोड़ लीजिए।

आवश्यकताओं की बढ़ती का परिणाम ही अनेक प्रकार की चोरियों का कारण है। प्राचीन काल में भारत वर्ष का इतिहास जितना शानदार था सब अपरिग्रह [illegible]

(शेष पृष्ठ ७ पर)

सम्पादकीय—

आर्य जगत्

वर्ष २२] रविवार १६ पौष २०१९, ३० दिसम्बर १९६२ [अंक ५२

सेवा के पथ पर

निरन्तर चलते हुए आर्य प्रादेशिक सभा पंजाब जालन्धर के साप्ताहिक मुखपत्र 'आर्य जगत' को एक वर्ष और बीत गया है। इस अंक के साथ यह अपने सेवा काल का बाईसवां वर्ष समाप्त कर रहा है। यह बात जहां सभा तथा इस के मुखपत्र जगत के लिए सौभाग्य एवं हर्ष के लिए है वहां सारे आर्य समाजों, संस्थाओं और इस के प्रेमी भाई बहिनों के लिए भी बड़े गौरव का स्थान रखती है। जनता की सेवा के पुनीत पथ पर मौन हो कर लगातार चलते रहना, अपने कर्तव्य पालन में आरूढ़ रहना, आलोचना समालोचना सुन कर मौन हो कर निष्ठा में लगे रहना जीवन में सब से बड़ी बात है। सभा का साप्ताहिक पत्र भी एक प्रचारक, उपदेशक और भजनीक ही है। स्थान २ पर जाकर मौन किन्तु सशक्त भाषा में समाजों में, संस्थाओं में, परिवारों में प्रति-सप्ताह सभा के सारे समाचार सूचनाएं, आर्यसमाज के महात्मा संन्यासियों, विद्वान नेताओं भाई बहिनों के बहुत ही सुन्दर विचार देता पहुंचाता और सुनाता रहता है। धार्मिक, सामाजिक, राष्ट्रभक्ति भरे, युवा कुमार शक्ति को जागृत करने वाले, नारी जागरण के सुन्दर विचार प्रस्तुत करता है। आज के युग में पत्र चलाना कितना महंगा व कठिन है। विशेष कर सभा का पत्र, जिस में न ऐसे वैसे विज्ञापन छापे जा सकते हैं, न ही आय की भावना रहती है। केवल कर्त्तव्य व धर्मप्रचार की भावना ही हो। आर्यजगत भी अपने कर्तव्य को जान कर सेवा में लगा है। सब का इसे प्रेम, आशीर्वाद, सहयोग प्राप्त है।

सभा के महामन्त्री ला. सन्तोषराज जी इस के अधिष्ठता हैं। पूरा ध्यान रख कर सुन्दर सम्मति से सदा कृतार्थ करते हैं। वैसे भी तो वही मालिक हैं। समय २ पर आने वाली समस्या कठिनता को हल करते रहते हैं। उन का सारा सहयोग जगत के बड़े गौरव की बात है। आर्यजगत के मान्य बड़े सहयोगियों में सभा के मान्य प्रधान प्रिंसिपल सूर्य भानु जी वायस चांसलर कुरुक्षेत्र यूनिवर्सिटी, मान्य प्रिंसिपल बहल जी, प्रो. वेदीराम जी शर्मा, महात्मा आनन्द स्वामी जी, महामना ला देवी चन्द जी, प्रि रला राम जी, प्रि. वजीर चन्द जी ऊना, पं० सुरेश चन्द्र जी विद्यालंकार, प्रि भगवान दास जी शोलापुर, बहिन सुशीला जी एम ए. बहिन अरुणा जी टोहाना, प्रिं. विद्यावती जी आनन्द जालन्धर, पं० रुद्रदत्त जी शर्मा अमृतसर, पं० खुशी राम जी शर्मा अधिष्ठता वेद प्रचार सभा, पं० ओम प्रकाश जी महोपदेशक सभा, प्रिं दीवान चंद जी कानपुर, ला. भगवानदास जी पुरी देहली, प्रो. उत्तम चन्द शरर पानीपत, श्री वेद प्रकाश जी लुध्याना आदि सारे महानुभावों का हर प्रकार का प्यार प्राप्त है इन का हार्दिक धन्यवाद है सभा का सारा प्रचारक वर्ग तो आर्यजगत के लिए साथ देता ही रहता है। अनेक आर्य समाजें सभा के इस पत्र की प्रतिसप्ताह काफी प्रतियां मंगवा कर सभा का हाथ बटवाती हैं। उन में आर्यसमाज किला जालन्धर, आर्यसमाज ऊना, आर्यसमाज शिमला आर्यसमाज जम्मू पुरानी मंडी, आर्यसमाज अनारकली नई देहली, आर्यसमाज लक्ष्मणसर अमृतसर, आर्यसमाज चण्डीगढ़, आर्य समाज गुरदासपुर, आर्य समाज माडलटाऊन यमुना नगर, आर्य समाज होश्यारपुर, आर्य समाज बटाला आदि प्रमुख हैं। हमारी शिक्षण संस्थाएं तथा उनके मान्य अधिकारी आर्य जगत से बड़ा ही प्यार करते हैं। जामनगर सौराष्ट्र में बैठे हुए श्री हरिश्चन्द्र जी थापर के आर्य जगत से जो प्यार है उस के लिए आभारी हैं। प० खुशीराम जी अधिष्ठाता वेद प्रचार सभा समाजों को जगत् के लिए जो २ प्रेरणा करते हैं तथा सभा का सारा प्रचारकमण्डल मुझे अपना समझ कर जो हार्दिक सहयोग देता है, इन अपनों का कहां तक धन्यवाद किया जाये। आभारी हैं। किन्तु अभी हमें सन्तोष नहीं है। सभापत्र घाटे पर है। अभी और प्रयास की आवश्यकता है। इस का यह सेवा वर्ष बीत रहा है। इस को सब का सहयोग मिला है उसके लिए सब का हार्दिक धन्यवाद। आगे के लिए भी इस के लिए अधिक से अधिक सहयोग के लिए विनीत प्रार्थना है।

—त्रिलोकचन्द्र

युवक कुछ चाहते हैं

आर्य समाज ऊना, दौलतपुर, ब्रह्मपुर, बटाला, अमृतसर, चंडीगढ़ आदि के जल्सों तथा स्कूल प्रचार में एक विशेष अनुभव हुआ है कि स्कूलों के कुमार और युवक छात्र जीवन में धर्म के विचारों को बड़े ही चाव से सुनना चाहते हैं। उनकी इच्छा है कि उनको समय २ पर अवश्य ही कुछ न कुछ सुनाया जाये। डी० ए० वी० स्कूल बटाला में तो एक नवीनता देखी कि वहां सारे स्कूल को पांच मण्डलों में शिवमंडल, प्रताप मण्डल, टैगोर मण्डल, सुभाष मण्डल आदि में बांट दिया गया है। स्कूल का सारा प्रार्थना, सत्संग आदि का कार्य प्रति मास एक २ मण्डल के आधीन होता रहता है। सारा प्रबन्ध व कार्य बच्चे स्वयं ही करते हैं उत्तरदायित्व सम्भालने में कमाल कर देते हैं। अपनी सारी संस्थाओं में इन कुमार तथा युवाशक्ति से पूरा २ लाभ उठाने का पूरा २ प्रबन्ध करना चाहिए। इन युवकों को ऐसी २ प्रेरणाएं मिलती ही रहनी चाहिए।

चलो जवान........

चलो जवान ! ये वतन की आन का सवाल है !
ये एक ही नहीं—करोड़ो जान का सवाल है !
उठी जो आग चीन से—जला न दे जहान को—
जहान क्या, जमीनो आसमान का सवाल है !!
वो वादा पंचशील का भुला दिया है चीन ने
ये दोस्ती के नाम पर दगा दिया है चीन ने
खुद अपने धर्म का गला दबा दिया है चीन ने
पता नहीं है चीन को, ये क्या किया है चीन ने ?
ये इम्तहान है—तुम्हारी शान का सवाल है !
ये एक ही नहीं करोड़ो जान का सवाल है !!

चलो जवान

इन्सानियत का आज है हैवानियत से सामना
कसम तुम्हे हैं फिर वतन, किसी का हो गुलाम ना
ये हिन्द का नहीं है सिर्फ चीन से मुकाबला
ये फैसला, जहान के नसीब का है फैसला
ये दीन का, ये धर्म का, ईमान का सवाल है !
ये एक ही नहीं करोड़ो जान का सवाल है !!

अनजान

सब दिन होत न एक समाना

ले०-श्री किशोरी लाल जो 'प्रेम' रेणुका जिला सिरमौर हि० प्र०

(गताक से आगे)

परिश्रम और ईमानदारी इसके दो आदर्श थे थोडे ही वर्षों में विमलराम एक बड़े सेठ बन गए। दुकान पर कई नौकर काम करने लगे। रामू बूढा हो गया था। परन्तु उसका स्वास्थ्य अच्छा हो गया था। विमलराय की अनुपस्थिति मे रामू ही दुकानकी देखभाल करता था। विमलराय अब सार्वजनिक कार्यो मे अधिक भाग लेने लगे। निर्धनो की सहायता के लिए हजारो रुपए दान दे देते थे दुखियों के दुख दर्द को देखकर स्वय दुखी हो जाते थे। निर्धनो की सहायता और समाज सेवा के कारण आप इतने लोकप्रिय हुए कि लोकसभा के चुनाव मे भारी बहुमत से सफल हुए।

जिस नगर को आप छोडकर आए थे वहा बडे ओर का भूचाल आया। पल भर में बडी बडी इमारते पृथ्वी पर आ गिरी। हजारो आदमी, स्त्री, पुरुष, बच्चे, बूढ़े मलवे के नीचे सदा के लिए सो गए। पल भर मे कई बच्चे अनाथ हो गए। कई स्त्रि विधवा हो गई, किसी की टागे टूट गई, किसी के हाथ बेकारहो गए। चारो ओर कोहराम मच गया चिखो पुकार, भूख, प्यास, बीमारी, सडी हुई लाशों की बदबू आदि से नगर नरकधाम बन गया।

सारे देश मे हाहाकार मच गया स्थान २ पर सहायक समितिया बनने लगीं। विमलराय के नेतृत्व में ही एक सहायक समिति वहा पहुची। कई सहायक कैम्प बन गए। सहायता कार्य आरम्भ हो गए। विमल राय ने उस सहायता कार्य में दिन रात एक कर दिया। अपनी पार्टी के साथ अनाज, कपडे और दवाइया बाटता रहा। पीडितो मे उसने देखा सेठ लखपतराय जी अपने सारे परिवार मे से अकेले ही रोने धोने के लिए बच गए है। मलवे के नीचे उसे मिली अपने चाचा माधव की लाश जो कि अपने पीछे अपनी स्त्री और युवा कन्या छोडकर मृत्यु के मुह मे चला गया था। उस ने देखा धनपत और उसकी स्त्री को, जोकि दोनों ही जीवित थे परन्तु उनकी अवस्था मृत्यु से भी बढ कर बुरी थी। शरीर पर फटे चीथड़े, भूख से लाचार। इन सब की ये अवस्था देख कर विमलराय की आखों मे आसू आ गए। विमल ने इन सब की कितनी और किस प्रकार सहायता की ये कहने की आवश्यकता नही।

तीन प्रकार की साकारता और उसका समाधान

ले० देवबन्धु आर्य विद्या वाचस्पति द० ब्रा. महा विद्यालय हिसार)

(गताक से आगे)

परन्तु परमात्मा मे मिथ्या ज्ञान का सर्वथा अभाव है अत उसका जन्म असम्भव है पतजलि ने—

क्लेश कर्म विपाकाशयैर परा मृष्ट पुरुष विशेष ईश्वर यो० १।२४॥

अर्थात्-अविद्या, अस्मिता, राग द्वेष, अभिनिवेश इन पांच क्लेशो से उत्पन्न होने वाले कर्म और कर्मफल एव वासना से जो रहित है वही ईश्वर है। इस सूत्र से भी ईश्वर निराकार सिद्ध होता है। सभी शास्त्र उसको जीवन-मरण के बन्धन से मुक्त बताते हैं।

अजो नक्षा दाधार पृथ्वीं तस्तम्भ द्या मन्त्रोर्थ सत्वै। ऋ १/६३/३

अर्थ —जैसे अज अर्थात न जन्म लेने वाला अजन्मा परमेश्वर न टूटने वाले विचारो से पृथिवी को धारन करता है, विस्तृत अन्तरिक्ष तथा द्यौलोक को पकड़ हुए है।

'ब्रह्म वा अज'। शत पथ ६/४/४/१५ ब्रह्म ही अजन्मा है।

वेदाहमेतमजर पुराण सर्वात्मान सर्वगत विभुत्वात्।

जन्मनिरोध प्रवदन्ति यस्य ब्रह्म वादिनो हि प्रवदन्ति नित्यम्। श्वे ३/२१

मैं उस ब्रह्म को जानता हू जो पुराना है और अजर है। सब का आत्मा और विभु होने से सर्वगत है ब्रह्मवादी जिसके जन्म का अभाव बतलाते हैं क्यो कि वह नित्य है अतःवेद शास्त्र परमात्मा को अज-अजन्मा तथा स्थूल सूक्ष्म और कारण शरीर से रहित बतलाते हैं यह तो रही वेद और सत्शास्त्रों की बात। अब आप कृपा करके यह बतावें कि परमात्मा को जन्म लेने की क्यो जरूरत पड़ता है। और आपके मत में भी जब परमात्मा के सर्वव्यापक होने से सारा ब्रह्माण्ड ही उस का शरीर है, तो परमात्मा को एक तुच्छ शरीर और धारण करवाने मे क्या लाभ होता है। फिर जब आपके मतानुसार सारे ही [illegible] है तो फिर अवतार मे क्या विशेषता रही। जब ब्रह्म से भिन्न कोई पदार्थ ही ससार में नहीं तो फिर कौन किस के गर्भ मे प्रवेश करके जन्म लेकर किस का शरीर धारण करता है। ऐसी सूरत मे यों कहना पड़ेगा कि 'ब्रह्म, ब्रह्म के, ब्रह्म में प्रवेश करके जन्म लेकर ब्रह्म को मारकर, ब्रह्म की रक्षा करता है' यह क्या गोरख धन्धा है, समझने की कृपा करें, अत: हम इस बात को बलपूर्वक कह सकते हैं कि वेदो में एक मत्र भी नहीं है कि जो ईश्वर को अवतार अथवा साकारता का वर्णन करता हो, अपितु इस प्रकार के मत्र मौजूद हैं जो ईश्वर को निराकार तथा अजन्मा वर्णन करते हैं। अब आपका यह हेतु कि ईश्वरावतारत्व से साकार है, तो यही भी सत्य नहीं है। अत ईश्वर व्याप्य व्यापकत्व, अवतारत्व इन तीनों प्रकारों से साकार सिद्ध नहीं होता है। इस लिये ईश्वर निराकार ही है।

ऐतरेय ब्राह्मण का आदेश—
'शत्रु को सब जगह से खदेड़ दें'

श्री बलदेव राज 'विद्यार्थी' एम. ए साधु आश्रम, होश्यारपुर

वैदिक साहित्य मे देवासुर सग्राम प्रसिद्ध ही है। अन्त में विजय देवताओं की हुई। आज चीनी शान्तिप्रिय ऋषि-मुनियो की भारतीय सन्तान से व्यर्थ में सग्राम के लिए उतारु हुए हैं। किन्तु भारतीयों में इतनी शक्ति है कि शत्रु को सब जगह से खदेड सकते हैं। ऐतरेय ब्राह्मण के एक आख्यानानुसार देवो ने असुरों को घेरकर सब जगह से खदेड दिया। मैं सानुवाद उसे प्रस्तुत करता हू।

देव व असुर इन लोकों मे लडने लगे। बल शाली राजाओ की तरह असुरो न लोको को लोहे का, अन्तरिक्ष को चान्दी का और द्यु को सोने का किला बनाया। देवो ने सोचा हम भी इन लोको को किलो (चौकियों) के रूप में परिवर्तन करें।...उन्होने उपसद (यज्ञ की एक क्रिया, घेरा) बनाया। उपसद (शत्रु के चारो तरफ घेरा डालकर) उन्होने (बनेडे २ किलो को जीत लिया। प्रथम वार ही उपसद से असुरो को इन लोको से खदेड दिया, दूसरे उपसद से अन्तिरक्ष मे से और तीसरे उपसद के द्वारा द्यु से भी असुरों को खदेड दिया। किन्तु असुर इन लोको से खदेड़े गए ऋतुओ मे चले गए। देव बोले 'उपसद ही बनाए।' उन्होने तीन उपसदो को दुगने भाग कर दिए। छ. उपसदो (घेरो) के द्वारा छ ऋतुओ से असुर खदेड़े गए। गए। किन्तु फिर वे मासो में प्रविष्ट हो गए। छ उपसदो के १२ उपसद बनाकर देवों ने उनको १२ मासो से भी खदेड दिया। मासो से खदेड़े गए असुर अर्धमासों मे चले गए। १२ उपसदों से २४ उपसद बनाकर देवो ने वहा से भी खदेड दिया। किन्तु अर्धमासों से खदेड़े गए असुर फिर रातो मे आश्रित हो गए। देवों ने पुन. उपसद बनाया। मध्याह्न के लिए निर्मित उपसद के द्वारा उन्होंने असुरो को दिनों से और रात्रि के लिए निर्मित उपसद के द्वारा देवताओं ने रातों में से भी असुरों को खदेड दिया।

इस कथा से भारतीयों को केवल-मात्र यही शिक्षा लेनी चाहिए कि देवताओं की तरह हम भी शत्रु-सेना (चीनियों) को चारों तरफ से घेरकर भारत से ही नहीं चीन से भी खदेड़ दें। वैदिक साहित्य में यत्र-तत्र-सर्वत्र शत्रु के टुकड़े-२ करने का आदेश है। किन्तु शत्रु को खदेडने के लिए ८८ करोड हाथ व ८८ करोड पावों एक ही उद्देश्य के लिए हों कि हम शत्रु के टुकड़े २ कर देंगे। जैसे अथर्ववेद में कहा है—

'वि रक्षो वि मृधो जहि वि वृत्रस्य हनु रुज। विमन्युमिन्द्र वृत्रहन्नमित्रस्याभिदासतः॥'

अर्थात् राक्षसों व हिंसक (चीनियों) को मार डाल। शत्रु के जबड़े चीर दे।

हे इन्द्र (प. नेहरू) चढ़ाई करने वाले शत्रु (चीनियों) के कोप को चकनाचूर कर दे

(उन्हें मजा चखा दे)

मेरे खून को न रोको

ले०—विद्याविनोद करनैलसिंह 'विद्यार्थी' विद्या-वाचस्पति कादियां

अपनी माता किसे प्रिय नहीं होती। मेरी माता मुझे बहुत प्रिय है। मैं उसकी गोद में खेला कूदा हूं। उस से हंसी मखौल भी किये हैं। उसे गालियां भी दी हैं। वह मुझे अपनी मीठी वाणी से पुचकार२ कर प्यार करती है। कितना अटूट है प्रेम माता तेरा। मुझे इतने अच्छे तूने फल-फूल, अन्न और हर एक प्रकार की प्रसन्नता वाली चीजें अपनी कृपा से खेल-कूद के लिये दी हैं। क्या माता मेरा तेरे प्रति कोई कर्त्तव्य नहीं है। कोई तुझे बाहिर से आकर कोई बुरी बात कहे तो मैं चुपचाप पास मे बैठा रहूं। क्या यह मेरे लिये मर मिटने की बात नहीं। चाहे वह मेरा मित्र ही क्यों न हो। पर याद रख माता मैं उसके प्राण छीन लूंगा जो तुझे ऐसी बातें करेगा वह पुत्र नहीं, माता का जिसके होते हुए उसकी माता की कोई बेइज्जती करे।

माता तू क्यों आंसू बहा रही है। क्या मैं मर गया हूं। याद रख माता मेरा एक २ लहू का कण तेरी इस बेइज्जती करने वाले एक २ चीनी का इस प्रकार खातमा करता जायेगा जिस प्रकार मेरे पूर्वज शिवा की तलवार उस राणा की तलवार मुगलों को गाजर मूली की तरह चीरती चली जा रही थी। मां, प्यारी मा यह आंसू पूंछ ले न, देख मुझे आज वे पूर्वजों की रुहें पुकार २ कर कह रही हैं कि अपनी मां के लिए सर्वस्व लुटा दे आज मां मैं नहीं रुकूंगा—मेरे इस खून को न रोको दुनियां वालों मैं उन प्यारे से प्यारे जाने वालों, बन्द२ कटवाने वालों नीवों में चिने जाने वालों को मिलने जा रहा हूं।

'जननी जने तो भक्त जन या दाता या शूर
न तरों जननी बांझ बली वृथा गवावे नूर'

जननी जन्मदात्री होती है तब ही अपने पद को चार चांद लगा कर सुशोभित कर सकती है जबकि एक वीर रणधीर, तथा उत्साही पुत्र की माता कहलाए अन्यथा अपने रूप और यौवन को व्यर्थ ही नष्ट न कर डाले। क्योंकि इस संसार में न जाने कितनी ही माताएं मरती हैं किन्तु उन में नाम किसी एक विरली का ही चमकता है। यक्ष के प्रश्न का उत्तर देते हुए युधिष्ठिर जी ने बहुत सुन्दर कहा है कि—

अहन्यहनि भूतानि गच्छन्ति यमालयम्
शेषा स्थिरं इच्छन्ति किमाश्चर्य्यं परम्'

अर्थात् ससार में न जाने कितने ही प्राणी प्रतिदिन मौत के घर में जाते हैं किन्तु बचे हुए फिर भी (उन्हें जाता देख कर भी) यहां इस ससार में स्थिर रहना चाहते हैं। इससे बढ कर आश्चर्य क्या हो सकता है।

पर याद रखिये 'रहते हैं नाम अमर सदा उनके शीश हैं। चढ़े धर्म पर जिनके।' उस आत्मा के नाम को संसार कभी नहीं भूल सकता जिसने अपने धर्म पर अपने आप को न्योछावर न कर दिया है। ठीक है इस धर्म के लोगों ने और भी कई अर्थ लिए हैं किन्तु वास्तव में अपनी duty ही धर्म मानी जाती है। जिस समय जैसा जिस का कर्त्तव्य हो जाता है उस के लिए वही उसका धर्म है।

हमारी माता है। हम अपनी माता के साथ प्रति दिन कितनी बार झगड़ पड़ते हैं। लड़ पड़ते हैं। यहां तक कि हम में कोई २ मूर्खपन में

काश कि मैं फ्रंट पर होता

कभी २ उसे गालियां भी दे देता है। इन सब को पिता-माता भाई आदि छोड़ देते हैं। किन्तु कहें तो भला कोई बाहर से आकर कोई अपशब्द हमारी माता को, देखे कोई हमारी मा बहिन को बुरी नजर से। भला हम उस अपशब्द कहने वाले की जीभ तथा बुरी नजर से देखने वाले की नजर को निकाले बिना चैन लेते हैं। कोई कौन होता है जो ऐसे शब्द कहे।

अस्तु देखिये आज अपनी भारत मा की हालत को। वह पुकार २ कर भारतीयों को तुझे अपना दु खड़ा सुना रही है। मैं स्कूल मे पढ रहा था जब मुझे चीनियों द्वारा ऐसी बेइज्जती सुनने का समाचार मिला तो मेरा यह विशाल आत्मा उस बाज की तरह उड़ने के लिये उत्सुक हो रहा था जो कि एक पिंजरे में बन्द था कि अभी तेरी जरूरत नहीं। मैं बड़ा यत्न करता कि यह बन्धन रूपी पिंजरा जल्दी से जल्दी टूटे जिस से मैं जल्दी से जल्दी इस मेरी माता को अपमानित करने वालों के मास को नोच २ कर उसी प्रकार खाकर, जिस प्रकार एक भूखा मांस खाता है, खाकर अपनी मां की बेइज्जती का बदला लूं भारतीयो त्यार हो जाओ अपनी माता को खुश करने के लिये। भला कौन है जो हम आर्यों के आगे रुक सके।

'हम रुकना झुकना क्या जाने,
हम वीरों के हैं दीवाने'

वीरो बहादुरो उठो जिस टांग को बढ़ा कर चीनी भारत में आ हैं वह उनकी टांग चीर दो। मैं अपने बहादुरों से पूछना चाहता हूं कि अपनी माता को हम ने अपमानित नहीं होने देना तो क्या तुम सब इस अपमान का बदला न लोगे। वह भारतीय नहीं जो अपनी अनख पर न मरे।

अब हम ने सोचना है कि किस प्रकार इस अपमान का बदला लिया जाए। क्योंकि न बहुत जोश अच्छा होता है और न ही बहुत होश। शुरू से ही इसके उदाहरण प्रत्यक्ष हैं कि भगवान कृष्ण होश वाले थे और अर्जुन जोश वाले इसी प्रकार लक्ष्मण जोश वाला था पर राम होशवाला था। सो आज हमारे नेता पं० जवाहरलाल नेहरू होश वाले हैं और हमारी जनता जोशवाली है। सो निश्चित ही हम इस महान बेइज्जती का मजा दुशमन को उसी प्रकार चखावेंगे जिस प्रकार राम ने सीता की बेइज्जती के लिए कृष्ण ने द्रोपदी की बेइज्जती के लिए दुश्मन को मजा चखाया।

हमें अब वही नीति बर्तनी चाहिए जिसे सुभाष ने कहा था कि कोई एक चपेड़ मारता है तो तुम उसकी गाल भी लाल कर दो। आज हम ने उसी भारत माता के महान सपूत भगतसिंह की नीति का प्रयोग करना है जिसने भारत माता को अपमानित करने वाले को उसका मजा चखाया जिसने जलियां वाले हत्याकांड को करने वाले डायर को मार कर उसे बताया कि भारतीयों में इतनी आन है। हे भगवान मुझ को भी ऐसा बल दे, ऐसा जोश दे जिस से मैं आज अपने शहीद हुए भाईयों का बदला ले सकूं। मैं जाऊंगा जरूर जाऊंगा मुझे मेरे शहीद हुए भाई पुकार रहे हैं। मेरी सरकार से अपील है कि मुझे भी फरट पर जाने का सुअवसर दे। यदि आज मैं भी लड़ते २ शहीद हुआ होता।

———

आर्यसमाजका क्षेत्र विस्तार

ले०—श्री ललिताप्रसाद जी आर्योपदेशक डी ए वी. कालेज कानपुर

आर्यसमाज, जैसा कि उसके नाम से ही प्रकट है, वैदिक धर्मियों का समाज है, जिसे श्री स्वामी दयानन्द जी महाराज ने अप्रैल १८७५ ई० मे बम्बई नगर मे वैदिक धर्म प्रचार और सस्था के उपकारार्थ स्थापित किया था। आर्यसमाज का विस्तार क्षेत्र जो लगभग सम्पूर्ण विश्व मे है, उसे सग्रहीत कर के यहा प्रस्तुत किया जाता है, जिस से आर्य सेवक के पाठको को भली भाति ज्ञात हो जाएगा कि आर्य समाज क्या है और उसके सगठन का कितना विस्तार क्षेत्र है।

१ सम्पूर्ण भारत वर्ष मे ३००० के लगभग आर्य समाजें हैं।

२ इग्लैंड, जर्मनी, असीरिया, अफगानानिस्तान, अरब, फारस, बगदाद उवगायना, सिंगापुर, बर्मा, स्याम, अनाम, कम्बोडिया, हागकाग, अमेरिका आदि देशो मे भी आर्यसमाज का प्रचार हो रहा है।

३ भारत के बाहर पूर्वी अफ्रीका, दक्षिणी अफ्रीका, मौरीशस, और फीजी द्वीप आदि देशो मे ३०० के लगभग आर्यसमाजें है।

४ प्रान्तीय तथा जिला, आर्य प्रतिनिधि सभाये व उपसभाये २०० सौ हैं।

५. भारत, नैपाल और अफ्रीका आदि देशो मे 'आर्य वीर दल' की ५३४ शाखाए स्थापित हैं, जिन मे लाखों आर्य युवक धर्म की शिक्षा ग्रहण करते हैं।

६ सम्पूर्ण भारत मे आर्यकुमार सभा की लगभग ४०० सौ शाखाए हैं।

७ २६० कालेज और हाई स्कूल हैं, जिसमे समस्त भारत मे दयानन्द कालेज कानपुर सबसे बडा है, जिसमे लगभग ६००० विद्यार्थी शिक्षा प्राप्त करते हैं २३२ प्रोफेसर ६५ क्लर्क, ११६ कर्मचारी, कार्य करते हैं जिनका मासिक वेतन ६५००० पैसठ हजार रुपये हैं। इसके अतिरिक्त दयानन्द कालेज की मैनेजमेंट सोसायटी के अर्तगत और भी कालेज है, जिसका सचालन इसी कालेज द्वारा होता है, जैसे 'सुभाष डिग्री कालेज, जि० उन्नाव' डी ए वी इन्टर कालेज कानपुर दयानन्द बृजेन्द्र स्वरूप डिग्री कालेज गोविन्दनगर कानपुर पी पी डिग्री कालेज आदि हैं।

नोट—इसके अतिरिक्त इसी कमेटी द्वारा एक बहुत बडा 'आर्य समाज औषधालय' राम बाग कानपुर से चल रहा है जिस मे श्रीयुत सहदेवजी शास्त्री वैद्य हैं जो कि रोगियो की भली भाति देख भाल करते है, सैकडो रोगी नित्य प्रति आते हैं, औषधि 'नि शुल्क दी जाती है। कई हजार रुपये इस पर वार्षिक व्यय होता है।

८ दो हजार प्राइमरी और मिडल स्कूल बालक और बालिकाओके लिए हैं।

९ साठ गुरुकुल और कन्या गुरुकुल है।

१० दो सौ सस्कृत विद्यालय और धर्मार्थ औषधालय है।

११ दो सौ अनाथालय, वनिताश्रम और गौशालाये है।

१२ चार सौ अछूतो के लिए पाठशालाए हैं।

१३ दो हजार, सन्यासी व्याख्याता, भजनोपदेशक प्रचार कार्य मे सलग्न है। जो कि वेदो का सन्देश घर घर पहुंचाने का प्रयत्न करते हैं।

१४ पाच सौ अतिथि भवन और व्यायाम शालाए है।

१५ तीन सौ प्रेस, पत्र पत्रिकाए, वाचनालय, पुस्तकालय हैं।

१६ परोपकारिणी सभा विरजानन्द वैदिक सस्थान, रामलाल कपूर ट्रस्ट दयानन्द सालवेशन मिशन, विशेश्वरानन्द वैदिक सस्थान, श्री गुलराज गुप्त चैरिटि ट्रस्ट तथा आर्य युवक सघ दिल्ली, व दयानन्द रक्षा मण्डल लखनऊ आदि विभिन्न सस्थाए हैं।

'प्रातीय प्रतिनिधि सभाए'

आर्य प्रतिनिधि सभा उत्तर प्रदेश पजाब, राजस्थान, मध्य भारत मध्य प्रदेश बिहार, बगाल, बम्बई, हैदराबाद (मध्य दक्षिण) सिन्ध हैं।

इसी प्रकार विदेशो की आर्य प्रतिनिधि सभायें निम्नलिखित हैं। आर्य प्रतिनिधि सभा दक्षिण अफरीका मौरीशस पोर्ट लूईस, फीजी, दक्षिणी अमरीका, डच गायना आदि हैं।

नोट—ये पाच आर्य प्रतिनिधि सभाए विदेशी हैं, सार्वदेशिक, आर्य प्रतिनिधि सभा देहली मे है, जिस मे समस्त देश व विदेश की सभाए सगठित हैं, । प्रिय पाठको ! इन थोडे से शब्दो मे आर्यसमाज का विस्तार क्षेत्र जो है वह आर्यसेवक के पाठको के सम्मुख उपस्थित किया है। यदि आप इन कार्यों पर विचार करेंगे तो आपको सहानुभूति, आर्य समाज की ओर बिना हुए न रहेगी क्योकि आर्य समाज का एक उद्देश्य वैदिक धर्म दिवाकर के सु प्रकाश द्वारा ससार भर से अशान्ति, अविद्या, दुराचार के अन्ध विश्वास को करना है। स्वामी दयानन्द जी का यही अभिप्राय था। इसलिए उन्होंने अपना सारा तप, विद्या, बल, बल्कि जीवन तक अर्पण कर दिया। ईश्वर उनके तप तथा परिश्रम को सफल करे, और उस बाल ब्रह्मचारी की मनोकामना पूरी हो, वेदो का प्रकाश हो, अवैदिक मतों का सहार हो विद्या का प्रचार हो सदाचार की वृद्धि हो, आर्य जाति का अभ्युत्थान हो, सत्य का प्रकाश हो, और पाखण्ड का नाश हो। आर्य समाज अमर रहे।

—

आर्यसमाज मन्दिर जाखल में राष्ट्ररक्षा सम्मेलन

इस साल घग्घर नदी में बाढ़ के कारण जाखल मण्डी का बड़ा नुकसान हुआ। आर्यसमाज मन्दिर भी बाढ़ की लपेट से न बच सका। बाढ से मन्दिर की बिल्डिंग को काफी क्षति हुई। मण्डी के उत्साही आर्य सज्जनों ने मन्दिर की मुरम्मत करवा कर १५, १६ दिसम्बर को मन्दिर का पुन निर्माण उत्सव मनाया जिसमें सावित्री यज्ञ किया गया। महाशय प्रभुदयाल जी की मडली के मनोहर भजन महात्मा ताराचन्द जी वानप्रस्थी तथा प० ब्रह्मा नन्द जी के उत्तम उपदेश हुए। १६ तारीख को दोपहर को २ बजे से साढे चार बजे तक ला० बृजलाल जी गुप्त प्रधान आर्य समाज टोहाना के सभा पतित्व में राष्ट्र रक्षा सम्मेलन हुआ जिस मे श्री राजेन्द्र जी जिज्ञासु, कुमारी अरुणा देवी, मास्टर ज्ञानीराम जी जैन, ला० मोहन लाल गुप्त, ने अपने विचार रखे और जनता से अपील की कि सब को इस सकटकाल मे भी भारत सरकार की तन-मन-धन रक्तदान से सहायता करनी चाहिए।

आर्यसमाज के उत्साही कार्यकर्ताओं ने यह भी निश्चय किया कि समाज मन्दिर मे प्रात समय दैनिक सत्सग किया करेंगे।

मोहनलाल गुप्त
प्रधान आर्यसमाज,
जाखल।

आर्यसमाज ऊना का महोत्सव

आर्यसमाज ऊना जिला होश्यारपुर का वार्षिक महोत्सव बड़े ही समारोह से हुआ। ऊना मे प्रिंसिपल वजीरचन्द जी शर्मा का अपना विशेष व्यक्तित्व है। पण्डित जी सचमुच बहुत ही उच्च जीवन, आचार-विचार के अत्यन्त गम्भीर सौम्य स्वभाव के ब्राह्मण हैं। सारा जीवन ही वहां स्कूल व समाज सेवा में अर्पण कर दिया है। ऊना का महोत्सव भी आप के ही धर्मप्रेम का प्रतीक होता है। सोमवार से रात को समाज में प० त्रिलोक चन्द्र शास्त्री की कथा प्रतिदिन मण्डली प० राजपाल जी मदन मोहन जी मा० तारा चन्द जी के भजन होते रहे। प्रातः स्कूल के छात्रों में प्रचार चलता था। उत्सव मे महात्मा ला० देवी चन्द जी प्रि. रलाराम जी, प० त्रिलोक चन्द जी, प्रो० भारद्वाज जी, प्रो० सतीश चन्द जी, कैप्टन बूटाराम जी, प० ओमप्रकाश जी महोपदेशक, प० सुखदेव जी, प० राजपाल मदन मोहन जी मंडली, मा० ताराचन्द जी आदि पधारे थे। शानदार नगर कीर्तन हुआ। जलसा हर प्रकार से सफल रहा। डी ए वी स्कूल के तथा बेसिक क्लास के छात्रों का धर्मभाव, समाज सेवा, उत्साह देख कर मन बड़ा प्रसन्न हुआ। 101) रु० सभा के वेदप्रचार में दिया। इस जलसे की सफलता पर प्रि० वजीर चन्द जी हैडमास्टर शान्तिस्वरूप जी तथा सारे सज्जनों के उत्साह, धर्मप्रेम व जोश के लिए हार्दिक बधाई।

आर्यसमाज दौलतपुर

का वार्षिकोत्सव शानदार रूप से हुआ। इस में श्री ला देवी चन्द जी एम ए प० खुशी राम जी शर्मा अधिष्ठाता वेदप्रचार, के० बूटा राम जी, प० त्रिलोक चन्द शास्त्री, होशयारपुर जिला मण्डली, प्रो० भारद्वाज जी, प्रो सतीश चन्द जी, प राज पाल मदन मोहन मण्डली, मा ताराचन्द जी श्री हजारीलाल आदि पधारे। डी ए वी स्कूल के छात्रों ने जलसे मे भाग लेकर खूब उत्साह दिखाया। नगर के समाज के सज्जनो ने प्रेम का परिचय दिया। प० जयराम दास जी शास्त्री मन्त्री समाज बड़े ही उत्साही युवक हैं। सारे स्टाफ ने खूब सहयोग दिया।

आर्यसमाज महापुर

जिला होश्यारपुर का महोत्सव डी ए वी हाई स्कूल के विशाल मैदान में बड़ी शान से मनाया गया। इस में श्री ला देवी चन्द जी एम ए प वजीर चन्द जी प्रिंसिपल, प त्रिलोक चन्द्र शास्त्री, पं० राजपाल मदनमोहन मण्डली, मा ताराचन्द जी, कै० बूटाराम जी, होश्यारपुर जिला मण्डली आदि पधारे। वहा श्री ला रामरत्न जी महाजन हैडमास्टर धर्म कर आए हैं। उन का आर्य समाज के लिए प्रेम देखकर तो अतीव आनन्द हुआ। उनकी श्रीमती तथा बच्चे उत्सव में दिन रात एक कर के सेवा कार्य में लगे रहे। उनके परिवार में प्रातःकाल दैनिक रूप से सदा यज्ञ होता रहता है। सारा परिवार ही समाज के रंग में रंगा है। ऐसे हैडमास्टर के स्कूल में आने पर स्कूल व समाज हर प्रकार से बहुत ऊंचा होगा। जलसे में स्टाफ व छात्रों ने बड़ा कार्य किया जलसा खूब धूमधाम से सम्पन्न हुआ। हम समाज के प्रधान श्री. हंसराज जी को, हैडमास्टर जी के सारे परिवार स्कूल को बधाई देते हैं।

. कार्यालय मन्त्री विभाग

डी. ए. वी. हाई स्कूल अम्बोटा छावनी

इस स्कूल के स्टाफ ने अपने एक दिन का वेतन तथा छात्रों का संग्रह कुल 633.92 नए पैसे राष्ट्रीय रक्षा कोष में भेजे हैं।

हैडमास्टर डी. ए. वी हाई स्कूल अम्बोटा छावनी

जाग! जाग!! भारत के वीर, जाग!

जाग! जाग!! भारत के वीर, जाग! तू रण मतवाले।
मातृ-वेदी पर भरभर धर दे, निज पावन-रक्त प्याले॥
स्वार्थी लोभी चोर चीन को, चुनौती तुम स्वीकार करो।
इन कपटी ठिगने चीनियों पर, तुम भीमसे वज्र-प्रहार करो॥
भारत-मुकुट हिमालय के, देख! बिखर न जाए मोती।
आज दहला दो दिल शत्रु का, ऐसो तुम ललकार करो॥
इन सियारों को आज बता दो, कि वर्ष न सकते शेर जगाने वाले।
जाग! जाग!! भारत... ..॥

मैं कहता हूं तुम वीरों से, अर्जुन से योद्धा रण धीरों से।
शत्रु की छाती छान दो न, तुम शिवा प्रताप के तीरों से॥
टेलीफोन की घन्टी सुनो न अब, इन तोपों की गर्जन में।
शंकर-कैलाश पुकार रहा, तुम भारत के सच्चे वीरों से।
अपने गर्म खूनके बिन्दुओं से, स्वतन्त्रता की मांग सजाने वाले।
जाग! जाग!! भारत.... .

कसम तुझे लाजपत तिलक की है, भगतसिंह सुभाष की नई जवानी की।
कसम तुझे दशमेश गुरु की, उस सिंह परिवार बलिदानी की॥
कसम तुझे भारतके गौरव की, उस पावन गंगा की धारा की।
कसम तुझे भारत-दुर्गा की, उस झांसी की रानी की॥
करो गर्जना, कसम उठाओ, शत्रु को नाको चने चबाने वाले।
जाग! जाग!! भारत ...

हे भारत देवी! तलवार उठालो, अब प्यार करो न गहनों से।
स्वतन्त्रता देवी पुकार रही, तुम सब झांसी की बहनो से॥
मान देश को सदा तेरे पर, तुम लाज हो भारत माता की।
बन्दूकों की श्रृंगार बना लो, मैं कहता हूं सब बहनो से॥
फड़कादो कण-कण भारत का, कहदो, जाग! राखी बन्धवाने वाले।
जाग! जाग!! भारत . .

—श्री गुरदीपराम जी नंगल

राष्ट्र रक्षा कोष

'यह जानकर प्रसन्नता होगी कि डी ए. वी हाई एवं बेसिक ट्रेनिंग स्कूल गढ़ दीवाला के सभी अध्यापकों एवं कर्मचारियों ने राष्ट्रीय सुरक्षा कोष में एक दिन का वेतन दिया। छात्रों ने भी मुद्रादान दिया। पहली किस्त के रूप में 251 रुपये भेजे। इसके बाद जे बी टी कक्षा के छात्रो ने एक दिवस बूट पालिश, चार्ट बेच कर, एवं अन्य श्रम कार्यों द्वारा 51 रुपए एकत्रित किए और इस प्रकार 51 रुपए की दूसरी किस्त भेजी। और छात्रों ने अत्यधिक उत्साह दिखाया। आगे भी धन संग्रह का कार्य चालू है।'

हैडमास्टर के आर के डी ए वी स्कूल

(पृष्ठ 2 का शेष)

कहते हैं। न में स्तेनो जनपदे मेरे राज्य मे कोई चोर नहीं है। ये मेगास्थनीज ने भारतवर्ष का वर्णन करते हुए लिखा है कि यहां के लोग रात को मकान मे ताले लगाकर नहीं सोते थे। रात को भी दरवाजे खोलकर सोते थे और चाद की किरणों के सिवाय, दूसरा कोई मकान में नहीं घुसता था। मातृ ऋण, पितृ ऋण और देव ऋण के रूप में हम अपने पास कुछ न रखकर सब चुका देते थे। यही आवश्यकताओं को कमी करने के लिए उपाय थे। पञ्चयज्ञ भी दान के लिए होता था। इस प्रकार विश्व के विकास के लिए, आत्मसुधार के लिए स्तेय को त्यागकर अस्तेय की ओर बढ़ना श्रेयस्कर है।

रजिस्टर्ड [illegible]

यज्ञ और पगड़ी

आर्य समाज के वयोवृद्ध नेता मा. स्वर्गीय [illegible] के स्वर्गवास पर अंतिम क्रिया पगड़ी की रीति सम्पन्न करने के लिए उन के गृह पर यज्ञ आरम्भ हुआ। जालन्धर नगर से काफी संख्या में गण्य मान्य सज्जन वहां पधारे हुए थे। कालेज, स्कूलों के मान्य प्रिंसिपल, आर्य प्रादेशिक सभा के मान्य अधिकारी तथा अन्तरंग सदस्य, उपदेशक, व्यापारी सज्जन तथा अन्य अनेक भाई और बहिनें इस अवसर पर उपस्थित थे। यज्ञ के कार्य के बाद उन के बड़े सुपुत्र श्री ला धर्म पाल जी की पगड़ी बन्दी को रस्म अदा हुई। स्वर्गीय मान्य मास्टर नन्दलाल जी के अन्य सुपुत्र श्री ला. इन्द्रसेन जी, श्री सत्यपाल जी तथा सारे परिवार ने इस महान् शोक में सहानुभूति प्रदर्शित करने पर पधारे हुए सारे सज्जनों का अन्तः करण से धन्यवाद किया। जितने भी सज्जन उपस्थित थे सब की आंखों में स्वर्गीय वयोवृद्ध नेता मास्टर जी को स्मरण कर के आंखों में आंसू थे तथा वाणी पर उन का नाम था।

आल इण्डिया दयानन्द साल्वेशन मिशन हुशियारपुर

इस मिशन ने अक्तूबर और नवम्बर मास में ८८४० हिन्दू वैदिक वैदिक धर्म में प्रविष्ट किए इस के अतिरिक्त दो हिन्दू कन्याएं ईसाईयों के पंजे से छुड़ाई गई। यह सारा कार्य पंजाब, उड़ीसा, बिहार, मध्य प्रदेश, गुजरात, काठियावाड़ प्रान्तों में हुआ।

सभा महामन्त्री श्री ला० सन्तोषराज जी

का

स्वर्गीय मास्टर नन्दलाल जी के प्रति

हार्दिक शोक प्रकाशन

आर्यसमाज तथा कालेज विभाग के वयोवृद्ध नेता स्वर्गीय मास्टर नन्दलाल जी के अतीव शोकजनक निधन ने किस आंख को अश्रुपूर्ण, किस दिल को दु:खी तथा किस जिह्वा को अवाक् नहीं कर दिया। स्वर्गीय मास्टर जी केवल अपने परिवार के ही नहीं थे प्रत्युत सारे समाज के थे। उनका सारा जीवन आर्यसमाज तथा उनकी डी० ए० वी० संस्थाओं की सेवा में बीता। दयानन्द कालेज कमेटी के प्रधान जैसे ऊंचे पद पर रह कर भी बड़ी सेवा की। आर्यसमाज के वो बड़े ही भक्त थे। समाज के प्रत्येक क्षेत्र में उनकी सेवाएं इतिहास में लिखी जायेंगी। जालन्धर के दयानन्द कालेज स्कूल, सभा, समाज की उन्नति में उनका विशेष स्थान है। मैं उनके सारे परिवार से हार्दिक समवेदना में शामिल हूं। प्रभु उनको शान्ति व धैर्य देवें। स्वर्गीय मास्टर जी के समान हम भी समाज सेवी बनें।

—सन्तोषराज

चारों वेद मूल

बढ़िया जिल्द-कीमत प्रति सैट की २२.५० न० पै०

बिक्री के लिए मौजूद हैं।

प्राप्ति स्थान— म० हंसराज वैदिक साहित्य विभाग

पास कचहरी जालन्धर

(अनारकली) मन्दिर मार्ग नई देहली का वार्षिक चुनाव १९६३

प्रधान—श्री [illegible] चौधरी, भूतपूर्व जनरल मैनेजर, उपप्रधान—श्री शांति नाथ [illegible] दिल्ली, श्री रा० बा० डा० मथुरा दास कपूर, [illegible] लाजपतराय सलवाड़, पूसारोड, नई देहली, श्री टी० आर० [illegible] सेवाराम कपूर, श्री प्रिंसिपल हरिश्चन्द्र, नई देहली, प्रधान मंत्री—श्री दयाराम शास्त्री नई देहली, मंत्री—श्री दरबारी लाल नई देहली, श्री सोमनाथ जी गुप्त, श्री मुन्शीराम सचदेवा, श्री पी. सी. महता, श्री गोपाल कृष्ण दत्त, कोषाध्यक्ष—श्री बृजलाल सोनी, सहायक कोषाध्यक्ष—श्री प्रेम कृष्ण भारद्वाज, एडिटर—श्री मेहरचन्द पुरी, पुस्तकालयाध्यक्ष—श्री सोम कीर्ति जी, वेदालंकार, एम० ए०।

नई बस्ती सीलमपुर शहादरा (देहली) में आर्य समाज की स्थापना

आर्य जगत को यह जान कर अत्यधिक हर्ष होगा कि—आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा पंजाब एवं आर्य जगत की सुप्रसिद्ध चिमटा भजन मण्डली ने हमारी प्रार्थना पर नई बस्ती सीलमपुर में पधार कर ३, ४, ५ दिसम्बर को तीन दिन तक वेद प्रचार किया। इस कालोनी में आर्य समाज की स्थापना का दृढ़ विचार प्रकट किया। परिणाम स्वरूप ५. १२. ६२ को प्रचार की समाप्ति पर भजन मण्डली की ही अध्यक्षता में आर्य समाज की स्थापना की गई और अधिकारियों का चुनाव भी कर दिया गया। इस शुभ कार्य के लिये परमपिता प्रभु के धन्यवाद के पश्चात् हम प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा तथा चिमटा भजन मण्डली के अत्यन्त आभारी हैं।

चुनाव

प्रधान—श्री चौधरी होशियार सिंह जी मन्त्री—श्री चन्द्र भानु जी शास्त्री उपमन्त्री—श्री ईश्वर दास जी (सैक्रेटरी पंचायत सीलमपुर) कोषाध्यक्ष—श्री कर्म चन्द्र जी अन्तरङ्ग सभा के शेष सदस्य—श्री चौधरी भूप सिंह जी, श्री निहाल चन्द जी।

निवेदक—चन्द्र भानु आर्य, मंत्री आर्य समाज नई बस्ती सीलमपुर देहली

आवश्यक सूचना

आर्य अनाथालय फिरोजपुर छावनी के लिये एक असिस्टेंट सुपरिंटेण्डेण्ट पुरुष और एक स्त्री की आवश्यकता है। जो कि अनुभवी हों अनाथों की सेवा व अनाथालय के कार्य में रुचि रखें।

अपनी योग्यता, अनुभव सहित प्रार्थना पत्र मंत्री आर्य प्रादेशिक सभा जालन्धर शहर के नाम १५ जनवरी १९६३ तक भेज देवें।

—संतोषराज मंत्री सभा

शोक प्रस्ताव

श्री मास्टर नन्दलाल जी के निधन पर निम्न संस्थाओं ने शोक प्रस्ताव पास किए—

१ ए० एस० हाई स्कूल रुड़का कलां (जालन्धर) २. डी० ए० वी० हायर सै० स्कूल दसूआ ३. आर्य समाज दसूआ ४. आर्य समाज कमाही देवी (हुशियारपुर)।

भूल सुधार

आर्य जगत के ९ दिसम्बर के अंक में आर्यसमाज चण्डीगढ़ सैक्टर ८ की राष्ट्र रक्षा कोष में १०००) छपी है उसके स्थान पर २१००)- छपनी चाहिये थी पाठक नोट कर लें।

मुद्रक व प्रकाशक श्री संतोषराज जी मन्त्री आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा पंजाब जालन्धर द्वारा वीर मिलाप प्रेस, मिलाप रोड जलन्धर से मुद्रित तथा आर्यजगत कार्यालय महात्मा हंसराज भवन निकट कचहरी जालन्धर शहर से प्रकाशित मालिक—आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा पंजाब जालन्धर

can we continue—let me say with particular frankness and sincerity—with less than the full force of the nation incorporated in the governing instrument?

I reiterated my complaints about the Fleet a few days later in a private letter to Lord Halifax

The dispositions of our Fleet are inexplicable First, on Tuesday night, April 4, the First Lord showed that the Home Fleet was in such a condition of preparedness that the men could not even leave the anti-aircraft guns to come below. This was the result of a scare telegram, and was, in my opinion, going beyond what vigilance requires On the other hand, at the same time the Mediterranean Fleet was, as I described to the House, scattered in the most vulnerable disorder throughout the Mediterranean, and, as photographs published in the newspapers show, the *Barham* was actually moored alongside the Naples jetty Now the Mediterranean Fleet has been concentrated and is at sea, where it should be Therefore no doubt all is well in the Mediterranean. But the unpreparedness is transferred to home waters. The Atlantic Fleet, except for a few anti-aircraft guns, has been practically out of action for some days owing to very large numbers of men having been sent on leave One would have thought at least the leave could be "staggered" in times like these All the minesweepers are out of action refitting How is it possible to reconcile this with the statement of tension declared to be existing on Tuesday week? It seems to be a grave departure from the procedure of continuous and reasonable vigilance. After all, the conditions prevailing now are not in principle different from those of last week The First Sea Lord is seriously ill, so I expect a great deal falls upon Stanhope

I write this to you for your own personal information, and in order that you can check the facts for yourself Pray therefore treat my letter as strictly private, as I do not want to bother the Prime Minister with the matter, but I think you ought to know.

* * * * *

On April 15, 1939, after the declaration of the German protectorate of Bohemia and Moravia, Goering met Mussolini and Ciano in order to explain to the Italians the progress of German preparations for war. The minutes of this meeting have been found One passage reads—it is Goering who is speaking. "The heavy armament of Czechoslavakia shows, in any case, how dangerous it could have been, even after Munich, in the event of a serious conflict. By German action the situation of both Axis countries was ameliorated because, among other reasons, of the

economic possibilities which resulted from the transfer to Germany of the great productive capacity of Czechoslovakia. That contributes towards a considerable strengthening of the Axis against the Western Powers Furthermore, Germany now need not keep ready a single division for protection against that country in case of a bigger conflict This too is an advantage by which both Axis countries will, in the last analysis, benefit . . . The action taken by Germany in Czechoslovakia is to be viewed as an advantage for the Axis Powers Germany could now attack this country [Poland] from two flanks, and would be within only twenty-five minutes' flying distance from the new Polish industrial centre, which has been moved farther into the interior of the country, nearer to the other Polish industrial districts, because of its proximity to the border."*

"The bloodless solution of the Czech conflict in the autumn of 1938 and spring of 1939 and the annexation of Slovakia," said General von Jodl in a lecture some years after, "rounded off the territory of Greater Germany in such a way that it now became possible to consider the Polish problem on the basis of more or less favourable strategic premises "†

On the day of Goering's visit to Rome President Roosevelt sent a personal message to Hitler and Mussolini urging them to give a guarantee not to undertake any further aggression for ten "or even twenty-five years, if we are to look that far ahead " The Duce at first refused to read the document, and then remarked "A result of infantile paralysis!" He little thought he was himself to suffer worse afflictions.

* * * * *

On April 27 the Prime Minister took the serious decision to introduce conscription, although repeated pledges had been given by him against such a step To Mr Hore-Belisha, the Secretary of State for War, belongs the credit of forcing this belated awakening He certainly took his political life in his hands, and several of his interviews with his chief were of a formidable character. I saw something of him in this ordeal, and he was never sure that each day in office would not be his last.

Of course the introduction of conscription at this stage did not give us an army It only applied to the men of twenty years of

* *Nuremberg Documents*, Pt II, p 106

† *Ibid*, p 107

age, they had still to be trained, and after they had been trained they had still to be armed It was however a symbolic gesture of the utmost consequence to France and Poland, and to other nations on whom we had lavished our guarantees. In the debate the Opposition failed in their duty Both Labour and Liberal Parties shrank from facing the ancient and deep-rooted prejudice which has always existed in England against compulsory military service The Leader of the Labour Party moved that:

> Whilst prepared to take all necessary steps to provide for the safety of the nation and the fulfilment of its international obligations, this House regrets that His Majesty's Government, in breach of their pledges, should abandon the voluntary principle, which has not failed to provide the man-power needed for defence, and is of opinion that the measure proposed is ill-conceived, and, so far from adding materially to the effective defence of the country, will promote division and discourage the national effort, and is further evidence that the Government's conduct of affairs throughout these critical times does not merit the confidence of the country or this House

The Leader of the Liberal Party also found reasons for opposing this step Both these men were distressed at the course they felt bound on party grounds to take But they both took it, and adduced a wealth of reasons The division was on party lines, and the Conservatives carried their policy by 380 to 143 votes In my speech I tried my best to persuade the Opposition to support this indispensable measure, but my efforts were in vain I understood fully their difficulties, especially when confronted with a Government to which they were opposed. I must record the event, because it deprives Liberal and Labour partisans of any right to censure the Government of the day They showed their own measure in relation to events only too plainly. Presently they were to show a truer measure

* * * * *

Though Mr. Chamberlain still hoped to avert war, it was plain that he would not shrink from it if it came Mr Feiling says that he noted in his diary, "Churchill's chances [of entering the Government] improve as war becomes more probable, and *vice versa*" * This was perhaps a somewhat disdainful epitome There were many other thoughts in my mind besides those of becoming

* Feiling, *op cit*, p 406

once again a Minister. All the same, I understood the Prime Minister's outlook He knew, if there was war, he would have to come to me, and he believed rightly that I would answer the call. On the other hand, he feared that Hitler would regard my entry into the Government as a hostile manifestation, and that it would thus wipe out all remaining chances of peace. This was a natural but a wrong view. None the less, no one can blame Mr. Chamberlain for not wishing to bring so tremendous and delicate a situation to a head for the sake of including any particular member of the House of Commons in his Government

In March I had joined Mr Eden and some thirty Conservative Members in tabling a resolution for a National Government. During the summer there arose a very considerable stir in the country in favour of this, or at least for my and Mr. Eden's inclusion in the Cabinet. Sir Stafford Cripps, in his independent position, became deeply distressed about the national danger He visited me and various Ministers to urge the formation of what he called an "All-in Government". I could do nothing, but Mr. Stanley, President of the Board of Trade, was deeply moved He wrote to the Prime Minister offering his own office if it would facilitate a reconstruction.

Mr Stanley to the Prime Minister *June* 30, 1939

I hesitate to write to you at a time like this, when you are overwhelmed with care and worry, and only the urgency of affairs is my excuse I suppose we all feel that the only chance of averting war this autumn is to bring home to Hitler the certainty that we shall fulfil our obligations to Poland and that aggression on his part must inevitably mean a general conflagration All of us, as well, must have been thinking whether there is any action we can take, which without being so menacing as to invite reprisal will be sufficiently dramatic to command attention I myself can think of nothing which would be more effective, if it were found to be possible, than the formation now of the sort of Government which inevitably we should form at the outbreak of war It would be a dramatic confirmation of the national unity and determination, and would, I imagine, not only have a great effect in Germany, but also in the United States It is also possible that if at the eleventh hour some possibility of a satisfactory settlement emerged it would be much easier for such a Government to be at all conciliatory You of course must yourself have considered the possibility, and must be much more conscious of possible difficulties than I could be, but I thought I would write both to let you know my views

> and to assure you that if you did contemplate such a possibility, I—as I am sure all the rest of our colleagues—would gladly serve in any position, however small, either inside or outside the Government.

The Prime Minister contented himself with a formal acknowledgment.

As the weeks passed by almost all the newspapers, led by the *Daily Telegraph* (July 3), emphasised by the *Manchester Guardian*, reflected this surge of opinion. I was surprised to see its daily recurrent and repeated expression. Thousands of enormous posters were displayed for weeks on end on Metropolitan hoardings, "Churchill Must Come Back." Scores of young volunteer men and women carried sandwich-board placards with similar slogans up and down before the House of Commons. I had nothing to do with such methods of agitation, but I should certainly have joined the Government had I been invited. Here again my personal good fortune held, and all else flowed out in its logical, natural, and horrible sequence.

CHAPTER XX

THE SOVIET ENIGMA

Hitler Denounces the Anglo-German Naval Agreement – And the Polish Non-Aggression Pact – The Soviet Proposal of a Three-Power Alliance – Dilemma of the Border States – Soviet-German Contacts Grow – The Dismissal of Litvinov – Molotov – Anglo-Soviet Negotiations – Debate of May 19 – Mr Lloyd George's Speech – My Statement on the European Situation – The Need of the Russian Alliance – Too Late – The "Pact of Steel" between Germany and Italy – Soviet Diplomatic Tactics.

WE have reached the period when all relations between Britain and Germany were at an end We now know of course that there never had been any true relationship between our two countries since Hitler came into power. He had only hoped to persuade or frighten Britain into giving him a free hand in Eastern Europe, and Mr Chamberlain had cherished the hope of appeasing and reforming him and leading him to grace. However, the time had come when the last illusions of the British Government had been dispelled The Cabinet was at length convinced that Nazi Germany meant war, and the Prime Minister offered guarantees and contracted alliances in every direction still open, regardless of whether we could give any effective help to the countries concerned To the Polish guarantee was added a Greek and Roumanian guarantee, and to these an alliance with Turkey.

We must now recall the sad piece of paper which Mr. Chamberlain had got Hitler to sign at Munich and which he waved triumphantly to the crowd when he quitted his aeroplane at Heston. In this he had invoked the two bonds which he assumed existed between him and Hitler and between Britain and Germany, namely, the Munich Agreement and the Anglo-German

Naval Treaty The subjugation of Czechoslovakia had destroyed the first, Hitler now brushed away the second

Addressing the Reichstag on April 28, he said·

> Since England to-day, both through the Press and officially, upholds the view that Germany should be opposed in all circumstances, and confirms this by the policy of encirclement known to us, the basis of the Naval Treaty has been removed I have therefore resolved to send to-day a communication to this effect to the British Government This is to us not a matter of practical material importance—for I still hope that we shall be able to avoid an armaments race with England—but an action of self-respect. Should the British Government however wish to enter once more into negotiations with Germany on this problem, no one would be happier than I at the prospect of still being able to come to a clear and straightforward understanding *

The Anglo-German Naval Agreement, which had been so marked a gain to Hitler at an important and critical moment in his policy, was now represented by him as a favour to Britain, the benefits of which would be withdrawn as a mark of German displeasure. The Fuehrer held out the hope to the British Government that he might be willing to discuss the naval problems further with His Majesty's Government, and he may even have expected that his former dupes would persist in their policy of appeasement. To him it now mattered nothing He had Italy, and he had his air superiority, he had Austria and Czechoslovakia, with all that that implied. He had his Western Wall. In the purely naval sphere he had always been building U-boats as fast as possible irrespective of any agreement He had already as a matter of form invoked his right to build 100 per cent. of the British numbers, but this had not limited in the slightest degree the German U-boat construction programme. As for the larger vessels, he could not nearly digest the generous allowance which had been accorded to him by the Naval Agreement He therefore made fine impudent play with flinging it back in the face of the simpletons who made it.

In this same speech Hitler also denounced the German-Polish Non-Aggression Pact He gave as his direct reason the Anglo-Polish Guarantee, "which would in certain circumstances compel Poland to take military action against Germany in the event of a conflict between Germany and any other Power, in which

* *Hitler's Speeches*, II, p 1626

England in her turn would be involved This obligation is contrary to the Agreement which I made with Marshal Pilsudski some time ago . . I therefore look upon the Agreement as having been unilaterally infringed by Poland and thereby no longer in existence I sent a communication to this effect to the Polish Government "

After studying this speech at the time, I wrote in one of my articles:

It seems only too probable that the glare of Nazi Germany is now to be turned on to Poland Herr Hitler's speeches may or may not be a guide to his intentions, but the salient object of last Friday's performance was obviously to isolate Poland, to make the most plausible case against her, and to bring intensive pressure upon her. The German Dictator seemed to suppose that he could make the Anglo-Polish Agreement inoperative by focusing his demands on Danzig and the Corridor. He apparently expects that those elements in Great Britain which used to exclaim, "Who would fight for Czechoslovakia?" may now be induced to cry, "Who would fight for Danzig and the Corridor?" He does not seem to be conscious of the immense change which has been wrought in British public opinion by his treacherous breach of the Munich Agreement, and of the complete reversal of policy which this outrage brought about in the British Government, and especially in the Prime Minister

The denunciation of the German-Polish Non-Aggression Pact of 1934 is an extremely serious and menacing step. That pact had been reaffirmed as recently as last January, when Ribbentrop visited Warsaw. Like the Anglo-German Naval Treaty, it was negotiated at the wish of Herr Hitler. Like the Naval Treaty, it gave marked advantages to Germany Both Agreements eased Germany's position while she was weak The Naval Agreement amounted in fact to a condonation by Great Britain of a breach of the military clauses of the Treaty of Versailles, and thus stultified both the decisions of the Stresa front and those which the Council of the League were induced to take The German-Polish Agreement enabled Nazi attention to be concentrated first upon Austria and later upon Czechoslovakia, with ruinous results to those unhappy countries It temporarily weakened the relations between France and Poland and prevented any solidarity of interests growing up among the States of Eastern Europe Now that it has served its purpose for Germany, it is cast away by one-sided action Poland is implicitly informed that she is now in the zone of potential aggression.

* * * * *

The British Government had to consider urgently the practical implications of the guarantees given to Poland and to Roumania. Neither set of assurances had any military value except within the framework of a general agreement with Russia. It was therefore with this object that talks at last began in Moscow on April 15 between the British Ambassador and M Litvinov. Considering how the Soviet Government had hitherto been treated, there was not much to be expected from them now. However, on April 16 they made a formal offer, the text of which was not published, for the creation of a united front of mutual assistance between Great Britain, France, and the U S.S R. The three Powers, with Poland added if possible, were furthermore to guarantee those States in Central and Eastern Europe which lay under the menace of German aggression. The obstacle to such an agreement was the terror of these same border countries of receiving Soviet help in the shape of Soviet armies marching through their territories to defend them from the Germans, and incidentally incorporating them in the Soviet-Communist system, of which they were the most vehement opponents. Poland, Roumania, Finland, and the three Baltic States did not know whether it was German aggression or Russian rescue that they dreaded more It was this hideous choice that paralysed British and French policy

There can however be no doubt, even in the after-light, that Britain and France should have accepted the Russian offer, proclaimed the Triple Alliance, and left the method by which it could be made effective in case of war to be adjusted between allies engaged against a common foe. In such circumstances a different temper prevails. Allies in war are inclined to defer a great deal to each other's wishes, the flail of battle beats upon the front, and all kinds of expedients are welcomed which in peace would be abhorrent. It would not be easy in a Grand Alliance, such as might have been developed, for one ally to enter the territory of another unless invited.

But Mr Chamberlain and the Foreign Office were baffled by this riddle of the Sphinx. When events are moving at such speed and in such tremendous mass as at this juncture it is wise to take one step at a time The alliance of Britain, France, and Russia would have struck deep alarm into the heart of Germany in 1939, and no one can prove that war might not even then have been

averted. The next step could have been taken with superior power on the side of the allies. The initiative would have been regained by their diplomacy Hitler could afford neither to embark upon the war on two fronts, which he himself had so deeply condemned, nor to sustain a check. It was a pity not to have placed him in this awkward position, which might well have cost him his life Statesmen are not called upon only to settle easy questions These often settle themselves It is where the balance quivers, and the proportions are veiled in mist, that the opportunity for world-saving decisions presents itself Having got ourselves into this awful plight of 1939, it was vital to grasp the larger hope

It is not even now possible to fix the moment when Stalin definitely abandoned all intention of working with the Western Democracies and considered coming to terms with Hitler Indeed it seems probable that there never was such a moment The publication in *Nazi-Soviet Relations, 1939–41*, by the American State Department of a mass of documents captured from the archives of the German Foreign Office gives us however a number of facts hitherto unknown. Apparently something happened as early as February 1939, but this was almost certainly concerned with trading and commercial questions affected by the status of Czechoslovakia after Munich which required discussion between the two countries The incorporation of Czechoslovakia in the Reich in mid-March magnified these issues Russia had some contracts with the Czechoslovak Government for munitions from the Skoda works What was to happen to these contracts now that Skoda had become a German arsenal?

On April 17 the State Secretary in the German Foreign Office, Weizsaecker, records that the Russian Ambassador had visited him that day for the first time since he had presented his credentials nearly a year before. He asked about the Skoda contracts, and Weizsaecker pointed out that "a favourable atmosphere for the delivery of war materials to Soviet Russia was not exactly being created at present by reports of a Russian-British-French Air Pact and the like". On this the Soviet Ambassador turned at once from trade to politics and asked the State Secretary what he thought of German-Russian relations Weizsaecker replied that it appeared to him that "the Russian Press lately was not fully participating in the anti-German tone of the American and some of the English papers". On this the Soviet Ambassador said,

"Ideological differences of opinion have hardly influenced the Russian-Italian relationship, and they need not prove a stumbling-block to Germany either. Soviet Russia has not exploited the present friction between Germany and the Western Democracies against her, nor does she desire to do so There exists for Russia no reason why she should not live with Germany on a normal footing And from normal relations might become better and better."

We must regard this conversation as significant, especially in view of the simultaneous discussions in Moscow between the British Ambassador and M Litvinov and the formal offer of the Soviet on April 16 of a Three-Power Alliance with Great Britain and France. It is the first obvious move of Russia from one leg to the other "Normalisation" of the relations between Russia and Germany was henceforward pursued, step by step, with the negotiations for a Triple Alliance against German aggression

If, for instance, Mr. Chamberlain on receipt of the Russian offer had replied, "Yes. Let us three band together and break Hitler's neck," or words to that effect, Parliament would have approved, Stalin would have understood, and history might have taken a different course At least it could not have taken a worse.

On May 4 I commented on the position in these terms:

Above all, time must not be lost Ten or twelve days have already passed since the Russian offer was made The British people, who have now, at the sacrifice of honoured, ingrained custom, accepted the principle of compulsory military service, have a right, in conjunction with the French Republic, to call upon Poland not to place obstacles in the way of a common cause Not only must the full co-operation of Russia be accepted, but the three Baltic States, Lithuania, Latvia, and Esthonia, must also be brought into association To these three countries of warlike peoples, possessing together armies totalling perhaps twenty divisions of virile troops, a friendly Russia supplying munitions and other aid is essential

There is no means of maintaining an Eastern front against Nazi aggression without the active aid of Russia Russian interests are deeply concerned in preventing Herr Hitler's designs on Eastern Europe It should still be possible to range all the States and peoples from the Baltic to the Black Sea in one solid front against a new outrage or invasion Such a front, if established in good heart, and with resolute and efficient military arrangements, combined with the strength of the Western Powers, may yet confront Hitler, Goering,

Himmler, Ribbentrop, Goebbels and Co with forces the German people would be reluctant to challenge.

* * * * *

Instead, there was a long silence while half-measures and judicious compromises were being prepared This delay was fatal to Litvinov. His last attempt to bring matters to a clear-cut decision with the Western Powers was deemed to have failed. Our credit stood very low. A wholly different foreign policy was required for the safety of Russia, and a new exponent must be found. On May 3 an official communiqué from Moscow announced that M. Litvinov had been released from the office of Foreign Commissar at his request and that his duties would be assumed by the Premier, M. Molotov. The German Chargé d'Affaires in Moscow reported on May 4 as follows: "Since Litvinov had received the English Ambassador as late as May 2 and had been named in the Press of yesterday as guest of honour at the parade, his dismissal appears to be the result of a spontaneous decision by Stalin . . At the last Party Congress Stalin urged caution lest the Soviet Union should be drawn into conflict. Molotov (no Jew) is held to be 'the most intimate friend and closest collaborator of Stalin'. His appointment is apparently the guarantee that the foreign policy will be continued strictly in accordance with Stalin's ideas."

Soviet diplomatic representatives abroad were instructed to inform the Government to which they were accredited that this change meant no alteration in Russian foreign policy Moscow Radio announced on May 4 that Molotov would carry on the policy of Western security that for years had been Litvinov's aim. The eminent Jew, the target of German antagonism, was flung aside for the time being like a broken tool, and, without being allowed a word of explanation, was bundled off the world stage to obscurity, a pittance, and police supervision. Molotov, little known outside Russia, became Commissar for Foreign Affairs, in the closest confederacy with Stalin He was free from all encumbrance of previous declarations, free from the League of Nations atmosphere, and able to move in any direction which the self-preservation of Russia might seem to require. There was in fact only one way in which he was now likely to move. He had always been favourable to an arrangement with Hitler. The Soviet Government were convinced by Munich and much else

that neither Britain nor France would fight till they were attacked, and would not be much good then. The gathering storm was about to break. Russia must look after herself

The dismissal of Litvinov marked the end of an epoch. It registered the abandonment by the Kremlin of all faith in a security pact with the Western Powers and in the possibility of organising an Eastern front against Germany. The German Press comments at the time, though not necessarily accurate, are interesting A dispatch from Warsaw was published in the German newspapers on May 4 stating that Litvinov had resigned after a bitter quarrel with Marshal Voroshilov ("the Party boy", as cheeky and daring Russians called him in moments of relaxation). Voroshilov, no doubt on precise instructions, had declared that the Red Army was not prepared to fight for Poland, and, in the name of the Russian General Staff, condemned "excessively far-reaching military obligations". On May 7 the *Frankfurter Zeitung* was already sufficiently informed to state that Litvinov's resignation was extremely serious for the future of Anglo-French "encirclement", and its probable meaning was that those in Russia concerned with the military burden resulting from it had called a halt to Litvinov. All this was true, but for an interval it was necessary that a veil of deceit should cover the immense transaction, and that even up to the latest moment the Soviet attitude should remain in doubt Russia must have a move both ways How else could she drive her bargain with the hated and dreaded Hitler?

* * * * *

The Jew Litvinov was gone, and Hitler's dominant prejudice placated From that moment the German Government ceased to define its foreign policy as anti-Bolshevism, and turned its abuse upon the "pluto-Democracies" Newspaper articles assured the Soviets that the German *Lebensraum* did not encroach on Russian territory, that indeed it stopped short of the Russian frontier at all points. Consequently there could be no cause of conflict between Russia and Germany unless the Soviets entered into "encirclement" engagements with England and France. The German Ambassador, Count Schulenburg, who had been summoned to Berlin for lengthy consultations, returned to Moscow with an offer of an advantageous goods-credit on a long-term basis The movement on both sides was towards a compact.

This violent and unnatural reversal of Russian policy was a transmogrification of which only totalitarian States are capable. Barely two years since the leaders of the Russian Army, Tukhachevsky and several thousands of its most accomplished officers, had been slaughtered for the very inclinations which now became acceptable to the handful of anxious masters in the Kremlin. Then pro-Germanism had been heresy and treason. Now, overnight, it was the policy of the State, and woe was mechanically meted out to any who dared dispute it, and often to those not quick enough on the turn-about.

For the task in hand no one was better fitted or equipped than the new Foreign Commissar.

* * * * *

The figure whom Stalin had now moved to the pulpit of Soviet foreign policy deserves some description, not available to the British or French Governments at the time. Vyacheslav Molotov was a man of outstanding ability and cold-blooded ruthlessness. He had survived the fearful hazards and ordeals to which all the Bolshevik leaders had been subjected in the years of triumphant revolution. He had lived and thrived in a society where ever-varying intrigue was accompanied by the constant menace of personal liquidation. His cannon-ball head, black moustache, and comprehending eyes, his slab face, his verbal adroitness and imperturbable demeanour, were appropriate manifestations of his qualities and skill. He was above all men fitted to be the agent and instrument of the policy of an incalculable machine. I have only met him on equal terms, in parleys where sometimes a strain of humour appeared, or at banquets where he genially proposed a long succession of conventional and meaningless toasts. I have never seen a human being who more perfectly represented the modern conception of a robot. And yet with all this there was an apparently reasonable and keenly-polished diplomatist. What he was to his inferiors I cannot tell. What he was to the Japanese Ambassador during the years when after the Teheran Conference Stalin had promised to attack Japan once the German Army was beaten can be deduced from his recorded conversations. One delicate, searching, awkward interview after another was conducted with perfect poise, impenetrable purpose, and bland, official correctitude. Never a chink was opened. Never a needless

jar was made His smile of Siberian winter, his carefully-measured and often wise words, his affable demeanour, combined to make him the perfect agent of Soviet policy in a deadly world.

Correspondence with him upon disputed matters was always useless, and, if pushed far, ended in lies and insults, of which this work will presently contain some examples Only once did I seem to get a natural, human reaction. This was in the spring of 1942, when he alighted in Britain on his way back from the United States. We had signed the Anglo-Soviet Treaty, and he was about to make his dangerous flight home At the garden gate of Downing Street, which we used for secrecy, I gripped his arm and we looked each other in the face Suddenly he appeared deeply moved Inside the image there appeared the man. He responded with an equal pressure Silently we wrung each other's hands But then we were all together, and it was life or death for the lot Havoc and ruin had been around him all his days, either impending on himself or dealt by him to others Certainly in Molotov the Soviet machine had found a capable and in many ways a characteristic representative—always the faithful Party man and Communist disciple How glad I am at the end of my life not to have had to endure the stresses which he has suffered, better never be born. In the conduct of foreign affairs Mazarin, Talleyrand, Metternich, would welcome him to their company, if there be another world to which Bolsheviks allow themselves to go

* * * * *

From the moment when Molotov became Foreign Commissar he pursued the policy of an arrangement with Germany at the expense of Poland It was not very long before the French became aware of this. There is a remarkable dispatch by the French Ambassador in Berlin, dated May 7, published in the *French Yellow Book*, which states that on his secret information he was sure that a Fourth Partition of Poland was to be the basis of the German-Russian *rapprochement*. "Since the month of May," writes M. Daladier in April 1946, "the U.S.S.R had conducted two negotiations, one with France, the other with Germany She appeared to prefer to partition rather than to defend Poland. Such was the immediate cause of the Second World War"* But there were other causes too

* * * * *

* Quoted by Reynaud, *op cit*, I, 585

On May 8 the British Government at last replied to the Soviet Note of April 16. While the text of the British document was not published, the Tass Agency on May 9 issued a statement giving the main points of the British proposals. On May 10 the official organ *Isvestia* printed a communiqué to the effect that Reuter's statement of the British counter-proposals, namely, that "the Soviet Union must separately guarantee every neighbouring State, and that Great Britain must pledge herself to assist the U.S.S R. if the latter becomes involved in war as a result of its guarantees", did not correspond to fact. The Soviet Government, said the communiqué, had received the British counter-proposals on May 8, but these did not mention the Soviet Union's obligation to give a separate guarantee to each of its neighbouring States, whereas they did state that the U S S R was obliged to render immediate assistance to Great Britain and France in the event of their being involved in war under their guarantees to Poland and Roumania. No mention however was made of any assistance on their part to the Soviet Union in the event of its being involved in war in consequence of its obligations towards any Eastern European State

Later on the same day Mr Chamberlain said that the Government had undertaken their new obligations in Eastern Europe without inviting the direct participation of the Soviet Government on account of various difficulties His Majesty's Government had suggested that the Soviet Government should make, on their own behalf, a similar declaration, and express their readiness to lend assistance, if desired, to countries which might be victims of aggression and were prepared to defend their independence.

Almost simultaneously the Soviet Government presented a scheme at once more comprehensive and more rigid, which, whatever other advantages it might present, must in the view of His Majesty's Government inevitably raise the very difficulties which their own proposals had been designed to avoid. They accordingly pointed out to the Soviet Government the existence of these difficulties At the same time they made certain modifications in their original proposals In particular, they [H M G] made it plain that *if the Soviet Government wished to make their own intervention contingent on that of Great Britain and France, His Majesty's Government for their part would have no objection*

It was a pity that this had not been explicitly stated a fortnight earlier.

It should be mentioned here that on May 12 the Anglo-Turkish Agreement was formally ratified by the Turkish Parliament. By means of this addition to our commitments we hoped to strengthen our position in the Mediterranean in the event of a crisis. Here was our answer to the Italian occupation of Albania Just as the period of talking with Germany was over, so now we reached in effect the same deadlock with Italy.

The Russian negotiations proceeded languidly, and on May 19 the whole issue was raised in the House of Commons The debate, which was short and serious, was practically confined to the leaders of parties and to prominent ex-Ministers Mr. Lloyd George, Mr Eden, and I all pressed upon the Government the vital need of an immediate arrangement with Russia of the most far-reaching character and on equal terms Mr Lloyd George began, and painted a picture of gloom and peril in the darkest hues

The situation reminds me very much of the feeling that prevailed in the early spring of 1918 We knew there was a great attack coming from Germany, but no one quite knew where the blow would fall I remember that the French thought it would fall on their front, while our generals thought it would fall on ours. The French generals were not even agreed as to the part of their front on which the attack would fall, and our generals were equally divided All that we knew was that there was a tremendous onslaught coming somewhere, and the whole atmosphere was filled with, I will not say fear, but with uneasiness We could see the tremendous activities behind the German lines, and we knew that they were preparing something That is more or less what seems to me to be the position to-day. We are all very anxious, the whole world is under the impression that there is something preparing in the nature of another attack from the aggressors. Nobody quite knows where it will come. We can see that they are speeding up their armaments at a rate hitherto unprecedented, especially in weapons of the offensive—tanks, bombing aeroplanes, submarines We know that they are occupying and fortifying fresh positions that will give them strategic advantages in a war with France and ourselves

They are inspecting and surveying, from Libya to the North Sea, all sorts of situations that would be of vital importance in the event of war There is a secrecy in the movements behind the lines which is very ominous.

There is the same kind of secrecy as in 1918, in order to baffle us as to their objects They are not preparing for defence . They are not preparing themselves against attack from either France, Britain, or Russia. That has never been threatened I have never heard, either privately or publicly, any hint or suggestion that we were contemplating an attack upon Italy or Germany in any quarter, and they know it quite well Therefore all these preparations are not for defence They are for some contemplated offensive scheme against someone or other in whom we are interested.

* * * * *

Mr. Lloyd George then added some words of wisdom:

The main military purpose and scheme of the Dictators is to produce quick results, to avoid a prolonged war. A prolonged war never suits dictators. A prolonged war like the Peninsular War wears them down, and the great Russian defence, which produced no great military victory for the Russians, broke Napoleon Germany's ideal is now, and always has been, a war which is brought to a speedy end. The war against Austria in 1866 did not last more than a few weeks, and the war in 1870 was waged in such a way that it was practically over in a month or two. In 1914 plans were made with exactly the same aim in view, and it was very nearly achieved, and they would have achieved it but for Russia But from the moment they failed to achieve a speedy victory the game was up. You may depend upon it that the great military thinkers of Germany have been working out the problem, what was the mistake of 1914, what did they lack, how can they fill up the gaps and repair the blunders or avoid them in the next war?

Mr. Lloyd George, pressing on from fact to fancy, then suggested that the Germans had already got "twenty thousand tanks" and "thousands of bomber aeroplanes". This was far beyond the truth. Moreover, it was an undue appeal to the fear motive. And why had he not been busy all these years with my small group ingeminating rearmament? But his speech cast a chill over the assembly. Two years before, or better still three, such statements and all the pessimism of his speech would have been scorned and derided. But then there was time Now, whatever the figures, it was all too late.

The Prime Minister replied, and for the first time revealed to us his views on the Soviet offer His reception of it was certainly cool, and indeed disdainful

If we can evolve a method by which we can enlist the co-operation and assistance of the Soviet Union in building up that peace front, we welcome it; we want it, we attach value to it The suggestion that we despise the assistance of the Soviet Union is without foundation Without accepting any view of an unauthorised character as to the precise value of the Russian military forces, or the way in which they would best be employed, no one would be so foolish as to suppose that that huge country, with its vast population and enormous resources, would be *a negligible factor* in such a situation as that with which we are confronted

This seemed to show the same lack of proportion as we have seen in the rebuff to the Roosevelt proposals a year before.

I then took up the tale·

I have been quite unable to understand what is the objection to making the agreement with Russia which the Prime Minister professes himself desirous of doing, and making it in the broad and simple form proposed by the Russian Soviet Government

Undoubtedly, the proposals put forward by the Russian Government contemplate a Triple Alliance against aggression between England, France, and Russia, which alliance may extend its benefits to other countries if and when those benefits are desired The alliance is solely for the purpose of resisting further acts of aggression and of protecting the victims of aggression I cannot see what is wrong with that What is wrong with this simple proposal? It is said "Can you trust the Russian Soviet Government?" I suppose in Moscow they say "Can we trust Chamberlain?" I hope we may say that the answer to both questions is in the affirmative I earnestly hope so .

This Turkish proposal, which is universally accepted, is a great consolidating and stabilising force throughout the whole of the Black Sea area and the Eastern Mediterranean Turkey, with whom we have made this agreement, is in the closest harmony with Russia She is also in the closest harmony with Roumania These Powers together are mutually protecting vital interests . . .

There is a great identity of interests between Great Britain and the associated Powers in the South Is there not a similar identity of interests in the North? Take the countries of the Baltic, Lithuania, Latvia, and Esthonia, which were once the occasion of the wars of Peter the Great It is a major interest of Russia that these Powers should not fall into the hands of Nazi Germany That is a vital interest in the North I need not elaborate the arguments about [a German attack upon] the Ukraine, which means an invasion of Russian territory All along the whole of this Eastern front you can see that the major interests of

Russia are definitely engaged, and therefore it seems you could fairly judge that they would pool their interests with other countries similarly affected .

If you are ready to be an ally of Russia in time of war, which is the supreme test, the great occasion of all, if you are ready to join hands with Russia in the defence of Poland, which you have guaranteed, and of Roumania, why should you shrink from becoming the ally of Russia now, when you may by that very fact prevent the breaking out of war? I cannot understand all these refinements of diplomacy and delay If the worst comes to the worst, you are in the midst of it with them, and you have to make the best of it with them If the difficulties do not arise, well, you will have had the security in the preliminary stages.

His Majesty's Government have given a guarantee to Poland I was astounded when I heard them give this guarantee I support it, but I was astounded by it, because nothing that had happened before led one to suppose that such a step would be taken I want to draw the attention of the Committee to the fact that the question posed by Mr Lloyd George ten days ago and repeated to-day has not been answered The question was whether the General Staff was consulted before this guarantee was given as to whether it was safe and practical to give it, and whether there were any means of implementing it The whole country knows that the question has been asked, and it has not been answered That is disconcerting and disquieting. . .

Clearly Russia is not going to enter into agreements unless she is treated as an equal, and not only is treated as an equal, but has confidence that the methods employed by the Allies—by the peace front—are such as would be likely to lead to success No one wants to associate themselves with indeterminate leadership and uncertain policies. The Government must realise that none of these States in Eastern Europe can maintain themselves for, say, a year's war unless they have behind them the massive, solid backing of a friendly Russia, joined to the combination of the Western Powers In the main, I agree with Mr Lloyd George that if there is to be an effective Eastern front—an Eastern peace front, or a war front as it might become—it can be set up only with the effective support of a friendly Soviet Russia lying behind all those countries

Unless there is an Eastern front set up, what is going to happen to the West? What is going to happen to those countries on the Western front to whom, if we have not given guarantees, it is admitted we are bound—countries like Belgium, Holland, Denmark, and Switzerland? Let us look back to the experiences we had in 1917. In 1917 the Russian front was broken and demoralised Revolution and mutiny had sapped

the courage of that great disciplined army, and the conditions at the front were indescribable; and yet, until the treaty was made closing the front down, more than 1,500,000 Germans were held upon that front, even in its most ineffectual and unhappy condition. Once that front was closed down, 1,000,000 Germans and 5,000 cannon were brought to the West, and at the last moment almost turned the course of the war and forced upon us a disastrous peace

It is a tremendous thing, this question of the Eastern front. I am astonished that there is not more anxiety about it Certainly, I do not ask favours of Soviet Russia. This is no time to ask favours of countries But here is an offer, a fair offer, and a better offer, in my opinion, than the terms which the Government seek to get for themselves, a more simple, a more direct and a more effective offer Let it not be put aside and come to nothing I beg His Majesty's Government to get some of these brutal truths into their heads Without an effective Eastern front there can be no satisfactory defence of our interests in the West, and without Russia there can be no effective Eastern front If His Majesty's Government, having neglected our defences for a long time, having thrown away Czechoslovakia with all that Czechoslovakia meant in military power, having committed us, without examination of the technical aspects, to the defence of Poland and Roumania, now reject and cast away the indispensable aid of Russia, and so lead us in the worst of all ways into the worst of all wars, they will have ill deserved the confidence and, I will add, the generosity with which they have been treated by their fellow-countrymen

There can be little doubt that all this was now too late Attlee, Sinclair, and Eden spoke on the general line of the imminence of the danger and the need of the Russian alliance. The position of the leaders of the Labour and Liberal Parties was weakened by the vote against compulsory national service to which they had led their followers only a few weeks before. The plea, so often advanced, that this was because they did not like the foreign policy was feeble, for no foreign policy can have validity if there is no adequate force behind it, and no national readiness to make the necessary sacrifices to produce that force.

* * * * *

The efforts of the Western Powers to produce a defensive alignment against Germany were well matched by the other side Conversations between Ribbentrop and Ciano at Como at the beginning of May came to formal and public fruition in the so-called "Pact of Steel", signed by the two Foreign Ministers in

Berlin on May 22. This was the challenging answer to the flimsy British network of guarantees in Eastern Europe. Ciano in his diary records a conversation with Hitler at the time of the signature of this alliance.

> Hitler states that he is well satisfied with the Pact, and confirms the fact that Mediterranean policy will be directed by Italy He takes an interest in Albania, and is enthusiastic about our programme for making of Albania a stronghold which will inexorably dominate the Balkans *

Hitler's satisfaction was more clearly revealed when on the day following the signing of the Pact of Steel, May 23, he held a meeting with his Chiefs of Staff The secret minutes of the conversations are on record

> We are at present in a state of patriotic fervour, which is shared by two other nations—Italy and Japan The period which lies behind us has indeed been put to good use All measures have been taken in the correct sequence and in harmony with our aims The Pole is no "supplementary enemy" Poland will always be on the side of our adversaries In spite of treaties of friendship, Poland has always had the secret intention of exploiting every opportunity to do us harm Danzig is not the subject of the dispute at all. It is a question of expanding our living space in the East and of securing our food supplies There is therefore no question of sparing Poland, and we are left with the decision to attack Poland at the first suitable opportunity We cannot expect a repetition of the Czech affair There will be war Our task is to isolate Poland. The success of the isolation will be decisive
>
> If it is not certain that a German-Polish conflict will not lead to war in the West, then the fight must be primarily against England and France If there were an alliance of France, England, and Russia against Germany, Italy, and Japan, I should be constrained to attack England and France with a few annihilating blows I doubt the possibility of a peaceful settlement with England We must prepare ourselves for the conflict England sees in our development the foundation of a hegemony which would weaken her England is therefore our enemy, and the conflict with England will be a life-and-death struggle The Dutch and Belgian air bases must be occupied by armed force Declarations of neutrality must be ignored
>
> If England intends to intervene in the Polish war we must occupy Holland with lightning speed We must aim at securing a new defence line on Dutch soil up to the Zuyder Zee The idea that we can get off

* *Ciano's Diary*, p 90.

cheaply is dangerous, there is no such possibility We must burn our boats, and it is no longer a question of justice or injustice, but of life or death for eighty million human beings Every country's armed forces or Government must aim at a short war The Government however must also be prepared for a war of ten or fifteen years' duration

England knows that to lose a war will mean the end of her world-power England is the driving force against Germany

The British themselves are proud, courageous, tenacious, firm in resistance, and gifted as organisers. They know how to exploit every new development They have the love of adventure and the bravery of the Nordic race The German average is higher But if in the first World War we had had two battleships and two cruisers more, and if the Battle of Jutland had begun in the morning, the British Fleet would have been defeated* and England brought to her knees In addition to the surprise attack, preparations for a long war must be made, while opportunities on the Continent for England are eliminated The Army will have to hold positions essential to the Navy and Air Force If Holland and Belgium are successfully occupied and held, and if France is also defeated, the fundamental conditions for a successful war against England will have been secured

On May 30 the German Foreign Office sent the following instructions to their Ambassador in Moscow "Contrary to the policy previously planned, we have now decided to undertake definite negotiations with the Soviet Union "† While the ranks of the Axis closed for military preparation, the vital link of the Western Powers with Russia had perished The underlying discordance of view can be read into Foreign Commissar Molotov's speech of May 31 in reply to Mr. Chamberlain's speech in the Commons of May 19.

As far back [he said] as the middle of April the Soviet Government entered into negotiations with the British and French Governments about the necessary measures to be taken The negotiations started then are not yet concluded It became clear some time ago that if there was any real desire to create an efficient front of peaceable countries against the advance of aggression the following minimum conditions were imperative

* *Nuremberg Documents*, I, pp 167–8 Hitler was evidently quite ignorant of the facts of Jutland, which was from beginning to end an unsuccessful effort by the British Fleet to bring the Germans to a general action, in which the overwhelming gunfire of the British line of battle would soon have been decisive

† *Nazi-Soviet Relations*, p 15

The conclusion between Great Britain, France, and the U.S.S.R. of an effective pact of mutual assistance against aggression, of an exclusively defensive character.

A guarantee on the part of Great Britain, France, and the U.S.S.R. of the States of Central and Eastern Europe, including, without exception, all the European countries bordering on the U.S.S.R., against an attack by aggressors.

The conclusion between Great Britain, France, and the U.S.S.R. of a definite agreement on the forms and extent of the immediate and effective assistance to be rendered to one another and to the guaranteed States in the event of an attack by aggressors.

The negotiations had come to a seemingly unbreakable deadlock. The Polish and Roumanian Governments, while accepting the British guarantee, were not prepared to accept a similar undertaking in the same form from the Russian Government. A similar attitude prevailed in another vital strategic quarter—the Baltic States. The Soviet Government made it clear that they would only adhere to a pact of mutual assistance if Finland and the Baltic States were included in a general guarantee. All four countries now refused, and perhaps in their terror would for a long time have refused such a condition. Finland and Esthonia even asserted that they would consider a guarantee extended to them without their assent as an act of aggression. On June 7 Esthonia and Latvia signed non-aggression pacts with Germany. Thus Hitler penetrated with ease into the final defences of the tardy, irresolute coalition against him.

CHAPTER XXI

ON THE VERGE

The Threat to Danzig – General Gamelin Invites Me to Visit the Rhine Front – A Tour with General Georges – Some Impressions – French Acceptance of the Defensive – The Position of Atomic Research – My Note on Air Defence – Renewed Efforts to Agree with Soviet Russia – Polish Obstruction – The Military Conversations in Moscow – Stalin's Account to Me in 1942 – A Record in Deceit – Ribbentrop Invited to Moscow – The Russo-German Non-Aggression Treaty – The News Breaks upon the World – Hitler's Army Orders – "Honesty is the Best Policy" – British Precautionary Measures – The Prime Minister's Letter to Hitler – An Insolent Reply – Hitler Postpones D-Day – Hitler's Letter to Mussolini – The Duce's Reply – The Last Few Days.

SUMMER advanced, preparations for war continued throughout Europe, and the attitudes of diplomatists, the speeches of politicians, and the wishes of mankind counted each day for less. German military movements seemed to portend the forcible settlement of the dispute with Poland over Danzig as a preliminary to the assault on Poland itself. Mr. Chamberlain expressed his anxieties to Parliament on June 10, and repeated his intention to stand by Poland if her independence were threatened In a spirit of detachment from the facts the Belgian Government, largely under the influence of their King, announced on June 23 that they were opposed to Staff talks with England and France and that Belgium intended to maintain a strict neutrality The tide of events brought with it a closing of the ranks between England and France, and also at home There was much coming and going between Paris and London during the month of July The celebrations of the Fourteenth of July were an occasion for a

display of Anglo-French union. I was invited by the French Government to attend this brilliant spectacle

As I was leaving Le Bourget after the parade General Gamelin suggested that I should visit the French front "You have never seen the Rhine sector," he said. "Come then in August, we will show you everything" Accordingly a plan was made, and on August 15 General Spears and I were welcomed by his close friend, General Georges, Commander-in-Chief of the armies on the North-eastern front and *Successeur Eventuel* to the Supreme Command I was delighted to meet this most agreeable and competent officer, and we passed the next ten days in his company, revolving military problems and making contacts with Gamelin, who was also inspecting certain points on this part of the front

Beginning at the angle of the Rhine near Lauterbourg, we traversed the whole section to the Swiss frontier In England, as in 1914, the carefree people were enjoying their holidays and playing with their children on the sands But here along the Rhine a different light glared All the temporary bridges across the river had been removed to one side or the other The permanent bridges were heavily guarded and mined Trusty officers were stationed night and day to press at a signal the buttons which would blow them up The great river, swollen by the melting Alpine snows, streamed along in sullen, turgid flow. The French outposts crouched in their rifle-pits amid the brushwood Two or three of us could stroll together to the water's edge, but nothing like a target, we were told, must be presented Three hundred yards away on the farther side, here and there among the bushes, German figures could be seen working rather leisurely with pick and shovel at their defences All the riverside quarter of Strasbourg had already been cleared of civilians I stood on its bridge for some time and watched one or two motor-cars pass over it Prolonged examination of passports and character took place at either end. Here the German post was little more than a hundred yards away from the French. There was no intercourse between them Yet Europe was at peace. There was no dispute between Germany and France The Rhine flowed on, swirling and eddying, at six or seven miles an hour One or two canoes with boys in them sped past on the current I did not see the Rhine again until more than five years later, in March 1945, when

I crossed it in a small boat with Field-Marshal Montgomery. But that was near Wesel, far to the north

On my return I sent a few notes of what I had gathered to the Secretary of State for War, and perhaps to some other Ministers with whom I was in touch

The French Front cannot be surprised. It cannot be broken at any point except by an effort which would be enormously costly in life, and would take so much time that the general situation would be transformed while it was in progress The same is true, though to a lesser extent, of the German side.

The flanks of this front however rest upon two small neutral States. The attitude of Belgium is thought to be profoundly unsatisfactory At present there are no military relations of any kind between the French and the Belgians

At the other end of the line, about which I was able to learn a good deal, the French have done everything in their power to prepare against an invasion through Switzerland This operation would take the form of a German advance up the Aar, protected on its right by a movement into or towards the Belfort Gap I personally think it extremely unlikely that any heavy German attempt will be made either against the French Front or against the two small countries on its flanks in the opening phase

It is not necessary for Germany to mobilise before attacking Poland They have enough divisions already on a war footing to act upon their eastern front, and would have time to reinforce the Siegfried Line by mobilising simultaneously with the beginning of a heavy attack on Poland Thus a German mobilisation is a warning signal which may not be forthcoming in advance of war The French, on the other hand, may have to take extra measures in the period of extreme tension now upon us

As to date, it is thought Hitler would be wise to wait until the snow falls in the Alps and gives the protection of winter to Mussolini During the first fortnight of September, or even earlier, these conditions would be established There would still be time for Hitler to strike heavily at Poland before the mud period of late October or early November would hamper a German offensive there Thus this first fortnight in September seems to be particularly critical, and the present German arrangements for the Nuremberg demonstration—propaganda, etc — seem to harmonise with such a conclusion

★ ★ ★ ★ ★

What was remarkable about all I learned on my visit was the complete acceptance of the defensive which dominated my most

responsible French hosts, and imposed itself irresistibly upon me. In talking to all these highly competent French officers one had the sense that the Germans were the stronger, and that France had no longer the life-thrust to mount a great offensive. She would fight for her existence—*Voilà tout!* There was the fortified Siegfried Line, with all the increased fire-power of modern weapons. In my own bones, too, was the horror of the Somme and Passchendaele offensives The Germans were of course far stronger than in the days of Munich. We did not know the deep anxieties which rent their High Command. We had allowed ourselves to get into such a condition, physically and psychologically, that no responsible person—and up to this point I had no responsibilities—could act on the assumption—which was true—that only forty-two half-equipped and half-trained German divisions guarded their long front from the North Sea to Switzerland. This compared with thirteen at the time of Munich.

* * * * *

In these final weeks my fear was that His Majesty's Government, in spite of our guarantee, would recoil from waging war upon Germany if she attacked Poland There is no doubt that at this time Mr. Chamberlain had resolved to take the plunge, bitter though it was to him. But I did not know him so well as I did a year later. I feared that Hitler might try a bluff about some novel agency or secret weapon which would baffle or puzzle the overburdened Cabinet. From time to time Professor Lindemann had talked to me about Atomic Energy. I therefore asked him to let me know how things stood in this sphere, and after a conversation I wrote the following letter to Kingsley Wood, with whom my fairly intimate relations have been mentioned:

Mr Churchill to Secretary of State for Air *August* 5, 1939

Some weeks ago one of the Sunday papers splashed the story of the immense amount of energy which might be released from uranium by the recently discovered chain of processes which take place when this particular type of atom is split by neutrons At first sight this might seem to portend the appearance of new explosives of devastating power *In view of this it is essential to realise that there is no danger that this discovery, however great its scientific interest, and perhaps ultimately its practical importance, will lead to results capable of being put into operation on a large scale for several years*

There are indications that tales will be deliberately circulated when

international tension becomes acute about the adaptation of this process to produce some terrible new secret explosive, capable of wiping out London. Attempts will no doubt be made by the Fifth Column to induce us by means of this threat to accept another surrender For this reason it is imperative to state the true position.

First, the best authorities hold that only a minor constituent of uranium is effective in these processes, and that it will be necessary to extract this before large-scale results are possible This will be a matter of many years. Secondly, the chain process can take place only if the uranium is concentrated in a large mass. As soon as the energy develops it will explode with a mild detonation before any really violent effects can be produced * It might be as good as our present-day explosives, but it is unlikely to produce anything very much more dangerous Thirdly, these experiments cannot be carried out on a small scale. If they had been successfully done on a big scale (*i e.*, with the results with which we shall be threatened unless we submit to blackmail) it would be impossible to keep them secret. Fourthly, only a comparatively small amount of uranium in the territories of what used to be Czechoslovakia is under the control of Berlin

For all these reasons the fear that this new discovery has provided the Nazis with some sinister, new, secret explosive with which to destroy their enemies is clearly without foundation Dark hints will no doubt be dropped and terrifying whispers will be assiduously circulated, but it is hoped that nobody will be taken in by them.

It is remarkable how accurate this forecast was Nor was it the Germans who found the path. Indeed they followed the wrong trail, and had actually abandoned the search for the Atomic Bomb in favour of rockets or pilotless aeroplanes at the moment when President Roosevelt and I were taking the decisions and reaching the memorable agreements, which will be described in their proper place, for the large-scale manufacture of atomic bombs.

I also wrote in my final paper for the Air Defence Research Committee

August 10, 1939

The main defence of England against air raids is the toll which can be extracted from the raiders One-fifth knocked out each go will soon bring the raids to an end . We must imagine the opening attack as a large affair crossing the sea in relays for many hours But it is not the first results of the air attack which will govern the future of the air war It is not child's-play to come and attack England A

* This difficulty was of course overcome later by only very elaborate methods after several years of research

heavy proportion of casualties will lead the enemy to make severe calculations of profit and loss As daylight raiding will soon become too expensive, we have chiefly to deal with random night-bombing of the built-up areas.

* * * * *

"Tell Chamberlain," said Mussolini to the British Ambassador on July 7, "that if England is ready to fight in defence of Poland, Italy will take up arms with her ally, Germany." But behind the scenes his attitude was the opposite. He sought at this time no more than to consolidate his interests in the Mediterranean and North Africa, to cull the fruits of his intervention in Spain, and to digest his Albanian conquest. He did not like being dragged into a European war for Germany to conquer Poland. For all his public boastings, he knew the military and political fragility of Italy better than anyone He was willing to talk about a war in 1942, if Germany would give him the munitions, but in 1939—no!

As the pressure upon Poland sharpened during the summer, Mussolini turned his thoughts upon repeating his Munich *rôle* of mediator, and he suggested a World Peace Conference Hitler curtly dispelled such ideas On August 11 Ciano met Ribbentrop at Salzburg According to Ciano's diary

> The Duce is anxious for me to prove by documentary evidence that an outbreak of war at this time would be folly. . . . It would be impossible to localise it in Poland, and a general war would be disastrous for everyone Never has the Duce spoken of the need for peace so unreservedly and with so much warmth . Ribbentrop is evasive Whenever I ask him for particulars about German policy his conscience troubles him. He has lied too many times about German intentions towards Poland not to feel uneasy now about what he must tell me, and what they are really planning to do The German decision to fight is implacable. Even if they were given more than they ask they would attack just the same, because they are possessed by the demon of destruction . At times our conversation becomes very tense I do not hesitate to express my thoughts with brutal frankness But this does not move him I am becoming aware how little we are worth in the opinion of the Germans *

Ciano went on to see Hitler the next day We have the German minutes of this meeting. Hitler made it clear that he intended to

* *Ciano's Diary*, p 123.

settle with Poland, that he would be forced to fight England and France as well, and that he wanted Italy to come in. He said, "If England keeps the necessary troops in her own country, she can send to France at the most two infantry divisions and one armoured division For the rest she could supply a few bomber squadrons, but hardly any fighters, because the German Air Force would at once attack England, and the English fighters would be urgently needed for its defence" About France he said that after the destruction of Poland—which would not take long—Germany would be able to assemble hundreds of divisions along the West Wall, and France would thus be compelled to concentrate all her available forces from the colonies and from the Italian frontier and elsewhere on her Maginot Line for the life-and-death struggle Ciano in reply expressed his surprise at the gravity of what he had been told. There had, he complained, never been any previous sign from the German side that the Polish quarrel was so serious and imminent. On the contrary, Ribbentrop had said that the Danzig question would be settled in the course of time. The Duce, convinced that a conflict with the Western Powers was unavoidable, had assumed that he should make plans for this event during a period of two or three years

After these interchanges Ciano returned gloomily to report to his master, whom he found more deeply convinced that the Democracies would fight, and even more resolved to keep out of the struggle himself

* * * * *

A renewed effort to come to an arrangement with Soviet Russia was made by the British and French Governments It was decided to send a special envoy to Moscow. Mr. Eden, who had made useful contacts with Stalin some years before, volunteered to go. This generous offer was declined by the Prime Minister. Instead on June 12 Mr. Strang, an able official but without any special standing outside the Foreign Office, was entrusted with this momentous mission This was another mistake The sending of so subordinate a figure gave actual offence It is doubtful whether he was able to pierce the outer crust of the Soviet organism. In any case all was now too late. Much had happened since M. Maisky had been sent to see me at Chartwell in August 1938 Munich had happened Hitler's armies had had

a year more to mature. His munitions factories, reinforced by the Skoda works, were all in full blast. The Soviet Government cared much for Czechoslovakia; but Czechoslovakia was gone. Beneš was in exile. A German Gauleiter ruled in Prague.

On the other hand, Poland presented to Russia an entirely different set of age-long political and strategic problems. Their last major contact had been the Battle of Warsaw in 1920, when the Bolshevik armies under Kamieniev had been hurled back from their invasion by Pilsudski, aided by the advice of General Weygand and the British Mission under Lord D'Abernon, and thereafter pursued with bloody vengeance. All these years Poland had been a spear-point of anti-Bolshevism. With her left hand she joined and sustained the anti-Soviet Baltic States. But with her right hand, at Munich-time, she had helped to despoil Czechoslovakia. The Soviet Government were sure that Poland hated them, and also that Poland had no power to withstand a German onslaught. They were however very conscious of their own perils and of their need for time to repair the havoc in the High Commands of their armies. In these circumstances the prospects of Mr Strang's mission were not exuberant.

The negotiations wandered around the question of the reluctance of Poland and the Baltic States to be rescued from Germany by the Soviets, and here they made no progress. In its leading article of June 13 *Pravda* had already declared that an effective neutrality of Finland, Esthonia, and Latvia was vital to the safety of the U S.S.R. The security of such States, it said, was of prime importance for Britain and France, as "even such a politician as Mr. Churchill" had recognised The issue was discussed in Moscow on June 15 On the following day the Russian Press declared that "in the circles of the Soviet Foreign Ministry results of the first talks are regarded as not entirely favourable". All through July the discussions continued fitfully, and eventually the Soviet Government proposed that conversations should be continued on a military basis with both French and British representatives. The British Government therefore dispatched Admiral Drax with a mission to Moscow on August 10 These officers possessed no written authority to negotiate. The French Mission was headed by General Doumenc On the Russian side Marshal Voroshilov officiated. We now know that at this same time the Soviet Government agreed to the journey of a German negotiator

to Moscow. The military conference soon foundered upon the refusal of Poland and Roumania to allow the transit of Russian troops. The Polish attitude was, "With the Germans we risk losing our liberty, with the Russians our soul".*

* * * * *

At the Kremlin in August 1942 Stalin, in the early hours of the morning, gave me one aspect of the Soviet position "We formed the impression," said Stalin, "that the British and French Governments were not resolved to go to war if Poland were attacked, but that they hoped the diplomatic line-up of Britain, France, and Russia would deter Hitler We were sure it would not." "How many divisions," Stalin had asked, "will France send against Germany on mobilisation?" The answer was, "About a hundred" He then asked, "How many will England send?" The answer was, "Two, and two more later" "Ah, two, and two more later," Stalin had repeated. "Do you know," he asked, "how many divisions we shall have to put on the Russian front if we go to war with Germany?" There was a pause. "More than three hundred" I was not told with whom this conversation took place or its date It must be recognised that this was solid ground, but not favourable for Mr Strang of the Foreign Office.

It was judged necessary by Stalin and Molotov for bargaining purposes to conceal their true intentions till the last possible moment. Remarkable skill in duplicity was shown by Molotov and his subordinates in all their contacts with both sides. As late as August 4 the German Ambassador Schulenburg could only telegraph from Moscow: "From Molotov's whole attitude it was evident that the Soviet Government was in fact more prepared for improvement in German-Soviet relations, but that the old mistrust of Germany persists. My overall impression is that the Soviet Government is at present determined to sign with England and France if they fulfil all Soviet wishes. Negotiations, to be sure, might still last a long time, especially since the mistrust of England is also great. . . . It will take a considerable effort on our part to cause the Soviet Government to swing about "† He need not have worried The die was cast.

* * * * *

* Quoted in Reynaud, *op cit*, I, p 587.
† *Nazi-Soviet Relations*, p 41

On the evening of August 19 Stalin announced to the Politburo his intention to sign a pact with Germany. On August 22 Marshal Voroshilov was not to be found by the Allied missions until evening. He then said to the head of the French Mission, "The question of military collaboration with France has been in the air for several years, but has never been settled Last year, when Czechoslovakia was perishing, we waited for a signal from France, but none was given Our troops were ready . . The French and English Governments have now dragged out the political and military discussions too long For that reason the possibility is not to be excluded that certain political events may take place. . . ." The next day Ribbentrop arrived in Moscow *

* * * * *

We now possess in the Nuremberg documents, and in those captured and recently published by the United States, the details of this never-to-be-forgotten transaction According to Ribbentrop's chief assistant, Gauss, who flew with him to Moscow, "On the evening of August 23 the first conversation between Ribbentrop and Stalin took place . The Reich Foreign Minister returned very satisfied from this long conference. . . ." Later in the day an agreement on the text of the Soviet-German Non-Aggression Pact was reached quickly and without difficulties. "Ribbentrop himself," says Gauss, "had inserted in the preamble a rather far-reaching phrase concerning the formation of friendly German-Soviet relations To this Stalin objected, remarking that the Soviet Government could not suddenly present to their public a German-Soviet declaration of friendship after they had been covered with *pails of manure* by the Nazi Government for six years Thereupon this phrase in the preamble was deleted." In a secret agreement Germany declared herself politically disinterested in Latvia, Esthonia, and Finland, but considered Lithuania to be in her sphere of influence. A demarcation line was drawn for the Polish partition. In the Baltic countries Germany claimed only economic interests The Non-Aggression Pact and the secret agreement were signed rather late on the night of August 23 †

* * * *

* Reynaud, *op cit*, I, p 588.
† *Nuremberg Documents*, Pt X, pp 210 ff

Despite all that has been dispassionately recorded in this and the foregoing chapter, only totalitarian despotism in both countries could have faced the odium of such an unnatural act. It is a question whether Hitler or Stalin loathed it most. Both were aware that it could only be a temporary expedient The antagonisms between the two empires and systems were mortal. Stalin no doubt felt that Hitler would be a less deadly foe to Russia after a year of war with the Western Powers Hitler followed his method of "One at a time". The fact that such an agreement could be made marks the culminating failure of British and French foreign policy and diplomacy over several years.

On the Soviet side it must be said that their vital need was to hold the deployment positions of the German armies as far to the west as possible, so as to give the Russians more time for assembling their forces from all parts of their immense empire They had burnt in their minds the disasters which had come upon their armies in 1914, when they had hurled themselves forward to attack the Germans while still themselves only partly mobilised. But now their frontiers lay far to the east of those of the previous war. They must be in occupation of the Baltic States and a large part of Poland by force or fraud before they were attacked If their policy was cold-blooded, it was also at the moment realistic in a high degree.

The sinister news broke upon the world like an explosion. On August 21–22 the Soviet Tass Agency stated that Ribbentrop was flying to Moscow to sign a Non-Aggression Pact with the Soviet Union Whatever emotions the British Government may have experienced, fear was not among them. They lost no time in declaring that "such an event would in no way affect their obligations, which they were determined to fulfil". Nothing could now avert or delay the conflict

It is still worth while to record the terms of the Pact.

Both High Contracting Parties obligate themselves to desist from any act of violence, any aggressive action, and any attack on each other, either individually or jointly with other Powers.

This treaty was to last ten years, and if not denounced by either side one year before the expiration of that period would be auto-

matically extended for another five years. There was much jubilation and many toasts around the conference table. Stalin spontaneously proposed the toast of the Fuehrer, as follows "I know how much the German nation loves its Fuehrer, I should therefore like to drink his health" A moral may be drawn from all this, which is of homely simplicity "Honesty is the best policy." Several examples of this will be shown in these pages. Crafty men and statesmen will be shown misled by all their elaborate calculations. But this is the signal instance. Only twenty-two months were to pass before Stalin and the Russian nation in its scores of millions were to pay a frightful forfeit If a Government has no moral scruples it often seems to gain great advantages and liberties of action, but "All comes out even at the end of the day, and all will come out yet more even when all the days are ended"

* * * * *

Hitler was sure from secret interchanges that the Russian Pact would be signed on August 22 Even before Ribbentrop returned from Moscow or the public announcement was made he addressed his Commanders-in-Chief as follows

> We must be determined from the beginning to fight the Western Powers. . . . The conflict with Poland was bound to come sooner or later I had already made this decision in the spring, but I thought I would first turn against the West and only afterwards against the East . We need not be afraid of a blockade The East will supply us with grain, cattle, coal . . I am only afraid that at the last minute some *Schweinhund* will make a proposal for mediation . . The political aim is set further. A beginning has been made for the destruction of England's hegemony The same is open for the soldier, after I have made the political preparations.

* * * * *

On the news of the German-Soviet Pact the British Government at once took precautionary measures Orders were issued for key parties of the coast and anti-aircraft defences to assemble, and for the protection of vulnerable points Telegrams were sent to Dominion Governments and to the Colonies warning them that it might be necessary in the very near future to institute the precautionary stage. The Lord Privy Seal was authorised to bring the Regional Organisations to a war footing On August 23 the Admiralty received Cabinet authority to requisition twenty-

five merchantmen for conversion to armed merchant cruisers, and thirty-five trawlers to be fitted with Asdics. Six thousand reservists for the overseas garrisons were called up The anti-aircraft defence of the Radar stations and the full deployment of the anti-aircraft forces were approved. Twenty-four thousand reservists of the Air Force and all the Air Auxiliary Force, including the balloon squadrons, were called up All leave was stopped throughout the fighting services The Admiralty issued warnings to merchant shipping Many other steps were taken.

* * * * *

The Prime Minister decided to write to Hitler about these preparatory measures. This letter does not appear in Mr Feiling's biography, but has been printed elsewhere In justice to Mr Chamberlain it should certainly be widely read.

> Your Excellency will have already heard of certain measures taken by His Majesty's Government and announced in the Press and on the wireless this evening
>
> These steps have, in the opinion of His Majesty's Government, been rendered necessary by the military movements which have been reported from Germany, and by the fact that apparently the announcement of a German-Soviet Agreement is taken in some quarters in Berlin to indicate that intervention by Great Britain on behalf of Poland is no longer a contingency that need be reckoned with No greater mistake could be made Whatever may prove to be the nature of the German-Soviet Agreement, it cannot alter Great Britain's obligation to Poland, which His Majesty's Government have stated in public repeatedly and plainly, and which they are determined to fulfil
>
> It has been alleged that if His Majesty's Government had made their position more clear in 1914 the great catastrophe would have been avoided Whether or not there is any force in that allegation, His Majesty's Government are resolved that on this occasion there shall be no such tragic misunderstanding If the need should arise, they are resolved and prepared to employ without delay all the forces at their command, and it is impossible to foresee the end of hostilities once engaged It would be a dangerous delusion to think that, if war once starts, it will come to an early end, even if a success on any one of the several fronts on which it will be engaged should have been secured
>
> At this time I confess I can see no other way to avoid a catastrophe that will involve Europe in war In view of the grave consequences to humanity which may follow from the action of their rulers, I trust

that Your Excellency will weigh with the utmost deliberation the considerations which I have put before you.*

Hitler's reply, after dwelling on the "unparalleled magnanimity" with which Germany was prepared to settle the question of Danzig and the Corridor, contained the following piece of lying effrontery:

> The unconditional assurance given by England to Poland that she would render assistance to that country in all circumstances, regardless of the causes from which a conflict might spring, could only be interpreted in that country as an encouragement henceforward to unloose, under cover of such a charter, a wave of appalling terrorism against the million and a half German inhabitants living in Poland †

On August 25 the British Government proclaimed a formal treaty with Poland, confirming the guarantees already given. It was hoped by this step to give the best chance of a settlement by direct negotiation between Germany and Poland in the face of the fact that if this failed Britain would stand by Poland. Said Goering at Nuremberg

> On the day when England gave her official guarantee to Poland the Fuehrer called me on the telephone and told me that he had stopped the planned invasion of Poland I asked him then whether this was just temporary or for good He said, "No, I shall have to see whether we can eliminate British intervention "‡

In fact Hitler postponed D-Day from August 25 to September 1, and entered into direct negotiation with Poland, as Chamberlain desired. His object was not however to reach an agreement with Poland, but to give His Majesty's Government every opportunity to escape from their guarantee Their thoughts, like those of Parliament and the nation, were upon a different plane It is a curious fact about the British Islanders, who hate drill and have not been invaded for nearly a thousand years, that as danger comes nearer and grows they become progressively less nervous, when it is imminent they are fierce, when it is mortal they are fearless These habits have led them into some very narrow escapes

* * * * *

* *Nuremberg Documents*, Pt II, pp 157-8
† *Ibid*, p 158
‡ *Ibid*, p. 166

A letter from Hitler to Mussolini at this time has recently been published in Italy.

Duce,

For some time Germany and Russia have been meditating upon the possibility of placing their mutual political relations upon a new basis The need to arrive at concrete results in this sense has been strengthened by

1 The condition of the world political situation in general

2 The continued procrastination of the Japanese Cabinet in taking up a clear stand Japan was ready for an alliance against Russia in which Germany—and in my view Italy—could only be interested in the present circumstances as a secondary consideration She was not agreeable however to assuming any clear obligations regarding England—a decisive question from the German side, and I think also from Italy's .

3 The relations between Germany and Poland have been unsatisfactory since the spring, and in recent weeks have become simply intolerable, not through the fault of the Reich, but principally because of British action These reasons have induced me to hasten on a conclusion of the Russian-German talks I have not yet informed you, Duce, in detail on this question But now in recent weeks the disposition of the Kremlin to engage in an exchange of relations with Germany—a disposition produced from the moment of the dismissal of Litvinov—has been increasingly marked, and has now made it possible for me, after having reached a preliminary clarification, to send my Foreign Minister to Moscow to draw up a treaty which is far and away the most extensive non-aggression pact in existence to-day, and the text of which will be made public The pact is unconditional, and establishes in addition the commitment to consult on all questions which interest Germany and Russia I can also inform you, Duce, that, given these undertakings, the benevolent attitude of Russia is assured, and *that above all there now exists no longer the possibility of any attack whatsoever on the part of Roumania in the event of a conflict* *

To this Mussolini sent an immediate answer

I am replying to your letter, which has just been delivered to me by Ambassador Mackensen

1 As far as the agreement with Russia is concerned, I completely approve

2 I feel it would be useful to avoid a rupture or coolness with Japan and her consequent drawing together with the group of democratic States

* *Hitler e Mussolini, Lettere e Documenti*, p 7.

3. The Moscow Pact blocks Roumania, and may change the position of Turkey, who has accepted an English loan but who has not yet signed the alliance. A new attitude on the part of Turkey would upset the strategic disposition of the French and English in the Eastern Mediterranean.

4. About Poland, I understand completely the German position and the fact that such a tense situation cannot continue indefinitely.

5. Regarding the practical attitude of Italy in the event of military action my point of view is the following:

If Germany attacks Poland and the conflict is localised Italy will give Germany every form of political and economic aid which may be required.

If Germany attacks Poland and the allies of the latter counter-attack Germany I must emphasise to you that I cannot assume the initiative of warlike operations, given the actual conditions of Italian military preparations, which have been repeatedly and in timely fashion pointed out to you, Fuehrer, and to von Ribbentrop.

Our intervention could however be immediate if Germany were to give us at once the munitions and raw materials to sustain the shock which the French and British would probably inflict upon us. In our previous meetings war was envisaged after 1942, and on this date I should have been ready on land, by sea, and in the air, according to our agreed plans.*

From this point Hitler knew, if he had not divined it already, that he could not count upon the armed intervention of Italy if war came. Any last-minute attempts by Mussolini to repeat his performance of Munich were brushed aside. It seems to have been from English rather than from German sources that the Duce learnt of the final moves. Ciano records in his diary on August 27, "The English communicate to us the text of the German proposals to London, about which we are kept entirely in the dark".† Mussolini's only need now was Hitler's acquiescence in Italy's neutrality. This was accorded to him.

* * * * *

On August 31 Hitler issued his "Directive Number 1 for the Conduct of the War":

1. Now that all the political possibilities of disposing by peaceful means of a situation on the Eastern frontier which is intolerable for Germany are exhausted, I have determined on a solution by force.

* *Hitler e Mussolini, Lettere e Documenti*, p. 10.
† *Ciano's Diary*, p. 136.

2. The attack on Poland is to be carried out in accordance with the preparation made for "Fall Weiss" [Case White], with the alterations which result, where the Army is concerned, from the fact that it has in the meantime almost completed its dispositions. Allotment of tasks and the operational targets remain unchanged.

The date of attack—September 1, 1939. Time of attack—04.45 [inserted in red pencil]

3. In the West it is important that the responsibility for the opening of hostilities should rest unequivocally with England and France. At first purely local action should be taken against insignificant frontier violations.*

* * * * *

On my return from the Rhine front I passed some sunshine days at Madame Balsan's place, with a pleasant but deeply anxious company, in the old château where King Henry of Navarre had slept the night before the Battle of Ivry. Mrs Euan Wallace and her sons were with us. Her husband was a Cabinet Minister. She was expecting him to join her. Presently he telegraphed he could not come, and would explain later why. Other signs of danger drifted in upon us. One could feel the deep apprehension brooding over all, and even the light of this lovely valley of the Eure seemed robbed of its genial ray. I found painting hard work in this uncertainty. On August 26 I decided to go home, where at least I could find out what was going on. I told my wife I would send her word in good time. On my way through Paris I gave General Georges luncheon. He produced all the figures of the French and German Armies, and classified the divisions in quality. The result impressed me so much that for the first time I said, "But you are the masters." He replied, "The Germans have a very strong Army, and we shall never be allowed to strike first. If they attack, both our countries will rally to their duty."

That night I slept at Chartwell, where I had asked General Ironside to stay with me next day. He had just returned from Poland, and the reports he gave of the Polish Army were most favourable. He had seen a divisional attack exercise under a live barrage, not without casualties. Polish morale was high. He stayed three days with me, and we tried hard to measure the unknowable. Also at this time I completed bricklaying the kitchen

* *Nuremberg Documents*, Pt. II, p. 172.

of the cottage which during the year past I had prepared for our family home in the years which were to come My wife, on my signal, came over *via* Dunkirk on August 30.

* * * * *

There were known to be twenty thousand organised German Nazis in England at this time, and it would only have been in accord with their procedure in other friendly countries that the outbreak of war should be preceded by a sharp prelude of sabotage and murder. I had at that time no official protection, and I did not wish to ask for any, but I thought myself sufficiently prominent to take precautions I had enough information to convince me that Hitler recognised me as a foe. My former Scotland Yard detective, Inspector Thompson, was in retirement. I told him to come along and bring his pistol with him. I got out my own weapons, which were good While one slept the other watched. Thus nobody would have had a walk-over. In these hours I knew that if war came—and who could doubt its coming?—a major burden would fall upon me.

BOOK II

THE TWILIGHT WAR

September 3, 1939 – May 10, 1940

CHAPTER XXII

WAR

Mr Chamberlain's Invitation – The Pause of September 2 – War Declared, September 3 – The First Air Alarm – At the Admiralty Once More – Admiral Sir Dudley Pound – My Knowledge of Naval Matters – Contrast between 1914 and 1939 – The Naval Strategic Situation – The Baltic – The Kiel Canal – The Attitude of Italy – Our Mediterranean Strategy – The Submarine Menace – The Air Menace – The Attitude of Japan – Singapore – The Security of Australia and New Zealand – Composition of the War Cabinet – Mr. Chamberlain's First Selections – An Antediluvian – The Virtues of Siesta.

POLAND was attacked by Germany at dawn on September 1. The mobilisation of all our forces was ordered during the morning. The Prime Minister asked me to visit him in the afternoon at Downing Street. He told me that he saw no hope of averting a war with Germany, and that he proposed to form a small War Cabinet of Ministers without departments to conduct it He mentioned that the Labour Party were not, he understood, willing to share in a national coalition. He still had hopes that the Liberals would join him. He invited me to become a member of the War Cabinet I agreed to his proposal without comment, and on this basis we had a long talk on men and measures.

After some reflection, I felt that the average age of the Ministers who were to form the supreme executive of war direction would be thought too high, and I wrote to Mr. Chamberlain after midnight accordingly

2.9 39

Aren't we a very old team? I make out that the six you mentioned to me yesterday aggregate 386 years, or an average of over sixty-four! Only one year short of the Old Age Pension! If however you added Sinclair (49) and Eden (42) the average comes down to 57½.

If the *Daily Herald* is right that Labour will not come in, we shall certainly have to face a constant stream of criticism, as well as the many disappointments and surprises of which war largely consists Therefore it seems to me all the more important to have the Liberal Opposition firmly incorporated in our ranks Eden's influence with the section of Conservatives who are associated with him, as well as with moderate Liberal elements, also seems to me to be a very necessary reinforcement.

The Poles have now been under heavy attack for thirty hours, and I am much concerned to hear that there is talk in Paris of a further note. I trust you will be able to announce our Joint Declaration of War at *latest* when Parliament meets this afternoon.

The *Bremen* will soon be out of the interception zone unless the Admiralty take special measures and the signal is given to-day. This is only a minor point, but it may well be vexatious.

I remain here at your disposal.*

I was surprised to hear nothing from Mr Chamberlain during the whole of September 2, which was a day of intense crisis. I thought it probable that a last-minute effort was being made to preserve peace, and this proved true However, when Parliament met in the evening a short but very fierce debate occurred, in which the Prime Minister's temporising statement was ill-received by the House. When Mr. Greenwood rose to speak on behalf of the Labour Opposition Mr Amery from the Conservative benches cried out to him, "Speak for England" This was received with loud cheers. There was no doubt that the temper of the House was for war. I even deemed it more resolute and united than in the similar scene on August 3, 1914, in which I had also taken part In the evening a number of gentlemen of importance in all parties called upon me at my flat opposite the Westminster Cathedral, and all expressed deep anxiety lest we should fail in our obligations to Poland. The House was to meet again at noon the next day. I wrote that night as follows to the Prime Minister

2.9 39

I have not heard anything from you since our talks on Friday, when I understood that I was to serve as your colleague, and when you told me that this would be announced speedily I really do not know what has happened during the course of this agitated day, though it seems to me that entirely different ideas have ruled from those which you

* Printed in Feiling, *op cit*, p 420

expressed to me when you said "the die was cast". I quite realise that in contact with this tremendous European situation changes of method may become necessary, but I feel entitled to ask you to let me know how we stand, both publicly and privately, before the debate opens at noon.

It seems to me that if the Labour Party, and as I gather the Liberal Party, are estranged, it will be difficult to form an effective War Government on the limited basis you mentioned I consider that a further effort should be made to bring in the Liberals, and in addition that the composition and scope of the War Cabinet you discussed with me requires review. There was a feeling to-night in the House that injury had been done to the spirit of national unity by the apparent weakening of our resolve. I do not underrate the difficulties you have with the French, but I trust that we shall now take our decision independently, and thus give our French friends any lead that may be necessary In order to do this we shall need the strongest and most integral combination that can be formed I therefore ask that there should be no announcement of the composition of the War Cabinet until we have had a further talk

As I wrote to you yesterday morning, I hold myself entirely at your disposal, with every desire to aid you in your task.

I learnt later that a British ultimatum had been given to Germany at 9 30 p.m. on September 1, and that this had been followed by a second and final ultimatum at 9 a.m on September 3. The early broadcast of the 3rd announced that the Prime Minister would speak on the radio at 11.15 a.m. As it now seemed certain that war would be immediately declared by Great Britain and also by France, I prepared a short speech which I thought would be becoming to the solemn and awful moment in our lives and history.

The Prime Minister's broadcast informed us that we were already at war, and he had scarcely ceased speaking when a strange, prolonged, wailing noise, afterwards to become familiar, broke upon the ear. My wife came into the room braced by the crisis and commented favourably upon the German promptitude and precision, and we went up to the flat top of the house to see what was going on. Around us on every side, in the clear, cool September light, rose the roofs and spires of London Above them were already slowly rising thirty or forty cylindrical balloons. We gave the Government a good mark for this evident sign of preparation, and as the quarter of an hour's notice which we had

been led to expect we should receive was now running out we made our way to the shelter assigned to us, armed with a bottle of brandy and other appropriate medical comforts.

Our shelter was a hundred yards down the street, and consisted merely of an open basement, not even sand-bagged, in which the tenants of half a dozen flats were already assembled. Everyone was cheerful and jocular, as is the English manner when about to encounter the unknown. As I gazed from the doorway along the empty street and at the crowded room below my imagination drew pictures of ruin and carnage and vast explosions shaking the ground, of buildings clattering down in dust and rubble, of fire-brigades and ambulances scurrying through the smoke, beneath the drone of hostile aeroplanes For had we not all been taught how terrible air raids would be? The Air Ministry had, in natural self-importance, greatly exaggerated their power The pacifists had sought to play on public fears, and those of us who had so long pressed for preparation and a superior Air Force, while not accepting the most lurid forecasts, had been content that they should act as a spur. I knew that the Government were prepared, in the first few days of the war, with over 250,000 beds for air-raid casualties Here at least there had been no under-estimation. Now we should see what were the facts.

After about ten minutes had passed the wailing broke out again. I was myself not sure that this was not a reiteration of the previous warning, but a man came running along the street shouting "All clear", and we dispersed to our dwellings and went about our business. Mine was to go to the House of Commons, which duly met at noon with its unhurried procedure and brief, stately prayers. There I received a note from the Prime Minister asking me to come to his room as soon as the debate died down. As I sat in my place, listening to the speeches, a very strong sense of calm came over me, after the intense passions and excitements of the last few days. I felt a serenity of mind and was conscious of a kind of uplifted detachment from human and personal affairs. The glory of Old England, peace-loving and ill-prepared as she was, but instant and fearless at the call of honour, thrilled my being and seemed to lift our fate to those spheres far removed from earthly facts and physical sensation. I tried to convey some of this mood to the House when I spoke, not without acceptance.

Mr. Chamberlain told me that he had considered my letters,

that the Liberals would not join the Government, that he was able to meet my views about the average age to some extent by bringing the three Service Ministers into the War Cabinet in spite of their executive functions, and that this would reduce the average age to less than sixty This, he said, made it possible for him to offer me the Admiralty as well as a seat in the War Cabinet. I was very glad of this, because, though I had not raised the point, I naturally preferred a definite task to that exalted brooding over the work done by others which may well be the lot of a Minister, however influential, who has no department. It is easier to give directions than advice, and more agreeable to have the right to act, even in a limited sphere, than the privilege to talk at large Had the Prime Minister in the first instance given me the choice between the War Cabinet and the Admiralty, I should of course have chosen the Admiralty. Now I was to have both

Nothing had been said about when I should formally receive my office from the King, and in fact I did not kiss hands till the 5th. But the opening hours of war may be vital with navies. I therefore sent word to the Admiralty that I would take charge forthwith and arrive at 6 o'clock. On this the Board were kind enough to signal to the Fleet, "Winston is back" So it was that I came again to the room I had quitted in pain and sorrow almost exactly a quarter of a century before, when Lord Fisher's resignation had led to my removal from my post as First Lord and ruined irretrievably, as it proved, the important conception of forcing the Dardanelles. A few feet behind me, as I sat in my old chair, was the wooden map-case I had had fixed in 1911, and inside it still remained the chart of the North Sea on which each day, in order to focus attention on the supreme objective, I had made the Naval Intelligence Branch record the movements and dispositions of the German High Seas Fleet Since 1911 much more than a quarter of a century had passed, and still mortal peril threatened us at the hands of the same nation. Once again defence of the rights of a weak State, outraged and invaded by unprovoked aggression, forced us to draw the sword. Once again we must fight for life and honour against all the might and fury of the valiant, disciplined, and ruthless German race Once again! So be it.

* * * * *

Presently the First Sea Lord came to see me. I had known Dudley Pound slightly in my previous tenure of the Admiralty as one of Lord Fisher's trusted Staff officers. I had strongly condemned in Parliament the dispositions of the Mediterranean Fleet when he commanded it, at the moment of the Italian descent upon Albania. Now we met as colleagues upon whose intimate relations and fundamental agreement the smooth working of the vast Admiralty machine would depend. We eyed each other amicably if doubtfully. But from the earliest days our friendship and mutual confidence grew and ripened I measured and respected the great professional and personal qualities of Admiral Pound. As the war, with all its shifts and fortunes, beat upon us with clanging blows we became ever truer comrades and friends And when, four years later, he died at the moment of the general victory over Italy I mourned with a personal pang for all the Navy and the nation had lost.

I spent a good part of the night of the 3rd meeting the Sea Lords and heads of the various departments, and from the morning of the 4th I laid my hands upon the naval affair. As in 1914, precautionary measures against surprise had been taken in advance of general mobilisation As early as June 15 large numbers of officers and men of the Reserves had been called up. The Reserve fleet, fully manned for exercises, had been inspected by the King on August 9, and on the 22nd various additional classes of reservists had been summoned. On the 24th an Emergency Powers Defence Bill was passed through Parliament, and at the same time the Fleet was ordered to its war stations; in fact, our main forces had been at Scapa Flow for some weeks. After the general mobilisation of the Fleet had been authorised the Admiralty war plan had unfolded smoothly, and in spite of certain serious deficiencies, notably in cruisers and anti-submarine vessels, the challenge, as in 1914, found the Fleet equal to the immense tasks before it.

* * * * *

I had, as the reader may be aware, a considerable knowledge of the Admiralty and of the Royal Navy. The four years from 1911 to 1915, when I had the duty of preparing the Fleet for war and the task of directing the Admiralty during the first ten critical months, had been the most vivid of my life. I had amassed an immense amount of detailed information and had learned many

lessons about the Fleet and war at sea. In the interval I had studied and written much about naval affairs. I had spoken repeatedly upon them in the House of Commons. I had always preserved a close contact with the Admiralty, and, although their foremost critic in these years, I had been made privy to many of their secrets. My four years' work on the Air Defence Research Committee had given me access to all the most modern developments in Radar, which now vitally affected the naval service. I have mentioned how in June 1938 Lord Chatfield, the First Sea Lord, had himself shown me over the Anti-Submarine School at Portland, and how we had gone to sea in destroyers on an exercise in submarine detection by the use of the Asdic apparatus. My intimacy with the late Admiral Henderson, Controller of the Navy till 1938, and the discussions which the First Lord of those days had encouraged me to have with Lord Chatfield upon the design of new battleships and cruisers, gave me a full view over the sphere of new construction. I was of course familiar from the published records with the strength, composition, and structure of the Fleet, actual and prospective, and with those of the German, Italian, and Japanese Navies.

As a critic and a spur, my public speeches had naturally dwelt upon weaknesses and shortcomings, and, taken by themselves, had by no means portrayed either the vast strength of the Royal Navy or my own confidence in it. It would be unjust to the Chamberlain Administration and their Service advisers to suggest that the Navy had not been adequately prepared for a war with Germany, or with Germany and Italy. The effective defence of Australasia and India in the face of a simultaneous attack by Japan raised more serious difficulties, but such an assault—which was at the moment unlikely—might well have involved the United States. I therefore felt, when I entered upon my duties, that I had at my disposal what was undoubtedly the finest-tempered instrument of naval war in the world, and I was sure that time would be granted to make good the oversights of peace and to cope with the equally certain unpleasant surprises of war.

* * * * *

The tremendous naval situation of 1914 in no way repeated itself. Then we had entered the war with a ratio of sixteen to ten in capital ships and two to one in cruisers. In those days we

had mobilised eight battle squadrons of eight battleships, with a cruiser squadron and a flotilla assigned to each, together with important detached cruiser forces, and I looked forward to a general action with a weaker but still formidable fleet Now the German Navy had only begun their rebuilding and had no power even to form a line of battle Their two great battleships, *Bismarck* and *Tirpitz*, both of which, it must be assumed, had transgressed the agreed Treaty limits in tonnage, were at least a year from completion. The light battle-cruisers, *Scharnhorst* and *Gneisenau*, which had been fraudulently increased by the Germans from 10,000 tons to 26,000 tons, had been completed in 1938. Besides this Germany had available the three "pocket-battleships" of 10,000 tons, *Admiral Graf Spee*, *Admiral Scheer*, and *Deutschland*, together with two fast 8-inch-gun cruisers of 10,000 tons, six light cruisers, and sixty destroyers and smaller vessels. Thus there was no challenge in surface craft to our command of the seas There was no doubt that the British Navy was overwhelmingly superior to the German in strength and in numbers, and no reason to assume that its science training or skill was in any way defective. Apart from the shortage of cruisers and destroyers, the Fleet had been maintained at its customary high standard. It had to face enormous and innumerable duties, rather than an antagonist.

* * * * *

My views on the naval strategic situation were already largely formed when I went to the Admiralty. The command of the Baltic was vital to the enemy Scandinavian supplies, Swedish ore, and above all protection against Russian descents on the long, undefended northern coastline of Germany—in one place little more than a hundred miles from Berlin—made it imperative for the German Navy to dominate the Baltic I was therefore sure that in this opening phase Germany would not compromise her command of that sea Thus, while submarines and raiding cruisers, or perhaps one pocket-battleship, might be sent out to disturb our traffic, no ships would be risked which were necessary to the Baltic control. The German Fleet, as at this moment developed, must aim at this as its prime and almost its sole objective. For the main purposes of sea-power and for the enforcement of our principal naval offensive measure, the blockade, we

must of course maintain a superior fleet in our northern waters, but no very large British naval forces were, it seemed, needed to watch the debouches from the Baltic or from the Heligoland Bight.

British security would be markedly increased if an air attack upon the Kiel Canal rendered that side-door from the Baltic useless, even if only at intervals.

A year before I had sent a note upon this special operation to Sir Thomas Inskip.

October 29, 1938

In a war with Germany the severance of the Kiel Canal would be an achievement of the first importance I do not elaborate this, as I assume it to be admitted Plans should be made to do this, and, if need be, all the details should be worked out in their variants by a special technical committee Owing to there being few locks, and no marked difference of sea-level at the two ends of the canal, its interruption by H E bombs, even of the heaviest type, could swiftly be repaired If however many bombs of medium size fitted with time fuzes, some set for a day, others for a week, and others for a month, etc , could be dropped in the canal, their explosions at uncertain intervals and in uncertain places would close the canal to the movement of warships or valuable vessels until the whole bottom had been deeply dredged Alternatively, *special fuzes with magnetic actuation* should be considered

The phrase about magnetic mines is interesting in view of what was soon to come upon us No special action had however been taken

* * * * *

The British merchant fleet on the outbreak of war was about the same size as in 1914 It was over twenty-one million tons The average size of the ships had increased, and thus there were fewer This tonnage was not however all available for trade The Navy required auxiliary warships of various types which must be drawn chiefly from the highest class of liners All the defence Services needed ships for special purposes the Army and R.A F. for the movement of troops and equipment overseas, and the Navy for all the work at fleet bases and elsewhere, and particularly for providing oil fuel at strategic points all over the world Demands for tonnage for all these objects amounted to nearly three million tons, and to these must be added the shipping requirements of the Empire overseas At the end of 1939, after

balancing gains and losses, the total British tonnage available for commercial use was about fifteen and a half million tons.

* * * * *

Italy had not declared war, and it was already clear that Mussolini was waiting upon events. In this uncertainty and as a measure of precaution till all our arrangements were complete we thought it best to divert our shipping round the Cape. We had however already on our side, in addition to our own preponderance over Germany and Italy combined, the powerful fleet of France, which by the remarkable capacity and long administration of Admiral Darlan had been brought to the highest strength and degree of efficiency ever attained by the French Navy since the days of the Monarchy. Should Italy become hostile our first battlefield must be the Mediterranean. I was entirely opposed, except as a temporary convenience, to all plans for quitting the centre and merely sealing up the ends of the great inland sea. Our forces alone, even without the aid of the French Navy and its fortified harbours, were sufficient to drive the Italian ships from the sea, and should secure complete naval command of the Mediterranean within two months, and possibly sooner

The British domination of the Mediterranean would inflict injuries upon an enemy Italy which might be fatal to her power of continuing the war. All her troops in Libya and in Abyssinia would be cut flowers in a vase The French and our own people in Egypt could be reinforced to any extent desired, while theirs would be overweighted, if not starved. Not to hold the Central Mediterranean would be to expose Egypt and the Canal, as well as the French possessions, to invasion by Italian troops with German leadership Moreover, a series of swift and striking victories in this theatre, which might be obtainable in the early weeks of a war, would have a most healthy and helpful bearing upon the main struggle with Germany. Nothing should stand between us and these results, both naval and military.

* * * * *

I had accepted too readily when out of office the Admiralty view of the extent to which the submarine had been mastered. Whilst the technical efficiency of the Asdic apparatus was proved in many early encounters with U-boats, our anti-U-boat resources were far too limited to prevent our suffering serious losses My

opinion recorded at the time, "The submarine should be quite controllable in the outer seas, and certainly in the Mediterranean. There will be losses, but nothing to affect the scale of events," was not incorrect Nothing of major importance occurred in the first year of the U-boat warfare. The Battle of the Atlantic was reserved for 1941 and 1942.

In common with prevailing Admiralty belief before the war, I did not sufficiently measure the danger to, or the consequent deterrent upon, British warships from air attack. "In my opinion," I had written a few months before the war, "given with great humility (because these things are very difficult to judge), an air attack upon British warships, armed and protected as they now are, will not prevent full exercise of their superior sea-power" However, the deterrents, albeit exaggerated, upon our mobility soon become grave The air almost immediately proved itself a formidable menace, especially in the Mediterranean. Malta, with its almost negligible air defences, presented a problem for which there was no immediate solution On the other hand, in the first year no British capital ship was sunk by air attack.

* * * * *

There was no sign at this moment of any hostile action or intent upon the part of Japan The main preoccupation of Japan was naturally America It did not seem possible to me that the United States could sit passive and watch a general assault by Japan upon all European establishments in the Far East, even if they themselves were not for the moment involved In this case we should gain far more from the entry of the United States, perhaps only against Japan, if that were possible, than we should suffer from the hostility of Japan, vexatious though that would be. On no account must anything which threatened in the Far East divert us from our prime objectives in Europe. We could not protect our interests and possessions in the Yellow Sea from Japanese attack. The farthest point we could defend if Japan came in would be the fortress of Singapore Singapore must hold out until the Mediterranean was safe and the Italian Fleet liquidated

I did not fear at the moment of the outbreak that Japan would send a fleet and army to conquer Singapore, provided that fortress were adequately garrisoned and supplied with food and ammunition for at least six months. Singapore was as far from Japan as

Southampton from New York Over these three thousand miles of salt water Japan would have to send the bulk of her Fleet, escort at least sixty thousand men in transports in order to effect a landing, and begin a siege which would end only in disaster if the Japanese sea-communications were cut at any stage. These views of course ceased to apply once the Japanese had occupied Indo-China and Siam and had built up a powerful army and very heavy air forces only three hundred miles away across the Gulf of Siam This however did not occur for more than a year and a half

As long as the British Navy was undefeated, and as long as we held Singapore, no invasion of Australia or New Zealand by Japan was deemed possible We could give Australasia a good guarantee to protect them from this danger, but we must do it in our own way, and in the proper sequence of operations. It seemed unlikely that a hostile Japan, exulting in the mastery of the Yellow Sea, would send afloat a conquering and colonising expedition to Australia. A large and well-equipped army would be needed for a long time to make any impression upon Australian manhood. Such an undertaking would require the improvident diversion of the Japanese Fleet, and its engagement in a long, desultory struggle in Australia. At any moment a decision in the Mediterranean would liberate very powerful naval forces to cut invaders from their base It would be easy for the United States to tell Japan that they would regard the sending of Japanese fleets and transports south of the equator as an act of war They might well be disposed to make such a declaration, and there would be no harm in sounding them upon this very remote contingency.

The actual strength of the British and German Fleets, built and building, on the night of September 3, 1939, and that of the American, French, Italian, and Japanese Fleets on the same basis, is set forth in Appendix F It was my recorded conviction that *in the first year of a world war* Australia and New Zealand would be in no danger whatever in their homeland, and by the end of the first year we might hope to have cleaned up the seas and oceans. As a forecast of *the first year of the naval war* these thoughts proved true I shall in their proper place recount the tremendous events which occurred in 1941 and 1942 in the Far East.

* * * * *

Newspaper opinion, headed by the *Times*, favoured the principle of a War Cabinet of not more than five or six Ministers, all of whom should be free from departmental duties Thus alone, it was argued, could a broad and concerted view be taken upon war policy, especially in its larger aspects. Put shortly, "Five men with nothing to do but to run the war" was deemed the ideal There are however many practical objections to such a course. A group of detached statesmen, however high their nominal authority, are at a serious disadvantage in dealing with the Ministers at the head of the great departments vitally concerned. This is especially true of the Service departments The War Cabinet personages can have no direct responsibility for day-to-day events They may take major decisions, they may advise in general terms beforehand or criticise afterwards, but they are no match, for instance, for a First Lord of the Admiralty or a Secretary of State for War or Air, who, knowing every detail of the subject and supported by his professional colleagues, bears the burden of action United, there is little they cannot settle, but usually there are several opinions among them. Words and arguments are interminable, and meanwhile the torrent of war takes its headlong course The War Cabinet Ministers themselves would naturally be diffident of challenging the responsible Minister, armed with all his facts and figures They feel a compunction in adding to the strain upon those actually in executive control They tend therefore to become more and more theoretical supervisors and commentators, reading an immense amount of material every day, but doubtful how to use their knowledge without doing more harm than good Often they can do little more than arbitrate or find a compromise in inter-departmental disputes It is therefore necessary that the Ministers in charge of the Foreign Office and the fighting departments should be integral members of the supreme body. Usually some at least of the "Big Five" are chosen for their political influence, rather than for their knowledge of and aptitude for warlike operations The numbers therefore begin to grow far beyond the limited circle originally conceived Of course, where the Prime Minister himself becomes Minister of Defence a strong compression is obtained. Personally, when I was placed in charge I did not like having unharnessed Ministers around me I preferred to deal with chiefs of organisations rather than counsellors. Everyone should do a good day's

work and be accountable for some definite task, and then they do not make trouble for trouble's sake or to cut a figure.

Mr. Chamberlain's original War Cabinet plan was almost immediately expanded, by the force of circumstances, to include Lord Halifax, Foreign Secretary, Sir Samuel Hoare, Lord Privy Seal; Sir John Simon, Chancellor of the Exchequer, Lord Chatfield, Minister for the Co-ordination of Defence; and Lord Hankey, Minister without Portfolio. To these were added the Service Ministers, of whom I was now one, with Mr. Hore Belisha, Secretary of State for War, and Sir Kingsley Wood, Secretary of State for Air. In addition it was necessary that the Dominions Secretary, Mr. Eden, and Sir John Anderson as Home Secretary and Minister of Home Security, though not actual members of the War Cabinet, should be present on all occasions. Thus our total was eleven The decision to bring in the three Service Ministers profoundly affected Lord Chatfield's authority as Minister for the Co-ordination of Defence. He accepted the position with his customary good-nature

Apart from myself all the other Ministers had directed our affairs for a good many recent years or were involved in the situation we now had to face both in diplomacy and war. Mr. Eden had resigned on foreign policy in February 1938. I had not held public office for nearly eleven years. I had therefore no responsibility for the past or for any want of preparation now apparent On the contrary, I had for the last six or seven years been a continual prophet of evils which had now in large measure come to pass. Thus, armed as I now was with the mighty machine of the Navy, on which fell in this phase the sole burden of active fighting, I did not feel myself at any disadvantage, and had I done so it would have been removed by the courtesy and loyalty of the Prime Minister and his colleagues. All these men I knew very well. Most of us had served together for five years in Mr Baldwin's Cabinet, and we had of course been constantly in contact, friendly or controversial, through the changing scenes of Parliamentary life Sir John Simon and I however represented an older political generation. I had served, off and on, in British Governments for fifteen years, and he for almost as long, before any of the others had gained public office. I had been at the head of the Admiralty or Ministry of Munitions through the stresses of the First World War. Although the Prime Minister was my

senior by some years in age, I was almost the only antediluvian. This might well have been a matter of reproach in a time of crisis, when it was natural and popular to demand the force of young men and new ideas. I saw therefore that I should have to strive my utmost to keep pace with the generation now in power and with fresh young giants who might at any time appear. In this I relied upon knowledge as well as upon all possible zeal and mental energy.

For this purpose I had recourse to a method of life which had been forced upon me at the Admiralty in 1914 and 1915, and which I found greatly extended my daily capacity for work. I always went to bed at least for one hour as early as possible in the afternoon, and exploited to the full my happy gift of falling almost immediately into deep sleep By this means I was able to press a day and a half's work into one. Nature had not intended mankind to work from eight in the morning until midnight without that refreshment of blessed oblivion which, even if it only lasts twenty minutes, is sufficient to renew all the vital forces I regretted having to send myself to bed like a child every afternoon, but I was rewarded by being able to work through the night until two or even later—sometimes much later—in the morning, and begin the new day between eight and nine o'clock. This routine I observed throughout the war, and I commend it to others if and when they find it necessary for a long spell to get the last scrap out of the human structure The First Sea Lord, Admiral Pound, as soon as he had realised my technique, adopted it himself, except that he did not actually go to bed, but dozed off in his arm-chair. He even carried the policy so far as often to go to sleep during the Cabinet meetings. One word about the Navy was however sufficient to awaken him to the fullest activity. Nothing slipped past his vigilant ear, or his comprehending mind.

CHAPTER XXIII

THE ADMIRALTY TASK

Sea War Alone – The Admiralty War Plan – The U-boat Attack – The Asdic Trawlers – Control of Merchant Shipping – The Convoy System – Blockade – Record of My First Conference – Need of the Southern Irish Ports – The Main Fleet Base – Inadequate Precautions – "Hide-and-Seek" – My Visit to Scapa Flow – Reflections at Loch Ewe – Loss of the "Courageous" – Cruiser Policy – The First Month of the U-Boat War – A Fruitful September – Wider Naval Operations – Ardour of the Polish Navy – President Roosevelt's Letter.

ASTONISHMENT was world-wide when Hitler's crashing onslaught upon Poland and the declarations of war upon Germany by Britain and France were followed only by a prolonged and oppressive pause. Mr. Chamberlain in a private letter published by his biographer described this phase as "Twilight War",* and I find the expression so just and expressive that I have adopted it as the title for this Book. The French armies made no attack upon Germany. Their mobilisation completed, they remained in contact motionless along the whole front. No air action, except reconnaissance, was taken against Britain, nor was any air attack made upon France by the Germans. The French Government requested us to abstain from air attack on Germany, stating that it would provoke retaliation upon their war factories, which were unprotected. We contented ourselves with dropping pamphlets to rouse the Germans to a higher morality. This strange phase of the war on land and in the air astounded everyone. France and Britain remained impassive while Poland was in a few weeks destroyed or subjugated by the whole might of the German war machine. Hitler had no reason to complain of this.

The war at sea, on the contrary, began from the first hour with

* Feiling, *op. cit.*, p. 424.

full intensity, and the Admiralty therefore became the active centre of events. On September 3 all our ships were sailing about the world on their normal business. Suddenly they were set upon by U-boats carefully posted beforehand, especially in the Western Approaches At 9 p m that very night the outward-bound passenger liner *Athenia*, of 13,500 tons, was torpedoed, and foundered with a loss of 112 lives, including twenty-eight American citizens This outrage broke upon the world within a few hours The German Government, to prevent any misunderstanding in the United States, immediately issued a statement that I personally had ordered a bomb to be placed on board this vessel in order by its destruction to prejudice German-American relations. This falsehood received some credence in unfriendly quarters * On the 5th and 6th the *Bosnia*, *Royal Sceptre*, and *Rio Claro* were sunk off the coast of Spain All these were important vessels.

My first Admiralty minute was concerned with the probable scale of the U-boat menace in the immediate future:

Director of Naval Intelligence 4 IX.39

Let me have a statement of the German U-boat forces, actual and prospective, for the next few months. Please distinguish between ocean-going and small-size U-boats Give the estimated radius of action in days and miles in each case.

I was at once informed that the enemy had sixty U-boats and that a hundred would be ready early in 1940. A detailed answer was returned on the 5th, which should be studied.† The numbers

* See also *Nuremberg Documents*, Pt IV, p 267 ff—the confession of the U-boat captain.

† GERMAN SUBMARINES

Type	*Tonnage*	*Numbers in Service August* 1939	*Numbers expected to be in Service December* 1939	*Numbers expected to be in Service by early* 1940	*Estimated Radius of Action*	
					Miles	*Days*
Coastal	250	30	32	32	4,000	33 at 5 knots
Ocean	500	10	10	23	7,200	30 at 10 knots
Ocean	517	9	15	17		
Ocean	712	2	2		8,400	35 at 10 knots
Ocean	740	8	13	16		
Ocean	1,060		2	11	10,000	42 at 10 knots
Ocean	1,028	1 (Built for Turkey, not delivered)			8,000	33 at 10 knots
Grand totals	..	60	74	99		..

of long-range endurance vessels were formidable, and revealed the intentions of the enemy to work far out in the oceans as soon as possible.

* * * * *

Comprehensive plans existed at the Admiralty for multiplying our anti-submarine craft. In particular preparations had been made to take up eighty-six of the largest and fastest trawlers and to equip them with Asdics; the conversion of many of these was already well advanced. A war-time building programme of destroyers, both large and small, and of cruisers, with many ancillary vessels, was also ready in every detail, and this came into operation automatically with the declaration of war. The previous war had proved the sovereign merits of convoy. The Admiralty had for some days assumed control of the movements of all merchant shipping, and shipmasters were required to obey orders about their routes or about joining convoy. Our weakness in escort vessels had however forced the Admiralty to devise a policy of evasive routing on the oceans, unless and until the enemy adopted unrestricted U-boat warfare, and to confine convoys in the first instance to the east coast of Britain But the sinking of the *Athenia* upset these plans, and we adopted convoy in the North Atlantic forthwith.

The organisation of convoy had been fully prepared, and shipowners had already been brought into regular consultation on matters of defence which affected them Furthermore instructions had been issued for the guidance of shipmasters in the many unfamiliar tasks which would inevitably fall upon them in war, and special signalling as well as other equipment had been provided to enable them to take their place in convoy. The men of the Merchant Navy faced the unknown future with determination Not content with a passive *rôle*, they demanded weapons. The use of guns in self-defence by merchant ships has always been recognised as justifiable by international law, and the defensive arming of all seagoing merchant ships, together with the training of the crews, formed an integral part of the Admiralty plans, which were at once put into effect. To force the U-boat to attack submerged and not merely by gun-fire on the surface not only gave a greater chance for a ship to escape, but caused the attacker to expend his precious torpedoes more lavishly and often fruitlessly. Foresight had preserved the guns of the previous war for

use against U-boats, but there was a grave shortage of anti-aircraft weapons It was very many months before adequate self-protection against air attack could be provided for merchant ships, which suffered severe losses meanwhile. We planned from these first days to equip during the first three months of war a thousand ships with at least an anti-submarine gun each. This was in fact achieved.

Besides protecting our own shipping, we had to drive German commerce off the seas and stop all imports into Germany Blockade was enforced with full rigour A Ministry of Economic Warfare was formed to guide the policy, whilst the Admiralty controlled its execution. Enemy shipping, as in 1914, virtually vanished almost at once from the high seas The German ships mostly took refuge in neutral ports, or, when intercepted, scuttled themselves. None the less, fifteen ships, totalling 75,000 tons, were captured and put into service by the Allies before the end of 1939. The great German liner *Bremen*, after sheltering in the Soviet port of Murmansk, reached Germany only because she was spared by the British submarine *Salmon*, which observed rightly and punctiliously the conventions of international law *

* * * * *

I held my first Admiralty conference on the night of September 4. On account of the importance of the issues, before going to bed in the small hours I recorded its conclusions for circulation and action in my own words.

5 IX 39

1. In this first phase, with Japan placid, and Italy neutral though indeterminate, the prime attack appears to fall on the approaches to Great Britain from the Atlantic

2. The convoy system is being set up. By convoy system is meant only anti-submarine convoy All question of dealing with raiding cruisers or heavy ships is excluded from this particular paper

3 The First Sea Lord is considering a movement to the Western Approaches of Great Britain of whatever destroyers and escort vessels can be scraped from the Eastern and Mediterranean theatres, with the object of adding, if possible, twelve to the escorts for convoys. These

* This submarine was commanded by Lieutenant-Commander Bickford, who was specially promoted for his numerous exploits, but was soon afterwards lost with his vessel

should be available during the period of, say, a month, until the flow of Asdic trawlers begins. A statement should be prepared showing the prospective deliveries during October of these vessels It would seem well, at any rate in the earliest deliveries, not to wait for the arming of them with guns, but to rely upon depth-charges Gun-arming can be reconsidered when the pressure eases

4. The Director of the Trade Division (D T D) should be able to report daily the inward movement of all British merchant ships approaching the Island For this purpose, if necessary, a room and additional staff should be provided A chart of large size should show at each morning all vessels within two, or better still three, days' distance from our shores The guidance or control of each of these vessels must be foreseen and prescribed so that there is not one whose case has not been individually dealt with, as far as our resources allow Pray let me have proposals to implement this, which should come into being within twenty-four hours, and work up later The necessary contacts with the Board of Trade or other departments concerned should be effected and reported upon

5 The D.T D should also prepare to-morrow a scheme under which every captain or master of a merchant ship from the Atlantic (including the Bay) is visited on arrival by a competent naval authority, who in the name of the D T D will examine the record of the course he has steered, including zigzags All infractions or divergences from Admiralty instructions should be pointed out, and all serious departures should be punished, examples being made by dismissal The Admiralty assume responsibility, and the merchant skippers must be made to obey Details of this scheme should be worked out in personnel and regulations, together with appropriate penalties

6 For the present it would seem wise to maintain the diversion of merchant traffic from the Mediterranean to the Cape route This would not exclude the passage of convoys for troops, to which of course merchant vessels which were handy might add themselves. But these convoys can only be occasional, *i e*, not more than once a month or three weeks, and they must be regarded not as part of the trade protection, but as naval operations

7 It follows from the above that in this period, *i e*, the first six weeks or two months of the war, the Red Sea will also be closed to everything except naval operations, or perhaps coastal traffic to Egypt

8 This unpleasant situation would be eased by the deliveries of the Asdic trawlers and other reliefs Secondly, by the determination of the attitude of Italy. We cannot be sure that the Italian uncertainty will be cleared up in the next six weeks, though we should press His

Majesty's Government to bring it to a head in a favourable sense as soon as possible Meanwhile the heavy ships in the Mediterranean will be on the defensive, and can therefore spare some of the destroyer protection they would need if they were required to approach Italian waters

9 The question of a breaking out of any of the five (or seven) German ships of weight would be a major naval crisis requiring a special plan. It is impossible for the Admiralty to provide escorts for convoys of merchant ships against serious surface attack These raids, if they occur, could only be dealt with as a naval operation by the main Fleet, which would organise the necessary hunting parties to attack the enemy, the trade being cleared out of the way so far as possible till results were obtained

The First Lord submits these notes to his naval colleagues for consideration, *for criticism and correction*, and hopes to receive proposals for action in the sense desired.

The organisation of outward-bound convoys was brought into force almost at once. By September 8 three main routes had begun to work, namely, from Liverpool and from the Thames to the western ocean, and a coastal convoy between the Thames and the Forth Staffs for the control of convoys at these ports and many others at home and abroad were included in the War Plan, and had already been dispatched. Meanwhile all ships outward bound in the Channel and Irish Sea and not in convoy were ordered to Plymouth and Milford Haven, and all independent outward sailings were cancelled. Overseas arrangements for forming homeward-bound convoys were pressed forward The first of them sailed from Freetown on September 14 and from Halifax, Nova Scotia, on the 16th. Before the end of the month regular ocean convoys were in operation, outward from the Thames and Liverpool and homeward from Halifax, Gibraltar, and Freetown.

Upon all the vital need of feeding the Island and developing our power to wage war there now at once fell the numbing loss of the Southern Irish ports. This imposed a grievous restriction on the radius of action of our already scarce destroyers.

First Sea Lord and others 5 IX 39

A special report should be drawn up by the heads of departments concerned and sent to the First Lord through the First Sea Lord and the Naval Staff upon the questions arising from the so-called neutrality

of the so-called Eire Various considerations arise: (1) What does Intelligence say about possible succouring of U-boats by Irish malcontents in West of Ireland inlets? If they throw bombs in London,* why should they not supply fuel to U-boats? Extreme vigilance should be practised.

Secondly, a study is required of the addition to the radius of our destroyers through not having the use of Berehaven or other South Irish anti-submarine bases; showing also the advantage to be gained by our having these facilities.

The Board must realise that we may not be able to obtain satisfaction, as the question of Eirish neutrality raises political issues which have not yet been faced, and which the First Lord is not certain he can solve. But the full case must be made for consideration.

* * * * *

After the institution of the convoy system the next vital naval need was a safe base for the Fleet. At 10 p m on September 5 I held a lengthy conference on this It recalled many old memories. In a war with Germany Scapa Flow is the true strategic point from which the British Navy can control the exits from the North Sea and enforce blockade. It was only in the last two years of the previous war that the Grand Fleet was judged to have sufficient superiority to move south to Rosyth, where it had the advantage of lying at a first-class dockyard But Scapa, on account of its greater distance from German air bases, was now plainly the best position, and had been definitely chosen in the Admiralty War Plan.

In the autumn of 1914 a wave of uneasiness had swept the Grand Fleet. The idea had got round that "*the German submarines were coming after them into the harbours*". Nobody at the Admiralty then believed that it was possible to take a submarine, submerged, through the intricate and swirling channels by which the great lake of Scapa can alone be entered The violent tides and currents of the Pentland Firth, often running eight or ten knots, had seemed in those days to be an effective deterrent But a mood of doubt spread through the mighty array of perhaps a hundred large vessels which in those days composed the Grand Fleet. On two or three occasions, notably on October 17, 1914, the alarm was given that there was a U-boat inside the anchorage. Guns were fired, destroyers thrashed the waters, and the whole

* This referred to a criminal act unconnected with the war

gigantic armada put to sea in haste and dudgeon. In the final result the Admiralty were proved right. No German submarine in that war ever overcame the terrors of the passage. It was only in 1918, at the very end of the war, that a U-boat made the attempt, and perished in this final desperate effort. Nevertheless, I retained a most vivid and unpleasant memory of those days and of the extreme exertions we made to block all the entrances and reassure the Fleet.

There were now in 1939 two dangers to be considered: the first, the old one of submarine incursion; the second, the new one of the air. I was surprised to learn at my conference that more precautions had not been taken in both cases to prepare the defences against modern forms of attack. Anti-submarine booms of new design were in position at each of the three main entrances, but these consisted merely of single lines of net. The narrow and tortuous approaches on the east side of the Flow, defended only by remnants of the blockships placed in the former war, and reinforced now by two or three recent additions, remained a source of anxiety. On account of the increased size, speed, and power of modern submarines, the old belief that the strong tidal streams made these passages impassable to a submarine no longer carried conviction in responsible quarters. As a result of the conference on my second evening at the Admiralty many orders were given for additional nets and blockings

The new danger from the air had been almost entirely ignored Except for two batteries of anti-aircraft guns to defend the naval oil tanks at Hoy and the destroyer anchorage, there were no air defences at Scapa. One airfield near Kirkwall was available for the use of naval aircraft when the Fleet was present, but no provision had been made for immediate R.A F. participation in the defence, and the shore Radar station, although operative, was not wholly effective. Plans for basing two R A F. fighter squadrons at Wick had been approved, but this measure could not become effective before 1940. I called for an immediate plan of action. Our air defence was so strained, our resources so limited, and our vulnerable points—including all vast London—so numerous that it was no use asking for much. On the other hand, protection from air attack was now needed only for five or six great ships, each carrying a powerful anti-aircraft armament of its own To keep things going the Admiralty undertook to

provide two squadrons of naval fighter aircraft whilst the Fleet was in Scapa.

It seemed most important to have the artillery in position at the shortest interval, and meanwhile there was nothing for it but to adopt the same policy of "hide-and-seek" to which we had been forced in the autumn days of 1914. The west coast of Scotland had many landlocked anchorages easy to protect from U-boat by indicator nets and ceaseless patrolling. We had found concealment in the previous war a good security; but even in those days the curiosity of a wandering aeroplane, perhaps fuelled by traitor hands, had filled our hearts with fear. Now that the range of aircraft exposed the whole British Islands at any time to photographic reconnaissance machines, there was no sure concealment against large-scale attack either by U-boats or from the air. However, there were so few ships to cover, and they could be moved so often from one place to another, that, having no alternative, we accepted the hazard with as good a grace as possible.

* * * * *

I felt it my duty to visit Scapa at the earliest moment. I had not met the Commander-in-Chief, Sir Charles Forbes, since Lord Chatfield had taken me to the Anti-Submarine School at Portland in June 1938 I therefore obtained leave from our daily Cabinets, and started for Wick with a small personal staff on the night of September 14. I spent most of the next two days inspecting the harbour and the entrances, with their booms and nets I was assured that they were as good as in the last war, and that important additions and improvements were being made or were on the way. I stayed with the Commander-in-Chief in his flagship, *Nelson*, and discussed not only Scapa but the whole naval problem with him and his principal officers. The rest of the Fleet was hiding in Loch Ewe, and on the 17th the Admiral took me to them in the *Nelson*. As we came out through the gateway into the open sea I was surprised to see no escort of destroyers for this great ship. "I thought," I remarked, "you never went to sea without at least two, even for a single battleship" But the Admiral replied, "Of course, that is what we should like, but we haven't got the destroyers to carry out any such rule There are a lot of patrolling craft about, and we shall be into the Minches in a few hours"
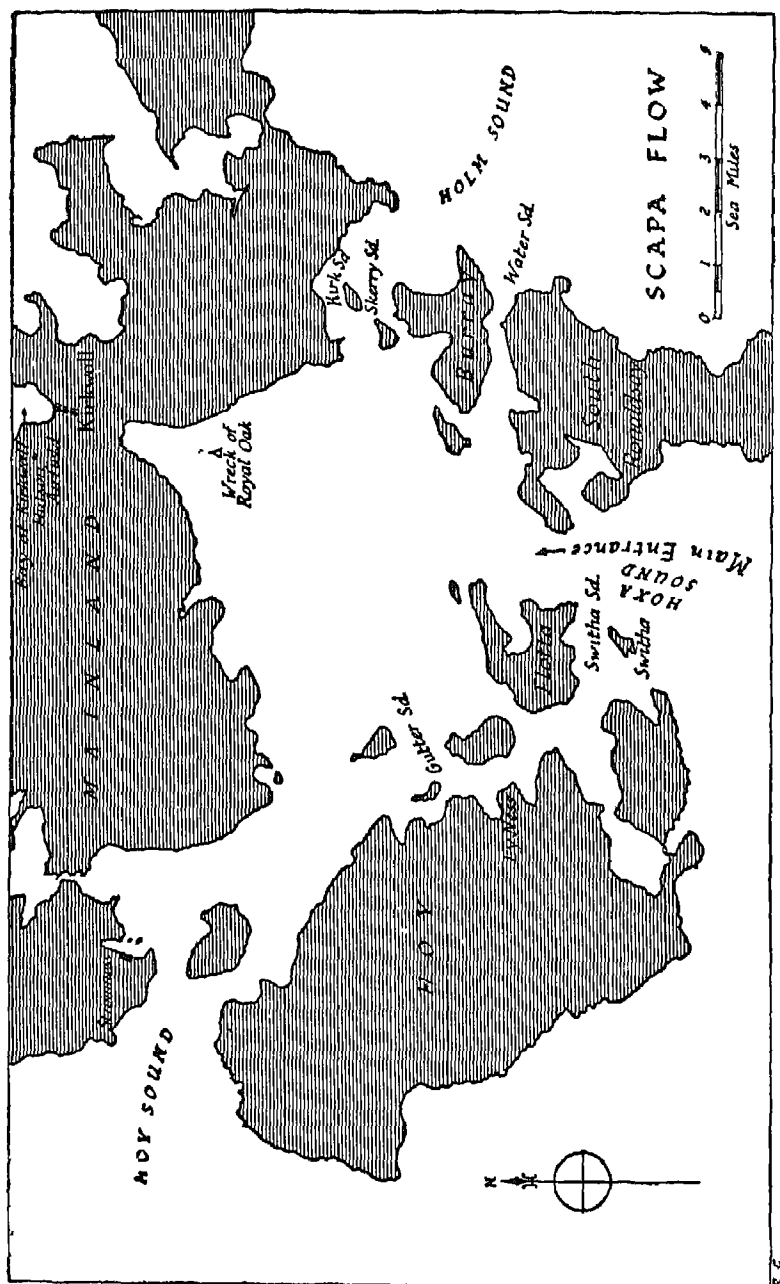
It was, like the others, a lovely day. All went well, and in the evening we anchored in Loch Ewe, where the four or five other great ships of the Home Fleet were assembled. The narrow entry into the loch was closed by several lines of indicator nets, and patrolling craft with Asdics and depth-charges, as well as picket-boats, were numerous and busy. On every side rose the purple hills of Scotland in all their splendour My thoughts went back a quarter of a century to that other September when I had last visited Sir John Jellicoe and his captains in this very bay, and had found them with their long lines of battleships and cruisers drawn out at anchor, a prey to the same uncertainties as now afflicted us. Most of the captains and admirals of those days were dead, or had long passed into retirement The responsible senior officers who were now presented to me as I visited the various ships had been young lieutenants or even midshipmen in those far-off days. Before the former war I had had three years' preparation in which to make the acquaintance and approve the appointments of most of the high personnel, but now all these were new figures and new faces. The perfect discipline, style, and bearing, the ceremonial routine—all were unchanged But an entirely different generation filled the uniforms and the posts. Only the ships had most of them been laid down in my tenure. None of them was new It was a strange experience, like suddenly resuming a previous incarnation. It seemed that I was all that survived in the same position I had held so long ago But no, the dangers had survived too. Danger from beneath the waves, more serious with more powerful U-boats, danger from the air, not merely of being spotted in your hiding-place, but of heavy and perhaps destructive attack!

Having inspected two more ships on the morning of the 18th, and formed during my visit a strong feeling of confidence in the Commander-in-Chief, I motored from Loch Ewe to Inverness, where our train awaited us. We had a picnic lunch on the way by a stream, sparkling in hot sunshine I felt oddly oppressed with my memories.

> For God's sake, let us sit upon the ground
> And tell sad stories of the death of kings.

No one had ever been over the same terrible course twice with such an interval between. No one had felt its dangers and respon-

sibilities from the summit as I had, or, to descend to a small point, understood how First Lords of the Admiralty are treated when great ships are sunk and things go wrong If we were in fact going over the same cycle a second time, should I have once again to endure the pangs of dismissal? Fisher, Wilson, Battenberg, Jellicoe, Beatty, Pakenham, Sturdee, all gone!

> I feel like one
> Who treads alone
> Some banquet-hall deserted,
> Whose lights are fled,
> Whose garlands dead,
> And all but he departed

And what of the supreme, measureless ordeal in which we were again irrevocably plunged? Poland in its agony, France but a pale reflection of her former warlike ardour, the Russian Colossus no longer an ally, not even neutral, possibly to become a foe. Italy no friend Japan no ally. Would America ever come in again? The British Empire remained intact and gloriously united, but ill-prepared, unready We still had command of the sea. We were woefully outmatched in numbers in this new mortal weapon of the air Somehow the light faded out of the landscape

We joined our train at Inverness and travelled through the afternoon and night to London. As we got out at Euston the next morning I was surprised to see the First Sea Lord on the platform. Admiral Pound's look was grave. "I have bad news for you, First Lord. The *Courageous* was sunk yesterday evening in the Bristol Channel" The *Courageous* was one of our oldest aircraft-carriers, but a very necessary ship at this time I thanked him for coming to break it to me himself, and said, "We can't expect to carry on a war like this without that sort of thing happening from time to time. I have seen lots of it before" And so to bath and the toil of another day

In order to bridge the gap of two or three weeks between the outbreak of war and the completion of our auxiliary anti-U-boat flotillas, we had decided to use the aircraft-carriers with some freedom in helping to bring in the unarmed, unorganised, and unconvoyed traffic which was then approaching our shores in large numbers This was a risk which it was right to run. The *Courageous*, attended by four destroyers, had been thus employed.

Towards evening on the 17th two of these had to go to hunt a U-boat which was attacking a merchant ship. When the *Courageous* turned into the wind at dusk, in order to enable her own aircraft to alight upon her landing-deck, she happened, in her unpredictable course, by what may have been a hundred-to-one chance, to meet a U-boat Out of the crew of 1,260 over 500 were drowned, including Captain Makeig-Jones, who went down with his ship. Three days before another of our aircraft-carriers, later to become famous, H M.S *Ark Royal*, had also been attacked by a submarine while similarly engaged Mercifully the torpedoes missed, and her assailant was promptly sunk by her escorting destroyers.

* * * * *

Outstanding among our naval problems was that of dealing effectively with surface raiders, which would inevitably make their appearance in the near future as they had done in 1914.

On September 12 I issued the following minute.

First Lord to First Sea Lord 12 IX.39

CRUISER POLICY

In the past we have sought to protect our trade against sudden attack by [means of] cruisers, having regard to the vast ocean spaces to be controlled, the principle was "the more the better" In the search for enemy raiders or cruisers even small cruisers could play their part, and in the case of the *Emden* we were forced to gather over twenty ships before she was rounded up However, a long view of cruiser policy would seem to suggest that a new Unit of Search is required. Whereas a cruiser squadron of four ships could search on a front of, say, 80 miles, a single cruiser accompanied by an aircraft-carrier could cover at least 300 miles, or, if the movement of the ship is taken into account, 400 miles On the other hand, we must apprehend that the raiders of the future will be powerful vessels, eager to fight a single-ship action if a chance is presented. The mere multiplication of small, weak cruisers is no means of ridding the seas of powerful raiders. Indeed they are only an easy prey The raider, cornered at length, will overwhelm one weak vessel and escape from the cordon

Every Unit of Search must be able to find, to catch, and to kill For this purpose we require a number of cruisers superior to the 10,000-ton type, or else pairs of our own 10,000-ton type These must be accompanied by small aircraft-carriers carrying perhaps a dozen or two dozen machines, and of the smallest possible displace-

ment. The ideal Unit of Search would be one killer or two three-quarter killers, plus one aircraft-carrier, plus four ocean-going destroyers, plus two or three specially-constructed tankers of good speed Such a formation cruising would be protected against submarines, and could search an enormous area and destroy any single raider when detected

The policy of forming hunting groups as discussed in this minute, comprising balanced forces capable of scouring wide areas and overwhelming any raider within the field of search, was developed so far as our limited resources allowed, and I shall refer to this subject again in a later chapter The same idea was afterawards more fully expanded by the United States in their Task Force system, which made an important contribution to the art of sea warfare

* * * * *

Towards the end of the month I thought it would be well for me to give the House some coherent story of what was happening and why.

First Lord to Prime Minister 24 IX 39

Would it not be well for me to make a statement to the House on the anti-submarine warfare and general naval position, more at length than what you could give in your own speech? I think I could speak for twenty-five or thirty minutes on the subject, and that this would do good. At any rate, when I saw in confidence sixty Press representatives the other day they appeared vastly relieved by the account I was able to give If this idea commended itself to you, you would perhaps say in your speech that I would give a fuller account later on in the discussion, which I suppose will take place on Thursday, as the Budget is on Wednesday

Mr. Chamberlain readily assented, and accordingly in his speech on the 26th he told the House that I would make a statement on the sea war as soon as he sat down This was the first time, apart from answering questions, that I had spoken in Parliament since I had entered the Government. I had a good tale to tell In the first seven days our losses in tonnage had been half the weekly losses of the month of April 1917, which was the peak year of the U-boat attack in the first war. We had already made progress by setting in motion the convoy system, secondly, by pressing on with the arming of all our merchant ships, and,

thirdly, by our counter-attack upon the U-boats. "In the first week our losses by U-boat sinkings amounted to 65,000 tons; in the second week they were 46,000 tons; and in the third week they were 21,000 tons. In the last six days we have lost only 9,000 tons."* I observed throughout that habit of understatement and of avoiding all optimistic forecasts which had been inculcated upon me by the hard experiences of the past. "One must not dwell," I said, "upon these reassuring figures too much, for war is full of unpleasant surprises. But certainly I am entitled to say that so far as they go these figures need not cause any undue despondency or alarm."

> Meanwhile [I continued] the whole vast business of our world-wide trade continues without interruption or appreciable diminution Great convoys of troops are escorted to their various destinations The enemy's ships and commerce have been swept from the seas Over 2,000,000 tons of German shipping is now sheltering in German, or interned in neutral, harbours . In the first fortnight of the war we have actually arrested, seized, and converted to our own use 67,000 tons more German merchandise than has been sunk in ships of our own . . Again I reiterate my caution against over-sanguine conclusions. We have in fact however got more supplies in this country this afternoon than we should have if no war had been declared and no U-boat had come into action It is not going beyond the limits of prudent statement if I say that at that rate it will take a long time to starve us out

* The following are the corrected figures

BRITISH MERCHANT SHIPPING LOSSES BY ENEMY ACTION, SEPTEMBER 1939
(*Numbers of ships shown in brackets*)

	Submarine (*Gross tons*)	*Other Causes* (*Gross tons*)
1st WEEK (September 3–9)	64,595 (11)	—
2nd WEEK (September 10–16)	53,561 (11)	11,437 (2) (mine)
3rd WEEK (September 17–23)	12,750 (3)	—
4th WEEK (September 24–30)	4,646 (1)	5,051 (1) (surface raider)
Total	135,552 (26)	16,488 (3)
	152,040 (29)	

In addition there were losses in neutral and Allied shipping amounting to 15 ships, of 33,527 tons.

From time to time the German U-boat commanders have tried their best to behave with humanity We have seen them give good warning and also endeavour to help the crews to find their way to port One German captain signalled to me personally the position of a British ship which he had just sunk, and urged that rescue should be sent He signed his message "German Submarine" I was in some doubt at the time to what address I should direct a reply However, he is now in our hands, and is treated with all consideration

Even taking six or seven U-boats sunk as a safe figure,* that is one-tenth of the total enemy submarine fleet as it existed at the declaration of war, destroyed during the first fortnight of the war, and it is probably one-quarter, or perhaps even one-third, of all the U-boats which are being employed actively But the British attack upon the U-boats is only just beginning Our hunting force is getting stronger every day By the end of October we expect to have three times the hunting force which was operating at the beginning of the war

This speech, which lasted only twenty-five minutes, was extremely well received by the House, and in fact it recorded the failure of the first German U-boat attack upon our trade. My fears were for the future, but our preparations for 1941 were now proceeding with all possible speed and on the largest scale which our vast resources would allow

* * * * *

By the end of September we had little cause for dissatisfaction with the results of the first impact of the war at sea I could feel that I had effectively taken over the great department which I knew so well and loved with a discriminating eye. I now knew what there was in hand and on the way. I knew where everything was I had visited all the principal naval ports and met all the Commanders-in-Chief. By the Letters Patent constituting the Board, the First Lord is "responsible to Crown and Parliament for all the business of the Admiralty", and I certainly felt prepared to discharge that duty in fact as well as in form

On the whole the month of September had been prosperous and fruitful for the Navy We had made the immense, delicate, and hazardous transition from peace to war Forfeits had to be paid in the first few weeks by a world-wide commerce suddenly attacked contrary to formal international agreement by indis-

* We now know that only two U-boats were sunk in September 1939

criminate U-boat warfare, but the convoy system was now in full flow, and merchant ships were leaving our ports every day by scores with a gun, sometimes high-angle, mounted aft, and a nucleus of trained gunners The Asdic-equipped trawlers and other small craft armed with depth-charges, all well prepared by the Admiralty before the outbreak, were now coming daily into commission in a growing stream, with trained crews We all felt sure that the first attack of the U-boat on British trade had been broken and that the menace was in thorough and hardening control It was obvious that the Germans would build submarines by hundreds, and no doubt numerous shoals were upon the slips in various stages of completion. In twelve months, certainly in eighteen, we must expect the main U-boat war to begin. But by that time we hoped that our mass of new flotillas and anti-U-boat craft, which was our First Priority, would be ready to meet it with a proportionate and effective predominance The painful dearth of anti-aircraft guns, especially 3.7-inch and Bofors, could, alas, only be relieved after many months, but measures had been taken within the limits of our resources to provide for the defence of our naval harbours, and meanwhile the Fleet, while ruling the oceans, would have to go on playing hide-and-seek

* * * * *

In the wider sphere of naval operations no definite challenge had yet been made to our position After the temporary suspension of traffic in the Mediterranean our shipping soon moved again through this invaluable corridor Meanwhile the transport of the Expeditionary Force to France was proceeding smoothly The Home Fleet itself, "somewhere in the North", was ready to intercept any sortie by the few heavy ships of the enemy. The blockade of Germany was being enforced by similar methods to those employed in the previous war. The Northern Patrol had been established between Scotland and Iceland, and by the end of the first month a total of nearly three thundred thousand tons of goods destined for Germany had been seized in prize, against a loss to ourselves of a hundred and forty thousand tons by enemy action at sea. Overseas our cruisers were hunting down German ships, while at the same time providing cover against attack on our shipping by raiders German shipping had thus come to a standstill By the end of September 325 German ships, totalling

nearly 750,000 tons, were immobilised in foreign ports. Few therefore fell into our hands.

Our Allies also played their part. The French took an important share in the control of the Mediterranean. In home waters and the Bay of Biscay they also helped in the battle against the U-boats, and in the central Atlantic a powerful force based on Dakar formed part of the Allied plans against surface raiders.

The young Polish Navy distinguished itself. Early in the war three modern destroyers and two submarines, *Wilk* and *Orzel*, escaped from Poland, and, defying the German forces in the Baltic, succeeded in reaching England. The escape of the submarine *Orzel* is an epic. Sailing from Gdynia when the Germans invaded Poland, she first cruised in the Baltic, putting into the neutral port of Tallinn on September 15 to land her sick captain. The Esthonian authorities decided to intern the vessel, placed a guard on board, and removed her charts and the breech-blocks of her guns. Undismayed, her commanding officer put to sea, after overpowering the guard. In the ensuing weeks the submarine was continually hunted by sea and air patrols, but eventually, without even charts, made her escape from the Baltic into the North Sea. Here she was able to transmit a faint wireless signal to a British station giving her supposed position, and on October 14 was met and escorted into safety by a British destroyer.

* * * * *

In September I was delighted to receive a personal letter from President Roosevelt. I had only met him once in the previous war. It was at a dinner at Gray's Inn, and I had been struck by his magnificent presence in all his youth and strength. There had been no opportunity for anything but salutations.

President Roosevelt to Mr. Churchill 11.IX.39

It is because you and I occupied similar positions in the World War that I want you to know how glad I am that you are back again in the Admiralty. Your problems are, I realise, complicated by new factors, but the essential is not very different. What I want you and the Prime Minister to know is that I shall at all times welcome it if you will keep me in touch personally with anything you want me to know about. You can always send sealed letters through your pouch or my pouch.

I am glad you did the Marlborough volumes before this thing started—and I much enjoyed reading them.

I responded with alacrity, using the signature of "Naval Person", and thus began that long and memorable correspondence—covering perhaps a thousand communications on each side, and lasting till his death more than five years later.

CHAPTER XXIV

THE RUIN OF POLAND

The German Plan of Invasion – Unsound Polish Dispositions – Inferiority in Artillery and Tanks – Destruction of the Polish Air Force – The First Week – The Second Week – The Heroic Polish Counter-Attack – Extermination – The Turn of the Soviets – The Warsaw Radio Silent – The Modern Blitzkrieg – My Memorandum of September 21 – Our Immediate Dangers – My Broadcast of October 1.

MEANWHILE around the Cabinet table we were witnessing the swift and almost mechanical destruction of a weaker State according to Hitler's method and long design. Poland was open to German invasion on three sides. In all fifty-six divisions, including all his nine armoured and motorised divisions, composed the invading armies. From East Prussia the Third Army (eight divisions) advanced southwards on Warsaw and Bialystok From Pomerania the Fourth Army (twelve divisions) was ordered to destroy the Polish troops in the Danzig Corridor, and then move south-eastward to Warsaw along both banks of the Vistula The frontier opposite the Posen bulge was held defensively by German reserve troops, but on their right to the southward lay the Eighth Army (seven divisions), whose task was to cover the left flank of the main thrust. This thrust was assigned to the Tenth Army (seventeen divisions), directed straight upon Warsaw. Further south again the Fourteenth Army (fourteen divisions) had a dual task, first to capture the important industrial area west of Cracow, and then, if the main front prospered, to make direct for Lemberg (Lwow), in South-east Poland

Thus the Polish forces on the frontiers were first to be penetrated, and then overwhelmed and surrounded by two pincer movements, the first from the north and south-west on Warsaw,

the second and more far-reaching, "outer" pincers, formed by the Third Army advancing by Brest-Litovsk, to be joined by the Fourteenth Army after Lemberg was gained. Those who escaped the closing of the Warsaw pincers would thus be cut off from retreat into Roumania. Over fifteen hundred modern aircraft were hurled on Poland. Their first duty was to overwhelm the Polish Air Force, and thereafter to support the Army on the battlefield, and beyond it to attack military installations and all communications by road and rail. They were also to spread terror far and wide.

In numbers and equipment the Polish Army was no match for their assailants, nor were their dispositions wise. They spread all their forces along the frontiers of their native land. They had no central reserve. While taking a proud and haughty line against German ambitions, they had nevertheless feared to be accused of provocation by mobilising in good time against the masses gathering around them. Thirty divisions, representing only two-thirds of their active army, were ready or nearly ready to meet the first shock. The speed of events and the violent intervention of the German Air Force prevented the rest from reaching the forward positions till all was broken, and they were only involved in the final disasters. Thus the thirty Polish divisions faced nearly double their numbers around a long perimeter with nothing behind them. Nor was it in numbers alone that they were inferior. They were heavily out-classed in artillery, and had but a single armoured brigade to meet the nine German Panzers, as they were already called. Their horse cavalry, of which they had twelve brigades, charged valiantly against the swarming tanks and armoured cars, but could not harm them with their swords and lances. Their nine hundred first-line aircraft, of which perhaps half were modern types, were taken by surprise, and many were destroyed before they even got into the air.

According to Hitler's plan the German armies were unleashed on September 1, and ahead of them his Air Force struck the Polish squadrons on their airfields. In two days the Polish air power was virtually annihilated. Within a week the German armies had bitten deep into Poland. Resistance everywhere was brave but vain. All the Polish armies on the frontiers, except the Posen group, whose flanks were deeply turned, were driven backwards. The Lodz group was split in twain by the main

thrust of the German Tenth Army, one half withdrew eastwards to Radom, the other was forced north-westward, and through this gap darted two Panzer divisions, making straight for Warsaw. Farther north the German Fourth Army reached and crossed the Vistula, and turned along it in their march on Warsaw. Only the Polish northern group was able to inflict a check upon the German Third Army. They were soon outflanked and fell back to the river Narew, where alone a fairly strong defensive system had been prepared in advance. Such were the results of the first week of the Blitzkrieg.

The second week was marked by bitter fighting, and by its end the Polish Army, nominally of about two million men, ceased to exist as an organised force. In the south the Fourteenth German Army drove on to reach the river San. North of them the four Polish divisions which had retreated to Radom were there en-
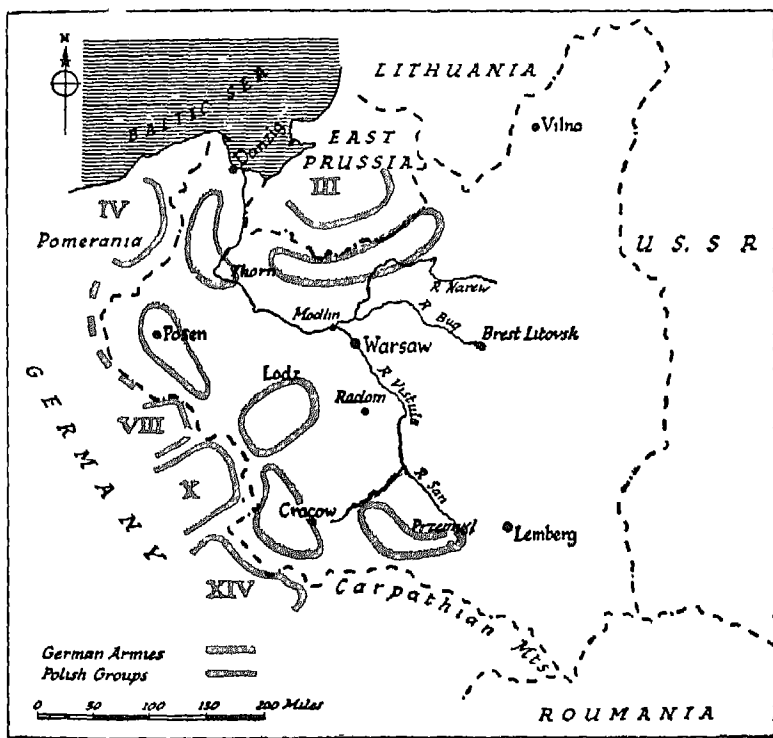
THE GERMAN AND POLISH CONCENTRATIONS Sept 1st 1939

circled and destroyed. The two armoured divisions of the Tenth Army reached the outskirts of Warsaw, but having no infantry with them could not make headway against the desperate resistance organised by the townsfolk. North-east of Warsaw the Third Army encircled the capital from the east, and its left column reached Brest-Litovsk, a hundred miles behind the battle-front.

It was within the claws of the Warsaw pincers that the Polish Army fought and died. Their Posen group had been joined by divisions from the Thorn and Lodz groups, forced towards them by the German onslaught. It now numbered twelve divisions, and across its southern flank the German Tenth Army was streaming towards Warsaw, protected only by the relatively weak Eighth Army. Although already virtually surrounded, the Polish commander of the Posen group, General Kutrzea, resolved to strike south against the flank of the main German drive. This audacious Polish counter-attack, called the Battle of the River Bzura, created a crisis which drew in not only the German Eighth Army but a part of the Tenth, deflected from their Warsaw objective, and even a corps of the Fourth Army from the north. Under the assault of all these powerful bodies, and overwhelmed by unresisted air bombardment, the Posen group maintained its ever-glorious struggle for ten days. It was blotted out on September 19.

In the meantime the outer pincers had met and closed. The Fourteenth Army reached the outskirts of Lemberg on September 12, and, striking north, joined hands on the 17th with the troops of the Third Army, which had passed through Brest-Litovsk. There was now no loophole of escape save for straggling and daring individuals. On the 20th the Germans announced that the Battle of the Vistula was "one of the greatest battles of extermination of all time".

It was now the turn of the Soviets. What they now call "Democracy" came into action. On September 17 the Russian armies swarmed across the almost undefended Polish eastern frontier and rolled westward on a broad front. On the 18th they occupied Vilna, and met their German collaborators at Brest-Litovsk. Here in the previous war the Bolsheviks, in breach of their solemn agreements with the Western Allies, had made their separate peace with the Kaiser's Germany and had bowed to its

harsh terms. Now in Brest-Litovsk it was with Hitler's Germany that the Russian Communists grinned and shook hands The ruin of Poland and its entire subjugation proceeded apace. Warsaw and Modlin still remained unconquered. The resistance of Warsaw, largely arising from the surge of its citizens, was magnificent and forlorn After many days of violent bombardment from the air and by heavy artillery, much of which was rapidly transported across the great lateral highways from the idle Western Front, the Warsaw radio ceased to play the Polish National Anthem, and Hitler entered the ruins of the city Modlin, a fortress twenty miles down the Vistula, had taken in the remnants of the Thorn group, and fought on until the 28th. Thus in one month all was over, and a nation of thirty-five millions fell into the merciless grip of those who sought not only conquest, but enslavement and indeed extinction for vast numbers

We had seen a perfect specimen of the modern Blitzkrieg, the close interaction on the battlefield of Army and Air Force, the violent bombardment of all communications and of any town that seemed an attractive target, the arming of an active Fifth Column, the free use of spies and parachutists, and above all the irresistible forward thrusts of great masses of armour. The Poles were not to be the last to endure this ordeal

* * * * *

The Soviet armies continued to advance up to the line they had settled with Hitler, and on the 29th the Russo-German treaty partitioning Poland was formally signed I was still convinced of the profound, and, as I believed, quenchless antagonism between Russia and Germany, and I clung to the hope that the Soviets would be drawn to our side by the force of events I did not therefore give way to the indignation which I felt and which surged around me in our Cabinet at their callous, brutal policy. I had never had any illusions about them. I knew that they accepted no moral code, and studied their own interests alone. But at least they owed us nothing Besides, in mortal war anger must be subordinated to defeating the main immediate enemy. I was determined to put the best construction on their odious conduct. Therefore in a paper which I wrote for the War Cabinet on September 25 I struck a cool note.
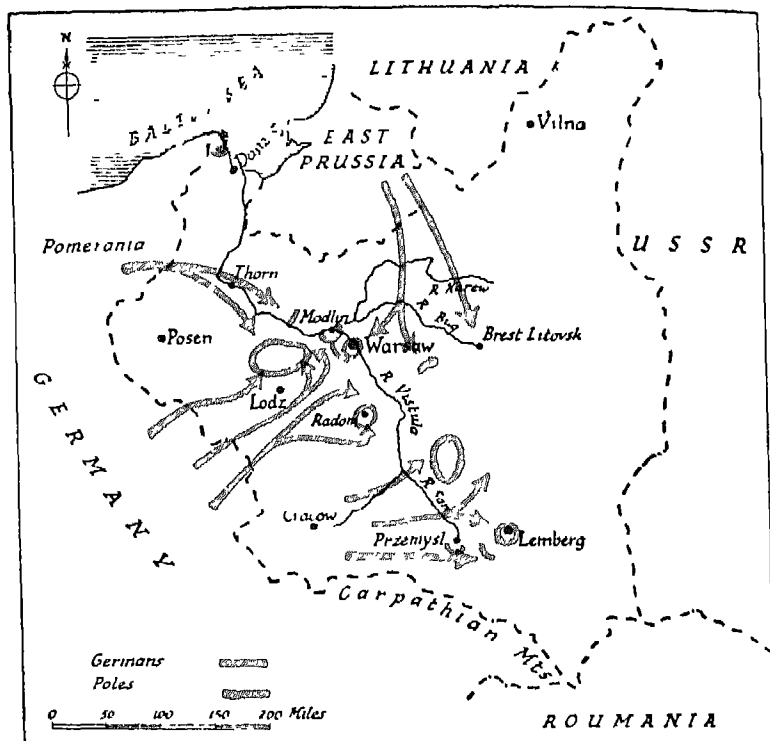
THE INNER PINCERS CLOSE Sept 13th

Although the Russians were guilty of the grossest bad faith in the recent negotiations, their demand made by Marshal Voroshilov that Russian armies should occupy Vilna and Lemberg if they were to be allies of Poland was a perfectly valid military request. It was rejected by Poland on grounds which, though natural, can now be seen to have been insufficient In the result Russia has occupied the same line and positions as the enemy of Poland which possibly she might have occupied as a very doubtful and suspected friend The difference in fact is not so great as it might seem The Russians have mobilised very large forces and have shown themselves able to advance fast and far from their pre-war positions They are now limitrophe with Germany, and it is quite impossible for Germany to denude the Eastern front A large German army must be left to watch it. I see General Gamelin puts it at at least twenty divisions It may well be twenty-five or more. An Eastern front is therefore potentially in existence

But it is possible that a South-eastern front may also be built up in

which Russia, Britain, and France will have a common interest. The left paw of the Bear has already closed the pathway from Poland to Roumania Russian interest in the Slavonic peoples of the Balkans is traditional The arrival of the Germans on the Black Sea would be a deadly threat to Russia. And also to Turkey That these two countries should make common cause to prevent this is a direct fulfilment of our wishes It in no way conflicts with our policy towards Turkey. It may well be that Russia will deprive Roumania of Bessarabia, but this does not necessarily conflict with our major interest, which is to arrest the German movement towards the east and south-east of Europe. Roumania, which gained enormously from the late war, in which she was rescued from utter defeat by the Allied victory, will be lucky if she gets out of this war with no greater losses than Bessarabia and the southern part of the Dobrudja, which latter she ought willingly to cede to Bulgaria in the interests of a Balkan *bloc*. The reactions of the Russian movement, so far as it can at present be
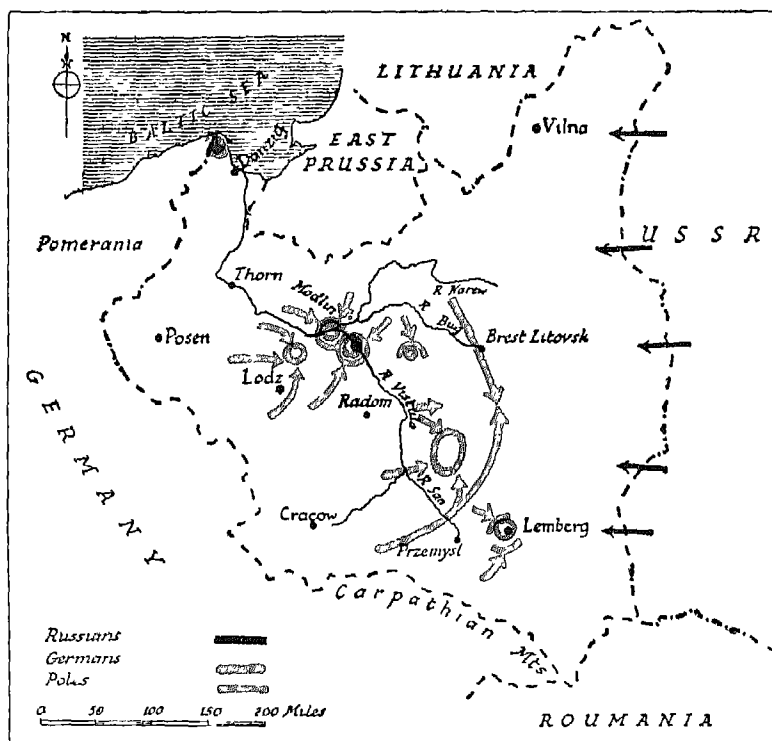
THE OUTER PINCERS CLOSE THE RUSSIANS ADVANCE Sept 17th

judged, should be favourable throughout the Balkans, and particularly in Yugoslavia. Thus, besides the potential Eastern front a potential South-eastern front may be coming into existence, reaching in a crescent from the Gulf of Riga to the head of the Adriatic (and thence perhaps on across the Brenner to the Alps)

Of course we should much prefer that all these countries should fall at once upon the sole and common foe, Nazi Germany; and this possibility should not be excluded as time goes on It would come very near if Germany struck through Hungary at Roumania, and to a lesser degree if she struck at Yugoslavia The policy we are pursuing of fostering this front, of strengthening it and endeavouring to throw it into simultaneous action should any part of it be attacked, seems absolutely right This policy implies a renewal of relations with Russia, as the Foreign Secretary has swiftly foreseen It also compels our adherence to the policy declared by the Prime Minister of not committing ourselves to particular territorial solutions and concentrating the whole effort of Britain and France upon smashing Hitlerism, and also of making sure that the German Terror is not renewed upon the Western democracies for a long time to come This last point, which appeals so much to the French, is exactly expressed by the Prime Minister's words "Our general purpose . is to redeem Europe from the perpetual and recurring fear of German aggression, and enable the peoples of Europe to preserve their liberties and their independence" This cannot be repeated too often or too widely

Upon this general appreciation our handling of the Turkish negotiations can more easily be considered I cannot feel that there is the same urgency about them as there was when Hitler was reported to be about to invade Roumania with twenty-eight divisions, etc. It now seems possible that that man may be warned off his Eastern career, but of course he may renew his threat at any time, and we besides have a main interest in bringing all the Balkans and Eastern front into hostile action against Germany It therefore seems most important to make the Turkish treaty *

If it should turn out that Hitler is barred in the East, which, of course, is not yet certain, three courses are open to him

(1) A major attack on the Western front, probably through Belgium, collecting Holland on the way

(2) An intensive attack by air upon British factories, naval ports, etc , or perhaps on the French air factories

(3) What the Prime Minister calls "the peace offensive"

Personally, I shall believe that (1) is imminent only when at least thirty divisions have been concentrated opposite Belgium and Luxem-

* See Appendix K

burg As to (2), it seems a very likely thing for that man to do, but he may not do it, or he may not be allowed to do it by his generals, who now are presumably more powerful, for fear of making a mortal blood-feud with Great Britain, and perhaps drawing in the United States by the air massacres which would be inevitable As for (3), if he has not tried (2) it would seem our duty and policy to agree to nothing that will help him out of his troubles, and to leave him to stew in his own juice during the winter while speeding forward our armaments and weaving up our alliances The general outlook, therefore, seems far more favourable than it did in the autumn of 1914, when a large part of France was occupied and Russia had been shattered at Tannenberg

But there always remains No 2. That is the immediate pinch

In a broadcast on October 1 I said

Poland has again been overrun by two of the great Powers which held her in bondage for a hundred and fifty years but were unable to quench the spirit of the Polish nation The heroic defence of Warsaw shows that the soul of Poland is indestructible, and that she will rise again like a rock, which may for a time be submerged by a tidal wave, but which remains a rock

Russia has pursued a cold policy of self-interest We could have wished that the Russian armies should be standing on their present line as the friends and allies of Poland instead of as invaders But that the Russian armies should stand on this line was clearly necessary for the safety of Russia against the Nazi menace At any rate, the line is there, and an Eastern front has been created which Nazi Germany does not dare assail .

I cannot forecast to you the action of Russia It is a riddle wrapped in a mystery inside an enigma But perhaps there is a key That key is Russian national interest It cannot be in accordance with the interest or the safety of Russia that Germany should plant herself upon the shores of the Black Sea, or that she should overrun the Balkan States and subjugate the Slavonic peoples of South-eastern Europe That would be contrary to the historic life-interests of Russia.

The Prime Minister was in full agreement "I take the same view as Winston," he said, in a letter to his sister, "to whose excellent broadcast we have just been listening I believe Russia will always act as she thinks her own interests demand, and I cannot believe she would think her interests served by a German victory followed by a German domination of Europe "*

* Feiling, *op cit*, p 425

CHAPTER XXV

WAR CABINET PROBLEMS

Our Daily Meetings – A Fifty-Five Division Army for Britain – Our Heavy Artillery – My Letter to the Prime Minister, September 10 – To the Minister of Supply, September 10, and His Answer – Need for a Ministry of Shipping – My Letter to the Prime Minister, September 15 – His Reply, September 16 – Further Correspondence about Munitions and Man-power – My Letter to the Chancellor of the Exchequer, September 24 – An Economy Campaign – The Search for a Naval Offensive – The Baltic – "Catherine the Great" – Plans for Forcing Entry – Technical and Tactical Aspects – The Prize – Views of the First Sea Lord – Lord Cork's Appointment – Progress of the Plan – The Veto of the Air – The New Construction Programme – Cruisers – Destroyers – Numbers Versus Size – Long- and Short-Term Policies – Speeding the Programme – Need of an Air-Proof Battle Squadron – The Waste of the "Royal Sovereigns" – I Establish My Own Statistical Department.

THE *WAR CABINET* and its additional members, with the Chiefs of Staff for the three Services and a number of secretaries, had met together for the first time on September 4 Thereafter we met daily, and often twice a day I do not recall any period when the weather was so hot—I had a black alpaca jacket made to wear over only a linen shirt It was indeed just the weather that Hitler wanted for his invasion of Poland The great rivers on which the Poles had counted in their defensive plan were nearly everywhere fordable, and the ground was hard and firm for the movement of tanks and vehicles of all kinds Each morning the C.I G.S., General Ironside, standing before the map, gave long reports and appreciations which very soon left no doubt in our minds that the resistance of Poland would speedily be crushed. Each day I reported to the Cabinet the Admiralty tale,

which usually consisted of a list of British merchant ships sunk by the U-boats. The British Expeditionary Force of four divisions began its movement to France, and the Air Ministry deplored the fact that they were not allowed to bombard military objectives in Germany For the rest a great deal of business was transacted on the Home Front, and there were of course lengthy discussions about foreign affairs, particularly concerning the attitude of Soviet Russia and Italy and the policy to be pursued in the Balkans.

The most important step was the setting up of the Land Forces Committee, under Sir Samuel Hoare, at this time Lord Privy Seal, in order to advise the War Cabinet upon the scale and organisation of the Army we should form I was a member of this small body, which met at the Home Office, and in one single sweltering afternoon agreed, after hearing the generals, that we should forthwith begin the creation of a fifty-five-division Army, together with all the munition factories, plants, and supply services of every kind necessary to sustain it in action It was hoped that by the eighteenth month two-thirds of this, a considerable force, would either already have been sent to France or be fit to take the field Sir Samuel Hoare was clear-sighted and active in all this, and I gave him my constant support The Air Ministry, on the other hand, feared that so large an Army and its supplies would be an undue drain upon our skilled labour and man-power, and would hamper them in the vast plans they had formed on paper for the creation of an all-powerful overwhelming Air Force in two or three years The Prime Minister was impressed by Sir Kingsley Wood's arguments, and hesitated to commit himself to an Army of this size and all that it entailed The War Cabinet was divided upon the issue, and it was a week or more before a decision was reached to adopt the advice of the Land Forces Committee for a fifty-five-division Army, or rather target

I felt that as a member of the War Cabinet I was bound to take a general view, and I did not fail to subordinate my own departmental requirements for the Admiralty to the main design I was anxious to establish a broad basis of common ground with the Prime Minister, and also to place him in possession of my knowledge in this field, which I had trodden before, and, being encouraged by his courtesy, I wrote him a series of letters on the various problems as they arose. I did not wish to be drawn into

arguments with him at Cabinets, and always preferred putting things down on paper In nearly all cases we found ourselves in agreement, and although at first he gave me the impression of being very much on his guard, yet I am glad to say that month by month his confidence and goodwill seemed to grow. His biographer has borne testimony to this. I also wrote to other members of the War Cabinet and to various Ministers with whom I had departmental or other business. The War Cabinet was hampered somewhat by the fact that they seldom sat together alone without secretaries or military experts It was an earnest and workmanlike body, and the advantages of free discussion among men bound so closely together in a common task, without any formality and without any record being kept, are very great. Such meetings are an essential counterpart to the formal meetings where business is transacted and decisions are recorded for guidance and action Both processes are indispensable to the handling of the most difficult affairs

I was deeply interested in the fate of the great mass of heavy artillery which as Minister of Munitions I had made in the previous war Such weapons take a year and a half to manufacture, but it is of great value to an army, whether in defence or offence, to have at its disposal a mass of heavy batteries. I remembered the struggles which Mr. Lloyd George had had with the War Office in 1915 and all the political disturbance which had arisen on this subject of the creation of a dominating Very Heavy Artillery, and how he had been vindicated by events The character of the war on land, when it eventually manifested itself eight months later in 1940, proved utterly different from that of 1914–18. As will be seen, however, a vital need in Home Defence was met by these great cannon. At this time I conceived we had a buried treasure which it would be folly to neglect.

I wrote to the Prime Minister on this and other matters.

First Lord to Prime Minister 10.IX.39

I hope you will not mind my sending you a few points privately

1. I am still inclined to think that we should not take the initiative in bombing, except in the immediate zone in which the French armies are operating, where we must of course help. It is to our interest that the war should be conducted in accordance with the more humane conceptions of war, and that we should follow and not precede the Germans in the process, no doubt inevitable, of deepening severity

and violence Every day that passes gives more shelter to the population of London and the big cities, and in a fortnight or so there will be far more comparatively safe refuges than now.

2. You ought to know what we were told about the condition of our small Expeditionary Force and their deficiencies in tanks, in trained trench-mortar detachments, and above all in heavy artillery There will be a just criticism if it is found that the heavy batteries are lacking.

. In 1919, after the war, when I was S. of S for War, I ordered a mass of heavy cannon to be stored, oiled, and carefully kept, and I also remember making in 1918 two 12-inch hows at the request of G.H Q to support their advance into Germany in 1919 These were never used, but they were the last word at the time They are not easy things to lose It seems to me most vitally urgent, first, to see what there is in the cupboard, secondly, to recondition it at once and make the ammunition of a modern character Where this heavy stuff is concerned I may be able to help at the Admiralty, because of course we are very comfortable in respect of everything big

3 You may like to know the principles I am following in recasting the Naval programme of new construction I propose to suspend work upon all except the first three or perhaps four of the new battleships, and not to worry at the present time about vessels that cannot come into action until 1942 This decision must be reviewed in six months It is by this change that I get the spare capacity to help the Army On the other hand, I must make a great effort to bring forward the smaller anti-U-boat fleet Numbers are vital in this sphere A good many are coming forward in 1940, but not nearly enough considering that we may have to face an attack by 200 or 300 U-boats in the summer of 1940 .

4. With regard to the supply of the Army and its relation to the Air Force, pardon me if I put my experience and knowledge, which were bought, not taught, at your disposal The making by the Minister of Supply of a lay-out on the basis of fifty-five divisions at the present time would not prejudice Air or Admiralty, because (*a*) the preliminary work of securing the sites and building the factories will not for many months require skilled labour, here are months of digging foundations, laying concrete, bricks and mortar, drainage, etc, for which the ordinary building-trade labourers suffice, and (*b*) even if you could not realise a fifty-five-division front by the twenty-fourth month because of other claims, you could alter the time to the thirty-sixth month or even later without affecting the scale On the other hand, if he does not make a big lay-out at the beginning there will be vexatious delays when existing factories have to be enlarged Let him make his lay-out on the large scale, and protect the needs of the Air

Force and Army by varying the time factor. A factory once set up need not be used until it is necessary, but if it is not in existence you may be helpless if you need a further effort. It is only when these big plants get into work that you can achieve adequate results.

5. Up to the present (noon) no further losses by U-boats are reported—*i.e.*, thirty-six hours blank. Perhaps they have all gone away for the week-end! But I pass my time waiting to be hit. Nevertheless I am sure all will be well

I also wrote to Dr. Burgin:

First Lord to Minister of Supply 10.IX 39

In 1919, when I was at the War Office, I gave careful instructions to store and oil a mass of heavy artillery. Now it appears that this has been discovered It seems to me the first thing you should do would be to get hold of this store and recondition them with the highest priority, as well as make the heavy ammunition The Admiralty might be able to help with the heavy shells. Do not hesitate to ask

The reply was most satisfactory:

Minister of Supply to First Lord 11 IX 39

The preparation for use of the super-heavy artillery of which you write has been the lively concern of the War Office since the September crisis of 1938, and work actually started on the reconditioning of guns and mountings, both of the 9.2-inch guns and the 12-inch howitzers, last January

These equipments were put away in 1919 with considerable care, and as a result they are proving to be, on the whole, not in bad condition Certain parts of them have however deteriorated and require renewal, and this work has been going on steadily throughout this year. We shall undoubtedly have some equipments ready during this month, and of course I am giving the work a high priority. . .

I am most grateful for your letter. You will be glad to see how much has already been done on the lines you recommend.

* * * * *

First Lord to Prime Minister 11.IX.39

Everyone says there ought to be a Ministry of Shipping. The President of the Chamber of Shipping to-day pressed me strongly for it at our meeting with the shipowners. The President of the Board of Trade asked me to associate him with this request, which of course entails a curtailment of his own functions I am sure there will be a strong Parliamentary demand Moreover, the measure seems to me good on the merits The functions are threefold·

(*a*) To secure the maximum fertility and economy of freights in accordance with the war policy of the Cabinet and the pressure of events.
(*b*) To provide and organise the very large shipbuilding programme necessary as a safeguard against the heavy losses of tonnage we may expect from a U-boat attack apprehended in the summer of 1940 This should certainly include the study of concrete ships, thus relieving the strain on our steel during a period of steel stringency
(*c*) The care, comfort, and encouragement of the merchant seamen who will have to go to sea repeatedly after having been torpedoed and saved. These merchant seamen are a most important and potentially formidable factor in this kind of war

The President of the Board of Trade has already told you that two or three weeks would be required to disentangle the branches of his department which would go to make up the Ministry of Shipping from the parent office. It seems to me very wise to allow this period of transition If a Minister were appointed and announced, he would gather to himself the necessary personal staff and take over gradually the branches of the Board of Trade which are concerned It also seems important that the step of creating a Ministry of Shipping should be taken by the Government before pressure is applied in Parliament and from shipping circles, and before we are told that there is valid complaint against the existing system.

* * * * *

This Ministry was formed after a month's discussion and announced on October 13 Mr. Chamberlain selected Sir John Gilmour as its first head. The choice was criticised as being inadequate Gilmour was a most agreeable Scotsman and a well-known Member of Parliament He had held Cabinet office under Mr. Baldwin and Mr. Chamberlain. His health was declining, and he died within a few months of his appointment, and was succeeded by Mr. Ronald Cross.

First Lord to Prime Minister 15.IX.39

As I shall be away till Monday I give you my present thought on the main situation.

It seems to me most unlikely that the Germans will attempt an offensive in the West at this late season. . . . Surely his obvious plan should be to press on through Poland, Hungary, and Roumania to the Black Sea, and it may be that he has some understanding with Russia by which she will take part of Poland and recover Bessarabia. . . .

It would seem wise for Hitler to make good his Eastern connections and feeding-grounds during these winter months, and thus give his people the spectacle of repeated successes, and the assurance of weakening our blockade I do not therefore apprehend that he will attack in the West until he has collected the easy spoils which await him in the East None the less, I am strongly of opinion that we should make every preparation to defend ourselves in the West Every effort should be made to make Belgium take the necessary precautions in conjunction with the French and British Armies Meanwhile the French frontier behind Belgium should be fortified night and day by every conceivable resource. In particular the obstacles to tank attack, planting railway rails upright, digging deep ditches, erecting concrete dolls, land-mines in some parts and inundations all ready to let out in others, etc , should be combined in a deep system of defence The attack of three or four German armoured divisions, which has been so effective in Poland, can only be stopped by physical obstacles defended by resolute troops and a powerful artillery. Without physical obstacles the attack of armoured vehicles cannot be effectively resisted.

I am very glad to find that the mass of war-time artillery which I stored in 1919 is all available It comprises 32 12-inch, 145 9-inch, a large number of 8-inch, nearly 200 6-inch, howitzers, together with very large quantities of ammunition, in fact, it is the heavy artillery, not of our small Expeditionary Force, but of a great army No time should be lost in bringing some of these guns into the field, so that whatever else our troops will lack they will not suffer from want of heavy artillery

I hope you will consider carefully what I write to you I do so only in my desire to aid you in your responsibilities and discharge my own.

The Prime Minister wrote back on the 16th, saying

All your letters are carefully read and considered by me, and if I have not replied to them it is only because I am seeing you every day, and moreover because, as far as I have been able to observe, your views and mine have very closely coincided To my mind the lesson of the Polish campaign is the power of the Air Force, when it has obtained complete mastery in the air, to paralyse the operations of land forces . Accordingly, as it seems to me, although I shall of course await the report of the Land Forces Committee before making up my mind, absolute priority ought to be given to our plans for rapidly accelerating the strength of our Air Force, and the extent of our effort on land should be determined by our resources *after* we have provided for Air Force extension

First Lord to Prime Minister 18.IX.39

I am entirely with you in believing that Air Power stands foremost in our requirements, and indeed I sometimes think that it may be the ultimate path by which victory will be gained On the other hand, the Air Ministry paper, which I have just been studying, seems to peg out vast and vague claims which are not at present substantiated, and which, if accorded absolute priority, would overlay other indispensable forms of war effort. I am preparing a note upon this paper, and will only quote one figure which struck me in it

If the aircraft industry with its present 360,000 men can produce nearly 1,000 machines a month, it seems extraordinary that 1,050,000 men should be required for a monthly output of 2,000 One would expect a very large "reduction on taking a quantity", especially if mass-production is used. I cannot believe the Germans will be using anything like 1,000 000 men to produce 2,000 machines a month. While, broadly speaking, I should accept an output of 2,000 machines a month as the objective, I am not at present convinced that it would make anything like so large a demand upon our war-making capacity as is implied in this paper

The reason why I am anxious that the Army should be planned upon a fifty- or fifty-five-division scale is that I doubt whether the French would acquiesce in a division of effort which gave us the sea and air and left them to pay almost the whole blood-tax on land Such an arrangement would certainly be agreeable to us, but I do not like the idea of our having to continue the war single-handed.

There are great dangers in giving absolute priority to any department. In the late war the Admiralty used their priority arbitrarily and selfishly, especially in the last year, when they were overwhelmingly strong, and had the American Navy added to them I am every day restraining such tendencies in the common interest

As I mentioned in my first letter to you, the lay-out of the shell, gun, and filling factories, and the provision for explosives and steel, does not compete directly while the plants are being made with the quite different class of labour required for aeroplane production. It is a question of clever dovetailing. The provision of mechanical vehicles, on the other hand, is directly competitive, and must be carefully adjusted It would be wise to bring the Army munitions plants into existence on a large scale, and then to let them begin to eat only as our resources allow and the character of the war requires The time factor is the regulator which you would apply according to circumstances If however the plants are not begun now, you will no longer have the option

I thought it would be a wise thing to state to the French our inten-

tion to work up to an army of fifty or fifty-five divisions But whether this could be reached at the twenty-fourth month or at the thirtieth or fortieth month should certainly be kept fluid

At the end of the late war we had about ninety divisions in all theatres, and we were producing aircraft at the rate of 2,000 a month, as well as maintaining a Navy very much larger than was needed, and far larger than our present plans contemplate I do not therefore feel that fifty or fifty-five divisions and 2,000 aircraft per month are incompatible aims, although of course the modern divisions and modern aircraft represent a much higher industrial effort—everything having become so much more complicated

First Lord to Prime Minister 21.IX 39

I wonder if you would consider having an occasional meeting of the War Cabinet Ministers to talk among themselves without either secretaries or military experts I am not satisfied that the large issues are being effectively discussed in our formal sessions We have been constituted the responsible Ministers for the conduct of the war, and I am sure it would be in the public interest if we met as a body from time to time. Much is being thrown upon the Chiefs of Staff which falls outside the professional sphere We have had the advantage of many valuable and illuminating reports from them But I venture to represent to you that we ought sometimes to discuss the general position alone. I do not feel that we are getting to the root of the matter on many points.

I have not spoken to any colleague about this, and have no idea what their opinions are I give you my own, as in duty bound.

* * * * *

On September 24 I wrote to the Chancellor of the Exchequer:

I am thinking a great deal about you and your problem, as one who has been through the Exchequer mill I look forward to a severe Budget based upon the broad masses of the well-to-do. But I think you ought to couple with this a strong anti-waste campaign. Judging by the small results achieved for our present gigantic expenditure, I think there never was so little "*value for money*" as what is going on now In 1918 we had a lot of unpleasant regulations in force for the prevention of waste, which after all was part of the winning of victory. Surely you ought to make a strong feature of this in your Wednesday's statement An effort should be made to tell people the things they ought to try to avoid doing This is by no means a doctrine of abstention from expenditure Everything should be eaten up prudently, even luxuries, *so long as no more are created* Take stationery, for example

—this should be regulated at once in all departments. Envelopes should be pasted up and re-directed again and again. Although this seems a small thing, it teaches every official—and we now have millions of them—to think of saving

An active "saving campaign" was inculcated at the Front in 1918, and people began to take a pride in it, and look upon it as part of the show Why not inculcate these ideas in the B.E F. from the outset in all zones not actually under fire?

I am trying to prune the Admiralty of large schemes of naval improvement which cannot operate till after 1941, or even in some cases (when they cannot operate) till after the end of 1940. Beware lest these fortifications people and other departmentals do not consume our strength upon long-scale developments which cannot mature till after the climax which settles our fate

I see the departments full of loose fat, following on undue starvation It would be much better from your point of view to come along with your alguazils *as critics* upon wasteful exhibitions, rather than delaying action Don't hamper departments acting in a time of crisis, give them the responsibility, but call them swiftly to account for any failure in thrift.

I hope you will not mind me writing to you upon this subject, because I feel just as strongly about the husbanding of the money-power as I do about the war effort, of which it is indeed an integral part In all these matters you can count on my support, and also, as the head of a spending department, upon my submission to searching superintendence.

* * * * *

In every war in which the Royal Navy has claimed the command of the seas it has had to pay the price of exposing immense targets to the enemy. The privateer, the raiding cruiser, and above all the U-boat, have in all the varying forms of war exacted a heavy toll upon the life-lines of our commerce and food-supply. A prime function of defence has therefore always been imposed upon us From this fact the danger arises of our being driven or subsiding into a defensive naval strategy and habit of mind. Modern developments have aggravated this tendency. In the two Great Wars, during parts of which I was responsible for the control of the Admiralty, I always sought to rupture this defensive obsession by searching for forms of counter-offensive. To make the enemy wonder where he is going to be hit next may bring immeasurable relief to the process of shepherding

hundreds of convoys and thousands of merchantmen safely into port. In the First World War I hoped to find in the Dardanelles, and later in an attack upon Borkum and other Frisian islands, the means of regaining the initiative and forcing the weaker naval Power to study his own problems rather than ours. Called to the Admiralty again in 1939, and as soon as immediate needs were dealt with and perils warded off, I could not rest content with the policy of "Convoy and blockade". I sought earnestly for a way of attacking Germany by naval means.

First and foremost gleamed the Baltic. The command of the Baltic by a British fleet carried with it possibly decisive gains Scandinavia, freed from the menace of German invasion, would thereby naturally be drawn into our system of war trade, if not indeed into actual co-belligerency. A British fleet in mastery of the Baltic would hold out a hand to Russia in a manner likely to be decisive upon the whole Soviet policy and strategy These facts were not disputed among responsible and well-informed men. The command of the Baltic was the obvious supreme prize, not only for the Royal Navy but for Britain. Could it be won? In this new war the German Navy was no obstacle. Our superiority in heavy ships made us eager to engage them wherever and whenever there was opportunity. Minefields could be swept by the stronger naval Power The U-boats imposed no veto upon a fleet guarded by efficient flotillas. But now, instead of the powerful German Navy of 1914 and 1915, there was the Air Arm, formidable, unmeasured, and certainly increasing in importance with every month that passed.

If two or three years earlier it had been possible to make an alliance with Soviet Russia, this might have been implemented by a British battle squadron joined to the Russian Fleet and based on Cronstadt. I commended this to my circle of friends at the time Whether such an arrangement was ever within the bounds of action cannot be known It was certainly one way of restraining Germany, but there were also easier methods which were not taken Now in the autumn of 1939 Russia was an adverse neutral, balancing between antagonism and actual war Sweden had several suitable harbours on which a British fleet could be based. But Sweden could not be expected to expose herself to invasion by Germany. Without the command of the Baltic we could not ask for a Swedish harbour Without a Swedish harbour we could

not have the command of the Baltic. Here was a deadlock in strategic thought. Was it possible to break it? It is always right to probe. During the war, as will be seen, I forced long Staff studies of various operations, as the result of which I was usually convinced that they were better left alone, or else that they could not be fitted in with the general conduct of the struggle. Of these the first was the Baltic domination.

* * * * *

On the fourth day after I reached the Admiralty I asked that a plan for forcing a passage into the Baltic should be prepared by the Naval Staff. The Plans Division replied quickly that Italy and Japan must be neutral, that the threat of air attack appeared prohibitive; but that apart from this the operation justified detailed planning, and should, if judged practicable, be carried out in March 1940, or earlier. Meanwhile I had long talks with the Director of Naval Construction, Sir Stanley Goodall, one of my friends from 1911–12, who was immediately captivated by the idea. I named the plan "Catherine", after Catherine the Great, because Russia lay in the background of my thought. On September 12 I was able to write a detailed minute to the authorities concerned.*

Admiral Pound replied on the 20th that success would depend on Russia not joining Germany and on the assurance of co-operation by Norway and Sweden; and that we must be able to win the war against any probable combination of Powers without counting upon whatever force was sent into the Baltic. He was all for the exploration. On September 21 he agreed that Admiral of the Fleet the Earl of Cork and Orrery, an officer of the highest attainments and distinction, should come to work at the Admiralty, with quarters and a nucleus staff, and all information necessary for exploring and planning the Baltic offensive project. There was an apt precedent for this in the previous war, when I had brought back the famous Admiral "Tug" Wilson to the Admiralty for special duties of this kind with the full agreement of Lord Fisher; and there are several instances in this war where, in an easy and friendly manner, large issues of this kind were tested without any resentment being felt by the Chiefs of Staff concerned.

* See Appendix G.

Both Lord Cork's ideas and mine rested upon the construction of capital ships specially adapted to withstand air and torpedo attack. As is seen from the minute in the Appendix, I wished to convert two or three ships of the *Royal Sovereign* class for action inshore or in narrow waters by giving them super-bulges against torpedoes and strong armour-plated decks against air-bombs For this I was prepared to sacrifice one or even two turrets and seven or eight knots speed. Quite apart from the Baltic, this would give us facilities for offensive action both off the enemy's North Sea coast and even more in the Mediterranean Nothing could be ready before the late spring of 1940, even if the earliest estimates of the naval construction and the dockyards were realised. On this basis therefore we proceeded.

On the 26th Lord Cork presented his preliminary appreciation, based of course on a purely military study of the problem. He considered the operation, which he would of course have commanded, perfectly feasible but hazardous He asked for a margin of at least 30 per cent. over the German Fleet on account of expected losses in the passage. If we were to act in 1940 the assembly of the fleet and all necessary training must be complete by the middle of February. Time did not therefore permit the deck-armouring and side-blistering of the *Royal Sovereigns* on which I counted. Here was another deadlock. Still, if this kind of thing goes working on one may get into position—maybe a year later—to act. But in war, as in life, all other things are moving too. If one can plan calmly with a year or two in hand better solutions are open.

I had strong support in all this from the Deputy Chief of Staff, Admiral Tom Phillips (who perished in the *Prince of Wales* at the end of 1941 near Singapore), and from Admiral Fraser, the Controller and Third Sea Lord. He advised the addition to the assault fleet of the four fast merchant ships of the Glen Line, which were to play their part in other events.

* * * * *

One of my first duties at the Admiralty was to examine the existing programmes of new construction and war expansion which had come into force on the outbreak.

At any given moment there are at least four successive annual programmes running at the Admiralty. In 1936 and 1937 five new

battleships had been laid down which would come into service in 1940 and 1941. Four more battleships had been authorised by Parliament in 1938 and 1939, which could not be finished for five or six years from the date of order. Nineteen cruisers were in various stages of construction. The constructive genius and commanding reputation of the Royal Navy in design had been distorted and hampered by the treaty restrictions for twenty years. All our cruisers were the result of trying to conform to treaty limitations and "gentleman's agreements". In peace-time vessels had thus been built to keep up the strength of the Navy from year to year amid political difficulties. In war-time a definite tactical object must inspire all construction. I greatly desired to build a few 14,000-ton cruisers carrying 9 2-inch guns, with good armour against 8-inch projectiles, wide radius of action, and superior speed to any existing *Deutschland* or other German cruiser. Hitherto the treaty restrictions had prevented such a policy. Now that we were free from them, the hard priorities of war interposed an equally decisive veto on such long-term plans.

Destroyers were our most urgent need, and also our worst feature. None had been included in the 1938 programme, but sixteen had been ordered in 1939. In all, thirty-two of these indispensable craft were in the yards, and only nine could be delivered before the end of 1940. The irresistible tendency to make each successive flotilla an improvement upon the last had lengthened the time of building to nearer three than two years. Naturally the Navy liked to have vessels capable of riding out the Atlantic swell and large enough to carry all the modern improvements in gunnery, and especially anti-aircraft defence. It is evident that along this line of solid argument a point is soon reached where one is no longer building a destroyer but a small cruiser. The displacement approaches or even exceeds 2,000 tons, and a crew of more than two hundred sail the seas in these unarmoured ships, themselves an easy prey to any regular cruiser. The destroyer is the chief weapon against the U-boat, but as it grows ever larger it becomes itself a worth-while target. The line is passed where the hunter becomes the hunted. We could not have too many destroyers, but their perpetual improvements and growth imposed severe limitation on the numbers the yards could build, and deadly delay in completion.

On the other hand, there are seldom less than two thousand

British merchant ships at sea, and the sailings in and out of our home ports amounted each week to several hundreds of ocean-going vessels and several thousands of coastwise traders. To bring the convoy system into play, to patrol the Narrow Seas, to guard the hundreds of ports of the British Isles, to serve our bases all over the world, to protect the minesweepers in their ceaseless task, all required an immense multiplication of small armed vessels. Numbers and speed of construction were the dominating conditions.

It was my duty to readjust our programmes to the need of the hour and to enforce the largest possible expansion of anti-U-boat vessels. For this purpose two principles were laid down Firstly, the long-term programme should be either stopped or severely delayed, thus concentrating labour and materials upon what we could get in the first year or year and a half Secondly, new types of anti-submarine craft must be devised which were good enough for work on the approaches to the Island, thus setting free our larger destroyers for more distant duties

On all these questions I addressed a series of minutes to my naval colleagues*:

Having regard to the U-boat menace, which must be expected to renew itself on a much larger scale towards the end of 1940, the type of destroyer to be constructed must aim at numbers and celerity of construction rather than size and power It ought to be possible to design destroyers which can be completed in under a year, in which case fifty at least should be begun forthwith I am well aware of the need of a proportion of flotilla leaders and large destroyers capable of ocean service, but the arrival in our fleets of fifty destroyers of the medium emergency type I am contemplating would liberate all larger vessels for ocean work and for combat

The usual conflict between long-term and short-term policy rises to intensity in war. I prescribed that all work likely to compete with essential construction should be stopped on large vessels which could not come into service before the end of 1940, and that the multiplication of our anti-submarine fleets must be effected by types capable of being built within twelve months, or, if possible, eight. For the first type we revived the name corvette. Orders for fifty-eight of these had been placed shortly before the outbreak of war, but none were yet laid down. Later and im-

* See Appendix H

proved vessels of a similar type, ordered in 1940, were called frigates Besides this, a great number of small craft of many kinds, particularly trawlers, had to be converted with the utmost dispatch and fitted with guns, depth-charges, and Asdics, motor launches of new Admiralty design were also required in large numbers for coastal work Orders were placed to the limit of our shipbuilding resources, including those of Canada. Even so we did not achieve all that we hoped, and delays arose which were inevitable under the prevailing conditions and which caused the deliveries from the shipyards to fall considerably short of our expectations *

* * * * *

Eventually my view about Baltic strategy and battleship reconstruction prevailed in the protracted discussions The designs were made and the orders were given. However, one reason after another was advanced, some of them well-founded, for not putting the work in hand. The *Royal Sovereigns*, it was said, might be needed for convoy in case the German pocket-battleships or 8-inch-gun cruisers broke loose It was represented that the scheme involved unacceptable interference with other vital work, and a plausible case could be shown for alternative priorities for our labour and armour. I deeply regretted that I was never able to achieve my conception of a squadron of very heavily deck-armoured ships of no more than fifteen knots, bristling with anti-aircraft guns and capable of withstanding to a degree not enjoyed by any other vessel afloat both air and under-water attack When in 1941 and 1942 the defence and succouring of Malta became so vital, when we had every need to bombard Italian ports, and above all Tripoli, others felt the need as much as I It was then too late

Throughout the war the *Royal Sovereigns* remained an expense and an anxiety. They had none of them been rebuilt like their sisters the *Queen Elizabeths*, and when, as will be seen in due course, the possibility of bringing them into action against the Japanese fleet which entered the Indian Ocean in April 1942 presented itself the only thought of the Admiral on the spot, of Admiral Pound, and the Minister of Defence, was to put as many thousands of miles as possible between them and the enemy in the shortest possible time

* * * * *

* See Appendix I.

One of the first steps I took on taking charge of the Admiralty and becoming a member of the War Cabinet was to form a statistical department of my own. For this purpose I relied on Professor Lindemann, my friend and confidant of so many years Together we had formed our views and estimates about the whole story. I now installed him at the Admiralty with half a dozen statisticians and economists whom we could trust to pay no attention to anything but realities. This group of capable men, with access to all official information, was able, under Lindemann's guidance, to present me continually with tables and diagrams, illustrating the whole war so far as it came within our knowledge. They examined and analysed with relentless pertinacity all the departmental papers which were circulated to the War Cabinet, and also pursued all the inquiries which I wished to make myself

At this time there was no general Government statistical organisation. Each department presented its tale on its own figures and data The Air Ministry counted one way, the War Office another. The Ministry of Supply and the Board of Trade, though meaning the same thing, talked different dialects. This led sometimes to misunderstandings and waste of time when some point or other came to a crunch in the Cabinet. I had however from the beginning my own sure, steady source of information, every part of which was integrally related to all the rest Although at first this covered only a portion of the field, it was most helpful to me in forming a just and comprehensible view of the innumerable facts and figures which flowed out upon us.

CHAPTER XXVI

THE FRONT IN FRANCE

Movement of the B E.F to France – Fortification of the Belgian Frontier – Advantages of Aggression – Belgian Neutrality – France and the Offensive – The Maginot Line – Accepted Power of the Defensive – Unattractive French Alternatives – Estimates of the British Chiefs of Staff – Hitler's Error – Relative Strength in the West – Possible German Lines of Attack – Opinion of the British Chiefs of Staff, their Paper of September 18, 1939 – Gamelin Develops Plan D – Instruction No. 8 – Meeting of Allied Supreme Council in Paris on November 17 – Plan D Adopted – Extension of Plan D to Holland

IMMEDIATELY upon the outbreak our Expeditionary Army began to move to France Whereas before the previous war at least three years had been spent in making the preparations, it was not till the spring of 1938 that the War Office set up a special section for this purpose Two serious new factors were now present First, the equipment and organisation of a modern army was far less simple than in 1914 Every division had mechanical transport, was more numerous, and had a much higher proportion of non-fighting elements Secondly, the extravagant fear of air attack on the troopships and landing-ports led the War Office to use only the southern French harbours and St Nazaire, which became the principal base This lengthened the communications of the Army, and in consequence retarded the arrival, deployment, and maintenance of the British troops, and consumed profuse additional numbers along the route *

Oddly enough, it had not been decided before war on which

* Advance parties of the British Expeditionary Force began to land in France on September 4 The 1st Corps were ashore by September 19, and the 2nd Corps by October 3 General Headquarters (G H Q) was set up initially at Le Mans on September 15 The principal movement of troops was made through Cherbourg, with vehicles and stores, through Brest and Nantes, and assembly-points at Le Mans and Laval.

sector of the front our troops should be deployed, but the strong presumption was that it would be south of Lille; and this was confirmed on September 22. By mid-October four British divisions, formed into two Army Corps of professional quality, were in their stations along the Franco-Belgian frontier This involved a road-and-rail movement of 250 miles from the remote ports which had been chosen for landing. Three infantry brigades which arrived separately during October and November were formed into the 5th Division in December 1939 The 48th Division went out in January 1940, followed by the 50th and 51st Divisions in February, and the 42nd and 44th in March, making a total of ten As our numbers grew we took over more line. We were not of course at any point in contact with the enemy.

When the B.E F reached their prescribed positions they found ready-prepared a fairly complete artificial anti-tank ditch along the front line, and every thousand yards or so was a large and very visible pillbox giving enfilade fire along the ditch for machine and anti-tank guns There was also a continuous belt of wire Much of the work of our troops during this strange autumn and winter was directed to improving the French-made defences and organising a kind of Siegfried Line In spite of frost progress was rapid Air photographs showed the rate at which the Germans were extending their own Siegfried Line northwards from the Moselle Despite the many advantages they enjoyed in home resources and forced labour, we seemed to be keeping pace with them By the time of the May offensive, 1940, our troops had completed 400 new pillboxes Forty miles of revetted anti-tank ditch had been dug and great quantities of wire spread Immense demands were made by the long line of communications stretching back to Nantes Large base installations were created, roads improved, a hundred miles of broad-gauge railway-line laid, an extensive system of buried cable dug in, and several tunnelled headquarters for the corps and Army commands almost completed Nearly fifty new airfields and satellites were developed or improved with runways, involving over 50,000 tons of concrete

On all these tasks the Army laboured industriously, and to vary their experiences moved brigades by rotation to a sector of the French front in contact with the enemy near Metz, where there was at least some patrol activity All the rest of the time was spent by our troops in training This was indeed necessary. A far lower

scale of preparation had been reached when war broke out than that attained by Sir John French's Army a quarter of a century before For several years no considerable exercise with troops had been held at home. The Regular Army was 20,000 short of establishment, including 5,000 officers, and under the Cardwell system, which had to provide for the defence of India, the greater part of this fell upon the home units, which in consequence became hardly more than cadres. The little-considered, though well-meant, doubling of the Territorial Army in March 1939, and the creation of the Militia in May of that year, both involved drawing heavily upon the Regular Army for instructors The winter months in France were turned to good account, and every kind of training programme was woven into the prime work of fortification. It is certain that our Army advanced markedly in efficiency during the breathing-space which was granted it, and in spite of exacting toils and the absence of any kind of action its morale and spirit grew.

Behind our front immense masses of stores and ammunition were accumulated in the depots all along the communications Ten days' supply was gathered between the Seine and the Somme, *and seven days additional north of the Somme* This latter provision saved the Army after the German break-through Gradually, in view of the prevailing tranquillity, other ports north of Havre were brought into use in succession Dieppe became a hospital base, Fécamp was concerned with ammunition, and in the end we were making use in all of thirteen French harbours.

* * * * *

The advantage which a Government bound by no law or treaty has over countries which derive their war-impulse only after the criminal has struck, and have to plan accordingly, cannot be measured. It is enormous. On the other hand, unless the victory of the aggressors is absolute and final there may be some day a reckoning. Hitler, unhampered by any restraint except that of superior force, could strike when and where he chose, but the two Western democracies could not violate Belgium's neutrality The most they could do was to be ready to come to the rescue when called upon by the Belgians, and it was probable that this would never happen until it was too late Of course, if British and French policy during the five years preceding the war had

been of a manly and resolute character, within the sanctity of treaties and the approval of the League of Nations, Belgium might have adhered to her old allies and allowed a common front to be formed This would have brought immense security, and might perhaps have averted the disasters which were to come.

Such an alliance properly organised would have erected a shield along the Belgian frontier to the sea against that terrible turning movement which had nearly compassed our destruction in 1914 and was to play its part in the ruin of France in 1940. It would also have opened the possibility of a rapid advance from Belgium into the heart-centre of German industry in the Ruhr, and thus added a powerful deterrent upon German aggression. At the worst Belgium could have suffered no harder fate than actually befell her When we recall the aloofness of the United States; Mr Ramsay MacDonald's campaign for the disarmament of France, the repeated rebuffs and humiliations which we had accepted in the various German breaches of the Disarmament Clauses of the Treaty, our submission to the German violation of the Rhineland, our acquiescence in the absorption of Austria, our pact at Munich and acceptance of the German occupation of Prague—when we recall all this, no man in Britain or France who in those years was responsible for public action has a right to blame Belgium In a period of vacillation and appeasement the Belgians clung to neutrality, and vainly comforted themselves with the belief that they could hold the German invader on their fortified frontiers until the British and French Armies could come to their aid

* * * * *

In 1914 the spirit of the French Army and nation, burning from sire to son since 1870, was vehemently offensive Their doctrine was that the numerically weaker Power could only meet invasion by the counter-offensive, not only strategic but tactical at every point. At the beginning the French, with their blue tunics and red trousers, marched forward while their bands played the Marseillaise. Wherever this happened the Germans, although invading, sat down and fired upon them with devastating effect. The apostle of the offensive creed, Colonel Grandmaison, had perished in the forefront of the battle for his country and his theme I have explained in *The World Crisis* why the power of the defensive was predominant from 1914 to 1916 or 1917 The magazine

rifle, which we ourselves had seen used with great effect by handfuls of Boers in the South African War, could take a heavy if not decisive toll from troops advancing across the open. Besides this there were the ever-multiplying machine-guns.

Then had come the great battles of the artillery. An area was pulverised by hundreds and presently by thousands of guns. But if after heroic sacrifices the French and British advanced together against the strongly-entrenched Germans, successive lines of fortifications confronted them; and the crater-fields which their bombardment had created to quell the first lines of the enemy became a decisive obstacle to their further progress, even when they were successful. The only conclusion to be drawn from these hard experiences was that the defensive was master. Moreover, in the quarter of a century that had passed the fire-power of weapons had enormously increased. But this cut both ways, as will later be apparent.

It was now a very different France from that which had hurled itself upon its ancient foe in August 1914. The spirit of *revanche* had exhausted its mission and itself in victory. The chiefs who had nursed it were long dead. The French people had undergone the frightful slaughter of a million and a half of their manhood. Offensive action was associated in the great majority of French minds with the initial failures of the French onslaught of 1914, with General Nivelle's repulse in 1917, with the long agonies of the Somme and Passchendaele, and above all with the sense that the fire-power of modern weapons was devastating to the attacker. Neither in France nor in Britain had there been any effective comprehension of the consequences of the new fact that armoured vehicles could be made capable of withstanding artillery fire, and could advance a hundred miles a day. An illuminating book on this subject, published some years before by a Commander de Gaulle, had met with no response. The authority of the aged Marshal Pétain in the Conseil Supérieur de la Guerre had weighed heavily upon French military thought in closing the door to new ideas, and especially in discouraging what had been quaintly called "offensive weapons".

In the after-light the policy of the Maginot Line has often been condemned. It certainly engendered a defensive mentality. Yet it is always a wise precaution in defending a frontier of hundreds of miles to bar off as much as possible by fortifications, and thus

economise in the use of troops in sedentary *rôles* and "canalise" potential invasion. Properly used in the French scheme of war, the Maginot Line would have been of immense service to France. It could have been viewed as presenting a long succession of invaluable sally-ports, and above all as blocking off large sections of the front as a means of accumulating the general reserves or "mass of manœuvre". Having regard to the disparity of the population of France to that of Germany, the Maginot Line must be regarded as a wise and prudent measure. Indeed, it was extraordinary that it should not have been carried forward at least along the river Meuse It could then have served as a trusty shield, freeing a heavy, sharp, offensive French sword But Marshal Pétain had opposed this extension. He held strongly that the Ardennes could be ruled out as a channel of invasion on account of the nature of the ground. Ruled out accordingly it was. The offensive conceptions of the Maginot Line were explained to me by General Giraud when I visited Metz in 1937. They were however not carried into effect, and the Line not only absorbed very large numbers of highly-trained regular soldiers and technicians, but exercised an enervating effect both upon military strategy and national vigilance

The new air-power was justly esteemed a revolutionary factor in all operations Considering the comparatively small numbers of aircraft available on either side at this time, its effects were even exaggerated, and were held in the main to favour the defensive by hampering the concentrations and communications of great armies once launched in attack. Even the period of the French mobilisation was regarded by the French High Command as most critical on account of the possible destruction of railway centres, although the numbers of German aircraft, like those of the Allies, were far too few for such a task. These thoughts expressed by Air Chiefs followed correct lines, and were justified in the later years of the war, when the air strength had grown ten- or twenty-fold. At the outbreak they were premature.

* * * * *

It is a joke in Britain to say that the War Office is always preparing for the last war. But this is probably true of other departments and of other countries, and it was certainly true of the French Army. I also rested under the impression of the superior

power of the defensive provided it were actively conducted. I had neither the responsibility nor the continuous information to make a new measurement. I knew that the carnage of the previous war had bitten deeply into the soul of the French people. The Germans had been given the time to build the Siegfried Line. How frightful to hurl the remaining manhood of France against this wall of fire and concrete! I print in Appendix O one kind of long-term method (called Cultivator No 6) by which I then thought the fire-power of the defensive could be overcome But in my mind's outlook in the opening months of this Second World War I did not dissent from the general view about the defensive, and I believed that anti-tank obstacles and field guns, cleverly posted and with suitable ammunition, could frustrate or break up tanks except in darkness or fog, real or artificial.

In the problems which the Almighty sets his humble servants things hardly ever happen the same way twice over, or if they seem to do so there is some variant which stultifies undue generalisation. The human mind, except when guided by extraordinary genius, cannot surmount the established conclusions amid which it has been reared. Yet we are to see, after eight months of inactivity on both sides, the Hitler inrush of a vast offensive, led by spear-point masses of cannon-proof or heavily-armoured vehicles, breaking up all defensive opposition, and for the first time for centuries, and even perhaps since the invention of gunpowder, making artillery for a while almost impotent on the battlefield We are also to see that the increase of fire-power made the actual battles less bloody by enabling the necessary ground to be held with very small numbers of men, thus offering a far smaller human target

* * * * *

No frontier has ever received the same strategic attention and experiment as that which stretches through the Low Countries between France and Germany. Every aspect of the ground, its heights and its waterways, has been studied for centuries in the light of the latest campaign by all the generals and military colleges in Western Europe. At this period there were two lines to which the Allies could advance if Belgium were invaded by Germany and they chose to come to her succour, or which they could occupy by a well-planned secret and sudden scheme, if invited by Belgium. The first of these lines was what may be called

the line of the Scheldt. This was no great march from the French frontier and involved little serious risk. At the worst it would do no harm to hold it as a "false front". At the best it might be built up according to events. The second line was far more ambitious. It followed the Meuse through Givet, Dinant, and Namur by Louvain to Antwerp. If this adventurous line was seized by the Allies and held in hard battles the German right-handed swing of invasion would be heavily checked; and if their armies were proved inferior it would be an admirable prelude to the entry and control of the vital centre of Germany's munitions production in the Ruhr.

Since the case of an advance through Belgium without Belgian consent was excluded on grounds of international morality, there only remained an advance from the common Franco-German frontier. An attack due eastwards across the Rhine, north and south of Strasbourg, opened mainly into the Black Forest, which, like the Ardennes, was at that time regarded as bad ground for offensive operations. There was however the question of an advance from the front Strasbourg-Metz north-eastward into the Palatinate Such an advance, with its right on the Rhine, might gain the control of that river as far north as Coblenz or Cologne. This led into good fighting country; and these possibilities, with many variants, had been a part of the war-games in the Staff Colleges of Western Europe for a good many years. In this sector however the Siegfried Line, with its well-built concrete pillboxes mutually supporting one another and organised in depth with masses of wire, was in September 1939 already formidable. The earliest date at which the French could have mounted a big attack was perhaps at the end of the third week of September. But by that time the Polish campaign had ended. By mid-October the Germans had seventy divisions on the Western Front. The fleeting French numerical superiority in the West was passing. A French offensive from their eastern frontier would have denuded their far more vital northern front. Even if an initial success had been gained by the French armies at the outset, within a month they would have had extreme difficulty in maintaining their conquests in the east, and would have been exposed to the whole force of the German counter-stroke to the north.

This is the answer to the question "Why remain passive till

Poland was destroyed?" But this battle had been lost some years before. In 1938 there was a good chance of victory while Czechoslovakia still existed. In 1936 there could have been no effective opposition. In 1933 a rescript from Geneva would have procured bloodless compliance. General Gamelin cannot be the only one to blame because in 1939 he did not run the risks which had so enormously increased since the previous crises, from which both the French and British Governments had recoiled.

The British Chiefs of Staff Committee estimated that the Germans had by September 18 mobilised at least 116 divisions of all classes, distributed as follows: Western front, 42 divisions; Central Germany, 16 divisions, Eastern front, 58 divisions. We now know from enemy records that this estimate was almost exactly correct Germany had in all from 108 to 117 divisions. Poland was attacked by 58 of the most matured. There remained 50 or 60 divisions of varying quality. Of these, along the Western front from Aix-la-Chapelle to the Swiss frontier there stood 42 German divisions (14 active, 25 reserve, and 3 Landwehr). The German armour was either engaged in Poland or had not yet come into being, and the great flow of tanks from the factories had hardly begun. The British Expeditionary Force was no more than a symbolic contribution It was able to deploy two divisions by the first and two more by the second week in October In spite of the enormous improvement since Munich in their relative strength, the German High Command regarded their situation in the West while Poland was unconquered with profound anxiety, and only Hitler's despotic authority, will-power, and five-times-vindicated political judgment about the unwillingness of France and Great Britain to fight induced or compelled them to run what they deemed an unjustified risk.

Hitler was sure that the French political system was rotten to the core, and that it had infected the French Army. He knew the power of the Communists in France, and that it would be used to weaken or paralyse action once Ribbentrop and Molotov had come to terms and Moscow had denounced the French and British Governments for entering upon a capitalist and imperialist war. He was convinced that Britain was pacifist and degenerate. In his view, though Mr Chamberlain and M Daladier had been brought to the point of declaring war by a bellicose minority in England, they would both wage as little of it as they could, and

once Poland had been crushed would accept the accomplished fact, as they had done a year before in the case of Czechoslovakia On the repeated occasions which have been set forth Hitler's instinct had been proved right and the arguments and fears of his generals wrong He did not understand the profound change which takes place in Great Britain and throughout the British Empire once the signal for war has been given, nor how those who have been the most strenuous for peace turn overnight into untiring toilers for victory. He could not comprehend the mental or spiritual force of our Island people, who, however much opposed to war or military preparation, had through the centuries come to regard victory as their birthright. In any case, the British Army could be no factor at the outset, and he was certain that the French nation had not thrown its heart into the war This was indeed true. He had his way, and his orders were obeyed.

* * * * *

It was thought by our officers that when Germany had completely defeated the Polish Army she would have to keep in Poland some 15 divisions, of which a large proportion might be of low category If she had any doubts about the Russian pact this total might have to be increased to upwards of 30 divisions in the East. On the least favourable assumption Germany would therefore be able to draw over 40 divisions from the Eastern front, making 100 divisions available for the West. By that time the French would have mobilised 72 divisions in France, in addition to fortress troops equivalent to 12 or 14 divisions, and there would be 4 divisions of the British Expeditionary Force. Twelve French divisions would be required to watch the Italian frontier, making 76 against Germany The enemy would thus have a superiority of four to three over the Allies, and might also be expected to form additional reserve divisions, bringing this total up to 130 in the near future Against this the French had 14 additional divisions in North Africa, some of which could be drawn upon, and whatever further forces Great Britain could gradually supply.

In air-power our Chiefs of Staff estimated that Germany could concentrate, after the destruction of Poland, over 2,000 bombers in the West as against a combined Franco-British total of 950.*

* Actually the German bomber strength at that date was 1,546.

It was therefore clear that once Hitler had disposed of Poland he would be far more powerful on the ground and in the air than the British and French combined. There could therefore be no question of a French offensive against Germany. What then were the probabilities of a German offensive against France?

There were of course three methods open First, invasion through Switzerland This might turn the southern flank of the Maginot Line, but had many geographical and strategic difficulties. Secondly, invasion of France across the common frontier This appeared unlikely, as the German Army was not believed to be fully equipped or armed for a heavy attack on the Maginot Line And, thirdly, invasion of France through Holland and Belgium This would turn the Maginot Line, and would not entail the losses likely to be sustained in a frontal attack against permanent fortifications The Chiefs of Staff estimated that for this attack Germany would require to bring from the Eastern front twenty-nine divisions for the initial phase, with fourteen echelonned behind, as reinforcements to her troops already in the West. Such a movement could not be completed and the attack mounted with full artillery support under three weeks, and its preparation should be discernible by us a fortnight before the blow fell It would be late in the year for the Germans to undertake so great an operation, but the possibility could not be excluded

We should of course try to retard the German movement from east to west by air attack upon the communications and concentration areas Thus a preliminary air battle to reduce or eliminate the Allied air forces by attacks on airfields and aircraft factories might be expected, and so far as England was concerned would not be unwelcome Our next task would be to deal with the German advance through the Low Countries We could not meet their attack so far forward as Holland, but it would be in the Allied interest to stem it, if possible, in Belgium. "We understand," wrote the Chiefs of Staff, "that the French idea is that, provided the Belgians are still holding out on the Meuse, the French and British Armies should occupy the line Givet-Namur, the British Expeditionary Force operating on the left *We consider it would be unsound to adopt this plan unless plans are concerted with the Belgians for the occupation of this line in sufficient time before the Germans advance. . Unless the present Belgian attitude alters and*

plans can be prepared for early occupation of the Givet-Namur [also called Meuse-Antwerp] *line, we are strongly of opinion that the German advance should be met in prepared positions on the French frontier."* In this case it would of course be necessary to bomb Belgian and Dutch towns and railway centres used or occupied by German troops.

The subsequent history of this important issue must be recorded. It was brought before the War Cabinet on September 20, and after a brief discussion was remitted to the Supreme War Council. In due course the Supreme War Council invited General Gamelin's comments. In his reply General Gamelin said merely that the question of Plan D (*i e*, the advance to the Meuse-Antwerp line) had been dealt with in a report by the French Delegation. In this report the operative passage was, "If the call is made in time the Anglo-French troops will enter Belgium, but not to engage in an encounter battle. Among the recognised lines of defence are the line of the Scheldt and the line Meuse-Namur-Antwerp". After considering the French reply the British Chiefs of Staff submitted another paper to the Cabinet, which discussed the alternative of an advance to the Scheldt, but made no mention at all of the far larger commitments of an advance to the Meuse-
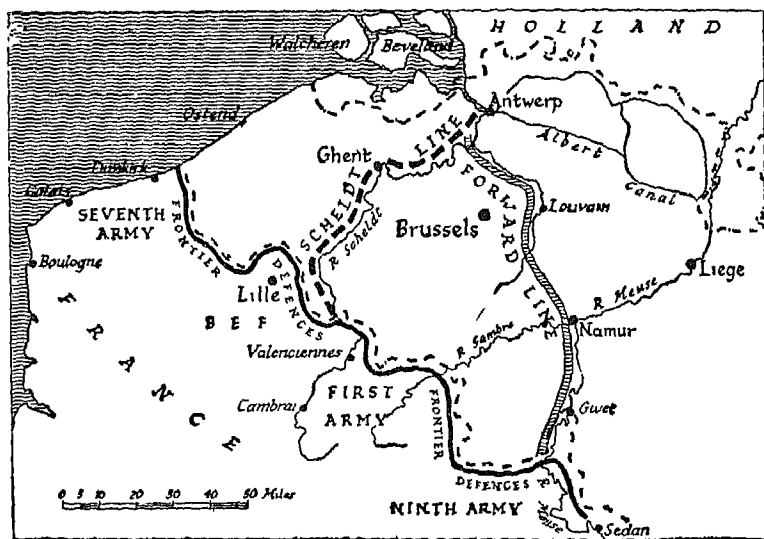
Diagram of SCHELDT LINE and MEUSE – ANTWERP LINE

Antwerp line. When the second report was presented to the Cabinet on October 4 by the Chiefs of Staff no reference was made by them to the all-important alternative of Plan D. It was therefore taken for granted by the War Cabinet that the views of the British Chiefs of Staff had been met and that no further action or decision was required I was present at both these Cabinets, and was not aware that any significant issue was still pending During October, there being no effective arrangements with the Belgians, it was assumed that the advance was limited to the Scheldt

Meanwhile General Gamelin, negotiating secretly with the Belgians, stipulated, first, that the Belgian Army should be maintained at full strength, and, secondly, that Belgian defences should be prepared on the more advanced line from Namur to Louvain. By early November agreement was reached with the Belgians on these points, and from November 5 to 14 a series of conferences was held at Vincennes and La Ferté, at which, or at some of which, Ironside, Newall, and Gort were present. On November 15 General Gamelin issued his Instruction No 8, confirming the agreements of the 14th, whereby support would be given to the Belgians "if circumstances permitted" by an advance to the line Meuse-Antwerp. The Allied Supreme Council met in Paris on November 17 Mr Chamberlain took with him Lord Halifax, Lord Chatfield, and Sir Kingsley Wood I had not at that time reached the position where I should be invited to accompany the Prime Minister to these meetings The decision was taken: "Given the importance of holding the German forces as far east as possible, it is essential to make every endeavour to hold the line Meuse-Antwerp in the event of a German invasion of Belgium" At this meeting Mr Chamberlain and M. Daladier insisted on the importance which they attached to this resolution, and thereafter it governed action This was, in fact, a decision in favour of Plan D, and it superseded the arrangements hitherto accepted of the modest forward move to the Scheldt

As a new addition to Plan D there presently appeared the task of a Seventh French Army. The idea of an advance of this army on the seaward flank of the Allied armies first came to light early in November 1939. General Giraud, who was restless with a reserve army around Rheims, was put in command The object of this excursion of Plan D was to move into Holland *via* Antwerp so as to help the Dutch, and secondly to occupy some parts of

the Dutch islands Walcheren and Beveland. All this would have been good if the Germans had already been stopped on the Albert Canal. General Gamelin wanted it General Georges thought it beyond our scope, and preferred that the troops involved should be brought into reserve behind the centre of the line. Of these differences we knew nothing

In this posture therefore we passed the winter and awaited the spring No new decisions of strategic principle were taken by the French and British Staffs or by their Governments in the six months which lay between us and the German onslaught.

CHAPTER XXVII

THE COMBAT DEEPENS

Peace Suggestions – The Anglo-French Rejection – Soviet Absorption of the Baltic States – My Views on British Military Preparations – Possible Détente with Italy in the Mediterranean – The Home Front – The Sinking of the "Royal Oak" – My Second Visit to Scapa Flow, October 31 – Decision about the Main Fleet Base – Mr. and Mrs. Chamberlain Dine at Admiralty House – The Loss of the "Rawalpindi" – A False Alarm.

HITLER took advantage of his successes to propose his Peace Plan to the Allies. One of the unhappy consequences of our appeasement policy and generally of our attitude in the face of his rise to power had been to convince him that neither we nor France were capable of fighting a war. He had been unpleasantly surprised by the declaration of Great Britain and France on September 3, but he firmly believed that the spectacle of the swift and crashing destruction of Poland would make the decadent democracies realise that the day when they could exercise influence over the fate of Eastern and Central Europe was gone for ever. He felt very sure at this time of the Russians, gorged as they were with Polish territory and the Baltic States. Indeed, during this month of October he was able to send the captured American merchantman *City of Flint* into the Soviet port of Murmansk under a German prize crew. He had no wish at this stage to continue a war with France and Britain. He felt sure His Majesty's Government would be very glad to accept the decision reached by him in Poland, and that a peace offer would enable Mr. Chamberlain and his old colleagues, having vindicated their honour by a declaration of war, to get out of the scrape into which they had been forced by the war-mongering elements in Parliament. It never occurred to him for a moment that Mr.

Chamberlain and the rest of the British Empire and Commonwealth of Nations now meant to have his blood or perish in the attempt.

The next step taken by Russia after partitioning Poland with Germany was to make three "Mutual Assistance Pacts" with Esthonia, Latvia, and Lithuania. These Baltic States had broken themselves free from the Soviet Government in the War of Liberation of 1918 and 1920. Carrying through drastic land reform largely at the expense of the former German landowners, these small countries evolved a nationalist and peasant way of life strongly anti-Communist in outlook. Ever fearful of their powerful Soviet neighbour, and desperately anxious to maintain their neutrality, these States attempted to avoid provocations in any direction. Their geographical situation made their task unenviable Riga, for example, became a listening-post for news from Russia and an international anti-Bolshevik meeting-place But the Germans had been content to throw them into their Russian deal, and the Soviet Government now advanced with pent-up hate and eager appetite upon their prey These three States had formed a part of the Tsarist Empire, and were the old conquests of Peter the Great. They were immediately occupied by strong Russian forces, against which they had no means of effectual resistance. A ferocious liquidation of all anti-Communist and anti-Russian elements was carried through by the usual methods Great numbers of people who for twenty years had lived in freedom in their native land and had represented the dominant majority of its people disappeared A large proportion of these were transported to Siberia. The rest went farther. Such was the process described as "Mutual Assistance".

* * * * *

At home we busied ourselves with the expansion of the Army and the Air Force and with all the necessary measures to strengthen our naval power I continued to submit my ideas to the Prime Minister, and pressed them upon other colleagues as might be acceptable.

First Lord to Prime Minister 1 X 39

This week-end I venture to write to you about several large issues

1 When the peace offensive opens upon us it will be necessary to sustain the French. Although we have nearly a million men under

arms, our contribution is, and must for many months remain, petty. We should tell the French that we are making as great a war effort, though in a different form, as in 1918, that we are constructing an Army of fifty-five divisions, which will be brought into action wherever needed, as fast as it can be trained and supplied, having regard to our great contribution in the air

At present we have our Regular Army, which produces four or five divisions probably superior to anything in the field But do not imagine that Territorial divisions will be able after six months' training or so to take their part without needless losses and bad results against German regular troops with at least two years' service and better equipment, or stand at the side of French troops many of whom have had three years' service The only way in which our forces in France can be rapidly expanded is by bringing the professional troops from India, and using them as the cadre upon which the Territorials and conscripts will form I do not attempt to go into details now, but in principle 60,000 Territorials should be sent to India to maintain internal security and complete their training, and 40,000 or 45,000 Regular troops should *pari passu* be brought back to Europe These troops should go into camps in the South of France, where the winter weather is more favourable to training than here, and where there are many military facilities, and become the nucleus and framework of eight or ten good field divisions The texture of these troops would, by the late spring, be equal to those they will have to meet or stand beside The fact of this force developing in France during the winter months would be a great encouragement and satisfaction to the French.

2 I was much concerned at the figures put forward by the Air Ministry of their fighting strength They had 120 squadrons at the outbreak of war, but this actually boiled down to 96 able to go into action One usually expects that on mobilisation there will be a large expansion In this case there has been a severe contraction. What has happened is that a large number of squadrons have had to be gutted of trained air personnel, of mechanics, or spare parts, etc, in order to produce a fighting force, and that the débris of these squadrons has been thrown into a big pool called the Reserve. Into this pool will also flow, if the winter months pass without heavy attack, a great mass of new machines and large numbers of trained pilots. Even after making every deduction which is reasonable, we ought to be able to form at least six squadrons a month It is much better to form squadrons which are held back in reserve than merely to have a large pool of spare pilots, spare machines, and spare parts. The disparity at the present time with Germany is shocking. I am sure this expansion could be achieved if you gave the word.

3. The A.R.P. [Air Raid Precautions] defences and expense are founded upon a wholly fallacious view of the degree of danger to each part of the country which they cover. Schedules should be made of the target areas and of the paths of flight by which they may be approached. In these areas there must be a large proportion of whole-time employees. London is of course the chief [target], and others will readily occur. In these target areas the street-lighting should be made so that it can be controlled by the Air Wardens on the alarm signal being given, and while shelters should be hurried on with and strengthened, night and day, the people's spirits should be kept up by theatres and cinemas until the actual attack begins. Over a great part of the countryside modified lighting should be at once allowed, and places of entertainment opened. No paid A.R.P. personnel should be allowed in these [areas]. All should be on a voluntary basis, the Government contenting itself with giving advice and leaving the rest to local effort. In these areas, which comprise at least seven-eighths of the United Kingdom, gas-masks should be kept at home, and only carried in the target areas as scheduled. There is really no reason why orders to this effect should not be given during the coming week.

* * * * *

The disasters which had occurred in Poland and the Baltic States made me all the more anxious to keep Italy out of the war and to build up by every possible means some common interest between us. In the meantime the war went on, and I was busy over a number of administrative matters.

First Lord to Home Secretary 7.x.39

In spite of having a full day's work usually here, I cannot help feeling anxious about the Home Front. You know my views about the needless, and in most parts of the country senseless, severities of these black-outs, entertainment restrictions, and the rest.* But what about petrol? Have the Navy failed to bring in the supplies? Are there not more supplies on the water approaching and probably arriving than would have been ordered had peace remained unbroken? I am told that very large numbers of people and a large part of the business of the country is hampered by the stinting. Surely the proper way to deal with this is to have a ration at the standard price, and allow free purchasing, subject to a heavy tax, beyond it. People will pay for locomotion, the Revenue will benefit by the tax, more cars will come out with registration fees, and the business of the country can go forward.

Then look at these rations, all devised by the Ministry of Food to

* See Appendix L.

win the war By all means have rations, but I am told that the meat ration for instance is very little better than that of Germany Is there any need of this when the seas are open?

If we have a heavy set-back from air attack or surface attack, it might be necessary to inflict these severities. Up to the present there is no reason to suppose that the Navy has failed in bringing in the supplies, or that it will fail

Then what about all these people of middle age, many of whom served in the last war, who are full of vigour and experience, and who are being told by tens of thousands that they are not wanted, and that there is nothing for them except to register at the local Labour Exchange? Surely this is very foolish Why do we not form a Home Guard of half a million men over forty (if they like to volunteer), and put all our elderly stars at the head and in the structure of these new formations? Let these five hundred thousand men come along and push the young and active out of all the home billets If uniforms are lacking a brassard would suffice, and I am assured there are plenty of rifles at any rate I thought from what you said to me the other day that you liked this idea If so, let us make it work

I hear continual complaints from every quarter of the lack of organisation on the Home Front. Can't we get at it?

* * * * *

Amidst all these preoccupations there burst upon us suddenly an event which touched the Admiralty in a most sensitive spot.

I have mentioned the alarm caused by the report that a U-boat was *inside Scapa Flow*, which had driven the Grand Fleet to sea on the night of October 17, 1914. That alarm was premature. Now, after exactly a quarter of a century almost to a day, it came true. At 1.30 a.m. on October 14, 1939, a German U-boat braved the tides and currents, penetrated our defences, and sank the battleship *Royal Oak* as she lay at anchor At first, out of a salvo of torpedoes, only one hit the bow, and caused a muffled explosion. So incredible was it to the Admiral and captain on board that a torpedo could have struck them, safe in Scapa Flow, that they attributed the explosion to some internal cause. Twenty minutes passed before the U-boat, for such she was, had reloaded her tubes and fired a second salvo Then three or four torpedoes, striking in quick succession, ripped the bottom out of the ship. In ten minutes she capsized and sank Most of the men were at action stations, but the rate at which the ship turned over made it almost impossible for anyone below to escape.

An account based on a German report written at the time may be recorded

At 01.30 on October 14, 1939, H M S. *Royal Oak*, lying at anchor in Scapa Flow, was torpedoed by U 47 (Lieutenant Prien). The operation had been carefully planned by Admiral Doenitz himself, the Flag Officer (Submarines) Prien left Kiel on October 8, a clear, bright autumn day, and passed through Kiel Canal—course N.N W, Scapa Flow On October 13, at 4 a m, the boat was lying off the Orkneys At 7 p m—surface, a fresh breeze blowing, nothing in sight, looming in the half darkness the line of the distant coast; long streamers of Northern Lights flashing blue wisps across the sky. Course west. The boat crept steadily closer to Holm Sound, the eastern approach to Scapa Flow Unfortunate it was that these channels had not been completely blocked A narrow passage lay open between two sunken ships With great skill Prien steered through the swirling waters The shore was close A man on a bicycle could be seen going home along the coast road Then suddenly the whole bay opened out Kirk Sound was passed They were in There under the land to the north could be seen the great shadow of a battleship lying on the water, with the great mast rising above it like a piece of filigree on a black cloth. Near, nearer—all tubes clear—no alarm, no sound but the lap of the water, the low hiss of air pressure and the sharp click of a tube lever. *Los!* [Fire!]—five seconds—ten seconds—twenty seconds. Then came a shattering explosion, and a great pillar of water rose in the darkness Prien waited some minutes to fire another salvo Tubes ready. Fire! The torpedoes hit amidships, and there followed a series of crashing explosions. H M S *Royal Oak* sank, with the loss of 786 officers and men, including Rear-Admiral H E. C Blagrove (Rear-Admiral Second Battle Squadron). U 47 crept quietly away back through the gap A blockship arrived twenty-four hours later.

This episode, which must be regarded as a feat of arms on the part of the German U-boat commander, gave a shock to public opinion. It might well have been politically fatal to any Minister who had been responsible for the pre-war precautions Being a newcomer I was immune from such reproaches in these early months, and, moreover, the Opposition did not attempt to make capital out of the misfortune. On the contrary, Mr. A. V Alexander was restrained and sympathetic. I promised the strictest inquiry.

On this occasion the Prime Minister also gave the House an account of the German air raids which had been made on October

Scapa Flow,
October 14th 1939
Sinking of
H.M.S. ROYAL OAK
Route Chart of "U 47" - 13 10 39 to 14 10 39
From a German Plan
0
1
2 Sea Miles
Indicates sunken block-ships
ROYAL OAK
(Torpedo Tracks)
0 58 A.M.
1 22 A M
Kirk Sd
Skerry Sd
HOLM SOUND
SCAPA FLOW
BURRAY
SOUTH
RONALDSAY
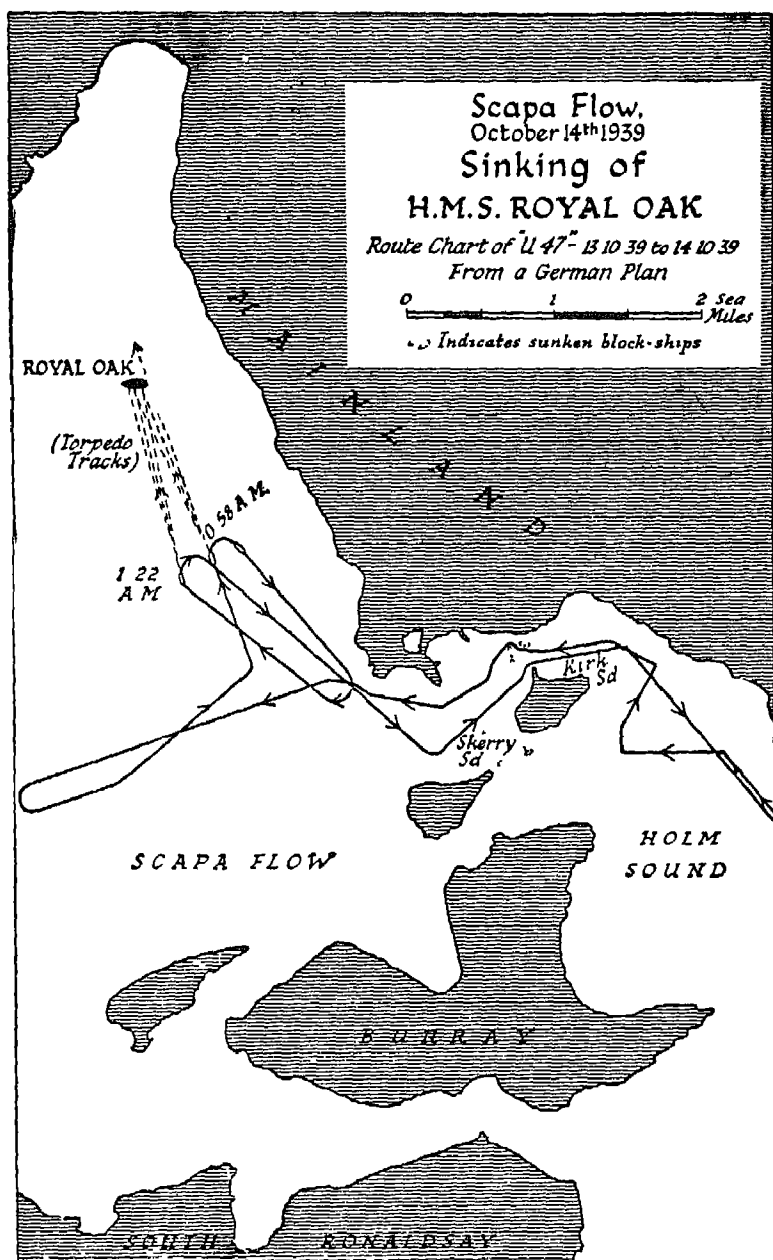
16 upon the Firth of Forth. This was the first attempt the Germans had made to strike by air at our Fleet. Twelve or more machines in flights of two or three at a time had bombed our cruisers lying in the Firth. Slight damage was done to the cruisers *Southampton* and *Edinburgh* and to the destroyer *Mohawk* Twenty-five officers and sailors were killed or wounded, but four enemy bombers were brought down, three by our fighter squadrons and one by the anti-aircraft fire. It might well be that only half the bombers had got home safely. This was an effective deterrent.

The following morning, the 17th, Scapa Flow was raided, and the old *Iron Duke*, now a demilitarised and disarmoured hulk used as a depot ship, was injured by near misses. She settled on the bottom in shallow water and continued to do her work throughout the war. Another enemy aircraft was shot down in flames The Fleet was happily absent from the harbour These events showed how necessary it was to perfect the defences of Scapa against all forms of attack before allowing it to be used It was nearly six months before we were able to enjoy its commanding advantages

* * * * *

The attack on Scapa Flow and the loss of the *Royal Oak* provoked instant reactions in the Admiralty. On October 31, accompanied by the First Sea Lord, I went to Scapa to hold a second conference on these matters in Admiral Forbes' flagship The scale of defence for Scapa upon which we now agreed included reinforcement of the booms and additional blockships in the exposed eastern channels, as well as controlled minefields and other devices. These formidable deterrents would be reinforced by further patrol craft and guns sited to cover all approaches Against air attack it was planned to mount eighty-eight heavy and forty light A A guns, together with numerous searchlights and increased barrage-balloon defences Substantial fighter protection was organised both in the Orkneys and at Wick on the mainland It was hoped that all these arrangements could be completed, or at least sufficiently advanced, to justify the return of the Fleet by March 1940. Meanwhile Scapa could be used as a destroyer refuelling base, but other accommodation had to be found for the heavy ships

Experts differed on the rival claims of the possible alternative

bases. Admiralty opinion favoured the Clyde, but Admiral Forbes demurred on the ground that this would involve an extra day's steaming each way to his main operational area. This in turn would require an increase in his destroyer forces and would necessitate the heavy ships working in two divisions The other alternative was Rosyth, which had been our main base in the latter part of the previous war It was more suitably placed geographically, but was more vulnerable to air attack The decisions eventually reached at this conference were summed up in a minute which I prepared on my return to London.*

On Friday, November 13, my relations with Mr. Chamberlain had so far ripened that he and Mrs. Chamberlain came to dine with us at Admiralty House, where we had a comfortable flat in the attics We were a party of four. Although we had been colleagues under Mr. Baldwin for five years, my wife and I had never met the Chamberlains in such circumstances before. By happy chance I turned the conversation on to his life in the Bahamas, and I was delighted to find my guest expand in personal reminiscence to a degree I had not noticed before. He told us the whole story, of which I knew only the barest outline, of his six years' struggle to grow sisal on a barren West Indian islet near Nassau. His father, the great "Joe", was firmly convinced that here was an opportunity at once to develop an Empire industry and fortify the family fortunes. His father and Austen had summoned him in 1890 from Birmingham to Canada, where they had long examined the project. About forty miles from Nassau in the Caribbean Gulf there was a small desert island, almost uninhabited, where the soil was reported to be suitable for growing sisal. After careful reconnaissance by his two sons, Mr. Joseph Chamberlain had acquired a tract on the island of Andros, and assigned the capital required to develop it All that remained was to grow the sisal Austen was dedicated to the House of Commons The task therefore fell to Neville

Not only in filial duty but with conviction and alacrity he obeyed, and the next five years of his life were spent in trying to grow sisal in this lonely spot, swept by hurricanes from time to time, living nearly naked, struggling with labour difficulties and every other kind of obstacle, and with the town of Nassau as the only gleam of civilisation. He had insisted, he told us, on three

* See Appendix J.

months' leave in England each year. He built a small harbour and landing-stage and a short railroad or tramway He used all the processes of fertilisation which were judged suitable to the soil and generally led a completely primitive, open-air existence. But no sisal! Or at any rate no sisal that would face the market. At the end of five years he was convinced that the plan could not succeed He came home and faced his formidable parent, who was by no means contented with the result. I gathered that in the family the feeling was that though they loved him dearly they were sorry to have lost £50,000

I was fascinated by the way Mr Chamberlain warmed as he talked, and by the tale itself, which was one of gallant endeavour I thought to myself, "What a pity Hitler did not know when he met this sober English politician with his umbrella at Berchtesgaden, Godesberg, and Munich that he was actually talking to a hard-bitten pioneer from the outer marches of the British Empire!" This was really the only intimate social conversation that I can remember with Neville Chamberlain amid all the business we did together over nearly twenty years

During dinner the war went on and things happened. With the soup an officer came up from the War Room below to report that a U-boat had been sunk With the sweet he came again and reported that a second U-boat had been sunk, and just before the ladies left the dining-room he came a third time reporting that a third U-boat had been sunk Nothing like this had ever happened before in a single day, and it was more than a year before such a record was repeated. As the ladies left us, Mrs. Chamberlain, with a naive and charming glance, said to me, "Did you arrange all this on purpose?" I assured her that if she would come again we would produce a similar result.*

* * * * *

Our long, tenuous blockade-line north of the Orkneys, largely composed of armed merchant-cruisers with supporting warships at intervals, was of course always liable to a sudden attack by German capital ships, and particularly by their two fast and most powerful battle-cruisers, the *Scharnhorst* and the *Gneisenau*. We could not prevent such a stroke being made. Our hope was to bring the intruders to decisive action

* Alas, these hopeful reports are not confirmed by the post-war analysis

Late in the afternoon of November 23 the armed merchant-cruiser *Rawalpindi*, on patrol between Iceland and the Faroes, sighted an enemy warship which closed her rapidly She believed the stranger to be the pocket-battleship *Deutschland*, and reported accordingly. Her commanding officer, Captain Kennedy, could have had no illusions about the outcome of such an encounter His ship was but a converted passenger liner with a broadside of four old 6-inch guns, and his presumed antagonist mounted six 11-inch guns, besides a powerful secondary armament Nevertheless he accepted the odds, determined to fight his ship to the last. The enemy opened fire at 10,000 yards, and the *Rawalpindi* struck back. Such a one-sided action could not last long, but the fight continued until, with all her guns out of action, the *Rawalpindi* was reduced to a blazing wreck She sank some time after dark, with the loss of her captain and 270 of her gallant crew Only 38 survived, 27 of whom were made prisoners by the Germans, the remaining 11 being picked up alive after thirty-six hours in icy water by another British ship

In fact it was not the *Deutschland* but the two battle-cruisers *Scharnhorst* and *Gneisenau* which were engaged. These ships had left Germany two days before to attack our Atlantic convoys, but having encountered and sunk the *Rawalpindi*, and fearing the consequences of the exposure, they abandoned the rest of their mission and returned at once to Germany. The *Rawalpindi's* heroic fight was not therefore in vain The cruiser *Newcastle*, near by on patrol, saw the gun-flashes, and responded at once to the *Rawalpindi's* first report, arriving on the scene with the cruiser *Delhi* to find the burning ship still afloat She pursued the enemy, and at 6 15 p.m. sighted two ships in gathering darkness and heavy rain One of these she recognised as a battle-cruiser, but lost contact in the gloom, and the enemy made good his escape

The hope of bringing these two vital German ships to battle dominated all concerned, and the Commander-in-Chief put to sea at once with his whole fleet. When last seen the enemy was retiring to the eastward, and strong forces, including submarines, were promptly organised to intercept him in the North Sea. However, we could not ignore the possibility that having shaken off the pursuit the enemy might renew his advance to the westward and enter the Atlantic. We feared for our convoys, and the

situation called for the use of all available forces. Sea and air patrols were established to watch all the exits from the North Sea, and a powerful force of cruisers extended this watch to the coast of Norway. In the Atlantic the battleship *Warspite* left her convoy to search the Denmark Strait, and, finding nothing, continued round the north of Iceland to link up with the watchers in the North Sea. The *Hood*, the French battle-cruiser *Dunkerque*, and two French cruisers were dispatched to Icelandic waters, and the *Repulse* and *Furious* sailed from Halifax for the same destination By the 25th fourteen British cruisers were combing the North Sea, with destroyers and submarines co-operating and with the battle-fleet in support But fortune was adverse, nothing was found, nor was there any indication of an enemy move to the west Despite very severe weather the arduous search was maintained for seven days.

On the fifth day, while we were waiting anxiously in the Admiralty and still cherishing the hope that this splendid prize would not be denied us, a German U-boat was heard by our D.F stations making a report We judged from this that an attack had been made on one of our warships in the North Sea Soon the German broadcast claimed that Captain Prien, the sinker of the *Royal Oak*, had sunk an 8-inch-gun cruiser to the eastward of the Shetlands Admiral Pound and I were together when this news came in British public opinion is extremely sensitive when British ships are sunk, and the loss of the *Rawalpindi*, after a gallant fight and with a heavy toll in life, would tell seriously against the Admiralty if it remained unavenged. "Why," it would be demanded, "was so weak a ship exposed without effective support? Could the German cruisers range at will even in the blockade zone in which our main forces were employed? Were the raiders to escape unscathed?"

We made a signal at once to clear up the mystery When we met again an hour later without any reply, we passed through a very bad moment I recall it because it marked the strong comradeship that had grown up between us and with Admiral Tom Phillips, who was also there "I take full responsibility," I said, as was my duty "No, it is mine," said Pound We wrung each other's hands in lively distress Hardened as we both were in war, it is not possible to sustain such blows without the most bitter pangs

But it proved to be nobody's fault. Eight hours later it appeared that the *Norfolk* was the ship involved and that she was undamaged. She had not encountered any U-boat, but said that an air bomb had fallen close astern. However, Captain Prien was no braggart.* What the *Norfolk* thought to be an air bomb from a clouded sky was in fact a German torpedo, which had narrowly missed its target and exploded in the ship's wake. Peering through the periscope, Prien had seen the great upheaval of water, blotting out the ship from his gaze. He dived to avoid an expected salvo. When, after half an hour, he rose for another peep the visibility was poor and no cruiser was to be seen. Hence his report. Our relief after the pain we had suffered took some of the sting out of the news that the *Scharnhorst* and the *Gneisenau* had safely re-entered the Baltic. It is now known that the *Scharnhorst* and *Gneisenau* passed through our cruiser line patrolling near the Norwegian coast on the morning of November 26. The weather was thick and neither saw the other. Modern Radar would have ensured contact, but then it was not available. Public impressions were unfavourable to the Admiralty. We could not bring home to the outside world the vastness of the seas or the intense exertions which the Navy was making in so many areas. After more than two months of war and several serious losses we had nothing to show on the other side. Nor could we yet answer the question, "What is the Navy doing?"

* See Appendix N.

CHAPTER XXVIII

THE MAGNETIC MINE

November and December 1939

Conference with Admiral Darlan – The Anglo-French Naval Position – M Campinchi – The Northern Barrage – The Magnetic Mine – A Devoted Deed – Technical Aspects – Mine-sweeping Methods – "Degaussing" – The Magnetic Mining Attack Mastered and under Control – Retaliation – Fluvial Mines in the Rhine – Operation "Royal Marine".

IN THE FIRST DAYS of November I paid a visit to France for a conference on our joint operations with the French naval authorities Admiral Pound and I drove out about forty miles from Paris to the French Marine Headquarters, which were established in the park around the ancient château of the Duc de Noailles Before we went into the conference Admiral Darlan explained to me how Admiralty matters were managed in France The Minister of Marine, M Campinchi, was not allowed by him to be present when operational matters were under discussion. These fell into the purely professional sphere I said that the First Sea Lord and I were one Darlan said he recognised this, but in France it was different "However," he said, "Monsieur le Ministre will arrive for luncheon " We then ranged over naval business for two hours with a great measure of agreement. At luncheon M Campinchi turned up He knew his place, and now presided affably over the meal My son-in-law, Duncan Sandys, who was acting as my *aide*, sat next to Darlan The Admiral spent most of luncheon explaining to him the limits to which the civilian Minister was restricted by the French system Before leaving I called on the Duke in his château. He and his family seemed plunged in melancholy, but showed us their very beautiful house and its art treasures

In the evening I gave a small dinner in a private room at the Ritz to M Campinchi. I formed a high opinion of this man. His patriotism, his ardour, his acute intelligence, and above all his resolve to conquer or die, hit home I could not help mentally comparing him with the Admiral, who, jealous of his position, was fighting on quite a different front from ours. Pound's valuation was the same as mine, although we both realised all that Darlan had done for the French Navy One must not underrate Darlan, nor fail to understand the impulse that moved him He deemed himself the French Navy, and the French Navy acclaimed him their chief and their reviver For seven years he had held his office while shifting Ministerial phantoms had filled the office of Minister of Marine It was his obsession to keep the politicians in their place as chatterboxes in the Chamber. Pound and I got on very well with Campinchi This tough Corsican never flinched or failed When he died, broken and under the scowl of Vichy, towards the beginning of 1941, his last words were of hope in me. I shall always deem them an honour

Here is the statement summing up our naval position at this moment, which I made at the conference

STATEMENT TO THE FRENCH ADMIRALTY BY THE FIRST LORD

The naval war alone has opened at full intensity The U-boat attack on commerce, so nearly fatal in 1917, has been controlled by the Anglo-French anti-submarine craft We must expect a large increase in German U-boats (and possibly some will be lent to them by Russia). This need cause no anxiety provided that all our counter-measures are taken at full speed and on the largest scale The Admiralty representatives will explain in detail our large programmes But the full development of these will not come till late in 1940. In the meanwhile it is indispensable that every anti-submarine craft available should be finished and put in commission.

2 There is no doubt that our Asdic method is effective, and far better than anything known in the last war It enables two torpedo-boats to do what required ten in 1917–18 But this applies only to hunting For convoys numbers are still essential One is only safe when escorted by vessels fitted with Asdics This applies to warships equally with merchant convoys The defeat of the U-boat will be achieved when it is certain that any attack on French or British vessels will be followed by an Asdic counter-attack

The British Admiralty is prepared to supply and fit every French

anti-submarine craft with Asdics. The cost is small, and accounts can be regulated later on But any French vessels sent to England for fitting will be immediately taken in hand, and also we will arrange for the imparting of the method and for training to be given in each case It would be most convenient to do this at Portland, the home of the Asdics, where all facilities are available We contemplate making provision for equipping fifty French vessels if desired

3 But we earnestly hope that the French Marine will multiply their Asdic vessels, and will complete with the utmost rapidity all that can enter into action during 1940 After this is arranged for it will be possible six months hence to consider 1941 For the present let us aim at 1940, and especially at the spring and summer The six large destroyers laid down in 1936 and 1937 will be urgently needed for ocean convoys before the climax of the U-boat warfare is reached in 1940. There are also fourteen small destroyers laid down in 1939, or now projected, which will play an invaluable part without making any great drain on labour and materials Total, twenty vessels, which could be completed during 1940, and which, fitted with Asdics by us, would be weapons of high consequence in the destruction of the U-boat offensive of 1940 We also venture to mention as most desirable vessels the six sloop-minesweepers laid down in 1936, and twelve laid down in 1937, and also the sixteen submarine-chasers of the programme of 1938 For all these we offer Asdics and every facility We will fit them as they are ready, as if it were a field operation We cannot however consider these smaller vessels in the same order of importance as the large and small destroyers mentioned above

4 It must not be forgotten that defeat of the U-boats carries with it the sovereignty of all the oceans of the world for the Allied Fleets, and the possibility of powerful neutrals coming to our aid, as well as the drawing of resources from every part of the French and British Empires, and the maintenance of trade, gathering with it the necessary wealth to continue the war

5. At the British Admiralty we have drawn a sharp line between large vessels which can be finished in 1940 and those of later periods In particular, we are straining every nerve to finish the *King George V* and the *Prince of Wales* battleships within that year, if possible by the autumn This is necessary because the arrival of the *Bismarck* on the oceans before these two ships were completed would be disastrous in the highest degree, as it can neither be caught nor killed, and would therefore range freely throughout the oceans, rupturing all communications But France has also a vessel of the highest importance in the *Richelieu*, which might be ready in the autumn of 1940 or even earlier, and will certainly be needed if the two new Italian ships should be

finished by the dates in 1940 at which they profess to aim Not to have these three capital ships in action before the end of 1940 would be an error in naval strategy of the gravest character, and might entail not only naval but diplomatic consequences extremely disagreeable. It is hoped therefore that every effort will be made to complete the *Richelieu* at the earliest possible date.

With regard to later capital ships of the British and French Navies, it would be well to discuss these in April or May next year, when we shall see much more clearly the course and character of the war.

6 The British Admiralty now express their gratitude to their French colleagues and comrades for the very remarkable assistance which they have given to the common cause since the beginning of this war This assistance has gone far beyond any promises or engagements made before the war. In escorting home the convoys from Sierra Leone the French cruisers and destroyers have played a part which could not otherwise have been supplied, and which, if not forthcoming, would simply have meant more slaughter of Allied merchantmen. The cruisers and contre-torpilleurs which, with the *Dunkerque*, have covered the arrival of convoys in the Western Approaches were at the time the only means by which the German raiders could be warded off. The maintenance of the French submarines in the neighbourhood of Trinidad has been a most acceptable service. Above all, the two destroyers which constantly escort the homeward- and outward-bound convoys between Gibraltar and Brest are an important relief to our resources, which, though large and ever-growing, are at full strain.

Finally, we are extremely obliged by the facilities given to the *Argus* aircraft-carrier to carry out her training of British naval aircraft pilots under the favourable conditions of Mediterranean weather

7. Surveying the more general aspects of the war. the fact that the enemy have no line of battle has enabled us to disperse our naval forces widely over the oceans, and we have seven or eight British hunting units, joined by two French hunting units, each capable of catching and killing a *Deutschland* We are now cruising in the North Atlantic, the South Atlantic, and the Indian Oceans The result has been that the raiders have not chosen to inflict the losses upon the convoys which before the war it had been supposed they could certainly do. The fact that certainly one, and perhaps two, *Deutschlands* have been upon the main Atlantic trade routes for several weeks without achieving anything makes us feel easier about this form of attack, which had formerly been rated extremely dangerous. We cannot possibly exclude its renewal in a more energetic form The British Admiralty think it is not at all objectionable to keep large vessels in suitable units ranging widely over the oceans, where they are safe from air attack, and

make effective and apparent the control of the broad waters for the Allies.

8. We shall shortly be engaged in bringing the leading elements of the Canadian and Australian armies to France, and for this purpose a widespread disposition of all our hunting groups is convenient It will also be necessary to give battleship escorts to many of the largest convoys crossing the Atlantic Ocean We intend to maintain continually the Northern Blockade from Greenland to Scotland, in spite of the severities of the winter Upon this blockade twenty-five armed merchant-cruisers will be employed in reliefs, supported by four 8-inch-gun 10,000-ton cruisers, and behind these we always maintain the main fighting forces of the British Navy, to wit, the latest battleships, and either the *Hood* or another great vessel, the whole sufficient to engage or pursue the *Scharnhorst* and the *Gneisenau* should they attempt to break out We do not think it likely, in view of the situation in the Baltic, that these two vessels will be so employed Nevertheless, we maintain continually the forces necessary to cope with them.

It is hoped that by a continuance of this strategy by the two Allied Navies no temptation will be offered to Italy to enter the war against us, and that the German power of resistance will certainly be brought to an end.

The French Admiralty in their reply explained that they were in fact proceeding with the completion of the vessels specified, and that they gladly accepted our Asdic offer. Not only would the *Richelieu* be finished in the summer of 1940, but also in the autumn the *Jean Bart.*

* * * * *

In mid-November Admiral Pound presented me with proposals for re-creating the minefield barrage between Scotland and Norway which had been established by the British and American Admiralties in 1917–18. I did not like this kind of warfare, which is essentially defensive, and seeks to substitute material on a vast scale for dominating action. However, I was gradually worn down and reconciled. I submitted the project to the War Cabinet on November 19.

THE NORTHERN BARRAGE

MEMORANDUM BY THE FIRST LORD OF THE ADMIRALTY

After much consideration I commend this project to my colleagues. There is no doubt that, as it is completed, it will impose a very great

deterrent upon the exit and return of U-boats and surface raiders It appears to be a prudent provision against an intensification of the U-boat warfare, and an insurance against the danger of Russia joining our enemy By this we coop the lot in, and have complete control of all approaches alike to the Baltic and the North Sea. The essence of this offensive minefield is that the enemy will be prevented by the constant vigilance of superior naval force from sweeping channels through it When it is in existence we shall feel much freer in the outer seas than at present Its gradual but remorseless growth, which will be known to the enemy, will exercise a depressive effect upon his morale. The cost is deplorably heavy, but a large provision has already been made by the Treasury, and the Northern Barrage is far the best method of employing this means of war [*i e* , mining]

This represented the highest professional advice, and of course is just the kind of thing that passes easily through a grave, wise Cabinet. Events swept it away, but not until a great deal of money had been spent. The barrage mines came in handy later on for other tasks

* * * * *

Presently a new and formidable danger threatened our life. During September and October nearly a dozen merchant ships were sunk at the entrance of our harbours, although these had been properly swept for mines The Admiralty at once suspected that a magnetic mine had been used This was no novelty to us, we had even begun to use it on a small scale at the end of the previous war In 1936 an Admiralty committee had studied countermeasures against magnetic-firing devices, but their work had dealt chiefly with countering magnetic torpedoes or buoyant mines, and the terrible damage that could be done by large groundmines laid in considerable depth by ships or aircraft had not been fully realised. Without a specimen of the mine it was impossible to devise the remedy Losses by mines, largely Allied and neutral, in September and October had amounted to 56,000 tons, and in November Hitler was encouraged to hint darkly at his new "secret weapon" to which there was no counter One night when I was at Chartwell Admiral Pound came down to see me in serious anxiety. Six ships had been sunk in the approaches to the Thames. Every day hundreds of ships went in and out of British harbours, and our survival depended on their movement. Hitler's experts may well have told him that this form of attack would

compass our ruin. Luckily he began on a small scale, and with limited stocks and manufacturing capacity.

Fortune also favoured us more directly. On November 22 between 9 and 10 p.m. a German aircraft was observed to drop a large object attached to a parachute into the sea near Shoeburyness. The coast here is girdled with great areas of mud which uncover with the tide, and it was immediately obvious that whatever the object was it could be examined and possibly recovered at low water. Here was our golden opportunity. Before midnight that same night two highly-skilled officers, Lt.-Commanders Ouvry and Lewis, from H.M.S. *Vernon*, the naval establishment responsible for developing underwater weapons, were called to the Admiralty, where the First Sea Lord and I interviewed them and heard their plans. By 1.30 in the morning they were on their way by car to Southend to undertake the hazardous task of recovery. Before daylight on the 23rd, in pitch-darkness, aided only by a signal lamp, they found the mine some 500 yards below high-water mark, but as the tide was then rising they could only inspect it and make their preparations for attacking it after the next high water.

The critical operation began early in the afternoon, by which time it had been discovered that a second mine was also on the mud near the first. Ouvry with Chief Petty Officer Baldwin tackled the first, whilst their colleagues, Lewis and Able Seaman Vearncombe, waited at a safe distance in case of accidents. After each prearranged operation Ouvry would signal to Lewis, so that the knowledge gained would be available when the second mine came to be dismantled. Eventually the combined efforts of all four men were required on the first, and their skill and devotion were amply rewarded. That evening some of the party came to the Admiralty to report that the mine had been recovered intact and was on its way to Portsmouth for detailed examination. I received them with enthusiasm. I gathered together eighty or a hundred officers and officials in our largest room, and a thrilled audience listened to the tale, deeply conscious of all that was at stake. From this moment the whole position was transformed. Immediately the knowledge derived from past research could be applied to devising practical measures for combating the particular characteristics of the mine.

The whole power and science of the Navy were now applied;

and it was not long before trial and experiment began to yield practical results. Rear-Admiral Wake-Walker was appointed to co-ordinate all technical measures which the occasion demanded. We worked all ways at once, devising first active means of attacking the mine by new methods of minesweeping and fuze-provocation, and, secondly, passive means of defence for all ships against possible mines in unswept, or ineffectually swept, channels. For this second purpose a most effective system of demagnetising ships by girdling them with an electric cable was developed. This was called "degaussing", and was at once applied to ships of all types. Merchant ships were thus equipped in all our major ports without appreciably delaying their turn-round. In the Fleet progress was simplified by the presence of the highly-trained technical staffs of the Royal Navy. The reader who does not shrink from technical details will find an account of these developments in Appendix M

* * * * *

Serious casualties continued. The new cruiser *Belfast* was mined in the Firth of Forth on November 21, and on December 4 the battleship *Nelson* was mined whilst entering Loch Ewe. Both ships were however able to reach a dockyard port. Two destroyers were lost, and two others, besides the minelayer *Adventure*, were damaged on the East Coast during this period It is remarkable that German Intelligence failed to pierce our security measures covering the injury to the *Nelson* until the ship had been repaired and was again in service. Yet from the first many thousands in England had to know the true facts

Experience soon gave us new and simpler methods of degaussing The moral effect of its success was tremendous, but it was on the faithful, courageous, and persistent work of the minesweepers and the patient skill of the technical experts, who devised and provided the equipment they used, that we relied chiefly to defeat the enemy's efforts. From this time onward, despite many anxious periods, the mine menace was always under control, and eventually the danger began to recede. By Christmas Day I was able to write to the Prime Minister:

December 25, 1939

Everything is very quiet here, but I thought you would like to know that we have had a marked success against the magnetic mines The

first two devices for setting them off which we have got into action have both proved effective Two mines were blown up by the magnetic sweep and two by lighters carrying heavy coils This occurred at Port A [Loch Ewe], where our interesting invalid [the *Nelson*] is still waiting for a clear passage to be swept for her to the convalescent home at Portsmouth. It also looks as if the demagnetisation of warships and merchant ships can be accomplished by a simple, speedy, and inexpensive process All our best devices are now approaching [completion] The aeroplanes and the magnetic ship—the *Borde*—will be at work within the next ten days, and we all feel pretty sure that the danger from magnetic mines will soon be out of the way

We are also studying the possible varying of this form of attack, viz, acoustic mines and supersonic mines Thirty ardent experts are pursuing these possibilities, but I am not yet able to say that they have found a cure . .

It is well to ponder this side of the naval war. In the event a significant proportion of our whole war effort had to be devoted to combating the mine A vast output of material and money was diverted from other tasks, and many thousands of men risked their lives night and day in the minesweepers alone The peak figure was reached in June 1944, when nearly sixty thousand were thus employed Nothing daunted the ardour of the Merchant Navy, and their spirits rose with the deadly complications of the mining attack and our effective measures for countering it Their toils and tireless courage were our salvation. The sea traffic on which we depended for our existence proceeded without interruption.

* * * * *

The first impact of the magnetic mine had stirred me deeply, and, apart from all the protective measures which had been enforced upon us, I sought for a means of retaliation My visit to the Rhine on the eve of the war had focused my mental vision upon this supreme and vital German artery Even in September I had raised discussion in the Admiralty about the launching or dropping of fluvial mines in the Rhine Considering that this river was used by the traffic of many neutral nations, we could not of course take action unless and until the Germans had taken the initiative in this form of indiscriminate warfare against us. Now that they had done so, it seemed to me that the proper retort for indiscriminate sinkings by mines at the mouths of the British

harbours was a similar and if possible more effective mining attack upon the Rhine.

Accordingly on November 19 I issued several minutes, of which the following gives the most precise account of the plan:

Controller [and others]

1 As a measure of retaliation it may become necessary to feed large numbers of floating mines into the Rhine. This can easily be done at any point between Strasbourg and the Lauter, where the left bank is French territory. General Gamelin was much interested in this idea, and asked me to work it out for him.

2 Let us clearly see the object in view. The Rhine is traversed by an enormous number of very large barges, and is the main artery of German trade and life. These barges, built only for river work, have not got double keels or any large subdivision by bulkheads. It is easy to check these details. In addition there are at least twelve bridges of boats recently thrown across the Rhine upon which the German armies concentrated in the Saarbruck-Luxemburg area depend.

3 The type of mine required is therefore a small one, perhaps no bigger than a football. The current of the river is at most about seven miles an hour, and three or four at ordinary times, but it is quite easy to verify this. There must therefore be a clockwork apparatus in the mine which makes it dangerous only after it has gone a certain distance, so as to be clear of French territory and also so as to spread the terror farther down the Rhine to its confluence with the Moselle and beyond. The mine should automatically sink, or preferably explode, by this apparatus before reaching Dutch territory. After the mine has proceeded the required distance, which can be varied, it should explode on a light contact. It would be a convenience if, in addition to the above, the mine could go off if stranded after a certain amount of time, as it might easily spread alarm on either of the German banks.

4 It would be necessary in addition that the mine should float a convenient distance beneath the surface so as to be invisible in the turgid waters. A hydrostatic valve actuated by a small cylinder of compressed air should be devised. I have not made the calculations, but I should suppose 48 hours would be the maximum for which it would have to work. An alternative would be to throw very large numbers of camouflage globes—tin shells—into the river, which would spread confusion and exhaust remedial activities.

5 What can they do against this? Obviously nets would be put across, but wreckage passing down the river would break these nets, and except at the frontier they would be a great inconvenience to the traffic. Anyhow, when our mine fetched up against them it would

explode, breaking a large hole in the nets, and after a dozen or more of these explosions the channel would become free again, and other mines would jog along. Specially large mines might be used to break the nets I cannot think of any other method of defence, but perhaps some may occur to the officers entrusted with this study

6 Finally, as very large numbers of these mines would be used and the process kept up night after night for months on end, so as to deny the use of the waterway, it is necessary to bear in mind the simplification required for mass production

The War Cabinet liked this plan. It seemed to them only right and proper that when the Germans were using the magnetic mine to waylay and destroy all traffic, Allied or neutral, entering British ports we should strike back by paralysing, as we might well do, the whole of their vast traffic on the Rhine. The necessary permissions and priorities were obtained, and work started at full speed In conjunction with the Air Ministry we developed a plan for mining the Ruhr section of the Rhine by discharge from aeroplanes I entrusted all this work to Rear-Admiral FitzGerald, serving under the First Sea Lord This brilliant officer, who perished later in command of an Atlantic convoy, made an immense personal contribution The technical problems were solved. A good supply of mines was assured, and several hundred ardent British sailors and marines were organised to handle them when the time should come All this was in November, and we could not be ready before March It is always agreeable in peace or war to have something positive coming along on your side.

CHAPTER XXIX

THE ACTION OFF THE RIVER PLATE

Surface Raiders – The German Pocket-Battleship – Orders of the German Admiralty – British Hunting Groups – The American Three-Hundred-Mile Limit – Offer of Our Asdics to the United States – Anxieties at Home – Caution of the "Deutschland" – Daring of the "Graf Spee" – Captain Langsdorff's Manœuvres – Commodore Harwood's Squadron off the Plate – His Foresight and Fortune – Collision on December 13 – Langsdorff's Mistake – The "Exeter" Disabled – Retreat of the German Pocket-Battleship – Pursuit by "Ajax" and "Achilles" – The "Spee" Takes Refuge in Montevideo – My Letter of December 17 to the Prime Minister – British Concentration on Montevideo – Langsdorff's Orders from the Fuehrer – Scuttling of the "Spee" – Langsdorff's Suicide – End of the First Surface Challenge to British Commerce – The "Altmark" – The "Exeter" – Effects of the Action off the Plate – My Telegram to President Roosevelt.

ALTHOUGH it was the U-boat menace from which we suffered most and ran the greatest risks, the attack on our ocean commerce by surface raiders would have been even more formidable could it have been sustained. The three German pocket-battleships permitted by the Treaty of Versailles had been designed with profound thought as commerce-destroyers. Their six 11-inch guns, their 26-knot speed, and the armour they carried had been compressed with masterly skill into the limits of a 10,000-ton displacement. No single British cruiser could match them. The German 8-inch-gun cruisers were more modern than ours, and if employed as commerce-raiders would also be a formidable threat. Besides this the enemy might use disguised heavily-armed merchantmen. We had vivid memories of the depredations of the *Emden* and *Koenigsberg* in 1914, and of the thirty or more warships and armed merchantmen they had forced us to combine for their destruction.

There were rumours and reports before the outbreak of the new war that one or more pocket-battleships had already sailed from Germany. The Home Fleet searched but found nothing We now know that both the *Deutschland* and the *Admiral Graf Spee* sailed from Germany between August 21 and 24, and were already through the danger zone and loose in the oceans before our blockade and northern patrols were organised. On September 3 the *Deutschland*, having passed through the Denmark Strait, was lurking near Greenland. The *Graf Spee* had crossed the North Atlantic trade route unseen and was already far south of the Azores Each was accompanied by an auxiliary vessel to replenish fuel and stores Both at first remained inactive and lost in the ocean spaces. Unless they struck they won no prizes Until they struck they were in no danger

The orders of the German Admiralty issued on August 4 were well conceived:

TASK IN THE EVENT OF WAR

Disruption and destruction of enemy merchant shipping by all possible means. . Enemy naval forces, even if inferior, are only to be engaged if it should further the principal task

Frequent changes of position in the operational areas will create uncertainty and will restrict enemy merchant shipping, even without tangible results. A temporary departure into distant areas will also add to the uncertainty of the enemy.

If the enemy should protect his shipping with superior forces so that direct successes cannot be obtained, then the mere fact that his shipping is so restricted means that we have greatly impaired his supply situation. Valuable results will also be obtained if the pocket-battleships continue to remain in the convoy area

With all this wisdom the British Admiralty would have been in rueful agreement.

* * * * *

On September 30 the British liner *Clement*, of 5,000 tons, sailing independently, was sunk by the *Graf Spee* off Pernambuco. The news electrified the Admiralty. It was the signal for which we had been waiting. A number of hunting groups were immediately formed, comprising all our available aircraft-carriers, supported by battleships, battle-cruisers, and cruisers.

Each group of two or more ships was judged to be capable of catching and destroying a pocket-battleship.

In all, during the ensuing months the search for two raiders entailed the formation of nine hunting groups, comprising twenty-three powerful ships We were also compelled to provide three battleships and two cruisers as additional escorts with the important North Atlantic convoys. These requirements represented a very severe drain on the resources of the Home and Mediterranean Fleets, from which it was necessary to withdraw twelve ships of the most powerful types, including three aircraft-carriers Working from widely-dispersed bases in the Atlantic and Indian Oceans, the hunting groups could cover the main focal areas traversed by our shipping To attack our trade the enemy must place himself within reach of at least one of them To give an idea of the scale of these operations, I set out overleaf the full list of the hunting groups at their highest point.

* * * * *

At this time it was the prime objective of the American Government to keep the war as far from their shores as possible On October 3 delegates of twenty-one American republics, assembled at Panama, decided to declare an American Security Zone, proposing to fix a belt of from three hundred to six hundred miles from their coasts within which no warlike act should be committed We were anxious to help in keeping the war out of American waters—to some extent, indeed, this was to our advantage I therefore hastened to inform President Roosevelt that if America asked all belligerents to respect such a zone we should immediately declare our readiness to fall in with their wishes—subject of course to our rights under international law We should not mind how far south the Security Zone went, provided that it was effectively maintained. We should have found great difficulty in accepting a Security Zone which was to be policed only by some weak neutral; but if the United States Navy was to take care of it we should feel no anxiety. The more United States warships there were cruising along the South American coast the better we should be pleased; for the German raider which we were hunting might then prefer to leave American waters for the South African trade route, where we were ready to deal with him But if a surface raider operated from the American Security

Zone or took refuge in it we should expect either to be protected or to be allowed to protect ourselves from the mischief which he might do.

At this date we had no definite knowledge of the sinking of three ships on the Cape of Good Hope route which occurred between October 5 and 10. All three were sailing homeward independently. No distress messages were received, and suspicion was only aroused when they became overdue It was some time before it could be assumed that they had fallen victims to a raider.

The necessary dispersion of our forces caused me and others anxiety, especially as our main Fleet was sheltering on our west coast.

First Sea Lord and Deputy Chief of the Naval Staff 21.x.39

The appearance of *Scheer* off Pernambuco and subsequent mystery of her movements, and why she does not attack trade, make one ask, did the Germans want to provoke a widespread dispersion of our surplus vessels, and if so why? As the First Sea Lord has observed, it would be more natural they should wish to concentrate them in home waters in order to have targets for air attack Moreover, how could they have foreseen the extent to which we should react on the rumour of *Scheer* in South Atlantic? It all seems quite purposeless; yet the Germans are not the people to do things without reason Are you sure it was *Scheer* and not a plant, or a fake?

I see the German wireless boast they are driving the Fleet out of the North Sea At present this is less mendacious than most of their stuff There may therefore be danger on the East Coast from surface ships. Could not submarine flotillas of our own be disposed well out at sea across a probable line of hostile advance? They would want a parent destroyer perhaps to scout for them They should be well out of our line of watching trawlers. It may well be there is something going to happen, now that we have retired to a distance to gain time.

I should be the last to raise those "invasion scares", which I combated so constantly during the early days of 1914–15. Still, it might be well for the Chiefs of Staff to consider what would happen if, for instance, 20,000 men were run across and landed, say, at Harwich, or at Webburn Hook, where there is deep water close inshore. These 20,000 men might make the training of Mr Hore-Belisha's masses very much more realistic than is at present expected The long dark nights would help such designs Have any arrangements been made by the War Office to provide against this contingency? Remember how we stand in the North Sea at the present time. I do not think it likely, but it is physically possible

ORGANISATION OF HUNTING GROUPS—OCTOBER 31ST, 1939

Force	Composition			Area
	Battleships and Battle-cruisers	Cruisers	Aircraft-carriers	
F		*Berwick* *York*		North America and West Indies
G		*Cumberland* *Exeter* *Ajax* *Achilles*		East coast of South America
H		*Sussex* *Shropshire*		Cape of Good Hope
I		*Cornwall* *Dorsetshire*	*Eagle*	Ceylon
	Malaya		*Glorious*	Gulf of Aden
K	*Renown*		*Ark Royal*	Pernambuco-Freetown
L	*Repulse*		*Furious*	Atlantic convoys
X		Two French 8-inch cruisers	*Hermes*	Pernambuco-Dakar
Y	*Strasbourg*	*Neptune* One French 8-inch cruiser		Pernambuco-Dakar

Additional escorts with North Atlantic convoys

Battleships *Revenge*
Resolution
Warspite
Cruisers: *Emerald*
Enterprise

The *Deutschland*, which was to have harassed our lifeline across the North-west Atlantic, interpreted her orders with comprehending caution. At no time during her two and a half months' cruise did she approach a convoy. Her determined efforts to avoid British forces prevented her from making more than two kills, one being a small Norwegian ship. A third ship, the United States *City of Flint*, carrying a cargo for Britain, was captured, but was eventually released by the Germans from a Norwegian port. Early in November the *Deutschland* slunk back to Germany, passing again through Arctic waters. The mere presence of this powerful ship upon our main trade route had however imposed, as was intended, a serious strain upon our escorts and hunting groups in the North Atlantic. We should in fact have preferred her activity to the vague menace she embodied.

The *Graf Spee* was more daring and imaginative, and soon became the centre of attention in the South Atlantic. In this vast area powerful Allied forces came into play by the middle of October. One group consisted of the aircraft-carrier *Ark Royal* and the battle-cruiser *Renown*, working from Freetown, in conjunction with a French group of two heavy cruisers and the British aircraft-carrier *Hermes*, based on Dakar. At the Cape of Good Hope were the two heavy cruisers *Sussex* and *Shropshire*, while on the east coast of South America, covering the vital traffic with the River Plate and Rio de Janeiro, ranged Commodore Harwood's group, comprising the *Cumberland*, *Exeter*, *Ajax*, and *Achilles*. The *Achilles* was a New Zealand ship manned mainly by New Zealanders.

The *Spee's* practice was to make a brief appearance at some point, claim a victim, and vanish again into the trackless ocean wastes. After a second appearance farther south on the Cape route, in which she sank only one ship, there was no further sign of her for nearly a month, during which our hunting groups were searching far and wide in all areas, and special vigilance was enjoined in the Indian Ocean. This was in fact her destination, and on November 15 she sank a small British tanker in the Mozambique Channel, between Madagascar and the mainland. Having thus registered her appearance as a feint in the Indian Ocean, in order to draw the hunt in that direction, her captain—Langsdorff, a high-class person—promptly doubled back and, keeping well south of the Cape, re-entered the Atlantic. This

move had not been unforeseen, but our plans to intercept him were foiled by the quickness of his withdrawal. It was by no means clear to the Admiralty whether in fact one raider was on the prowl or two, and exertions were made both in the Indian and Atlantic Oceans We also thought that the *Spee* was her sister ship, the *Scheer* The disproportion between the strength of the enemy and the counter-measures forced upon us was vexatious It recalled to me the anxious weeks before the action at Coronel and later at the Falkland Islands in December 1914, when we had to be prepared at seven or eight different points, in the Pacific and South Atlantic, for the arrival of Admiral von Spee with the earlier edition of the *Scharnhorst* and *Gneisenau* A quarter of a century had passed, but the puzzle was the same It was with a definite sense of relief that we learnt that the *Spee* had appeared once more on the Cape-Freetown route, sinking two more ships on December 2 and one on the 7th.

* * * * *

From the beginning of the war Commodore Harwood's special care and duty had been to cover British shipping off the River Plate and Rio de Janeiro. He was convinced that sooner or later the *Spee* would come towards the Plate, where the richest prizes were offered to her He had carefully thought out the tactics which he would adopt in an encounter Together, his 8-inch cruisers *Cumberland* and *Exeter*, and his 6-inch cruisers *Ajax* and *Achilles*, could not only catch but kill However, the needs of fuel and refit made it unlikely that all four would be present "on the day" If they were not the issue was disputable On hearing that the *Doric Star* had been sunk on December 2, Harwood guessed right Although she was over 3,000 miles away he assumed that the *Spee* would come towards the Plate He estimated with luck and wisdom that she might arrive by the 13th He ordered all his available forces to concentrate there by December 12. Alas, the *Cumberland* was refitting at the Falklands, but on the morning of the 13th *Exeter*, *Ajax*, and *Achilles* were in company at the centre of the shipping routes off the mouth of the river Sure enough, at 6 14 a m smoke was sighted to the east The longed-for collision had come

Harwood, in the *Ajax*, disposing his forces so as to attack the pocket-battleship from widely-divergent quarters and thus con-

fuse her fire, advanced at the utmost speed of his small squadron. Captain Langsdorff thought at the first glance that he had only to deal with one light cruiser and two destroyers, and he too went full speed ahead; but a few moments later he recognised the quality of his opponents, and knew that a mortal action impended. The two forces were now closing at nearly fifty miles an hour Langsdorff had but a minute to make up his mind. His right course would have been to turn away immediately so as to keep his assailants as long as possible under the superior range and weight of his 11-inch guns, to which the British could not at first have replied. He would thus have gained for his undisturbed firing the difference between adding speeds and subtracting them. He might well have crippled one of his foes before any could fire at him He decided, on the contrary, to hold on his course and make for the *Exeter* The action therefore began almost simultaneously on both sides.

Commodore Harwood's tactics proved advantageous. The 8-inch salvoes from the *Exeter* struck the *Spee* from the earliest stages of the fight. Meanwhile the 6-inch cruisers were also hitting hard and effectively Soon the *Exeter* received a hit which, besides knocking out B turret, destroyed all the communications on the bridge, killed or wounded nearly all upon it, and put the ship temporarily out of control. By this time however the 6-inch cruisers could no longer be neglected by the enemy, and the *Spee* shifted her main armament to them, thus giving respite to the *Exeter* at a critical moment. The German battleship, plastered from three directions, found the British attack too hot, and soon afterwards turned away under a smoke-screen with the apparent intention of making for the River Plate. Langsdorff had better have done this earlier

After this turn the *Spee* once more engaged the *Exeter*, hard hit by the 11-inch shells All her forward guns were out of action She was burning fiercely amidships and had a heavy list. Captain Bell, unscathed by the explosion on the bridge, gathered two or three officers round him in the after control-station, and kept his ship in action with her sole remaining turret, until at 7 30 failure of pressure put this too out of action. He could do no more. At 7 40 the *Exeter* turned away to effect repairs and took no further part in the fight

The *Ajax* and *Achilles*, already in pursuit, continued the action
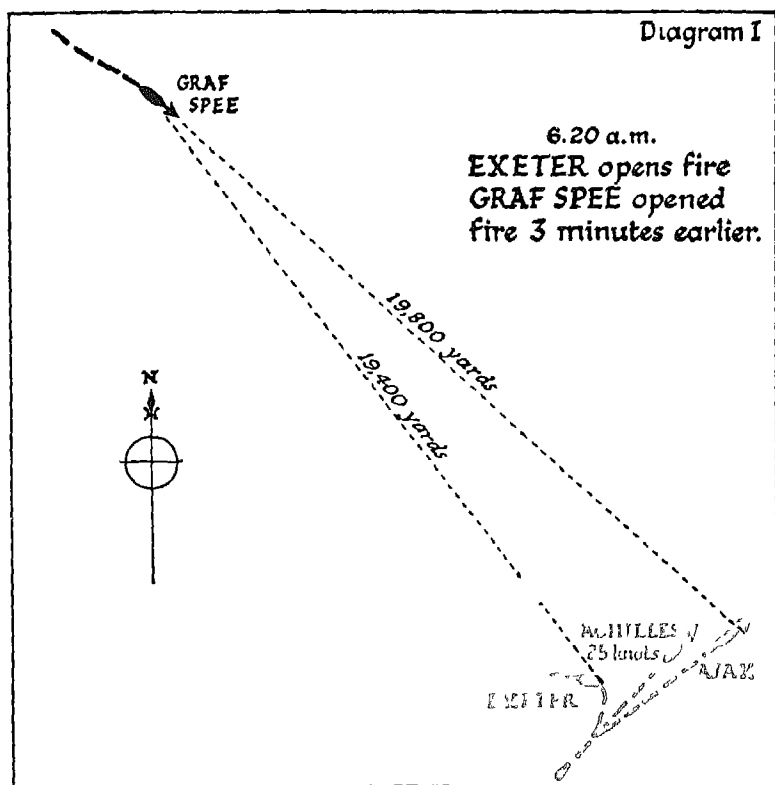
in the most spirited manner. The *Spee* turned all her heavy guns upon them. By 7.25 the two after-turrets in the *Ajax* had been knocked out, and the *Achilles* had also suffered damage. These two light cruisers were no match for the enemy in gun-power, and, finding that his ammunition was running low, Harwood in the *Ajax* decided to break off the fight till dark, when he would have better chances of using his lighter armament effectively, and perhaps his torpedoes. He therefore turned away under cover of smoke, and the enemy did not follow. This fierce action had lasted an hour and twenty minutes. During all the rest of the day the *Spee* made for Montevideo, the British cruisers hanging grimly on her heels, with only occasional interchanges of fire. Shortly after midnight the *Spee* entered Montevideo, and lay there repairing damage, taking in stores, landing wounded,
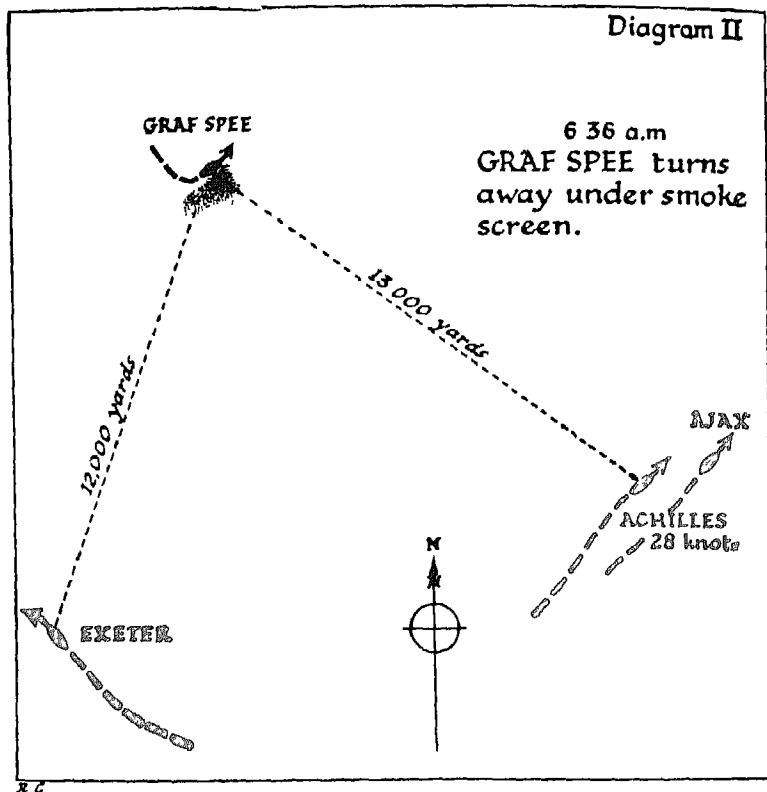
transhipping personnel to a German merchant ship, and reporting to the Fuehrer *Ajax* and *Achilles* lay outside, determined to dog her to her doom should she venture forth Meanwhile on the night of the 14th the *Cumberland*, which had been steaming at full speed from the Falklands, took the place of the utterly crippled *Exeter*. The arrival of this 8-inch-gun cruiser restored to its narrow balance a doubtful situation.

It had been most exciting to follow the drama of this brilliant action from the Admiralty War Room, where I spent a large part of the 13th Our anxieties did not end with the day Mr Chamberlain was at that time in France on a visit to the Army On the 17th I wrote to him

December 17, 1939

If the *Spee* breaks out as she may do to-night we hope to renew the action of the 13th with the *Cumberland*, an eight 8-inch-gun ship, in
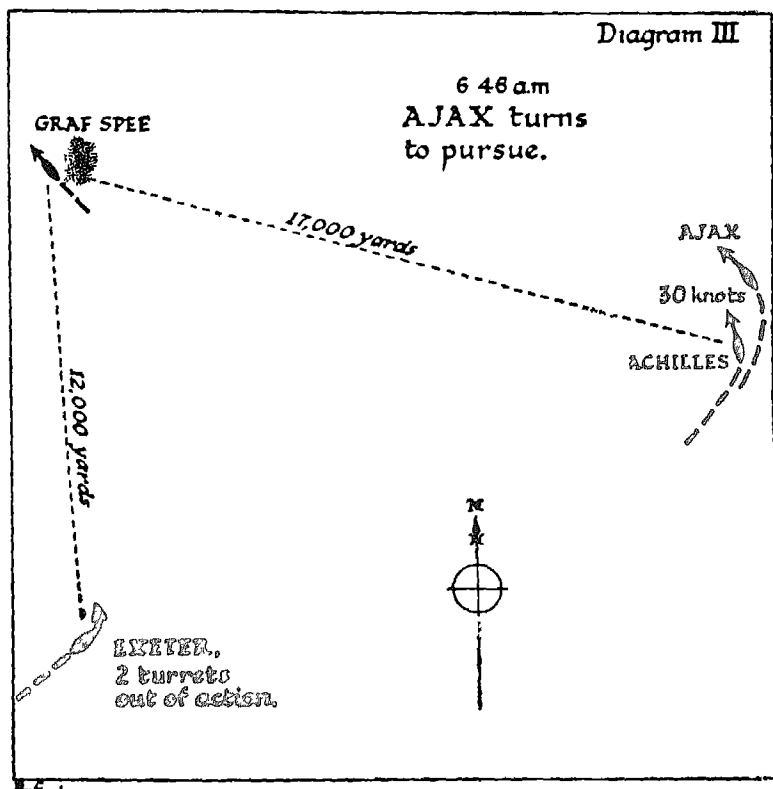
the place of the six-gun *Exeter*. The *Spee* knows now that *Renown* and *Ark Royal* are oiling at Rio, so this is her best chance. The *Dorsetshire* and *Shropshire*, who are coming across from the Cape, are still three and four days away respectively. It is fortunate that the *Cumberland* was handy at the Falklands, as *Exeter* was heavily damaged. She was hit over a hundred times, one turret smashed, three guns knocked out and sixty officers and men killed and twenty wounded. Indeed, the *Exeter* fought one of the finest and most resolute actions against superior range and metal on record. Every conceivable precaution has been taken to prevent the *Spee* slipping out unobserved, and I have told Harwood [who is now an Admiral and a K C B] that he is free to attack her anywhere outside the three-mile limit. We should prefer however that she should be interned, as this will be less creditable to the German Navy than being sunk in action. Moreover, a battle of this kind is full of hazard, and needless bloodshed must never be sought.
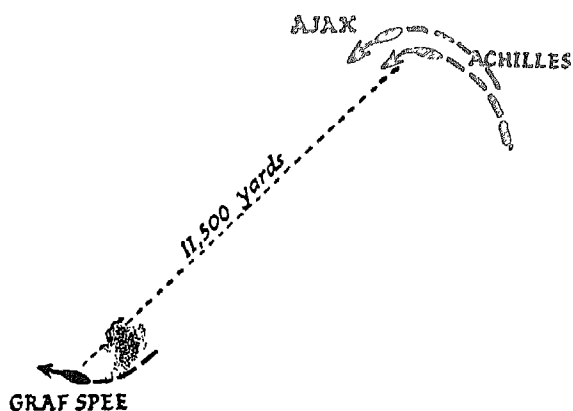
Diagram IV
AJAX
ACHILLES
11,500 yards
GRAF SPEE
N
7.30 a m.
GRAF SPEE screened by smoke. AJAX turns towards the enemy. Two turrets out of action at 7.25
To Falkland Islands, 1000 miles
EXETER
turning away at 7.40
R C
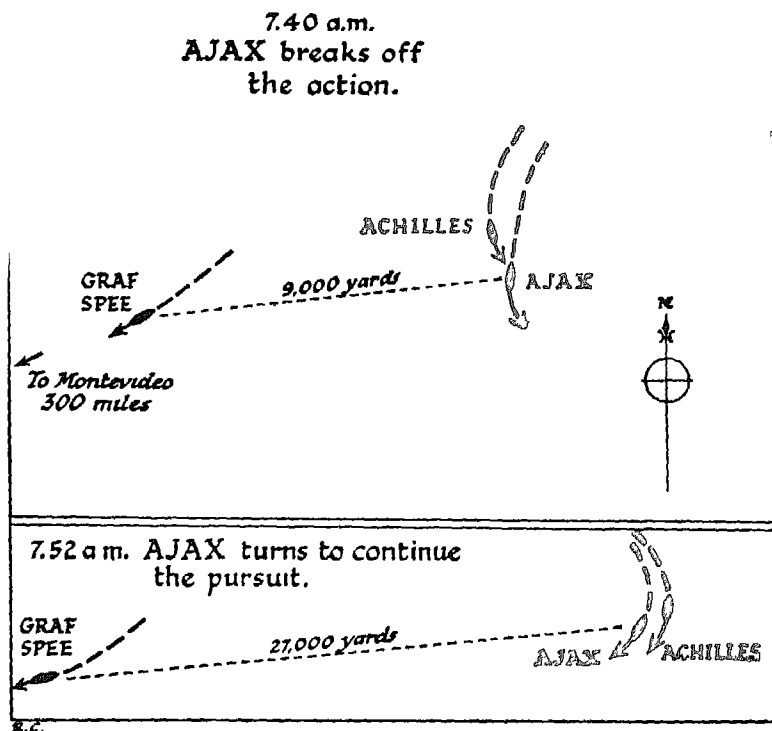
The whole of the Canadians came in safely this morning under the protection of the main fleet, and [are] being welcomed by Anthony, Massey, and I trust a good part of the people of Greenock and Glasgow. We plan to give them a cordial reception They are to go to Aldershot, where no doubt you will go and see them presently.

There have been ten air attacks to-day on individual ships along the East Coast from Wick to Dover, and some of the merchant ships have been machine-gunned out of pure spite, some of our people being hit on their decks

I am sure you must be having a most interesting time at the Front, and I expect you will find that change is the best kind of rest.

From the moment when we heard that action was joined we instantly ordered powerful forces to concentrate off Montevideo, but our hunting groups were naturally widely dispersed and none was within two thousand miles of the scene. In the north

Force K, comprising the *Renown* and *Ark Royal*, was completing a sweep which had begun at Capetown ten days before and was now six hundred miles east of Pernambuco and 2,500 miles from Montevideo. Farther north still the cruiser *Neptune*, with three destroyers, had just parted company with the French Force X and was coming south to join Force K. All these were ordered to Montevideo, they had first to fuel at Rio However, we succeeded in creating the impression that they had already left Rio and were approaching Montevideo at thirty knots.

On the other side of the Atlantic Force H was returning to the Cape for fuel after an extended sweep up the African coast. Only the *Dorsetshire* was immediately available at Capetown, and she was ordered at once to join Admiral Harwood, but she had nearly 4,000 miles to travel. She was followed later by the *Shropshire* In addition, to guard against the possible escape of the *Spee* to the eastward, Force I, now comprising the *Cornwall*, *Gloucester*, and the aircraft-carrier *Eagle* from the East Indies station, which at this time was at Durban, was placed at the disposal of the C.-in-C South Atlantic.

* * * * *

Meanwhile Captain Langsdorff telegraphed on December 16 to the German Admiralty as follows:

> Strategic position off Montevideo Besides the cruisers and destroyers, *Ark Royal* and *Renown* Close blockade at night; escape into open sea and break-through to home waters hopeless . . Request decision on whether the ship should be scuttled in spite of insufficient depth in the estuary of the Plate, or whether internment is to be preferred

At a conference presided over by the Fuehrer, at which Raeder and Jodl were present, the following answer was decided on

> Attempt by all means to extend the time in neutral waters . Fight your way through to Buenos Aires if possible No internment in Uruguay Attempt effective destruction if ship is scuttled

As the German envoy in Montevideo reported later that further attempts to extend the time-limit of seventy-two hours were fruitless, these orders were confirmed by the German Supreme Command

Accordingly during the afternoon of the 17th the *Spee* trans-

HUNTING GROUPS IN SOUTH ATLANTIC
Black - General Dispositions Oct-Nov, 1939
Red - Positions of Forces on Dec 15, 1939
SOUTH AMERICA
AFRICA
Pernambuco
Rio Janeiro
Montevideo
Dakar
Freetown
Ascension I
St. Helena
Walfish Bay
Capetown
Durban
FALKLAND IS
FORCE Y
STRASBOURG
NEPTUNE
1 French Cruiser
NEPTUNE
3 destroyers
To RIO
arrived Dec 17
To DAKAR
Dec 13
FORCE X
HERMES
2 French Cruisers
FORCE K
RENOWN
ARK ROYAL
To Freetown 1650 miles
RENOWN
ARK ROYAL
To RIO
arrived Dec 17
1075 miles
1036 miles
FORCE G
CUMBERLAND
EXETER
AJAX
ACHILLES
To Capetown 3,650 miles
EXETER AJAX
ACHILLES
in action with
GRAF SPEE,
Dec 13
CUMBERLAND
Dec 17
SUSSEX
SHROPSHIRE
Dec 13
FORCE H
SUSSEX
SHROPSHIRE
DORSETSHIRE
To R. PLATE
Dec 13
CORNWALL
GLOUCESTER
EAGLE
To CAPETOWN
Dec 13
FORCES H and K
patrolled this line
from Nov 28 to Dec 2
FORCE H to Walfish Bay area Dec 3
FORCE K to Pernambuco area, Dec 4
60°W
40°
20°
0°
20°E
20°S
40°

ferred more than seven hundred men, with baggage and provisions, to the German merchant ship in the harbour. Shortly afterwards Admiral Harwood learnt that she was weighing anchor. At 6.15 p.m., watched by immense crowds, she left harbour and steamed slowly seawards, awaited hungrily by the British cruisers At 8.54 p.m., as the sun sank, the *Ajax's* aircraft reported: "*Graf Spee* has blown herself up." The *Renown* and *Ark Royal* were still a thousand miles away.

Langsdorff was broken-hearted by the loss of his ship In spite of the full authority he had received from his Government, he wrote on December 19:

I can now only prove by my death that the fighting services of the Third Reich are ready to die for the honour of the flag I alone bear the responsibility for scuttling the pocket-battleship *Admiral Graf Spee* I am happy to pay with my life for any possible reflection on the honour of the flag I shall face my fate with firm faith in the cause and the future of the nation and of my Fuehrer.

That night he shot himself.

Thus ended the first surface challenge to British trade on the oceans. No other raider appeared until the spring of 1940, when a new campaign opened, utilising disguised merchant ships. These could more easily avoid detection, but on the other hand could be mastered by lesser forces than those required to destroy a pocket-battleship.

* * * * *

As soon as the news arrived of the end of the *Spee* I was impatient to bring our widely-scattered hunting groups home. The *Spee's* auxiliary, the *Altmark*, was however still afloat, and it was believed that she had on board the crews of the nine ships which had been sunk by the raider.

First Sea Lord 17 XII.39

Now that the South Atlantic is practically clear except for the *Altmark*, it seems of high importance to bring home the *Renown* and *Ark Royal*, together with at least one of the 8-inch-gun cruisers This will give us more easement in convoy work and enable refits and leave to be accomplished I like your plan of the two small ships anchoring to-morrow in Montevideo inner harbour, but I do not think it would be right to send Force K so far south. Moreover, perhaps so many warships would not be allowed in at one time. It would be very

convenient if, as you proposed, *Neptune* relieved *Ajax* as soon as the triumphal entry into [Montevideo harbour] is over, and it would be very good if all the returning forces could scrub and search the South Atlantic on their way home for the *Altmark* I feel that we ought to bring home all that are not absolutely needed The Northern Patrol will require constant support in two, or better still three, reliefs from the Clyde as long as we stay there I agree with Captain Tennant that the German Admiralty will be most anxious to do something to get their name back

Perhaps you will let me know what you think about these ideas.

I was also most anxious about the *Exeter*, and could not accept the proposals made to me to leave her unrepaired in the Falkland Islands till the end of the war

First Sea Lord, Controller, and others 17.XII 39

This preliminary report of damage to *Exeter* shows the tremendous fire to which she was exposed and the determination with which she was fought It also reflects high credit on the Constructors' Department that she should have been able to stand up to such a prolonged and severe battering. This story will have to be told as soon as possible, omitting anything undesirable [*i.e* , what the enemy should not know]

What is proposed about repair? What can be done at the Falklands? I presume she will be patched up sufficiently to come home for long refit.

First Sea Lord, D C N S , Controller 23 XII 39

We ought not readily to accept the non-repair during the war of *Exeter* She should be strengthened and strutted internally as far as possible, and should transfer her ammunition, or the bulk of it, to some merchant ship or tender Perhaps she might be filled up in part with barrels or empty oil-drums, and come home with reduced crew under escort either to the Mediterranean or to one of our dockyards If nothing can be done with her then, she should be stripped of all useful guns and appliances, which can be transferred to new construction

The above indicates only my general view. Perhaps you will let me know how it can be implemented.

Controller and First Sea Lord 29 XII.39

I have not seen the answer to the telegram from the Rear-Admiral South America about its not being worth while to repair *Exeter*, on which I minuted in the contrary sense How does this matter now stand? I gathered from you verbally that we were all in agreement

she should come home and be thoroughly repaired, and that this need not take so long as the R A thought.

What is going to happen to *Exeter* now? How is she going to be brought home, in what condition, and when? We cannot leave her at the Falklands, where either she will be in danger or some valuable ship will be tethered to look after her. I shall be glad to know what is proposed.

My view prevailed. The *Exeter* reached this country safely. I had the honour to pay my tribute to her brave officers and men from her shattered deck in Plymouth Harbour. She was preserved for over two years of distinguished service, until she perished under Japanese guns in the forlorn battle of the Straits of Sunda in 1942.

* * * * *

The effects of the action off the Plate gave intense joy to the British nation and enhanced our prestige throughout the world. The spectacle of the three smaller British ships unhesitatingly attacking and putting to flight their far more heavily gunned and armoured antagonist was everywhere admired. It was contrasted with the disastrous episode of the escape of the *Goeben* in the Straits of Otranto in August 1914. In justice to the Admiral of those days it must be remembered that all Commodore Harwood's ships were faster than the *Spee*, and all except one of Admiral Troubridge's squadron in 1914 were slower than the *Goeben* Nevertheless the impression was exhilarating, and lightened the dreary and oppressive winter through which we were passing.

The Soviet Government were not pleased with us at this time, and their comment on December 31, 1939, in the *Red Fleet* is an example of their factual reporting:

Nobody would dare to say that the loss of a German battleship is a brilliant victory for the British Fleet This is rather a demonstration, unprecedented in history, of the impotence of the British Upon the morning of December 13 the battleship started an artillery duel with the *Exeter*, and within a few minutes obliged the cruiser to withdraw from the action According to the latest information the *Exeter* sank near the Argentine coast, *en route* for the Falkland Islands

* * * * *

On December 23 the American Republics made a formal protest to Britain, France, and Germany about the action off the

River Plate, which they claimed to be a violation of the American Security Zone. It also happened about this time that two German merchant ships were intercepted by our cruisers near the coast of the United States. One of these, the liner *Columbus*, of 32,000 tons, was scuttled and survivors were rescued by an American cruiser, the other escaped into territorial waters in Florida President Roosevelt reluctantly complained about these vexations near the coast of the Western Hemisphere, and in my reply I took the opportunity of stressing the advantages which our action off the Plate had brought to all the South American Republics. Their trade had been hampered by the activities of the German raider and their ports had been used for his supply ships and as information centres. By the laws of war the raider had been entitled to capture all merchant ships trading with us in the South Atlantic, or to sink them after providing for their crews, and this had inflicted grave injury on American commercial interests, particularly in the Argentine. The South American Republics should greet the action off the Plate as a deliverance from all this annoyance. The whole of the South Atlantic was now clear, and might perhaps remain clear, of warlike operations. This relief should be highly valued by the South American States, who might now in practice enjoy for a long period the advantages of a Security Zone of three thousand, rather than three hundred, miles

I could not forbear from adding that the Royal Navy was carrying a very heavy burden in enforcing respect for international law at sea The presence of even a single raider in the North Atlantic called for the employment of half our battle-fleet to give sure protection to the world's commerce The unlimited laying of magnetic mines by the enemy was adding to the strain upon our flotillas and small craft If we should break under this strain the South American Republics would soon have many worse worries than the sound of one day's distant seaward cannonade; and in quite a short time the United States would also face more direct cares I therefore felt entitled to ask that full consideration should be given to the burden which we were carrying at this crucial period, and that the best construction should be placed on action which was indispensable if the war was to be ended within reasonable time and in the right way.

CHAPTER XXX

SCANDINAVIA. FINLAND

The Norway Peninsula – Swedish Iron Ore – Neutrality and the Norwegian Corridor – An Error Corrected – Behind the German Veil – Admiral Von Raeder and Herr Rosenberg – Vidkun Quisling – Hitler's Decision, December 14, 1939 – Soviet Action against the Baltic States – Stalin's Demands upon Finland – The Russians Declare War on Finland, November 28, 1939 – Gallant Finnish Resistance – The Soviet Failure and Rebuff – World-wide Satisfaction – Aid to Finland and Norwegian and Swedish Neutrality – The Case for Mining the "Leads" – The Moral Issue.

THE thousand-mile-long peninsula stretching from the mouth of the Baltic to the Arctic Circle had an immense strategic significance. The Norwegian mountains run into the ocean in a continuous fringe of islands. Between these islands and the mainland there was a corridor in territorial waters through which Germany could communicate with the outer sea to the grievous injury of our blockade. German war industry was mainly based upon supplies of Swedish iron ore, which in the summer were drawn from the Swedish port of Luleå, at the head of the Gulf of Bothnia, and in the winter, when this was frozen, from Narvik, on the west coast of Norway. To respect the corridor would be to allow the whole of this traffic to proceed under the shield of neutrality in the face of our superior sea-power. The Admiralty Staff were seriously perturbed at this important advantage being presented to Germany, and at the earliest opportunity I raised the issue in the Cabinet.

My recollection of the previous war was that the British and American Governments had had no scruples about mining the "Leads", as these sheltered waters were called The great mine barrage which was laid in 1917–18 across the North Sea from

Scotland to Norway could not have been fully effective if German commerce and German U-boats had only to slip round the end of it unmolested. I found however that neither of the Allied Fleets had laid any minefields in Norwegian territorial waters Their admirals had complained that the barrage, on which enormous quantities of labour and money had been spent, would be ineffective unless this corridor was closed, and all the Allied Governments had therefore put the strongest pressure on Norway to close it themselves. The immense barrage took a long time to lay, and by the time it was finished there was not much doubt how the war would end or that Germany no longer possessed the power to invade Scandinavia It was not however till the end of September 1918 that the Norwegian Government were persuaded to take action Before they actually carried out their undertaking the war came to an end.

When eventually I presented this case in the House of Commons, in April 1940, I said

> During the last war, when we were associated with the United States, the Allies felt themselves so deeply injured by this covered way, then being used especially for U-boats setting out on their marauding expeditions, that the British, French, and United States Governments together induced the Norwegians to [undertake to] lay a minefield in their territorial waters across the covered way in order to prevent the abuse by U-boats of this channel It was only natural that the Admiralty since this war began should have brought this precedent—although it is not exactly on all fours and there are some differences—this modern and highly respectable precedent, to the notice of His Majesty's Government, and should have urged that we should be allowed to lay a minefield of our own in Norwegian territorial waters in order to compel this traffic which was passing in and out to Germany to come out into the open sea and take a chance of being brought into the Contraband Control or being captured as enemy prize by our blockading squadrons and flotillas. It was only natural and it was only right that His Majesty's Government should have been long reluctant to incur the reproach of even a technical violation of international law

They certainly were long in reaching a decision.

At first the reception of my case was favourable. All my colleagues were deeply impressed with the evil, but strict respect for the neutrality of small States was a principle of conduct to which we all adhered.

First Lord to First Sea Lord and others 19 IX 39

I brought to the notice of the Cabinet this morning the importance of stopping the Norwegian transportation of Swedish iron ore from Narvik, which will begin as soon as the ice forms in the Gulf of Bothnia. I pointed out that we had laid a minefield across the 3-mile limit in Norwegian territorial waters in 1918, with the approval and co-operation of the United States. I suggested that we should repeat this process very shortly [This, as is explained above, was not an accurate statement, and I was soon apprised of the fact] The Cabinet, including the Foreign Secretary, appeared strongly favourable to this action

It is therefore necessary to take all steps to prepare it.

1 The negotiations with the Norwegians for the chartering of their tonnage must be got out of the way first

2 The Board of Trade would have to make arrangements with Sweden to buy the ore in question, as it is far from our wish to quarrel with the Swedes.

3 The Foreign Office should be made acquainted with our proposals, and the whole story of Anglo-American action in 1918 must be carefully set forth, together with a reasoned case

4 The operation itself should be studied by the Admiralty Staff concerned. The Economic Warfare Department should be informed as and when necessary

Pray let me be continually informed of the progress of this plan, which is of the highest importance in crippling the enemy's war industry

A further Cabinet decision will be necessary when all is in readiness.

On the 29th, at the invitation of my colleagues, and after the whole subject had been minutely examined at the Admiralty, I drafted a paper for the Cabinet upon this subject, and on the chartering of neutral tonnage, which was linked with it.

NORWAY AND SWEDEN

Memorandum by the First Lord of the Admiralty

Chartering Norwegian Tonnage *September 29, 1939*

1 The Norwegian Delegation is approaching, and in a few days the President of the Board of Trade hopes to make a bargain with them by which he charters all their spare tonnage, the bulk of which consists of tankers

The Admiralty consider the chartering of this tonnage most important, and Lord Chatfield has written strongly urging it upon them

German Supplies of Iron Ore from Narvik

2 At the end of November the Gulf of Bothnia normally freezes, so that Swedish iron ore can be sent to Germany only through Oxelosund, in the Baltic, or from Narvik, at the north of Norway Oxelosund can export only about one-fifth of the weight of ore Germany requires from Sweden In winter normally the main trade is from Narvik, whence ships can pass down the west coast of Norway, and make the whole voyage to Germany without leaving territorial waters until inside the Skagerrak

It must be understood that an adequate supply of Swedish iron ore is vital to Germany, and the interception or prevention of these Narvik supplies during the winter months, *i e*, from October to the end of April, will greatly reduce her power of resistance For the first three weeks of the war no iron ore ships left Narvik owing to the reluctance of crews to sail and other causes outside our control Should this satisfactory state of affairs continue, no special action would be demanded from the Admiralty Furthermore, negotiations are proceeding with the Swedish Government which in themselves may effectively reduce the supplies of Scandinavian ore to Germany

Should however the supplies from Narvik to Germany start moving again, more drastic action will be needed

Relations with Sweden

3 Our relations with Sweden require careful consideration. Germany acts upon Sweden by threats Our sea-power gives us also powerful weapons, which, if need be, we must use to ration Sweden Nevertheless, it should be proposed, as part of the policy outlined in paragraph 2, to assist the Swedes so far as possible to dispose of their ore in exchange for our coal, and, should this not suffice, to indemnify them, partly at least, by other means. This is the next step

Charter and Insurance of all available Neutral Tonnage

4 The above considerations lead to a wider proposal Ought we not to secure the control, by charter or otherwise, of all the free neutral shipping we can obtain, as well as the Norwegian, and thus give the Allies power to regulate the greater part of the sea transport of the world and recharter it, profitably, to those who act as we wish?

And ought we not to extend to neutral shipping not under our direct control the benefit of our convoy system?

The results so far achieved by the Royal Navy against the U-boat attack seem, in the opinion of the Admiralty, to justify the adoption of this latter course This would mean that we should offer safe convoy to all vessels of all countries traversing our sea routes, provided they conform to our rules of contraband and pay the necessary

premiums in foreign devisen. They would therefore be able to contract themselves out of the war risk, and with the success of our anti-U-boat campaign we may well hope to make a profit to offset its heavy expense. Thus not only vessels owned by us or controlled by us, but independent neutral ships, would all come to enjoy the British protection on the high seas, or be indemnified in case of accidents It is not believed at the Admiralty that this is beyond our strength Had some such scheme for the chartering and insurance of neutral shipping been in force from the early days of the last war, there is little doubt that it would have proved a highly profitable speculation In this war it might well prove to be the foundation of a League of Free Maritime Nations to which it was profitable to belong

5 It is therefore asked that the Cabinet, if they approve in principle of these four main objectives, should remit the question to the various departments concerned in order that detailed plans may be made for prompt action

Before circulating this paper to the Cabinet and raising the issue there, I called upon the Admiralty Staff for a thorough re-check of the whole position

First Lord to the Assistant Chief of the Naval Staff 29 IX 39

Please reconvene the meeting on iron ore we held on Thursday tomorrow morning, while Cabinet is sitting, in order to consider the draft print which I have made. It is no use my asking the Cabinet to take the drastic action suggested against a neutral country unless the results are in the first order of importance.

I am told that there are hardly any German or Swedish ships trying to take ore south from Narvik. Also that the Germans have been accumulating ore by sea at Oxelosund against the freezing up, and so will be able to bring good supplies down the Baltic via the Kiel Canal to the Ruhr during the winter months Are these statements true? It would be very unpleasant if I went into action on mining the Norwegian territorial waters and was answered that it would not do the trick

At the same time, assuming that the west coast traffic of Norway in ore is a really important factor worth making an exertion to stop, at what point would you stop it?

Pray explore in detail the coast and let me know the point Clearly it should be north at any rate of Bergen, thus leaving the southern part of the West Norwegian coast open for any traffic that may come from Norway or out of the Baltic in the Norwegian convoy across to us All this has to be more explored before I can present my case to the Cabinet I shall not attempt to do so until Monday or Tuesday.

When all was agreed and settled at the Admiralty I brought the matter a second time before the Cabinet. Again there was general agreement upon the need, but I was unable to obtain assent to action. The Foreign Office arguments about neutrality were weighty, and I could not prevail. I continued, as will be seen, to press my point by every means and on all occasions. It was not however until April 1940 that the decision that I asked for in September 1939 was taken. By that time it was too late.

* * * * *

Almost at this very moment, as we now know, German eyes were turned in the same direction. On October 3 Admiral Raeder, Chief of the Naval Staff, submitted a proposal to Hitler headed "Gaining of Bases in Norway." He asked, "That the Fuehrer be informed as soon as possible of the opinions of the Naval War Staff on the possibilities of extending the operational base to the north. It must be ascertained whether it is possible to gain bases in Norway under the combined pressure of Russia and Germany, with the aim of improving our strategic and operational position." He framed therefore a series of notes, which he placed before Hitler on October 10. "In these notes," he wrote, "I stressed the disadvantages which an occupation of Norway by the British would have for us: the control of the approaches to the Baltic, the outflanking of our naval operations and of our air attacks on Britain, the end of our pressure on Sweden. I also stressed the advantages for us of the occupation of the Norwegian coast: outlet to the North Atlantic, no possibility of a British mine barrier, as in the year 1917–18 . . . The Fuehrer saw at once the significance of the Norwegian problem; he asked me to leave the notes, and stated that he wished to consider the question himself."

Rosenberg, the foreign affairs expert of the Nazi Party, and in charge of a special bureau to deal with propaganda activities in foreign countries, shared the Admiral's view. He dreamed of "converting Scandinavia to the idea of a Nordic community embracing the northern peoples under the natural leadership of Germany". Early in 1939 he thought he had discovered an instrument in the extreme Nationalist Party in Norway, which was led by a former Norwegian Minister of War named Vidkun Quisling. Contacts were established, and Quisling's activity was

linked with the plans of the German Naval Staff through Rosenberg's organisation and the German Naval Attaché in Oslo.

Quisling and his assistant, Hagelin, went to Berlin on December 14, and were taken by Raeder to Hitler, to discuss a political stroke in Norway Quisling arrived with a detailed plan. Hitler, careful of secrecy, affected reluctance to increase his commitments, and said he would prefer a neutral Scandinavia. Nevertheless, according to Raeder, it was on this very day that he gave the order to the Supreme Command to prepare for a Norwegian Operation

Of all this we of course knew nothing

* * * * *

Meanwhile the Scandinavian peninsula became the scene of an unexpected conflict which aroused strong feeling in Britain and France and powerfully affected the discussion about Norway As soon as Germany was involved in war with Great Britain and France, Soviet Russia, in the spirit of her pact with Germany, proceeded to block the lines of entry into the Soviet Union from the west. One passage led from East Prussia through the Baltic States, another led across the waters of the Gulf of Finland, the third route was through Finland itself and across the Karelian Isthmus to a point where the Finnish frontier was only twenty miles from the suburbs of Leningrad. The Soviets had not forgotten the dangers which Leningrad had faced in 1919 Even the White Russian Government of Kolchak had informed the Peace Conference in Paris that bases in the Baltic States and Finland were a necessary protection for the Russian capital. Stalin had used the same language to the British and French Missions in the summer of 1939; and we have seen in earlier chapters how the natural fears of these small States had been an obstacle to an Anglo-French Alliance with Russia, and had paved the way for the Molotov-Ribbentrop agreement

Stalin had wasted no time. On September 24 the Esthonian Foreign Minister had been called to Moscow, and four days later his Government signed a Pact of Mutual Assistance which gave the Russians the right to garrison key bases in Esthonia. By October 21 the Red Army and Air Force were installed The same procedure was used simultaneously in Latvia, and Soviet garrisons also appeared in Lithuania. Thus the southern road to

Leningrad and half the Gulf of Finland had been swiftly barred against potential German ambitions by the armed forces of the Soviets. There remained only the approach through Finland.

Early in October Mr. Paasikivi, one of the Finnish statesmen who had signed the peace of 1921 with the Soviet Union, went to Moscow The Soviet demands were sweeping the Finnish frontier on the Karelian Isthmus must be moved back a considerable distance so as to remove Leningrad from the range of hostile artillery. The cession of certain Finnish islands in the Gulf of Finland, the lease of the Rybathy Peninsula, together with Finland's only ice-free port in the Arctic Sea, Petsamo, and, above all, the leasing of the port of Hango, at the entrance of the Gulf of Finland, as a Russian naval and air base, completed the Soviet requirements The Finns were prepared to make concessions on every point except the last. With the keys of the Gulf in Russian hands the strategic and national security of Finland seemed to them to vanish. The negotiations broke down on November 13, and the Finnish Government began to mobilise, and strengthen their troops on the Karelian frontier On November 28 Molotov denounced the Non-Aggression Pact between Finland and Russia, two days later the Russians attacked at eight points along Finland's thousand-mile frontier, and on the same morning the capital, Helsingfors, was bombed by the Red Air Force

The brunt of the Russian attack fell at first upon the frontier defences of the Finns in the Karelian Isthmus. These comprised a fortified zone about twenty miles in depth running north and south through forest country, deep in snow This was called the "Mannerheim Line", after the Finnish Commander-in-Chief and saviour of Finland from Bolshevik subjugation in 1917 The indignation excited in Britain, France, and even more vehemently in the United States, at the unprovoked attack by the enormous Soviet Power upon a small, spirited, and highly-civilised nation was soon followed by astonishment and relief The early weeks of fighting brought no success to the Soviet forces, which in the first instance were drawn almost entirely from the Leningrad garrison The Finnish Army, whose total fighting strength was only about 200,000 men, gave a good account of themselves The Russian tanks were encountered with audacity and a new type of hand-grenade, soon nicknamed "the Molotov Cocktail"

It is probable that the Soviet Government had counted on a
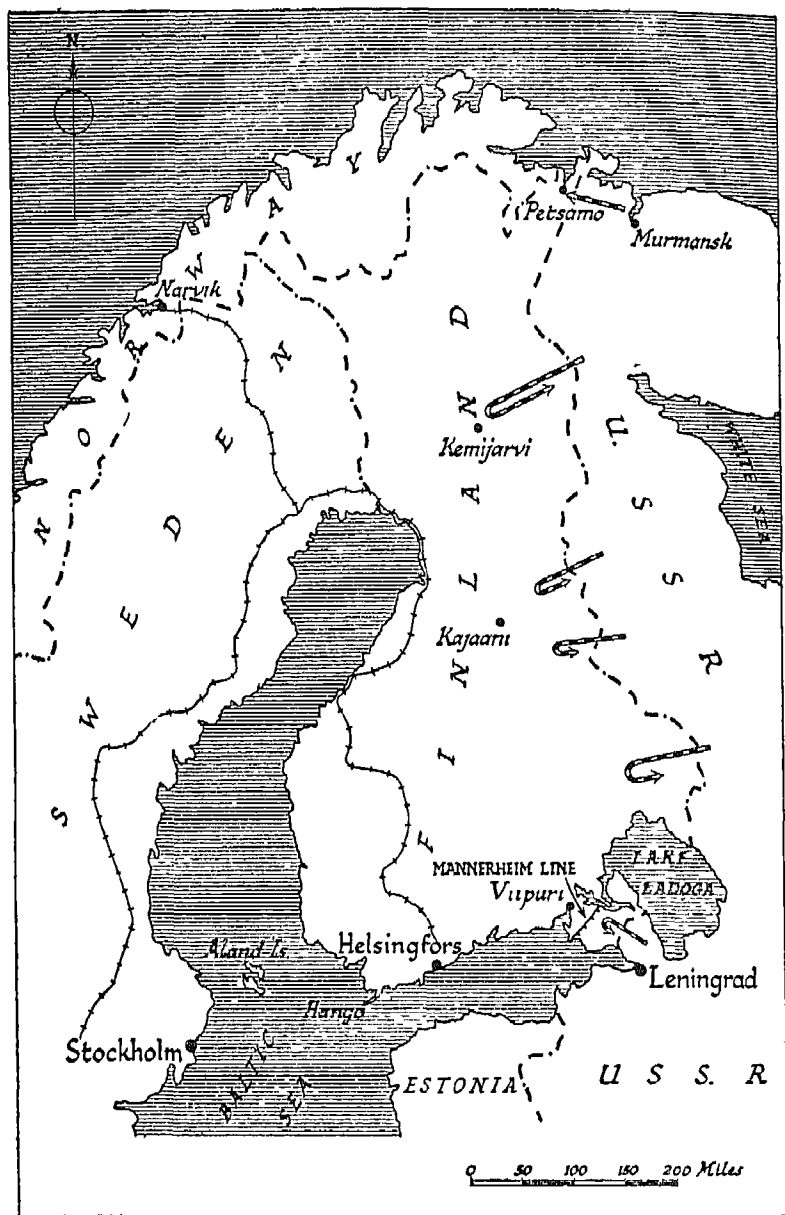
RUSSIAN ATTACK ON FINLAND, December 1939

walk-over. Their early air raids on Helsingfors and elsewhere, though not on a heavy scale, were expected to strike terror. The troops they used at first, though numerically much stronger, were inferior in quality and ill-trained. The effect of the air raids and of the invasion of their land roused the Finns, who rallied to a man against the aggressor and fought with absolute determination and the utmost skill. It is true that the Russian division which carried out the attack on Petsamo had little difficulty in throwing back the 700 Finns in that area. But the attack on the "Waist" of Finland proved disastrous to the invaders. The country here is almost entirely pine forests, gently undulating and at the time covered with a foot of hard snow. The cold was intense. The Finns were well equipped with skis and warm clothing, of which the Russians had neither. Moreover, the Finns proved themselves aggressive individual fighters, highly trained in reconnaissance and forest warfare. The Russians relied in vain on numbers and heavier weapons. All along this front the Finnish frontier posts withdrew slowly down the roads, followed by the Russian columns. After these had penetrated about thirty miles they were set upon by the Finns. Held in front at Finnish defence lines constructed in the forests, violently attacked in flank by day and
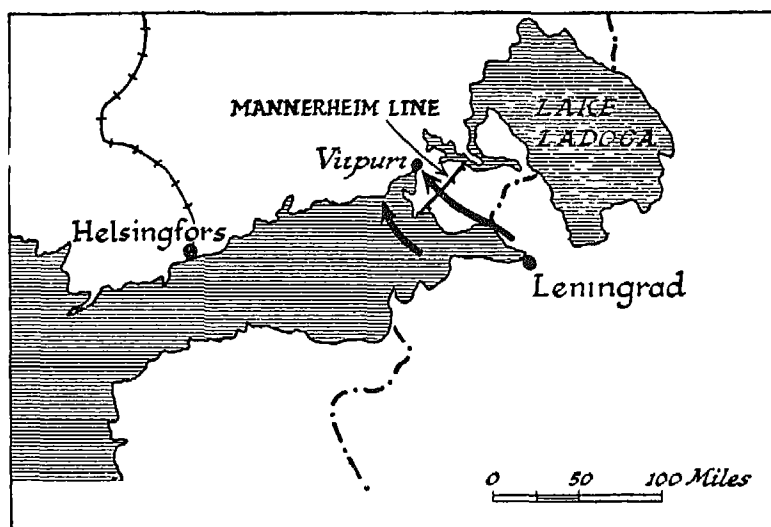
BREAKING THE MANNERHEIM LINE, March 1940

night, their communications severed behind them, the columns were cut to pieces, or, if lucky, got back after heavy loss whence they came. By the end of December the whole Russian plan for driving in across the "Waist" had broken down.

Meanwhile the attacks against the Mannerheim Line in the Karelian Isthmus fared no better. North of Lake Ladoga a turning movement attempted by about two Soviet divisions met the same fate as the operations farther north Against the Line itself a series of mass attacks by nearly twelve divisions was launched in early December, and continued throughout the month. The Russian artillery bombardments were inadequate; their tanks were mostly light, and a succession of frontal attacks were repulsed with heavy losses and no gains By the end of the year failure all along the front convinced the Soviet Government that they had to deal with a very different enemy from what they had expected. They determined upon a major effort. Realising that in the forest warfare of the north they could not overcome by mere weight of numbers the superior tactics and training of the Finns, they decided to concentrate on piercing the Mannerheim Line by methods of siege warfare in which the power of massed heavy artillery and heavy tanks could be brought into full play. This required preparation on a large scale, and from the end of the year fighting died down all along the Finnish front, leaving the Finns so far victorious over their mighty assailant This surprising event was received with equal satisfaction in all countries, belligerent or neutral, throughout the world. It was a pretty bad advertisement for the Soviet Army In British circles many people congratulated themselves that we had not gone out of our way to bring the Soviets in on our side, and preened themselves on their foresight. The conclusion was drawn too hastily that the Russian Army had been ruined by the purge, and that the inherent rottenness and degradation of their system of government and society was now proved It was not only in England that this view was taken There is no doubt that Hitler and his generals meditated profoundly upon the Finnish exposure, and that it played a potent part in influencing the Fuehrer's thought

All the resentment felt against the Soviet Government for the Ribbentrop-Molotov pact was fanned into flame by this latest exhibition of brutal bullying and aggression. With this was also

mingled scorn for the inefficiency displayed by the Soviet troops and enthusiasm for the gallant Finns. In spite of the Great War which had been declared, there was a keen desire to help the Finns by aircraft and other precious war material and by volunteers from Britain, from the United States, and still more from France. Alike for the munitions supplies and the volunteers there was only one possible route to Finland. The iron ore port of Narvik, with its railroad over the mountains to the Swedish iron mines, acquired a new sentimental if not strategic significance. Its use as a line of supply for the Finnish armies affected the neutrality both of Norway and Sweden. These two States, in equal fear of Germany and Russia, had no aim but to keep out of the wars by which they were encircled and might be engulfed. For them this seemed the only chance of survival. But whereas the British Government were naturally reluctant to commit even a technical infringement of Norwegian territorial waters by laying mines in the Leads for their own advantage against Germany, they moved upon a generous emotion, only indirectly connected with our war problem, towards a far more serious demand upon both Norway and Sweden for the free passage of men and supplies to Finland.

I sympathised ardently with the Finns and supported all proposals for their aid; and I welcomed this new and favourable breeze as a means of achieving the major strategic advantage of cutting off the vital iron ore supplies of Germany. If Narvik was to become a kind of Allied base to supply the Finns, it would certainly be easy to prevent the German ships loading ore at the port and sailing safely down the Leads to Germany. Once Norwegian and Swedish protestations were overborne, for whatever reason, the greater measures would include the less. The Admiralty's eyes were also fixed at this time upon the movements of a large and powerful Russian ice-breaker which was to be sent from Murmansk to Germany, ostensibly for repairs, but much more probably to open the now frozen Baltic port of Luleå for the German ore-ships. I therefore renewed my efforts to win consent to the simple and bloodless operation of mining the Leads, for which a certain precedent from the previous war existed. As the question raises moral issues, I feel it right to set the case in its final form as I made it after prolonged reflection and debate.

NORWAY—IRON ORE TRAFFIC

Note by the First Lord of the Admiralty

16 xii.39

1. The effectual stoppage of the Norwegian ore supplies to Germany ranks as a major offensive operation of war No other measure is open to us for many months to come which gives so good a chance of abridging the waste and destruction of the conflict, or of perhaps preventing the vast slaughters which will attend the grapple of the main armies

2. If the advantage is held to outweigh the obvious and serious objections, the whole process of stoppage must be enforced The ore from Luleå is already stopped by the winter ice, which must not be [allowed to be] broken by the Soviet ice-breaker, should the attempt be made The ore from Narvik must be stopped by laying successively a series of small minefields in Norwegian territorial waters at the two or three suitable points on the coast, which will force the ships carrying ore to Germany to quit territorial waters and come on to the high seas, where, if German, they will be taken as prize, or, if neutral, be subjected to our contraband control The ore from Oxelosund, the main ice-free port in the Baltic, must also be prevented from leaving by methods which will be neither diplomatic nor military All these three ports must be dealt with in various appropriate ways as soon as possible

3. Thus it is not a question of denying Germany a mere million tons between now and May, but of cutting off her whole winter supply, except the negligible amounts that can be got from Gavle, or other minor ice-free Baltic ports Germany would therefore undergo a severe deprivation, tending to crisis before the summer But when the ice melts in the Gulf of Bothnia the abundant supply from Luleå would again be open, and Germany is no doubt planning not only to get as much as she can during the winter, but to make up the whole 9½ million tons which she needs, or even more, between May 1 and December 15, 1940 After this she might hope to organise Russian supplies and be able to wage a very long war

4 It may well be that, should we reach the month of May with Germany starving for ore for her industries and her munitions, the prevention of the reopening of Luleå may become [for us] a principal naval objective The laying of a declared minefield, including magnetic mines, off Luleå by British submarines would be one way There are others If Germany can be cut from all Swedish ore supplies from now onwards till the end of 1940 a blow will have been struck at her war-making capacity equal to a first-class victory in the field or from

the air, and without any serious sacrifice of life. It might indeed be immediately decisive.

5. To every blow struck in war there is a counter. If you fire at the enemy he will fire back. It is most necessary therefore to face squarely the counter-measures which may be taken by Germany, or constrained by her from Norway or Sweden. As to Norway, there are three pairs of events which are linked together. First, the Germans, conducting war in a cruel and lawless manner, have violated the territorial waters of Norway, sinking without warning or succour a number of British and neutral vessels. To that our response is to lay the minefields mentioned above. It is suggested that Norway, by way of protest, may cancel the valuable agreement we have made with her for chartering her tankers and other shipping. But then she would lose the extremely profitable bargain she has made with us, and this shipping would become valueless to her in view of our contraband control. Her ships would be idle, and her owners impoverished. It would not be in Norwegian interests for her Government to take this step; and interest is a powerful factor. Thirdly, Norway could retaliate by refusing to export to us the aluminium and other war materials which are important to the Air Ministry and the Ministry of Supply. But here again her interests would suffer. Not only would she not receive the valuable gains which this trade brings her, but Great Britain, by denying her bauxite and other indispensable raw materials, could bring the whole industry of Norway, centring upon Oslo and Bergen, to a complete standstill. In short, Norway, by retaliating against us, would be involved in economic and industrial ruin.

6. Norwegian sympathies are on our side, and her future independence from German overlordship hangs upon the victory of the Allies. It is not reasonable to suppose that she will take either of the counter-measures mentioned above (although she may threaten them), unless she is compelled to do so by German brute force.

7. This will certainly be applied to her anyway, and whatever we do, if Germany thinks it her interest to dominate forcibly the Scandinavian peninsula. In that case the war would spread to Norway and Sweden, and with our command of the seas there is no reason why French and British troops should not meet German invaders on Scandinavian soil. At any rate, we can certainly take and hold whatever islands or suitable points on the Norwegian coast we choose. Our northern blockade of Germany would then become absolute. We could, for instance, occupy Narvik and Bergen, and keep them open for our own trade while closing them completely to Germany. It cannot be too strongly emphasised that British control of the Norwegian coast-line is a strategic objective of first-class importance.

It is not therefore seen how, even if retaliation by Germany were to run its full course, we should be worse off for the action now proposed. On the contrary, we have more to gain than lose by a German attack upon Norway or Sweden. This point is capable of more elaboration than is necessary here.

There is no reason why we should not manage to secure a large and long-continued supply of iron ore from Sweden through Narvik while at the same time diverting all supplies of ore from Germany. This must be our aim.

I concluded as follows:

8. The effect of our action against Norway upon world opinion and upon our own reputation must be considered. We have taken up arms in accordance with the principles of the Covenant of the League in order to aid the victims of German aggression. No technical infringement of international law, so long as it is unaccompanied by inhumanity of any kind, can deprive us of the good wishes of neutral countries. No evil effect will be produced upon the greatest of all neutrals, the United States. We have reason to believe that they will handle the matter in the way most calculated to help us. And they are very resourceful.

9. The final tribunal is our own conscience. We are fighting to re-establish the reign of law and to protect the liberties of small countries. Our defeat would mean an age of barbaric violence, and would be fatal not only to ourselves, but to the independent life of every small country in Europe. Acting in the name of the Covenant, and as virtual mandatories of the League and all it stands for, we have a right, and indeed are bound in duty, to abrogate for a space some of the conventions of the very laws we seek to consolidate and reaffirm. Small nations must not tie our hands when we are fighting for their rights and freedom. The letter of the law must not in supreme emergency obstruct those who are charged with its protection and enforcement. It would not be right or rational that the Aggressor Power should gain one set of advantages by tearing up all laws, and another set by sheltering behind the innate respect for law of its opponents. Humanity, rather than legality, must be our guide.

Of all this history must be the judge. We now face events.

* * * * *

My memorandum was considered by the Cabinet on December 22, and I pleaded the case to the best of my ability. I could not obtain any decision for action. Diplomatic protest might be made to Norway about the misuse of her territorial waters by

Germany, and the Chiefs of Staff were instructed to consider the military consequences of commitments on Scandinavian soil They were authorised to plan for landing a force at Narvik for the sake of Finland, and also a possible German occupation of Southern Norway. But no executive orders could be issued to the Admiralty In a paper which I circulated on December 24 I summarised the Intelligence reports which showed the possibilities of a Russian design upon Norway The Soviet were said to have three divisions concentrated at Murmansk preparing for a seaborne expedition "It may be," I concluded, "that this theatre will become the scene of early activities." This proved only too true; but from a different quarter.

CHAPTER XXXI

A DARK NEW YEAR

The Trance Continues – "Catherine": The Final Phase – Tension with Russia – Mussolini's Misgivings – Mr. Hore-Belisha Leaves the War Office – Impediments to Action – A Twilight Mood in the Factories – The Results in May – Capture of the German Plans Against Belgium – Work and Growth of the British Expeditionary Force – No Armoured Division – Deterioration of the French Army – Communist Intrigues – German Plans for the Invasion of Norway – The Supreme War Council of February 5 – My First Attendance – The "Altmark" Incident – Captain Philip Vian – Rescue of the British Prisoners – Mr. Chamberlain's Effective Defence – Hitler Appoints General von Falkenhorst to Command Against Norway – Norway Before France – German Air Attack on Our East Coast Shipping – Counter-measures – Satisfactory Results of the First Six Months' Sea War – Navy Estimates Speech, February 27, 1940.

THE END of the year 1939 left the war still in its sinister trance. An occasional cannon-shot or reconnoitring patrol alone broke the silence of the Western Front. The armies gaped at each other from behind their rising fortifications across an undisputed "No-man's-land".

There is a certain similarity [I wrote to Pound on Christmas Day] between the position now and at the end of the year 1914 The transition from peace to war has been accomplished. The outer seas, for the moment at any rate, are clear from enemy surface craft The lines in France are static. But in addition on the sea we have repelled the first U-boat attack, which previously did not begin till February 1915, and we can see our way through the magnetic mine novelty. Moreover, in France the lines run along the frontiers instead of six or seven of the French provinces and Belgium being in the enemy's hands Thus I feel we may compare the position now very favourably with

that of 1914 And also I have the feeling (which may be corrected at any moment) that the Kaiser's Germany was a much tougher customer than Nazi Germany.

This is the best I can do for a Christmas card in these hard times.

I was by now increasingly convinced that there could be no Operation "Catherine" in 1940. "The sending of a superior surface fleet into the Baltic," I wrote to Pound (January 6), "though eminently desirable, is not essential to the seizure and retention of the ironfields. While therefore every preparation to send the Fleet in should continue, and strong efforts should be made, it would be wrong to try it unless we can see our way to maintaining it under air attack, and still more wrong to make the seizure of the ironfields dependent upon the sending of a surface fleet. Let us advance with confidence and see how the naval side develops as events unfold."

And again a week later:

First Lord to First Sea Lord 15 1 40

1 I have carefully considered all the papers you have been good enough to send me in reply to my various minutes about "Catherine" I have come reluctantly but quite definitely to the conclusion that the operation we outlined in the autumn will not be practicable this year. We have not yet obtained sufficient mastery over U-boats, mines, and raiders to enable us to fit for their special duties the many smaller vessels required The problem of making our ships comparatively secure against air attack has not been solved The dive-bomber remains a formidable menace The Rockets [called for secrecy "the U P. weapon", *i e*, unrotated projectile], though progressing rapidly towards the production stage, will not be available in sufficient quantities, even if all goes well, for many months to come We have not been able so far to give the additional armour protection to our larger ships The political situation in the Baltic is as baffling as ever On the other hand, the arrival of the *Bismarck* in September adds greatly to the scale of the surface resistance to be encountered.

2. But the war may well be raging in 1941, and no one can tell what opportunities may present themselves then I wish therefore that all the preparations of various ships and auxiliaries outlined in your table and marked as "beneficial" should continue as opportunity offers, and that when ships come into the dockyards for repair or refit everything should be done to them which will not delay their return to service. And it would surely be only common prudence, in view

of the attitude of Russia, to go on warming our destroyers for service in winter seas I am glad to feel that we are agreed in this

* * * * *

So far no ally had espoused our cause. The United States was cooler than in any other period. I persevered in my correspondence with the President, but with little response. The Chancellor of the Exchequer groaned about our dwindling dollar resources. We had already signed a pact of mutual assistance with Turkey, and were considering what aid we could give her from our narrow margins. The stresses created by the Finnish war had worsened our relations, already bad, with the Soviets. Any action we might undertake to help the Finns might lead to war with Russia. The fundamental antagonisms between the Soviet Government and Nazi Germany did not prevent the Kremlin actively aiding by supplies and facilities the development of Hitler's power Communism in France and any that existed in Britain denounced the "Imperialist-Capitalist" war, and did what they could to hamper work in the munitions factories. They certainly exercised a depressing and subversive influence within the French Army, already wearied by inaction We continued to court Italy by civilities and favourable contracts, but we could feel no security, or progress towards friendship. Count Ciano was polite to our Ambassador. Mussolini stood aloof

The Italian Dictator was not however without his own misgivings. On January 3 he wrote a revealing letter to Hitler expressing his distaste for the German agreement with Russia:

> No one knows better than I, with forty years' political experience, that policy—particularly a revolutionary policy—has its tactical requirements I recognised the Soviets in 1924. In 1934 I signed with them a treaty of commerce and friendship I therefore understood that, *especially as Ribbentrop's forecast about the non-intervention of Britain and France has not come off*, you are obliged to avoid the Second Front. You have had to pay for this in that Russia has, without striking a blow, been the great profiteer in the war in Poland and the Baltic.
>
> But I who was born a revolutionary and have not modified my revolutionary mentality tell you that you cannot permanently sacrifice the principles of *your* revolution to the tactical requirements of a given moment. . . . I have also the definite duty to add that a further step in the relations with Moscow would have catastrophic repercussions in Italy, where the unanimity of anti-Bolshevist feeling is absolute,

granite-hard, and unbreakable Permit me to think that this will not happen The solution of your *Lebensraum* is in Russia, and nowhere else . . . The day when we shall have demolished Bolshevism we shall have kept faith with both our revolutions Then it will be the turn of the great democracies, who will not be able to survive the cancer which gnaws them. . . .

* * * * *

On January 6 I again visited France, to explain my two mechanical projects, Cultivator No 6 and the fluvial mine (Operation "Royal Marine")* to the French High Command. In the morning, before I left, the Prime Minister sent for me and told me he had decided to make a change at the War Office, and that Mr. Hore-Belisha would give place to Mr. Oliver Stanley. Late that night Mr. Hore-Belisha called me on the telephone at our Embassy in Paris and told me what I knew already. I pressed him, but without success, to take one of the other offices which were open to him. The Government was itself in low water at this time, and almost the whole Press of the country declared that a most energetic and live figure had been lost to the Government. He quitted the War Office amid a chorus of newspaper tributes Parliament does not take its opinion from the newspapers, indeed, it often reacts in the opposite sense When the House of Commons met a week later Mr. Hore-Belisha had few champions, and refrained from making any statement. I wrote to him as follows:

January 10, 1940

I much regret that our brief association as colleagues has ended In the last war I went through the same experience as you have suffered, and I know how bitter and painful it is to anyone with his heart in the job I was not consulted in the changes that were proposed I was only informed after they had been decided At the same time, I should fail in candour if I did not let you know that I thought it would have been better if you had gone to the Board of Trade or the Ministry of Information, and I am very sorry that you did not see your way to accept the first of these important offices

The outstanding achievement of your tenure of the War Office was the passage of conscription in time of peace. You may rest with confidence upon this, and I hope that it will not be long before we are colleagues again, and that this temporary set-back will prove no serious obstacle to your opportunities of serving the country.

* See Appendices O and Q

It was not possible for me to realise my hope until, after the break-up of the National Coalition, I formed the so-called "Caretaker Government" in May 1945 Belisha then became Minister of National Insurance. In the interval he had been one of our severe critics, but I was very glad to be able to bring so able a man back into the Administration

* * * * *

All January the Finns stood firm, and at the end of the month the growing Russian armies were still held in their positions. The Red Air Force continued to bomb Helsingfors and Viipuri, and the cry from the Finnish Government for aircraft and war materials grew louder As the Arctic nights shortened the Soviet air offensive would increase, not only upon the towns of Finland, but upon the communications of their armies. Only a trickle of war material and only a few thousand volunteers from the Scandinavian countries had reached Finland so far. A bureau for recruiting was opened in London in January, and several scores of British aircraft were sent to Finland, some direct by air. Nothing in fact of any use was done.

The delays about Narvik continued interminably. Although the Cabinet were prepared to contemplate pressure upon Norway and Sweden to allow aid to pass to Finland, they remained opposed to the much smaller operation of mining the Leads. The first was noble, the second merely tactical. Besides, everyone could see that Norway and Sweden would refuse facilities for aid, so nothing would come of the project anyway.

In my vexation after one of our Cabinets I wrote to a colleague:

January 15, 1940

My disquiet was due mainly to the awful difficulties which our machinery of war-conduct presents to positive action I see such immense walls of prevention, all built and building, that I wonder whether any plan will have a chance of climbing over them Just look at the arguments which have had to be surmounted in the seven weeks we have discussed this Narvik operation First, the objections of the Economic Departments, Supply, Board of Trade, etc Secondly, the Joint Planning Committee Thirdly, the Chiefs of Staff Committee Fourthly, the insidious argument, "Don't spoil the big plan for the sake of the small," when there is really very little chance of the big plan being resolutely attempted Fifthly, the juridical and moral objections, all gradually worn down Sixthly, the attitude of neutrals,

and above all the United States. But see how well the United States have responded to our *démarche*! Seventhly, the Cabinet itself, with its many angles of criticism. Eighthly, when all this has been smoothed out, the French have to be consulted. Finally, the Dominions and their consciences have to be squared, they not having gone through the process by which opinion has advanced at home. All this makes me feel that under the present arrangements we shall be reduced to waiting upon the terrible attacks of the enemy, against which it is impossible to prepare in every quarter simultaneously without fatal dissipation of strength.

I have two or three projects moving forward, but all, I fear, will succumb before the tremendous array of negative arguments and forces. Pardon me, therefore, if I showed distress. One thing is absolutely certain, namely, that victory will never be found by taking the line of least resistance.

However, all this Narvik story is for the moment put on one side by the threat to the Low Countries. If this materialises the position will have to be studied in the light of entirely new events. Should a great battle engage in the Low Countries the effects upon Norway and Sweden may well be decisive. Even if the battle ends only in a stalemate they may feel far more free, and to us a diversion may become even more needful.

* * * * *

There were other causes for uneasiness. Progress in converting our industries to war production was not up to the pace required. In a speech at Manchester on January 27 I urged the immense importance of expanding our labour supply and of bringing great numbers of women into industry to replace the men taken for the armed forces and to augment our strength. I continued:

We have to make a huge expansion, especially of those capable of performing skilled or semi-skilled operations. Here we must specially count for aid and guidance upon our Labour colleagues and trade union leaders. I can speak with some knowledge about this, having presided over the former Ministry of Munitions in its culminating phase. Millions of new workers will be needed, and more than a million women must come boldly forward into our war industries—into the shell plants, the munitions works, and into the aircraft factories. Without this expansion of labour and without allowing the women of Britain to enter the struggle as they desire to do, we should fail utterly to bear our fair share of the burden which France and Britain have jointly assumed.

Little was however done, and the sense of extreme emergency seemed lacking. There was a "twilight" mood in the ranks of Labour and of those who directed production as well as in the military operations. It was not till the beginning of May that a survey of employment in the engineering, motor, and aircraft group of industries which was presented to the Cabinet revealed the facts in an indisputable form. This paper was searchingly examined by my statistical department under Professor Lindemann. In spite of the distractions and excitements of the Norwegian hurly-burly then in progress, I found time to address the following note to my colleagues:

NOTE BY THE FIRST LORD OF THE ADMIRALTY

May 4, 1940

This report suggests that in this fundamental group, at any rate, we have hardly begun to organise man-power for the production of munitions.

In [previous papers] it was estimated that a very large expansion, amounting to 71.5 per cent. of the number engaged in the metal industry, would be needed in the first year of war. Actually the engineering, motor, and aircraft group, which covers three-fifths of the metal industry and which is discussed in this survey, has only expanded by 11.1 per cent. (122,000) between June 1939 and April 1940. This is less than one-sixth of the expansion stated to be required. Without any Government intervention, by the mere improvement of trade, the number increased as quickly as this in the year 1936–37.

Although 350,000 boys leave school each year, there is an increase of only 25,000 in the number of males under 21 employed in this group. Moreover, the proportion of women and young persons has only increased from 26.6 per cent. to 27.6 per cent. In the engineering, motor, and aircraft group we now have only one woman for every twelve men. During the last war the ratio of women to men in the metal industries increased from one woman for every ten men to one woman for every three men. In the first year of the last war, July 1914 to July 1915, the new workers drafted into the metal industries amounted to 20 per cent. of those already there. In the group under survey, which may fairly be taken as typical of the whole metal industry, only 11 per cent. have been added in the last ten months.

Admiralty establishments, in which employment has been increased by nearly 27 per cent., have not been considered here, as no figures of the different types of labour are given.

* * * * *

On January 10 anxieties about the Western Front received confirmation. A German staff major of the 7th Air Division had been ordered to take some documents to headquarters in Cologne. He missed his train and decided to fly. His machine overshot the mark and made a forced landing in Belgium, where Belgian troops arrested him and impounded his papers, which he tried desperately to destroy. These contained the entire and actual scheme for the invasion of Belgium, Holland, and France on which Hitler had resolved. Shortly the German major was released to explain matters to his superiors. I was told about all this at the time, and it seemed to me incredible that the Belgians would not make a plan to invite us in. But they did nothing about it. It was argued in all three countries concerned that probably it was a plant. But this could not be true. There could be no sense in the Germans trying to make the Belgians believe that they were going to attack them in the near future. This might make them do the very last thing the Germans wanted, namely, make a plan with the French and British Armies to come forward privily and quickly one fine night. I therefore believed in the impending attack.

On January 13 Admiral Keyes telephoned to me that the King of the Belgians might be able to persuade his Ministers to invite French and British troops into Belgium "at once" if we would agree to give certain far-reaching guarantees. "At once" was taken by us to mean immediately and not "as soon as Germany invades". The War Cabinet decided to reply that we could give no guarantees other than those implicit in a military alliance, and that the invitation to enter Belgium must be given soon enough to enable the Allied troops to forestall a German invasion, which the Belgian Government apparently thought was imminent. Admiral Keyes telegraphed on January 15 that the King thought this reply would have a very bad effect if he communicated it to his Government, that if Allied troops entered "at once" Belgium and Holland would be immediately involved in war, and that it would be better that the onus of breaking Belgian neutrality should rest on Germany. A similar reply was given by the Belgian Government to M. Daladier, and the French Ambassador in London also told us that the Belgian Government thought that if Germany were left to commit an act of aggression Anglo-French help would "acquire a moral character" which "would increase the chance of success".

Thus the Belgian King and his Army staff merely waited, hoping that all would turn out well In spite of the German major's papers no further action of any kind was taken by the Allies or the threatened States. Hitler, on the other hand, as we know, summoned Goering to his presence, and on being told that the captured papers were in fact the complete plans for invasion, ordered, after venting his anger, new variants to be prepared.

It was thus clear at the beginning of 1940 that Hitler had a detailed plan involving both Belgium and Holland for the invasion of France. Should this begin at any moment, General Gamelin's Plan D would be put in operation, including the movement of the Seventh French Army and the British Army. Plan D had been worked out in exact detail, and required only one single word to set it in motion. This course, though deprecated at the outset of the war by the British Chiefs of Staff, had been definitely and formally confirmed in Paris on November 17, 1939. On this basis the Allies awaited the impending shock, and Hitler the campaigning season, for which the weather might well be favourable from April onwards

During the winter and spring the B.E.F. were extremely busy setting themselves to rights, fortifying their line and preparing for war, whether offensive or defensive. From the highest rank to the lowest all were hard at it, and the good showing that they eventually made was due largely to the full use made of the opportunities provided during the winter. The British was a a far better army at the end of the "Twilight War". It was also larger. The 42nd and 44th Divisions arrived in France in March, and went on to the frontier line in the latter half of April 1940. In that month there also arrived the 12th, 23rd, and 46th Divisions. These were sent to complete their training in France and to augment the labour force for all the work in hand. They were short even of the ordinary unit weapons and equipment, and had no artillery. Nevertheless they were inevitably drawn into the fighting when it began, and acquitted themselves well

The awful gap, reflecting on our pre-war arrangements, was *the absence of even one armoured division in the British Expeditionary Force* Britain, the cradle of the tank in all its variants, had between the wars so far neglected the development of this weapon, soon to dominate the battlefields, that eight months after the declaration of war our small but good Army had only with it,

when the hour of trial arrived, the 1st Army Tank Brigade, comprising 17 light tanks and 100 "Infantry" tanks Only 23 of the latter carried even the 2-pdr gun, the rest machine-guns only. There were also seven cavalry and Yeomanry regiments equipped with carriers and light tanks which were in process of being formed into two light armoured brigades Apart from the lack of armour, the progress in the efficiency of the B E.F. was marked

* * * * *

Developments on the French front were less satisfactory. In a great national conscript force the mood of the people is closely reflected in its army, the more so when that army is quartered in the homeland and contacts are close It cannot be said that France in 1939–40 viewed the war with uprising spirit, or even with much confidence The restless internal politics of the past decade had bred disunity and discontents Important elements, in reaction to growing Communism, had swung towards Fascism, lending a ready ear to Goebbels' skilful propaganda and passing it on in gossip and rumour So also in the Army the disintegrating influences of both Communism and Fascism were at work, the long winter months of waiting gave time and opportunity for the poisons to be established

Very many factors go to the building up of sound morale in an army, but one of the greatest is that the men be fully employed at useful and interesting work. Idleness is a dangerous breeding-ground Throughout the winter there were many tasks that needed doing training demanded continuous attention, defences were far from satisfactory or complete—even the Maginot Line lacked many supplementary field works, physical fitness demands exercise Yet visitors to the French front were often struck by the prevailing atmosphere of calm aloofness, by the seeemingly poor quality of the work in hand, by the lack of visible activity of any kind The emptiness of the roads behind the line was in great contrast to the continual coming and going which extended for miles behind the British sector

There can be no doubt that the quality of the French Army was allowed to deteriorate during the winter, and that it would have fought better in the autumn than in the spring Soon it was to be stunned by the swiftness and violence of the German assault. It was not until the last phases of that brief campaign that the true

fighting qualities of the French soldier rose uppermost in defence of his country against the age-long enemy. But then it was too late.

* * * * *

Meanwhile the German plans for a direct assault on Norway and a lightning occupation of Denmark also were advancing General Keitel drew up a memorandum on this subject on January 27, 1940.

> The Fuehrer and Supreme Commander of the Armed Forces wishes that Study N should be further worked on under my direct and personal guidance, and in the closest conjunction with the general war policy For these reasons the Fuehrer has commissioned me to take over the direction of further preparations.

The detailed planning for this operation proceeded through the normal channels.

* * * * *

In early February, when the Prime Minister was going to the Supreme War Council in Paris, he invited me for the first time to go with him I suggested that we should go by sea, which I could arrange; so we all sailed from Dover in a destroyer, and reached Paris in time for a meeting in the evening. On the way over Mr. Chamberlain showed me the reply he had given to the peace suggestions which Mr. Sumner Welles had gathered This struck me favourably, and when I had read it in his presence I said to him "I am proud to serve in your Government." He seemed pleased at this.

The main subject of discussion on February 5 was "Aid to Finland", and plans were approved to prepare three or four divisions and persuade Norway and Sweden to let us send supplies and reinforcements to the Finns, and incidentally to get control of the Gallivare ore-field As might be expected, the Swedes did not agree to this, and, though extensive preparations were made, the whole project fell to the ground Mr Chamberlain conducted the proceedings himself on our behalf, and only minor interventions were made by the various British Ministers attending. I am not recorded as having said a word.

The next day, when we came to re-cross the Channel, an amusing incident occurred. We sighted a floating mine. So I

said to the captain, "Let's blow it up by gunfire." It burst with a good bang, and a large piece of wreckage sailed over towards us and seemed for an instant as if it were going to settle on the bridge, where all the politicians and some of the other swells were clustered. However, it landed on the forecastle, which was happily bare, and no one was hurt. Thus everything passed off pleasantly. From this time onwards I was invited by the Prime Minister to accompany him, with others, to the meetings of the Supreme War Council But I could not provide an equal entertainment each time.

* * * * *

The Council decided that it was of the first importance that Finland should be saved, that she could not hold out after the spring without reinforcements of thirty to forty thousand trained men, that the present stream of heterogeneous volunteers was not sufficient, and that the destruction of Finland would be a major defeat for the Allies It was therefore necessary to send Allied troops either through Petsamo or through Narvik and/or other Norwegian ports The operation through Narvik was preferred, as it would enable the Allies to "kill two birds with one stone" (*i.e.*, help Finland and cut off the iron ore) Two British divisions due to start for France in February should be retained in England and prepared for fighting in Norway Meanwhile every effort should be made to procure the assent and if possible the co-operation of the Norwegians and Swedes The issue of what to do if Norway and Sweden refused, as seemed probable, was never faced

A vivid episode now sharpened everything in Scandinavia The reader will remember my concern that the *Altmark*, the auxiliary of the *Spee*, should be captured This vessel was also a floating prison for the crews of our sunk merchant-ships. British captives released by Captain Langsdorff according to international law in Montevideo harbour told us that nearly three hundred British merchant seamen were on board the *Altmark*. This vessel hid in the South Atlantic for nearly two months, and then, hoping that the search had died down, her captain made a bid to return to Germany. Luck and the weather favoured her, and not until February 14, after passing between Iceland and the Faroes, was she sighted by our aircraft in Norwegian territorial waters.

First Lord to First Sea Lord 16.2.40

On the position as reported to me this morning, it would seem that the cruiser and destroyers should sweep northward during the day up the coast of Norway, not hesitating to arrest *Altmark* in territorial waters should she be found. This ship is violating neutrality in carrying British prisoners of war to Germany. Surely another cruiser or two should be sent to rummage the Skagerrak to-night? The *Altmark* must be regarded as an invaluable trophy.

In the words of an Admiralty communiqué, "certain of His Majesty's ships which were conveniently disposed were set in motion". A destroyer flotilla, under the command of Captain Philip Vian, of H.M.S. *Cossack*, intercepted the *Altmark*, but did not immediately molest her. She took refuge in Josing Fiord, a narrow inlet about a mile and a half long surrounded by high snow-clad cliffs. Two British destroyers were told to board her for examination. At the entrance to the fiord they were met by two Norwegian gunboats, who informed them that the ship was unarmed, had been examined the previous day, and had received permission to proceed to Germany, making use of Norwegian territorial waters. Our destroyers thereupon withdrew.

When this information reached the Admiralty I intervened, and, with the concurrence of the Foreign Secretary, ordered our ships to enter the fiord. I did not often act so directly; but I now sent Captain Vian the following order:

February 16, 1940, 5.25 p.m.

Unless Norwegian torpedo-boat undertakes to convoy *Altmark* to Bergen with a joint Anglo-Norwegian guard on board, and a joint escort, you should board *Altmark*, liberate the prisoners, and take possession of the ship pending further instructions. If Norwegian torpedo-boat interferes, you should warn her to stand off. If she fires upon you, you should not reply unless attack is serious, in which case you should defend yourself, using no more force than is necessary, and ceasing fire when she desists.

Vian did the rest. That night in the *Cossack* with searchlights burning he entered the fiord through the icefloes. He first went on board the Norwegian gunboat *Kjell* and requested that the *Altmark* should be taken to Bergen under a joint escort, for inquiry according to international law. The Norwegian captain repeated his assurance that the *Altmark* had been twice searched, that she

was unarmed, and that no British prisoners had been found. Vian then stated that he was going to board her, and invited the Norwegian officer to join him. This offer was eventually declined.

Meanwhile the *Altmark* got under way, and in trying to ram the *Cossack* ran herself aground. The *Cossack* forced her way alongside and a boarding party sprang across, after grappling the two ships together. A sharp hand-to-hand fight followed, in which four Germans were killed and five wounded, part of the crew fled ashore and the rest surrendered. The search began for the British prisoners. They were soon found in their hundreds, battened down, locked in storerooms, and even in an empty oil-tank. Then came the cry, "The Navy's here!" The doors were broken in and the captives rushed on deck. Altogether 299 prisoners were released and transferred to our destroyers. It was also found that the *Altmark* carried two pom-poms and four machine-guns, and that, despite having been boarded twice by the Norwegians, she had not been searched. The Norwegian gunboats remained passive observers throughout. By midnight Vian was clear of the fiord, and making for the Forth.

Admiral Pound and I sat up together in some anxiety in the Admiralty War Room. I had put a good screw on the Foreign Office, and was fully aware of the technical gravity of the measures taken. To judge them fairly it must be remembered that up to that date Germany had sunk 218,000 tons of Scandinavian shipping, with a loss of 555 Scandinavian lives. But what mattered at home and in the Cabinet was whether British prisoners were found on board or not. We were delighted when at three o'clock in the morning news came that three hundred had been found and rescued. This was a dominating fact.

On the assumption that the prisoners were in a pitiable condition from starvation and confinement, we directed ambulances, doctors, the Press, and photographers to the port of Leith to receive them. As however it appeared that they were in good health, had been well looked after on the destroyers, and came ashore in a hearty condition, no publicity was given to this aspect. Their rescue and Captain Vian's conduct aroused a wave of enthusiasm in Britain almost equal to that which followed the sinking of the *Graf Spee*. Both these events strengthened my hand and the prestige of the Admiralty. "The Navy's here!" was passed from lip to lip.

Every allowance must be made for the behaviour of the Norwegian Government, which was of course quivering under the German terror and exploiting our forbearance. They protested vehemently against the entry of their territorial waters Mr. Chamberlain's speech in the House of Commons contained the essence of the British reply

According to the views expressed by Professor Koht [the Norwegian Foreign Minister], the Norwegian Government see no objection to the use of Norwegian territorial waters for hundreds of miles by a German warship for the purpose of escaping capture on the high seas and of conveying British prisoners to a German prison camp Such a doctrine is at variance with international law as His Majesty's Government understand it It would in their view legalise the abuse by German warships of neutral waters and create a position which His Majesty's Government could in no circumstances accept.

*   *   *   *   *

Hitler's decision to invade Norway had, as we have seen, been taken on December 14, and the staff work was proceeding under Keitel The incident of the *Altmark* no doubt gave a spur to action. At Keitel's suggestion, on February 20 Hitler summoned urgently to Berlin General von Falkenhorst, who was at that time in command of an Army Corps at Coblenz. Falkenhorst had taken part in the German campaign in Finland in 1918, and upon this subject the interview with the Fuehrer opened The General described the conversation at the Nuremberg trials

Hitler reminded me of my experience in Finland, and said to me, "Sit down and tell me what you did" After a moment the Fuehrer interrupted me He led me to a table covered with maps "I have a similar thing in mind," he said "the occupation of Norway, because I am informed that the English intend to land there, and I want to be there before them"

Then, marching up and down, he expounded to me his reasons "The occupation of Norway by the British would be a strategic turning movement which would lead them into the Baltic, where we have neither troops nor coastal fortifications The success which we have gained in the East and which we are going to win in the West would be annihilated, because the enemy would find himself in a position to advance on Berlin and to break the backbone of our two fronts. In the second and third place, the conquest of Norway will ensure the

liberty of movement of our Fleet in the Bay of Wilhelmshaven, and will protect our imports of Swedish ore." Finally he said to me, "I appoint you to the command of the expedition."

That afternoon Falkenhorst was summoned again to the Chancellery to discuss with Hitler, Keitel, and Jodl the detailed operational plans for the Norwegian expedition. The question of priorities was of supreme importance. Would Hitler commit himself in Norway before or after the execution of "Case Yellow" —the attack on France? On March 1 he made his decision: Norway was to come first. The entry in Jodl's diary for March 3 reads: "The Fuehrer decides to carry out 'Weser Exercise' before 'Case Yellow', with a few days' interval."

* * * * *

A vexatious air attack had recently begun on our shipping all along the East Coast. Besides ocean-going vessels destined for the large ports there were on any given day about 320 ships of between 500 and 2,000 tons either at sea or in harbour on the coast, many engaged in coal transport to London and the south. Only a few of these small vessels had yet been provided with an anti-aircraft gun, and the enemy aircraft therefore concentrated upon this easy prey. They even attacked the lightships. These faithful servants of the seamen, moored in exposed positions near the shoals along our coasts, were of use to all, even the marauding U-boat itself, and had never been touched in any previous war. Several were now sunk or damaged, the worst case being off the Humber, where a fierce machine-gun attack killed eight out of the lightship's crew of nine.

As a defence against air attack the convoy system proved as effective as it had against the U-boats, but everything was now done to find some kind of weapon for each ship. In our dearth of ack-ack guns all sorts of contrivances were used. Even a life-saving rocket brought down an air bandit. The spare machine-guns from the Home Fleet were distributed to British and Allied merchant ships on the East Coast with naval gunners. These men and their weapons were shifted from ship to ship for each voyage through the danger zone. By the end of February the Army was able to help, and thus began an organisation later known as the Maritime Royal Artillery. At the height of the war in 1944 more than 38,000 officers and men from the regular forces were

employed in this task, of which 14,000 were found by the Army. Over considerable sections of the East Coast convoy route air fighter protection from the nearest airfields could soon be given on call. Thus the efforts of all three Services were combined. An increasing toll was taken of the raiders. Shooting up ordinary defenceless shipping of all countries turned out to be more costly than had been expected, and the attacks diminished.

Not all the horizon was dark. In the outer seas there had been no further signs of raider activity since the destruction of the *Graf Spee* in December, and the work of sweeping German shipping from the seas continued. During February six German ships left Spain in an attempt to reach Germany. Only one succeeded, of the remainder three were captured, one scuttled herself, and one was wrecked in Norway. Seven other German ships attempting to run the blockade were intercepted by our patrols during February and March. All except one of these were scuttled by their captains. Altogether by the beginning of April 1940 seventy-one ships, of 340,000 tons, had been lost to the Germans by capture or scuttling, while 215 German ships still remained cooped in neutral ports. Finding our merchant ships armed, the U-boats had abandoned the gun for the torpedo. Their next descent had been from the torpedo to the lowest form of warfare—the undeclared mine. We have seen how the magnetic mine attack had been met and mastered. Nevertheless more than half our losses in January were from this cause, and more than two-thirds of the total fell on neutrals.

On the Navy Estimates at the end of February I reviewed the salient features of the war at sea. The Germans, I surmised, had lost half the U-boats with which they had entered the war. Contrary to expectation, few new ones had yet made their appearance. Actually, as we now know, sixteen U-boats had been sunk and nine added up to the end of February. The enemy's main effort had not yet developed. Our programme of small-ship building, both in the form of escort vessels and in replacement of merchant ships, was very large. The Admiralty had taken over control of merchant ship-building, and Sir James Lithgow, the Glasgow ship-builder, had joined the Board for this purpose. In the first six months of this new war, after making allowance for gains through new construction and transfers from foreign flags, our net loss had been less than 200,000 tons, compared with

450,000 tons in the single deadly month of April 1917.* Meanwhile we had continued to capture more cargoes in tonnage destined for the enemy than we had lost ourselves

Each month [I said in ending my speech] there has been a steady improvement in imports In January the Navy carried safely into British harbours, despite U-boats and mines and the winter gales and fog, considerably more than four-fifths of the peace-time average for the three preceding years When we consider the great number of British ships which have been withdrawn for naval service or for the transport of our armies across the Channel or of troop convoys across the globe, there is nothing in these results, to put it mildly, which should cause despondency or alarm.

* See Appendix P.

CHAPTER XXXII

BEFORE THE STORM

March 1940

The Fleet Returns to Scapa Flow – Our Voyage through the Minches – "Mines Reported in the Fairway" – An Air Alarm – Improvements at Scapa – Hitler's Plans as Now Known – Desperate Plight of Finland – M Daladier's Vain Efforts – The Russo-Finnish Armistice Terms – New Dangers in Scandinavia – Operation "Royal Marine" – The Fluvial Mines Ready – M Daladier's Opposition – The Fall of the Daladier Government – My Letter to the New Premier, M Reynaud – Meeting of Supreme War Council, March 28 – Mr Chamberlain's Survey – Decision to Mine the Norwegian Leads at Last – Seven Months' Delay – Various Offensive Proposals and Devices – Mr Chamberlain's Speech of April 5, 1940 – Signs of Impending German Action

MARCH 12 was the long-desired date for the reoccupation and use of Scapa as the main base of the Home Fleet I thought I would give myself the treat of being present on this occasion in our naval affairs, and embarked accordingly in Admiral Forbes' flagship at the Clyde

The fleet comprised five capital ships, a cruiser squadron, and perhaps a score of destroyers The twenty-hour voyage lay through the Minches We were to pass the Northern Straits at dawn and reach Scapa about noon The *Hood* and other ships from Rosyth, moving up the East Coast, would be there some hours before us The navigation of the Minches is intricate, and the northern exit barely a mile wide On every side are rocky shores and reefs, and three U-boats were reported in these enclosed waters. We had to proceed at high speed and by zigzag All the usual peace-time lights were out This was therefore a task

in navigation which the Navy keenly appreciated However, just as we were about to start after luncheon the Master of the Fleet, navigating officer of the flagship, on whom the prime direct responsibility lay, was suddenly stricken by influenza. So a very young-looking lieutenant who was his assistant came up on to the bridge to take charge of the movement of the fleet. I was struck by this officer, who without any notice had to undertake so serious a task, requiring such perfect science, accuracy, and judgment. His composure did not entirely conceal his satisfaction

I had many things to discuss with the Commander-in-Chief, and it was not until after midnight that I went up on to the bridge. All was velvet black. The air was clear, but no stars were to be seen, and there was no moon. The great ship ploughed along at about 16 knots One could just see astern the dark mass of the following battleship Here were nearly thirty vessels steaming in company and moving in order with no lights of any kind except their tiny stern-lights, and constantly changing course in accordance with the prescribed anti-U-boat ritual It was five hours since they had had any observation of the land or the heavens Presently the Admiral joined me, and I said to him, "Here is one of the things I should be very sorry to be made responsible for carrying out How are you going to make sure you will hit the narrow exit from the Minches at daylight?" "What would you do, sir," he said, "if you were at this moment the only person who could give an order?" I replied at once, "I should anchor and wait till morning. 'Anchor, Hardy,' as Nelson said." But the Admiral answered, "We have nearly a hundred fathoms of water beneath us now." I had of course complete confidence, gained over many years, in the Navy, and I only tell this tale to bring home to the general reader the marvellous skill and precision with which what seem to landsmen to be impossible feats of this kind are performed as a matter of course when necessary.

It was eight o'clock before I woke, and we were in the broad waters north of the Minches, steering round the western extremity of Scotland towards Scapa Flow We were perhaps half an hour's steaming from the entrance to Scapa when a signal reached us saying that several German aircraft had dropped mines in the main entrance we were about to use Admiral Forbes thereupon decided that he must stand out to the westward for twenty-four hours until the channel had been reported clear, and on this the

whole fleet began to change its course "I can easily put you ashore in a destroyer if you care to tranship," he said. "The *Hood* is already in harbour and can look after you." As I had snatched these three days from London with difficulty, I accepted this offer Our baggage was rapidly brought on deck, the flagship reduced her speed to three or four knots, and a cutter manned by twelve men in their lifebelts was lowered from the davits My small party was already in it, and I was taking leave of the Admiral, when an air-raid alarm sounded, and the whole ship flashed into activity as all the ack-ack batteries were manned and other measures taken

I was worried that the ship should have had to slow down in waters where we knew there were U-boats, but the Admiral said it was quite all right, and pointed to five destroyers which were circling round her at high speed, while a sixth waited for us We were a quarter of an hour rowing across the mile that separated us from our destroyer. It was like in the olden times, except that the sailors had not so much practice with the oars The flagship had already regained her speed and was steaming off after the rest of the fleet before we climbed on board All the officers were at their action stations on the destroyer, and we were welcomed by the surgeon, who took us into the wardroom, where all the instruments of his profession were laid out on the table ready for accidents. But no air raid occurred, and we immediately proceeded at high speed into Scapa We entered through Switha Sound, which is a small and subsidiary channel and was not affected by the mine-dropping. "This is the tradesmen's entrance," said Thompson, my Flag Commander It was in fact the one assigned to the storeships "It's the only one," said the destroyer lieutenant stiffly, "that the flotillas are allowed to use" To make everything go well I asked him if he could remember Kipling's poem about

> "Mines reported in the fairway,
> Warn all traffic and detain
> 'Sent up . ."

and here I let him carry on, which he did correctly:

> "*Unity, Claribel, Assyrian, Stormcock*, and *Golden Gain*"*

* Quoted from "Mine Sweepers", from *Sea Warfare*, by permission of Mrs Bambridge and Messrs Macmillan & Co, Ltd

We soon found our way to the *Hood*, where Admiral Whitworth received us, having gathered most of his captains, and I passed a pleasant night on board before the long round of inspections which filled the next day. This was the last time I set foot upon the *Hood*, although she had nearly two years of war service to perform before her destruction by the *Bismarck* in 1941.

More than six months of constant exertion and the highest priorities had repaired the peace-time neglect at Scapa. The three main entrances were defended with booms and mines, and three additional blockships, among others, had already been placed in Kirk Sound, through which Prien's U-boat had slipped to destroy the *Royal Oak*. Many more blockships were yet to come. A large garrison guarded the base and the still-growing batteries. We had planned for over 120 ack-ack guns, with numerous searchlights and a balloon barrage, to command the air over the fleet anchorage. Not all these measures were yet complete, but the air defences were already formidable. Many small craft patrolled the approaches in ceaseless activity, and two or three squadrons of Hurricane fighters from the airfields in Caithness could be guided to an assailant in darkness or daylight by one of the finest Radar installations then in existence. At last the Home Fleet had a home. It was the famous home from which in the previous war the Royal Navy had ruled the seas.

* * * * *

Although, as we now know, May 10 was already chosen for the invasion of France and the Low Countries, Hitler had not yet fixed the actual date of the prior Norway onslaught. Much was to precede it. On March 14 Jodl wrote in his diary:

> The English keep vigil in the North Sea with fifteen to sixteen submarines, doubtful whether reason to safeguard own operations or prevent operations by Germans. Fuehrer has not yet decided what reason to give for Weser Exercise.

There was a hum of activity in the planning sections of the German war machine. Preparations both for the attack on Norway and the invasion of France continued simultaneously and efficiently. On March 20 Falkenhorst reported that his side of the "Weser" operation plan was ready. The Fuehrer held a Military Conference on the afternoon of March 16, and D-Day was pro-

visionally fixed, apparently for April 9. Admiral Raeder reported to the conference·

. . In my opinion the danger of a British landing in Norway is no longer acute at present . The question of what the British will do in the North in the near future can be answered as follows· They will make further attempts to disrupt German trade in neutral waters and to cause incidents in order perhaps to create a pretext for action against Norway One object has been and still is to cut off Germany's imports from Narvik. These will be cut off at least for a time however, even if the Weser operation is carried out

Sooner or later Germany will be faced with the necessity of carrying out the Weser operation. Therefore it is advisable to do so as soon as possible, by April 15 at the latest, since after that date the nights are too short, there will be a new moon on April 7 The operational possibilities of the Navy will be restricted too much if the Weser operation is postponed any longer The submarines can remain in position only for two to three weeks more Weather of the type favourable for operation "Gelb" [Yellow] is not to be waited for in the case of the Weser operation, overcast, foggy weather is more satisfactory for the latter The general state of preparedness of the naval forces and ships is at present good.

* * * * *

From the beginning of the year the Soviets had brought their main power to bear on the Finns They redoubled their efforts to pierce the Mannerheim Line before the melting of the snows Alas, this year the spring and its thaw, on which the hard-pressed Finns based their hopes, came nearly six weeks late. The great Soviet offensive on the isthmus, which was to last forty-two days, opened on February 1, combined with heavy air bombing of base depots and railway junctions behind the lines Ten days of heavy bombardment from Soviet guns, massed wheel to wheel, heralded the main infantry attack After a fortnight's fighting the line was breached. The air attacks on the key fort and base of Viipuri increased in intensity By the end of the month the Mannerheim defence system had been disorganised and the Russians were able to concentrate against the Gulf of Viipuri The Finns were short of ammunition and their troops exhausted.

The honourable correctitude which had deprived us of any strategic initiative equally hampered all effective measures for sending munitions to Finland. We had been able so far only to send from our own scanty store contributions insignificant to the

Finns. In France however a warmer and deeper sentiment prevailed, and this was strongly fostered by M. Daladier. On March 2, without consulting the British Government, he agreed to send fifty thousand volunteers and a hundred bombers to Finland. We could certainly not act on this scale, and in view of the documents found on the German major in Belgium, and of the ceaseless Intelligence reports of the steady massing of German troops on the Western Front, it went far beyond what prudence would allow However, it was agreed to send fifty British bombers. On March 12 the Cabinet again decided to revive the plans for military landings at Narvik and Trondheim, to be followed at Stavanger and Bergen, as a part of the extended help to Finland into which we had been drawn by the French. These plans were to be available for action on March 20, although the need of Norwegian and Swedish permission had not been met. Meanwhile on March 7 Mr Paasikivi had gone again to Moscow, this time to discuss armistice terms On the 12th the Russian terms were accepted by the Finns. All our plans for military landings were again shelved, and the forces which were being collected were to some extent dispersed. The two divisions which had been held back in England were now allowed to proceed to France, and our striking power towards Norway was reduced to eleven battalions

* * * * *

Meanwhile Operation "Royal Marine" had ripened Five months of intensive effort with Admiralty priorities behind it had brought its punctual fruition Admiral FitzGerald and his trained detachments of British naval officers and marines, each man aflame with the idea of a novel stroke in the war, were established on the upper reaches of the Rhine, ready to strike when permission could be obtained. My detailed explanation of the plan will be found in Appendix Q In March all preparations were perfected, and I at length appealed both to my colleagues and to the French The War Cabinet were very ready to let me begin this carefully-prepared offensive plan, and left it to me, with Foreign Office support, to do what I could with the French In all their wars and troubles in my lifetime I have been bound up with the French, and I believed that they would do as much for me as for any other foreigner alive. But in this phase of the Twilight War I could not move them When I pressed very hard they

used a method of refusal which I never met before or since. M. Daladier told me with an air of exceptional formality that "The President of the Republic himself had intervened, and that no aggressive action must be taken which might only draw reprisals upon France." This idea of not irritating the enemy did not commend itself to me. Hitler had done his best to strangle our commerce by the indiscriminate mining of our harbours. We had beaten him by defensive means alone. Good, decent, civilised people, it appeared, must never themselves strike till after they have been struck dead. In these days the fearful German volcano and all its subterranean fires drew near to their explosion-point. There were still months of pretended war. On the one side endless discussions about trivial points, no decisions taken, or if taken rescinded, and the rule "Don't be unkind to the enemy, you will only make him angry." On the other, doom preparing—a vast machine grinding forward ready to break upon us!

* * * * *

The military collapse of Finland led to further repercussions On March 18 Hitler met Mussolini at the Brenner Pass Hitler deliberately gave the impression to his Italian host that there was no question of Germany launching a land offensive in the West. On the 19th Mr Chamberlain spoke in the House of Commons. In view of growing criticism he reviewed in some detail the story of British aid to Finland He rightly emphasised that our main consideration had been the desire to respect the neutrality of Norway and Sweden, and he also defended the Government for not being hustled into attempts to succour the Finns, which had offered little chance of success The defeat of Finland was fatal to the Daladier Government, whose chief had taken such marked, if tardy, action, and who had personally given disproportionate prominence to this part of our anxieties On March 21 a new Cabinet was formed, under M Reynaud, pledged to an increasingly vigorous conduct of the war

My relations with M Reynaud stood on a different footing from any I had established with M Daladier Reynaud, Mandel, and I had felt the same emotions about Munich. Daladier had been on the other side I therefore welcomed the change in the French Government, and I also hoped that my fluvial mines would now have a better chance of acceptance.

Mr Churchill to M Reynaud *March* 22, 1940

I cannot tell you how glad I am that all has been accomplished so successfully and speedily, and especially that Daladier has been rallied to your Cabinet. This is much admired over here, and also Blum's self-effacing behaviour.

I rejoice that you are at the helm, and that Mandel is with you, and I look forward to the very closest and most active co-operation between our two Governments. I share, as you know, all the anxieties you expressed to me the other night about the general course of the war, and the need for strenuous and drastic measures; but I little thought when we spoke that events would so soon take a decisive turn for you. We have thought so much alike during the last three or four years that I am most hopeful that the closest understanding will prevail, and that I may contribute to it.

I now send you the letter which I wrote to Gamelin upon the business which brought me to Paris last week, and I beg you to give the project your immediate sympathetic consideration. Both the Prime Minister and Lord Halifax have become very keen upon this operation ["Royal Marine"], and we were all three about to press it strongly upon your predecessor. It seems a great pity to lose this valuable time. I have now upwards of 6,000 mines ready and moving forward in an endless flow—alas, only on land—and of course there is always danger of secrecy being lost when delays occur.

I look forward to an early meeting of the Supreme Council, where I trust concerted action may be arranged between French and English *colleagues*—for that is what we are.

Pray give my kind regards to Mandel, and believe me, with the warmest wishes for your success, in which our common safety is deeply involved.

The French Ministers came to London for a meeting of the Supreme War Council on March 28. Mr. Chamberlain opened with a full and clear description of the scene as he saw it. To my great satisfaction he said his first proposal was that "a certain operation, generally known as the 'Royal Marine', should be put into operation immediately." He described how this project would be carried out, and stated that stocks had been accumulated for effective and continuous execution. There would be complete surprise. The operation would take place in that part of the Rhine used almost exclusively for military purposes. No similar operation had ever been carried out before, nor had equipment previously been designed capable of taking advantage of river conditions and working successfully against the barrages and types

of craft found in rivers. Finally, owing to the design of the weapons, neutral waters would not be affected The British anticipated that this attack would create the utmost consternation and confusion. It was well known that no people were more thorough than the Germans in preparation and planning, but equally no people could be more completely upset when their plans miscarried They could not improvise. Again, the war had found the German railways in a precarious state, and therefore their dependence on their inland waterways had increased In addition to the floating mines other weapons had been designed to be dropped from aircraft in canals within Germany itself, where there was no current He urged that surprise depended upon speed Secrecy would be endangered by delay, and the river conditions were about to be particularly favourable As to German retaliation, if Germany thought it worth while to bomb French or British cities she would not wait for a pretext. Everything was ready It was only necessary for the French High Command to give the order

He then said that Germany had two weaknesses her supplies of iron ore and of oil The main sources of supply of these were situated at the opposite ends of Europe. The iron ore came from the North He unfolded with precision the case for intercepting the German iron ore supplies from Sweden He dealt also with the Roumanian and Baku oilfields, which ought to be denied to Germany, if possible by diplomacy I listened to this powerful argument with increasing pleasure I had not realised how fully Mr Chamberlain and I were agreed

M. Reynaud spoke of the impact of German propaganda upon French morale The German radio blared each night that the Reich had no quarrel with France, that the origin of the war was to be found in the blank cheque given by Britain to Poland, that France had been draggged into war at the heels of the British, and even that she was not in a position to sustain the struggle. Goebbels' policy towards France seemed to be to let the war run on at the present reduced tempo, counting upon growing discouragement among the five million Frenchmen now called up and upon the emergence of a French Government willing to come to compromise terms with Germany at the expense of Great Britain.

The question, he said, was widely asked in France, "How can

the Allies win the war?" The number of divisions, "despite British efforts", was increasing faster on the German side than on ours. When therefore could we hope to secure that superiority in man-power required for successful action in the West? We had no knowledge of what was going on in Germany in material equipment. There was a general feeling in France that the war had reached a deadlock, and that Germany had only to wait Unless some action were taken to cut the enemy's supply of oil and other raw material "the feeling might grow that blockade was not a weapon strong enough to secure victory for the Allied cause". About the operation "Royal Marine" he said that, though good in itself, it could not be decisive, and that any reprisals would fall upon France However, if other things were settled he would make a special effort to secure French concurrence. He was far more responsive about cutting off supplies of Swedish iron ore, and he stated that there was an exact relation between the supplies of Swedish iron ore to Germany and the output of the German iron and steel industry. His conclusion was that the Allies should lay mines in the territorial waters along the Norwegian coast and later obstruct by similar action ore being carried from the port of Luleå to Germany He emphasised the importance of hampering German supplies of Roumanian oil

It was at last decided that, after addressing communications in general terms to Norway and Sweden, we should lay minefields in Norwegian territorial waters on April 5, and that, *subject to the concurrence of the French War Committee*, "Royal Marine" should be begun by launching the fluvial mines in the Rhine on April 4, and on April 15 upon the German canals from the air. It was also agreed that if Germany invaded Belgium the Allies should immediately move into that country without waiting for a formal invitation, and that if Germany invaded Holland, and Belgium did not go to her assistance, the Allies should consider themselves free to enter Belgium for the purpose of helping Holland

Finally, as an obvious point on which all were at one, the communiqué stated that the British and French Governments had agreed on the following solemn declaration

That during the present war they would neither negotiate nor conclude an armistice or treaty of peace except by mutual agreement.

This pact later acquired high importance

* * * * *

On April 3 the British Cabinet implemented the resolve of the Supreme War Council, and the Admiralty was authorised to mine the Norwegian Leads on April 8. I called the actual mining operation "Wilfred", because by itself it was so small and innocent. As our mining of Norwegian waters might provoke a German retort, it was also agreed that a British brigade and a French contingent should be sent to Narvik to clear the port and advance to the Swedish frontier Other forces should be dispatched to Stavanger, Bergen, and Trondheim, in order to deny these bases to the enemy.

It is worth while looking back on the stages by which at last the decision to mine the Leads was reached.* I had asked for it on September 29, 1939 Nothing relevant had altered in the meanwhile. The moral and technical objections on the score of neutrality, the possibility of German retaliation against Norway, the importance of stopping the flow of iron ore from Narvik to Germany, the effect on neutral and world-wide opinion—all were exactly the same But at last the Supreme War Council was convinced, and at last the War Cabinet were reconciled to the scheme, and indeed resolved upon it Once had they given consent and withdrawn it. Then their mind had been overlaid by the complications of the Finnish war On sixty days "Aid to Finland" had been part of the Cabinet agenda Nothing had come of it all. Finland had been crushed into submission by Russia. Now after all this vain boggling, hesitation, changes of policy, arguments between good and worthy people unending, we had at last reached the simple point on which action had been demanded seven months before But in war seven months is a long time Now Hitler was ready, and ready with a far more

* September 29, 1939 First Lord calls attention of the Cabinet to the value of Swedish iron ore to the German economy.

November 27, 1939 First Lord addresses a minute to the First Sea Lord asking for examination of proposal to mine the Leads

December 15, 1939 First Lord raises in Cabinet the question of iron ore shipments to Germany

December 16, 1939 Circulation of detailed memorandum on the subject to the Cabinet.

December 22, 1939 Memorandum considered by the Cabinet

February 5, 1940 Detailed discussion of issue in connection with aid to Finland at Supreme War Council in Paris (W S C present)

February 19, 1940 Renewed discussion of mining of Leads in British Cabinet Admiralty authorised to make preparations

February 29, 1940 Authorisation cancelled

March 28, 1940 Resolution of Supreme War Council that minefields should be laid.

April 3, 1940 Final decision taken by British Cabinet.

April 8, 1940 The minefields laid

powerful and well-prepared plan. One can hardly find a more perfect example of the impotence and fatuity of waging war by committee, or rather by groups of committees It fell to my lot in the weeks which followed to bear much of the burden and some of the odium of the ill-starred Norwegian campaign, the course of which will presently be described Had I been allowed to act with freedom and design when I first demanded permission a far more agreeable conclusion might have been reached in this key theatre, with favourable consequences in every direction. But now all was to be disaster.

He that will not when he may,
When he will he shall have nay.

* * * * *

It may here be right to set forth the various offensive proposals and devices which in my subordinate position I put forward during the Twilight War The first was the entry and domination of the Baltic, which was the sovereign plan if it were possible. It was vetoed by the growing realisation of air-power. The second was the creation of a Close Action squadron of naval tortoises not too much afraid of the air-bomb or torpedo, by the reconstruction of the *Royal Sovereign* class of battleships This fell by the way through the movement of the war and the priorities which had to be given to aircraft-carriers. The third was the simple tactical operation of laying mines in the Norwegian Leads to cut off the vital German iron ore supplies. Fourthly comes "Cultivator No 6" (Appendix O)—namely, a long-term means for breaking the deadlock on the French front without a repetition of the slaughter of the previous war. This was superseded by the onrush of German armour turning our own invention of tanks to our undoing, and proving the ascendancy of the offensive in this new war The fifth was the operation "Royal Marine"—namely, the paralysing of traffic on the Rhine by the dropping and discharge of fluvial mines This played its limited part and proved its virtue from the moment when it was permitted. It was however swept away in the general collapse of the French resistance In any case it required prolonged application to cause major injury to the enemy.

To sum up In the war of armies on the ground I was under the thrall of defensive fire-power On the sea I strove persistently

within my sphere to assert the initiative against the enemy as a relief from the terrible ordeal of presenting our enormous target of sea commerce to his attack. But in this prolonged trance of the Twilight or "Phoney" War, as it was commonly called in the United States, neither France nor Britain was capable of meeting the German vengeance thrust It was only after France had been flattened out that Britain, thanks to her island advantage, developed out of the pangs of defeat and the menace of annihilation a national resolve equal to that of Germany.

* * * * *

Ominous items of news of varying credibility now began to come in. At the meeting of the War Cabinet on April 3 the Secretary of State for War told us that a report had been received at the War Office that the Germans had been collecting strong forces of troops at Rostock with the intention of taking Scandinavia if necessary. The Foreign Secretary said that the news from Stockholm tended to confirm this report According to the Swedish Legation in Berlin, 200,000 tons of German shipping were now concentrated at Stettin and Swinemünde, with troops on board which rumour placed at 400,000. It was suggested that these forces were in readiness to deliver a counter-stroke against a possible attack by us upon Narvik or other Norwegian ports, about which the Germans were said to be still nervous

Soon we learnt that the French War Committee would not agree to the launching of "Royal Marine". They were in favour of mining the Norwegian Leads, but opposed to anything that might draw retaliation on France. Through the French Ambassador Reynaud expressed his regret Mr Chamberlain, who was much inclined to aggressive action of some kind at this stage, was vexed at this refusal, and in a conversation with M. Corbin he linked the two operations together The British would cut off the ore supplies of Germany as the French desired, provided that at the same time the French allowed us to retaliate by means of "Royal Marine" for all the injuries we had suffered and were enduring from the magnetic mine Keen as I was on "Royal Marine", I had not expected him to go so far as this Both operations were methods of making offensive war upon the enemy, and bringing to an end the twilight period, from the prolongation of which I now believed Germany was the gainer

However, if a few days would enable us to bring the French into agreement upon the punctual execution of the two projects, I was agreeable to postponing "Wilfred" for a few days

The Prime Minister was so favourable to my views at this juncture that we seemed almost to think as one. He asked me to go over to Paris and see what I could do to persuade M. Daladier, who was evidently the stumbling-block I met M. Reynaud and several others of his Ministers at dinner on the night of the 4th at the British Embassy, and we seemed in pretty good agreement Daladier had been invited to attend, but professed a previous engagement. It was arranged that I should see him the next morning. While meaning to do my utmost to persuade Daladier, I asked permission from the Cabinet to make it clear that we would go forward with "Wilfred" even if "Royal Marine" was vetoed.

I visited Daladier at the Rue St. Dominique at noon on the 5th, and had a serious talk with him. I commented on his absence from our dinner the night before He pleaded his previous engagement. It was evident to me that a considerable gulf existed between the new and the former Premier. Daladier argued that in three months' time the French aviation would be sufficiently improved for the necessary measures to be taken to meet German reactions to "Royal Marine". For this he was prepared to give a firm date in writing He made a strong case about the defenceless French factories. Finally he assured me that the period of political crises in France was over, and that he would work in harmony with M. Reynaud On this we parted.

I reported by telephone to the War Cabinet, who were agreed that "Wilfred" should go forward notwithstanding the French refusal of "Royal Marine", but wished this to be the subject of a formal communication. At their meeting on April 5 the Foreign Secretary was instructed to inform the French Government that notwithstanding the great importance we had throughout attached to carrying out the "Royal Marine" operation at an early date, and simultaneously with the proposed operation in Norwegian territorial waters, we were nevertheless prepared as a concession to their wishes to proceed with the latter alone. The date was thus finally fixed for April 8

* * * * *

On Thursday, April 4, 1940, the Prime Minister addressed the Central Council of the National Union of Conservative and Unionist Associations in a spirit of unusual optimism

> After seven months of war I feel ten times as confident of victory as I did at the beginning I feel that during the seven months our relative position towards the enemy has become a great deal stronger than it was
>
> Consider the difference between the ways of a country like Germany and our own Long before the war Germany was making preparations for it. She was increasing her armed forces on land and in the air with feverish haste, she was devoting all her resources to turning out arms and equipment and to building up huge reserves of stocks, in fact, she was turning herself into a fully armed camp On the other hand, we, a peaceful nation, were carrying on with our peaceful pursuits It is true that we had been driven by what was going on in Germany to begin to build up again those defences which we had so long left in abeyance, but we postponed as long as any hope of peace remained—we continually postponed—those drastic measures which were necessary if we were to put the country on a war footing
>
> The result was that when war did break out German preparations were far ahead of our own, and it was natural then to expect that the enemy would take advantage of his initial superiority to make an endeavour to overwhelm us and France before we had time to make good our deficiencies Is it not a very extraordinary thing that no such attempt was made? Whatever may be the reason—whether it was that Hitler thought he might get away with what he had got without fighting for it, or whether it was that after all the preparations were not sufficiently complete—however, one thing is certain he missed the bus
>
> And so the seven months that we have had have enabled us to make good and remove our weaknesses, to consolidate, and to tune up every arm, offensive and defensive, and so enormously to add to our fighting strength that we can face the future with a calm and steady mind whatever it brings
>
> Perhaps you may say, "Yes, but has not the enemy too been busy?" I have not the slightest doubt he has I would be the last to underrate the [his] strength or determination to use that strength without scruple and without mercy if he thinks he can do so without getting his blows returned with interest I grant that But I say this too the very completeness of his preparations has left him very little margin of strength still to call upon

This proved an ill-judged utterance. Its main assumption that

we and the French were relatively stronger than at the beginning of the war was not reasonable. As has been previously explained, the Germans were now in the fourth year of vehement munitions manufacture, whereas we were at a much earlier stage, probably comparable in fruitfulness to the second year. Moreover, with every month that had passed the German Army, now four years old, was becoming a mature and perfected weapon, and the former advantage of the French Army in training and cohesion was steadily passing away. The Prime Minister showed no premonition that we were on the eve of great events, whereas it seemed almost certain to me that the land war was about to begin. Above all, the expression "Hitler missed the bus" was unlucky.

All lay in suspense. The various minor expedients I had been able to suggest had gained acceptance, but nothing of a major character had been done by either side. Our plans, such as they were, rested upon enforcing the blockade by the mining of the Norwegian corridor in the north and by hampering German oil supplies from the south-east. Complete immobility and silence reigned behind the German front. Suddenly the passive or small-scale policy of the Allies was swept away by a cataract of violent surprises. We were to learn what total war means.

CHAPTER XXXIII

THE CLASH AT SEA

April 1940

Lord Chatfield's Retirement – The Prime Minister Invites Me to Preside over the Military Co-ordination Committee – An Awkward Arrangement – "Wilfred" – Oslo – The German Seizure of Norway – Tragedy of Neutrality – All the Fleets at Sea – The "Glowworm" – The "Renown" Engages the "Scharnhorst" and "Gneisenau" – The Home Fleet off Bergen – Action by British Submarines – Warburton-Lee's Flotilla at Narvik – Supreme War Council Meets in London, April 9 – Its Conclusions – My Minute to the First Sea Lord, April 10 – Anger in England – Debate in Parliament, April 11 – The "Warspite" and her Flotilla Exterminate the German Destroyers at Narvik – Letter from the King.

BEFORE resuming the narrative I must explain the alterations in my position which occurred during the month of April 1940

Lord Chatfield's office as Minister for the Co-ordination of Defence had become redundant, and on the 3rd Mr Chamberlain accepted his resignation, which he proffered freely. On the 4th a statement was issued from No 10 Downing Street that it was not proposed to fill the vacant post, but that arrangements were being made for the First Lord of the Admiralty, as the senior Service Minister concerned, to preside over the Military Co-ordination Committee Accordingly I took the chair at its meetings, which were held daily, and sometimes twice daily, from the 8th to 15th of April. I had therefore an exceptional measure of responsibility, but no power of effective direction Among the other Service Ministers who were also members of the War Cabinet I was "first among equals" I had however no power to

take or to enforce decisions. I had to carry with me both the Service Ministers and their professional chiefs Thus many important and able men had a right and duty to express their views on the swiftly-changing phases of the battle—for battle it was—which now began.

The Chiefs of Staff sat daily together after discussing the whole situation with their respective Ministers. They then arrived at their own decisions, which obviously became of dominant importance. I learned about these either from the First Sea Lord, who kept nothing from me, or by the various memoranda or *aide-mémoires* which the Chiefs of Staff Committee issued If I wished to question any of these opinions I could of course raise them in the first instance at my Co-ordinating Committee, where the Chiefs of Staff, supported by their departmental Ministers, whom they had usually carried along with them, were all present as individual members. There was a copious flow of polite conversation, at the end of which a tactful report was drawn up by the secretary in attendance and checked by the three Service departments to make sure there were no discrepancies Thus we had arrived at those broad, happy uplands where everything is settled for the greatest good of the greatest number by the common sense of most after the consultation of all. But in war of the kind we were now to feel the conditions were different Alas, I must write it· the actual conflict had to be more like one ruffian bashing the other on the snout with a club, a hammer, or something better All this is deplorable, and it is one of the many good reasons for avoiding war, and having everything settled by agreement in a friendly manner, with full consideration for the rights of minorities and the faithful recording of dissentient opinions.

The Defence Committee of the War Cabinet sat almost every day to discuss the reports of the Military Co-ordination Committee and those of the Chiefs of Staff; and their conclusions or divergences were again referred to frequent Cabinets All had to be explained and re-explained, and by the time this process was completed the whole scene had often changed At the Admiralty, which is of necessity in war-time a battle headquarters, decisions affecting the Fleet were taken on the instant, and only in the gravest cases referred to the Prime Minister, who supported us on every occasion Where the action of the other Services was

involved the procedure could not possibly keep pace with events. However, at the beginning of the Norway campaign the Admiralty in the nature of things had three-quarters of the executive business in its own hands.

I do not pretend that, whatever my powers, I should have been able to take better decisions or reach good solutions of the problems with which we were now confronted. The impact of the events about to be described was so violent and the conditions so chaotic that I soon perceived that only the authority of the Prime Minister could reign over the Military Co-ordination Committee. Accordingly on the 15th I requested Mr Chamberlain to take the chair, and he presided at practically every one of our subsequent meetings during the campaign in Norway. He and I continued in close agreement, and he gave his supreme authority to the views which I expressed. I was most intimately involved in the conduct of the unhappy effort to rescue Norway when it was already too late. The change in chairmanship was announced to Parliament by the Prime Minister in reply to a question as follows:

> I have agreed at the request of the First Lord of the Admiralty to take the chair myself at the meetings of the Co-ordination Committee when matters of exceptional importance relating to the general conduct of the war are under discussion.

Loyalty and goodwill were forthcoming from all concerned. Nevertheless both the Prime Minister and I were acutely conscious of the formlessness of our system, especially when in contact with the surprising course of events. Although the Admiralty was at this time inevitably the prime mover, obvious objections could be raised to an organisation in which one of the Service Ministers attempted to concert all the operations of the other Services, while at the same time managing the whole business of the Admiralty and having a special responsibility for the naval movements. These difficulties were not removed by the fact that the Prime Minister himself took the chair and backed me up. But while one stroke of misfortune after another, the results of want of means or of indifferent management, fell upon us almost daily, I nevertheless continued to hold my position in this fluid, friendly, but unfocused circle.

* * * * *

On the evening of Friday, April 5, the German Minister in Oslo invited distinguished guests, including members of the Government, to a film show at the Legation. The film depicted the German conquest of Poland, and culminated in a crescendo of horror scenes during the German bombing of Warsaw. The caption read "For this they could thank their English and French friends." The party broke up in silence and dismay. The Norwegian Government was however chiefly concerned with the activities of the British. Between 4.30 and 5 a.m. on April 8 four British destroyers laid our minefield off the entrance to West Fiord, the channel to the port of Narvik. At 5 a.m. the news was broadcast from London, and at 5.30 a note from His Majesty's Government was handed to the Norwegian Foreign Minister. The morning in Oslo was spent in drafting protests to London. But later that afternoon the Admiralty informed the Norwegian Legation in London that German warships had been sighted off the Norwegian coast proceeding northwards, and presumably bound for Narvik. About the same time reports reached the Norwegian capital that a German troopship, the *Rio de Janeiro*, had been sunk off the south coast of Norway by the Polish submarine *Orzel*, that large numbers of German soldiers had been rescued by the local fishermen, and that they said they were bound for Bergen to help the Norwegians defend their country against the British and French. More was to come. Germany had broken into Denmark, but the news did not reach Norway until after she herself was invaded. Thus she received no formal warning. Denmark was easily overrun after a resistance in which a few faithful soldiers were killed.

That night German warships approached Oslo. The outer batteries opened fire. The Norwegian defending force consisted of a mine-layer, the *Olav Tryggvason*, and two minesweepers. After dawn two German minesweepers entered the mouth of the fiord to disembark troops in the neighbourhood of the shore batteries. One was sunk by the *Olav Tryggvason*, but the German troops were landed and the batteries taken. The gallant mine-layer however held off two German destroyers at the mouth of the fiord and damaged the cruiser *Emden*. An armed Norwegian whaler mounting a single gun also went into action at once and without special orders against the invaders. Her gun was smashed and the commander had both legs shot off. To avoid

unnerving his men, he rolled himself overboard and died nobly The main German force, led by the heavy cruiser *Bluecher*, now entered the fiord, making for the narrows defended by the fortress of Oscarsborg The Norwegian batteries opened, and two torpedoes fired from the shore at 500 yards scored a decisive strike. The *Bluecher* sank rapidly, taking with her the senior officers of the German administrative staff and detachments of the Gestapo The other German ships, including the *Luetzow*, retired The damaged *Emden* took no further part in the fighting at sea Oslo was ultimately taken, not from the sea, but by troop-carrying aeroplanes and by landings in the fiord

Hitler's plan immediately flashed into its full scope German forces descended at Kristiansand, at Stavanger, and to the north at Bergen and Trondheim

The most daring stroke was at Narvik. For a week supposedly empty German ore-ships returning to that port in the ordinary course had been moving up the corridor sanctioned by Norwegian neutrality, filled with supplies and ammunition. Ten German destroyers, each carrying two hundred soldiers and supported by the *Scharnhorst* and *Gneisenau*, had left Germany some days before, and reached Narvik early on the 9th.

Two Norwegian warships, *Norge* and *Eidsvold*, lay in the fiord. They were prepared to fight to the last At dawn destroyers were sighted approaching the harbour at high speed, but in the prevailing snow-squalls their identity was not at first established. Soon a German officer appeared in a motor launch and demanded the surrender of the *Eidsvold* On receiving from the commanding officer the curt reply, "I attack," he withdrew, but almost at once the ship was destroyed with nearly all hands by a volley of torpedoes Meanwhile the *Norge* opened fire, but in a few minutes she too was torpedoed and sank instantly

In this gallant but hopeless resistance 287 Norwegian seamen perished, less than a hundred being saved from the two ships. Thereafter the capture of Narvik was easy It was a strategic key —for ever to be denied us

* * * * *

Surprise, ruthlessness, and precision were the characteristics of the onslaught upon innocent and naked Norway Nowhere did the initial landing forces exceed two thousand men Seven army

e employed, embarking principally from Hamburg and for the follow-up from Stettin and Danzig ns were used in the assault phase, and four supported Oslo and Trondheim Eight hundred operational 50 to 300 transport planes were the salient and vital design Within forty-eight hours all the main ports were in the German grip

* * * * *

ght of Sunday, the 7th, our air reconnaissance re- German fleet, consisting of a battle-cruiser, two light een destroyers, and another ship, probably a transport, the day before moving towards the Naze across the Skaggerak. We found it hard at the Admiralty to his force was going to Narvik. In spite of a report hagen that Hitler meant to seize that port, it was e Naval Staff that the German ships would probably o the Skaggerak Nevertheless the following move- once ordered The Home Fleet, comprising *Rodney*, *iant*, two cruisers, and ten destroyers, was already and left Scapa at 8 30 p m on April 7, the Second adron, of two cruisers and fifteen destroyers, started at 10 p m on the same night The First Cruiser which had been embarking troops at Rosyth for the ipation of Norwegian ports in the event of a German ordered to march the soldiers ashore, even without ment, and join the Fleet at sea at the earliest moment *Aurora* and six destroyers similarly engaged in the ordered to Scapa All these decisive steps were ith the Commander-in-Chief. In short everything s ordered out, on the assumption—which we had by cepted—that a major emergency had come At the he mine-laying operation off Narvik, by four des- in progress, covered by the battle-cruiser *Renown*, *Birmingham*, and eight destroyers

e War Cabinet met on Monday morning I reported efields in the West Fiord had been laid between 4.30 I also explained in detail that all our fleets were at sea we had assurance that the main German naval force otedly making towards Narvik On the way to lay

the minefield "Wilfred" one of our destroyers, the *Glowworm*, having lost a man overboard during the night, stopped behind to search for him and became separated from the rest of the force At 8 30 a m. on the 8th the *Glowworm* had reported herself engaged with an enemy destroyer about 150 miles south-west of West Fiord Shortly afterwards she had reported seeing another destroyer ahead of her, and later that she was engaging a superior force After 9.45 she had become silent, since when nothing had been heard from her. On this it was calculated that the German forces, unless intercepted, could reach Narvik about 10 p m that night They would, we hoped, be engaged by the *Renown* and the *Birmingham* and their destroyers. An action might therefore take place very shortly "It is impossible," I said, "to forecast the hazards of war, but such an action should not be on terms unfavourable for us." Moreover, the Commander-in-Chief with the whole Home Fleet would be approaching the scene from the south He would now be about opposite Statland. He was fully informed on all points known to us, though naturally he was remaining silent The Germans knew that the Fleet was at sea, since a U-boat near the Orkneys had been heard to transmit a long message as the Fleet left Scapa Meanwhile the Second Cruiser Squadron, off Aberdeen, moving north, had reported that it was being shadowed by aircraft and expected to be attacked about noon All possible measures were being taken by the Navy and the R.A F to bring fighters to the scene No aircraft-carriers were available, but flying-boats were working The weather was thick in places, but believed to be better in the north and improving

The War Cabinet took note of my statement and invited me to pass on to the Norwegian naval authorities the information we had received about German naval movements On the whole the opinion was that Hitler's aim was Narvik.

On April 9 Mr. Chamberlain summoned us to a War Cabinet at 8 30 a m, when the facts, as then known to us, about the German invasion of Norway and Denmark were discussed The War Cabinet agreed that I should authorise the Commander-in-Chief of the Home Fleet to take all possible steps to clear Bergen and Trondheim of enemy forces, and that the Chiefs of Staff should set on foot preparations for military expeditions to recapture both those places and to occupy Narvik. These expedi-

tions should not however move until the naval situation had been cleared up

* * * * *

Since the war we have learned from German records what happened to the *Glowworm* Early on the morning of Monday, the 8th, she encountered first one and then a second enemy destroyer A running fight ensued in a heavy sea until the cruiser *Hipper* appeared on the scene When the *Hipper* opened fire the *Glowworm* retired behind a smoke-screen. The *Hipper*, pressing on through the smoke, presently emerged to find the British destroyer very close and coming straight for her at full speed. There was no time for the *Hipper* to avoid the impact, and the *Glowworm* rammed her 10,000-ton adversary, tearing a hole forty metres wide in her side She then fell away crippled and blazing. A few minutes later she blew up The *Hipper* picked up forty survivors, her gallant captain was being hauled to safety when he fell back exhausted from the cruiser's deck and was lost Thus the *Glowworm's* light was quenched, but her captain, Lieutenant-Commander Gerard Roope, was awarded the Victoria Cross posthumously, and the story will long be remembered

When the *Glowworm's* signals ceased abruptly we had good hopes of bringing to action the main German forces which had ventured so far During Monday we had a superior force on either side of them. Calculations of the sea areas to be swept gave prospects of contact, and any contact meant concentration upon them We did not then know that the *Hipper* was escorting German forces to Trondheim She entered Trondheim that night, but the *Glowworm* had put this powerful vessel out of action for a month

Vice-Admiral Whitworth, in the *Renown*, on receiving *Glowworm's* signals first steered south, hoping to intercept the enemy, but on later information and Admiralty instructions he decided to cover the approaches to Narvik. Tuesday, the 9th, was a tempestuous day, with the seas running high under furious gales and snow-storms At early dawn the *Renown* sighted two darkened ships some 50 miles to seaward of West Fiord These were the *Scharnhorst* and *Gneisenau*, who had just completed the task of escorting their expedition to Narvik, but at the time it was believed that only one of the two was a battle-cruiser The *Renown* opened fire first at 18,000 yards, and soon hit the *Gneisenau*,

destroying her main gun-control equipment and for a time causing her to stop firing. Her consort screened her with smoke. Both ships then turned away to the north, and the action became a chase. Meanwhile the *Renown* had received two hits, but these caused little damage, and presently she scored a second and later a third hit on the *Gneisenau*. In the heavy seas the *Renown* drove forward at full speed, but soon had to reduce to 20 knots. Amid intermittent snow-squalls and German smoke-screens the fire on both sides became ineffective. Although the *Renown* strained herself to the utmost in trying to overhaul the German ships, they at last drew away out of sight to the northward.

* * * * *

Meanwhile on the morning of April 9 Admiral Forbes with the main fleet was abreast of Bergen. At 6.20 a.m. he asked the Admiralty for news of the German strength there, as he intended to send in a force of cruisers and destroyers under Vice-Admiral Layton to attack any German ships they might find. The Admiralty had the same idea, and at 8.20 made him the following signal:

> Prepare plans for attacking German warships and transports in Bergen and for controlling the approaches to the port on the supposition that defences are still in hands of Norwegians. Similar plans as regards Trondheim should also be prepared if you have sufficient forces for both.

The Admiralty sanctioned Admiral Forbes' plan for attacking Bergen, but later warned him that he must no longer count on the defences being friendly. To avoid dispersion, the attack on Trondheim was postponed until the German battle-cruisers should be found. At about 11.30 four cruisers and seven destroyers, under the Vice-Admiral, started for Bergen, eighty miles away, making only 16 knots against a head wind and a rough sea. Presently aircraft reported two cruisers in Bergen instead of one. With only seven destroyers the prospects of success were distinctly reduced, unless our cruisers went in too. The First Sea Lord thought the risk to these vessels, both from mines and the air, excessive. He consulted me on my return from the Cabinet meeting, and after reading the signals which had passed during the morning, and a brief discussion in the War Room, I concurred in his view. We therefore cancelled the attack. Looking back

on this affair, I consider that the Admiralty kept too close a control upon the Commander-in-Chief, and after learning his original intention to force the passage into Bergen we should have confined ourselves to sending him information.

That afternoon strong air attacks were made on the Fleet, chiefly against Vice-Admiral Layton's ships. The destroyer *Gurkha* was sunk, and the cruisers *Southampton* and *Glasgow* damaged by near misses. In addition the flagship *Rodney* was hit, but her strong deck-armour prevented serious damage.

When the cruiser attack on Bergen was cancelled Admiral Forbes proposed to use torpedo-carrying naval aircraft from the carrier *Furious* at dusk on April 10. The Admiralty agreed, and also arranged attacks by R.A.F. bombers on the evening of the 9th and by naval aircraft from Hatston (Orkney) on the morning of the 10th. Meanwhile our cruisers and destroyers continued to blockade the approaches. The air attacks were successful, and the cruiser *Koenigsberg* was sunk by three bombs from naval aircraft. The *Furious* was now diverted to Trondheim, where our air patrols reported two enemy cruisers and two destroyers. Eighteen aircraft attacked at dawn on the 11th, but found only two destroyers and a submarine, besides merchant ships. Unluckily the wounded *Hipper* had left during the night, no cruisers were found, and the attack on the two German destroyers failed because our torpedoes grounded in shallow water before reaching their targets.

Meanwhile our submarines were active in the Skagerrak and Kattegat. On the night of the 8th they had sighted and attacked enemy ships northward bound from the Baltic, but without success. However, on the 9th the *Truant* sank the cruiser *Karlsruhe* off Kristiansand, and the following night the *Spearfish* torpedoed the pocket-battleship *Luetzow* returning from Oslo. Besides these successes submarines accounted for at least nine enemy transport and supply ships, with heavy loss of life, during the first week of this campaign. Our own losses were severe, and three British submarines perished during April in the heavily-defended approaches to the Baltic.

* * * * *

On the morning of the 9th the situation at Narvik was obscure. Hoping to forestall a German seizure of the port, the Commander-in-Chief directed Captain Warburton-Lee, commanding our

destroyers, to enter the fiord and prevent any landing Meanwhile the Admiralty transmitted a Press report to him indicating that one ship had already entered the port and landed a small force The message went on·

> Proceed to Narvik and sink or capture enemy ship It is at your discretion to land forces, if you think you can recapture Narvik from number of enemy present

Accordingly Captain Warburton-Lee, with the five destroyers of his own flotilla, *Hardy*, *Hunter*, *Havock*, *Hotspur*, and *Hostile*, entered West Fiord. He was told by Norwegian pilots at Tranoy that six ships larger than his own and a U-boat had passed in and that the entrance to the harbour was mined He signalled this information and added "Intend attacking at dawn". Admiral Whitworth, who received the signals, considered whether he might stiffen the attacking forces from his own now augmented squadron, but the time seemed too short and he felt that intervention by him at this stage might cause delay. In fact, we in the Admiralty were not prepared to risk the *Renown*—one of our only three battle-cruisers—in such an enterprise The last Admiralty message passed to Captain Warburton-Lee was as follows

> Norwegian coast defence ships may be in German hands you alone can judge whether in these circumstances attack should be made Shall support whatever decision you take.

His reply was

> Going into action

In the mist and snowstorms of April 10 the five British destroyers steamed up the fiord, and at dawn stood off Narvik Inside the harbour were five enemy destroyers In the first attack the *Hardy* torpedoed the ship bearing the pennant of the German Commodore, who was killed, another destroyer was sunk by two torpedoes, and the remaining three were so smothered by gunfire that they could offer no effective resistance There were also in the harbour twenty-three merchant ships of various nations, including five British, six German were destroyed Only three of our five destroyers had hitherto attacked The *Hotspur* and *Hostile* had been left in reserve to guard against any shore

batteries or against fresh German ships approaching. They now joined in a second attack, and the *Hotspur* sank two more merchantmen with torpedoes. Captain Warburton-Lee's ships were unscathed, the enemy's fire was apparently silenced, and after an hour's fighting no ships had come out from any of the inlets against him

But now fortune turned. As he was coming back from a third attack Captain Warburton-Lee sighted three fresh ships approaching from Heijangs Fiord They showed no signs of wishing to close the range, and action began at 7,000 yards Suddenly out of the mist ahead appeared two more warships They were not, as was at first hoped, British reinforcements, but German destroyers which had been anchored in Ballangen Fiord. Soon the heavier guns of the German ships began to tell, the bridge of the *Hardy* was shattered, Warburton-Lee mortally stricken, and all his officers and companions killed or wounded except Lieutenant Stanning, his secretary, who took the wheel A shell then exploded in the engine-room, and under heavy fire the destroyer was beached The last signal from the *Hardy's* captain to his flotilla was "Continue to engage the enemy"

Meanwhile the *Hunter* had been sunk, and the *Hotspur* and the *Hostile*, which were both damaged, with the *Havock*, made for the open sea The enemy who had barred their passage was by now in no condition to stop them Half an hour later they encountered a large ship coming in from the sea, which proved to be the *Rauenfels*, carrying the German reserve ammunition She was fired upon by the *Havock*, and soon blew up The survivors of the *Hardy* struggled ashore with the body of their commander, who was awarded posthumously the Victoria Cross. He and they had left their mark on the enemy and in our naval records

* * * * *

On the 9th MM Reynaud and Daladier, with Admiral Darlan, flew over to London, and in the afternoon a Supreme War Council meeting was held to deal with what they called "the German action in consequence of the laying of mines within Norwegian territorial waters" Mr. Chamberlain at once pointed out that the enemy's measures had certainly been planned in advance and quite independently of ours Even at that date this was obvious M Reynaud informed us that the French War

Committee, presided over by the President, had that morning decided in principle on moving forward into Belgium should the Germans attack. The addition, he said, of eighteen to twenty Belgian divisions, besides the shortening of the front, would to all intents and purposes wipe out the German preponderance in the West. The French would be prepared to connect such an operation with the laying of the fluvial mines in the Rhine. He added that his reports from Belgium and Holland indicated the imminence of a German attack on the Low Countries, some said days, some said hours

On the question of the military expedition to Norway, the Secretary of State for War reminded the Council that the two British divisions originally assembled for assistance to Finland had since been sent to France There were only eleven battalions available in the United Kingdom. Two of these were sailing that night. The rest, for various reasons, would not be ready to sail for three or four days or more.

The Council agreed that strong forces should be sent where possible to ports on the Norwegian seaboard, and joint plans were made A French Alpine division was ordered to embark within two or three days We were able to provide two British battalions that night, a further five battalions within three days, and four more within fourteen days—eleven in all Any additional British forces for Scandinavia would have to be withdrawn from France Suitable measures were to be taken to occupy the Faroe Islands, and assurances of protection would be given to Iceland Naval arrangements were concerted in the Mediterranean in the event of Italian intervention It was also decided that urgent representations should be made to the Belgian Government to invite the Allied armies to move forward into Belgium Finally, it was confirmed that if Germany made an attack in the West or entered Belgium "Royal Marine" should be carried out.

* * * * *

I was far from content with what had happened so far in Norway I wrote to Admiral Pound

10 IV 40

The Germans have succeeded in occupying all the ports on the Norwegian coast, including Narvik, and large-scale operations will be required to turn them out of any of them. Norwegian neutrality and

our respect for it have made it impossible to prevent this ruthless *coup*. It is now necessary to take a new view. We must put up with the disadvantage of closer air attack on our northern bases. We must seal up Bergen with a watchful minefield, and concentrate on Narvik, for which long and severe fighting will be required

It is immediately necessary to obtain one or two fuelling bases on the Norwegian coast, and a wide choice presents itself This is being studied by the Staff The advantage of our having a base, even improvised, on the Norwegian coast is very great, and now that the enemy have bases there we cannot carry on without it The Naval Staff are selecting various alternatives which are suitable anchorages capable of defence, and without communications with the interior Unless we have this quite soon we cannot compete with the Germans in their new position.

We must also take our advantages in the Faroes

Narvik must be fought for Although we have been completely outwitted, there is no reason to suppose that prolonged and serious fighting in this area will not impose a greater drain on the enemy than on ourselves

For three days we were deluged with reports and rumours from neutral countries and triumphant claims by Germany of the losses they had inflicted on the British Navy, and of their master-stroke in seizing Norway in the teeth of our superior naval power It was obvious that Britain had been forestalled, surprised, and, as I had written to the First Sea Lord, outwitted Anger swept the country, and the brunt fell upon the Admiralty. On Thursday, the 11th, I had to face a disturbed and indignant House of Commons I followed the method I have always found most effective on such occasions, of giving a calm, unhurried factual narrative of events in their sequence, laying full emphasis upon ugly truths I explained for the first time in public the disadvantage we had suffered since the beginning of the war by German's abuse of the Norwegian corridor, or "covered way", and how we had at last overcome the scruple which "caused us injury at the same time that it did us honour"

It is not the slightest use blaming the Allies for not being able to give substantial help and protection to neutral countries if we are held at arm's-length until these neutrals are actually attacked on a scientifically-prepared plan by Germany The strict observance of neutrality by Norway has been a contributory cause to the sufferings to which she is now exposed and to the limits of the aid which we can give her

I trust this fact will be meditated upon by other countries who may to-morrow, or a week hence, *or a month hence*, find themselves the victims of an equally elaborately worked out staff plan for their destruction and enslavement

I described the recent reoccupation by our Fleet of Scapa Flow, and the instant movement we had made to intercept the German forces in the North, and how the enemy were in fact caught between two superior forces.

However, they got away . . You may look at the map and see flags stuck in at different points and consider that the results will be certain, but when you get out on the sea, with its vast distances, its storms and mists, and with night coming on, and all the uncertainties which exist, you cannot possibly expect that the kind of conditions which would be appropriate to the movements of armies have any application to the haphazard conditions of war at sea . When we speak of the command of the seas it does not mean command of every part of the sea at the same moment, or at every moment. It only means that we can make our will prevail ultimately in any part of the seas which may be selected for operations, and thus indirectly make our will prevail in every part of the sea Anything more foolish than to suppose that the life and strength of the Royal Navy should have been expended in ceaselessly patrolling up and down the Norwegian and Danish coasts as a target for the U-boats on the chance that Hitler would launch a blow like this cannot be imagined.

The House listened with growing acceptance to the account, of which the news had just reached me, of Tuesday's brush between the *Renown* and the enemy, of the air attack on the British fleet off Bergen, and especially of Warburton-Lee's incursion and action at Narvik. At the end I said

Everyone must recognise the extraordinary and reckless gambling which has flung the whole German Fleet out upon the savage seas of war, as if it were a mere counter to be cast away for a particular operation This very recklessness makes me feel that these costly operations may be only the prelude to far larger events which impend on land. We have probably arrived now at the first main clinch of the war

After an hour and a half the House seemed to be very much less estranged. A little later there would have been more to tell

* * * * *

By the morning of April 10 the *Warspite* had joined the Commander-in-Chief, who was proceeding towards Narvik. On learning about Captain Warburton-Lee's attack at dawn we resolved to try again. The cruiser *Penelope*, with destroyer support, was ordered to attack, "if in the light of experience this morning you consider it a justifiable operation". But while the signals were passing, *Penelope*, in searching for enemy transports reported off Bodo, ran ashore. The next day (12th) a dive-bombing attack on enemy ships in Narvik harbour was made from the *Furious*. The attack was pressed home in terrible weather and low visibility, and four hits on destroyers were claimed for the loss of two aircraft. This was not enough. We wanted Narvik very much, and were determined at least to clear it of the German Navy. The climax was now at hand.

The precious *Renown* was kept out of it. Admiral Whitworth shifted his flag to the *Warspite* at sea, and at noon on the 13th he entered the fiord, escorted by nine destroyers and by dive-bombers from the *Furious*. There were no minefields, but a U-boat was driven off by the destroyers, and a second sunk by the *Warspite's* own "Swordfish" aircraft, which also detected a German destroyer lurking in an inlet to launch her torpedoes on the battleship from this ambush. The hostile destroyer was quickly overwhelmed. At 1.30 p.m., when our ships were through the Narrows and a dozen miles from Narvik, five enemy destroyers appeared ahead in the haze. At once a fierce fight began, with all ships on both sides firing and manœuvring rapidly. The *Warspite* found no shore batteries to attack, and intervened in deadly fashion in the destroyer fight. The thunder of her 15-inch guns reverberated among the surrounding mountains like the voice of doom. The enemy, heavily overmatched, retreated, and the action broke up into separate combats. Some of our ships went into Narvik harbour to complete the task of destruction there, others, led by the *Eskimo*, pursued three Germans who sought refuge in the head-waters of Rombaks Fiord and annihilated them there. The bows of the *Eskimo* were blown off by a torpedo, but in this second sea-fight off Narvik the eight enemy destroyers which had survived Warburton-Lee's attack were all sunk or wrecked without the loss of a single British ship.

When the action was over Admiral Whitworth thought of

throwing a landing party of seamen and marines ashore to occupy the town, where there seemed for the moment to be no opposition. Unless the fire of the *Warspite* could dominate the scene, an inevitable counter-attack by a greatly superior number of German soldiers must be expected. With the risk from the air and from U-boats he did not feel justified in exposing this fine ship so long. His decision was endorsed when a dozen German aircraft appeared at 6 p.m. Accordingly he withdrew early next morning, after embarking the wounded from the destroyers. "My impression," he said, "is that the enemy forces in Narvik were thoroughly frightened as a result of to-day's action. I recommend that the town be occupied without delay by the main landing force." Two destroyers were left off the port to watch events, and one of these rescued the survivors of the *Hardy*, who had meanwhile maintained themselves on shore.

* * * * *

His Majesty, whose naval instincts were powerfully stirred by this clash of the British and German Navies in Northern waters, wrote me the following encouraging letter:

BUCKINGHAM PALACE
April 12, 1940

My dear Mr Churchill,

I have been wanting to have a talk with you about the recent striking events in the North Sea, which, as a sailor, I have naturally followed with the keenest interest, but I have purposely refrained from taking up any of your time as I know what a great strain has been placed upon you by your increased responsibilities as Chairman of the Co-ordination Committee. I shall however ask you to come and see me as soon as there is a lull. In the meantime I would like to congratulate you on the splendid way in which, under your direction, the Navy is countering the German move against Scandinavia. I also beg of you to take care of yourself and get as much rest as you possibly can in these critical days.

Believe me,
Yours very sincerely,
GEORGE R.I.

CHAPTER XXXIV

NARVIK

Hitler's Outrage on Norway – Long-Prepared Treachery – Norwegian Resistance – Appeal to the Allies – The Position of Sweden – The Narvik Expedition – Instructions to General Mackesy – And to Lord Cork – Question of a Direct Assault – General Mackesy Adverse – My Desire to Concentrate on Narvik and to Attempt to Storm it – War Cabinet Conclusions of April 13 – The Trondheim Project Mooted – Disappointing News from Narvik – My Note to the Military Co-ordination Committee of April 17 – Our Telegram to the Naval and Military Commanders – Deadlock at Narvik.

FOR *MANY* generations Norway, with its homely, rugged population engaged in trade, shipping, fishing, and agriculture, had stood outside the turmoil of world politics. Far off were the days when the Vikings had sallied forth to conquer or ravage a large part of the then known world. The Hundred Years War, the Thirty Years War, the wars of William III and Marlborough, the Napoleonic convulsion, and later conflicts, had left Norway, though separated from Denmark, otherwise unmoved and unscathed. A large proportion of the people had hitherto thought of neutrality and neutrality alone. A tiny army and a population with no desires except to live peaceably in their own mountainous and semi-Arctic country now fell victims to the new German aggression.

It had been the policy of Germany for many years to profess cordial sympathy and friendship for Norway. After the previous war some thousands of German children had found food and shelter with the Norwegians. These had now grown up in Germany, and many of them were ardent Nazis. There was also the Major Quisling, who with a handful of young men had aped and reproduced in Norway on an insignificant scale the Fascist move-

ment For some years past Nordic meetings had been arranged in Germany to which large numbers of Norwegians had been invited. German lecturers, actors, singers, and men of science had visited Norway in the promotion of a common culture. All this had been woven into the texture of the Hitlerite military plan, and a widely-scattered internal pro-German conspiracy set on foot In this every member of the German diplomatic or consular service, every German purchasing agency, played its part under directions from the German Legation in Oslo The deed of infamy and treachery now performed may take its place with the Sicilian Vespers and the massacre of St. Bartholomew. The President of the Norwegian Parliament, Carl Hambro, has written:

> In the case of Poland and later in those of Holland and Belgium notes had been exchanged, ultimata had been presented. In the case of Norway the Germans under the mask of friendship tried to extinguish the nation in one dark night, silently, murderously, without any declaration of war, without any warning given. What stupefied the Norwegians more than the act of aggression itself was the national realisation that a great Power, for years professing its friendship, suddenly appeared a deadly enemy, and that men and women with whom one had had intimate business or professional relations, who had been cordially welcomed in one's home, were spies and agents of destruction More than by the violation of treaties and every international obligation, the people of Norway were dazed to find that for years their German friends had been elaborating the most detailed plans for the invasion and subsequent enslaving of their country.*

The King, the Government, the Army, and the people, as soon as they realised what was happening, flamed into furious anger. But it was all too late German infiltration and propaganda had hitherto clouded their vision, and now sapped their powers of resistance Major Quisling presented himself at the radio, now in German hands, as the pro-German ruler of the conquered land. Almost all Norwegian officials refused to serve him. The Army was mobilised, and at once began, under General Ruge, to fight the invaders pressing northwards from Oslo Patriots who could find arms took to the mountains and the forests The King, the Ministry, and the Parliament withdrew first to Hamar, a hundred miles from Oslo They were hotly pursued by German

* Carl J Hambro, *I Saw it Happen in Norway*, p 23

armoured cars, and ferocious attempts were made to exterminate them by bombing and machine-gunning from the air. They continued however to issue proclamations to the whole country urging the most strenuous resistance. The rest of the population was overpowered and terrorised by bloody examples into stupefied or sullen submission. The peninsula of Norway is nearly a thousand miles long. It is sparsely inhabited, and roads and railways are few, especially to the northward. The rapidity with which Hitler effected the domination of the country was a remarkable feat of war and policy, and an enduring example of German thoroughness, wickedness, and brutality.

The Norwegian Government, hitherto in their fear of Germany so frigid to us, now made vehement appeals for succour. It was from the beginning obviously impossible for us to rescue Southern Norway. Almost all our trained troops, and many only half trained, were in France. Our modest but growing Air Force was fully assigned to supporting the British Expeditionary Force, to Home Defence, and vigorous training. All our anti-aircraft guns were demanded ten times over for vulnerable points of the highest importance. Still, we felt bound to do our utmost to go to their aid, even at violent derangement of our own preparations and interests. Narvik, it seemed, could certainly be seized and defended with benefit to the whole Allied cause. Here the King of Norway might fly his flag unconquered. Trondheim might be fought for, at any rate as a means of delaying the northward advance of the invader until Narvik could be regained and made the base of an army. This, it seemed, could be maintained from the sea at a strength superior to anything which could be brought against it by land through five hundred miles of mountain country. The Cabinet heartily approved all possible measures for the rescue and defence of Narvik and Trondheim. The troops which had been released from the Finnish project, and a nucleus kept in hand for Narvik, could soon be ready. They lacked aircraft, anti-aircraft guns, anti-tank guns, tanks, transport, and training. The whole of Northern Norway was covered with snow to depths which none of our soldiers had ever seen, felt, or imagined. There were neither snow-shoes nor skis—still less skiers. We must do our best. Thus began this ramshackle campaign.

* * * * *

There was every reason to believe that Sweden would be the next victim of Germany or Russia, or perhaps even of both. If Sweden came to the aid of her agonised neighbour the military situation would be for the time being transformed. The Swedes had a good army. They could enter Norway easily. They could be at Trondheim in force before the Germans. We could join them there But what would be the fate of Sweden in the months that followed? Hitler's vengeance would lay them low, and the Bear would maul them from the East. On the other hand, the Swedes could purchase neutrality by supplying the Germans with all the iron ore they wanted throughout the approaching summer For Sweden the choice was a profitable neutrality or subjugation She could not be blamed because she did not view the issue from the standpoint of our unready but now eager Island.

After the Cabinet on the morning of April 11 I wrote the following minute, which the sacrifices we were making for the rights of small States and the Law of Nations may justify.

Prime Minister
Foreign Secretary

I am not entirely satisfied with the result of the discussion this morning, or with my contribution to it. What we want is that Sweden should not remain neutral, but declare war on Germany. What we do not want is either to provide the three divisions which we dangled to procure the Finland project, or to keep her fully supplied with food as long as the war lasts, or to bomb Berlin, etc, if Stockholm is bombed. These stakes are more than it is worth while paying at the present time. On the other hand, we should do everything to encourage her into the war by general assurances that we will give all the help we can, that our troops will be active in the Scandinavian peninsula, that we will make common cause with her as good allies, and will not make peace without her, or till she is righted Have we given this impulse to the Anglo-French mission? If not, there is still time to do it. Moreover, our diplomacy should be active at Stockholm.

It must be remembered that Sweden will say "Thank you for nothing" about any offers on our part to defend the Gallivare iron-field. She can easily do this herself Her trouble is to the south, where we can do but little Still, it will be something to assure her that we intend to open the Narvik route to Sweden from the Atlantic by main force as soon as possible, and also that we propose to clean up the German lodgments on the Norwegian coast *seriatim*, thus opening other channels

If the great battle opens in Flanders the Germans will not have much

to spare for Scandinavia, and if, on the other hand, the Germans do not attack in the West we can afford to send troops to Scandinavia in proportion as German divisions are withdrawn from the Western Front It seems to me we must not throw cold water on the French idea of trying to induce the Swedes to enter the war. It would be disastrous if they remained neutral and bought Germany off with ore from Gallivare, down the Gulf of Bothnia

I must apologise for not having sufficiently gripped this issue in my mind this morning, but I only came in after the discussion had begun, and did not address myself properly to it

There was justice in the Foreign Secretary's reply, by which I was convinced. He said that the Prime Minister and he agreed with my general view, but doubted the method I favoured of approaching Sweden.

April 11, 1940

From all the information that we have from Swedish sources that are friendly to the Allies, it appears that any representations that can be readily translated in their mind into an attempt by us to drag them into the war will be likely to have an effect opposite to that which we want Their immediate reaction would be that we were endeavouring to get them to do what, until we have established a position in one or more of the Norwegian ports, we were unable or unwilling to do ourselves And accordingly the result would do us more harm than good

* * * * *

It was easy to regather at short notice the small forces for a Narvik expedition which had been dispersed a few days earlier One British brigade and its ancillary troops began to embark immediately, and the first convoy sailed for Narvik on April 12 This was to be followed in a week or two by three battalions of Chasseurs Alpins and other French troops There were also Norwegian forces north of Narvik which would help our landings. Major-General Mackesy had been selected on April 5 to command any expedition which might be sent to Narvik His instructions were couched in a form appropriate to the case of a friendly neutral Power from whom some facilities are required They contained among their appendices the following reference to bombardment

It is clearly illegal to bombard a populated area in the hope of hitting a legitimate target which is known to be in the area but which cannot be precisely located and identified

In the face of the German onslaught new and stiffer instructions were issued to the General on the 10th They gave him more latitude, but did not cancel this particular injunction. Their substance was as follows·

> His Majesty's Government and the Government of the French Republic have decided to send a Field Force to initiate operations against Germany in Northern Norway. The object of the force will be to eject the Germans from the Narvik area and establish control of Narvik itself . Your initial task will be to establish your force at Harstad, ensure the co-operation of Norwegian forces that may be there, and obtain the information necessary to enable you to plan your further operations It is not intended that you should land in the face of opposition. You may however be faced with opposition owing to mistaken identity, you will therefore take such steps as are suitable to establish the nationality of your force before abandoning the attempt The decision whether to land or not will be taken by the senior naval officer in consultation with you If landing is impossible at Harstad some other suitable locality should be tried A landing must be carried out when you have sufficient troops

At the same time a personal letter from General Ironside, the C I.G S., was given to General Mackesy, which included the remark

> You may have a chance of taking advantage of naval action, and should do so if you can Boldness is required

This struck a somewhat different note from the formal instructions

My contacts with Lord Cork and Orrery had become intimate in the long months during which the active discussions of Baltic strategy had proceeded In spite of some differences of view about "Catherine", his relations with the First Sea Lord were good I was fully conscious from long and hard experience of the difference between pushing things audaciously on paper so as to get them explored and tested—the processes of mental reconnaissance-in-force—and actually doing them or getting them done Admiral Pound and I were both agreed from slightly different angles that Lord Cork should command the naval forces in this amphibious adventure in the North We both urged him not to hesitate to run risks, but to strike hard to seize Narvik. As we were all agreed and could talk things over together, we left him excep-

tional discretion and did not give him any written orders He knew exactly what we wanted In his dispatch he says, " My impression on leaving London was quite clear that it was desired by His Majesty's Government to turn the enemy out of Narvik at the earliest possible moment, and that I was to act with all promptitude in order to attain this result."

Our Staff work at this time had not been tempered by war experience, nor was the action of the Service departments concerted except by the meetings of the Military Co-ordination Committee, over which I had just begun to preside Neither I, as chairman of the Committee, nor the Admiralty were made acquainted with the War Office instructions to General Mackesy, and as the Admiralty directions had been given orally to Lord Cork there was no written text to communicate to the War Office The instructions of the two departments, although animated by the same purpose, were somewhat different in tone and emphasis, and this may have helped to cause the divergences which presently developed between the military and naval commanders.

Lord Cork sailed from Rosyth at high speed in the *Aurora* on the night of April 12 * He had intended to meet General Mackesy at Harstad, a small port on the island of Hinnoy, in Vaags Fiord, which, although sixty miles from Narvik, had been selected as the military base However, on the 14th he received a signal from Admiral Whitworth in the *Warspite*, who had exterminated all the German destroyers and supply ships the day before, saying, "I am convinced that Narvik can be taken by direct assault now without fear of meeting serious opposition on landing I consider that the main landing force need only be small " Lord Cork therefore diverted the *Aurora* to Skjel Fiord, in the Lofoten Islands, flanking the approach to Narvik, and sent a message ordering the *Southampton* to join him there His intention was to organise a force for an immediate assault, consisting of two companies of the Scots Guards who had been embarked in the *Southampton*, and a force of seamen and marines from the *Warspite* and other ships already in Skjel Fiord He could not however get in touch with the *Southampton* except, after some delay, through the Admiralty, whose reply contained the following sentence "We think it imperative that you and the General should be together and act together and that no attack should be

* A sketch map of the Narvik operations will be found on page 591

made except in concert." He therefore left Skjel Fiord for Harstad, and led the convoy carrying the 24th Brigade into harbour there on the morning of the 15th. His escorting destroyers sank U 49, which was prowling near by

Lord Cork now urged General Mackesy to take advantage of the destruction of all the German naval force and to make a direct attack on Narvik as soon as possible, but the General replied that the harbour was strongly held by the enemy with machine-gun posts He also pointed out that his transports had not been loaded for an assault, but only for an unopposed landing. He opened his headquarters at the hotel in Harstad, and his troops began to land thereabouts The next day he stated that, on the information available, landing at Narvik was not possible, nor would naval bombardment make it so. Lord Cork considered that with the help of overwhelming gun-fire troops could be landed in Narvik with little loss, but the General did not agree, and could find some cover in his instructions From the Admiralty we urged an immediate assault. A deadlock arose between the military and naval chiefs.

At this time the weather greatly worsened, and dense falls of snow seemed to paralyse all movement by our troops, unequipped and untrained for such conditions. Meanwhile the Germans in Narvik held our ever-growing forces at bay with their machine-guns. Here was a serious and unexpected check.

* * * * *

Most of the business of our improvised campaign passed through my hands, and I prefer to record it as far as possible in my own words at the time The Prime Minister had a strong desire, shared by the War Cabinet, to occupy Trondheim as well as Narvik This Operation "Maurice", as it was called, promised to be a big undertaking According to the records of our Military Co-ordination Committee of April 13, I was

> very apprehensive of any proposals which might tend to weaken our intention to seize Narvik Nothing must be allowed to deflect us from making the capture of this place as certain as possible Our plans against Narvik had been very carefully laid, and there seemed every chance that they would be successful if they were allowed to proceed without being tampered with Trondheim was, on the other hand, a much more speculative affair, and I deprecated any suggestion which

might lead to the diversion of the Chasseurs Alpins until we had definitely established ourselves at Narvik. Otherwise we might find ourselves committed to a number of ineffectual operations along the Norwegian coast, none of which would succeed

At the same time consideration had already been given to the Trondheim area, and plans were being made to secure landing-points in case a larger-scale action should be needed A small landing of naval forces would take place at Namsos that afternoon The Chief of the Imperial General Staff had collected a force of five battalions, two of which would be ready to land on the Norwegian coast on April 16, and three more on April 21 if desired The actual points at which landings were to be made would be decided that night

General Mackesy's original orders had been that, after landing at Narvik, he should push rapidly on to the Gallivare ore-field He has now been told to go no farther than the Swedish frontier, since, if Sweden were friendly, there need be no fear for the ore-fields, and if hostile the difficulties of occupying them would be too great

I also said that:

It might be necessary to proceed to invest the German forces in Narvik But we should not allow the operation to degenerate into an investment except after a very determined battle On this understanding I was willing to send a telegram to the French saying that we hoped and thought that we should be successful in seizing Narvik by a *coup-de-main*. We should explain that this had been made easier by a change in the orders, which did not now require the expedition to go beyond the Swedish frontier.

It was decided by the War Cabinet to attempt both the Narvik and Trondheim operations. The Secretary of State for War, with foresight, warned us that reinforcements for Norway might soon be required from our Army in France, and suggested that we should address the French on the point at a very early date I agreed with this, but thought it premature to approach the French for a day or two. This was accepted The War Cabinet approved a proposal to inform the Swedish and Norwegian Governments that we intended to recapture both Trondheim and Narvik, that we recognised the supreme importance of Trondheim as a strategic centre, but that it was important to secure Narvik as a naval base We added that we had no intention that our forces should proceed over the Swedish frontier. We were at the same time to invite the French Government to

give us liberty to use the Chasseurs Alpins for operations elsewhere than at Narvik, telling them what we were saying to the Swedish and Norwegian Governments Neither I nor Mr. Stanley liked the dispersion of our forces We were still inclined to concentrate all on Narvik, except for diversions elsewhere. But we deferred to the general view, for which there was no lack of good reasons.

* * * * *

On the night of the 16th-17th disappointing news arrived from Narvik. General Mackesy had, it appeared, no intention of trying to seize the town by an immediate assault protected by the close-range bombardment of the Fleet, and Lord Cork could not move him. I stated the position to my Committee as it then appeared

April 17

1. Lord Cork's telegram shows that General Mackesy proposes to take two unoccupied positions on the approaches to Narvik and to hold on there until the snow melts, perhaps at the end of the month The General expects that the first demi-brigade of Chasseurs Alpins will be sent to him, which it certainly will not be This policy means that we shall be held up in front of Narvik for several weeks Meanwhile the Germans will proclaim that we are brought to a standstill and that Narvik is still in their possession The effects of this will be damaging both upon Norwegians and neutrals Moreover, the German fortification of Narvik will continue, requiring a greater effort when the time comes This information is at once unexpected and disagreeable One of the best Regular brigades in the Army will be wasting away, losing men by sickness, and playing no part It is for consideration whether a telegram on the following lines should not be sent to Lord Cork and General Mackesy

"Your proposals involve damaging deadlock at Narvik and the neutralisation of one of our best brigades We cannot send you the Chasseurs Alpins The *Warspite* will be needed elsewhere in two or three days Full consideration should therefore be given by you to an assault upon Narvik, covered by the *Warspite* and the destroyers, which might also operate at Rombaks Fiord The capture of the port and town would be an important success We should like to receive from you the reasons why this is not possible, and your estimate of the degree of resistance to be expected on the waterfront. Matter most urgent"

2 The second point which requires decision is whether the Chasseurs Alpins shall go straight on to join General Carton de Wiart at or beyond Namsos, or whether, as is easy, they should be held back at

Scapa and used for the Trondheim operation on the 22nd or 23rd, together with other troops available for this main attack

3 Two battalions of the 146th Brigade will, it is hoped, have been landed before dawn to-day at Namsos and Bandsund The 3rd Battalion, in the *Chrobry*, will make a dangerous voyage to-morrow to Namsos, arriving, if all is well, about dusk, and landing The anchorage of Lillejonas was bombed all the afternoon without the two transports being hit, and the large 18,000-tonner is now returning empty to Scapa Flow If the leading Chasseurs Alpins are to be used at Namsos they must go there direct instead of making rendezvous at Lillejonas

4 The question of whether the forces now available for the main attack on Trondheim are adequate must also be decided to-day The two Guards battalions that were to be mobilised, *i e*, equipped, cannot be ready in time The two French Foreign Legion battalions cannot arrive in time A Regular brigade from France can however be ready to sail from Rosyth on the 20th The first and second demi-brigades of the Chasseurs Alpins can also be in time A thousand Canadians have been made available There is also a brigade of Territorials Is this enough to prevail over the Germans in Trondheim? The dangers of delay are very great and need not be restated

5 Admiral Holland leaves to-night to meet the Commander-in-Chief Home Fleet on his return to Scapa on the 18th, and he must carry with him full and clear decisions It may be taken as certain that the Navy will cheerfully undertake to carry troops to Trondheim

6 It is probable that fighting will take place to-night and to-morrow morning for the possession of Andalsnes We hope to have landed an advance party from the cruiser *Calcutta*, and are moving sufficient cruisers to meet a possible attack by five enemy destroyers at dawn

7 The naval bombardments of Stavanger aerodrome will begin at dawn [to-day]

The Committee agreed to the telegram, which was accordingly sent It produced no effect It must remain a matter of opinion whether such an assault would have succeeded It involved no marches through the snow, but, on the other hand, landings from open boats both in Narvik harbour and in Rombaks Fiord, under machine-gun fire I counted upon the effect of close-range bombardment by the tremendous ship's batteries, which would blast the waterfronts and cover with smoke and clouds of snow and earth the whole of the German machine-gun posts Suitable high-explosive shells had been provided by the Admiralty both for the battleship and the destroyers. Certainly Lord Cork, on

the spot and able to measure the character of the bombardment, was strongly in favour of making the attempt. We had over four thousand of our best Regular troops, including the Guards Brigade and Marines, who, once they set foot on shore, would become intermingled at close quarters with the German defenders, whose regular troops, apart from the crews rescued from the sunken destroyers, we estimated, correctly as we now know, at no more than half their number. This would have been considered a fair proposition on the Western Front in the previous war, and no new factors were at work here. Later on in this war scores of such assaults were made and often succeeded. Moreover, the orders sent to the commanders were of such a clear and imperative character, and so evidently contemplated heavy losses, that they should have been obeyed. The responsibility for a bloody repulse would fall exclusively on the home authorities, and very directly upon me. I was content that this should be so, but nothing I or my colleagues or Cork could do or say produced the slightest effect on the General. He was resolved to wait till the snow melted. As for the bombardment, he could point to the paragraph in his instructions against endangering the civil population. When we contrast this spirit with the absolutely reckless gambling in lives and ships and the almost frenzied vigour, based upon long and profound calculations, which had gained the Germans their brilliant success, the disadvantages under which we lay in waging this campaign are obvious.

CHAPTER XXXV

TRONDHEIM

A Key Objective – The Obvious Plan – Operation "Hammer" – Attitude of the Commander-in-Chief Home Fleet – Choice of Generals – A Chapter of Accidents – Situation on April 14 – Situation on April 17 – Second Thoughts of the Staffs – Power of Unopposed Air Force – The Change of Plan – Sir Roger Keyes' Desires and Credentials – My Report to the Co-ordination Committee of April 19 – The War Cabinet Accept the Abandonment of "Hammer" – Urgency of Narvik, April 20 – General Ismay's Summary.

TRONDHEIM, if it were within our strength, was of course the key to any considerable operations in Central Norway. To gain it meant a safe harbour with quays and docks upon which an army of 50,000 men or more could be built up and based. Near by was an air-field from which several fighter squadrons could work. The possession of Trondheim would open direct railway contact with Sweden, and greatly improve the chances of Swedish intervention or the degree of mutual aid possible if Sweden were herself attacked. From Trondheim alone the northward advance of the German invasion from Oslo could be securely barred. On the broadest grounds of policy and strategy it would be good for the Allies to fight Hitler on the largest possible scale in Central Norway, if that was where he wanted to go. Narvik, far away to the north, could be stormed or reduced at leisure and would all the while be protected. We had the effective command of the sea. As to the air, if we could establish ourselves firmly on Norwegian airfields we should not hesitate to fight the German Air Force there to any extent which the severely limiting conditions allowed to either side.

All these reasons had simultaneously convinced the French War Council, the British War Cabinet, and most of their advisers. The British and French Prime Ministers were at one. General Gamelin

was willing to withdraw French or release British divisions from France for Norway to the same extent that the Germans diverted their forces thither. He evidently welcomed a prolonged battle on a large scale south of Trondheim, where the ground was almost everywhere favourable to defence. It seemed that we could certainly bring forces and supplies to the scene across the open sea and through Trondheim far quicker than the Germans could fight their way up the single road and railway-line from Oslo, both of which might be cut behind them by bombs or parties dropped from the air. The only question was, could we take Trondheim in time? Could we get there before the main enemy army arrived from the south? and for this purpose could we obtain even a passing relief from their present unchallenged air domination?

There was a surge of opinion in favour of Trondheim which extended far beyond Cabinet circles. The advantages were so obvious that all could see them. The public, the clubs, the newspapers and their military correspondents had for some days past been discussing such a policy freely. My great friend Admiral of the Fleet Sir Roger Keyes, champion of forcing the Dardanelles, hero and victor of Zeebrugge, passionately longed to lead the Fleet or any portion of it past the batteries into the Trondheim Fiord and storm the town by landings from the sea. The appointment of Lord Cork, also an Admiral of the Fleet, to command the naval operations at Narvik although he was senior to the Commander-in-Chief, Admiral Forbes, himself, seemed to remove the difficulties of rank. Admirals of the Fleet are always on the active list, and Keyes had many contacts at the Admiralty. He spoke and wrote to me repeatedly with vehemence, reminding me of the Dardanelles and how easily the straits could have been forced if we had not been stopped by timid obstructionists. I also pondered a good deal upon the lessons of the Dardanelles. Certainly the Trondheim batteries and any minefields that might have been laid were trivial compared with those we had then had to face. On the other hand, there was the aeroplane, capable of dropping its bombs on the unprotected decks of the very few great ships which now constituted the naval power of Britain on the oceans.

At the Admiralty the First Sea Lord and the Naval Staff generally did not shrink from the venture. On April 13 the

Admiralty had officially informed the Commander-in-Chief of the Supreme Council's decision to allot troops for the capture of Trondheim, and had raised with him in a positive manner the question whether the Home Fleet should not force the passage

> Do you consider [the message ran] that the shore batteries could be either destroyed or dominated to such an extent as to permit transports to enter? If so, how many ships and what type would you propose?

On this Admiral Forbes asked for details about the Trondheim defences He agreed that the shore batteries might be destroyed or dominated in daylight by battleships, if provided with suitable ammunition None was carried at that moment in Home Fleet ships The first and most important task, he said, was to protect troopships from heavy air attack over the thirty-miles approach through narrow waters, and the next to carry out an opposed landing of which ample warning had been given In the circumstances he did not consider the operation feasible

The Naval Staff persisted in their view, and the Admiralty, with my earnest agreement, replied on April 15 as follows

> We still think that the operation described should be further studied It could not take place for seven days, which would be devoted to careful preparation Danger from air not appreciably less wherever these large troopships are brought into the danger zone Our idea would be that in addition to R A F bombing of Stavanger aerodrome *Suffolk* should bombard with high explosive at dawn, hoping thereby to put the aerodrome out of business The aerodrome at Trondheim could be dealt with by Fleet Air Arm bombers and subsequently by bombardment High-explosive shells for 15-inch guns have been ordered to Rosyth *Furious* and First Cruiser Squadron would be required for this operation Pray therefore consider this important project further

Admiral Forbes, although not fully convinced of its soundness, therefore addressed himself to the project in an increasingly favourable mood In a further reply he said that he did not anticipate great difficulties from the naval side, except that he could not provide air defence for the transports while carrying out the landing The naval force required would be the *Valiant* and *Renown* to give air defence to the *Glorious*, the *Warspite* to bombard, at least four ack-ack cruisers, and about twenty destroyers.

* * * * *

While plans for the frontal attack on Trondheim from the sea were being advanced with all speed, two subsidiary landings were already in progress designed to envelop the town from the landward side. Of these the first was a hundred miles to the north, at Namsos, where Major-General Carton de Wiart, V.C., had been chosen to command the troops, with orders "to secure the Trondheim area". He was informed that the Navy were making a preliminary lodgment with a party about three hundred strong in order to take and hold points for his disembarkation. The idea was that two infantry brigades and a light division of Chasseurs Alpins should land hereabouts in conjunction with the main attack by the Navy upon Trondheim, Operation "Hammer". For this purpose the 146th Brigade and the Chasseurs Alpins were being diverted from Narvik. Carton de Wiart started forthwith in a flying-boat, and reached Namsos under heavy air attack on the evening of the 15th. His staff officer was wounded, but he took effective charge on the spot. The second landing was at Andalsnes, about a hundred and fifty miles by road to the south-west of Trondheim. Here also the Navy had made a lodgment, and on April 18 Brigadier Morgan with a military force arrived and took command. Lieutenant-General Massy was appointed Commander-in-Chief of all the forces operating in Central Norway. This officer had to exercise his command from the War Office because there was as yet no place for his headquarters on the other side.

* * * * *

On the 15th I reported that all these plans were being developed, but the difficulties were serious. Namsos was under four feet of snow and offered no concealment from the air. The enemy enjoyed complete air mastery, and we had neither anti-aircraft guns nor any airfield from which protecting squadrons might operate. Admiral Forbes had not, I said, at first been very keen on forcing his way into Trondheim because of the risk of air attack. It was of course of first importance that the Royal Air Force should continue to harass the Stavanger airfield, by which the enemy aeroplanes were passing northwards. The *Suffolk* would bombard the Stavanger airfield with her 8-inch guns on April 17. This was approved and the bombardment took place as planned. Some damage was done to the airfield, but during

her withdrawal the *Suffolk* was continuously bombed for seven hours She was heavily hit, and reached Scapa Flow the following day with her quarterdeck awash

* * * * *

The Secretary of State for War had now to nominate a Military Commander The auspices were unfavourable Colonel Stanley's first choice fell upon Major-General Hotblack, who was highly reputed, and on April 17 he was briefed for his task at a meeting of the Chiefs of Staff held in the Admiralty That night at 12 30 a m he had a fit on the Duke of York's Steps, and was picked up unconscious some time later He had luckily left all his papers with his staff, who were working on them. The next morning Brigadier Berney-Ficklin was appointed to succeed Hotblack He too was briefed, and started by train for Edinburgh On April 19 he and his staff left by air for Scapa. They crashed on the airfield at Kirkwall, and the pilot was seriously injured. Every day counted

On April 17 I explained in outline to the Supreme War Council the plan which the staffs were making for the landing at Trondheim. The forces immediately available were one Regular brigade from France (2,500 strong), 1,000 Canadians, and about 1,000 men of a Territorial brigade as a reserve. The Military Co-ordination Committee had been advised that the forces available were adequate and that the risks, although very considerable, were justified The operation would be supported by the full strength of the Fleet, and two carriers would be available, with a total of about 100 aircraft, including 45 fighters The provisional date for the landing was April 22 The second demi-brigade of Chasseurs Alpins would not reach Trondheim until April 25, when it was hoped they would be able to disembark at the quays at Trondheim

Asked whether the Chiefs of Staff were in agreement with the plans as outlined, the Chief of the Air Staff said on their behalf and in their presence that they were The operation was of course attended by considerable risks, but these were worth running. The Prime Minister agreed with this view, and emphasised the importance of air co-operation The War Cabinet gave cordial approval to the enterprise I did my best to have it carried out.

Up to this point all the staffs and their chiefs had seemed resolved upon the central thrust at Trondheim Admiral Forbes was actively preparing to strike, and there seemed no reason why the date of the 22nd should not be kept Although Narvik was my pet, I threw myself with increasing confidence into this daring adventure, and was willing that the Fleet should risk the petty batteries at the entrance to the fiord, the possible minefields, and, most serious, the air The ships carried what was in those days very powerful anti-aircraft armament. A group of ships had a combined overhead fire-power which few aircraft would care to encounter at a distance where bombing would be accurate. I must here explain that the power of an air force is terrific when there is nothing to oppose it The pilots can fly as low as they please, and are often safer fifty feet off the ground than high up. They can cast their bombs with precision and use their machine-guns on troops with no more risk than that of a lucky rifle-bullet These hard conditions had to be faced by our small expeditions at Namsos and Andalsnes, but the Fleet, with its A.A batteries and a hundred seaborne aeroplanes, might well be superior during the actual operation to any air-power the enemy could bring If Trondheim were taken, the neighbouring airfield of Vaernes would be in our hands, and in a few days we could have not only a considerable garrison in the town but also several fighter squadrons of the R.A.F in action. Left to myself, I would have stuck to my first love, Narvik, but, serving as I did a loyal chief and friendly Cabinet, I now looked forward to this exciting enterprise to which so many staid and cautious Ministers had given their strong adherence, and which seemed to find much favour with the Naval Staff and indeed among all our experts. Such was the position on the 17th

Meanwhile I felt that we should do our utmost to keep the King of Norway and his advisers informed of our plans by sending him an officer who understood the Norwegian scene and could speak with authority. Admiral Sir Edward Evans was well suited to this task, and was sent to Norway by air through Stockholm to make contact with the King at his headquarters There he was to do everything possible to aid the Norwegian Government in their resistance and explain the measures which the British Government were taking to assist them. From April 22 he was for some days in consultation with the King and the

principal Norwegian authorities, helping them to understand both our plans and our difficulties.

*   *   *   *   *

During the 18th a vehement and decisive change in the opinions of the Chiefs of Staff and of the Admiralty occurred. This change was brought about first by increasing realisation of the magnitude of the naval stake in hazarding so many of our finest capital ships, and also by War Office arguments that even if the Fleet got in and got out again the opposed landing of the troops in the face of the German air-power would be perilous. On the other hand, the landings which were already being successfully carried out both north and south of Trondheim seemed to all these authorities to offer a far less dangerous solution. The Chiefs of Staff drew up a long paper opposing Operation "Hammer".

This began with a reminder that a combined operation involving an opposed landing was one of the most difficult and hazardous operations of war. The Chiefs of Staff had always realised that this particular operation would involve very serious risks, for, owing to the urgency of the situation, there had not been time for the detailed and meticulous preparation which should have been given to an operation of this character, and as there had been no reconnaissance or air photographs the plan had been worked out from maps and charts. The plan had the further disadvantage that it would involve concentrating almost the whole of the Home Fleet in an area where it could be subjected to heavy attack from the air. There were also new factors in the situation which should be taken into account. We had seized the landing places at Namsos and Andalsnes and established forces ashore there; there were reliable reports that the Germans were improving the defences at Trondheim, and reports of our intentions to make a direct landing at Trondheim had appeared in the Press. On reconsidering the original project in the light of these new factors the Chiefs of Staff unanimously recommended a change of plan.

They still thought it essential that we should seize Trondheim and use it as a base for subsequent operations in Scandinavia, but they urged that, instead of the direct frontal assault, we should take advantage of our unexpected success in landing forces at Namsos and Andalsnes and develop a pincers movement on

Trondheim from north and south. By this means, they declared, we could turn a venture which was attended by grave hazards into an operation which could achieve the same results with much less risk. By this change of plan the Press reports of our intentions could also be turned to our advantage; for by judicious leakages we could hope to leave the enemy under the impression that we still intended to persist in our original plan. The Chiefs of Staff therefore recommended that we should push in the maximum forces possible at Namsos and Andalsnes, seize control of the road and rail communications running through Dombas, and envelop Trondheim from the north and south. Shortly before the main landings at Namsos and Andalsnes the outer forts at Trondheim should be bombarded from the sea with a view to leading the enemy to suppose that a direct assault was due to take place. We should thus invest Trondheim by land and blockade it by sea, and although its capture would take longer than originally contemplated, our main forces might be put ashore at a slightly earlier date. Finally, the Chiefs of Staff pointed out that such an enveloping operation, as opposed to a direct assault, would release a large number of valuable units of the Fleet for operations in other areas, *e g*, at Narvik. These powerful recommendations were put forward with the authority not only of the three Chiefs of Staff, but of their three able deputies, including Admiral Tom Phillips and Sir John Dill, newly appointed.

No more decisive stopper on a positive amphibious plan can be imagined, nor have I seen a Government or Minister who would have overridden it. Under the prevailing arrangement the Chiefs of Staff worked as a separate and largely independent body, without guidance or direction from the Prime Minister or any effective representative of the supreme executive power. Moreover, the leaders of the three Services had not yet got the conception of the war as a whole, and were influenced unduly by the departmental outlook of their own Services They met together, after talking things over with their respective Ministers, and issued *aide-mémoires* or memoranda which carried enormous weight. Here was the fatal weakness of our system of conducting war at this time

When I became aware of this right-about-turn I was indignant, and questioned searchingly the officers concerned It was soon plain to me that all professional opinion was now adverse to the

operation which only a few days before it had spontaneously espoused. Of course there was at hand, in passionate ardour for action and glory, Sir Roger Keyes He was scornful of these belated fears and second thoughts. He volunteered to lead a handful of older ships with the necessary transports into Trondheim Fiord, land the troops, and storm the place, before the Germans got any stronger. Roger Keyes had formidable credentials of achievement In him there burned a flame It was suggested in the May debates that "the iron of the Dardanelles had entered into my soul", meaning that on account of my downfall on that occasion I had no longer the capacity to dare, but this was really not true The difficulties of acting from a subordinate position in the violent manner required are of the first magnitude.

Moreover, the personal relations of the high naval figures involved were peculiar Roger Keyes, like Lord Cork, was senior to the Commander-in-Chief and the First Sea Lord. Admiral Pound had been for two years Keyes' Staff Officer in the Mediterranean For me to take Roger Keyes' advice against his would have entailed his resignation, and Admiral Forbes might well have asked to be relieved of his command It was certainly not my duty in the position I held to confront the Prime Minister and my War Cabinet colleagues with these personal dramas at such a time, and upon an operation which, for all its attractiveness and interest, was essentially minor even in relation to the Norwegian campaign, to say nothing of the general war. I therefore had no doubt that we must accept the Staff view in spite of their change of mind and the obvious objections that could be raised against their mutilated plan.

I accordingly submitted to the abandonment of "Hammer" I reported the facts to the Prime Minister on the afternoon of the 18th, and though bitterly disappointed he, like me, had no choice but to accept the new position In war, as in life, it is often necessary, when some cherished scheme has failed, to take up the best alternative open, and if so it is folly not to work for it with all your might I therefore turned my guns round too. I reported in writing to the Co-ordinating Committee on April 19 as follows:

1 The considerable advance made by Carton de Wiart, the very easy landings we have had at Andalsnes and other ports in this southern

fiord, the indiscretions of the Press, pointing to a storm of Trondheim, and the very heavy naval forces required for this operation called "Hammer", with the undoubted major risk of keeping so many valuable ships so many hours under close air attack, have led the Chiefs of Staff and their deputies to advise that there should be a complete alteration of the emphasis between the two pincers attacks and the centre attack, in the following sense that the main weight should be thrown into the northern and southern pincers, and that the central attack on Trondheim should be reduced to a demonstration

2. Owing to the rapidity with which events and opinions have moved, it became necessary to take a decision, of which the Prime Minister had approved, as set out above, and orders are being issued accordingly

3. It is proposed to encourage the idea that a central attack upon Trondheim is afoot, and to emphasise this by a bombardment by battleships of the outer forts at the suitable moment.

4 Every effort will be made to strengthen Carton de Wiart with artillery, without which his force is not well composed

5 All the troops we have now under orders for "Hammer" will be shoved in as quickly as possible, mostly in warships, at the various ports of the Romsdal Fiord, to press on to Dombas, and then, some delaying force being sent southward to the Norwegian main front, the bulk will turn north towards Trondheim There is already one brigade (Morgan's) ashore beyond Andalsnes, with the 600 Marines The brigade from France and the supporting Territorial brigade will all be thrown in here as quickly as possible. This should enable Dombas to be secured, and the control to be extended to the more easterly of the two Norwegian railways running from Oslo to Trondheim, Storen being a particularly advantageous point The destination of the second demi-brigade of Chasseurs Alpins, the two battalions of the French Foreign Legion, and the thousand Canadians can for to-day or to-morrow be left open

6. The position of the Namsos force must be regarded as somewhat hazardous, but its commander is used to taking risks On the other hand, it is not seen why we cannot bring decisive superiority to bear along the Andalsnes-Dombas railway, and operate as occasion serves beyond that most important point, the object being the isolation of Trondheim and its capture

7. Although this change of emphasis is to be deprecated on account of its being a change, it must be recognised that we move from a more hazardous to a less hazardous operation, and greatly reduce the strain upon the Navy involved in "Hammer" It would seem that our results would be equally achieved by the safer plan, and it does not follow

that they will be delayed We can certainly get more men sooner on to Norwegian soil by this method than the other

8 It is not possible to deprive Narvik of its battleship at the moment when we have urged strenuous action *Warspite* has therefore been ordered to return [there] Some further reinforcement will be required for Narvik, which must be studied at once. The Canadians should be considered

9 At the same time the sweep of the Skagerrak will now become possible, to clear away the enemy anti-submarine craft and aid our submarines

The next day I explained to the War Cabinet the circumstances in which it had been decided to call off the direct assault on Trondheim, and stated that the new plan which the Prime Minister had approved was broadly to send the whole of the 1st Light Division of Chasseurs Alpins to General Carton de Wiart for his attack on the Trondheim area from the north, and to send the regular brigades from France to reinforce Brigadier Morgan, who had landed at Andalsnes and had pushed on troops to hold Dombas. Another Territorial brigade would be put in on the southern line. It might be possible to push part of this southern force right forward to reinforce the Norwegians on the Oslo front We had been fortunate in getting all our troops ashore without loss so far (except of the ship carrying all Brigadier Morgan's vehicles), and the present plans provided for the disembarkation of some 25,000 men by the end of the first week in May. The French had offered two more light divisions The chief limiting factor was the provision of the necessary bases and lines of communication on which the forces were to be maintained These would be liable to heavy air attack.

The Secretary of State for War then said that the new plan was little less hazardous than the direct attack on Trondheim. Until we had secured the Trondheim aerodrome little could be done to offset the heavy scale of enemy air attack Nor was it altogether correct to describe the new plan as a "pincers movement" against Trondheim, since while the northern force would bring pressure to bear in the near future, the first task of the southern force must be to secure themselves against a German attack from the south It might well be a month before any serious move could be made against Trondheim from this direction. This was a sound criticism. General Ironside however strongly supported the new

movement, expressing the hope that General Carton de Wiart, who when reinforced by the French would have, he said, quite a large force at his disposal, a large part of which would be highly mobile, might get astride the railway from Trondheim to Sweden. The troops already at Dombas had no guns or transport They should however be able to hold a defensive position I then added that the direct assault on Trondheim had been deemed to involve undue risk both to the Fleet and to our landing-parties. If in the course of a successful assault the Fleet were to lose a capital ship by enemy air action this loss would have to be set against the success of the operation. Again, it was obvious that the landing parties might suffer heavy casualties, and General Massy took the view that the stake was out of proportion to the results desired, particularly as these could be obtained by other methods The Secretary of State for War, having justly pointed out that these other methods offered no sure or satisfactory solution, was content they should be tried. It was evident to us all that we had in fact only a choice of unpleasant courses before us, and also a compulsion to act. The War Cabinet endorsed the transformation of the plan against Trondheim.

I now reverted to Narvik, which seemed at once more important and more feasible since the attack on Trondheim was abandoned, and addressed a note to my Committee as follows:

The importance and urgency of reaching a decision at Narvik can hardly be overrated If the operations become static the situation will deteriorate for us. When the ice melts in the Gulf of Bothnia, at the latest in a month from now, the Germans may demand of the Swedes free passage for their troops through the ore-field in order to reinforce their people in Narvik, and may also demand control of the ore-field They might promise Sweden that if she agreed to this in the far North she would be let entirely alone in the rest of the country. Anyhow, we ought to take it for granted that the Germans will try to enter the ore-field and carry succour to the Narvik garrison by force or favour. We have therefore at the outside only a month to spare

2 In this month we have not only to reduce and capture the town and the landed Germans, but to get up the railway to the Swedish frontier and to secure an effective, well-defended seaplane base on some lake, in order, if we cannot obtain control of the ore-field, to prevent its being worked under German control It would seem necessary that at least 3,000 [more] good troops should be directed upon Narvik forthwith, and should reach there by the end of the first week in May

at latest. The orders for this should be given now, as nothing will be easier than to divert the troops if in the meanwhile the situation is cleared up. It would be a great administrative advantage if these troops were British, but if this cannot be managed for any reason, could not the leading brigade of the Second French Light Division be directed upon Narvik? There ought to be no undue danger in bringing a big ship into Skjel Fiord or thereabouts

3. I should be very glad if the Deputy Chief of Naval Staff could consult with an officer of equal standing in the War Office upon how this need can be met, together with ships and times Failure to take Narvik will be a major disaster, and will carry with it the control by Germany of the ore-field.

The general position as it was viewed at this moment cannot be better stated than in a paper written by General Ismay on April 21.

The object of operations at Narvik is to capture the town and obtain possession of the railway to the Swedish frontier We should then be in a position to put a force, if necessary, into the Gallivare ore-fields, the possession of which is the main objective of the whole of the operations in Scandinavia

As soon as the ice melts in Luleå, in about a month's time, we must expect that the Germans will obtain, by threats or force, a passage for their troops, in order that they themselves may secure Gallivare and perhaps go forward and reinforce their troops at Narvik It is therefore essential that Narvik should be liquidated in about a month

The object of operations in the Trondheim area is to capture Trondheim, and thereby obtain a base for further operations in Central Norway, and Sweden if necessary Landings have been made at Namsos on the north of Trondheim and Andalsnes on the south. The intention is that the Namsos force will establish itself astride the railway running eastward from Trondheim, thus encircling the Germans there on the east and north-east The force landed at Andalsnes has as its first *rôle* the occupation of a defensive position, in co-operation with the Norwegians at Lillehammer, to block any reinforcement of Trondheim from the main German landing at Oslo The roads and railways between Oslo and Trondheim have both to be covered When this has been achieved some troops will work northward and bring pressure to bear on Trondheim from the south

At the present moment our main attention is directed to the Trondheim area It is essential to support the Norwegians and ensure that Trondheim is not reinforced The capture of Narvik is not at the present moment so urgent, but it will become increasingly so as the

thaw in the Gulf of Bothnia approaches. If Sweden enters the war Narvik becomes the vital spot.

The operations in Central Norway which are now being undertaken are of an extremely hazardous nature, and we are confronted with serious difficulties. Among these the chief are, first, that the urgent need of coming to the assistance of the Norwegians without delay has forced us to throw ashore hastily-improvised forces—making use of whatever was readily available; secondly, that our entry into Norway is perforce through bases which are inadequate for the maintenance of big formations The only recognised base in the area is Trondheim, which is in the hands of the enemy. We are making use of Namsos and Andalsnes, which are only minor ports, possessing few, if any, facilities for unloading military stores, and served by poor communications with the interior. Consequently, the landing of mechanical transport, artillery, supplies, and petrol (nothing is obtainable locally) is a matter which, even if we were not hampered in other ways, would present considerable difficulty Thus, until we succeed in capturing Trondheim the size of the forces which we can maintain in Norway is strictly limited

Of course it may be said that all Norwegian enterprises, however locally successful, to which we might have committed ourselves would have been swept away by the results of the fearful battle in France which was now so near Within a month the main Allied armies were to be shattered or driven into the sea. Everything we had would be drawn into the struggle for life It was therefore lucky for us that we were not able to build up a substantial army and air force round Trondheim The veils of the future are lifted one by one, and mortals must act from day to day On the knowledge we had in the middle of April, I remain of the opinion that, having gone so far, we ought to have persisted in carrying out Operation "Hammer" and the threefold attack on Trondheim, on which all had been agreed, but I accept my full share of responsibility for not enforcing this upon our expert advisers when they became so decidedly adverse to it and presented us with serious objections In that case however it would have been better to abandon the whole enterprise against Trondheim and concentrate all upon Narvik But for this it was now too late. Many of the troops were ashore, and the Norwegians crying for help.

CHAPTER XXXVI

FRUSTRATION IN NORWAY

Lord Cork Appointed to the Supreme Command at Narvik – His Letter to Me – General Mackesy's Protest against Bombardment – The Cabinet's Reply – The Eighth Meeting of the Supreme War Council, April 22 – German and Allied Strength on Land and in the Air – The Scandinavian Tangle – Decisions upon Trondheim and Narvik – A Further Change in Control – Directive of May 1 – The Trondheim Operation – The Namsos Failure – Paget in the Andalsnes Excursion – Decision of the War Cabinet to Evacuate Central Norway – The Mosjoen Fiasco – My Report of May 4 – Gubbins' Force – The German Northward Advance – German Superiority in Method and Quality

ON *APRIL* 20 I had procured agreement to the appointment of Lord Cork as sole commander of the naval, military, and air forces in the Narvik areas, thus bringing General Mackesy directly under his authority There was never any doubt of Lord Cork's vigorously offensive spirit He realised acutely the danger of delay, but the physical and administrative difficulties were far greater on the spot than we could measure at home Moreover, naval officers, even when granted the fullest authority, are chary of giving orders to the Army about purely military matters This would be even more true if the positions were reversed We had hoped that by relieving General Mackesy from direct major responsibility we should make him feel more free to adopt bold tactics The result was contrary to this expectation He continued to use every argument, and there was no lack of them, to prevent drastic action Things had changed to our detriment in the week that had passed since the idea of an improvised assault upon Narvik Town had been rejected The 2,000 German soldiers were no doubt working night and day at

their defences, and these and the town all lay hidden under a pall of snow The enemy had no doubt by now also organised two or three thousand sailors who had escaped from the sunken destroyers. Their arrangements for bringing air-power to bear improved every day, and both our ships and landed troops endured increasing bombardment On the 21st Lord Cork wrote to me as follows:

I write to thank you for the trust you have reposed in me. I shall certainly do my best to justify it The inertia is difficult to overcome, and of course the obstacles to the movement of troops are considerable, particularly the snow, which on northern slopes of hills is still many feet deep I myself have tested that, and as it has been snowing on and off for two days the position has not improved. The initial error was that the original force started on the assumption they would meet with no resistance, a mistake we often make—*e g* , Tanga.* As it is, the soldiers have not yet got their reserves of small arms ammunition, or water, but tons of stuff and personnel they do not want . .

What is really our one pressing need is fighters, we are so overmatched in the air There is a daily inspection of this place, and they come when there are transports or steamers to bomb Sooner or later they must get a hit I flew over Narvik yesterday, but it was very difficult to see much The rocky cliff is covered with snow, except for rock outcrops, round which the drifts must be deep. It is snow down to the water's edge, which makes it impossible to see the nature of the foreshore

While waiting for the conditions necessary for an attack we are isolating the town from the world by breaking down the railway culverts, etc , and the large ferry steamer has been shelled and burnt. . . . It is exasperating not being able to get on, and I quite understand your wondering why we do not, but I assure you that it is not from want of desire to do so

Lord Cork decided upon a reconnaissance in force, under cover of a naval bombardment, but here General Mackesy interposed. He stated that before the proposed action against Narvik began he felt it his duty to represent that there was no officer or man in his command who would not feel ashamed for himself and his country if thousands of Norwegian men, women, and children in Narvik were subjected to the proposed bombardment Lord Cork contented himself with forwarding this statement without comment. Neither the Prime Minister nor I could be present at

* The landing at Tanga, near Zanzibar, in 1914.

the Defence Committee meeting on April 22, as we had to attend the Supreme War Council in Paris on that day. Before leaving I had drafted a reply which was approved by our colleagues:

> I presume that Lord Cork has read the Bombardment Instructions issued at the outbreak of war If he finds it necessary to go beyond these instructions on account of the enemy using the shelter of buildings to maintain himself in Narvik, he may deem it wise to give six hours' warning by every means at his disposal, including, if possible, leaflets, and to inform the German commander that all civilians must leave the town, and that he would be held responsible if he obstructed their departure He might also offer to leave the railway line unmolested for a period of six hours to enable civilians to make good their escape by that route.

The Defence Committee endorsed this policy, strongly expressing the view that "it would be impossible to allow the Germans to convert Norwegian towns into forts by keeping the civilians in the towns to prevent us from attacking"

* * * * *

We arrived in Paris with our minds oppressed by the anxieties and confusion of the campaign in Norway, for the conduct of which the British were responsible. But M Reynaud, having welcomed us, opened with a statement on the general military position which by its gravity dwarfed our joint Scandinavian excursions Geography, he said, gave Germany the permanent advantage of interior lines. She had 190 divisions, of which 150 could be used on the Western Front Against these the Allies had 100, of which 10 were British In the previous war, Germany, with a population of 65 millions, had raised 248 divisions, of which 207 fought on the Western Front. France on her part had raised 118 divisions, of which 110 had been on the Western Front, and Great Britain 89 divisions, of which 63 had been on the Western Front, giving a total of 173 Allied against 207 German divisions in the West Equality had been attained only when the Americans arrived with their 34 divisions. How much worse was the position to-day! The German population was now 80 millions, from which she could conceivably raise 300 divisions. France could hardly expect that there would be 20 British divisions in the West by the end of the year We must therefore face a large and increasing numerical superiority, which was

already three to two and would presently rise to two to one As for equipment, Germany had the advantage both in aviation and aircraft equipment and also in artillery and stocks of ammunition. Thus Reynaud

To this point then had we come from the days of the Rhineland occupation in 1936, when a mere operation of police would have sufficed, or since Munich, when Germany, occupied with Czechoslovakia, could spare but thirteen divisions for the Western Front, or even since September 1939, when, while the Polish resistance lasted, there were but forty-two German divisions in the West All this terrible superiority had grown up because at no moment had the once victorious Allies dared to take any effective step, even when they were all-powerful, to resist repeated aggressions by Hitler and breaches of the treaties.

* * * * *

After this sombre overture, of the gravity of which we were all conscious, we turned to the Scandinavian tangle The Prime Minister explained the position with clarity We had landed 13,000 men at Namsos and Andalsnes without loss. Our forces had pushed forward farther than had been expected On finding that the direct attack on Trondheim would demand a disproportionate amount of naval force, it had been decided to make a pincers movement from the north and south instead But in the last two days these new plans had been rudely interrupted by a heavy air attack on Namsos As there had been no anti-aircraft fire to oppose them the Germans had bombed at will Meanwhile all German warships at Narvik had been destroyed But the German troops there were strongly fortified, so that it had not yet been possible to attack them by land If our first attempt did not succeed it would be renewed

About Central Norway Mr Chamberlain said that the British command were anxious to reinforce the troops who had gone there, to protect them against the German advance from the south, and to co-operate subsequently in the capture of Trondheim It was already certain that reinforcements would be required 5,000 British, 7,000 French, 3,000 Poles, three British mechanised battalions, one British light tank battalion, three French light divisions, and one British Territorial division were to be available in the near future. The limitation would not be the number of

troops provided, but the number that could be landed and maintained in the country. M Reynaud said that four French light divisions would be sent

I now spoke for the first time at any length in these conferences, pointing out to the French the difficulties of landing troops and stores in the face of enemy aircraft and U-boats Every single ship had to be convoyed by destroyers, every landing port continuously guarded by cruisers or destroyers, not only during the landing, but till A A guns could be mounted ashore So far the Allied ships had been extraordinarily lucky and had sustained very few hits The tremendous difficulties of the operation would be understood Although 13,000 men had now been safely landed, the Allies had as yet no established bases, and were operating inland with weak and slender lines of communication, practically unprovided with artillery or supporting aircraft Such was the position in Central Norway At Narvik the Germans were less strong, the port far less exposed to air attack, and once the harbour had been secured it would be possible to land at a very much faster rate Any forces which could not be landed at ports farther south should go to Narvik Among the troops assigned to the Narvik operation, or indeed in Great Britain, there were none able to move across country in heavy snow. The task at Narvik would be not only to free the harbour and the town, nor even to clear the whole district of Germans, but to advance up the railway to the Swedish frontier in strength commensurate with any further German designs It was the considered view of the British command that this could be done without slowing down the rate of landing at other ports beyond the point to which it was already restricted by the difficulties described

We were all in full agreement on the unpleasantness of our plight and the little we could do at the moment to better it The Supreme War Council agreed that the immediate military objectives should be

(*a*) the capture of Trondheim, and

(*b*) the capture of Narvik, and the concentration of an adequate Allied force on the Swedish frontier

The next day we talked about the dangers to the Dutch and Belgians and their refusal to take any common measures with us We were very conscious that Italy might declare war upon us at

any time, and various naval measures were to be concerted in the Mediterranean between Admiral Pound and Admiral Darlan. To our meeting General Sikorski, the head of the Polish Government, also was invited. He declared his ability to constitute a force of a hundred thousand men within a few months. Active steps were also being taken to recruit a Polish division in the United States.

At this meeting it was agreed also that if Germany invaded Holland the Allied armies should at once advance into Belgium without further approaches to the Belgian Government, and that the R.A.F. could bomb the German marshalling yards and the oil refineries in the Ruhr.

* * * * *

When we got back from the conference I was so much concerned at the complete failure not only of our efforts against the enemy, but of our method of conducting the war, that I wrote as follows to the Prime Minister.

Being anxious to sustain you to the best of my ability, I must warn you that you are approaching a head-on smash in Norway.

I am very grateful to you for having at my request taken over the day-to-day management of the Military Co-ordination [Committee], etc. I think I ought however to let you know that I shall not be willing to receive that task back from you without the necessary powers. At present no one has the power. There are six Chiefs [and Deputy Chiefs] of the Staff, three Ministers, and General Ismay, who all have a voice in Norwegian operations (apart from Narvik). But no one is responsible for the creation and direction of military policy except yourself. If you feel able to bear this burden, you may count upon my unswerving loyalty as First Lord of the Admiralty. If you do not feel you can bear it, with all your other duties, you will have to delegate your powers to a deputy who can concert and direct the general movement of our war action, and who will enjoy your support and that of the War Cabinet unless very good reason is shown to the contrary.

Before I could send it off I received a message from the Prime Minister saying that he had been considering the position in Scandinavia and felt it to be unsatisfactory. He asked me to call on him that evening at Downing Street after dinner to discuss the whole situation in private.

I have no record of what passed at our conversation, which was

of a most friendly character. I am sure I put the points in my unsent letter, and that the Prime Minister agreed with their force and justice He had every wish to give me the powers of direction for which I asked, and there was no kind of personal difficulty between us. He had however to consult and persuade a number of important personages, and it was not till May 1 that he was able to issue the following Note to the Cabinet and those concerned.

May 1, 1940

I have been examining, in consultation with the Ministers in charge of the Service departments, the existing arrangements for the consideration and decision of Defence questions, and I circulate for the information of my colleagues a Memorandum describing certain modifications which it has been decided to make in these arrangements forthwith. The modifications have been agreed to by the three Service Ministers. With the approval of the First Lord of the Admiralty, Major-General H L Ismay, C B , D S O , has been appointed to the post of Senior Staff Officer in charge of the Central Staff which, as indicated in the Memorandum, is to be placed at the disposal of the First Lord Major-General Ismay has been nominated, while serving in this capacity, an additional member of the Chiefs of Staff Committee. N. C.

DEFENCE ORGANISATION

In order to obtain a greater concentration of the direction of the war, the following modifications of present arrangements will take effect:

The First Lord of the Admiralty will continue to take the chair at all meetings of the Military Co-ordination Committee at which the Prime Minister does not preside himself, and in the absence of the Prime Minister will act as his deputy at such meetings on all matters delegated to the Committee by the War Cabinet.

He will be responsible on behalf of the Committee for giving guidance and direction to the Chiefs of Staff Committee, and for this purpose it will be open to him to summon that Committee for personal consultation at any time when he considers it necessary

The Chiefs of Staff will retain their responsibility for giving their collective views to the Government, and, with their respective staffs, will prepare plans to achieve any objectives indicated to them by the First Lord on behalf of the Military Co-ordination Committee, and will accompany their plans by such comments as they consider appropriate.

The Chiefs of Staff, who will in their individual capacity remain

responsible to their respective Ministers, will at all times keep their Ministers informed of their conclusions

Where time permits, the plans of the Chiefs of Staff, with their comments and any comments by the First Lord, will be circulated for approval to the Military Co-ordination Committee, and, unless the Military Co-ordination Committee is authorised by the War Cabinet to take final decision, or in the case of disagreement on the Military Co-ordination Committee, circulated to the War Cabinet

In urgent cases it may be necessary to omit the submission of plans to a formal meeting of the Committee, but in such cases the First Lord will no doubt find means of consulting the Service Ministers informally, and in the case of dissent the decision will be referred to the Prime Minister

In order to facilitate the general plan outlined above and to afford a convenient means of maintaining a close liaison between the First Lord and the Chiefs of Staff, the First Lord will be assisted by a suitable Central Staff (distinct from the Admiralty Staff), under a Senior Staff Officer, who will be an additional member of the Chiefs of Staff Committee.

I accepted this arrangement, which seemed an improvement. I could now convene and preside over the meetings of the Chiefs of Staff Committee, without whom nothing could be done, and I was made responsible formally "for giving guidance and direction" to them General Ismay, the Senior Staff Officer in charge of the Central Staff, was placed at my disposal *as my Staff Officer and representative*, and in this capacity was made a full member of the Chiefs of Staff Committee. I had known Ismay for many years, but now for the first time we became hand-in-glove, and much more Thus the Chiefs of Staff were to large extent made responsible to me in their collective capacity, and as a deputy of the Prime Minister I could nominally influence with authority their decisions and policies. On the other hand, it was only natural that their primary loyalties should be to their own Service Ministers, who would have been less than human if they had not felt some resentment at the delegation of a part of their authority to one of their colleagues Moreover, it was expressly laid down in the Memorandum that my responsibilities were to be discharged *on behalf of* the Military Co-ordination Committee. I was thus to have immense responsibilities, without effective power in my own hands to discharge them. Nevertheless I had a feeling that I might be able to make the new organisation work. It was

destined to last only a week. But my personal and official connection with General Ismay and his relation to the Chiefs of Staff Committee was preserved unbroken and unweakened from May 1, 1940, to July 27, 1945, when I laid down my charge

* * * * *

It is now necessary to recount the actual course of the fighting for Trondheim Our northern force, from Namsos, was 80 miles from the town, and our southern force, from Andalsnes, was 150 miles away The central attack through the fiord ("Hammer") had been abandoned, partly through fear of its cost and partly through hopes of the flanking movements Both these movements now failed utterly The Namsos force, commanded by Carton de Wiart, hastened forward in accordance with his instructions against the Norwegian snow and the German air A brigade reached Verdal, fifty miles from Trondheim, at the head of the fiord, on the 19th It was evident to me, and I warned the staffs, that the Germans could send in a single night a stronger force by water from Trondheim to chop them This occurred two days later Our troops were forced to withdraw some miles to where they could hold the enemy The intolerable snow conditions, now sometimes in thaw, and the fact that the Germans who had come across the inner fiord were, like us, destitute of wheeled transport, prevented any serious fighting on the ground, and the small number of scattered troops plodding along the road offered little target to the unresisted air-power Had Carton de Wiart known how limited were the forces he would have, or that the central attack on Trondheim had been abandoned—a vital point of which our staff machinery did not inform him—he would no doubt have made a more methodical advance He acted in relation to the main objective as it had been imparted to him

In the end nearly everybody got back exhausted, chilled, and resentful to Namsos, where the French Chasseur Brigade had remained, and Carton de Wiart, whose opinion on such issues commanded respect, declared that there was nothing for it but evacuation Preparations for this were at once made by the Admiralty. On April 28 the evacuation of Namsos was ordered The French contingent would re-embark before the British, leaving some of their ski troops to work with our rearguard

The probable dates for leaving were the nights of the 1st and 2nd of May. Eventually the withdrawal was achieved in a single night All the troops were re-embarked on the night of the 3rd, and were well out to sea when they were sighted by the German air reconnaissance at dawn From eight o'clock in the morning to three in the afternoon wave after wave of enemy bombers attacked the warships and the transports. As no British air forces were available to protect the convoy we were lucky that no transport was hit. The French destroyer *Bison* and H.M S. *Afridi*, which carried our rearguard, were "sunk fighting to the end".

* * * * *

A different series of misfortunes befell the troops landed at Andalsnes, but here at least we took our toll of the enemy In response to urgent appeals from General Ruge, the Norwegian Commander-in-Chief, Brigadier Morgan's 148th Infantry Brigade had hastened forward as far as Lillehammer. Here it joined the tired-out, battered Norwegian forces whom the Germans, in the overwhelming strength of three fully-equipped divisions, were driving before them along the road and railway from Oslo towards Dombas and Trondheim Severe fighting began. The ship carrying Brigadier Morgan's vehicles, including all artillery and mortars, had been sunk, but his young Territorials fought well with their rifles and machine-guns against the German vanguards, who were armed not only with 5.9 howitzers, but many heavy mortars and some tanks On April 24 the leading battalion of the 15th Brigade, arriving from France, reached the crumbling front General Paget, who commanded these Regular troops, learned from General Ruge that the Norwegian forces were exhausted and could fight no more until they had been thoroughly rested and re-equipped He therefore assumed control, brought the rest of this brigade into action as fast as they arrived, and faced the Germans with determination in a series of spirited engagements. By adroit use of the railway, which fortunately remained unbroken, Paget extricated his own troops, Morgan's brigade, which had lost 700 men, and some Norwegian units For one whole day the bulk of the British force hid in a long railway tunnel, fed by their precious supply train, and were thus completely lost to the enemy and his all-seeing air After fighting five rearguard actions, in several of which the

Germans were heavily mauled, and having covered over a hundred miles, he reached the sea again at Andalsnes. This small place, like Namsos, had been flattened out by bombing, but by the night of May 1 the 15th Brigade, with what remained of Morgan's 148th Brigade, had been taken on board British cruisers and destroyers, and reached home without further trouble. General Paget's skill and resolution during these days opened his path to high command as the war developed.

A forlorn, gallant effort to give support from the air should be recorded. The only landing "ground" was the frozen lake of Lesjeskogen, forty miles from Andalsnes. There a squadron of Gladiators, flown from the *Glorious*, arrived on April 24. They were at once heavily attacked The Fleet Air Arm did their best to help them; but the task of fighting for existence, of covering the operations of two expeditions 200 miles apart, and of protecting their bases was too much for a single squadron. By April 26 it could fly no more. Long-range efforts by British bombers, working from England, were also unavailing.

* * * * *

Our withdrawal enforced by local events had conformed to the decision already taken by the War Cabinet on the advice of the Military Co-ordination Committee, with the Prime Minister presiding We had all come to the conclusion that it was beyond our power to seize and hold Trondheim. Both claws of the feeble pincers were broken. Mr Chamberlain announced to the Cabinet that plans must be made for evacuating our forces both from Namsos and Andalsnes, though we should in the meanwhile continue to resist the German advance. The Cabinet was distressed at these proposals, which were however inevitable.

* * * * *

In order to delay to the utmost the northward advance of the enemy towards Narvik, we were now sending special companies raised in what was afterwards called "Commando" style, under an enterprising officer, Colonel Gubbins, to Mosjoen, 120 miles farther up the coast. I was most anxious that a small part of the Namsos force should make their way in whatever vehicles were available along the road to Grong. Even a couple of hundred would have sufficed to fight small rearguard actions. From Grong they would have to find their way on foot to Mosjoen.

I hoped by this means to gain the time for Gubbins to establish himself so that a stand could be made against the very small numbers which the enemy could as yet send there. I was repeatedly assured that the road was impassable. General Massy from London sent insistent requests. It was replied that even a small party of French Chasseurs, with their skis, could not traverse this route. "It seemed evident," wrote General Massy a few days later in his dispatch, "that if the French Chasseurs could not retire along this route the Germans could not advance along it . . . This was an error, as the Germans have since made full use of it and have advanced so rapidly along it that our troops in Mosjoen have not had time to get properly established, and it is more than likely that we shall not be able to hold the place." This proved true. The destroyer *Janus* took a hundred Chasseurs Alpins and two light A.A. guns round by sea, but they left again before the Germans came.

* * * * *

We have now pursued the Norwegian campaign to the point where it was overwhelmed by gigantic events. The superiority of the Germans in design, management, and energy were plain. They put into ruthless execution a carefully-prepared plan of action. They comprehended perfectly the use of the air arm on a great scale in all its aspects. Moreover, their individual ascendancy was marked, especially in small parties. At Narvik a mixed and improvised German force barely six thousand strong held at bay for six weeks some twenty thousand Allied troops, and, though driven out of the town, lived to see them depart. The Narvik attack, so brilliantly opened by the Navy, was paralysed by the refusal of the military commander to run what was admittedly a desperate risk. The division of our resources between Narvik and Trondheim was injurious to both our plans. The abandonment of the central thrust on Trondheim wears an aspect of vacillation in the British High Command for which not only the experts but the political chiefs who yielded too easily to their advice must bear a burden. At Namsos there was a muddy waddle forward and back. Only in the Andalsnes expedition did we bite. The Germans traversed in seven days the road from Namsos to Mosjoen, which the British and French had declared impassable. At Bodo and Mo during the retreat of Gubbins' force to the north we were each time just too late, and the enemy,

although they had to overcome hundreds of miles of rugged, snow-clogged country, drove us back in spite of gallant episodes. We, who had the command of the sea and could pounce anywhere on an undefended coast, were out-paced by the enemy moving by land across very large distances in the face of every obstacle. In this Norwegian encounter some of our finest troops, the Scots and Irish Guards, were baffled by the vigour, enterprise and training of Hitler's young men

We tried hard at the call of duty to entangle and imbed ourselves in Norway We thought fortune had been cruelly against us. We can now see that we were well out of it Meanwhile we had to comfort ourselves as best we might by a series of successful evacuations. Failure at Trondheim! Stalemate at Narvik! Such in the first week of May were the only results we could show to the British nation, to our Allies, and to the neutral world, friendly or hostile. Considering the prominent part I played in these events and the impossibility of explaining the difficulties by which we had been overcome, or the defects of our staff and govermental organisation and our methods of conducting war, it was a marvel that I survived and maintained my position in public esteem and Parliamentary confidence This was due to the fact that for six or seven years I had predicted with truth the course of events, and had given ceaseless warnings, then unheeded but now remembered.

* * * * *

Twilight War ended with Hitler's assault on Norway It broke into the glare of the most fearful military explosion so far known to man I have described the trance in which for eight months France and Britain had been held while all the world wondered. This phase proved most harmful to the Allies. From the moment when Stalin made terms with Hitler the Communists in France took their cue from Moscow and denounced the war as "an imperialist and capitalist crime against democracy" They did what they could to undermine morale in the Army and impede production in the workshops. The morale of France, both of her soldiers and her people, was now in May markedly lower than at the outbreak of war

Nothing like this happened in Britain, where Soviet-directed Communism, though busy, was weak Nevertheless we were still a party Government, under a Prime Minister from whom the

Opposition was bitterly estranged, and without the ardent and positive help of the trade union movement The sedate, sincere, but routine character of the Administration did not evoke that intense effort, either in the governing circles or in the munitions factories, which was vital. The stroke of catastrophe and the spur of peril were needed to call forth the dormant might of the British nation. The tocsin was about to sound.

NORWAY
1940
Tromsö
Vaags Fjord
Harstad
Allies land, 14 4 40
withdrawal, 8 6 40
LOFOTEN IS
Narvik
Skjel Fjord
Allied mines
laid, 8 4 40
Vest Fjord
Bodo
Allies land, 29 4 40,
withdrawal, 29 5 40
Germans land
9 4 40
1st Naval action
10 4 40
2nd Naval action
13 4 40
Captured by
Allies, 28 5 40
Allies with-
draw 8 6 40
Allies land 4 5 40
withdrawal, 18 5 40
Mo
Mosjoen
Allies land 2 5 40
withdrawal, 10 5 40
Namsos
Allies land 14 4 40
withdrawal 3 5 40
Steinkjaer
German landing on
flank of Allies, 21 4 40
Verdal
British base formed, 18 4 40
King and Govt of Norway
embarked in H M S Glasgow
for Tromso, 29 4 40
Trondheim
Germans land, 9 4 40
Molde
Allies land, 18 4 40
withdrawal, 1 5 40
Alesund
Andalsnes
Allies land, 17 4 40
withdrawal 2 5 40
Stadtlandet
Dombas
FAROE IS
British Forces
land, 13 4 40
(Approx 220 miles
from Scapa)
Lillehammer
SHETLAND IS
Bergen
Germans
land 9 4 40
Shetland Is to Bergen 200 miles
Oslo
Germans land
9 4 40
SWEDEN
ORKNEY IS
SCAPA
Stavanger
Germans land, 9 4 40
Airfield bombarded
17 4 40
Kristiansand
SKAGERRAK

CHAPTER XXXVII

NORWAY: THE FINAL PHASE

Immediate Assault on Narvik Abandoned – The Landings in May – General Auchinleck Appointed to the Chief Military Command – The Capture of the Town, May 28 – The Battle in France Dominates All – Evacuation – The Homeward Convoys – Apparition of the German Battle-Cruisers – The Loss of the "Glorious" and "Ardent" – The Story of the "Acasta" – Air Attack on German Ships at Trondheim – One Solid Result – The German Fleet Ruined.

IN DEFIANCE of chronology, it is well to set forth here the end of the Norwegian episode

After April 16 Lord Cork was compelled to abandon the idea of an immediate assault on Narvik A three hours' bombardment on April 24, carried out by the battleship *Warspite* and three cruisers, was not effective in dislodging the garrison. I had asked the First Sea Lord to arrange for the replacement of the *Warspite* by the less valuable *Resolution*, which was equally useful for bombarding purposes Meanwhile the arrival of French and Polish troops, and still more the thaw, encouraged Lord Cork to press his attack on the town. The new plan was to land at the head of the fiord beyond Narvik, and thereafter to attack Narvik across Rombaks Fiord The 24th Guards Brigade had been drawn off to stem the German advance from Trondheim; but by the beginning of May three battalions of Chasseurs Alpins, two battalions of the French Foreign Legion, four Polish battalions, and a Norwegian force of about 3,500 men were available The enemy had for their part been reinforced by portions of the 3rd Mountain Division, which had either been brought by air from Southern Norway or smuggled in by rail from Sweden

The first landing, under General Béthouart, the commander of the French contingent, took place on the night of May 12–13 at

Bjerkvik, with very little loss. General Auchinleck, whom I had sent to command all the troops in Northern Norway, was present and took charge the next day. His instructions were to cut off the iron ore supplies and to defend a foothold in Norway for the King and his Government. The new British commander naturally asked for very large additions to bring his force up to seventeen battalions, two hundred heavy and light anti-aircraft guns, and four squadrons of aeroplanes. It was only possible to promise about half these requirements.

But now tremendous events became dominant. On May 24, in the crisis of shattering defeat, it was decided, with almost universal agreement, that we must concentrate all we had in France and at home. The capture of Narvik had however to be achieved, both to ensure the destruction of the port and to cover our withdrawal. The main attack across Rómbaks Fiord was begun on May 27 by two battalions of the Foreign Legion and one Norwegian battalion under the able leadership of General Béthouart. It was entirely successful. The landing was effected with practically no loss and the counter-attack beaten off. Narvik was taken on May 28. The Germans, who had so long resisted forces four times their strength, retreated into the mountains, leaving four hundred prisoners in our hands.

We now had to relinquish all that we had won after such painful exertions. The withdrawal was in itself a considerable operation, imposing a heavy burden on the Fleet, already fully extended by the fighting both in Norway and in the Narrow Seas. Dunkirk was upon us, and all available light forces were drawn to the south. The Battle Fleet must itself be held in readiness to resist invasion. Many of the cruisers and destroyers had already been sent south for anti-invasion duties. The Commander-in-Chief had at his disposal at Scapa the capital ships *Rodney*, *Valiant*, *Renown*, and *Repulse*. These had to cover all contingencies.

Good progress in evacuation was made at Narvik, and by June 8 all the troops, French, British, and Polish, amounting to 24,000 men, together with large quantities of stores and equipment, were embarked and sailed in four convoys without hindrance from the enemy, who indeed now amounted on shore to no more than a few thousand scattered, disorganised, but victorious individuals. During these last days valuable protection was afforded against the German Air Force not only by naval aircraft,

but by a shore-based squadron of Hurricanes. This squadron had been ordered to keep in action till the end, destroying their aircraft if necessary. However, by their skill and daring these pilots performed the unprecedented feat—their last—of flying their Hurricanes on board the carrier *Glorious*, which sailed with the *Ark Royal* and the main body.

To cover all these operations Lord Cork had at his disposal, in addition to the carriers, the cruisers *Southampton* and *Coventry* and sixteen destroyers, besides smaller vessels. The cruiser *Devonshire* was meanwhile embarking the King of Norway and his staff from Tromsö, and was therefore moving independently. Lord Cork informed the Commander-in-Chief of his convoy arrangements, and asked for protection against possible attack by heavy ships. Admiral Forbes dispatched the *Valiant* on June 6 to meet the first convoy of troopships and escort it north of the Shetlands and then return to meet the second. Despite all other preoccupations, he had intended to use his battle-cruisers to protect the troopships, but on June 5 reports had reached him of two unknown ships apparently making for Iceland, and later of an enemy landing there. He therefore felt compelled to send his battle-cruisers to investigate these reports, which proved to be false. Thus on this unlucky day our available forces in the north were widely dispersed. The movement of the Narvik convoys and their protection followed closely the method pursued without mishap during the past six weeks. It had been customary to send transports and warships, including aircraft-carriers, over this route with no more than anti-submarine escort. No activity by German heavy ships had hitherto been detected. Now, having repaired the damage they had suffered in the earlier encounters, they suddenly appeared off the Norwegian coast.

The battle-cruisers *Scharnhorst* and *Gneisenau*, with the cruiser *Hipper* and four destroyers, left Kiel on June 4, with the object of attacking shipping and bases in the Narvik area and thus providing relief for what was left of their landed forces. No hint of our intended withdrawal reached them till June 7. On the news that British convoys were at sea the German admiral decided to attack them. Early the following morning, the 8th, he caught a tanker with a trawler escort, an empty troopship *Orama*, and the hospital ship *Atlantis*. He respected the immunity of the *Atlantis*. All the rest were sunk. That afternoon the *Hipper* and the destroyers

returned to Trondheim, but the battle-cruisers, continuing their search for prey, were rewarded when at 4 p m. they sighted the smoke of the aircraft-carrier *Glorious*, with her two escorting destroyers, the *Acasta* and *Ardent*. The *Glorious* had been detached early that morning to proceed home independently owing to shortage of fuel, and by now was nearly two hundred miles ahead of the main convoy This explanation is not convincing. The *Glorious* presumably had enough fuel to steam at the speed of the convoy All should have kept together.

The action began about 4.30 p.m. at over 27,000 yards. At this range the *Glorious*, with her 4-inch guns, was helpless Efforts were made to get her torpedo-bombers into the air, but before this could be done she was hit in the forward hangar, and a fire began which destroyed the Hurricanes and prevented torpedoes being got up from below for the bombers In the next half-hour she received staggering blows which deprived her of all chance of escape. By 5 20 she was listing heavily, and the order was given to abandon ship She sank about twenty minutes later

Meanwhile her two destroyers behaved nobly Both made smoke in an endeavour to screen the *Glorious*, and both fired their torpedoes at the enemy before being overwhelmed The *Ardent* was soon sunk The story of the *Acasta*, commanded by Commander C E Glasfurd, R.N , now left alone at hopeless odds, has been told by the sole survivor, Leading-Seaman C Carter.

On board our ship, what a deathly calm, hardly a word spoken, the ship was now steaming full speed away from the enemy, then came a host of orders, prepare all smoke floats, hose-pipes connected up, various other jobs were prepared, we were still stealing away from the enemy, and making smoke, and all our smoke floats had been set going The Captain then had this message passed to all positions "You may think we are running away from the enemy, we are not, our chummy ship [*Ardent*] has sunk, the *Glorious* is sinking, the least we can do is make a show, good luck to you all" We then altered course into our own smoke-screen I had the order stand by to fire tubes 6 and 7, we then came out of the smoke-screen, altered course to starboard firing our torpedoes from port side It was then I had my first glimpse of the enemy, to be honest it appeared to me to be a large one [ship] and a small one, and we were very close I fired my two torpedoes from my tubes [aft], the foremost tubes fired theirs, we were all watching results. I'll never forget that cheer that went up;

on the port bow of one of the ships a yellow flash and a great column of smoke and water shot up from her. We knew we had hit, personally I could not see how we could have missed so close as we were. The enemy never fired a shot at us, I feel they must have been very surprised. After we had fired our torpedoes we went back into our own smoke-screen, altered course again to starboard. "Stand by to fire remaining torpedoes", and this time as soon as we poked our nose out of the smoke-screen, the enemy let us have it. A shell hit the engine-room, killed my tubes' crew, I was blown to the after end of the tubes, I must have been knocked out for a while, because when I came to, my arm hurt me; the ship had stopped with a list to port. Here is something believe it or believe it not, I climbed back into the control seat, I see those two ships, I fired the remaining torpedoes, no one told me to, I guess I was raving mad. God alone knows why I fired them, but I did. The *Acasta's* guns were firing the whole time, even firing with a list on the ship. The enemy then hit us several times, but one big explosion took place right aft, I have often wondered whether the enemy hit us with a torpedo, in any case it seemed to lift the ship out of the water. At last the Captain gave orders to abandon ship. I will always remember the Surgeon Lt.,* his first ship, his first action. Before I jumped over the side, I saw him still attending to the wounded, a hopeless task, and when I was in the water I saw the Captain leaning over the bridge, take a cigarette from a case and light it. We shouted to him to come on our raft, he waved "Good-bye and good luck"—the end of a gallant man.

Thus perished 1,474 officers and men of the Royal Navy and forty-one of the Royal Air Force. Despite prolonged search, only thirty-nine were rescued and brought in later by a Norwegian ship. In addition six men were picked up by the enemy and taken to Germany. The *Scharnhorst,* heavily damaged by the *Acasta's* torpedo, made her way to Trondheim.

While this action was going on the cruiser *Devonshire*, with the King of Norway and his Ministers, was about a hundred miles to the westward. The *Valiant*, coming north to meet the convoy, was still a long way off. The only message received from the *Glorious* was corrupt and barely intelligible, which suggests that her main wireless equipment was destroyed from an early stage. The *Devonshire* alone received this message, but as its importance was not apparent she did not break wireless silence to pass it on, as to do so would have involved serious risk of revealing her position, which in the circumstances was highly undesirable. Not

* Temporary Surgeon-Lieutenant H. J. Stammers, R.N.V.R.
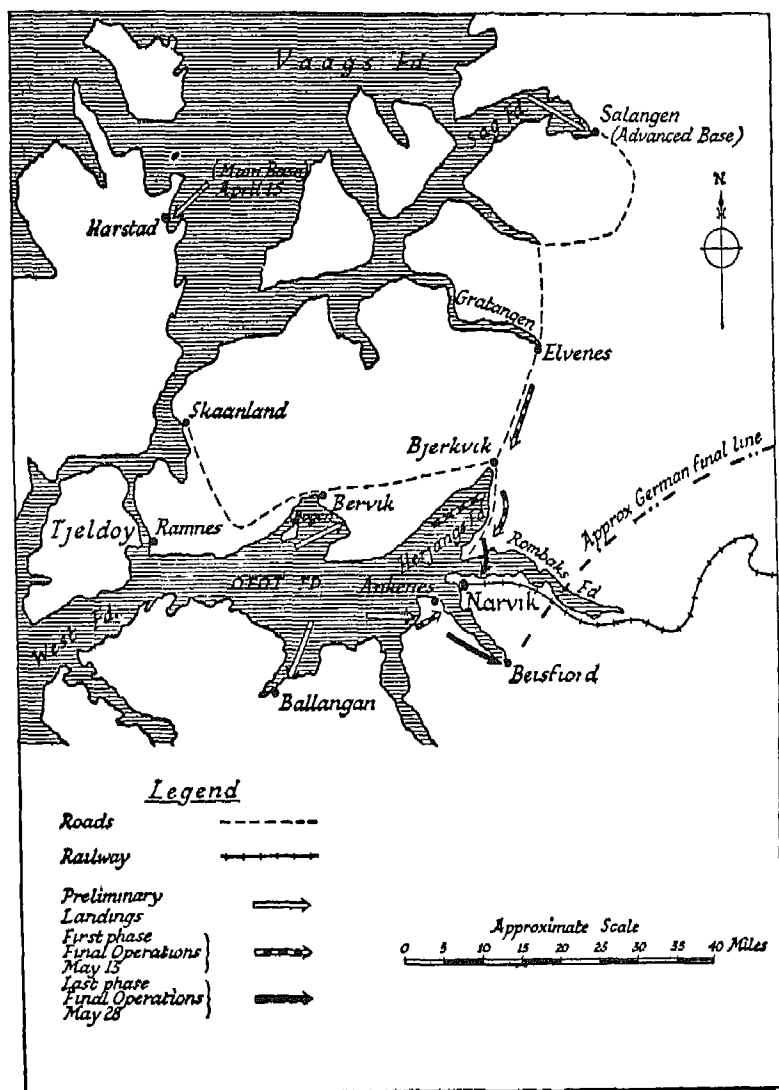
Sketch Map NARVIK OPERATIONS

until the following morning were suspicions aroused Then the *Valiant* met the hospital ship *Atlantis*, who informed her of the loss of the *Orama* and that enemy capital ships were at sea. The *Valiant* signalled the information and pressed on to join Lord Cork's convoy. The Commander-in-Chief, Admiral Forbes, at once proceeded to sea with the only ships he had, the *Rodney*, the *Renown*, and six destroyers.

The damage inflicted on the *Scharnhorst* by the heroic *Acasta* had important results The two enemy battle-cruisers abandoned further operations and returned at once to Trondheim The German High Command were dissatisfied with the action of their admiral in departing from the objective which had been given him. They sent the *Hipper* out again; but it was then too late

On the 10th Admiral Forbes ordered the *Ark Royal* to join him. Reports showed that enemy ships were in Trondheim, and he hoped to make an air attack This was delivered by R A F. bombers on the 11th without effect On the following morning fifteen Skuas from the *Ark Royal* made a dive-bombing attack. Enemy reconnaissance gave warning of their approach, and no fewer than eight were lost To add one last misfortune to our tale, it is now known that one bomb from a Skua struck the *Scharnhorst* but failed to explode.

Whilst these tragedies were in progress the Narvik convoys passed on safely to their destination, and the British campaign in Norway came to an end

* * * * *

From all this wreckage and confusion there emerged one fact of major importance potentially affecting the future of the war. In their desperate grapple with the British Navy the Germans ruined their own, such as it was, for the impending climax The Allied losses in all this sea-fighting off Norway amounted to one aircraft-carrier, two cruisers, one sloop, and nine destroyers. Six cruisers, two sloops, and eight destroyers were disabled, but could be repaired within our margin of sea-power. On the other hand, at the end of June 1940, a momentous date, the effective German Fleet consisted of no more than *one 8-inch-gun cruiser, two light cruisers, and four destroyers.* Although many of their damaged ships, like ours, could be repaired, the German Navy was no factor in the supreme issue of the invasion of Britain.*

* See Appendix R.

CHAPTER XXXVIII

THE FALL OF THE GOVERNMENT

Debate of May 7 – A Vote of Censure Supervenes – Lloyd George's Last Parliamentary Stroke – I Do My Best with the House – My Advice to the Prime Minister – Conferences of May 9 – The German Onslaught – A Conversation with the Prime Minister, May 10 – The Dutch Agony – Mr. Chamberlain Resigns – The King Asks Me to Form a Government – Accession of the Labour and Liberal Parties – Facts and Dreams.

THE *MANY* disappointments and disasters of the brief campaign in Norway caused profound perturbation at home, and the currents of passion mounted even in the breasts of some of those who had been most slothful and purblind in the years before the war. The Opposition asked for a debate on the war situation, and this was arranged for May 7. The House was filled with Members in a high state of irritation and distress. Mr. Chamberlain's opening statement did not stem the hostile tide. He was mockingly interrupted, and reminded of his speech of April 4, when in quite another connection he had incautiously said, "Hitler missed the bus." He defined my new position and my relationship with the Chiefs of Staff, and in reply to Mr. Herbert Morrison made it clear that I had not held those powers during the Norwegian operations. One speaker after another from both sides of the House attacked the Government, and especially its chief, with unusual bitterness and vehemence, and found themselves sustained by growing applause from all quarters. Sir Roger Keyes, burning for distinction in the new war, sharply criticised the Naval Staff for their failure to attempt the capture of Trondheim. "When I saw," he said, "how badly things were going I never ceased importuning the Admiralty and War

Cabinet to let me take all responsibility and lead the attack." Wearing his uniform as Admiral of the Fleet, he supported the complaints of the Opposition with technical details and his own professional authority in a manner very agreeable to the mood of the House. From the benches behind the Government Mr Amery quoted, amid ringing cheers, Cromwell's imperious words to the Long Parliament: "You have sat too long here for any good you have been doing. Depart, I say, and let us have done with you. In the name of God, go!" These were terrible words, coming from a friend and colleague of many years, a fellow Birmingham Member, and a Privy Counsellor of distinction and experience.

On the second day, May 8, the debate, although continuing upon an Adjournment Motion, assumed the character of a Vote of Censure, and Mr. Herbert Morrison, in the name of the Opposition, declared their intention to have a vote. The Prime Minister rose again, accepted the challenge, and in an unfortunate passage appealed to his friends to stand by him. He had a right to do this, as these friends had sustained his action, or inaction, and thus shared his responsibility in "the years which the locusts had eaten" before the war But to-day they sat abashed and silenced, and some of them had joined the hostile demonstrations. This day saw the last decisive intervention of Mr. Lloyd George in the House of Commons In a speech of not more than twenty minutes he struck a deeply-wounding blow at the head of the Government. He endeavoured to exculpate me: "I do not think that the First Lord was entirely responsible for all the things which happened in Norway" I immediately interposed, "I take complete responsibility for everything that has been done by the Admiralty, and I take my full share of the burden." After warning me not to allow myself to be converted into an air-raid shelter to keep the splinters from hitting my colleagues, Mr. Lloyd George turned upon Mr Chamberlain. "It is not a question of who are the Prime Minister's friends. It is a far bigger issue. He has appealed for sacrifice The nation is prepared for every sacrifice so long as it has leadership, so long as the Government show clearly what they are aiming at, and so long as the nation is confident that those who are leading it are doing their best" He ended, "I say solemnly that the Prime Minister should give an example of sacrifice, because there is nothing which can con-

tribute more to victory in this war than that he should sacrifice the seals of office"

As Ministers we all stood together The Secretaries of State for War and Air had already spoken I had volunteered to wind up the debate, which was no more than my duty, not only in loyalty to the chief under whom I served, but also because of the exceptionally prominent part I had played in the use of our inadequate forces during our forlorn attempt to succour Norway I did my very best to regain control of the House for the Government in the teeth of continuous interruption, coming chiefly from the Labour Opposition benches I did this with good heart when I thought of their mistakes and dangerous pacifism in former years, and how only four months before the outbreak of the war they had voted solidly against conscription. I felt that I, and a few friends who had acted with me, had the right to inflict these censures, but they had not When they broke in upon me I retorted upon them and defied them, and several times the clamour was such that I could not make myself heard Yet all the time it was clear that their anger was not directed against me, but at the Prime Minister, whom I was defending to the utmost of my ability and without regard for any other considerations When I sat down at eleven o'clock the House divided The Government had a majority of 81, but over 30 Conservatives voted with the Labour and Liberal Oppositions, and a further 60 abstained There was no doubt that in effect, though not in form, both the debate and the division were a violent manifestation of want of confidence in Mr. Chamberlain and his Administration

After the debate was over he asked me to go to his room, and I saw at once that he took the most serious view of the sentiment of the House towards himself. He felt he could not go on There ought to be a National Government One party alone could not carry the burden Someone must form a Government in which all parties would serve, or we could not get through Aroused by the antagonisms of the debate, and being sure of my own past record on the issues at stake, I was strongly disposed to fight on. "This has been a damaging debate, but you have a good majority. Do not take the matter grievously to heart We have a better case about Norway than it has been possible to convey to the House. Strengthen your Government from every quarter, and let us go on until our majority deserts us." To this effect I spoke.

But Chamberlain was neither convinced nor comforted, and I left him about midnight with the feeling that he would persist in his resolve to sacrifice himself if there was no other way, rather than attempt to carry the war further with a one-party Government.

I do not remember exactly how things happened during the morning of May 9, but the following occurred. Sir Kingsley Wood was very close to the Prime Minister as a colleague and a friend They had long worked together in complete confidence. From him I learned that Mr Chamberlain was resolved upon the formation of a National Government, and if he could not be the head he would give way to anyone commanding his confidence who could. Thus by the afternoon I became aware that I might well be called upon to take the lead. The prospect neither excited nor alarmed me I thought it would be by far the best plan I was content to let events unfold In the afternoon the Prime Minister summoned me to Downing Street, where I found Lord Halifax, and after a talk about the situation in general we were told that Mr. Attlee and Mr. Greenwood would visit us in a few minutes for a consultation

When they arrived we three Ministers sat on one side of the table and the Opposition Leaders on the other. Mr. Chamberlain declared the paramount need of a National Government, and sought to ascertain whether the Labour Party would serve under him The Conference of their party was in session at Bournemouth. The conversation was most polite, but it was clear that the Labour leaders would not commit themselves without consulting their people, and they hinted, not obscurely, that they thought the response would be unfavourable They then withdrew. It was a bright, sunny afternoon, and Lord Halifax and I sat for a while on a seat in the garden of Number 10 and talked about nothing in particular. I then returned to the Admiralty, and was occupied during the evening and a large part of the night in heavy business.

* * * * *

The morning of the 10th of May dawned, and with it came tremendous news Boxes with telegrams poured in from the Admiralty, the War Office, and the Foreign Office. The Germans had struck their long-awaited blow. Holland and Belgium were both invaded Their frontiers had been crossed at numerous

points. The whole movement of the German Army upon the invasion of the Low Countries and of France had begun

At about ten o'clock Sir Kingsley Wood came to see me, having just been with the Prime Minister He told me that Mr. Chamberlain was inclined to feel that the great battle which had broken upon us made it necessary for him to remain at his post. Kingsley Wood had told him that, on the contrary, the new crisis made it all the more necessary to have a National Government, which alone could confront it, and he added that Mr. Chamberlain had accepted this view. At eleven o'clock I was again summoned to Downing Street by the Prime Minister. There once more I found Lord Halifax. We took our seats at the table opposite Mr. Chamberlain He told us that he was satisfied that it was beyond his power to form a National Government The response he had received from the Labour leaders left him in no doubt of this. The question therefore was whom he should advise the King to send for after his own resignation had been accepted. His demeanour was cool, unruffled, and seemingly quite detached from the personal aspect of the affair He looked at us both across the table

I have had many important interviews in my public life, and this was certainly the most important. Usually I talk a great deal, but on this occasion I was silent. Mr Chamberlain evidently had in his mind the stormy scene in the House of Commons two nights before, when I had seemed to be in such heated controversy with the Labour Party Although this had been in his support and defence, he nevertheless felt that it might be an obstacle to my obtaining their adherence at this juncture I do not recall the actual words he used, but this was the implication. His biographer, Mr Feiling, states definitely that he preferred Lord Halifax. As I remained silent a very long pause ensued It certainly seemed longer than the two minutes which one observes in the commemorations of Armistice Day. Then at length Halifax spoke He said that he felt that his position as a Peer, out of the House of Commons, would make it very difficult for him to discharge the duties of Prime Minister in a war like this. He would be held responsible for everything, but would not have the power to guide the assembly upon whose confidence the life of every Government depended. He spoke for some minutes in this sense, and by the time he had finished it was clear that the

duty would fall upon me—had in fact fallen upon me. Then for the first time I spoke. I said I would have no communication with either of the Opposition parties until I had the King's Commission to form a Government. On this the momentous conversation came to an end, and we reverted to our ordinary easy and familiar manners of men who had worked for years together and whose lives in and out of office had been spent in all the friendliness of British politics. I then went back to the Admiralty, where, as may well be imagined, much awaited me

The Dutch Ministers were in my room. Haggard and worn, with horror in their eyes, they had just flown over from Amsterdam. Their country had been attacked without the slightest pretext or warning The avalanche of fire and steel had rolled across the frontiers, and when resistance broke out and the Dutch frontier guards fired an overwhelming onslaught was made from the air. The whole country was in a state of wild confusion. The long-prepared defence scheme had been put into operation; the dykes were opened, the waters spread far and wide But the Germans had already crossed the outer lines, and were now streaming down the banks of the Rhine and through the inner Gravelines defences. They threatened the causeway which encloses the Zuyder Zee Could we do anything to prevent this? Luckily, we had a flotilla not far away, and this was immediately ordered to sweep the causeway with fire and take the heaviest toll possible of the swarming invaders. The Queen was still in Holland, but it did not seem she could remain there long.

As a consequence of these discussions, a large number of orders were dispatched by the Admiralty to all our ships in the neighbourhood, and close relations were established with the Royal Dutch Navy Even with the recent overrunning of Norway and Denmark in their minds, the Dutch Ministers seemed unable to understand how the great German nation, which up to the night before had professed nothing but friendship, should suddenly have made this frightful and brutal onslaught Upon these proceedings and other affairs an hour or two passed A spate of telegrams pressed in from all the frontiers affected by the forward heave of the German armies It seemed that the old Schlieffen plan, brought up to date with its Dutch extension, was already in full operation. In 1914 the swinging right arm of the German invasion had swept through Belgium but had stopped short of

Holland. It was well known then that had that war been delayed for three or four years the extra army group would have been ready and the railway terminals and communications adapted for a movement through Holland. Now the famous movement had been launched with all these facilities and with every circumstance of surprise and treachery But other developments lay ahead. The decisive stroke of the enemy was not to be a turning movement on the flank, but a break through the main front This none of us or the French, who were in responsible command, foresaw Earlier in the year I had, in a published interview, warned these neutral countries of the fate which was impending upon them, and which was evident from the troop dispositions and road and rail development, as well as from the captured German plans My words had been resented.

In the splintering crash of this vast battle the quiet conversations we had had in Downing Street faded or fell back in one's mind However, I remember being told that Mr. Chamberlain had gone, or was going, to see the King, and this was naturally to be expected Presently a message arrived summoning me to the Palace at six o'clock. It only takes two minutes to drive there from the Admiralty along the Mall. Although I suppose the evening newspapers must have been full of the terrific news from the Continent, nothing had been mentioned about the Cabinet crisis The public had not had time to take in what was happening either abroad or at home, and there was no crowd about the Palace gates

I was taken immediately to the King. His Majesty received me most graciously and bade me sit down. He looked at me searchingly and quizzically for some moments, and then said, "I suppose you don't know why I have sent for you?" Adopting his mood, I replied, "Sir, I simply couldn't imagine why" He laughed and said, "I want to ask you to form a Government." I said I would certainly do so.

The King had made no stipulation about the Government being National in character, and I felt that my commission was in no formal way dependent upon this point. But in view of what had happened, and the conditions which had led to Mr. Chamberlain's resignation, a Government of National character was obviously inherent in the situation. If I found it impossible to come to terms with the Opposition parties, I should not have

been constitutionally debarred from trying to form the strongest Government possible of all who would stand by the country in the hour of peril, provided that such a Government could command a majority in the House of Commons I told the King that I would immediately send for the leaders of the Labour and Liberal Parties, that I proposed to form a War Cabinet of five or six Ministers, and that I hoped to let him have at least five names before midnight On this I took my leave and returned to the Admiralty

Between seven and eight, at my request, Mr. Attlee called upon me. He brought with him Mr. Greenwood. I told him of the authority I had to form a Government, and asked if the Labour Party would join. He said they would I proposed that they should take rather more than a third of the places, having two seats in the War Cabinet of five, or it might be six, and I asked Mr. Attlee to let me have a list of men so that we could discuss particular offices. I mentioned Mr. Bevin, Mr. Alexander, Mr. Morrison, and Mr. Dalton as men whose services in high office were immediately required I had, of course, known both Attlee and Greenwood for a long time in the House of Commons. During the ten years before the outbreak of war I had in my more or less independent position come far more often into collision with the Conservative and National Governments than with the Labour and Liberal Oppositions. We had a pleasant talk for a little while, and they went off to report by telephone to their friends and followers at Bournemouth, with whom of course they had been in the closest contact during the previous forty-eight hours.

I invited Mr. Chamberlain to lead the House of Commons as Lord President of the Council, and he replied by telephone that he accepted, and had arranged to broadcast at nine that night, stating that he had resigned, and urging everyone to support and aid his successor This he did in magnanimous terms I asked Lord Halifax to join the War Cabinet while remaining Foreign Secretary At about ten I sent the King a list of the five names, as I had promised. The appointment of the three Service Ministers was vitally urgent I had already made up my mind who they should be. Mr. Eden should go to the War Office, Mr. Alexander should come to the Admiralty, and Sir Archibald Sinclair, Leader of the Liberal Party, should take the Air Ministry. At the same

time I assumed the office of Minister of Defence, without however attempting to define its scope and powers.

Thus, then, on the night of the 10th of May, at the outset of this mighty battle, I acquired the chief power in the State, which henceforth I wielded in ever-growing measure for five years and three months of world war, at the end of which time, all our enemies having surrendered unconditionally or being about to do so, I was immediately dismissed by the British electorate from all further conduct of their affairs.

During these last crowded days of the political crisis my pulse had not quickened at any moment I took it all as it came But I cannot conceal from the reader of this truthful account that as I went to bed at about 3 a m I was conscious of a profound sense of relief. At last I had the authority to give directions over the whole scene. I felt as if I were walking with destiny, and that all my past life had been but a preparation for this hour and for this trial. Ten years in the political wilderness had freed me from ordinary party antagonisms My warnings over the last six years had been so numerous, so detailed, and were now so terribly vindicated, that no one could gainsay me I could not be reproached either for making the war or with want of preparation for it I thought I knew a good deal about it all, and I was sure I should not fail Therefore, although impatient for the morning, I slept soundly and had no need for cheering dreams. Facts are better than dreams.

APPENDICES

I. MISCELLANEOUS

A. A CONVERSATION WITH COUNT GRANDI.

B. MY NOTE ON THE FLEET AIR ARM.

C. A NOTE ON SUPPLY ORGANISATION.

D. STATEMENT ON THE OCCASION OF THE DEPUTATION OF CONSERVATIVE MEMBERS OF BOTH HOUSES TO THE PRIME MINISTER, JULY 28, 1936.

E. COMPARATIVE OUTPUT OF FIRST-LINE AIRCRAFT.

F TABLES OF NAVAL STRENGTH, SEPTEMBER 3, 1939.

G. PLAN "CATHERINE", SEPTEMBER 12, 1939.

H. NEW CONSTRUCTION AND RECONSTRUCTION, OCTOBER 8 AND 21, 1939.

I. NEW CONSTRUCTION PROGRAMMES, 1939-40.

J FLEET BASES, NOVEMBER 1, 1939.

K. NAVAL AID TO TURKEY, NOVEMBER 1, 1939.

L THE BLACK-OUT, NOVEMBER 20, 1939.

M THE MAGNETIC MINE, 1939-40

N. EXTRACT FROM WAR DIARY OF U 47, NOVEMBER 28, 1939.

O CULTIVATOR NO. 6, NOVEMBER 1939.

P BRITISH MERCHANT VESSELS LOST BY ENEMY ACTION, SEPTEMBER 1939 TO APRIL 1940.

Q OPERATION "ROYAL MARINE", MARCH 4, 1940.

R. NAVAL LOSSES IN THE NORWEGIAN CAMPAIGN, APRIL-JUNE, 1940.

APPENDIX A

A CONVERSATION WITH COUNT GRANDI*

Mr Churchill to Sir Robert Vansittart *September* 28, 1935

Though he pleaded the Italian cause with much address, he of course realises the whole position . .

I told him that since Parliament rose there had been a strong development of public opinion. England, and indeed the British Empire, could act unitedly on the basis of the League of Nations, and all parties thought that that instrument was the most powerful protection against future dangers wherever they might arise. He pointed out the injury to the League of Nations by the loss of Italy. The fall of the *régime* in Italy would inevitably produce a pro-German Italy. He seemed prepared for economic sanctions. They were quite ready to accept life upon a communal basis. However poor they were, they could endure. He spoke of the difficulty of following the movements of British public opinion. I said that no foreign ambassador could be blamed for that, but the fact of the change must be realised. Moreover, if fighting began in Abyssinia, cannons fired, blood was shed, villages were bombed, etc., an almost measureless rise in the temperature must be expected. He seemed to contemplate the imposition of economic sanctions which would at first be ineffective, but gradually increase until at some moment or other an event of war would occur.

I said the British Fleet was very strong, and, although it had to be rebuilt in the near future, it was good and efficient at the present moment, and it was now completely ready to defend itself, but I repeated that this was a purely defensive measure in view of our Mediterranean interests, and did not in any way differentiate our position from that of other members of the League of Nations. He accepted this with a sad smile.

I then talked of the importance of finding a way out: "He that ruleth his spirit is better than he that taketh a city." He replied that they would feel that everywhere except in Italy. They had to deal with two hundred thousand men with rifles in their hands. Mussolini's dictatorship was a popular dictatorship, and success was the essence of its strength. Finally, I said that I was in favour of a meeting between the political chiefs of the three countries. The three men together could carry off something that one could never do by himself. After all, the claims of Italy to primacy in the Abyssinian sphere and the imperative need of internal reform [in Abyssinia] had been fully recognised by England and France. I told him I should support such an idea if it were agreeable. The British public would be willing to

* See p 156.

try all roads to an honourable peace I thought there should be a meeting of three. Any agreement they reached would of course be submitted to the League of Nations. It seemed to me the only chance of avoiding the destruction of Italy as a powerful and friendly factor in Europe Even if it failed no harm would have been done, and at present we were heading for an absolute smash.

APPENDIX B

MY NOTE ON THE FLEET AIR ARM*

WRITTEN FOR SIR THOMAS INSKIP, MINISTER FOR THE CO-ORDINATION OF DEFENCE, IN 1936

1. It is impossible to resist an admiral's claim that he must have complete control of, and confidence in, the aircraft of the battle fleet, whether used for reconnaissance, gun-fire, or air attack on a hostile fleet. These are his very eyes Therefore the Admiralty view must prevail in all that is required to secure this result

2. The argument that similar conditions obtain in respect of Army co-operation aircraft cannot be countenanced. In one case the aircraft take flight from aerodromes and operate under precisely similar conditions to those of normal independent Air Force action Flight from warships and action in connection with naval operations is a totally different matter One is truly an affair of co-operation only, the other an integral part of modern naval operations

3 A division must therefore be made between the Air Force controlled by the Admiralty and that controlled by the Air Ministry This division does not depend upon the type of the undercarriage of the aircraft, nor necessarily the base from which it is flown. It depends upon the function Is it predominantly a naval function or not?

4. Most of these defence functions can clearly be assigned For instance, all functions which require aircraft of any description (whether with wheels, floats, or boats, whether reconnaissance, spotters or fighters, bombers or torpedo-seaplanes) to be carried regularly in warships or in aircraft-carriers naturally fall to the naval sphere

5. The question thus reduces itself to the assignment of any type operating over the sea from shore bases This again can only be decided in relation to the functions and responsibilities placed upon the Navy. Aircraft borne afloat could discharge a considerable function of trade protection This would be especially true in the broad waters, where a

* See p. 143

squadron of cruisers with their own scouting planes or a pair of small aircraft-carriers could search upon a front of a thousand miles But the Navy could never be required—nor has it ever claimed—to maintain an air strength sufficient to cope with a concentrated attack upon merchant shipping in the Narrow Waters by a large hostile Air Force of great power In fact, the maxim must be applied of Air Force *versus* Air Force and Navy *versus* Navy. When the main hostile Air Force or any definite detachment from it is to be encountered, it must be by the British Royal Air Force.

6. In this connection it should not be forgotten that a ship or ships may have to be selected and adapted for purely Air Force operations, like a raid on some deep-seated enemy base or vital centre This is an Air Force operation, and necessitates the use of types of aircraft not normally associated with the Fleet In this case the *rôles* of the Admiralty and the Air Ministry will be reversed, and the Navy would swim the ship in accordance with the tactical or strategic wishes of the Air Ministry. Far from becoming a baffle, this special case exemplifies the logic of the "division of command according to function"

7 What is conceded to the Navy should, within the limits assigned, be fully given The Admiralty should have plenary control and provide the entire personnel of the Fleet Air Arm Officers, cadets, petty officers, artificers, etc , for this force would be selected from the Royal Navy by the Admiralty They would then acquire the art of flying and the management of aircraft in the R A F training schools—to which perhaps naval officers should be attached—but after acquiring the necessary degree of proficiency as air chauffeurs and mechanics they would pass to shore establishments under the Admiralty for their training in Fleet Air Arm duties, just as the pilots of the Royal Air Force do to their squadrons at armament schools to learn air fighting Thus, the personnel employed upon fleet air functions will be an integral part of the Navy, dependent for discipline and advancement as well as for their careers and pensions solely upon the Admiralty. This would apply to every rank and every trade involved, whether afloat or ashore

8 Coincident with this arrangement whereby the Fleet Air Arm becomes wholly a naval Service, a further rearrangement of functions should be made, whereby the Air Ministry becomes responsible for active anti-aircraft defence This implies, in so far as the Navy is concerned, that, at every naval port, shore anti-aircraft batteries, lights, aircraft, balloons, and other devices will be combined under one operational control, though the officer commanding would of course, with his command, be subordinate to the Fortress Commander

9 In the same way, the control of the air defences of London and

of such other vulnerable areas as it may be necessary to equip with anti-air defences on a considerable scale should also be unified under one command and placed under the Air Ministry. The consequent control should cover not only the operations, but, as far as may conveniently be arranged, the training, the raising and administration of the entire personnel for active air defence

10. The Air Ministry have as clear a title to control active anti-air defence as have the Navy to their own "eyes". For this purpose a new department should be brought into being in the Air Ministry, to be called "Anti-Air", to control all guns, searchlights, balloons, and personnel of every kind connected with this function, as well as such portion of the Royal Air Force as may from time to time be assigned to it for this duty. Under this department there will be Air Force officers, assisted by appropriate staffs, in command of all active air defences in specified localities and areas.

11. It is not suggested that the Air Ministry or Air Staff are at present capable of assuming unaided this heavy new responsibility. In the formation of the Anti-Air Command recourse must be had to both the older Services. Well-trained staff officers, both from the Army and the Navy, must be mingled with officers of the existing Air Staff.

N.B.—The question of the recruitment and of the interior administration of the units handed over to the Anti-Air Command for operations and training need not be a stumbling-block They could be provided from the present sources unless and until a more convenient solution was apparent

12 This memorandum has not hitherto dealt with *matériel*, but that is extremely simple The Admiralty will decide upon the types of aircraft which their approved functions demand. The extent of the inroad which they require to make upon the finances and resources of the country must be decided by the Cabinet, operating through a Priorities Committee under the Minister for the Co-ordination of Defence. At the present stage this Minister would no doubt give his directions to the existing personnel, but in the event of war or the intensification of the preparations for war he would give them to a Ministry of Supply There could of course be no question of Admiralty priorities being allowed to override other claims in the general sphere of air production All must be decided from the supreme standpoint

13 It is not intended that the Admiralty should develop technical departments for aircraft design separate from those existing in the Air Ministry or under a Ministry of Supply They would however be free to form a nucleus technical staff to advise them on the possibilities

of scientific development and to prescribe their special naval requirements in suitable technical language to the supply department

14 To sum up therefore we have.

First—The Admiralty should have plenary control of the Fleet Air Arm for all purposes which are defined as naval.

Secondly—A new department must be formed under the Air Ministry from the three Services for active anti-aircraft defence operations

Thirdly—The question of *matériel* supply must be decided by a Priorities Committee under the Minister for the Co-ordination of Defence, and executed at present through existing channels, but eventually by a Ministry of Supply

APPENDIX C

A NOTE ON SUPPLY ORGANISATION, JUNE 6, 1936*

1 The existing office of the Minister for the Co-ordination of Defence comprises unrelated and wrongly-grouped functions The work of the Minister charged with strategic co-ordination is different, though not in the higher ranges disconnected, from the work of the Minister charged with (*a*) securing the execution of the existing programmes, and (*b*) planning British industry to spring quickly into war-time conditions and creating a high control effective for both this and the present purpose

2 The first step therefore is to separate the functions of strategic thought from those of material supply in peace and war, and form the organisation to direct this latter process An harmonious arrangement would be four separate departments—Navy, Army, Air Force, and Supply—with the Co-ordinating Minister at the summit of the four having the final voice upon priorities.

3 No multiplication of committees, however expert or elaborate, can achieve this purpose. Supply cannot be achieved without command A definite chain of responsible authority must descend through the whole of British industry affected (This must not be thought to imply State interference in the actual functions of industry) At the present time the three Service authorities exercise separate command over their particular supply, and the fourth, or planning, authority is purely consultative, and that only upon the war need divorced from present supply What is needed is to unify the supply command of

* See p 191.

the three Service departments into an organism which also exercises command over the war expansion. (The Admiralty would retain control over the construction of warships and certain special naval stores)

4. This unification should comprise not only the function of supply but that of design The Service departments prescribe in general technical terms their need in type, quality, and quantity, and the supply organisation executes these in a manner best calculated to serve its customers In other words, the Supply Department engages itself to deliver the approved types of war stores of all kinds to the Services when and where the latter require them

5. None of this, nor the punctual execution of any of the approved programmes, can be achieved in the present atmosphere of ordinary peace-time preparation. It is neither necessary nor possible at this moment to take war-time powers and apply war-time methods. An intermediate state should be declared called (say) the period of emergency preparation.

6. Legislation should be drafted in two parts—first, that appropriate to the emergency preparation stage, and, second, that appropriate to a state of war Part I should be carried out now. Part II should be envisaged, elaborated, the principles defined, the clauses drafted and left to be brought into operation by a fresh appeal to Parliament should war occur The emergency stage should be capable of sliding into the war stage with the minimum of disturbance, the whole design having been foreseen.

7 To bring this new system into operation there should first be created a Minister of Supply This Minister would form a Supply Council. Each member would be charged with the study of the four or five branches of production falling into his sphere. Thereafter, as soon as may be, the existing Service sub-departments of supply, design, contracts, etc , would be transferred by instalments to the new authority, who alone would deal with the Treasury upon finance (By "finance" is meant payments within the scope of the authorised programmes.)

APPENDIX D

MY STATEMENT ON THE OCCASION OF THE DEPUTATION OF CONSERVATIVE MEMBERS OF BOTH HOUSES TO THE PRIME MINISTER, JULY 28, 1936*

In time of peace the needs of our small Army, and to some extent of the Air Force and Admiralty, in particular weapons and ammunition are supplied by the War Office, which has for this purpose certain Government factories and habitual private contractors This organisation is capable of meeting ordinary peace-time requirements, and providing the accumulating of reserves sufficient for a few weeks of war by our very limited regular forces Outside this there was nothing until a few months ago About three or four months ago authority was given to extend the scope of War Office orders in certain directions to ordinary civil industry

On the other hand, in all the leading Continental countries the whole of industry has been for some time solidly and scientifically organised to turn over from peace to war In Germany of course above all others this became the supreme study of the Government even before the Hitler *régime* Indeed, under the impulse of revenge, Germany, forbidden by treaty to have fleets, armies, and an Air Force, concentrated with intense compression upon the perfecting of the transference of its whole industry to war purposes We alone began seriously to examine the problem when everyone else had solved it There was however still time in 1932 and 1933 to make a great advance Three years ago, when Hitler came into power, we had perhaps a dozen officials studying the war organisation of industry, as compared with five or six hundred working continuously in Germany The Hitler *régime* set all this vast machinery in motion They did not venture to break the treaties about Army, Navy, and Air Force until they had a head of steam on in every industry which would, they hoped, speedily render them an armed nation unless they were immediately attacked by the Allies.

What is being done now? Nothing has been told to Parliament except some fragmentary items which by themselves are likely to mislead the ignorant For instance, we were told last week that fifty-two firms had been inspected and offered contracts to make ammunition, that the old gun factory was to be reopened at Nottingham, and the Woolwich filling-station was to be moved to the West Coast. But no orders were given till three months ago, and none of this preparation

* See p 204.

can reach a stage of mass deliveries for at least eighteen months from the date of the order If by ammunition is meant projectiles (both bombs and shells) and cartridge-cases containing propellent, it will be necessary to equip all these factories with a certain amount of additional special-purpose machine-tools, and to modify their existing lay-out. In addition jigs and gauges for the actual manufacture must be made . . The manufacture of these special machine-tools, jigs, and gauges will have to be done in most cases by firms quite different from those to whom the output of projectiles is entrusted. After the delivery of the special machine-tools a further delay is required while they are being set up in the producing factories, and while the process of production is being started. Then, and only then, at first in a trickle, then in a stream, and finally in a flood, deliveries will take place Not till then can the accumulation of war resources begin. This inevitably lengthy process is still being applied on a relatively minute scale. The fifty-two firms have been offered contracts. Fourteen had last week accepted contracts. At the present moment it would be no exaggeration to state that the German ammunition plants may well amount to four or five hundred, already for very nearly two years in full swing.

Turning now to cannon. by cannon I mean guns firing explosive shells. The processes by which a cannon factory is started are necessarily lengthy, the special plants and machine-tools are more numerous, and the lay-out more elaborate. Our normal peace-time output of cannon in the last ten years has, apart from the Fleet, been negligible. We are therefore certainly separated by two years from any large deliveries of field guns or anti-aircraft guns. Last year it is probable that at least five thousand guns were made in Germany, and this process could be largely amplified in war. Surely we ought to call into being plant which would enable us, if need be, to create and arm a national army of a considerable size.

I have taken projectiles and cannon because these are the core of defence, but the same arguments and conditions, with certain modifications, apply over the whole field of equipment. The flexibility of British industry should make it possible to produce many forms of equipment—for instance, motor lorries and other kindred weapons, such as tanks and armoured cars—and many slighter forms of material necessary for an army, in a much shorter time if that industry is at once set going Has it been set going? Why should we be told that the Territorial Army cannot be equipped until after the Regular Army is equipped? I do not know what is the position about rifles and rifle ammunition. I hope at least we have enough for a million men. But the delivery of rifles from new sources is a very lengthy process.

Even more pertinent is the production of machine-guns. I do not

know at all what is the programme of Browning and Bren machine-guns But if the orders for setting up the necessary plant were only given a few months ago one cannot expect any appreciable deliveries except by direct purchase from abroad before the beginning of 1938 The comparable German plants already in operation are capable of producing supplies limited only by the national manhood available to use them

But this same argument can be followed out through all the processes of producing explosives, propellent, fuzes, poison gas, gas-masks, searchlights, trench-mortars, grenades, air-bombs, and all the special adaptations required for depth-charges, mines, etc , for the Navy It must not be forgotten that the Navy is dependent upon the War Office and upon an expansion of national industry for a hundred and one minor articles, a shortage in any one of which will cause grave injury Behind all this again lies of course the supply of raw materials, with its infinite complications.

What is the conclusion? It is that we are separated by about two years from any appreciable improvement in the material process of national defence, so far as concerns the whole volume of supplies for which the War Office has hitherto been responsible, with all the reactions that entails, both on the Navy and the War Office But, upon the scale on which we are now acting, even at the end of two years the supply will be petty compared either with our needs in war or with what others have already acquired in peace.

Surely if these facts are even approximately true—and I believe they are mostly understatements—how can it be contended that there is no emergency, that we must not do anything to interfere with the ordinary trade of the country, that there is no need to approach the trade unions about dilution of trainees, that we can safely trust to what the Minister for Co-ordination of Defence described as "training the additional labour as required on the job", and that nothing must be done which would cause alarm to the public, or lead them to feel that their ordinary habit of life was being deranged?

Complaint is made that the nation is unresponsive to the national need, that the trade unions are unhelpful, that recruiting for the Army and the Territorial Force is very slack, and even is obstructed by elements of public opinion But as long as they are assured by the Government that there is no emergency these obstacles will continue

I was given confidentially by the French Government an estimate of the German air strength in 1936 This tallies almost exactly with the figures I forecast to the Committee of Imperial Defence in December last The Air Staff now think the French estimate too high Personally I think it is too low The number of machines which Germany could

now put into action simultaneously may be nearer two thousand than fifteen hundred. Moreover, there is no reason to assume that they mean to stop at two thousand The whole plant and lay-out of the German Air Force is on an enormous scale, and they may be already planning a development far greater than anything yet mentioned Even if we accept the French figures of about fourteen hundred, the German strength at this moment is double that of our Metropolitan Air Force, judged by trained pilots and military machines that could go into action and be maintained in action But the relative strength of two countries cannot be judged without reference to their power of replenishing their fighting force. The German industry is so organised that it can certainly produce at full blast a thousand a month and increase the number as the months pass. Can the British industry at the present time produce more than three hundred to three hundred and fifty a month? How long will it be before we can reach a war-potential output equal to the German? Certainly not within two years. When we allow for the extremely high rate of war wastage, a duel between the two countries would mean that before six months were out our force would be not a third of theirs The preparation for war-time expansion at least three times the present size of the industry seems urgent in the highest degree It is probable however that Germany is spending not less than one hundred and twenty millions on her Air Force this year It is clear therefore that so far as this year is concerned we are not catching up On the contrary, we are falling farther behind. How long will this continue into next year? No one can tell.

It has been announced that the programme of 120 squadrons and 1,500 first-line aircraft for Home Defence would be completed by April 1, 1937 Parliament has not been given any information how this programme is being carried out in machines, in personnel, in organisation, or in the ancillary supplies We have been told nothing about it at all. I do not blame the Government for not giving full particulars. It would be too dangerous now Naturally however, in the absence of any information at all, there must be great anxiety and much private discussion. . . I doubt very much whether by July next year we shall have thirty squadrons equipped with the new types. I understand that the deliveries of the new machines will not really begin to flow in large numbers for a year or fifteen months Meanwhile we have very old-fashioned and obsolete tackle.

There is a second question about these new machines When they begin to flow out of the factories in large numbers fifteen months hence, will they be equipped with all necessary appliances? Take, for instance, the machine-guns If we are aiming at having a couple of thousand of the latest machines, i e., 1,500 and 500 reserve, in eighteen

months from now, what arrangements have been made for their machine-guns? Some of these modern fighting machines have no fewer than eight machine-guns in their wings. Taking only an average of four, with proper reserves, that would require 10,000 machine-guns. Is it not a fact that the large-scale manufacture of the Browning and Bren machine-guns was only decided upon a few months ago?

Let us now try the aeroplane fleet we have built and are building by the test of bombing-power as measured by weight and range. Here I must again make comparison with Germany. Germany has the power at any time henceforward to send a fleet of aeroplanes capable of discharging in a single voyage at least 500 tons of bombs upon London. We know from our war statistics that one ton of explosive bombs killed ten people and wounded thirty, and did £50,000 worth of damage. Of course, it would be absurd to assume that the whole bombing fleet of Germany would make an endless succession of voyages to and from this country. All kinds of other considerations intervene. Still, as a practical measure of the relative power of the bombing fleets of the two countries, the weight of discharge per voyage is a very reasonable measure. Now, if we take the German potential discharge upon London at a minimum of 500 tons per voyage of their entire bombing fleet, what is our potential reply? *They* can do this from now on. What can we do? First of all, how could we retaliate upon Berlin? We have not at the present time a single squadron of machines which could carry an appreciable load of bombs to Berlin. What shall we have this time next year? I submit for your consideration that this time next year, when it may well be that the potential discharge of the German fleet is in the neighbourhood of a thousand tons, we shall not be able to discharge in retaliation more than sixty tons upon Berlin.

But leave Berlin out of the question. Nothing is more striking about our new fleet of bombers than their short range. The great bulk of our new heavy and medium bombers cannot do much more than reach the coasts of Germany from this Island. Only the nearest German cities would be within their reach. In fact, the retaliation of which we should be capable this time next year from this Island would be puerile judged by the weight of explosive dropped, and would be limited only to the fringes of Germany.

Of course, a better tale can be told if it is assumed that we can operate from French and Belgian jumping-off grounds. Then very large and vital industrial districts of Germany would be within reach of our machines. Our Air Force will be incomparably more effective if used in conjunction with those of France and Belgium than it would be in a duel with Germany alone.

I now pass to the next stage: our defence, passive and active, ground and air, at home. Evidently we might have to endure an ordeal in our great cities and vital feeding-ports such as no community has ever been subjected to before. What arrangements have been made in this field? Take London and its seven or eight million inhabitants Nearly two years ago I explained in the House of Commons the danger of an attack by thermite bombs. These small bombs, little bigger than an orange, had even then been manufactured by millions in Germany. A single medium aeroplane can scatter five hundred. One must expect in a small raid literally tens of thousands of these bombs, which burn through from storey to storey Supposing only a hundred fires were started and there were only ninety fire brigades, what happens? Obviously the attack would be on a far more formidable scale than that. One must expect that a proportion of heavy bombs would be dropped at the same time, and that water, light, gas, telephone systems, etc, would be seriously deranged What happens then? Nothing like it has ever been seen in world history. There might be a vast exodus of the population, which would present to the Government problems of public order, of sanitation and food-supply, which would dominate their attention, and probably involve the use of all their disciplined forces

What happens if the attack is directed upon the feeding-ports, particularly the Thames, Southampton, Bristol, and the Mersey, none of which are out of range? What arrangements have been made to bring in the food through a far greater number of subsidiary channels? What arrangements have been made to protect our defence centres? By defence centres I mean the centres upon which our power to continue resistance depends. The problem of the civil population and their miseries is one thing; the means by which we could carry on the war is another. Have we organised and created an alternative centre of government if London is thrown into confusion? No doubt there has been discussion of this on paper, but has anything been done to provide one or two alternative centres of command, with adequate deep-laid telephone connections and wireless, from which the necessary orders can be given by some coherent thinking-mechanism? . . .

APPENDIX E

COMPARATIVE OUTPUT OF FIRST-LINE AIRCRAFT*
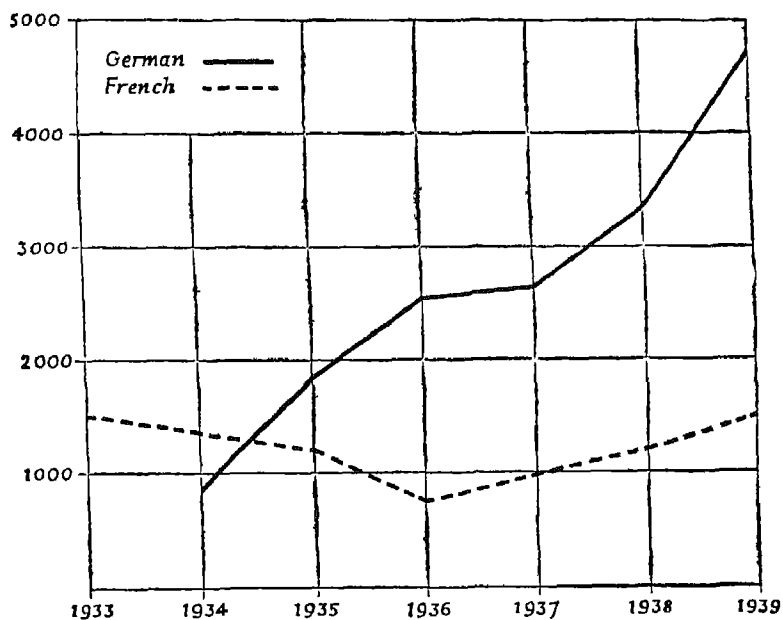
Note German figures derived from captured documents, French figures from a French source.

* See p. 213.

APPENDIX F

TABLES OF NAVAL STRENGTH SEPTEMBER 3, 1939*

(*a*) Includes three ships converted to A A. ships
(*b*) Includes ships converted to escort vessels
(*c*) Sixteen fitted for A S duties, remainder fitted for minesweeping.
(*d*) In addition six destroyers building for Brazil were taken over
(*e*) Includes *Lion* and *Temeraire*, which were later cancelled
(*f*) Never completed
(*g*) Only one of these, *Prinz Eugen*, was completed
(*h*) Includes training-cruiser *Emden*
(*j*) In addition fifty-eight corvettes ordered but not laid down
(*k*) British estimate at this date was fifty-nine, plus one built for Turkey but not delivered. (See Chapter XXIII)
(*l*) Under war conditions many of these must be expected to complete in 1940
(*m*) Includes all U-boats known to be building or projected on 3 9 39 Fifty-eight were actually completed between the outbreak of war and the end of 1940.

* See p. 367

BRITISH AND GERMAN FLEETS

Type	BRITISH (INCLUDING DOMINIONS)			GERMAN		
	Built	*Building*		Built	*Building*	
		Completing before 31 12 40	*Completing after* 31 12 40		*Completing before* 31 12 40	*Completing after* 31 12 40
Battleships ..	12	3	4(*e*)	—	2	2(*f*)
Battle-cruisers .	3	—	—	2	—	—
"Pocket" Battleships	—	—	—	3	—	—
Aircraft-carriers	7	3	3	—	1(*f*)	1(*f*)
Seaplane-carriers	2	—	—	—	—	—
Cruisers						
8-inch	15	—	—	2	2(*g*)	1(*f*)
6-inch or below	49(*a*)	13	6	6(*h*)	—	3(*j*)
Destroyers .	184(*b*)	15(*d*)	17	22	3	13(*l*)
Sloops .. .	38	4	—	—	—	—
Escort Destroyers	—	20	—	—	—	—
Corvettes (including patrol vessels)	8	3(*j*)	—	8	—	—
Torpedo-boats ..	—	—	—	30	4	6(*l*)
Minesweepers ..	42	—	—	32	10	—
Submarines .	58	12	12	57(*l*)	40(*m*)	—
Monitors (15-inch)	2	—	—	—	—	—
Minelayers	7	2	2	—	—	—
River Gunboats	20	—	—	—	—	—
Trawlers	72(*c*)	20	—	—	—	—
Motor Torpedo-boats (including Motor Gunboats, etc)	27	12	—	17	—	—

APPENDIX F

UNITED STATES

Strength of Fleet September 3, 1939
(excluding Coastguard Vessels)

Type	Completed	Under Construction and Projected	Estimated Date of Completion
Battleships	15	8	1 in 1941 1 in 1942 4 in 1943 2 later
Aircraft-carriers	5	2	1 in 1940 1 later
Aircraft Tenders	13	6	2 in 1941 4 later
Cruisers, 8-inch . ..	18	—	—
„ 6-inch	18	7(*a*)	1 in 1939-40 6 in 1943
Destroyers	181(*b*)	42	11 in 1939 16 in 1940 15 in 1941
Destroyer Tenders ..	8	4	2 in 1940 2 later
Submarines	99(*c*)	15	4 in 1940 11 in 1941-42
Gunboats (including Patrol Vessels) .	7	—	—
River Gunboats	6	—	—
Minelayers .. .	10	1	1940
Minesweepers	26	3	1940
Submarine Tenders .. .	6	2	1941
Submarine Chasers ..	14	16	4 in 1940 12 later
Motor Torpedo-boats ..	1	19	1939-40

NOTES

(*a*) Includes four ships mounting 5-inch guns
(*b*) Includes 126 over age
(*c*) Includes 65 over age

FRANCE

September 3, 1939

Type	*Completed*	*Building*	*Projected Date of Completion*
Battleships .. .	8 (incl 1 Training Ship)	3	1 in 1940 1 in 1941 1 in 1943
Battle-cruisers .. .	2	—	—
Aircraft-carriers	1	1	1 in 1942
Aviation Transport .. .	1	—	—
Cruisers	18	3	—
Light Cruisers (Contre-torpilleurs)	32	—	—
Destroyers (Torpilleurs) ..	28	24	6 in 1940
Motor Torpedo-boats .	3	6	6 in 1940
Torpedo-boats	12	—	—
Cruiser Submarine .. .	1	—	—
Submarines, 1st Class ..	38	3	—
,, 2nd Class .	33	10	2 in 1940
Minelaying S M s	6	1	—
River Gunboats (incl 2 ex-S M Chasers)	10	—	—
Net and Mine Layer .	1	—	—
Minelayers	3	—	—
Minesweepers ..	26	7	—
Colonial Sloops .. .	8	—	—
Submarine Chasers	13	8	5 in 1940

ITALY

September 3, 1939

Type	*Completed*	*Building*	*Projected Date of Completion*
Battleships	4	4	2 in 1940 2 in 1942
Cruisers, 8-inch	7	—	—
„ 6-inch	12	—	—
Old Cruisers	3	—	—
Cruisers, 5 3-inch	—	12	1942–43
Destroyers	59	8	1941–42
Torpedo-boats	69	4	1941–42
Submarines	105	14	10 in 1940 4 in 1941–42
Motor Torpedo-boats	69	—	—
Minelayers	16	—	—
Sloop	1	—	—
Seaplane Tender	1	—	—

JAPAN

September 3, 1939

Type	*Completed*	*Building in 1939*	*Projected Date of Completion*	*Strength on entering War Dec 7, 1941*
Battleships	10	2	1 in 1941 1 in 1942	10
Aircraft-carriers	6	? 10	1 in 1940 4 in 1941 5 in 1942	11
Cruisers	18 8-inch 17 5 5-inch 3 old types	3 or 4	3 in 1940 1 in 1942	18 8-inch 20 5 5-inch 3 old types
Seaplane Tenders	2	2	2 in 1942	2
Minelayers	5	2	1 in 1939 1 in 1940	8
Destroyers .	113	20	2 in 1939 10 in 1940 8 in 1941	129
Submarines ..	53	33	3 in 1940 11 in 1941 19 in 1942	67
Escort Vessels	4	—	—	4
Gunboats .	10	3	2 in 1940 1 in 1941	13
Torpedo-boats	12	—	—	—

APPENDIX G

MINUTE OF SEPTEMBER 12, 1939

*PLAN "CATHERINE"**

PART I

(1) For a particular operation special tools must be constructed D N C thinks it would be possible to hoist an "R" [a battleship of the *Royal Sovereign* class] 9 ft, thus enabling a certain channel where the depth is only 26 ft to be passed There are at present no guns commanding this channel, and the States on either side are neutral. Therefore there would be no harm in hoisting the armour-belt temporarily up to the water level. The method proposed would be to fasten caissons [bulges] in two layers on the sides of the "R", giving the ship the enormous beam of 140 ft No insuperable difficulty exists in fixing these, the inner set in dock and the outer in harbour By filling or emptying these caissons the draught of the vessel can be altered at convenience, and, once past the shallow channel, the ship can be deepened again so as to bring the armour-belt comfortably below the waterline The speed when fully hoisted might perhaps be 16 knots, and when allowed to fall back to normal draught 13 or 14 These speeds could be accepted for the operation. They are much better than I expected

It is to be noted that the caissons afford admirable additional protection against torpedoes, they are in fact super-blisters

It would also be necessary to strengthen the armour deck so as to give exceptional protection against air-bombing, which must be expected

(2) The caissons will be spoken of as "galoshes", and the strengthening of the deck as the "umbrella"

(3) When the ice in the theatre concerned melts about March (?) the time for the operation would arrive If orders are given for the necessary work by October 1, the designs being made meanwhile, we have six months, but seven would be accepted It would be a great pity to waste the summer, therefore the highest priority would be required. Estimates of time and money should be provided on this basis

(4) In principle two "Rs" should be so prepared, but of course three would be better Their only possible antagonists during the summer of 1940 would be the *Scharnhorst* and *Gneisenau* It may be taken for certain that neither of these ships, the sole resource of Germany, would expose themselves to the 15-inch batteries of the "Rs", who would shatter them.

* See p 415

(5) Besides the "Rs" thus prepared, a dozen mine-bumpers should be prepared Kindly let me have designs These vessels should be of sufficiently deep draught to cover the "Rs" when they follow, and be worked by a small engine-room party from the stern They would have a heavy fore-end to take the shock of any exploding mine One would directly precede each of the "Rs" Perhaps this requirement may be reduced, as the ships will go line ahead I can form no picture of these mine-bumpers, but one must expect two or three rows of mines to be encountered, each of which might knock out one It may be that ordinary merchant ships could be used for the purpose, being strengthened accordingly

(6) Besides the above, it will be necessary to carry a three months, reasonable supply of oil for the whole expeditionary fleet For this purpose turtle-back blistered tankers must be provided capable of going at least 12 knots. 12 knots may be considered provisionally as the speed of the passage, but better if possible.

PART II

(1) The objective is the command of the particular theatre [the Baltic], which will be secured by the placing [in it] of a battle squadron which the enemy heavy ships dare not engage Around this battle squadron the light forces will act It is suggested that three 10,000-ton 8-inch-gun cruisers and two 6-inch should form the cruiser squadron, together with two flotillas of the strongest combat destroyers, a detachment of submarines, and a considerable contingent of ancillary craft, including, if possible, depot ships and a fleet repair vessel

(2) On the approved date the "Catherine" fleet would traverse the passage by night or day, as judged expedient, using, if desired, smoke-screens The destroyers would sweep ahead of the fleet, the mine-bumpers would precede the "Rs", and the cruisers and lighter vessels would follow in their wake All existing apparatus of paravanes and other precautions can be added It ought therefore to be possible to overcome the mining danger, and there are no guns to bar the channel A heavy attack from the air must be countered by the combined batteries of the fleet

Note An aircraft-carrier could be sent in at the same time, and kept supplied with reliefs of aircraft reaching it by flight.

PART III

It is not necessary to enlarge on the strategic advantages of securing the command of this theatre It is the supreme naval offensive open to the Royal Navy The isolation of Germany from Scandinavia would intercept the supplies of iron ore and food and all other trade.

The arrival of this fleet in the theatre and the establishment of command would probably determine the action of the Scandinavian States They could be brought in on our side; in which case a convenient base could be found capable of being supplied overland The difficulty is that until we get there they do not dare, but the three months' oil supply should give the necessary margin, and if the worst comes to the worst it is not seen why the fleet should not return as it came The presence of this fleet in the theatre would hold all enemy forces on the spot They would not dare to send them on the trade routes, except as a measure of despair. They would have to arm the whole northern shore against bombardment, or possibly even, if the alliance of the Scandinavian Powers was obtained, military descents. The influence of this movement upon Russia would be far-reaching, but we cannot count on this.

Secrecy is essential, as surprise must play its full part. For this purpose the term "Catherine" will always be used in speaking of the operation The caissons will be explained as "additional blisters" The strengthening of the turtle-decks is normal A A precaution

I commend these ideas to your study, hoping that the intention will be to solve the difficulties.

W S. C.

APPENDIX H

NEW CONSTRUCTION AND RECONSTRUCTION*

First Lord to First Sea Lord and others *October* 8, 1939

1. It is far more important to have some ships to fight with, and to have ships that Parliament has paid for delivered to date, than to squander effort upon remote construction which has no relation to our dangers!

2 A supreme effort must be made to finish *King George V* and *Prince of Wales* by their contract dates The peace-time habit of contractors in booking orders and executing them when they please cannot be allowed to continue in time of war Advise me of the penalties that may be enforced, in order that a case may be stated, if necessary, to the Law Officers of the Crown. Advise me also of the limiting factors I suppose, as usual, the gun-mountings It must be considered a marked failure by all concerned if these ships are not finished by their contract dates I will myself inquire on Friday next into the condition of each of these ships, and will see the contractors personally at the Admiralty in your presence Pray arrange these meetings from 5 p m. onwards It is no use the contractors saying it

* See p 418

cannot be done I have seen it done when full pressure is applied and every resource and contrivance utilised In short, we must have *K G V.* by July 1940, and *P of W.* three months later. The ships we need to win the war with must be in commission in 1940

Pray throw yourselves into this and give me your aid to smooth away the obstacles

3 The above remarks apply also to the aircraft-carriers. *Illustrious* is to be five months late, and we know what that means *Victorious* is even to be nine months late. *Formidable*, from the 1937 programme, is six months late, and *Indomitable* five months late All these ships will be wanted to take part in the war, and not merely to sail the seas—perhaps under the German flag (!)—after it is over. Let me appeal to you to make this go. The later construction of aircraft-carriers will not save us if we are beaten in 1940

4. Thirdly, there are the cruisers Look, for example, at the *Dido*, which was contracted to be finished in June 1939 and is now offered to us in August 1940 What is the explanation of this fiasco?

5. We have at this moment to distinguish carefully between running an industry or a profession and winning the war. The skilled labour employed upon vessels which cannot complete during 1940 should, so far as is necessary or practicable, be shifted on to those that can complete in 1940 Special arrangements must be made as required to transfer the workmen from the later ships to those that are needed for the fighting All ships finishing in 1941 fall into the shade, and those of 1942 into the darkness. We must keep the superiority in 1940

6 The same principles apply even more strongly to destroyers and light craft, but these seem to be going on pretty well, and I have not yet had time to look in detail into their finishing dates But we most urgently require two new battleships, four aircraft-carriers, and a dozen cruisers *commissioned and at work* before the end of 1940.

* * * * *

First Lord to First Sea Lord *October* 21, 1939

I address this to you alone, because together we can do what is needful

We must have a certain number of capital ships that are not afraid of a chance air-bomb We have been able to protect them by bulges and Asdics against the U-boats We must have them made secure against the air It is quite true that it may well be a hundred to one against a hit with a heavy air-torpedo upon a ship, but the chance is always there, and the disproportion is grievous Like a hero being stung by a malarious mosquito! We must work up to the old idea of a ship fit to lie the line against whatever may be coming

To come to the point. I want four or five ships made into tortoises

that we can put where we like and go to sleep content. There may be other types which will play their parts in the outer oceans; but we cannot go on without a squadron of heavy ships that can stand up to the battery from the air.

I wrote you this morning about the *Queen Elizabeth* But we must make at least five other ships air-proof—*i e*, not afraid of a thousand-pound armour-piercing bomb, if by chance it should hit from ten thousand feet This is not so large a structural rearrangement as might appear You have got to pull a couple of turrets out of them, saving at least two thousand tons, and this two thousand tons has to be laid out in flat armour of six or seven inches, as high as possible, having regard to stability. The blank spaces of the turrets must be filled with A.A guns This means going down from eight guns to four But surely four 15-inch can wipe out *Scharnhorst* or *Gneisenau* Before the new German battleship arrives we must have *King George V* and *Prince of Wales* Let us therefore concentrate on having five or six vessels which are not afraid of the air, and therefore can work in narrow waters, and keep the high-class stuff for the outer oceans Pull the guns out and plaster the decks with steel This is the war proposition of 1940

How are you going to get these ships into dockyards' hands with all your other troubles?

Do not let us worry about the look of the ship Pull the superimposed turrets out of them Do one at Plymouth, one at Portsmouth, two on the Clyde, and one on the Tyne These four-gun ships could be worked up to a very fine battery if the gunnery experts threw themselves into it. But above all they must bristle with A.A, and they must swim or float wherever they choose. Here is the war *motif* of 1940, and we now have the time.

How all this reinforces our need for armoured ammunition ships, and armoured oilers, is easily seen In all this we have not got to think so much of a sea action as of sea-power maintained in the teeth of air attack

All this ought to be put in motion Monday, and enough information should be provided to enable us to take far-reaching decisions not later than Thursday On that day let us have Controller, D N C, and D N O and shift our fighting front from the side of the ship to the top.

It looks to me as if the war would lag through the winter, with token fighting in all spheres, but that it will begin with mortal intensity in the spring

Remember no one can gainsay what we together decide

W. S. C.

APPENDIX I

NEW CONSTRUCTION PROGRAMMES, 1939–1940*

(EXCLUSIVE OF LIGHT COASTAL CRAFT)

I *Type*	II *New Construction approved before Outbreak of War*	III 1939 *War Programmes*	IV 1940 *War Programmes*	V *Revised (War) Estimated Completion Dates*		VI *Actual Completions*	
				(*a*) *By end of* 1940	(*b*) *By end of* 1941 *in addition to* (*a*)	(*a*) *By end of* 1940	(*b*) *By end of* 1941 *in addition to* (*a*)
Battleships ..	9 (*a*)	—	1 ( )	2	2	1	2
Aircraft-carriers	6	—	—	3	2	2	2
Cruisers, 8-inch .. .	—	—	—	—	—	—	—
,, 6-inch and below .. .	23 (*b*)	6	—	13	7	7	6
Fleet Destroyers . .	32	16	32	12	28	11+6(*g*)	14
Escort Destroyers ..	20	36	30	26	34	25	25
Sloops	4	2	20	4	2	2	4
Corvettes (including Escort Vessels)	61 (*c*)	60	52 (*f*)	88	48	51	70
Submarines . .	12	19	49	22	23	19	19
Minelayers ..	4	—	—	2	2	—	4
Minesweepers ..	20 (*d*)	22	22	10	31	5	20
Trawlers (Anti-submarine) .. .	20	32	100	42	50	30	53

NOTES (*a*) Includes H.M. ships *Lion*, *Temeraire*, *Conqueror*, and *Thunderer*, which were subsequently cancelled.
(*b*) Includes four ships of 1939 programme not laid down on 3 9 39, two of which were subsequently cancelled.
(*c*) Fifty-eight corvettes ordered but not laid down on 3 9 39.
(*d*) Ordered but not laid down on 3 9 39
(*e*) H M S *Vanguard*
(*f*) Twenty-seven of these were later named frigates
(*g*) Six destroyers building for Brazil and taken over.

* See p. 419.

APPENDIX J

FLEET BASES*

First Lord to D.C.N S (to initiate action as last paragraph) and others 1.XI 39

It was arranged at a conference between the First Lord, the First Sea Lord, and the C.-in-C. on *Nelson*, October 31, 1939, that the following arrangements should be made at Fleet bases:

1. Scapa cannot be available, except as a momentary refuelling base for the Fleet, before the spring Work is however to proceed with all possible speed upon—

(*a*) Blockships in the exposed channels.

(*b*) Doubling the nets and placing them specially wherever required They are to be at least as numerous and extensive as in the last war, plus the fact that the modern net is better The routine of the gates is to be studied afresh with a view to briefer openings and greater security

(*c*) The trawler and drifter fleet on the scale used in the Great War is to be earmarked for Scapa, and its disposition carefully considered by Plans Division. However, all these trawlers and drifters will be available for the Forth until it is time to use Scapa as a main base, *i e.*, not before the end of February 1940.

(*d*) The work on the hutments is to proceed without intermission.

(*e*) Gun-platforms are to be made in concrete for the whole of the eighty guns contemplated for the defence of Scapa. The work on these is to proceed throughout the winter, but the guns will not be moved there or mounted until the spring, when everything must be ready for them

(*f*) The aerodromes at Wick are to be increased to take four squadrons

(*g*) The R.D F work is to be gone on with, but must take its turn with more urgent work

Meanwhile Scapa can be used as a destroyer refuelling base, and the camouflaging of the oil tanks and the creation of dummy oil tanks should proceed as arranged Staff at Scapa is not to be diminished, but there is no need to add to the oil storage there beyond the 120,000 tons already provided. The men now making the underground storage can be used for other work of a more urgent nature, even within the recent Board decision.

* See p 443

2. Loch Ewe Port A is to be maintained in its present position, with its existing staff A permanent boom and net is to be provided even before the Scapa nets are completed The freshwater pipe is to be finished and any minor measures taken to render this base convenient as a concealed resting-place for the Fleet from time to time.

3 Rosyth is to be the main operational base of the Fleet, and everything is to be done to bring it to the highest possible efficiency Any improvements in the nets should be made with first priority. The balloons must be supplied so as to give effective cover against low-flying attack to the anchorage below the bridge. The twenty-four 3 7 guns and the four Bofors which were lately moved to the Clyde are to travel back, battery by battery, in the next four days to the Forth, beginning after the Fleet has left the Clyde It is not desired that this move should appear to be hurried, and the batteries may move as convenient and in a leisurely manner, provided that all are in their stations at the Forth within five days from the date of this minute. Strenuous effort with the highest priority for the R D F installations which cover Rosyth must be forthcoming Air Vice-Marshal Dowding is to-day conferring with the C -in-C Home Fleet upon the support which can be forthcoming from A D G B The arrangement previously reached with the Air Ministry must be regarded as the minimum, and it is hoped that at least six squadrons will be able to come into action on the first occasion the Fleet uses this base.

D C N S will kindly find out the upshot of the conference between the C -in-C and Vice-Marshal Dowding and report the results. We must certainly look forward to the Fleet being attacked as soon as it reaches the Forth, and all must be ready for that Thereafter this base will continue to be worked up in every way until it is a place where the strong ships of the Fleet can rest in security Special arrangements must be made to co-ordinate the fire of the ships with that of the shore batteries, observing that a 72-gun concentration should be possible over the anchorage

4. The sixteen balloons now disposed at the Clyde should not be removed, as they will tend to mislead the enemy upon our intentions

I should be glad if D C N S will vet this minute and make sure it is correct and solid in every detail, and, after obtaining the assent of the 1st S L , make it operative in all departments.

W. S. C.

First Lord to First Sea Lord 3 1 40

SCAPA DEFENCES

1 When in September we undertook to man the Scapa batteries, etc , the numbers of Marines required were estimated at 3,000. This

has now grown successively by War Office estimates to 6,000, to 7,000, to 10,000, or even 11,000. Of course, such figures are entirely beyond the capacity of the Royal Marines to supply.

2 Moreover, the training of the Royal Marines "hostilities only" men can only begin after March 1, when the necessary facilities can be given by the Army. Nothing had, in fact, been done since September except to gather together the nucleus of officers and N C O.s with about 800 men These can readily be used by us either for the Marine striking force or the mobile defence force

The War Office, on the other hand, have a surplus of trained men in their pools, and seem prepared to man the guns at Scapa as they are mounted at the rate of sixteen a month. As we want to use the base from March onwards, it is certain that this is the best way in which the need can be met

3 If by any chance the War Office do not wish to resume the responsibility, then we must demand from them the training facilities from February 1 and their full assistance with all the technical ratings we cannot supply; and also make arrangements for the gradual handing over of the staff It is clear, however, that the right thing is for them to do it, and we must press them hard

4 I do not wish the Admiralty to make too great a demand upon the Army It would seem that the numbers required could be substantially reduced if certain tolerances were allowed The figure of thirty men per gun and fourteen per searchlight is intended to enable every gun and searchlight to be continuously manned at full strength, night and day, all the year round But the Fleet will often be at sea, when a lower scale of readiness could be accepted Moreover, one would not expect the guns to be continuously in action for very prolonged attack If these attacks were made the Fleet would surely put to sea It is a question whether the highest readiness might not be confined to a proportion of the guns, the others having a somewhat longer notice

5. Is it really necessary to have 108 anti-aircraft lights? Is it likely that an enemy making an attack upon the Fleet at this great distance would do it by night? All their attacks up to the present have been by day, and it is only by day that precise targets can be hit

6. When the Fleet is ready to use Scapa we must shift a large proportion, preferably half, of the guns and complements from Rosyth We cannot claim to keep both going at the same time on the highest scale. Here is another economy.

7 It is suggested, therefore, by me that 5,000 men should be allotted to the Scapa defences, and that the Commander should be told to work up gradually the finest show of gun-power he can develop by

carefully studying local refinements which deal with each particular battery and post

8 For a place like Scapa, with all this strong personnel on the spot, parachute landings or raids from U-boats may be considered most unlikely There is therefore no need to have a battalion in addition to the artillery regiments The Commander should make arrangements to have a sufficient emergency party ready to deal with any such small and improbable contingencies

9. The case is different with the Shetlands, where we should be all the better for a battalion, though this need not be equipped on the Western Front scale.

W. S. C.

APPENDIX K

NAVAL AID TO TURKEY*

NOTE BY THE FIRST LORD OF THE ADMIRALTY, NOVEMBER 1, 1939

The First Sea Lord and I received General Orbay this afternoon, and informed him as follows:

In the event of Turkey being menaced by Russia His Majesty's Government would be disposed, upon Turkish invitation and in certain circumstances, to come to the aid of Turkey with naval forces superior to those of Russia in the Black Sea. For this purpose it was necessary that the anti-submarine and anti-aircraft defences of the Gulf of Smyrna and the Gulf of Ismid should be developed, British technical officers being lent if necessary These precautions would be additional to the existing plans for placing anti-submarine nets in the Dardanelles and in the Bosphorus

We were not now making a promise or entering into any military engagement, and it was probable that the contingency would not arise We hoped that Russia would maintain a strict neutrality, or even possibly become friendly. However, if Turkey felt herself in danger, and asked for British naval assistance, we would then discuss the situation with her in the light of the Mediterranean situation and of the attitude of Italy, with the desire to enter into a formal engagement It might be that the arrival of the British Fleet at Smyrna would in itself prevent Russia from proceeding to extremities, and that the advance of the British Fleet to the Gulf of Ismid would prevent a military descent by Russia on the mouth of the Bosphorus. At any

* See p 402.

rate, it would be from this position that the operations necessary to establish the command of the Black Sea would be undertaken

General Orbay expressed himself extremely gratified at this statement. He said that he understood perfectly there was no engagement. He would report to his Government on his return, and the necessary preparatory arrangements at the bases would be undertaken.

I did not attempt to enter into the juridical aspect, as that would no doubt be thrashed out should we ever reach the stage where a formal Convention had to be drawn up It was assumed that Turkey would ask for British aid only in circumstances when she felt herself in grave danger, or had actually become a belligerent.

APPENDIX L

THE BLACK-OUT*

NOTE BY THE FIRST LORD OF THE ADMIRALTY, NOVEMBER 20, 1939

1. I venture to suggest to my colleagues that when the present moon begins to wane the black-out system should be modified to a sensible degree We know that it is not the present policy of the German Government to indulge in indiscriminate bombing in England or France, and it is certainly not their interest to bomb any but a military objective. The bombing of military objectives can best be achieved, and probably only be achieved, by daylight or in moonlight. Should they change this policy, or should a raid be signalled, we could extinguish our lights again. It should have been possible by this time to have made arrangements to extinguish the street lighting on a Yellow Warning However, so far as night bombing for the mere purpose of killing civilians is concerned, it is easy to find London by directional bearing and the map whether the city is lighted or not. There is no need to have the "rosy glow" as a guide, and it would not be a guide if it were extinguished before the raiders leave the sea. But there is not much in it anyway

2 There is, of course, no need to turn on the full peace-time street-lighting There are many modified forms The system in force in the streets of Paris is practical and effective. You can see six hundred yards The streets are light enough to drive about with safety, and yet much dimmer than in time of peace

3 The penalty we pay for the present methods is very heavy First, the loss of life Secondly, as the Secretary of State for Air has protested,

* See p 438

the impediment to munitions output; and also work at the ports, even on the west coast Thirdly, the irritating and depressing effect on the people, which is a drag upon their war-making capacity, and, because thought unreasonable, an injury to the prestige of His Majesty's Government Fourthly, the anxieties of women and young girls in the darkened streets at night or in blacked-out trains. Fifthly, the effect on shopping and entertainments.

I would therefore propose that as from December 1:

(*a*) Street-lighting of a dimmed and modified character shall be resumed in the cities, towns, and villages.

(*b*) Motor-cars and railway trains shall be allowed substantially more light, even at some risk.

(*c*) The existing restrictions on blacking out houses, to which the public have adapted themselves, shall continue, but that vexatious prosecutions for minor infractions shall not be instituted (I see in the newspapers that a man was prosecuted for smoking a cigarette too brightly at one place, and that a woman who turned on the light to tend her baby in a fit was fined in another)

(*d*) The grant of these concessions should be accompanied by an effective propaganda, continuously delivered by the broadcast, and handed out to motorists at all refuelling stations, that on an air-raid warning all motorists should immediately stop their cars and extinguish their lights, and that all other lights should be extinguished. Severe examples should be made of persons who, after a warning has been sounded, show any light

4 Under these conditions we might face the chances of the next three winter months, in which there is so much mist and fog We can always revert to the existing practice if the war flares up, or if we do anything to provoke reprisals.

APPENDIX M

A NOTE ON THE MEASURES AGAINST THE MAGNETIC MINE*

Although the general characteristics of magnetic firing-devices for mines and torpedoes were well understood before the outbreak of war, the details of the particular mine developed by the Germans could not then be known. It was only after the recovery of a specimen at Shoeburyness on November 23, 1939, that we could apply the knowledge derived from past research to the immediate development of suitable counter-measures.

The first need was for new methods of minesweeping, the second was to provide passive means of defence for all ships against mines in unswept or imperfectly-swept channels. Both these problems were effectively solved, and the technical measures adopted in the earlier stages of the war are briefly described in the following paragraphs.

Active Defence—Minesweeping Methods

The Magnetic Mine

To sweep a magnetic mine it is necessary to create a magnetic field in its vicinity of sufficient intensity to actuate the firing mechanism and so detonate it at a safe distance from the minesweeper. A design for a mine-destructor ship had been prepared early in 1939, and such a ship was now brought into service experimentally, fitted with powerful electro-magnets capable of detonating a mine ahead of her as she advanced. She had some success early in 1940, but the method was not found suitable or sufficiently reliable for large-scale development.

At the same time various forms of electric sweep were developed for towing by shallow-draft vessels. Electro-magnetic coils carried in low-flying aircraft were also used, but this method presented many practical difficulties and involved considerable risk to the aircraft. Of all the methods tried that which came to be known as the L L sweep showed the most promise, and efforts were soon concentrated on perfecting this. The sweeping gear consisted of long lengths of heavy electric cable known as tails, towed by a small vessel, two or more of which operated together. By means of a powerful electric current passed through these tails at carefully adjusted time-intervals mines could be detonated at a safe distance astern of the sweepers. One of the difficulties which faced the designers of this equipment was that

* See p. 455.

of giving the cables buoyancy The problem was solved by the cable industry, in the first instance by the use of a "sorbo" rubber sheath, but later the methods employed for sealing a tennis-ball were successfully adapted

By the spring of 1940 the L L sweepers were coming into effective operation in increasing numbers Thereafter the problem resolved itself into a battle of wits between the mine-designer and the minesweeping expert Frequent changes were made by the Germans in the characteristics of the mine, each of which was in turn countered by readjustment of the mechanism of the sweep Although the enemy had his successes and for a time might hold the initiative, the counter-measures invariably overcame his efforts in the end, and frequently it was possible to forecast his possible developments and prepare the counter in advance Up to the end of the war the L L sweep continued to hold its own as the most effective answer to the purely magnetic mine.

The Acoustic Mine

In the autumn of 1940 the enemy began to use a new form of mine. This was the "acoustic" type, in which the firing mechanism was actuated by the sound of a ship's propellers travelling through the water We had expected this development earlier, and were already well prepared for it The solution lay in providing the minesweeper with means of emitting a sound of appropriate character and sufficient intensity to detonate the mine at a safe distance Of the devices tried the most successful was the Kango vibrating hammer, fitted in a water-tight container under the keel of the ship Effective results depended on finding the correct frequency of vibration, and, as before, this could only be achieved quickly by obtaining a specimen of the enemy mine Once again we were fortunate, the first acoustic mine was detected in October 1940, and in November two were recovered intact from the mud flats in the Bristol Channel Thereafter successful counter-measures followed swiftly

Soon it transpired that both acoustic and magnetic firing-devices were being used by the enemy in the same mine, which would therefore respond to either impulse In addition, many anti-sweeping devices appeared, designed to keep the firing mechanism inactive during the first or any predetermined number of impulses, or for a given period of time after the mine was laid Thus a channel which had been thoroughly swept by our minesweepers, perhaps several times, might still contain mines which only "ripened" into dangerous activity later Despite all these fruits of German ingenuity and a severe setback in January 1941, when the experimental station on the Solent was bombed and many valuable records destroyed, the ceaseless battle

of wits continued to develop slowly in our favour. The eventual victory was a tribute to the tireless efforts of all concerned.

PASSIVE DEFENCE—DEGAUSSING

It is common knowledge that all ships built of steel contain permanent and induced magnetism. The resulting magnetic field may be strong enough to actuate the firing mechanism of a specially designed mine laid on the sea-bed, but protection might be afforded by reducing the strength of this field. Although complete protection in shallow water could never be achieved it was evident that a considerable degree of immunity was attainable. Before the end of November 1939 preliminary trials at Portsmouth had shown that a ship's magnetism could be reduced by winding coils of cable horizontally round the hull and passing current through them from the ship's own electrical supply. The Admiralty at once accepted this principle; any ship with electric power could thus be given some measure of protection, and, whilst pressing on with further investigation to determine the more precise requirements, no time was lost in making large-scale preparations for equipping the Fleet with this form of defence. The aim was to secure immunity for any ship in depths of water over 10 fathoms, whilst minesweeping craft and other small vessels should be safe in much shallower depths. More extensive trials carried out in December showed that this "coiling" process would enable a ship to move with comparative safety in half the depth of water which would be needed without such protection. Moreover, no important interference with the ship's structure and no elaborate mechanism were involved, although many ships would require additional electric power plant. As an emergency measure temporary coils could be fitted externally on a ship's hull in a few days, but more permanent equipment, fitted internally, would have to be installed at the first favourable moment. Thus in the first instance there need be little delay in the normal turn-round of shipping. The process was given the name of "degaussing", and an organisation was set up, under Vice-Admiral Lane-Poole, to supervise the fitting of all ships with this equipment.

The supply and administrative problems involved were immense. Investigation showed that whereas the needs of degaussing would absorb 1,500 miles of suitable cable every week, the industrial capacity of the country could only supply about one-third of that amount in the first instance. Although our output could be stepped up, this could only be done at the expense of other important demands, and the full requirements could only be met by large imports of material from abroad. Furthermore, trained staffs must be provided at all our ports to control the work of fitting, determine the detailed requirements for

each individual ship, and give technical advice to the many local authorities concerned with shipping movements All this refers to the protection of the great mass of ships comprising the British and Allied merchant fleets

By the first week of 1940 this organisation was gathering momentum At this stage the chief preoccupation was to keep ships moving to and from our ports, particularly the East Coast ports, where the principal danger lay All efforts were therefore concentrated on providing temporary coils, and the whole national output of suitable electric cable was requisitioned Cable-makers worked night and day to meet the demand Many a ship left port at this time with her hull encased in festoons of cable which could not be expected to survive the battering of the open sea, but at least she could traverse the dangerous coastal waters in safety, and could be refitted before again entering the mined area.

Wiping

Besides the method described above, another and simpler method of degaussing was developed which came to be known as "wiping" This process could be completed in a few hours by placing a large cable alongside the ship's hull and passing through it a powerful electric current from a shore supply No permanent cables need be fitted to the ship, but the process had to be repeated at intervals of a few months. This method was not effective for large ships, but its application to the great multitude of small coasters which constantly worked in the danger zone gave much-needed relief to the organisation dealing with "coiling" and yielded immense savings in time, material, and labour. It was of particular value during the evacuation of Dunkirk, when so many small craft of many kinds not normally employed in the open sea were working in the shallow waters round the Channel coasts.

DEGAUSSING OF MERCHANT SHIPS

MEMORANDUM BY THE FIRST LORD OF THE ADMIRALTY, MARCH 15, 1940

ADMIRALTY, *March* 15, 1940

My colleagues will be aware that one of our most helpful devices for countering the magnetic mine is the demagnetisation or degaussing of ships This affords immunity in waters of over 10 fathoms

The number of British ships trading to ports in the United Kingdom which require to be degaussed is about 4,300

The work of degaussing began in the middle of January, and by the 9th of March 321 warships and 312 merchant vessels were com-

pleted. 219 warships and approximately 290 merchant vessels were in hand on the same date

The supply of cable, which has up to the present governed the rate of equipment, is rapidly improving, and it is now the supply of labour in the shipyards which is likely to control the future rate of progress.

It would be a substantial advantage if part of the work of degaussing of British ships could be placed in foreign yards The number of neutral ships engaged in trade with this country is about 700 Neutral crews, and in particular the crews of Norwegian ships, are beginning to be uneasy about the dangers from enemy mines on the trade ways to our ports. The importance to us of the safety of these neutral ships and of the confidence of their crews is a strong argument for disclosing to neutral countries the technical information which they require to demagnetise their ships which trade with this country

Against the substantial advantages of arranging for some British ships to be demagnetised in foreign yards and of extending demagnetisation to neutral ships must be set any disadvantages of a loss of secrecy. If the enemy is informed of the measures which we are taking, he may (*a*) increase the sensitivity of his mines, or he may (*b*) mix mines of opposite polarity in the same field If secrecy could be preserved its advantage would be to delay these reactions of the enemy But technical details of our degaussing equipment have had to be given to all ship-repairing firms in this country Information which has been so widely distributed almost certainly becomes quickly known to the enemy

Moreover, (*a*) and (*b*) have the disadvantages to the enemy that—

(*a*) would make the mines easier to sweep and reduce the damage to non-degaussed ships by placing the explosion further forward or even ahead of the ships; and

(*b*) reversal of polarity would only be effective against certain ships which are difficult to demagnetise thoroughly, and would also require a sensitive setting of the mine

The above position has altered since the arrival of the *Queen Elizabeth* at New York and the subsequent publicity given to the subject in the Press The enemy now knows the nature of the protective measures we are taking, and, knowing the mechanism of his own mine, it will not be difficult for him to deduce the manner in which degaussing operates. He can therefore now adopt any counter-measures within his power The Press notices have had the further effect of increasing demands for information from neutrals, and to continue to refuse such information conflicts with our general policy of encouraging neutral ships to trade in this country

It is considered therefore by my advisers that we shall not be losing an advantage of any great importance by ceasing to treat the information as secret

The Admiralty recommend therefore—

(i) that shipyards in neutral countries be used, if necessary, to supplement resources in this country for the degaussing of British merchant ships,

(ii) that technical information of our methods of demagnetisation be supplied as and when necessary to neutral countries for the degaussing of neutral ships trading with this country

W S C.

APPENDIX N

EXTRACT FROM THE WAR DIARY OF U 47, NOVEMBER 28, 1939*

28 11 39
German Time

1245	Pos^{n} $60^\circ 25'$ N. 01° E	Masts in sight bearing 120° (true).
1249.	Wind NNW 10–9 Sea 8 Cloudy	I recognise a cruiser of the "London" class.
1334	$60^\circ 24'$ N. $01^\circ 17'$ E.	Range 8 hm [approx 880 yds] Estimated speed of cruiser 8 knots 1 torpedo fired from No 3 tube After 1 min 26 secs. an explosion heard I can see the damage caused by the hit, aft of the funnel The upper deck is buckled and torn The starboard torpedo-tube mounting is twisted backwards over the ship side The aircraft is resting on the tail unit The cruiser appears to have a 5° list to starboard, as she disappears on a reciprocal course into a rain squall
1403.		Surfaced Set off in pursuit
1420.		Cruiser again in sight bearing 090° I dive to close her, but she disappears in another rain squall
1451.		Surfaced and searched the area, but she could not be found.

* See p 147.

On 29.XI.39 the following entry was made in the war diary of Admiral Doenitz: "Following the report that U.47 had torpedoed a cruiser, Propaganda claimed a sinking. From the service-man's point of view such inaccuracies and exaggerations are undesirable."

APPENDIX O

CULTIVATOR No. 6*

During these months of suspense and analysis I gave much thought and compelled much effort to the development of an idea which I thought might be helpful to the great battle when it began. For secrecy's sake this was called "White Rabbit No. 6", later changed to "Cultivator No. 6". It was a method of imparting to our armies a means of advance up to and through the hostile lines without undue or prohibitive casualties. I believed that a machine could be made which would cut a groove in the earth sufficiently deep and broad through which assaulting infantry and presently assaulting tanks could advance in comparative safety across No-man's-land and wire entanglements and come to grips with the enemy in his defences on equal terms and in superior strength. It was necessary that the machine cutting this trench should advance at sufficient speed to cross the distance between the two front lines during the hours of darkness. I hoped for a speed of three or four m.p.h., but even half a mile would be enough. If this method could be applied upon a front of perhaps twenty or twenty-five miles, for which two or three hundred trench-cutters might suffice, dawn would find an overwhelming force of determined infantry established on and in the German defences, with hundreds of lines-of-communication trenches stretching back behind them, along which reinforcements and supplies could flow. Thus we should establish ourselves in the enemy's front line by surprise and with little loss. This process could be repeated indefinitely.

When I had had the first tank made twenty-five years before, I turned to Tennyson d'Eyncourt, Director of Naval Construction, to solve the problem. Accordingly I broached the subject in November to Sir Stanley Goodall, who now held this most important office, and one of his ablest assistants, Mr. Hopkins, was put in charge, with a grant of £100,000 for experiments. The design and manufacture of a working model was completed in six weeks by Messrs. Ruston-Bucyrus, of Lincoln. This suggestive little machine, about three feet long, performed excellently in the Admiralty basement on a floor of sand.

* See p. 497.

Having obtained the active support of the Chief of the Imperial General Staff, General Ironside, and other British military experts, I invited the Prime Minister and several of his colleagues to a demonstration Later I took it over to France and exhibited it both to General Gamelin and later on to General Georges, who expressed approving interest. On December 6 I was assured that immediate orders and absolute priority would produce two hundred of these machines by March 1941. At the same time it was suggested that a bigger machine might dig a trench wide enough for tanks.

On February 7, 1940, Cabinet and Treasury approval were given for the construction of two hundred narrow "infantry" and forty wide "officer" machines. The design was so novel that trial units of the main components had first to be built. In April a hitch occurred We had hitherto relied on a single Merlin-Marine type of engine, but now the Air Ministry wanted all these, and another heavier and larger engine had to be accepted instead. The machine in its final form weighed over a hundred tons, was seventy-seven feet long and eight feet high. This mammoth mole could cut in loam a trench five feet deep and seven and a half feet wide at half a mile an hour, involving the movement of eight thousand tons of soil. In March 1940 the whole process of manufacture was transferred to a special department of the Ministry of Supply The utmost secrecy was maintained by the three hundred and fifty firms involved in making the separate parts, or in assembling them at selected centres. Geological analysis was made of the soil of Northern France and Belgium, and several suitable areas were found where the machine could be used as part of a great offensive battle plan.

But all this labour, requiring at every stage so many people to be convinced or persuaded, led to nothing. A very different form of warfare was soon to descend upon us like an avalanche, sweeping all before it. As will presently be seen, I lost no time in casting aside these elaborate plans and releasing the resources they involved. A few specimens alone were finished and preserved for some special tactical problem or for cutting emergency anti-tank obstacles By May 1943 we had only the pilot model, four narrow and five wide machines made or making After seeing the full-sized pilot model perform with astonishing efficiency, I minuted, "Cancel and wind up the four of the five 'officer' type, but keep the four 'infantry' type in good order. Their turn may come" These survivors were kept in store until the summer of 1945, when, the Siegfried line being pierced by other methods, all except one were dismantled Such was the tale of "Cultivator No. 6". I am responsible but impenitent.

W. S. C.

APPENDIX P

BRITISH MERCHANT VESSELS LOST BY ENEMY ACTION DURING THE FIRST EIGHT MONTHS OF THE WAR*

(Numbers of ships shown in parentheses)

Enemy Agency	1939				1940				
	September	*October*	*November*	*December*	*January*	*February*	*March*	*April*	TOTAL *Gross tons*
U-boats	135,552 (26)	74,130 (14)	18,151 (5)	33,091 (6)	6,549 (2)	67,840 (9)	15,531 (3)	14,605 (3)	365,449 (68)
Mines	11,437 (2)	3,170 (2)	35,640 (13)	47,079 (12)	61,943 (11)	35,971 (9)	16,747 (8)	13,106 (6)	225,093 (63)
Surface Raider	5,051 (1)	27,412 (5)	706 (1)	21,964 (3)	—	—	—	5,207 (1)	60,340 (11)
Aircraft	—	—	—	487 (1)	23,296 (9)	—	5,439 (1)	—	29,222 (11)
Other and unknown causes	—	—	2,676 (3)	875 (1)	10,081 (2)	6,561 (3)	1,585 (1)	41,920 (9)†	63,698 (19)
TOTAL (gross tons)	152,040 (29)	104,712 (21)	57,173 (22)	103,496 (23)	101,869 (24)	110,372 (21)	39,302 (13)	74,838 (19)	743,802 (172)

* See p. 511.

† All these ships were sunk or seized by Germany in Norwegian ports.

APPENDIX Q

OPERATION "ROYAL MARINE"*

NOTE BY THE FIRST LORD OF THE ADMIRALTY

March 4, 1940

1. It will be possible to begin the naval operation at any time at 24 hours' notice after March 12. At that time there will, as planned, be available 2,000 fluvial mines of the naval type, comprising three variants. Thereafter a regular minimum supply of 1,000 per week has been arranged The detachment of British sailors is on the spot, and the material is ready All local arrangements have been made with the French through General Gamelin and Admiral Darlan These mines will, it is believed, affect the river for the first hundred miles below Karlsruhe There is always risk in keeping men and peculiar material teed-up so close (4–6 miles) to the enemy's front, although within the Maginot Line The river is reported to be in perfect order this month It will probably be deepened by the melting of the snows in April, involving some lengthening of the mine-tails, also the flow from the tributaries may be temporarily stopped, or even reversed

2. The Air Force will not be ready till the moon is again good in mid-April Therefore, unless our hand is forced by events, it would seem better to wait till then, so as to infest the whole river simultaneously, and thus also confuse the points of naval departure By mid-April the Air Force should have a good supply of mines, which could be laid every night during the moon in the reaches between Bingen and Coblentz All mines of both classes will become harmless before reaching the Dutch frontier Before the end of April it is hoped that a supply of the special mines for the still-water canals may be ready, and by the May moon the mines for the mouths of the rivers flowing into the Heligoland Bight should be at hand.

3 Thus this whole considerable mining campaign could be brought into being on the following time-table

Day 1 —Issue of proclamation reciting the character of the German attacks on the British coasts, shipping, and river-mouths, and declaring that henceforth (while this continues) the Rhine is a mined and forbidden area, and giving neutrals and civilians twenty-four hours' notice to desist from using it or crossing it

Day 2.—After nightfall deposit as many mines as possible by both methods, and keep this up night after night The supply by that time should be such as to keep all methods of discharge fully employed.

* See p 517.

Day 28.—Begin the laying of the mines in the still-water canals and river-mouths, thereafter keeping the whole process working, as opportunity serves, until the kind of attacks to which we are being subjected are brought to an end by the enemy, or other results obtained.

4. The decisions in principle required are:

(*a*) Is this method of warfare justified and expedient in present circumstances?

(*b*) Must warning be given beforehand, observing that the first shock of surprise will be lost? However, this is not considered decisive, as the object is to prevent the use of the river and inland waterways rather than mere destruction.

(*c*) Should we wait till the Air Force are ready, or begin the naval action as soon as possible after March 12?

(*d*) What reprisals, if any, may be expected, observing that there is no natural or economic feature in France or Great Britain in any way comparable with the Rhine, except our coastal approaches, which are already beset.

5. It is desirable that the Fifth Sea Lord, who has the operation in charge, should go to Paris on Thursday, concert the details finally, and ascertain the reactions of the French Government. From the attitude of M. Daladier, General Gamelin, and Admiral Darlan it is thought these will be highly favourable.

APPENDIX R

NAVAL LOSSES IN THE NORWEGIAN CAMPAIGN*

GERMAN NAVAL LOSSES, APRIL-JUNE 1940

SHIPS SUNK

Name	*Type*	*Cause*
Bluecher	8-inch Cruiser	Torpedo and gunfire by Norwegian coast defences, Oslo, April 9
Karlsruhe	Light Cruiser	Torpedoed by submarine *Truant* in Kattegat, April 9
Koenigsberg ..	Light Cruiser ..	Bombed by Fleet Air Arm, Bergen, April 10
Brummer ..	Gunnery Training Ship	Torpedoed in Kattegat by submarine, April 15
Wilhelm Heidkamp	Destroyer	Torpedoed First attack on Narvik, April 10
Anton Schmitt .	"	Destroyed by torpedo or gunfire Second attack on Narvik, April 13 (five of these were damaged in the first attack on April 10)
Hans Ludemann .	"	
Georg Thiele ..	"	
Bernd von Arnim	"	
Wolf Zenker ..	"	
Erich Geise ..	"	
Erich Koellner ..	"	
Hermann Kunne ..	"	
Dieter von Roeder	"	
Numbers 44, 64, 49, 1, 50, 54, 22, 13	U-boats	Various 3 off Norway, 5 in North Sea
Albatross .	Torpedo-boat ..	Wrecked, Oslo, April 9

In addition, three minesweepers, two patrol craft, eleven transports, and four fleet auxiliaries were sunk.

* See p. 592

SHIPS DAMAGED

Name	*Type*	*Cause*
Gneisenau	Battle-cruiser ..	Action with *Renown*, April 9 Torpedoed by submarine *Clyde*, June 20
Scharnhorst ..	Battle-cruiser	Torpedoed by *Acasta*, June 8
Hipper	8-inch Cruiser .	Action with *Glowworm*, April 8
Luetzow	Pocket-battleship .	Action with coastal batteries, Oslo, April 9 Torpedoed by submarine *Spearfish*, Kattegat, April 11
Emden	Light Cruiser .. .	Action with coastal batteries, Oslo, April 9
Bremse	Gunnery Training Ship	Action with coastal batteries, Bergen, April 9

In addition, two transports were damaged and one captured

SHIPS OUT OF ACTION DURING THE WHOLE PERIOD

Name	*Type*	*Cause*
Admiral Scheer	Pocket-battleship	Engine repairs
Leipzig	Light Cruiser	Torpedo damage repairs

GERMAN FLEET ON JUNE 30, 1940

Type	*Effective*	*Remarks*
Battle-cruisers	Nil	*Scharnhorst* and *Gneisenau* damaged
Pocket-battleships	Nil	*Admiral Scheer* under repair *Luetzow* damaged
8-inch Cruiser	*Hipper*	
Light Cruisers .	*Koeln*, *Nuernberg*	*Leipzig* and *Emden* damaged
Destroyers ..	*Schoemann*, *Lody*, *Ihn*, *Galster*	Six others under repair
Torpedo-boats	Nineteen	Six others under repair Eight new craft working up

In addition, the two old battleships *Schlesien* and *Schleswig-Holstein* were available for coast defence

APPENDIX R

ALLIED NAVAL LOSSES IN THE NORWEGIAN CAMPAIGN

SHIPS SUNK

Name	*Type*	*Cause*
Glorious	Aircraft-carrier	Gunfire, June 9
Effingham	Cruiser	Wrecked, May 17
Curlew	A A Cruiser	Bombed, May 26
Bittern	Sloop	Bombed, April 30
Glowworm	Destroyer	Gunfire, April 8
Gurkha	,,	Bombed, April 9
Hardy	,,	Gunfire, April 10
Hunter	,,	Gunfire, April 10
Afridi	,,	Bombed, May 3
Acasta	,,	Gunfire, June 9
Ardent	,,	Gunfire, June 9
Bison (French)	,,	Bombed, May 3
Grom (Polish)	,,	Bombed, May 4
Thistle	Submarine	U-boat, April 14
Tarpon	,,	Unknown, April 22
Sterlet	,,	Unknown, April 27
Seal	,,	Mined, May 5
Doris (French)	,,	U-boat, May 14
Orzel (Polish)	,,	Unknown, June 6

In addition, eleven trawlers, one loaded and two empty troop transports, and two supply ships were sunk

SHIPS DAMAGED

(EXCLUDING MINOR DAMAGE)

Name	*Type*	*Cause*
Penelope	Cruiser	Grounding, April 11
Suffolk	,,	Bombed, April 17
Aurora	,,	Bombed, May 7
Curaçoa	A A Cruiser	Bombed, April 24
Cairo	,,	Bombed, May 28
Emile Bertin (French)	Cruiser	Bombed, April 19
Pelican	Sloop	Bombed, April 22
Black Swan	,,	Bombed, April 28
Hotspur	Destroyer	Gunfire, April 10
Eclipse	,,	Bombed, April 11
Punjabi	,,	Gunfire, April 13
Cossack	,,	Gunfire, April 13
Eskimo	,,	Torpedo, April 13
Highlander	,,	Grounding, April 13
Maori	,,	Bombed, May 2
Somali	,,	Bombed, May 15

II. FIRST LORD'S MINUTES

Short titles are frequently used in these Memoranda and Minutes when addressing members of the Board of Admiralty or heads of departments For the convenience of the reader the corresponding full titles are tabulated below.

Short Title	*Full Title*
Controller	Controller and Third Sea Lord
Controller M S.R	Controller of Merchant Ship-building Repairs
D C N S	Deputy (later Vice) Chief of Naval Staff
A C N S.	Assistant Chief of Naval Staff
D N I.	Director of Naval Intelligence
D N O	Director of Naval Ordnance
D.T D	Director of Trade Division
D N C.	Director of Naval Construction
D T M.	Director of Torpedoes and Mining
D S R.	Director of Scientific Research

First Lord to Secretary and to all Departments 4 IX 39

To avoid confusion, German submarines are always to be described officially as U-boats in all official papers and communiqués

First Lord to D.N I and Secretary 6 IX 39

1. This is an excellent paper, and the principles are approved However, in the first place (say, September), when losses may be high, it is important that you show that we are killing U-boats The policy of silence will come down later The daily bulletin prepared by Captain Macnamara should, when possible, for the first week be shown to the First Lord, but should not be delayed if he is not available It is of the highest importance that the Admiralty bulletin should maintain its reputation for truthfulness, and the tone should not be forced The bulletin of to-day is exactly the right tone

2 When Parliament is sitting, if there is anything worth telling, bad or good, the First Lord or Parliamentary Secretary will be disposed to make a statement to the House in answer to friendly private-notice questions

These statements should be concerted with the Parliamentary Secretary, who advises the First Lord on Parliamentary business Sensational or important episodes will require special attention of the First Lord or First Sea Lord

3. Lord Stanhope, as Leader of the House of Lords, should always be made acquainted with the substance of any statement to be made in the House of Commons upon the course of the naval war

Moreover, the First Lord wishes that his Private Secretary should keep Lord Stanhope informed during these early weeks upon matters in which his Lordship may have been interested He should not be cut off from the course of events at the Admiralty, with which he has been so intimately concerned.

First Lord to D N I. 6 IX 39

(Secret)

What is the position on the West Coast of Ireland? Are there any signs of succouring U-boats in Irish creeks or inlets? It would seem that money should be spent to secure a trustworthy body of Irish agents to keep most vigilant watch Has this been done? Please report

First Lord to D C N S 6 IX 39

Kindly give me report on progress of Dover barrage, and repeat weekly

First Lord to Controller 6 IX 39

1. What are we doing about bringing out old merchant ships to replace tonnage losses? How many are there, and where? Kindly supply lists, with tonnage Arrangements would have to be made to dock and clean all bottoms, otherwise speed will be grievously cut down

2 I should be glad to receive proposals for acquiring neutral tonnage to the utmost extent.

First Lord to First Sea Lord, Controller, and others 6 IX 39

1 It is much too soon to approve additional construction of new cruisers, which cannot be finished for at least two years, even under war conditions. The matter can be considered during the next three months. Now that we are free from all Treaty restrictions, if any cruisers are built they should be of a new type, and capable of dominating the five German 8-inch cruisers now under construction

2. Ask the D N C at his convenience to give me a legend of a 14,000- or 15,000-ton cruiser carrying 9 2 guns with good armour against 8-inch projectiles, wide radius of action, and superior speed to any existing *Deutschland* or German 8-inch-gun cruisers It would be necessary before building such vessels to carry the United States with us

3 The rest of the programme is approved, as it all bears on U-boat hunting and ought to be ready within the year

Pray let me have approximate estimates of delivery

4. I shall be very glad to discuss the general questions of policy involved with the Board

First Lord to Prime Minister 7 IX 39

It seems most necessary to drill the civil population in completely putting out their private lights, and the course hitherto followed has conduced to this But surely the great installations of lights controlled from two or three centres are in a different category

While enforcing the household black-outs, why not let the controllable lighting burn until an air-warning is received? Then when the hooters sound the whole of these widespread systems of lighting would go out at once together This would reinforce the air-raid warning, and when the all-clear was sounded they would all go up together, telling everyone Immense inconvenience would be removed, and the depressing effect of needless darkness, and as there are at least ten minutes to spare, there would be plenty of time to make the black-out complete.

Unless you have any objection, I should like to circulate this to our colleagues.

DATES OF COMPLETION FOR NAVAL CONSTRUCTION: TABULAR STATEMENT PREPARED BY CONTROLLER

First Lord to Controller 9.IX.39

In peace-time vessels are built to keep up the strength of the Navy from year to year amid political difficulties. In war-time a definite tactical object must inspire all construction If we take the Navies, actual and potential, of Germany and Italy, we can see clearly the exact vessels we have to cope with Let me therefore have the comparable flotilla of each of these Powers, actual and prospective, up to 1941, so far as they are known. *Having regard to the U-boat menace, which must be expected to renew itself on a much larger scale towards the end of* 1940, the type of destroyer to be constructed must aim at numbers and celerity of construction rather than size and power It ought to be possible to design destroyers which can be completed in under a year, in which case 50 at least should be begun forthwith I am well aware of the need of a proportion of flotilla leaders and large destroyers capable of ocean service, but the arrival in our Fleet of 50 destroyers of the medium emergency type I am contemplating would liberate all larger vessels for ocean work and for combat

Let me have the entire picture of our existing destroyer fleet, apart from the additions shown on this paper. Until I have acquainted myself with the destroyer power I will not try to understand the escort vessels, etc.

First Lord to Controller, D N C , and others 11.IX 39

The following ideas might be considered before our meeting at 9 30 Tuesday, September 12:

1. Suspend for a year all work on battleships that cannot come into action before the end of 1941. This decision to be reviewed every six months Concentrate upon *King George V*, *Prince of Wales*, and *Duke of York*, and also upon *Jellicoe* if it can be pulled forward into 1941: otherwise suspend.

2 All aircraft-carriers should proceed according to accelerated programme

3 Concentrate on the *Didos* which can be delivered before the end of 1941. By strong administrative action it should be possible to bring all the present programme within the sacred limit, to wit, ten ships No new *Didos* till this problem has been solved

4 *Fijis* Please No! This policy of scattering over the seas weak cruisers which can neither fight nor flee the German 8-inch 10,000-ton cruisers—of which they will quite soon have five—should be abandoned The idea of two *Fijis* fighting an 8-inch-gun cruiser will never

come off.* All experience shows that a cluster of weak ships will not fight one strong one. (*Vide* the escape of the *Goeben* across the mouth of the Adriatic, August 1914.)

5. I was distressed to see that till the end of 1940, *i.e.*, sixteen months, we only receive ten destroyers, and only seven this year, and that there is a gulf of nine months before the subsequent six are delivered. However, we have taken over the six Brazilians, which arrive during 1940 and mitigate this position. Let us go forward with all these to the utmost. These ships called "destroyers" have strayed far in design from their original *rôle* of "torpedo-boat destroyers", in answer to the French mosquito flotillas of the nineties. They are really small unarmoured cruisers with a far heavier stake in men and money than their capacity to stand the fire of their equals justifies. Nevertheless, for combat and for breasting ocean billows they have an indispensable part to play.

6. Fast escort vessels. I now learn these are really medium destroyers of 1,000 tons. The whole of this class should be pressed forward to the utmost.

7. We have also the whale-catcher type—but this is 940 tons, which is a great deal where numbers are required. I doubt whether our dollars will enable us to place forty of these in the United States. It would be much better to supplement them by a British-built programme of another type.

8. I would ask that a committee of, say, three sea-officers accustomed to flotilla work, plus two technicians, should sit at once to solve the following problems.

> An anti-submarine and anti-air vessel which can be built within twelve months in many of the small yards of the country. One hundred should be built if the design is approved. The greatest simplicity of armament and equipment must be arrived at, and a constant eye kept upon mass production requirements. The *rôle* of these vessels is to liberate the destroyers and fast escort vessels for a wider range of action, and to take over the charge of the Narrow Seas, the Channel, the inshore Western Approaches, the Mediterranean, and the Red Sea, against submarine attack.
>
> I hazard specifications only to have them vetted and corrected by the committee, viz.:
>
> 500 to 600 tons.
> 16 to 18 knots.
>
> Two cannons around 4-inches, according as artillery may

* The *Fiji* class mounted 6-inch guns. None the less, the 6-inch cruisers *Ajax* and *Achilles* later fought a successful and glorious action with the *Graf Spee*, mounting 11-inch guns.

come to hand from any quarter, preferably of course firing high angle
Depth-charges
No torpedoes, and only moderate range of action.

These will be deemed the "Cheap and Nasties" (cheap to us, nasty to the U-boats) These ships, being built for a particular but urgent job, will no doubt be of little value to the Navy when that job is done—but let us get the job done

9 The submarine programme is approved, as they still have a part to play

I shall be very grateful if you will give me your views on these ideas, point by point, to-morrow night.

First Lord to First Sea Lord, Controller, and others 18 IX 39

As it is generally impossible to use the catapult aircraft in the open ocean, but nevertheless they would be a great convenience around the South American continental promontory, the question arises whether landing-grounds or smooth-water inlets cannot be marked down on uninhabited tracts or in the lee of islands, upon which aircraft catapulted from vessels in the neighbourhood could alight, claiming, if discovered, right of asylum They could then be picked up by the cruiser at convenience. Perhaps this has already been done.

First Lord to First Sea Lord and others 20.IX 39

While I greatly desire the strengthening of this place against A A. attack, and regard it as a matter of extreme urgency, I consider the scale of 80 3.7-inch guns goes beyond what is justified, having regard to other heavy needs It is altogether out of proportion to lock up three regiments of A.A artillery, etc (comprising 6,200 men), for the whole war in Scapa Scapa is no longer the base of the Grand Fleet, but only of three or four principal vessels Alternative harbours can be used by these The distance from Germany, 430 miles, is considerable We must be very careful not to dissipate our strength unduly in passive defence.

I approve therefore of the additional 16 3 7-inch as a matter of the highest urgency But I think they should be erected by the Admiralty to avoid the long delays and heavy charges of the War Office Ordnance Board

The second 20 equipments should be considered in relation to the needs of Malta, as well as to the aircraft factories in England This applies still more to the full scale of 3 7-inch guns, numbering 44. Their destination can only be considered in relation to the future war need.

The light A.A guns seem to be excessive, having regard to the heavy pom-pom fire of the Fleet. The searchlights and balloons are most necessary, as are also the two Fighter Squadrons. Do we not require a more powerful R D.F. station? And should there not be an additional R D F. station on the mainland?

In this case the urgency of getting something into position counts far more than making large-scale plans for 1940.

Let me have reduced proposals, with estimates of time and money, but without delaying action on the first instalments.

Also a report of the A A. defences of Malta, and also of Chatham.

First Lord to First Sea Lord and others 21.IX 39

It was very pleasant to see the aircraft-carrier *Argus* in the basin at Portsmouth to-day. The boats of this vessel have been sent to the C-in-C. Home Fleet, but no doubt they could easily be replaced, and various guns could be mounted. We are told that modern aircraft require a larger deck to fly on and off In that case, would it not be well to build some aircraft suitable for the ship, as these can be made much quicker than a new aircraft-carrier? We ought to commission *Argus* as soon as possible, observing that the survivors of *Courageous* are available Pray consider the steps that should be taken to this end. I am told she is a very strong ship underwater, but if not the bulkheads could be shored up or otherwise strengthened *

First Lord to First Sea Lord and others 21.IX 39

D C.N S and I were much impressed with the so-called Actæon net against torpedoes on which the *Vernon* are keen This net was introduced at the end of the late war. It is a skirt or petticoat which is only effective when the vessel is in motion. The *Vernon* declare that a vessel can steam 18 knots with it on. The *Laconia* is to be tried out with one. The net is of thin wire and large mesh It should be easy to make in large quantities very quickly I suggest that this is a matter of the highest urgency and significance It should be fitted on merchant ships, liners, and also—indeed, above all—upon ships of war having solitary missions without destroyer protection Could not a committee be formed before the week is out which would grip this idea, already so far advanced by the naval authorities, and see whether it cannot be brought into the forefront of our immediate war preparations? If it is right it would require a very large-scale application †

* The *Argus* was commissioned and performed valuable service training pilots for the Fleet Air Arm in the Mediterranean

† Many practical difficulties were encountered in the development of these nets The early trials were unsuccessful, and it was not until 1942 that the equipment was perfected Thereafter it was fitted in over 750 ships, with varying success Ten ships are known to have been saved by this device.

First Lord to First Sea Lord and others 21 IX 39

The importance of using all available guns capable of firing at aircraft whether on ships in harbour or in the dockyard to resist an air attack should be impressed upon Commanders-in-Chief of home ports as well as upon officers at lesser stations The concerting of the fire of these guns with the regular defences should be arranged If necessary, the high-angle guns of ships in dry dock should be furnished with crews from the depots, and special arrangements made to supply the electrical power, even though the ship is under heavy repair. There must be many contrivances by which a greater volume of fire could be brought to bear upon attacking aircraft We must consider the moonlight period ahead of us as one requiring exceptional vigilance. Please consider whether some general exhortations cannot be given

First Lord to Admiral Somerville and Controller 23 IX.39

Let me have at your early convenience the programme of installation of R D F in H M ships, showing what has been done up to date, and a forecast of future installations, with dates Thereafter let me have a monthly return, showing progress. The first monthly return can be November 1

First Lord to First Sea Lord and others 24.IX 39

A lot of our destroyers and small craft are bumping into one another under the present hard conditions of service We must be very careful not to damp the ardour of officers in the flotillas by making heavy weather of occasional accidents They should be encouraged to use their ships with war-time freedom, and should feel they will not be considered guilty of unprofessional conduct if they have done their best and something or other happens. I am sure this is already the spirit and your view, but am anxious it should be further inculcated by the Admiralty There should be no general rule obliging a court-martial in every case of damage The Board should use their power to dispense with this, so long as no negligence or crass stupidity is shown Errors towards the enemy—*i e.*, to fight—should be most leniently viewed, even if the consequences are not pleasant.

First Lord to First Sea Lord, D.C.N.S., and D.N.I. 24 IX 39

(*For general guidance.*)

(Most secret)

1. Mr Dulanty is thoroughly friendly to England He was an officer under me in the Ministry of Munitions in 1917/18, but he has no control or authority in Southern Ireland (so-called Eire) He acts as a general smoother, representing everything Irish in the most

favourable light. Three-quarters of the people of Southern Ireland are with us, but the implacable, malignant minority can make so much trouble that de Valera dare not do anything to offend them. All this talk about partition and the bitterness that would be healed by a union of Northern and Southern Ireland will amount to nothing. They will not unite at the present time, and we cannot in any circumstances sell the loyalists of Northern Ireland. Will you kindly consider these observations as the basis upon which Admiralty dealings with Southern Ireland should proceed?

2. There seems to be a good deal of evidence, or at any rate suspicion, that the U-boats are being succoured from West of Ireland ports by the malignant section with whom de Valera dare not interfere. And we are debarred from using Berehaven, etc. If the U-boat campaign became more dangerous we should coerce Southern Ireland both about coast-watching and the use of Berehaven, etc. However, if it slackens off under our counter-attacks and protective measures the Cabinet will not be inclined to face the serious issues which forcible measures would entail. It looks therefore as if the present bad situation will continue for the present. But the Admiralty should never cease to formulate through every channel its complaints about it, and I will from time to time bring our grievances before the Cabinet. On no account must we appear to acquiesce in, still less be contented with, the odious treatment we are receiving.

First Lord to First Sea Lord and D.C.N.S. 29.IX.39

While anxious not to fetter in any way the discretion of C.-in-C. Home Fleet, I think it might be as well for you to point out that the sending of heavy ships far out into the North Sea will certainly entail bombing attacks from aircraft, and will not draw German warships from their harbours. Although there were no hits on the last occasion, there might easily have been losses disproportionate to the tactical objects in view. This opinion was expressed to me by several Cabinet colleagues.

The first brush between the Fleet and the air has passed off very well, and useful data has been obtained, but we do not want to run unnecessary risks with our important vessels until their A.A. has been worked up to the required standard against aircraft flying 250 miles an hour.*

First Lord to Secretary 30.IX.39

Surely the account you give of all these various disconnected

* This refers to an incident on September 26, when the Home Fleet was attacked by aircraft in the North Sea, without suffering damage. It was on this occasion that the *Ark Royal* was singled out for special attention. The Germans claimed she had been sunk, and the pilot who made the claim was decorated. For weeks afterwards the German wireless reiterated daily the question, "Where is the *Ark Royal*?"

Statistical Branches constitutes the case for a central body which should grip together all Admiralty statistics, and present them to me in a form increasingly simplified and graphic

I want to know at the end of each week everything we have got, all the people we are employing, the progress of all vessels, works of construction, the progress of all munitions affecting us, the state of our merchant tonnage, together with losses, and numbers of every branch of the R N and R.M The whole should be presented in a small book such as was kept for me by Sir Walter Layton when he was my statistical officer at the Ministry of Munitions in 1917 and 1918 Every week I had this book, which showed the past and the weekly progress, and also drew attention to what was lagging In an hour or two I was able to cover the whole ground, as I knew exactly what to look for and when

How do you propose this want of mine should be met?

OCTOBER 1939

First Lord to Secretary 9.x 39

The First Lord's Statistical Branch should consist of Professor Lindemann, who would do this besides his scientific activities. He would require a secretary who knows the Admiralty, a statistician, and a confidential typist who is also preferably an accountant The duties of this branch will be:

1. To present to the First Lord a weekly picture of the progress of all new construction, showing delays from contract dates, though without inquiring into the cause, upon which First Lord will make his own inquiries
2. To present returns of all British or British-controlled merchant ships, together with losses under various heads and new construction or acquisition—

    (*a*) during the week,
    (*b*) since the war began;

    also forecasts of new deliveries
3. To record the consumption weekly and since war began of all ammunition, torpedoes, oil, etc, together with new deliveries, *i e*, weekly and since the war began, monthly or weekly outputs and forecasts.
4. To keep a complete continuous statistical survey of Fleet Air Arm, going not only into aircraft, but pilots, guns, and equipment of all kinds, and point out all apparent lag.

5. To present a monthly survey of the losses of personnel of all kinds.
6. To keep records of inquiries, and any special papers relating to numbers and strength provided by First Lord.
7. To make special inquiries analysing for First Lord Cabinet papers and papers from other departments which have a statistical character, as requested by First Lord

As soon as the personnel of the department is settled after discussion with Professor Lindemann, who should also advise on any additions to the above list of duties, a minute must be given to all departments to make the necessary returns to Statistical Branch (to be called "S") at the times required, and to afford any necessary assistance

AIR SUPPLY

October 16, 1939

This most interesting paper is encouraging, but it does not touch the question on which the War Cabinet sought information—namely, the disparity between the monthly output of new aircraft and the number of squadrons comprising the first-line air strength of the R A F We were told in 1937 that there would be 1,750 first-line aircraft modernly equipped by April 1, 1938 (see Sir Thomas Inskip's speeches) However, the House of Commons was content with the statement that this position had in fact been realised by April 1, 1939 We were throughout assured that reserves far above the German scale were the feature of the British system We now have apparently only about 1,500 first-line aircraft with good reserves ready for action On mobilisation the 125 squadrons of April 1, 1939, shrank to 96 It is necessary to know how many new squadrons will be fully formed during the months of November, December, January, and February It is difficult to understand why, with a production of fighting machines which has averaged over 700 a month since May, and is now running even higher, only a handful of squadrons has been added to our first-line strength, and why that strength is below what we were assured was so reached in April of this year One would have thought, with outputs so large and pilots so numerous, we should have been able to add ten or fifteen squadrons a month to our first-line air strength, and no explanation is furnished why this cannot happen Ten squadrons of sixteen each, with 100 per cent reserves, would only amount to 320 a month, or much less than half the output from the factories The Cabinet ought to be told what are the limiting factors. They should be told this in full detail. Is it pilots or mechanics or higher ground staff or guns or instruments of any kind? We ought not, surely, to continue in ignorance of the reasons which prevent the heavy outputs of the factories

from being translated into a fighting front of first-line aircraft organised in squadrons. It may be impossible to remedy this, but at any rate we ought to examine it without delay. It is not production that is lagging behind, but the formation of fighting units with their full reserve upon the approved scale.

D.S.R., Controller, and Secretary 16.x.39

1. I am very much obliged to the Director Scientific Research for his interesting memorandum [on the Admiralty Research Department], and I entirely agree with the principle that the first stage is the formulation of a felt want by the fighting service. Once this is clearly defined in terms of simple reality it is nearly always possible for the scientific experts to find a solution. The Services should always be encouraged to explain what it is that hurts or hinders them in any particular branch of their work. For instance, a soldier advancing across No-man's-land is hit by a bullet which prevents his locomotion functioning further. It is no use telling him or his successor to be brave, because that condition has already been satisfied. It is clear however that if a steel plate or other obstacle had stood between the bullet and the soldier the latter's powers of locomotion would not have been deranged. The problem therefore becomes how to place a shield in front of the soldier. It then emerges that the shield is too heavy for him to carry, thus locomotion must be imparted to the shield, and how? Hence the tanks. This is of course a simple example.

2. In your list of branches and departments very little seems to be allowed for physical investigation, the bulk being concentrated upon application and development. I am therefore very glad to know that the Clarendon Laboratory will be utilised for this purpose, and I shall be dealing with the paper on that subject later in the day.

First Lord to Controller and others 18.x.39

REQUISITIONING OF TRAWLERS

I have asked the Minister of Agriculture to bring Mr. Ernest Bevin and his deputation to the Admiralty at 4.15 o'clock to-morrow after they have explored the ground among themselves. Let all be notified, and an official letter written to the Ministry of Agriculture inviting them here. I will preside myself.

Meanwhile A.C.N.S., D.T.D., and Controller or Deputy-Controller should, together with Financial Secretary, meet together this evening to work out a plan, the object of which is the *Utmost Fish*, subject to naval necessity. The immediate loss arising from our requisition should be shared between ports, and the fact that a port has built the best kind of trawlers must not lead to its being the worst sufferer. Side by side

with this equalisation process a type of trawler which can be built as quickly as possible and will serve its purpose should be given facilities in the shipyards. As soon as these trawlers flow in, they can either be added to the various ports or else be given to the ports from whom the chief requisition has been made, the equalising trawlers being restored after temporary use—this is for local opinion to decide. It is vital to keep the fish trade going, and we must fight for this part of our food supply as hard as we do against the U-boats.*

First Lord to First Sea Lord and D.C.N.S. 19.x.39

(Most secret.)

The Turkish situation has sharpened up. Suppose Turkey wanted us to put a fleet in the Black Sea sufficiently strong to prevent Russian military pressure upon the Bosphorus or other parts of the Turkish northern coast, and the Cabinet were satisfied that this might either keep Russia from going to war or, if she were at war, prevent her attacking Turkey, can the force be found?

What is the strength of the Russian Black Sea marine, and what would be sufficient to master them? Might this not be an area where British submarines with a few destroyers and a couple of protecting cruisers, all based on Turkish ports, would be able to give an immense measure of protection? Anyhow, the possibility should be studied in all its military bearings by the Naval Staff, and ways and means of finding and maintaining the force worked out.

Clearly, if Russia declares war upon us we must hold the Black Sea.

First Lord to First Sea Lord and Controller 23.x.39

Before going further into your paper on the Northern Barrage, I should like to know what amounts of explosives are involved, and how these could be provided without hampering the main fire of the armies. Perhaps the Controller could to-day discuss this point with Mr. Burgin or the head of his Chemical Department. I do not know what are the limiting factors in this field. I hear predictions that toluene may run short. I presume the output required for the barrage would be far outside the limits of the Admiralty cordite or explosive factories. I suggest that Controller has all this information collected informally, both from the Admiralty and the Ministry of Supply, and that we talk it over on our return.†

First Lord to First Sea Lord 23.x.39

I should be glad if you would arrange to discuss with the other Chiefs

* Throughout the war a special section of the Trade Division dealt with the needs of fishing vessels working round our coasts.

† See Chapter XXVIII.

of Staff this morning the question of raid or invasion, having regard to the position of the Fleet and the long dark nights I frequently combated these ideas in the late war, but now the circumstances do not seem to be altogether the same I have of course no knowledge of the military arrangements, but it seems to me there ought to be a certain number of mobile columns or organised forces that could be thrown rapidly against any descent Of course, it may be that the air service will be able to assume full responsibility

First Lord to First Sea Lord and D C N S. 27 X 39

Pray consider this note which I wrote with the idea of circulating it to the Cabinet.

It is surely not our interest to oppose Russian claims for naval bases in the Baltic. These bases are only needed against Germany, and in the process of taking them a sharp antagonism of Russian and German interests becomes apparent We should point out to the Finns that the preservation of their country from Russian invasion and conquest is the vital matter, and this will not be affected by Russian bases in the Gulf of Finland or the Gulf of Bothnia Apart from Germany, Russian naval power in the Baltic could never be formidable to us It is Germany alone that is the danger and the enemy there There is indeed a common interest between Great Britain and Russia in forbidding as large a part of the Baltic as possible to Germany It is quite natural that Russia should need to have bases which prevent German aggression in the Baltic Provinces or against Petrograd If the above reasoning is right, we ought to let the Russians know what our outlook is, while trying to persuade the Finns to make concessions, and Russia to be content with strategic points

First Lord to D.C.N S and Secretary 29.X 39

Arrange for a stand of arms to be placed in some convenient position in the basement, and let officers and able-bodied personnel employed in the Admiralty building have a rifle, a bayonet, and ammunition assigned to each Fifty would be enough Let this be done in forty-eight hours.

First Lord to General Smuts 29.X 39

(Personal and Private.)

Monitor Erebus is ready to sail for Capetown. As you know, we have never considered 15-inch guns necessary for defence of Capetown, but to please Pirco agreed to loan *Erebus* until those defences were modernised in view of his fear of attack by Japan We realise the defences of Capetown remain weak, but the Germans have no battleships, and the only two battle-cruisers they possess, the *Scharnhorst* and *Gneisenau*,

would be very unlikely to try to reach South African waters, or if they did so to risk damage far from a friendly dockyard from even weak defences. Should they break out a major naval operation would ensue, and we shall pursue them wherever they go with our most powerful vessels until they are hunted down Therefore it seems to me you are unlikely to have the need of this ship On the other hand, she would be most useful for various purposes in the shallows of the Belgian coast, especially if Holland were attacked She was indeed built by Fisher and me for this very purpose in 1914 The question is therefore mainly political Rather than do anything to embarrass you we would do without the ship. But if you can let us have her either by re-loan or re-transfer Admiralty will be most grateful, and would, of course, reimburse Union *

All good wishes.

ADMIRALTY MINUTES

NOVEMBER 1939

First Lord to Secretary 4 XI 39

The French have a very complete installation in the country for all the business of their Admiralty, and have already moved there Our policy is to stay in London until it becomes really impossible, but it follows from this that every effort must be made to bring our alternative installation up to a high level of efficiency

Pray let me know how it stands, and whether we could in fact shift at a moment's notice without any break in control Have the telephones, etc., been laid effectively? Are there underground wires as well as others? Do they connect with exchanges other than London, or are they dependent upon the main London exchange? If so, it is a great danger

First Lord to First Sea Lord and others 9.XI 39

I am deeply concerned at the immense slowing down of trade, both in imports and exports, which has resulted from our struggle during the first ten weeks of the war Unless it can be grappled with and the restriction diminished to, say, 20 per cent of normal, very grave shortage will emerge The complaints coming in from all the Civil Departments are serious We shall have failed in our task if we merely substitute delays for sinkings I frankly admit I had not appreciated this aspect, but in this war we must learn from day to day. We must

* General Smuts replied that of course he would do as we wished

secretly loosen up the convoy system (while boasting about it publicly), especially on the outer routes An intricate study must be made of the restrictions now imposed, and consequent lengthening of voyages, and a higher degree of risk must be accepted This is possible now that so many of our ships are armed They can go in smaller parties. Even across the Atlantic we may have to apply this principle to a certain degree If we could only combine with it a large effective destroyer force, sweeping the Western Approaches as a matter of course instead of providing focal points on which convoys could be directed, we should have more freedom This is no reversal or stultification of previous policy, which was absolutely necessary at the outset It is a refinement and development of that policy so that its end shall not be defeated

First Lord to D C N.S. 9.XI 39

It appears to me that St. Helena and Ascension must be made effectively secure against seizure by landing parties from, say, a *Deutschland*. We should look very foolish if we found them in possession of the two 6-inch guns with a supply ship in the harbour I don't feel the garrisons there are strong enough

First Lord to First Sea Lord 15 XI 39

Pray let me have details of the proposed first Canadian convoy How many ships, which ships, how many men in each ship, what speed will convoy take, escort both A S and anti-raider? Place of assembly and date of departure should be mentioned verbally

First Lord to Secretary and A C.N S 16 XI.39

Have you made sure that the intake of air to Admiralty basement is secure? Are there alternative intakes in case of the present one being damaged by a bomb? What would happen in the case of fire in the courtyard?

There seem to be heaps of rubbish, timber, and other inflammable material lying about, not only in the courtyard, but in some of the rooms underneath them All unnecessary inflammable material should be removed forthwith

First Lord to First Sea Lord 20 XI 39

Nothing can be more important in the anti-submarine war than to try to obtain an independent flotilla which could work like a cavalry division on the approaches, without worrying about the traffic or U-boat sinkings, but could systematically search large areas over a wide front In this way these areas would become untenable to U-boats, and many other advantages would flow from the manœuvre *

* This policy did not become possible until a later phase in the war

First Lord to First Sea Lord and others 22.XI.39

1. When a sudden emergency, like this magnetic mine stunt, arises it is natural that everyone who has any knowledge or authority in the matter should come together, and that a move should be got on in every direction But do you not think we now want to bring into being a special section for the job, with the best man we can find at the head of it working directly under the Staff and the Board? Such a branch requires several subdivisions, for instance, one lot should be simply collecting and sifting all the evidence we have about these mines from their earliest effort on the West Coast, and interviewing survivors, etc., so that everything is collected and focused.

2. The second lot would deal with the experimental side, and the *Vernon* would be a part of this. I am told Admiral Lyster is doing something here, he has a plan of his own which he is working, but it is desirable that a general view should prevail

3. The third section is concerned with action in the shape of production, and getting the stuff delivered for the different schemes, while the fourth, which is clearly operational, is already in existence

It is not suggested that this organisation should be permanent, or that all those who take part in it should be working whole-time It should be a feature in their daily duties, and all should be directed and concerted from the summit

Pray consider this, and make out a paper scheme into which all would fit

First Lord to First Sea Lord and others 23 XI 39

1. I approve the appointment of Admiral Wake-Walker to concert the magnetic mine business But it is necessary that he should have precise functions and instructions. (1) He will assemble all the information available (2) He will concert and press forward all the experiments, assigning their priority (3) He will make proposals for the necessary production (4) He will offer advice to the Naval Staff upon the operational aspect, which nevertheless will proceed independently from hour to hour under the Naval Staff and the C.-in-C of the Nore In all the foregoing he will of course act under the Board

2 Let me see a chart of duties divided between these various branches, and make it clear that the officers of the various technical departments in the Admiralty shall be at Admiral Wake-Walker's service from time to time as may be needed You will no doubt consult him in making this plan

3 It is essential that Admiral Drax should be in on all this from the beginning, and also in touch with C.-in-C Nore, so that he comes into full understanding and operation from December 1 *

* See Chapter XXVIII and Appendix M, dealing with the magnetic mine problem

First Lord to First Sea Lord and others 27.XI 39

1 We must arrive at clear ideas about the Swedish iron ore for Germany Doubt has been thrown on whether it is important to stop this or not. I am informed by M of E W. that on the contrary nothing would be more deadly, not only to German war-making capacity but to the life of the country, than to stop for three or even six months this import.

2. The suggestion has been made verbally to me by the Naval Staff that when Luleå freezes we should violate Norwegian neutrality by landing a force, or perhaps stationing a ship in territorial waters at Narvik I am opposed to both these alternatives

3. Pray examine and advise upon a proposal to establish a minefield, blocking Norwegian territorial waters at some lonely spot on the coast as far north as convenient If the Norwegians will do this themselves, well and good Otherwise a plan must be made for us to do it Doubt has been thrown upon our ability to maintain the necessary watch on this minefield, or to intercept vessels laden with ore which go outside it But this is surely ill-founded The mere fact that we had laid the minefield and were known to be watching and blockading would deter the ore-ships, and the process would not be too onerous for the C -in-C Home Fleet However, let me have your final view.

4. It must be remembered that, in addition to the ore-ships, much merchandise valuable to Germany is coming down the Norwegian Leads. A statement was shown me by the D N I that five ore-ships had already, in November, gone from Narvik to Germany, and that empty ships are going up now to receive the ore What do the M of E W say to this? We must know what the facts are, and have agreement between the departments

5 Meanwhile the Russians have notified us that their gigantic Arctic ice-breaker is almost immediately to come down the Norwegian territorial waters on her way nominally to Kronstadt But at the same time we hear that the Russians are hiring this ice-breaker to Germany to break the ice up to Luleå If this were done, and no other counter-measures taken, the whole flow of ore into Germany would proceed at its present rate of nearly a million tons a month, thus completely frustrating all our policies How are we to deal with this? I will make you a suggestion verbally, but meanwhile the Foreign Office must be consulted on the whole position.

First Lord to Secretary 27 XI 39

I notice that in the Air Ministry every room is provided with candles and matches for use in emergency

Pray take steps immediately to make similar provision in the Admiralty.

First Lord to D.C N S. and First Sea Lord 30 XI 39

I should be glad if you would consider whether it is not possible to add a third vessel to the Australasian escorts Perhaps the Australians will offer another of their cruisers, but, if not, cannot we find another 6-inch-gun ship with a catapult? This would leave *Ramillies* freer to engage the enemy if an attack should be made by surface ships It enables also scouting to be done far ahead and to the flanks of the convoy, thus giving ample warning If such a cruiser could be found in China or in Indian waters, fitted with an Asdic and depth-charges, one would at least have some apparent answer to a U-boat The transportation of the Australian divisions is an historic episode in Imperial history. An accident would be a disaster Perhaps one of our detached submarines in the Indian Ocean could also help.

DECEMBER 1939

First Lord to Controller and others 3 XII 39

(Secret)

I was much interested in D.C N S 's remark about the possibility of making a new battleship with the four spare 15-inch-gun turrets Such a vessel would be of the battleship-cruiser type, heavily armoured and absolutely proof against air attack Pray let me have a legend, with estimates in money and time. This ship could come in after the *K G.V* batch are finished and before *Temeraire* and *Lion.**

First Lord to Secretary, D C N S., and First Sea Lord 12 XII 39

1 In view of the danger of surprise attacks at a time when the enemy may expect to find us off our guard, there must be no break or holiday period at Christmas or the New Year The utmost vigilance must be practised at the Admiralty and in all naval ports On the other hand, it should be possible between now and February 15 to give a week's leave to almost every officer concerned in staff duties I am very glad to hear this is being planned at the Admiralty, and it will, I presume, be imitated as far as possible at the naval ports

2 Every effort should be made to ease the strain upon the destroyer crews At Devonport I am told admirable arrangements are made to relieve the flotilla complements as they come in from patrols, and that two or three days' rest in port brings them round in a wonderful manner Similar arrangements are in force at Rosyth and Scapa, but

* Plans for this ship went forward She became H M S *Vanguard*

I am told that the amenities of Scapa are so much below those of the naval ports that the men are deeply disappointed when their brief spell of rest takes place there. No doubt in some cases this is inevitable, but I trust the whole question will be reviewed with the intention of comforting these crews to the utmost extent that operations will permit

First Lord to D.C N S , Admiral Wake-Walker (to initiate action), and D S R. 24.XII 39

I suppose you are already looking ahead to a possible change by the enemy from magnetic mines to acoustic or supersonic Pray let me have a note at your convenience.

First Lord to Secretary, D C.N S , and First Sea Lord 28 XII 39

It should be explained to the Foreign Office that the six-mile limit in Italian waters was instituted by the Admiralty as a voluntary and self-denying ordinance at the outset of the war It was never communicated to the Italians, nor made public to the world. It therefore forms no part of any bargain or agreement It was simply a convenient guide for British naval authorities at a particular juncture It has now become onerous, and possibly deeply injurious to the blockade, and in these circumstances the Admiralty would propose as a departmental matter to notify the C -in-C Mediterranean that the three-mile limit only need be observed They will at the same time renew their injunctions to treat Italian shipping with special leniency, and to avoid causes of friction or complaint with that favoured country.

Let me see draft.

JANUARY 1940

First Lord to Secretary 4 I 40

Can anything be done to utilise the canal system to ease the transport of coal, north and south? Pray let me have a note on this at my return

First Lord to First Sea Lord, Controller, D T M , Rear-Admiral A H Walker, and Professor Lindemann 12.I.40

OPERATION "ROYAL MARINE"

1. This matter was fully discussed in France with high military authorities, and various arrangements have been made Captain Fitzgerald and Major Jefferis have seen the necessary people and should now furnish me with reports of their work The French military men point out that they control the head-waters of the Saar and the Moselle,

in addition to the Rhine, and that many possibilities are open there All are convinced that we should not act until a really large supply of the needful is in hand Not only must the first go-off be on the largest scale at all points, but the daily and weekly supply thereafter must be such as to keep the tension at the highest pitch indefinitely.

2 It is of course understood that while all action is to be prepared the final decision rests with the Governments

3. In all circumstances I am prepared to postpone the date from the February moon to the March moon. Meanwhile every exertion is to be made to perfect the plan and accumulate the greatest store.

4 A meeting of all concerned will be held in my room on Monday night at 9.30 p m. By this time everyone should be able to report progress and everything should be concerted. I am asking the Secretary of State for Air to be present to hear the reports. These may be individually presented, but those concerned are to consult together in the interval Above all, any obstacle or cause of undue delay is to be reported, so that the operations can be brought to full readiness as soon as possible We may be forced to act before the March moon *

First Lord to First Sea Lord, Controller, D C.N S, Secretary, and A C N.S. 12 1 40

The First Lord wishes to congratulate all those concerned in dealing with magnetic mines on the success which has so far been achieved

First Lord to Admiral Usborne 13.1.40

"U P" WEAPON

Your report dated 12.1.40. Everything seems to be going all right except the bombs, which are the only part of this process not under our control. I note that Messrs Venner have fallen behind in respect of one component of these But are you satisfied that the Air Ministry have done their part with the bombs?

Pray let me have a special report on the subject, and also let me know whether I should not write to the Secretary of State for Air, asking to have this part of the business handed over to us like the rest has been. These U.P experiments are of immense importance The whole security of H M. warships and merchant ships may be enhanced by this development I am counting on you to make sure that all is concerted and brought forward together, and that we shall go into mass production on a large scale at the earliest moment

I am sorry that the experiments to-day with the ejection trials were

* See Chapters XXVIII and XXXII

not completed, though I understand from Professor Lindemann that they were in principle satisfactory.

Pray press on with these with the utmost speed

I think the time is coming when a report of progress should be furnished to the Air Ministry and the War Office, who have entrusted their interest in this matter to me Perhaps therefore you would prepare a compendious statement, showing position to date and future prospects *

First Lord to Controller 13 I 40

I am very glad to receive your paper on concrete ships. I am not at all satisfied that the idea has been sufficiently explored Great progress has been made since the last war in ferro-concrete Quite a different class of workman and materials would be called into being, and the strain on our ordinary shipbuilding plans proportionately relieved In these circumstances, I think an effort should be made to make one seagoing ship at once †

First Lord to Naval Secretary 14 I 40

Perhaps you will see Mr Cripps (brother of Sir Stafford Cripps), who had a very good record in the last war and is a brave and able man There must be many openings in some of our minesweepers

[Enclosure *Letter from Mr Frederick Cripps asking "could he be used for minesweeping?"*]

First Lord to First Sea Lord 16 I 40

A.A DEFENCES OF SCAPA

Surely it would be better to have a conference as I suggested and talk matters over round a table than that I should have to prepare a paper and raise the matter as a Cabinet issue? The squandering of our strength proceeds in every direction, everyone thinking he is serving the country by playing for safety locally Our Army is puny as far

* This minute refers to the Unrotated Projectile (rocket propulsion), which was then being developed for use against low-flying aircraft The device consisted of a battery of rockets which, on reaching a predetermined height, released long trailing wires, each carrying a small bomb at the end, and supported by a parachute An aircraft fouling one of these wires would draw the bomb into its wing, where it would explode

This device was a stop-gap necessitated by our grievous shortage of short-range weapons Later on it was superseded by more effective weapons

† The development of concrete ships promised important relief to our vital war industries It seemed that they could be built quickly and cheaply by types of labour not required in normal shipbuilding and would save large quantities of steel These claims were found on examination to be based on false assumptions, and many unforeseen technical difficulties arose An experimental ship of 2,000 tons was built, but was a failure, and although experimental work continued the use of concrete hulls was only successful in barges up to about 200 tons

as the fighting front is concerned, our Air Force is hopelessly inferior to the Germans; we are not allowed to do anything to stop them receiving their vital supplies of ore; we maintain an attitude of complete passivity, dispersing our forces ever more widely; the Navy demands Scapa and Rosyth both to be kept at the highest point Do you realise that perhaps we are heading for *defeat*? I feel I must do my duty, even in small things, in trying to secure effective concentration upon the enemy and in preventing needless dispersion.

First Lord to First Sea Lord 19.1.40

FLEET AIR ARM—ESTIMATED COST DURING THE FIRST TWELVE MONTHS OF THE WAR

1. I have been increasingly disquieted about the demand which the Fleet Air Arm involves upon British war-making resources None the less this estimate is a surprise to me, as I had not conceived how enormous was the charge involved I have always been a strong advocate of the Fleet Air Arm; in fact, I drafted for Sir Thomas Inskip the compromise decision to which he eventually came in 1938. I feel all the more responsible for making sure that the Fleet Air Arm makes a real contribution to the present war in killing and defeating Germans.

2 When some years ago the Fleet Air Arm was being discussed the speed of carrier-borne and shore-based aircraft was not unequal; but since then the shore-based development has been such as to make it impossible for carrier-borne aircraft to compete with shore-based This left the Fleet Air Arm the most important duties of reconnaissance in the ocean spaces, of spotting during an action with surface ships and launching torpedo seaplane attacks upon them However, there are very few surface ships of the enemy, and one can only consider the possible break-out of a German raider or fast battleship as potential targets Provision must be made for this; but certainly it does not justify anything like this immense expenditure.

3. On the other hand, our Air Force has fallen far behind that of Germany, and under present conditions the air menace to this Island, its factories, its naval ports and shipping, as well as to the Fleet in harbour, must be considered as the only *potentially mortal* attack we have to fear and face I am most anxious therefore to liberate the R A F from all ordinary coastal duties in the Narrow Waters and the North Sea, and to assume this responsibility for the Fleet Air Arm, which then, and then alone, would have a task proportioned to its cost and worthy of its quality

4. Some time ago the Air Ministry were making their way in the

world and were very jealous of their sphere, but now that a prime importance has come to them, equal in many ways to that of the Royal Navy, they are much more tolerant, moreover, they are deeply anxious to increase their own disposable strength They have recently allowed us to form two shore-based squadrons for the Orkneys, etc, and I believe that, with tact, and in the present good atmosphere, this principle might be applied all along the East Coast We have, I suppose, an unequalled class of pilots and observers for such purposes, and the advantage to both services would be unquestionable.

5 I propose therefore, in principle for your consideration, that a plan should be drawn up by the First Sea Lord to save 100 to 150 pilots from the Fleet Air Arm, together with mechanics and administrative staff, in order to form six, seven, or eight shore-based naval squadrons, and that the complements of the aircraft-carriers, especially the unarmoured aircraft-carriers, should be reduced as much as is necessary For reconnaissance in the outer seas we should have to content ourselves with very small complements When the armoured carriers are complete their complement must be considered in the light of the conditions prevailing then in the North Sea The F A A training schools and other establishments must be rigorously combed to provide these new fighting forces

6 If the details of this plan are worked out, I would approach the Air Ministry and offer to relieve them of the whole coastal work in home waters *without adding to the cost to the public* We should make a smaller demand on future deliveries for carrier-borne aircraft, and ask in return to be given a supply of fighters or medium bombers, perhaps not at first of the latest type, but good enough for short-range action We should then take over the whole responsibility as a measure of war emergency, and leave the future spheres of the department to be settled after the war is over

Pray let me have your thought upon this *

First Lord to D C N S , D N I , and Secretary 31.1 40

Thirty years ago I was shown Foreign Office confidential books printed on paper so inflammable that they could be almost immediately destroyed Since then all this business has advanced It would be possible to print books on cellulose nitrate, which would almost explode on being lighted. Existing books could be photographed on

* This plan was swept away by events The Fleet Air Arm made its contribution to the R A F during the Battle of Britain Later the development of the U-boat war taxed to the utmost the resources of Coastal Command, which itself drew heavily on Bomber Command to meet its ever-growing commitments

Later again, in 1941, the advent of the "escort carrier" type enabled the Fleet Air Arm to play a conspicuous part in the defeat of the U-boats operating beyond the range of normal shore-based aircraft

to this with great facility. Alternatively, or conjointly, these books could be reduced to tiny proportions and read by a small projecting apparatus Let a small committee be formed on this question Pray propose me names. Professor Lindemann will represent me.

First Lord to First Sea Lord and D C N S 31 1 40

Pictures have been published in many newspapers of the Australian troops marching through Sydney, etc., before starting for the war. Thus the enemy must know that convoys will be approaching the entrance to the Red Sea and the neighbourhood of Socotra. Although there is no intelligence of any U-boat in the Indian Ocean, how can we be quite sure one has not made its way up from Madagascar, where there was a rumour, to the Red Sea, and been oiled from some Italian or Arabian port? I must say I should feel more comfortable if anti-submarine escort could be provided from the neighbourhood of Socotra. This could be done by sending the destroyer *Vendetta* from Haifa to rendezvous, say 200 miles east of Socotra, with the destroyer *Westcott*, which is already following up the convoy from Singapore. The presence of these two Asdic-fitted destroyers would give complete assurance, and only one of them has to go far out of her way.

Pray let me have a note on this

FEBRUARY 1940

First Lord to First Sea Lord 9 II.40

LEGEND OF PARTICULARS OF THIRD WAR EMERGENCY FLOTILLA

Destroyers of 1,650 tons almost amount to small cruisers. These unarmoured vessels with nearly 200 men on board become, as *Grenville* and *Exmouth* have shown, a prize and a target for a U-boat in themselves. In this case the destroyers are within 10 tons of the flotilla leader. By steadily increasing the size and cost of destroyers we transfer them gradually from the class of the hunters to that of the hunted. It is unsound to place so large a human stake in an unarmoured, highly vulnerable vessel. The length of time in building vessels of this class makes it unlikely they will take part in the present war What we require are larger numbers of smaller vessels more quickly delivered It will be necessary to keep the number of these very large destroyers at a minimum The simplified armament and extra endurance are good features

First Lord to First Sea Lord (with papers), D C N.S., D N.I, Controller, and Secretary 11.II.40

JAPANESE STRENGTH—N I D 02242/39

1 It is of the greatest importance to form a true opinion about present and prospective Japanese building Before I can put this case to the Cabinet I must be satisfied that there is solid evidence of the ability of Japan to construct a Navy superior to the present Navies of Britain and the United States, built and building. The financial condition of Japan has lamentably deteriorated She has for two and a half years been engaged in a most ruinous war in China, between one and one and a half millions of Japanese soldiers have had to be maintained in the field No decisive progress has been made. On the contrary, it is believed the Chinese are gaining strength Certainly there is a marked reaction in Japan, and the internal tension is very great

2 We must look at the kind of statements which are made about their new shipbuilding intentions in the light of these facts They have to buy a large proportion of their materials for warship construction from over the seas, and this, with the drain of the China war, must greatly affect their foreign exchange What would be the cost of the programme set out in the First Sea Lord's table in yen, in sterling, and in dollars? It seems to me that they are going into figures of naval expense never attempted before at a time when their finances are rapidly deteriorating.

3 What is their steel capacity of production? What is their consuming power of steel? If my recollection serves me, the Japanese consuming power of steel is in the neighbourhood of 3 million tons a year, compared to British 15 and American 54 Yet such a programme as Japan is said to be embarking on would be, and is, a heavy drain on British or American strength No doubt the heavy building in America and Britain will impose an additional effort on Japan. Whether they can go the pace is quite another question I do not feel that mere rumours of ships they are said to have laid down form a sufficient basis. Has Major Morton's branch or committee which studies the military capacities of enemy or potentially enemy countries been consulted?

In short, I am extremely sceptical of the Japanese power to build a fleet equal to the present built and building fleets of either Britain or the United States

First Lord to First Sea Lord 20 II 40

In view of yesterday's Cabinet decision all preparations should be made to carry out the operation referred to as soon as possible.

Pray let me have your proposals.

I consider the matter is most urgent, as it must be linked with the *Altmark*. The operation, being minor and innocent, may be called "Wilfred".*

First Lord to First Sea Lord and others 24.II.40

Let me have an early report on condition of *Exeter* and time likely for her repairs. Every effort should be made to keep the crew together. If *Exeter* repairs take more than three or four months, what are the other cruisers coming along in the interval which *Exeter's* crew could be taken on with their present captain? In the Army it would be thought madness to break up a unit like this, and I do not see why the same moral consideration should not affect the Navy too.†

First Lord to Controller and others 25.II.40

RECLASSIFICATION OF SMALLER WAR VESSELS

Director of Plan's remark that the term "destroyer has by association come to imply a particular type of vessel whose principal weapon is the torpedo" ignores the whole story of the destroyer, whose chief function was to destroy the torpedo-boat with superior gun-fire. The idea of destruction is not confined to destruction by torpedo; it may equally be expressed by depth-charges or gun-fire.

I agree with First Sea Lord about the needlessness of repeating the word "vessel", and his wish to simplify all titles to one word.

I should like the word "destroyer" to cover ships formerly described as "fast escort vessels", which are in fact medium destroyers. I do not like the word "whaler", which is an entire misnomer, as they are not going to catch whales, and I should like to have some suggestions about this. What is in fact the distinction between an "escorter", a "patroller", and a "whaler" as now specified? It seems most important to arrive at simple conclusions quickly on this subject, and enforce them from March 1 on all commands and departments. Let me see a list of the vessels built and building which will fall in the various categories.‡

* This refers to the mining of the Norwegian Leads. Owing to many political complications, referred to in Chapter XXXII, the operation did not take place until April 8.

† In Chapter XXIX my minutes are recorded dealing with the difficulties which arose over bringing the *Exeter* home after the River Plate action. She now remained under repair for many months.

‡ The "fast escort vessels" became known as "Hunt" class destroyers, as their names were all selected from famous packs of hounds. Large numbers were built, and they served with distinction both in the anti-U-boat war and in our amphibious operations. Later ancient names were revived.

The "whalers" became known as "corvettes", and later types were called "frigates". Escort vessels became "sloops".

MARCH 1940

First Lord to First Sea Lord and Secretary 1 III 40

A plan should be prepared for a battleship concentration in the Mediterranean (with other craft), supposing trouble should arise in March I do not expect trouble; but it would be well to have all the combinations surveyed in advance *

First Lord to First Sea Lord, Controller, and others 5 III 40

After the air attack on the Fleet on September 26 we all thought it most necessary to train the A A gunners against faster targets than those hitherto provided. Ideas were suggested by Professor Lindemann, experiments were made, and other ideas for flares, etc., put forward by the *Vernon* What has happened about all this? Of course the weather has been terribly against it, but I fear there have virtually been no practices in home waters at high-speed targets Five months have passed, and it is very serious if we have not been able to develop an effective system of fast targets, and obtain the necessary machines so that the Fleet can work up

We must have this now that the weather is improving and the Fleet back at Scapa An improvement in the gunnery of H M ships is of the utmost importance to their safety

First Lord to First Sea Lord and Controller 5 III.40

1. Repairing ships is better than new building A strong effort should be made to turn this 8,000-ton ship *Domala* into an effective cargo-carrying bottom Immediately she could be seized upon, and repaired in the plainest way for the roughest work

2. Are we doing enough about salvage? Let me have a return of the vessels now beached on our coasts, and a report on the measures taken to fit them again for sea The very minimum should be done to them, compatible to life and navigation *There ought to be a tremendous move-on in the salvage and repair departments* The tonnage working on any given day ranks above the rate of new merchant shipbuilding

First Lord to First Sea Lord 6 III 40

I think it would be only prudent for you to concert with the French the necessary regroupings of the Allied Fleets which would be appropriate to a hostile or menacing Italian attitude Perhaps you will let me know about this on my return

* As a result of these deliberations the battleship *Warspite* was ordered to return to the Mediterranean, but with the opening of the Norwegian campaign she was recalled to home waters, and did not reach the Mediterranean until May Before the Italian declaration of war in June the *Malaya*, *Ramillies*, and *Royal Sovereign* had also joined the Mediterranean Fleet from convoy duty in the Atlantic

(In the Train)
First Lord to Parliamentary Secretary 11 III 40

I am very glad you have had a considerable measure of success in your parleys with the trade unions. Be careful about the "Ministry of Labour Training Centres" As hitherto organised these have been nothing but quasi-philanthropic institutions to tone up the unfortunate people in the derelict areas. They have never been organised to make skilled tradesmen out of semi-skilled In their present condition they are a snare so far as we are concerned We have got to get competent people to learn new trades The Minister of Labour has always said that his training centres cannot touch any but the unemployed, meaning thereby the peace-time unemployed What we have to cater for is a far livelier class who are changing their occupations in consequence of the war

I think you must rely on training in the dockyards and in special training schools established by the Admiralty

Speak to me about this, as it seems to me to be a serious flaw.

First Lord to First Sea Lord and others 14.III.40

Now that we are not allowed to interfere with the Norwegian Corridor, would it not be possible to have one or two merchant ships of sufficient speed, specially strengthened in the bows and if possible equipped with a ram? These vessels would carry merchandise and travel up the Leads looking for German ore ships or any other German merchant vessels, and then ram them by accident This is only another development of the "Q" ship idea.

First Lord to D C N S., D N I (to initiate action) 22 III.40
(Secret)

Mr Shinwell declares that in Vigo there are still a number of German merchant ships, many of whose crews are non-German, and among the Germans many non-Nazis He suggests that with a little money and some organisation it would be possible to get these crews to take the ships to sea, when they could be picked up by our ships, and those who had brought them out suitably rewarded Is there anything in this?

First Lord to D C N S and First Sea Lord 30 III.40

CUTTING FROM D T 29 3 40 TWENTY NAZI SHIPS GET READY TO SAIL ATTEMPTS TO RUN THE BLOCKADE (AMSTERDAM, FRIDAY) EASTER REPORTED AT ROTTERDAM

The reason why I cut this from the *Daily Telegraph* and asked my question of the D N I is because an exodus of German ships from

Dutch ports might well be a danger sign in respect of Holland herself. I have no doubt the same thought has occurred to you.

First Lord to Secretary 31.III 40

WAR CABINET—SUB-COMMITTEE ON RESERVED OCCUPATIONS
NOTE BY TREASURY

While there are nearly 1,500,000 unemployed and no serious drain of casualties from the Army, I propose to resist the disturbance of Admiralty work by movement of men we need from the dockyard. The matter must be settled by Cabinet decision. You should let Sir Horace Wilson know how much I regret I cannot meet his views.

APRIL 1940

First Lord to Controller 1 IV 40

Where are the facts about the return of the 40 destroyers which are in hospital to their duty? And can anything be done to speed up new destroyers, especially those of the 40th Flotilla, by leaving out some of the final improvements and latest additions, which take so much time? The great aim must be to have the maximum numbers during these coming summer months. They can go back to have further treatment when we have a larger margin.

First Lord to First Sea Lord and others 4 IV 40

While I do not see any adverse change in the Italian situation, I presume that the appropriate departments of the Admiralty Staff are at work upon, or already have completed, a plan of naval operations in the Mediterranean against Italy, should she force us into war with her. We might be asked for this by the Cabinet, and I should be glad to see it as soon as possible, at any rate during the course of the next four or five days.

First Lord to Controller 12 IV 40

The most intense efforts should be concentrated upon *Hood*, as we may need all our strength to meet an Italian threat or attack.

Pray let me have a time-table showing when she will be ready for sea.

First Lord to D.C.N.S., 12 IV 40

Are there any other Danish islands besides the Faroes which require attention?

Will you also kindly ask the Staff to examine the position at Curaçao, in case Holland should be overrun. The Fourth Sea Lord spoke to me on the oil supplies dependent upon Curaçao refineries. I should like a short paper upon the subject.

First Lord to Controller (M.S.R.) 12.IV.40

WEEKLY STATEMENT OF SHIPYARD WORKERS, DATED 9.IV.40

This report is much more favourable, and for the first time shows a lift on new merchant construction. Altogether we have added 15,000 men since February 1, when we took over. Are you satisfied that all arrangements made by the late Parliamentary Secretary are completed, and working satisfactorily? We shall want another 30,000 men, and the most strenuous efforts must be made to procure them. Can anything else be done now?

Has not the time arrived when you will be ready with your report for the Cabinet, which I rather hoped to have sent them last week? I should like to be able to have it ready for them next week. Will you kindly let me see it in outline first?

First Lord to D.C.N.S. 13.IV.40

One of the branches under your control should make a careful study of Spanish islands, in case Spain should be drawn into a breach of neutrality.

First Lord to Controller, First Sea Lord, and Secretary 13.IV.40

CONTROLLER'S MINUTE OF APRIL 13 ABOUT "HOOD"*

This is a very different story to what was told me when it was proposed to repair this ship at Malta. I was assured that the whole operation would take thirty-five days, and that the ship would never be at more than thirty-five days' notice, and that only for a short time. When I asked the other day how long it would take to bring *Hood* back into service I was told fourteen days. I take it therefore she has been above twenty days under repair at present, to which must now be added seventeen days more in April and thirty-one in May: total [sixty-]eight days—or [nearly] double what I was told before this vital ship was laid up in this critical period. Pray give me an explanation of this extraordinary change. Moreover, after these [sixty-]eight days there are to be fourteen days repairing her reserve feed tanks: total therefore [eighty-]two days, or [nearly] three months at the most critical period in the war.

The engineer in charge of the *Hood* assured me when I was last at Scapa that they had found out the way to nurse her defective condenser tubes so as to get twenty-seven knots, and that there was no reason why she should not remain in commission and carry on for six months.

I much regret not to have been more accurately informed, in view of the Italian attitude.

* See also First Lord's minute of April 12 above.

First Lord to First Sea Lord and others 14 IV 40

On the assumption that Narvik falls into our hands in the near future we must consider the uses to which we intend to put it First we want to make it a convenient oiling base, where our flotillas acting on the Norwegian coast can refuel at the highest economy Secondly, we require to ship the masses of ore there to this country in a very active manner.

For these purposes we must have a moderate garrison, say about a thousand Territorial troops A few efficient A A batteries, both high- and low-ceiling, a well-netted, boomed, and perhaps partially mined barrier, and a good supply of oil in tankers. Is there plenty of fresh water?

We must expect sporadic attacks from the air. A few coast defence guns should be mounted to protect the approaches The sunken German torpedo-boats might perhaps supply some of these Their salvage and repair must be explored, and the port got working as soon as possible Some of the working party of Marines now being raised might well be sent to Narvik There are, I believe, good shops where repairs can be effected A portion of the staff, I suppose Plans Division, should begin work on this question to-day and formulate requirements Our object must be to make Narvik self-supporting and self-defended at the earliest moment after we have it in our power, as we shall want all our stuff lower down the coast The necessary guns (A A) may be taken from A D G B *

First Lord to Civil Lord 16 IV 40

FAROES

With your experience and connections in the department, you should now assume the duty of concerting the action to make the Faroes satisfactory for our purposes. D C N S will supply you with requirements. Pray make a weekly report We must have an aerodrome and an R D F at the very earliest moment, together with a certain amount of A A. defence, and a few coast guns This will be a very tempting base for a raider.

First Lord to Prime Minister 18 IV 40

COMMENTARY ON GERMAN REPORT OBTAINED BY THE FRENCH ON AMMUNITION

It is an error to suppose that an offensive can be maintained merely by the unlimited use of artillery ammunition The creation of a labyrinth or zone of crater fields becomes itself an obstacle, of great

* Air Defence Great Britain.

difficulty to the attacking army. The moment must come when the infantry advance into this zone and have to fight hand to hand with the defenders. Meanwhile, so far as expenditure of ammunition is concerned, the defence can reserve its power till the enemy's infantry advance, and thus economise to an enormous extent. There is no truth in the statement that "all great offensives always came to a stop solely because the attacking armies did not have sufficient of ammunition". The impulse of an offensive dies away as the fighting troops become more distant from their point of departure. They thus get ahead of their supplies, whether ammunition or food. The more they have pulverised the intervening ground with their artillery, the more difficult it is to bring supplies of ammunition, even if they have them in their original forward dumps, up to the fighting troops. It is at such moments that the opportunity to deliver the counter-strokes arises.

Altogether this paper, which is most interesting, gives me the impression of being written by someone high up in the munitions department of Germany, who naturally thinks in terms only of shell. Shell is very important, and we are not likely to have too much of it, but there is not the slightest reason for supposing that unlimited artillery ammunition can win victory on a great scale in modern war. The transportation of the ammunition to the guns in the various phases of the battle remains, as heretofore, the limiting factor upon the artillery.

First Lord to Admiral Somerville 21.IV.40

Pray give me a short note upon the present position of R.D.F. so far as it concerns the Navy and Coast Defence, showing weak points and anything you wish done to remedy them.

First Lord to First Sea Lord and V.C.N.S. 25.IV.40

The reason why I am worrying about these minefields on the approaches to Narvik is that now *Warspite* has quitted, and we have an uncocked-up ship in *Resolution* only, this ship might be at a disadvantage in range should *Scharnhorst* or *Gneisenau* turn up one fine morning. Perhaps however it is possible to shelter in a fiord so as to avoid long-range fire, and force action at reduced ranges, or perhaps *Resolution* could be careened. Anyhow, I think it indispensable that we should reach certainty so far as the defence of Narvik from a surface raid is concerned.*

(*Action this Day.*)
First Lord to First Sea Lord and others 28.IV.40

In view of the bad reports from the Faroes about aircraft or seaplane

* Our ships were using Skjel Fiord, in the Lofoten Islands, as an advanced base. This covered the approach to Narvik through West Fiord.

bases and the fact that we must reckon with the Germans all along the Norwegian coast, it seems indispensable that we have a base in Iceland for our flying-boats and for oiling the ships on the Northern Patrol Let a case be prepared for submission to the Foreign Office The sooner we let the Icelanders know that this is what we require the better *

First Lord to Sir James Lithgow and Controller 30 IV 40

These figures of our shipping gains from the German aggression against Norway and Denmark amount roughly to 750 ships, aggregating 3,000,000 tons. The effect of this upon our shipping and shipbuilding position requires to be considered Clearly, we have obtained an easement we never foresaw when we embarked upon our present programme I should be glad to know your reaction, and in particular how the latest paper prepared by Sir James Lithgow is affected

SOME QUESTIONS ABOUT PERSONNEL

First Lord to First Sea Lord, Second Sea Lord, and Secretary 18 IX 39

I have just approved the message to the Northern Patrol

About the Newfoundland fishermen the boatwork of the Newfoundlanders was an important thing to render this effective in the stormy winter months These men are the hardiest and most skilful boatmen in rough seas who exist. They long for employment Please propose me measures at once to raise 1,000 R N V R in Newfoundland, drafting the necessary letter to the Dominions Office and outlining terms and conditions They have nothing to learn about the sea, but almost immediately some method of training and discipline could be brought into play In ten days at the outside this should be working in Newfoundland

First Lord to Second Sea Lord 21 IX 39

In conversation with the Commander-in-Chief Home Fleet I have promised to look into the question of providing a theatre and cinema ship for the Home Fleet and Northern Patrol at Scapa

I think it much more desirable to use a ship than shore facilities I have in mind the arrangements made for the Grand Fleet during the last war, when s s. *Gurko* was used

The ship should contain a large N A A F I shop, as well as cinema and theatrical facilities, and possibly could be combined with a refrigerator storage ship

* Iceland was occupied by British forces on May 10

Pray let me have your plans for implementing this most important adjunct of naval life at Scapa.

First Lord to Second Sea Lord and Secretary 29.IX.39

LEAKAGE OF INFORMATION

(Secret.)

This is a proposal to dismiss from the Royal Navy, without trial, without formulating a charge, or even questioning, a Petty Officer who is identified from half a dozen of the same name by the fact that he has very white teeth, and who is reported to have been at a dinner at some unspecified date at which presumably indiscreet talk occurred. There is no suggestion that he was paid money, or that there was any treasonable intention I do not find in these papers the slightest evidence that could be adduced before any court against this man, nor does the Director of Public Prosecutions. Yet, without being given any chance of defending himself, he is to be cast from the Service at the outset of a great war, with the kind of suspicion hanging over him for the rest of his life of having been a spy or a traitor

Such processes cannot be allowed If it is thought worth while to pursue these not very serious though annoying leakages into the sphere of penal action, the man must plainly be charged with some definite offence known to the Naval Discipline Act and brought before a court-martial, which can alone pronounce upon his guilt or innocence.

With regard to the dockyard employees and others, against whom the evidence is also vague and flimsy, no such procedure is necessary. It might perhaps be permissible, as a matter of administration, to move them about a little

First Lord to Secretary 4.X.39

Let me have a list at once of the branches to which promotion from the lower deck still does not apply. What proportion do these branches bear to the other branches?

First Lord to Second Sea Lord, Parliamentary Secretary, and Secretary 7.X.39

Will you kindly explain to me the reasons which debar individuals in certain branches from rising by merit to commissioned rank? If a cook may rise, or a steward, why not an electrical artificer or an ordnance rating or a shipwright? If a telegraphist may rise, why not a painter? Apparently there is no difficulty about painters rising in Germany!

First Lord to Secretary 7.x.39

ADMIRALS OF THE FLEET

This matter does not require verbal treatment. Kindly draft minutes f m s [for my signature] to First and Second Sea Lords in the sense of surmounting the difficulties. I am very clear that the Admirals of the Fleet should remain on the Active List like Field-Marshals, and should not be penalised for winning promotion unduly young You might explain to the Treasury privately that no money is involved What is the value of being made Admiral of the Fleet if it is only to hoist the Union flag for one day and retire to Cheltenham, writing occasional letters to the *Times*?

First Lord to Second Sea Lord and others concerned, and Secretary 14.x 39

There must be no discrimination on grounds of race or colour [in the employment of Indians or Colonial natives in the Royal Navy] In practice much inconvenience would arise if this theoretical equality had many examples. Each case must be judged on its merits, from the point of view of smooth administration I cannot see any objection to Indians serving on H M ships where they are qualified and needed, or, if their virtues so deserve, rising to be Admirals of the Fleet. But not too many of them, please.

First Lord to First Sea Lord 24 x 39

I see no reason to suspend these enlistments or bar the Navy door to the Dominions in time of war Most particularly am I concerned with Newfoundland, about which I have given special directions The Newfoundlanders are certainly not to be "left to find their own way to this country" from Newfoundland Care and pains are to be taken to recruit, train, and convey to the United Kingdom as many as possible. I hope we shall get 1,000 I understand this is in progress, and let me have a report saying exactly what is being done in Newfoundland.

With regard to the other Dominions, suitable enlistments should be accepted whether for hostilities only or for permanent service These ratings can be trained at the naval ports in the Dominions at Sydney, at Halifax and Esquimalt, and at Simonstown. Opportunity will then be given to transport the men in batches to this country or draft them on to His Majesty's ships visiting the Dominions

Pray let a scheme on these lines be put forward with a view to surmounting the difficulties

First Lord to Fourth Sea Lord 12.XII.39

I am told that the minesweeper men have no badge. If this is so it must be remedied at once. I have asked Mr. Bracken to call for designs from Sir Kenneth Clark within one week, after which production must begin with the greatest speed, and distribution as the deliveries come to hand.

First Lord to Naval Secretary and others concerned 19.XII.39

"SALMON'S" WAR PATROL NARRATIVE

I am in entire accord with the Second Sea Lord's minute of yesterday. I shall be most willing to concur in the promotion and honours proposed, both to the officers and to the men. I await the proposals of the Sea Lords in respect of the promotion. Naval Secretary should prepare submissions for the honour, to the King, and, if possible, these should be published, both as to officers and men, before the *Salmon* sails again. Perhaps His Majesty would like himself to see the officer [Lt.-Commander Bickford], and conclude the audience by pinning on the D.S.O. Naval Secretary might find out what they think about this at the Palace. It seems probable that similar, though not necessarily the same, awards will be required in the case of the Commander of the *Ursula*, and here again the crew must participate. Every effort must be made to announce the awards to the men at the same time as the officers. The whole of this should be put through in forty-eight hours at the latest.

First Lord to Secretary 8.II.40

SPECIAL ENTRY CADETSHIPS

It seems very difficult to understand why this candidate should have been so decisively rejected, in view of his high educational qualifications, his Service connections, and his record as set out by his father in his letter of January 4. One has to be particularly careful that class prejudice does not enter into these decisions, and unless some better reasons are given to me I shall have to ask my Naval Secretary to interview the boy on my behalf, before assuming responsibility for writing to his father as proposed.

First Lord to Secretary 25.II.40

CANDIDATE FOR THE NAVY ENTRANCE EXAMINATION, NOVEMBER 1939, WHO FAILED

I do not at all mind "going behind the opinion of a board duly constituted", or even changing the board or its chairman if I think injustice has been done. How long is it since this board was re-

modelled? I could not help being unfavourably struck with the aspect of the Dartmouth cadets whom I saw marching by the other day On the other hand, I was enormously impressed with the candidates for commission from the ranks whom I saw drilling and being trained on the parade-ground at Portsmouth. They were of course much older, but a far finer-looking type

Not only shall my Naval Secretary see the boy, but I shall hope to have time to see him myself Who are the naval representatives on the board of selection? Naval officers should be well represented

Action accordingly.

Let me have a list of the whole board—with the full records of each member and the date of his appointment.

First Lord to First Sea Lord and D.C N S 25.II 40

1. I should like *Salmon* to go to Devonport as you suggested as an extra practice submarine for a few months after the severe and distinguished service she has rendered There would be advantages in having Commander Bickford in the Plans Division of the Admiralty for, say, six months in order to bring them in close and direct contact with the very latest conditions prevailing in Heligoland Bight This officer seems to me very able, and he has many things to say about anti-U-boat warfare which I trust will be gathered at the earliest opportunity.

2 Is there any reason why *Ursula* should not go on escort to the Norwegian convoy?

3. There may be other vessels which R A.S. [Rear-Admiral Submarines] would say have also had heavy strain Perhaps this might be looked into later.

4 If the war were general and everybody engaged to the hilt there would be no need to consider these variations of duty But considering that the peculiar brunt falls upon very few at the present time, and that nothing is comparable to submarine work amid the minefields and all its increasing dangers, I am strongly of the opinion that we should keep a rotation, shifting boats and crews which have had a particularly hard time, or have distinguished themselves, to easier duties, and letting others have a chance of winning renown. Is there any possibility of arranging a certain number of relief crews for submarines, suitable for the Bight, so as to divide the strain among a larger proportion of the personnel? I should like this to be studied

5 Have the men of the *Salmon* and *Ursula* received their medals and honours? The officers have already been decorated. Let special measures be taken to ensure that the men have these rewards before they go to sea again.

First Lord to Second Sea Lord and Fourth Sea Lord 24.III.40

Backgammon would be a good game for wardroom, gunroom, and warrant officers' mess, and I have no doubt it would amuse the sailors. What happened to the £1,000 Lord Rothermere gave me for various kinds of amusements? Is it all expended, and how? I have no doubt I could get some more if necessary. Backgammon is a better game than cards for the circumstances of war-time afloat, because it whiles away twenty minutes or a quarter of an hour, whereas cards are a much longer business

First Lord to First Sea Lord and Second Sea Lord 25.III.40

I see charges of looting preferred against our men in the German Press I should not think it necessary to mention this but for the fact that it has come to my notice that the captain of the *Altmark's* watch, chronometer, and Iron Cross were stolen, and are now in the hands of some of the sailors as souvenirs Anything of this kind must be stopped with the utmost strictness No souvenir of any value can be preserved without being reported and permission obtained. Personal property of enemies may be confiscated by the State, but never by individuals

First Lord to Second Sea Lord 7.IV 40

I have seen the three candidates Considering that these three boys were 5th, 8th, and 17th in the educational competitive examination out of more than ninety successful, 320 qualified, and 400 who competed, I see no reason why they should have been described as unfit for the naval service. It is quite true that A . has a slightly cockney accent, and that the other two are the sons of a Chief Petty Officer and an engineer in the merchant service. But the whole intention of competitive examination is to open the career to ability, irrespective of class or fortune. Generally speaking, in the case of candidates who do exceptionally well in the examination the presumption should be that they will be accepted. Similarly, those who do very badly in the educational examination may nevertheless in a few cases be fit to serve. But the idea of rejecting boys at the very top of the list, unless some very grave defect presents itself, is wholly contrary to the principles approved by Parliament

I am sure if the Committee, when they had these boys before them, had known that they were among the cleverest in the whole list they would not have taken so severe a view and ruled them out altogether on the personal interview. It seems to me that in future the Committee ought to conduct the interview *after* the examination, and with the results of it before them Furthermore, it is wrong that a boy should be allowed to sit for examination, with all the stress and

anxiety attached to it, when it has already been settled that even if he is first on the list he has already been ruled out

I also feel that there is no need for any mention of a disqualifying standard for interview and record. The Interview Board should also be instructed that they may award different marks to the same candidate for different branches of the Service. It is obvious that a boy may be much more suitable for the Paymaster than the Executive Branch, and the Committee should be able to differentiate accordingly

There will of course be no need for the Interview Committee to see all the candidates. There must be a qualifying educational standard. This is 400 marks at present, out of a total of 1,350. I notice that all the successful boys in the last examination had well over 600 marks. Surely it would ease the work of the Interview Committee if the qualifying educational standard were raised?

Pray make me proposals for rearranging the present system so as to achieve the above conditions. Cadetships are to be given in the three cases I have mentioned.

INDEX

Aachen, 282, 295
Abdication crisis, 196–7
Abyssinia, Italian designs on, 97, 120, 148–53, 607, appeals to League of Nations, 117–18, 607, invasion of, 156, 607, plan to partition, 164–5, Italian conquest of, 166–8, 169, British recognition of conquest, 218, 226–8, 253–5
Acasta, H.M S , 589–90
Achilles, H M.S , in search of *Admiral Graf Spee*, 462, 464; in Battle of River Plate, 465–8
Acoustic mines, 456, 673, devices used against, 639–40
Actæon net, anti-torpedo, 660
Admiral Graf Spee, 368, in Atlantic, 451, 460–1, victims of, 460, 464–5, search for, 460–2, 464–5, tactics of, 464–5, in Battle of River Plate, 465–71, in Montevideo, 469, 472, scuttling of, 472, 474
Admiral Scheer, 368, *Graf Spee* mistaken for, 463–5
Admirals of the Fleet, 689
Admiralty, precautionary measures taken by, on announcement of German-Soviet Pact, 352–3, Churchill returns to, 365–7, Churchill's first conference at, 379–81, Churchill seeks economies in, 413, offers to equip French ships with Asdics, 449–50, seeks to charter Norwegian tonnage, 480, takes over merchant ship-building, 510, authorised to mine the Leads, 522, instant decisions taken by, 529, cancels attack on Bergen, 536–7, requires control of own Air Force, 608–11, and Ministry for Co-ordination of Defence, 611–12, daily bulletin of, 655, dealings of, with Eire, 662; statistical branch for, 662–4, arms for, 667, alternative installation for, 668, safety precautions at, 669, 671–2, leave at, 672
Admiralty, French, 448, 668
Admiralty Research Department, 665
Adowa, Battle of, 141
Adventure, H M S., 455
Afridi, H M S , loss of, 580
Aftermath, *The*, 35–7
Air attacks, to break morale, 137–8, in Spain, 193, main defence against, 345–6, forecasts of, 363–4, on warships, 371, 441–2, 495, 537, 580–1, 662, possibility of intensive, 402–3, on Firth of Forth, 440–1, on shipping off East Coast, 471; 509–10; on Finland, 487, 498, 516, British, on Bergen, 537, 542, danger of, off Norway, 558–60, 563, 567, effectiveness of unresisted, 562, 580, adaptation of ships to withstand, 626, 629–30, merchant shipping losses due to, 646
Air Auxiliary Force, 353
Aircraft-carriers, used to hunt U-boats, 387–8, used to hunt surface raiders, 389, 460–1, in Trondheim expedition, 561, comparative strength of navies in, 621–2, 624–5, under construction, 628–9, 631, 657–8, reduction of complements of, 677 *See also Argus, Ark Royal, Furious, Glorious, etc*
Air Defence Research Committee, 135, 208, Churchill's memorandum for, 136–137, work of, 139–42, Churchill's final paper for, 345–6
Air defences, Churchill's adviser on, 72, inadequacy of, 84, 194, 208–10, 293, 392, 618, research into, 133–42, strengthening of, 301, Churchill suggests manning of, 312, orders for assembling of, 352–353, of merchant shipping, 379, 509, of Scapa Flow, 383, 385, 515, 632–5, 659–660, lacking, in Norway, 560–1, of warships, 562, Air Ministry control of, 609–10; of Rosyth, 633, rocket projectile in, 675 *n* , of Narvik, 685
Air Force—*see under* Fleet Air Arm *and* Royal Air Force, *also* French German Air Force, *etc*
Air Ministry, in error over strength of German Air Force, 107, and Air Defence Research Committee, 133–4, 141–142, constructs coastal chain Radar stations, 139, not allowed to raid Germany, 405, against 55-division Army, 405, 411, Air Force figures of, 437, requires control of air defences, 609–10, and Ministry of Co-ordination of Defence, 611–12, and Fleet Air Arm, 676–7
Air-power, importance of, 410–11, exaggerated effects of (1939), 426, German advantage in, 430–1
Air Raid Precautions (A R P), 438, suggested modifications of, 636–7, 656
Ajax, H M S , in search of *Admiral Graf Spee*, 462, 465, in Battle of River Plate, 465–71, 474, in Montevideo harbour, 475
Albania, Italian invasion of, 313–14, "a stronghold to dominate the Balkans," 338
Albert Canal, 434

Albert Hall meeting on rearmament, 195–6
Alexander, King of Yugoslavia, assassination of, 96
Alexander, Rt Hon A V., 440, First Lord of the Admiralty, 600
Allied Supreme Council, decides on plan of defence, 432–4, discusses aid to Finland, 504–5
Altmark, the, 474–5, 680, capture of, 505–8; *theft from captain of*, *692*
American republics, Security Zone of, 461–462, protest about Battle of River Plate, 476–7
Amery, Rt Hon L S, 106 *n*, 205, 362, criticises Chamberlain, 591
Andalsnes expedition, 555, 560, 582, lack of air defences, 562, successful landing, 563–4, 566, 574, to form base of pincers movement, 563–6, reinforcements for, 564, object of, 566, 569–70, without vehicles, 568, difficulties in landing materials for, 570, achievement and evacuation of, 580–1
Anderson, Rt Hon Sir John, present at War Cabinet meetings, 374, Churchill's letter to, on Home Front, 438–9
Anglo-German Naval Agreement, 124–8, effect of, on Allies, 125–6; Hitler denounces, 322–4
Anglo-Italian Agreement, 253–5
Anglo-Polish Guarantee, 246, 310–11, 323–324, 332, 336–7, practical implications of, 325, 336
Anglo-Roumanian Guarantee, 322, 325, 332, 337
Anglo-Turkish Agreement, 332, 335, ratification of, 333
Anti-aircraft guns, shortage of, 209–10, 293, 392, 515, German, 209–10, increase in number of, 301, for merchant shipping, 379, 509–10; for naval protection, 383, 385, 392, 515, 562; lack of, at Namsos, 560, for Scapa, 659, of ships in harbour, 661
Anti-Comintern Pact, 193
Anti-submarine methods, 378–9, 389–90, 449–50, 669, craft, 418–19, 658–9
Anti-Submarine School, Portland, 147
Antwerp, 428, 433
Appeasement, an encouragement to dictators, 233, 435, Churchill's speech on policy of, 298–9; reversal of policy of, 309–11, results of, 311, effect of, on Belgian policy, 423–4
Ardennes, Maginot Line ends before, 426
Ardent, H.M S, 589
Argentina, protests against German violation of Peace Treaty, 120, *sinking of* ships of, by Germans, 477
Argus, H M S, 451, 660
Ark Royal, H M S, submarine attack on, 388, in search of *Admiral Graf Spee*, 462 464, 469, 472, 474, return of, to home waters, 474, at Narvik, 588; Skuas of, attack *Scharnhorst* and *Gneisenau*, 592, German claim to have sunk, 662 *n*
Armaments, equality of, 58, 66–70, nationalising of, 113
"Arms and the Covenant" policy, 195–7
Army—*see under* British, French, German Army, *etc*
Artillery, "offensive" weapon, 65, destruction of Allied heavy, 67 9, in store since 1919, 406–10, battles of, in First World War, 424–5, impotence of, against armoured vehicles, 427, unlimited ammunition for, as means to victory, 685–686
Ascension Island, 669
Asdics, 146–7, 367, trawlers equipped with, 353, 378–80, 392, 419, offered to French Navy, 449–52
Asquith, Rt Hon H H (Earl of Oxford and Asquith), 21
Athenia, sinking of, 377–8
Atlantic Ocean, surface raiders in, 460, 461, 463–4, hunting groups in, 461–2, 464–5, 471–4, freed of surface raiders, 474, 477
Atlantis, hospital ship, 588, 592
Atomic bombs, 16, danger of propaganda war concerning, 344–5, Allies win race for, 345
Attlee, Rt Hon Clement R, denies need for *increasing armaments*, 103, 111, 160, on Collective Security, 111, leader of Labour Party, 157, supports Sanctions, 159–60, declines to appear on deputation to Prime Minister, 204–5, on Eden's resignation, 238, and need of Russian alliance, 337, and National Government, 596, 600
Auchinleck, Field-Marshal Sir Claude, in Norway, 587
Aurora, H M S, 533, 551
Australia, protests against German violation of Peace Treaty, 120, danger to, from Japan, 367, 372
Australian Army, transport of, to France, 452, escort for convoy carrying, 672, 678
Austria, German subversive activities in, 81 2, 85, 93–4, 185, 234–5, Nazism in, 82–3, 185, Italian interest in, 81–2, 85, 185, Allied Declaration on independence of, 85, signs Rome Protocols, 85, abortive Nazi revolt in, 93, affected by fortified Rhineland, 184–5, Hitler signs pact with, 185, German plans for occupation of, 185, 232, man-power in, 212, active German intervention in affairs of, 229-

230, 234–7; reasons for German absorption of, 234, ultimatums presented to, 236, 240–1, German occupation of, 241–245, 273, troop movements in, 306
Austria-Hungary, break-up of, 9

Bacteriological warfare, 38
Bahamas, Chamberlain in, 443–4
Baku oilfields, 521
Baldwin, Chief Petty Officer, 454
Baldwin, Rt Hon Stanley (Earl Baldwin of Bewdley), 18, 19; Administrations of, 20, 21, 23–4, 29, 122, 161–2, political eminence of, 19–20, precipitates second election, 21, offers Chancellorship to Churchill, 21, and payment of war debts, 22–3, Churchill's relations with, 23, signs Treaty of Locarno, 28, great party manager, 30, 162–3, 181, Indian policy of, 30–1, 71, his breach with Churchill, 30–1, in National Coalition, 33, 60, disarmament policy of, 76, 83–4, 103, his aversion to foreign problems, 80, and East Fulham by-election, 100; pledges increase in Air Force, 102, 108, denies approaching air parity of Germany, 107, 114, his confession of error, 111, 113, appoints Minister for League of Nations Affairs, 123–4, and Air Defence Committee, 133–5, Sanctions principles of, 157–8, determined against being drawn into war, 157–60, 162–4, 177, election policy of, 159–61, speaks for rearmament and denies its need, 161, excludes Churchill from office, 162, 179–180, and Hoare-Laval Pact, 165–6, against conscription, 167, general policy of, 170, Flandin's discussion with, 171–2, 177; and Abdication crisis, 196–7, retirement of, 198, appreciation of, 199–200, receives Conservative deputation, 204–7, 613–18, failing health of, 206
Baldwin-Coolidge debt settlement, 22–3
Balearic Islands, 222
Balfour, Rt Hon Arthur J (Earl), 19
Balfour Note on war debts, 22–3
Balkan States, Italian threat to, 314–5, 338; Russian interest in, 401, 403, as possible front against Germany, 401–2
Ballangen Fiord, 539
Balloon *squadrons*, 353, barrage of balloons at naval bases, 633
Balsan, Madame, 357
Baltic Sea, German mastery of, 125–6, 136, 306, 368–9, escape of *Orzel* from, 393, advantages of British command of, 414, 627–8, plan for forcing passage of, 415–416, 495–6, 523, 626–8, shipment of iron ore across, 478, 481, 482–3, 489–90, 627, question of Russian bases in, 667
Baltic States, in proposed Eastern Pact, 95, aligned to France, 173, affected by fortified Rhineland, 184; fear of Russia in, 324–5, 348–9, 436, 484, British need for co-operation of, 327, refuse guarantees from Russia, 340, Russian Pacts of Mutual Assistance with, 435–6, 484–5 *See also* Esthonia, Latvia, Lithuania
Bandsund, 555
Barcelona, 166
Barham, H M S, 317
Barthou, Louis, 95–7
Baruch, Bernard M, 222
Battle-cruisers, in search of *Admiral Graf Spee*, 460–2, comparative strength of navies in, 621–2, construction of, 672
Battleships, Treaty limitations to size of, 84, 125, 145, German advantage in construction of, 125, question of design of, 142–6, *Queen Elizabeth* class, 143, German "pocket", 368, 459–60, 621, work suspended on, 407, under construction, 416–17, 450, 628–9, 631, in search of *Admiral Graf Spee*, 460–2, comparative strength of navies in, 621–5, concentration of, in Mediterranean, 680–1
Bavaria, Hitler attempts to seize power in, 49–50, Austrian Nazis trained in, 82, 93
Beatty, Admiral of the Fleet Earl, 247
Beaverbrook, Lord, 19
Beck, Colonel, Polish Foreign Minister, 306, 314
Beck, General von, 279, 280
Belfast, H M S, 455
Belgium, and Western Pact, 25, 27, Germany suggests pact with, 172, German menace to, 183–4, 499, 575, Hitler plans attack on, 338, 501, opposes Staff talks with Britain and France, 341, 343, 410, 501, 575–6, fortification of French frontier behind, 410, 422–3, neutrality of, hampers Allies, 423–4, 428, lines of Allied advance into, 427, 431–4, 501, likelihood of invasion through, 431–2, negotiations with, on defence plan, 433, German plans for invasion captured in, 501, Allied decision on action in event of invasion of, 521, 540, 576, invasion of, 596–7, as base for Royal Air Force, 617
Bell, Captain F S, of *Exeter*, 466
Beneš, Dr Eduard, Hitler's offer to, 258, faithful ally of France, 258, 272, informs Stalin of conspiracy, 258–9, negotiates with Henlein, 264, appeals for calm, 275, resignation of, 289
Berchtesgaden, Halifax at, 224, Schuschnigg summoned to, 235–6, Chamberlain's visit to, 269, 292

Berehaven, 247-9, 382, 662
Bergen, plans for landing British troops at, 491, 517, 522, German troops land at, 533-4, Navy seeks to attack, 536-7, British air attacks on, 537, minefield off, 541
Berlin, Hitler's triumph in, 64, suppression of Roehm plot in, 89-90
Berney-Ficklin, Major-General H. P. M., 561
Berwick, H.M.S., 462
Bessarabia, 401, 409
Bethouart, General, 586
Beveland, 380
Bevin, Rt Hon Ernest, 156-7, 159, 600, 665
Bialystok, 395
Bickford, Lieutenant-Commander, 379 *n.*
Birkenhead, Earl of, 10
Birmingham, H.M.S., 533-4
Bismarck, 146, 495, 515, strongest vessel afloat, 125, 450, uncompleted in 1939, 368
Bison, French destroyer, 580
Bjerkvik, 586-7
Black Sea, German seaboard on, 401, 403, 409, British aid to Turkey in, 635-6, 666, Russian fleet in, 666
Black-out, 438, suggested modifications of, 636-7, 656
Blackshirts (S.S.), 53, 63, 94, faithful to Hitler, 88
Blagrove, Rear-Admiral H. E. C., 440
Blockade, Hitler not afraid of, 352, enforcement of, 368-9, 379, 390, 392-3, Northern, maintenance of, 452, Norwegian territorial waters an impediment to, 479, not strong enough weapon, 521
Blomberg, General von, 87, 233
Blucher, sinking of, 532
Blum, Léon, 118, 193, 211, 519, declares France will honour Czechoslovakian guarantee, 252, 270-1, conversation of, with Churchill, 252, fall of Government of, 253
Board of Trade, and Ministry of Shipping, 408-9, seeks to charter Norwegian tonnage, 480
Bodenschatz, Colonel, 281
Bodo, 582
Bohemia and Moravia, German protectorate of, 317
Bonnet, Georges, 253, 266-7, *De Washington au Quai d'Orsay* of, 266 *n.*, favours cession of Sudetenland, 271, on British communique promising support, 278, signs Franco-German declaration, 300, his talk with Ribbentrop, 300-1
Boothby, Robert, 106 *n.*, 278
Borde, H.M.S., 450
Bosnia, sinking of, 377
Bosphorus, protection of, 635-6, 666
Bothnia, Gulf of, freezing of, 478, 481, 568; shipment of iron ore across, 490
Bracken, Rt Hon Brendan, 74, 278, 690
Brauchitsch, General, 280
Bremen, the, 318, 379
Brenner Pass, Italian troops on, 93, 151, Hitler and Mussolini meet at, 518
Brest, 421 *n*
Brest-Litovsk, 396, 399
Briand, Aristide, 26
Bristol Channel, recovery of acoustic mines in, 639
British Army, need to strengthen, 84, German views on, 167, compulsory service in, 318-19, transported to France, 392, 421, creation of 55-division, 405, 407-8, 411-12, 436-7, in France *see* British Expeditionary Force, short of establishment, 423, training of, 437, troops for Norwegian operation, 505, 517, 540, 547, strength of, 573, and manning of Scapa defences, 633-5
British *Expeditionary* Force, goes to France, 392, 405, 421, deficiencies of, 407, 502-3, on Franco-Belgian frontier, 422, 501-2, training of 422-3, 502, supply depots of, 423, a symbolic contribution, 429-30
Brockdorff, General, 280
Brownshirts (Storm Troops, S.A.), first units of, 49, development of, 53, 86, Hitler prepared to liquidate, 54, Roehm and, 55, 86-90, Roehm leader of, 62, Hitler mistrusts growth of, 86-8, merged with Reichswehr, 87, reduced to obedience, 94, compulsory service in, 129
Bruening, Heinrich, and rearming of Germany, 45, becomes Chancellor, 56, policy of, 56-8, downfall of, 58
Bukharin, M., 259
Bulgaria, 401
Bullitt, William C., 185
Burckel, Gauleiter, 241
Burgin, Dr Leslie, exchanges letters with Churchill on heavy artillery, 408, mentioned, 666
Bzura, Battle of the River, 399

Cadogan, Rt Hon Sir Alexander, head of Foreign Office, 217, 227, hears of invasion of Austria, 243
Caithness airfields, 515
Calcutta, H.M.S., 555
Campinchi, M., Minister of Marine, 318-9
Canada, and Western Pact, 26, shipbuilding for Admiralty carried out in, 319

Canadian Army, transport of, to France, 452, troops arrive in Britain, 471, 669, troops for Norway, 555, 561, 566–7
Canaris, Admiral, 241
Cannes, 219–20
Cape route, *Graf Spee* harasses, 463, 464–5
Capetown, defences of, 667–8
Caretaker Government, 498
Carter, Leading Seaman C, 589–90
Carton de Wiart, Lieut-General Sir Adrian, 554, leads expedition to Namsos, 560, 567–8, 579
Catapult aircraft, 659
"Catherine", Plan, 415–16, 419, postponement of, 495–6, Churchill's minute on, 626–8
Cecil, Lord (Viscount Cecil of Chelwood), 152, 278
Chamberlain, Rt Hon Sir Austen, and the 1922 election, 19, announces German suggestion of pact, 25–6, and Western Pact, 26, 28, and German menace, 74, and air defences, 133, and Italy's attack on Abyssinia, 156, not offered Foreign Office, 166, disbelieves in Hitler's sincerity, 176, supports offer of office to Churchill, 179, member of Conservative deputation to Prime Minister, 204–5, 206–7, and the sisal-growing venture, 443
Chamberlain, Rt Hon Joseph, 443–4
Chamberlain, Rt Hon Neville, Chancellor of Exchequer, 60–1, 198, and British aid to France after reoccupation of Rhineland, 176, refuses Ministry of Co-ordination of Defence, 179, becomes Prime Minister, 198, appreciation of, 199–200; confirms Churchill's estimate of German expenditure on armaments, 203–4; not member of Conservative deputation, 206, reasons for foreign policy of, 207, dismisses Lord Swinton, Air Minister, 208–9, his strong views on foreign affairs, 216–18, 229, 298–9, his differences with Eden, 216–18, 225, 227, 230–1, dismisses Vansittart from the Foreign Office, 217, seeks better relations with Dictators, 217–18, 253, 298–300, his approaches to Italy, 217–18, 226–7, 229–30, 253, 300, supports Eden at Nyon Conference, 222, approves Halifax's visit to Germany, 224, rebuffs Roosevelt's overture, 226–9, 237, gives luncheon to Ribbentrop, 243–4, abandons idea of guarantee to Czechoslovakia, 245–6, decides his policy as regards Europe, 246–7, makes pact with Italy, 253–5, suggests sending mediator to Prague, 260, foreign policy in hands of, 268–9, 270, 299–300, visits Hitler, 269, 271, 275–7, 281, 283–6, his opinion of Hitler, 270, 299, presses cession of Sudetenland, 270–2, Churchill confers with, on Czech crisis, 277–8, unknowingly defeats plot against Hitler, 281, broadcasts to nation, 283, at Munich, 284–6, his agreement with Hitler, 285–6, 300–1, 322, Duff Cooper expresses disagreement with, 291–2, perseverance and moral courage of, 292, on dismemberment of Czechoslovakia, 298, 306–7, visits Paris, 300, visits Italy, 305–6, submits speech to Mussolini, 306, on occupation of Czechoslovakia, 307–10, reversal of policy of, 308–10, 322, 324, 429, 435–6, his guarantee to Poland, 310, 341, 344, his distrust of Russia, 313; Churchill's letters to, 314–15, 361–2, 405–12, 436–8, 455–6, 468–9, introduces conscription, 318–19, on Churchill's "chances" of office, 319–20, Stanley urges National Government on, 320–1, answer of, to Russian proposal for Triple Alliance, 332, on Russian alliance, 334–5, Molotov's reply to speech of, 339–40, sends Strang to Russia, 347, writes to Hitler on British preparations for war, 353–4, War Cabinet of, 361–5, 313–14, last-minute effort of, for peace, 362, broadcast of, announcing war, 363, coins phrase "Twilight War", 376, agrees to Churchill's statement on the sea war, 389, war policy of, 402, agrees with Churchill on Russia, 403, relations between Churchill and, 405–6, 443–4, his answer to Churchill on importance of air-power, 410, at meetings of Allied Supreme Council, 433–4, 504–5, in Bahamas, 443–4, dismisses Hore-Belisha as War Minister, 497, and U S peace suggestions, 504, speech of, on arrest of *Altmark*, 508, speaks on aid to Finland, 518, at meetings of Supreme War Council, 519–21, 539–40, 573–6, urges use of fluvial mines, 519–20, 524, ill-judged optimistic speech of, 526–7, 593, and Military Co-ordination Committee, 528–30, approves attack on Trondheim, 557, 561, accepts new plan for Trondheim, 565–7, on position in Norway, 574–5, 581, Churchill on his responsibility for direction of the war, 576, gives Churchill greater powers over Co-ordination Committee, 577–8, Parliament antagonistic to, 593–6, seeks to form National Government, 596–7, resignation of, 596–8, 599–600, Lord President of Council and Leader of Commons, 600
Chamberlain, Mrs Neville, 443–4

Chartwell Manor, 72; visitors to, 72–3
Chasseurs Alpins, in Norway, 549, 553–5, 560, 566–7, 579, 582, 586
Chatfield, Admiral of the Fleet Lord, First Sea Lord, 142, shows Churchill the Asdics, 146–7, 367, at Nyon Conference, 220; on relinquishment of Irish bases, 248, in War Cabinet, 374, at meeting of Allied Supreme Council, 433, on chartering Norwegian tonnage, 480, resignation of, 528, mentioned, 222
"Cheap and Nasties", 659
Chemical warfare, 38
Cherbourg, 421 *n.*
Chile, protests against German violation of Peace Treaty, 120
China, Japanese aggression in, 78–80, repercussions of Anglo-German Naval Agreement on, 127, war in, 679
C H L. stations, 140
Chrobry, 555
Churchill, Randolph, 178, 263
Churchill, Rt Hon Winston S, his relations with Baldwin, 18, 30, loses office as Dominions Secretary, 19, Chancellor of Exchequer, 21, 27, 45, rejoins Conservative Party, 21–33; opposes disarmament, 27–8, 65–6, 68–70, 91–2, 104–6; opposes Indian independence, 30–1, 61, 71; out of office, 33–4, 71–2, writes on possibilities in future wars, 35–39, lecture tour in United States, 71, accident to, 71, literary work of, 71–2, 180–1, building works of, 72, 357–8, friends of, 72–4; sources of information of, 73–4, speeches of, on German menace, 74, 77, 83–5, 92, 101, 104–9, 126–7, 183–4, 188–9, 203, 244–5, 271, Hitler fails to meet, 75–6, protests against plan of having two Foreign Ministers, 123, condemns Anglo-German Naval Agreement, 126–7, on Committee on Air Defence Research, 133–8, 142, 210, 367, writes to Air Minister on Radar, 141–2, keeps in touch with naval affairs, 142–3, 366–7, corresponds with First Lord on battleship design, 143–5, shown use of Asdics, 146–7, 367; consulted on Italian aggression in Abyssinia, 151, writes to Foreign Secretary on Mediterranean crisis, 153–4, speaks to City Carlton Club on Abyssinian crisis, 155–156, Conservative Party Conference resolution of, 160, desires office, 160–2, election campaign of (1935), 161, absence of, during Hoare-Laval Pact crisis, 166, paintings of, 166, 357; excluded from Ministry of Co-ordination of Defence, 179–81; writes on potential power of League, 181–2, speaks on consequences of fortified Rhineland, 183–4, his principles of foreign policy, 186–90, Edward VIII consults, 196; loses influence in House, 197, George VI's letters to, 197–8, 544; his meeting with Ribbentrop, 200–1; continues to urge rearmament, 202–3, 204–10; speaks on German war expenditure, 203–4, leads Conservative deputation to Prime Minister, 204–5, 613–18, speaks on inadequacy of air defences, 208–10, his correspondence with Daladier on German rearmament 211–12, writes on Spanish war, 219, his correspondence with Eden on Nyon Conference, 220–1, refuses invitations to meet Hitler, 224–5, capacity for sleep, 231, 375, on Eden's resignation, 231, 238–9, at farewell lunch to Ribbentrop, 243–4, speaks on occupation of Austria, 244–5, urges Franco-British-Russian alliance, 245, speaks on relinquishment of Irish bases, 249, conversations of, with French leaders, 252–3, his correspondence with Eden on Anglo-Italian pact, 254–5, speeches of, on Czech crisis, 261–262, 273, letters of, to Halifax, on Czech crisis, 262–6, 277, confers with Chamberlain on Czech crisis, 277–8, speech of, on Munich Agreement, 293–4, German resentment to attitude of, 294–5, Epping's vote of confidence in, 296, exchanges letters with Duff Cooper, 296–7, speech of, on Chamberlain's foreign policy, 298–9, suggests manning of air defences, 312; his letters to Prime Minister, 314–15, 361–3, 406–12, 436–8, 455–6, 468–71, complains of disposition of Mediterranean Fleet, 315–17, his "chances" of office, 319–20, tables resolution for National Government, 320, popular desire for return of, to office, 321, writes on German threat to Poland, 324, on need for Russian alliance, 327–8, 335–7, visits Rhine front, 342–4, letter of, on atomic energy, 444–5, member of War Cabinet, 361, 374, returns to Admiralty, 365; routine of, 375, first Admiralty conference of, 379–81, visits Scapa, 384–6, 442, 512–15, through two wars, 386–7, speaks in House on naval situation, 389–91, his correspondence with Roosevelt, 393–4, 496, on Russian invasion of Poland, 401–3, broadcast of, on Poland and Russia, 403, relations of, with Chamberlain, 405–6, 443–4, ordered storing of cannon, 406–8, 410, suggests formation of Ministry of Shipping, 408–9, suggests anti-waste campaign, 412–13, seeks naval offensive, 414–16, 523–4, forms own statistical

department, 420, 500, 622–4, shares "defensive" outlook, 426–7, letter of, on Home Front, 438–9, conference of, with French Admiralty, 448–52, his statement to French Admiralty, 449–52, his scheme for mining the Rhine, 456–8, 467–8 (*see also* Fluvial mines), urges mining of Leads, 478–80, 490–3, 521–3, letter of, to Hore-Belisha, 497, on delays of British war machine, 498–9, 522–3, on need for increased war production, 499–500, at meetings of Allied Supreme Council, 504, 519–21, 573–6, letter of, to Reynaud, 519, offensive proposals put forward by, 523–4, visits France to urge "Royal Marine", 525, presides over Military Co-ordination Committee, 528–30, 544, speaks to House on German occupation of Norway, 541–2, seeks Sweden's entry into war, 548–9, and Norwegian strategy, 561–2, 564–5, 568–569, 570, 583, advises on bombardment of Narvik, 573, given greater powers over Co-ordination Committee, 576–9, 593, supports Chamberlain in House, 595–6, chosen successor to Chamberlain, 596–8, warns Low Countries, 599, forms National Government, 599–601, Minister of Defence, 601, his conversation with Grandi, 607–8; invents Cultivator No 6, 644–5, minutes of, as First Lord, 655–93

Churchill, Mrs Winston S, 357–8, 363–4, 453

Ciano, Count, at Hitler and Mussolini's first meeting, 86, on Chamberlain's visit to Mussolini, 305–6, Goering explains German preparations for war to, 317–18, signs Pact of Steel, 337–8, argues with Ribbentrop against war, 346, hears from Hitler of imminence of war, 347, on the secrecy of Germany's intentions, 356, mentioned, 496

Citrine, Rt Hon Sir Walter (Baron), 196

City of Flint, 435, 464

Clarendon Laboratory, 665

Clark, Sir Kenneth, 690

Clemenceau, Georges, 11

Clement, loss of, 460

Clyde, as naval base, 443, 475, Home Fleet moves from, 512, movement of gun batteries from, 633

Collective Security, through the League, 110–12, Hoare on, 154–5, breakdown of, 169, still time for assertion of, 171

Collins, Michael, 247

Columbus, German liner, scuttling of, 477

Colvin, Ian, 74

"Commando" troops, forerunners of, in Norway, 581

Communism, victorious in Russia, 13, in Hungary, 13, in Germany, 13, 48–9, in Spain, 191–2

Communist Party, British, 583

Communist Party, French, and extended military service, 118, 121, power of, 429, subversive activities of, 496, 583

Communist Party, German, 62–3

Concrete ships, 675

Conscription, forbidden in Germany by the Treaty, 39–40, Baldwin pronounces against, 167, introduction of, in Britain, 318–19, 497

Conseil Supérieur de la Guerre, 425

Conservative Party, returned to power (1922), 19–20, returned to power (1924), 21, supports Churchill, 21, Churchill rejoins, 21, after 1929 election, 29, and disarmament, 76, 104, blameworthy conduct of, 80, election manifesto of (1935), 159, Conference of (1935), 160, Baldwin sacrifices country for, 194–5, against National Defence contribution, 198, deputation from, to Prime Minister, 204–5, 613–18, supports relinquishment of Irish bases, 248–9, split in, on Munich, 290–3, 296

Convoy system, 378–80, 389, organisation of, 381, need for escort vessels, 449–50, French assistance in, 451, inclusion of neutral vessels in, 481–2, as defence against air attack, 509–10, loosening up of, to avoid delays, 668–9

Coolidge, Calvin, President, 22

Cooper, Rt Hon Sir Alfred Duff, 150, First Lord of the Admiralty, 198, demands mobilisation of Fleet, 278, resignation of, 291–2, German resentment at attitude of, 295, 301, exchanges letters with Churchill, 296–7

Co-ordination of Defence, Ministry of, 179–80, 528, 615, and Air Force *matériel*, 611, note criticising functions of, 611–12

Corbin, André, letter from Churchill to, 193, mentioned, 524

Corfu, occupation of, 314–15

Cork and Orrery, Admiral of the Fleet Earl of, studies Plan "Catherine", 415–416, commands naval force for Narvik, 550–1, 558, urges Mackesy to action, 552–3, considers attack possible, 555–6, senior to Commander-in-Chief, 558, 565, appointed to supreme command at Narvik, 571–2, decides on bombardment, 572–3, 586, evacuates Narvik, 587–8

Cornwall, H M S., 462, 472

Corvettes, 418–19, 621, 680 *n*, in construction programme, 631

Cossack, H M S, 506–7

Cot, Pierre, 193, 252
Courageous, H M S , sinking of, 387–8
Coventry, H M S , 588
Cracow, 395
Cranborne, Viscount, 237
Cripps, Hon Frederick, 675
Cripps, Rt Hon Sir Stafford, urges formation of "All-in Government", 320
Croft, Rt Hon Sir Henry (Baron Croft), and German menace, 74, urges rearmament, 76, member of Conservative deputation to Prime Minister, 205
Cross, Rt Hon Sir Ronald H , 409
Cruisers, armed merchant, 352–3, 445; deficiency of, 366, war-time building programme of, 378, 417, 629, 631, 656, policy, 388–9, as commerce-raiders, 459, in search of *Admiral Graf Spee*, 460–2, comparative strength of navies in, 621–5
Cultivator No 6, 427, 497, 523, history of, 644–5
Cumberland, H M S , in search of *Admiral Graf Spee*, 462, 465, refitting at Falklands, 465; arrives off Montevideo, 468–9
Cunliffe-Lister, Rt Hon Sir Philip—*see* Swinton, Viscount
Curaçao, 683
Curzon of Kedleston, Lord, 19–20
Cyprus, 254
Czechoslovakia, independence of, 14; German Arbitration Treaty with, 27, French guarantee to, 27, 176, 246, 252, 259–60, 263–4, 266, 270–2, in proposed Eastern Pact, 95, protests against German violation of Peace Treaty, 120, aligned to France, 173, 175, 258, affected by fortified Rhineland, 184; Austria the door to, 234, 251–2, 273, isolation of, 245–6, 263–4, no British guarantee to, 246, Germany's political offensive against, 250–1; German minority in, 251, 255–6, plans for destruction of, 251, Goering's assurance to, 252, Mussolini's acceptance of German action in, 255, mobilises Army, 256, 276, 278–9, German preparations to attack, 257, Hitler seeks to separate from France, 258, relations with Russia, 257–9, 263–4, 266, 274, 348, Runciman mission to, 260–2, seeks to conciliate Sudetens, 261–2, 269, cession of Sudetenland by, 266, 269–73, establishes martial law, 267, effect of Chamberlain's German visits on, 269, Franco-British pressure on, 271–3, railway connections between Russia and, 274, German estimate of strength of, 282, Hitler's guarantee to, 283, Munich decision on, 284–5, 286, 289, dismemberment of, 289–90, 293–4, 298, 306–7, Polish demands on, 289 90, 298, 318, Hungarian demands on, 290, 298, Army and arsenal of, lost to Allies, 301–2, 311, 317–18, 337, German occupation of, 307–9, 318, Russian contracts with, 325–7, uranium in, 345 *See also* Little Entente

D'Abernon, Viscount, 348
Daily Herald, 176, 362
Daily Telegraph, 321
Dakar, French naval force at, 393
Daladier, Édouard, Churchill's correspondence with, on German rearmament, 211–12, Government of, 253, renews assurances to Czechoslovakia, 259, 272, desires Anglo-French approach to Hitler, 269, favours cession of Sudetenland, 270–1; at Munich, 284; on Russian negotiations with Germany, 331, at meetings of Allied Supreme Council, 433, 539, sends help to Finland, 517, refuses to permit Operation "Royal Marine", 518, 525, fall of, 518, in Reynaud's Cabinet, 525, mentioned, 95, 429, 648
Dalton, Rt Hon Hugh, 600
Danzig, German declaration of sovereignty over, 306, 324, threat to, 341, mentioned, 98, 338, 347
Dardanelles, lesson of, 558, anti-submarine nets in, 635–6
Darlan, Admiral, his achievements with French Navy, 370, 449, on management of naval matters in France, 448, and Operation "Royal Marine", 647–8, mentioned, 539, 576
Dartmouth cadets, 690–1
Davis, Norman, 58
"Degaussing", 455, 640–1, of neutral vessels, 642
Delbos, Yvon, 223
Delhi, H M S , 445
Denmark, protests against German violation of Peace Treaty, 120, Germany plans attack on, 504, Germany occupies 531 *See also* Scandinavia
Depth-charges small ships equipped with, 380 392, 419
Destroyers, Irish bases of, 249, building programme of, 378, 417, 631, 657–8, shortage of, 382, 385, 683, disadvantages of large, 417, 678, French construction of, 450, warming of, 496, entrance for, into Scapa, 514, attack at Narvik, 537 9, comparative strength of navies in, 621–3 657, escort, 621, 631, 658, 680, Scapa as refuelling base for, 632, in Western Approaches, 669, relief of strain on crews of, 672–3, reclassification of, 680, "Hunt" class, 680 *n* , repair of, 683

Deutschland, 368, in Atlantic, 451, 460, 464, returns to Germany, 464
De Valera, Eamon, agreement with, on naval bases, 247–9, dare not offend anti-English minority, 662
Devonport, 672
Devonshire, H M S , 588, 590
Dido, H M S , 629
Dido class of cruiser, 657
Dieppe, 423
Dill, Field-Marshal Sir John, 564
Dinant, 428
Disarmament, of Germany, 11, naval, British and American, 12, urged on France, 12, 55–6, 76, 83–5, 92, 118, general, and Western Pact, 26–8, British, 30, 64–70, 76, 100–1, "equality of armaments" and, 58, 66–70, "qualitative", Churchill on, 65, Labour and Liberal Parties uphold, 111–13
Disarmament Conference, in Washington, 12, in Geneva, 58, German demands before (1932), 66, German withdrawals from, 67, 70, adjournment of, 91–2
Dive-bombers, 495, British, at Narvik, 543 at Trondheim, 592
Dobrudja, 401
Doenitz, Admiral, 440, 644
Dollfuss, Dr , reaches understanding with Mussolini, and disarms Socialists, 82, German pressure on, 85, murder of, 93, 234
Domala, 681
Dombas, 564, 567–8
Dominions, and Locarno Conference, 22–23, warned of approaching war, 352, enlistments for Royal Navy in, 689
Doric Star, loss of, 465
Dorsetshire, H M S , 462, 469, 472
Doumenc, General, 348
Doumergue, Gaston, 95
Dowding, Air Chief Marshal Lord, 139, 633
Drax, Admiral the Hon Sir R A R , 348, 670
Duke of York, H M S , 657
Dulanty, J W., 661–2
Dunkerque, the, 446, 451
Dunkirk, "wiping" of craft in evacuation of, 641

Eagle, H M S , 462, 472
East Coast, air attacks on shipping off, 471, 509–10
East Fulham by-election (1933), 100, 194–5
Eastern Pact, 28, France proposes, 95, sabotaged by Germany, 171
Ebert, Friedrich, 24
Economic Warfare, Ministry of, 479
Eden, Rt Hon Anthony, in Berlin, 87, 108, 118, early career, 118, in Moscow, 119, Minister for League of Nations Affairs, 122–3, and Italy's aggression against Abyssinia, 151, and Sanctions against Italy, 154, 216, becomes Foreign Secretary, 166, Flandin's discussions with, 171–2, and German proposal for pact, 173, and reoccupation of Rhineland, 175, demands Staff talks with France, 183, 216, his differences with Chamberlain, 215–18, 225, 228, 230, foreign policy of, 216, 218, 237–8, and Vansittart, 217, his relations with Churchill, 218–20, 262, at Nyon Conference, 220–3, corresponds with Churchill, 220–3, and Halifax's visit to Germany, 224, and rebuff of American offer, 226–9, and talks with Italy, 229–30, resignation of, 230–1, 237–8, his correspondence with Churchill on Anglo-Italian pact, 254–5, German resentment at attitude of, 295, 301, supports resolution for National Government, 320, on need for Russian alliance, 333, 337, suggests going to Russia, 347, value of, to War Cabinet, 361–2, present at War Cabinet meetings, 374, War Minister, 600
Edinburgh, H M S , air-raid damage to, 442
Edward VIII, King, 196–7
Egypt, Socialist policy in, 30, danger of Italian attack on, 370
Eidsvold, 532
Eire, Britain renounces rights to naval bases in, 248–9, question of neutrality of, 248–9, 381–2, effect of loss of bases in, 381–2, 661–2, possible refuges for U-boats in, 382, 655, 662, anti-British minority in, 662
Emden, damage to, 531–2, mentioned, 620
Emerald, H M S , 462
Emergency Powers Defence Bill, 366
Enterprise, H M S , 462
"Equality of armaments", 58, 66–70
Erebus, H M S., 667
Ernst, Karl, 89–90
Escort carriers, 658 *n*
Escort vessels, 379–81, 680, comparative strength of navies in, 621, 625, destroyer, 621, 631, 658, 680
Eskimo, H M S , 543
Esthonia, need for co-operation of, 327, should not fall into the hands of Germany, 335, signs non-aggression pact with Germany, 340, Russian need for neutrality of, 345, Germany politically disinterested in, 350, *Orzel* escapes from, 393, Russian Pact of Mutual Assistance with, 436, 484 *See also* Baltic States

Evans, Admiral Sir Edward (Lord Mountevans), 562–3
Ewe, Loch, Grand Fleet in, 386, *Nelson* mined in, 455, mines blown up in, 456, as temporary base, 633
Exeter, H.M.S., in search of *Admiral Graf Spee*, 462, 465, in Battle of River Plate, 466–8; damage to, 468–9, 475–6, 680, Russian report on, 476
Exmouth, H.M.S., 678
Eyres-Monsell, Sir Bolton (Viscount Monsell), 126

Falkenhorst, General von, 508–9, 515
Falkland Islands, action off (1914), 465, the *Cumberland* at, 468, the *Exeter* at, 475–6
Falmouth, 248
Far East, growth of Japanese power in, 78–9, repercussions of Anglo-German Naval Agreement in, 127, dangers of war in, 267
Faroe Islands, 540, 683, 685–7
Fascism, rise of, 13–14, in France, 503, in Norway, 545–6
Faucher, General, 272
Fécamp, 423
Feiling, Professor Keith, *Life of Neville Chamberlain* of (extracts), 176, 179–80, 228, 230–1, 245–6, 253, 270, 283, 313, 319, 362, 403
Fey, Major, 82
Fiji class of cruiser, 657–8
Finland, fear of Russia in, 325, 484, refuses guarantee by Russia, 340, Russian need for neutrality of, 348, Germany politically disinterested in, 350, Russian demands of, 485, Russia attacks, 485–8, 516, preliminary success of, 487–8, 498, help for, 489, 496–8, 504, 522, 1918 campaign in, 508, accepts Russia's terms, 517, and Russian bases in Baltic, 667
Fisher, Admiral of the Fleet Lord, 133–4
Fishing vessels, Admiralty and, 665–6
Fitzalan, Viscount, 205
Fitzgerald, Captain, 673
FitzGerald, Rear-Admiral John, 458, 517
Flandin, Pierre, at Stresa Conference, 119, in London, 171–2, 175–6, and reoccupation of Rhineland, 174–7, trial of, 178, out of office, 253, mentioned, 211
Fleet Air Arm, question of naval control of, 143, 608–11, in Norway, 537, 543, 559, 581, estimated cost of, 676–7, carrier-borne and shore-based aircraft in, 676, in Battle of Britain, 677 *n*
Fluvial mines, scheme for attacking Rhine with, 456–8, 497, 517–18, 523, 673–4, French refusal to permit use of, 517–19, 524–5, agreement with Reynaud concerning, 519–21, 539–40; brought into use too late, 523
Foch, Marshal, 6, 10–11, 13
Food-rationing, 438–9
Forbes, Admiral of the Fleet Sir Charles, Commander-in-Chief, 147, 384–6, objects to Clyde base, 443, moves into Scapa Flow, 512–14, sails in search of German Fleet, 533–4, 536–7, 592, and the attack on Trondheim, 558–9, sends escort for troopships from Norway, 588, orders air attack on ships in Trondheim, 592
Foreign Legion in Norway, 566, 586
Formidable, H.M.S., 629
Forth, Firth of, warships bombed in, 442, cruiser mined in, 455
France, and threat of German aggression, 5–6, 10, 76, 96, 176, and Treaty of Versailles, 6, 10–11, repudiation of Anglo-American guarantee to, 10–11, disarmament urged on, 12, 64–70, 76, 83–4, 92, 118, and Western Pact, 25–8, guarantees assistance to Poland, 27, 310, guarantees assistance to Czechoslovakia, 27, 176, 246, 252, 259–60, 263–4, 271, fails to prevent second war, 38, 46, 70, 106, 131, 171, 174, 574, "equality of armaments" between Germany and, 58, 66–70, strongest military Power, 69, 187, German approach to, before First World War, 83, Italian relations with, 94–7, 163–4, seeks security in East, 95–6, declares extension of military service, 117–118, 121, Communists in, 118, 121, 420, 496, 503, 583, and Stresa Conference, 118–20, protests against German violation of Peace Treaty, 120, approaches Russia, 121–2, 171, and Anglo-German Naval Agreement, 125, 163, and Abyssinian war, 151, 156, 163, anxiety of, about Rome-Berlin Axis, 163, promises armed support to League, 172, Germany suggests pact with, 172, seeks British aid on reoccupation of Rhineland, 172–5, 175–7, fails to mobilise, 175, 235–6, 239, Staff conversations between Britain and, 183, menace of fortified Rhineland to, 183–4, a peaceful and fearful nation, 187–8, Britain's need for defensive association with, 189–90, 205, and Spanish Civil War, 192–3, 218–19, co-operates with Britain in anti-submarine patrols of Mediterranean, 220–1, Hitler plans to precipitate war with, 233, British obligations to, 247, Hitler certain of inaction of, 251–2, 257, urges Czechs to be reasonable, 255, Czecho-

slovakia's commitments to, 258, validity of her treaty with Czechoslovakia, 259-260, approaches Russia on Czech crisis, 263-4, 274, asks British position in event of German attack, 266-7, suggests Anglo-French approach to Hitler, 269, favours cession of Sudetenland, 270-1, "ultimatum" of, to Czechs, 271-3, partial mobilisation of, 277, 279-80, Britain declares she will support, 278, further concessions of, to Hitler, 284, and Munich conference, 284-8, fails to honour her agreement, 288, 294, signs declaration of amity with Germany, 300, Ribbentrop's mission to, 300-1, forty-hours week in, 302, Italian claims against, 313, Russia suggests Triple Alliance to, 325-7, 339-40, draws nearer Britain, 341-2, Rhine frontier of, 342-3, purely defensive attitude of, 343-4, 376, Hitler on course of war against, 347, military conversations of, with Russia, 348-50, number of divisions of, 349, failure of foreign policy of, 351, 423-4, Hitler leaves opening of hostilities to, 357, declares war, 363, 376, afraid of reprisals, 376, 405, 517-18, 521, 523-5, transport of British troops to, 392, 421, fears air attack, 426, discusses war strategy with Britain, 426-9, 431-4, 502, has no heart for war, 430, 503, probable lines of attack on, 431-2, Hitler's peace proposals to, 435, help from, for Finland, 489, 517-18, static front in, 494, Hitler's plans for attack on, 501-2, 515, effect of German propaganda on morale of, 503, 520-1, refuses permission for Operation "Royal Marine", 517-18, 523-5, impaired morale of, 520-1, 583, agrees not to negotiate armistice without British agreement, 521, as base for Air Force, 617

Franco, General, rises in revolt, 192, successes of, 245

François-Poncet, André, 284

Franco-Soviet Pact, 121-2, 172, German case against, 182, Russia seeks discussion on, 245

Fraser, Admiral of the Fleet Sir Bruce (Lord Fraser of North Cape), 416

Freetown, convoys from, 381

French Air Force, post-1918, 14, reduction of, 112, culpable neglect of, 212-13, strengthening of, 525

French Army, strength of, 14, 39, 69, 187, 573, centre of life of France, 65, planned reduction of, 67-70, 83, extension of compulsory service in, to two years, 118, 121, compared with German, 130, 302-303, 357, artillery of, 252, partial mobilisation of, 277, 279-80, purely defensive tactics of, 344, 376, 424-7, spirit of (1914), 424, reason for delay of, in attacking, 428-9, impaired morale of, 429, 503-4, 583, strength of (1939), 430, 573, Communist influence in, 496, 503, troops of, for Norway, 549, 555, 566-9, 574, 579, 586-7, Foreign Legion of, 566, 586

French Navy, Treaty limitations on, 125, need for reconstruction, 126, superiority of, over German Navy, 128, battleship design in, 146, co-operates with British, 220-3, 393, 451, 462, high efficiency of, 370, Darlan's achievement in, 449, British offer to supply Asdics to, 449-52, convoy escorts from, 451, strength of (1939), 623

Frigates, 418-19, 631 *n*, 680 *n*

Fritsch, General von M , 233, 242

Furious, H M S , seeks commerce-raider, 446, in hunting group, 462, at Bergen and Trondheim, 537, 554, at Narvik, 543

Gallivare ore-field, 504, 549, expedition ordered to push on to, 553; British seek possession of, 569

Gamelin, General, 252-3, suggests that Churchill should visit the Rhine front, 342, and Germany's needs on her Eastern front, 401, his limited responsibility for the situation in 1939, 429, on line of advance in Belgium, 433, 502, negotiates with Belgium on defence plan, 432-3, wants extension to plan, 434, interested in fluvial mines, 457, 648, approves attack on Trondheim, 557-8, interested in Cultivator No 6, 645

Gandhi, Mahatma, at London Conference, 30

Gas-masks, 438

Gaulle, General de, 253, 425

Gauss, Herr, 350

Gavle, 490

G C I stations, 140

General Election of 1922, 19-20, of 1923, 20-1, of 1929, 29, of 1931, 34, of 1935, 156

Geneva Disarmament Conference, 58

George VI, King, coronation of, 197, letters to Churchill, 197-8, 544, asks Churchill to form Government, 599

George, Rt Hon David Lloyd (Earl of Dwyfor), and Treaty of Versailles, 10, 11, rift between Poincaré and, 12, end of Coalition of, 18-19, on Hindenburg, 25, plan of, to limit German Army, 39, failure of, in the "locust years", 80, on

reoccupation of Rhineland, 174, conversation of, with Churchill, 219–21; misled by Hitler, 225, on need of arrangement with Russia, 333–4, asks question on Anglo-Polish guarantee, 336, declares Chamberlain should go, 594–5, mentioned, 19, 20, 29, 33, 166, 406

Georges, General, 96, shows Churchill Rhine front, 342, shows figures of French and German Armies, 357, against extension of defence plan, 434, interested in Cultivator No 6, 654

German Air Force, re-creation of, 43–4, 99 *et seq*, 170, prohibition of, 68, approaches parity with British, 105–7, reaches parity, 108–9, 114–16, officially constituted, 117, possible policy of, in event of war, 136–7, enlargement of, 190, strongest in Europe, 207, estimates of strength of, 211, 430, 615–16, compared with British, 303, 615–17, Poland attacked by, 395–8, danger from, in seeking mastery of Baltic, 414, 416, in Norway, 557

German Army, Treaty limits to, 39–40, plans to re-create, 40–2, 99, exceeds Treaty limits, 42, equality of, with French Army, 58, 66–70, 83, compulsory service for, 117, 128–9, 190, function of, in Nazi Germany, 128–9, organisation of, 129, expansion of, 113–114, 190, compared with French, 130, 302–3, 357; strongest in Europe, 207, Churchill's estimates of strength of, 211–12, defects shown in, during invasion of Austria, 242, generals on deficiencies of, 281–2, disposition of, in invasion of Poland, 395–6, armoured troops of, 397, strength of (1939), 429–430, 573–4, advance of, through Norway, 557–8, 580–3; strength of, in First World War, 573, superiority of, in Norway, 582–3

German colonies, question of return of, 200, 218, 225, 276–7, 299

German Navy, Treaty limits to, 14, 41, 68, 123, illicit building up of, 44, 99, 108–9, exceeds Treaty limits, 123–4, as permitted by Anglo-German Naval Agreement, 124–6, battleship design in, 146, composition of (1939), 368, Baltic control of, 368, commerce-destroyers of, 459–61, 474, escorts expedition to Norway, 532–6, 542, in action with British ships, 534–9, weakening of, 592, intercepts ships off Norway, 588–92, strength of (1939), 621

German shipping, 379, 390, 510, 682–3

German Workers' Party, 48–9

Germany, after First World War, 4, 10–12, France threatened by, 4–6, reparations from, 6, 8–9, 23; loans to, 8–9, 10, 29, 52, total disarmament of, 11, 4–16, 29, 43, economic chaos in, 11–12, 55–6, 58, British sympathy for, 12, Communism in, 13, 48–9, hideous crimes of, 15–16, Hindenburg's Presidency, 24–5, suggests Rhineland Pact, 25, enters League, 25–7, Arbitration Treaties of, 27; dissatisfied with Eastern frontiers, 28; withdrawal of Inter-Allied Control Commission from, 43, rearming of, 41–46, 64, 70, 76, 91, 101–2, 117, 128–31, 136–7, 170, 210–13, 613, anti-Semitism in, 45, 48, 52, 69, 91, Hitler's conception of, 47–8, 50–1, rise of Nazi Party in, 49–50, 51–4, question of revival of monarchy in, 56–7, "equality of armaments" between France and, 58, 66–70, 83, opposition to Hitler in, 63, 74, 86–7, Hitler achieves power over, 63–4, demands right to rearm, 66, 68–9, quits Disarmament Conference, 67, 70, quits League, 70, Churchill visits, 75, deliveries of metals to, 77, absorbs Austria, 81, 93–4, 240–5, 273, approach to France before First World War, 83, Nazi unity preserved in, 90–1, concentration camp system in, 91, Churchill on power of dictatorship in, 92, opposes Eastern Pact, 95, Saar returns to, 97–8, relations of, with Russia, 102, 171, approaches air parity with Great Britain, 105–7, reaches air parity, 108, 114, British naval agreement with, 124–8, 170, function of Army in Nazi, 128–9, Italy on side of, 148, 163, 171, contempt for Britain felt by, 167–8, prepares for war, 170, 190–1, 317–18, 344, suggests twenty-five-year pact, 172, reoccupies Rhineland, 173–9, Hitler's prestige enhanced in, 179, 184, defies League, 182–3, fortifies Rhineland, 183–4, 196, draws up plans for reoccupation of Austria, 185, 232, British duty to oppose, 188, subscribes to Non-Intervention, 192, intervenes in Spanish war, 193, 219, asks for free hand in Eastern Europe, 200–1, "living space" for, 200, 232, 251, 338, 497, expenditure of, on armaments, 203–4, 301, strongest military Power, 207, anti-aircraft guns in, 209–10, absorption by, of all German minorities, 251, prepares to attack Czechoslovakia, 257, cession of Sudetenland to, 269–73, 275–7, Godesberg ultimatum of, 276–7, 283, poor morale in, 281–2, mobilisation of, denied, 282, resents Britain's attitude of mistrust, 295, 301, 323, arbitrates on Czecho-Hun-

garian frontier, 298, signs declaration with France, 300, increase in population of, 304, troop movements in, 306, annexes Czechoslovakia, 307, gains of, through appeasement, 310–11, gains of, through occupation of Czechoslovakia, 317–18, Russian relations with, 326–7, 329, needed speedy victory, 334, signs Pact of Steel with Italy, 337–8, negotiates with Russia, 339, 348–9, Baltic non-aggression pacts with, 340, fails to make atomic bomb, 345, determined on war, 346–7, signs pact with Russia, 350–352, her secret agreement with Russia, 350, 400, invades Poland, 356–7, 361, 395–9, makes no attack on Allies, 376, blockade of, 379, 390–3, interests of, in Balkans, 401–3, possible courses of attack on France, 431–2, orders of, to commerce-raiders, 460, shipments of Swedish iron ore to, 478–81, 490–2, 495, 509, 520–1, 671, makes use of Norwegian territorial waters, 478, 489–91, 492–3, 507–8, 671, prepares to invade Norway, 483–4, 508–9, 515–16, 522–4, advantages of Norwegian bases to, 483, 508–9, Russian aid to, 489, 496, 671, captured invasion plans of, 501–2, plan to mine waterways of, 519–21, 647–8, supplies of oil to, 520–1, occupies Norway, 531–4, 540–1, 546–7, occupies Denmark, 531, 534, infiltration of, into Norway, 545–6, advantages of, over Allies, 513–14, superiority of, in Norwegian campaign, 582–3, invades Holland and Belgium, 596–9, war potential of, 613–19, naval strength of (1939), 621, effect of British command of Baltic on, 627–8, and Russian need for Baltic bases, 667, importance of Swedish ore to 671

Gestapo, 94

Gibraltar, British fleet at, in Abyssinian crisis, 155, convoys from, 381

Gilmour, Colonel Rt Hon Sir John, 205, 409

Giraud, General, 426, plan for troops of, 433

Givet-Namur line, 428, 432

Gladiator squadron in Norway, 581

Glaise-Horstenau, General, 241

Glasgow, H M S , 537

Glorious, H M S , 462, at Trondheim, 559, Gladiators from, in Norway, 581, at Narvik, 588, loss of, 589–90

Gloucester, H M S , 472

Glowworm, H M S , 534–5

Gneisenau, built in defiance of Treaty limitations, 123–4, brief excursion of, 444–7, forces in war for, 452; escorts troopships to Narvik, 352, 535–6, damaged by *Renown*, 536, intercepts convoy, 588–90, air attack on, 592, in relation to Plan "Catherine", 626, mentioned, 667, 686

Godesberg ultimatum, 276–7, 283–5

Goebbels, Dr , organises election campaign for Hitler, 63, at arrest of Roehm, 89, plot to arrest, 281, propaganda of, in France, 503, 520

Goeben, escape of, 476

Goering, Hermann, in the *Putsch*, 49, Minister of Interior, 63, in suppression of Roehm plot, 89–90, Laval meets, 122, invites Halifax to Germany, 224, demands calling off of plebiscite, 240, gives assurances to Czechoslovakia, 252, suggested London visit of, 260, plot to arrest, 281, explains German preparations for war to Mussolini, 317–18, on effect of British treaty with Poland, 354, mentioned, 502

Gold Standard, abandonment of, 34

Goodall, Sir Stanley, 415, 644

Gort, Field-Marshal Viscount, 433

Grandi, Count, conversations of, with Chamberlain, 217–18, 229–30, conversation of, with Churchill, 607–8

Grandmaison, Colonel, 424

Great Britain, loans by, to Germany, 8, 29, 45, and Treaty of Versailles, 10–11, German sympathies of, 12, disarmament policy of, 12, 30, 64–5, 76, 100–101, American debts of, 22–3, 34, and Western Pact, 25–8, two-way guarantee of, 228, financial crisis in, 32–4, fails to prevent second war, 37, 46, 70, 83, 106, 131, 170–1, economy ruling on Service estimates of (1919–32), 45–6, and Japanese aggression in China, 78–9, Italian relations of, 95, desire for peace in, 100–1, German air parity with, 105–109, 114, 119, 131, protests against German violation of Peace Treaty, 120, makes Naval Agreement with Germany, 124–8, reaction of, to Abyssinian war, 150–1, undertakes to uphold League action against Italy, 152–60, 163–4, evades effective action, 157–9, 163–4, lost prestige of, 167–8, new atmosphere in, 169, asked to support France in possible violation of Locarno Treaty by Germany, 171–2, Germany suggests pact with, 172, evades action on reoccupation of Rhineland, 174–7, 239, Staff conversations between France and, 183, Churchill's principles of foreign policy for, 186–90, needs defensive association with France, 189–90, 205, keeps agreement for Non-Intervention in

Spanish war, 192–3, plan for rearmament of, 195, Germany's declared wish for friendship with, 200, French co-operation with, in anti-submarine patrols, 220–3, Hitler plans to precipitate war with, 233; gives guarantee to Poland, 246, 310–11, 323–4, 336, 341, 344, 353–4, obligations of, in Central Europe, 247, Hitler certain of inaction of, 251–2, 257, 429–30, makes pact with Italy, 253–5; urges Czechs to be reasonable, 255, asked by France to clarify position in event of German attack, 266–7, "ultimatum" of, to Czechs, 271–2, rejects Godesberg terms, 277, declares she will support France, 278, and Munich conference, 284–7, encourages France in her treatment of Czechoslovakia, 288, ill-prepared for war, 293, 295–6, 613–18, Hitler's speech on, 294–5, Ribbentrop seeks to detach France from, 300–1, military expenditure of, compared with German, 301, not bound by guarantee to Czechoslovakia, 307–8, losses to, through appeasement, 310–11, conscription introduced in, 318–19, gives guarantee to Roumania, 322, in alliance with Turkey, 322, 333, 335, 401, 496, Russia suggests Triple Alliance to, 325–7, answers Russian proposals, 323, German minutes on war against, 338–40, draws nearer to France, 341–2, Hitler on war against, 347, 352, sends mission to Russia, 347–50, military conversations of, with Russia, 348–50, number of divisions of, 349, failure of foreign policy of, 351, 423–4, precautionary measures taken by, on announcement of German-Soviet Pact, 352–3, proclaims treaty with Poland, 354, Hitler leaves opening of hostilities to, 357, German Nazis in, 358, mobilisation of all forces of, 361, declares war, 363, 376, discusses war strategy with France, 427, 431, 502, change of heart of, in war, 430, 435–6, Hitler's peace proposals to, 435, hampered by her respect for neutrality, 479, 482–3, 489, 492–3, 516, 518, 540–1, relations of, with Sweden, 481, seeks to give aid to Finland, 489, 496–8, 504, 516–18, advantage of control of Norwegian coast to, 491–2, 508, dwindling dollar resources of, 496, strained relations with Russia, 496, dilatory war machine of, 498–500, 522–3, Raeder on Norwegian policy of, 516, agrees not to negotiate armistice without French agreement, 521, mines Norwegian Leads, 531, seeks to aid Norway, 547, fatal weakness of war machine of, 564; not making full effort, 583–4, war organisation of industries of, compared with German, 613–16, naval strength of (1939), 621; aid to Turkey from, 635–6, trade in, slowed up by convoy system, 668–9

Greece, Italian threat to, 314–15

Greenwood, Rt Hon Arthur, 362, 596, 600

Grenville, H M S , 678

Grigg, Rt Hon Sir Edward (Baron Altrincham), 74, 205, 275

Grong, "impassible" road to, 581

Guarantee, Treaty of, 11

Guards Brigade, in Norway, 551, 556 583, 586

Gubbins, Major-General Sir Colin, 581–2

Guernica, bombing of, 193

Guest, Captain Rt Hon F. E , 106 *n* , 205

Gurkha, H M S , loss of, 537

Haakon, King of Norway, 546–7, British officer sent to, 562–3, leaves his country, 588 596

Hacha, Dr , President of Czechoslovakia, 298

Hagelin, M , 484

Halder, General von, and the attack on Czechoslovakia, 252, 302, Chief of Army General Staff, 279, plots against Hitler, 280 1, mentioned, 302

Halifax, Earl of, as Viceroy, 30 1, on private armament firms, 112 13, his kinship of outlook with Chamberlain, 216, visits Hitler, 224, appointed Foreign Secretary, 231, and Czech crisis, 260-1, 268, 277 8, 284, 286 Churchill's letters to, on Czech crisis, 262 6, 277, answer of, to French request for clarification of position, 266 7, visits Paris with Chamberlain, 300, visits Italy with Chamberlain, 305–6, Churchill's letter to, on disposition of Mediterranean Fleet, 317, in War Cabinet, 374, at meeting of Allied Supreme Council, 433, on Swedish neutrality, 549, refuses Premiership, 596 8, in National Government, 600, mentioned, 175, 204, 258

Halifax, Nova Scotia, convoys from, 351

Hamar, 546

Hambro, Carl, 546

"Hammer", Operation, 560–2, opposition to, 563 4, abandonment of, 563–8, 579

Hanfstaengl, Herr, 75–6

Hango, Russia demands lease of, 485

Hankey, Lord, in War Cabinet, 374

Hanneken, General von, 281

Hardy, H M S , 538-9, survivors from, 539, 544
Harstad, 550, 552
Harwood, Admiral Sir Henry, ships under, 465-6, 476, at Battle of River Plate, 466-9, awaits *Graf Spee*, 469, 472
Hatson, aircraft from, 537
Havock, H M S , 538-9
Hawkey, Sir James, 296
Heimwehr, suppresses Austrian Socialist army, 82
Heligoland, evasion of Treaty obligations in, 44
Helldorf, Graf von, 280, 281
Helsingfors, air attacks on, 487, 498
Henderson, Admiral Sir Reginald, 142-3, 367
Henderson, Sir Nevile, and Czech crisis, 256, 276
Henlein, Herr, demands autonomy in Sudetenland, 255; interview of, with Churchill, 256, negotiates with Beneš, 260, 204, flees to Germany, 267, 269, demands union of Sudetenland with Reich, 269
Herjangs Fiord, 539
Hermes, H M S , 462, 464
Herriot, Édouard, German memorandum to, 25, Premier, 58, "Plan" of, 67, mentioned, 252
Hess, Rudolph, in the *Putsch*, 49
Himmler, Heinrich, leader of Blackshirts, 88, 94, plot to arrest, 281
Hindenburg, Marshal, 10, President of Germany, 24-5, 52, successor to, 53-4, re-election of, 56-7, staunch monarchist, 57, dismisses Bruening, 58, meets Hitler, 62, appoints Hitler Chancellor, 63, death of, 94
Hindenburg Line, 184
Hindu-Moslem antagonism in India, 61
Hipper, damaged by *Glowworm*, 534-5, 537, in the Norwegian operations, 588, 592
History of the English-Speaking Peoples, 180
Hitler, Adolf, 13, temporary blindness of, 47-8, early life of, 47, anti-Semitism of, 48, 50, 75-6, 295, becomes "the Fuehrer", 49, *Putsch* of, 49-50, 53, main pillars of policy of, 49-51, gains allegiance of Reichswehr, 54-5, as successor to Hindenburg, 54, campaigns against Young Plan, 55-6, stands for Presidency, 57, and Chancellorship, 62-3, opens first Reichstag of Third Reich, 64, granted emergency powers, 64, withdraws Germany from League, 70, loses opportunity to meet Churchill, 75-6, Austrian aims of, 81, 85, his first meeting with Mussolini, 85-6, Roehm's plot against, 86-90, executes Roehm and his following, 90-1, succeeds Hindenburg, 94, announces air parity with Great Britain, 109, 114, 119; openly repudiates Treaty of Versailles, 117-18, on date of war with England, 125, 233, Army under personal leadership of, 128, opens Staff College, 129, his estimate of British decadence, 159, 429-30, free to strike, 190, opposed to co-operation of West with Russia, 171-9, offers non-aggression pact, 172-3, 176, reoccupies Rhineland, 173-9, differences between generals and, 175, 178-9, 233, 242, 257, 279-83, 479-83, enhanced prestige of, 179, 286-287, signs pact with Austria, 185, Four Years' Plan of, 190, comes to terms with Mussolini, 190, gambles of, 190-1, Chamberlain seeks better relations with, 217-18, Halifax visits, 224, Lloyd George misled by, 225, his plans for the future of Germany, 232-3, 250-1, assumes direct control over Army, 233-234, 279, puts pressure on Schuschnigg, 235-6, speech of, on Austrian submission to his demands, 236-7, acknowledges his obligation to Mussolini, 241-242, his entry into Vienna, 242, opens Czechoslovakian campaign, 251, 255-6, 260, 266, 269, requires Italy's acceptance of Czechoslovakian campaign, 255, his offer to Beneš, 258, Churchill urges Joint Note to, 262, Chamberlain's visits to, 269, 270, 274-6, 281, 283-5, demands cession of Sudetenland, 269-70, 276, further demands of, 275-7, plot by generals against, 279-81, denies intent to mobilise, 282, offers guarantee to Czechoslovakia, 283, and Munich conference, 284-7, signs agreement with Chamberlain, 285-6, 300, and Horthy, 290, instances of bad faith of, 292, 309-310, speech of, on warmongers of Britain, 294-5, "appeasement" of, 299, hopes to divide Britain and France, 300-301, annexes Czechoslovakia, 307, fixes date for invasion of Poland, 314, Roosevelt's message to, 318, denounces Naval Agreement, 322-3, denounces Polish Non-Aggression Pact, 323-4, and war on two fronts, 326, on Pact of Steel, 338, determined on war, 346, 352, demands Italian aid, 347, Chamberlain's letter to, on British preparations for war, 353-4, postpones invasion of Poland, 354, informs Mussolini of pact with Soviet, 355, issues Directive No 1 for conduct of war, 356-7, courses open to, 402, 409-10, armoured advance of, 427, relies on France-British unwillingness to

fight, 429–30, 435; peace proposals of, 435, "secret weapon" of, 453–4, message of, to *Admiral Graf Spee*, 472, prepares to invade Norway, 483–4, 508–9, 515–516, 522, draws moral from Russian failure in Finland, 483–4, and captured invasion plans, 501–2, meets Mussolini at Brenner Pass, 518
Hitler and Mussolini's Letters and Documents, 354 *n*, 355 *n*
Hitler Youth, 129
Hoare, Rt Hon. Sir Samuel (Viscount Templewood), and India Bill, 71, Foreign Minister, 122, on Anglo-German Naval Agreement, 127–8, First Lord of Admiralty, 142, Churchill corresponds with, on battleship design, 144, consultations with, on Italian aggression in Abyssinia, 151, Churchill writes to, on Mediterranean crisis, 153–4, on League action against Italy, 154–5; meets Laval, 162, resignation of, 165–6, question of new office for, 179, takes Home Office, 199, in War Cabinet, 374, presides over Land Forces Committee, 405
Hoare-Laval Pact, 162, 165, 169
Hoeppner, General, 280
Holland, German menace to, 183–4, 499, 575, Hitler plans attack on, 338–9, 501–2, likelihood of invasion through, 431–2, plan to aid, 433–4, Allies decide on action in event of invasion of, 521, 575–6, invasion of, 596–9, German ships in Dutch ports, 682–3
Holland, Vice-Admiral L. E., 555
Home Guard, 439
Hood, H.M.S., 155, 512–15, seeks commerce-raider, 446, 452, repairs to, 683–684
Hopkins, Harry L., 644
Hore-Belisha, Rt Hon. Leslie, urges conscription, 318, in War Cabinet, 374, leaves the War Office, 497
Horne, Rt Hon. Sir Robert (Lord Horne), and German menace, 74, member of Conservative deputation to Prime Minister, 205, mentioned, 19, 106 *n*, 278
Horthy, Admiral, 290
Hostile, H.M.S., 538–9
Hotblack, Major-General F. E., 561
Hotspur, H.M.S., 538–9
Hoy, A.A. guns at, 383
Hugenberg, Herr, 56, 63
Hull, Cordell, 227
Hungary, Communism in, 13, signs Rome Protocols, 85, transport of Russian troops across, 274, claims of, on Czechoslovakia, 290, 298, 307, in German camp, 313, Hitler likely to attack, 409
"Hunt" class destroyers, 680 *n*
Hunter, H.M.S., 538–9
Hurricane fighters, 115, 301–3, 515, at Narvik, 587–8

Iceland, 540, report of enemy landing on, 588, British base on, 687
I.F.F. apparatus, 139
Illustrious, H.M.S., 629
Imperial Defence, Committee of, 45–6, 133
Incendiary bombs, 618
India, Socialist policy in, 30–1, Churchill opposes Government policy in, 30–1, 61, 71, 74, naval defence of, 367, Regular troops in, for France, 437
India Bill, MacDonald's, 71, 160
India Defence League, 71, 74
Indian Ocean, hunting groups in, 460–1, 464, *Admiral Graf Spee* in, 464, danger of U-boats in, 678
Indians, in Royal Navy, 689
Indomitable, H.M.S., 629
Innitzer, Cardinal, 94
Innsbruck, German leaflets dropped on, 82
Inskip, Rt Hon. Sir Thomas (Viscount Caldecote), on the question of the Fleet Air Arm, 143, 608–9, 676, Minister for Co-ordination of Defence, 180, 191, on measures for rearmament, 206, on guarantee to Czechoslovakia, 308, Churchill's letter to, on severing Kiel Canal, 369, mentioned, 60 *n*, 204
Inter-Allied Military Commission of Control, 41–5
International Settlements, Bank for, 55
Invasion danger, 463, 666–7
Ireland, Northern, 662, Southern, *see* Eire
Iron Duke, H.M.S., 442
Iron ore, Swedish, shipped from Lulea, 478, shipped from Narvik, 478–81, 671, means of stopping supplies, 490–3, 495, 520–1, 671, Allied attempts to get control of mines, 504, 569
Ironside, Field-Marshal Lord, on Polish Army, 357, reports on invasion of Poland, 404, letter of, to Mackesy, 560, approves new plan for attack on Trondheim, 568, approves Cultivator No. 6, 614–5, mentioned, 333
Ismay, General Sir H. L. (Baron), on situation in Norway, 569–70, appointed Senior Staff Officer to Churchill, 577–9, mentioned, 576
Ismid, Gulf of, 635
Italian Navy, reconstruction of, 126, and British Mediterranean Fleet, 153, 158–9, 163, concentration of, 415, strength of, 624
Italy, Communism in, 13–14, and Western Pact, 25–8, 36, conflict between interest

of, and German plans, 81, supports Austrian independence, 82, 85, 93, 97, imperialist programme of, in Africa, 95, 97, 148–50, French agreements with, 96–7, 151, 163, makes trade agreement with Russia, 102, 496, designs of, towards Abyssinia, 117–18, 120, 149–51, 152–3, 607–8, and Stresa Conference, 118–20, protests against German violation of Peace Treaty, 120, sides with Germany, 148, 163, 169, 190, 607, and Abyssinian membership of League, 149, Churchill consulted on British policy concerning, 151, "Sanctions" against, 154–8, 607, invades Abyssinia, 156, impotent in war against Britain, 158–9, 163, annexes Abyssinia, 166–8, Germany suggests pact with, 172; and reoccupation of Rhineland, 183, subscribes to Non-Intervention, 192, intervenes in Spanish war, 193, 218–20, 230, 254–5, Chamberlain seeks to improve relations with, 217–18, 226–7, 229–30, 253, 300, submarine piracy of, 220–3, fortification of Mediterranean by, 222, Eden's resignation claimed as victory for Mussolini, 238, pact of, with Britain, 253–5, attempts to change alignment of, 253–5, 298, 313, arbitrates on Czecho-Hungarian frontier, 298, claims against France of, 313, invades Albania, 313–14, signs Pact of Steel with Germany, 337–8, not prepared for war, 346–7, 356, neutrality of, 356, Admiralty uncertainty regarding, 370, 380–1, 452, 681, effect of British command of Mediterranean on, 370, French divisions on frontier of, 430, search for common interest with, 438, under popular dictatorship, 607, extent of territorial waters of, 673, favourable treatment of, 673, planning of naval operations in event of war with, 681, 683

Janus, H M S, 582
Japan, annulment of British alliance with, 13, naval power of, 13, economic crisis in, 78, occupies Manchuria, 78–80, withdraws from League, 80, and London Treaty, 84 *n*, and Anglo-German Naval Agreement, 127, joins Anti-Comintern Pact, 193–4, repercussions in, of recognition of Italian position in Abyssinia, 227, in state of patriotic fervour, 338, Hitler on procrastination of, 355, Mussolini desires to avoid rupture with, 355, dangers of attack by, 367, 371–2, Capetown fears attack by, 667, at war with China, 679
Japanese Navy, strength of, 625, 679
Jean Bart, 452
Jefferis, Major-General Sir M R, 673
Jehol, annexed to Manchukuo, 78
Jellicoe, Admiral of the Fleet Sir John (Earl), 386
Jellicoe, H M S, 657
Jews, Hitler's hatred of, 48, 50, 75–6, 295, Nazi persecution of, 69
Jibuti–Addis-Ababa Railway, 97
Joad, C E M, and Oxford Union resolution, 77, 150
Jodl, General, diary of, 236, 240–1, 509, 515, on annexation of Czechoslovakia, 318, mentioned, 302, 472, 509
Josing Fiord, 506–7
Jutland, Battle of, Hitler on, 339

Kahr, Otto von, 90
Kamenev, M, 348
Karelian Isthmus, 485, Russian attacks on, 488, 516
Karlsruhe, sinking of, 537
Kattegat, British submarines in, 537
Keitel, Field-Marshal, Hitler's directive to, on Czechoslovakia, 260, on Munich, 286, issues "Directive for Armed Forces", 314, plans attack on Norway, 504, 509, mentioned, 241
Kennedy, Captain, 445
Keyes, Admiral of the Fleet Sir Roger (Lord Keyes), 205, seeks command of Trondheim expedition, 558, 565, criticises Chamberlain's Government, 593–4
Kiel Canal, importance of severing, 389
King George V, H M S, 146, 450, need to speed completion of, 628–30, 657
King George V class of battleship, 145
Kirkwall, airfield at, 383
Kjell, the, 506
Koenigsberg, sinking of, 537
Koht, Professor Halvdan 508
Kristiansand, German troops at, 532
Kun, Bela, 13
Kutrzea, General, 399

Labour, Ministry of, Training Centres of, 682
Labour Party, first Government of, 21, second Government of, 29–33, Indian policy of, 30–1, 71, MacDonald's separation from, 60, 122, and disarmament, 76, pacifism of, 80, 100, 595, opposes strengthening of Air Force, 102–6, and Baldwin's confession, 111, changed outlook of, 156–7, divided as to policy, 159, supports action by League, 182, against Munich agreement,

292; opposed to conscription, 319, 337, 595, refuses to join War Cabinet, 362–3; criticises Chamberlain, 593–5, Chamberlain approaches, about formation of National Government, 596, joins National Government, 600
La Chambre, Guy, 213
Ladoga, Lake, 488
La Ferté, conferences at, 433
Lamlash, 248
Land Forces Committee, 405, 410
Lane-Poole, Vice-Admiral Sir R. H. O., 640
Langsdorff, Captain, of *Admiral Graf Spee*, 464, at Battle of River Plate, 466–9, instructions to, 472, death of, 474, prisoners released by, 505
Lansbury, Rt Hon George, leader of Labour Party, 61, 92, on disarmament, 100, resigns leadership, 157
Latvia, need for co-operation of, 327, should not fall into the hands of Germany, 335, Russian need for neutrality of, 348, Germany politically disinterested in, 350; Russian Pact of Mutual Assistance with, 436, 484 *See also* Baltic States
Laval, 421 *n*
Laval, Pierre, foreign policy of, 96, signs agreement with Italy, 97, 163, makes bargain with Hitler, 98, at Stresa Conference, 119, his interview with Stalin 121, and Hoare-Laval Pact, 162, 165, opposed to Franco-Soviet Pact, 171, mentioned, 223
Law, Rt Hon Andrew Bonar, 19, 22
Layton, Sir Walter (Baron), 663
Layton, Admiral Sir Geoffrey, 536
Leads, Norwegian, mining the, discussions concerning, 478–80, 482–3, 489–92, 498, 671, decision on, 521–3, 680 *n*, postponement of, 525, discussion on "German action in consequence of", 539–40, use of "ramming" ships in default of, 682, mentioned, 531, 533–4
League of Nations, origin of, 3, repudiated by United States, 12, potential strength of, 14–16, 70, 83, 106, 110, 131, 171, 181–182, 188–90, German entry into, 25–8, and withdrawal of Inter-Allied Control Commission, 43, German withdrawal from, 70, 100, and Japanese aggression in China, 79–80, Russia joins, 95, hands over Saar to Germany, 97–8, collective security through, 110–2, Abyssinia appeals to, 117–18, and German violations of Peace Treaty, 117–21, impotence of, without force, 120–1, 181–2, Anglo-German Naval Agreement a blow to, 125; Abyssinian membership of, 149; possible action of, in Abyssinian war, 149–50, 151, 607–8, Covenant of, and Peace Ballot, 152–3, imposes Sanctions against Italy, 154, 156, 607, British Navy as arm of, 158, 607, Hoare-Laval plan laid before, 165, damaged by Baldwin's policy, 168, 169–70, France appeals to, 175, 181–2, failure of, 182–183, a British conception, 188–9, Russia advises invoking Council of, on Czech crisis, 264, Litvinov's speech to, on Czech crisis, 273–4
League of Nations Affairs, Ministry for, 122–3
Leakage of information, dismissal from Navy for, 688
Leeb, General Ritter von, 281
Leeper, Sir Reginald, 278
Le Mans, 421 *n*.
Lemberg, 395–6, 399, 401
Leningrad, protection of, 485
Leopold, King of Belgium, 501
Lesjeskogen, Lake, 581
Lewis, Commander R. C., 454, 455
Liberal Party, in 1923, 20–1, in 1929, 29–30; break-up of, 33; pacifism of, 80, 100, opposes strengthening of Air Force, 103–106, and Baldwin's confession, 111, supports action by League, 182, against Munich agreement, 291–2, opposed to conscription, 319, 337, refuses to join War Cabinet, 361–5
Libya, France gives Italy territory in, 97, withdrawal of Italian troops from, 254
Lightships, air attacks on, 509
Lillehammer, 569, 580
Lillejonis, 555
Lindemann, Professor Frederick (Baron Cherwell), friendship with, 72, on Air Defence Research Committee, 133–5 138, 210, organises statistical department 420, 500, 663, mentioned, 166, 256, 314, 673, 678, 681
Lindsay, Rt Hon Sir Ronald, 226
Linz, 242
Lipski, M., 312–13
Lithgow, Sir James, 510, 683, 687
Lithuania, need for co-operation of, 327, should not fall into the hands of Germany, 335, in German sphere of influence, 350, Russian Pact of Mutual Assistance with, 436, 484, mentioned 306, 313 *See also* Baltic States
Little Entente, anxiety in, concerning Germany, 76, anxiety in, concerning Russia, 95, ranged with France, 173, 175, lesson to be learned by, through reoccupied Rhineland, 179, 184, effect of German control of Vienna upon, 244, collectively a Great Power, 244–5 *See*

also Czechoslovakia, Roumania, Yugoslavia
Litvinov, M., and League of Nations, 95, on joint action in Czech crisis, 263–4, 266, 273–4, suggests Triple Alliance, 325, 327, removed from office, 328–9, 355
Liverpool, convoys from, 381
L L sweepers, 638
Lloyd, Lord, urges rearmament, 76, member of Conservative deputation to Prime Minister, 205, mentioned, 150, 154, 278
Locarno Treaty, 27–8, and withdrawal of Control Commission, 43, German breach of, 173 *et seq*
Lodz, 398
Lofoten Islands, 686 *n.*
London, threat to, from the air, 115, 438, 617–18; alternative centre of government to, 118, 668
London Conference on India, 30
Londonderry, Marquess of, Minister for Air, 113–15
Lothian, Marquess of, 176–7
Louvain, 428, 433
Ludendorff, General von, in the *Putsch*, 49
Luetzow, 532, 537
Luleå, iron ore shipped from, 478, Russian ice-breaker for, 490, 671, mining of approaches to, 490, 521, mentioned, 569
Lwow, 395
Lyster, Admiral Sir Lumley, 670
Lytton Report, 79

MacDonald, Rt Hon J Ramsay, his political brotherhood with Baldwin, 20, first Administration of, 21, second Administration of, 29–30, 32–3, National Government of, 33–4, 46, 60, 66–71, at Geneva Disarmament Conference, 58, disarmament policy of, 64–70, 76, 83, 104, 122, India Bill of, 71, on German rearmament, 108–9, lays down office, 115, 122, at Stresa Conference, 119, Churchill interviews, on air defence research, 133, mentioned, 73
MacDonald Plan, 68–70
Machine-guns, classed as defensive weapons, 65, for merchant ships, 509, British production of, compared with German, 614–15, for aircraft, 616–17
Machine tools, war-time production of, 614
Mackensen, Field-Marshal von, 42
Mackesy, Major-General P J, commands military force to Narvik, 549, instructions of, 549–50, 553, considers landing impossible, 552–4; awaits disappearance of snow, 556, obstructive arguments of, 571–2
Macnamara, Captain, 655
Maginot Line, Churchill visits, 342–3, Hitler on concentration of French troops on, 347, engenders defensive mentality, 425, offensive possibilities of, 426, a wise and prudent measure, 426, turning of, 431
Magnetic mines, Churchill suggests, 369, losses through, 453–5, 510, recovery of a, 454, measures taken to combat, 454–6, 494, 638–43, 670, to be laid off Luleå, 490, mentioned, 477
Maisky, I M, communicates Russian views on Czech crisis to Churchill, 263, 274
Makeig-Jones, Captain, 388
Malaya, H M S, 462, 681 *n*
Malta, lacks A A defences, 153, 371, 659, *Hood* repairing at, 684, mentioned, 419
Manchester Guardian, 321
Manchukuo, 78–9
Manchuria, Japanese occupation of, 78–9
Mandel, Georges, 272
Mannerheim Line, Russian attacks on, 488, 516, breach of, 516
Man-power, delay in organisation of, 500
Marin, Louis, 252
Maritime Royal Artillery, 509
Marlborough His Life and Times, 33, 72, 75, Roosevelt on, 394
Marrakesh, 166, 258
Marseilles, assassination of King Alexander in, 96
Martini, General, 140
Marx, Herr, 24
Masaryk, Jan, 256
Massy, Lieutenant-General H R S, in command in Norway, 560, approves change of plan at Trondheim, 568, on failure of troops to travel to Grong, 581–2
Me 109, 303
Mediterranean, repercussions of Anglo-German Naval Agreement in, 126–7, Fleet in, during Abyssinian crisis, 153–7, 164, 607, question of evacuating, 153–4, 370, submarine piracy in, 220–3, Anglo-French co-operation in, 221–3, 393, Italian fortification of, 222, 254, disposition of Fleet in, at occupation of Albania, 315–17, Italy promised free hand in, 338, British ships temporarily diverted from, 370, 380, 392, value of British domination of, 370, air attacks in, 371, concerted measures in, against a possible Italian attack, 375–6, battleship concentration in, 681, plan of

operations in, in event of war with Italy, 681, 683
Mein Kampf, main thesis of, 50–1, on German Army, 128–9
Memel, German occupation of, 306, 313
Merchant Navy, Services draw on, 369, demands weapons, 378, losses in, through enemy action, 389–90, 405, 510, 646, intrepidity of, 456, Admiralty takes over shipbuilding for, 510, 684
Merchant ships, conversion of, into A M C , 352–3, Services' demand for, 369, arming of, 378–9, 389, 392, 509, convoying of, 378–82, 389, Admiralty to enforce obedience on, 380, "degaussing" of, 455, 640–3, air attacks on, 471, 509–10, "wiping" of, 641, losses of, 646, use of old, 656
Metz, 422
Meuse, the, 426, 428, 431
Meuse-Antwerp line, 428, 432–3
Mexico, protests against German violation of Peace Treaty, 120
Miklas, Dr , Austrian President, 93, refuses to nominate Nazi Chancellor, 240–1
Milford Haven, 381
Military Co-ordination Committee, 528–530, 544, 551, 552; Chamberlain takes chair, 530, 576, and Norwegian expedition, 552–6, 561, 565–7, 573, Churchill given greater powers at, 576–8
Militia, creation of (1939), 423
Milne, Field-Marshal Lord, 205
Minches, the, voyage through, 512–13
Mine-bumpers, 627
Mine-destructor ship, 638
Minelayers, comparative strength of navies in, 621–5, in British construction programme, 631
Mines, merchant vessels lost through, 646 *See also* Acoustic, Fluvial, Magnetic mines, *etc*
Mineswcepers, work of, against magnetic mines, 455–6, 638–9, comparative strength of navies in 621–3, in British construction programme, 631, work of, against the acoustic mine, 639–41, badge for men of, 690
Mo, 582
Modlin, 400
Mohawk, H M S , air-raid damage to, 442
Molotov, Vyacheslav, Commissar for Foreign Affairs, 328, German leanings of, 328, 331, his qualities, 330–1, replies to Chamberlain's speech on the proposed Russian alliance, 339–40, skill of, in duplicity, 349, denounces Soviet-Finnish Non-Aggression Pact, 485
"Molotov Cocktail", 485
Monitors, 621, 667
Montevideo, 467, 471–3, 474–5, 505
Moore-Brabazon, Lieut.-Col. Rt. Hon. John (Baron Brabazon of Tara), 205
Morgan, Brigadier, 560, 567, 580
Morocco, 166
Morrison, Rt Hon H S , German resentment at attitude of, 301, proposes Vote of Censure on the Chamberlain Government, 594, mentioned, 593, 600
Morton, Major Sir Desmond, 72–3, 679
Mosjoen, 581–2
Moslem-Hindu antagonism in India, 61
Motor torpedo-boats, comparative strength of navies in, 621–4
Mozambique Channel, *Admiral Graf Spee* in, 464
Mueller-Hillebrandt, General, 281
Mukden, Japanese occupation of, 78
Munich, Communism in, 49, Churchill visits, 75, suppression of Roehm plot in, 89–90
Munich crisis, wisdom or folly of Britain and France in, 250–1, 287–8, the story of, 268–87, British reactions to, 290–1, debate on, 292–5
Munitions, lay-out of factories for, 407–8, 411, delay in organising man-power for, 499–500, insufficient supply of, 613–15
Murmansk, *City of Flint* in, 435, ice-breaker sent to Germany from, 489, Russian troops in, 493
Mussolini, Benito, rise of, 13–14, and rise of Hitler, 81, supports Austrian independence, 82, 85, 93, 148, 235, first meeting with Hitler, 85–6, imperialist African programme of, 95, at Stresa Conference, 119–20, Abyssinian programme of, 120, 125, 148–9, and Anglo-German Naval Agreement, 125, sides with Hitler, 148, 170–1, 234–5, his estimate of Britain, 150, and Sanctions, 156, seeks compromise on Abyssinia, 164, estranged from Britain, 171, Chamberlain's approaches to, 218, 298–9, calling bluff of, 221–3, Eden's resignation claimed as victory for, 238, approves Schuschnigg's submission, 239, warns against plebiscite, 239, Hitler's gratitude to, over Austria, 241–2, makes pact with Britain, 253, supports Hitler in Czech crisis, 261, 275, Chamberlain appeals to, 283, and Munich conference, 284–5, Chamberlain visits, 305–6, asserts Italian claims against France, 313, Goering explains German preparations for war to, 317–18, on message from Roosevelt, 318, anxious to avoid war, 346–7, informed of pact with Soviet, 355, tells Hitler that Italy will not fight, 355–6, correspondence of, with Hitler, 355–6,

496-7, learns of final moves from England, 356, expresses misgivings of Soviet-German pact, 496-7, meets Hitler at Brenner Pass, 518, popular dictatorship of, 607
Mutual Guarantee, Treaty of, 27

Namsos expedition, 553, 554-5, 560, 582, object of, 560, 569, hampered by snow, 560, lacks air defences, 560, 562, successful landing, 563-4, 574-5, to form base of pincers movement, 564, 566-7, reinforcements for, 564, 566-8, difficulties in landing materials for, 570, German air attack on, 574, 580-1; failure and evacuation of, 579-81, troops from, unable to link with Gubbins, 582
Namur, 428, 432-3
Nantes, 421 *n*, 422
Narvik, iron ore shipped from, 478-82, 489-92, 522, 671, needed as Allied base for Finland, 489, 493, 498, 505, delays in decision on operation on, 498, plans for landing troops at, 505, 517, 522, British minefield on approaches to, 531, 533, 680, captured by Germans, 533-4, 540, Britain's need to recapture, 534, 541, 543, 547, 553, 555, 568-70, destroyer battle at, 538-9, 543; second British naval attack at, 543-4, 551, combined expedition to, 549-55; naval and military deadlock concerning, 552-6, 582, troops diverted from, 560; reinforcements for, 567, 587, German reinforcements for, 569, 586, object of operation at, 569-70, 575, Cork supreme commander at, 571-3, bombardment of, 573, 586, German defences of, 574, superiority of Germans at, 582-3, taking of, 587, air defences of, 587-8, evacuation of, 587-8, 590-2; plans to make use of and defend, 685
Nassau, Bahamas, 443
National Coalition Government, end of war-time (1916-22), 18-19, MacDonald-Baldwin, 33-4, 60, Indian policy of, 61, 71, 74, blameworthy conduct of, 80, need for (1940), 595-7, Churchill forms, 599-601
National Socialist Party—*see* Nazi Party
Nationalist Party, German, 63
Navy—*see under* Royal Navy, *also* French, German Navy, *etc*
Navy Entrance Examination, 690-1, 692-3
Nazi Party, rise of, 49-50, 52-3, Reichswehr joins forces with, 54-5, campaigns against "Young Plan", 55-6, loses seats, 62, majority vote for, 63-4, in Saar valley, 97, plot to arrest leaders of, 280-281
Nazi Party, Austrian, German aid to, 82, 94, 234, abortive revolt of, 93, 234, represented in Austrian Cabinet, 236
Nazi-Soviet Relations, 1939-41, 326
Nelson, H M S , 143, 384, mine damage to, 455-6
Neptune, H M S , 462, 472, 475
Neurath, Freiherr von, suggests non-aggression pact, 172, on importance to Germany of Rhineland fortifications, 185, announces Anti-Comintern Pact, 193-4, alarmed at Hitler's plans, 233, takes over Foreign Office, 241
Newall, Marshal of the Royal Air Force Sir Cyril (Baron), 433
Newcastle, H M S , 445
Newfoundland, enlistments for Royal Navy in, 687, 689
New Statesman, 66
New York, Churchill's accident in, 71
New Zealand, and Western Pact, 26, danger of Japanese attack on, 372, *Achilles* a ship of, 464
"Night of the Long Knives", 90
Non-aggression pact, Germany proposes, 172-3
Non-Intervention policy in Spain, 192-3
Norfolk, H M S , submarine attack on, 447
Norge, 532
North Atlantic convoys, 461
North Sea, British Fleet tied to, 127, search for raiders in, 445-6, minefield barrage in, 453, 478-9, depleted of ships, in search for *Graf Spee*, 463, submarines to protect, 463, 515, air attack on Fleet in, 662, Fleet Air Arm in, 676
Northern Barrage (1917-18), 478-9, 483, memorandum advising re-creation of, 452, minute on amount of explosives required for, 666
Northern Patrol, 392, 588, 687, Newfoundlanders in, 687
Norway, protests against German Treaty violation, 120, need for co-operation of, in Plan "Catherine", 415, shipments of Swedish iron ore from, 478-81, 490-3, 522, 671, German use of territorial waters of, 478-9, 490-1, 492-3, 508, 671, 682, mining of territorial waters of, 478-480, 482-3, 490-1, 498, 521-4, 531 533-534, 671, 680, negotiations with, for chartering of tonnage, 480, 491, Germany plans attack on, 483-4, 504, 508-9, 515-16, 522-3, neutrality of, 489, 540-1, 545, transit of help for Finland across, 489, 493, 498, 504, means of retaliation of, to British mining of Leads, 491, advantages to Britain of control of, 491-

492, 508; consequences of possible German occupation of, 491–2, Russian designs on, 493, *Altmark* captured in waters of, 505, precautions against German retaliation on, 522, causes of failure of campaign in, 522–3, German warships off, 531, occupation of, 531–4, 540–1, 546–7, sinking of warships of, 532; Allies discuss expedition to, 540, British need for fuelling base on coast of, 541; pro-German conspiracy in, 545–6, resistance in, 546–7, German progress through, 557–8, British need for air base in, 567, evacuation of Allied troops from, 579–81, 587–8, 590–1

Norwegian Army, resistance of, 546–7, near Narvik, 549, 586, British troops to reinforce, 567, exhaustion of, 580, at capture of Narvik, 587

Norwegian expedition sent to Narvik, 549 *et seq*; lack of military and naval co-ordination at Narvik in, 550–1, 552–6, 582, reinforcements from France for, 553, 558, 574, sent to capture Trondheim, 552–5, 557 *et seq*, Ismay on, 569–570, difficulties of landing troops for, 570, 575, effect on, of events in France, 570, failure of, 579–83, 587–8, German superiority manifest in the campaign, 582–3, capture of Narvik, 587

Nuremberg trials, 250, 286, 508, extracts from documents, 236, 240–1, 251, 317–318, 338–9, 350, 353–4, 356–7, 377 *n*.

Nyon Conference, 220–3

Olav Tryggvason, 531

O'Neill, Rt Hon Sir Hugh, 205

Orama, loss of, 588, 592

Orbay, General, 635

Orkneys, fighter base in, 442, blockade line north of, 444, aircraft from, 537, Fleet Air Arm bases in, 677

Orzel, the, escapes from Baltic, 393, sinks *Rio de Janeiro*, 531

Oscarsborg, 532

Oslo, film show at German Legation in, 531, taken by Germans, 531–2, 546, German advance from, 557–8

Ouvry, Commander J. G D, 454

Oxelosund, iron ore shipped from, 481, 482, prevention of shipments from, 490

Oxford Union, pacifist resolution of, 77, 150

Paasikivi, President J K, 485, 517

"Pact of Steel", 337–9

Paget, General Sir Bernard, 580

Panama, conference of American republics at, 461

Papen, Franz von, as Chancellor, 62; sides with Hitler, 63, in the Roehm purge, 90, organises overthrow of Austrian republic, 93–4, 234, 236, on the Fuehrer, 236

Patrollers, 680

Peace Ballot, 152, 157, 180 *n*, 182

Peace Society, Baldwin's speech to, 161

Pembroke Dock, 248

Penelope, H M S, 543

Pernambuco, *Admiral Graf Spee* off, 460, 463

Pétain, Marshal, and the Maginot Line, 425–6

Petrol ration, 438

Petsamo, Russia demands lease of, 485, attack on, 487, aid to Finland through, 505

Philip of Hesse, Prince, 241–2

Phillips, Admiral Sir Tom, 416, 446, approves new plan for Trondheim, 564

Phipps, Rt Hon Sir Eric, 266

Pilsudski, Marshal, 324, 348

Plymouth, 381, 476

Poincaré, Raymond, 12

Poison gas, development of, 36, 38

Poland, Russian repulse in, 13, independence of, 14, France's guarantee to, 27, German Arbitration Treaty with, 27, opposes Eastern Pact, 95, protests against German violation of Peace Treaty, 120, aligned to France, 173, affected by fortified Rhineland, 184, German need to absorb, 200, 232, British guarantee to, 246, 310–11, 323–5, 336, 341, 344, 353–4, demands cession of Teschen, 289–90, 298, 311–12, heroism and sufferings of, 289–90, German encirclement of, 306, 313, 318, refuses transit to Russian troops, 313, 349, 401, date for German invasion of, 314, 343, 357, Hitler denounces agreement with, 323–4, fear of Russia in, 325, Russian arrangement with Germany concerning, 331, 350, 400, German policy with regard to, 338, 346–7, 354–7, refuses guarantee from Russia, 340, anti-Bolshevism of, 348, British treaty with, effect of, 354, invasion of, 356–7, 395–400, 429, destruction of, 376, 395, 400, weather assists invasion of, 404, German divisions retained in, 430, film of invasion of, shown in Oslo, 531

Polish Air Force, 397–8

Polish Army, favourable reports of, 357, overwhelmed by Germans, 396–410, troops in Norway, 574, 586, troops raised in U S, 576

Polish Corridor, 200, 324, destruction of troops in, 395
Polish Navy, 393
Portland, Anti-Submarine School at, 147, home of Asdics, 450
Portsmouth, 691
Portugal, protests against German violation of Peace Treaty, 120
Posen, 395
Pound, Admiral of the Fleet Sir Dudley, Churchill's estimate of, 366, on Plan "Catherine", 415, and *Royal Sovereigns*, 419, and report of lost cruiser, 446–7, at conference with French Admiralty, 448–9, advises Northern Barrage, 452, Churchill's letters to, 471–6, 495–6, 500, 540–1, and command of Narvik expedition, 550–1, mentioned, 375, 387, 453, 507, 565, 576
Prien, Captain, sinks *Royal Oak*, 440; reports sinking of a cruiser, 446–7
Prince of Wales, H M.S , 146, 450, need to speed completion of, 628–9, 657
Prinz Eugen, 620
Prussia, Socialist Government of, driven from office, 62
Putsch of 1923, 49–50

Queen Elizabeth, 630, 642
Queen Elizabeth class, 143
Queenstown, 247–9
Quisling, Vidkun, 483–4, 545–6

Rabenau, General von, 41–2
Radar (R D F), the technique of, 138, coastal chain stations for, 139–40, German system of, 140, calling up of defence for stations, 353, vital element in naval service, 367, installation at Scapa Flow, 383, 515, 632, 660, at Rosyth, 633, installation of, on warships, 661
Radio-beams, bombers guided by, 135 *See also* Radar
Radio-location, 139–40 *See also* Radar
Radom, 397
Raeder, Admiral, 125, 472, warns Hitler, 282, on "Gaining of Bases in Norway", 483, 516
Ramillies, H M S , 672, 681 *n*
Rathenau, Herr von, 44–5, 56
Rauenfels, sinking of, 539
Rawalpindi, loss of, 445–6
R D F —*see* Radar
Rearmament, British, 195, 202–3; Churchill continues to urge, 204–10, 613–18, Chamberlain's attitude towards, 218, 225, demand for, after Munich, 295–6; in year following Munich, 302
Red Fleet, on Battle of River Plate, 476
Red Sea, temporarily closed to merchant ships, 380
Reichenau, General von, 242
Reichstag, Nazi Party in, 52, agrees to "Young Plan", 56, burning of building of, 63, Hitler addresses, after suppression of Roehm plot, 91; election of 1933, 100
Reichswehr, secret building up of, 42, Ministry, 42, 43, amassing of arms by, 45, real power in Germany, 52–3, Hitler's bargain with, 54–5, 94, at opening of Hitler's first Reichstag, 64, Storm Troops merged with, 87, liaison of, with Red Army, 102, becomes Wehrmacht, 128, alleged bad condition of, 281–2
Renown, H M S , in search for *Admiral Graf Spee*, 462, 464, 469, 472–4, return of, to home waters, 472, off Narvik, 534–6, 538, damages *Gneisenau*, 535–6, 542, at Trondheim, 559, mentioned, 155, 462, 587, 592
Reparations, payment of, under the Peace Treaty, 6, 8, "Young Plan" for, 55–6, cancellation of, 58
Reparations Commission, abolition of, 55
Repulse, H M S , 446, 462, 533, 587
Resolution, H M S , 462, 586, 686
Revenge, H M S , 462
Reynaud, Paul, *La France a Sauvé l'Europe* of, 286, 331, 350, replaces Daladier, 518, Churchill's letter to, 519, comes to agreement about Operation "Royal Marine", 519–21, 524–5, 540, on French decision as to action on German invasion of Low Countries, 540, approves attack on Trondheim, 557, describes general military position, 573–4; mentioned, 252, 272
Rhine, river, as French frontier, 6, 10, Churchill visits fortifications along, 342–344; scheme for mining, 457–8, 647–8 *See also* Fluvial mines
Rhineland, French seek independent, 11, Germany seeks pact on, 25, evacuation of, by Allies, 29, 56, Germany suggests demilitarisation of frontiers of, 172, German reoccupation of, 172–9, 181–4, 235, 239, Germany declines to limit troops in, 182–3, fortification of, 184–5, 190, possibility of Allied advance into, 428
Ribbentrop, Frau von, 243
Ribbentrop, Joachim von, his meeting with Churchill, 200–1, hands ultimatum to Schuschnigg, 236, farewell luncheon to, in London, 243, mission of, to Paris, 300–1, opens diplomatic offensive

against Poland, 306, 312–13, reaffirms German-Polish Non-Aggression Pact, 324, signs Pact of Steel, 337, Ciano argues with, against war, 346, signs pact with Stalin, 350–2, 355, forecasts non-intervention by Britain, 496, mentioned, 241, 261
Richelieu, 450–2
Rieth, Dr, 93
Riga, anti-Bolshevik propaganda from, 436
Rio Claro, sinking of, 377
Rio de Janeiro, sinking of, 531
River gunboats, comparative strength of navies in, 621–3, 625
River Plate, Battle of, 465–72, 476 7; infringes American Security Zone, 476–7
Rockets, British anti-aircraft, 495, 674–5
Rodney, H M S, 143, 533, 587, 592, hit in air attack, 537
Roehm, Ernst, in the 1923 *Putsch*, 49, Chief of Staff of S A, 53, Schleicher plots with, 54–5, 62, plots against Hitler, 86–9, arrest and execution of, 90
Rombaks Fiord, 543, 554–5, 586–7
Rome Protocols, 85
Rome-Berlin Axis, inception of, 171, 190
Romsdal Fiord, 566
Roope, Lieut-Commander Gerard, 535
Roosevelt, Franklin D, speech of, against dictatorships, 222, proposes using American influence to improve situation in Europe, 225–9, 311, possible intervention of, in Czech crisis, 262, seeks non-aggression assurance from Dictators, 318, and atomic bombs, 345, Churchill's correspondence with, 393, 496, mentioned, 170, 178
Rosenberg, Herr, in the 1923 *Putsch*, 49, and invasion of Norway, 483
Rostock, concentration of troops at, 524
Rosyth, Fleet at, 382, as naval base, 443, 633, 676, movement of guns from, 634
Rothermere, Viscount, 166, 692
Roumania, aligned to France, 173, 175 affected by fortified Rhineland, 184 5 oil of, 244, question of transport of Russian troops across, 264, 274, 313, 349, British guarantee to, 32?, fear of Russia in, 325, Turkish relations with, 335, refuses guarantee from Russia, 340, effect of Soviet-German Pact on, 356; Russian menace to, 401, German menace to, 402, 419, German supplies of oil from, 520–1 *See also* Little Entente
Royal Air Force, neglect of, 66, 101, 213, reduction of, 68, need to strengthen, 84, 101, 106–9, 206, Opposition vote of censure on proposals to strengthen, 102–103, German Force approaches parity with, 105–7, parity achieved, 108, 114–116, 213; expansion of, 116, 301–4, 410–412, 436, 616–17, German views of, 167, compared with German, 303, 616–17, call-up of reservists of, 353; drops pamphlets on Germany, 376, 2,000 machines a month for, 411, fighting strength of (1939), 437, 664–5, protects East Coast convoys, 510, bombards Stavanger aerodrome, 555, 559–10, in Norway, 533, 561–2, 581, and Fleet Air Arm, 608–9, 676–7, deficiency of bombers in, 617, and mining of Rhine, 647–8; lag between output and increased strength of, 664–5
"Royal Marine", Operation, 647–8 *See also* Fluvial mines
Royal Marines, in Norway, 551, 556, 566, to man Scapa defences, 633–4
Royal Navy, reduction in strength of, 12–13, Treaty limitations to, 84, 125, rebuilding of, 126, 143–6, value of Radar to, 141–2; as arm of League, 158, 607, not capable of meeting Italian Navy, 158, 164, French co-operation with, 220–3, 393, 451, loses bases in Ireland, 247–9, fleet movements of, as deterrent in Czech crisis, 263, mobilisation of, 279–80, 282, 291, 366, disposition of Mediterranean Fleet of, during Italian invasion of Albania, 315–17, 366, adequately prepared for war, 367, superior to German, 368, draws on merchant fleet, 369, danger of air attacks on 371, 562, 662, 681, and defence of Far East, 371–2, escort ships of 379 81, base for Home Fleet of, 382–3, 385–6, 443, 512–15, 632–5, 675 6, hunting units of, 388 9, 451–2, 460–1, 471–4, programme of new construction of, 407, 416–19, 450–1, 628 31, defensive tendency of, 413–14, search for an offensive for, 414, seeks for surface raiders, 445–6, 460–1, concentration of forces of, off Montevideo, 471–2, heavy burden borne by, 47, Home Fleet of, during German invasion of Norway, 533 9, 540 2, and expedition to Trondheim, 558–64, air defences of, 562 681, losses to, off Norway, 592, assists Holland, 598, requires own Air Force, 608–611, dependent on War Office for supplies, 615, strength of (1939), 621, "degaussing" of, 640 1 and mining of Rhine, 647–8 training in air gunnery in, 681, dismissal from, for indiscreet talk, 688, promotion in 688, 690 1, no discrimination as to race or colour in, 689, class prejudice in entrance examinations for, 690, 692 3, amusements for, 692 looting in, 692

Royal Oak, H M S., sinking of, 439–41
Royal Observer Corps, 140
Royal Sceptre, sinking of, 377
Royal Sovereign, H M S , 681 *n*
Royal Sovereign class, adaptation of, to withstand air and torpedo attacks, 416, 419, 523, 626–8
Ruge, General, 546, 580
Ruhr, French invasion of, 11, 49, accessible to air attack, 136, possibility of attack on, through Belgium, 424, 428, Allied decision to bomb, 576
Runciman, Viscount, Czech mission of, 260 2
Russia, Soviet, rise of, 13, extermination of populations by, 16, desirability of German pact with, 28, Hitler's enmity for, 51, 171, and proposed Eastern Pact, 95, enters League, 95, relations between Dictatorships and, 102, 496–7, protests against German violation of Peace Treaty, 120, French approach to, 121–2, 171–2, 263–4, subscribes to Non-Intervention, 192, intervention of, in Spanish war, 193, 219, Eden's wish for better relations with, 216, offers of collaboration from, 229, proposes conference after occupation of Austria, 245–6, relations of, with Czechoslovakia, 258–259, Army and political purge in, 258–9, 330, advises action on Czech crisis, 263–4, 273–4, declares resolve to fulfil obligations to Czechoslovakia, 264, 273–4, and guarantee of new Czech frontiers, 271, offer of, ignored, 274–5, 311, Conservatives desire co-operation with, 278, German fear of attack by, 280, not represented at Munich, 285, Hitler on Jewish influence in, 295, suggests Six-Power Conference, 313, Chamberlain's distrust of, 313, British talks with, 325; suggests Triple Alliance, 325–7, 339–40, relations of, with Nazi Government, 326, turns towards Germany, 328–30, arranges new partition of Poland, 331, 351, 400, Britain's answer to proposals of, 332, Turkey's relations with, 335, need for alliance with, 333–7, renewed Franco-British approach to, 347–9, 402, her attitude to Poland, 348, Franco-British military talks with, 348–50, negotiates with Germany, 350–1, number of divisions of, 349, signs pact with Germany, 350–3, her secret agreement with Germany, 350, 499, realistic policy of, 351, retribution suffered by, 352, Japan ready for alliance against, 355, invades Poland, 400–1, 403, pursues policy of self-interest, 403, and British command of Baltic, 414–15, 627, Hitler feels confident of, 435, occupies Baltic States, 436, report from, of Battle of River Plate, 476, blocks her western entries, 484, invades Finland, 485–9, 516, ice-breaker of, lent to Germany, 489, 671, possible designs of, on Norway, 493, strained British relations with, 496, aid given to Germany by, 496, Finland submits to terms of, 517, Britain to help Turkey if she is menaced by, 635–6, 666, Baltic bases of, 667
Russian Air Force, Czechoslovakian base taken from, 251, bombs Helsingfors, 487, 498
Russian Army, liaison of, with Reichswehr, 102, purged of pro-German elements, 330, not prepared to fight for Poland, 329, early failure of, in Finland, 487–8
Russian Revolution, 4, 5, 13
Rybathy Peninsula, 485

S A —*see* Brownshirts
Saarbrucken fortifications, 282, 295
Saar Valley, plebiscite in, 97–8
St Germain, Treaty of, 9
St Helena, 669
St Nazaire, landing port for B E F , 421
Salisbury, Marquess of, 205
Salmon, H M submarine, 379, 690
Salzburg, German leaflets dropped on 82
Samuel, Rt Hon Sir Herbert (Viscount Samuel), 33, 103
Sanctions, Britain opposed to, against Germany, 119, imposed against Italy, 154–6, 607–8, Baldwin's conception of, 157
Sandys, Rt Hon Duncan, 448
Sanjurjo, General, 192
Sarraut, Albert, 174
Scandinavia, apprehensive of Germany rearmed, 76, 120, and Anglo-German Naval Agreement, 125–6, effect of British command of Baltic on, 414, 628, strategic significance of, 478, German aims in, 483–4, shipping lost to, by German action, 507, news of German preparations against, 524, effect of isolation of Germany from, 627–8 *See also* Denmark, Norway, Sweden
Scapa Flow, choice of, as base, 382, submarine incursion in, 382–3, 439–40, defences of, 383, 384, 442, 515, 632, 659–60, 675–6, Churchill visits, 384–7, 442, 514–5, *Royal Oak* sunk in, 439–41, air raid on, 442, Home Fleet moves into, 512–5, 542, mines in entrance to, 513, manning of guns at, 633–5, rest for

destroyer crews at, 672–3, theatre and cinema ship for, 687
Schacht, Dr., 130, 300
Scharnhorst, built in defiance of Treaty limitations, 123–4, 368, sinks *Rawalpindi*, 445, returns to Baltic, 447, forces in wait for, 452; escorts troopships to Narvik, 532, 535–6, intercepts British convoy, 588; damaged by *Acasta*, 589–590, air attack on, 592, in relation to Plan "Catherine", 626, mentioned, 667, 686
Scheldt, line of the, 427–8, 432–3
Schleicher, General Kurt von, plots with Roehm against Hitler, 54–5, 62–3, 88, secures downfall of Bruening, 58, makes a bid for power, 62–3, becomes Chancellor, 62, death of, 90
Schmidt, Dr. Guido, 235
Schubert, General von, 240
329, 349
on, takes control
93, submits to German demands, 230, 236–7, his interviews with Hitler, 235–6, announces holding of plebiscite, 239–40, resignation of, 240, Mussolini refuses aid to, 241
Seaplane tenders, comparative strength of navies in, 624, 625
Security Zone, American, 461–2, violation of, 476–7
Seeckt, General von, plans re-creation of German Army, 41–2, 129–30, plans re-creation of Air Force, 43–4, 99–100
Seyss-Inquart, Dr., 230, 236, 240–1
Shanghai, Japanese landing near, 78
Shetlands, protection for, 635
Shinwell, Rt Hon Emanuel, 682
Shipping, radio-location of, 141–2, range-finding on, 141, German, 379, 392–3, 510, 682, "degaussing" of, 455, 640–3, chartering and insuring of neutral, 481–482, salvage and repair of, 681, British gains in, owing to German attack on Norway and Denmark, 687. *See also* Merchant ships
Shipping, Ministry of, 408–9
Shoeburyness, magnetic mine recovered off, 454, 638
Shropshire, H M S., 462, 469, 472
Siegfried Line—*see* West Wall
Sikorski, General, 576
Simon, Rt Hon Sir John (Viscount), disarmament policy of, 64–5, 69–70; hears of German air parity, 108, 114, 119, visits Berlin, 108, 118, foreign policy of, 119, at Stresa Conference, 119, moves to Home Office, 122, in War Cabinet, 374, long period of office, 374, Churchill writes to, about Budget 412–13, mentioned, 269
Simon Commission, report of, 71
Sinclair, Rt Hon Sir Archibald, on disarmament and the German menace, 112–113; supports rearmament, 196, declines to appear on deputation to Prime Minister, 205, at talk with Henlein, 255–256, and need of Russian alliance, 337, Air Minister, 600
Singapore, defence of, 371–2
Skagerrak, British submarines in, 537, sweep of, 567
Skjel Fiord, 551, 569, 686 *n*
Skoda works, 302, 311, Russian contracts for munitions from, 326
Skuas, attack *Scharnhorst* and *Gneisenau*, 592
Sloop-minesweepers, French, 450
Sloops, comparative strength of navies in, 621–3; British construction programme of, 631, revival of the name, 680 *n*
Slovakia, autonomy of, 298, secession of, 306–7, German protection of, 313
Smuts, Field-Marshal Rt Hon J. C., and Western Pact, 26, letter to, on *Erebus*, 667–8
Smyrna, Gulf of, 635
Snowden, Lord, 60–1, 174
Socialist Party, Prussian, driven from office, 62, German, 64, Austrian, 82. *See also* Labour Party
Somaliland, 97
Somerville, Admiral of the Fleet Sir J. F., 686
Sotelo, Señor, 192
South America, United States Navy and protection of waters off, 461, 463, advantages to, of action off River Plate, 477, catapult aircraft for use round, 659
Southampton, H M S., damaged by air attack, 442, 537, mentioned, 551, 588
Soviet-Czech Pact, 274
Soviet-German Non-Aggression Pact, 350–2, Mussolini informed of, 355–6, effect of, on French Communists, 429, Italian misgivings concerning, 396–7
Spain, protests against German violation of Peace Treaty, 120, Churchill in, 166, growing strength of Communism in 191, outbreak of Civil War in, 192, policy of Non-Intervention in, 192–3, foreign intervention in, 193, 219–20, 230, 254–5, Franco's successes in, 245
Spearfish, H M S., torpedoes *Luetzow*, 537
Spears, Major-General Sir Edward, 342
Spitfire fighters, 115, 301, 303
S S—*see* Blackshirts
Stalin, Generalissimo, Eden's interview

with, 119, Laval's interview with, 121, conspiracy to overthrow, 258–9, gives up attempt to work with Western democracies, 326–7, 329, changes his Foreign Commissar, 328–9, on position of Russia (1939) with Britain and France, 349, signs pact with Germany, 350–2, proposes toast of Fuehrer, 352, seeks bases in Finland and Baltic States, 484
Stammers, Temporary Surgeon-Lieut H J, 590 n
Stanhope, Earl, 655
Stanley, Rt Hon Oliver, urges National Government on Mr Chamberlain, 320–321; Secretary of State for War, 497, and Norwegian campaign, 553, 561, 567–8
Stanning, Lieutenant, 539
Starhemberg, Prince, 93
Stavanger, plans for landing British troops at, 517, 522, German troops land at, 532, bombardment of aerodrome at, 555, 559
Stimson, H. L., at Geneva Disarmament Conference, 58, on Lytton Report, 79–80
Storm Troops—see Brownshirts
Stoyadinovitch, M, 224
Strakosch, Sir Henry, 203
Strang, Sir William, mission of, to Russia, 347–9
Strasbourg, 342
Strasbourg, 462
Strasbourg-Metz front, 428
Strasser, Gregor, 86, 88, 90
Stresa Conference, 118–20
Stresemann, Gustav, 25, 28, 52, 56
Stuelpnagel, General, 280
Submarine-chasers, French, 450, 623, U S, 622
Submarines, Anglo-German agreement on, 125–6, abolition or restriction of use of, 126, 128, value of R D F to, 141, location of, by Asdics, 146–7, 370, piracy of Italian, 220–1, French, off Trinidad, 451, to protect North Sea, 463, 515, British, in Skagerrak and Kattegat, 537, comparative strength of navies in, 621–5, in British construction programme, 631, relief from strain for crews of, 691 *See also* U-boats
Sudeten Germans, Hitler on, 251; demand autonomy, 255–6, Czech attempts to conciliate, 261, 269, claim union with Reich, 270; mentioned, 258, 266
Sudetenland, autonomy demanded for, 255–6, 269, failure of German-provoked revolt in, 269, cession of, to Germany, 270–3, evacuation of, 277, 285
Suez Canal, movement of Italian troopships through, 152–3, 158
Suffolk, H M S, 559–61
Supersonic mines, 456, 673
Supply, Ministry of, need for, 191, 611–12, large-scale Army lay-out of, 407, 411, and Air Force *matériel*, 610–11
Supreme War Council, discusses line of advance in Belgium, 432–3, discusses fluvial mines and mining of Leads, 519–522, discusses German action in Norway, 540, discusses threat to Low Countries, 540, 575–6, discusses Norwegian operations, 574–6, discusses German military advantages, 573–4
Surface raiders, hunting of, 388–9, 393, 477, pocket-battleships as, 451–2, 460, 463–5, danger to commerce from, 459 477, German Admiralty orders to, 460, disguised merchant ships as, 474, losses due to, 646
Sussex, H M S, 462, 464
Suvich, Signor, on Austrian independence, 82, Dollfuss appeals to, 85, at Stresa Conference, 119
Sweden, protests against German Treaty violation, 120, possible naval bases in, 414–15, need for co-operation of, in Plan "Catherine", 415, German iron-ore supplies from, 478–83, 490–3, 495, 521, 671, transit for aid to Finland across, 489, 493, 498, neutrality of, 489, 548–9, connection from Trondheim to, 557, possible passage of German troops through, 569, 586 *See also* Scandinavia
Swilly, Loch, 247–9
Swinton, Viscount (Rt Hon Sir Philip Cunliffe-Lister), Air Minister, 115, 134, 142, dismissal of, 208, Churchill's tribute to, 209
Switha Sound, 514
Switzerland, possibility of invasion through, 343, 431
Syrovy, General, 275

Tangier, 166
Tanks, classed as offensive weapons, 65, German, in Poland, 397, deficiency of, in B E F, 407, 502–3, building of obstacles to, 410, 427, power of, in attack, 425, 427, Russian, in Finland, 488, B E F shortage of, 502–3
Tardieu, M, 58
Task Force system, 389
Tennant, Captain (Admiral Sir W G), 475
Territorial Army, German opinion of, 167; doubling of, 313–14, not equal to Regulars, 437, Indian training ground

for, 437; troops in Norway, 555, 561, 566, 580, supply of equipment to, 614
Teschen, Polish acquisition of, 289, 298, 312
Thaelmann, Herr, 24, 57
Thames, convoys from, 381, magnetic mines in approaches to, 453–4
Thomas, General, 280
Thompson, Inspector, 358
Thorez, M., 118
Thorn, Poland, 400
Times, the, supports German right to rearm, 66, believes in Hitler's sincerity, 176, on relinquishment of Irish bases, 249, on partition of Czechoslovakia, 266, favours small War Cabinet, 373
Tirpitz, strongest vessel afloat, 125, uncompleted in 1939, 308
Tirpitz, Grand-Admiral von, 24
Tiso, Father, 306
Tizard, Sir Henry, 138, 141
Toledo, defence of, 192
Torpedo-boats, comparative strength of navies in, 621–3, 625
Torpedoes, direction of, by Radar, 141, adaptation of ships to withstand attacks by, 626, protection of ships against, 660
Trade unions, reaction of, to Abyssinian crisis, 157, not making full effort, 584, 615
Training Centres, Ministry of Labour, 682
Trawlers, Asdic-equipped, 352–3, 378, 380, 392, 419, British strength in, 621, anti-submarine, in war-time construction programme, 631, for Scapa Flow, 632, requisitioning of, 665–6, building of, 665–6
Trenchard, Viscount, 205
Trianon, Treaty of, 9
Tripoli, 419
Trondheim, plans for landing British troops at, 517, 522, German troops land at, 532–5, postponed attack on, 536, British air attack on, 537, Britain determines to recapture, 547, 553, 557–8, British expedition to, 552–6, 557 *et seq.*, plan for frontal attack on, 559–62, 563–4, subsidiary landings, 560, change of plan, 563–8, 574, 582, German defences at, 563, Press indiscretions concerning, 563, 566, enveloping operation on, 563, 566, 567–8, bombardment of, 564, 566, object of operation on, 569–70, abandonment of operation on, 582, *Scharnhorst* and *Gneisenau* at, 590, 592
Truant, H.M.S., sinks *Karlsruhe*, 537
Tukhachevsky, Marshal, 259, 330
Tunisia, status of Italians in, 97
Turkey, protests against German violation of Peace Treaty, 1[illegible]0, at Nyon Conference, 222, British alliance with, 322, 333, 335, 356, 402, 496, effect of Soviet-German Pact on, 356, German danger to, 401, naval aid to, 635–6, 666

U-boats, building of, 44, 323, Britain concedes German right to build, 124–5, use of Asdics in locating, 146–7, 370, 449–450, losses through, 370–1, 377, 388, 389–90, 404–5, 646, early attacks of, 377–8, number of (1939), 377, 621, means taken to combat, 378–9, 390, 449–450, possible Irish refuges for, 381–2, 655, 662, in Scapa Flow, alarm concerning, 382–3, hunted by aircraft-carriers, 387–8, humanity of some commanders of, 391, losses of, 391, 444, 510, expected increase of, 407, 418, 449, 510, 657, construction of vessels to combat, 418–19, in Scapa Flow, 439–42, report of sinking of cruiser by, 446–7, minefield as deterrent of, 452–3, changing tactics of, 510, extract from war diary of U 47, 643–4, Fleet Air Arm aids in defeat of, 677 *n.*, danger to Australian convoy from, 678
Ukraine, German need to absorb, 200, 232, mentioned, 335
Unemployment, in United States, 32, in Germany, 56
United States, loans of, to Germany, 8–9, 10, 14, 29, 45, and Treaty of Guarantee, 11, repudiates League of Nations, 12, isolationist policy of, 12, 70, 76, 79, 118, 170, 229, disarmament policy of, 12, 65, British war debts to, 22–3, 34, economic crisis in, 31–2, 55, fails to prevent second war, 37–8, 70, Churchill's lecture tour in, 70–1, and Japanese aggression in China, 79, "non-realistic" policy of, 94, repercussions of Anglo-German Naval Agreement on, 127, offers assistance in improving international relations, 225–228, possible effects of European intervention of, 229, and joint action in Czech crisis, 264, action expected from, in event of Japanese attack, 367, 372, German propaganda in, 377, Task Force system of, 389, and the Security Zone, 461–3, 477, indignation felt in, at Soviet attack on Finland, 485, and mining of Leads, 492, 499, cold attitude of, 496, peace feelers from, 504, and British cruiser construction, 656, ship-building for Britain in, 658
United States Navy, Treaty limitations of, 84, 125, battleship design in, 146, and the Security Zone, 461–3, strength of (1939), 6[illegible]

U P weapon, 495, 674
Uranium, potential powers of, 344–5
Ursula, H M submarine, 691
Usborne, Vice-Admiral C V, minute to, 674

Vaernes airfield, 562, 567
Valiant, H M S, 533, at Trondheim, 559, escorts Narvik convoys, 588, 590, 592
Vanguard, H M S, 631, 672 *n*
Vansittart, Rt. Hon Sir Robert (Baron Vansittart), and German menace, 163, 217, and Hoare-Laval Pact, 164, 217, leaves Foreign Office, 217, at Nyon Conference, 220, Churchill's letter to, on Grandi's conversation, 607–8, mentioned, 150
Vearncombe, Able Seaman, 454
Vendetta, H M S, 678
Verdal, 579
Vernon, H M S, 454, 660, 670, 681
Versailles Peace Conference, 3–4
Versailles, Treaty of, territorial provisions of, 6, 97, 172, economic clauses of, 6, 8, disarmament clauses of, 14–15, 29, 39–41, 44–5, 66, German breaches of, 42–5, 76, 97, 101, 105, 108, 117–20, 123–4, 128, 170, 172–3, readjustment of frontiers laid down by, 298
Vian, Captain (Admiral Sir Philip), 506–7
Victorious, H M S, 629
Vienna, after First World War, 9, Nazi revolt in, 93, Hitler's entry into, 242, advantages to Germany of mastery of, 244
Vigo, German ships in, 682
Viipuri, air attacks on, 498, 516
Vilna, Russians in, 401
Vincennes, conferences at, 433
Vistula, Battle of the, 399
Voelkischer Beobachter, 49
Voroshilov, Marshal, 329, 348, 350, 401
Vyshinsky, A J, 258

Wake-Walker, Admiral Sir William, and the magnetic mine, 455, 670, minute to, 673
Walcheren, 434
Walker, Rear-Admiral A H, 673–4
Wallace, Mrs Euan, 357
War Cabinet (1939), constitution of, 361–365, 373–4, 405–6, daily meetings of, 404, Churchill suggests informal meetings of, 412, discusses plan of defence in Belgium, 432, approves Operation "Royal Marine", 517, agrees to mining of Leads, 521–2, Defence Committee of, 529, hears of Norwegian invasion, 534, agrees on Trondheim landing, 561, endorses change of plan at Trondheim, 568, Churchill's, 599–601
War debts, 22–3, 34
War Office, and Ministry for Co-ordination of Defence, 611–12, supplies Services, 613, 615, and manning of Scapa defences, 633–4
Warburton-Lee, Captain, at Narvik, 537–9, 543
Warsaw, German advance on, 395, 398–9, defence of, 399, 403
Warsaw, Battle of (1919), 348
Warspite, H M S, searches for raiders, 446, at Narvik, 543–4, 551, 554, 567, 586, at Trondheim, 559, moved to Mediterranean, 681 *n*, mentioned, 462, 686
Washington Disarmament Conference (1920), 12
Washington Naval Agreement, 13, 125, 145
Watson-Watt, Sir Robert, 138
Wehrmacht, 128–9
Weimar Republic, foundation of, 10, Hitler's antagonism to, 49, biennial elections in, 52, power behind, 52–3
Weizsaecker, Herr, 326
Welles, Sumner, 225, 228
Westcott, H M S, 678
West Fiord, mining of, 531, 533–4, 686 *n*
West Wall, fortification of, 190, incomplete, 252, 257, 259, defects of, 282, additional fortifications of, 295, "hundreds of divisions" along, 347
Western Approaches, U-boat attacks in, 377, 379–80, French defence of, 451, destroyer force in, 669
Western Pact, 25–8
Weygand, General, 348
Whalers, 658, 680
White Russia, German need to absorb, 200, 232
Whitworth, Admiral Sir W J, at Narvik, 535, 538, 543–4, 551
Wick, R A F base at, 383, 442, 632
Wiedemann, Captain, 260
Wiessee, arrest of Roehm at, 88–9
Wigram, Ralph, friendship with, 73, and reoccupation of Rhineland, 175–6, 178, death of, 178
"Wilfred", Operation, 522, 531, 533–4, 679–80, postponement of, 524–5
Wilhelm II, Kaiser, 57
Wilk, Polish submarine, 393
Wilmot, Rt Hon John, 100
Wilson, Sir Horace, adviser to Chamberlain, 217, 268, and Czech crisis, 276–7, 283–4, 292, mentioned, 683
Wilson, President Woodrow, 3, 11, 12
Winterton, Earl, 74, 106 *n*, 205

"Wiping" of merchant ships, 641
Witzleben, General, 280–1
Wolmer, Viscount, 205
Women in industry, need for, 499
Wood, Rt Hon Sir Kingsley, memorandum from Churchill to, on Radar, 141–142, Secretary of State for Air, 210, letter from Churchill to, on atomic energy, 344–5; in War Cabinet, 374, against 55-division Army, 405, at meeting of Allied Supreme Council, 433, intimate friend of Chamberlain, 596, on need for National Government, 597
Work Battalions, of German Army, 129–130
World Crisis, The, 424
World War, First, Europe at close of, 3–6, 15; plans for 1919 campaign, 36–7, German study of lessons of, 41, German approach to France before outbreak of, 83–4, Holland escapes invasion in, 598–9
Wu-Sung, 78

York, H M S , 462
"Young Plan", 55–6
Yugoslavia, assassination of King of, 96, aligned to France, 173, affected by fortified Rhineland, 184, raw materials of, 244, Italian threat to, 314, effect of Russian move on, 401–2 *See also* Little Entente

Zeppelin, Radar-detecting flight of, 140
Zinoviev, M , 259
Zuyder Zee, Germans on causeway across, 598